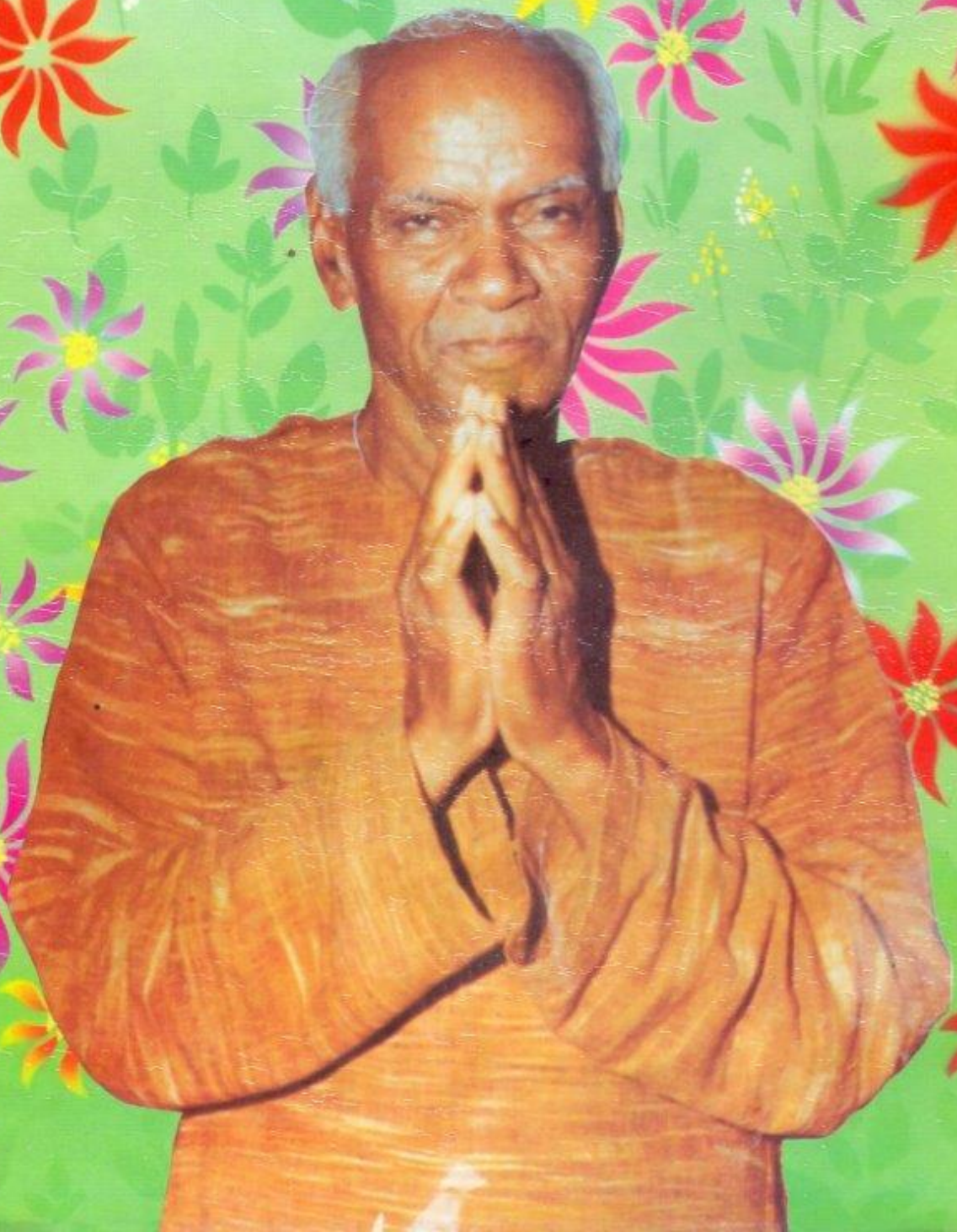
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

उपासना-समर्पण योग



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

उपासना-समर्पण योग



सम्पादक

ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❐
प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा - २८१००३

❐
© सर्वाधिकार सुरक्षित

❐
द्वितीय संस्करण १९९८
www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

❐
मूल्य १२५)

❐
मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

उपासना-समर्पण योग



सम्पादक

ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❐
प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा - २८१००३

❐
© सर्वाधिकार सुरक्षित

❐
द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



❐
मूल्य १२५)

❐
मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org



धरित्री जिनको पाकर धन्य हो गयी, ऐसी अवतारी सत्ता—पूज्य गुरुदेव

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org



मातृ सत्ता सम्पर्क में जो आया धन्य हो गया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ मातरं भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।।

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ।।

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ।।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है । परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है । परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी मां शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही है । उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया । आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानी गणों के, वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है ।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देख सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये । इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबा कर लिखा गया हो । हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता मन को, विचारों को बदलता चला जाता है । लाखों करोड़ों के मनों के अंतःस्थल को छू कर उसने उनका कायाकल्प कर दिया । रूसो के प्रजातंत्र की, कार्ल मार्क्स के साम्यवाद की क्रांति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है । उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्‌बोधन से एक विराट गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े रहते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाय, कैसे छन्दबद्ध, लिपिबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को ।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पंद्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता । वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता-श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आसपास के दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्‌भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंतःकरण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था । साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा । जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे । छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे । किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुतः अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी । जाति-पाँति का कोई भेद नहीं । जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवाकर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किन्तु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय, अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय, यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजा स्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में संपन्न क्रिया कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषि सत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष के चौबीस महा- पुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रांति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरु सत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गई, संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने तोड़कर परोक्षाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख सुन कर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद पैदल लम्बा रास्ता पारकर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भी गये । छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई । जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अंग्रेजी सीखकर लौटे । आसन- सोल जेल में वे श्री जवाहर लाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से-मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना । यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश ।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जन आक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रांतिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था । नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं । बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये । जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्य चकित रह गये । उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्त जी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधी जी के समक्ष पेश किये गये । बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए । कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुज में सम्मानित किया । उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधान मंत्री राहत फण्ड, हरिजन फण्ड के नाम समर्पित कर दीं । वैरागी जीवन का, सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है ?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरु हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये । सांस्कृतिक आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रह कर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया । प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदय स्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है ।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ, स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे । पुस्तकों का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंतः स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही । साथ देने आ गयीं

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुखी था-पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रांति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परम वंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५८ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देश भर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की अपनी रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनमें महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूल थाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञान सम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तपःपूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों, यज्ञायोजनों के द्वारा विचार क्रांति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों में विशेष कार्य भार सौंप, परम वंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़ कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्त्तन संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट् परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी बूटी, यज्ञविज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञान सम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युग शिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता, आस्तिकता संवर्धन एवं जन जागृति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञा संस्थान - शक्तिपीठ-प्रज्ञामण्डल-स्वाध्याय मंडल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तप साधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी को दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नव निर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरु सत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युगसंधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेघ महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नव निर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रांति के निमित्त सौर ऊर्जा के दोहन द्वारा विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से विशिष्ट मंत्राहुतियों द्वारा सम्पन्न किये गये इन अश्वमेधों ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस. ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु संपन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी जा रही है। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो सत्तर खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हो रहा है। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जायेंगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़ चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेंगे' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

ईश्वर की उपासना जीवन की एक ऐसी अनिवार्य आवश्यकता है जिसके अभाव में आत्म सत्ता पर कषाय कल्मषों का आवरण छाता चला जाता है । उपासना का अर्थ है उप + आसन अर्थात् ईश्वर के समीप बैठना । ईश्वर के समीप बैठने से तात्पर्य है–ईश्वर के पास बैठने योग्य स्वयं को सुपात्र, पवित्रतम बनाकर उसके आदर्शों को अपने जीवन में उतारने का प्रयास करना । महानता से जुड़ने के लिए किया गया प्रयास ही उपासना कहलाता है ।

परमपूज्य गुरुदेव ने उपासना, जो परमात्मा की जाती है, को आत्मा की एक अनिवार्य खुराक बताया है । दैनन्दिन जीवन की अन्यान्य आवश्यकताओं की तरह उपासना थी एक ऐसा पुरुषार्थ है जो नित्य की जानी चाहिए । रोजमर्रा के जीवन में हमारी आत्मसत्ता पर सूक्ष्म जगत से आ रही प्रदूषणों की कालिमा का आवरण छाता रहता है । इस कालिमा की नित्य सफाई ही उपासनात्मक पुरुषार्थ है । श्रीरामकृष्ण परमहंस कहा करते थे– "अपने लोटे को रोज माँजो अर्थात् अपनी आत्मसत्ता की सफाई नित्य नियमित रूप से करते रहें । उसमें कभी आलस्य या प्रमाद न बरतें । परमपूज्य गुरुदेव के अनेकानेक उदाहरण देकर उपासना की महत्ता बताई है । गरम वस्तु के पास रखे पदार्थ गरम हो जाने, पारस के सम्पर्क में आकर अनगढ़ लोहे के स्वर्ण वन जाने, वृक्ष का सम्पर्क पाकर पाँवों से कुचल जाने वाली बेल के ऊपर आकाश चूमने तथा गंदे नाले के गंगा में मिलकर गंगा नदी ही कहलाने की उपमाएँ देकर पूज्यवर ने व्याख्या की है कि यही चमत्कार उपासना से मिल सकता है, यदि व्यक्ति उसका तत्त्वदर्शन व विज्ञान समझ कर करें । अनेकानेक भ्रान्तियों के शिकार व्यक्ति मर्म न समझकर बाह्योपचार, बहिरंग के कर्मकाण्ड को ही सब कुछ मान बैठते हैं । उपासना के साथ जुड़ा हुआ शब्द है समर्पण योग । समर्पण–तादात्म्यता तद्रूपता लाए बिना उपासना में प्राण कहाँ ? इसीलिये उपासना अधिकांश की सफल नहीं होती क्योंकि उसमें करुण स्तर की परमात्म सत्ता से एकाकार होने की समर्पण भावना का अभाव रहता है । जिस दिन यह हो जाता है, उस दिन परमात्मा का, महानता का, श्रेष्ठता का जीवन में वास्तविक प्रवेश हो जाता है एवं व्यक्तित्त्व आमूल–चूल बदल जाता है ।

समर्पण में भक्तियोग में "मैं" व "तू" के भेद को भुलाकर "प्रेम ही परमेश्वर है" यह स्मरण रख ईश्वरीय सत्ता से अनन्यभाव से स्नेह किया जाता है । अपनी श्रद्धा अपने इष्ट पर आरोपित कर ही जाती है । श्रद्धा आदर्शों के समुच्चय, श्रेष्ठताओं के सद्गुणों के समुच्चय पर आरोपित करने के बाद अपना व्यक्तित्त्व भी वैसा ही ढलने लगता है जैसी कि अपनी भावना की गयी थी । "**श्रद्धामयोऽयं पुरुषः योयच्छ्राद्धः स एव सः**" यह प्रतिपादन देता है कि यह मनुष्य श्रद्धा से ही विनिर्मित है, जो जैसा आरोपण करता है–जिस सत्ता पर करता है, उसके जैसा ही बन जाता है । श्रद्धा के इस तत्त्वदर्शन को, इतने गूढ़ विवेचन को इतनी सरल, सुगम शैली में पूज्यवर ने समझाया है कि हृदय भाव विभोर हो उठता है ।

उपासना के दो चरण पूज्यवर ने बताए हैं–जप और ध्यान । जोरों से उच्चारण से, उपांशु जप से या होंठ हिलाकर माला घुमाते हुए मन ही मन गायत्री मंत्र या इष्ट का कोई मंत्र मनन करते हुए जप संपन्न किया जाता है । किंतु यह जप अधूरा है यदि इसके साथ ध्यान नहीं संपन्न हो रहा । ध्यान अर्थात् श्रद्धा

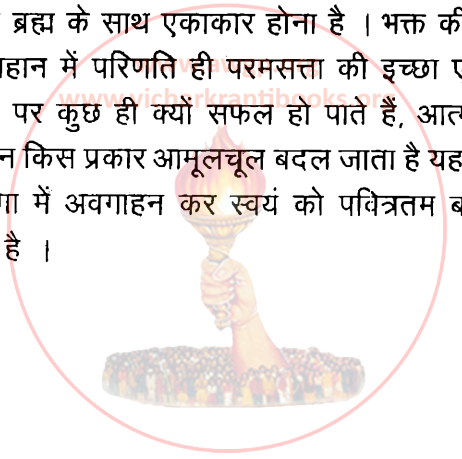
Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परक–समर्पण भावपरक श्रेष्ठ विचारों का व्यक्तित्व को बार–बार स्नान । जब तक विचारों में एकरूपता–तन्मयता–तल्लीनता आकर मन एकाग्र नहीं होगा तब तक उपासना कैसे फलवती हो सकती है । यह एक समग्र विज्ञान है जिसे पूज्यवर ने बड़ी सुग्राह्य शैली में इस खण्ड में प्रतिपादित किया है ।

आत्मिक प्रगति मनुष्य की समर्थ का अवलम्बन माँगती है । उपासना की जाय पर सद्गुरु का अवलम्बन लेकर तो निश्चित ही सारी सफलताएँ ऋद्धि–सिद्धि के रूप में प्राप्त होने लगेंगी । सद्गुरु बिना कोई भी आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ नहीं पाया है । ऐसी गुरुसत्ता मित्र के रूप में मार्गदर्शक के रूप में मिल जाय तो जीवन धन्य हो जाता है । गायत्री उपासना सद्गुरु से जुड़कर और भी परिणाम देने वाली फलदायी साधना बन जाती है ।

प्रार्थना भक्तियोग के अन्तर्गत ही परम सत्ता से की गयी आर्त्तयाचना है । अपना पुरुषार्थ चुकने पर मनुष्य के लिए एक ही मार्ग बाकी बचता है, परमसत्ता का अवलम्बन । निश्छल भाव से की गयी प्रार्थना–आत्मा की पुकार निश्चित ही भक्त को भगवत् सत्ता की अनुकम्पा का पात्र बनाती है । इसके लिए अपने आपे को–अहंकार को गलाकर आत्मसत्ता की डोर उसके हाथ में सौंपनी पड़ती है जो सिरजन हार है । इतना यदि व्यक्ति करने का साहस जुटा ले तो परमात्मा के अनुदान उसपर बरस पड़ते हैं ।

आत्मा और परमात्मा के मिलन–संयोग के प्रसंग को पूज्यवर की लेखनी ने इस खूबसूरती से वर्णित किया है कि हर पाठक के अंतस् में यह उतरता चला जाता है । **"जीवो ब्रह्मैव नापरः"** की उक्ति के अनुसार जीव का समग्र पुरुषार्थ ही उसका ब्रह्म के साथ एकाकार होना है । भक्त की भगवान में, पुरुष की पुरुषोत्तम में, नर की नारायण में, क्षुद्र की महान में परिणति ही परमसत्ता की इच्छा एवं हम सबकी नियति है । कैसे यह हो, अनेकानेक प्रयास होते हैं पर कुछ ही क्यों सफल हो पाते हैं, आत्म ज्ञान सब क्यों नहीं प्राप्त कर पाते, जो प्राप्त करते हैं उनका जीवन किस प्रकार आमूलचूल बदल जाता है यह सारा तत्त्वदर्शन परिजन–पाठक इस खण्ड में पढ़ें व भक्ति की गंगा में अवगाहन कर स्वयं को पवित्रतम बनाते हुए ईशकृपा के पात्र बनें, तो इस अनुशीलन की सार्थकता है ।



–ब्रह्मवर्चस्

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
अध्याय-१	
उपासना जीवन की अनिवार्य आवश्यकता	**१.१**
उपासना अनिवार्य है और आवश्यकता भी	१.१
ईश्वर उपासना आवश्यक क्यों ?	१.३
उपासना फलवती कैसे हो	१.४
ईश्वर उपासना से महान आध्यात्मिक लाभ	१.५
उपासना की सफलता सुनिश्चिते साधना पद्धति पर निर्भर	१.७
विधिवत उपासना के सुनिश्चित परिणाम	१.१०
उपासना करें तो इस तरह	१.१४
अध्याय-२	
उपासना की महत्ता एवं विधि-व्यवस्था	**२.१**
उपासना क्यों ?	२.१
सार्थक उपासना के मर्म	२.५
सुगम किन्तु महान उपासना प्रक्रिया	२.१०
पवित्रीकरण	२.११
आचमन	२.११
शिखाबन्धन	२.११
प्राणायाम	२.११
न्यास	२.१२
गायत्री मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है	२.१४
आत्म शुद्धि एवं प्रतीक पूजा की प्रेरणायें	२.१४
षट्कर्म के उद्देश्य	२.१५
प्रतीक पूजा का औचित्य	२.१६
जप एवं ध्यान का तत्वदर्शन	२.१७
जप का विज्ञान	२.१९
ध्यान की दिशा	२.२०
विशिष्ट उपासना-अनुष्ठान	२.२३
उपवास	२.२५
ब्रह्मचर्य	२.२५
तप	२.२५
सहृदयता	२.२५
स्वावलम्बन	२.२५

विषय	पृष्ठ
अध्याय-३	
उपासना का तत्व दर्शन और विज्ञान	**३.१**
उपासना अर्थात् ईश्वर के समीप बैठना	३.१
उपासना क्यों और कैसे ?	३.९
प्रतीक पूजा का औचित्य	३.१०
उपासना की महत्ता और उसका स्वरूप	३.१२
उपासना आवश्यक है और अनिवार्य भी	३.१६
आद्य शक्ति की उपासना से जीवन को सुखी बनाइये	३.१९
उपासना बिना कल्याण नहीं	३.२३
उपासना को दैनिक जीवन में स्थान मिले	३.२५
उपासना द्वारा परमात्मा की अनुभूति	३.२७
उपासना की सफलता में श्रद्धा विश्वास की आवश्यकता	३.२९
साधना से सिद्धि का मूलभूत आधार श्रद्धा	३.३२
पूजा-उपचार का तत्वज्ञान	३.३४
आत्मिक प्रगति का प्रथम सोपान जीवन शोधन	३.३७
उपासना को समग्र रूप में अपनायें-समुचित लाभ उठायें	३.३९
उपासना का प्रयोजन और परिणाम	३.४२
अन्तरंग के इष्टदेव की उपासना ही सार्थक एवं सच्ची साधना	३.४४
उपासना के साथ भावना भी	३.४७
इस महान अवलम्बन का परित्याग न करें	३.४९
उपासना की सफलता के मूलभूत आधार	३.५१
उपासना-कतिपय मार्मिक भावना स्तर	३.५४
आत्मिक प्रगति के दो प्रधान आधार	३.५७
दैनिक उपासना की सरल किन्तु महान् प्रक्रिया	३.५९

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
आत्म-कल्याण जप के साथ पय-पान का ध्यान	३.६२
ब्रह्मसंध्या और उसके मंत्र	३.६३
आत्मोत्कर्ष के लिए उपासना की अनिवार्य आवश्यकता	३.६५
उपासनाएँ सफल क्यों नहीं होतीं ?	३.६७
उपासना की सफलता 'साधना' पर निर्भर है	३.७०
अन्त:करण का परिष्कार, प्रखर उपासना से ही सम्भव	३.७३
उपासना सम्बन्धी भ्रान्तियाँ और उनका निवारण	३.७६
ब्रह्म प्राप्ति के दो साधन (एकाग्रता और निराकुलता)	३.७९
अपने अन्त: के देवता को जगाइये	३.८६
हर दिन नया जन्म हर रात नई मौत	३.८९
योग और तप का तत्व ज्ञान	३.९२
उपासना ही नहीं साधना भी	३.९६
आत्मदेव की परिष्कृति से पात्रता की प्राप्ति	३.९९
पात्रता विकसित करें, ताकि उसी अनुपात में निहाल हो सकें	३.१०२
पात्रता के अनुरूप पुरस्कार मिलेगा	३.१०५
हमारी भावी पात्रता और उसका स्पष्टीकरण	३.१०७
उपासना साधना आराधना की योगत्रयी	३.१०८
आत्मोत्कर्ष के चार आधार	३.१११
सूक्ष्म वातावरण का अनुकूलन सामूहिक उपासना द्वारा	३.११४
अपनी भावसम्पदा जगाएँ-श्रेय पाएँ	३.११८
आस्था की ज्योति बुझने न पाये	३.१२०
महानता से जुड़ें समय को पहिचाने	३.१२३
महाप्रज्ञा का युगशक्ति के रूप में अरुणोदय	३.१२६
अध्याय-४	
उपासना के दो चरण: जप और ध्यान	**४.१**
जप योग की विधि-व्यवस्था	४.१
ध्यान धारणा की दिव्य-शक्ति	४.८
अध्याय-५	
आत्मिक प्रगति के लिए अवलम्बन की आवश्यकता	**५.१**
अनुदान एवं अनुग्रह की पावन परम्परा	५.१
समर्थ बनना हो तो समर्थों का आश्रय लें	५.४
इष्टदेव का वरण-निर्धारण	५.७
दीक्षा की प्रक्रिया और व्यवस्था	५.९
देने की क्षमता और लेने की पात्रता	५.१०
आदर्श गुरु-शिष्य परम्परा फिर जागे	५.११
सद्गुरु प्राप्त कर सकने का असाधारण सौभाग्य	५.१३
श्रद्धा का आधार और अवलम्बन	५.१५
अध्याय-६	
गायत्री उपासना द्वारा मनुष्य जीवन की सार्थकता	**६.१**
गायत्री के जप की महिमा	६.१
गायत्री का अद्भुत प्रभाव	६.३
गायत्री से मनुष्यत्व की प्राप्ति	६.५
हमारा कर्त्तव्य	६.९
आत्मबुद्धि जाग्रत कीजिए	६.१०
गायत्री-भौतिक सिद्धियों और आत्मिक विभूतियों का अनन्त भण्डार	६.१२
अध्याय-७	
सफल उपासना का फलितार्थ आत्म सन्तोष	**७.१**
आनन्द और उसका उद्गम स्थान	७.१
सुख-शान्ति के स्वर्ण-सूत्र	७.२
सुख और दु:ख क्या है ?	७.५
जीवन में सामंजस्य	७.७
सन्तोषी-सर्वदा सुखी	७.८
अकारण दु:खी न रहा कीजिए	७.१०

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
दुःखी रहना शैतान का काम	७.१२
दुःख से छुटकारा कैसे मिले ?	७.१४
अपूर्णता से पूर्णता की ओर	७.१६
व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने वाली संकल्प शक्ति	७.१८
अध्याय-८	
प्रार्थना के प्रत्यक्ष चमत्कार	**८.१**
प्रार्थना में शक्ति है	८.१
आजकल के लोगों की दृष्टि में प्रार्थना	८.१
प्रार्थना के असंख्य लाभ	८.२
आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रार्थना का स्थान	८.२
प्रार्थना वास्तव में क्या है ?	८.३
मनोविज्ञान की दृष्टि में प्रार्थना	८.४
गुप्त मन की प्रतिक्रियाएँ	८.४
उचित ढंग से प्रार्थना कीजिये	८.५
प्रार्थना का तात्विक विश्लेषण	८.५
प्रार्थना का द्वितीय तत्व-एकाग्रता	८.६
तृतीय तत्व-सृजनात्मक ध्यान	८.७
चतुर्थ तत्व-आत्मनिवेदन	८.८
प्रार्थना के भिन्न-भिन्न रूप	८.८
दीप्तबल कैसे संग्रह करें	८.९
आकर्षक प्रार्थना की तीन अवस्थाएँ	८.१०
सकाम तथा निष्काम प्रार्थनाएँ	८.१०
निष्काम प्रार्थना ही सर्वोत्तम है	८.११
प्रार्थना का एक और रूप	८.१२
प्रार्थना भी एक प्रकार का पुरुषार्थ है	८.१२
सामुदायिक प्रार्थना बलशाली है	८.१३
आशावादी प्रार्थना या भावना	८.१३
प्रार्थना के लिए सर्वोत्तम समय	८.१३
प्रार्थना द्वारा रोग निवारण	८.१५
प्रार्थना सम्बन्धी गलतफहमियाँ	८.१६
पुरुषार्थ पूर्ण प्रार्थना	८.१७
प्रार्थना का त्रुटिपूर्ण दृष्टिकोण	८.१७
प्रार्थना-आत्मा की करुण पुकार	८.१७
प्रार्थना में बड़ा बल है	८.१९
प्रार्थना को दैनिक जीवन में स्थान मिले	८.२१
प्रार्थना का स्वरूप, स्तर और प्रभाव	८.२३
प्रार्थना का मतलब चाहे जो माँगना नहीं है	८.२५
अन्तरात्मा की सच्ची प्रार्थना	८.२८
हम प्रार्थना करें	८.२८
प्रार्थना की आवश्यकता	८.३०
पुरुषार्थ पूर्ण प्रार्थना	८.३१
प्रार्थना की चमत्कारी सिद्धि	८.३३
सच्ची भावना की शक्ति सामर्थ्य	८.३५
प्रकृति जब महाकाली बन गई	८.३६
अध्याय-९	
आत्मा का उद्धार करें	**९.१**
आत्म-निर्माण द्वारा युग निर्माण	९.१
आत्मशोधन का श्री गणेश	९.३
आप भला तो जग भला	९.५
अकेला चल अकेला	९.८
आत्मा की अनन्त शक्ति	९१०
अध्याय-१०	
आत्म-कल्याण का राजमार्ग	**१०.१**
लौकिक सुखों का एकमात्र आधार	१०.१
आत्मा की अनन्त सामर्थ्य	१०.४
अध्यात्म ही सब कुछ है	१०.६
आत्म-निर्माण के चार आधार	१०.९
तुच्छता त्यागें महानता अपनायें	१०.११
आदर्श और आस्था	१०.११
आत्मीयता का अमृत	१०.१३
मानव जीवन का अमृत-प्रेम	१०.१७
त्याग और सेवा की मिठास	१०.२१
आत्मवत् सर्व भूतेषु	१०.२५
क्या आत्म कल्याण के लिये गृहत्याग आवश्यक है	१०.३०
सिख गुरुओं का उदाहरण	१०.२४

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्याय-११	पृष्ठ
मानव में ईश्वरीय सत्ता की अभिव्यक्ति	**११.१**
विश्व का सर्वोच्च सत्य	११.१
मानव जीवन का महानतम् लक्ष्य	११.२
आन्तरिक और बाह्य जीवन	११.६
परमात्मा प्रेम का समुद्र है	११.८
दिव्यज्ञान का अनन्त स्रोत	११.१२
अन्तरात्मा के आदेश का पालन कीजिये	११.१४
शान्ति तथा निर्भयता का मार्ग	११.१८
शक्ति सम्पन्न कैसे बन सकते हैं	११.२१
सर्वोत्कृष्ट सम्पत्ति और उसकी प्राप्ति	११.२५
अध्याय-१२	
भक्तियोग का स्वरूप	**१२.१**
विहंगवलोकन	१२.६
तत्वज्ञान ही नहीं भक्ति भाव	१२.८
भाव-संवेदना की चमत्कारी शक्ति	१२.११
प्रेम-भक्ति का विकास और विस्तार	१२.१३
भावनाएँ भक्ति मार्ग में नियोजित की जायँ	१२.१४
प्रभु की शरण में	१२.१५
सात्वस्मिन परम प्रेम-रूपा	१२.१७
साधना की श्रेष्ठतम उपलब्धि: समर्पण	१२.१८
समर्पण योग की साधना और प्रतिफल	१२.१९
समर्पण की महत्ता	१२.२२
अध्याय-१३	
आत्मा और परमात्मा का मिलन-संयोग	**१३.१**
सर्वशक्तिमान परमेश्वर और उसका सान्निध्य	१३.१
मनुष्य महान है और उससे भी महान उसका भगवान	१३.३
ईश्वर और जीव का मिलन संयोग	१३.६
परमेश्वर के अजस्र अनुदान को देखें और समझें	१३.९
ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कलाकृति असम्मानित न हो	१३.११
ईश्वर प्राप्ति के लिये जीवन साधना की आवश्यकता	१३.१२
भगवान के लिये द्वार-खोलें स्थान बुहारें	१३.१३
सिद्धि और सिद्ध पुरुषों का स्तर	१३.१४
क्या मैं शरीर ही हूँ उससे भिन्न नहीं	१३.१४
आत्म बोध आन्तरिक काया कल्प-प्रत्यक्ष स्पर्श	१३.१७
जीव पर दो प्रकृतियों की छाया	१३.१९
अध्याय-१४	
जीवन का परम पुरुषार्थ आत्म ज्ञान	**१४.१**
शरीर का ही नहीं आत्मा का भी ध्यान	१४.१
रखें हमारा जीवन-लक्ष्य-आत्मज्ञान	१४.६
आत्म ज्ञान की आवश्यकता क्यों ?	१४.८
आत्म-ज्ञान से ही दु:खों की निवृत्ति सम्भव	१४.१०
सत्यं शिवं सुन्दरं हमारा परम लक्ष्य	१४.१३
शक्ति का स्रोत आत्मा को मानिये	१४.१५
आत्मा को जानिये	१४.१७
आत्मा शक्ति का अकूत भण्डार	१४.१८
शक्ति का स्रोत हमारे अन्दर है	१४.२०
जीवनोद्देश्य से बिमुख न होइये	१४.२२
मनुष्य और उसकी महान शक्ति	१४.२४
जीवन का दूसरा पहलू भी भूलें नहीं	१४.२७
आत्मा की पुकार अनसुनी न करें	१४.२८
आत्मा की पुकार सुनें और उसे सार्थक करें	१४.३०
सच्चे हृदय से आत्मा का उद्‌बोधन करें	१४.३२
आत्मा शाश्वत और अनादि है	१४.३४
आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध	१४.३६
ईश्वर अंश जीव अविनाशी	१४.३८
परमात्मा को जानने के लिये अपने आपको जानो	१४.३९
अहं और उसकी वास्तविक सत्ता	१४.४१

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
बिन्दु में सिन्धु	१४.४२
आत्म-बल हमारी सबसे बड़ी वैभव-विभूति	१४.४५
आत्म परिष्कार से परब्रह्म की प्राप्ति	१४.४७
आत्मा, महात्मा और परमात्मा का विकास क्रम	१४.४९
समग्र अध्यात्म-प्रेम, ज्ञान और बल का समन्वय	१४.५०
अज्ञान-बन्धन काटें-उन्मुक्त जीवन जियें	१४.५२
अमृत और उसकी प्राप्ति	१४.५५
मनुष्य-जीवन का अमूल्य यात्रा-पथ	१४.५६
आत्म-ज्ञान का तत्वदर्शन	१४.५८
भव-बन्धन और जीवन-मुक्ति	१४.६१
शाश्वत-सनातन मुक्ति का राजमार्ग	१४.६४

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपासना-जीवन की अनिवार्य आवश्यकता

उपासना अनिवार्य है और आवश्यक भी

इस संसार में जो कुछ शुभ है, श्रेष्ठ है, मङ्गलमय है--वह सब परमात्मा का ही वैभव है । गीता में अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए बताया है कि जो कुछ इस संसार में श्रेष्ठ दिखाई पड़ता है उसे भगवान की ही विभूति जानना चाहिये ।

परमात्मा के जितने ही समीप पहुँचते हैं उतनी ही श्रेष्ठताएँ हमारे अन्तःकरण में उपजती तथा बढ़ती हैं । उसी अनुपात से आन्तरिक शान्ति की भी उपलब्धि होती चलती है ।

हिमालय की ठण्डी हवाएँ उन लोगों को अधिक शीतलता प्रदान करती हैं जो उस क्षेत्र में रहते हैं । इसी प्रकार आग की भट्टियों के समीप काम करने वालों को गर्मी अधिक अनुभव होती है । जीव ज्यों-ज्यों परमात्मा के निकट पहुँचता जाता है, त्यों-त्यों उसे उन विभूतियों का अपने में अनुभव होने लगता है जो उस परम प्रभु में ओत-प्रोत हैं ।

उपासना का अर्थ--पास बैठना । परमात्मा के पास बैटने से ही ईश्वर उपासना हो सकती है । साधारण वस्तुएँ तथा प्राणी अपनी विशेषताओं की छाप दूसरों पर छोड़ते हैं तो परमात्मा के समीप बैठने वालों पर उन दैवी विशेषताओं का प्रभाव क्यों न पड़ेगा ?

पुष्प वाटिका में जाते ही फूलों की सुगन्ध से चित्त प्रसन्न होता है । चन्दन के वृक्ष अपने समीपवर्ती वृक्षों को सुगन्धित बनाते हैं । सज्जनों के सत्सङ्ग से साधारण व्यक्तियों की मनोभावनायें सुधरती हैं, फिर परमात्मा अपनी महत्ता की छाप उन लोगों पर क्यों न छोड़ेगा जो उसकी समीपता के लिए प्रयत्नशील रहते हैं ।

आत्मा को परमात्मा के निकट पहुँचने पर वही बात बनती है जो गरम लोहे और ठण्डे लोहे के साथ बाँधने पर होती है । गरम लोहे की गर्मी ठण्डे लोहे में जाने लगती है और थोड़ी देर में दोनों का तापमान एक सरीखा हो जाता है । दो तालाब जब तक अलग-अलग रहते हैं तब तक उनके पानी का स्तर ऊँचा-नीचा बना रहता है पर जब बीच में नाली निकाल कर उन दोनों को आपस में सम्बन्धित कर दिया जाता है तो अधिक भरे हुए तालाब का पानी दूसरे कम पानी वाले तालाब में चलने लगता है और यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक दोनों का जल स्तर समान नहीं हो जाता ।

जलाशयों का मिलना या गरम-ठण्डे लोहे का परस्पर मिलना जिस प्रकार एकरूपता की स्थिति उत्पन्न करता है उसी प्रकार उपासना द्वारा आत्मा और परमात्मा का मिलन होने पर जीव में दैवी गुणों की तीव्र गति से अभिवृद्धि होने लगती है ।

किसी व्यक्ति की उपासना सच्ची है या झूँठी है उसकी एक ही परीक्षा है कि साधक की अन्तरात्मा में सन्तोष प्रफुल्लता, आशा, विश्वास और सद्भावना का कितनी मात्रा में अवतरण हुआ । यदि यह गुण नहीं आये हैं और हीन वृत्तियाँ घेरे हुए हैं तो समझना चाहिए कि यह व्यक्ति पूजा-पाठ चाहे कितना ही क्यों न करता हो उपासना से अभी दूर ही है ।

पूजा-पाठ अलग बात है, उपासना अलग । उपासना के लिए पूजा-पाठ से कर्मकांड की चिह्न पूजा करते रहने मात्र से उपासना का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता । जीव को जीवन-धारण करने के लिए शरीर की आवश्यकता होती है पर शरीर ही जीवन नहीं है । जीव विहीन शरीर देखा तो जा सकता है पर उसका कोई लाभ नहीं । इसी प्रकार उपासना विहीन पूजा भी होती तो है पर उससे कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता ।

आत्मा जब परमात्मा की गोदी में बैठता है तो उसे प्रभु की सहज करुणा और अनुकम्पा का लाभ मिलता है । उसे तुरन्त ही निर्भयता और निश्चिन्तता की प्राप्ति होती है । हानि, घाटा, रोग-शोक, विछोह चिन्ता, असफलता और विरोध की विपन्न स्थितियों में भी उसे विचलित होने की आवश्यकता नहीं पड़ती । उसे इन प्रतिकूलताओं में भी अपने हित-साधन का कोई विधान छिपा दिखाई पड़ता है । वस्तुतः विपन्नता हमारी त्रुटियों का शोधन करने और पुरुषार्थ को बढ़ाने के लिये ही आती है । आलस्य और प्रमाद का अहंकार और मत्सर को मनोभूमि से हटाना ही प्रतिकूलताओं का उद्देश्य होता है । सच्चे आस्तिक को अपने प्रिय परमेश्वर पर सच्ची आस्था होती है और वह अनुकूलताओं की तरह प्रतिकूलताओं का भी खुले हृदय से स्वागत करता है ।

माता मधुर मिष्ठान भी खिलाती है और आवश्यकता पड़ने पर कड़वी दवा भी खिलाती है । दुलार से गोदी में भी उठाये फिरती है और जब आवश्यकता समझती है डॉक्टर के पास सुई लगाने या ऑपरेशन कराने के लिए भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ले जाती है । माता की प्रत्येक क्रिया बालक के कल्याण के लिए ही होती है परमात्मा की ममता जीवों के प्रति माता से भी अधिक है । प्रतिकूलतायें प्रस्तुत करने में उसकी उपेक्षा या निष्ठुरता नहीं, हित-कामना ही छिपी रहती है ।

अपनी कठिनाइयों को हल करने मात्र के लिए अपनी सुविधायें बढ़ाने की लालसा मात्र से जो प्रार्थना-पूजा करते हैं, वे उपासना के तत्वज्ञान से अभी बहुत पीछे हैं । उन्हें उन बालकों में गिना जाना चाहिए जो प्रसाद के लालच से मन्दिर में जाया करते हैं । ऐसे बच्चे वह आनन्द कहाँ पाते हैं जो भक्ति रस में निमग्न एक भावनाशील आस्तिक को प्रभु के सम्मुख अपना हृदय खोलने और मस्तक झुकाने में आता है । प्रभु के चरणों पर अपनी अन्तरात्मा को अर्पण करने वाले भावविभोर भक्त और प्रसाद की मिठाई लेने के उद्देश्य में खड़े हुए भिखमंगे में जो अन्तर होता है वही सच्चे और झूठे उपासकों में होता है । एक का उद्देश्य परमार्थ है, दूसरे का स्वार्थ । स्वार्थी को कहीं भी सम्मान नहीं मिलता । परमात्मा की दृष्टि में भी ऐसे लोगों का क्या कुछ मूल्य होगा ?

लुहार अपनी दुकान पर लोहे के टुकड़ों से तरह-तरह की चीजें बनाता रहता है । उन टुकड़ों को वह कभी गरम करने के लिये भट्टी में तपाता है कभी पानी में डाल कर ठण्डा कर लेता है । इस विसंगति को देखकर कोई भोला मनुष्य असमंजस में पड़ सकता है कि लुहार ने इस दुर्मुही प्रक्रिया को क्यों अपना रखा है ? पर वह कारीगर जानता है कि लोहे के टुकड़े को बढ़िया उपकरण की शक्ल में परिणित करने के लिए दोनों ही टुकड़े को बढ़िया उपकरण की शक्ल में परिणित करने के लिए दोनों ही प्रकार की ठण्डी-गरम प्रणालियों का प्रयुक्त होना आवश्यक है । मनुष्य के जीवन में भी सुख-दुःख का धूप-छाँह का अपना-अपना महत्व है । रात-दिन की अँधेरी उजेली विसंगतियाँ ही तो कालक्षेप का एक सर्वांगपूर्ण विधान प्रस्तुत करती हैं । यदि मनुष्य सदा सुखी और सम्पन्न ही रहे तो निश्चय ही उसकी आन्तरिक प्रगति रुक जायगी । जो झटके प्रगति के लिए आवश्यक हैं उन्हें ही हम कष्ट कहते हैं । इन्हें सच्चा भक्त कड़ुवी औषधि की तरह ही शिरोधार्य करता है । सन्निपात का मरीज जैसे डॉक्टर को गाली देता है । वैसी भूल समझदार आस्तिक ईश्वर के प्रति नहीं कर सकता ।

विपन्नता की स्थिति में धैर्य न छोड़ना, मानसिक सन्तुलन नष्ट न होने देना, आशा पुरुषार्थ को न छोड़ना आस्तिकता का प्रथम चिन्ह है, जिसे परमात्मा जैसी अनन्त सत्ता के साथ बैठने का सौभाग्य प्राप्त है वह किसी भी व्यक्ति या परिस्थिति से क्यों डरेगा ? क्यों अधीर होगा ? क्यों निराशा और कातरता प्रकट करेगा ? धैर्य और साहस की अजस्र धारा उनके मनः क्षेत्र में से उठती ही रहनी चाहिये ।

जो आस्तिक हैं उसकी आशा कभी क्षीण नहीं हो सकती। वह केवल उज्ज्वल भविष्य पर ही विश्वास रख सकता है । अन्धकार अनात्म तत्व है । आत्म-परायण व्यक्ति के चारों ओर प्रकाश--केवल प्रकाश रहना चाहिये । उसे झुँझलाने और खिन्न होने की आवश्यकता क्यों पड़ेगी? आस्तिकता माने-- आत्म-विश्वास । परमात्मा पर विश्वास करने वाले को अपना भविष्य सदा उज्ज्वल एवं प्रकाशमान ही दिखाई देगा ।

उपासना का दूसरा प्रतिफल है-- श्रेष्ठताओं की वृद्धि । चूँकि परमात्मा समस्त श्रेष्ठताओं का केन्द्र है, उसका सान्निध्य आत्मा को दिन-दिन उत्कृष्ट बनाता चलता है । भक्त को अपना भगवान सब में दिखाई पड़ता है । इसलिए वह हर किसी की अच्छाइयाँ ही देखता है और उनकी चर्चा का एवं विचारणा करते हुए अपने आनन्द और दूसरों के सद्भाव को बढ़ाता है । निन्दा और ईर्ष्या असुरता के दो प्रधान अस्त्र हैं । इनका प्रयोग उसी पर किया जा सकता है जिनके प्रति परायेपन का, शत्रुता का भाव रहे । जब सब अपने हैं तो अपनों की निन्दा कैसी ? अपनों से ईर्ष्या कैसे ?

बुराई को तोड़ने के लिए नहीं अच्छाई को बढ़ाने के लिए उसके प्रयत्न होते हैं । अच्छाई को बढ़ाना ही वस्तुतः बुराई को तोड़ना है । बुराई तोड़ दी जाय और उसके स्थान पर अच्छाई की स्थापना न हो तो टूटी हुई बुराई फिर उपज आती है । आस्तिकता का दृष्टिकोण अच्छाई को बढ़ाना होता है । ताकि बुराई के लिये कोई गुंजायस ही न रहे । वह सदा अच्छाई की चर्चा करेगा । प्रेम से दुष्टता को परास्त करेगा । दुष्टता करके प्रेम के अंकुरों को जला देना असज्जनों का काम है । आस्तिक असज्जन नहीं हो सकता ।

प्रेम, करुणा, आत्मीयता और सौजन्य की अजस्र धारायें परमात्मा से प्रवाहित होती रहती हैं । प्राणिमात्र का पोषण, संरक्षण एवं अभिवर्धन इन्हीं विशेषताओं के द्वारा तो वह करता है । ऐसे प्रभु के समीप बैठने वाले में-- उपासना करने वाले में यही विशेषतायें अवतिरत होती हैं । अपने भाई-बहिनों के प्रति-प्राणिमात्र के प्रति अनन्त करुणा और आत्मीयता की भावनायें उपासक के अन्तःकरण में उद्भूत होती हैं । उनको चरितार्थ करके वह अपने जीवन को यशस्वी बनाता है और मनः क्षेत्र में धारण किये रहकर अनन्त शान्ति का अनुभव करता है ।

परमात्मा की उपासना का प्रतिफल पाने के लिए प्रतीक्षा उन्हें करनी पड़ती है जो पुरुषार्थ और प्रतिभा के मूल्य पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिलने वाली भौतिक सम्पदाओं को परमात्मा में मुफ्त में ही पाने की आशा लगाये हुए दीन-हीन भिक्षुक की तरह बैठे रहते हैं । जिन्हें प्रेम और उत्सर्ग की उच्च भावनाओं से प्रेरित होकर प्रभु के चरणों में बैठने की आकांक्षा है उन्हें अपने प्रियतम का प्रतिपादित प्रेम प्राप्त करने के लिए क्षण भर भी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती । उपासना वासना की आग को बुझाती है, तृष्णा की जलन को शान्त करती है । चिन्ता, भीति और घृणा की उन व्यवस्थाओं को हटाती है जो मानव-जीवन को निरन्तर अशान्त बनाये रहती हैं । उपासना और आत्मशान्ति एक ही वस्तु के दो पहलू हैं । आत्मा अपनी उद्गम सत्ता परमात्मा की ओर उन्मुख होगी तो निश्चय ही उसे प्रकाश मिलेगा । परमात्मा का प्रकाश पड़ने पर आत्मा भी अपने सत्-चित् आनन्दमय स्वरूप के साथ प्रकाशमान दीखती है । ऐसे प्रकाशमान जीवन में नर से नारायण की, पुरुष से पुरुषोत्तम की आत्मा से परमात्मा की प्रत्यक्ष परिणित दृष्टिगोचर होती है । इसलिए उपासना को मानव-जीवन को सर्वोपरि बुद्धिमत्ता माना गया है ।

ईश्वर उपासना आवश्यक क्यों ?

चील अपने शिकार की खोज के लिये आसमान की ओर उड़ान भरती है । एक निश्चित ऊँचाई पर जाकर वह गोलाई में चक्कर लगाना प्रारम्भ करती है । वहाँ से उसे अधिक दूर-दूर तक की चीजें देखने में सुगमता मिलती है । चील उस ऊँचाई से जमीन की प्रत्येक दृश्य वस्तु को बड़ी सूक्ष्मता से परखती है और जब उसे अपने शिकार का पता चल जाता है तो वह तेज झपट्टा मार कर उसे पकड़ ले जाती है ।

चील यह कार्य जमीन में या कम ऊँचाई वाले वृक्षों पर बैठकर भी कर सकती थी पर छोटी ऊँचाई से छोटे स्थान का ही अवलोकन किया जा सकता है । छोटी-सी जगह में शिकार मिले या न मिले इस सन्देह से बचने के लिए वह ऊँची उठती, नीचे देखती और आसानी से अपना शिकार ढूँढ़ लेती है ।

मनुष्य की स्थिति भी ठीक ऐसी ही है । अपने आस-पास को वस्तुओं को वह स्थूल आँख और छोटे विवेक से परखता है, इसलिए मनुष्य-जीवन में आने का अपना लक्ष्य वह अधिक निश्चयतापूर्वक नहीं खोज पाता । अपने जीवनोद्देश्य से अपरिचित रहे व्यक्ति के तौर-तरीके, रहन-सहन और विचार-व्यवहार भी प्रायः अस्त-व्यस्त श्रेणी के होते हैं । जिस मनुष्य ने सही लक्ष्य का ज्ञान प्राप्त न किया हो उसका जीवन व्यर्थ ही समझना चाहिये ।

ईश्वर उपासना से मनुष्य को वह स्थिति प्राप्त होती है जहाँ से वह अधिक सूक्ष्मता, दूरदर्शिता एवं विवेक के साथ संसार और उसकी परिस्थितियों का निरीक्षण करता है । अपने ही खुद अहंकार से संसार की तुलना करने से मनुष्य से प्रत्येक कार्य में संकीर्णता रहती है, संकीर्णता के कारण आत्मा अपनी विशालता का अपनी शक्ति और सामर्थ्य का आनन्द नहीं लूट पाती । मनुष्य तुच्छ-सी बना रहता है, ठीक उसी तरह जिस तरह सृष्टि के अन्य जीव-जन्तु । आत्मा के सच्चे स्वरूप के ज्ञान के लिए वह ऊँचाई अपेक्षित है जो ईश्वर उपासना से मिलती है । सही लक्ष्य का ज्ञान उस स्थिति का बार-बार मनन किये बिना प्राप्त नहीं होता है ।

जब भी कोई ईश्वर उपासना के लिये तत्पर होता है तो वह इस आधार को ही लेकर चलता है कि इस संसार की कोई मुख्य नियामक शक्ति अवश्य होनी चाहिए । प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई रचयिता होता है, तब विश्व का सृजनकर्ता भी कोई होगा अवश्य । जब इस तरह की मान्यताएँ अन्तःकरण में उदय होती हैं तो तत्काल मनुष्य के सोचने के ढंग में परिवर्तन होता है । अब तक जो वस्तुयें उसे सामान्य-सी प्रतीत होती थीं अब उनमें विशद ज्ञान भरा पड़ा दिखाई देने लगता है । इस तरह मनुष्य का ज्ञान विकसित होता है और विश्व के सच्चे स्वरूप को जानने का छटपटाहट भी । यह दोनों बातें मनुष्य के सही लक्ष्य के चुनाव के लिये आवश्यक थीं । दोनों ही ईश्वर उपासना से मिलती हैं ।

उदाहरणार्थ सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, सागर, नदियाँ, पहाड़ आदि प्राकृतिक वस्तुयें जिन्हें साधारण मनुष्य यों ही देखकर छोड़ देते हैं ईश्वर उपासक उन्हें विराट् रूप में देखता है । वह सोचता है कि इतना बड़ा संसार बना सकें ? यह पदार्थ क्या है ? यह शरीर कहाँ से आया और इसके भीतर निवास करने वाले अहंकार का स्वरूप क्या है ? उपासना का स्तर जितना विकसित होता है गूढ़ प्रश्न उतने ही अधिक मात्रा में प्रस्फुटित होते हैं । विचार करने की क्षमता भी उसी अनुपात में बढ़ती है और यह निश्चय तब मनुष्य अपने जीवनोद्देश्य की समीपता की ओर भी तीव्रता से अग्रसर होने लगा है ।

साधारण व्यक्ति इस संसार के भौतिक पदार्थों में सुख ढूँढ़ते हैं, ज्ञान का उनकी दृष्टि में कोई महत्व नहीं होता । पर इससे मनुष्य जीवन में बिकार पैदा होते हैं, बुराइयाँ आती और कठिनाइयाँ बढ़ती हैं । जब तक मनुष्य भौतिक सुखों में भटकता है तब तक अपनी परेशानियाँ ही बढ़ाता है । उसे यह ज्ञान नहीं होता कि सुख और दुःख में अन्तर क्या है ? सुख समझ कर भोगे जाने वाले भोग और इन्द्रियाँ ही जब मनुष्य की मृत्यु का कारण बन जाती हैं तब पता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलता है कि आत्म-अज्ञानता के कारण ही यह स्थिति आई और उसका निराकरण एक ही तरीके से सम्भव है-- उसी का नाम है ईश्वर उपासना, जहाँ से ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है ।

ईश्वर उपासना में लगी हुई बुद्धि मनुष्य में इतना विवेक भरती है जिससे वह संसार की क्षुद्र वासनाओं से बचने का प्रयत्न करता है । सच्चाई का अनुभव किये बिना सुख कहाँ ? अज्ञान तो मनुष्य के दुःख का ही कारण बताया गया है ।

अपनी आँख से अपनी आँख को देख पाना बड़ी कठिन बात है । जब कोई आवश्यकता पड़ती है तो दर्पण ढूँढ़ते हैं और उसके माध्यम से आँख की स्थिति का पता लगाते हैं । मनुष्य इसी तरह अपने भीतर बैठकर अपनी स्थिति का सही अन्दाज नहीं लगा सकता । अपनी जानकारी ही पर्याप्त नहीं अपने पास-पड़ोस की वस्तुयें, वह परिस्थितियाँ जिससे मनुष्य प्रतिक्षण प्रभावित होता है उनकी भी जानकारी आवश्यक है । इन सबका ज्ञान किसी सबसे ऊँची जगह बैठकर ही किया जा सकता है । वह स्थिति ब्रह्म ही हो सकती है । ब्रह्म की अनूभूति के साथ-साथ ही संसार के सच्चे ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है ।

ईश्वर उपासना का अर्थ है-- अपने आपको विकसित करना । चील की तरह ऊपर उठकर अपनी निरीक्षण क्षेत्र को चौड़ा करना । जो जितनी ऊँचाई पर उठकर देखता है उसे उतना ही दूरदर्शी विवेकवान् समझा जाता है । जब सारी वस्तुओं की स्थिति का सही पता चल जाता है तो फिर कठिनाई नहीं रहती कि किसे चुनें किसे न चुनें । इस प्रकार का ज्ञान पैदा हुए बिना मनुष्य अपनी जिन्दगी सुखपूर्वक नहीं बिता सकता ।

साधारणतया मनुष्य शरीर को ही सब कुछ मानते हैं और सारा जीवन इस शरीर की इन्द्रिय-लिप्सा को शान्त करने में ही बिता देते हैं । इतने से लौकिक आवश्यकता सम्भव है किसी हद तक पूरी हो जाती है, किन्तु परलोक भूला हुआ-सा रह जाता है । परलोक की मान्यतायें सर्वथा निराधार हैं ऐसा भी नहीं कहा जा सकता । विज्ञान सिद्ध कर रहा है कि अन्य ग्रहों में भी जीवन सम्भव है । ऐसी स्थिति में स्वर्ग और नरक की कल्पना का भी कुछ आधार होना ही चाहिये । इस आधारभूत ज्ञान के लिये लौकिक जीवन ही पर्याप्त नहीं वरन् अपने भीतर के चेतन तत्व पर विचार दृष्टि डालना भी आवश्यक है । इस आन्तरिक चेतना के लिये ब्रह्म दर्पण है । ईश्वर की मान्यता में व्यक्ति अपने निजत्व को पहचानने का प्रयत्न करता है और उसके सहारे पारलौकिक जीवन का भी ज्ञान प्राप्त करता है ।

परमात्मा से तादात्म्य होना आत्मा को विशाल बनाने की प्रक्रिया है । अहंकार मिटाये बिना मनुष्य का पारलौकिक हित सम्पन्न नहीं होता । मनुष्य जब अपने आप को भुलाता है तो वह सम्पूर्ण विश्व को ही आत्म-स्वरूप में देखने लगता है । सब उसे अपने ही नाना रूप दिखते हैं । जब सब अपने ही होंगे तो फिर किसी के साथ न तो छल होगा न कपट, न क्रोध आवेगा, न प्रतिशोध की भावना । सबके सुख में सुख मिलेगा । सब प्यार बनेंगे, सब अपने सम्बन्धी से जान पड़ेंगे ।

इस आन्तरिक विशालता में ही जीवात्मा को सच्चा आनन्द, सच्चा सन्तोष और सच्ची तृप्ति मिलती है । यह स्थिति पाकर मनुष्य का जीवन सार्थक हो जाता है । मनुष्य आनन्द से उत्पन्न हुआ था, पर बीच में मार्ग भटक जाने के कारण वह दुःखग्रस्त हो गया था । अब फिर से सही रास्ते पर आने और अन्त में उसी में विलीन हो जाने के लिये ईश्वर को जानना आवश्यक हुआ । परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि का मूल है । उसे जानने से ही आन्तरिक प्यास बुझती, सन्तोष मिलता और सद्गति मिलती है । इससे अन्यत्र आत्म-कल्याण का मार्ग नहीं । परमात्मा की शरणागति पाये बिना मनुष्य जीवन जैसा बहुमूल्य अवसर भी बेकार में ही बीत जाता है ।

उपासना फलवती कैसे हो

उपासना का मुख्य उद्देश्य है ईश्वर से सान्निध्य प्राप्त करना । कोई भी व्यक्ति जिस समय तक पूजा, अर्चा, स्तवन, जप, ध्यान, कीर्तन आदि की उपासना विधि में निरत रहता है उतनी देर तक वह यही अनुभव करता रहता है कि परमात्मा उसके पास है अथवा वह परमात्मा के निकट है और वह यह जो कुछ कर या कह रहा है वह सब परमात्मा के लिये है । परमात्मा उसकी पूजा स्वीकार कर रहा है और उसकी विनय अथवा कीर्तन सुन रहा है । इस प्रकार उपासना के समय तक उपासक भावनात्मक रूप से परमात्मा के सान्निध्य में ही रहता है ।

यों तो परमात्मा अणु-अणु में परिव्याप्त है । घट-घट में निवास कर रहा है । कोई भी स्थान उससे रिक्त नहीं है । हर स्थान में वह सदा सर्वदा विद्यमान रहता है । क्या उपासक और क्या उपासना सामग्री सभी परमात्मा हर समय उपस्थित रहता है । ऐसा नहीं कि उपासना काल में ही वह उपासक के समीप अथवा उपासक उसके समीप रहता हो और अन्य समय में नहीं । वह हर समय, हर एक के पास, हर स्थिति में कोई भी काम करते समय भी बना रहता है वह सर्वव्यापक रहता है । यदि विशेष उपासना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विधि से भिन्न भी अपने हर काम को परमात्मा को सौंप दे हर काम उसी का काम समझे और हर क्रिया को उपासना जैसी श्रद्धा एवं आस्था से करे तो मनुष्य के साधारण नित्य-नैमित्तक कार्य ईश्वर की उपासना के रूप में बदल जाय और उसी की तरह शान्ति, सन्तोष तथा आनन्द के पुण्यफल प्रदान करने लगें । किन्तु यह बहुत सरल होने पर भी बहुत ऊँची और दूर की बात है । जनसाधारण का मनोविकास अभी इस स्तर तक नहीं पहुँच सका है

सर्वव्यापक परमात्मा की सर्वकमक उपासना करते रहना दैनिक जीवन के लिये तो मंगलमय है ही सर्वकमक उपासना के योग्य मनोविकास प्राप्त करने के लिए भी आवश्यक है ।

सच्ची भावना के साथ की हुई उपासना चमत्कार की तरह फलवती होती है । भावना को परमात्मा में पूर्ण रूप से, संयोजित करके कुछ देर की, की हुई उपासना जीवन पर एक स्थायी प्रभाव डालती है जो कि उत्कृष्ट विचारों निर्विकार स्वभाव तथा सत्कर्मों के रूप में परिलक्षित होता है । उपासना करता हुआ भी जो व्यक्ति गुण कर्म स्वभाव एवं मन, वचन, कर्म से उत्कृष्ट नहीं बना तो यही मानना होगा उसने उपासना की ही नहीं, केवल वैसा करने का नाटक किया है ।

भजन पूजन अथवा जप-कीर्तन करने के समय तक भी मनुष्य अपने पास अपने हृदय के पास अपने हृदय अथवा अपनी चेतना में परमात्मा की समीपता अनुभव करता रहे तो उतनी देर की वह समीपता आनन्द एवं उत्साह के रूप में दिन भर अनुभव होती रह सकती है । उपासना के समय जितनी-जितनी गहराई के साथ अपनी मानसिक भावना को परमात्मा में संयोजित किया जायेगा यह अनुभव उतनी-उतनी ही गहराई से जीवन में उतरना और स्थिर होता जायेगा और एक दिन ऐसा आ जायेगा कि मनुष्य अपने में तथा अपने से बाहर परमपिता को हर समय ओत-प्रोत देखने लगेगा ।

ऐसी स्थिति आ जाने पर मनुष्य का आत्मोद्धार निश्चित है । उसके गुण, कर्म, स्वभाव परमात्मा जैसे पावन प्रभु के समीप्य के योग उत्कृष्ट एवं पवित्र हो जायेंगे । समीप्य की स्थायी एवं स्पष्ट अनुभूति होने से उसे असंदिग्ध विश्वास हो जायगा कि 'परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है, कोई भी प्रच्छन अथवा प्रकट स्थान उससे रहित नहीं है । वह अन्तर्यामी और घट-घट की जानने वाला है । परमात्मा की उपस्थिति का विश्वास होने पर प्रथम तो मनुष्य स्वाभाविक रूप से बुरा करेगा ही नहीं और यदि फिर भी वह धृष्टतापूर्वक ऐसा करता है तो उसे अपने इस जघन्य अपराध का कितना और कैसे यातनापूर्वक दण्ड मिलेगा इसकी कल्पना नहीं की जा सकती ।

उपासना का उद्देश्य केवल इतना ही है कि उसके द्वारा परमात्मा का अधिकाधिक सान्निध्य प्राप्त किया जाये जिससे कि उस परमपिता की वह कृपा पाई जा सके जो हमारी आत्मा की मुक्ति का हेतु बन सके और ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जब हमारी उपासना निर्लोभ एवं निष्काम हो और हमारे जीवन की रीति-नीति एवं गतिविधि उपासना के अनुरूप ही महान् एवं पावन हो ।

ईश्वर उपासना से महान् आध्यात्मिक लाभ

जल में प्रवेश करते ही उसकी उष्णता या शीतलता का तत्काल भान होता है । आग के पास बैठने वाले को उसकी गर्मी मिलना स्वाभाविक है । किसी भी वस्तु की समीपता मनुष्य के जीवन में अपना विशिष्ट प्रभाव अवश्य छोड़ती है । बुरी वस्तु का संग बुराई पैदा करता है और भली का भलाई । संसार के सभी लोग इसलिए भले आदमियों और भली वस्तुओं का सान्निध्य प्राप्त करना चाहते हैं ।

ईश्वर-उपासना का अर्थ है-- ईश्वर के समीप बैठना । जल, अग्नि अथवा वायु की समीपता से जिस तरह मनुष्य तुरन्त उनके गुणों का प्रभाव अनुभव करने लगता है ठीक उसी तरह से परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त होते ही जीव का आपा विस्तीर्ण होने लगता है, उसकी शक्तियाँ प्रकीर्ण होने लगती हैं । उस प्रकाश में मनुष्य न केवल अपना मार्ग-दर्शन करता है अपितु अनेकों औरों को भी सन्मार्ग की प्रेरणा देता है । एक ईश्वराराधक की शक्ति इसलिये बहुत बड़ी और जाज्वल्यमान समझी जाती है क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् ज्योति में अन्तर्हित होकर स्वयं भी उनका उत्तराधिकार अनुभव करने लगता है यजुर्वेद में इस सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुए कहा गया है--

सपर्य्यगाच्छु कमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभू-स्वयभूर्याथातथ्यतोर्थान्--
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।

यजु० ४० /१

"जो परमात्मा देव तेजस्वी, निराकार, व्रण रहित, स्नायु जल से अपरिच्छन्न, अलौकिक, पाप रहित, कवि मनीषी, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् है वह हमें भी इन शक्तियों से ओत-प्रोत करे ।"

इस मन्त्र में परमात्मा की उपासना से प्राप्त होने वाले महान् आध्यात्मिक लाभों को ईश्वरीय गुणों के रूप में दिखाया गया है । यह गुण अग्नि की ऊष्णता या जल की शीलता के ही समान है और जो व्यक्ति उनकी जितनी अधिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समीपता में पहुँचता है, इन गुणों का उसी अनुपात में उसके जीवन में आविर्भाव होता चला जाता है और अन्त में उसी में लीन होकर जीवन-भाव से मुक्त हो जाता है ।

परमात्मा को ''शुक्रम्'' अर्थात् प्रकाश रूप कहा जाता है । प्रकाश-- तेजस्विता, निर्दोषता एवं ज्ञान का प्रतीक है । ईश्वर-उपासना से जीवात्मा का उत्थान इसी कक्षा से प्रारम्भ होता है । जब तक मनुष्य अपने जीव भाव में था तब तक वह अज्ञानग्रस्त था, उसे संसार की वस्तुस्थिति का कुछ भी ज्ञान न था । थोड़े से क्षणिक सुखों की पूर्ति को ही उसने अपने जीवन का उद्देश्य समझा था और भोग में ही लिप्त था । इसका कारण उसका जीवन दोषयुक्त भी था। भोग शारीरिक रोग-शोक पैदा करने वाले होते हैं । उसने इन्द्रियों की दक्षता नष्ट होती है और मनुष्य वृद्धावस्था तथा मृत्यु की ओर अग्रसर होता है । भोगों से वहाँ शारीरिक व्याधियाँ बढ़ती हैं वहाँ मानसिक चिन्तायें भी बढ़ती हैं । यह चिन्तायें मनुष्य को बन्धनों से बाँधती हैं और दुःखी करती हैं । पर जैसे ही परमात्मा के शुक्रम् अर्थात् प्रकाश तत्व ने उसके जीवन में प्रवेश किया कि वह सांसारिक भोगों की निःसारता का अनुभव करने लगा । अब उसे क्षणिक सुख निरर्थक अनुभव होने लगते हैं और वह दैवी प्रकाश में अपना जीवन लक्ष्य निर्धारित करता है वह देखता है कि जब मुझे केवल सुख और असीम सुख की चाह है, तो मैं इन क्षुद्र वासनाओं के पीछे क्यों भटकता फिरूँ ? ऐसे भी प्रश्न उनके जीवन में उतरते हैं, जिनसे संसार के गहन रहस्य और मनुष्य-जीवन की पारलौकिकता की ओर उनके विचार दौड़ने लगते हैं । यह ज्ञान ही परमात्मा का प्रकाश है । इसे ही उसकी कृपा मान सकते हैं । परमात्मा का यह प्रकाश पाये बिना मनुष्य-जीवन का उद्धार भी सम्भव नहीं ।

प्रकाश जीवन के विकास की प्रारम्भिक अवस्था भी है और अन्तिम भी । आरम्भ इसलिए है कि जीव की शक्तियों का विस्तार यहीं से प्रारम्भ होता है । इस ज्ञान के उदय के साथ ही मनुष्य के अन्तःकरण से आत्म-ज्ञान की तीव्र आकांक्षा जागृत होती है और चूँकि अन्त में जीवन उसी प्रकाश में ही समाधि ले लेता है यह परम लक्ष्य की अन्तिम अवस्था भी है । इसलिये वेद-शास्त्रों में ज्ञान के महत्व को सर्वोपरि माना गया है और उसके बिना मनुष्य को पशुवत् बताया गया है ।

परमात्मा का दूसरा गुण है-- अकायम् वह निराकार है । उसका शरीर मनुष्य जैसा नहीं अर्थात् मनुष्यों जैसा कार्य नहीं करता । उपासक के अन्तःकरण में यह गुण भी शीघ्र ही चमकता है अर्थात् परमात्मा का ज्ञान तत्व या प्राण-तत्व जब उसने धारण किया तो उसे सर्वप्रथम यह अनुभव हुआ कि वह अब तक जिस शरीर को ही संसार के सुख और अहंकार की पूर्ति का प्रमुख साधन समझे हुए था या यों कहें कि अब तक वह अपने शरीर को ही जीवन और प्राण समझता था अब उसे विरक्ति होने लगती है । विरक्ति का यह अर्थ नहीं कि वह शारीरिक क्रियायें छोड़ देता है वरन् अब इसे साधन या परमात्मा के मन्दिर के रूप में प्रतिष्ठित हुआ देखता है जो इन्द्रिय लिप्सायें उसे अब तक परेशान किये हुए थीं अब उसने समझा कि इन शारीरिक विकृतियों से उसे परेशान नहीं होना चाहिए । यह शरीर नाशवान् है, पंचभौतिक है, कभी भी नष्ट हो सकता है, अतः अब इस पर स्वामित्व कर इसका सदुपयोग किया जाना चाहिए ।

इन भावनाओं के उदय के साथ ही उसे प्राण-तत्व या शरीर में प्रतिष्ठित चेतना का अनुभव हुआ और उसने विचार किया कि अपने अदृश्य शरीर, प्राण-शरीर को प्राप्त करना चाहिए । यह प्राण-शरीर निराकार है जो चिन्तन और विचार द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है । सूक्ष्म इन्द्रियाँ ही उसे जान सकती हैं । अतः उसकी मनोवृत्तियाँ अन्तर्मुख होने लगीं । वह कायिक हितों से परान्मुख होकर अपने निराकार स्वरूप का चिन्तन और उसका रहस्य जानने की इच्छा करने लगा ।

परमात्मा ''अव्रणम'' है अर्थात् उसे किसी प्रकार के घाव नहीं लगते । घाव मनुष्य के शरीर में ही लग सकते हैं । शास्त्रकार ने बतलाया है- **''नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावकः ।''** अर्थात् आत्मा को शस्त्र छेदन नहीं कर सकते, आग उसे जला नहीं सकती । जब तक मनुष्य में शरीर भाव था तब तक सांसारिक ताप और शारीरिक कष्ट उसे अप्रिय लगते थे और हर क्षण इनसे छुटकारा पाने का ही वह प्रयत्न करता था, किन्तु अब उसने अनुभव किया कि शारीरिक लालसायें अभी भी ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में उसकी बाधक हैं अतः इनका उच्छेदन करना चाहिए । यह तप के अर्थ में है । तप को शारीरिक तितीक्षा भी कहते हैं । अर्थात् जानबूझ कर शरीर को कष्ट देते हैं जिससे आत्मभाव स्पष्ट होने लगे और जीवन-भाव से मुक्ति मिलने लगे ।

शरीर को कष्ट देने का तात्पर्य यह नहीं है कि उसे अस्त्रों से छेदा या आग से जलाया जाय वरन् उन तितिक्षाओं को जलाना है जिससे लौकिक सुखों की कामना मर जाय । नियमित जीवन, स्वच्छता, सफाई, जप, प्राणायाम, उपवास, कृच्छ-चान्द्रायण आदि तप कहे गये हैं । इनका उद्देश्य आत्मा को तपाना है और उसे परमात्मा में मिलने के अनुरूप शुद्ध और तेजस्वी बनना है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किन्तु मनुष्य की युग-युगान्तरों की दमित वासनायें इतने शीघ्र नष्ट नहीं हो जाती । शरीर और मन की यह सफाई ठीक ऐसी है जैसे किसी गन्दी नाली में शुद्ध जल डालकर उसकी सफाई की जाती है । सफाई करते समय बहुत दिनों से सतह में जमी हुई गन्दगी की सड़ाँद इतनी तीव्रता से फैलती है कि वह आस-पास वालों का दिमाग बदबू से खराब कर देती है । आत्मोत्थान के विभिन्न साधनों द्वारा भी शरीर में वासनाओं और लौकिक कामनाओं की ऐसी सड़ाँद उत्पन्न होती है जो मन को झकझोर कर रख देती है । कुछ क्षण के लिये मन को काबू में करना कठिन हो जाता है इस हलचल की प्रक्रिया को ही अग्नि-दीक्षा या प्राण-दीक्षा के नाम से पुकारा जाता है और उस स्थिति को सँभालने के लिये किसी योग्य तथा अनुभवी मार्ग दर्शक की बड़ी आवश्यकता बताई गई है । परमात्मा का ''अस्नाविरम् गुण इस बात का बोध कराता है कि उपासक परमात्मा की प्राप्ति के लिए जब सन्धान करे तो वह शरीर की चंचलता को हर तरह से रोके । यह कह सकते हैं कि परमात्मा की ओर अचल भावना से प्रतिष्ठित हुई जीवात्मा शारीरिक चंचलता, इन्द्रियों की भड़कन या मनोविकारों से प्रभावित नहीं होती है ।

परमात्मा नित्य शुद्ध है वह अपने उपासक में पाप कैसे देख सकता है ? दूध में शुद्ध जल मिल सकता है, गन्दा जल तो उसके स्वरूप को ही बिगाड़ देता है । अग्नि में लोहा डाला जाता है तो वह अग्नि वर्ण हो जाता है । परमात्मा अपने भक्त के पापों का इसी प्रकार संहार कर उन्हें नष्ट करता है । यही बात उपासक की ओर से भी होती है । वह अनुभव करता है कि पापपूर्ण जीवन बिताकर परमात्मा को पाना सम्भव नहीं, वैसे ही पुराने पापों का फल पाये बिना भी उसकी सिद्धि सम्भव नहीं । इन दिनों स्थितियों में सन्तुलन रखकर वह अपने पापों का धैर्यपूर्वक प्रक्षालन करता है और परमात्मा में मिल जाने की योग्यता प्राप्त करने में संलग्न रहता है ।

विचारों से भावनाओं की शक्ति बड़ी मानी जाती है । परमात्मा मनीषी भी है और कवि भी । कविता आत्मा की सर्वव्यापकता की अभिव्यक्ति है । आत्मा जब विकसित होती है तो सारे संसार के सुख-दुःख में वह अपना सुख-दुःख अनुभव करने लगती है । यह गुण ईश्वर-उपासक में भी उसी रूप में जाग्रत होती है । उसमें भी दया, प्रेम, त्याग, उदारता, व्यवहार, सहानुभूति और कष्ट-सहिष्णुता जैसी कवि-भावनायें जागती हैं । अपने स्वार्थों का परित्याग कर उसे परमार्थ में विशेष आनन्द आने लगता है । संसार में जितने भी सन्त-भक्त हुए हैं उन्होंने मनुष्य की सेवा को ही परम धर्म बताया है । ऐसा तभी संभव हुआ जब परमात्मा की उपासना के फलस्वरूप उनका कवि-गुण-भावनायें जाग्रत हुईं । इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि बाल्मीकि, अजामिल और सदन जैसे कठोर और दुष्ट प्रकृति के व्यक्तियों ने जब ईश्वर की शरण ग्रहण की तो वे इतने सदय हृदय हुए कि मानवता की सेवा में ही अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया ।

विचार और भावनाओं की सर्वोच्चता में पहुँचने पर उपासक भगवान् की ''परिभू'' शक्ति का रसास्वादन करता है । ईश्वर सर्वव्यापी है, परिभू है । संसार के कण-कण में उसकी सत्ता समा रही है । पहाड़, नदियाँ, सागर, वृक्ष, वनस्पति, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र सब उसी के बनाये हुए हैं । सर्वत्र उसी का प्रकाश भर रहा है । कण-कण में रज-रज में वही खेल-खेल रहा है । जल, थल, नभ ऐसा कोई भी स्थान नहीं जो परमात्मा से रिक्त हो । वह विराट् जगत् उसी का स्वरूप है । एक-एक तिनके पर उसकी दृष्टि है किसी का व्यवहार उससे छुपा हो यह सम्भव नहीं उसकी आँख से कोई बच कर नहीं जा सकता, कोई भी व्यक्ति बुरी बात करे और वह उसे न सुन ले ऐसा कभी सम्भव नहीं। उपासक परमात्मा की इस सर्वव्यापकता की अनुभूति प्राप्त कर आनन्द विभोर हो जाता है । अपने आपको भी उसी अविनाशी तत्व में विलीन हुआ सर्वव्यापक सत्ता के रूप में देखता है स्वयं भी सर्वव्यापक हो जाता है ।

परमात्मा सर्वशक्तिमान् भी है । उसकी व्यवस्था बड़ी विशाल, बड़ी अनोखी है । संसार के सब कर्मों की वह देख-रेख करता है कर्म का फल भी वही देता है । रक्षा, पालन और विनाश भी वही करता है । पर वह यह सब अलिप्त, निर्विकार भाव से किया करता है । संसार के कल्याण की दृष्टि से ही उसने अपनी शक्तियाँ विकसित की हैं और उनका लाभ भी वह सारे संसार को देता रहा है । ईश्वर का अंचल पकड़ने वाला भी अन्त में परमात्मा की यह महान् विभूति प्राप्त कर अलिप्त, निर्विकार और जीवन-मुक्त हो जाता है । मनुष्य शरीर में ही वह परमात्मा की सिद्धियों और शक्तियों का रसास्वादन करता हुआ अन्त में उसी सुख स्वरूप, तेजस्वी, दुःख का नाश करने वाले परमात्मा के दिव्य प्रकाश में विलीन हो जाता है ।

उपासना की सफलता सुनिश्चित साधना पद्धति पर निर्भर

विद्यार्थी को अच्छे नम्बर से उत्तीर्ण होने और उस सफलता के आधार पर उच्च पद पाने के लिए कई बातों पर आश्रित रहना पड़ता है । अपना निजी मनोयोग एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिश्रम तो सर्वप्रथम है ही, उसके बिना तो गाड़ी एक कदम नहीं बढ़ती, पर इसके अतिरिक्त भी अन्य दो साधन चाहिए । इनमें एक है-- उपयुक्त शिक्षक एवं सुनिश्चित पाठ्यक्रम । दूसरा है-- अभिभावकों का सहयोग, अनुदान । ये तीनों सुयोग जब बन पड़ते हैं तो सफलता सुनिश्चित हो जाती है । इनमें से एक आधार भी लड़खड़ाने लगे तो समझना चाहिए कि प्रगतिक्रम रुका और सफलता संदिग्ध हो गई । अपवाद रूप में तो कोई एकाकी मात्र अपने बलबूते भी बहुत कुछ कर सकता है, पर साधारण क्रम यही है । निजी पुरुषार्थ के अतिरिक्त साधना और सहयोग की भी हर प्रसंग में आवश्यकता पड़ती है । उनके न मिल सकने पर सुयोग्यों को भी असफलता का दुःख उठाना पड़ता है ।

छात्र की सफलता का उदाहरण देकर यह बताया गया है कि भौतिक और आत्मिक प्रगति के लिए सर्वत्र उपरोक्त विविध साधनों की आवश्यकता पड़ती है । जिन्हें मिल जाते हैं वे सफलता का श्रेय लेते हैं, जिन्हें इससे वंचित रहना पड़ता है वे अपने प्रयत्न पुरुषार्थ में कोई कमी न होते हुए भी दुर्भाग्यग्रसित रहते हैं । पुरुषार्थ का महत्व सर्वोपरि होते हुए भी वह एकाकी ऐसा नहीं है जो अभीष्ट प्रतिफल उपलब्ध कर सके । साधन और सहयोग के बिना प्रबल पुरुषार्थ भी असफल रहना पाया गया है । विद्यार्थी को उपयुक्त अध्यापक न मिले और अभिभावक उसके लिए भोजन, वस्त्र, पुस्तक, फीस आदि का प्रबन्ध न करे, तो पुरुषार्थी और मेधावी होते हुए भी उसे अभीष्ट प्रतिफल से वंचित रहना पड़ेगा ।

आत्मिक क्षेत्र की सफलता के सम्बन्ध में भी यही बात है । साधना पद्धति सही और सुनिश्चित होनी चाहिए । दुर्भाग्य से इन दिनों भारतीय आध्यात्मिकता के क्षेत्र में इन दिनों अराजकता का साम्राज्य है । अन्य धर्मों में सुनिश्चित साधन पद्धतियाँ बनी हुई हैं और उन्हें श्रद्धापूर्वक अपनाकर अनुयायी अपना प्रगतिक्रम जारी रखते हैं । मुसलमानों में मौलवी और ईसाइयों में पादरी अपना-अपना नया मजहब नहीं चलाते । अपनी-अपनी नई साधना पद्धतियाँ नहीं गढ़ते । अपनी मनमर्जी के नये-नये मंत्र विधान नहीं उगाते, पर इस सम्बन्ध में हिन्दू समाज को दुर्भाग्यग्रस्त ही कहना चाहिए कि हर धूर्त गुरुनाम धारी ने अपनी डेढ़ ईंट की अलग मसजिद खड़ी की और ढाई चावल की खिचड़ी पकाई है । आठ कनौजिया और नौ चूल्हे की कहावत की व्यावहारिकता कितनी सच है यह कहना कठिन है । पर उपासना के क्षेत्र में हर गुरुनामधारी ने अपना एक विशेष सम्प्रदाय शास्त्रों, आप्तवचनों एवं परम्पराओं की पूरी अवहेलना करते हुए गढ़ लिया है । पर्यवेक्षण में उसे हारना न पड़े इसलिए यह तुर्रा लगा दिया है कि जो विधि बताई गई है उसे प्रकट न किया जाय । जबकि समस्त संसार में विज्ञजन अपने प्रतिपादनों की प्रामाणिकता एवं विशिष्टता सिद्ध करने के लिये उन्हें साहसपूर्वक तर्क एवं प्रमाणों सहित प्रस्तुत करते हैं तब अपने यहाँ किसी को न कहने का प्रतिबन्ध लगाया जाता है । इसका और कोई कारण नहीं, उस मनगढ़ंत जाल-जंजाल की पोल खुल जाने का भय ही गोपनीयता का प्रतिबन्ध लगाता है । साधना विधियों की बहुलता और गोपनीयता की इस अराजकता के दिनों किसी सहज जिज्ञासु के लिए यह निर्णय करना कठिन पड़ता है कि इन तथाकथिक गुरुजनों द्वारा बताई जाने वाली अनेकानेक उपासना विधियों में से किसे अपनायेंगे, किसे छोड़े । भ्रान्तियों, शंकाओं, संदेहों और अनिश्चित दिशाधारा की मनःस्थिति साधक की निष्ठा में सबसे बड़ी बाधा है । इसके रहते किसी का अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचाना कठिन है ।

इस कठिनाई के निवारण का युगऋषि ने प्राण-पण से प्रयत्न किया है और शास्त्र तथा आप्त परम्पराओं का लम्बे समय तक पर्यवेक्षण करने के उपरान्त वह राजमार्ग प्रस्तुत किया है, जिसे चुनौती दे सकना किसी भी तर्क, तथ्य एवं प्रमाणों को मान्यता देने वाले के लिये शक्य नहीं हो सकता । अध्ययन अन्वेषण ही नहीं, अनुभव को भी इस राजमार्ग की उत्कृष्टा के सम्बन्ध में प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किया गया है । 'साधना से सिद्धि' का उपलब्ध होना ही उसके सही होने की सबसे बड़ी साक्षी है । प्राचीन काल के उदाहरणों पर जिन्हें सन्देह हो वे गायत्री युग लाने वाले सूत्र संचालक की निजी साधना और सिद्धि का पर्यवेक्षण करते हुए भी प्रतिपादन की प्रामाणिकता का पता लगा सकते हैं । सन्देह-निवारण की दृष्टि से यह साक्षी काफी वजनदार है ।

आत्मिक प्रगति के लिए सुनिश्चित साधना पद्धति में गायत्री के अवलम्बन से बढ़कर दूसरा मार्ग हो ही नहीं सकता, इसे भारतीय धर्मानुयायी क्रमशः अधिक अच्छी तरह समझते और अनुभव करते जा रहे हैं । उसके लिए उपयुक्त विधान क्या होना चाहिए, उसकी समुद्र मंथन जैसी लम्बी अनुसन्धान प्रक्रिया का जो निष्कर्ष नवनीत निकला है वह सर्वसाधारण के सामने प्रस्तुत है । गायत्री महाविज्ञान या छोटी पुस्तिकाओं से उसे सरलतापूर्वक देखा, समझा जा सकता है । अब तो उनका प्रचलन भी इतना हो गया कि किसी नैष्ठिक साधक से पूछकर निभ्रान्त साधना पद्धति को जाना जा सकता है । कोई सन्देह हो तो हरिद्वार, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के केन्द्र उनका निराकरण समाधान करने के लिए विद्यमान हैं । ऐसी दशा में साधना से सिद्धि प्राप्त करने के मार्ग में जो प्रथम अवरोध 'सही मार्गदर्शन' न मिलने का सही अध्यापक, अध्यापन न मिलने का था, उसका समाधान मिल गया ही समझा जा सकता है ।

मार्गदर्शन के अतिरिक्त प्रगति पथ पर अग्रसर होने का दूसरा अवलम्बन है पुरुषार्थ । पुरुषार्थ के दो पक्ष हैं-- एक श्रम, दूसरा मनोयोग । श्रम में स्फूर्ति और तत्परता होनी चाहिए । मनोयोग में तन्मयता, निष्ठा का समावेश होना चाहिए । अन्यथा इन दोनों का स्तर नहीं बनता और चिन्ह-पूजा होने जैसी स्थिति बनी रहती है । लकीर पिटते रहने को पुरुषार्थ नहीं बेगार भुगतना कहा जाता है । उसका प्रतिफल भी नगण्य ही मिलता है । साधना के क्षेत्र में भी उच्चस्तरीय पुरुषार्थ चाहिए । साधक की उपासना में साधन श्रद्धा और जीवन प्रक्रिया में उत्कृष्टता का अधिकाधिक समन्वय होना चाहिए । भजन-पूजन बेगार भुगतने की तरह क्रिया-कृत्य बनकर ही नहीं चलते रहना चाहिए वरन् उसमें सघन निष्ठा का समावेश होना चाहिए ।

साधनात्मक पुरुषार्थ में (१) उपासना का नियमित और निश्चित होना (२) व्यक्तित्व में पवित्रता एवं प्रखरता का समावेश बढ़ना । (३) तपश्चर्या की संयम एवं सेवा शर्तों को पूरा किया जाना-- ये तीन चरण हैं । साधक इन्हीं के सहारे इतना सशक्त बनता है कि अन्तराल से सिद्धियों का उभार-- संसार से सम्मान, सहयोग और अदृश्य जगत की दैवी अनुग्रह की विद्युत वर्षा होने लगे । इस वर्ष की नैष्ठिक उपासना में सप्ताह में एक दिन अस्वाद ब्रह्मचर्य एवं मौन की संयम साधना पर जोर दिया गया है । साथ ही नवसृजन के लिए अंशदान की उदारता बरतने में निष्ठावान रहना चाहिए । इन्हें तपश्चर्या की नीति अपनाने का अंगुलि निर्देशन समझा जाना चाहिए । इन्हें मात्र कृत्य की तरह पूरा भर नहीं कर लिया जाना चाहिए, वरन् उन्हें तपस्वी जीवन के आधारभूत सिद्धान्त समझा जाना चाहिए और निरन्तर यह प्रयत्न चलना चाहिए कि यह आदर्श व्यक्तित्व के अंग बनकर दबे देवत्व को उभारने का चमत्कार दिखा सके ।

अध्यात्म क्षेत्र का आत्म-शोधन एवं आत्म-परिष्कार करना ही परम पुरुषार्थ है । इसी के लिए व्रत, संयम, तप के विभिन्न अनुशासन अपनाने पड़ते हैं । उपासना पद्धति में भी निष्ठा और नियमितता का अधिकाधिक समावेश करना पड़ता है । जो इन तथ्यों पर जितना अधिक ध्यान देता है वह उसी अनुपात से सच्चा साधक माना जाता है और उसी परिमाण से चमत्कारी सिद्धियाँ प्राप्त करता है जो उस ओर ध्यान नहीं देते मात्र उपासना कृत्यों को ही सब कुछ मान बैठते हैं उनको बाल बुद्धि की जादूगरी में रस लेने वाला कहा जा सकता है ।

गायत्री परिवार के परिजनों ने अपनी साधना में निष्ठा का समावेश करने का प्रयत्न सदा से किया है, अब युग सन्धि की बेला में वे उस प्रयोग को और भी अधिक तत्परता के साथ सम्पन्न करने जा रहे हैं । इन दिनों जाग्रत आत्माओं के कन्धों पर जो विशिष्ट उत्तरदायित्व आते हैं उनका निर्वाह कर सकने में नैष्ठिक साधना अपनाने पर बहुत जोर दिया जा रहा है । जो इस दिशा में जितने शौर्य पराक्रम कर सकेंगे वे उतने ही बड़े पुरुषार्थी कहे जायेंगे और आत्मिक प्रगति के सुनिश्चित परिणाम उत्पन्न करने वाले त्रिविधि अवलम्बनों में से एक अति महत्वपूर्ण पक्ष की पूर्ति करेंगे ।

भौतिक प्रगति एवं समृद्धि का जितना महत्व समझा और ध्यान दिया जाता है उतना ही यदि आत्मिक क्षेत्र की उपलब्धियों के सम्बन्ध में दृष्टि रही होती तो निश्चय ही सामान्य परिस्थितियों में रहने वाले व्यक्ति भी देवमानवों की भूमिका निभा सकने में समर्थ हो सके होते । किन्तु होता यह है कि भौतिक सफलताओं के लिए छुट-पुट आध्यात्मिक उपचार उपेक्षापूर्वक किये जाते हैं, यदि आत्मबोध उगा और तत्वज्ञान जगा होता तो आत्मिक प्रगति को प्रमुखता मिलती और भौतिक सुविधाओं की वैसी ही उपेक्षा बन पड़ती जैसी कि इन दिनों वैभव के निमित्त जीवनोद्देश्य की अवज्ञा होती रहती है । यह आन्तरिक परिवर्तन प्रस्तुत कर सकना ही सच्चे अर्थों में आत्मिक क्षेत्र का पुरुषार्थ है जो इसे जिस मात्रा में कर पाता है वह इसी काय-कलेवर में रहते हुए अपने में दैवी विशिष्टता का अनुभव करता और परिचय देता है ।

आत्मिक प्रगति का तीसरा अवलम्बन है- वरिष्ठों का अनुदान । छात्र की सफलता का उदाहरण देते हुए कहा जा चुका है कि उसे अभिभावकों का बहुमुखी सहयोग मिलना चाहिए । भोजन, वस्त्र, पुस्तक, फीस, जेब खर्च आदि का सारा प्रबन्ध अभिभावक करते हैं । यदि वे न करें और यह सारा प्रबन्ध छात्र को स्वयं ही करना पड़े तो अधिकांश क्षमता उसी को जुटाने में नष्ट हो-जायेगी और फिर न पढ़ने के लिए फुरसत मिलेगी, न ताजगी रहेगी । ऐसी दशा में अत्यधिक भार बढ़ जाने से न उसकी पढ़ाई ठीक प्रकार चलेगी न सफलता ही सुनिश्चित रहेगी । छोटे बच्चे को माता दूध भी पिलाती है और उसकी अन्य सुविधाओं को भी जुटाती रहती है । यदि यह लाभ न मिले तो नवजात शिशु के लिए अपनी स्वल्प सामर्थ्य के बल पर जीवन धारण किये रहना भी कठिन हो जायेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मिक प्रगति के क्षेत्र में भी यही सिद्धान्त काम करता है । साधना के प्रति सच्चे अर्थों में जो निष्ठावान हैं, उन्हें सिद्ध पुरुषों के उच्चस्तरीय अनुदान मिलते हैं और वे स्वल्प पुरुषार्थ में भी उच्चस्तरीय सफलतायें प्राप्त कर सकने में सफल होते हैं । विवेकानन्द को परमहंस का, शिवाजी को समर्थ का, चन्द्रगुप्त को चाणक्य का, विनोबा को गाँधी का अनुदान मिला और वे मूलतः अकिंचन होते हुए भी अन्ततः महान् बन सकने में सफल हुए । हनुमान, अंगद और नल-नील को चमत्कारी उपलब्धियाँ उनकी अपनी उपार्जित नहीं थीं वे अनुदान में मिली थीं । कुन्ती-पुत्र पाण्डव जो पराक्रम दिखा सके वह उनका निज का नहीं, देव प्रदत्त था । गंगा लाये तो भागीरथ ही थे, पर उस सफलता में उन्हें शिवाजी का अनुदान कम नहीं मिला था । तपश्चर्यायें ऐसे ही अनुदान वरदान प्राप्त करने के निमित्त की जाती हैं ।

गुरु और शिक्षक में नैतिक अन्तर है । शिक्षक मार्गदर्शक भर होता है । बताने पढ़ाने के उपरान्त उसकी जिम्मेदारी पूर्ण हो जाती है किन्तु गुरु की गरिमा इतनी सीमित नहीं है, उसे शिष्य को प्रशिक्षण से भी अधिक अनुदान देना पड़ता है अध्यापक कोई भी हो सकता है, पर अनुदान देने वाले अभिभावक तो भाग्यवानों को ही मिलते हैं । यदि यह आवश्यकता पूर्ण न हो सके तो मार्गदर्शन और पुरुषार्थ के दोनों आधार बन पड़ने पर भी एक बड़े महत्व का अवलम्बन अनुपलब्ध ही रह जाता है और उच्चस्तरीय सफलता संदिग्ध बनकर रह जाती है ।

कई व्यक्ति ऐसे सिद्ध पुरुषों की तलाश में रहते हैं जिनके वरदान, आशीर्वाद से उनकी कठिनाई का हल निकले एवं अभीष्ट सफलताओं में सरलता हो सके । ऐसे सिद्ध पुरुष प्राचीनकाल में तो बहुत थे, पर अब भी उनका वंश नष्ट नहीं हुआ है । सत्पात्रों को उनकी सेवा सहायता अभी भी प्राचीनकाल की तरह उपलब्ध होती है । फिर क्या कारण है कि प्राचीनकाल में साधकों को ऐसे अनुदान मिलते रहते थे और अब वैसे सुयोग नहीं बनते । सिद्ध पुरुषों के वरदान प्राप्त करके जो गुरु की कृपा की सराहना कर सके, ऐसे भाग्यशाली कठिनाई से ही कहीं दीखते हैं । इच्छुकों की कमी नहीं, वे भाग-दौड़ भी कम नहीं करते-- फिर भी जब निराशा हाथ लगती है तो अनेक प्रकार के सन्देह मन में उठते हैं । उनमें एक यह भी है कि सिद्ध पुरुषों की समाप्ति तो नहीं हो गई अथवा वे अनुदार तो नहीं बन गये ?

इस शंका के समाधान में इस तथ्य को भली प्रकार उजागार करना होगा कि महत्वपूर्ण अनुदान पात्रता के स्तर से सम्बन्धित हैं । पानी माँगने पर कहीं से भी मिल सकता है । मनुष्यता का तकाजा एक-दूसरे को सहयोग देते हुए जीवनयापन करने का है, पर बड़ी सहायता देने जैसे बड़े कदम उठाने के लिए कोई तभी तैयार होता है जब प्राप्त करने की पात्रता परख ली जाय । उदाहरण के लिए, किसी के भी माँगने पर उसे बेटी नहीं दी जा सकती । जमाता को हर तरह ठोक-बजाकर देखना पड़ता है कि वह उसकी सुयोग्य बेटी के उपयुक्त है या नहीं । बड़े अनुदान मिलते तो मुफ्त में ही हैं, पर उसके लिये पात्रता की कड़ी परीक्षा में उत्तीर्ण होना पड़ता है । माँगते ही मिल जाने की कोई परम्परा इस संसार में नहीं है । देवता या सिद्ध पुरुष भी इसके लिये तैयार नहीं होते । याचना पूरी हो ही जायेगी इसकी कोई गारंटी नहीं । बैंकों से मुफ्त में धन लेकर सभी चैक भुनाने वाले निकालते हैं, पर इस लाभ को पाने से पूर्व अपनी जमा राशि अथवा लौटाने की जमानत का प्रबन्ध करना होता है । हर किसी की मनोकामना पूरी करने वाले अनुदान बटने लगें तो बैंकें ही नहीं, देवता एवं सिद्ध पुरुष भी दिवालिया बन जायेंगे । पात्रता की कसौटी पर खोटे सिद्ध होने वाले याचकों को प्रायः खाली हाथ ही लौटना पड़ता है । ठीक यही बात देव मानवों द्वारा सामान्य-जनों को उपयोगी अनुदान देते समय भी ऐसी ही जाँच पड़ताल करनी होती है और वैसी ही नीति बरती जाती है ।

विधिवत उपासना के सुनिश्चित परिणाम

सामान्य रीति से अनेकों सामान्य कार्य ऐसे ही किये जाते हैं और उनकी व्यवस्था तथा सफलता सामान्य क्रम से चलती रहती है । इस प्रकार के कामों में कब तक कितनी मात्रा में क्या सफलता मिलेगी-- इसका कुछ निश्चय नहीं रहता । ढर्रे पर गाड़ी लुढ़कती रहती है और उसका कुछ-न-कुछ परिणाम निकलता ही रहता है । किन्तु यदि किसी आवश्यक कार्य को नियत समय में सम्पन्न करना है और अभीष्ट सफलता प्राप्त करनी है तो फिर सामान्य ढर्रे से काम नहीं चलता । इसके लिये विशेष योजना बनाने साधन जुटाने विशेष मनोयोग लगाने और विशेष श्रम करने की आवश्यकता पड़ती है । इस विशिष्टता को अपनाये बिना महत्वपूर्ण कार्यों को नियत अवधि में अभीष्ट सफलता के साथ सम्पन्न कर सकना सम्भव नहीं होता ।

साधना के सम्बन्ध में भी यही बात है नित्य कर्म के रूप में सामान्य गायत्री उपासना की जाती रहती है । उसमें प्रायः मनः शुद्धि का उद्देश्य ही पूरा हो पाता है । शरीर से नित्य पसीना निकलता त्वचा पर जमता है अस्तु नित्य स्नान करने की आवश्यकता पड़ती है । गन्दगी जमना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वाभाविक है तब उसकी सफाई भी होनी ही चाहिए । मन के ऊपर प्रस्तुत वातावरण में कषाय कल्मषों की परतें जमते रहना भी स्वाभाविक है । उसकी सफाई दैनिक उपासना नित्य नियम का पालन करने से ही सम्भव होती है । प्रायः सभी नित्य कर्मों का उद्देश्य सहज रीति से उत्पन्न होती रहने वाली मलीनता का निवारण निष्कासन करना है । यह भी कम महत्व का नहीं है । उपेक्षा करने पर जो हानि हो सकती है और तत्परता बरतने पर श्रेष्ठता का जो स्तर बना रहता है उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जा सके तो प्रतीत होगा कि नित्य कर्म के रूप में दैनिक उपासना का भी कितना बड़ा महत्व है ।

अतिरिक्त रूप से आध्यात्मिक सामर्थ्य उत्पन्न करने के लिए संकल्पपूर्वक नियत प्रतिबन्धों और तपश्चर्याओं के साथ विशिष्ठ उपासनायें करनी होती हैं । इन्हें अनुष्ठान कहते हैं। अनुष्ठान सर्वसाधारण के लिए है । उनमें उपासना क्रम ऐसा रहता है जिसे पालन कर सकना सर्वसुलभ हो । उसमें मन्त्रोपचार के पेचीदा विधि-विधानों का दबाव नहीं रहता। पुरश्चरण इसमें कुछ कड़े होते हैं । उनमें कवच, कीलन, अर्गलन हृदय, न्यास के हवन तर्पण, मार्जन के विधान पूरे करने पड़ते हैं । इसके लिए संस्कृत भाषा का आवश्यक ज्ञान तथा विधानों को कार्यान्वित करने का शास्त्रोक्त प्रशिक्षण आवश्यक है । इसलिये पुरश्चरणों की प्रक्रिया उन लोगों के लिए ही उपयुक्त पड़ती है जिनके लिए आजीविका उपार्जन के--गृहस्थी के-- बहुत से काम नहीं हैं, जो पूरा समय और मनोयोग उसी कार्य में नियोजित रखे रह सकते हैं । निर्धारित तपश्चर्या कड़ाई के साथ पालन कर सकते हैं । संस्कृत भाषा का समुचित ज्ञान रहने से उसे प्रयोग में आने वाले मन्त्रों का उपयोग सही कर सकते हैं । अनुष्ठानों से पुरुश्चरणों के विधान कठिन हैं । इसलिये उनके प्रतिफल भी अधिक हैं । सर्वसाधारण के लिए अनुष्ठान ही उपयुक्त पड़ते हैं । पुरश्चरणों का प्रशिक्षण जिन्हें आवश्यक लगता हो उन्हें उसके लिए व्यक्तिगत सम्पर्क साधना चाहिए ।

सामान्य जप की तुलना में अनुष्ठानों से उत्पन्न शक्ति का स्तर तथा परिमाण कहीं अधिक होता है । अधिक श्रम, समय, अधिक तत्परता, अधिक तपश्चर्या का समावेश होने से गायत्री उपासना में विशिष्ठता उत्पन्न हो जाना और उसका प्रभाव परिणाम अधिक ऊँचे स्तर का दीख पड़ना स्वाभाविक है ।

अनुष्ठानों के कुछ विशेष नियम यह हैं (१) नियत दिनों में नियत जप संख्या पूरी करनी होती है, जिसमें सामान्य उपासना की तुलना में अधिक समय लगता है । इसके लिए दिनचर्या में आवश्यक हेर-फेर करके अधिक समय लगाने का प्रबन्ध करनां पड़ता है । (२) अनुष्ठान के दिनों में ब्रह्मचर्य पालन अनिवार्य रूप से आवश्यक होता है । (३) भोजन में उपवास तत्व का समावेश किसी-न-किसी रूप में करना ही होता है । साधारण भोजन क्रम नहीं चल सकता । (४) अनुष्ठान काल में साधक की स्थिति तपस्वी जैसी होती है । उन दिनों इतना तो करना ही होता है अपनी शारीरिक सेवा जहाँ तक हो सके दूसरों से न कराये उन्हें अपने हाथों ही पूरा करे । (५) भूमि शयन, कम वस्त्रों का उपयोग, चमड़े से बनी वस्तुओं का त्याग जैसी तितीक्षायें सम्पन्न करें । (६) अन्त में हवन ब्रह्मभोज की पूर्णाहुति सम्पन्न करें । यह छः कार्य करने से अनुष्ठान की मर्यादायें पूरी होती हैं और उनके अभीष्ट सत्परिणाम उत्पन्न होते हैं ।

अनुष्ठानों की तीन श्रेणियाँ हैं-- लघु, मध्यम और पूर्ण । लघु अनुष्ठान के २४ हजार जप ६ दिन में पूरा करना होता है । मध्यम सवा लाख जप का होता है उसके लिए ४० दिन की अवधि नियत है । पूर्ण अनुष्ठान २४ लाख जप का है । उसमें एक वर्ष लगता है । माला में यों १०८ दाने होते हैं पर अनुष्ठान गणना में उन्हें १०० ही माना जाता है । आठ भूल-चूक, अशुद्ध उच्चारण आदि के लिए अतिरिक्त छोड़ दिये जाते हैं । एक घण्टे में १० से १२ मालायें पूरी होती हैं । यह मध्यम गति है । किसी की मुख संरचना इससे न्यूनाधिक हो सकती है । ऐसी दशा में संख्या सन्तुलन ठीक करने की अपेक्षा यह अधिक उत्तम है कि घड़ी रखकर उतना समय पूरा कर लिया जाय जो मध्यम गति से जप करने में लगा है । २४ हजार जप ६ दिन में पूरे करने के लिये हर दिन २७ मालायें जपनी होती हैं । इनमें प्रायः ढाई घण्टा समय लगता है । सवा लाख जप ४० दिन में करने पर प्रतिदिन ३३ माला की जाती हैं जो प्रायः तीन घण्टे में पूरी होती हैं । २४ लाख जप एक वर्ष में होता है और उसमें ६६ मालायें हर दिन की जाती हैं जिनमें प्रायः छः घंटे समय लगता है । सर्वोत्तम समय प्रातःकाल का ही है, पर यदि वह एक बार में पूरा न हो सके तो प्रायः सायं दो बार में पूरा किया जा सकता है । त्रिकाल संध्या की दृष्टि से मध्यान्ह काल में भी कुछ अंश पूरा किया जा सकता है पर परम्परा में अधिकांश प्रातःकाल और जो कम पड़े वह संध्याकाल में कर लेने का प्रचलन है।

जप से पूर्व स्नान और धुले वस्त्र पहनने का नियम है । उपासना कक्ष पूजा के पात्र हर दिन साफ करने चाहिए । पूजा उपचार की वस्तुओं में से जो पहले दिन प्रयोग में आ चुके हों उन्हें दुबारा काम में नहीं लाना चाहिए । आधी जली हुई धूपबत्ती दूसरे दिन प्रयोग में नहीं आनी चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसी प्रकार दीपक में बचा हुआ घी या बत्ती दूसरे दिन प्रयोग में नहीं लाई जाती । कटोरी में बचा हुआ चन्दन भी अगले दिन काम का नहीं रहता । फूल आदि वस्तुयें तो नई ही ली जाती हैं । अक्षत नैवेद्य जैसी वस्तुयें ही ऐसी हैं जो डिब्बी में रखी रहती हैं और उनमें से थोड़ी-थोड़ी निकाली और काम में लाई जाती रहती हैं ।

यों नियम तो सम्मिलित उपासना में भी वही है पर अनुष्ठान के दिनों में अग्नि और जल को साक्षी रखा ही जाना चाहिए । जल कलश के लिए छोटी-सी लुटिया रखी जाती है जिसमें देव शक्तियों का आह्वान करते हैं और पीछे उसे ही सूर्यार्ध के लिए चढ़ा देते हैं । अग्नि के लिए इन दिनों अगरबत्ती से काम चल जाता है । यों महत्व दीपक का अधिक है । पर यह शुद्ध घृत का ही होना चाहिए । तेल, बेजीटेबिल आदि से काम नहीं चलेगा । इन दिनों शुद्ध घी मिलना उन्हीं के लिए सम्भव है जो या तो स्वयं गाय पालें या दूध खरीदकर उसमें से अपने हाथों निकालें। पैक बन्द डिब्बों का घृत भी शुद्ध हो सकता है । बाजार में खुला बिकने वाला तो प्रायः संदिग्ध ही होता है । जहाँ द्विविधा हो वहाँ अगरबत्ती धूपबत्ती से ही काम चला लेना पर्याप्त है । अनुष्ठान काल में पूरी अवधि तक अखण्ड दीपक जलाने की बात सोचना तो उत्तम है पर उसके लिए सावधानी बहुत बरतनी पड़ती है । तनिक भी असावधानी रहने से दीपक बुझ जाता है और उसमें देवता की नाराजी आदि का अनुमान लगाकर साधक को व्यर्थ ही खिन्न बनना पड़ता है । इसलिए यदि दीपक जलाना हो तो जप काल की अवधि तक ही उसे जलाना चाहिए ।

पूजा वेदी यदि दैनिक उपासना के लिए पहले से ही बनी हुई है तो वही पर्याप्त है । अन्यथा नई चौकी स्थापित की जानी चाहिए । गायत्री माता का चित्र आवश्यक है । पिछला चित्र मैला धुंधला हो गया हो तो अनुष्ठान के समय नया चित्र बदल लिया जाय और पुराना जल में विसर्जित कर दिया जाय । चौकी पर बिछने वाला कपड़ा अनुष्ठान के समय बदल लेना चाहिए । वह पुराने कपड़े में से निकाला हुआ नहीं वरन् नया ही होना चाहिए । पीले रंग में रंगा हुआ । पूजा उपचार के लिए पंचपात्र में जल, पुष्प, अक्षत, नैवेद्य अगरबत्ती, चन्दन रोली यह वस्तुयें काम में लाई जाती हैं । अन्य वस्तुओं में कठिनाई नहीं होगी पर नये फूल प्रातः काल मिलने कठिन हो जाते हैं शाम को पानी छिड़ककर फूल खुली जगह में रखे रहने दिये जायें तो वे मुरझाते नहीं । बिना मुरझाये फूल पूजा के काम आते हैं । यदि वे न मिलें तो चावलों को चन्दन तथा हल्दी के रंग में रंगकर उन्हें फूलों के स्थान पर प्रयोग में लाया जा सकता है ।

आसन चमड़े का नहीं लेना चाहिए । इन दिनों बध किये गये जानवरों का ही चमड़ा मिलता है । प्राचीन काल में अपनी मौत मरे हुए मृग चर्म काम में आते थे । अब वैसी सुविधा नहीं रही ।

साथ ही अन्य आसन भी सुविधापूर्वक उपलब्ध हैं । प्राचीन काल में बनवासी तपस्वी न केवल आसन का वरन् वस्त्रों का काम भी चमड़े से ही चलाते थे । अब वैसी स्थिति नहीं रही । अस्तु कुशा के आसन, चटाई, कम्बल आदि के आसन ही काम में लाने चाहिए । कपड़ा प्रयोग करना हो तो उसे धोते रहना चाहिए ।

जप के समय पालथी मारकर बैठना चाहिए । यह सुखासन ही सुविधाजनक है । पद्मासन आदि पर देर तक नहीं बैठा जा सकता । टाँगों पर दबाव पड़ने से ध्यान भी उचटता है । जप काल में कमर सीधी रखी जाय आँखें अधखुली । माला चन्दन की अधिक उपयुक्त है । इन दिनों तुलसी और रुद्राक्ष के नाम पर नकली वस्तुयें ही बाजार में बिकती हैं । चन्दन की आसानी से मिल जाती है । अनुष्ठान काल के जप में पूरे वस्त्र पीले रखने में कठिनाई हो तो कम से कम कन्धे पर दुपट्टा तो पीला रहना ही चाहिए । पीत वस्त्र अनुष्ठान का परिधान है । पाजामे का नहीं धोती का ही अनुष्ठान काल में उपयोग होने की परम्परा है ।

जप काल में पालथी बदलते रहने में कोई प्रतिबन्ध नहीं है । देर तक बैठना सम्भव न हो सके तो खड़े होकर भी जप किया जा सकता है । बीच में पेशाब जाना हो तो हाथ-पैर धोकर फिर बैठना चाहिए । शौच जाना पड़े तो धोती बदलने एवं स्नान करने की आवश्यकता पड़ेगी । जम्हाई, या झपकी आने लगे तो उस उदासी को दूर करने के लिए मुँह धोने और आचमन करने से चेतनता आ जाती है ।

अनुष्ठान के उपरोक्त नियमों में कई बार कुछ शिथिलता करने की आवश्यकता पड़ती है । देश, काल, पात्र को ध्यान में रखते हुए वैसी छूटें दी जाती हैं । अति शीत प्रधान प्रदेशों में अथवा कमजोरों-रोगियों को शीत ऋतु में प्रातःकाल स्नान करते नहीं बन पड़ता । गर्म पानी उपयोग करने की तो छूट है पर उतने से भी काम न चले तो शरीर को तौलिये से पोंछकर या हाथ-पैर मुँह धोकर भी काम चल सकता है । कपड़ों में वे वस्त्र तो बदल ही लेने चाहिए जिनसे पसीना पेशाब आदि का स्पर्श होता है ।

यज्ञोपवीत पहनना, शरीर मन्दिर पर गायत्री की प्रतीक गरिमा धारण कर लेने के समतुल्य हैं अस्तु अनुष्ठान के दिनों में तो हमें पहन ही लेना चाहिए पीछे भले ही अनुष्ठान की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूर्ति होने पर विसर्जित कर दिया जाय । नर और नारी दोनों ही समान रूप से यज्ञोपवीत धारण करने के अधिकारी हैं । स्त्रियों को मासिक-धर्म होने के उपरान्त पुराना यज्ञोपवीत उतार कर नया धारण करना होता है ।

अनुष्ठान काल में ब्रह्मचर्य पालन आवश्यक है । स्वप्नदोष होना अपने हाथ की बात नहीं इसलिए उसमें दोष नहीं आता । किन्तु यदि मध्य में ब्रह्मचर्य टूटता है तो वह अनुष्ठान जितना हो चुका खण्डित माना जायगा और उसका आरम्भ नये सिरे से करना पड़ेगा ।

अनुष्ठान का दूसरा व्रत है उपवास । केवल जल पर नहीं रहना चाहिए । उसके लिए विशेष सतर्कता और अनुभव की आवश्यकता पड़ती है अन्यथा हानि होने का डर रहता है । दूध, छाछ, फलों का रस, शाकों को उबालकर बनाया गया रसा जैसे द्रव पदार्थों पर चलने वाला उपवास पूर्ण माना जाता है । नौ दिन तो वह आसानी से निभ सकता है । यदि उतना न बन पड़े तो उसके हलके स्वरूप और भी हैं । जैसे (१) नमक और शक्कर का त्याग कर अस्वाद व्रत का पालन । (२) एक समय भोजन एक समय दूध छाछ पर निर्वाह । (३) शाकाहार--फलाहार । (४) एक वस्तु खाने की दूसरी लगाने की मात्र दो ही वस्तुओं का उपयोग । जैसे रोटी, साग, चावल, दाल आदि । थाली में दो से अधिक वस्तुयें न हों ।

अपने शरीर की सेवा आप करने में अपने हाथों की तप-तितीक्षा में भोजन अपने हाथ से बनाने की बात भी आती है । उतना न बन पड़े तो अपनी पत्नी, माता अथवा कुमारिकाओं के हाथ का पकाया हुआ भोजन लिया जा सकता है । कुसंस्कारी हाथों का पकाया हुआ बाजारू भोजन तो ग्रहण न ही किया जाय । हजामत अपने हाथों बनाने से काम चल सकता है । कपड़े अपने हाथों धोये जायें तो उत्तम है अन्यथा माता-पत्नी मात्र की सेवायें उसके लिये स्वीकार की जायँ । मनुष्य द्वारा खींचे जाने वाले रिक्शे में बैठने से बचा जा सके तो उत्तम है । बुहारी लगाने, तेल मालिश करने जैसे काम भी अपने हाथों ही उन दिनों स्वयं करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

भूमि शयन का स्थानापन्न लकड़ी का तख्त हो सकता है । उसमें भी कठोरता होती है । कोमल शैय्या पर तितीक्षा नहीं सधती । भूमि शयन का नियम इसीलिये बनाया गया है । जहाँ तक हो सके कम वस्त्र पहने ताकि सर्दी-गर्मी का प्रभाव कुछ तो सहन करना ही पड़े । यदि चलने की भूमि बहुत अनुपयुक्त न हो तो अनुष्ठान के दिनों नंगे पैर भी रहा जा सकता है । चमड़े के बने जूतों का तो अनुष्ठान काल में निषेध है ही क्योंकि बध किया चमड़ा ही आज उपलब्ध होता है । इस वध कृत्य में काटने वाला ही नहीं उस माँस और चमड़े का उपयोग करने वाला भी पाप का भागी बनता है ।

अनुष्ठान के अन्त में जप की शतांश आहुतियाँ देनी चाहिए । यज्ञ हवन अब सर्वसाधारण की अर्थ शक्ति से बाहर है । २४ हजार जप के लिए २४० आहुतियाँ दी जाती हैं । इन्हें कई व्यक्ति मिलकर करें तो उसी हिसाब से कम बार आहुति देनी होगी । २४० आहुतियाँ पाँच व्यक्ति मिलकर दें ४८ बार मन्त्रोच्चार करके साथ-साथ आहुतियाँ देने से वह कार्य सम्पन्न हो जाता है । यदि प्रतिदिन आहुतियाँ दी जाती रहें तो एक व्यक्ति भी २७ आहुति नित्य देकर भी अपने अनुष्ठान का हवन पूरा करता रह सकता है । यदि कारणवश हवन की व्यवस्था न बन पड़े तो दशांस जप अधिक करने से भी उसकी पूर्ति हो सकती है । चौबीस हजार जप के लिए २४०० जप अधिक कर लिया जाय तो भी विवशता की स्थिति में उसे भी पर्याप्त मान लिया जायगा ।

प्रसाद वितरण ब्रह्मभोज की आवश्यकता उन दिनों ज्ञान प्रसाद वितरण से की जानी चाहिए । आत्मिक प्रगति में सहायक सद्ज्ञान प्रदान करने वाला ऐसा सस्ता साहित्य युग निर्माण योजना द्वारा इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए छापा गया है न्यूनतम सवा रुपया इस ब्रह्मभोज के लिए-ज्ञान वितरण के लिए खर्च किया जाय । अधिक बन सके तो और भी उत्तम है । इस प्रसाद को जिस-तिस को बखेर नहीं देना चाहिए वरन् सत्पात्रों के पास डाक से या व्यक्तिगत रूप से पहुँचाना चाहिए ताकि उसका समुचित उपयोग हो सके ।

आश्विन और चैत्र की नवरात्रियाँ लघु अनुष्ठानों के लिए अत्यन्त उपयुक्त समय है । यों उन्हें कभी भी सम्पन्न किया जा सकता है । किसी तिथि मुहुर्त का कोई बन्धन नहीं है । फिर भी दोनों नवरात्रियों का विशेष महत्व है । जेष्ठ में प्रतिपदा से दशमी तक गायत्री जयन्ती पर भी तीसरी नवरात्रि मानी गई है । चौबीस लाख का लम्बा अनुष्ठान करने के स्थान पर सवा लाख के बीस या चौबीस हजार के सौ कर लेना अधिक सुविधाजनक रहता है । किसी कारणवश कोई अनुष्ठान खण्डित हो जाय तो उसे नये सिरे से करना चाहिए । यदि स्त्रियों का अनुष्ठान मासिक धर्म आ जाने से बीच में ही खण्डित हुआ हो तो जितना शेष था उसकी पूर्ति शुद्धि के बाद की जा सकती है उसे खण्डित हुआ नहीं माना जायगा मात्र व्यवधान ही गिना जायगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपासना करें तो इस तरह

ईश्वर को किसी ने देखा नहीं है और न वह सर्वव्यापी निराकार होने के कारण देखने की वस्तु है । इसकी प्रतीक प्रतिमा तो इसलिए बनायी जाती है कि मानवी कलेवर में उत्कृष्टता की पक्षधर भाव-श्रद्धा को उस माध्यम के साथ जोड़कर परब्रह्म को विशिष्टाओं की परिकल्पना करना सर्वसाधारण के लिए सहज सम्भव हो सके । राष्ट्रध्वज में देश भक्ति की भाव-श्रद्धा का समावेश करके उसे गर्व-गौरव के साथ दुहराया और समुचित सम्मान प्रदान किया जाता है । इसी प्रकार सर्वव्यापी, न्यायनिष्ठ सत्ता का प्रतिमा में आरोपण करके भाव-श्रद्धा को उस स्तर की बनाया, सुविकसित किया जाता है कि वह सत्प्रवृत्तियों के समुच्चय परब्रह्म के साथ जुड़ सकने योग्य बन सके ।

भगवान का दर्शन करने के लिए लालायित अर्जुन, काकभुशुण्डि, यशोदा, कौशल्या आदि के आग्रह का जब किसी प्रकार समाधान होते न दीख पड़ा और साकार दर्शन का आग्रह बना ही रहा तो उन्हें तत्वज्ञान की प्रकाश प्रेरणा ने इस विशाल विश्व को ही विराट् ब्रह्म का प्रतीक बताया । इस विराट् स्वरूप दर्शन का वर्णन-विवेचन गीताकार ने अलंकारिक ढंग से समझाते हुए यह प्रयत्न किया है कि विश्वव्यापी उत्कृष्टा ही उपासना योग्य ईश्वरीय सत्ता है । यों वह समस्त विश्व-ब्रह्मांड में तो एक नियामक सूत्र संचालक के रूप में जानी मानी जा सकती है । उसे अनुशासन, सन्तुलन, सुनियोजन आदि के रूप में ही वैज्ञानिक दृष्टि से समझा जा सकता है । उसकी अनुभूति भाव श्रद्धा के रूप में ही हो सकती है । तन्मय और तद्रूप होकर ही उसे पाया जा सकता है । अग्नि के साथ एकात्मता प्राप्त करने के लिए ईंधन को आत्म-समर्पण करना पड़ता है और अपना स्वतन्त्र अस्तित्व मिटाकर तद्रूप होने का साहस जुटाना पड़ता है । ईश्वर और जीव के मिलन की यह प्रक्रिया है । नाले को नदी में अपना विलय करना पड़ता है । पानी को दूध में घुलना और वैसा ही स्वाद स्वरूप धारण करना पड़ता है। पति और पत्नी इस समर्पण की मानसिकता को अपना कर ही द्वैत से अद्वैत की स्थिति में पहुँचते हैं । मनुष्य भी जब देवत्व से सम्पन्न होता है तो देवता बन जाता है और जब उसमें परमात्मा जैसी व्यापकता ओत-प्रोत हो जाती है तो आत्मा की स्थिति परमात्मा जैसी हो जाती है । उसमें बहुत कुछ उलट फेर करने की अलौकिकता भी समाविष्ट हो जाती है । ऋषियों और सिद्ध पुरुषों को इसी दृष्टि से देखा और उन्हें प्रायः वैसा ही श्रेय सम्मान दिया जाता है।

विभिन्न मतमतान्तरों के अनुरूप विभिन्न प्रकार की पूजा पद्धतियाँ क्षेत्र या सम्प्रदाय विशेष में प्रचलित पायी जाती हैं, पर उन सबके पीछे लक्ष्य और रहस्य एक ही काम करता है कि अपने आप को परिष्कृत एवं सुव्यवस्थित बनाया जाय । यही है ईश्वर की एक मात्र पूजा, उपासना एवं अभ्यर्थना । विश्व व्यवस्था में निरन्तर संलग्न परमेश्वर को इतनी फुरसत नहीं कि वह इतने भक्तजनों की मनुहार सुने और चित्र-विचित्र उपहारों को ग्रहण करे । यह सब तो मात्र अभ्यर्थना के माध्यम से अपने आपको उत्कृष्टता के मार्ग पर चल पड़ने के लिए स्वसंकेतों के रूप में रचा और किया जाता है । ईश्वर पर न किसी की प्रशंसा का कोई असर पड़ता है और न निंदा का । पुजारी नित्य प्रशंसा के पुल बाँधते और निन्दक हजारों गालियाँ सुनाते हैं । इनमें से किसी की भी बकझक का उस पर कोई असर नहीं पड़ता । गिड़गिड़ाने, नाक रगड़ने पर भी चुनाव आयोग किसी को अफसर नियुक्त नहीं करता । छात्रवृत्ति पाने के लिए अच्छे नम्बर लाने और प्रतिस्पर्धा जीतने से कम में किसी प्रकार भी काम नहीं चलाता । ईश्वर की भी यही सुनिश्चित रीति-नीति है । उसकी प्रसन्नता इसी एक केन्द्र-बिन्दु पर केन्द्रित है कि किसने उसके विश्व उद्यान को अधिकाधिक सुन्दर-समुन्नत बनाने के लिए कितने अनुदान प्रस्तुत किये । अपने को कितना प्रामाणिक एवं परिष्कृत बनाया । उपासनात्मक कर्मकाण्ड इसी एक सुनिश्चित व्यवस्था को जानने-मानने के लिये किये और अपनाये जाते हैं । यदि कर्मकाण्ड भर लकीर पीटने की तरह पूरे किये जायँ और परमात्मा के आदेश-अनुशासन की अवज्ञा की जाती रहे, तो समझना चाहिए कि यह बालक्रीड़ा मात्र खेल-खिलवाड़ है । उतने भर से क्या किसी का कुछ भला हो सकने वाला है ? नहीं ?

देवपूजा के कर्मकाण्डों को प्रतीकोपासना कहते हैं-- जिसका तात्पर्य है कि संकेतों के आधार पर क्रिया-कलापों को निर्धारित करना । देवता का प्रतीक एक पूर्ण मनुष्य की परिकल्पना है जिससे प्रेरणा पाकर उपासक को भी हर स्थिति में सर्वांग सुन्दर एवं नवयुवकों जैसी मनःस्थिति में बने रहना चाहिए । देवियाँ मातृसत्ता की प्रतीक हैं । उनको तरुणी एवं सौंदर्यमयी होते हुए भी कुदृष्टि से नहीं देखा जाता, वरन् पवित्रता की मान्यता विकसित करते हुए उन्हें श्रद्धापूर्वक नमन्-वंदन ही किया जाता है । नारी मात्र के प्रति साधक की मान्यतायें इस स्तर की विनिर्मित, विकसित होनी चाहिए ।

पूजा-अर्चना में जल, अक्षत, पुष्प, चंदन, धूप-दीप नैवेद्य आदि को संजोकर रखा जाता है । इसका तात्पर्य उन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माध्यम संकेतों को ध्यान में रखते हुए अपनी रीति-नीति का निर्धारण करना है । जल का अर्थ है-- शीतलता--हम शान्त, सौम्य और मिलजुल कर रहें । धूप के पीछे दिशा निर्देशन यह है कि हम वातावरण को सत्प्रवृत्तियों से भरा पूरा सुगन्धित बनायें । दीपक का संकेत है-- हम अपने साधनों को, ज्ञान के प्रकाश को व्यापक बनाने के लिये कुछ भी उत्सर्ग करने के लिये तैयार कर लें । चंदन अर्थात् समीपवर्तियों को अपने जैसे सुगन्धित बना लेना । काटे घिसे जाने जैसी विकट परिस्थितियाँ आने पर भी प्रमुदित करने वाले स्वभाव को न छोड़ें । पुष्प अर्थात् हँसते-हँसाते, खिलते-खिलाते रहने की प्रवृत्ति अपना लेना । अक्षत अर्थात् अपने उपार्जन का एक अंश मात्र दिव्य प्रयोजनों के लिए नियोजित करने में उदारमना बने रहना आदि-आदि । भगवान को इन वस्तुओं की कोई आवश्यकता पड़ रही हो, ऐसी बात नहीं है । इन प्रतीक समर्पणों के माध्यम से हम अपने को ही प्रशिक्षित करते हैं कि देवत्व के अवतरण हेतु व्यक्तित्व को पात्रता से सुसज्जित रखें ।

गार्ड लाल और हरी झण्डियाँ ही दिखाता है । यों रंगों का अपना कोई महत्व नहीं, पर झण्डियाँ देखने पर जो खड़े होने और चल पड़ने का संकेत मिलता है, उसी को समझने और क्रियान्वयन करने पर रेल व्यवस्था बन पड़ती है । उपासना-परक क्रिया-कृत्य भगवान को सिखाने, फुसलाने या पात्रता प्रदर्शित किये बिना, पुरुषार्थ अपनाये बिना मनचाही कामनायें पूरा करा लेने जैसा प्रपंच उस प्रक्रिया में कहीं भी सन्निहित नहीं है जैसा कि आम लोग समझते हैं । काटने के लिए बोने-सींचने के बिना काम चलता ही नहीं । फिर चाहे अनुनय-विनय जैसी कुछ भी उछल-कूद क्यों न की जाती रहे ।

उपासनाक्रम में जप जो किया जाता है, उससे तात्पर्य है, जिस परमेश्वर को उसके विधान को आमतौर से हम भूले रहते हैं उसको बार-बार स्मृति पटल पर अंकित करें । विस्मरण की भूल न होने दें । सुर दुर्लभ मनुष्य जीवन की महती अनुकम्पा और उसके साथ जुड़ी हुई स्रष्टा की आकांक्षा को समझने अपनाने की मानसिकता बनायें । इसका नित्य प्रयत्न करना--यही नाम जप का महत्व और महात्म्य है । साबुन रगड़ने से शरीर और कपड़ा स्वच्छ होता है । घिसाई, रगड़ाई करने से निशान पड़ते और चमकने का अवसर मिलता है । जप करने वाले अपने व्यक्तित्व को इसी स्तर का विकसित करें ।

ध्यान जिनका किया जाता है उन्हें लक्ष्य मानकर तद्रूप बनने का प्रयत्न किया जाता है । राम, कृष्ण, शिव आदि की ध्यान-धारणा का यही प्रयोजन है कि उस स्तर की महानता से अपने को ओत-प्रोत करें । प्रायः गायत्री मन्त्र का जप और उदीयमान सूर्य का ध्यान किया जाता है । गायत्री अर्थात् सामूहिक विवेकशीलता । इस प्रक्रिया से अनुप्राणित होना ही गायत्री जप है । सूर्य की दो विशेषतायें सुपरिचित हैं एक ऊर्जा दूसरी आभा । हम ऊर्जावान् अर्थात् प्रगतिशील, पुरुषार्थपरायण बनें । ज्ञानरूपी प्रकाश से सर्वत्र शालीनता की सत्प्रवृत्तियों का विस्तार करें । स्वयं प्रकाशित रहें, दूसरों को प्रकाशवान बनायें । गर्मी और आलोक की आभा जीवन के हर क्षण में हर कण में ओतप्रोत रहे, यही सूर्य ध्यान का मुख्य प्रयोजन है । ध्यान के समय शरीर में ओजस्, मस्तिष्क में तेजस् और अन्तःकरण में वर्चस् की अविच्छिन्न वर्षा जैसी भावना की जाती है । इस प्रक्रिया को मात्र-कल्पना-जल्पना भर बनाकर छोड़ नहीं दिया जाना चाहिए, वरन् तदनुरूप अपने आप को विनिर्मित करने का प्रयत्न भी प्राण-पण से करना चाहिए ।

प्राणायाम में नासिका द्वारा ब्रह्मांडव्यापी प्राणतत्व को खींचने, धारण करने और धँसे हुए अशुभ को बुहार फेंकने की भावना की जाती है ।

संसार में भरा तो भला-बुरा सभी कुछ है, पर हर व्यक्ति अपने लिए मात्र उस दिव्य प्राप्ति को ही उपयुक्त समझे जो श्रेष्ठ और उत्कृष्ट है । उसी को पकड़ने और अपनी सत्ता में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करे निष्प्राण, निरीह, दुर्बल, कायर, कातर न रहे, वरन् ऐसा प्राणवान बने कि अपने और सम्पर्क क्षेत्र में प्राणचेतना का उभार विस्तार करते रहने में संलग्न रहे ।

एक प्रचलन साधना के साथ यह भी जुड़ा हुआ है कि रविवार या गुरुवार को हलका, भारी उपवास किया जाय और ब्रह्मचर्य पाला जाय । दोनों के ही पीछे समय साधना का तत्वज्ञान समाहित है । इन्द्रिय संयम, समय संयम, अर्थ संयम और विचार संयम तक यह साप्ताहिक उपवास और ब्रह्मचर्य वाली प्रक्रिया आगे बढ़ने फलने-फूलने दी जाय तो वह उपरोक्त चतुर्विधि संयमों की पकड़ अधिकाधिक कड़ी करते हुए सच्चे अर्थों में तपस्वी बनाने की स्थिति तक घसीट ले जाती है । ओजस्वी, तेजस्वी, मनस्वी बनने के त्रिविध लक्ष्य प्राप्त करने के लिये प्रयत्नरतों को ही सच्चे अर्थों में तपस्वी कहते हैं । तप की दिव्य शक्ति-सामर्थ्य से अध्यात्म क्षेत्र का हर अनुभवी भली प्रकार परिचित है ।

स्नान, भोजन, शयन, मलविसर्जन आदि नित्यकर्मों की तरह ही उपासना, साधना, आराधना के लिए भी कुछ समय नियत रहना चाहिए ताकि जीवन लक्ष्य को हृदयंगम किये रहने में विस्मरण प्रमाद उत्पन्न न होने पाये । प्रातःकाल आँख खुलते ही नया जन्म होने जैसी भावना की जाय और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज की अवधि को समग्र जीवन मानते हुए इस प्रकार की दिनचर्या बनायी जाय कि समय, श्रम, चिन्तन और व्यवहार में अधिकाधिक उत्कृष्टता का समावेश होता रहे । दिन उसी प्रातःकाल बनी रूपरेखा के अनुरूप बिताया जाय ताकि प्रमाद और भटकाव की कहीं गुँजायश न रहे । इसी प्रकार रात्रि को सोते समय एक दिन के जीवन का अवसान होते हुए उस दिन के क्रियाकलापों की ऐसी कठोर समीक्षा करनी चाहिए कि बन पड़े व्यतिक्रमों का दूसरे दिन प्रायश्चित किया जा सके और अगले दिन अधिक सतर्कतापूर्वक अधिक श्रेष्ठता शालीनता का उपक्रम अपनाया जा सके ।

दान-पुण्य, तीर्थयात्रा, परमार्थ जैसे धर्मकार्यों के लिए अंतरात्मा में मंद या तीव्र उमंगें उठती रहती हैं । इसे भी ईश्वर का संकेत, मार्गदर्शन एवं परामर्श मानकर अपनाने के लिए कुछ-न-कुछ प्रयत्न करना ही चाहिए । समय के अनुरूप इन सभी का समन्वय 'विवेक विस्तार' की एक ही प्रक्रिया में केन्द्रित हो जाता है । ज्ञान-यज्ञ, विचार-क्रांति, लोक-मानस का परिष्कार, सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन आदि नामों से इन्हें ही प्रतिपादित किया जाता है । समय की पुकार--विश्वात्मा की गुहार भी इसी को कह सकते हैं । भ्रष्ट-चिन्तन और दुष्ट आचरण ही ने असंख्य समस्याओं और संकटों के घटाटोप खड़े किये हैं । इन सबका निवारण और निराकरण मात्र एक ही उपाय-उपचार से सम्भव हो सकता है कि दूरदर्शी विवेकशीलता को जनमानस में उभारने का प्रयत्न किया जाय । चिन्तन, चरित्र, व्यवहार में उत्कृष्टता का अभिवर्धन, अंतःकरण में भाव-संवेदनाएँ जगाना ही अपने समय का युग-धर्म है ।

भगवान से अनुनय-विनय हेतु प्रार्थना की ही नहीं, पूजा-अर्चा की प्रथा भी चिरकाल से चली आ रही है । अब इन दिनों एक विशेष अवसर है कि आपत्तिकालीन परिस्थितियों में भगवान की पुकार कर ध्यान दिया जाय और अपनी मर्जी छोड़कर महाकाल के आमंत्रण पर उसी के सुझाये मार्ग पर चल पड़ा जाय । हनुमान और अर्जुन ने यही किया था । शिवाजी, राणाप्रताप, चन्द्रगुप्त, विवेकानन्द आदि से कितनी पूजा अर्चा बन पड़ी, इस सम्बन्ध में कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता । पर इतना सर्वविदित है कि उनने दिव्य चेतना के आह्वान को सुना और तदनुरूप कार्यरत हो गये । सम्भवतः उनकी पूजा, उपासना की आवश्यकता उनके इष्टदेव ने स्वयं कर ली होगी और अभीष्ट वरदानों से इन सच्चे साधकों को निहाल कर दिया होगा । हम भी यदि उन्हीं का अनुकरण करें तो इसमें तनिक भी हर्ज होने या घाटा पड़ने जैसा कुछ भी नहीं है ।

इन दिनों दिव्य चेतना सेवाभावी सज्जनों के समुदाय को अधिक निश्चिन्त करने के 'मूड' में है । युग का मत्स्यावतार इन्हीं दिनों अपने नूतन कलेवर को विश्वव्यापी बनाने के लिए आकुल-व्याकुल है । अच्छा हो हम उसी की महती योजना में भागीदार बनें और अपनी मर्जी की पूजा-उपासना करके मनचाहे वरदान पाने की विडम्बना पर अंकुश ही लगाये रखें ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपासना की महत्ता एवं विधि-व्यवस्था

उपासना क्यों ?

प्रत्येक कार्य का कोई न कोई अधिष्ठाता जरूर है, परिवार के मुखिया का हाथ सारी गृहस्थी का नियंत्रण रखता है । मिलों, कारखाने की देखरेख के लिए मैंनेजर होते हैं। राज्यपाल प्रान्त के शासन की वागडोर संभालते हैं । राष्ट्रपति सम्पूर्ण राष्ट्र का स्वामी होता है । जिसके हाथ में जैसी विधि-व्यवस्था होती है उसी के अनुरूप उसे अधिकार भी मिले होते हैं । अपराधियों की दण्ड व्यवस्था, सम्पूर्ण प्रजा के पालन पोषण और न्याय के लिए उन्हें उसी अनुपात से वैधानिक या सैद्धान्तिक अधिकार प्राप्त होते हैं । अधिकार न दियें जायँ तो लोग स्वेच्छाचारिता छल, कपट और निर्दयता का व्यवहार करने लगें ।

इतना बड़ा संसार एक निश्चित व्यवस्था पर ठीक ठिकाने से चल रहा है । सूर्य प्रतिदिन ठीक समय से निकल आता है, चन्द्रमा नियत समय पर उगता और अस्त होता है, ऋतुयें अपना समय आते ही आती और लौट जाती हैं आम का बौर बसन्त में ही आता है, टेसू गर्मी में ही फूलते हैं, वर्षा तभी होती है जब समुद्र से मानसून बनते हैं । सारी प्रकृति ठीक व्यवस्था से चल रही है और इस सृष्टि की सीमा कहाँ है, यह आज तक कोई जान नहीं पाया है। इतने बड़े संसार का नियमन और नियन्त्रण करने वाली सत्ता का नीम ही परमात्मा है । उसी से दृश्यमान जीवन आता है और सदा सर्वदा आता रहेगा ।

वह परमात्मा तत्व अणु-अणु का मूलाधार है । सब कुछ उसी से बनता और उसी से गतिशील होता है वह परमात्मा अणु-अणु में परिव्याप्त है, घटघट में निवास कर रहा है । कोई भी स्थान उससे रिक्त नहीं है । सभी स्थानों पर वह सदा सर्वदा उपस्थित रहता है और सबके अस्तित्व का भी वही कारण है ।

चूँकि परमात्मा सर्वव्यापी है इसलिये वह मनुष्य में भी हुआ । मनीषियों का अनुभूत सत्य यह है कि अन्ततः परमात्मा ही सबकुछ है । हम स्वयं भी ईश्वर के ही अंश हैं । हमारा आत्मा भी परमात्मा का एक अंश मात्र है । उसे जो कुछ शक्ति और प्रतिभा प्राप्त है वह ईश्वर की ही विभूति है, जिसमें यह विभूति जितनी कम पड़ जाती है वह उतना ही दीनहीन बना रहता है । शक्ति का स्रोत जिस उद्गम से प्रवाहित होता है उसके साथ सम्बन्ध जोड़ लेने से सामान्य जीव को भी शक्ति का पुंज बनने में देर नहीं लगती । बिजलीघर के साथ जुड़े हुए पतले-पतले तार अपने भीतर इतनी शक्ति धारण कर लेते हैं कि उनके द्वारा सैकड़ों घोड़ों की शक्ति वाली मशीनें धड़धड़ाती हुई चलने लगती हैं। इनको स्पर्श करने वाले बल्ब अँधेरी रात को दिन जैसा प्रकाशमान बना देते हैं । बिजली घर से जब तक सम्बन्ध है तभी तक उन तारों में यह विभूति रहती है कि उनके स्पर्श से चमत्कार उत्पन्न हो सके जब यह सम्बन्ध कट जाता है, तारों को बिजली घर के विद्युत भण्डार की धारा का प्रवाह बनना रुक जाता है, तो फिर उनका कोई महत्त्व नहीं रह जाता । देखने में पहले जैसा लगने पर भी वे न प्रकाश उत्पन्न करते हैं और न मशीनें चला पाते हैं । तार का मूल्य बिजलीघर से सम्बन्ध होने के कारण ही तो था, वह टूट गया तो फिर उसकी महत्ता कहाँ स्थिर रह सकती थी ?

आत्मा को जब भी स्थायी बल प्राप्त करना होता है तब उसे वह उपलब्धि परमात्मा से ही मिली होती है । मोती समुद्र से ही निकलते हैं । उनका उपयोग कहीं भी किसी भी कार्य के लिए किया जा सकता है पर उनकी उत्पत्ति समुद्र के अतिरिक्त कहीं नहीं होती । इस प्रकार आत्मबल का वरदान भी परमात्मा से प्राप्त होता है । अन्धा लाठी के सहारे अपनी मंजिल पार करता है । जीव भी इस पाप-ताप के अन्धकार से भरे संसार से जीवन-लक्ष्य प्राप्त करने की यात्रा ईश्वर का अवलम्बन करके ही पूर्ण कर सकता है ।

परमात्मा समस्त उच्च शक्तियों और सम्भावनाओं का केन्द्र है । उसी भण्डार से आत्मा अपनी अभीष्ट वस्तुएँ उपलब्ध करता है । इसी अमृत को पीकर उसकी प्यास बुझती है । पपीहा तब तक तृषित ही रहता है तब तक उसे स्वांति नक्षत्र की वर्षा का जल नहीं मिलता । आत्मा भी तब तक अतृप्त ही रहता है जब तक उसे प्रभु की शरणागति प्राप्त नहीं हो जाती । नव-जात शिशु अपनी माता का पय पान करके ही जीवन धारण कर सकने में समर्थ होता है । मानवीय महानतायें भी परमात्मा के सानिध्य से प्राप्त होती हैं इसीलिए लौकिक सफलताओं को लेकर आध्यात्मिक विभूतियों एवं पारलौकिक उपलब्धियों के लिए, परमात्मा चेतना से आत्म चेतना के सान्निध्य सम्पर्क की व्यवस्था बनाना हर व्यक्ति के लिए आवश्यक एवं उपयोगी है ।

आत्मा को परमात्मा के साथ सम्बद्ध करने के लिए जिस प्रक्रिया पद्धति को अपनाना पड़ता है उसका नाम है उपासना । उपासना के द्वारा मनुष्य परमात्मा से जुड़ता है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और उससे वह प्रकाश प्राप्त करता है, शक्ति ग्रहण करता है । चन्द्रमा तब चमकता है जब उस पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है । सूर्य का प्रकाश जब उसे प्राप्त नहीं होता तो अमावस्या के दिन चन्द्रमा यथास्थान रहता है फिर भी उसका अस्तित्व लुप्त प्रायः हो जाता है । होते हुए भी न होने जैसी स्थिति उसकी रहती है । पृथ्वी के उतने भाग में दिन रहता है जितने भाग पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं । जितने भाग पर सूर्य की किरणें नहीं पड़ती उतने भाग में घोर अन्धकार छाया रहता है, वहाँ रात रहती है । यही बात आत्मा के सम्बन्ध में भी है, उस पर जब परमात्मा का प्रकाश पड़ता है तो वह उज्ज्वल और दीप्तिका भाव दीखता है और जब वह चमक बन्द हो जाती है तो मानव शरीर धारी एक निकृष्ट नर पशु के रूप में घृणित एवं निकम्मा अस्तित्व भाग ही दृष्टिगोचर होता है ।

जीव स्वयं तो निर्बल, तुच्छ है । उसे विशालता और महानता परमात्मा के सान्निध्य से ही उपलब्ध होती है । इसके लिए जो प्रयत्न करता है वही बुद्धिमान है । दूरदर्शिता की एकमात्र कसौटी यह है कि अपने सुदूर भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए भावना उठे, विचारण चले और क्रिया आरम्भ हो । सामान्यतया जानते, समझते और चाहते हुए भी वह नहीं हो पाता । पैर कदम-कदम पर डगमगाते हैं । विपन्नताएँ मार्ग रोककर खड़ी होती हैं, विभीषिकाएँ निराश करती हैं और सांसारिक आकर्षणों का जाल अपने बन्धन में कसकर बाँध लेता है । इस स्थिति में जीव अपनी शान्ति सन्तोष के लिए कुछ नहीं कर पाता । तो भी वह इन उपलब्धियों के लिए क्या किया जाय यह समझ ही नहीं पाता । फिर भी उसके लिए कोशिश तो करता ही है । प्रयत्न अज्ञानवश सही दिशा में न हों पर किये इसीलिए जाते हैं कि जीव अपनी निर्बलता और तुच्छता को दूर करें तथा अपने मूल अस्तित्व से एकात्म होकर आत्मशान्ति प्राप्त करें । संसार में व्यक्ति जो भी प्रयत्न करता है उनके मूल में यह आत्म शान्ति, आत्म सन्तोष का ही हेतु रहता है । कुतुबनुमा की सुई उत्तर की ओर मुँह करके ही स्थिर रहती है अन्यथा वह अस्थिर ही बनी रहेगी । स्थिरता तब आती है जब आधार का सही आश्रय मिल जाता है । आत्मा का लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति है---जब तक यह दिशा प्राप्त नहीं हो जाती तब तक अस्थिरता, उद्विग्नता, चंचलता एवं अशान्ति ही बनी रहती है । पर जब लक्ष्य की दिशा में पग उठने लगते हैं तब उस प्रयत्न का प्रत्येक चरण जीवात्मा के लिए शान्ति का सृजन करने लगता है । परमात्मा के जितने ही समीप हम पहुँचते हैं इतनी ही श्रेष्ठताएँ हमारे अन्तःकरण में उपजती तथा बढ़ती हैं उसी अनुपात से आन्तरिक शान्ति की भी उपलब्धि होती चलती है । इसी को उपासना कहा जाता है ।

आत्मा को परमात्मा के निकट पहुँचने पर वही बात बनती है जो गरम लोहे और ठण्डे लोहे के एक साथ बाँधने पर होती है । गरम लोहे की गर्मी ठण्डे में जाने लगती है और थोड़ी देर में दोनों का तापमान एक सरीखा हो जाता है । दो तालाब जब तक अलग-अलग रहते हैं जब तक उसके पानी का स्तर नीचा ऊँचा बना रहता है । पर जब बीच में नाली निकालकर उन दोनों को आपस में सम्बन्धित कर दिया जाता है तो अधिक भरे हुए तालाब का पानी दूसरे कम पानी वाले तालाब में चलने लगता है और यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक कि दोनों का जल स्तर समान नहीं हो जाता ।

उपासना के द्वारा आत्मा को परमात्मा से सम्बन्धित करने का प्रयास किया जाता है । कोई भी व्यक्ति जितने समय तक पूजा, अर्चना, स्तवन, भजन, जप, ध्यान कीर्तन आदि में निरत रहता है उतनी देर तक वह यही अनुभव करता है कि परमात्मा उसके पास है अथवा वह परमात्मा के निकट है । भजन पूजन अथवा तप कीर्तन करने के समय तक वह अपने हृदय अथवा अपनी चेतना में परमात्मा की समीपता अनुभव करता है । यों तो परमात्मा हर जगह, हर समय उपस्थित रहता है, ऐसा नहीं है कि वह उपासना काल में ही वह उपासक के समीप अथवा उपासक उसके समीप रहता हो और अन्य समय में नहीं । वह हर समय और हर एक के पास, हर स्थिति में कोई भी काम करते बना रहता है । वरन् सर्वकाल में सर्वव्यापक रहता है किन्तु सामान्य व्यक्ति हर समय उसके सानिध्य की अनुभूति नहीं कर सकता । यदि विशेष उपासना विधि से भिन्न भी अपने हर काम को परमात्मा को सौंप दे, हर काम उसी का जाने समझे और हर क्रिया को उपासना जैसी श्रद्धा एवं आस्था से करे तो मनुष्य के साधारण नित्य नैमित्तिक कार्य ईश्वर की उपासना के रूप में बदल जायें और उसी की तरह शान्ति, सन्तोष तथा आनन्द के पुण्यफल प्रदान करने लगें । यह विधि बहुत सरल एवं लाभप्रद होने पर भी बहुत ऊँची और दूर की बात है । जन साधारण का मनोविकास अभी इस स्तर तक नहीं पहुँच सका है ।

सर्वव्यापक परमात्मा की सर्वकर्मक उपासना के योग्य मनःस्थिति आने तक विशेष प्रकार से निर्धारित समय में उपासना करते रहना दैनिक जीवन के लिए तो मंगलमय है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही, सर्वकर्मक उपासक के योग्य मनोविकास प्राप्त करने के लिए भी आवश्यक है ।

मनुष्यचेतना एवं स्थूल पंच तत्वों के संयोग से बना है । मानवी अस्तित्व के इन दोनों घटकों को उचित पोषण एवं विकास की सुविधा दी जानी चाहिए । शरीरोपयोग में सारी शक्ति का लग जाना और बेचारी आत्मा को कुछ भी न मिलना ठीक कौरव-पाँडवों के बीच चलने वाले अनौचित्य जैसा है । पाँडव पाँच गाँवो की माँग अपने गुजारे के लिए कर रहे थे और सारा विशाल राज्य कौरवों को दे रहे थे, पर दुर्योधन सुई की नोंक के बराबर पृथ्वी देने को भी तैयार न हुआ । अन्ततः भगवान कृष्ण को महाभारत रचाने की व्यवस्था करनी पड़ी । हमारा अज्ञान एवं मोह दुर्योधन, दुःशासन की तरह सारी सामर्थ्य को शरीर सुख में ही खर्च करना चाहता है और आत्मा अर्जुन के लिये आधा घण्टा समय भी नहीं लगने देना चाहता । यह अनीति अन्ततः दुष्परिणाम ही उत्पन्न करेगी और आज जो शरीर हमारा एक मात्र लक्ष्य बना हुआ है वह भी चैन से न रह सकेगा।

लाभ को परखने की बुद्धि यदि हममें हो तो भी यह अनुमान लगाना कठिन नहीं होना चाहिये कि जितना श्रम शरीर को सुखी बनाने में खर्च किया जाता है उसका एक अंश भी यदि आत्म कल्याण में खर्च किया जाय तो परिणाम अत्यधिक उत्साहवर्धक निकल सकता है । जिन दूरदर्शी महामानवों ने अपना समय ईश्वर उपासना में लगाया उनके चरित्र और वृतान्त पढ़ने पर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि हम घाटे में नही रहे । तृष्णा और वासना दो पाटों की चक्की में पिसते रहने वालों कि तुलना में वे अधिक ही लाभान्वित रहे जिनसे ईश्वर का आश्रय ग्रहण करके उपासना के लिए श्रम किया और मनोयोग लगाया।

ऋषियों और सन्त भक्तों के जीवन इसके प्रमाण हैं । उन्होंने अपार आत्म-शान्ति पाई, अपने आशीर्वाद और वरदान से असंख्यों के भौतिक कष्ट मिटाये, अंधरे में भटकते हुओं को प्रकाश दिया और उन दिव्य विभूतियों के अधिपति बने जिन्हें ऋद्धि और सिद्धि के नाम से पुकारा जाता है । नाम गिनाने की आवश्यकता नहीं प्रत्येक गृही और विरक्त सन्त का जीवन चरित्र कसौटी पर कसा जा सकता है और देखा जा सकता है कि कोल्हू के बैल की तरह ढर्रे का नीरस जीवन बिताने की अपेक्षा यदि उन्होंने ईश्वर का आश्रय लेने का निर्णय किया तो कुछ घाटे में नहीं रहे ।

उन्होंने जो पाया वह कोई साधारण श्रमिक, व्यापारी, बुद्धि-जीवी प्राप्त नहीं कर सकता । कम लाभ की अपेक्षा अधिक लाभ का व्यापार करना बुद्धिमत्ता कही जाती है, फिर उपासना का आश्रय लेना क्यों दूरदर्शिता न मानी जायेगी? निःसन्देह यह उच्चकोटि की चतुरता कही जायगी कि हम शरीर के स्वार्थों का ध्यान रखने के अतिरिक्त आत्म कल्याण की भी आवश्यकता समझें और इसके लिए उपासना का आश्रय लेना आरम्भ करें । उसे नियमित दिनचर्या का अंग बनायें तो हर व्यक्ति उसके अनुपम लाभ प्राप्त कर सकता है ।

शरीर को नित्य स्नान कराना पड़ता है, वस्त्र नित्य धोने पड़ते हैं, कमरे में बुहारी रोज लगानी पड़ती है और बर्तन रोज ही माँजने पड़ते हैं कारण यह है कि मलीनता की उत्पत्ति भी अन्य बातों की तरह रोज ही होती है । एक बार की सफाई सदा का काम नहीं चला सकती । मन को एक बार स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन आदि से शुद्ध कर दिया जाये तो समाधान होने के बाद भी वह सदा उसी स्थिति में बना रहेगा ऐसी आशा नहीं की जानी चाहिए ।

अभी आकाश साफ है, अभी उस पर धूलि, आँधी, कुहरा, बादल छाने लगे तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं । एक बार का समझा समझाया हुआ मन सदा उसी निर्मल स्थिति में बना रहेगा इसका कोई भरोसा नहीं । मलीनता, शरीर वस्त्र, बर्तन, कमरे आदि को ही आये दिन गंदा नहीं करती मन को भी प्रभावित, आच्छादित करती है अतः अन्य सब मलिनताओं के निवारण की तरह मन पर छाने वाली मलीनता का भी नित्य परिष्कार आवश्यक एवं अनिवार्य मानकर चलाया जाय और उस परिशोधन को नित्य कर्मों में स्थान दिया जाय, उपासना का यही प्रयोजन हो ।

प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को मन की जीवन की स्वच्छता को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानना चाहिए और उसका साधन जुटाने के लिए उपासना का अवलम्बन लेना चाहिए । मन असीम क्षमताओं का भण्डार है वह यदि मलीनता से भर दिया जाय तो हमें अपार क्षति उठानी पड़ेगी । दाँत साफ न किया जाय तो उनमें कीड़ा लग जायेगा और मुँह से बदबू आयेगी । शरीर को स्नान न करायें तो चमड़ी पर जमा हुआ मैल अनेक बीमारियाँ पैदा करेगा ।

सफाई अपने आप में एक आवश्यक कर्म है , मेहतर धोबी, कहार जैसे अनेक वर्ग इन्हीं कामों में जुटे रहते हैं । साबुन, फिनायल बनाने की फैक्टरियों से लेकर दन्त मंजनों तक के विशालकाय कारखाने गंदगी के निराकरण के साधन बनाने में ही लगे रहते हैं । मन इन सबसे ऊपर है यदि उस पर निरन्तर चढ़ते रहने वाली मलीनता की उपेक्षा की गयी तो वह बढ़ते-बढ़ते इतनी अधिक हो जाएगी कि हमारा अन्तरंग ही नहीं बहिरंग जीवन भी अव्यवस्थाओं, अस्त व्यवस्थाओं और अवांछनीयता से भरा-घिरा दीखेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपासना को नित्य कर्म में सम्मिलित करने की आवश्यकता इसीलिए पड़ती है कि आन्तिरिक स्वच्छता का क्रम बिना व्यवधान के निर्वाध गति से चलता रहे । नित्य का अभ्यास ही किसी महत्त्वपूर्ण विषय में स्थिरता और प्रखरता बनाये रख सकता है । यदि पहलवान लोग नित्य का व्यायाम छोड़ दें, फौजी सैनिक परेड की उपेक्षा कर दें तो फिर उनकी प्रवीणता कुछ ही दिनों में अस्त-व्यस्त हो जायेगी । स्कूली पढ़ाई छोड़ने के बाद जिन्हें फिर कभी पुस्तकें उलटने का अवसर नहीं मिलता वे उस समय के सारे प्रशिक्षण भूल जाते हैं ।

आत्मोत्कर्ष में अभिरुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उपासना को नित्य क्रम में सम्मिलित करना ही चाहिये । यह नहीं सोचना चाहिये कि हम ईश्वरीय आदेशों का पालन करते हैं फिर उपासना की क्या जरूरत । लुहार, बढ़ई, मूर्तिकार आदि शिल्पी अपने श्रम और प्रयोजन में लगे रहते हुए भी यह आवश्यक समझते हैं कि उनके औजारों पर जल्दी-जल्दी धार धरी जाती रहे । नाई अपने काम में ठीक तरह लगा रहता है पर उस्तरा तो उसे बार-बार तेज करना पड़ता है । मन ही वह औजार है जिससे क्रिया-कलापों को ठीक तरह करते रह सकना सम्भव होता है । यदि भोंथरा होने लगे तो फिर कर्तृत्व का स्तर भी गिरने लगेगा । इसलिये जहाँ अन्य अनेक कार्यों में समय लगाया जाता है वहाँ मन की मलिनता को स्वच्छ करने और उसे प्रखर बनाने के प्रयास को भी नित्य का आवश्यक कर्तव्य माना जाना चाहिए । पेट की भूख बुझाने के लिए बार-बार भोजन करना पड़ता है । आत्मा की भूख बुझाने के लिए भी उसे उपासना का आहार बार-बार नित्य ही दिया जाना आवश्यक है ।

पुरुषार्थ की प्रखरता में उपासना अधिक सहायक होती है, उसे समय नष्ट करने वाली बाधा नहीं माना जाना चाहिए। पारलौकिक पुरुषार्थों में अधिक उत्कृष्टता लाने के लिए अपने समय का एक अंश उपासना में नियत रूप से लगाना चाहिए। धुले कपड़े पर टिनोपाल लगा देने से, लोहा करने से और भी सुन्दरता आ जाती है । निर्मल और उज्ज्वल जीवन क्रम रहते हुए भी यदि उपासना का अवलम्बन ग्रहण किया जायेगा तो उससे अपेक्षाकृत कहीं अधिक सुव्यवस्थित एवं समुन्नत जीवन का अधिकारी बना जा सकता है ।

उपासना में नियमितता लाना एवं प्रभाव पैदा करना तभी सम्भव होता है जब उसमें साधक की रुचि पैदा हो जाय रस आने लगे । यह जरा भी कठिन नहीं है । अपने लाभ में सबकी रुचि होती है । उपासनां का लाभ समझ में आ जाये तो रुचि न बढ़ने का कोई कारण नहीं रह जाता । इससे भी बढ़कर रस तब आता है जब साधक अपने इष्ट को अपने प्रियजन के रूप में अनुभव करने लगता है । प्रियजनों के पास बैठने का अपना आनन्द है । ईश्वर और जीव के बीच इतना अधिक घनिष्ठ आत्मभाव है जितना संसार के किन्हीं प्राणियों या सम्बन्धियों में नहीं पाया जाता। संसारी लोग प्रेम का मोल तोल करते हैं जिससे प्रयोजन सिद्ध होता है, प्रतिफल मिलता है, उससे दोस्ती निभाते हैं अन्यथा उपेक्षा एवं अवज्ञा करने लगते हैं, ईश्वर के बारे में ऐसी बात नहीं वह हमारा सच्चा प्रेमी है । निस्वार्थ भाव से हमारी पग-पग पर अपार सहायता करता है, उसने जो दिया है वह इतना अधिक है जितना सृष्टि के किसी प्राणी को नहीं मिला । ऐसे प्रियपात्र की समीपता में आनन्द ही आनन्द मिलना चाहिये । पति-पत्नी पास बैठकर आनन्द का लाभ ले सकते हैं । माँ, बेटे के बीच, मित्र-मित्र के बीच जो भावनात्मक आदान-प्रदान चलता है, उससे दोनों ही पक्ष उल्लसित होते हैं । फिर सच्चा प्रेमी, सच्चा मित्र, सच्चा सहयोगी परमेश्वर यदि पास में बैठे तो किसको आनन्द एवं उल्लास प्राप्त न होगा ? उपासना एक आनन्द विभोर कर देने वाली भावनात्मक प्रक्रिया है, उसे यदि सही ढंग से अपनाया जा सके तो उपासक उतने स्वर्णिम क्षणों में आनन्द और उल्लास से ओत-प्रोत ही रह सकता है ।

हमें यह जानना चाहिए कि उपासना का प्रयोजन ईश्वर और जीव जैसे चेतन तत्वों में समीपता एकता की स्थापना करना है इसके लिए भावनात्मक माध्यम का प्रयोग अनिवार्य रूप से आवश्यक है उपासना के साथ-साथ भावना को अविच्छिन्न रूप से जुड़ा ही रहना चाहिए । कर्मकाण्ड को शरीर और भावना को प्राण कहा जा सकता है । शरीर और प्राण दोनों को मिलाकर ही एक समग्र व्यक्तित्व विनिर्मित होता है । इसी प्रकार सजीव उपासना वही कहला सकती है, जिसमें पूजा प्रयोग के साथ-साथ स्नेह की अभिव्यंजना भी जुड़ी हुई हो । उल्लास इस अभिव्यंजना पर ही निर्भर है । जिनके मन नहीं मिलें केवल शरीर ही समीप है, उन्हें मिलने का आनन्द आयेगा ! किन्तु यदि भावनाएँ प्रबल हैं तो शरीर के दूर रहते हुए भी मन उत्साह से भरा रहता है और कल्पना के माध्यम से भी मिलन-सुख उपलब्ध होता रहता है । इस तथ्य को भुलाकर जो लोग पूजा-पत्री का कर्मकाण्ड मात्र पूरा करते रहते हैं और भावनात्मक अभिव्यंजना का समन्वय नहीं करते उन्हें ही मन न लगने की, आनन्द न आने की शिकायत रहती है । अन्यथा वे क्षण तो हर्षोल्लास से भरे हुए ही होने चाहिए । इस सम्बन्ध में बरती गई उपेक्षा ही वह भूल है जिसके कारण उपासना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक बोझिल प्रक्रिया मात्र बनकर रह जाती है और आरम्भिक उत्साह शिथिल होते ही कितने ही लोग उसे छोड़ बैठते हैं। यदि प्रारम्भ से ही वस्तुस्थिति का ध्यान रखा जाय, सजीव उपासना क्रम अपनाया जाय, भावनात्मक तत्परता का समावेश रखा जाय तो एक बार इस आनन्द का रसास्वादन करने के उपरान्त उपासना को छोड़ने का कोई नाम भी न ले ।

उपासना एक ऐसे वटवृक्ष का बीज है, जिसकी छाया, पल्लव, पुष्प, फल और विशालता से सभी का सब प्रकार से हित होता है । ईश्वर की समीपता का लाभ उठाकर जीव अपनी शक्ति सामर्थ्य को अनंत गुनी बढ़ा सकता है और महापुरुष की, भूदेव की, भूमिका सम्पादित कर सकता है । ईश्वर का सान्निध्य, अनुग्रह प्रकाश और अनुदान जिसने प्राप्त कर लिया उसे और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता । इस उपलब्धि के फलस्वरूप क्या मिलता है, उसे वाणी से कहना और लेखनी से लिखना पर्याप्त नहीं, उसे तो अनुभव करके ही देखना चाहिए ।

सार्थक उपासना के मर्म

उपासना का मुख्य उद्देश्य सीमित आत्मचेतना को सर्वव्यापी, सर्वसमर्थ परमात्म चेतना से जोड़ना है । इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के पूजा अर्चना के विधिविधान प्रचलित हैं । उन सभी की पूजा के ब्रह्मोपचार की पद्धित का आधार प्रायः एक ही होता है । किसी प्रतिमा के आधार पर भगवान को समीप विराजमान अनुभव करना, उसके स्वागत सत्कार की व्यवस्था करना, उसका नाम बार-बार रटना, गुणानुवाद करना, और कुछ समर्पण करना । इन थोड़े से शब्दों में हर प्रकार की भारतीय उपासना पद्धति का समावेश माना जा सकता है, साकार और निराकार दोनों की पूजा करने का स्वरूप प्रायः यही है । ईश्वर को साकार मानकर उसकी प्रतिमा स्थापित करने वाले रोली, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, आरती आदि से पूजन करते हैं, निराकार मानने वाले चित्र अथवा प्रतिमान रखकर ध्यान में प्रकाश आदि का कोई रूप बनाते हैं । अग्निहोत्र भी एक तरह की मूर्ति पूजा है । ईश्वर को अग्नि रूप से स्थापित कर वेद मन्त्रों से उसकी स्तुति करते हुए घृत हविष्य आदि की आहुतियाँ देना एक प्रकार से भोग लगाना ही है ।

पूजा पद्धतियों के आकार-प्रकार में ब्रह्म स्वरूप में अन्तर हो सकता है, पर मूल तथ्य एक ही है । हर उपासक को मिलते-जुलते क्रिया-कलाप ही अपनी पूजा प्रक्रिया में रखने पड़ते हैं । सुविधा, रुचि और परम्परा के अनुरूप यदि कुछ अन्तर पड़ता हो तो हर्ज नहीं, हर पद्धति निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुँचा सकती है, यदि उसे भावनात्मक अभिव्यंजना में समाविष्ट रखा गया है ।

पदार्थों, प्रक्रियाओं, हलचलों का प्रभाव मन पर पड़ता है, इसलिए पूजा, उपचार की प्रक्रिया को आवश्यक माना गया है । हलचलें हमारा ध्यान भगवान की उपस्थिति और उसकी समीपता का अनुभव कराती हैं, इसलिये पूजन बन्धन के उपकरण काम में लाये जाते हैं । ईश्वर का इन अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से प्रभावित या प्रसन्न नहीं होता । इनकी उन्हें आवश्यकता भी नहीं । उपचारों का प्रयोजन मन में भगवान की समीपता की अनुभूति होना है । जिस पूजा से साधक को ईश्वर की समीपता जितनी अधिक अनुभव होती हो उतनी ही सफल माना जायगा ।

कई बार अस्वस्थता अथवा साधनहीन एकाकी जीवन होने की स्थिति में अथवा उच्च भूमिका के विकसित होने पर ध्यान द्वारा मानसिक पूजन करना पड़ता है । इससे भी पूजा प्रक्रिया का लाभ मिल जाता है । उपचार पदार्थों के न होने पर भी भावनात्मक पुरुषार्थ द्वारा मन पर ईश्वर की समीपता की अनुभूति यदि सीमित की जा सके तो वह ध्यान साधना की पूजा प्रक्रिया का प्रयोजन पूरा कर देती है । उपचार एवं कर्मकाण्ड का अपना महत्त्व है । किन्तु कर्म में उसे सम्मिलित रहना ही चाहिए, पर निरीक्षण यह भी करते रहना चाहिए कि समीपता की भावनात्मक अनुभूति हो रही है या नहीं ? इस अनुभूति पर ही उपासना का मूल प्रयोजन सिद्ध होना निर्भर है ।

उपासना काल में प्रयत्न किया जाना चाहिए कि पूजा में प्रयुक्त होने वाला हर पदार्थ, हर क्रिया-कलाप, हर विधान हमारे अन्तःकरण पर ईश्वर की समीपता एवं मधुर मिलन की सम्वेदना अनुभूति आस्वादित करने में सहायक हो । जैसे कोई सजीव प्रियजन पास में बैठा हो और उसे सचमुच ही उन क्रिया कृत्यों से दुलारा जा रहा हो यदि ऐसी मान्यता और भावना बन सकी तो समझना चाहिए कि उपासना का मूल प्रयोजन पूरा होने लगा । ईश्वर कहीं बहुत दूर रहता है, उसे पाने या बुलाने की अभी अपना सामर्थ्य कहाँ ? ऐसी निराशात्मक एवं अविश्वास मूलक भावना उपासना का प्रयोजन ही नष्ट कर देती है । मान्यता यह होनी चाहिए कि प्रस्तुत प्रतीक या प्रतिमा सचमुच साक्षात् ईश्वर है, वह एक सजीव व्यक्ति की तरह सामने प्रस्तुत है और जो कुछ किया जा रहा है उसे वह पूरी तन्मयता और रुचिपूर्वक सुन समझ अथवा ग्रहण कर रहा है । चुपचाप ग्रहण कर रहा हो सो बात नहीं, वरन् हमारी हर प्रक्रिया को स्वीकार करते हुए प्रसन्नता एवं सद्भावना भी व्यक्त कर रहा है । अपने प्रेम का वह अनेक गुना अनुदान भी प्रदान कर रहा है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसी भावना एवं मान्यता जितनी स्पष्ट एवं तीव्र होगी उसी अनुपात से हमारी उपासना प्रखर होगी और प्रतिफल उतनी ही उत्साहवर्धक होगा । भाव भरी पूजा पद्धति साधक के अन्तःकरण को पुलकित कर देती है । अपनी भक्ति भावना की प्रखरता--भगवान् की मधुर मुस्कान बनकर हमारे साथ हास विलास भरा प्रेमालाप करने लगती है और अनुभव होता है कि भक्त और भगवान दोनों अति निकट होकर एक अनिवर्चनीय आनन्द सागर में निमग्न हो रहे हैं ।

उपासना का सफल स्वरूप यही है । क्रिया कृत्यों के साथ भावना का समन्वय करने में उसमें सजीवता आती है । आरम्भ में ऐसा न हो तो भी चिन्ता की बात नहीं । मन का स्वभाव क्रीड़ा कौतुकों में लगने का है । उसकी दौड़ बहिर्मुखी है । अन्तर्मुखी--एकाग्र होने में उसे काफी अड़चन लगती है इसलिए आना-कानी भी बहुत करता है । किसी की प्रेरणा से उत्पन्न हुआ आरम्भिक उत्साह जब तक रहता है, तब तक तो मन लगता है पर जैसे ही वह आवेश शिथिल हुआ कि उछट जाता है और यदि मनोबल मजबूत न हुआ तो उसे छोड़ बैठने की नौबत आ जाती है । इस स्थिति से बचना ही उचित है जब शिथिलता आने लगे तो हठपूर्वक मन को उसमें लगाना चाहिये ।

कृषि कार्यों में लगाये जाने पर अल्हड़ बैल आरम्भ में काफी परेशान करता है । नया घोड़ा तांगे में चलने को, सवार को पीठ पर बिठाने को कहाँ तैयार होता है ? उन्हें बलपूर्वक काम में जोता जाता है । घोड़े को लगाम लगाई जाती है और चाबुक से सीधा किया जाता है । बैल की नाक में छेद कर रस्सी पहनाई जाती है और डंडों से डराकर काम कराया जाता है । बाजीगर रोज बन्दरों को सिखाते हैं, सरकस वाले हाथी, शेर, आदि को सधाते हैं । उसमें उन्हें काफी चतुरता और कड़ाई का प्रयोग करना पड़ता है । मन के साथ ही यह रीति-नीति काम में लानी पड़ती है ।

उसके साथ जबरदस्ती न की जाय तो आरम्भिक दिनों में वह उपासना जैसे रूखे प्रसंग को ग्रहण करने से इंकार ही करने लगता है । यदि उसकी बात मान ली गई तो फिर भविष्य में किसी ऐसे ही प्रसंग पर उसे झुका लेना और कठिन हो जाता है । अतएव मन के असहयोग के आगे हमें झुकना नहीं चाहिए वरन् बलपूर्वक तब तक उसे निर्धारित दिशा में जोते ही रहना चाहिये जब तक कि वह उसका अभ्यस्त न हो जाय । मन की एक अच्छी विशेषता यह भी है कि वह जिस बात का अभ्यस्त हो जाता है फिर उसे सहज छोड़ता नहीं । हानिकारक व्यसनों और दुर्गुणों को जब वह मजबूती से पकड़ बैठता है तो कोई कारण नहीं कि उपासना जैसे श्रेय साधन को सदा सर्वदा निबाहते रहने के लिए तत्पर न हो जाय । कठिनाई आरम्भिक दिनों की ही है । इससे जब तक स्थिति अनुकूल न हो जाय तब तक उस दिशा में जंगली जानवरों को सधाने सिखाने के समय बरती जाने वाली चतुरता एवं कड़ाई का हमें अनवरत प्रयोग करते रहना चाहिए ।

उपासना में मन इसलिए नहीं लगता कि उसे सामान्य जीवन क्रम से भिन्न, कोई बैगार जैसी चीज समझा जाता है । उसे अपने नैमित्तिक कार्यों में सम्मिलित, आवश्यक, अनिवार्य नहीं माना जाता । मनुष्य का सहज स्वभाव है कि जो कार्य उसके जीवन क्रम में रमे नहीं होते अथवा जिनका वह अभ्यस्त नहीं होता उनके करने में वह खिन्नता ही अनुभव करता है । यहाँ तक कि रोजमर्रा के बँधे टके कामों में भी यदि कोई काम आकस्मिक आवश्यकतावश बढ़ जाता है तो वह उसे करता भले ही है, किन्तु एक बेगार, एक बोझ की तरह ।

यही नियम उपासना कि विषय में भी लागू रहता है । अतएव उपासना जीवन-क्रम से भिन्न किसी विशेष कर्तव्य की भाँति नहीं, जीवन-क्रम में एक अभिन्न अंश की भाँति करनी चाहिए । उपासना जब जीवन का एक आवश्यक अंग बन जाती है तो उसकी पूर्ति करने में वैसी ही तृप्ति होती है जैसी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति में । जीवन का अंग बनी उपासना को जब तक पूरा नहीं कर लिया जाता तब तक हृदय में उसी प्रकार की छटपटाहट रहती है जैसे किसी प्रियतम से मिलने की इच्छा में । उपासना मुख्य जीवन का एक अभिन्न अंग है उसे इसी रूप में ग्रहण करना चाहिए । उपासना को किसी विशेष कर्तव्य के रूप में ग्रहण करने से भिन्नता का भाव रहता है । पूरे समय यह विचार घेरे रहता है कि मैं कोई विशेष काम अंजाम दे रहा हूँ, जिसके कारण उसमें एकाग्रता प्राप्त नहीं हो पाती, जिसके अभाव में उसमें अपेक्षित आनन्द की उपलब्धि नहीं होती। स्वाभाविक है कि जिस कार्य में अरुचिपूर्ण निरानन्दता रहती है वह देर तक नहीं चल पाता, और यदि खींचतान कर चलाया भी गया तो उसमें किसी बड़े फल की अपेक्षा नहीं की जा सकती ।

इस दृष्टि से उपासना को आहार एवं विश्राम की तरह ही व्यवस्थित, नियमित बनाने का आग्रह तत्वदर्शी करते रहे हैं । उपासना में मन स्वाभाविक रूप से लगे तथा अन्तरंग क्षमताओं के संयोग से साधक उसका अधिक लाभ उठा सके, इसके लिए कुछ नियम है । तीन महत्त्वपूर्ण नियमों का उल्लेख यहाँ किया जाता है ।

प्रथम उपासना की सुनिश्चित मात्रा । उपासना अन्तःकरण का आहार उसके व्यायाम जैसी है । व्यायाम अथवा आहार का क्रम कभी अधिक, कभी कम रहे तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसका ठीक-ठीक लाभ नहीं मिल सकता । अपनी शक्ति एवं रुचि के अनुसार न्यूनतम मात्रा निश्चित करके उन्हें नियमित रूप से प्रारम्भ किया जाय, तथा फिर क्रमशः बढ़ाया जाय तो निश्चित रूप से उल्लेखनीय लाभ प्राप्त किया जा सकता है । उपासना के सम्बन्ध में भी यही है । प्रारम्भ में थोड़ी ही सही नियमित उपासना प्रारम्भ की जाय । रुचि बढ़ने के साथ-साथ उसकी मात्रा बढ़ाई जाय यही उचित है ।

दूसरा नियम है नियत समय । नियत समय पर जो भी कार्य लगातार किए जाते हैं, उनके प्रति मनुष्य में विशेष जागरुकता उत्पन्न हो जाती है । भोजन के नियमित समय पर भूख लग आना, नशे का समय होते ही तलब लगना आदि इसके प्रमाण हैं । नियत समय पर नित्य उपासना करने से शरीर के अवयवों से लेकर अन्तः चेतना की परतों तक उस समय उपासना के अनुकूल एक लहर पैदा होती है, जो साधक को उपासना में तल्लीन होने में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होती है ।

तीसरा नियम है निश्चित स्थान की पूजा का स्थान निश्चित रखना भी बड़ा लाभदायक है । हर क्रिया के समय शरीर से विशेष तरह के विकिरण होते हैं । उनसे आसपास का क्षेत्र प्रभावित संस्कारित होता रहता है । उसके प्रभाव से उसी प्रकार की धारायें सूक्ष्म जगत में भी आकर्षित होकर वहाँ एकत्रित होती हैं जहाँ एक ही प्रकार की प्रक्रिया लम्बे समय तक चलती रहती है, वहाँ उस तरह के सूक्ष्म संस्कार अधिक सबल हो जाते हैं । तीर्थों की स्थापना इसी आधार पर होती रही है । निश्चित पूजा स्थल भी घर के अन्दर एक तरह का तीर्थ स्थल बन जाता है, जहाँ पहुँचते ही मनुष्य में दैवी प्रेरणा प्रवाह जाग्रत होने लगते हैं ।

अस्तु साधना में नियम मात्रा, नियत स्थान तथा नियत स्थान की मर्यादा बनाये रखने के लिए प्रयास किया जाना चाहिए । यदि मजबूरी वश वैसा न हो सके तो इसका यह अर्थ नहीं कि उपासना की ही न जाय । उसे छोड़ना तो चाहिए ही नहीं । यात्रा में व्यस्तता, विशेष प्रसंगों में रोग की स्थिति आदि में भी उपासना का अपना क्रम किसी न किसी रूप में चलाते ही रहना चाहिए । व्यवस्थित साधना न बन पड़े तो मानसिक रूप से ही उसकी पूर्ति कर लेनी चाहिए । मजबूरी में जितनी उपासना छूट जाये, उसे अपने ऊपर लदा हुआ कर्ज मानकर उसे बाद में पूरा करके ऋण मुक्त होने का प्रयास किया जाना चाहिए । परन्तु यही बात बराबर ध्यान में रखनी चाहिए कि उपरोक्त आधारों पर की गई उपासना सामान्य की अपेक्षा अनेक गुनी फलदायिनी सिद्ध होती है, अस्तु यथा साध्य उपासना को करना चाहिए।

ईश्वर की उपासना का वास्तविक प्रतिफल अन्तर में स्थायी, सुख, शान्ति और सन्तोष की वृद्धि होना माना गया है । यदि ऐसा नहीं होता तो मानना होगा कि उपासना के स्वरूप में कोई कमी चल रही है ।

यहाँ पर उपासना के स्वरूप से आशय उपासना की विधि, सामग्री अथवा उसके स्थान आदि से नहीं है । उसका तात्पर्य उस मनोभाव से है, जो उपासना के आगे-पीछे उपस्थित रहता है । उपासना में महत्त्व क्रिया-विधि अथवा साधन सामग्री का नहीं है । महत्त्व है--भावना का । यदि उपासक की भावना ठीक उपासना के अनुरूप है तो निश्चय ही वह फलवती होगी । फल भावना के आधीन है, उस क्रम अथवा उपकरण के आधीन नहीं । मन्दिर का एक पुजारी दोनों समय जीवन भर आरती पूजा करता रहता है पर उसका उसे कोई प्रतिफल नहीं मिलता । उसके जीवन का स्तर वही बना रहता है । उसके मानसिक विकास में कोई प्रगति नहीं होती । उसकी अशान्ति और असन्तोष और आत्मिक अभाव ज्यों का त्यों बना रहता है । वह ठीक वैसा ही आदमी एक लम्बी अवधि के बाद में भी बना रहता है, जैसा कि वह पूजन क्रिया में आने से पूर्व था ।

एक पुजारी दस-बीस वर्ष और कभी-कभी आजीवन तक मन्दिर में पूजा आरती करता रहता है । किन्तु उसे उसका वह फल नहीं मिलता जो उपासना के परिणाम स्वरूप मिलना चाहिए । इसका एक ही कारण है वह यह है कि उसकी उस क्रिया में वास्तविक उपासना की भावना नहीं होती । उसकी भावना मन्दिर के अधिकारियों की नौकरी करने की होती है । अस्तु वह नौकर मात्र ही रह जाता है-- उपासक नहीं हो पाता ।

इस बात को एक श्रमिक और एक पहलवान के उदाहरण से भी समझा जा सकता है । दोनों शारीरिक श्रम करते हैं । पसीना बहाते हैं शारीरिक श्रम का प्रतिफल शारीरिक विकास ही होता है । पर मजदूर मेहनत करता-करता घिस जाता है । उसका शरीर क्षीण हो जाता है । उधर पहलवान उसी शारीरिक श्रम से शारीरिक विकास की ओर बढ़ता है । इसका एक मात्र कारण भावना के अन्तर्गत निहित है । मजदूर जब मेहनत करता है तब उसकी भावना अजीविका के लिये किसी की मजदूरी करने की रहती है और मल्ल जब व्यायाम के रूप में शारीरिक श्रम करता है तो उसकी भावना शारिरिक विकास की ओर प्रगति करने की रहती है । इसी भावना के कारण मजदूर का शरीर क्षीण होता है और पहलवान का विकसित ।

जो उपासक दीन, दुःखी, दरिद्र अथवा हीन दिखाई दे, उसके विषय में निःसंकोच समझ लेना चाहिये कि इसकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपासना में आत्म प्रवंचना मिली है । इसकी वंचक उपासना ने ही इस दशा में भेजा है । अन्यथा उपासना का फल है--तेजस्विता, औजस्विता, सबलता, सम्पन्नता आदि का दिव्य गुण जो हर साधक में सहज ही बढ़ते रहना चाहिए। उपासना की सफलता बहुत अंशों में श्रद्धा एवं विश्वास पर भी निर्भर करती है । जिस प्रकार जड़ जगत में पंच तत्वों का सुनिश्चित आधार है, इन्हीं के हेर-फेर से विभिन्न वस्तुयें उत्पन्न होती, बढ़ती और जरा जीर्ण होकर नष्ट होती हैं, उसी प्रकार श्रद्धा, विश्वास के आधार पर भावनाओं का निर्माण होता है ! यह भावनायें और मान्यताएँ ही चेतन जगत में विविध विधि सृजनात्मक ताने-बाने बुनती हैं । श्रद्धा और विश्वास अपने आप में इस सृष्टि के महत्तम शक्तिस्रोत हैं । इन्हीं के आधार पर व्यक्ति और पदार्थों के साथ हमारे सम्बन्ध जुड़े हुए हैं । आशा और उत्साह इन्हीं पर निर्भर है । सृजनात्मक प्रेरणा यही उत्पन्न करते हैं । भविष्य का निर्माण और निर्धारण इन्हीं के आधार पर सम्भव होता है । यदि यह दोनों तत्व चेतना क्षेत्र से अलग हटा दिये जायें तो फिर यह जीवन, जीवन कहलाने योग्य ही न रह जायेगा ।

श्रद्धा, कल्पना को नहीं उस मान्यता, आस्था एवं दृष्टि को कहते हैं, जो आत्मानुभूति जैसे खरे आधार पर प्रमाणित होती है और जिसके असंख्य प्रमाण सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक के इतिहास में पग-पग पर भरे पड़े हैं । श्रद्धा एक सजीव शक्ति है जिसका आरोपण जहाँ भी किया जाय वहीं अभिनव चेतना उपज पड़ती है । आग को जिस वस्तु में भी लगा दिया जाय वही गरम और चमकीला हो जाती है । श्रद्धा का आरोपण भी व्यक्ति अथवा पदार्थ पर किया जाय वह दूसरों के लिये न सही उस आरोपण करने वाले के लिए तो दिव्य सत्ता से परिपूर्ण बन ही जाती है । देव आस्था का यही स्वरूप है ।

निर्जीव प्रतिमाओं को देवभाव से देखने पर उनमें सचमुच देवत्व उत्पन्न हो जाता है और वे उस श्रद्धालु के लिए उसकी श्रद्धा के अनुरूप फल देने लगती है । ईश्वर के बारे में निर्धारित हमारी श्रद्धा उसे हमारे सामने भक्त के बस में बसे हुए भगवान का एक घटक बनाकर प्रस्तुत कर देती है ।

श्रद्धा से बनी भूत की कल्पना प्राण घातक दुष्परिणाम उत्पन्न करती है । भय और आशंकाओं से आतंकित लोग अपना अच्छा खासा स्वास्थ्य खो बैठते हैं । आत्म विकास और मनोबल के आधार पर चमत्कारी प्रतिफल उत्पन्न किये जाते हैं । यह सारे खेल श्रद्धा के ही हैं । साधना के सत्परिणामों की एक विशाल शृंखला है । अगणित साधक, अगणित प्रकार के सत्परिणाम साधक प्रयोगों के आधार पर प्राप्त करते हैं-- इसके मूल में उनकी श्रद्धा की शक्ति ही सन्निहित होती है । साधक अपने ही नाम रूप की साधना करके अपने ही जैसा एक छाया पुरुष निर्मित और सिद्ध कर लेते हैं । यह मनुष्य आकृति का देव बड़े-बड़े अनोखे काम करता है ।

यह रचना हमारी श्रद्धा द्वारा ही की गई होती है । अनेक देवताओं का सृजन इसी प्रकार होता है । अन्तःकरण में कौन दिव्य शक्ति कितनी, कहाँ कैसी है यह प्रश्न अलग है । यहाँ तो यह कहा, समझाया जा रहा है कि हमारी श्रद्धा अपनी सामर्थ्य से अपनी मान्यता आकृति, रुचि और प्रयोजन का एक स्वतंत्र देव विनिर्मित कर सकती है । यह देवता उतने ही समर्थ होते हैं जितनी हमारी श्रद्धा उन्हें बल प्रदान करती है । दुर्बल श्रद्धा से बने देव केवल आकृति मात्र का दर्शन देने में समर्थ होते हैं । वे कुछ अधिक सहायता नहीं कर सकते । पर जिनकी श्रद्धा प्रबल है उनके देव भी अद्भुत पराक्रम प्रस्तुत करते देखे जाते हैं ।

श्रद्धा और विश्वास का सम्बन्ध लेकर ही हमें अध्यात्म क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए । ईश्वर है, उसकी सत्ता विद्यमान है--उसका सान्निध्य प्राप्त किया जा सकता है और उसका प्रकाश मिल सकता है । यह विश्वास जितना ही प्रखर एवं स्पष्ट होगा उतनी ही सफलता हमारी साधना प्रस्तुत करेगी । कितना जप करने से, कितने दिन में, ईश्वर की कितनी कृपा मिल सकती है । इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व यह भी जानना होगा कि साधक की श्रद्धा में कितनी प्रखरता है ? यदि अश्रद्धा और अविश्वास से, उदास मन से, बेगार भुगताने की तरह कुछ पूजा पाठ किया जा रहा है तो उसका परिणाम भी लँगड़े-लूले जैसा होगा । बहुत दिन में थोड़ा-सा लाभ दिखाई देगा । छोटे से दीपक की लौ से जलपात्र बहुत देर में गरम होगा, किन्तु यदि आग तीव्र हो तो थोड़ी ही देर में पानी खौलने लगेगा । उपासना का क्रियाकृत्य पूरा कर लेना अभीष्ट परिणाम उत्पन्न नहीं करता । आवश्यकता श्रद्धा के समन्वय की है । यह समावेश जितना अधिक और जितना प्रखर होगा सत्परिणाम उतनी ही बड़ी मात्रा में और उतने ही शीघ्र दृष्टिगोचर होंगे ।

उपासना की सफलता के लिये हमें अपनी मनोभूमि को श्रद्धासिक्त करना होगा । ईश्वर के अस्तित्व, उसके स्वभाव और कर्तव्य पर वैसा ही विश्वास करना होगा जैसा कि हमें उसके ऊपर अथवा अपने साधन सहचरों पर करते हैं । भावनापूर्ण उपासना अपना प्रतिफल उत्पन्न किये बिना नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहती, इस तथ्य पर भी हमारी परिपूर्ण मान्यता होनी चाहिये और प्रयत्न यह किया जाना चाहिये कि अपना भावना-स्तर उपासना को प्रखर बनाने के अनुकूल बनता और बढ़ता चला जाय । अपने आपका निर्माण ही सबसे बड़ा, सबसे जटिल और सबसे झंझट का काम है । यदि उसे पूरा किया जा सके तो कोई छोटी सी भी उपासना पद्धति थोड़े दिनों में ही आशाजनक प्रतिफल उत्पन्न कर सकती है ।

पूजा उपासना का सही लाभ तभी मिल सकता है जब उसका आधार ठीक है--श्रद्धा परक है । प्रभु के प्रति अपने कर्तव्य के नाते वह किया जाय । इसके विपरीत यह समझना भूल है कि पूजा करना ईश्वर पर ऐसा अहसान करना है जिसके बदले में उसे हमारी उचित अनुचित मनोकामनायें पूरी करनी ही चाहिये । ओछे स्तर के लोग ऐसा ही सोचते हैं और इसी प्रलोभन से पूजा पत्री का ओंधा-सीधा ठाठ रोपते हैं । आधार ही गलत हो तो बात कैसे बने पार कैसे पड़े ? पूजा करने वालों से दोस्ती और न करने वालों से कुट्टी--यदि ऐसी रीनि-नीति अपनाने लगे तो फिर ईश्वर को समदर्शी कैसे कहा जा सकेगा ? फिर संसार में कर्तव्य और पुरुषार्थ की आवश्यकता क्यों रहेगी । यदि पूजा द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करके मनोकामनायें पूर्ण की जा सकती हैं तो फिर इतने सस्ते और सरल मार्ग को छोड़कर क्यों कोई कष्ट साध्य गति विधियाँ अपनाने को तैयार होगा ? यदि यह तथ्य सही होता तो मन्दिरों के पुजारी सर्व मनोरथ सम्पन्न हो गये होते और साधु पंडित, जो ईश्वर का ही झंडा उठाये फिरते हैं सर्वकामना सम्पन्न रहे होते । फिर उन्हें अभाव असंतोष क्यों सताता ? स्पष्ट है कि यह कथित पुजारी वर्ग सामान्य पुरुषार्थ परायण व्यक्तियों की अपेक्षा कहीं दीन-हीन दिखाई देता है । उनके हीन स्तर पर घटिया व्यक्तित्व को देखकर ही विचारवान लोगों को उपासना से अरुचि होने लगती है । उनकी दुर्गति का कारण उनका उपासना एवं ईश्वर सम्बन्धी विकृत दृष्टिकोण होता है ।

वास्तव में ईश्वर को चापलूसी पसन्द अपने द्वारा चढ़ाये, जाने वाले पदार्थों का लालची, अपनी प्रशंसा करने वालों की उचित अनुचित हर मान्यता पूरी करने वाला मानना, उसके गौरव को गिराना तथा उसकी व्यवस्था का खण्डन करना है । अपनी मनोकामना पूर्ति के लिए बार-बार आग्रह, पूजा-पत्री द्वारा उसके लिए दबाब डालने का प्रयास इस बात का प्रमाण है कि ऐसा करने वालों को ईश्वर की समझदारी तथा करुणा पर भरोसा नहीं है । यह सब श्रद्धा विश्वास के विपरीत अनास्था जनित स्वार्थपरता तथा शंकालु प्रवृत्ति के प्रतीक हैं । यह अनास्था एवं अविश्वास ही उपासना की सफलता कारण बनता है ।

यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या उपासना से मनुष्य की कामनापूर्ति की बात सर्वथा अनैतिक एवं असम्भव है ? बात ऐसी नहीं है । ठीक ढंग से की गई उपासना के प्रभाव से दुष्कर कार्य सुलभ होते देखे जाते हैं । परन्तु यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि किसी भी कामना की पूर्ति नहीं की जाती । परमात्मा कामनाओं की पूति ही नहीं उनका शोधन भी करता है । उचित कामनाओं की पूर्ति के लिए कोई न कोई मार्ग निकल आता है, अनपेक्षित रूप से सहयोग मिलने से लेकर अपनी स्वयं की क्षमता में अप्रत्याशित वृद्धि होने तक का कोई माध्यम उचित आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए बन जाता है । अनुचित आकांक्षाओं का शोधन परिष्कार ही सम्भव है । उनकी पूर्ति के लिए वह परम हितैषी कभी तैयार नहीं होता । नारद मोह का प्रसंग इस बात को प्रकट करता है । नारद जी ने अपनी सारी भक्ति की दुहाई देकर भी यह चाहा था कि उनका विवाह भगवान विश्वमोहिनी से करादें । किन्तु भगवान ने वह बात नहीं मानी--उन्हें लज्जित करके स्वयं कष्ट सहकर भी उनकी गलत आकांक्षा को निकाल ही फेंका । यह बात उपासना मार्ग के हर साधक के साथ लागू होती है । उसे आकांक्षा पूर्ति ही नहीं उनके परिष्कार की बात भी सोचनी होती है ।

साधक पूजा उपासना के लिए समुचित विधि-विधान तो अपनाये, लेकिन इससे आडम्बर न करे । असामान्य प्रक्रिया देखकर कोई उसकी प्रशंसा करता है, कोई आलोचना। कच्ची मनोभूमि पर इसकी प्रतिक्रिया हर्ष एवं अवसाद के रूप में होती है जो साधना मार्ग में बाधक है। आडम्बर के कारण कई बार साधक स्वयं अहंकारग्रस्त हो जाता है जो कि निश्चित रूप से अहितकर होता है ।

साधक की अनास्था एवं अविश्वास की स्थिति उसे किसी एक स्वरूप पर केन्द्रित नहीं होने देती । वह खिलौनों की तरह इष्ट की अदला-बदली करता है । ऐसा करने का अर्थ है कि साधक को एक ही सर्वव्यापी सत्ता पर भरोसा नहीं । ईश्वर के अलग-अलग रूपों में उसे अलग-अलग व्यक्तित्व बैठे हुए लगते हैं । कभी किसी को मनाने, कभी किसी को फुसलाने को प्रयास में उनकी मानसिक स्थिरता घटती है, चंचलता बढ़ती है अतः न तो उपासना ठीक से बन पड़ती है और न उसका लाभ ही मिल पाता है । अस्तु साधक को उपरोक्त अनेक मर्म समझने के साथ-साथ इष्ट के एक ही स्वरूप पर आस्था जमानी चाहिए । अन्य नाम और रूपों में भी उसी को समाविष्ट देखना चाहिए । भिन्नता की कल्पना कदापि नहीं करनी चाहिए । उपरोक्त तथ्यों को हृदयंगम करने वाले साधक उपासना के सभी प्रकार के लाभ सुनिश्चित रूप से पा सकते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुगम किन्तु महान उपासना प्रक्रिया

उपासना के अनेक विधि-विधान विभिन्न सम्प्रदायों में प्रचलित हैं । परन्तु चूँकि उसका लक्ष्य एक ही है इसलिए उनमें एक जैसे ही शाश्वत तथ्यों की झलक मिलती है । भारत ही नहीं विश्व की अन्य उपासनात्मक विधाओं का अध्ययन भी किया जाय तो मिलता है कि उन सबमें निम्न चरण किसी न किसी रूप में समाहित हैं । वे हैं--- (१)आत्मशुद्धि (२) प्रतीक पूजा (३) जप (४) ध्यान (५)प्रार्थना।

यह सभी प्रक्रियाएँ हर उपासना पद्धति में किसी न किसी रूप में जुड़ी रहती हैं । हर उपासक उपासना के लिए यथा साध्य शुद्ध एवं पवित्र होकर बैठता है, धुले वस्त्र पहनना, स्नान, आदि उसी के अंग हैं । अरब में पानी के कारण थोड़े जल से 'वजु' करने का विधान है, इसी प्रकार प्रतीक पूजा में, पूजा, उपवास, अग्नि, दीपक, अगरबत्ती आदि का उपयोग होता है इससे वातावरण में दिव्यता आती है । जप एवं ध्यान उस महत् चेतना से आत्म चेतना को जोड़ने के प्रमुख माध्यम हैं । नाम जप, मन्त्र जप, इष्ट का ध्यान, प्रकाश का ध्यान आदि इसी प्रक्रिया के अंग हैं । अन्त में कृतज्ञता ज्ञापन के प्रतीक प्रार्थना स्तोत्र पाठ, विसर्जन, अर्ध्यदान आदि भी हर उपासना विधि से जुड़े रहते हैं । उद्देश्य सभी के एक से हैं केवल ब्रह्मोपचार नाम आदि में अन्तर रहता है ।

उपासना के लिए एक और अनिवार्य शर्त है, वह है इष्ट का स्वरूप निर्धारण । पूजा, उपाचार एवं ध्यान में उसी को आधार मानकर चलना पड़ता है । ध्यान में प्रगाढ़ता एवं एकाग्रता लाने के लिए यह भी आवश्यक है । प्रस्तुत पद्धति में गायत्री उपासना को लेकर चला गया है यह किसी पूर्वाग्रह को लेकर नहीं किया गया है । लम्बे समय तक निष्पक्ष सर्वेक्षण एवं गम्भीर अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण तथ्यों के आधार पर लिया गया है । संक्षेप में उनका यहाँ उल्लेख किया जा रहा है ।

(१) गायत्री मन्त्र में परमात्म सत्ता का कोई नाम नहीं है, उसे 'तत्' अर्थात् 'वह' कहकर ही सबोधित किया गया है । अतः इष्ट का कोई भी नाम स्वरूप मानने वाला व्यक्ति इसे बिना अपनी आस्था डिगायें अपना सकता है--

(२) ईश्वर के नर रूप, नारी रूप अथवा इसमें साकार एवं निराकार का भी बन्धन नहीं है । साकार उपासक शक्ति आराधक माँ गायत्री के रूप में इष्ट को मान लेते हैं । निराकार उपासक उसे प्रकाश के स्रोत सविता के रूप में लेकर चलते हैं ।

(३) गायत्री मन्त्र में परमात्मा को गुण एवं भावनाओं के रूप में पहचानने तथा अंगीकार करने की प्रेरणा दी गयी है । उस महाशक्ति को अन्तःकरण में धारण करके उससे केवल अपनी ही नहीं, सभी की बुद्धि को सन्मार्गगामी बनाने का अनुरोध किया गया है । यह वह आधार है जिसके कारण यह मन्त्र मानव मात्र के लिए परम उपयोगी एवं वरण करने योग्य है ।

(४) मन्त्र विद्या के आचार्य एक मत से इसे सर्वश्रेष्ठ मन्त्र के रूप में स्वीकार करते हैं । इसमे शब्दों का गठन कुछ इस तरह का बन पड़ा है कि साधक पर एवं आसपास के स्थूल एवं सूक्ष्म वातावरण पर उसका अद्वितीय प्रभाव पड़ता है ।

(५) अनादिकाल से गुरु मन्त्र के रूप में गायत्री मन्त्र को ही मान्यता दी जाती रही है । अपनी कामना पूर्ति के लिए अन्य साधनायें करने वाले भी गायत्री का सम्पुट अवश्य लगाते रहे हैं, इसके बिना उनकी साधना निष्प्राण मानी जाती रही है ।

ऐसे ही अनेक तथ्यों के आधार पर विवेक यह स्वीकार करता है कि उपासना जगत की विविधताओं में एकता की अनुभूति कराने की क्षमता इसी महान उपासना पद्धति में है । इसीलिए दीर्घकालीन प्रयोग एवं शोध द्वारा इस दुरुह समझी जाने वाली उपासना को सर्वोपयोगी एवं सुगम रूप में गढ़ा एवं प्रचारित किया गया है । इस विधि का लाभ उठाने वालों की संख्या देश एवं विदेश में लाखों की संख्या पार करके करोड़ों तक जा पहुँची है ।

नियमित उपासना के लिए पूजास्थली की स्थापना आवश्यक है । घर में एक ऐसा स्थान तलाश करना चाहिए जहाँ अपेक्षाकृत एकान्त रहता हो, आवागमन और कोलाहल कम से कम हो ऐसे स्थान पर एक छोटी चौकी को पीत वस्त्र के सुसज्जित कर उस पर काँच से मढ़ा भगवान का सुन्दर चित्र स्थापित करना चाहिए गायत्री की उपासना सर्वोत्कृष्ट मानी गई है । इसलिए उसकी स्थापना को प्रमुखता देनी चाहिये । यदि किसी का दूसरे देवता के लिए आग्रह हो तो उस देवता का चित्र भी रखा जा सकता है । शास्त्रों में गायत्री के बिना अन्य सब साधनाओं का निष्फल होना लिखा है । इसलिये यदि अन्य देवता को इष्ट माना जाय और उसकी प्रतिमा स्थापित की जाय तो गायत्री का चित्र प्रत्येक दशा में साथ रहना चाहिये ।

अच्छा तो यह है कि एक ही इष्ट गायत्री महाशक्ति को माना जाय और एक ही चित्र स्थापित किया जाय । उससे एकनिष्ठ और एकाग्रता का लाभ होता है । यदि अन्य देवताओं की स्थापना का भी आग्रह हो तो उनकी संख्या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कम से कम रखनी चाहिए । जितने देवता स्थापित किये जायेंगे, जितनी प्रतिमाएँ बढ़ाई जायेंगी---निष्ठा उसी अनुपात से विभाजित होती जायेगी । इसलिये यथासम्भव एक अथवा कम से कम छवियाँ पूजा स्थली पर प्रतिष्ठापित करनी चाहिये ।

पूजा-स्थली के पास उपयुक्त अवस्था के साथ पूजा के उपकरण रखने चाहिए । अगरबत्ती, पंच-पात्र, चमची, धूपबत्ती, आरती जल गिरने की तश्तरी, चन्दन रोली, अक्षत, दीपक, नैवेद्य, घी, दियासलाई आदि उपकरण यथा-स्थान डिब्बों में रखने चाहिए । आसन कुसाओं का उत्तम है । चटाई से भी काम चल सकता है । आवश्यकतानुसार मोटा या गुद-गुदा आसन भी रखा जा सकता है । माला चन्दन या तुलसी की उत्तम है । शंख, सीपी, मूँगा, जैसी जीव शरीरों से बनने वाली माला निषिद्ध है । इसी प्रकार किसी पशु का चमड़ा भी आसन के स्थान पर प्रयोग नहीं करना चाहिये । प्राचीन काल में अपनी मौत मरे हुए पशुओं का चर्म वनवासी सन्त सामयिक आवश्यकता के अनुरूप प्रयोग करते होंगे । पर आज तो हत्या करके मरे हुए का चमड़ा ही उपलब्ध है । इसका प्रयोग उपासना की सात्विकता को नष्ट करता है ।

नियमित उपासना, नियत समय पर, नियत संख्या में, नियत स्थान पर होनी चाहिए । इस नियमितता से वह स्थान संस्कारित हो जाता है और मन ठीक तरह लगता है । जिस प्रकार नियत समय पर सिगरेट आदि की भड़क उठती है, उसी तरह पूजा के लिये भी मन में उत्साह जगता है जिस स्थान पर बहुत दिन से सो रहे हैं, उस स्थान पर नींद ठीक आती है । नई जगह पर अक्सर नींद में अड़चन पड़ती है । इसी प्रकार पूजा का नियत स्थान ही उपयुक्त रहता है । व्यायाम की सफलता तब है जब दण्ड बैठक आदि को नियत संख्या में नियत समय पर किया जाय । कभी बहुत कम, कभी बहुत ज्यादा, कभी सवेरे, कभी दोपहर को व्यायाम करने से लाभ नहीं मिलता ।

इसी प्रकार दवा की मात्रा भी समय और तोल को ध्यान में न रखकर मनमाने समय और परिमाण में सेवन किया जाय तो उससे उपयुक्त लाभ न होगा । यही बात अस्थिर संख्या की उपासना के बार में कही जा सकती है । यथा-सम्भव नियमितता ही बरतनी चाहिए । रेलवे की रनिंग ड्यूटी करने वाले, यात्रा में रहने वाले, फौजी, पुलिस वाले जिन्हें अक्सर समय-कुसमय यहाँ-वहाँ जाना पड़ता है, उनकी बात दूसरी है । वे मजबूरी में अपना क्रम जब भी, जितना भी बन पड़े रख सकते हैं । न कुछ से कुछ अच्छा । पर जिन्हें ऐसी असुविधा नहीं उन्हें यथासम्भव नियमितता ही बरतनी चाहिए । कभी मजबूरी की स्थिति आ पड़े तो तब वैसा हेर-फेर किया जा सकता है ।

पूजा उपचार के लिए प्रातःकाल का समय सर्वोत्तम है । स्थान और पूजा उपकरणों की सफाई नित्य करनी चाहिये । यहाँ तक हो सके नित्य कर्म से शौच स्नान आदि से निवृत्त होकर ही पूजा पर बैठना चाहिये । रुग्ण या अशक्त होने की दशा में हाथ-पैर, मुँह आदि धोकर भी बैठा जा सकता है । पूजा का न्यूनतम कार्य तो निर्धारित रखना ही चाहिये । उतना तो पूरा ही कर लिया जाय । यदि प्रातः समय न मिले तो सोने से पूर्व निर्धारित कार्यक्रम की पूर्ति की जाय । यदि बाहर प्रवास में रहना हो तो मानसिक ध्यान पूजा भी की जा सकती है । ध्यान में नित्य की हर पूजा पद्धित का स्मरण और भाव कर लेने को मानसिक पूजा कहते हैं । विवशता में ऐसी पूजा से भी काम चल सकता है ।

आसन पर बैठकर अपने शरीर और मन को पवित्र बनाने के लिये देहगत पाँच तत्वों को शुद्ध करने के लिए भूतशुद्धि की जाती है । इसे ही ब्रह्म सन्ध्या भी कहते हैं । सन्ध्या में पाँच कृत्य करने पड़ते हैं । (१) पवित्रीकरण (२)आचमन (३) शिखा-बन्धन (४) प्राणायाम (५) न्यास, इनका विधान बहुत सरल है--

(१) **पवित्रीकरण**– बाएँ हाथ से जल लेकर दाहिने हाथ से ढ़ककर, गायत्री मन्त्र पढ़कर उस जल को सिर तथा शरीर पर छिड़कें ।

(२) **आचमन**– जल भरे हुए पात्र में से दाहिने हाथ की हथेली पर जल लेकर तीन बार आचमन करें । आचमन के समय गायत्री मन्त्र पढ़े । तीन आचमनों का तात्पर्य गायत्री की ह्रीं-सत्य प्रधान, श्रीं--समृद्धि प्रधान और क्लीं--बल प्रधान शक्तियों का, मातृ दुग्ध की तरह पान करना है ।

(३) **शिखा-बन्धन**– आचमन के पश्चात् शिखा को जल से गीला करके उसमें ऐसी गाँठ लगानी चाहिए जो शिरा खींचने से खुल जाय इसे आधी गाँठ कहते हैं । गांठ लगाते समय गायत्री मन्त्र को उच्चारण करते जाना चाहिए । शिखा-बन्धन का प्रयोजन ब्रह्मरंध्र में स्थित शतदल चक्र की सूक्ष्म शक्तियों का जागरण करना है । जिसके शिखा स्थान पर बाल न हों अथवा सिखा न रखे हों वे जल से उस स्थान को स्पर्श करलें ।

(४) **प्राणायाम**– तीसरा नियम प्राणायाम है । वह इस प्रकार करना चाहिये ।

(अ) स्वस्थ चित्त से बैठिये, मुख को बन्द कर लीजिये, नेत्रों को बन्द या अधखुला रखिये, अब सांस को धीरे-धीरे नासिका द्वारा भीतर खींचना आरम्भ कीजिये । 'ओउम् भू

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भुर्वः स्वः' इस मन्त्र का मन ही मन उच्चारण करते चलिये । भावना कीजिये कि विश्वव्यापी, दुःखनाशक, सुख स्वरूप ब्रह्म की चैतन्य प्राण-शक्ति को मैं नासिका द्वारा आकर्षित कर रहा हूँ, इस भावना और इस मन्त्र के साथ धीरे-धीरे साँस और जितनी वायु भीतर भर सकें, भरिये ।

(ब) अब वायु को भीतर रोकिये और ''तत्सवितुर्वरेण्यं'' इस मन्त्र भाग का जप कीजिये । साथ ही भावना कीजिये कि ''नासिका द्वारा खींचा हुआ प्राण श्रेष्ठ है । सूर्य के समान तेजस्वी है । उसका तेज मेरे अंग-प्रत्यंग में भरा जा रहा है ।'' इस भावना के साथ पहले की अपेक्षा आधे समय तक वायु को रोके रखें ।

(स) अब नासिका द्वारा वायु को धीरे-धीरे निकालना आरम्भ कीजिये और ''भर्गो देवस्य धीमहि'' इस मन्त्र भाग को जपिये तथा यह दिव्य प्राण मेरे पापों का नाश करता हुआ विदा हो रहा है ऐसा मनन कीजिये । वायु को निकालने में प्रायः उतना ही समय लगना चाहिये जितना खींचने में लगा था ।

(द) जब भीतर की वायु बाहर निकल जावे तो जितनी देर वायु को भीतर रोक रखा था उतनी देर बाहर रोके रखें अर्थात् बिना सांस लिये रहें और ''धियो यो नः प्रयोदयात्'' इस मन्त्र भाग को जपते रहें । साथ ही भावना रखें कि ''भगवती वेद-माता गायत्री हमारी सद्बुद्धि को जाग्रत कर रही हैं ।''

यह क्रिया तीन बार करनी चाहिये जिससे काया के, वाणी के, मन के विविध पापों का संहार हो सकें ।

(५) **न्यास--** न्यास कहते हैं धारण करने को । अंग-प्रत्यंगों में गायत्री की सतोगुणी शक्ति धारण करने, भरने, स्थापित करने, ओत-प्रोत करने के लिए न्यास किया जाता है । गायत्री ब्रह्म-संन्ध्या में अँगूठा और अनामिका उंगली का प्रयोग प्रयोजनीय ठहराया गया है । अंगूठा और अनामिका अँगुली को मिलाकर विभिन्न अंगों का स्पर्श इस भावना से करना चाहिये कि मेरे अंग गायत्री शक्ति से पवित्र बलवान हो रहे हैं । अंग-स्पर्श के साथ निम्न प्रकार मन्त्रोच्चारण करना---

ॐ भू भुर्वः स्वः--मस्तक को । (२) तत्सवितुः--नेत्रों को । (३) वरेण्यं--कानों में । (४) भर्गोः--मुख को । (५)देवस्य--कंठ को । (६) धीमहि--हृदय को । (७) धियो योनः--नाभि को । (८) प्रचोदयात्--हाथ पैरों को--यह शरीर और मन और प्राण की शुद्धि के लिए किये जाने वाले पाँच प्रयोग हैं । इन्हें करने के बाद ही देवपूजन का कार्य आरम्भ होता है ।

देव पूजन में सबसे प्रथम धरती माता का, मातृभूमि का, विश्व वसुन्धरा का पूजन है । जिस धरती पर, जिस देश समाज में जन्म लिया है वह प्रथम देव है, इसलिए इष्टदेव की पूजा से भी पहले पृथ्वी पूजन किया जाता है । पृथ्वी पर जल, अक्षत्, चन्दन, पुष्प रखकर पूजन करना चाहिये ।

इसके बाद देव पूजन---इष्ट पूजन किया जाता है । जो साकार उपासना में विश्वास रखते हैं, वे गायत्री की मूर्ति या शीशे में मढ़ा हुआ चित्र सामने रखकर उसका धूप, दीप, गन्ध, अक्षत, पुष्प, ताम्बूल, पुंगीफल आदि वस्तुयें--जो उपलब्ध हों उनसे पूजन कर लें । जो निराकार उपासना पर विश्वास रखते हों वे चित्र या मूर्ति के स्थान पर अग्नि की स्थापना कर सकते हैं । धूप, अगरबत्ती, घृत का दीपक आदि की अग्नि को गायत्री का प्रतीक मानकर उसे प्रणाम करना चाहिये । गायत्री महाशक्ति के उस पूजा स्थान पर आगमन की भावना करते हुए आह्वान करना चाहिए । आह्वान के लिए कोई मन्त्र आवश्यक नहीं, प्रगाढ़ आत्मीय भावना के साथ महाशक्ति को पूजास्थल पर अवतरित होने की प्रार्थना करनी चाहिये ।

आह्वान के बाद आसन, जल, चन्दन, अक्षत्, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि समर्पित करना चाहिए । घर आए सम्माननीय अतिथि के सत्कार जैसा ही भाव रखा जाय । जो कुछ पूजन सामग्री सुविधा से एकत्रित हो सके उसे ही पूजन में भावना पूर्वक समर्पित करना उचित है । ध्यान रहे भगवान पदार्थों के भूखे नहीं हैं । किन्तु बिना किसी माध्यम के पूजा के भाव जगते नहीं, इसीलिए जो द्रव्य आसानी से उपलब्ध हो सकते हैं उन्हें पूजा उपचार के समय पहले से तैयार रखकर भावना सहित पूजन किया जाना चाहिए ।

पूजन के बाद जप किया जाता है । जप उपाँशु किया जाना चाहिए । अर्थात् ओंठ, जीभ कंठ आदि चले तो किन्तु शब्द पास बैठें व्यक्ति को भी सुनाई न दें । नियमित जप इसी ढंग से किया जाना चाहिए । अन्य समय चलते फिरते लेटे, बैठे, यात्रा के मध्य मानसिक जप चल सकता है ।

जप के समय भावना करना चाहिए कि मन्त्र शक्ति की तरंगे सारे शरीर संस्थान में फैल रही हैं । उन दिव्य तरंगों से शरीर, मन एवं अन्तःकरण निरोग, पुष्ट, शुद्ध, पवित्र एवं विकसित हो रहा है ।

जप के साथ-साथ ध्यान भी किया जाना चाहिए । साकार उपासक इष्ट की मूर्ति का ध्यान करें । उसके सामने स्वयं को शिशु रूप में अनुभव करें ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इष्ट को हँसता, मुस्कराता संकेत करता देखें । वह हमें बालक की तरह गोद में उठाकर स्नेह दुलार देता है, दिव्य पयपान कराता है ।

गायत्री उपासना में भगवान को माता के रूप में माना गया है । माता के प्रति बालक का प्रेम सबसे सरल और स्वाभाविक है । क्या मनुष्य, क्या मनुष्येत्तर, पशु-पक्षी, कीट-पतंग सभी अपने बच्चों को प्यार करते हैं । माता में तो वह प्यार और भी अधिक होता है । अन्य योनियों में तो बहुधा माता ही एक मात्र शिशु की संरक्षक एवं लाभ हानि होती है, पर माता का स्नेह उन सबसे ऊँचा, परम निस्वार्थ और त्याग-बलिदानों से भरा-पूरा होता है ।

''कुपुत्रो जायते क्वचिदपि माता कुमाता न भवति'' पुत्र कुपुत्र हो जाता है पर माता, कुमाता नहीं होती । इस उक्ति के आधार पर माता का रिश्ता इस संसार में सर्वोपरि प्रेम का प्रतीक माना गया है । अतएव ईश्वर के साथ उसी की स्थापना अधिक श्रेयस्कर सिद्ध होती है । हम भगवान को अपनी माता मानें और उसी आधार पर भगवान हमें अपना पुत्र मानते हुए अनन्त वात्सल्य की वर्षा करे तो यह भावनात्मक आदान-प्रदान प्रेम परम्परा का एक महान् घटक बन जाता है । ईश्वर को माता मानकर एक मातृ-प्रतिमा की अथवा छवि की स्थापना के पश्चात् उपासना पथ पर प्रगति में गतिशीलता उत्पन्न होती है ।

गायत्री माता के रूप में परब्रह्म की स्थापना सर्वोपयोगी है । उसके सान्निध्य में माता की गोदी में खेलने वाले बालक को मिलने वाले वात्सल्य एवं पय-पान जैसे सूक्ष्म स्थूल लाभों की अनुभूति होती है । नारी के प्रति अचिन्त्य चिन्तन का जो प्रवाह इन दिनों चल पड़ा है उसे रोकने और भाव भरी दिव्य श्रद्धा की, प्रतिमा उसे मानने की, जन-चेतना उत्पन्न करने की दृष्टि से भी स्थापना अतीव उपयोगी है । मानवता की, सद्बुद्धि की, सत्प्रवृत्तियों की प्रतिमा भी उसे माना जा सकता है ।

गायत्री माता का वाहन हंस माना गया है । हंस अर्थात् स्वच्छ धवल कलेवर, नीर-क्षीर विवेक का प्रतिनिधि मोती चुगने या लंघन के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ । यह गुण पक्षी हंस में नहीं होते–यह परिभाषा आध्यात्मिक हंस की है । संकेत यह है कि परमात्मा की दिव्य शक्ति को धारण करने के लिए साधक को अपनी उत्कृष्टता हंस स्तर की विकसित करनी चाहिए । उस क्रियात्मक स्थूल जीवन में धर्मपरायण, विचारात्मक, सूक्ष्म जीवन में विवेकवान और आस्थापरक अन्तः प्रवेश में सद्भाव सम्पन्न होना चाहिए । व्यक्तित्व के इस समग्र परिष्कार के साथ ही ईश्वरी दिव्य शक्ति के अवतरण की सम्भावना जुड़ी हुई है ।

गायत्री माता के एक हाथ में पुस्तक, दूसरे में कमण्डल होने के पीछे भी सद्ज्ञान और शान्तिदायक सत्कार्यों की धारणा का संकेत है ।

निराकार के प्रतीक सूर्य और साकार की प्रतीक मातृ सत्ता का समन्वित ध्यान सम्भव है । सूर्य मंडल मध्यस्थ मानने की परम्परा अति प्राचीन है सविता देवता का प्रतीक यह महामन्त्र है । गायत्री का देवता सविता है । ध्यान के लिए सदा गायत्री को सूर्य समेत ही अपनाया जाता है । चेहरे पर तेजोबलय की भावना तो सभी देवताओं के साथ जुड़ी रहती है । गायत्री को सर्य के मध्य में प्रतिष्ठापित किया गया है और उसे 'तेजस्' तत्व की ब्रह्म वर्चस् की आत्मा माना गया है । अस्तु गायत्री को इष्टदेव मानकर चलने पर कई प्रकार के प्रचलित ध्यानों में सर्वोत्तम यही रहता है कि उसे सूर्य की आत्मा के मध्यवर्ती नाभिका सत्ता के रूप में ध्यान किया जाय ।

निराकार ध्यान करने वाले ज्योतिरूप, तेजोवलय रूप, सूर्य रूप में इष्ट का ध्यान कर सकते हैं । गायत्री मन्त्र जप के साथ दोनों की ही संगति ठीक बैठती है । साकार उपासक गायत्री शक्ति का ध्यान शरीर माता के रूप में करते हैं तथा निराकार उपासक गायत्री शक्ति के अधिष्ठाता, 'सविता' के रूप में उसे देखते हैं । अपनी रुचि के अनुरूप साधक किसी भी पद्धति को अपना सकता है । ध्यान में किस रूप का वरण किया गया यह बात महत्त्व की नहीं है । महत्त्व इस बात का है कि ध्यान में कितनी तन्मयता-तल्लीनता उत्पन्न हो सकी । ध्यान में इष्ट के प्रति जितनी एकाग्रता जितनी निकटता एवं प्रगाढ़ता का बोध होगा, उतनी ही साधना प्राणवान् एवं फलवती सिद्ध होगी ।

नियमित उपासना में जप न्यूनतम एक माला (१०८बार) तो करना ही चाहिए । अधिक का नियम सुविधानुसार बनाया जा सकता है । इसके साथ ही उतने समय तक ध्यान भी किया जाता है । रुचि हो तो ध्यान अलग से भी किया जा सकता है ।

जप एवं ध्यान की समाप्ति पर इष्ट के प्रति आभार प्रदर्शन, वन्दना, स्तुति जैसी प्रक्रिया चलाई जाती है । अन्त में विसर्जन करते हुए, सूर्य को अर्ध्य चढ़ा देना चाहिए । साधना १०-१५ मिनट में भी हो सकती है । जिन्हें समय मिल सके वे ३० से ४५ मिनट इसके लिए लगायें । इस गायत्री उपासना में ध्यान का एक रूप गायत्री मन्त्र के अर्थ का चिन्तन भी है । यह चिन्तन जप के साथ-साथ तो नहीं चल सकता, किन्तु अलग से भिन्न समय पर इसे किया जा सकता है । यह दिव्य गुण रूप, दिव्यभाव रूप में परमात्मा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का ध्यान है । जप के साथ इसे करने में तो जप प्रक्रिया बहुत धीमी हो जाती है, अतः इसे किसी अन्य समय शरीर को शिथिल करके किया जाता हैं ।

गायत्री मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है

ॐ (परमात्मा) भूः (प्राणस्वरूप) भुवः (दुःख नाशक) स्वः (सुखस्वरूप) तत् (उस) सवितुः (तेजस्वी) वरेण्यं (श्रेष्ठ) भर्गो (पापनाशक) देवस्य (दिव्य) धीमहि (धारण करें) धियो (बुद्धि) यो (जो) नः (हमारी) प्रचोदयात् (प्रेरित करें) ।

अर्थात्--"उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुख श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अन्तरात्मा में धारण करें । वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर प्रेरित करे ।"

इस अर्थ का विचार करने से उसके अन्तर्गत तीन तथ्य प्रकट होते हैं । १- ईश्वर के दिव्य गुणों का चिन्तन, २--ईश्वर को अपने अन्दर धारण करना, ३--सद्बुद्धि की प्रेरणा के लिए प्रार्थना । यह तीनों ही बातें असाधारण महत्त्व की हैं ।

(१) ईश्वर के प्राणवान दुःख रहित, आनन्द स्वरूप, तेजस्वी, श्रेष्ठ, पापरहित, देवगुण सम्पन्न स्वरूप का ध्यान करने का तात्पर्य यह है कि इन्हीं गुणों को हम अपने में लावें । अपने विचार और स्वभाव को ऐसा बनावें कि उपयुक्त विशेषतायें हमारी हमारे व्यावहारिक जीवन में परिलक्षित होने लगें । इस प्रकार की विचार धारा, कार्य-पद्धति एवं अनुभूति मनुष्य की आत्मिक और भौतिक स्थिति को, दिन-प्रतिदिन समुन्नत एवं श्रेष्ठतम बनाती है ।

(२) गायत्री मन्त्र के दूसरे भाग में परमात्मा को अपने अन्दर धारण करने की प्रतिज्ञा है । उस ब्रह्म, उस दिव्य गुण सम्पन्न परमात्मा को संसार के कण-कण में व्याप्त देखने से मनुष्य को हर घड़ी ईश्वर-दर्शन का आनन्द प्राप्त होता रहता है और वह अपने को ईश्वर के निकट स्वर्गीय स्थिति में रहता हुआ अनुभव करता है ।

(३) मन्त्र के तीसरे भाग में सद्बुद्धि का महत्त्व सर्वोपरि होने की मान्यता का प्रतिपादन है । भगवान से यही प्रार्थना की गई है कि आप हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर प्रेरित कर दीजिए, क्योंकि यह एक ऐसी महान भगवत् कृपा है कि इसके प्राप्त होने पर अन्य सब सुख-सम्पदायें अपने आप प्राप्त हो जाती हैं ।

इस मन्त्र के प्रथम भाग में ईश्वरीय दिव्य-गुणों को प्राप्त करने, दूसरे भाग में ईश्वरीय दृष्टिकोण धारण करने और तीसरे में बुद्धि को सन्मार्ग पर लगाने की प्रेरणा है । गायत्री की शिक्षा है कि अपनी बुद्धि को सात्विक बनाओ, आदर्शों को ऊँचा रखो, उच्च दार्शनिक विचारधाराओं में रमण करो और तुच्छ तृष्णाओं एवं वासनाओं के लिए हमें नचाने वाली कुबुद्धि को मानस लोक से बहिष्कृत कर दो । जैसे-जैसे कुबुद्धि का कल्मष दूर होगा वैसे ही वैसे दिव्य गुण सम्पन्न परमात्मा के अंशों की अपने में वृद्धि होती जायगी और उसी अनुपात से लौकिक और पारलौकिक आनन्दों की अभिवृद्धि होती जायगी ।

गायत्री मन्त्र में सन्निहित उपयुक्त तथ्य में ज्ञान, भक्ति कर्म और उपासना तीनों हैं । सद्गुणों का चिन्तन ज्ञानयोग है । ब्रह्म की धारणा भक्तियोग है और बुद्धि की सात्विकता एवं अनासक्ति कर्मयोग हैं । वेदों में ज्ञान, कर्म और उपासना यह तीन विषय है, गायत्री में भी बीज रूप से यह तीनों ही तथ्य सर्वांगीण ढंग से प्रतिपादित हैं ।

भारतीय धर्म में त्रिकाल संध्या का विधान है । प्रातः सूर्योदय के समय--सायं सूर्यास्त के समय--मध्यान्ह १२ बजे, यह मध्यवर्ती समय है । थोड़ा आगे पीछे होना हो तो वैसा भी हो सकता है । जिन्हें सुविधा हो वे त्रिकाल उपासना करें । अन्यथा प्रातः सायं दो बार से भी काम चल सकता है । अत्यन्त व्यस्त व्यक्तियों को प्रातःकाल नित्य कर्म से निवृत्त होकर एक बार तो उपासना करने के लिए समय निकाल ही लेना चाहिए । प्रयत्न यह करना चाहिए कि आधा घंटे से लेकर एक घंटे तक का समय उपासना के लिए मिल सके । निस्सन्देह इस प्रयोजन में लगा हुआ समय हर दृष्टि से सार्थक होता है । उपासना से आत्मिक प्रगति, उसके फलस्वरूप व्यक्तित्व का समग्र विकास, उसके द्वारा सर्वतोमुखी समृद्धि की संभावना, यह चक्र ऐसा है, जिससे इस कृत्य मे लगाया गया समय सार्थक ही सिद्ध होता है ।

अस्वस्थता की दशा में, विधिवत उपासना करने की स्थिति न हो तो आत्म-शुद्धि में, देव-पूजन तथा जप-ध्यान आदि सारे कृत्य मानसिक उपासना के रूप में ध्यान प्रक्रिया के सहारे उन कृत्यों को करने की कल्पना करते हुए भी किये जा सकते हैं । उपासना में नागा करने की अपेक्षा इस प्रकार की मानसिक पूजा कर लेना भी उत्तम है । इससे संकल्पित साधना प्रक्रिया को किसा न किसी रूप में अनवरत चलती हुई तो रखा ही जा सकता है ।

आत्म शुद्धि एवं प्रतीक पूजा की प्रेरणायें

उपासना के लिए, परमात्म सत्ता के सानिध्य के लिए जो स्थूल क्रिया कृत्य उपासना प्रक्रिया में जुड़े हुए हैं । उनमें से हर एक के साथ सूक्ष्म दर्शन महत्त्वपूर्ण शिक्षण एवं प्रेरणायें जुड़ी हुई हैं । उन्हें समझे बिना उन क्रिया-कृत्यों के अनुरूप उमंगों एवं भाव सम्वेदनाओं का उभार नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होता । उनके अभाव में कर्मकाण्ड निष्प्राण हो जाते हैं इसीलिए कर्मकाण्डों के साथ जुड़े हुए सूक्ष्म प्रेरणा पक्ष एवं भाव पक्ष को भली प्रकार समझकर आत्मसात् कर लेना चाहिए । पूर्व पृष्ठों पर जो कर्मकाण्ड बतलाये गये हैं उनके प्रेरणा पक्ष की व्याख्याएँ की जा रही हैं ताकि साधक उनके सहारे अपनी उपासना को प्राणवान् एवं प्रभावशाली बना सकें ।

षटकर्म के उद्देश्य

यह उपासना के पूर्व साधक की तैयारी में किये जाते हैं । किसी श्रेष्ठ सत्ता को बुलाने और बिठाने से पूर्व उसके लिए उपयुक्त स्वच्छता उत्पन्न करना आवश्यक है । गुरुजनों, महामानवों को, राजनेताओं को घर बुलाना होता है तो उनके लिए आवश्यक सफाई करनी पड़ती है और स्वच्छ उपकरण एकत्रित करने पड़ते हैं । दीवाली पर लक्ष्मी के आगमन की सम्भावना देखकर लोग सबसे अधिक ध्यान घर की सफाई पर देते हैं, ताकि स्वच्छ वातावरण में उनको प्रसन्नता मिले और वह ठहर सकें । सर्वविदित है कि गन्दे स्थान में ठहरना किसी को पसन्द नहीं--गन्दे लोगों के साथ सम्बन्ध रखने--उनके पास जाने तथा बुलाने में सामान्य लोगों की भी रुचि नहीं होती, फिर देवशक्तियाँ तो उसके लिए तैयार होंगी ही क्यों? झूठे और मैले बर्तन में बहुमूल्य भोजन परोसने से भी खाने वालों को घृणा ही उत्पन्न होती है । साधक की पवित्रता एवं पात्रता का चुम्बकत्व ही देवशक्तियों के अनुग्रह को अपनी ओर आकर्षित करता है । इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए साधना विज्ञान के ज्ञाताओं ने सर्वप्रथम आत्मशोधन की ओर ध्यान देने का विधान बनाया है । प्रस्तुत कर्मकाण्डों के सहारे जीवन में परिष्कार की ओर अधिकाधिक तत्परता बरतने के लिए उत्साह उत्पन्न किया जाता है ।

शरीरगत पवित्रता के लिए 'पवित्री करण' है । जल को समस्त शरीर पर छिड़का जाय कि इस मंत्रपूत जल के साथ विश्व ब्रह्माण्ड में संव्याप्त पवित्रता-तत्व की हमारे ऊपर वर्षा हो रही है और फुहारे के नीचे बैठकर स्नान करने की तरह उस अमृत वर्षा का आनन्द लिया जा रहा है । पवित्रता शरीर के भीतर प्रवेश होकर समस्त चेतना को--भाव संस्थान को---पवित्र बनाती चली जा रही है ।

तीन आचमनों का तात्पर्य काया, विचारणा और भावना इन तीन चेतना केन्द्रों में शान्त, शीतल, सात्विकता का समावेश करना है । प्रथम आचमन काया में सच्चरित्रता, सात्विकता और वाणी में सदाशयता की स्थापना करने के लिए है । वाणी की विशेष पवित्रता इसलिए है कि उसके द्वारा उच्चारित जप प्रार्थना भगवान तक पहुँच सके । अनीति से उपार्जित अन्न खाने वाली और असत्य, विक्षोभकारी वचन बोलने वाली वाणी का तेज नष्ट हो जाता है और उससे उच्चारण-मन्त्र शक्ति उत्पन्न नहीं कर सकते। इस तथ्य को स्मृति में जगाये रहने के लिए प्रथम आचमन है ।

द्वितीय आचमन विचारणा, चिन्तन की शीतल सात्विकता स्थापित करने के लिए है । अशुद्धि, अपराधी, दुष्ट, दुर्बुद्धि के कारण यदि मस्तिष्क में अशान्ति के आँधी, तूफान उठते ही रहेंगे तो उसमें मनस्विता एवं तेजस्विता उत्पन्न न हो सकेगी, बहुमूल्य विचारशक्ति ऐसे ही अवांछनीय छिद्रों में होकर नष्ट होती रहेगी और खोखले मनःक्षेत्र में--ब्रह्मलोक से--दिव्य सत्ता का अवतरण न हो सकेगा । मानसिक पवित्रता को साधना की सफलता के लिए नितान्त आवश्यक माना जाय । इस मान्यता को सुदृढ़ बनाने की बात ध्यान में बनी रहे यह उद्देश्य दूसरे आचमन का है ।

तीसरा आचमन भावशुद्धि के लिए है । जीवनोद्देश्य के प्रति उच्चस्तरीय निष्ठा और चिन्तन एवं कर्तव्य की श्रेष्ठता बनाये रहने वाली आस्था ही भाव-निष्ठा है । प्रपंच, प्रलोभनों के आकर्षणों में व्यस्त निरर्थक अनर्थ भरा पतनोन्मुख जीवन जीने वाले लोग आत्मबल सम्पादित नहीं कर पाते । आकांक्षाओं का स्तर ऊँचा रहना ही भाव शुद्धि है । यह तथ्य सदा स्मरण बना रहे इसलिए तीसरा आचमन किया जाता है ।

शिखा वन्दन--शिखा भारतीय धर्म की ध्वजा है जो मस्तक रूपी किले के ऊपर हर भारतीय संस्कृति प्रेमी को फहराते रहनी पड़ती है । इसे गायत्री का प्रतीक भी माना गया है । मस्तिष्क सद्विचारों का केन्द्र है । इसमें देव-भाव ही प्रेवश करने पावें । उन्हीं की विजय ध्वजा इस मस्तिष्क पर फहरा रही है । अपनी यह निष्ठा बनी रहे तथा दूसरों को जानकारी मिलती रहे, इसलिए शिखा ध्वजा रखाए और फहराये रहने का प्रचलन है । यह आध्यात्मिक झण्डाभिवादन है । विवेकशीलता, आदर्शवादिता एवं उत्कृष्टता की देवी गायत्री माता की प्रतीक प्रतिमा शिखा को माना गया है । शरीर में इसकी सर्वोच्च शिखर पर इसलिए प्रतिष्ठापना की जाती है कि इसमें समाविष्ट त्रिविधि प्रेरणाओं को सर्वोपरि महत्व का माना और श्रद्धापूर्वक अपनाया जाय ।

प्राणायाम के चार भाग हैं---

(१) साँस भीतर ले जाने की क्रिया को पूरक ।

(२) भीतर रोकने को अंतःकुम्भक ।

(३) बाहर निकालने की रेचक ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(४) बाहर रोके रहने को बाह्य कुम्भक कहते हैं । प्राणायाम आरम्भ करने से पूर्व मन ही मन तीन बार गायत्री मन्त्र बोल लेना चाहिए । जब श्वांस क्रिया आरम्भ की जाय तो साँस खींचते समय भावना करनी चाहिये कि निखिल आकाश में वायुतत्व के साथ घुला हुआ चेतन प्राणतत्व साँस के साथ हमारे भीतर प्रवेश करते हुए दिव्य शक्ति भर रहा है । रोकते समय भावना करनी चाहिए कि दिव्य शक्ति को शरीर के अवयवों, रक्तकणों एवं चेतना संस्थानों द्वारा सोखा और सदा सर्वदा के लिए भीतर धारण किया जा रहा है । साँस निकालते समय भावना करनी चाहिए कि सूक्ष्म और कारण शरीरों के मल, आवरण, विक्षेप, दोष, विकार बाहर निकाले जा रहे हैं । बाहर साँस रोकने के समय भावना करनी चाहिए कि निकले हुए विकारों को वापिस न लौटने के लिए सदा सर्वदा के लिए द्वार बन्द कर दिया गया । हर प्राणायाम के साथ शरीर के अन्दर दिव्य प्राण तत्व की मात्रा बढ़ती चलने का शरीर मन अन्तःकरण सभी तेजस्वी होने का बोध होना चाहिए । न्यास कर्म का प्रयोजन है शरीर के महत्त्वपूर्ण अंगों में पवित्रता की भावना भरना, उनकी देव चेतना को जाग्रत करना । उपासना काल में उनके जाग्रत देवत्व से सारे कर्तव्य पूरे करना, तथा इसके अनन्तर भी इन अवयवों को--सशक्त एवं संयत बनाये रहना।

मुख के स्पर्श में भावना की जाय कि वाणी तथा रसना दोनों को संयत रखा जायेगा । नासिका से दूसरों के सुगन्ध (प्रशंसा) ही सूँघी जायगी । नेत्रों से उत्तम ही पढ़ें, उत्तम ही देखें, कहीं कुदृष्टि न डालें, छिद्रान्वेषण न करें । कानों से हितकारी, अच्छी प्रेरणा देने वाले अन्तःकरण में सद्भाव जगाने वाले शब्द ही न सुनें । मार्ग भ्रष्ट करने वाले, दूसरों की निंदा, चुगली आदि के प्रसंगों की ओर कान न लगावें। भुजाओं को श्रमशील और कर्मनिष्ठ रखें । किसी कुकर्म या अनाचार में हाथ न डालें । दूसरों की सहायता के लिए हाथ बढ़ाये रहें । जंघाओं के स्पर्श का अर्थ है--गतिशीलता तथा जननेन्द्रिय संयम । जड़ होकर न बैठें, प्रगति के पथ पर चलते रहें । ब्रह्म की मर्यादाओं का उल्लंघन न करें। व्यभिचार से दूर रहें । इसके उपरान्त शेष जल को समस्त शरीर पर छिड़क लें और भावना करें कि सभी जननेन्द्रियाँ सत्पथ पर चलतीं रहेंगी ।

जहाँ से अन्न, जल तथा ज्ञान प्राप्त करते हैं वह मातृभूमि सबसे बड़ा देवता है । हमें देशभक्ति, विश्वभक्त होना चाहिए और इस पृथ्वी की पूजा करके उसे सुन्दर, सुसज्जित, समुन्नत रूप देने का प्रयत्न करना चाहिए । इस लोक को हम स्वर्ग से बढ़कर मानें । इस संसार की सेवा जन्म जन्मान्तरों तक करते रहने की भावनायें उभार कर सच्चे देश-भक्ति मातृभक्त होने का परिचय दें । माता के प्रति जैसे हमारे मन में अगाध श्रद्धा होती है वैसी ही मातृभूमि के प्रति भी रहनी चाहिए और मातृऋण से उऋण होने के लिए अवसर ढूँढ़ते रहना चाहिए ।

प्रतीक पूजा का औचित्य

देव-प्रतिमा के आधार पर की गई पूजा-आराधना सर्वसुलभ एवं सामान्य मनोभूमि के लिए सर्वथा उपयुक्त है । यदि उसके पीछे जुड़ गई, भ्रान्तियों और अवांछनीयताओं को हटा दिया जाय तो इस माध्यम को व्यक्ति एवं समाज के भावनात्मक एवं नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने में बहुत ही सहायक सिद्ध पाया जायगा ।

अमुक स्थान की प्रतिमा में अमुक प्रकार के चमत्कार हैं, जैसी मान्यताओं के पीछे यह बुद्धि काम करती है कि उस स्थान पर प्रतिष्ठापित देवता अन्य देवताओं से भिन्न अस्तित्व का अथवा भिन्न सामर्थ्य का है यह सोचना भ्रमपूर्ण है । सर्वत्र एक ही सत्ता संव्याप्त है । अलग-अलग स्थानों पर स्थापना से उसे विखंडित नहीं किया जा सकता है । चमत्कार प्रतिमाओं में विधि विधानों में अथवा मन्त्रों में नहीं होते । वह सब तो श्रद्धा की गहराई का प्रतिफल मात्र हैं। अनेक देववाद ने जनमानस में बिखराव एवं विरोधाभास उत्पन्न कर दिया है और उस आधार पर परस्पर विरोधी अनेक सम्प्रदाय खड़े हो गये हैं । इसी प्रकार देवता अमुक प्रकार के उपहार या स्तिवनों द्वारा प्रसन्न होते हैं, यह मान्यता भी भ्रमपूर्ण है। इस भ्रान्ति की आड़ में पुजारियों ने भावुक लोगों से देवताओं के नाम पर लूट खसोट का जाल फैलाया और अपना घर भरा है । तरह-तरह की भौतिक मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए अमुक प्रकार के प्रलोभन देकर देवताओं से अनुग्रह, वरदान प्राप्त किये जा सकते हैं, यह मान्यताएँ भी भ्रमपूर्ण हैं । ऐसी ही कई अवांछनीयता जुड़ जाने के कारण कई सुधारकों को मूर्ति पूजा का खण्डन करना पड़ा है । वस्तुतः उसमें खण्डन जैसी कोई बात है नहीं ।

पुस्तक एक मूर्ति है । उसमें छपी हुई आड़ी टेढ़ी लकीरों के रूप में अक्षर होते हैं । देखने में यह पुस्तक प्रतिमा सर्वथा जड़ है, उसमें चेतन नहीं खोजा जा सकता, पर उस पुस्तक के सहारे हमारे मनः क्षेत्र में मनीषियों द्वारा प्रतिपादित अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विचार उत्पन्न होते और पनपते हैं । इस मन में वह चेतना भी है । गीता की पुस्तक जड़ है, उसे झींगुर, कीड़े, चूहे आसानी से काट सकते हैं । पर इतने भर से उस ज्ञान प्रतिमा का मूल्य किसी भी प्रकार घट नहीं जाता । भगवान कृष्ण और अर्जुन के बीच हुआ दिव्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्वाद उसके पृष्ठों पर पढ़ जा सकता है और वैसा ही लाभ लिया जा सकता है जैसा कि उस अवसर पर स्वयं उपस्थित रह सकने पर हो सकता था । पत्र व्यवहार में कितना महत्त्वपूर्ण आदान प्रदान होता है , यह किसी से छिपा नहीं है । महत्वपूर्ण इकरारनामे और दस्तावेज जड़ कागज होता है, पर उनके आधार पर कितने बड़े फैसले होते हैं इसे कौन नहीं जानता । चूँकि कागज पानी में गल सकता है इसलिए इस पर लिखे आलेखों का कोई महत्त्व नहीं, ऐसा सोचना उपहासास्पद है । हम अपने पूर्वजों गुरुजनों, अथवा मान्य प्रतीकों के प्रति असीम सम्मान रखते हैं और उनकी अवज्ञा पर दुःख मानते एवं रोष प्रकट करते हैं । भगवान जड़ तो नहीं है, पर वह जड़ पदार्थों में समाया हुआ न हो ऐसी भी कोई बात नहीं है । जब जड़ चेतन सभी में उसकी सत्ता विद्यमान है तो प्रतिमा में उसकी उपस्थिति न होने की बात भी क्यों सोची जाय ।

मानसिक ध्यान की सफलता के लिए मस्तिष्कीय विकास सामान्य स्तर की अपेक्षा कुछ अधिक ऊँचा होना चाहिए । यदि उसे अध्ययन, चिन्तन, मनन आदि के द्वारा गहरा गोता मारने, कोमल सम्वेदनाओं को उभारने, किसी बात पर देर तक गम्भीर चिन्तन कर सकने योग्य विकसित न किया होगा तो समुचित ध्यान कर सकना सम्भव ही न हो सकेगा । अविकसित मानसिक स्तर के लोग इन्द्रिय सम्वेदना भर अनुभव कर सकते हैं, वे कान या आँख की सहायता से देख या सुनकर कुछ सोच समझ सकते हैं । कवियों, वैज्ञानिकों एवं दृष्टाओं जैसा सूक्ष्म चिन्तन उसके लिए सम्भव नहीं होता । अस्तु उन्हें उसकी स्थिति के अनुरूप दृश्य प्रतिमाओं के आधार पर परमात्मा की समीपता का उपासना-उद्देश्य पूरा कराना होता है ।

हर व्यक्ति नये क्षेत्र में प्रवेश करते समय बालक ही होता है चाहे वह अन्य विषेयों में कितना ही सुयोग्य क्यों न हो ? कोई अच्छा वकील अपने विषय का विशेषज्ञ हो सकता है, पर उसे नया शिल्प सीखते समय बाल कक्षा के छात्र की तरह ही आरम्भ करना होगा । उपासना जिसका विषय नहीं रहा है वे अन्य विषयों के विद्वान होते हुए भी इस क्षेत्र में नौसिखियों की तरह ही प्रवेश करते हैं । अस्तु उन्हें ध्यान प्रक्रिया का अभ्यास करने के लिए प्रतीक पूजा का आश्रय लेना सुविधाजनक ही रहता है । छतों में सीमेंट, गिट्टी, लोहे का स्लैप ढ़ालने के लिए उसके नीचे 'सहारे' खड़े करने होते हैं । छत कड़ी हो जाने पर 'सहारे' निकाल दिये जाते हैं और फिर वह अपने आप खड़ी रहती है, इतना ही नहीं अपने ऊपर वजन भी उठा लेती है । किन्तु आरम्भ में जबकि वह ढ़लाई गीली थी तो बिना सहारे के काम नहीं चल सकता था । प्रतीक पूजा की आरम्भिक अवस्था में आवश्यकता पड़ती ही है । निराकारवादी व्यक्ति रूप में न सही अन्य किसी प्रतीक को माध्यम बनाकर अपना काम चलाते हैं । नमाज पढ़ते समय काबा की तरफ मुँह किया जाता है । काबा अर्थवत् ईश्वरीय शक्ति का विशेष प्रतिनिधित्व करने वाली इमारत है । दूसरे लोग सूर्य आदि के प्रकाश ज्योंति को आधार बनाते हैं । कुण्डलिनी, जागरण, चक्र वेधन आदि योगाभ्यासों में भी अमुक स्थानों को भी दिव्य शक्ति का केन्द्र मानकर वहाँ अपनी इच्छा शक्ति नियोजित करनी पड़ती है । यह भी ध्यान के ही रूप हैं और इनमें आकृति का सहारा लेना होता है ध्यान में आकृति न हो यह असम्भव है । गन्ध साधना में गुलाब पुष्प की आकृति से सर्वथा बचाते हुए ध्यान में लाया जा सकना सम्भव न होगा । इस विवाद को पूर्वोग्रहों से उपयोगिता की ही दृष्टि से हल किया जाना उचित है ।

संसार में कई सम्प्रदाय साकारवादी और निराकारवादी हैं अपना विचार व्यापक क्षेत्र में प्रयोग हो सकने वाली एक साधन पद्धति का विकास करना है उपासना सन्दर्भ में जो विवाद चलता है, उसे साकार निराकार का रूप न देकर प्रतीक को व्यक्त आकृति का न मानने की उलझन कहना ठीक है । पूर्ण निराकार का ध्यान तो नादयोग तथा दूसरी संवेदनाओं में भी नहीं हो सकता । शंख, घड़ियाल, बादल आदि की ध्वनियाँ सुनने का अभ्यास करते समय स्वभावतः उनके स्रोत की छवि मस्तिष्क में घूम जाती है । शंखनाद तो सुना जाय, पर शंख की आकृति ध्यान में न लाई जाय जो आगे चलकर सार्वभौम, सर्व जनीन बन सके । इसलिए ध्यान प्रतीक में इन दोनों ही पक्षों का समन्वय करने की बात ध्यान में रखी गई है । निराकारवादी अन्तर्मुखी होकर 'दिव्य-ज्योति' के रूप में परमात्मसत्ता का दर्शन करते हैं । आम-तौर से यह छोटा-बड़ा प्रकाश बिन्दु ही होता है । इसे सूर्य का प्रतीक मानते हैं । वस्तुतः यह 'ज्ञान-ज्योति' है मात्र चमक या गर्मी नहीं । अध्यात्म साधना में अग्निपिंड सूर्य की प्रतिमा भर माना गया है, उसकी मूल सत्ता 'दिव्य-ज्ञान' कही गई है । निराकार, प्रज्ञा, तत्व का साकार रूप 'सविता' अर्थात् सद्ज्ञान ही अन्तःकरण को आलोकित करने वाला प्रकाशवान परब्रह्म है । ध्यान करते समय सूर्य पर एकाग्रता तो करनी चाहिए, पर साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह 'दिव्य आलोक' का--सद्ज्ञान रूपी प्रकाश का प्रतीक मात्र है, मात्र जड़ पिण्ड नहीं ।

सूर्य पर ध्यान करते हुए यह अनुभूति विकसित की जाती है कि वह आलोक साधक का शरीर, मन और अन्तरात्मा में-स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरों में सक्रियता,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सद्ज्ञान एवं सद्भाव बनकर प्रकाशवान हो रहा है । इन दोनों क्षेत्रों को आलोकित हुआ मानते हुए उत्तेजित, विकसित, परिष्कृत हुए भी अनुभव किया जाता है । इस प्रकीर सूर्य को न केवल आलोक दर्शन की दिव्य प्रक्रिया मात्र मानकर बात समाप्त कर दी जाती है वरन् उसकी आभा से सत्ता को पूरी तरह प्रकाशित एवं प्रभावित भी देखा जाता है ।

(१) इष्ट के प्रतीक की तरह पूजा उपचार में प्रयुक्त जल शीतलता, शान्त, नम्रता, सज्जनता का प्रतीक है--सत्प्रयोजनों के लिए हमें समय लगाना एवं श्रम बिन्दुओं का समर्पण करना है । उसी से श्रेष्ठ सत्कर्म बन पड़ते हैं, पाद्य, अर्ध्य, आचमन, स्नान के लिए चार चम्मच इसीलिये चढ़ाये जाते हैं कि हम अपना श्रम, मनोयोग प्रभाव एवं धन इन चारों उपलब्धियों का यथासम्भव अधिकाधिक भाग ईश्वरीय प्रयोजन के लिए समर्पित करेंगे ।

(२) अक्षत्--उपार्जित, अन्न, धन, वैभव का प्रतीक है । अपनी कमाई को आप ही खाते रहने वाला अनुदार स्वार्थी को शास्त्रकारों ने 'चोर' कहा है । उपार्जन को अपने तथा परिवार के उपयोग भर में सीमित नहीं किया जाना चाहिए । वरन् उसमें देश, धर्म, समाज, संस्कृति का भी भाग स्वीकार करना चाहिए । ईश्वर अर्थात् साकार रूप में विराट् विश्व--एवं निराकार रूप में सद्भाव, सदुद्देश्य, इसके लिए अपनी कमाई का एक बड़ा अंश नियमित रूप से निकाला जाय यह अक्षत् समर्पण की प्रेरणा है ।

(३) पुष्प--अर्थात् खिलने-खिलाने की, हँसने-हँसाने की, हल्की-फुल्की जिन्दगी और सत्प्रवृत्ति । हम फूल जैसे कोमल रहें । भीतर और बाहर से सर्वांग सुन्दर बनें । इस विश्वोद्यान को शोभायमान बनाने वाला जीवन जियें । अपनी गरदन नुचवाने और मर्म भेदी सुई का छेदा जाना स्वीकार करके प्रभु के गले का हार बनने की आकांक्षा रखें ।

पूजा में पुष्प चढ़ाने का प्रचलन है । भगवान के चरणों पर, गले में, सिर पर समस्त शरीर पर पुष्प अलंकार चढ़ाये जाते हैं । 'भगवान को पुष्प प्रिय हैं' इस संकेत में यही तथ्य है कि पुष्प जैसी हँसती-हँसाती कोमलता भगवान को प्रिय है । अपना जीवन पुष्प जैसा ही खिलना चाहिए, ताकि ईश्वर का परमप्रिय बन सके ।

(४) दीपक स्नेह से, चिकनाई से भरा पूरा स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देने वाला, ऊपर को उठती हुई ज्योति दृष्टि वाला होता है । इन्हीं विशेषताओं के कारण दीपक को पूजा में स्थान मिला है । जिसके अन्तःकरण में असीम स्नेह सद्भाव भरा है, जो परमार्थ के लिए बढ़-चढ़कर त्याग बलिदान कर सकते हैं, कष्ट सह सकते हैं, जिनकी दृष्टि, महत्वाकाँक्षा, की ऊर्ध्वगामी है वे उत्कृष्ट आदर्शवादी हैं वे जीवन्त ज्योति कहे जा सकते हैं । अपने को इसी मार्ग का पथिक बनाकर हम ईश्वर के निकटवर्ती और अनुकम्पा के अधिकारी बन सकते हैं । घूपबत्ती में अग्नि स्थापना भी प्रकारान्तर से दीपक की ही आवश्यकता की पूर्ति करती है और यही उसकी भी प्रेरणा है ।

(५) चन्दन--वह वृक्ष जिसका कण-कण सुगन्धित है और जो समीपवर्ती झाड़झंखाड़ों को भी सुगन्धित करता है। अपनी शीललता से साँप, बिच्छू जैसे विष दंश वालों तक को शान्ति प्रदान करता है । कहते हैं चन्दन वृक्ष पर लिपटे हुए सर्प, बिच्छू शान्ति पाये जाते हैं । उसकी छाया में बैठने वाले सुगन्ध भरी शीतलता प्राप्त करते, उसकी लकड़ी काटने, बेचने वाले या घिसने वाले कष्टदायक लोग भी बदले में प्रतिशोध नहीं उपकार ही पाते हैं । नष्ट होते-होते हुए भी चन्दन अपनी लकड़ी से भजन करने की माला, हवन सामग्री का चन्दन चूरा दे जाता है । हमारी शक्ति सामर्थ्य का उपयोग भी इसी प्रकार होना चाहिए ।

नैवेद्य में मिष्ठान चढ़ाने के पीछे भी ऐसी ही प्रेरणायें हैं । मिष्ठान का अर्थ है मिठास युक्त वस्तु । ईश्वर के सान्निध्य के लिए स्वभाव, वाणी व्यवहार सभी में मिठास पैदा करना चाहिए ।

इस प्रकार पूजा स्थल पर स्थापित चित्र अथवा ज्योति को इष्ट का प्रतीक तथा पूजा उपचार को सामग्री की साधक की समर्पण भावना का प्रतीक माना जाता है । स्थूल उपचार में स्थूल प्रतीकों के माध्यम से इष्ट एवं उपासक के एकत्व का प्रयास किया जाता है ।

जप एवं ध्यान का तत्वदर्शन

प्रतीक उपासना की पार्थिव पूजा के कितने ही कर्मकाण्डों का प्रचलन है । तीर्थयात्रा, देवदर्शन, स्तवन, पाठ, षोडशोपचार, परिक्रमा, अभिषेक, शोभा यात्रा, श्रद्धांजलि, रात्रि-जागरण, कीर्तन आदि अनेकों विधियाँ विभिन्न क्षेत्रों और वर्गों में अपने-अपने ढंग से विनिर्मित और प्रचलित है। इससे आगे का अगला स्तर वह है जिसमें उपकरणों का प्रयोग न्यूनतम होता है और अधिकांश कृत्य मानसिक एवं भावनात्मक रूप से ही सम्पन्न करना पड़ता है । यों शारीरिक हलचलों, श्रम और प्रक्रियाओं का समन्वय उनमें भी रहता है ।

उच्च स्तरीय साधना क्रम में मध्यवर्ती विधान के अन्तर्गत प्रधानतया दो कृत्य आते हैं । (१) जप (२) ध्यान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न केवल भारतीय परम्परा वरन् समस्त विश्व के विभिन्न साधना प्रचलनों में भी किसी न किसी रूप में इन्हीं दो का सहारा लिया गया है । जप कई प्रकार हो सकते हैं, पर उन्हें इन दो वर्गों के ही अंग-प्रत्यंग के रूप में देखा जा सकता है ।

जप का विज्ञान

जप द्वारा अध्यात्म ही उस परमेश्वर को पुकारता है, जिसे हम एक प्रकार से भूल ही चुके हैं । मणि विहीन सर्प जिस तरह अशक्त एवं हताश बना बैठा रहता है, उसी प्रकार हम परमात्मा से बिछुड़कर अनाथ बालक की तरह डरे, सहमे बैठे हैं--अपने को असुरक्षित और आपत्तिग्रस्त स्थिति में अनुभव कर रहे हैं । लगता है हमारा कुछ बहुमूल्य खो गया है । जप की पुकार उसी को खोजने के लिए है।

गज की एक टांग ग्राह के मुँह में चली गई थी । गज पानी से बाहर निकलना चाहता था और ग्राह उसे भीतर घसीटता था । दोनों में से हारता कोई भी न था । इस खींचतान में हाथी को भारी कष्ट हो रहा था । न मरते बनता था न जीते । निदान गज ने भगवान को पुकार लगाई । द्रोपदी का शरीर ही निर्वसन न हो रहा था, पर आत्मा की शालीनता का आवरण उतरता जाने से उसका वहिरंग एवं अन्तरंग दोनों ही लज्जास्पद बनते चले जा रहे हैं । ऐसी दशा में गज रूपी मन और आत्मा रूपी द्रोपदी का भगवान को पुकारना उचित ही है । जप में भगवान नाम की रट, पतन के गर्त में से हाथ पकड़कर ऊपर उबारने के लिए ही लगाई जाती है ।

यह सोचना व्यर्थ है कि भगवान का मन इतना ओछा है कि वह अपना नाम लेने वाले से, चापलूसी शब्दोचार करने वाले से प्रसन्न हो जाते हैं । उन्हें नाम लेने न लेने से कोई वास्ता नहीं । वह दिव्यसत्ता तो केवल इतना ही देखती है कि जो काम सौंपे गये थे वे पूरे किये गये या नहीं । वे अनुशासन और कर्तव्य पालन भर की अपेक्षा मनुष्य से करते हैं । और इसी कसौटी पर कसकर दण्ड पुरस्कार की व्यवस्था करते हैं । उनका रोष और प्रेम ठीक विद्युत शक्ति की तरह है । बिजली का विधिवत् उपयोग करने वाले उससे तरह-तरह के लाभ उठाते हैं । रोशनी, पंखा, रेड़ियो, हीटर जैसे अनेक प्रयोजन पूरे करते हैं, किन्तु जो उसके खुले तार छूने की उच्छृङ्खलता बरतते हैं वे रोष के भाजन बनते हैं और अपने प्राण गंवा बेठते हैं । भगवान का एक नाम 'रुद्र' भी है । रुद्र अर्थात् भयंकर अनीति बरतने वालों को वे बिना दया माया प्रदर्शित किये कसकर दण्ड भी देते हैं। नाम जप की चापलूसी से ईश्वर को फुसला लेने और जो लाभ सन्मार्ग पर चलने वालों को मिलता है वही पूजा पत्री में पा लेने की बात सोचना मूर्खतापूर्ण है । ईश्वर को इतना मूर्ख और ओछा नहीं समझना चाहिए कि नाम लेने भर से किसी को भक्त मान ले और निहाल कर दे । उसका अनुग्रह तो व्यक्तित्व को परिष्कृत करने और सन्मार्ग पर चलने से ही सम्भव हो सकता है ।

आत्मिक प्रगति के लिए चिन्तन क्षेत्र की जुताई करनी पड़ती है तभी उसमें उपयोगी फसल उगती है । खेत को बार-बार जोतने से ही उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ती है । नाम जप को एक प्रकार से खेत की जुताई कह सकते हैं, प्रहलाद की कथा है कि वह स्कूल में प्रवेश के उपरान्त पट्टी पर केवल रामनाम ही लिखते रहे, आगे की बात पढ़ने के लिए कहे जाने पर भी राम नाम ही लिखते रहे और कहते रहे कि इस एक को ही पढ़ लेने पर सारी पढ़ाई पूरी हो जाती है । युधिष्ठिर की की कथा भी ऐसी ही है । अन्य छात्रों ने आगे के पाठ याद कर लिये, पर वे पहले पाठ 'सत्यंवद' ही रटते रहे । अध्यापक ने आगे के पाठ पढ़ने को कहा तो उनका उत्तर यही था कि एक पाठ याद हो जाने पर दूसरा पढ़ना चाहिए । उनका तात्पर्य यह था कि सत्य के प्रति अगाध निष्ठा और व्यवहार में उतरने की परिपक्वता उत्पन्न हो जाने तक उसी क्षेत्र में अपने चिन्तन को जोते रहना चाहिए ।

कपड़े को देर तक रंग भरी नाद में डुबोये रहने से उस पर पक्का रंग चढ़ जाता है । चन्दन वृक्ष के समीप उगे हुए झांड़-झंखाड़ भी सुगन्धित हो जाते हैं । गुलाब के फूल जिस मिट्टी पर टूट-टूट कर गिरते हैं वह भी सुगन्धित हो जाती है । सान्निध्य का लाभ सर्वविदित है । सत्संग और कुसंग के भले बुरे परिणाम आये दिन सामने आते रहते हैं । उपासना कृत्य भगवान की समीपता है, उसका सत्परिणाम सामने आये बिना नहीं रह सकता । काट भृंग का उदाहरण प्रख्यात है ।

मन्त्र जप की दुहरी प्रतिक्रिया होती है । एक भीतर दूसरी बाहर । आग जहाँ जलती है उस स्थान को गरम करती है, साथ ही वायुमण्डल में ऊष्मा बिखेरकर अपने प्रभाव क्षेत्र को भी गर्मी देती है । जप का ध्वनि प्रवाह समुद्र की गहराई में चलने वाली जल धाराओं की तरह तथा आकाश में छितराई हुई उड़ने वाली हवा की परतों की तरह अपनी हलचलें उत्पन्न करता है । उनके कारण शरीर में यत्र-तत्र, सन्निहित अनेकों 'चक्रों' तथा 'उपत्यिका' ग्रन्थियों में विशिष्ट स्तर का शक्ति संचार होता है । लगातार के एक नियमित क्रम से चलने वाली हलचलें ऐसा प्रभाव उत्पन्न करती हैं जिन्हें रहस्यमय ही कहा जा सकता है । पुलों पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सैनिकों को पैरों को मिलाकर चलने से उत्पन्न क्रमबद्ध ध्वनि उत्पन्न करने के लिए इसलिए मना किया जाता है कि इस साधारण सी क्रिया से पुल तोड़ देने वाला असाधारण प्रभाव उत्पन्न हो सकता है ।

टाइप राइटर के उदाहरण से इस तथ्य को और भी अच्छी तरह समझा जा सकता है । उंगली से चाबियाँ दबाई जाती हैं और कागज पर तीलियाँ गिरकर अक्षर छापने लगती हैं । मुख में लगे उच्चारण में प्रयुक्त होने वाले कलपुर्जों को टाइप राइटर की कुंजियाँ कह सकते हैं । मन्त्रोच्चार उंगली से उन्हें दवाना हुआ । यहाँ से उत्पन्न शक्ति प्रवाह नाड़ी तन्तुओं की तीलियों के सहारे सूक्ष्म चक्रों और दिव्य ग्रन्थियों तक पहुँचता है, और उन्हें झकझोर कर जगाने खड़ा करने में संलग्न होता है । अक्षरों का छपना वह उपलब्धि है जो इन जाग्रत चक्रों द्वारा रहस्यमयी सिद्धान्तों के रूप में साधक को मिलती है । यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि यदि जपयोग को विधिवत् साधा गया होगा तो उसका सत्परिणाम उत्पन्न होगा ही ।

हाथों को लगातार थोड़ी देर तक घिसा जाय तो वे गरम हो जाते हैं । रगड़ से गर्मी और बिजली पैदा होती है, यह नियम विज्ञान की प्रथम कक्षा में पढ़ने वाले छात्र भी जानते हैं । जप में अनवरत उच्चारणक्रम एक प्रकार का घर्षण उत्पन्न करता है । पत्थर पर रस्सी की रगड़ पड़ने से घिसाव के निशान बन जाते हैं । श्वांस के आवागमन तथा रक्त की भाग दौड़ से शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है और उसी पर जीवन अविलम्बित रहता है । डायनमों में पहिया घूमने से बिजली उत्पन्न होने की बात सभी जानते हैं । जप में जो घर्षण प्रक्रिया गतिशील होती है, वह दौड़ लगाने पर शरीर के उत्तेजित हो जाने की तरह सूक्ष्म शरीर में उत्तेजना पैदा करती है और उस गर्मी से मूर्छित पड़ा अन्तर्जगत नये जागरण का अनुभव करता है । यह जागरण मात्र उत्तेजना नहीं होती उसके साथ-साथ दिव्य उपलब्धियों की सम्भावना भी जुड़ी रहती है ।

ध्वनियाँ उतनी ही नहीं है जितनी कि कानों में सुनाई पड़ती हैं । कान तो एक निश्चित स्तर के ध्वनि कम्पनों को ही सुन पाते हैं । उनकी पकड़ से ऊँचे और नीचे कम्पनों वाले भी असंख्य ध्वनि प्रभाव होते हैं जिन्हें मनुष्य के कान तो नहीं सुन सकते, पर उनके प्रभावों को करणो की सहायता से प्रत्यक्ष देखा या जाना जा सकता है । इन्हें 'सुपर सौनिक' ध्वनि तरंग कहते हैं ।

शब्द की गति साधारणतया बहुत धीमी है । वह मात्र कुछ सौ फुट प्रति सैकिण्ड चल पाती है । तोप चलने पर पहले धुँआ दीखता है और धड़ाके की आवाज पीछे सुनाई पड़ती है । जहाँ दृश्य और श्रव्य का समावेश है वहाँ हर जगह ऐसा ही होगा । पहले दृश्य दीखेगा और उस घटना के साथ जुड़ी हुई आवाज कान तक पीछे पहुँचेगी ।

रेडियो प्रसारण में एक छोटी-सी आवाज को विश्व-व्यापी बना देने और उसे १ लाख ८६ हजार मील प्रति सैकिण्ड की चाल से चलने योग्य बना देने में इलेक्ट्रो मैगनेटिक तरंगों का ही चमत्कार होता है । रेड़ियो विज्ञानी जानते हैं कि इलैक्ट्रो मैगनेटिक वेवस् पर साउण्ड का सुपर इम्पोज रिकार्ड कर दिया जाता है और वे पलक मारते सारे संसार की परिक्रमा कर लेने जितनी शक्तिशाली बन जाती है ।

इलैक्ट्रो मैगनेटिक तरंगों की शक्ति से ही अंतरिक्ष में भेजे गये राकेटों की उड़ान को धरती पर से नियन्त्रित करने, उन्हें दिशा और संकेत देने, यान्त्रिक खराबी दूर करने का प्रयोजन पूरा किया जाता है ।

'सुपर सौनिक' श्रवणातीत तरंगों का जप प्रक्रिया के द्वारा उत्पादन और समन्वय होता है । जप के समय उच्चारण किय गये शब्द--आत्मानिष्ठा, श्रद्धा एवं संकल्प शक्ति का समन्वय होने से वही क्रिया सम्पन्न करते हैं, जो रेडियो स्टेशन पर बोले गये शब्द--विशिष्ट विद्युत शक्ति के साथ मिलकर अत्यन्त शक्तिशाली हो उठते हैं और पलक मारते समस्त भूमण्डल में अपना उद्देश्य प्रसारित कर देते हैं । जप प्रक्रिया में एक विशेषतया यह है कि उसने न केवल समस्त संसार का वातावरण प्रभावित होता है,वरन् साधक का व्यक्तित्व भी झनझनाने, जगमगाने लगता है । जबकि रेडियो स्टेशन से प्रसारण तो होता है पर कोई स्थानीय विलक्षणता दिखाई नहीं पड़ती । जप-प्रक्रिया में साधक को और वातावरण को प्रभावित करने की वह दुहरी शक्ति है--जो नव वैज्ञानिकों के सामान्य यन्त्र उपकरणों में नहीं पाई जाती ।

स्पष्ट है कि जप किन्हीं शब्द विशेषों को बोल देना मात्र नहीं है उसमें वाक्शक्ति, चिन्तन तथा प्राण एवं भावशक्ति का प्रयोग भी करना होता है । इस प्रकार किया हुआ जप प्राणवान् जीवन्त कहा जा सकता है । उपासना के इस महत्वपूर्ण अंग को अपना कर उसका समुचित लाभ निश्चित रूप से उठाया जा सकता है ।

ध्यान की दिशा

ध्यान की एक ऐसी विद्या है जिसकी आवश्यकता हमें लौकिक जीवन में भी पड़ती है और आध्यात्मिक अलौकिक क्षेत्र में भी उसका उपयोग किया जाता है । ध्यान को जितना सक्त बनाया जा सके उतना ही वह किसी भी क्षेत्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है । मनुष्य को जो कुछ प्राप्त है उसके ठीक-ठीक उपयोग तथा जो प्राप्त करना चाहिए, उसके प्रति प्रखरता--दोनों ही दिशाओं में ध्यान बहुत उपयोगी है । उपासना क्षेत्र में भी ध्यान की इन दोनों ही धाराओं का उपयोग किया जा जाता है । अपने स्वरूप और विभूतियों का बोध तथा अपने लक्ष्य की ओर प्रखरता दोनों ही प्रयोजनों के लिए ध्यान का प्रयोग किया जाता है ।

जीवन का लक्ष्य पूर्णता प्राप्त करना है । यह पूर्णता--ईश्वरीय स्तर की ही हो सकती है । आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए उस लक्ष्य पर ध्यान का एकाग्र करना आवश्यक है । महत्त्वपूर्ण इमारतें बनाने से पूर्व उनके नक्शे, छापे एवं मौडिल बनाये जाते हैं । इंजीनियर, कारीगर उसी को देख-देखकर अपना निर्माण कार्य चलाते हैं और समयानुसार इमारत बनकर तैयार हो जाती है । भगवान का स्वरूप और गुण, कर्म-स्वभाव कैसा हो इसकी ध्यान प्रतिमा विनिर्मित की जाती है और फिर उसके साथ समीपता, एकता, तादात्म्यता स्थापित करते हुए उसी स्तर का बनाने के लिए प्रयत्न किया जाता है । ध्यान प्रक्रिया का वही स्वरूप है ।

असन्तुलन को सन्तुलन में बदलने के लिए ध्यान एकाग्रता के कुशल अभ्यास से बढ़कर और कोई अधिक उपयोगी उपाय हो नहीं सकता । कई बार मन, क्रोध, शोक, कामुकता, प्रतिशोध, विक्षोभ जैसे उद्वेगों में वे तरह फँस जाता है और उस स्थिति में अपना या पराया कुछ भी अनर्थ हो सकता है । उद्विग्नताओं में घिरा हुआ मन कुछ समय में सनकी या विक्षिप्त स्तर का बन जाता है । सही निर्णय कर सकना और वस्तु स्थिति को समझ सकना उसके बस से बाहर की बात हो जाती है । इन विक्षोभों से मस्तिष्क को कैसे उबारा जाय और कैसे उसे सन्तुलित स्थिति में रहने का अभ्यस्त कराया जाय, इसका समाधान ध्यान साधना के साथ जुड़ा हुआ है । मन को अमुक चिन्तन प्रवाह से हटाकर अमुक दिशा में नियोजित करने की प्रक्रिया ही ध्यान कहलाती है । इसका प्रारम्भ भटकाव के स्वेच्छाचार से मन को हटाकर एक नियत निर्धारित दिशा में लगाने के अभ्यास से आरम्भ होता है । इष्टदेव पर अथवा अमुक स्थित पर मन को नियोजित कर देने का अभ्यास ही तो ध्यान में करना पड़ता है । मन पर अंकुश लगाने, उसका प्रवाह रोकने में, सफलता प्राप्त कर लेना ही ध्यान की सफलता है । यह स्थिति आने पर कामुकता शोक, संतप्तता, क्रोधान्धता, आतुरता, ललक, लिप्सा जैसे आवेशों पर काबू पाया जा सकता है । मस्तिष्क को उन उद्वेगों से रोककर किसी उपयोगी चिन्तन में मोड़ा-मरोड़ा जा सकता है । कहते हैं कि अपने को वश में कर लेने वाला सारे संसार को वश में कर लेता है । आत्म नियन्त्रण की यह स्थिति प्राप्त करने में ध्यान साधना से बढ़कर और कोई उपाय नहीं है । इसका लाभ आत्मिक और भौतिक दोनों ही क्षेत्रों में समान रूप से मिलता है । अभीष्ट प्रयोजनों में पूरी तन्मयता, तत्परता नियोजित करने से ही किसी कार्य का स्तर ऊँचा उठता है, सफलता का सही मार्ग मिलता है और बड़ी-चढ़ी उपलब्धियाँ पाने का अवसर मिलता है । आत्मिक क्षेत्र में यही तन्मयता प्रसुप्त शक्तियों के जागरण से लेकर ईश्वर प्राप्त तक का महत्त्वपूर्ण माध्यम बनती है ।

मन जंगली हाथी की तरह है, जिसे पकड़ने के लिए पालतू प्रशिक्षित हाथी भेजने पड़ते हैं । सधी हुई बुद्धि पालतू हाथी का काम करती है । ध्यान के रस्से से पकड़ जकड़ कर उसे काबू में लाती है और फिर उसे सत्प्रयोजनों में संलग्न हो सकने योग्य सुसंस्कृत बनाती है ।

पानी का स्वभाव नीचे गिरना है । उस ऊँचा उठाना तो पम्प, चरखी, ढ़ेंकली आदि लगाने की व्यवस्था करनी पड़ती है । निम्नगामी पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों में ही हमारी अधिकांश शक्तियाँ नष्ट होती रहती हैं । उन्हें ऊपर उठाने के लिए मस्तिष्क में दिव्य प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने की ध्यान की प्रक्रिया अपनानी पड़ती है ।

शक्ति को उपलब्ध करना बड़ी बात नहीं, उसे विखराब के निरर्थक एवं अपव्यय की अनर्थ मूलक बर्बादी से भी बचाया जाना चाहिए । शक्ति की उपलब्धि का लाभ तभी मिलता है जब उसे संग्रहीत रखने और सत्प्रयोजनों में लगाने की व्यवस्था बन पड़े ।

सूर्य की किरणें सुविस्तृत क्षेत्र में बिखरी पड़ी रहती हैं । रोज ही सूर्य निकलता और अस्त होता है धूप थोड़ी सी गर्मी, रोशनी पैदा करने जितना ही काम कर पाती है । परे यदि उन किरणों के एक दो इंच बिखराब को आतिशी शीशे द्वारा एक केन्द्र पर केन्द्रित कर लिया जाय तो देखते-देखते आग जलने लगेगी और उसे किसी बड़े जंगल में डाल दिया जाय तो दावानल बनकर भयंकर विनाश लीला प्रस्तुत कर सकती है ।

स्थूलशक्तियों की तरह सूक्ष्म शक्तियों का लाभ भी उन्हें एकत्रित करने, किसी दिशा विशेष में भी लगा देने से ही सम्भव हो सकता है । मस्तिष्क एक सशक्त बिजलीघर है । इसमें निरन्तर प्रचण्ड विद्युत प्रवाह उत्पन्न होता है और उसके शक्तिशाली कम्पन ऐसे ही अनन्त आकाश में उड़ते, विखरते नष्ट होते रहते हैं । यदि इस प्रवाह को केन्द्रित करके किसी विशेष लक्ष्य पर नियोजित किया जा सके तो उसके आश्चर्यजनक परिणाम हो सकते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक मोटा लोहा लेकर उसे किसी कड़ी वस्तु में धँसाया जाय तो उसमें भारी कठिनाई पड़ेगी । किन्तु यदि उसकी नोंक पतली कर दी जाय तो साधारण दबाब से ही वह गहराई तक धँसता चला जायेगा । मोटे तार और सुई पतली नोंक का अन्तर सहज ही देखा जा सकता है । तार को कपड़े या कागज की तह में ठूँसना कठिन पड़ेगा किन्तु पतली नोंक वाली सुई सरलतापूर्वक प्रवेश करती चली जाएगी । लकड़ी, पत्थर, लोहे जैसे कड़े पदार्थों में छेद करने के लिए नोंकदार बरमें ही काम देते हैं । नोंक की इस चमत्कारी शक्ति का इतना ही रहस्य है कि बड़ी परिधि की अपेक्षा छोटी परिधि में जब दवाव केन्द्रित होता है तो उसकी शक्ति सहज ही बढ़ जाती है ।

ध्यानयोग का उद्देश्य मस्तिष्कीय विखराब को रोककर एक चिन्तन बिन्दु पर केन्द्रित कर सकने की प्रवीणता प्राप्त करना है । इस प्रयोग में जिसे जितनी सफलता मिलती जाती है उसकी अंतःचेतना में उसी अनुपात से बेधक प्रचण्डता उत्पन्न होती जाती है । शब्दभेदी वाण की तरह लक्ष्यवेध कर सकना उसके लिए सरल हो जाता है । यदि अध्यात्म उसका लक्ष्य होगा तो उस क्षेत्र में आशाजनक प्रगति होगी और विभूतियों से--दिव्य ऋद्धि-सिद्धियों से उसका व्यक्तित्व भरा-पूरा दिखाई पड़ेगा । यदि लक्ष्य भौतिक उन्नति है तो भी इस एकाग्रता का समुचित लाभ मिलेगा और अभीष्ट प्रयोजनों में आशाजनक सफलता मिलती चली जायगी । शक्ति का जब जिस दिशा में प्रयोग किया जायेगा तो उसी में सत्परिणाम प्रस्तुत होते चले जायेंगे ।

ध्यान की अद्भुत क्षमताओं के कारण उसका उपयोग जीवन प्राप्ति जीवन लक्ष्य प्राप्त जैसे महानतम उद्देश्यों के लिए भी किया जाता है । उपासना के साथ ध्यान को अविच्छिन्न रूप से जोड़ा जाता है । विभिन्न सम्प्रदायों तथा विधियों में उसके प्रकारों में थोड़ा बहुत अन्तर भले ही हो पर ध्यान का समावेश हर पद्धित में है अवश्य ।

उपासना क्षेत्र में ध्यान साकार और निराकार दो प्रकार के कहे गये हैं । एक में भगवान की अमुक मनुष्याकृति को मानकर चला जाता है दूसरे में प्रकाश पुंज की आस्था जमाई जाती है । तात्विक दृष्टि से यह दोनों ही साकार हैं । सूर्य जैसे बड़े और प्रकाश बिन्दु जैसे छोटे आकार का ध्यान रखना भी तो एक प्रकार की साकार उपासना ही है अन्तर इतना ही तो हुआ कि उसकी मनुष्य जैसी आकृति नहीं है । वास्तविकता यही है कि सामान्यतया उपासना करते समय मनुष्य को किसी तरह स्थूल प्रतीक, चाहे यह कैसा ही सूक्ष्म और व्याख्या से परे हो, सामने रखना ही पड़ता है जैसे नमाज पढ़ने वाले मुसलमान पश्चिम की तरफ मुँह करके नमाज पढ़ते हैं, और इसका कारण यही बतलाया जाता है कि कावा की मस्जिद उस दिशा में है । अन्य व्यक्त सूर्य या किसी प्रकार की ज्योति का ध्यान करते हैं। ये पदार्थ कितने ही सूक्ष्म हों पर प्राकृतिक दृष्टि से उनको साकार ही कहा जायेगा ।

ध्यान में केवल रूप देखते रहना भर पर्याप्त नहीं उसमें गहरी तन्मयता पैदा करनी होती है । साकार उपासना में इष्टदेव के समीप अति समीप होने और उनका साथ लिपट जाने--उच्चस्तरीय प्रेम के आदान-प्रदान की गहरी कल्पना करनी चाहिए । इसमें भगवान और जीव के बीच माता-पुत्र, पति-पत्नी, सखा-सहोदर, स्वामी-सेवक जैसा कोई भी सघन सम्बन्ध माना जा सकता है इससे आत्मीयता और अधिकाधिक घनिष्ठ बनाने में सहायता मिलती है । भक्त अपनी समस्त आकांक्षाओं और सम्प्रदायों को ईश्वर के लिए समर्पित करता है । और इसके बदले में वह सब कुछ पाता है जो ईश्वर स्वयं है । मनुष्य को सन्तुष्ट करने वाली ईश्वरीय सत्ता अपनी अनुभूति, आनन्द और उल्लास के रूप में छोड़ती है । भगवान से कुछ मिला या नहीं इसकी परख इस रूप में की जा सकती है कि उल्लास, आदर्शवादिता के प्रति उत्कंठा भरा उभार अंतःकरण में उमंगना आरम्भ हुआ या नहीं ? सद्भावना और सत्प्रवृत्ति अपनाने वाले को सहज ही मिलते रहने वाला आत्म-सन्तोष---आनन्द--अनुभव में आता है या नहीं ?

इस तथ्य को हजार बार हृदयंगम कर लिया जाना चाहिए कि ईश्वर का जीवन में समावेश श्रेष्ठ वृत्तियों के रूप में होता है । आदर्शवादी आकांक्षाएँ प्राणप्रिय प्रतीत होने लगने और तदनुरूप गति-विधियाँ अपनाने पर मिलने वाले आनन्द उल्लास की अनुभूति का स्तर ही ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र प्रमाण है ।

निराकार ध्यान में प्रायः सर्वत्र सूर्य के प्रकाश को ही माध्यम बनाया जाता है । प्रभातकाल के उदीयमान सूर्य का सविता देवता के प्रतीक रूप में दर्शन--उसकी दिव्य किरणों का शरीर मन और अन्तरात्मा में प्रवेश, उस प्रवेश की सत्कर्म सद्ज्ञान एवं सद्भाव के रूप में प्रतिक्रिया । इसी परिधि में निराकार ध्यान धारणा परिभ्रमण करती है । यज्ञाग्नि रूपी ईश्वर में आहुति द्रव्य की तरह जीव सत्ता का समर्पण नाले का गंगा में, बूँद का समुद्र में सम्पादन--दीपज्योति का सूर्य ज्योति में विलय--अर्ध्य जल का भाप बनकर व्यापक क्षेत्र में विस्तार-- पतंगें का दीपक को समर्पण जैसे कितने ही दृश्य चित्र कल्पना क्षेत्र में बनाये जा सकते हैं और उनके सहारे एकात्म भाव की अनुभूति का आनन्द लिया जा सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यहाँ यह तथ्य स्मरणीय है कि ध्यान में एकाग्रता का महत्त्व तो है किन्तु एकाग्रता ही ध्यान है यह भ्रम मन से निकाल देना चाहिए । एकाग्रता का अभ्यास क्रमशः होता है और वह समय साध्य है । इसलिए उसमें उतावली बरतने की आतुरता प्रदर्शित करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं । निरन्तर जीवन लक्ष्य का ध्यान रखा जाय तो उस धारा प्रवाह को 'एक दिशा' कहा जा सकता है और उससे एकाग्रता का वास्तविक प्रयोजन पूरा हो सकता है ।

वस्तुतः जिसे हम एकाग्रता कहते हैं वह सब चित्त की भागदौड़ को असीम से रोककर एक सीमित चित्र में प्रतिबन्धित करना है । मन बार-बार भागता है और उसे पकड़-पकड़ कर निश्चित ध्यान परिधि में लाया जाता है । यही प्रयोग चलता रहता है । पूर्ण एकाग्रता समाधि अवस्था है और वह पूर्णता तक जा पहुँचने पर ही मिलती है । उसके लिए किसी को भी अधीर नहीं होना चाहिए ।

यहाँ एकाग्रता का महत्त्व घटाया नहीं जा रहा है और न उसे त्याज्य या उपेक्षणीय कहा जा रहा है एकाग्रता की उपयोगिता में किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए इतने पर भी सर्व साधारण के मन में जमी हुई भ्रांति का निराकरण होना ही चाहिए कि--"भजन में मन न लगाना अर्थात् चित्त का एकाग्र होना आवश्यक है । वह है तो भजन की सफलता, नहीं है तो असफलता ।" इस चिन्तन को हटाकर यों सोचना चाहिए कि 'चित्त निरोध नहीं' चित्तवृत्तियों का निरोध' आवश्यक है । एकाग्रता नहीं 'एक दिशा' अभीष्ट है । यदि ऐसा बन पड़े तो समझना चाहिए कि ध्यान साधना की सही पृष्ठभूमि बन चली ।

ध्यान का सहीं स्वरूप हम समझें तथा उसका उपयोग ठीक ढंग से कर सकें तो हमारी पारलौकिक प्रगति के अनेक व्यवधान दूर हो सकते हैं । इसका महत्व समझते हुए अपने जीवन में इसका नियमित और संतुलित क्रम बिठाया जाना हर दृष्टि से कल्याणकारी है ।

जप और ध्यान समाप्त होने के बाद इष्ट के प्रति आभार व्यक्त करते हुए, उसे प्रणाम करना, स्तुति प्रार्थना आदि का पाठ करना उचित है । इसके लिए कोई श्लोक या पद याद हों, आवश्यक नहीं । आन्तरिक कृतज्ञता व्यक्त करते हुए अपने हृदयोद्गारों को इष्ट के सम्मुख व्यक्त कर देना चाहिए । विसर्जन की प्रार्थना करते हुए भाव रखना चाहिए कि इष्ट का अनुग्रह, देख-रेख, नियंत्रण हमारे ऊपर सदा बना रहे ।

उपासना के समय जो जलपात्र भर कर रखा गया तो उसे लेकर सूर्य के सामने अर्ध्य चढ़ा देना चाहिए । जिन देव शक्तियों को बुलाया गया था उनका तो विसर्जन भी कर दिया जाता है, किन्तु महाशक्ति का प्रतीक सविता सूर्य प्रत्येक रूप में हमें सदा उस महाशक्ति का बोध कराता, प्रकाश, प्रेरणा देता रहेगा ।

अर्ध्यदान समर्पण भावना का प्रतीक है । जिस प्रकार छोटे से पात्र में सीमित जल सूर्य के प्रति समर्पित होकर-वाष्प रूप में सारे वातावरण में फैल जाता है, उसी प्रकार हमारे शरीर में सीमित आत्म चेतना इष्ट के प्रति समर्पित होकर विश्व चेतना से एकाकार हो जाये, यह भाव अर्ध्यदान के समय उमड़ना-उभरना चाहिए ।

उपरोक्त आधार पर की गयी संक्षिप्त किन्तु व्यवस्थित उपासना इतनी लाभदायक सिद्ध होती है कि साधक स्वयं को नये ही परिवेष में अनुभव करने लगता है । लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही दिशाओं में उसकी क्षमता एवं गति बढ़ जाती है ।

हर समझदार व्यक्ति को अपने जीवन में उपासना अनिवार्य रूप से जोड़कर रखनी चाहिए । साथ ही अपने परिवार के हर सदस्य को इस दिशा में प्रेरणा देनी चाहिए । ताकि वे भी इस महान् प्रक्रिया का समुचित लाभ अपने जीवन में उठा सकें । प्रारम्भ में सन्तुलित उपासना का नियम बना लेना हर किसी के लिए सम्भव नहीं । किन्तु उनमें उपासना का बीजारोपण तो करना ही चाहिए । इसके लिए घर का वातावरण तथा परस्पर प्रेरणा का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है ।

घर में पूजा स्थल की स्थापना जहाँ स्वच्छता, सुसज्ञा की व्यवस्था हो उस स्थल पर हर व्यक्ति का श्रद्धा सहित, पवित्र होकर ही जाना, सामूहिक आरती, कीर्तन, भोजन को पहले प्रसाद के रूप में चढ़ाकर बाद में खाने पीने का क्रम आदि प्रक्रियायें हर सदस्य में श्रद्धा-तत्व का विकेास करने में सहायक होती हैं ।

घर के हर सदस्य को प्रेरित किया जाय कि भोजन के पूर्व, काम पर जाने के पूर्व, नियमित रूप से पूजा स्थल पर जाकर भगवान को प्रणाम करें । सही दिशा में प्रेरणा एवं तदनुरूप क्षमता प्राप्ति के लिए प्रार्थना करें । वहाँ बैठकर गायत्री मंत्र लेखन, गायत्री चालीसा पाठ जैसे सुगम क्रम भी प्रारम्भ में चलाये जा सकते हैं । क्रमशः जब श्रद्धा भाव पुष्ट होता चलता है तो स्वतः ही उपासना क्रम अधिक व्यवस्थित तथा गम्भीर होता चला जाता है । फलस्वरूप जीवन में दिव्यता का समावेश होता चलता है ।

विशिष्ट उपासना-अनुष्ठान

उपासना की अनिवार्यता स्वीकार करते हुए तत्वज्ञों ने हर मनुष्य को उसे अपने जीवन में समाविष्ट रखने का आग्रह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया है । पूर्व--पाश्चात्य सभी क्षेत्रों के महापुरुषों के जीवन में उपासना अभिन्न रूप से जुड़ी रही है । अस्तु भोजन विश्राम की तरह उपासना क्रम भी जीवन चर्या का अंग बनाकर चलना उचित है । सामान्य स्थिति में मनुष्य उपासना के लिए सीमित समय ही निकाल पाता है, किन्तु कभी-कभी अनुकूल परिस्थितियों में अधिक उपासना क्रम अपनाना भी सम्भव होता है । उसे भी व्यवस्थित ढंग से ही किया जाता है । ऐसे विशिष्ट उपासना अभियान को अनुष्ठान कहा जाता है ।

'अनुष्ठान' की पद्धति विस्तृत अर्थों में जीवन के हर क्षेत्र में अपनायी जाती है । खिलाड़ी खेलता रोज है किन्तु कभी-कभी अपना स्तर बढ़ाने के उद्देश्य से प्रशिक्षण शिविरों में विशेष अभ्यास क्रम चलाता है । सैनिक--स्काउट नित्य परेड करते हैं, किन्तु कभी-कभी विशेष कैम्प लगाकर अधिक से अधिक समय उसी क्रम में लगाते हैं । विचारक--परस्पर विचार करते ही रहते हैं किन्तु कई बार विशेष रूप से परामर्श गोष्ठियों का आयोजन करके लगभग पूरे समय उसी में लगे रहते हैं । इन सबको विशिष्ट अनुष्ठान कहा जा सकता है । हर अनुष्ठान से व्यक्ति को उस दशा में विशेष गति प्राप्त होती है । यही बात उपासना अनुष्ठान पर भी लागू होती है । आत्मिक स्तर में वृद्धि के लिए साधक विशेष उपासना किसी निश्चित समय तक, निश्चित मात्रा में निश्चित क्रम से करता है । इसे ही अनुष्ठान कहा जाता है ।

यह कम अवधि के, लम्बी अवधि के, कई प्रकार के होते हैं । विभिन्न उपासना पद्धति अपनाने वाले लोग उनमें विभिन्न प्रकार के कर्मकाण्ड करते हैं । उद्देश्य तथा प्रतिफल सभी की श्रद्धा तत्व को विशेष रूप से जाग्रत करके आत्म चेतना को परमात्म चेतना के अधिकाधिक निकट लाना होता है । अनेक लोग अपना सांसारिक कष्ट, कठिनाइयों के निवारण अथवा आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भी अनुष्ठान करते हैं । गलत उन्हें भी नहीं कहा जा सकता । उनके पीछे भी यदि सदाशयता है तो महाशक्ति उसमें भी सहायता करती है । अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा होना, समर्थ सहयोग प्राप्त हो जाना, स्वतः अपने अन्दर असाधारण पुरुषार्थ का जान जाना, नई सूझ-बूझ आ जाने जैसे अनेक प्रत्यक्ष एवं परोक्ष तरीकों से वह सहायता मिलती है । किन्तु तत्वतः अनुष्ठान का उद्देश्य जीव चेतना का ब्रह्म चेतना को आत्मा को परमात्मा के अधिकाधिक निकट लाना, उस महास्रोत से स्वयं को जोड़ लेना, उस नाते अनन्त विभूतियों तथा अक्षय सन्तोष के अधिकारी बनने की पात्रता प्राप्त करना ही अनुष्ठान का उद्देश्य होता है ।

गायत्री उपासना पद्धति में अनुष्ठानों के साथ गायत्री मंत्र के जप का विधान विशेष रूप से जुड़ा रहता है । उसी के आधार पर उनका विभाजन--वर्गीकरण किया जाता है । जैसे--

[१] चौबीस हजार का लघु अनुष्ठान--इसे सामान्य रूप से ९ दिन में पूरा करने का विधान है । नित्य २७ माला का जप करने से यह ९ दिन में पूरा हो जाता है ।

[२] सवालक्ष का पुरश्चरण--इसे ४० दिन में पूरा करने का विधान है । नित्य ३३ माला का जप इस अवधि में करना होता है ।

[३] चौबीस लक्ष्य का महापुरश्चरण--यह एक वर्ष में पूरा किया जाता है । इसके लिए नित्य ६६ माला का जप करना होता है ।

जप में कितना समय लगेगा--यह बात साधक की जप की गति पर निर्भर करती है । औसत व्यक्ति ६ मिनट में एक माला के हिसाब के एक घंटे से १० माला कर लेता है । इसी हिसाब से अनुष्ठान में जप के समय की गणना की जा सकती है ।

यह अनुष्ठान कभी भी अपनी सुविधा के अनुसार प्रारम्भ किये जा सकते हैं । २४ हजार का लघु अनुष्ठान नवरात्रियों में करने का प्रयास विशेष रूप से साधक करते हैं । सामान्य क्रम में तो अपनी सुविधानुसार कभी भी अनुष्ठान किये ही जा सकते हैं ।

जब अनुष्ठान करना हो तो किसी पवित्र स्थान को इसके लिए निश्चित कर लेना चाहिए । घर में, मंदिर में, जलाशय के किनारे, कहीं भी सुविधानुसार स्थान चुना जा सकता है। वहाँ एक चौकी पर माँ गायत्री की प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये । निराकार उपासक मंत्र चित्र, रख सकते हैं । कलश और दीपक का स्थान भी उसी चौकी पर रहे । गुरु का प्रतीक एक नारियल कलावा लपेटकर रखें ।

जिस दिन अनुष्ठान प्रारम्भ करना हो उसी दिन प्रातः देवपूजन करके हाथ में अक्षत्, पुष्प, जल लेकर संकल्प करना चाहिए । संकल्प परम्परागत संस्कृत भाषा में कहा जाय अथवा अपनी भाषा में कह लें--उसमें कोई हानि नहीं । भावनापूर्वक इष्ट को साक्षी बनाते हुए अनुष्ठान की घोषणा करनी चाहिए । उसके बाद जप का प्रारम्भ किया जाय जितनी माला नित्य जपनी हों उसका आधे से अधिक भाग प्रातःकाल ही पूरा कर लेना चाहिए । शेष जप मध्यान्ह अथवा सायंकाल सुविधापूर्वक कर लेना उचित है । सामान्य क्रम इस प्रकार है--

(१) प्रारम्भ में ब्रह्म सन्ध्या करें । उसके बाद देव प्रतिमा-चित्र का भावनापूर्वक भजन करें ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(२) पूजन के बाद जप प्रारम्भ करें । जप के बीच लघुशंका के लिये उठना पड़े तो पुनः पवित्रीकरण आदि करके जप प्रारम्भ कर देना चाहिए ।

(३) प्रातःकाल के जप के बाद मध्यान्ह या सायंकाल के जप में देवपूजन करना आवश्यक नहीं । केवल ब्रह्म संध्या करके जप प्रारम्भ कर देना चाहिये ।

(४) जप के समय जल पात्र एवं अग्नि का प्रतीक दीपक अथवा अगरबत्ती पूजा चौकी पर रखें । जप समाप्ति पर सूर्य की ओर मुख करके जल का अर्ध्य चढ़ा देना चाहिये।

(५) जप उसी निश्चित स्थान पर करना चाहिए । मजबूरी में कहीं जाना पड़े यात्रा करनी पड़े तो प्रति बार जप करने में एक माला प्रायश्चित की करके अनुष्ठान चालू रखना चाहिये ।

अनुष्ठान काल में कुछ विशेष नियमों का पालन किया जाता है--

(१) **उपवास**--उन दिनों भोजन का विशेष नियम चलाना चाहिये । फल शाक एवं दूध आदि पदार्थों पर निर्वाह । नमक एवं चीनी या गुड़ आदि दोनों का त्याग--अस्वाद व्रत। एक समय अन्नाहार एक समय दूध आदि । अपनी सामर्थ्यानुसार उपवास का कुछ न कुछ नियम चलाया चाहिये। जो खाया जाय शुद्धि सात्विक ही हो । फलाहार के नाम पर गरिष्ठ पदार्थ बिल्कुल न खायें ।

(२) **ब्रह्मचर्य**--अनुष्ठान काल में शारीरिक एवं मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन पूरी तरह तत्परता से करना चाहिये ।

(३) **तप**--इसमें भूमि पर या तख्त पर सामान्य वस्त्र बिछाकर सोना चाहिए । अधिक से अधिक समय मौन रहना चाहिए । वस्त्र धुले हुये एवं कम संख्या में पहनना आदि नियम हैं ।

(४) **सहृदयता**--हिंसा जन्य पदार्थों का उपयोग न करना जैसे चमड़े के जूते न पहनना । कटुशब्दों का प्रयोग न करना । किसी का अहित न करना न सोचना आदि

(५) **स्वावलम्बन**--अपनी सेवा में हजामत बनवाना, वस्त्र धोना आदि स्वतः करना ।

यह नियम तो सामान्य हैं । किन्तु इनके पालन से साधक की मनोभूमि में सात्विकता का उभार आता है । सात्विकता का जितना संचार होगा, उपासना उतनी ही फलवती होगी । उस तामसिक राजसिक पदार्थों से लेकर प्रसंगों तक से परहेज करना चाहिये ।

अनुष्ठान पूरा होने पर गायत्री यज्ञ द्वारा पूर्णाहुति कर देनी चाहिए । जप की शतांश आहुति करने का विधान है । यदि कुल जप का सतांश जप अतिरिक्त कर दिया जाय तो न्यूनतम एक माला का हवन करके भी पूर्णाहूति की जा सकती है ।

पूर्णाहुति के बाद यथाशक्ति कन्याओं को भोजन करा देना उचित है । सतसाहित्य का वितरण सत्कार्यों के लिए अंशदान भी इस अवसर पर करने का विधान है ।

जिन्हें समय मिले उन्हें इस प्रकार छोटे-छोटे ही सही गायत्री उपासना के अनुष्ठान करने चाहिये । इससे जीवन में नया प्रकाश आता है । माँ बेटे का ध्यान सदा ही रखती है । किन्तु जब पुत्र किसी कारणवश दुःखी होकर या उल्लास से भरकर माँ को पुकारता है तो वह दौड़ पड़ती है। अनुष्ठान साधना द्वारा महाशक्ति का इसी प्रकार आकर्षण किया जाता है । ठीक प्रकार सन्तुलित मनोभूमि रखकर श्रद्धा एवं तत्परतापूर्वक किये गये अनुष्ठान जीवन में चमत्कारी परिवर्तन लाते देखे जाते हैं ।

उपासना एक महत्त्वपूर्ण विज्ञान है । उसे अपनाकर जीवन को विभूति सम्पन्न एवं सार्थक बनाने का प्रयास हर विचारवान् व्यक्ति को करना ही चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपासना का तत्व दर्शन और विज्ञान

उपासना अर्थात् ईश्वर के समीप बैठना

आध्यात्म साधना को ज्ञान और विज्ञान-इन दो पक्षों में विभाजित कर सकते हैं । ज्ञान पक्ष वह है जो पशु और मनुष्य के बीच का अन्तर प्रस्तुत करता है और प्रेरणा देता है कि इस सुर-दुर्लभ अवसर का उपयोग उसी प्रयोजन के लिए किया जाना चाहिए, जिसके लिए वह मिला है । इसके लिए किस तरह सोचना और किस तरह की रीति-नीति अपनाना उचित है, इसे हृदयंगम कराना ज्ञान पक्ष का काम है । स्वाध्याय, सत्संग, कथा, प्रवचन, पाठ, मनन, चिन्तन जैसी प्रक्रियाओं का सहारा इसी प्रयोजन के लिए लिया जाता है ।

इसी पक्ष का दूसरा चरण यह है कि धर्म, सदाचार, संयम, कर्त्तव्य-पालन के उच्च सिद्धान्तों को अपनाकर आदर्शवादी जीवन जिया जाय । अवांछनीय चिन्तन और कर्तृत्व में ही मनुष्य की अधिकांश शक्तियों का अपव्यय होता रहता है, दुर्बुद्धिग्रस्त और दुष्कर्म निरत्त व्यक्ति अपना ओजस नष्ट करते रहते हैं और उस प्राण शक्ति को गँवा बैठते हैं जो उच्चस्तरीय प्रगति के लिए उसी प्रकार आवश्यक है जैसे मोटर के लिए पैट्रोल । बिना तेल के मोटर कैसे चलेगी, बिना प्रखर प्राण शक्ति के आत्मिक प्रगति किस प्रकार सम्भव होगी । अस्तु ज्ञान साधना द्वारा चिन्तन को उत्कृष्ट और कर्तृत्व को आदर्श बनाया जाता है । यह जमीन को जोतकर खाद-पानी लगाकर उर्वर बना लेने की तरह है। ऐसी ही परिष्कृत मनोभूमि पर उपासना का बीजारोपण किया जाता है, तभी बोई हुई फसल लहलहाती है । ऐसी ही उर्वरा भूमि पर लगाया गया उद्यान फलता-फूलता देखा जाता है ।

आत्मोत्कर्ष की आकांक्षा बहुत लोग करते हैं, पर उसके लिए न तो सही मार्ग जानते हैं और न उस पर चलने के लिए अभीष्ट सामर्थ्य एवं साधन जुटा सकते हैं । दिग्भ्रान्त प्रयासों का प्रतिफल क्या हो सकता है ? अन्धा, अन्धे को कहाँ पहुँचा सकता है ? भटकाव में भ्रमित लोग लक्ष्य तक किस प्रकार पहुँच सकते हैं ? आज की यही सबसे बड़ी कठिनाई है कि आत्म-विज्ञान का न तो सही स्वरूप स्पष्ट रह गया है और न उसका क्रिया पक्ष, साधन विधान ही निभ्रान्त है । इस उलझन में एक सत्यान्वेषी जिज्ञासु को निराशा ही हाथ लगती है ।

हमें यहाँ आध्यात्म के मौलिक सिद्धान्तों को समझना होगा । व्यक्ति के व्यक्तित्व में से अनगढ़ तत्वों को निकाल बाहर करना और उसके स्थान पर उस प्रकाश को प्रतिष्ठापित करना है जिसके आलोक में जीवन को सच्चे अर्थों में विकसित एवं परिष्कृत बनाया जा सके । इसके लिए मान्यता और क्रिया क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रस्तुत करने पड़ते हैं । वे क्या हों, किस प्रकार हों, इसका शिक्षण थ्यौरी और प्रैक्टिस के दोनों ही अवलम्बन साथ-साथ लेकर चलना होता है । थ्यौरी का तात्पर्य है वह सद्ज्ञान, वह आस्था-विश्वास जो जीवन को उच्चस्तरीय लक्ष्य की ओर बढ़ चलने के लिए सहमत कर सके । इसे आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान, तत्वज्ञान और सद्ज्ञान के नामों से जाना-समझा जाता है-- योग इसी को कहते हैं । ब्रह्म विद्या का तत्वदर्शन यही है । प्रेक्टिश का तात्पर्य है वे साधन विधान, जो हमारी क्रियाशीलता को दिशा देते हैं और बताते हैं कि जीवनयापन की रीति-नीति क्या होनी चाहिए और गतिविधियाँ किस क्रम से निर्धारित की जानी चाहिए ? साधनात्मक क्रियाकृत्यों का यह उद्देश्य समझ लिया जाय तो फिर किसी को भी न तो अनावश्यक आशा बाँधनी पड़ेगी और न अवांछनीय रूप से निराश होना पड़ेगा ।

साधना का दूसरा पक्ष उत्तरार्द्ध उपासना है । विविध विधि शारीरिक और मानसिक क्रिया कृत्य इसी प्रयोजन के लिए पूरे किये जाते हैं । शरीर से व्रत, मौन, अस्वाद, ब्रह्मचर्य, तीर्थयात्रा, परिक्रमा, आसन, प्राणायाम, जप, कीर्तन, पाठ, बन्ध, मुद्राएँ, नेति, धोति, वस्ति, ज्योति, वज्रोली, कपाल भाति जैसे क्रियाकृत्य किये जाते हैं । मानसिक साधनाओं में प्रायः सभी चिन्तन परक होती हैं और उनमें कितने ही स्तर के ध्यान करने पड़ते हैं । नादयोग, बिन्दुयोग, लययोग, ऋजुयोग, प्राणयोग, हंसयोग, षट्चक्र वेधन, कुण्डलिनी जागरण जैसे बिना किसी श्रम या उपकरण के लिए किये जाने वाले मात्र मनोयोग के सहारे सम्पन्न किये जाने वाले सभी कृत्य ध्यानयोग की श्रेणी में गिने जाते हैं । स्थूल शरीर से श्रम परक, सूक्ष्म शरीर से चिन्तनपरक उपासनाएँ की जाती हैं । कारण शरीर से केवल भावना की पहुँच है । निष्ठा, आस्था, श्रद्धा का भाव भरा समन्वय 'भक्ति' कहलाता है । प्रेम संवेदना इसी को कहते हैं । यह स्थिति तर्क से ऊपर है । मन और बुद्धि का इसमें अधिक उपयोग नहीं हो सकता है । भावनाओं की उमंग भरी लहरें ही अन्तःकरण के मर्मस्थल का स्पर्श कर पाती हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपासना क्षेत्र में लोगों की असफलता का कारण यही है कि लोग उसे एकांगी बना देते हैं । उपासनात्मक कर्मकाण्डों को ही सब कुछ मानकर चलने से उसके साथ अन्तःकरण की गहराई तक उसका प्रभाव नहीं होने पाता। उपासना स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों शरीरों से की जानी चाहिए, उन्हें उपासना के योग्य बनाया जाना चाहिए, तभी उसका समुचित लाभ प्राप्त किया जा सकता है । इस दृष्टि से तीनों शरीरों के क्षेत्र और क्षमता के सम्बन्ध में हमें भली प्रकार जानकारी रखनी चाहिए ।

मनुष्य के अस्तित्व को तीन हिस्सों में बाँटा गया है- सूक्ष्म, स्थूल और कारण । यह तीन शरीर माने गये हैं । दृश्य सत्ता के रूप में हाड़-माँस का बना सबको दिखायी पड़ने वाला चलता-फिरता, खाता-सोता, स्थूल शरीर है । क्रियाशीलता इसका प्रधान गुण है । इसके नीचे वह सत्ता है जिसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं । इसका कार्य समझ और केन्द्र मस्तिष्क है । शरीर विज्ञान में अनाटौमी-फिजियालौज, दो विभाजन हैं । मनः शास्त्र को साइकोलोजी और पैरा साइकोलोजी इन दो भागों में बाँटा गया है । मन के भी दो भाग हैं- एक सचेतन, जो सोचने विचारने के काम आता है और दूसरा अचेतन, जो स्वभाव एवं आदतों का केन्द्र है । रक्त संचार, श्वास-प्रश्वास, आकुंचन-प्रकुंचन, निमेष-उन्मेष जैसी स्वसंचालित रहने वाली क्रियाएँ इस अचेतन मन की प्रेरणा से ही सम्भव होती हैं।। तीसरा कारण शरीर भावनाओं का, मान्यताओं एवं आकांक्षाओं का केन्द्र है, इसे अन्तःकरण कहते हैं । इन्हीं में 'स्व' बनता है । जीवात्मा की मूल सत्ता का सीधा सम्बन्ध इसी 'स्व' से है, यह 'स्व' जिस स्तर का होता है, उसी के अनुसार विचार तन्त्र और क्रिया तन्त्र काम करने लगते हैं । जीवन की सूत्र संचालक सत्ता यही है । कारण शरीर का स्थान हृदय माना गया है । रक्त फेंकने वाली और धड़कते रहने वाली थैली से यह केन्द्र भिन्न है । इसका स्थान दोनों ओर की पसलियों के मिलने वाले आमाशय के ऊपर वाले स्थान को माना गया है । साधना विज्ञान में हृदय गुफा में अंगुष्ठ प्रमाण प्रकाश ज्योति का ध्यान करने का विधान है । यहाँ जीवात्मा की ज्योति और उसका निवास 'अहम्' मान्यता के भाव केन्द्र में माना गया है । शरीर में इसका केन्द्र जिस 'हृदय में है, उसे अन्तःकरण नाम दिया गया है । 'कारण शरीर' के रूप में इसी की व्याख्या की जाती है ।

यह तीनों शरीर एक से एक बढ़कर क्षमताएँ अपने भीतर दबाये बैठे हैं । इनमें अस्त-व्यस्तता एवं विकृति भर जाने से वे अपनी विलक्षण शक्ति गँवा बैठते हैं और उनके द्वारा जो लाभ मिलना चाहिए था, मिल नहीं पाता । इतना ही नहीं, वे रुग्ण होकर उलटे त्रास देने लगते हैं । तब इन विभूतियों भरे शक्ति परिवार द्वारा जो हर्षोल्लास युक्त चमत्कारी उपलब्धियाँ मिल सकती थीं और सुर-दुर्लभ कहलाने वाला मनुष्य जीवन सार्थक हो सकता था, उसकी सम्भावना नष्ट हो जाती है । उलटे उस दुर्गति में पड़ना होता है, जिसमें आजकल अधिकांश मनुष्य फँसे हुए हैं ।

स्थूल शरीर यदि स्वस्थ है तो उसके द्वारा जो लाभ मिलते हैं उनकी थोड़ी-बहुत जानकारी हम सभी को है । नीरोग शरीर देखने में सुडौल सुन्दर लगता है-- उसका आकर्षण खिले फूल की तरह सभी को मोहता और आकर्षित करता है । अधिक श्रम करना, कठिन कामों को सहज निपटा कर स्वयं लाभान्वित होना और दूसरों पर छाप छोड़ना निरोगिता की स्थिति में ही सम्भव होता है । इन्द्रियों के दुहरे काम हैं, उनके माध्यम से क्रिया शक्ति कार्यान्वित होती है और बदले में धन, ज्ञान, अनुभव, कौशल आदि उपलब्ध कराती है । ज्ञानेन्द्रियों के अपने उपयोग आनन्द भी हैं । जीभ से स्वाद, कामेन्द्रिय से विषय सुख, नेत्रों से सौन्दर्यानुभूति, कान से मधुर श्रवण, त्वचा से कोमल स्पर्श के आनन्द मिलते हैं । आहार की तृप्ति गहरी-निद्रा, स्फूर्ति एवं सक्रियता कितनी उपयोगी और सुखद है, इसे हर कोई जानता है । शरीर की विशेष साधना कर लेने पर लोग चमत्कारी प्रदर्शन करके गौरवान्वित होते हैं । शिल्पी, कलाकार, पहलवान, खिलाड़ी, सर्कस के जादूगर, दुस्साहस भरे कीर्तिमान स्थापित करने वाले वस्तुतः शरीर साधना के निष्णात ही कहे जा सकते हैं । यों मनोयोग का समन्वय भी उनकी सफलताओं में जुड़ा रहता है । अकेला पंचतत्वों का शरीर तो बिना चेतन मन की सहायता के हिलडुल नहीं सकता, फिर बड़ी उपलब्धियाँ तो उसके लिए सम्भव कैसे हो सकती हैं । यह मनोयोग जो शरीर संचालन के काम आता है, स्थूल शरीर का ही एक भाग माना गया है । इसी से मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय कहते हैं ।

स्थूल शरीर की सक्षमता के फलस्वरूप ही संसार की अनेकानेक भौतिक, उपलब्धियाँ मिलती हैं । सांसारिक सुखद वस्तुओं को प्राप्त करने और व्यक्तियों को सहयोग देकर बदले में सहयोग पाने का आनन्द देने में शरीरगत सक्रियता ही प्रधान कारण होती है । कर्म की महिमा सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है, कर्मफल से ही सुख-दुःख मिलते हैं । कर्म का स्थूल परिणाम शरीरगत सक्रियता के साथ ही जुड़ता है । दण्ड, पुरस्कार इसी कर्मशीलता के आधार पर मिलते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहलवानों में देखी जाने वाली बलिष्ठता, कलाकारों में पायी जाने वाली फुर्ती और सैनिकों जैसी चुस्ती ही मात्र आरोग्य की निशानी नहीं है । इसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंश है जीवनी शक्ति की प्रचुरता, जिसे जीवट भी कह सकते हैं । रक्त अशुद्ध होने या कोई भीतरी अवयव क्षीण हो जाने पर भी इस जीवट के आधार पर कोई रुग्ण दीखने वाला मनुष्य स्वस्थ लोगों की तुलना में अधिक सक्रिय रह सकता है और अधिक महत्त्वपूर्ण काम निपटा सकता है । इसे 'जिजीविषा' का नाम ही दिया जा सकता है । इसके सहारे मौत से जूझा जा सकता है और अस्वस्थता के भार से दबे होने पर भी प्रबल पुरुषार्थियों जैसे प्रखर कर्तृत्व सम्पन्न करते रहा जा सकता है । भीष्म के शरशैय्या पर पड़े रहने पर भी उत्तरायण सूर्य आने तक की प्रतीक्षा में जीवित रहना और आद्य शंकराचार्य के भयंकर फोड़े से संत्रस्त रहने पर भी आश्चर्यजनक सक्रियता का प्रमाण देना जैसे असंख्यों प्रमाण ऐसे मिलते हैं, जिनमें गाँधी जैसे दुर्बल और राजेन्द्र बाबू जैसे रुग्ण मनुष्यों ने पूर्ण स्वस्थ मनुष्यों से भी आगे बढ़कर ऐसे काम करके दिखाये जिन पर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है ।

योग साधना का प्रतिफल आरोग्य के मूल संस्थानों तक पहुँचता और उस जीवट-जिजीविषा को जगाता है, जिसे पाकर हर स्तर का शरीर ऐसे काम कर सकता है, जो सामान्य लोगों को चमत्कार जैसे प्रतीत हों ।

सूक्ष्म शरीर अर्थात् चिन्तन चेतना की दिव्य ज्योति । इसका मोटा लाभ मस्तिष्क की तीक्ष्णता, स्मरण शक्ति, दूरदृष्टि, गहराई में जा पहुँचने वाला पर्यवेक्षण-सूझबूझ आदि के रूप में देखा जाता है । मन्द बुद्धि और तीक्ष्ण बुद्धि होने का फैसला इस आधार पर किया जाता है कि उसकी सूझबूझ एवं समझदारी किस स्तर की है ? शारीरिक बलिष्ठता और सक्रियता के आधार पर मिलने वाले सुखों और लाभों की तरह मानसिक सक्षमता के सुखद प्रतिफल भी कम नहीं हैं । स्कूली पढ़ाई ऊँची श्रेणी में उत्तीर्ण करने वाले लोगों को अफसरी के ऊँचे पद मिलते हैं । वकील, डाक्टर, साहित्यकार, वैज्ञानिक आदि बुद्धिजीवी वर्ग के लोग अकल की कमाई ही खाते हैं । व्यापारी, शिल्पी, कलाकार मात्र शारीरिक मेहनत के आधार पर उन्नतिशील नहीं बनते, उनकी चिन्तन प्रक्रिया भी उन कार्यों में तन्मयतापूर्वक संलग्न रहती है । शरीर की सक्रियता और मन की तन्मयता का संयोग जहाँ जितनी अधिक मात्रा में हो रहा होगा वहाँ उसी अनुपात में एक से एक बढ़ी-चढ़ी सफलताएँ भी सामने प्रस्तुत होती चली जा रही होंगी ।

बुद्धि वैभव का मूल्य समझा जाता है और ज्ञान प्राप्ति के लिए स्कूल, कालेजों के माध्यम से बहुत श्रम-समय एवं धन खर्च करके उसके लिए अथक प्रयत्न किया जाता है । स्वाध्याय सम्पर्क, परिभ्रमण, विचार विनिमय, अभ्यास आदि के अन्य उपाय भी ऐसे हैं, जिनके सहारे ज्ञानवृद्धि का पथ प्रशस्त होता है । शरीर कौशल की तरह बुद्धि वैभव की भी अपनी उपलब्धियाँ हैं । अभिनव शोध कार्यों में, अन्वेषण पर्यवेक्षणों में, आवरणों के पर्त भेदकर वस्तुस्थिति समझने में सूक्ष्म बुद्धि ही काम करती है । यह उस अक्लमन्दी से ऊपर की चीज है जो दैनिक कार्य-व्यवसायों में कई तरह की सफलताएँ प्रस्तुत करती हैं । यह किस प्रकार पाई या बढ़ाई जा सकती है इसका कोई बहिरंग आधार अभी बन नहीं पाया है । साधारण अक्लमन्दी की दृष्टि से एक से एक चतुर और उस्ताद लोग हर जगह भरे पड़े हैं पर गहराई में गोता मार कर मोती बीन लाने का सौभाग्य किन्हीं विरलों को ही मिला होता है । वह कौशल जिनके भी हाथ लग जाता है वे सामान्य परिस्थितियों में जन्मने और सामान्य लोगों के बीच पलने पर भी विचित्र तरीकों से आगे बढ़ते हैं और आड़ी-टेढ़ी पगडंडियाँ को पार करते हुए कहीं से कहीं जा पहुँचते हैं । उनके दूसरे साथी आश्चर्य करते रह जाते हैं कि बहुत समय तक एक सी स्थिति में रहने पर भी एक इतना आगे निकल गया और दूसरा जहाँ का तहाँ रह गया । इस अन्तर का एक ही कारण है-- प्रस्तुत परिस्थितियों से श्रेष्ठतम लाभ उठा लेने की सन्तुलित सूझबूझ का बाहुल्य । एक को सब कुछ सामान्य ही दीखता है, पर दूसरा उसी स्थिति या सामग्री में से बहुत कुछ असामान्य खोज निकालता है । खोजता ही नहीं, अवसर का उपयोग भी करता है । प्रगति के चरण सदा इसी आधार पर बढ़ते हैं । सामान्य मनुष्य इसी आधार पर असामान्य बनते हैं और सफलता प्राप्त कर सम्मानित ऐतिहासिक व्यक्तियों की पंक्ति में जा बैठते हैं । कालिदास, वोपदेव, वरदराज जैसे आरम्भ में अति मूर्ख समझे जाने वाले लोगों के कालान्तर में व्युत्पन्न मति महामनीषियों की श्रेणी में गिने जाने लगने के उदाहरण यही बताते हैं कि हर किसी में प्रसुप्त पड़ी चिन्तन चेतना की दिव्य ज्योति को यदि जाज्वल्यमान किया जा सके तो कोई भी व्यक्ति वर्तमान की तुलना में अपने भविष्य को निश्चित रूप से उज्ज्वल बना सकता है ।

मनुष्य यदि अपने तीनों शरीरों की क्षमताओं का ठीक ठीक उपयोग कर सके तो देव दुर्लभ जीवन और सद्गति प्राप्त कर सकता है । किन्तु आत्मबल के अभाव में वैसा हो नहीं पाता । उपासना, साधना द्वारा मनुष्य में जब आत्म-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बल का विकास होता है तो स्वेच्छाचारी मन और इन्द्रियाँ उसके आज्ञाकारी बन जाते हैं । अन्तरंग आस्थाएँ इतनी सबल हो जाती हैं कि उनके आगे स्वेच्छाचारिता चल नहीं पाती । मानवीय चेतना इस शरीर संस्थान की स्वामी है । शरीर, मन, बुद्धि आदि तो उसके सेवक सहयोगी भर हैं । वे समर्थ-सशक्त तो हैं किन्तु उनमें अवज्ञा करने की कोई शक्ति नहीं । आस्थाएँ ही प्रेरणा देती हैं और उसी पैट्रोल से धकेले जाने पर जीवन, स्कूटर के दोनों पहिये चिन्तन और कर्तृत्व सरपट दौड़ने लगते हैं । व्यक्तित्व क्या है ? आस्था, मनुष्य क्या है ? श्रद्धा । चेष्टाएँ क्या हैं ? आकांक्षा की प्रतिध्वनि । गुण, कर्म, स्वभाव अपने आप न बनते हैं न बिगड़ते हैं । आस्थाएँ ही आदतें बनकर परिपक्व हो जाती हैं, तो उन्हें स्वभाव कहते हैं । अभ्यासों को ही गुण कहते हैं । कर्म आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए शरीर और मन को संयुक्त रूप से जो श्रम करना पड़ता है, उसी को कर्म कहते हैं । इन तथ्यों को समझ लेने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तित्व के स्तर और उसकी प्रतिक्रिया के रूप में आने वाले सुख-दुःखों की अनुभूति होती रहती है । प्रसन्नता और उद्विग्नता को यों परिस्थितियों के उतार चढ़ावों से जोड़ा जाता है, पर वस्तुतः वे मनःस्थिति के सुसंस्कृत और अनगढ़ होने के कारण सामान्य जीवन में नित्य ही आती रहने वाली घटनाओं से ही उत्पन्न अनुभूतियाँ भर होती हैं । कोई घटना न अपने आप में महत्वपूर्ण है और न महत्त्वहीन । यहाँ सब कुछ अपने ढर्रे पर लुढ़क रहा है । सर्दी-गर्मी की तरह भाव और अभाव का, जन्म-मरण और हानि-लाभ का क्रम चलता रहता है । हमारे चिन्तन का स्तर ही उनमें कभी प्रसन्नता अनुभव करता और कभी उद्विग्नता हो उठता है । अनुभूतियों में परिस्थितियाँ नहीं, मनःस्थिति की भूमिका ही काम करती है ।

जीवन के सफेद और काले पक्ष को समझ लेने के उपरान्त, सहज ही यह प्रश्न उठता है कि क्या ऐसा सम्भव नहीं है कि परिस्थितियों के ढाँचे में ढले लोक-प्रवाह में बहते हुए, संग्रहीत कुसंस्कारों से प्रेरित, वर्तमान अनगढ़ जीवन को, अपनी इच्छानुसार अपने स्तर का फिर से गढ़ा जाय और प्रस्तुत निकृष्टता को उत्कृष्टता में बदल दिया जाय ? उत्तर 'ना' और हाँ, दोनों में दिया जा सकता है 'ना' उस परिस्थिति में जब आन्तरिक परिवर्तन की उत्कृष्टता आकांक्षा का अभाव हो और उसके लिए आवश्यक साहस जुटाने की उमंगें उठती न हों । दूसरों की कृपा, सहायता के बलबूते उज्ज्वल भविष्य के सपने तो देखे जा सकते हैं, पर वे पूरे कदाचित् ही कभी किसी के होते हैं, बाहरी, दैवी और संसारी सहायताएँ मिलती तो हैं, पर उन्हें पाने के लिए पात्रता की अग्नि-परीक्षा में गुजरते हुए अपनी प्रामाणिकता का परिचय देना पड़ता है । उतना झंझट सिर पर उठाने का मन न हो सहज ही कुछ इधर-उधर की 'हथफेरी' करके भौतिक सम्पदाएँ, आत्मिक विभूतियाँ पाने के लिए जी ललचाता भर हो तो कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व को महामानवों के स्तर पर गठित करना और उसके फलस्वरूप उच्चस्तरीय सिद्धियाँ प्राप्त कर सकना एक प्रकार से असम्भव ही है । उत्तर नकारात्मक समझा जा सकता है ।

'हाँ, उस स्थिति में कहा जा सकता है, जबकि साधक में यह विश्वास उभरा हो कि वह अपना स्वामी आप है। अपने भाग्य का निर्माण कर सकना उसके अपने हाथ की बात है । दूसरों पर न सही अपने शरीर और मन पर तो अपना अधिकार है ही और उस अधिकार का उपयोग करने में किसी प्रकार का कोई व्यवधान या हस्तक्षेप कहीं से भी नहीं हो सकता । मन की दुर्बलता ही है, जो ललचाती, भ्रमाती और गिराती है । तनकर खड़ा हो जाने पर भीतरी और बाहरी सभी दबाव समाप्त हो जाते हैं और अभीष्ट दिशा में निर्भयता एवं निश्चिन्तता के साथ बढ़ा जा सकता है । समुद्र की गहराई में उतरकर मोती ढूँढने में विशिष्ट प्रकार के साधन एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है । जीवन रूपी समुद्र की गहराई में उतर कर एक से एक बहुमूल्य रत्न ढूँढ़ लाना सरल है । इसमें किसी बाहरी साधन या उपकरण की जरूरत नहीं मात्र प्रचण्ड संकल्प शक्ति चाहिए । प्रचण्ड का तात्पर्य है-- धैर्य और साहस का उतनी मात्रा में समन्वय, जिससे संकल्प के डगमगाते रहने की बाल बुद्धि उभर आने की आशंका न हो । स्थिर बुद्धि से सतत् प्रयत्न करते रहने और फल प्राप्ति में देर होते देखकर अधीर न होने की, वरन् दूने उत्साह से प्रयत्न करने की सजीवता जहाँ भी होगी, वहाँ सफलता पैर चूमने के लिए सामने हाथ जोड़े, सिर झुकाये खड़ी होगी । ऐसे मनस्वी व्यक्ति अपने को, अपने वातावरण को, यहाँ तक कि अपने प्रभाव क्षेत्र को कायाकल्प की तरह बदल सकने में सफल हो सकते हैं । जीवन परिष्कार की भविष्यवाणी करते हुए ऐसे लोगों की सफल सम्भावना को 'हाँ' कहकर आश्वस्त किया जा सकता है । उपासनात्मक विधि-विधानों का सृजन तत्वदर्शी ऋषियों ने इसी उच्चस्तरीय सफलता की प्राप्ति के लिए तैयार किया है ।

उपासना का अर्थ है-- समीपता । ईश्वर और जीव में यों समीपता ही है । जब भगवान कण-कण में संव्याप्त हैं, तब मानवी काया एवं चेतना में भी वे समाये हुए क्यों नहीं होंगे । जो अपने में ओत-प्रोत ही है वह दूर कैसे ? और जो दूर नहीं हैं उसकी समीपता का क्या अर्थ ? इस असमंजस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की विवेचना इस प्रकार होती है कि यह समीपता उथली है, गहरी नहीं । माना कि शरीर में हलचलों के रूप में और मन में चिन्तन के रूप में विश्वव्यापी चेतना ही काम कर रही है, तो भी स्पष्ट है कि जीव की आस्थाएँ एवं आकांक्षाएँ दिव्य सत्ता के अनुरूप नहीं हैं । उनमें निकृष्टता का आसुरी अंश भी भरा पड़ा है, मनुष्यता की सार्थकता तभी है जब उसका स्वरूप एवं स्तर भी उसी के अनुरूप ऊँचा उठ सके । निम्न योनियों के जीवधारी पेट और प्रजनन के लिए जीते हैं । स्वार्थसिद्धि ही उनकी नीति होती है । शरीरगत लाभ ही उनके प्रेरणा स्रोत होते हैं । दूसरों के साथ वे आत्मभाव बहुत-थोड़ी मात्रा में मिला पाते हैं और परमार्थ परायणता के अंश नगण्य जितने ही देखे जाते हैं। यदि यही अन्तःस्थिति मनुष्य की भी बनी रहे तो समझना चाहिए कि कायिक विकास ही हुआ, चेतनात्मक नहीं । नर-कीट, नर-पशु उन्हें कहते हैं, जो शरीर संरचना भर से मनुष्य हैं । उनके दृष्टिकोण में पिछड़ी योनियों जैसी निकृष्ट स्वार्थपरता ही भरी पड़ी है । आयु की दृष्टि से प्रौढ़ हो जाने पर भी यदि सारा आचार-व्यवहार बच्चे जैसा ही बना रहे तो उस अविकसित स्थिति पर चिन्ता व्यक्त की जायगी। ठीक यही स्थिति उन मनुष्यों की है, जो शरीर से तो सुरदुर्लभ काया में प्रवेश पा गये पर उनके अपने दृष्टिकोण में, विचार में वही पिछड़ा हुआ क्रिया-कलाप संजोये रखा ।

इस दयनीय स्थिति से पीछा छुड़ाने के लिए ईश्वर की समीपता का, उपासना का उपक्रम बनाना पड़ता है । शरीर ठण्ड से काँप रहा हो तो आग की समीपता से आवश्यक गर्मी प्राप्त की जाती है । आदर्शवादिता से रहित मानव जीवन घिनौना ही कहा जायेगा । जो पशु के लिए क्षम्य है, वही मनुष्य के लिए अक्षम्य । पशु निर्वसन रहते, खुले में मलमूत्र त्यागते और रतिकर्म करते हैं । मनुष्य वैसा करेगा तो भर्त्सना का पात्र बनेगा । शिशनोदर परायणता निकृष्ट कृमि-कीटकों के लिए स्वाभाविक हो सकती है, मनुष्य के लिए तो वह स्थिति निन्दनीय ही मानी जायेगी ।

संगति का, समीपता का प्रभाव सर्वविदित है । चन्दन के समीप उगे हुए झाड़-झंखाड़ सुगन्धित हो जाते हैं । कोयले की और गन्धी की दुकान पर बैठने वाले कालोंच का धब्बा और सुगन्ध का छींटा साथ लेकर जाते हैं । दुष्टों की समीपता से दुर्गति और सज्जनों के सान्निध्य से सद्गुणों की वृद्धि और प्रगति की सम्भावना का साकार होना सर्वविदित है । ईश्वर उत्कृष्टताओं का भाण्डागार है । उसकी समीपता उपासना में ही वैसी ही विशेषताओं का बढ़ना स्वाभाविक है । कीट भृंग का उदाहरण प्रसिद्ध है। टिड्डे हरी घास में रहते हैं तो उनका शरीर हरा रहता है, पर जब वे सूखी घास में रहने लगते हैं, तो पीले पड़ जाते हैं । तितलियाँ फूलों के अनुरूप अपने रंग बदलती रहती हैं । समीपता के अनुरूप ढलने के अगणित उदाहरण सर्वत्र पाये जाते हैं । वातावरण की प्रभाव शक्ति को कौन नहीं जानता ? व्यक्तित्वों का भला-बुरा निर्माण करने में वातावरण की असाधारण भूमिका रहती है ।

उपासना का क्रिया-कृत्य अन्तरंग और बहिरंग स्तर का ऐसा 'माहौल बनना चाहिए, जिससे व्यक्ति के भावनात्मक स्तर में उत्कृष्टता की अभिवृद्ध होती हो । बहिरंग वातावरण बनाने में पूजा, उपासना में प्रयुक्त होने वाली प्रतीक प्रतिमा, उसका सज्जा श्रृंगार, पूजा उपचार में प्रयुक्त होने वाले पदार्थ, उपकरण आदि का मिला-जुला स्वरूप अपना काम करता है । पूजा-वेदी के समीप बैठने पर ऐसा लगना चाहिए मानो किन्हीं असाधारण दिव्य परिस्थितियों में जा पहुँचे । मन्दिर, देवालय, पूजागृह, देवपीठ, आराधना कक्ष को बनाने में उपयुक्त वातावरण बनाने का तथ्य ही प्रधान रूप से काम करता है । वहाँ के सुसज्जा साधन सँजोने में इसी बात का ध्यान रखा जाता है कि उस स्थान में जाते ही मन अपने आपको पवित्रता की दिव्य परिस्थितियों से घिरा हुआ अनुभव करने लगे । सामान्य वातावरण से उपासना कक्ष का वातावरण भिन्न रखा जाता है और वहाँ की परिस्थितियाँ ऐसी बनायी जाती हैं जिनमें बैठने पर उत्कृष्टता की अनुभूति बढ़ने से सुविधा मिल सके ।

देवालयों, तीर्थों एवं निजी पूजागृहों में स्थापित देव प्रतिमा के आधार पर की गई पूजा-आराधना सर्वसुलभ एवं सामान्य मनोभूमि के लिए सर्वथा उपयुक्त है । यदि उसके पीछे जुड़ गई भ्रान्तियों और अवांछनीयताओं को हटा दिया जाय तो इस माध्यम को व्यक्ति एवं समाज के भावनात्मक एवं नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने में बहुत सहायक सिद्ध पाया जायेगा । मूर्ति, चित्र, पुष्प आदि की साज-सज्जा शान्त वातावरण आदि उपासना के उपयुक्त मनोभूमि बनाने में सहायता करती हैं । मूर्ति आदि को ही सब कुछ मान लेना बुरा है, उनका समुचित उपयोग बुरा नहीं है । मूर्ति एक संकेत है-- प्रतीक । पुस्तक भी एक मूर्ति है । उसमें छपी हुई आड़ी-टेढ़ी लकीरों के रूप में अक्षर होते हैं । देखने में यह पुस्तक प्रतिमा सर्वथा जड़ है, उसमें चेतन नहीं खोजा जा सकता, पर उस पुस्तक के सहारे हमारे मनःक्षेत्र में मनीषियों द्वारा प्रतिपादित अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विचार उत्पन्न होते और पनपते हैं । इस तरह वह चेतन भी है, गीता की पुस्तक जड़ है, उसे झींगुर, कीड़े, चूहे आसानी से काट सकते हैं । पर इतने भर से उस ज्ञान प्रतिमा का मूल्य किसी भी प्रकार घट नहीं जाता । भगवान कृष्ण और अर्जुन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के बीच हुआ दिव्य संवाद उसके पृष्ठों पर पढ़ा जा सकता है और वैसा ही लाभ लिया जा सकता है, जैसा कि उस अवसर पर स्वयं उपस्थित रह सकने पर हो सकता था । पत्र व्यवहार में कितना महत्त्वपूर्ण आदान-प्रदान होता है, यह किसी से छिपा नहीं है । महत्त्वपूर्ण इकरारनामे और दस्तावेज जड़ कागज होता है, पर उनके आधार पर कितने बड़े फैसले होते हैं, इसे कौन नहीं जानता ? चूँकि कागज पानी में गल सकता है, इसलिये इस पर लिखे आलेखों का कोई महत्व नहीं, ऐसा सोचना उपहासास्पद है । हम अपने पूर्वजों, गुरुजनों अथवा मान्य प्रतीकों के प्रति असीम सम्मान रखते हैं और उनकी अवज्ञा पर दुःख मनाते एवं रोष प्रकट करते हैं । भगवान जड़ तो नहीं है, पर वह जड़ पदार्थों में समाया हुआ न हो ऐसी भी कोई बात नहीं है । जब जड़-चेतन सभी में उसकी सत्ता विद्यमान है, तो प्रतिमा में उसकी उपस्थिति न होने की बात भी क्यों सोची जाय ?

चित्र अथवा मूर्ति के आधार पर की जाने वाली उपासना के समय मन में यह निष्ठा जमनी चाहिए कि जिस दिव्य सत्ता के साथ घनिष्ठता जोड़नी है, वह उपासना स्थल पर असामान्य स्थिति में विद्यमान है । इसके लिए प्रतीक प्रतिमा की स्थापना अनिवार्य रूप से आवश्यक है । आद्य शक्ति गायत्री माता की अथवा अपने विश्वास के आधार पर कोई अन्य प्रतिमा एक छोटे किन्तु सुसज्जित सिंहासन पर स्थापित रहनी चाहिए । जब भी पूजा करनी हो तब उसी के सामने बैठ कर करनी चाहिए । जिस स्थान पर जो कार्य बहुत समय तक किया जाता रहता है, वहाँ अनायास ही ऐसी विशेषता उत्पन्न हो जाती है जिससे प्रेरित होकर उन कार्यों की पुनरावृत्ति के लिए मन चलने लगता है । चाहे जहाँ चाहे जब बैठकर भजन करने पर मन लगा लेना कठिन है, पर नियत स्थान पर, नियत समय पर, पूजा-स्थल पर बैठते ही मन स्वभावतः उन अभ्यस्त क्रियाओं को स्वेच्छापूर्वक दुहराने लग जायेगा । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए नियत स्थान पर पूजा कक्ष को स्थापित करना और नियत समय पर नियत विधि से उपासना कृत्य को क्रियान्वित करना ही उपयुक्त रहता है ।

उपासनात्मक वातावरण के बाद उपासनात्मक कर्मकाण्डों का क्रम आता है । यह कर्मकाण्ड वास्तव में साधक की मनोभूमि के लिए समुद्र मन्थन जैसा महत्त्व रखते हैं । देव-दानवों ने समुद्र को मथ कर कुछ ही समय में चौदह बहुमूल्य रत्न पाये थे । यह मन्थन यदि अधिक समय तकअधिक गहराई तक जारी रखा जा सके, तो उस आधार पर मिलती रहने वाली उपलब्धियों का कोई अन्त नहीं मिल सकता ।

यह मन्थन प्रक्रिया ही उपासना के अन्तर्गत किये जाने वाले सरल संक्षिप्त कर्मकाण्डों द्वारा आरम्भ होती है और इस आधार पर स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से कारण और कारण से अनन्त में प्रवेश करती चली जाती है । आरम्भ के छात्रों को जो कृत्य बताये जाते हैं, वे उपहासास्पद लगते हैं और यह समझ में नहीं आता कि इतनी स्वल्प-सी शारीरिक, मानसिक हलचलों से इतनी बड़ी उपलब्धियाँ किस प्रकार करतलगत हो सकती हैं यहाँ इतना ही समाधान प्रस्तुत किया जा सकता है कि उपासनात्मक कर्मकाण्ड दिशा निर्देश है । दिशा सही होने और पहिया लुढ़कने लगने पर उसके परिणाम दूरगामी होना आश्चर्यजनक नहीं है ।

रेलगाड़ी के चलने, खड़े होने में झण्डी और सिगनल की बड़ी भूमिका होती है । उनके हरे होने से गाड़ी चलती है और लाल होने से रुक जाती है । निस्सन्देह झण्डी या बत्ती के रंगों में इतनी शक्ति नहीं है कि वे रेल को रोक या धकेल सकें, फिर भी उनके द्वारा मिलने वाले दिशा निर्देश का अपना महत्त्व है । इस प्रक्रिया में गड़बड़ी हो जाय तो गाड़ियाँ या तो खड़ी रहेंगी अथवा आपस में टकरा कर नष्ट होंगी ।

जंक्शन पर बराबर-बराबर कितनी ही गाड़ियाँ खड़ी रहती हैं । इनमें से किस को किधर जाना है, इसका निर्धारण एक छोटा सा 'लीवर' करता है । पटरियों में से किसे किस के साथ मिला दिया जाय, यह निर्णय और कार्य तनिक सा है और उसे छोटा-सा खलासी बड़ी आसानी से पूरा कर देता है । देखने-सुनने में यह बात जरा-सी हुई, पर उसकी प्रतिक्रिया दूरगामी होती है । कुछ ही घण्टे बाद तलाश करने पर पता चलता है कि एक गाड़ी उत्तर को घूमी और दूसरी दक्षिण को । इस थोड़ी ही अवधि में दोनों के बीच सैकड़ों हजारों मील का फासला बन गया । जीवन के चौराहे पर से जिस भी दिशा में मोड़ दिया जाय, वह अपने क्रम से चल पड़ता है और भिन्न दिशा में चलने वालों की तुलना में असाधारण रूप से भिन्न दिखाई पड़ता है । अनर्थ मूलक प्रवृत्ति में निरत और निरर्थक भटकाव में संलग्न लोगों की तुलना में परमार्थ परायण की प्रगति कितनी अधिक उत्साहवर्द्धक होती है, इसे ऐतिहासिक महामानवों को मिली, विभूतियों का पर्यवेक्षण करके आसानी से जाना जा सकता है । उपासनात्मक कर्मकाण्डों में से प्रत्येक जीवनधारा की दिशा मोड़ने में सहायक होता है । रेल की पटरियाँ सरल और सस्ती होती हैं, पर उनके बिना बहुमूल्य और जटिल इंजन अनेक डिब्बों सहित दौड़ते चले जाने में समर्थ नहीं हो सकता । उपासनात्मक कर्मकाण्डों की रेल की पटरी से उपमा दी जा सकती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर्मकाण्ड वे कृत्य हैं जो शरीर के विभिन्न अवयवों की सहायता से उपचार उपकरणों के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं । षोड़शोपचार देव पूजन, आत्मशोधन के विभिन्न क्रिया-कृत्य इसी श्रेणी में आते हैं । मन पर छाप डालने में विचार और कर्म का समन्वय करना पड़ता है । चित्त पर स्थिर संस्कार डालने के लिए अभीष्ट विचारों के साथ-साथ उनके पूरक कृत्य होने ही चाहिए, अन्यथा कल्पना केवल जल्पना बन कर हवा में उड़ जाती है । विचारणा के साथ क्रिया का समन्वय न कर सकने पर भी जो लोग सफलताएँ चाहते हैं उन्हें शेखचिल्ली कह कर उपहास किया जाता है । हर क्षेत्र में विचार और कर्म का समन्वय ही प्रतिफल उत्पन्न करता है । उपासना में ईश्वरीय सान्निध्य की कल्पना ही नहीं, अनुभूति भी अपेक्षित होती है । भावनिष्ठा को कार्यान्वित होते देखकर ही ऐसी मनःस्थिति बनती है । इसलिये यह सोचना होता है कि परमेश्वर प्रत्यक्ष ही, सचमुच ही सामने विराजमान है और उनकी किसी जीवित व्यक्ति के उपस्थित होने पर की जाने जैसी अभ्यर्थना की जा रही है । आत्मशोधन और देव पूजन के दोनों ही कृत्यों में इसी प्रकार का भाव समन्वय होता है । वह यदि बेगार भुगतने के उथले मन से किया गया है और जैसे-जैसे परम्परागत लकीर पीटी गई हो तो बात दूसरी है, अन्यथा जिस प्रयोजन के लिए यह प्रचलन हुआ है, उसे ध्यान में रख कर चला जाय तो अन्तःक्षेत्र में अभीष्ट निष्ठा होगी और लगेगा कि निराकार परमेश्वर अपेक्षाकृत अधिक सघन, अधिक साकार बन कर सामने आया है ।

उपासनात्मक कर्मकाण्ड के अंग देव पूजन, जप, ध्यान आदि हैं, जिनके माध्यम से साधक अपनी चेतना को उस परम चेतना के सान्निध्य के लिए उसके साथ जोड़ने के लिए प्रयास करता है । किन्तु इसके पूर्व कुछ क्रियाएँ अपने आपको उपासना की उपयुक्त स्थिति में पहुँचाने के लिए की जाती हैं । इन्हें आत्म शुद्धि के षटकर्मों के रूप में जाना जाता है, इनका उद्देश्य अपने में सर्वतोन्मुखी पवित्रता की भाव मान्यता को सघन बनाना है । हमारे कार्य, विचार और विश्वास तीनों ही आत्मिक प्रगति के मूलभूत आधार हैं । कपड़ा पहले धोया जाता है, फिर रंगा जाता है । धुलाई अर्थात् आत्मशुद्धि, रंगाई अर्थात् व्यक्तित्व में ब्रह्म चेतना का अवतरण । मैले कपड़े पर रंग नहीं चढ़ता और दुष्ट एवं भ्रष्ट जीवन-क्रम अपनाये रहने वाला ईश्वर की उस विशेष अनुकम्पा का अधिकारी नहीं बन सकता है, जिसे ब्रह्मवर्चस् की उपलब्धि कहते हैं और जिसके साथ देवोपम विशेषताओं के ऋद्धि-सिद्धि भरे भण्डार जुड़े हुए हैं ।

''देवता बनकर देव पूजन करना चाहिए'' इस शास्त्र निर्देश का प्रयोजन यह है कि उपासना काल में अपने आप को पवित्रता से ओत-प्रोत अनुभव करना चाहिए । सम्मिलन सजातियों का ही होता है । पानी में घुलनशील पदार्थ ही घुल सकते हैं । लोहे जैसी भारी धातुओं का पानी में घुलना सम्भव नहीं । ईश्वर का सजातीय अपना व्यक्तित्व होगा तो उसमें दिव्य अवतरण की अपेक्षा की जा सकती है । अपने में देवत्व की स्थापना करके तब उपासना कृत्य आरम्भ करने की बात इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए कही गई है ।

आत्म शुद्धि के लिए पवित्रीकरण, आचमन, शिखा बन्धन, प्राणायाम, न्यास यह पाँच कृत्य करने पड़ते हैं । इसके बाद सर्वप्रथम मातृभूमि (पृथ्वी) का पूजन है । अदृश्य भगवान के प्रतीकाह्वान से भी पहले भगवान की साकार प्रतिमा अपनी धरती का पूजन किया जाता है । विराट् ब्रह्म का प्रत्यक्ष शरीर यह संसार है, इसकी जड़ सम्पदा को सुविकसित और प्राणि सत्ता को सुसंस्कृत बनाने के लिए जो प्रयत्न किये जाते हैं वे सभी पृथ्वी पूजन में--मातृभूमि अर्चन में आ जाते हैं ।

इन उपचारों में शारीरिक क्रियाएँ तो होती ही हैं, किन्तु उनके साथ मानसिक एवं भावनात्मक सक्रियता भी अनिवार्य रूप से जुड़ी रहनी चाहिए । शारीरिक क्रिया इन उपचारों का कलेवर मात्र है । उपेक्षा उसकी भी नहीं करनी चाहिए, किन्तु उसके प्राण को अपनी विचारणा और भावना को उसके साथ-साथ प्रखर बनाना आवश्यक है ।

पवित्रीकरण के साथ यह भावना उठनी चाहिए कि ईश्वर की सर्वव्यापी पवित्रता में हम ओत-प्रोत हो रहे हैं और वैसी ही पवित्रता हमारे अन्दर जाग्रत और स्थापित हो रही है । तीन आचमनों के साथ क्रमशः वाणी की शुद्धि, चिन्तन की शुद्धि तथा भाव शुद्धि तथा इन तीनों को ईश्वरीय कार्यों में प्रयुक्त करने के लिए सशक्त और तेजस्वी बनाने का ध्यान रखा जाय । शिखा-बन्धन के समय अपनी संस्कृति गौरव का स्मरण करते हुए अपनी आदर्श निष्ठा तथा आस्थाओं को सबल बनाने, अपने सूक्ष्म केन्द्र मस्तिष्क को ईश्वरीय दिव्य चेतना से जोड़े रहने का भाव उभारना चाहिए । प्राणायाम के समय वायु के साथ विश्वव्यापी महाप्राण को अन्दर खींचने, उसे अपने सम्पूर्ण शरीर में स्थापित करने तथा अन्दर के विकारों को बाहर फेंक देने का संकल्प बनाये रखा जाता है । न्यास अपने प्रमुख अगों को ईश्वरी कार्यों के लिए उपयुक्त बनाने के उद्देश्य से किया जाता है । पृथ्वी पूजन के साथ अपनी सीमित स्वार्थपरता को छोड़कर विशाल उत्तरदायित्वों के बोध, मातृभूमि विश्व

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वसुधा के प्रति अपने कर्त्तव्यों का स्मरण किया जाना और अपनी कृतज्ञता की भावना को विकसित करना आवश्यक है ।

षटकर्मों द्वारा अपने आपको देव शक्तियों के अनुरूप बनाकर, फिर प्रतीक पूजा का क्रम चलाया जाता है । उसके लिए अपनी रुचि के अनुरूप इष्टदेव की प्रतिमा, चित्र अथवा दीपक, सुपाड़ी, नारियल जैसे प्रतीक रखकर उनका पूजन किया जाता है । पूजन में चढ़ाये जाने वाले पदार्थों की तरह अपनी क्षमताओं-साधन, सम्पदाओं को प्रभु चरणों में अर्पित करने का भाव उसके साथ जुड़ा रहना चाहिए । सही ढंग से किये जाने पर प्रतीक पूजन की प्रक्रिया में स्थूल और सूक्ष्म समर्पण का संयोग उपासक की अन्तःचेतना को ऊँचा उठाने में असाधारण रूप से उपयोगी सिद्ध होता है ।

सार्वजनिक मन्दिरों में अथवा व्यक्तिगत पूजा कक्षों में भगवान के विविध प्रतीकों की स्थापना करके उनका महामानव गुरुजनों जैसा स्वागत-सत्कार किया जाता है । पंचोपचार षोडशोपचार के विधान उसी के लिए बनाये गये हैं । जितनी देर प्रतिमा सामने रहती है, उतने समय ईश्वर के सान्निध्य का अनुभव होता है-- उसका बड़प्पन स्वीकारा जाता है और श्रद्धाभिव्यक्ति से उन्हें सम्मानित करने वाले शिष्टाचारों का प्रदर्शन किया जाता है । पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, पुष्प, चन्दन, धूप, दीप, अक्षत, नैवेद्य, आरती, नमस्कार आदि के विधि कृत्य समीपता और श्रद्धा की अनुभूति को विकसित करने में सहायता करते हैं । निष्ठा की परिपक्वता के लिए कल्पित देव प्रतिमाओं को यथार्थ मानने की मनःस्थिति उत्पन्न की जाती है ।

इससे आगे की सूक्ष्म प्रतीक पूजा वह है, जिसमें आँखें बन्द करके अथवा अधखुली रखकर इष्टदेव की प्रतिमा का ध्यान किया जाता है और श्रद्धा, समीपता एवं एकता की वैसी ही भावना की जाती है, जैसी की मूर्तिपूजा में स्थूल प्रतिमा की । अन्तर इतना ही रहता है कि मूर्तिपूजा में प्रतीक उपकरणों की प्रत्यक्ष आवश्यकता पड़ती है, जबकि ध्यान में वह सारे कार्य मात्र कल्पना के सहारे ही पूरे हो जाते हैं । ध्यान में इष्टदेव को हँसता, मुस्कराता और श्रद्धा समर्पण के अनुरूप प्रत्युत्तर देता हुआ सोचा जा सकता है । यह स्थिति अधिक उत्साहवर्द्धक हाती है और एकाग्रता का लाभ भी अधिक देती है । इसलिए इस मानस पूजा को भावनाशील, कल्पनाशील साधकों के लिए प्रयुक्त होने वाली उपासना का अगला ऊँचा चरण माना गया है ।

आत्मा को परमात्मा से मिलाने वाली योग साधना के पथ पर अग्रसर होने की दिशा में प्रथम कक्षा साकार उपासना की है । उसमें आकृति सहित परमात्मा की कल्पना करनी पड़ती है । उसे उच्चस्तरीय श्रेष्ठताओं से सम्पन्न माना जाता है, समीप उपस्थित अनुभव किया जाता है, सघन श्रद्धा का आरोपण करते हैं, गहरी प्रेम भावना उमगाते हैं और उनके साथ घनिष्ठता बनाते हैं । इसी कृत्य के अन्तर्गत आने वाले विविध उपचार भक्ति-साधना कहे जाते हैं । 'लय' प्रक्रिया का यह प्रथम सोपान है । अचिन्त्य चिन्तन में असमर्थ, स्थूल भूमिका की मनःस्थिति के लिए यही कृत्य सरल पड़ता है और चेतना का स्तर आगे बढ़ाने में सहायता करता है । प्रतीक उपासना का सारा ढाँचा इसी प्रयोजन के लिए विनिर्मित हुआ समझा जाना चाहिए ।

इसके बाद उपासना की अधिक गहन प्रक्रियाओं जप ध्यान आदि का प्रयोग किया जाता है । अपनी चेतना को क्रमशः ईश्वर सान्निध्य की अधिक गहन अनुभूति की ओर ले जाने के लिए यह सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं । इस स्तर की उपासना का प्रयोजन है, मनःक्षेत्र पर ईश्वरीय सान्निध्य का चिन्तन घटाटोप की तरह छाये रहना । सामान्य जीवन में आत्मसत्ता शरीर रूप में ही काम करती है । अस्तु, अपना आपा शरीर मात्र ही अनुभव होने लगता है । शरीर से सम्बन्धित समस्याओं का विस्तार अत्यधिक है । उनके खट्टे-मीठे स्वाद भी चित्र-विचित्र हैं और वे सभी बड़े आकर्षक हैं । यों प्रिय-अप्रिय स्तर की परस्पर विरोधी अनुभूतियाँ सामने आती हैं, पर वे दोनों ही अपने-अपने ढंग के गहरे प्रभाव चेतना पर छोड़ती हैं । सफलताएँ अपने ढंग का प्रभाव डालती हैं, असफलताएँ दूसरे ढंग का । लाभ में एक प्रकार का अनुभव होता है, हानि में दूसरी तरह का । एक स्थिति प्रिय लगती है, दूसरी अप्रिय । इतना होते हुए भी दोनों ही स्थितियों की गहरी छाप पड़ती है । सफलता का हर्षोन्माद और असफलता का शोक-सन्ताप दोनों ही अपना प्रभाव छोड़ते हैं और चेतना को आवेशग्रस्त बनाते हैं । ज्वार-भाटे जैसे यह आवेश-अवसाद सामयिक अनुभूति बन कर ही समाप्त नहीं हो जाते, वरन् पीछे भी बहुत समय तक उनकी उत्तेजित प्रतिक्रिया बनी रहती है । ऐसे क्षण बहुत ही कम आते हैं, जिनमें चित्त शान्त तथा सन्तुलित रहता हो और आत्म-सत्ता के साथ जुड़ी हुई समस्याओं को हल करने की बात सूझ पड़ती हो । यही कारण है कि हम भौतिक आवश्यकता और समस्याओं को ही सब कुछ मान लेते हैं और उन्हीं के जाल-जंजाल में उलझे (जकड़े) पड़े रहते हैं । आत्मिक जीवन का स्वरूप भी सामने नहीं आ पाता फिर उनका समाधान सूझे तो कैसे ? स्पष्ट है कि आत्मिक समस्याओं का समाधान हुए बिना न तो भौतिक जीवन का रस लिया जा सकता है और न जीवन लक्ष्य को पूरा करने की बात बनती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यक है कि कुछ समय हमारे पास ऐसा हो जिसमें भौतिक जीवन को एक प्रकार से पूरी तरह ही भुला दिया जाय और उन क्षणों में केवल आत्मा का स्वरूप जीवन लक्ष्य एवं परमात्म सान्निध्य के अतिरिक्त और कुछ सूझ ही न पड़े, यही उपासना काल की मर्यादा है । यह सही हुई या गलत, इसकी पहचान इतनी है कि उन क्षणों में मनःक्षेत्र पर आत्मिक स्तर का चिन्तन छाया रहा या भौतिक स्तर का । यदि सांसारिक मनोकामनाओं की उथल-पुथल मची है और इष्टदेव से तरह-तरह के भौतिक वरदान पाने की ललक उठ रही हो तो समझना चाहिए कि यह उपासना कृत्य भी विशुद्ध रूप से भौतिक है । इससे आत्मिक प्रगति जैसा कोई लाभ मिल नहीं सकेगा । यदि उतने समय शरीर-रहित, भौतिक प्रभावों से मुक्त, ज्योतिर्मय आत्मा ही ध्यान में है और उसमें महाज्योति के साथ समन्वित हो जाने की दीप-पतंग जैसी आकांक्षा उठ रही है, तो समझना चाहिए कि उपासना का सच्चा स्वरूप अपना लिया गया है और उससे अभीष्ट उद्देश्य पूरा हो सकने की सम्भावना बन रही है ।

परब्रह्म एक सर्वव्यापी चेतना शक्ति है । उसके साथ जितनी अधिक घनिष्ठता जुड़ती जली जाती है, उसी अनुपात से जीवात्मा की उत्कृष्टता एवं क्षमता बढ़ती जाती है । चेतना को चेतना के साथ घनिष्ठता के बन्धनों में बाँधने के लिए एक ही आधार है-- सद्भाव भरी स्थिर आतुरता । इसी स्थिति को दूसरे शब्दों में प्रेम या भक्ति कहा गया है । लौकिक जीवन में भी इसी प्रकार की आतुरता जिस पदार्थ, व्यक्ति या स्थिति के प्रति होती है उसके लिए समूचा व्यक्तित्व प्रयत्नरत हो जाता है और देर-सवेर में इष्ट प्रायः पूरा होकर ही रहता है । चेतना को चेतना से मिलाने के लिए भी यही भावभरी किन्तु स्थिर आतुरता अभीष्ट है । भक्ति भावना उत्पन्न करने के लिए ईश्वर का स्वरूप बनाने, उस पर श्रद्धा, आत्मीयता, समीपता एवं एकता आरोपित करने के प्रयास किये जाते हैं और वे अभीष्ट प्रयोजन पूरा भी करते हैं ।

उपासना के समय ही नहीं, बाद में भी यह भावनात्मक प्रखरता बनी रहे, यह आवश्यक है । उपासना काल में दिव्य सत्ता की समीपता का जो बोध हुआ, अपने आपको उससे जोड़ देने, उस पर समर्पित कर देने की जो ललक उठी, उसकी अनुभूति सामान्य जीवनक्रम में भी बनी रहनी चाहिए । साधक अपनी इसी भावना के विकास और पुष्टि का संकल्प करते हुए उपासना के अन्त में सूर्यार्घ्यदान करता है । जैसे कलश की सीमा में बँधा जल सूर्य के सामने अर्पित होकर अनन्त में मिल जाय, हम अणु से विभु बनें, यही भाव सूर्यार्घ्यदान के समय रहना चाहिए ।

इस प्रकार उपासना के साथ उपयुक्त वातावरण, उपयुक्त कर्मकाण्ड तथा उपयुक्त भावोद्रेक का क्रम अपनाकर उसे अति प्रभावशाली बनाया जा सकता है । उसके साथ क्रिया, चिन्तन और भाव समन्वय द्वारा स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों शरीरों को उपासनामय बनाया जा सकता है । यह सभी क्रम एक साथ चल सकते हैं । आवश्यक नहीं कि एक को पूरा करके ही दूसरी को छुआ जाय । खेलों में शारीरिक स्फूर्ति और मानसिक सूझबूझ का एक साथ उपयोग होता है । शरीर में पाचन, श्वास-प्रश्वास तथा रक्त संचार आदि क्रम एक साथ चलते रहते हैं । इसी प्रकार उपासना में सभी धाराएँ एक साथ प्रवाहित होती हैं तथा साधक उसका अद्भुत लाभ प्राप्त करता चला जाता है ।

उपासना क्यों और कैसे ?

प्रत्येक धर्म की उपासना प्रणाली के साथ कुछ स्थूल क्रिया कृत्य जुड़े होते हैं । उनमें से प्रत्येक के साथ महत्त्व-पूर्ण शिक्षण, सूक्ष्म दर्शन एवं प्रेरणाएँ समाहित होती हैं । उन्हें समझे बिना उन कर्मकाण्डों के अनुरूप उमंगें एवं भाव संवेदनाओं का उभार नहीं हो पाता और उपासना का वह लाभ नहीं मिल पाता जो मिलना चाहिए । इस दृष्टि से उपासना के साथ जुड़े कर्मकाण्डों के शिक्षण एवं दर्शन को भलीभाँति समझना अनिवार्य हो जाता है, जिसके सहारे हर साधक अपनी साधना को अधिक प्राणवान बना सकता है । गायत्री उपासना से पूर्व साधक को सन्ध्या करना होता है, जिसमें षट्कर्मों का विधान है । प्रत्येक कृत्य दिव्य प्रेरणाएँ देते हैं । उपासना के साथ उन प्रेरणाओं को जीवन में उतारा जा सके तो अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सकना सुगम हो जाता है ।

शरीरगत पवित्रता के लिए 'पवित्रीकरण' है । जल को समस्त शरीर पर छिड़का जाय और यह भावना की जाय कि इस मन्त्रपूत जल के साथ विश्व ब्रह्माण्ड में संव्याप्त पवित्रता-तत्व की हमारे ऊपर वर्षा हो रही है और फुहारे के नीचे बैठकर स्नान करने की तरह उस अमृत-वर्षण का आनन्द लिया जा रहा है । पवित्रता शरीर के भीतर प्रवेश होकर समस्त चेतना को, भाव संस्थान को पवित्र बनाती चली आ रही है ।

तीन आचमनों का तात्पर्य काया, विचारणा और भावना इन तीन चेतना के केन्द्रों में शांत, शीतलता, सात्विकता का समावेश करना है । प्रथम आचमन काया में सच्चरित्रता, सात्विकता और वाणी में सदाशयता की स्थापना करने के लिए है । वाणी की विशेष पवित्रता इसलिए है कि उसके द्वारा उच्चारित जप प्रार्थना भगवान तक पहुँच सके ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनीति से उपार्जित अन्न खाने वाली और असत्य, विक्षोभकारी वचन बोलने वाली वाणी का तेज नष्ट हो जाता है और उससे उच्चरित मन्त्र शक्ति उत्पन्न नहीं कर सकते। इस तथ्य को स्मृति में जमाये रहने के लिए प्रथम आचमन है ।

द्वितीय आचमन विचारणा में चिन्तन की शीतल सात्विकता स्थापित करने के लिए है । अशुद्ध, अपराधी, दुष्ट, दुर्बुद्धि के कारण यदि मस्तिष्क में अशान्ति के आंधी तूफान उठते ही रहेंगे तो उसमें मनस्विता एवं तेजस्विता उत्पन्न न हो सकेगी, बहुमूल्य विचारशक्ति अवांछनीय छिद्रों में होकर नष्ट होती रहेगी और खोखले मनःक्षेत्र में ब्रह्मलोक से दिव्य सत्ता का अवतरण न हो सकेगा, मानसिक पवित्रता को साधना की सफलता के लिए नितान्त आवश्यक माना जाय, इस मान्यता को सुदृढ़ बनाने की बात ध्यान में बनी रहे, यह उद्देश्य दूसरे आचमन का है ।

तीसरा आचमन भावशुद्धि के लिए है । जीवनोद्देश्य के प्रति उच्चस्तरीय निष्ठा और चिन्तन एवं कर्तृव्य की श्रेष्ठता बनाये रखने वाली आस्था ही भाव-निष्ठा है । प्रपंच, प्रलोभनों के आकर्षणों में व्यस्त, निरर्थक, अनर्थ भरा, पतनोन्मुख जीवन जीने वाले लोग आत्म बल सम्पादित नहीं कर पाते। आकांक्षाओं का स्तर ऊँचा रहना ही भाव शुद्धि है । यह तथ्य सदा स्मरण बना रहे, इसलिये तीसरा आचमन किया जाता है ।

शिखा बन्दधन--शिखा भारतीय धर्म की ध्वजा है, जो मस्तक रूपी किले के ऊपर हम भारतीय संस्कृति प्रेमी को फहराते रहनी पड़ती है । इसे गायत्री का प्रतीक भी माना गया है । मस्तिष्क सद्विचारों का केन्द्र है । इसमें देव भाव ही प्रवेश करने पावे । विवेकशीलता, आदर्शवादिता एवं उत्कृष्टता के सर्वोच्च शिखर पर इसलिए प्रतिष्ठापना की जाती है कि इसमें समाविष्ट त्रिविध प्रेरणाओं को सर्वोपरि महत्त्व का माना और श्रद्धापूर्वक अपनाया जाय ।

प्राणायाम के चार भाग हैं-- (१) साँस भीतर ले जाने की क्रिया को पूरक, (२) भीतर रोकने को अन्तःकुम्भक, (३) बाहर निकालने को रेचक तथा (४) बाहर रोके रहने को बाह्य-कुम्भक कहते हैं । प्राणायाम आरम्भ करने से पूर्व मन ही मन तीन बार गायत्री मन्त्र बोल लेना चाहिए । जब श्वांस क्रिया आरम्भ की जाय तो साँस खींचते समय भावना करनी चाहिए कि निखिल आकाश से वायुतत्व के साथ घुला हुआ चेतन प्राण तत्व साँस के साथ हमारे भीतर प्रवेश करते हुए दिव्य शक्ति भर रहा है । रोकते समय भावना करनी चाहिए कि उस दिव्य शक्ति को शरीर अवयवों, रक्त कणों एवं चेतना संस्थाओं द्वारा सोखा और सदा सर्वदा के लिए भीतर धारण किया जा रहा है । साँस निकालते समय भावना करनी चाहिए कि सूक्ष्म और कारण शरीरों के मल, आवरण, विक्षेप, दोष, विकार बाहर निकले जा रहे हैं । बाहर साँस रोकने के समय भावना करनी चाहिए कि निकले हुए विकारों को वापस न लौटने के लिए सदा सर्वदा के लिए द्वार बन्द कर दिया गया । हर प्राणायाम के साथ शरीर के अन्दर दिव्य प्राण तत्व की मात्रा बढ़ती चलने का, शरीर, मन, अन्तःकरण सभी तेजस्वी होने का बोध होना चाहिए । न्याय कर्म का प्रयोजन है शरीर के महत्त्वपूर्ण अंगों में पवित्रता की भावना भरना, उनकी देव चेतना को जाग्रत करना । उपासना काल में उनके जाग्रत देवत्व से सारे कृत्य पूरे करना तथा इसके अनन्तर भी इन अवयवों को सशक्त एवं संयत बनाये रहना ।

मुख के स्पर्श में भावना की जाय कि वाणी तथा रसना दोनों को संयत रखा जायेगा । नासिका से दूसरों की सुगन्ध (प्रशंसा) ही सूँघी जायेगी । नेत्रों से उत्तम पढ़ें, उत्तम ही देखें, कहीं कुदृष्टि न डालें, छिद्रान्वेषण न करें । कानों से हितकारी, अच्छी प्रेरणा देने वाले अन्तःकरण में सद्भाव जगाने वाले शब्द ही सुनें । मार्ग भ्रष्ट करने वाले, दूसरों की निन्दा, चुगली आदि के प्रसंगों की ओर कान न लगावें । भुजाओं को श्रमशील और कर्मनिष्ठ रखें । किसी कुकर्म या अनाचार में हाथ न डालें । दूसरों की सहायता को हाथ बढ़ाये रहें । जंघाओं के स्पर्श का अर्थ है गतिशीलता तथा जननेन्द्रिय संयम । जड़ होकर न बैठें, प्रगति के पथ पर चलते रहें । ब्रह्मचर्य की मर्यादाओं का उल्लंघन न करें । व्यभिचार से दूर रहें । इसके उपरान्त शेष जल को समस्त शरीर पर छिड़क लें और भावना करें कि सभी ज्ञानेन्द्रियाँ सत्पथ पर चलती रहेंगी ।

जहाँ से अन्न, जल तथा ज्ञान प्राप्त करते हैं वह मातृभूमि सबसे बड़ा देवता है । हमें देशभक्त, विश्वभक्त होना चाहिए और इस पृथ्वी की पूजा करके उसे सुन्दर, सुसज्जित, समुन्नत रूप देने का प्रयत्न करना चाहिए । इस लोक को हम स्वर्ग से बढ़कर मानें । इस संसार की सेवा जन्म-जन्मान्तरों तक करते रहने की भावनाएँ उभार कर सच्चे देश-भक्त, मातृभक्त होने का परिचय दें । माता के प्रति जैसे हमारे मन में अगाध श्रद्धा होती है, वैसे ही मातृभूमि के प्रति भी रहनी चाहिए और मातृ ऋण से उऋण होने के लिए अवसर ढूँढ़ते रहना चाहिए ।

प्रतीक पूजा का औचित्य

देव प्रतिमा के आधार पर की गई पूजा, आराधना सर्वसुलभ एवं सामान्य मनोभूमि के लिए सर्वथा उपयुक्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । यदि उसके पीछे जुड़ गई, भ्रान्तियों और अवांछनीयताओं को हटा दिया जाय तो इस माध्यम को व्यक्ति एवं समाज के भावनात्मक एवं नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने में बहुत ही सहायक सिद्ध पाया जायेगा ।

अमुक स्थान की प्रतिमा में अमुक प्रकार के चमत्कार हैं, जैसी मान्यताओं के पीछे यह बुद्धि काम करती है कि उस स्थान पर प्रतिष्ठापित देवता अन्य देवताओं से भिन्न अस्तित्व का अथवा भिन्न सामर्थ्य का है । यह सोचना भ्रमपूर्ण है । सर्वत्र एक ही सत्ता संव्याप्त है । तरह-तरह की भौतिक मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए अमुक प्रकार के प्रलोभन देकर देवताओं से अनुग्रह, वरदान प्राप्त किये जा सकते हैं, यह मान्यताएँ भी भ्रमपूर्ण हैं । ऐसी ही कई अवांछनीयता जुड़ जाने के कारण कई सुधारकों को मूर्ति पूजा का खण्डन करना पड़ा है । वस्तुतः उसमें खण्डन जैसी कोई बात है नहीं ।

पुस्तक एक मूर्ति है । उसमें छपी हुई आड़ी टेढ़ी लकीरों के रूप में अक्षर होते हैं । देखने में यह पुस्तक प्रतिमा सर्वथा जड़ है, उसमें चेतन नहीं खोजा जा सकता है पर उस पुस्तक के सहारे हमारे मनःक्षेत्र में मनीषियों द्वारा प्रतिपादित अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विचार उत्पन्न होते और पनपते हैं । इस मानी में वह चेतना भी है । गीता की पुस्तक जड़ है, उसे झींगुर, कीड़े, चूहे आसानी से काट सकते हैं । पर इतने भर से उस ज्ञान-प्रतिमा का मूल्य किसी भी प्रकार घट नहीं जाता । भगवान कृष्ण और अर्जुन के बीच हुआ दिव्य सम्वाद उसके पृष्ठों पर पढ़ा जा सकता है और वैसा ही लाभ लिया जा सकता है जैसा कि उस अवसर पर स्वयं उपस्थित रह सकने पर हो सकता था । भगवान तो जड़ नहीं हैं, पर वह जड़ पदार्थों में समाया हुआ न हो ऐसी भी कोई बात नहीं है । जब जड़ और चेतन सभी में उसकी सत्ता विद्यमान है तो प्रतिमा में उसकी उपस्थिति न होने की बात भी क्यों सोची जाय ? हर व्यक्ति नये क्षेत्र में प्रवेश करते समय बालक ही होता है, चाहे वह अन्य विषयों में कितना ही सुयोग्य क्यों न हो ? कोई अच्छा वकील अपने विषय का विशेषज्ञ हो सकता है, पर उसे नया शिल्प सीखते समय बाल कक्षा के छात्र की तरह आरम्भ करना होगा । उपासना जिसका विषय नहीं रहा है, वे अन्य विषयों के विद्वान् होते हुए भी इस क्षेत्र में नौसिखियों की तरह ही प्रवेश करते हैं । अस्तु, उन्हें ध्यान प्रक्रिया का अभ्यास करने के लिए प्रतीक पूजा का आश्रय लेना सुविधाजनक ही रहता है । छतों पर सीमेन्ट, गिट्टी, लोहे का स्लैव ढालने के लिए उसके नीचे 'सहारे' खड़े करने होते हैं । छत कड़ी हो जाने पर 'सहारे' निकाल दिये जाते हैं और फिर वह अपने आप खड़ी रहती है, इतना ही नहीं अपने ऊपर वजन भी उठा लेती है । किन्तु आरम्भ में जबकि वह ढलाई गीली थी तो बिना सहारे के काम नहीं चल सकता था । प्रतीक पूजा की आरम्भिक अवस्था में आवश्यकता पड़ती ही है । निराकारवादी व्यक्ति रूप को न सही अन्य किसी प्रतीक को माध्यम बनाकर अपना काम चलाते हैं । नमाज पढ़ते समय काबा की तरफ मुँह किया जाता है । काबा अर्थात् ईश्वरीय शक्ति का विशेष प्रतिनिधित्व करने वाली इमारत है । दूसरे लोग सूर्य आदि के प्रकाश ज्योति को आधार बनाते हैं । कुण्डलिनी जागरण, चक्र वेधन आदि योगाभ्यासों में भी अमुक स्थानों को दिव्य शक्ति का केन्द्र मानकर वहाँ अपनी इच्छा शक्ति नियोजित करनी पड़ती है।

यह भी ध्यान के ही रूप हैं और इनमें आकृति का सहारा लेना होता है । ध्यान में आकृति न हो यह असम्भव है । गन्ध साधना में गुलाब पुष्प की सुगन्ध पर ध्यान एकाग्र करते हुए भी यह प्रश्न उपस्थित होगा और उस सुगन्ध को पुष्प की आकृति से सर्वथा बचाते हुए ध्यान में लाया जा सकना सम्भव न होगा । इस विवाद को पूर्वग्रहों से नहीं उपयोगिता की दृष्टि से ही हल किया जाना उचित है ।

संसार में कई सम्प्रदाय साकारवादी और कई निराकारवादी हैं । अपना विचार व्यापक क्षेत्र में प्रयोग हो सकने वाली एक साधन पद्धति का विकास करना है । उपासना सन्दर्भ में जो विवाद चलता है, उसे साकार निराकार का रूप न देकर प्रतीक को व्यक्त आकृति का मानने न मानने की उलझन कहना ठीक है । पूर्ण निराकार का ध्यान तो नादयोग तथा दूसरी सम्वेदनाओं में भी नहीं हो सकता । शंख, घड़ियाल, बादल आदि की ध्वनियाँ सुनने का अभ्यास करते समय स्वभावतः उनके स्रोत तो मस्तिष्क में घूम जाते है शंखनाद तो सुना जाय, पर शंख की आकृति ध्यान में न लाई जाय यह हो नहीं सकता । इसलिये ध्यान प्रतीक में इन दोनों ही पक्षों का समन्वय करने की बात ध्यान में रखी गई है । निराकारवादी अन्तर्मुखी होकर 'दिव्य-ज्योति' के रूप में परमात्मसत्ता का दर्शन करते हैं । आमतौर से यह छोटा-बड़ा प्रकाश बिन्दु ही होता है । इसे सूर्य का प्रतीक मानते हैं । वस्तुतः यह 'ज्ञान ज्योति' है, मात्र चमक या गर्मी नहीं । आध्यात्म साधन में अग्निपिण्ड सूर्य की प्रतिमा भर माना गया है, उसकी मूल सत्ता 'दिव्य ज्ञान' कही गई है । निराकार 'प्रज्ञा' तत्व का साकार रूप 'सविता' अर्थात् सद्ज्ञान ही अन्तःकरण को आलोकित करने वाला प्रकाशवान परब्रहम है । ध्यान करते समय सूर्य पर एकाग्रता तो करनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए, पर साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह 'दिव्य आलोक' का--सद्ज्ञान रूपी प्रकाश का प्रतीक मात्र है, मात्र जड़ पिंड नहीं ।

सूर्य पर ध्यान करते हुए यह अनुभूति विकसित की जाती है कि वह आलोक साधक के शरीर, मन और अन्तरात्मा में स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों में सक्रियता, सद्ज्ञान एवं सद्भाव बनकर प्रकाशवान हो रहा है । इन दोनों क्षेत्रों को आलोकित हुआ मानते हुए उत्तेजित, विकसित, परिष्कृत हुआ भी अनुभव किया जाता है । इस प्रकार सूर्य को न केवल आलोक दर्शन की दिव्य प्रक्रिया मानकर बात समाप्त कर दी जाती है, वरन् उसकी आभा आत्म सत्ता को पूरी तरह प्रकाशित एवं प्रभावित भी देखा जाता है ।

इष्ट के प्रतीक की तरह पूजा उपचार में प्रयुक्त जल शीतलता, शान्ति, नम्रता, सज्जनता का प्रतीक है- सत्प्रयोजनों के लिए हमें समय लगाना एवं श्रम बिन्दुओं को समर्पित करना है । उसी से श्रेष्ठ सत्कर्म बन पड़ते हैं, पाद्य अर्घ्य, आचमन, स्नान के लिए चार चम्मच इसलिये चढ़ाये जाते हैं कि हम अपना श्रम, मनोयोग, प्रभाव एवं धन चारों उपलब्धियों का यथासम्भव अधिकाधिक भाग ईश्वरीय प्रयोजन के लिए समर्पित करेंगे ।

उपार्जित अन्न, धन, वैभव का प्रतीक है । अपनी कमाई को आप ही खाते रहने वाले अनुदार स्वार्थी को शास्त्रकारों ने चोर कहा है । उपार्जन को अपने परिवार भर के उपयोग भर में सीमित नहीं किया जाना चाहिए, वरन् उसमें देश, धर्म, समाज, संस्कृति का भी भाग स्वीकार करना चाहिए । ईश्वर अर्थात् साकार रूप में विराट् विश्व एवं निराकार रूप में सद्भाव, सदुद्देश्य है । इनके लिए अपनी कमाई का एक बड़ा अंश नियमित रूप से निकाला जाय यह जगत समर्पण की प्रेरणा है ।

पुष्प अर्थात् खिलने-खिलाने की, हँसने-हँसाने की, हल्की फुल्की जिन्दगी और सत्प्रवृत्ति । हम फूल जैसे कोमल रहें। भीतर और बाहर से सर्वांग सुन्दर बनें । इस विश्वोद्यान को शोभायमान बनाने वाला जीवन जियें । अपनी गर्दन नुचवाने और मर्म भेदी सुई का छेदा जाना स्वीकार करके प्रभु के गले का हार बनने की आकांक्षा रखें ।

दीपक स्नेह से, चिकनाई से भरा पूरा स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देने वाला--ऊपर को उठती हुई ज्योति दृष्टि। इन्हीं विशेषताओं के कारण दीपक को पूजा में स्थान मिला है । जिनके अन्तःकरण में असीम स्नेह सद्भाव भरा है, जो परमार्थ के लिए बढ़-चढ़कर त्याग, बलिदान कर सकते हैं, कष्ट सह सकते हैं, जिनकी दृष्टि महत्त्वाकांक्षा, ऊर्ध्वगामी है वे उत्कृष्ट आदर्शवादी हैं । वे जीवन ज्योति कहे जा सकते हैं । अपने को इसी मार्ग का पथिक बनाकर हम ईश्वर के निकटवर्ती और अनुकम्पा के अधिकारी बन सकते हैं । धूपबत्ती में अग्नि स्थापना भी प्रकारान्तर से दीपक की ही आवश्यकता की पूर्ति करती है और यही उसकी भी प्रेरणा है ।

चन्दन वह वृक्ष है जिसका कण-कण सुगन्धित है और जो समीपवर्ती झाड़-झंखाड़ों को भी सुगन्धित करता है । अपनी शीतलता से सांप, बिच्छू जैसे विष दंश वालों तक को शान्ति प्रदान करता है । कहते हैं चन्दन वृक्ष पर लिपटे हुए सर्प, बिच्छू शान्ति पाते हैं । उसकी छाया में बैठने वाले सुगन्ध भरी शीतलता प्राप्त करते, उसकी लकड़ी काटने, बेचने वाले या घिसने वाले कष्टदायक लोग भी बदले में प्रतिशोध नहीं उपकार ही पाते हैं । नष्ट होते-होते भी चन्दन अपनी लकड़ी से भजन करने की माला हवन-सामग्री का चन्दन चूरा दे जाता है । हमारी शक्ति, सामर्थ्य का प्रयोग भी इसी प्रकार होना चाहिए ।

नैवेद्य में मिष्ठान चढ़ाने के पीछे भी ऐसी ही प्रेरणाएँ हैं । मिष्ठान का अर्थ है मिठासयुक्त वस्तु । ईश्वर के सान्निध्य के लिए स्वभाव, वाणी, व्यवहार सभी में मिठास पैदा करनी चाहिए ।

जिन्हें उपासना का समग्र लाभ लेना हो, उनके लिए यह आवश्यक है कि कर्मकाण्डों से जुड़ी हुई प्रेरणाओं एवं शिक्षण को न केवल हृदयंगम करें बल्कि अपने जीवन में उतारें । उपरोक्त दिव्य प्रेरणाओं के अनुरूप जीवन क्रम अपनाकर हर कोई अपने व्यक्तित्व को देवोपम बना सकता है ।

उपासना की महत्ता और उसका स्वरूप

उपासना निराकार की करना उचित है अथवा साकार की, इस सम्बन्ध में लम्बे समय से विभिन्न धर्मावलम्बियों में मतभेद चला आ रहा है । अतएव प्रचलित भ्रान्तियों का मिटाया जाना आवश्यक है । साकार एवं निराकार से बड़े मनोवैज्ञानिक तथ्यों के विषय में भली-भाँति नहीं जानना ही मतभेद का प्रमुख कारण है । अस्तु, उन तथ्यों से अवगत होना अनिवार्य हो जाता है ।

भौतिक दृष्टिकोण चेतन को जड़ मानने का है । वैज्ञानिक इस संसार की समग्र सत्ता को जड़ मानते हैं । उनकी दृष्टि से चेतन भी जड़ है । जीवात्मा को भी वे कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानते । ग्रामोफोन के तबे पर सुई की रगड़ पड़ने से आवाज निकलती है । कम्यूटर सोचकर उत्तर देता है, मिट्टी और पानी मिलकर काई हो जाती है, गोबर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सड़कर कीड़े बन जाते हैं । अस्तु जड़ ही स्थिति विशेष में चेतन बन जाता है और अणुओं का विघटन हो जाने पर वह दूसरे रूप में बदल जाता है । इस प्रकार जड़ पदार्थ ही स्थिति विशेष में चेतन बनते हैं और वे फिर समयानुसार जड़ के जड़ बन जाते हैं । इस मान्यता के अनुसार प्राणी नश्वर है । यह नश्वरता नास्तिकता के निष्कर्ष पर पहुँचाती है और 'ऋण कृत्वा घृतं पिवेत्' का खुला निर्देश देती है ।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण जड़ में भी चेतन देखने का है । चेतन तो चेतन है ही । इस विश्व में जड़ता कहीं नहीं है । अणुओं में जो हलचल दिखायी पड़ती है वह भी चेतन का ही स्वरूप है । प्राणियों में सम्वेदना और पदार्थों में सक्रियता की भिन्नता तो है ही-- एक ज्ञान प्रधान है दूसरा कर्म प्रधान, फिर भी दोनों अपनी-अपनी स्थिति और स्तर के अनुरूप चेतन हैं । चेतन ही इस समस्त विश्व में संव्याप्त है । ब्रह्म के रूप में सृजन, विष्णु के रूप में अभिवर्धन और शिव के रूप में परिवर्तन यह तीनों ही कार्य एक परम चेतन परब्रह्म के प्रतिनिधि की तरह सागर की लहरों और शब्द के कम्पनों की तरह एक ही परमात्मा प्रथक-प्रथक शरीरों एवं पदार्थों में पृथक-रूप से भासता भर है वस्तुतः सर्वत्र एक ही परम चेतना विभिन्न आकार-प्रकारों में विद्यमान है । इस मान्यता के अनुसार यह समस्त संसार ब्रह्म का विराट रूप है । ''सियाराम मय सब जग जानी । करहुँ प्रनाम जोरि जग पानी ।'' की दृष्टि रखकर सबके साथ सद्व्यवहार करना पड़ता है । ''ईशा वास्यमिदं सर्व यत्किंचिज्जगत्यां जगत्'' की ईश्वर की सर्वव्यापकता की मान्यता आध्यात्मिक दृष्टिकोण की मौलिकता है । इसी आधार पर नीति, सदाचार, धर्म, दया, उदारता, आत्मीयता जैसी सत्प्रवृत्तियों को अपना सकना मनुष्य के लिए सम्भव हुआ है । भौतिक दृष्टिकोण अपनाने के बाद तो अधिकाधिक 'उपयोग' ही जीवन का लक्ष्य रह जाता है । संयम और सेवा जैसे सद्गुणों को अपनाने पर प्रत्यक्ष हानि ही दीखती है ।

जड़ में चेतन की मान्यता का अभ्यास एक उपयोगी मानसिक व्यायाम है, जिसके लिए प्रतिभा की उसी प्रकार आवश्यकता पड़ती है जैसे व्यायामशाला में डम्बल, मुद्गर आदि अनेकों उपकरणों की । सभी जानते हैं कि उपकरण निर्जीव और असक्त हैं, फिर भी उनका उपयोग करने वाले अपने शरीर को परिपुष्ट करने एवं पहलवान बनाने के लिए सफलतापूर्वक करते हैं । प्रतिमाएँ निर्जीव हैं, यह ठीक है, इसे मानने में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है ? किन्तु जड़ पदार्थ, चेतन को विकसित करने में कोई भूमिका प्रस्तुत नहीं कर सकते ऐसी बात भी नहीं है ।

कलम जड़ है फिर भी उसकी सहायता से ऐसी चिट्ठियाँ एवं पुस्तकें लिखी जाती हैं जो दूसरों को झकझोर कर रख दें । गीता आदि ग्रन्थों का भौतिक विश्लेषण किया जाय तो वे चिथड़ों से बने कागज और कालिख से अंकित आड़ी टेढ़ी लकीरों की एक नगण्य सी गठरी है । न वह बोलती है न सोचती है । फिर भी उनके सहारे हमारा ज्ञान बढ़ता है, चेतन में हिलोरें उठती हैं और सोचने तथा करने का प्रवाह बदलता है । पुस्तक जड़ है वह चेतन को क्योंकर प्रभावित कर सकती है । इसका कोई उत्तर भौतिक दृष्टि से नहीं दिया जा सकता, उत्तर अध्यात्म की दृष्टि से ही है कि अपनी अन्तःचेतना की अपनी ही विवेकशीलता से दिशा प्राप्त की, किन्तु उस विवेक को जाग्रत करने में पुस्तक से सहायता मिली । निस्सन्देह वह जड़ थी पर उससे चेतना को नवजीवन प्राप्त हुआ, नया प्रकाश मिला । ऐसी दशा में पुस्तक को निरर्थक अनावश्यक कैसे कहा जाय ?

प्रतिमाएँ, तस्वीरें सदा सर्वदा बनती रही हैं और उनका सम्मान एवं उपयोग अपने-अपने ढंग से होता रहा है । कम्युनिष्ट देशों में मार्क्स, लेनिन आदि की प्रतिमाएँ सम्मान पूर्वक बहुमूल्य भवनों में स्थापित हैं । लेनिन की काया को भी सुरक्षित रखा गया है और उसका अभिनन्दन संसार भर के कम्युनिष्ट करते हैं । मार्क्स के चित्र उन देशों में घर-घर टंगे मिल सकते हैं । यह मूर्ति पूजा नहीं तो और क्या है ?

ईसाई और मुस्लिम धर्म में मूर्ति पूजा का निषेध है किन्तु उनका काम भी इसके बिना चल नहीं सका, मरियम और ईसा की प्रतिमाएँ गिरजों में अति सम्मानपूर्वक स्थापित हैं । क्रूस की स्थान-स्थान पर प्रतिष्ठा है यह मूर्ति पूजा का अपना एक ढंग इस प्रकार है, भले ही वह हिन्दुओं से भिन्न प्रकार का हो ।

हज जाने वाले को कावा में ''संगे असवद'' का बीसा लेना पड़ता है । यह ''संगे असवद'' स्याह मूसा का पवित्र पत्थर है, जिसका चुम्बन लेना धर्म कर्त्तव्य में शामिल है। हजरत मुहम्मद साहब के स्मारकों को संसार भर के मुसलमान मस्तक झुकाते हैं । मुहर्रम के दिनों में ताजियों का जुलूस हम हर साल देखते हैं । दूसरे उन धर्म प्रतीकों को भी मूर्ति पूजा में गिना जा सकता है, जिनके प्रति श्रद्धाभिव्यक्ति की जाती है ।

राष्ट्रीय ध्वज क्या है ? कपड़े की बनी वह भी एक प्रतिमा ही है, जिसके लिए सम्मान प्रकट करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य माना गया है । उसके प्रति अविज्ञा व्यक्त करने वाला कानून के अनुसार अपराधी ठहरता है और दण्ड भुगतता है । जिस आधार पर मूर्ति पूजा का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निषेध किया जाता है, उस कसौटी पर तो राष्ट्रीय झण्डा भी 'जड़ पदार्थ' ठहरता है और उसका सम्मान राष्ट्र के लिए कोई तर्क हाथ में नहीं रह जाता ।

विश्व में सर्वत्र महामानवों की प्रतिमाएँ स्थापित होती हैं और चित्र टाँगे जाते हैं । पार्कों में, चौराहों पर, हर शहर में विशिष्ट व्यक्तियों की बड़े आकार की बहुमूल्य प्रतिमाएँ स्थापित होती हैं । इस स्थापना का उद्देश्य उन दिवंगत आत्माओं के प्रति सार्वजनिक सम्मान को आमन्त्रित करना एवं उनकी विशेषताओं से प्रकाश ग्रहण करना ही होता है । यह प्रतिमाएँ बहुत हद तक अपना उद्देश्य पूरा करती हैं । यही कारण है कि प्रखर बुद्धिवाद भी इनका समर्थन करता है और स्थापना में उत्साहपूर्वक धन खर्च करने पर सहमत रहता है ।

महामानवों की प्रतिमाएँ खुले में स्थापित की जाती हैं । इससे अति भावुक लोगों की श्रद्धा का समाधान नहीं होता । वे अपने श्रद्धास्पद प्रतीकों को आँधी, तूफान, धूप, वर्षा में ज्यों-त्यों पड़े रहने देने, उन पर चिड़ियों की वीट, मकड़ी के जाले और गईगुवार जमा होते रहने देने की अपेक्षा यह अधिक उपयुक्त समझते हैं कि इन प्रतीकों को सुन्दर, सुसज्जित भवन में, मन्दिर में स्थापित करें और उनकी स्वच्छता, सुसज्जा का समुचित प्रबन्ध रखें । यदि प्रतिमाएँ इस प्रकार अधिक सुरक्षित और श्रद्धायुक्त रीति से स्थापित की जायें तो इस कार्य को अति भावुकता भले ही कहा जाय, पर कुछ अनर्थ हुआ, ऐसा नहीं सोचा जाना चाहिए ।

प्रेम मानव जीवन का सर्वोपरि चेतना तत्व है । उसके साथ आदर्शवादी सिद्धान्तों की लम्बी श्रृंखला जुड़ी हुई है । प्रेमी अन्तःकरण सहज ही दयालु, सहृदय, सम्वेदनशील, उदार एवं सद्भाव सम्पन्न होता है । आत्मीयता को आमुक व्यक्ति को माध्यम बनाकर विकसित, परिपुष्ट किया जाता है और फिर वह आत्म-विकास अधिकाधिक व्यापक बनते-बनते प्रेमी को वसुधैव कटुम्बकम् की स्थिति में पहुँचा देता है । वह अपने को विश्व नागरिक मानता है और समष्टि आत्मा को अपना सर्व समर्पण करता है । मानवी अन्तरात्मा की यह उच्चतम स्थिति है । इसमें जो जा पहुँचता है, वह असीम आनन्द एवं सन्तोष उपलब्ध करता है । तत्वदर्शियों ने 'प्रेम को परमेश्वर' कहा है । गीता उपनिषद् से लेकर बाइविल तक सभी तात्विक प्रतिपादन प्रेम की महिमा एक स्वर से गाते रहे हैं । भक्तियोग का तात्पर्य ही प्रेम साधना है । इसे अपनाकर ही पूर्णता के जीवन लक्ष्य तक पहुँच सकना सम्भव होता है ।

प्रेम तब निष्कृष्ट स्तर का होता है जब उसे बदले की भावना से किया जाता है । तब उलाहने, आरोप, खीज और प्रतिशोध ही हाथ लगता है, क्योंकि आवश्यक नहीं कि हम अपने अनुदान को जितना ऊँचा मानते हैं, उतना वह न माने जिससे प्रेम किया गया है । यह भी हो सकता है कि वह अपनी मनःस्थिति या परिस्थिति के कारण वैसा प्रतिपादन न दे पावे जैसा कि प्रेमकर्ता ने अपेक्षा की थी । ऐसी दशा में प्रेम अभिशाप ही सिद्ध होता है और उस जंजाल में वह सद्भावना भी चली जाती है जो सामान्य लोक-व्यवहार बहाते रहने पर एक सीमा तक बनी रह सकती थी ।

प्रेम साधना आत्मिक विकास की महान उपलब्धि है । पर वह सम्भव तभी है जब उच्च स्तरीय हो । उच्चस्तरी का अर्थ है-- एकांगी । अपनी ओर से परिपूर्ण प्रेम किया जाय उतने भर को अपने सन्तोष एवं आनन्द के लिए पर्याप्त माना जाय । सामने वाले से कुछ भी अपेक्षा न की जाय तो ही उसका निर्बाध विकास हो सकता है । यह कैसे सम्भव हो ? इसके लिए प्रतिमा पूजन को एक युक्तियुक्त आधार माना गया है । पुजारी अपनी ओर से अजीब मूर्ति का पंचोपचार--षोडशोपचार पूजन करता है । उसे श्रद्धासिक्त मस्तक झुकाता है और नैवेद्य चढ़ाता है । इतना सब एक पक्षीय होता रहता है । किन्तु दूसरे पक्ष से प्रतिदान की प्रतिक्रिया रत्ती भर भी दृष्टिगोचर नहीं होती । देव प्रतिमा बदले में वस्तुएँ देना तो दूर हँसती, मुसकराती तक नहीं, अभिवादन का प्रत्युत्तर तक नहीं देती । सर्वथा मौन अविचल बैठी रहती है । इतने पर भी पूजा करने वाले न तो निराश होते हैं और न रोष करते हैं । वे मूर्ति के कुछ भी न कहने या कुछ भी न करने की प्रतिक्रिया पर ध्यान न देकर अपने पक्ष का कार्य अविचल श्रद्धा के साथ करते ही रहते हैं । प्रेम तत्व की साधना का यही उच्चस्तरीय स्वरूप है । इसी को अपनाने पर प्रेम की गरिमा का रसास्वादन किया जा सकता है ।

मूर्ति पूजा को भक्तियोग की (प्रेम साधना का) एक उपयुक्त माध्यम कहा जा सकता है । अवलम्बन से मनुष्य गिरता नहीं उठता है । दोष, दुर्गुणों से रहित मनुष्य ही श्रद्धास्पद हो सकता है । भले ही उसमें कोई चमत्कारी विशेषताएँ न हों । मनुष्यों में अनेकानेक दोष, दुर्गुण होते हैं । पूर्ण मनुष्य एक भी नहीं । दोष दूर से नहीं दीखते, पर समीप जाने पर वे उनमें भी किसी मात्रा में रहते ही हैं जिन्हें हम 'आदर्श' कहते हैं । मनुष्य आसुरी, दैवी गुणों के तम और सत् के सम्मिश्रण से बना है । पूर्णता प्राप्त करने के लिए ही उसकी जीवन चर्या चल रही है । अपूर्णता दूर होने पर तो वह पूर्ण में विलीन हो जाता है । संसार में जब एक भी मनुष्य पूर्ण नहीं तो उनसे प्रेम करने पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कभी न कभी कुछ दोष दृष्टि में आ जावेंगे और घृणा, द्वेष उत्पन्न करेंगे। इस गड़बड़ी से प्रेमी की प्रेम साधना में कभी न कभी व्यतिरेक उत्पन्न हो ही जायेगा ।

इन कारणों को ध्यान में रखते हुए-- प्रेमयोग की, भक्तियोग की साधना के लिए उपयुक्त माध्यम देव प्रतिमा को माना गया है । निस्सन्देह वह मिट्टी, पत्थर या धातु की बनी होती है, इतने पर भी वह उन दोष, दुर्गुणों से मुक्त रहती है जिनसे सर्वथा रहित किसी एक मनुष्य का मिल सकना भी कठिन है । विशिष्ट गुणों और विशेषताओं के कारण मनुष्य आकर्षक तो लगता है, पर जब उसके दोष दृष्टि में आते हैं तो निराशा भी बहुत होती है । ऐसी दशा में पहले से ही ऐसा माध्यम ढूँढ़ना उचित है, जिससे दोष, दुर्गुणों से उत्पन्न विक्षोभ सामने न आवे । इस आवश्यकता की पूर्ति देव प्रतिमा से हो जाती है । इसके सहारे एकांगी प्रेम का निर्बाध अभ्यास बिना किसी व्यवधान के क्रमशः आगे ही बढ़ता रहता है ।

सामान्य मनुष्य देहासक्ति में, लोभ, मोह में इतने डूबे रहते हैं कि उन्हें भगवान् का, उसके न्याय का ध्यान ही नहीं रहता । लोग यह भूले ही रहते हैं कि एक दिन भगवान की अदालत में खड़ा होना है और बहुमूल्य मानव शरीर के साथ जो उत्तरदायित्व सोंपे गये थे, उनका कितना पालन किया गया, यह विवरण देना पड़ेगा । यह विस्मरण ही अज्ञानान्धकार है, जिसमें हम सब आजीवन भटकते रहते हैं और अन्ततः पापों की गठरी सिर पर लादकर संसार से खाली हाथ विदा होते हैं । इस मोह निद्रा से जागने में देव प्रतिभा की समीपता हल्के थपेड़े लगाती रहती है । मन्दिर की मूर्ति को देखकर भगवान का स्मरण आता है और उस स्मृति के साथ-साथ परमात्मा और आत्मा के सम्बन्धों का आदान-प्रदान के साथ जुड़े हुए उत्तरदायित्वों का बोध होता है । दिन में भी आँखें मीचे रहने वालों को तो कोई क्या कहे पर मूर्तिपूजा में सिद्धान्ततः वे आधार जुड़े हुए हैं जो आत्मिक उद्देश्यों को विस्मृति-स्मृति में बदल सकने में सहायता कर सकें ।

जिनकी अन्तःचेतना, धारणा, ध्यान और चिन्तन-मनन का निर्वाह कर सकने जैसे स्तर तक विकसित नहीं हुई है उनके लिए नेत्रों से दीख पड़ने वाले देव विग्रह भी कम महत्त्व के नहीं हैं । दिव्य दृष्टि न होने पर भी देव दर्शन से कुछ न कुछ आंशिक पूर्ति हो ही जाती है । न होने से तो कुछ होना ही अच्छा । देव पूजा के माध्यम से उपासना का न्यूनाधिक क्रम नियमितता बनी ही रहती है । यदि यह क्रम हटा दिया जाय तो फिर निराकार उपासना पर समय का कठोर प्रतिबन्ध नहीं रहता । सभी समय भगवान हैं यह सोचकर मन नियमितता के बन्धन तोड़ने लगता है । ऐसी दशा में उपासना का वह प्रधान आधार ही टूट जाता है जिसके कारण नियत नियमितता अपनाये रह कर साधना को परिपक्व और परिपुष्ट किया जाता है ।

सभी जानते हैं कि भगवान निराकार भी है और साकार भी । प्रत्येक पदार्थ में वे संव्याप्त हैं तो फिर मूर्ति में क्यों न होंगे ? मूर्ति में भगवान नहीं हैं, ऐसा कहना उचित नहीं । सर्वव्यापी सत्ता निराकार ही हो सकती है, इसे मानने में किसी को क्यों आपत्ति होगी ? पर उसके निराकार होने पर ही आग्रह नहीं होना चाहिए । वस्तुतः भगवान निराकार भी है और साकार भी । झगड़ा 'ही' कहने से आरम्भ होता है और 'भी' कहने पर समाप्त हो जाता है । भगवान निराकार ही है । यह न कहकर यदि यों कहा जाय कि वे निराकार 'भी' हैं तो आये दिन खड़े होते रहने वाले झंझट सहज समाप्त हो जाते हैं ।

हमारे ज्ञान का अधिक अंश नेत्र और कान के माध्यम से ही मस्तिष्क तक पहुँचता है । भगवत् चेतना को हृदयंगम करने के लिए यदि दृश्य रूप से उनकी प्रतिमा को और श्रव्य रूप से उनके गुण-गान को आधार बनाया जाय तो हानि कुछ नहीं लाभ बहुत हैं ।

मूर्तिपूजा मानवी स्वभाव का अंग है । शरीरों को हम जीवात्मा की साकार प्रतिमा कह सकते हैं और इस विशाल ब्रह्माण्ड को विराट् ब्रह्म का विग्रह । कला-कृतियों को गहरी दृष्टि से देखने पर कलाकार को अच्छी तरह समझ सकना सम्भव हो सकता है । सौन्दर्य में रुचि लेकर हम अनन्त सौन्दर्य के उद्गम परमात्मा को अधिक सरलतापूर्वक समझ सकते हैं । नाद ब्रह्म के सहारे परब्रह्म तक पहुँचने का प्रयोग संगीत साधना द्वारा करते हैं और वे उस प्रयास में बहुत हद तक सफल भी होते हैं ।

मूर्ति पूजा का खण्डन सम्भवतः इस कारण किया गया है कि उसके बहाने धूर्तों ने भोली जनता को कई तरह से ठगा है । अमुक स्थान की प्रतिमा अधिक फल देती है इतना और ऐसा चढ़ावा चढ़ाने पर अमुक मनोकामना पूरी होती है, जैसी भ्रान्ति फैलाकर निस्सन्देह मूर्ति पूजा को बदनाम किया, पर यह अवांछनीयता तो धूर्तों और मूर्खों के बीच पनपने वाली भ्रान्ति के कारण उत्पन्न होती है । धूर्तता, मूर्खता और अंध-विश्वासों का निवारण, निराकरण किया जाना चाहिए, पर इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि मूर्ति पूजा के उपयोगी सिद्धान्त को ही समाप्त कर दिया जाय । रोग को मारा जाना चाहिए, रोगी को नहीं । सिर में जुएँ पड़ जायें तो उन्हें समाप्त करने का यह उपाय नहीं कि सिर को ही गर्दन से काटकर अलग कर दिया जाय ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपासना आवश्यक है और अनिवार्य भी

गर्मी की ऋतु में आग आसानी से जलती और फैलती है, किन्तु वर्षा के दिनों में उसे जलाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है । अग्निकाण्ड जितनी तेजी से गर्मी की ऋतु में होते हैं उतने वर्षा के दिनों में नहीं होते । कारण यह है कि वर्षा में वायु पानी की नमी से भरी रहती है, इसलिए उसका प्रभाव चूल्हे की अग्नि पर पड़ता है और जलने में कठिनाई तथा मन्दता रहती है पर गर्मी में आकाश सूक्ष्म अग्नि तत्व से भरा रहता है तो चूल्हे की अग्नि से उसकी प्रचण्डता जुड़ जाती है और जलाने की क्रिया बहुत सरल हो जाती है ।

आकाश की अग्नि का जितना प्रभाव वातावरण में समाया होगा उतनी ही प्रचण्डता और मन्दता घर की अग्नि में भी पाई जायेगी । चूल्हे में अग्नि वैसी ही है पर आकाश की अग्नि का जैसा न्यूनाधिक प्रभाव पड़ रहा होता है उसी अनुपात में उसकी ज्वलन शक्ति तीव्र या मन्द होती चली जाती है । परमात्मा इस निखिल विश्व में अग्नि तत्व की ही तरह व्याप्त है । जो जीव उससे जितना सम्बन्ध जोड़ लेता है उतनी ही तीव्रता उसके भीतर उत्पन्न हो जाती है।

उपासना का तात्पर्य है पास बैठना । जो जितना ही ईश्वर के समीप बैठेगा, उसमें उसके गुण भी उतने ही अधिक उत्पन्न होंगे । चन्दन के वृक्ष के समीप उगने वाले छोटे पौधे भी सुगन्धित हो उठते हैं । गुलाब के पौधे के नीचे मिट्टी पर जब फूल टूट-टूट कर गिरते रहते हैं तो वह मिट्टी भी सुगन्धित हो जाती है । भले और बुरे मनुष्यों की संगति का जब भला बुरा प्रभाव पड़ता है तो ईश्वर की समीपता का प्रभाव क्यों न पड़ेगा ? आकाश में व्याप्त अग्नि तत्व में जिस प्रकार गर्मी का विपुल भण्डार भरा रहता है, उसी प्रकार ईश्वर में शक्ति प्रचण्ड परिमाण में मौजूद है । जीव जब उसके साथ सम्बन्ध स्थापित करता है, समीप बैठता है तो उसे भी उस सामीप्य और सान्निध्य का समुचित लाभ मिलता है । जो लोग ईश्वर से सम्बन्ध नहीं रखते, वे बरसात में जलने वाले चूल्हे की तरह हैं, जिन्हें आकाश की गर्मी का लाभ नहीं मिल पाता और फलस्वरूप वे मन्द गति से सुलगते रहते हैं । ईश्वर के उपासक गर्मी के दिनों में जलने वाले ईंधन की तरह हैं, उन्हें आकाश की गर्मी का लाभ मिलता है और सहज ही प्रज्ज्वलित हो उठते हैं ।

बिजलीघर में उत्पन्न और संग्रहीत विद्युत के साथ जो तार जितनी पावर की शक्ति अपने अन्दर ग्रहण करने लगते हैं, उनमें उतना ही करेन्ट प्रवाहित होने लगता है । विद्युत संचालित यन्त्र उतना ही कार्य कर पाते हैं, जितनी उन्हें बिजली प्राप्त होती है । छोटी पावर के बल्ब कम प्रकाश देते हैं क्योंकि उन्हें थोड़ी ही बिजली मिल पाती है । बड़ी पावर के बल्ब अधिक प्रकाश फैलाते हैं क्योंकि उन्हें अधिक बिजली की शक्ति प्राप्त होती है । जीव साधारण शक्ति के--जीरो नम्बर के बल्ब के समान है । उसमें सर्वसाधारण की तरह मिला हुआ सामान्य प्रकाश थोड़ा-सा ही होता है। पर जब वह अपनी क्षमता बढ़ा लेता है और अधिक मात्रा में विद्युत प्रवाह अपने अन्दर धारण करने लगता है, तो उसमें अधिक प्रकाश उत्पन्न करने की शक्ति भी बढ़ जाती है । छोटी ताकत की एक हार्स पावर की मोटर थोड़ा-सा वजन खींच पाती है पर जब उस मोटर को अधिक हार्स पावर का बना दिया जाता है, तो अधिक वजन खींचने लगती है । ईश्वर को विद्युत भण्डार कहा जाय तो जीव को बल्ब या मोटर कह सकते हैं । जितनी क्षमता बिजली को धारण करने की मोटर या बल्ब में होगी उतना ही वे अधिक सक्षम होंगे । ईश्वर उपासना का प्रयोजन यही है कि जीव अपने भीतर अधिक शक्ति और सामर्थ्य धारण करता हुआ अधिक विकसित एवं समुचित बन सके ।

उपासना द्वारा हम ईश्वर के समीप पहुँचते हैं और पास रहने वाले को स्वभावतः किसी वस्तु का अधिक लाभ मिलता है । आग की भट्ठी के पास बैठने से शीत ऋतु में गर्मी का आनन्द उठाया जा सकता है । हिमालय के शीतल वातावरण में ग्रीष्म ऋतु की कठिनाई का पता भी नहीं चलता । गंगा के शीतल जल में स्नान करते ही सारा शरीर ठण्डक अनुभव करता है । सुगन्धिकार की दुकान पर बैठने से इत्र फुलेल की सुगन्ध का लाभ सहज ही मिलता है । गन्ने की फसल कटने के समय काम करने वाले मजदूरों का मुँह दिन भर मीठा होता रहता है । जहाँ जिस वस्तु की प्रचुरता है, वहाँ रहने वालों को उसका लाभ प्राप्त होते रहना स्वाभाविक है । ईश्वर के पास जो लोग बैठते हैं, उसके साथ अपने आत्मिक सम्बन्ध बनाते हैं, उपासना करते हैं, उन्हें ईश्वर की श्रेष्ठ शक्तियों का लाभ मिलना ही चाहिए।

मिनिस्टर, मजिस्ट्रेट या राजा अमीरों के अर्दली चपरासी और साथ रहने वाले साधारण कर्मचारियों का भी लोगों की दृष्टि में बड़ा मान होता है । वे उनसे डरते भी हैं और उन्हें प्रसन्न भी रखते हैं । कारण यह है कि लोग समझते हैं कि उस कर्मचारी की पहुँच वहाँ है जहाँ हमारी निंदा या प्रशंसा का प्रसंग पहुँचे तो उससे हमें हानि या लाभ हो सकता है। बहुधा होता भी ऐसा है कि समीप रहने वाले का कुछ अधिक ध्यान सभी को रखना पड़ता है। ईश्वर भी इसका अपवाद नहीं है । उसके पास तक जिनकी पहुँच है वे इन अच्छे सम्बन्धों का लाभ दूसरों को भी किसी न किसी रूप में पहुँचा ही सकते हैं । ईश्वर भक्तों के अनुग्रह एवं आशीर्वाद से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कितने ही लोगों का भला होता है, उस प्रक्रिया में उन भक्तजनों का ईश्वर सान्निध्य ही प्रमुख कारण होता है ।

बड़े लोगों के पास उठने-बैठने से स्वभावतः उनके गुण, कर्म, स्वभाव, सभ्यता आदि की शिक्षा मिलती है और सम्पर्क में रहने वालों का तरीका सभ्यतायुक्त बन जाता है । ईश्वर को बड़े से बड़ा कह सकते हैं, उसके पास जो व्यक्ति नित्य बैठेगा, बार-बार बैठेगा, भावनापूर्वक बैठेगा उस पर उस बड़प्पन का प्रभाव पड़ेगा ही । देखा जाता है कि सच्चे उपासकों का अन्तःकरण ईश्वर की तरह उदार और विशाल बन जाता है, उसमें उन गुणों का सहज ही प्रकाश होने लगता है, जिनके कारण ईश्वर की इतनी प्रशंसा की जाती है ।

वर्षाती नदी-नाले अपना संग्रह किया जल समाप्त हो जाने पर सूख जाते हैं, पर जिन नदियों का स्रोत किसी भूगर्भ या पर्वत से निसृत होने वाली अजस्र जलधारा से सम्बन्धित होता है वे नहीं सूखतीं । इसी प्रकार जो तालाब, बावड़ी भूमिगत स्रोतों से जल प्राप्त करते रहते हैं, उनमें सदैव जल भरा रहता है । ईश्वर उस जल स्रोत के समान है जो कभी समाप्त नहीं होता । जब हम उसके साथ अपना सम्बन्ध बना लेते हैं तो दिव्य गुणों और विभूतियों की जलधारा हमारे अन्दर भी निरन्तर लहराती हुई दृष्टिगोचर होने लगती है ।

प्रत्येक वस्तु अपने उद्गम केन्द्र से ही गतिशील रहती है, उसी की आकांक्षा करती और उसी से प्रसन्न रहती है । मछली जल में उत्पन्न होती है, उसे जल में ही आनन्द मिलता है । जल से वियोग होने पर उसे मर्मान्तिक पीड़ा और छटपटाहट का सामना करना पड़ता है । कमल की बेल जल में ही पनपती है, जल जितना बढ़ता है, उतनी ही वह ऊपर उठती है, जितना पानी सूखता है उतनी ही वेल भी नीची गिरती जाती है । जीव का आविर्भाव ब्रह्म से हुआ है । वह उसी के सान्निध्य में सुख प्राप्त कर सकता है । जब यह सम्बन्ध सूत्र टूट जाता है या शिथिल पड़ जाता है तो मनुष्य की आन्तरिक स्थिति अधोगामी होने लगती है और विकृत भी । आत्मा के विकास की उद्गम शक्ति परमात्मा से ही प्राप्त होती है । उसका स्वाभाविक आकर्षण भी उधर ही है । गाय और बछड़े का, माता और बच्चे का मिलन जिस प्रकार आनन्ददायक होता है उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा का मिलन भी ब्रह्मानन्द, आत्म साक्षात्कार एवं ईश्वर-प्राप्ति के नाम से पुकारा जाता है । यह लाभ जब तक नहीं मिलता, तब तक जीव को अतृप्ति और अशान्ति ही बनी रहती है ।

अपनी माँ से बिछुड़े हुए शिशु को चैन कहाँ, गाय से बिछुड़ा हुआ बछड़ा अशान्त ही फिरता रहता है । नदी का जल निरन्तर समुद्र से मिलने के लिए दौड़ता ही रहता है, रास्ते में उसे न तो विश्राम मिलता है और न चैन । जब वह जल समुद्र में जा पहुँचता है तभी उसे शान्ति मिलती है । नदी का जल वस्तुतः बादलों के माध्यम से समुद्र से ही आया था उसकी सन्तुष्टि भी अपने उद्गम केन्द्र समुद्र में पहुँचने पर ही सम्भव हो सकती है । परमात्मारूपी माता का पुत्र ही तो जीव है, उसे अपनी जन्मदात्री सत्ता के अतिरिक्त और कहाँ चैन मिलेगा ? जब तक यह वियोग संयोग रूप में परिणत नहीं हो जाता तब तक उसे अशान्ति ही बनी रहेगी ।

प्रत्येक जीव सुख की तलाश में भटक रहा है । अपनी कल्पना और बुद्धि के अनुसार वह धन, भोग, सत्ता, विनोद, मान, प्रतिष्ठा, स्त्री, पुत्र आदि में सुख ढूँढ़ता फिरता है । पर उसे तब तक निराश ही रहना पड़ता है जब तक कि वह शान्ति के उद्गम परमात्मा को प्राप्त नहीं कर लेता । कस्तूरी से हिरन को गन्ध आती है और वह उसे प्राप्त करना चाहता है और तलाश के लिए व्यर्थ ही मारा-मारा फिरता है । उस बेचारे को क्या पता कि जिस वस्तु को वह तलाश करता फिरता है, वह उसकी नाभि में ही मौजूद है । चाँदनी रात में ऊसर भूमि पर फैला हुआ खार चमकता हुआ देखकर प्यासा मृग यह अनुमान लगाता है कि यह जलाशय ही भरा पड़ा है । जब वहाँ पहुँचता है तो उसे निराश ही रहना पड़ता है । यही स्थिति सुख, शान्ति की तलाश करने वाले जीव की रहती है । जब तक उसे परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक विभिन्न वस्तुओं में सुख की खोज करता हुआ निराश ही भटकता रहता है । मृग-तृष्णा उसे निरन्तर उद्विग्न किये रहती है । माया भगवान की ही पत्नी है । जब तक जीव भगवान की शरण में नहीं जाता तभी तक वह सताती है, प्रभु की शरण में जाने के उपरान्त माया और कामना, वासना और तृष्णा, शोक और सन्ताप सभी से छुटकारा मिल जाता है ।

काम, क्रोध, लोभ, मद मत्सर से बन्धनों में बँधा हुआ जीव जाल में फँसे हुए पक्षी की तरह तड़फड़ाता रहता है । बन्धनों से मुक्ति तब मिलती है, जब परमात्मा की शरणागति प्राप्त होती है । प्रभु के अनुग्रह का चक्र सुदर्शन ही जीव के भव-बन्धनों को काटता और अक्षय शान्ति का अमृत प्रदान करता है ।

जीव का सबसे शक्तिशाली और सबसे सच्चा मित्र ईश्वर ही हो सकता है । जब तक उसे इस मित्र का संरक्षण प्राप्त नहीं होता, तब तक वह अपने को अकेला अनुभव करता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है और हर कठिनाई से, हर व्यक्ति से, हर आशंका से डरता रहता है । पर जब उसे परमात्मा अपना साथी, सहचर, रक्षक और सहायक प्रतीत होने लगता है, तब फिर उसे किसी से भी डरने की जरूरत नहीं रह जाती । इतना बड़ा सामर्थ्यवान जिसके साथ हो उसे किसी से डरने की जरूरत भी क्यों होगी ? एक और एक मिल कर दो मानव प्राणी ग्यारह के समान बलवान बन जाते हैं, पर जिसे परमात्मा पर विश्वास है उसमें हजार हाथियों का बल माना जाता है । जिसने परमात्मा से डरना सीख लिया उसे संसार में और कोई भी शक्ति डरा नहीं सकेगी । जिस आन्तरिक दुर्बलता के कारण मनुष्य पग-पग पर चिन्तित, खिन्न, अशान्त और भयभीत होता रहता है वह तभी तक रहती है जब तक कि ईश्वरीय विश्वास का बल प्राप्त नहीं होता । आत्म-बल प्राप्त होने पर दुर्बल शरीर में भी इतनी प्रचण्ड शक्ति उत्पन्न होती है कि वह बड़े से बड़े आघातों का हँसते हुए मुकाबला कर सकता है । मृत्यु उसे तनिक भी विचलित नहीं कर सकती । जिसने आत्मा की अमरता और शरीर की नश्वरता का अनुभव कर लिया उसे डर नाम की वस्तु से पाला ही नहीं पड़ सकता । जो निर्भय है वस्तुतः इस संसार में उसे ही सच्चा सुखी कह सकते हैं और यह निर्भयता केवल आस्तिक मनुष्य के लिए ही सम्भव हो सकती है ।

उपासना का तात्पर्य है-- ईश्वरीय गुण, कर्म स्वभाव को, दैवी सम्पदाओं को अपने अन्दर धारण करना । यह धारणा जितनी अधिक बढ़ती जाती है, उतना ही जीव का आत्मिक उत्कर्ष होता है और वह देवत्व का अधिकारी बनता जाता है । ऋषियों, महापुरुषों, देवदूतों और अवतारों में ईश्वरीय शक्ति और समीपता का प्रकाश ही बढ़ा-चढ़ा होता है । ईश्वर महान है इसलिए उसकी समीपता करने वाले में महानता के लक्षण स्पष्ट हीं प्रकट होने चाहिये । देवता उन्हें ही कहते हैं जो दिव्य गुणों का भण्डार अपने में भरे रहते हैं । दिव्य गुण कर्म और दिव्य स्वभाव यही तो देवता के लक्षण हैं । ईश्वर दिव्य तत्वों का भण्डार है उसकी समीपता से दिव्य तत्वों का लाभ होना ही चाहिए । भगवद् भक्त को देवता बनना ही चाहिए ।

यह समस्त सृष्टि ईश्वर की बनायी हुई है । वही इसका निर्माता, पोषक और संहारकर्ता है । उसकी शक्ति और कृपा की अनुकूलता यदि अपनी ओर होने लगे तो जो कुछ इस सृष्टि में विनिर्मित हुआ है, वह हमें भी प्राप्त हो सकता है । वह पोषक परमात्मा जब सभी का सिंचन, अभिवर्द्धन और उत्पन्न करता है तो हमारी क्षमताओं, परिस्थितियों और सुविधाओं को भी बढ़ा सकता है । जिस प्रभु के द्वारा असंख्यों अनुपयोगी वस्तुएँ क्षण-क्षण में नष्ट की जाती रहती हैं वह हमारी व्यथा बाधाओं का भी विनाश कर सकता है । जिस परमात्मा की कृपा से यह सारी सृष्टि बनती बढ़ती, फलती, फूलती और आनन्दित होती है, उसके कण-कण, क्या हमारे जीवन को विकसित या प्रफुल्लित नहीं कर सकते ? जिससे विरोधी और प्रतिकूल लोगों को भी सहायता ही मिलती है उससे सहचर एवं अनुकूल लोगों को क्या कोई विशेष सहारा न मिलेगा ? ईश्वर का भक्त कभी घाटे में नहीं रहता । बड़े आदमियों के साथ जब कोई रिश्तेदारी या मित्रता का सम्बन्ध जुड़ जाता है तो उतने मात्र से छोटी स्थिति के व्यक्ति को अनेकों लाभ एवं उन्नति के अवसर मिलते रहते हैं । फिर क्या ईश्वर जैसी सर्वोपरि शक्ति के साथ एकता का सम्बन्ध जोड़ लेने पर सुख-शान्ति के अवसर मिलने में कोई कमी रहेगी ?

अमीरों या अफसरों के साथ दोस्ती करने में जब लोग बहुत समय और धन खर्च करते रहते हैं तो क्या ईश्वर जैसे अमीर और सबसे बड़े अफसर के साथ दोस्ती करने में कुछ समय लगाते रहना बुद्धिमत्ता की बात न होगी ? सुदामा ने श्रीकृष्ण से मित्रता करके कुछ खोया नहीं पाया ही था । नरसी मेहता की कथा बताती है कि आड़े वक्त में भगवान ही काम आये । द्रौपदी की लाज रखने और गज को ग्राह के बन्धनों से छुड़ाने में ईश्वर की सहायता ही मिली । प्रह्लाद को क्या नहीं मिला ? ध्रुव ने क्या नहीं पाया ? सुग्रीव का त्रास दूर हुआ और विभीषण ने उचित पुरस्कार पाया । सामर्थ्यवान् का सहचर होने का प्रयत्न करना मूर्खता नहीं बुद्धिमत्ता ही है । ईश्वर की उपासना में लगाया हुआ समय निरर्थक नहीं जा सकता ।

जिस प्रकार सोने को अग्नि में डालने से उसके मल जल जाते हैं और आभा चमकने लगती है, उसी प्रकार ईश्वरीय-तत्व के सान्निध्य में आने से आत्मा के विकार नष्ट होने लगते हैं और उसका ब्रह्म-तेज प्रखर होने की स्थिति स्पष्ट दिखायी देने लगती है । तपाया हुआ सोना प्रामाणिक और खरा माना जाता है । ईश्वर की आराधना में संलग्न रहकर भी मनुष्य अपनी प्रामाणिकता और श्रेष्ठता को विकसित ही करता है । यह श्रेष्ठता जैसे-जैसे विकसित होती है वैसे-वैसे आत्मा में परमात्मा की शक्तियों का अधिकाधिक प्रवेश होने लगता है । इसे ही सिद्धि प्राप्ति कहते हैं । तपस्वियों में साधारण मनुष्यों की अपेक्षा ब्रह्म-तेज और आत्म-बल की मात्रा बहुत अधिक होती है, इस सम्पत्ति और शक्ति के द्वारा वे अपना भी भला कर सकते हैं और दूसरों को भी लाभ पहुँचा सकते हैं । ईश्वर का प्रत्येक कार्य चमत्कार जैसा है उसकी कृतियों में ऋद्धि-सिद्धि ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सब ओर भरी दिखायी पड़ती है । इस अपार भण्डार में से आत्मा को भी थोड़ा प्रसाद मिल सकना कुछ कठिन बात नहीं है । उपासना के द्वारा जो व्यक्ति जितनी विभूति प्राप्त कर लेता है वह उतना ही चमत्कारी और सिद्ध पुरुष बन जाता है । प्राचीन सन्त, भक्तों की कथाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि उन्होंने उपासना के माध्यम से जो ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त किया उसके कारण वे चमत्कारी सिद्ध पुरुष कहला सके । संसार ने उनके गौरव को समझा और उनके चरणों में मस्तक झुकाया । ऋषि-मुनियों की महत्ता उनकी उपासना, आराधना में ही सन्निहित है ।

पतंग की डोरी जब तक उड़ाने वाले के हाथ में रहती है तब तक इस बात की पूरी सम्भावना बनी रहेगी कि पतंग आकाश में ऊपर ऊँची उड़ती रह सके । पर जब डोरी किसी के हाथ में नहीं रहती तो उसका जमीन पर गिर जाना निश्चित है । ईश्वर के हाथ में जीवन की डोर सौंप कर मनुष्य पतंग की तरह आकाश में उड़ता रह सकता है, उच्च स्थिति को प्राप्त कर सकता है पर जब वह सम्बन्ध टूट गया तो फिर भूमिसात् ही होना पड़ता है । चतुर केवट की नाव में बैठकर आसानी से भयंकर नदी को पार किया जा सकता है । इस जीवन की वैतरणी को पार करने के लिए भी उपासना रूपी नाव पर सवार होना उचित है ।

पैरों के तले कुचली जाती रहने वाली धूलि ऊँची आकाश में छा जाती है । बादलों के सहारे समुद्र का खारा एवं निरर्थक जल मीठा बनता है और आसमान में विहार करता हुआ सब की आशा का केन्द्र बनता है । हवा और बादल जैसा सहारा पाकर मनुष्य भी धूल की या खारे जल की स्थिति से ऊँचा उठकर उन्नति के उच्च शिखर तक पहुँच सकता है । यह सहारा ईश्वर का ही हो सकता है, जिसके माध्यम से तुच्छ स्थिति में पड़ा हुआ प्राणी विश्व का मुकटमणि महापुरुष कहलाने जैसा गौरव प्राप्त कर सके ।

जिस आश्रय को प्राप्त करके मनुष्य केवल लाभ ही लाभ उठा सकता है, उसकी उपेक्षा करना किसी प्रकार भी बुद्धिमानी की बात नहीं कही जा सकती । छोटे-छोटे लाभों और स्वार्थों के लिए इतना कठिन प्रयत्न करने वाला मनुष्य जब असीम लाभ के भाण्डागार ईश्वर की उपेक्षा करता है तब उसकी बुद्धिमत्ता पर सन्देह होने लगता है । अन्य व्यापारों में घाटा भी हो सकता है पर उपासना तो ऐसी तिजारत है जिसमें घाटे की कोई सम्भावना ही नहीं रहती । इतना होते हुए भी जब लोग यह कहते हैं कि उपासना के लिए हमें फुरसत नहीं, इच्छा नहीं, सुविधा नहीं, तब यही मानना पड़ता है कि इन्होंने अपने सबसे बड़े स्वार्थ और लाभ को समझ ही नहीं पाया अन्यथा ऐसी बहानेबाजी करके जीवन की सर्वोपरि आवश्यकता से इस प्रकार मुँह न मोड़ लेते ।

आद्य शक्ति की उपासना से जीवन को सुखी बनाइए

विभिन्न प्रकार की महत्ताओं की जननी तीन शक्तियाँ ठहराई गई हैं । उन तीनों को जो जिस मात्रा में उपार्जित कर लेता है वह उतना ही उन्नतिशील कहलाता है । भगवती आद्य शक्ति की तीन रूपों में पूजा की जाती है-- (१) महा-सरस्वती, (२) महालक्ष्मी, (३) महाकाली । शिव के साथ में शक्ति का संयोग है । भगवान् शंकराचार्य ने यह कहा है कि शक्ति के बिना शिव का स्पन्दन नहीं होता । जीव की उन्नति देह की सहायता से होती है, वैसे ही शिवतत्व का स्पन्दन भक्ति द्वारा होता है । भक्ति के बिना ईश्वर नहीं मिलता, शक्ति के बिना शिव नहीं मिलता अर्थात् कल्याण का मार्ग प्राप्त नहीं होता । ब्रह्म प्राप्ति में-- आत्मिक उन्नति में, भगवती आद्य शक्ति की सहायता आवश्यक है । अशक्त मनुष्य, बातूनी छप्पर बाँध सकते हैं, पर वस्तुतः प्राप्त कुछ नहीं कर सकते । सांसारिक आनन्द से लेकर ब्रह्मानन्द तक मातेश्वर शक्ति का ही प्रसाद है ।

भारतीय आध्यात्म शास्त्र में महासरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली इन तीन महाशक्तियों की उपासना का बड़ा महात्म्य माना गया है, इनकी कृपा से अनेकानेक सिद्धि सम्पदाएँ प्राप्त होने का फल बताया गया है । सविस्तार इनकी आराधना का वर्णन है । महासरस्वती का अर्थ है-- विद्या, बुद्धि, तर्क, विवेचना, जानकारी, चतुराई । महालक्ष्मी का अर्थ है-- धन, सम्पत्ति, जमीन, जायदाद । महाकाली का अर्थ शत्रु को दमन करने वाली शक्ति, तलवार, कूटनीति, दलबन्दी है । इन तीनों शक्तियों की महत्ता हमारे आध्यात्मिक आचार्यों ने बहुत प्राचीनकाल में जान ली थी और समझ लिया था कि जिस व्यक्ति को, जिस जाति को, जिस राष्ट्र को जीवित रहना है, किसी भी दशा में उन्नति करनी है, उसे इन तत्वों का अवलम्बन अवश्य ग्रहण करना पड़ेगा । यही कारण है कि त्रिशूल धारिणी भगवती शक्ति की आराधना की जाती है । जो ठीक तरह से उसकी उपासना करते हैं, उन्हें मातेश्वरी का प्रसाद प्राप्त होता है ।

हिन्दू धर्म वास्तव में कवियों का, चित्रकारों का, कलाकारों का धर्म है । इसमें हर बात को आलंकारिक विश्व रूप में वर्णन किया गया है । देवी देवताओं के कथा उपाख्यानों के बड़े-बड़े रोचक वर्णन जो पुराणों में भरे पड़े हैं, मोटी दृष्टि वालों को वे गपोड़े दिखायी पड़ते हैं । परन्तु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वास्तव में ऐसी बात नहीं है, हमारी प्राचीन शैली यह रही है कि किसी तथ्य को एक चित्र रूप में चित्रित करके अलंकारिक भाषा में उसका वर्णन किया जाय, और उसमें एक महत्त्वपूर्ण रहस्य छिपा दिया जाय । उस उपाख्यान में से, शब्द चित्र में से उस रहस्य को ढूँढ़ने का प्रयत्न श्रोता लोग करें और बुद्धि पर जोर देकर यह पता लगावें कि इस कलापूर्ण रचना में क्या महत्त्व सन्निहित है । इस पद्धति से शिक्षा देने वाले कलाकार रचयिता को एक मजा आता था और अपनी बुद्धि खर्च करके तथ्य को ढूँढ़ निकालने वाले श्रोता को भी अपनी खोज-सफलता पर हर्ष होता था । हर्ष वृद्धि के साथ-साथ इस पद्धति से दी हुई शिक्षा अन्तस्तल में गहरी उतर जाती थी । उसे भुला देना इतना आसान न होता था, जितना कि आजकल की बाजारू शब्दावली को लोग इस कान से सुनकर उस कान में से निकाल देते हैं । महाशक्ति के उपरोक्त तीन स्वरूपों को देवियों के सुन्दर चित्र की तरह प्रकट करना ऐसा ही कलामय प्रयास है ।

आज वस्तुस्थिति को समझने की योग्यता का स्थान अन्धविश्वास ने ग्रहण कर लिया है । अल्प बुद्धि के लोग समझते हैं कि सरस्वती, लक्ष्मी, काली कोई दिव्य स्त्रियाँ हैं । जिनके हाथ पाँव तो हैं पर अदृश्य रहती हैं । भक्तों को दर्शन देती हैं । माला जपने, अनुष्ठान करने, गन्ध, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य चढ़ाने से प्रसन्न हो जाती हैं । और भक्त के घर में चुटकी बजाने भर के अन्दर एक क्षण में मनमानी सम्पदाएँ रख जाती हैं । इसी अन्धविश्वास के आधार पर जो लोग प्रतिमा की पूजा तक ही अपना कर्त्तव्य समाप्त हुआ समझते हैं और जन्त्र, मन्त्र की शक्ति से देवी के प्रसन्न होने पर अनायास सब सम्पदाएँ घर में भर जाने की आशा करते हैं, उनके शेखचिल्ली के स्वप्न पूरे नहीं हो सकते । वास्तविकता को जानकर उचित मार्ग से प्रयत्न करने पर ही सफलता प्राप्त की जा सकती है । उपरोक्त महाशक्तियों का प्रचण्ड वरदान आप प्राप्त कर सकते हैं वशर्ते कि अन्धविश्वास की अपेक्षा विवेक द्वारा उन्हें प्राप्त करने और प्रसन्न करने का प्रयत्न करें ।

भगवती सरस्वती एक हाथ में वीणा दूसरे में पुस्तक लिए हुए चित्रित की गई हैं । पुस्तक का तात्पर्य स्पष्ट है, अच्छे साहित्य का अध्ययन किये बिना विचार शृंखला का परिमार्जित होना कठिन है । संसार के उच्च कोटि के विचारक और तत्वदर्शी अपने गम्भीर ज्ञान को पुस्तकों में छोड़ गये हैं या छोड़ रहे हैं, उनके विचारों का अध्ययन करना एक प्रकार से उनकी समीपता प्राप्त करना, सत्संग का लाभ उठाना है । ज्ञान कोष को भरने के लिए अन्य लोगों के अनुभव और अन्वेषण का निरीक्षण आवश्यक है, यह कार्य पुस्तकों की सहायता से ही हो सकता है । ज्ञानी बनने के लिए अध्ययन प्रेमी होना अनिवार्य है । दूसरे हाथ में वीणा का होना प्रकट करता है कि आपके भावना तन्तु झंकृत होते रहने चाहिए । विद्या शुष्क पाण्डित्य के लिए नहीं है, उसका सदुपयोग यह है कि वह अपने सात्विक प्रभावों से आपके अन्तःकरण के तारों को झनझना दे । अध्ययन, मनन, निदिध्यासन द्वारा आप जिस निष्कर्ष पर पहुँचें, उस पर विश्वास करें, श्रद्धा करें और तदनुसार जीवन को ढालने का प्रयत्न करें, विश्वास और आवरणों में एकता रखें, ज्ञान का वास्तविक लाभ उठावें । हंस वाहिनी शारदा की वीणा पुस्तक प्रियता यह प्रकट करती है कि विद्या चाहने वाले, विद्वान बनने की इच्छा करने वाले लोगों को चाहिए कि पुस्तकों का अध्ययन करना अपना दैनिक कार्यक्रम बनावें, नित्य पढ़ने की आदत डालें, जो ज्ञान प्राप्त करें उससे अपनी हृदय वीणा के तारों को झंकृत करते हुए ज्ञान का श्रद्धा और आचरण के साथ सम्बन्ध जोड़ें । यही सरस्वती पूजा का सरल-सा किन्तु अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण विधान है जिसे कलाकार ने चित्र रूप में हमारे सामने उपस्थित किया है ।

हंस वाहिनी महासरस्वती का उपासक हंस जैसा नीर-क्षीर विवेकी होना चाहिए । दूध से पानी को निकाल देने की वृत्ति अपने अन्दर धारण करने से सत्-असत् का विवेक होता है । संसार में सब माल बेतरतीब भरा पड़ा है, इस कटपीस की गठरी में अच्छे भी टुकड़े हैं और खराब भी, यह लेने वाले की समझ के ऊपर है कि वह काम लायक बढ़िया चीज पसन्द करता है या निकम्मी बेमतलब की उठा लाता है । सभी मजहबों में अच्छे-बुरे विचार मौजूद हैं, समयानुसार हर एक के तत्वों का प्रवेश हुआ है । आज की स्थिति के योग्य जिस धर्म में जो बात प्राप्त होती है उसे ग्रहण कर लीजिए और जो बातें समय से पीछे की होने के कारण निरुपयोगी हो गई हैं उन्हें निकाल दीजिए । कुछ घण्टे पहले का दूध अब जमा कर दही हो गया है । हलवाई इस दही में से जो पानी छँटता है, उसे निकाल कर फेंकता जाता है और जमा हुआ भाग ग्राहकों को बेचता है । कुछ देर पहले जब यही दही दूध की शक्ल में था तब उसमें से पानी छाँटकर फेंकने की जरूरत न थी पर अब समय बदल जाने के कारण स्थिति दूसरी हो गई । पानी मिला दूध तो उस समय बिक सकता था पर अब दही के साथ छटा हुआ पानी नहीं बेचा जा सकता । प्राचीन धर्म ग्रन्थ, उपदेश, विचार, रीति-रिवाज, अपने समय के लिए बहुत उपयोगी,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लाभदायक और आवश्यक थे, पर यदि आज परिस्थितियाँ बदल गई हैं तो उन्हीं बातों को स्वीकार कीजिए जो आज की स्थिति में उपयोगी हैं । इस प्रकार यदि आप अपनी वृत्ति को हंस के समान नीर-क्षीर-विवेक करने वाली रखेंगे, अन्धविश्वास से अपने को सावधानी के साथ बचावेंगे तो बुद्धिमान बनते जायेंगे । भगवती सरस्वती के कृपापात्र वाहन हंस का पद प्राप्त करते जायेंगे ।

बुद्धि की वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि किसी एक ही बात पर दुराग्रह न किया जाय, अपनी ही बात को सबसे ऊँची रखने का हट न किया जाय, वरन् खुले हृदय जिज्ञासु की तरह निष्पक्ष सत्य शोधक की तरह--बुद्धि संगत बात को स्वीकार करने एवं भूल को सुधारने के लिए तैयार रहेंगे तो अपने ज्ञान में दिन-दिन वृद्धि करते जायेंगे । ''हमारी बात ठीक और सबकी झूठी''--यह विचार पद्धति जिन्होंने अपना रखी है, वे अपने ज्ञान और विवेक में कभी भी उन्नति न कर सकेंगे ।

जो लोग अपना विवेक और अनुभव बढ़ाना चाहते हैं उन्हें चुनाव करने की और शिक्षा ग्रहण करने की पद्धति को अपनाना चाहिए । किसी वस्तु की उपयोगिता, अनुपयोगिता जानने का तरीका यह है कि उसके समतुल्य अन्य वस्तुएँ विचारार्थ सामने रखिए और उनमें से हर एक के गुण अवगुणों पर विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए तब उनमें से जो वस्तु अधिक उपयोगी सिद्ध हो उसे चुन लीजिए । बिना विचारे भावावेश में किसी बात के अन्ध अनुयायी हो जाना उचित नहीं । इससे मस्तिष्क की तेजस्विता जागृत नहीं होती, और न ही सर्वोत्तम वस्तु के प्राप्त होने की सम्भावना रहती है। जो काम आपको करना है केवल उसके लाभों को ही मत गिनिये ऐसा करेंगे तो धोखा खायेंगे, लाभ के साथ हानियों को भी सोचना, समझना है, कठिनाइयों पर भी दृष्टिपात करना है, सभी पहलुओं पर विचार करने के उपरान्त जो निर्णय करते हैं, जो चुनाव करते हैं, वह मजबूत होगा और ऐसा होगा जिसके लिए शायद ही पश्चाताप करना पड़े ।

जो घटनाएँ आपके चारों ओर घट रही हैं, जो घटनाएँ भूतकाल में घट चुंकी हैं उनकी अपेक्षा की दृष्टि से मत देखिए वरन् जहाँ तक हो सके हर एक पर पैनी नजर फेंकते चलिए और यह विचार करते चलिए कि किन कारणों से ऐसे अवसर उपस्थित हुए या होते हैं । उन कारणों का सामयिक परिस्थितियों से कितना सामंजस्य है ? इस गम्भीर अवलोकन से आप कुछ निष्कर्ष निकाल सकेंगे, कुछ अनुभव प्राप्त कर सकेंगे । वह निष्कर्ष और अनुभव धीरे-धीरे इतने अधिक एवं दृढ़ हो जायेंगे कि उनके आधार पर भावी जीवन का बहुत कुछ निर्माण हो सकेगा । आप बीती के आधार पर अधिक अनुभव इकट्ठे नहीं हो सकते । अनुभवी और विशेषज्ञ बनना है तो दूसरों पर बीती हुई बातों का विश्लेषण करने पर जो शिक्षा मिलती है उसे ग्रहण करके अपनी योग्यता में वृद्धि करनी चाहिए ।

वस्तुस्थिति को समझने की गलती तथा दोषपूर्ण विचारधारा के कारण अधिकांश दुःखों का आविर्भाव होता है । कोई सगा सम्बन्धी मर जाने पर आप सिर धुन-धुनकर रोते हैं, भोजन त्याग देते हैं, सूख सूखकर काँटा हो जाते हैं । यह विपत्ति आपकी अपनी उत्पन्न की हुई है । हर प्राणी का मरण निश्चित है इसी प्रकार आपके सम्बन्धी का भी मरण अनिवार्य था । सूर्य को डूबना ही है यदि उसे अस्त होता देखकर रोवें-पीटें तो भी वह अपना क्रम नहीं रोकेगा । आप भ्रमवश मान लेते हैं कि सूर्य सदा चमकता ही रहेगा और उससे ऐसी ही आशा करते हैं, जब आशा के अनुकूल फल नहीं निकलता तो रोते-चिल्लाते हैं । इसके शोक में मरने वाला व्यक्ति कारण नहीं है, क्योंकि वह तो उसी स्वाभाविक राज पथ से गया, जिससे सभी को जाना पड़ता है । दोष उस दृष्टिकोण का है जिसने मरणशील प्राणी को अमर समझ कर नाना प्रकार की आशाएँ बाँध रखी थीं। जिसको अपनी आशाओं के महल अधिक टूटते दीखते हैं वह अपनी असफलता पर अधिक रोता है । जिसका मृत व्यक्ति से जितना अधिक स्वार्थ था, वह उतना ही अधिक दुःखी होता है । जिसने उससे कुछ आशाएँ नहीं बाँध रखी थीं, कुछ स्वार्थ नहीं जोड़ रखे थे, उसे दुःख क्यों होगा ? रोजाना अनेक मुर्दे निकलते हैं और जलते हम देखते हैं पर एक बूँद भी आँसू नहीं निकलते, पर जब अपना स्वार्थ सम्बन्धित मनुष्य मरता है तो रो-रोकर व्याकुल हो जाते हैं।

यदि आध्यात्म ज्ञान की उचित शिक्षा प्राप्त करके अपने हर एक प्रियजन को मृत्यु के मुँह में लटका हुआ समझें और उसके ऊपर आशाओं के महल खड़े न करके कर्त्तव्य भावना से उसके साथ अपना धर्म निभाने का दृष्टिकोण रखें तो विश्वास रखिए उसकी मृत्यु के समय कुछ भी कष्ट न होगा । जिस पर ममत्व नहीं है उस वस्तु के नष्ट हो जाने पर कौन दुःख मानता है ? यदि भौतिक वस्तुओं पर आपका ममत्व न हो, अपने को उनका मालिक न समझा करें, सेवक संरक्षक मानें तो प्रियजन के विछोह, चोरी, हानि आदि के कारण उत्पन्न होने वाले दुःख शोकों आदि से सरलतापूर्वक बच सकते हैं । ''संसार की हर वस्तु नाशवान है, उसका किसी भी क्षण नाश हो सकता है, मेरा कर्त्तव्य यह है कि प्राप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्तुओं के प्रति निर्लिप्त भाव से अपनी जिम्मेदारी पूरी करता रहूँ ।'' यह ज्ञान यदि दृढ़तापूर्वक हृदय में बैठ जाय तो मानसिक क्लेशों का अन्त हुआ ही समझिए ।

शारीरिक स्वास्थ्य की अवनति या बीमारियों की चढ़ाई अपने आप नहीं होती, वरन् उसका कारण भी अपनी भूल है । आहार में असावधानी, प्राकृतिक नियमों की उपेक्षा, शक्तियों का अधिक खर्च, स्वास्थ्य नाश के यह प्रधान हेतु हैं । जो लोग तन्दुरुस्ती पर अधिक ध्यान देते हैं, स्वास्थ्य के नियमों का ठीक तरह पालन करते हैं वे मजबूत और निरोग बने रहते हैं । यूरोप, अमेरिका के निवासियों के शरीर कितने स्वस्थ एवं सुदृढ़ होते हैं । हमारी तरह वे भाग्य का रोना नहीं रोते, वरन् आहार-विहार के नियमों का सख्ती के साथ पालन करते हैं, बुद्धि और विवेक का उपयोग नीरोगता के लिए करते हैं, जिससे वे न तो बहुत जल्द बीमार पड़ते हैं, न दुर्बल होते हैं और न अल्पायु में मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं । हमारे देश में ही देखिए उच्च वर्ण वालों की अपेक्षा नीच वर्ण के लोग स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक गिरे हुए होते हैं, इसका कारण ईश्वर की अकृपा नहीं वरन् अज्ञानता और उपेक्षा है । अपने प्रयत्न से आप पुनः अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं और लापरवाही पर ही आरूढ़ रहें तो शरीर को इससे भी बुरी हालत में ले जा सकते हैं। कुँजी अपने भीतर है, स्वास्थ्य के आप खुद मुख्तोर हैं। कोई दूसरा इसमें क्या हस्तक्षेप कर सकता है ? वैद्य डाक्टर सलाह दे सकते हैं, दवा दे सकते हैं, परन्तु नीरोगता की चाबी उन बेचारों के पास थोड़े ही है । वह तो अपने अन्दर से ही ढूँढ़ निकालनी पड़ेगी ।

धन उपार्जन, विद्याध्ययन और बुद्धि-वृद्धि यह तीनों सम्पदाएँ घोर परिश्रम, निरन्तर प्रयत्न, सच्ची लगन और साहस पूर्ण उत्साह द्वारा प्राप्त होती हैं । जो लोग आज आपको अमीर दिखाई पड़ते हैं वे यों ही अनायास नहीं बन गये हैं, उन्होंने जाँ फिसानी से मेहनत की है, दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा है । जिन्हें आप विद्वान देख रहे हैं उन्होंने वर्षों सर खपाया है, मुद्दतों पुस्तकें रटी हैं, खेल तमाशों से, यात्रा विहार से, मनोरंजनों से अपने को बचाकर पढ़ने की धुन में लगे रहे हैं । जिन्हें आप बुद्धिमान देख रहे हैं उन्होंने बुद्धिमानों की संगतियाँ की हैं, ठोकरें खाई हैं, बुद्धि को घोड़े की तरह चारों ओर दौड़ाया है, समस्याओं को सुलझाने में गम्भीर मनन किया है, ज्ञान लाभ के लिए कष्ट कर प्रोग्रामों को अपनाया है । यदि वे लोग ऐसा न करते तो उनका धनवान, विद्वान, बुद्धिमान बनना सम्भव न था । उद्योगी पुरुष सिद्ध लक्ष्मी को पाते हैं और कायर पुरुष दैव, दैव पुकारते रहते हैं । यदि आप सम्पदाएँ प्राप्त करना चाहते हैं तो वे उपहार की तरह किसी बाहर के आदमी से न मिलेंगी, वरन् अपनी योग्यता और क्रियाशीलता द्वारा उन्हें प्राप्त करना पड़ेगा ।

मित्रता, प्रतिष्ठा, प्रशंसा से लदा हुआ जिन्हें आप देखते हैं, जिनके बहुत से मित्र, भक्त, प्रशंसक पाते हैं, उनकी मानसिक दशा का निरीक्षण कीजिए । आप पायेंगे कि उनमें बहुत से ऐसे गुण हैं जिनके कारण लोगों का मन उनकी ओर आकर्षित होता है, उनमें बहुत-सी ऐसी विशेषताएँ हैं जिनसे लोग लाभ उठाते हैं । उन्हें मुफ्त के माल की तरह प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा नहीं मिलती, वरन् उसके अनुरूप अपने आपको बनाने के पश्चात् उसके अधिकारी हुए हैं । गन्ध रहित पुष्प के पास भौंरे नहीं आते । अपने चारों ओर भ्रमरों को मधुर स्वर के साथ गूँजते फिरते देखने का सौभाग्य उन्हीं पुष्पों को प्राप्त होता है जो अपने अन्दर मन मोहिनी सुगन्ध छिपाये बैठे हैं । कमल के फूल पर यदि भौरों के झुण्ड मँडराते रहते हैं तो यह भौंरों की कृपा नहीं, कमल की विशेषता है । बिना गन्ध वाला कन्नेर-पुष्प बेचारा अकेला एक कोने में ही पड़ा रहता है ।

हम मानते हैं कि कभी-कभी किसी को अनायास भी बहुत-सी सुविधा सम्पदा प्राप्त हो जाती है, जिन्हें भाग्य की देन कहा जाता है । यह अपवाद है । रास्ते में चलते हुए किसी को रुपये पैसे पड़े मिल जाते हैं तो यह अपवाद है । इससे यह सिद्धान्त निश्चित नहीं किया जा सकता कि हर एक को रासते में पड़े पैसे जरूर ही मिलेंगे । अनायास मिलने में भी दो कारण होते हैं या तो पूर्व जन्म का संचित कर्म फल शेष होगा जो अब प्राप्त हुआ है या अब कर्ज लिया जा रहा है जो आगे चुकाना पड़ेगा । मुफ्त का माल तो एक रत्ती भर भी यहाँ नहीं मिल सकता । यदि पुराना संचित मिला है (बैंक से जमा पूँजी निकाल ली है) तो यह भी अपने उद्योग का फल हुआ । फिर बासी रोटी के ऊपर या कर्ज लेकर शान बनाने का गर्व करना व्यर्थ है । इसमें कोई गौरव की बात थोड़े ही है ।

भाग्य एक आकस्मिक घटना है जो अदृश्य कारणों से किन्हीं-किन्हीं के साथ कभी-कभी घटित हो जाती है । ऐसे एक दो प्रतिशत होने वाले अपवाद निश्चित नियम नहीं बन सकते । सिद्धान्त रूप में वही बात स्वीकार की जायेगी जो निन्यानवे, अठानवे प्रतिशत ठीक उतरती है । आत्मनिर्भरता का सिद्धान्त सच्चा है । मनोवांछित सफलता प्राप्त करने की कुँजी अपने अन्दर है यह सिद्धान्त सच्चा है । क्योंकि सर्वत्र यही बात फलित होती, दृष्टिगोचर होती देखी जाती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है कि "जो जिसका पात्र है वह उसी वस्तु को प्राप्त करता है ।"

आप अपने ऊपर विश्वास कीजिए, अपने ऊपर निर्भर रहिए । आध्यात्मवाद का सिद्धान्त है कि अपनी दुःखदाई परिस्थितियों को टालने के लिए और सुखदायक अवसर उत्पन्न करने के लिए अपने भीतर दृष्टि डालिए, जड़ को तलाश कीजिए । सारे प्रसंगों का उत्पादन और परिवर्तन करने वाला केन्द्र बिन्दु अपने अन्दर है, इसलिए दूसरों का आसरा तकने की अपेक्षा अपना निरीक्षण, संशोधन और सम्पादन आरम्भ कर दीजिए । बाहरी सहायताएँ प्राप्त होना इस बात पर निर्भर है कि हमारी आन्तरिक योग्यताएँ कैसी हैं ? एक मनुष्य का सब लोग आदर करते हैं, उस पर विश्वास करते हैं, उसको सहायता देते हैं पर दूसरे मनुष्य को इससे ठीक उल्टा व्यवहार प्राप्त होता है । "संसार के लोग पक्षपाती हैं" यह कह देने मात्र से काम नहीं चलेगा । हमें दोनों व्यक्तियों के गुण, स्वभाव, चातुर्य और आचरण का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करना होगा । आप देखेंगे कि दोनों व्यक्तियों की आकृति एक-सी होते हुए भी मानसिक स्थिति में जमीन-आसमान का अन्तर है । इस अन्तर पर ही जीवन की सफलता असफलताएँ निर्भर रहती हैं । यदि हमें आगे बढ़ना है तो इसी मूल केन्द्र के सुधार और परिवर्तन पर ध्यान देना होगा ।

उपासना बिना कल्याण नहीं

चन्द्रमा तब चमकता है जब उस पर सूर्य चमकता है । जब वह चमक उसे प्राप्त नहीं होती है तो अमावस्या के दिन यथास्थान रहते हुए भी उसका अस्तित्व लुप्त प्रायः ही रहता है । होते हुए भी न होने जैसी स्थिति उसकी रहती है । पृथ्वी के उतने भाग में दिन रहता है जितने पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं । जितने भाग पर वे नहीं चमकतीं वहाँ घोर अन्धकार छाया रहता है और हाथों-हाथ सूझ नहीं पड़ता । यही बात आत्मा के सम्बन्ध में है । उस पर जब परमात्मा का प्रकाश चमकता है तो उज्ज्वल और दीप्तिमान दीखता है और जब वह चमक बन्द हो जाती है तो मानव शरीरधारी एक निकृष्ट नर-पशु के रूप में एक घृणित एवं निकम्मा अस्तित्व मात्र ही दृष्टिगोचर होता है । परमात्मा से दूर रहने वाले मनुष्य बहुधा मनुष्यता से रहित ही पाये जाते हैं ।

आत्मा, परमात्मा का एक अंश मात्र है । उसे जो कुछ शक्ति और प्रतिभा प्राप्त है ईश्वर की ही विभूति है । जिसमें यह विभूति जितनी कम पड़ जाती है वह उतना ही दीन-हीन बना रहता है । शक्ति का स्रोत जिस उद्गम से प्रवाहित होता है उसके साथ सम्बन्ध जोड़ लेने से सामान्य जीव को भी शक्ति का पुंज बनने में देर नहीं लगती । बिजलीघर के साथ जुड़े हुए पतले-पतले तार अपने भीतर इतनी शक्ति धारण कर लेते हैं कि उनके द्वारा सैकड़ों घोड़ों की शक्ति वाली मशीनें धड़धड़ाती हुई चलने लगती हैं । उनको स्पर्श करने वाले बल्ब अन्धेरी रात को दिन जैसा प्रकाशवान बना देते हैं । बिजली घर से जब तक सम्बन्ध है तभी तक उन तारों में यह विभूति रहती है कि उनके स्पर्श से चमत्कार उत्पन्न हो सके । जब वह सम्बन्ध कट जाता है, तारों को बिजली घर के विद्युत भण्डार की धारा का प्रवाह मिलना रुक जाता है तो फिर उनका कोई महत्त्व नहीं रह जाता । देखने से पहले जैसा लगने पर भी वे न प्रकाश उत्पन्न करते हैं और न मशीनें चला पाते हैं । तार का मूल्य बिजली घर से सम्बन्ध होने के कारण ही तो था, वह टूट गया तो फिर उसकी महत्ता कहाँ स्थिर रह सकती थी ?

आत्मा के द्वारा अनेक लौकिक और परलौकिक प्रयोजन पूर्ण किये जाते हैं । अनेकों सफलता और समृद्धियों को प्राप्त करने का श्रेय आत्म-बल को ही दिया जा सकता है । शरीर की दृष्टि से सब मनुष्य लगभग समान होते हैं । देह के बल पुंजों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता । फिर भी मनुष्य-मनुष्य के बीच जमीन-आसमान का अन्तर पाया जाता है । एक भीरु है तो दूसरा दुस्साहसी । एक दुष्ट है तो दूसरा महात्मा । एक तृष्णा-वासना की मृग मरीचिका में भटकता है तो दूसरा आनन्द और उल्लास का, परितृप्ति का रसास्वादन करता है । एक के उद्वेग और शोक सन्ताप का ठिकाना नहीं, दूसरे को सन्तोष की शान्ति आह्लादित किये रहती है । एक को सम्पूज्य और दूसरे को तिरस्कृत देखते हैं । एक प्रगति की ओर बढ़ रहा है तो दूसरा पतन के गर्त में गिरता ही चला जा रहा है । इस प्रकार के असाधारण अन्तर मनुष्य की आन्तरिक आत्मिक स्थिति की भिन्नता के कारण ही उत्पन्न होते हैं ।

आत्म-बल संसार के सब बलों से श्रेष्ठ है । धन-बल, शरीर-बल, बुद्धि-बल, संख्या-बल आदि अनेक बलों के द्वारा मनुष्यों को विविध प्रकार की सफलताएँ मिलती हैं, पर उन सबके मूल में आत्म-बल की ही प्रधानता रहती है । उसके अभाव में अन्य सब बल बालू की भीत की तरह अस्थिर रहते हैं । जरा-सा आघात लगते ही उनके अस्त-व्यस्त होने में देर नहीं होती । जीवन की सार्थकता आत्म-बल पर ही निर्भर रहती है । अन्य बल तो छाया मात्र हैं।

आत्मा को जब भी स्थायी बल प्राप्त होता है, तब उसे वह उपलब्धि परमात्मा से ही मिली होती है । मोती समुद्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से ही निकलते हैं । उनका उपयोग कहीं भी, किसी कार्य के लिए भी किया जा सकता है पर उसकी उत्पत्ति समुद्र के अतिरिक्त और कहीं नहीं होती । इसी प्रकार आत्म-बल का वरदान भी परमात्मा से प्राप्त होता है । अन्धा लाठी के सहारे अपनी मंजिल पार करता है । जीव भी इस पाप-ताप के अन्धकार से भरे संसार से जीवन-लक्ष्य प्राप्त करने की यात्रा-ईश्वर का अवलम्बन करके ही पूर्ण कर सकता है ।

परमात्मा समस्त उच्च शक्तियों और सम्भावनाओं का केन्द्र है । उसी भण्डार से आत्मा अपनी अभीष्ट वस्तुएँ उपलब्ध करती है । इसी अमृत को पीकर उसकी प्यास बुझती है । पपीहा तब तक तृषित ही रहता है जब तक उसे स्वाँति नक्षत्र की वर्षा का जल नहीं मिलता । आत्मा भी तब तक अतृप्त ही रहती है जब तक उसे प्रभु की शरणागति प्राप्त नहीं हो जाती । नव-जात शिशु अपनी माता का पयपान करके ही जीवन धारण कर सकने में समर्थ होता है । मानवीय महानताएँ भी परमात्मा के सान्निध्य से प्राप्त होती हैं ।

प्रभु की अवज्ञा करके, अहंकार में परमात्मा को विस्मरण करके अपने पुरुषार्थ के आधार पर कुछ भौतिक सम्पदाएँ भी प्राप्त की जा सकती हैं, पर आन्तरिक महानता, उदार दृष्टिकोण एवं प्राणी मात्र के प्रति आत्मीयता का वरदान केवल ईश्वर की अनुकम्पा से ही मिल पाता है । बिना डोरी के पतंग की तरह जीव निरुद्देश दिन काटता रहता है पर जब भगवान के साथ वह अपना सम्बन्ध बना लेता है तो उसे अपने स्वरूप और लक्ष्य का पता चल जाता है । तब मंजिल को पूरी करने का क्रम भी वह जान लेता है और दृढ़तापूर्वक नियत दिशा में चलते हुए उन सब विभूतियों को प्राप्त कर लेता है, जिन्हें प्राप्त करने के लिए उसे यह सुर दुर्लभ मानव शरीर मिला होता है ।

पाप का प्रलोभन और आपत्तियों का भय मनुष्य को पग-पग पर पथ भ्रष्ट करता है । ऐसी परिस्थितियाँ सामने आती ही रहती हैं, जिनके अनुसार अनुचित मार्ग को अपना कर आकर्षक लाभ उठाया जाना सम्भव होता है । ऐसे विघ्न भी आते ही रहते हैं, जो सन्मार्ग छोड़कर कुपथ अपना लेने से टल सकते हैं । आधारविहीन व्यक्ति ऐसे अवसरों पर स्थिर नहीं रह सकते, उन्हें पथ भ्रष्ट होते देर नहीं लगती। छोटे से परीक्षा अवसर सामने आने पर भी वे अपनी प्रामाणिकता खो बैठते हैं । धर्म और नीति की पतवार हाथ से छूट जाती है और जमाने की बहती हुई धारा में डोलती हुई उनकी नाव भी भँवर में जा फँसती है । उस विपत्ति से छुड़ा सकने की सामर्थ्य केवल प्रभु आश्रय में ही है । भगवान का सम्बल पकड़े रहने से ही जीव अपनी रक्षा पतनकारी आँधी, तूफानों से कर सकता है । इसी आश्रय को लेकर भव निधि से पार उतर सकना सम्भव होता है ।

जिसने सच्चे मन से भगवान का आश्रय लिया उसे सन्मति का वरदान मिला । मति का सही दिशा में लगना ही जीवन क्रम की सफलता-असफलता का आधार होता है । जिसको जीवन के सदुपयोग की चिन्ता हो गई, जिसने सत्य का, धर्म और पवित्रता का अवलम्बन ग्रहण कर लिया उसे अपने भीतर आत्म सन्तोष और बाहर से सहयोग एवं सम्मान की तरंगें उठती दिखायी देंगी और वह उसी आनन्द में निमग्न होकर मानव-जीवन की सफलता का रसास्वादन कर रहा होगा । यह अवसर ईश्वर की कृपा से ही मिलता है । पुरुषार्थ से भौतिक वैभव भले ही मिलें पर आत्म-विकास के साधन तो भगवान की कृपा से ही सम्भव होते हैं । जो प्रभु के आगे अपना हृदय खोल कर रखता है, उनकी करुणा के लिए प्यासे की तरह पुकारता है, उसे निश्चय ही अतृप्त नहीं रहना पड़ता ।

कुतुबनुमा की सुई उत्तर की ओर ही मुँह करके स्थिर रहती है, जब तक उसे दूसरी दिशाओं में घुमाया जाता रहेगा तब तक वह अस्थिर ही बनी रहेगी । स्थिरता तब आती है जब आधार का सही आश्रय मिल जाता है । आत्मा का लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति है, जब तक यह दिशा प्राप्त नहीं होती तब तक अस्थिरता, उद्विग्नता, चंचलता एवं अशान्ति ही बनी रहती है । पर जब लक्ष्य दिशा में पग उठने लगते हैं, परमात्मा को प्राप्त करने की लगन लग जाती है तब उस प्रयत्न का प्रत्येक चरण जीवात्मा के लिए शान्ति का सृजन करने लगता है ।

जीव स्वयं तो निर्बल, तुच्छ है । उसे विशालता और महानता परमात्मा के सान्निध्य से ही उपलब्ध होती है । इसके लिए जो प्रयत्न करता है, वही बुद्धिमान है । दूरदर्शिता की एक मात्र कसौटी यह है कि अपने सुदूर भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए भावना उठे, विचारणा चले और क्रिया आरम्भ हो । जानते, समझते और चाहते हुए भी वह हो नहीं पाता । पैर कदम-कदम पर डगमगाते हैं । विपन्नताएँ मार्ग रोककर खड़ी होती हैं, विभीषिकाएँ निराश करती हैं और सांसारिक आकर्षणों का जाल अपने बन्धनों में कस कर बाँध लेता है । इस कुचक्र में फँसा हुआ जीव कुछ कर नहीं पाता । श्रेय प्राप्ति का उद्देश्य प्रेम की उलझन में ही फँसा रह जाता है । इस चक्रव्यूह से उद्धार केवल भगवान की कृपा से ही हो सकता है और वह तब मिलती है जब भक्त सच्चे मन से आतुर होकर भगवान को पुकारता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रार्थना में बड़ी शक्ति है । वह भगवान को भक्त के समीप खींच लाती है या भक्त को भगवान तक पहुँचा देती है । सच्चे मन से की हुई, अन्तरात्मा की आर्त पुकार कभी अनसुनी नहीं की जा सकती । भगवान उसे सुनते हैं और पूरा करते हैं । शर्त एक ही है-- प्रार्थना सच्ची होनी चाहिए । सच्ची प्रार्थना का अर्थ है आत्म-कल्याण के लिए पाप-तापों से, प्रलोभन आकर्षणों से बचने और सन्मार्ग पर चलने की उत्कृष्ट आकांक्षा और उसकी अभिव्यक्ति । लौकिक कष्टों की निवृत्ति और सफलताओं की प्राप्ति के लिए भावनाशील भक्त अपने भगवान को कष्ट देना उचित नहीं समझेगा । इस सम्बन्ध में तो वह अधिक से अधिक इतना ही कह सकता है कि विपत्तियों से लड़ने, प्रारब्ध कर्मों को हँसते हुए सहने और पुरुषार्थ के बल पर आवश्यक साधनों को उपार्जित करने योग्य उसे आवश्यक साहस, धैर्य और स्वभाव मिल जाय तो उतना ही पर्याप्त है ।

उपासना को दैनिक जीवन में स्थान मिले

आस्तिकता की मान्यताओं को सुस्थिर रखने के लिए उपासना की अनिवार्यतः आवश्यकता है । स्थूल वस्तुएँ हर समय आँखों के आगे उपस्थित रहती हैं और उनका अनुभव इन्द्रियों से बार-बार होता रहता है । पर जो सूक्ष्म है, अदृश्य है उसका यदि विशेष रूप से स्मरण चिन्तन न किया जाय तो उसका विस्मरण हो जाना स्वाभाविक ही है। उपयोग में आने वाली सामान्य वस्तुएँ भी यदि बहुत दिन तक व्यवहार में नहीं आतीं तो हम उन्हें भूल जाते हैं । मनुष्य का स्वभाव ही कुछ भुलक्कड़ ढंग का है, यदि ऐसा न होता तो उसके मस्तिष्क में पुरानी स्मृतियाँ इतनी अधिक भरी रहतीं कि नई बातों को सुनने समझने का स्थान ही न बचता। यह भुलक्कड़पन उन बातों पर तो बहुत ही अधिक प्रभाव डालता है जो सामने नहीं हैं, दीखती नहीं तथा इन्द्रियों द्वारा अनुभव में नहीं आतीं ।

ईश्वर भी ऐसी ही एक अदृश्य सत्ता है जो न तो इन्द्रियों से अनुभव में आती है और न आँखों से दीखती है । ऐसी दशा में आमतौर से लोग उसे भूले रहते हैं । यों कहने को तो हम ईश्वर को जानते और मानते हैं, उसके सम्बन्ध में बहुत कुछ पढ़ते-सुनते भी रहते हैं, किन्तु वह मान्यता एक धुँधली-सी छाया मात्र बनकर मस्तिष्क के किसी कोने में पड़ी रहती है । इतने मात्र से आस्तिकता का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता । कुविचारों को रोकने और कुकर्मों पर अंकुश रखने के लिए ईश्वर की एक स्पष्ट स्मृति हमारे हृदय पटल पर अंकित रहनी चाहिए और उसका वैसा ही स्मरण रहना चाहिए जैसा हमें अपने घर में रहने वाले निकटस्थ कुटुम्बी परिजनों का रहता है । इसके बिना ईश्वर का भय एवं प्रकाश हमारे अन्तःकरण में स्थिर न रह सकेगा ।

आस्तिकता का उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है, जब ईश्वर को हम अपने सहचर के रूप में अनुभव करें । कुविचार का अवसर आते ही, कुकर्म की इच्छा जगते ही भगवान हमारे आगे एक धर्मोपदेशक के रूप में, न्यायाधीश के रूप में, पुलिस अधिकारी के रूप में उपस्थित हो सके तो ही यह सम्भव है, कि कुमार्ग पर बढ़ते हुए हमारे कदम रुक सकें । सन्मार्ग पर चलने की जब आकांक्षा उठे और सामने प्रस्तुत कठिनाइयों के कारण मन आगे बढ़ने से हिचकिचाये तब भगवान का स्वरूप उत्साह बढ़ाने वाले, प्रेरणा देने वाले एवं समर्थन करने वाले के रूप में सामने आना चाहिए । हिम्मत बढ़ाने वाला कोई उत्साही व्यक्ति साथ हो तो मनुष्य बहुत कुछ कर गुजरता है । यदि सन्मार्ग के पथ पर प्रस्तुत कठिनाइयों को कुचलते हुए आगे बढ़ जाने का प्रोत्साहन भगवान की ओर से प्राप्त हो तो मनुष्य क्या नहीं कर सकता ?

परमात्मा का मूर्तिमान रूप हमारी आँखों के आगे विचरता रहे, वह अदृश्य सत्ता सामने साकार रूप में प्रस्तुत, परिलक्षित दीखे, तभी यह सम्भव है कि अधर्म का परित्याग कर धर्म को दृढ़तापूर्वक पकड़े रहने के लिए हमारी मनोभूमि खरी उतरे । अदृश्य परमात्मा को दृश्य रूप में, साथी और सहचर के रूप में अनुभव कराते रहने का महान कार्य 'उपासना' द्वारा ही पूरा हो सकता है । जप, ध्यान, पूजन, अर्चन आदि के विधान इसीलिए बनाये गये हैं कि उस आधार पर बार-बार मनुष्य परमात्मा का मनोयोगपूर्वक स्मरण करे और उस स्मृति के आधार पर प्रभु को अपने निकटवर्ती सम्बन्धी, कुटुम्बी, साथी एवं सहचर के रूप में उपस्थित रहता हुआ सदा अनुभव करता रहे । पूजा से इसी मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है । बार-बार स्मरण करने से दो बिछुड़े हुए विरहीजन अपने प्रिय की ओर भी अधिक निकट हृदय में बसा हुआ अनुभव कर सकते हैं, तो क्या परमात्मा को इस प्रकार स्मरण करके निकटवर्ती के रूप में अनुभव नहीं किया जा सकता ? यदि हम अपने प्रियतम को निरन्तर साथ रहते अनुभव कर सकें तो पापों से बचे रहना और पुण्य प्रयत्नों में संलग्न रहना तो सहज ही हो जायेगा साथ ही हम निर्भय, निश्चिन्त, आशावादी और उत्साही भी रहेंगे । जिसके साथ परमात्मा जैसी शक्ति है वह किसी से क्यों डरेगा ? चिन्ता, भय, शोक, निराशा का उसके लिए क्या कारण शेष रह जायेगा ? उसे अपना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भविष्य उज्ज्वल और भाग्य प्रकाशपूर्ण क्यों दिखाई न देगा? ऐसा व्यक्ति बुरी परिस्थितियों को क्षणिक एवं अपने सुधार के लिए लगी हुई एक हल्की चपत मानकर सदा प्रफुल्लित, सन्तुष्ट और आनन्दित ही रह सकता है । जब परमात्मा सत्य है, शिव है, सुन्दर है तो उसके उपासक का स्वरूप भी वैसा ही क्यों न होगा ?

परमात्मा समस्त सद्प्रवृत्तियों का एवं अनन्त शक्तियों का केन्द्र है । जीव अन्त में विभु बनना चाहता है तो उसे अपने सामने एक आदर्श उपस्थित रखना होगा । बड़ी-बड़ी इमारतें बनाने वाले इंजीनियर पहले उसका नक्शा या 'मॉडल' बनाते हैं और उसी के आधार पर अपना निर्माण कार्य प्रारम्भ करते हैं । हम अग्रगामी होना चाहते हैं, आत्मा को परमात्मा के रूप में, मानव को महामानव के, विश्व-मानव के रूप में परिणत करना चाहते हैं, तो आवश्यक है कि उसके लिए कोई नकशा या 'मॉडल' सामने हो । सत्चित आनन्द स्वरूप परमात्मा ऐसा ही आधार है जिसको निहारते हुए हम अपनी प्रगति का कार्यक्रम तैयार कर सकते हैं । कहते हैं कि भृंग नामक मक्खी झींगुर को पकड़कर अपने घर ले जाती है झींगुर उसकी गुंजार सुनता और रूप देखता रहता है, फलस्वरूप धीरे-धीरे वह उस तन्मयता के आधार पर अपना झींगुर स्वरूप बदल कर भृंग के रूप में कायाकल्प कर लेता है । पुरानी धर्म पुस्तकों में 'कीट भृंग' का यह दृष्टान्त जगह-जगह मिलता है । बात कहाँ तक सच है, यह खोज का विषय है पर आत्मा के सम्बन्ध में यह बात सर्वथा सत्य है । वह परमात्मा का सच्चे मन से जितना-जितना चिन्तन करता है उसी अनुपात से परमात्मा के रूप में बदलता जाता है । साधारण आत्माओं से महात्मा बनते कितनों को ही देखा गया है । जीवन का लक्ष्य आत्मोकर्ष है, उसकी पूर्ति में परमात्मा का स्मरण, चिन्तन एवं भजन पूजन की प्रक्रिया को अपनाया जाना आवश्यक है ।

ईश्वर और जीव की निकटता, एक का दूसरे के रूप में परिणत होना जिस मानसिक तत्व के आधार पर सम्भव हो सकता है उसका नाम है प्रेम या भक्ति । मनुष्य और मनुष्य के हृदय भी इसी गोंद के आधार पर चिपकते और घनिष्ठ होते हैं । परमात्मा और आत्मा की एकता भी इसी तथ्य पर निर्भर है । भौतिक पदार्थ नाशवान हैं, वे क्षण-क्षण में बनते बिगड़ते रहते हैं । जीवों का भी यही हाल है, वे भी अपनी रुचि और परिस्थिति के अनुसार आँखें बदलते रहते हैं । इसलिए उनसे सच्चा और चिरस्थाई प्रेम निभ नहीं सकता । सामने वाले की स्थिति का प्रभाव अपने ऊपर पड़ता ही है, इसलिये प्रेम की साधना करने वाले को ऐसा आधार ढूँढ़ना पड़ता है जो अपरिवर्तनशील एवं उच्च सम्भावनाओं से ओत-प्रोत हो । इस विश्व में परमात्मा ही एक मात्र ऐसी वस्तु है जो मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठ रसानुभूति, प्रेम भावना की अभिवृद्धि में सहायक हो सकती है । भक्ति भावना अपने आप में एक विभूति है और जिसे इसका एक क्षण भी प्राप्त हो गया वह धन्य हो जाता है । इस भक्ति साधना का अभ्यास भी उपासना की पूजा अर्चना द्वारा ही सम्भव है ।

आस्तिकता के अगणित लाभों का उठाया जाना तभी हो सकता है जब उपासना को दैनिक जीवन में नियमित एवं निश्चित रूप से निरन्तर करते रहा जाय । केवल ईश्वर है इतना मान लेने मात्र से उस मान्यता के द्वारा कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता । इसलिए हममें से हर एक को यह प्रयत्न करना चाहिए कि दैनिक जीवन में उपासना के लिए कोई निश्चित समय एवं निर्धारित विधान अवश्य रहे ।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दू धर्म में प्रचलित सभी उपासनाओं में गायत्री का स्थान सर्वोपरि है । अनादि एवं सनातन साधना यही है । अवतारों, ऋषियों, महापुरुषों एवं सर्वसाधारण ने इसे युग-युगों से अपनाये रखा है । पिछले अन्धकार युग में जब अनेक मत-मतान्तर और देवी देवता उपज पड़े तो उपासना विधानों का बहुसंख्यक हो जाना भी स्वाभाविक ही था । आज विविध विधि उपासनाएँ हिन्दू धर्म में प्रचलित हैं । वे चलती रहें तो भी कुछ हानि नहीं, पर गायत्री उपासना को, भावात्मक एकता एवं प्राचीनतम साधन परम्परा को सजीव रखने के लिए प्रथम स्थान देना होगा । जो लोग कोई और उपासना करते हैं किसी और मन्त्र या देवी-देवता को मानते हैं, उन्हें भी उचित है कि उस उपासना में कम से कम १०८ गायत्री मन्त्रों का जप सम्मिलित कर लें । इसमें पाँच छः मिनट ही तो लगते हैं ।

जो लोग उपासना बिल्कुल भी नहीं करते उन्हें १०८ मंत्र गायत्री जप करने में ५-६ मिनट का समय लगाना तो आरम्भ ही कर देना चाहिए । जिन्हें स्नान या समय सम्बन्धी असुविधा है वे बिना स्नान के भी गायत्री मन्त्र-लेखन या मौन मानसिक जप कर सकते हैं । प्रातः सोकर उठते समय और रात को सोने के समय पाँच-पाँच मिनट का समय लगा सकने में तो किसी को भी कुछ कठिनाई होनी चाहिए । जो व्यक्ति सम्प्रदायभेद के कारण- जैसे, जैन, बौद्ध, सिक्ख आदि गायत्री का जप न कर सकें वे अपने साम्प्रदायिक मन्त्र का इसी भाँति नियमित रूप से जप करते हुए सुफल प्राप्त कर सकते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आस्तिकता मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनाये रखने के लिए एक सुदृढ़ अवलम्बन है । यह आस्तिकता उपासना के बल बूते पर ही मूर्तिमान बनती है । इसलिए हमें उपासना पर पूरा जोर देना चाहिए । हम स्वयं यदि अभी तक उपासना नहीं करते तो आज से ही उसका शुभारम्भ किसी न किसी रूप में आरम्भ कर देना चाहिए । यह अपने तक ही सीमित न रहे वरन् अपने स्वजन, सम्बन्धियों में भी इसका प्रसार होना चाहिए । हमको प्रयत्न करना चाहिए कि हमारा प्रभाव क्षेत्र जहाँ तक है वहाँ तक गायत्री उपासना को दैनिक जीवन में कोई न कोई स्थान, कोई न कोई समय मिले । युग-निर्माण की यही प्रधान एवं प्रमुख प्रक्रिया रह सकती है । हमारा भविष्य आस्तिकता एवं उपासना का आश्रय लिए बिना उज्ज्वल नहीं हो सकता ।

उपासना द्वारा परमात्मा की अनुभूति

इस संसार में जो कुछ शुभ है, श्रेष्ठ है, मंगलमय है वह सब परमात्मा का ही वैभव है । गीता में अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए बताया है कि जो कुछ इस संसार में श्रेष्ठ दिखाई पड़ता है, उसे भगवान की ही विभूति जानना चाहिए ।

आत्मा को परमात्मा के निकट पहुँचने पर वही बात बनती है जो गर्म लोहे और ठण्डे लोहे के एक साथ बाँधने पर होती है । गर्म लोहे की गर्मी ठण्डे में जाने लगती है और थोड़ी देर में दोनों का तापमान एक सरीखा हो जाता है । दो तालाब जब तक अलग-अलग रहते हैं, तब तक उनके पानी का स्तर नीचा-ऊँचा बना रहता है, पर जब बीच में नाली निकाल कर उन दोनों को आपस में सम्बन्धित कर दिया जाता है तो अधिक भरे हुए तालाब का पानी दूसरे कम पानी वाले तालाब में चलने लगता है और यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक कि दोनों का जल स्तर समान नहीं हो जाता ।

दो जलाशयों का मिलना या गर्म-ठण्डे लोहे का परस्पर मिलना जिस प्रकार एकरूपता की स्थिति उत्पन्न करता है उसी प्रकार उपासना द्वारा आत्मा और परमात्मा का मिलन होने पर जीव में दैवी गुणों की तीव्रगति से अभिवृद्धि होने लगती है ।

किसी व्यक्ति की उपासना सच्ची है या झूठी है उसकी एक ही परीक्षा है कि "साधक की अन्तरात्मा में सन्तोष, प्रफुल्लता, आशा, विश्वास और सद्भावना का कितनी मात्रा में अवतरण हुआ ।" यदि यह गुण नहीं आये हैं और हीन वृत्तियाँ उसे घेरे हुए हैं तो समझना चाहिए कि वह व्यक्ति पूजा पाठ कितना ही करता हो उपासना से अभी दूर ही है।

पूजा पाठ अलग बात है, उपासना अलग । उपासना के लिए पूजा पाठ से कर्मकाण्ड की चिह्न पूजा करते रहने मात्र से उपासना का उद्देश्य प्राप्त नहीं हो सकता । जीव को जीवन धारण करने के लिए शरीर की आवश्यकता होती है पर शरीर ही जीवन नहीं है । जीवविहीन शरीर देखा तो जा सकता है पर उसका कोई लाभ नहीं । इसी प्रकार उपासनाविहीन पूजा भी होती तो है, पर उससे कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता ।

आत्मा जब परमात्मा की गोदी में बैठता है तो उसे प्रभु की सहज करुणा और अनुकम्पा का लाभ मिलता है । उसे तुरन्त ही निर्भयता और निश्चिन्तता की प्राप्ति होती है । हानि, घाटा, रोग, शोक, विछोह, जिन्ता, असफलता और विरोध की विपन्न स्थितियों में भी उसे विचलित होने की आवश्यकता नहीं पड़ती । उसे इन प्रतिकूलताओं में भी अपने हित-साधन का कोई विधान छिपा दिखाई पड़ता है। वस्तुतः विपन्नता हमारी त्रुटियों का शोधन करने और पुरुषार्थ को बढ़ाने के लिए ही आती है । आलस्य और प्रमाद को, अहंकार और मत्सर को मनोभूमि से हटाना ही प्रतिकूलताओं का उद्देश्य होता है । सच्चे आस्तिक को अपने प्रिय परमेश्वर पर सच्ची आस्था होती है और वह अनुकूलताओं की तरह प्रतिकूलताओं का भी खुले हृदय से स्वागत करता है ।

माता मधुर मिष्ठान भी खिलाती है और आवश्यकता पड़ने पर कड़ुई दवा भी पिलाती है । दुलार से गोदी में भी उठाये फिरती है और जब आवश्यकता समझती है डाक्टर के पास सुई लगाने या आपरेशन कराने के लिए भी ले जाती है । माता की प्रत्येक क्रिया बालक के कल्याण के लिए ही होती है । परमात्मा की ममता जीवन के प्रति माता से भी अधिक है । प्रतिकूलतायें प्रस्तुत करने में उसकी उपेक्षा या निष्ठुरता नहीं, हितकामना ही छिपी रहती है ।

अपनी कठिनाइयों को हल करने मात्र के लिए, अपनी सुविधायें बढ़ाने की लालसा मात्र से जो प्रार्थना पूजा करते हैं वे उपासना के तत्वज्ञान में अभी बहुत पीछे हैं । उन्हें उन बालकों में गिना जाना चाहिए जो प्रसाद के लालच से मन्दिर में जाया करते हैं । ऐसे बच्चे वह आनन्द कहाँ पाते हैं जो भक्तिरस में निमग्न एक भावनाशील आस्तिक को प्रभु के सम्मुख अपना हृदय खोलने और मस्तक झुकाने में आता है । प्रभु के चरणों पर अपनी अन्तरात्मा को अर्पण करने वाले भावविभोर भक्त और प्रसाद की मिठाई लेने के उद्देश्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में खड़े हुए भिखमंगे में जो अन्तर होता है, वही सच्चे और झूठे उपासकों में होता है । एक का उद्देश्य परमार्थ है दूसरे का स्वार्थ । स्वार्थी को कहीं भी सम्मान नहीं मिला । परमात्मा की दृष्टि में भी ऐसे लोगों का क्या कुछ मूल्य होगा ?

लुहार अपनी दुकान पर लोहे के टुकड़ों से तरह-तरह की चीजें बनाता रहता है । उन टुकड़ों को वह कभी गरम करने के लिए भट्टी में तपाता है और कभी पानी में डालकर ठण्डा कर लेता है । इस विसंगति को देखकर कोई भोला मनुष्य असमंजस में पड़ सकता है कि लुहार ने इस दुमुँही प्रक्रिया को क्यों अपना रखा है । पर वह कारीगर जानता है कि किसी लोहे के टुकड़े को बढ़िया उपकरण की शक्ल में परिणत करने के लिए दोनों ही प्रकार की ठण्डी गरम प्रणालियों का प्रयुक्त होना आवश्यक है । मनुष्य के जीवन में भी सुख-दुःख का, धूप-छाँह का अपना महत्त्व है । रात-दिन की अंधेरी-उजेली विसंगतियाँ ही तो कालक्षेप का एक सर्वांगपूर्ण विधान प्रस्तुत करती हैं । यदि मनुष्य सदा सुखी और सम्पन्न ही है तो निश्चय ही उसकी आन्तरिक प्रगति रुक जायेगी । जो झटके प्रगति के लिए आवश्यक हैं उन्हें ही हम कष्ट कहते हैं । इन्हें सच्चा भक्त कड़ुवी औषधि की तरह ही शिरोधार्य करता है । सन्निपात का मरीज जैसे डाक्टर को गाली देता है वैसी भूल समझदार आस्तिक ईश्वर के प्रति नहीं कर सकता ।

विपन्नताओं की स्थिति में धैर्य न छोड़ना, मानसिक सन्तुलन नष्ट न होने देना, आशा और पुरुषार्थ को न छोड़ना आस्तिकता का प्रथम चिह्न है । जिसे परमात्मा जैसी अनन्त सामर्थ्यवान सत्ता के साथ बैठने का सौभाग्य प्राप्त है, वह किसी भी व्यक्ति या परिस्थिति से क्यों डरेगा ? क्यों निराशा और कातरता प्रकट करेगा ? धैर्य और साहस की अजस्र धारा उसके मनःक्षेत्र में उठती ही रहनी चाहिए ।

जो आस्तिक है उसकी आशा कभी क्षीण नहीं हो सकती । वह केवल उज्ज्वल भविष्य पर ही विश्वास रख सकता है । अन्धकार अनात्म तत्व है । आत्म-परायण व्यक्ति के चारों ओर प्रकाश ! केवल प्रकाश रहना चाहिए। उसे झुँझलाने और खिन्न होने की आवश्यकता क्यों पड़ेगी ? आस्तिकता माने– आत्म विश्वास । परमात्मा पर विश्वास करने वाले को अपना भविष्य सदा उज्ज्वल एवं प्रकाशवान ही दिखाई देगा ।

उपासना का दूसरा प्रतिफल है श्रेष्ठताओं की वृद्धि । चूँकि परमात्मा समस्त श्रेष्ठताओं का केन्द्र है, उसका सान्निध्य आत्मा को दिन-दिन उत्कृष्ट बनाता चलता है । भक्त को अपना भगवान सब में दिखाई पड़ता है, इसलिये वह हर किसी की अच्छाइयाँ देखता है और उनकी चर्चा एवं विचारणा करते हुए अपने आनन्द और दूसरों के सद्भाव को बढ़ाता है । निन्दा और ईर्ष्या असुरता के दो प्रधान अस्त्र हैं । इनका प्रयोग उसी पर किया जा सकता है जिसके प्रति परायेपन का, शत्रुता का भाव रहे । जब सब अपने हैं तो अपनों की निन्दा कैसी ? अपनों से ईर्ष्या कैसी ?

बुराई को तोड़ने के लिए नहीं, अच्छाई को बढ़ाने के लिए उसके प्रयत्न होते हैं । अच्छाई को बढ़ाना ही वस्तुतः बुराई को तोड़ना है । बुराई तोड़ दी जाय और उसके स्थान पर अच्छाई की स्थापना न हो तो टूटी हुई बुराई फिर उपज आती है । आस्तिकता का दृष्टिकोण अच्छाई को बढ़ाना होता है, ताकि बुराई के लिए कोई गुंजाइश ही न रहे । वह सदा अच्छाई की चर्चा करेगा । प्रेम से दुष्टता को परास्त करेगा । दुष्टता करके प्रेम के अंकुरों को जला देना असज्जनों का काम है । आस्तिक असज्जन नहीं हो सकता ।

प्रेम, करुणा, आत्मीयता और सौजन्य की अजस्र धाराएँ परमात्मा से प्रवाहित होती रहती हैं । प्राणिमात्र का पोषण संरक्षण एवं अभिवर्द्धन इन्हीं विशेषताओं के द्वारा तो वह करता है । ऐसे प्रभु के समीप बैठने वाले में, उपासना करने वाले में यही विशेषताएँ अवतिरत होती हैं । अपने भाई बहिनों के प्रति, प्राणिमात्र के प्रति अनन्त करुणा और आत्मीयता की भावनाएँ उपासक के अन्तःकरण में उद्भूत होती हैं । उनको चरितार्थ करके वह अपने जीवन को यशस्वी बनाता है और मनःक्षेत्र में धारण किये रह कर अनन्त शान्ति का अनुभव करता है ।

परमात्मा की उपासना का प्रतिफल पाने के लिए प्रतीक्षा उन्हें करनी पड़ती है जो पुरुषार्थ और प्रतिभा के मूल्य पर मिलने वाली भौतिक सम्पदाओं परमात्मा से मुफ्त में ही पाने की आशा लगाये हुए दीन-हीनों भिक्षुओं की तरह बैठे रहते हैं जिन्हें प्रेम और उत्सर्ग की उच्च भावनाओं से प्रेरित होकर प्रभु के चरणों में बैठने की आकांक्षा है, उन्हें अपने प्रियतम का प्रेम प्राप्त करने के लिए क्षण-भर भी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती । उपासना वासना की आग को बुझाती है, तृष्णा की जलन को शान्त करती है । चिन्ता, भीति और घृणा की उन व्यथाओं को हटाती है जो मानव-जीवन को निरन्तर अशांन्त बनाये रहती हैं । उपासना और आत्मशान्ति एक ही वस्तु के दो पहलू हैं । आत्मा अपनी उद्गम सत्ता परमात्मा की ओर उन्मुख होगी तो निश्चय ही उसे प्रकाश मिलेगा । परमात्मा का प्रकाश पड़ने पर आत्मा भी अपने सत्-चित आनन्दमय स्वरूप के साथ प्रकाशवान दीखता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसे प्रकाशवान जीवन में नर से नारायण की, पुरुष से पुरुषोत्तम की, आत्मा से परमात्मा की प्रत्यक्ष परिणति दृष्टिगोचर होती है । इसलिए उपासना को मानव-जीवन की सर्वोपरि बुद्धिमत्ता माना गया है ।

उपासना की सफलता में श्रद्धा विश्वास की आवश्यकता

क्या सांसारिक क्या आध्यात्मिक सभी कार्यों में सुव्यवस्था, क्रमबद्धता एवं नियमितता का भारी महत्त्व है । अस्त-व्यस्त ढंग से, अनियमित रीति से किये गये सभी काम काने-कुबड़े, आधे-अधूरे और लंगड़े-लूले पड़े रहते हैं । जब कर्ता का क्रम ही व्यवस्थित नहीं, तो किये गये काम में ही उत्कृष्टता कैसे दीख पड़ेगी ? सफलता उन्हें मिलती है जो पहले अपनी गतिविधियों को सुव्यवस्थित बना लेते हैं । अस्त-व्यस्त रीति से काम करने वाले, मनमानी बरतने वाले प्रायः हर काम में असफल रहते देखे जाते हैं । अनुशासन तथा सद्गुण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है । प्रगतिशीलता उसी के साथ जुड़ी हुई है ।

आत्मिक प्रगति आत्मानुशासन में आरम्भ होती है । कई व्यक्ति उपासना के लिए बने हुए विधि-विधानों पर नियमोपनियमों पर ध्यान नहीं देते और मनमौजी स्वेच्छाचार बरतते हैं । ऐसा करने से उसके सत्परिणाम संदिग्ध रहते हैं । यह ठीक है कि प्राचीनकाल की कई व्यवस्थाएँ इन दिनों असामयिक हो गई हैं और उनमें फेर बदल किये बिना कोई चारा नहीं । किन्तु वह परिवर्तन भी किसी सुनिश्चित आधार एवं सिद्धान्त के अनुरूप होना चाहिए । जिस परिवर्तन को मान्यता दे दी जाय फिर उसे तो उसी कड़ाई के साथ पालन करना चाहिए जैसा कि परम्परावादियों का प्राचीन प्रचलनों पर जोर रहता है । यह अनुशासन एवं मर्यादा पालन ही आध्यात्म की भाषा में विश्वास कहा जाता है और उसका महत्त्व श्रद्धा के समतुल्य ही माना जाता है । कहा गया है कि श्रद्धा विश्वास के अभाव में धर्मानुष्ठान का महत्त्व उतना ही स्वल्प रह जाता है, जितना कि काम में हलका-सा शारीरिक श्रम किया जाता है । शक्ति का स्रोत तो श्रद्धा एवं विश्वास ही है । इन्हीं दोनों को रामायणकार ने पार्वती और शिव की उपमा देते हुए कहा है कि इन दोनों के सहयोग से ही अन्तरात्मा में विराजमान परमेश्वर का दर्शन सम्भव हो सकता है ।

श्रद्धा का सहचर है– विश्वास । इसे निष्ठा भी कहते हैं । किसी तथ्य को स्वीकार करने के पूर्व उस पर परिपूर्ण विचार कर लिया जाय । तर्क, प्रमाण, परामर्श, परीक्षण आदि के आधार पर तथ्य का पता लगा लिया जाय और समुचित मंथन के बाद किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाय । इसमें देर लगे तो लगने देनी चाहिए । उतावली में इतना अधूरा निष्कर्ष न अपना लिया जाय जिससे किसी के तनिक के बहकावे मात्र से बदलने की बात सोची जाय । कई व्यक्ति विधि-विधानों के बारे में ऐसे ही अनिश्चित रहते हैं। एक के बाद दूसरे से पूछते फिरते हैं । फिर दूसरे का तीसरे से और तीसरे का चौथे से समाधान पूछते हैं । भारतीय धर्म का दुर्भाग्य ही है कि इसमें पग-पग पर मतभेदों के पहाड़ खड़े पाये जा सकते हैं । यदि मतभेदों और शंका-कुशंकाओं के जंजाल में उलझे रहा जायं तो उसका परिणाम मतिभ्रम, अश्रद्धा, अनिश्चतता एवं आशंका से मनःक्षेत्र भर जाने के अतिरिक्त और कुछ भी न होगा । ऐसी मनःस्थिति में किये गये धर्मानुष्ठानों का परिणाम नहीं के बराबर ही होता है । श्रद्धा-विश्वास का प्राण ही निकल गया तो फिर मात्र कर्मकाण्ड की लाश लादे फिरने से कोई बड़ा प्रयोजन सिद्ध न हो सकेगा ।

विश्वास का तात्पर्य है, कि जिस तथ्य को मान्यता देना उस पर दृढ़ता के साथ आरूढ़ रहना । इस दृढ़ता का परिचय उपासनात्मक विधि-विधानों की जो मर्यादा निश्चित कर ली गई है, उसे बिना आलस, उपेक्षा बरते पूरी तत्परता के साथ अपनाये रहने में मिलता है । विधि-विधानों के पालन करने के लिए शास्त्रों में बहुत जोर दिया गया है उसकी उपेक्षा करने पर साधना के निष्फल जाने अथवा हानि होने, निराशा हाथ लगने का भय दिखाया गया है । उसका मूल उद्देश्य इतना ही है कि विधानों के पालन करने में दृढ़ता की नीति अपनाई जाय । हानि-लाभ का भय दिखाने में इतना ही तथ्य है कि अभीष्ट सत्परिणाम नहीं मिलता । अन्यथा सत्प्रयोजन में कोई त्रुटि रह जाने पर भी अनर्थ की आशंका करने का तो कोई कारण है ही नहीं ।

साधना मार्ग पर चलने वाले को अपनी स्थिति के अनुरूप विधि-व्यवस्था का निर्धारण आरम्भ में ही कर लेना चाहिए । जो निश्चित हो जाय उसमें आलस, उपेक्षा बरतने की ओल-पोल न दिखाई जाय । दृढ़ता न बरती जायेगी तो आस्था में शिथिलता आने लगेगी । तत्परता मन्द पड़ जायेगी फलतः मिलने वाला उत्साह और प्रकाश भी धूमिल हो जायगा ।

दैनिक उपासना में समय, स्थान, संख्या एवं क्रम व्यवस्था का ध्यान रखना पड़ता है । उपासना के लिए जो समय निर्धारित हो उसकी पाबन्दी की जाय । जितनी संख्या में क्रम आदि कृत्य किया जाना है, उसका घड़ी या माला

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के आधार पर निर्वाह किया जाय । पूजा कक्ष निर्धारित करने का उद्देश्य यह है कि उसी स्थान पर प्रतिदिन बैठा जाय । उपासना का जो क्रम बना लिया जाय, उसी प्रकार उसे करते रहा जाय । इनमें उलट-पुलट करते रहने से अन्तर्मन को वैसा करते रहने की आदत नहीं पड़ती । आदत को ही संस्कार कहते हैं । समय, स्थान, संख्या, क्रम, व्यवस्था को बहुत समय तक एक ही तरह अपनाये रहने पर अचेतन मन उस ढांचे में ढल जाता है । यह ढलना ही शक्ति स्रोत है । साधना विज्ञान की सफलता का रहस्य अचेतन को अभीष्ट ढाँचे में ढाल देना, उपयुक्त ढर्रे का अभ्यस्त बना देना ही है । इसके लिए उपरोक्त क्रमबद्धता को अपनाये रहना विधान मर्यादाओं का पालन करते रहना आवश्यक माना गया है ।

प्रतिबन्धों का पालन करने से दक्षता उत्पन्न होती और तीक्ष्णता आती है । इसलिए सामान्य उपासना क्रम में भी एक निष्कर्ष पर पहुँचने और अनुशासन स्थापित करने के लिए साधना गुरु को मार्गदर्शक के रूप में नियत करना होता है । अपने लिए विधि-विधान निश्चित करते समय उससे परामर्श कर लिया जाय और जो निर्धारित किया गया हो उस पर दृढ़ रहा जाय । फेर बदल करना पड़े तो वह भी अपनी मनमर्जी से नहीं, वरन् मार्गदर्शक के परामर्श से ही किया जाय । इससे निश्चितता और निश्चिंतता दोनों ही रहती हैं । इसके विपरीत मनमौजी विधान बनाते और बदलते रहने का कौतूहल साधक की उच्छृंखलता और स्वेच्छाचारिता का ही परिचय देगा । इस मार्ग को अपनाने में अहंम्मन्यता का पोषण भले ही हो जाय, उसका सत्परिणाम नहीं मिल सकेगा ।

अनुष्ठान और सामान्य जप का अन्तर यह नहीं है कि सामान्य जप की तुलना में अनुष्ठान अधिक देर लगने वाला होता है, वरन् यह है कि उसमें अपेक्षाकृत अधिक कड़े अनुशासन का पालन करना होता है । इस कड़ाई से असुविधा तो अवश्य होती है किन्तु इस आधार पर जो तितीक्षा बन पड़ती है, मन को मारने से जिस संकल्प शक्ति की अभिवृद्धि होती है, उससे सामान्य मन्त्र साधन की शक्ति भी कई गुनी बढ़ जाती है और उसका प्रतिफल आश्चर्यजनक मात्रा में बढ़ा-चढ़ा होता है । इस दृढ़ता में प्रत्यक्ष ही विश्वास की (निष्ठा की) प्रौढ़ता का परिचय मिलता है । जहाँ यह तत्व जितनी अधिक मात्रा में होते हैं वहाँ उसी अनुपात में उस परिश्रम का उत्साहवर्धक प्रतिफल भी परिलक्षित होता है ।

अनुष्ठानों की एक आवश्यकता यह है कि उसका (१) मार्गदर्शन, (२) संरक्षण एवं (३) परिमार्जन करने के लिए किसी उपयुक्त व्यक्ति को नियुक्त करना पड़ता है । विशेष साधनाओं में इन तीनों का ही समुचित प्रबन्ध करना पड़ता है । मार्गदर्शन का तात्पर्य है व्यक्ति विशेष की मनःस्थिति और परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए, उपासना के सामान्य विधि-विधान में जो हेर-फेर करना आवश्यक हो, उसका निर्धारण करना । बीच-बीच में जो व्यवधान आवें, अड़चनें पड़ें, उनका समाधान बताना, जैसी बातें मार्गदर्शन के अन्तर्गत आती हैं । संरक्षण इसलिए आवश्यक है कि अनुष्ठानों से उत्पन्न शक्ति असुरता को दुर्बल बनाती है, उनके वर्चस्व को नष्ट करती है, इसलिए वे उलटकर ऐसे स्थल पर आक्रमण करती हैं जहाँ से कि उन्हें अपने लिए खतरा दीखता है । विश्वामित्र के यज्ञ में ताड़का, सुबाहु, मारीच आदि असुरों के हमले होते थे, उनसे रक्षा करने के लिए राम और लक्ष्मण को प्रहरी बनाया गया था । इसी प्रकार प्राचीन काल में अन्यान्य छोटे-बड़े यज्ञों की रक्षा के लिए संरक्षक नियुक्त करने की परम्परा रही है । यज्ञ के पांच काष्ठ पात्रों में एक 'स्पय' भी होता है । यह खड्ग हैं । इसमें संरक्षण एवं सुरक्षा की आवश्यकता का संकेत है । अनुष्ठान भी जप यज्ञ की गणना में आता है, उसके लिए भी संरक्षण की आवश्यकता पड़ती है । यह कार्य लगभग उसी स्तर का व्यक्ति कर सकता है जैसा कि मार्गदर्शन के लिए अपने विषय में पारंगत तथा अनुभवी होना आवश्यक है ।

क्रिया-कृत्यों की गलतियाँ रहती हैं, उनका परिशोधन परिमार्जन आवश्यक होता है । वहीखातों की जांच पड़ताल आडीटरों द्वारा कराई जाती है और जहाँ जो भूल होती है उसका परिशोधन किया जाता है । यह कार्य अन्य विषयों के लिए भी आवश्यक है । पुरश्चरणों के अन्त में तर्पण और मार्जन का विधान है । मार्जन का तात्पर्य शुद्धिकरण परिमार्जन होता है । इसमें अशुद्धियों को सुधारने का भाव है । यदि साधक की स्थिति ऐसी हो कि वह अपनी गलतियों को स्वयं समझ और सुधार सके तब तो उसे स्वयं ही वह कार्य सम्पन्न कर लेना चाहिए । अन्यथा वह कार्य दूसरे ऐसे व्यक्ति से कराना चाहिए जो गलती पकड़ने के अतिरिक्त उसे सुधारने की क्षमता से भी सम्पन्न हो । बहीखाता लिखने वालों की योग्यता और ईमानदारी असंदिग्ध हो तो भी परम्परा यही है कि जांच पड़ताल दूसरों से ही कराई जाय और सुधार भी किसी बाहरी व्यक्ति के निरीक्षण में ही सम्पन्न होता है । यह बात अनुष्ठान साधना में रही हुई त्रुटियों के सम्बन्ध में भी है । साधारणतया अपनी गल्ती का आप पता भी नहीं चलता । अपनी आँख से, अपनी पुतली से उत्पन्न हुई खराबी दीख नहीं पड़ती, उसे दूसरे ही देखते और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुधारते हैं । चिकित्सक दूसरों की चिकित्सा तो करते हैं पर अपनी बीमारी का सही निदान करने के लिए दूसरे चिकित्सक की सहायता लेते हैं । इसी प्रकार अनुष्ठानकर्ता को भी मार्गदर्शन के लिए किन्हीं पुस्तकों के सहारे सब कुछ निर्णय कर लेने का साहस नहीं होता । इसी प्रकार साधना और संरक्षण के दो मोर्चों पर लड़ाई भी ठीक तरह नहीं लड़ी जाती । अपनी गलतियाँ ढूँढ पाना और अपने आप उन्हें सुधार लेना सम्पन्न करने से भी अधिक जटिल है । ऐसी दशा में यह तीनों ही काम तीन अलग-अलग व्यक्तियों को सौंपने की अपेक्षा एक ही ऐसे व्यक्ति को सौंपने पड़ते हैं, जो योग्यता और सदाशयता का धनी हो । इस प्रकार का परमार्थ करने के लिए संवेदनशील हो, साथ ही अपना उत्तरदायित्व प्राण-प्रण से निर्वाह कर सकने के लिए आवश्यक आत्मबल से तपोधन से सम्पन्न भी हो ।

साधना शास्त्र में विशिष्ट साधनाओं के सन्दर्भ में यन्त्रों के कीलित होने का उल्लेख है । सामान्यतया दैनिक जप साधन में कोई मन्त्र कीलित नहीं है । उसका जप, पाठ, हर कोई सहज सरल रीति से करता रह सकता है । किन्तु जब उन्हीं मन्त्रों की उच्चस्तरीय साधना की जाती है तो कहा जाता है कि वह कीलित है । उसका उत्कीलन करने पर ही साधना की सिद्धि होगी । गायत्री मन्त्र के सम्बन्ध में उसे शाप लगने का उल्लेख है और कहा गया है कि उसका शाप मोचन होना चाहिए । कीलित या शापित होना एक ही बात है ।

दुर्गा सप्तशती के सामान्य पाठ पर कोई बन्धन प्रतिबन्ध नहीं है, पर यदि शतचण्डी, सहस्रचण्डी आदि का अनुष्ठान करना हो तो उसके पूर्व कवच, कीलक और अर्गल का विधान सम्पन्न करना होता है । कवच उस विशिष्ट अवतरण को कहते हैं जिसे योद्धा लोग रण क्षेत्र में जाते समय अपने शरीर पर सुरक्षा के लिए पहनते हैं । कीलक, प्रतिबन्धों को कहते हैं । ताले में ताली डालकर खोलना उत्कीलन कहलाता है । भूल-भुलैयों से बचकर अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अवरोधों को पार करना उत्कलन है । संक्षेप में इसे उपयुक्त मार्गदर्शन कह सकते हैं । अर्गला कहते हैं जंजीर (शृंखला) को । इसे तारतम्य एवं गतिशीलता कह सकते हैं । अर्गला हटाने का तात्पर्य परिमार्जन कहा जा सकता है ।

गायत्री उपासना में भी यही तीन अवरोध शास्त्र कहे जाते हैं । उल्लेख मिलता है कि गायत्री को तीन शाप लगे हुए हैं-- एक ब्रह्मा का, दूसरा वशिष्ठ का तथा तीसरा विश्वामित्र का । इन तीनों का शाप विमोचन करने पर गायत्री साधना सफल होती है अन्यथा निष्फल चली जाती है ।

मोटे तौर से यह बात उपहासास्पद लगती है कि विश्व माता (वेदमाता) ब्रह्मशक्ति को कोई क्यों शाप देगा और किसी के शाप से उन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? सर्व समर्थ माता पर इस प्रकार कोई क्यों तो आक्रमण करेगा और क्यों उस आक्रमण को प्रभावी होने का अवसर मिलेगा ? ब्रह्मा गायत्री के पति माने जाते हैं । वशिष्ठ और विश्वामित्र उसके परम आराधक, प्रवीण पारंगत थे । उन्हें ऋषि का पद गायत्री के अनुग्रह से ही मिला था । नन्दिनी को पृथ्वी पर आई कामधेनु की आत्मा ही कहा जाता है । गायत्री कामधेनु ही है । वशिष्ठ को इस नन्दिनी कामधेनु की कृपा से ही ब्रह्मर्षि पद मिला था । विश्वामित्र गायत्री विनियोग में उसके पारंगत ऋषि के रूप में स्मरण किये जाते हैं । ऐसी दशा में ब्रह्मा का, वशिष्ठ का और विश्वामित्र का गायत्री को अकारण शाप देना सर्वथा अविश्वस्त लगता है। आशंका होती है कि मत-मतान्तर फैलाने वाले लोगों ने गायत्री की सर्वोपरि गरिमा के प्रति अविश्वास उत्पन्न करने और उसके स्थान पर अपनी-अपनी मनगढ़न्त साम्प्रदायिक साधनाएँ चलाने के लिए यह कुचक्र रचा और भ्रम फैलाया होगा ।

किन्तु गम्भीरता से विचार करने पर इस शाप पहेली के पीछे कुछ दूसरा ही रहस्य छिपा प्रतीत होता है । कवच कीलक, अर्गल के रूप में 'दुर्गा सप्तशती' में जिन प्रतिबन्धों का संकेत है उन्हीं की गायत्री उपासना में शाप मोचन के नाम से दूसरे शब्दों में चर्चा कर दी गई है । इसका तात्पर्य यही है कि उच्चस्तरीय साधना में आवश्यक सतर्कता और संरक्षण का प्रबन्ध रहना चाहिए । हाथ से चलने वाली आटे की चक्की को तो घर की बुढ़िया भी चला सकती है पर बिजली से चलने वाली चक्की को चलाने के लिए आवश्यक जानकारी और उपयुक्त व्यवस्था चाहिए । अन्यथा बिजली का करेन्ट पुली पर चढ़ा हुआ पट्टा कुछ भी मुसीबत पैदा कर सकते हैं । अनुष्ठानों की साधना सामान्य जप की तुलना में कहीं अधिक शक्तिशाली एवं उच्च स्तरीय मानी जाती है। इसलिए उसे ठीक तरह सम्पन्न करने के लिए उपयुक्त मार्गदर्शन, संरक्षण एवं परिमार्जन का प्रबन्ध करना पड़ता है । इन दोनों का उत्तरदायित्व सम्भाल सकने वाला सहायक यदि मिल जाय और वह अपना उठाया हुआ उत्तरदायित्व ठीक तरह सम्भाल सके तो निश्चय ही अनुष्ठानकर्ता के लिए सफलता का मार्ग बहुत सरल हो जाता है ।

गायत्री को गुरुमन्त्र कहा गया है । उसकी सफलता के लिए गुरु का सहयोग आवश्यक माना गया है और कहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गया है कि इसका प्रबन्ध न हो सकने पर सफलता संदिग्ध ही बनी रहेगी । यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या गुरु का उत्तरदायित्व कोई भी व्यक्ति उठा सकता है । क्या चेलों को मूँड़कर पेट भरने वाले तथाकथित गुरु भी कार्य को पूरा कर सकते हैं । उसके उत्तर में ब्रह्मा, वशिष्ठ और विश्वामित्र के तीनों गुणों से सम्पन्न गुरु की आवश्यकता का संकेत तीन शापों के माध्यम से किया गया समझा जाना चाहिए । ब्रह्मा का अर्थ है-- वेद ज्ञान में पारंगत । वशिष्ठ का अर्थ है ब्रह्म परायण, सदाचार सम्पन्न, विशिष्ट आत्मबल का धनी । विश्वामित्र का अर्थ है-- परम तपस्वी, विश्व कल्याण के क्रिया-कलापों में निरन्तर संलग्न । इन तीन विशेषताओं से जो सम्पन्न हो उसे गायत्री मन्त्र की गुरु दीक्षा देने और अनुष्ठानकर्ताओं का मार्ग दर्शन, संरक्षण, परिमार्जन कर सकने के लिए समर्थ अधिकारी माना गया है । ऐसे गुरु का सहयोग जिसे मिल सके, समझना चाहिए उसकी साधना का समुचित सत्परिणाम उत्पन्न होकर रहेगा ।

साधना से सिद्धि का मूलभूत आधार-श्रद्धा

आध्यात्म क्षेत्र में श्रद्धा की शक्ति ही सर्वोपरि है । जिस प्रकार शक्ति के आधार पर भौतिक हलचलें गतिशील होती हैं और उनके सहारे अभीष्ट उपलब्धियाँ हस्तगत होती हैं । उसी प्रकार आत्मिक क्षेत्र में 'श्रद्धा' ही मूल है । उसी की सघनता चमत्कार दिखाती है । श्रद्धा विहीन उपचार सर्वथा निष्प्राण रहते हैं और उनमें किया गया श्रम प्रायः निरर्थक चला जाता है । सामान्य लोक व्यवहार में भी दृढ़ता, श्रद्धा विश्वास के आधार पर ही आती है । आत्म विश्वास के बल पर ही कोई बड़ा कदम उठा सकना सम्भव होता है । शौर्य और साहस आत्मविश्वास के ही नाम हैं। आशा और उत्साह के मूल में आत्म-विश्वास ही काम करता है । परिवार में एक दूसरे को स्वजन, घनिष्ठ एवं आत्मीय होने की मान्यता ही उन्हें पारस्परिक स्नेह सहयोग के सुदृढ़ सूत्र में बाँधे रहती है । यह मात्र श्रद्धा है ही जिसके आधार पर परिवारों में स्नेह दुलार का अमृत बरसता है और एक दूसरे के लिए बढ़े-चढ़े त्याग करने को तत्पर रहता है । श्रद्धा की कड़ी टूट जाय तो फिर परिवारों का विघटन सुनिश्चित है, वे तनिक सी बातों पर अन्तः कलह के अखाड़े बनेंगे और देखते-देखते बिखर पर अस्त-व्यस्त हो जायेंगे ।

कृषि, उद्योग, शिल्प, खेल आदि सब में अपने कार्यक्रम के सही होने का विश्वास रख कर ही चला जाता है । व्यवसायी एक दूसरे पर विश्वासी करके लेन-देन करते हैं । बैंकें बड़े-बड़े जोखिम उठाती हैं । उधार का आधार ही विश्वास है । कर्मचारियों के हाथ में व्यवसाय की लगाम रहती है । मोटर ड्राइवर की मुट्ठी में अपनी जान रहती है, रसोइया भी विष देकर आसानी से सारे घर को मृत्यु की गोद में सुला सकता है । पत्नी सारी सम्पत्ति लेकर गायब हो सकती है । यह आशंकाएँ रहते हुए भी मनुष्य को विश्वास का ही सहारा लेना पड़ता है । अविश्वासी के लिए कोई कारोबार करना तो दूर आशंकाग्रस्त जीवन की भयंकरता का बोझ सम्भालना ही कठिन हो जायेगा और वह चैन से जीवित तक नहीं रह सकेगा । ऐसी स्थिति में कोई किसी पर अपने गुप्त भेद तक प्रकट न कर सकेगा और दुरावपूर्ण मनःस्थिति की घुटन में घुटता हुआ उद्विग्न विक्षिप्त स्तर की जिन्दगी जियेगा ।

श्रद्धा और विश्वास के बिना भौतिक जीवन में भी गति नहीं, फिर आध्यात्म क्षेत्र का तो उसे प्राण ही कहा गया है । आदर्शवादिता में प्रत्यक्षतः हानि ही रहती है, पर उच्चस्तरीय मान्यताओं में श्रद्धा रखने के कारण ही मनुष्य त्याग-बलिदान का कष्ट सहन करने के लिए खुशी-खुशी तैयार होता है । ईश्वर और आत्मा का अस्तित्व तक प्रयोगशालाओं की कसौटी पर खरा सिद्ध नहीं होता । वह निश्चित रूप से श्रद्धा पर ही अवलम्बित है । मनुष्य का व्यक्तित्व जिसमें संस्कारों का (आदतों का) गहरा पुट रहता है, वस्तुतः श्रद्धा की परिपक्वता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की आदतें और मान्यताएँ अत्यन्त गहराई तक घुसी रहती हैं और वे उन्हें छोड़ने को सहज ही तैयार नहीं होते । यह संस्कार और कुछ नहीं चिरकाल तक सोचे गये, माने गये और व्यवहार में लाये गये अभ्यासों का ही परिपाक है । तथ्यों की कसौटी पर इन संस्कारों में से अधिकांश बेतुके और अन्ध विश्वास स्तर के होते हैं, पर मनुष्य उन्हें इतनी मजबूती से पकड़े होता है कि उसके लिए वे ही 'सत्य' बन जाते हैं और सत्य और तथ्य कहकर वह उन पूर्वाग्रहों के प्रति अपनी कट्टरता का परिचय देता है । उनके लिए लड़ने-मरने तक को तैयार हो जाता है । यह मान्यतापरक कट्टरता और कुछ नहीं मात्र श्रद्धा द्वारा रची गई खिलवाड़ मात्र है ।

स्वभाव में सम्मिलित हुई गतिविधियाँ आदतें बन जाती हैं और वे जब नशेबाजी स्तर की बन कर अचेतन की गहराई में घुस जाती हैं तो तर्क के आधार पर हानिकारक सिद्ध कर देने पर भी ये छुड़ाये नहीं छूटतीं । छोड़ना चाहने वाला भी उन्हें छोड़ नहीं पाता । इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण यह है कि श्रद्धा की शक्ति तर्क से भी असंख्य गुनी अधिक है । यों सारा लोक व्यवहार तर्क के आधार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर चलता है और बुद्धि बल के सहारे ही विभिन्न प्रयोजन पूरे होते हैं । पर जहाँ सिद्धान्तों का और स्वार्थों का प्रश्न आता है, वहाँ पूर्व मान्यताएँ ही मस्तिष्क तंत्र को पूरी तरह जकड़ कर बैठ जाती हैं और तर्क के सारे तीर एक ही तरकस में से निकल कर एक ही दिशा में उड़ते दिखाई पड़ते हैं । पक्षपाती समर्थन में बुद्धि कौशल कैसे-कैसे विचित्र तर्कों का प्रहार करता है, इसे देख कर कई बार तो निष्पक्ष विचारक को आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है ।

यहाँ श्रद्धा की शक्ति का संक्षिप्त-सा आभास दिया गया है कि उसे मानव जीवन की सर्वोपरि सामर्थ्य के रूप में समझ सकने में सुविधा हो । देव लोक यही है, देवता इसी क्षेत्र में जन्मते, बढ़ते, परिपुष्ट होते और वरदान दे सकने के लिए सक्षम बनते हैं । उनका उदय एवं अस्त भी इसी श्रद्धा के अनन्त अन्तरिक्ष में होता रहता है । मन्त्र, देवता, गुरु, उपासना, साधन, सिद्धि आदि का सारा आधार श्रद्धा की आधारशिला पर खड़ा है । सच तो यह है कि साधना का विशालकाय कलेवर इसलिए खड़ा किया गया है कि उन लौह शृंखलाओं में जकड़ कर श्रद्धा विश्वास रूपी महादैत्य को उपयोगी प्रयोजन उत्पन्न कर सकने के लिए प्रशिक्षित किया जा सके । श्रद्धा से व्यक्तित्व का निर्धारण होता है, श्रद्धा से अनेक क्रिया-कलापों का सूत्र संचालन और उन्हें सफलता के उच्चस्तर तक पहुँचा सकना सम्भव होता है । आत्मा का सबसे विश्वस्त और सबसे घनिष्ठ सचिव श्रद्धा ही है । उसी के सहारे आत्मिक प्रगति से लेकर सिद्धि चमत्कार के वरदान पाने और आत्म-साक्षात्कार से लेकर ईश्वर दर्शन तक के समस्त दिव्य उपहार प्राप्त होते हैं ।

आत्मिक प्रगति का सर्वोपरि आधार 'श्रद्धा' को समझा जा सकता है । साधकों की सफलता असफलता इसी पर निर्भर रहती है । अस्तु गुरुदीक्षा (शक्तिपात) से लेकर अनेकों चित्र-विचित्र कष्टसाध्य तप, साधना इसी प्रयोजन के लिए करायी जाती है । आकर्षक माहात्मय इसीलिए सुनाये बताये जाते हैं कि साधक की श्रद्धा अधिकाधिक परिपुष्ट हो सके और अभीष्ठ सत्परिणाम प्राप्त कर सकने का अधिकारी बन सके ।

श्रद्धा की स्थापना और परिपुष्ट का चिरस्थायी और सर्वमान्य आधार यह है कि जिस तथ्य पर विश्वास जमाया जाना आवश्यक है, उसकी यथार्थता और वैज्ञानिकता को सघन तथ्यों और तर्कों के आधार पर समझ सकने का अवसर दिया जाय । बुद्धि का सर्वतोन्मुखी समाधान हो सके तो श्रद्धा की स्थिरता सुनिश्चित मानी जा सकती है और उन अभीष्ट परिणामों की अधिकाधिक अपेक्षा रखी जा सकती है । जिस-तिस से सुन कर, जल्दी-पल्दी कुछ सुन समझ कर यदि कोई श्रद्धा बनेगी तो उसकी जड़ें उथली रहने के कारण तनिक से आघात में उखड़ जाने की आशंका बनी रहेगी । प्रायः होता भी ऐसा ही रहता है । अमुक व्यक्ति के कहने से भावावेश उमड़ा और तत्काल वह साधना आरम्भ कर दी । कुछ ही समय बाद किसी दूसरे ने उस विधान के दोष बता दिये और किसी नये प्रयोग के माहात्मय सुना दिये, बस इतने भर से मन शंकाशंकित हो गया और पिछला प्रयोग छोड़ कर नया मार्ग अपना लिया गया । इस परिवर्तन के बीच यह नई आशंका बनी रहती है कि पिछली साधना जिस प्रकार छोड़नी पड़ी थी उसी प्रकार यह भी न छोड़नी पड़े और उसमें भी कोई दोष वैसा ही न घुसा हो जैसा कि पहली वाली में निकल पड़ा था । कमी कोई चर्चा इस नई साधना के विपक्ष और किसी अन्य के पक्ष में सुनाई पड़ती है, तो उसे भी छोड़ने न छोड़ने का असमंजस खड़ा हो जाता है । संदिग्ध, शंकाशंकित मन लेकर सांसारिक प्रयोजन तक में कोई कहने लायक सफलता नहीं मिल सकती फिर आध्यात्म क्षेत्र तो पूरी तरह श्रद्धा की शक्ति पर ही आधारित और अवलम्बित है । यदि मूल तथ्य का अभाव रहा तो फिर ज्यों-त्यों करके कर्मकाण्डों की लकीर पीटते रहने से बात बनेगी नहीं । तब असफलताओं का कारण विधि-विधानों की हेरा-फेरी में ढूँढा जाने लगेगा और यह खोज की जाने लगेगी कि किसी क्रिया-कृत्य में कोई अन्तर तो नहीं रह गया, जिससे असफलता मिली या उल्टा परिणाम निकला ।

वस्तुतः विधि-विधानों का महत्त्व साधना विज्ञान में एक चौथाई और श्रद्धा विश्वास का तीन चौथाई है । सघन श्रद्धा के रहते अटपटे विधि-विधान भी चमत्कारी परिणाम उपस्थित कर सकते हैं, जबकि अविश्वासी संदिग्ध मनःस्थिति में पंडिताऊ ढंग से किये गये परिपूर्ण कर्मकाण्ड भी निष्प्राण होकर रह जाते हैं और उनका परिणाम निराशाजनक ही रहता है । अस्तु, साधना क्षेत्र में प्रवेश करने वाले प्रत्येक साधक में श्रद्धा तत्व की परिपक्वता का आधार खड़ा करना आवश्यक समझा जाना चाहिए ।

इसके दो उपाय हैं एक तो यह कि शास्त्र वचन, गुरु वचन, परम्परा, अनुशासन को सब कुछ मानकर चला जाय और उसे ही वेद वाक्य पत्थर की लकीर मानकर पूर्ण सत्य होने का विश्वास कर लिया जाय और दूसरा यह कि उस तथ्य का गहरा अध्ययन किया जाय और वास्तविकता समझ कर किसी सुनिश्चित निष्कर्ष पर पहुँचा जाय । इन दो ही परिस्थितियों में यह सम्भव हो सकता है, कि श्रद्धा की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिपक्वता उस स्तर तक जा पहुँचे, जिसमें किये गये प्रयोग सफल होकर ही रहते हैं ।

पूजा—उपचार का तत्वज्ञान

आत्म शक्ति संसार की सबसे बड़ी शक्ति है । भौतिक सम्पदा एवं सामर्थ्य के सहारे मनुष्य को मात्र निर्वाह तथा सुविधा की साधन सामग्री प्राप्त होती है, जबकि आत्म शक्ति प्रसुप्त चेतना को जगाती, अतीन्द्रिय क्षमता को उभारती तथा मनुष्य में देवत्व का उदय (उद्भव) कर दिखाती है । महामानव, ऋषि एवं देवदूत बनने का अवसर नर-पशुओं को इसी आधार पर उपलब्ध होता है । अपना और दूसरों का भला करने की एक सीमित सामर्थ्य ही बुद्धि वैभव में पायी जाती है, किन्तु आत्म-बल के सहारे ऊँचा उठने, आगे बढ़ने की ऐसी प्रखरता प्राप्त की जा सकती है, जिसके सहारे अपना ही नहीं अन्य असंख्यों का भी उत्थान, अभ्युदय सम्पन्न हो सके । शरीर और प्राण के मध्य जो अन्तर है, वही भौतिक सम्पदाओं और आत्मिक विभूतियों के बीच पाया जाता है । साधन सम्पन्न सुख भोगते हैं, किन्तु आत्म बल से समर्थ व्यक्ति इसी जीवन में स्वर्ग, मुक्ति का परमानन्द प्राप्त करता और परब्रह्म के साथ तादात्म्यता का जीवन लक्ष्य प्राप्त करता है ।

आत्म शक्ति प्राप्त करने के लिए जो साधना करनी पड़ती है, उसके दो पक्ष हैं— एक क्रिया-कलाप, भजन-पूजन का उपचार । दूसरा ब्रह्माण्डीय चेतना- (उत्कृष्टता-देवात्मा) के साथ योग-एकात्म्य । उपचारों में जप, भजन, व्रत, उपवास जैसे शरीर साध्य कृत्य करने पड़ते हैं । योग भावना प्रधान है, उसमें समर्पण स्तर की भाव श्रद्धा जगानी पड़ती है । भक्ति का, प्रेम का अभ्यास करना और स्वभाव बनाना पड़ता है । आदर्शों के प्रति समर्पित व्यक्तित्व को योगी कहते हैं, जबकि मात्र कर्मकाण्डों में ही निरत रहने वाले भाव शून्यों को अधिक से अधिक पुजारी की संज्ञा दी जा सकती है । उपचारों को तीर और योग एकात्म्य को धनुष कहते हैं । तीर उतनी ही दूर जाता, उतनी ही चोट करता है, जितना कि प्रत्यंचा का खिंचाव उसे प्रेरणा देता है । धनुष के बिना तीर की कोई चमत्कृति नहीं, किन्तु अकेला धनुष किसी छोटे से कंकड़ को फेंककर लगभग तीर लगने जैसा परिणाम उत्पन्न कर सकता है । उपचार का कोई महत्त्व न हो, सो बात नहीं । लेखक को कलम, दर्जी को सुई, चित्रकार को तूलिका, वादक को वीणा जैसे उपकरणों का सहारा लेना पड़ता है । इतने पर ही उनकी अन्तःचेतना का प्रखर प्रवीण होना आवश्यक है, अन्यथा वे उपकरण हाथ में रहते हुए भी किसी सफलता का श्रेय प्रदान न कर सकेंगे । पूजापरक उपचारों के सम्बन्ध में भी यही बात है । वे अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं । उनकी उपेक्षा करने से काम नहीं चलेगा । हथौड़ा के बिना लुहार, बाजे के बिना वादक, अपने कौशल का परिचय कैसे देगा ? उस्तरा न हो तो नाई किस प्रकार हजामत बनाये ?

बीज की महत्ता सर्वविदित है । उसके बिना न खेती होती है और न बगीचा लगता है । इतने पर भी मात्र बीज को ही सब कुछ मान बैठने वाले न फसल काट सकते हैं और न फल सम्पदा के सहारे धनवान बन सकते हैं । बीज बोने की तरह ही, खाद पानी का प्रबन्ध करना भी आवश्यक है । बीज को उपासना उपचार कह सकते हैं, किन्तु उसे लहलहाते पौधे का रूप देने के लिए भाव-श्रद्धा का खाद-पानी अनिवार्यतः चाहिए, अन्यथा बीज बोने में जो परिश्रम एवं धन खर्चा किया है, वह भी बेकार जायेगा । यहाँ उन तथ्यों का रहस्योद्घाटन किया जा रहा है, जिन पर साधना की सफलता-असफलता का केन्द्र बिन्दु निर्धारित है ।

साधना की 'सिद्धि' के रूप में परिणत होते देखने के इच्छुक प्रत्येक विचाराशील को जहाँ निर्धारित पूजा-उपचार नियमित रूप से करने चाहिए, वहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इष्ट के, लक्ष्य के प्रति श्रद्धा का क्रमिक विकास हो रहा है या नहीं ? प्राण विहीन शरीर को लाश कहते हैं और आस्था रहित पूजा उपक्रम को विडम्बना । दोनों का बाह्य स्वरूप तो सही दीखता है, पर आन्तरिक खोखलेपन के कारण उनके सहारे किसी उपलब्धि की आशा नहीं की जा सकती । मृतक के काय-कलेवर से किसी को क्या कुछ मिल सकेगा ? इसी प्रकार भाव श्रद्धा से रहित पूजा के परिश्रम से इतना ही लाभ हो सकता है कि वह समय किसी दुष्ट कर्म में न लगकर सत्प्रयोजन के अभ्यास में व्यतीत हुआ। इतने पर भी उससे किसी चमत्कारी प्रतिफल की आशा (अपेक्षा) नहीं की जा सकती । प्रत्येक तत्वान्वेषी साधक को जितना परिश्रम, उपासना, उपचार पर करना होता है, उससे कहीं अधिक प्रयास अपनी भाव चेतना में उत्कृष्टता का समावेश करने के लिए करना होता है । यह मरुस्थल को सुरम्य उद्यान में, बदलने जैसा परम पुरुषार्थ है ।

कई भ्रान्तिग्रस्त व्यक्ति मात्र पूजा-उपचार के कर्म काण्डों को ही ऋद्धि-सिद्धि का भाण्डागार मान बैठते हैं और बाजीगरों द्वारा तुर्त-फुर्त करतब-कौतूहल दिखाये जाने की तरह अपने तन्त्र-मन्त्र से आकाश-पाताल जैसी कल्पनाएँ करने लगते हैं । वे पूरी नहीं होतीं, तो नास्तिक जैसा आक्रोश प्रकट करते और उपासना विज्ञान पर चित्र-विचित्र लांछन लगाते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखे जाते हैं । सभी जानते हैं कि जादूगरी मात्र छलावा है। मिट्टी से रुपया बनाना, हथेली पर सरसों जमाना विज्ञान के सामान्य नियमों से सर्वथा विपरीत है । मिट्टी से रुपया बन तो सकता है, पर उसके लिए किसान, कुम्हार या ईंट पकाने वाले जैसी सुनियोजित प्रक्रिया का आश्रय लेना पड़ता है । पूजा-उपचार के जादूगरी जैसे परिणाम देखने के लिये आतुर व्यक्ति बालकों जैसी आशा-निराशा के झूले में झूलते रहते हैं । अध्यात्म वस्तुतः अन्तःचेतना के परिष्कार का एक सुनियोजित विज्ञान है । जो आत्मसत्ता से जिस स्तर की उत्कृष्टता का समावेश कर पाता है, वह उतना ही पवित्र और प्रखर होता जाता है । सभी जानते हैं कि व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति जिस भी क्षेत्र में हाथ डालते हैं, उसी में सफलता पाते हैं । जबकि मन्त्र-तन्त्र के बाजीगर व्यक्तित्व के सुधार परिष्कार की ओर नजर नहीं डालते और मात्र जादुई क्रिया-कृत्यों के सहारे उन सफलताओं को तत्काल उपलब्ध करने की बात सोचते हैं, जो अभीष्ट योग्यता एवं तत्परता के मूल्य पर खरीदी जा सकती हैं । बिना समुचित मूल्य चुकाये इस संसार में किसी को कोई चिरस्थायी सफलता नहीं मिल सकती । उचक्के-उठाईगिरे ही जहाँ-तहाँ सेंध मारते, जेब काटते और तुर्त-फुर्त अमीरी झटक लेने का सपना देखते और हथकण्डे अपनाते हैं । ऐसी सफलताएँ अन्ततः उन्हें मँहगी पड़ती हैं । सस्ते पूजा-पाठ भर से प्रखर पुरुषार्थ के बदले कमाई जाने वाली विभूतियों को प्राप्त करने के लिए ताना-बाना बुनने वालों को भी इसी श्रेणी में गिना जा सकता है ।

इस दिनों हर क्षेत्र में भ्रान्तियों का बाहुल्य है, अध्यात्म का क्षेत्र तो उनसे बुरी तरह भर गया है । आत्म परिष्कार के, व्यक्तित्व निर्माण के उच्चस्तरीय विज्ञान की आज जो दुर्गति हो रही है, उसे देखकर भारी दुःख होता है । उपचार कृत्यों के गुण-दोषों पर विचार पीछे किया जाना चाहिए । पहले यह देखा जाना चाहिए कि अध्यात्म के नाम पर जो मान्यताएँ प्रचलित हैं, वे कहाँ तक सत्य और तथ्य पर निर्धारित है । आज उस आत्म परिष्कार की पुनीत प्रक्रिया को पदच्युत करके बाजीगरी का, उठाईगीरी का सिद्धान्त मान्यता प्राप्त कर चुका है । हर व्यक्ति चित्र-विचित्र कर्मकाण्डों से जादू भरे चमत्कार और टोकरा भरे आकाश कुसुमों के उपहार प्राप्त करना चाहता है । यदि उनकी मान्यता सही होती, तो फिर इस विश्व व्यवस्था में कर्मफल, योग्यता एवं तत्परता के लिए कोई विशेष स्थान शेष न रह जायेगा । तब महती सफलताएँ जादूगरों की पिटारी से ही बिखरती पायी जायेगी ।

होना यह चाहिये कि आध्यात्म तत्व ज्ञान का प्रत्येक विद्यार्थी पूजा-उपचार और आत्म-परिष्कार के उभय पक्षीय प्रयोजनों को साथ-साथ लेकर चले । संचित कुसंस्कारों के उन्मूलन और सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के लिए अपने अनगढ़ स्वभाव अभ्यास को सुधारें, दबायें । यह तपश्चर्या का, व्रतशीलता का पक्ष है । इसके अतिरिक्त दूसरा बहिरंग पक्ष है, जिसमें पूजा-उपचारों के सहारे अन्तःचेतना को व्यायाम उपचार की तरह साधने-सँजोने एवं उछालने का अभ्यास, साधना का समूचा प्रकरण जीवन के अन्तरंग और बहिरंग पक्षों को उत्कृष्टता सम्पन्न बनाने के लिए है । इस दिशा में जो जितना आगे बढ़ेगा उसे उसी अनुपात में वजनदार व्यक्तित्व से सुसम्पन्न होने का गौरव मिलेगा । यही है वह आन्तरिक वैभव जिसके सहारे आत्मबल के धनी अपने को महामानव स्तर का बनाते हैं और अपने सम्पर्क क्षेत्रों को चन्दन वृक्ष की तरह गौरवास्पद सुरभित बनाते हैं ।

आध्यात्म निश्चय ही जादू भरा है । संसार के महामानवों के व्यक्तित्व और कर्तृत्व का इतिहास एवं अनुदान ऐसा गौरवशाली है जिस पर हजारों लाखों जादूगरों को निछावर किया जा सकता है । वैसी ही महत्त्वाकांक्षा हर सच्चे आध्यात्मवेत्ता को सँजोनी चाहिए । जादू भरे कौतूहलों को देखने की बचकानी ललक को कूड़े के ढेर में बुहार कर फेंक देना चाहिए साथ ही वह आत्म तेजस् उभरना चाहिए जिनके सहारे अभ्यस्त कुसंस्कारों में, स्वभाव एवं आदतों में कायाकल्प जैसे परिवर्तन कर सकना शक्य हो सके ।

आत्मीयता का विस्तार ही भक्तियोग है । इसके अभ्यास में सर्वत्र अपनापन दीखता है । उदार सेवा-सहायता करने को मन करता है । आस्थाएँ उत्कृष्टता के साथ जुड़ी रहने से अन्तरंग में जो उल्लास उमंगता रहता है, उसी को अमृत, आत्मदर्शन, ब्रह्म साक्षात्कार आदि का नाम तत्वदर्शियों ने दिया है । जीवन मुक्तों की, देवदूतों की ऐसी ही अन्तःस्थिति होती है ।

ज्ञानयोग उच्चस्तरीय दूरदर्शिता का नाम है । आम आदमी तात्कालिक लाभ को ही सब कुछ मान बैठते हैं और भविष्य की आवश्यकताओं-सम्भावनाओं पर तनिक भी विचार नहीं करते । यही कारण है कि उनकी बुद्धि विलास, संचय एवं अपव्यय के ताने-बाने बुनती रहती है । जिन्दगी इस व्यामोह में कट जाती है और जब परिणामों के परिपक्व होने का अवसर सामने आता है तो मात्र पछतावा ही शेष रहता है । ज्ञान योग अन्धी भेड़ों जैसे लोक प्रवाह को अमान्य ठहराकर अपनी स्वतन्त्र विवेक बुद्धि का उपयोग करता है और नर-पशुओं की तरह नष्ट-भ्रष्ट होने वाले जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को नये निर्धारणों के आधार पर देवोपम गतिविधियों के साथ जोड़ देने का पराक्रम प्रकट करता है ।

कर्मयोगी अपनी क्रिया शक्ति को पेट प्रजनन में, तृष्णा अहंता की पूर्ति से ऊपर उठाकर, उसे आदर्शवादी क्रिया-कलापों में नियोजित करता है । सादा जीवन उच्च विचार का सिद्धान्त ही कर्मयोग का पर्यायवाचक है, उच्चस्तरीय जीवन जीने के लिए संयम बरतना पड़ेगा । आवश्यकता और इच्छाएँ घटाकर देशवासियों के औसत स्तर तक नीची लानी पड़ेगी । इतना बन पड़ने पर ही कोई अपने श्रम, समय, मनोयोग एवं वैभव की बचत करके उच्च विचारों को साकार करने वाले परमार्थ में नियोजित कर सकता है । कर्मयोगी की आन्तरिक स्थिति यही होती है । उसके दृष्टिकोण, रुझान एवं प्रयास में अनिवार्यतः आदर्शवादिता घुसती तथा बढ़ती चली जाती है ।

कर्मयोगी महामानव बनते हैं । ज्ञानयोगी ऋषि कहलाते हैं और भक्तियोगी जीवन मुक्त अवतारी देवदूतों में गिने जाते हैं । मनुष्य के तीन शरीर हैं । स्थूल शरीर को कर्मयोग से, सूक्ष्म शरीर को ज्ञानयोग से एवं कारण शरीर को भक्तियोग से परिष्कृत करते हुए परम लक्ष्य को प्राप्त किया जाता है । यही आत्मिक प्रगति का राजमार्ग है । इसी पर चलते हुए सामान्यों को असामान्य बनने का और युग प्रवाह उलटने से लेकर समूचे वातावरण में उत्कृष्टता भर देने का सुअवसर मिलता है । उनकी गतिविधियों की परिणतियों को देखते हुए हर विवेकवान् की आँखें उन्हें चमत्कारी सिद्ध पुरुष कहती और शतशत् नमन करती देखी जाती हैं । बचकाने जादू जैसे दृश्य देखने कौतूहल दिखाने के लिये ललकते रहते हैं, पर परिपक्व प्रज्ञा वाले उस ओर नजर उठाकर भी नहीं देखते । उन्हें अपने व्यक्तित्व के परिष्कार में दृष्टिकोण, रुझान एवं कर्तव्य की उत्कृष्टता में ऐसे चमत्कारों की भरमार दीखती है, जिसके लिए सामान्य नर-पामर प्रायः तरसते-तरसते ही मरते हैं ।

हर पूजा-उपचार का एक तत्व दर्शन है, उस क्रिया के माध्यम से कुछ सोचना, सीखना पड़ता है और तदनुरूप ढलने के लिए इष्टदेव के प्रति आत्म-समर्पण का अभ्यास करना होता है । वस्तुतः विभिन्न साधना उपचारों के पीछे हुआ प्रेरणा प्रवाह ही दिव्य शक्ति की प्रचण्डता से ओत-प्रोत प्राण-पुंज है । यदि उसे न समझा जाये और न हृदयंगम किया जाये तो फिर इतना ही समझना चाहिए कि मात्र क्रिया-कृत्यों तक सीमित श्रम उपचार से कोई वैसा बड़ा प्रयोजन सिद्ध न हो सकेगा, जैसी कि आमतौर से उपेक्षा की जाती है, किन्तु यदि कर्मकाण्डों में सन्निहित भावनिष्ठा को सच्चे अर्थों में हृदयंगम किया गया, तदनुरूप जीवनचर्या को ढाला गया तो निश्चित रूप से अन्तःचेतना में देवत्व की उमंगें उभरेंगी और व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय बनाने के साथ-साथ अद्भुत कार्य कर सकने में समर्थ सिद्ध पुरुष भी बना देगी ।

देव शक्तियों के स्वरूप, स्तर एवं क्रियाकलाप के सम्बन्ध में इस तथ्य को जितनी जल्दी समझा जा सके, उतना ही उत्तम है कि वे चमचागीरी, जीभ की लपालपी, छोटे-मोटे पुष्प-दीप जैसे उपहारों से प्रभावित होकर किसी को अपना भक्त मान बैठने और उसकी उचित-अनुचित कामनाओं की तत्काल पूर्ति में लग जाने वाले नहीं हैं । इस आधार पर उन्हें फुसलाने-बहलाने की तिकड़मबाजी को ही यदि कोई पूजा-साधना समझता हो, तो इस भ्रम-जंजाल में फँसने के उपरान्त निराश होने, गाली देने की अपेक्षा यही अच्छा है कि बिना किसी भजन-पूजन के ही काम चलाया जाय । पुरुषार्थ के आधार पर सफलता पाने में नीतिमत्ता भी है और वास्तविकता भी । छुटपुट जादुई उपचारों के उल्टे उस्तरे से देवताओं की हजामत बनाने के धन्धे में हाथ डालने की अपेक्षा उसे न करना ही अधिक समझदारी की बात है ।

देवताओं को पूजा बटोरने और वरदान बाँटते रहने वाला, अन्धेर नगरी का बेबूझ राजा नहीं मान बैठना चाहिए और न उनसे पात्रता का अभाव रहने पर भी मनमाने अनुग्रह पाने की आशा ही करनी चाहिए । दैवी शक्तियाँ देती तो बहुत कुछ हैं, पर देने से पूर्व हजार बार यह ठोंकती-बजाती हैं कि माँगने वाला आखिर किस स्तर का आदमी है ? अनुदानों का सदुपयोग करने की उसकी प्रमाणिकता क्या है ? जो माँगा जा रहा है वह किस प्रयोजन के लिए है ? इन प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर मिलने पर ही देवता किसी को अपना अनुग्रह देखे गये हैं ।

पेड़ों की आकर्षण शक्ति आकाश में उड़ने वाले बादलों को धरती पर उतरने और बरसने के लिए विवश करती है । साधक की चरित्रनिष्ठा और समाज निष्ठा का समन्वय ही ऐसी आकर्षण शक्ति का उदय करता है, जो दैवी अनुदानों को साधक पर बरसाने के लिए विवश कर सके । अस्तु मनुहार के लोभ-लालच में दैवी शक्तियों को बहेलियों और मल्लाहों की तरह फँसाने का विचार छोड़कर अपना प्रयास यह करना चाहिए कि अपनी पात्रता किस प्रकार इस स्तर तक विकसित की जाय कि दैवी शक्तियों को बादलों की तरह बरसने के लिए विवश होना पड़े । बर्तन जितने बड़े होते हैं, उतना ही पानी उनमें भरा जा सकता है । विपुल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जलाशय भी बर्तन की परिधि से अधिक पानी दे सकने में असमर्थ रहते हैं । दैवी शक्तियाँ भी ऐसे ही अनुबन्धों में बँधी हुई हैं । वरदान माँगने की अपेक्षा स्थिति ऐसी बनानी चाहिए कि दूसरों को वरदान दे सकना, अपने लिए भी सम्भव हो सके । वस्तुतः आशीर्वाद देना उदारमना सन्तों का ही काम है । पिछड़ों को उठाने, अशक्तों की सहायता करने और विकासोन्मुखों को छात्रवृत्ति देने जैसे उदार प्रयोजन सन्तों को ही पूरे करने पड़ते हैं । भगवान् तो एक व्यवस्था मात्र है । जो आग या बिजली की तरह मात्र सदुपयोग की शर्त पर ही अनुग्रह करता है । दुरुपयोग की कुमार्गगामिता का दण्ड देने में ईश्वर भी नहीं चूकता । इस सन्दर्भ में उसे भक्त-अभक्त में कोई अन्तर करते नहीं पाया जाता । नौकरी पाने के लिए अर्जी देनी पड़ती है और मंजूरी भी उसी पर मिलती है, पर यह ध्यान देने की बात है कि इस बीच आवेदनकर्ता को परीक्षा एवं प्रतियोगिता से होकर गुजरना पड़ता है । ईश्वर प्रार्थना से प्रभावित होकर तुरन्त अनुकम्पा नहीं करने लगता वरन् यह भी देखता है कि प्रार्थना करने वाला अभीष्ट पात्रता एवं प्रामाणिकता अर्जित किये हुए है या नहीं ?

उपासना का वास्तविक प्रयोजन अपने मन मन्दिर को बुहार कर इस योग्य बनाना है कि उस स्वच्छता से संतुष्ट होकर ब्राह्मी शक्ति उस क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए सहमत हो सके । शरीर को नित्य स्नान कराते हैं, कपड़े नित्य धोते हैं, दाँतों का मंजन नित्य करना होता है, कमरे में झाड़ू नित्य लगाते हैं, इस दैनिक स्वच्छता का प्रयोजन इतना ही है कि मलीनता के कारण उत्पन्न होने वाली दुर्गन्ध, रुग्णता एवं कुरुचि से बचा जा सके । इसमें कोई अतिरिक्त चमत्कार नहीं होता । स्वच्छता अपनाने से चित्त हल्का होता है । सभ्य लोगों की पंक्ति में सम्मानपूर्वक बैठने का मार्ग खुलता है और मलीनताजन्य बीमारियों से सहज ही बचाव होता रहता है । इतने से सन्तुष्ट न होकर कोई स्नान, मंजन आदि से ऋद्धि-सिद्धि के वरदान-चमत्कार चाहे तो उसे बाल-बुद्धि बचकाना ही कहा जायेगा । उपासना के फलितार्थों के सम्बन्ध में भी इसी दृष्टिकोण से सोचा जाना चाहिए ।

ईश्वर आदर्शों का समुच्चय है । उपासना का अर्थ होता है-- समीप बैठना । समीप बैठना वैसा, जैसा कि गीली लकड़ी आग के समीप पहुँचकर अपना गीलापन समाप्त कर लेती है और आग की ऊष्मा को अपने में धारण करके सूखती चली जाती है । अधिक निकट पहुँचने पर स्वयं आग बन जाती है । उपासना का वास्तविक स्वरूप यही है । महानता की समस्त उत्कृष्टताओं के पुंज परमेश्वर का सान्निध्य प्राप्त करके साधक उसकी गुण-गरिमा को क्रमशः अपने में अधिकाधिक मात्रा में भरता चला जाये । यही दैवी विभूतियाँ व्यक्तित्व को श्रेष्ठ, शालीन, उदार और उदात्त बनाती हैं । कहना न होगा कि व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति एक प्रकार से सिद्ध पुरुष ही होता है । उसका मूल्य हर क्षेत्र में सामान्य नर-पशुओं की तुलना में हजारों-लाखों गुना अधिक आँका जाता है । तदनुरूप उस पर चारों ओर से सम्मान-सहयोग भी बरसता है । जो इस स्तर का लाभ पा सकेगा उसे स्वभावतः उच्चस्तरीय सफलताएँ भी मिलती चली जायेंगी । ऐसे लोग ही हर क्षेत्र में श्रेय पाते और प्रगति के उच्च शिखर पर जा पहुँचते हैं । इसी सुखद प्रतिफल को यदि कोई चाहे, तो उपासना का चमत्कार कह सकता है ।

ईश्वर निष्पक्ष न्यायाकारी है, उसके दरबार में किसी का मूल्य उसकी प्रामाणिकता एवं परमार्थ-परायणता के आधार पर ही आंका जाता है । न उसे प्रशंसा की आवश्यकता है, न पूजा सामग्री की । नाम लेने न लेने का उसे कोई प्रभाव नहीं पड़ता । उसे किसी उपहार की आवश्यकता नहीं । विश्व सम्पदा के अधिष्ठाता को ऐसी इच्छा-आवश्यकता हो भी नहीं सकती । यह हमारी अपनी क्षुद्रता है जो इतनी बड़ी शक्ति को नगण्य से उपचारों से प्रभावित करके उससे उचित-अनुचित मनोरथों की पूर्ति करा लेने की बात सोचते हैं । ऐसा पक्षपात तो कोई ईमानदार न्यायाधीश भी नहीं कर सकता । फिर ईश्वर जैसी महान् शक्ति प्रशंसा पूजा जैसे उपहासास्पद उपहारों के बदले कर्मफल की समस्त नियम मर्यादाओं को नष्ट-भ्रष्ट कर देगी, यह सोचना पहले सिरे की मूर्खता का परिचय देना है ।

ईश्वर उपासना जिन्हें भी करनी हो, वे इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए करें । उस आधार पर उपलब्ध होने वाली दिव्य प्रेरणाओं के सहारे अपने गुण, कर्म, स्वभाव की प्रसुप्त विशेषताओं को विकसित करें और उन्हीं समस्त सिद्धियों-विभूतियों को पाने के अधिकारी बनें, जो भक्तियोग की साधना करने वालों में मिलने की बात शास्त्रकारों एवं आप्तजनों ने अपने प्रतिपादनों में समय-समय पर बतायी है ।

आत्मिक प्रगति का प्रथम सोपान जीवन शोधन

उपासना में असफलता अथवा उसमें धीमी प्रगति रहने का कोई विशेष कारण होना चाहिए । इस पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है । यह न युग का प्रभाव है और न उपासनाओं के माहात्म्य एवं विधान में कोई त्रुटि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही है । यदि ऐसा होता तो इन्हीं दिनों कितने ही साधक क्यों अत्यन्त उच्चकोटि की स्थिति में पाये जाते हैं ? क्यों उन्हें सिद्धियों से ओतप्रोत देखा जाता है ।

इसका स्पष्ट कारण एक ही है कि साधकों का चिन्तन, चरित्र और व्यवहार निकृष्ट कोटि का बना रहता है । वे उसमें सुधार नहीं करते । व्यक्तित्व को परिष्कृत करने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते । इसी जन्म के किये हुए तथा पूर्वजन्मों के संचित कुसंस्कारों-दुष्कर्मों के परिमार्जन का प्रयत्न नहीं करते । फलतः मलीन वस्त्र पर रंग चढ़ाने की तरह, रेगिस्तान में बीज बोने की तरह पूजा कृत्यों का सत्परिणाम उत्पन्न ही नहीं हो पाता । कीचड़ की हौदी में एक बूँद गंगाजल डाल देने से उसमें शुद्धि कहाँ हो पाती है ।

ध्यान रखे जाने योग्य बात यह है कि पूजा कोई जादू नहीं है । वह विशुद्ध विज्ञान है । उस मार्ग पर चलने वाले को सर्वप्रथम आत्म शोधन करना पड़ता है । धुले कपड़े पर ही रंग चढ़ता है । जोतकर तैयार की हुई भूमि में ही बीज उगता है । अन्तरंग और बहिरंग जीवन में जितनी पवित्रता और प्रखरता का समावेश होगा, उतनी ही मात्रा में पूजा उपासना का चमत्कार उत्पन्न होगा । दुष्कर्मों में निरत व्यक्ति किसी देवी देवता का अनुग्रह अर्जित नहीं कर सकते, क्योंकि समूचा देव परिकर शुद्धता प्रधान है । जहाँ उसकी जितनी कमी होती है, वहाँ उन्हें उतनी ही उपेक्षा या अप्रसन्नता उत्पन्न होती है । जब साधारण मनुष्य घिनौनी, दुर्गन्धित अस्त-व्यस्त जगह में नहीं रुकना टिकना चाहता तो देवता किसी घिनौने व्यक्तित्व की ओर क्यों ध्यान देंगे?

इस तथ्य को समझा जा सके तो मानना चाहिए कि उपासना को फलित होने का सूत्र हाथ लग गया । इसका अनुमान लगाया जा सकता है कि आध्यात्म मार्ग की सफलता का प्रारम्भ कहाँ से करना चाहिए । प्रथम सोपान है आत्म परिष्कार । इसके लिए अपने गुण-कर्म स्वभाव की वर्तमान त्रुटियों को पैनी नजर से परखा जाय और उन्हें बुहार फेंकने का साहस भरा पराक्रम कर दिखाया जाय ।

पूजा से पाप नष्ट हो जाते हैं । इस कथन का तात्पर्य इतना ही है कि यदि पूजा कृत्यों को भावनापूर्ण किया जाय तो उसके फलस्वरूप सन्मार्ग पर चलने और दुष्कर्मों को त्यागने की प्रबल आकांक्षा उत्पन्न होनी चाहिए । उसका यह अर्थ कदापि नहीं कि जो पाप कर्म किये गये हैं, उनके दण्ड दुष्परिणामों से बचा जा सकेगा । उसके परिशोधन का उपाय तो एक ही है, सच्चे मन से किया हुआ पश्चाताप और प्रायश्चित ।

प्राचीनकाल के कितने ही पापियों की कथा गाथाएँ सुनने को मिलती हैं । उनमें राम-नाम का प्रताप नहीं वरन् जीवन शोधन में कायाकल्प जैसा परिवर्तन कर लेना कारण था । वाल्मीकि, बिल्व मंगल, अंगुलिमाल, अम्बपाली आदि ने अपने पुरातन जीवन क्रम में आमूल-चूल परिवर्तन कर लिया था । इतना ही नहीं उन्होंने पिछले किये हुए पापों की क्षतिपूर्ति के लिए उतने ही वजन के सत्कर्म करके पुरातन अशुभ संकलन का प्रायश्चित भी किया था । अंगुलिमाल अम्बपाली ने अपनी संचित सम्पदा बुद्ध संघ को अर्पित कर दी थी । इतना ही नहीं भावी जीवन में लोकमंगल के लिए परिपूर्ण प्रयास करते हुए सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन के क्रिया-कलापों में सारा जीवन खपा दिया था । अशोक ने कलिंग विजय में जो रक्तपात किया था, उसके प्रायश्चित हेतु उसने अपना सारा वैभव ही नहीं अपना और पुत्री संघमित्रा, पुत्र महेन्द्र का सारा जीवन धर्मचक्र प्रवर्तन के लिए लगा दिया था । अंगुलिमाल और अम्बपाली भी 'धम्मं शरणं गच्छामि' का दीक्षा मन्त्र लेते ही देश विदेश में धर्म धारणा को सुविस्तृत करने में जुट गये । संचित पापों का प्रायश्चित करने के लिए ही सूरदास ने अपनी आँखें फोड़ ली थीं ।

इन उदाहरणों में साधक को आध्यात्मिक पृष्ठभूमि बनाने के अपने प्रथम प्रयास का पता चलता है । जो इस प्रकरण को अनावश्यक समझकर लम्बी छलाँग लगाना चाहते हैं, जमीन से उछल कर छत पर बैठना चाहते हैं, उनके पल्ले निराशा और असफलता ही हाथ लगती है । फलतः पूजा पाठ से कोई स्वार्थ सिद्ध न होने पर वे उपासना विज्ञान तथा उसके क्रियाकलापों को कोसते देखे जाते हैं । बिना नींव की दीवार यदि एक धक्के में ढह जाय तो आश्चर्य ही क्या है ? रेगिस्तान में बगीचा लगाने वालों को तदनुरूप तैयारी करनी पड़ती है । इच्छा करने मात्र से या पूजा पाठ की बाल क्रीड़ाएँ करने भर से किसी उच्चस्तरीय सत्परिणाम की आशा करना आकाश कुसुम तोड़ने के समान है, जो शेखचिल्ली जैसी कल्पना ही बन कर रह जाती है ।

शास्त्र का कथन है "देवता बनकर देवता की उपासना करनी चाहिए" इसका तात्पर्य यह है कि देव परिकर की जैसी प्रवृत्ति है, उसी के अनुरूप अपने को ढालना चाहिए। यह सोचना व्यर्थ है कि मनुष्य को अपने को बदलने सुधारने की आवश्यकता नहीं है । देवता ही उलट कर मनुष्य जैसे घिनौने बन जायें । काली भैरव आदि के सम्बन्ध में लोगों ने ऐसी ही मान्यता कर रखी है कि उन्हें मद्य माँस जैसी वस्तुएँ भेंट करके स्तवन की जय जयकार सुनाकर उन्हें अपने भक्त की मनोकामनाएँ पूरी करने के लिये सहमत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया जा सकता है । चाहे वे कामनाएँ सर्वथा अनीतियुक्त ही क्यों न हों ? इस प्रकार की मान्यताओं वाले देव सम्पर्क के लिए जो सोचना करना चाहिए, उससे ठीक विपरीत दिशा में चलते हैं । फलतः जब प्रतिकूल दुष्परिणाम सामने आते हैं तो उनका दोष देवता पर थोपते हैं ।

भावी गतिविधियों को उत्कृष्ट आदर्शवादी बनाने के अतिरिक्त आध्यात्म के चमत्कार देखने वालों के लिए आवश्यक है कि वे पूर्व संचित दुष्कर्मों का प्रायश्चित करें । प्रायश्चित का अर्थ किसी नदी में नहा लेना, किसी प्रतिमा का दर्शन कर लेना, पंचगव्य पी-लेना आदि नहीं है, वरन् यह है कि रास्ता चलने वालों की राह में जो काँटे बिखरे हैं, उन्हें बटोरा जाय । जो खाई खन्दक खुदे हैं, उन्हें मिट्टी डालकर समतल किया जाय । यह कार्य किन्हीं पूजाकृत्यों से नहीं हो सकते वरन् सच्चे अर्थों में इस बात का साहस जुटाना पड़ता है कि जितने पाप कमाये हैं उसी के भार के समतुल्य पुण्य भी इतनी मात्रा में कमाये जायें, जिनसे तराजू का पलड़ा भारी नहीं तो कम से कम समान हो जाय । इन साहसिक प्रयत्नों को करने के लिए उद्यत होने वाले ही आध्यात्म विज्ञान के अनुरूप समुचित लाभ उठाते हैं । शेष तो खिलवाड़ का परिणाम उपहास भर के रूप में पाते हैं ।

उपासना को समग्र रूप में अपनायें— समुचित लाभ उठायें

आत्मोत्कर्ष के लिए उस महाशक्ति के साथ घनिष्ठता बनाने की आवश्यकता है, जिसमें अनन्त शक्तियों और विभूतियों के भण्डार भरे पड़े हैं । बिजली घर के साथ घर के बल्ब पंखों का सम्बन्ध जोड़ने वाले तारों का फिटिंग सही होते ही वे ठीक तरह अपना काम कर पाते हैं । परमात्मा के साथ आत्मा का सम्बन्ध जितना निकटवर्ती एवं सुचारु होगा, उसी अनुपात से पारस्परिक आदान-प्रदान का सिलसिला चलेगा और उससे छोटे पक्ष को विशेष लाभ होगा । दो तालाबों के बीच में नाली खोदकर उनका सम्बन्ध बना दिया जाय तो निचले तालाब में ऊँचे तालाब का पानी दौड़ने लगेगा और देखते-देखते दोनों की ऊपरी सतह समान हो जायेगी, पेड़ से लिपटकर बेल कितनी ऊँची चढ़ जाती है इसे सभी जानते हैं । यदि उसे वैसा सुयोग न मिला होता अथवा वैसा साहस न किया होता तो वह अपनी पतली कमर के कारण मात्र जमीन पर फैल भले ही जाती पर ऊपर चढ़ नहीं सकती थी । पोले बाँस को निरर्थक समझ जाने वाला टुकड़ा जब वादक के हाथों के साथ तादात्म्य स्थापित करता है तो बाँसुरी वादन का ऐसा आनन्द आता है जिसे सुनकर सांप लहराने और हिरन मन्त्र मुग्ध होने लगते हैं । पतले कागज के टुकड़े से बनी पतंग आकाश को चूमती है, जब उसकी डोर का सिरा किसी उड़ाने वाले के हाथ में रहता है । यह सम्बन्ध शिथिल पड़ने या टूटने पर सारा खेल खत्म हो जाता है और पतंग जमीन पर आ गिरती है। यह उदाहरण यह बताते हैं कि यदि आत्मा को परमात्मा के साथ सघनतापूर्वक जुड़ जाने का अवसर मिल सके तो उसकी स्थिति सामान्य नहीं रहती । तब उसे नर-पामरों जैसा जीवन व्यतीत नहीं करना पड़ता, वरन् ऐसे मानव देखते-देखते कहीं से कहीं जा पहुँचते हैं । इतिहास पुराण ऐसे देव मानवों की चर्चा से भरे पड़े हैं जिन्होंने अपने अन्तराल को निकृष्टता से विरत करके ईश्वरीय महानता के साथ जोड़ा और देखते-देखते कुछ से कुछ बन गये ।

उपासना को आध्यात्मिक प्रगति का आवश्यक एवं अनिवार्य अंग माना गया है । उसके बिना वह सम्बन्ध जुड़ता ही नहीं है, जिसके कारण छोटे-छोटे उपकरण बिजली घरों के साथ तार जोड़ लेने पर अपनी महत्त्वपूर्ण हलचलें दिखा सकने में समर्थ होते हैं । घर में हीटर, कूलर, रेफ्रिजरेटर, रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन आदि कितने ही सुविधाजनक उपकरण क्यों न लगे हों पर उनका महत्त्व तभी है, जब उनके तार बिजलीघर के साथ जुड़कर शक्ति भन्डार से अपने लिए उपयुक्त क्षमता प्राप्त करते रहने का सुयोग बिठा लेते हों । उपासना का तत्वज्ञान यही है । उसका शब्दार्थ है-- उप+आसन, अर्थात् अति निकट बैठना । परमात्मा और आत्मा को निकटतम लाने के लिए ही उपासना की जाती है । विशिष्ट शक्ति के आदान-प्रदान का सिलसिला इसी प्रकार चलता है ।

उपासना के दो पक्ष हैं-- एक कर्मकाण्ड दूसरा तादात्म्य । दोनों शरीर एवं प्राण की तरह अन्योन्याश्रित एवं परस्पर पूरक हैं । एक के बिना दूसरे को चमत्कार प्रदर्शित करने का अवसर ही नहीं मिलता । बिजली के दोनों तार जब मिलते हैं तभी करेन्ट चलता है । अलग-अलग रहें तो कुछ बात बनेगी ही नहीं । दोनों पहिए धुरी से जुड़े हों और समान रूप से गतिशील हों तभी गाड़ी आगे लुढ़कती है । लम्बी यात्राएँ दोनों पैरों के सहारे ही सम्भव होती हैं, भले ही एक के कट जाने पर उसकी पूर्ति लकड़ी के पैर से ही क्यों न की जा रही हो । दोनों हाथ से ताली बजाने की उक्ति से सभी परिचित हैं । सन्तानोत्पादन में नर और नारी दोनों का संयोग चाहिए ।

ठीक इसी प्रकार उपासना का शास्त्र प्रतिपादित और आप्तजनों द्वारा अनुमोदित माहात्म्य तभी चरितार्थ होता है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब उसका कर्मकाण्ड वाला प्रत्यक्ष और तादात्म्य वाला परोक्ष पक्ष समान रूप से संयुक्त सक्रिय होते हैं । जप, ध्यान, प्राणायाम के उपासनात्मक कर्मकाण्डों का स्वरूप सभी को विदित है । जिन्हें उस जानकारी में कुछ कमी हो वे अपनी स्थिति के अनुरूप किसी अनुभवी मार्गदर्शक से परामर्श अथवा प्रामाणिक ग्रन्थ का अवलोकन करके उसका समाधान निर्धारण कर सकते हैं, बड़ी और महत्त्वपूर्ण बात 'तादात्म्य' है । उसे जीवन सत्ता में प्राण का स्थान मिला है । कर्मकाण्ड तो काय-कलेवर की तरह उपकरण ही कहे जाते हैं, प्रहार तो तलवार ही करती है । वस्तुतः युद्ध मोर्चे को जिताने में वह लौहखण्ड जितना चमत्कार नहीं दिखाता जितना की प्रत्यक्ष न दीखने वाला पराक्रम और साहस । ठीक उसी प्रकार उपासना कर्मकाण्ड पक्ष का तलवार जैसा प्रतिफल देखना हो तो उसके पीछे 'तादात्म्य' का भाव समर्पण नियोजित किये बिना काम चलेगा ही नहीं ।

उपासना कर्मकाण्डों में विधि-विधान का स्वरूप प्रज्ञा परिजनों में से सभी जानते हैं । स्थान, पूजा उपकरण, शरीर, वस्त्र आदि की शुद्धि के अतिरिक्त मन, बुद्धि और अन्तःकरण की शुद्धि तथा इन्द्रियों अवयवों को पवित्र रहने की प्रेरणा देने के लिए आचमन न्यास आदि किये जाते हैं । पवित्रता के प्रतीक जल और प्रखरता के प्रतिनिधि दीपक या अन्य किसी विकल्प का अग्नि स्थापन किया जाता है । समझा जाना चाहिए कि आत्मिक प्रगति के लिए सत्य अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि सज्जनतापरक सद्गुणों की जितनी आवश्यकता है ठीक उतनी ही संयम, साहस, पराक्रम एवं संघर्ष के रूप में अपनायी जाने वाली तपश्चर्या का महत्त्व भी है । पवित्रता और प्रखरता का समन्यव ही पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचाता है । मात्र सन्त सज्जन बने रहने और पौरुष को त्यागकर बैठने पर तो कायरों और दीन दुर्बलों जैसी दयनीय स्थिति बन जाती है । मध्यकाल की भक्तचर्या ऐसे ही अधूरेपन से ग्रसित रहने के कारण उपहासास्पद बनती चली गई है । कर्मकाण्डों के विधि विधान तादात्म्य की चेतना उत्पन्न करने एवं प्रेरणा देने के लिए विनिर्मित हुए हैं ।

तादात्म्य अर्थात् भक्त और इष्ट की अन्तःस्थिति का समन्वय एकीकरण । दूसरे शब्दों में ईश्वरीय अनुशासन के अनुरूप जीवनचर्या का निर्धारण । परब्रह्म तो अचिन्त्य है पर उपासना जिस परमात्मा की जाती है वह आत्मा का ही परिष्कृत रूप है । वेदान्त दर्शन से सोऽहम्-शिवोऽ हम्-तत्वमसि-अयमात्मा ब्रह्म आदि शब्दों में अन्तःचेतना के उच्चस्तरीय विशिष्टताओं से भरे पूरे उत्कृष्टताओं के समुच्चय को ही परमात्मा कहा गया है, उसके साथ ही मिलन का तादात्म्य का स्वरूप तभी बनता है, जब दोनों के मध्य एकता-एकात्मता स्थापित हो । इसके लिए साधक अपने आपको कठपुतली की स्थिति में रखता है और अपने अवयवों में बँधे धागों को बाजीगर के हाथों सौप देता है । दर्शकों को मन्त्र मुग्ध कर देने वाला खेल इस स्थापना के बिना बनता ही नहीं । आत्मा को परमात्मा की उच्चस्तरीय प्रेरणाएँ अपनाने और तदनुरूप जीवनचर्या बनाने पर ही उपासना का समग्र लाभ मिलता है ।

लकड़ी और अग्नि की समीपता का प्रतिफल प्रत्यक्ष है । गीली लकड़ी आग के समीप पहुँचते-पहुँचते अपनी नमी गँवाती और उस ऊर्जा से अनुप्राणित होती चली जाती है । जब वह अति निकट पहुँचती है तो फिर आग और लकड़ी एक स्वरूप जैसे हो जाते हैं । साधक को भी ऐसा ही भाव समर्पण करके ईश्वरीय अनुशासन के साथ अपने आपको एक रूप बनाना पड़ता है । चन्दन के समीप वाली झाड़ियों का सुगन्धित हो जाना-स्वांति बूँद के संयोग से समीप में मोती पैदा होना पारस छूकर लोहे का स्वर्ण बनना नाले का गंगा में मिलकर गंगाजल बनना, पानी का दूध में मिलकर उसी भाव बिकना, बूँद का समुद्र में मिलकर सुविस्तृत हो जाना जैसे अगणित उदाहरण हैं, जिनके आधार पर यह जाना जा सकता है कि भक्त और भगवान की एकता उपासना का स्तर क्या होना चाहिए ? सृष्टि के आदि से अद्यावधि सच्चे भक्तों में से प्रत्येक को ईश्वर के शरणागत होना पड़ा है । आत्मसमर्पण का साहस जुटाना पड़ा है । इसका व्यावहारिक स्वरूप है, ईश्वरीय अनुशासन को निकृष्ट चिन्तन एवं आदर्श कर्तृत्व को अपनी विचारणा एवं कार्य पद्धति से अनुप्राणित करना । जो इस तत्व दर्शन को जानते मानते और व्यवहार में उतारते रहे हैं, उन सच्चे ईश्वर भक्तों को सुनिश्चित रूप से वे लाभ मिले हैं, जिन्हें उपासना की फल श्रुतियों के रूप में कहा जाता रहा है । पत्नी-पति को आत्म समर्पण करती है-- अर्थात् उसकी मर्जी पर चलने के लिए अपनी मनोभूमि एवं क्रिया-पद्धति को मोड़ती चली जाती है । इस आत्म समर्पण के बदले वह पति के वंश, गोत्र, यश, वैभव की उत्तराधिकारिणी ही नहीं अर्धांगनी भी बन जाती है । समर्पण विहीन कर्मकाण्ड तो एक प्रकार का वेश्या व्यवसाय या चिन्ह पूजा जैसा निर्जीव ढकोसला ही माना जायेगा । भक्त भगवान के अनुरूप चलता चला जाता है और अन्ततः नर-नारायण, पुरुष-पुरुषोत्तम, भक्त-भगवान की एकरूपता का स्वयं प्रमाण बनता है । देवात्माओं में परमात्मा स्तर की क्षमताएँ ही उत्पन्न हो जाती हैं । इन्हें ही ऋद्धि-सिद्धियाँ कहते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रज्ञा परिजनों को मूर्धन्य भूमिका निभाने के लिए आत्म-शति की प्राण ऊर्जा का बड़ी मात्रा में संचय करना होगा । यह परमात्मा से ही उसे मिलेगी । अस्तु उसे उपासना के लिए सच्चे मन से साहस जुटाने का प्रयास करना चाहिए । जीवन-चर्या में उसे निष्ठापूर्वक सुनिश्चित एवं मूर्धन्य स्थान देना चाहिए । कर्मकाण्ड के लिए जितना भी समय निकाला जाय, उसे नियमित और निश्चित होना चाहिए। व्यायाम, औषधि सेवन, अध्ययन आदि के लिए समय भी निर्धारित किये जाते हैं और उसकी मात्रा का सीमा बन्धन भी रखा जाता है । यदि इन प्रसंगों में मन की मौज बरती जाय, समय और मात्रा की उपेक्षा करके जैसा मन वैसा करने की स्वेच्छाचारिता अपनायी जाय तो पहलवान, विद्वान बनने और नीरोग होने की इच्छा पूरी हो ही नहीं सकेगी । हर महत्त्वपूर्ण कार्य में नियमितता को प्रमुखता दी जाती है । जो किया जाता है उसमें समूचे मनोयोग का नियोजन किया जाता है । उपासना के सन्दर्भ में भी वही किया जाना चाहिए । अस्त-व्यस्तता बनी रहेगी तो अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति अति कठिन हो जायेगी ।

युग-सन्धि की अवधि में सभी प्रज्ञा परिजनों को न्यूनतम तीन माला गायत्री जप प्रातःकाल नित्य-कर्म से निवृत्त होकर करने के लिए कहा गया है । जप के साथ प्रभात कालीन सूर्य का दर्शन और उस सविता देवता की स्वर्णिम किरणों का स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों में प्रवेश कराने का ध्यान भी करते चलना चाहिए । शरीर, स्थान और उपकरणों की स्वच्छता के अतिरिक्त मन, बुद्धि, चित्त की स्वच्छता के लिए आचमन, प्राणायाम और न्यास कृत्य करने का विधान है । सामान्य प्राणायाम तो रेचक, कुम्भक, पूरक द्वारा ही सम्पन्न हो जाता है, पर उसमें विशेषता लानी हो तो उसे प्राणाकर्षण स्तर को विकसित कर लेना चाहिए । इन पंक्तियों में उसे संक्षिप्त ही लिखा जा रहा है क्योंकि अधिकांश परिजन उसे पहले से ही जानते हैं । जो नहीं जानते उनके लिए थोड़ी-सी पंक्तियों के निर्देशन से काम नहीं चलेगा । उन्हें किसी समीपवर्ती निष्णात से 'गायत्री महाविज्ञान' से जानना होगा या शान्ति कुंज पत्र-व्यवहार करके अपनी वर्तमान स्थिति के अनुरूप साधना क्रम का निर्धारण करना होगा । स्पष्ट है कि साधक के स्तर और प्रवाह को ध्यान में रखते हुए साधना-क्रम भी चिकित्सा उपचार की तरह आवश्यकतानुसार समय-समय पर बदलने होते हैं । शान्ति कुंज को गायत्री तीर्थ के रूप में इन्हीं दिनों इसी प्रयोजन के लिए विकसित किया गया है । ताकि हर साधक की स्थिति एवं आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उसके लिए विशेष निर्धारण किये जा सकें और जो बताया गया है, उसका प्रारम्भिक अभ्यास प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में ही सही कर लेना सम्भव हो सके ।

सामान्यतया हर प्रज्ञा परिजन को युग सन्धि की बेला में अपनी उपासना को नैष्ठिक, नियमित एवं समग्र बना लेना चाहिए । तीन माला का जप, गुरुवार को जिस स्तर का बन पड़े उपवास, ब्रह्मचर्य, महीने में एक बार अग्निहोत्र का न्यूनतम साधना क्रम तो चलाना ही चाहिए । इसके अतिरिक्त अपने भावना क्षेत्र को उत्कृष्टताओं के समुच्चय-परमात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करने का निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए । भावना, विचारणा और क्रिया-प्रक्रिया में जितनी अधिक उत्कृष्टता आदर्शवादिता का समावेश सम्भव हो सके, उसके लिए उपाय खोजने और प्रयत्न करने में सतत् संलग्न रहना चाहिए । भजन कृत्य और तादात्म्य की उभयपक्षीय प्रक्रिया उपासना को समग्र बनाती है और अपना प्रत्यक्ष प्रतिफल हाथों हाथ प्रस्तुत करती है ।

युग-सन्धि के अगले दिन सृजन और विनाश की सम्भवानाओं से भरे पड़े हैं । ऐसी परिस्थितियों में उपासना विधान की अपनी महत्ता है । नैष्ठिक साधना एवं प्रज्ञा पुरश्चरण इसी निमित्त आरम्भ किये गये प्रारम्भिक उपचार हैं । लेकिन यहीं तक सीमित होकर किसी को नहीं रहना है । जो भी उपासना के माध्यम से आत्म-शक्ति अभिवर्द्धन की बात सोचते हैं, उन्हें अपने निजी जीवन का कायाकल्प तो करना ही है । अपने परिकर क्षेत्र को भी उसी रंग में रंगना है । इससे व्यक्तित्व में और निखार आयेगा, वह पुण्य लाभ तो मिलेगा ही, जो महाकाल की योजना में भागीदार बनने से किसी को भी मिल सकता है ।

इस कार्य के लिए यदि कल्प साधना में सम्मिलित होकर प्रारम्भिक स्थिति जान ली जाय एवं उसमें जो परिशोधन सम्भावित हो उसे मार्गदर्शकों द्वारा जानकर-प्रायश्चित विधान द्वारा अपने अन्तः को परिष्कृत कर लिया जाय तो यह और भी अच्छा है । साधना से ही वह स्थिति बनती है कि मनुष्य परमात्म सत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है । बिना साधना के तप-तितिक्षा के उपासना सम्भव नहीं । जो इस प्रारम्भिक सोपान को पूरा कर लेता है उसके लिए साधना मार्ग में आगे और फिर कोई अवरोध आड़े नहीं आता । साधना उपासना के बाद आराधना पुण्य परमार्थ की बात आती है । ईश्वरीय गुणों से सम्पन्न साधक बिना परमार्थ के रह नहीं सकता । लोक-कल्याण, आराधना, परमार्थ परायणता ये सभी उपासना के उत्तरार्द्ध माने जा सकते हैं । जिसने स्वयं को अनुशासन के शिकंजे में कस लिया, दैवी प्रयोजन में सहभागी बनने योग्य स्वयं को बना लिया, वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईश्वर की कृपा का पात्र बन जाता है । ऐसे व्यक्ति ही व्यक्तित्व सम्पन्न बनते लोक सम्मान व दैवी अनुग्रह पाते हैं ।

उपासना अपने समग्र रूप में ही सही कही जा सकती है । साधना, तप, आराधना उसके आवश्यक अंग माने जा सकते हैं । आत्मिक प्रगति का यह अवलम्बन मनुष्य को परमात्म सत्ता के साथ जोड़ देता है, समकक्ष बना देता है । यह कथन सत्य है, परन्तु शर्त मात्र यही है कि उसे सही रूप में अपनाया गया हो, चिन्ह पूजा की लकीर भर न पीटी गयी हो ।

उपासना का प्रयोजन और परिणाम

उपासना का उद्देश्य किसी के सामने गिड़गिड़ाना, झोली पसारना या नाक रगड़ना नहीं है । दीनता न आत्मा को शोभनीय है, न परमात्मा को प्रिय । परमात्मा न खुशामद का भूखा है और न ही उसे प्रशंसा की आवश्यकता । उसकी महानता अपने आप में अपनी प्रशंसा है । मनुष्यों की वाणी न उसमें कुछ वृद्धि कर सकती है और न कमी। अपने ही बालक के मुख से प्रशंसा कराना किसी भी मनुष्य को अच्छा नहीं लगता फिर परमात्मा जैसे महान के लिए तो उसमें क्या आकर्षण हो सकता है । प्रशंसा करके किसी से कुछ प्राप्त करने का प्रयत्न ओछे दर्जे का कृत्य माना जाता है । उस चंगुल में ओछे लोग ही फँसते हैं और उसे करने के लिए ओछापन ही तैयार होता है । खुशामद व चापलूसी का गोरख-धन्धा उन्हें पसन्द आता है, जो वस्तुतः प्रशंसा के पात्र नहीं । वे अपने चापलूसों के मुँह से अपनी बड़ाई सुनकर खुशी मना लेते हैं । असली न मिलने पर उस आवश्यकता को नकलियों से पूरा कर लेते हैं । भक्त और भगवान के बीच यदि यही खुशामद चापलूसी का धन्धा चले तो फिर समझना चाहिए दोनों की गरिमा गिर गई ।

माँगना बुरा व्यवसाय है । चोरी से भी बुरा । चोर दुस्साहस करता है और खतरा मोल लेता है तब कहीं कुछ पाता है । पर भिखारी उतना भी तो नहीं करता । वह बिना कुछ किये ही पाना चाहता है। कर्म विज्ञान को एक प्रकार से वह झुठलाना ही चाहता है । संसार के स्वाभिमानी अपंग और असमर्थ भी स्वाभिमानी होते हैं । कोढ़ी और अन्धे भी कुछ कर लेते हैं । समाज उन्हें कर्तृत्व के साधन तो देता है पर मुफ्त में बिठा कर नहीं खिलाता । इसमें देने वाले की उदारता भले ही हो पर लेने वाले को ऋण के भार से दबना पड़ता है और दीन बनकर स्वयं स्वाभिमान का हनन करना पड़ता है । यह हानि उस लाभ से बुरी है जो किसी दान से कुछ प्राप्त करके उपलब्ध किया जाता है।

दानी, दान और दानपात्र की भी एक आचार संहिता है । किसे दिया जाय ? क्यों दिया जाय ? कितना दिया दाय ? किस आधार पर दिया जाय ? इन कसौटियों पर कसने के उपरान्त ही भौतिक पदार्थों को देने और लेने की सार्थकता हो सकती है और कोई कुछ भी किसी भी स्थिति में किसी भी प्रयोजन के लिए माँगे और देने वाला बिना गुण-दोष विचारे देता ही चला जाय तो समझना चाहिए कि वह अन्धेर देने वाले का, लेने वाले का और आचार व्यवहार का सर्वनाश करेगा । ईश्वर ऐसा दानी नहीं है कि हर माँगने वाले की मनोकामना फिर चाहे वह अज्ञानजन्य और अवांछनीय ही क्यों न हो पूरी ही करता चला जाय । यदि उसे ऐसा ही करना होता तो कर्म और उसके फल के सिद्धान्त को आरम्भ से ही ताक पर उठा कर रख देता । उस प्रक्रिया का ऐसा उपहास क्यों बनने देता, जैसा कि औघड़दानी कहकर बमभोला को मूर्ख समझते हुए भक्त मण्डली द्वारा बनाया जाता रहा है ।

उपासना निश्चित रूप से याचना नहीं है । वह विशुद्ध रूप से आत्मपरिष्कार, जीवन शोधन और पवित्रता के विकास की सुनियोजित प्रक्रिया है । तपश्चर्या की आग में हम अपने कलुष-कषायों को जलाते हैं । कर्मफल से छुटकारा पाने की वही चेष्टा है । कर्म फल अपने हाथ में नहीं । तीर छोड़ने से पहले अपने हाथ में था, छूट गया तो अपना कार्य करेगा । कर्मफल की यह व्यवस्था सृष्टि का कठोर और अपरिवर्तनीय नियम है । उसे यदि ईश्वर बदलने लगे तो फिर उसे अपनी सारी क्रम व्यवस्था ही बदलनी पड़ेगी । सच्चा न्यायाधीश अपने बेटे को भी अपराध का दण्ड देकर न्याय की रक्षा करता है । ईश्वर के न्यायालय में भक्त-अभक्त का अन्तर नहीं । भक्ति के दूसरे परिणाम हो सकते हैं पर उसका प्रयोजन यह नहीं हो सकता कि उस न्यायशील परमेश्वर को अन्याय या पक्षपात करने के लिये विवश किया जाय ।

भक्ति हमें भविष्य में दुष्कर्म न करने की प्रेरणा देती है । अपने स्वभाव में धँसे हुए अविवेक और अनाचार उन्मूलन में सहायता करती है । निष्पाप और निर्मल बनकर हम प्रारब्ध कर्मों को भी धैर्य और शान्तिपूर्वक साहस और सन्तोष के साथ सहन कर सकते हैं और इस प्रकार प्रारब्ध भोग की आधी व्यथा हल्की कर सकते हैं । दुष्कर्मों और कुविचारों को तिलांजलि देकर अपना भविष्य तो उज्ज्वल कर ही सकते हैं । साधना का लाभ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है ।

संचित कर्मों के छुटकारे का एक ही सनातन मार्ग और विधान है, प्रायश्चित । पिछली भूलों पर खेद प्रकट कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देने या क्षमा माँग लेने की औपचारिकता पूरी करने से काम नहीं चलता । समाज को जो क्षति पहुँचायी है, उतना अनुदान देकर उस गड्ढे को पाटना पड़ेगा । मन को कुकर्म के द्वारा जितना कलुषित किया जाता है उतना ही सत्कर्म के उल्लास से उसका सन्तुलन बनाना पड़ेगा । अनाचार की जिन अवांछनीय लहरों से वातावरण को क्षुब्ध किया था, उसका समाधान पुण्य और परमार्थ की प्रक्रिया अपनाकर करना होगा । इतना साहस भक्त में उदय होता है और वह अपनी सदाशयता सिद्ध करने के लिए न्याय के कटघरे में खड़े होने से पूर्व स्वयं ही उपस्थित होकर अपनी भूल स्वीकारने और उसकी क्षतिपूर्ति करने की बहादुरी दिखाता है ।

उपासना की प्रतिक्रिया साधक को अपने पापों का प्रायश्चित करने का शौर्य प्रदान करती है और भविष्य में निर्मल जीवन जीने का साहस सत्परिणाम है जो उपासना यदि सच्ची हो तो उसके फलस्वरूप साधक को फल तुरन्त प्राप्त होता है ।

आत्म ज्ञान के अभाव में ही ईश्वर और जीव का वियोग है । अज्ञान के अन्धकार का पर्दा जितना चौड़ा है उतनी ही दूर परमेश्वर है । भगवान् का दर्शन और अनुग्रह प्राप्त करने के लिए सिर्फ छोटी सी मंजिल पार करनी पड़ती है और वह है आत्म-बोध । जिस घड़ी हम इन्द्रियों की गुलामी-वासना से, मन की दासता-तृष्णा से इनकार कर देते हैं और अपने को आत्ममान कर आत्मकल्याण के पथ पर कदम बढ़ाते हैं उसी क्षण ईश्वर की समीपता स्पष्ट हो जाती है और हृदय की हर धड़कन में उसके दर्शन होने लगते हैं ।

ईश्वर भक्त केवल ईश्वर के शासन में रहता है और उसी के निर्देश पर चलता है मन की गुलामी उसे छोड़नी पड़ती है । जो मन का गुलाम है वह ईश्वर भक्त नहीं हो सकता । जो ईश्वर भक्त है उसे मन की गुलामी न स्वीकार हो सकती है न सहन ।

उपासना का प्रयोजन अपने अज्ञान और अविवेक का निराकरण करना है, अपनी कामनाओं का परिशोधन और निराकरण करना है । अपने कर्तृत्व में देवता का समावेश करना और कुत्साओं, कुण्ठाओं को जड़-मूल से उखाड़ फेंकना है । उपासना एक व्यायाम प्रक्रिया है, जिसके अनुसार आत्म-बल बढ़ाया जाता है और देवपक्ष की सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्द्धन किया जाता है । इस आत्म परिष्कार के फलस्वरूप उन विभूतियों की चाभी हाथ लग जाती है जो परमेश्वर ने पहले से ही हमारे भीतर रत्न भंडार के रूप में सुरक्षित कर दी है ।

उपासना हमारा दृष्टिकोण परिष्कृत कर देती है और अन्तःकरण में वह प्रकाश उत्पन्न करती है, जिससे अपने स्वस्थ, लक्ष्य और कर्त्तव्य को समझ सकें । साधना वह शक्ति प्रदान करती है जिससे आत्मबल विकसित हो और सन्मार्ग पर चलने के लिए पैरों में अभीष्ट क्षमता रह सके । उपासना साहस उपलब्ध कराती है, जिसके आधार पर प्रलोभनों और आकर्षणों को दुत्कारते हुए कर्त्तव्य की चट्टान पर दृढ़तापूर्वक अग्रसर रहा जा सके और हर विघ्न बाधा का, कष्ट-कठिनाई का धैर्य और सन्तुलन के साथ सामना किया जा सके ।

उपासना का वरदान 'महानता' है । साधना जितनी ही सच्ची और प्रखर होती है उतने ही हम महान बनते चले जाते हैं, तब हमें किसी से कुछ मांगना नहीं पड़ता । ईश्वर से भी नहीं । तब अपने पास देने को बहुत होता है । इतना अधिक कि उससे अपने को, अपने संसार को और अपने परमेश्वर को सन्तुष्ट किया जा सके ।

आत्मिक प्रगति के लिए द्वार खुला पड़ा है और उसमें प्रवेश करना अति सरल है । ईश्वर हमारे चारों ओर घिरा हुआ है । हमारे रोम-रोम में समाया हुआ है । मछली के भीतर और बाहर पानी ही पानी भरा रहता है अपने अन्दर और बाहर ब्रह्म चेतना का भरा पूरा समुद्र ही लहलहा रहा है । जो इतना समीप हो, इतना प्रचुर हो, उसे प्राप्त करने में क्या कठिनाई हो सकती है ?

पिता और पुत्र का सामीप्य दुरूह कैसे हो सकता है ? माता और बच्चे के सान्निध्य में अवरोध क्या होगा ? भाई से भाई बिछुड़ा रहे, इसकी क्या आवश्यकता ? पति और पत्नी के मिलने में क्या बाधा ? प्रकृतिगत अवरोध इस प्रसंग में रत्ती भर भी बाधक नहीं है । आत्मा और परमात्मा के बीच–पिता, पुत्र, माता, शिशु, भाई-भाई और पति-पत्नी के लौकिक रिश्तों की अपेक्षा सघन, स्वच्छ और प्रखर सम्बन्ध है । सांसारिक रिश्तों में दो स्वतन्त्र व्यक्तियों की बात रहने से कुछ भिन्नता और पृथकता भी रह सकती है। पर आत्मा और परमात्मा तो अंश और अंशी हैं । उनमें तो अग्नि और चिनगारी जैसा ही भेद है । कमल और उसकी पंखुरियों– पदार्थ और उसके परमाणुओं की– सूर्य और उसकी किरणों की पृथकता आँकी भले ही जाय, वस्तुतः वे तादात्म्य हैं । ईश्वर और जीव इतने ही घनिष्ठ हैं । आत्मा और परमात्मा के बीच ऐसा कोई व्यवधान नहीं है, जिसे दूर करने के लिए चिन्तित, दुःखी, खिन्न उद्विग्न या हताश होने की आवश्यकता हो । यह मिलन प्रक्रिया अति सरल है । ईश्वर प्राप्ति से अधिक आसान कार्य और दूसरा कोई हो ही नहीं सकता ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शरीर और मन परस्पर ओत-प्रोत हैं । शरीर और मन को मिलाने के लिए कुछ बड़ा काम नहीं करना पड़ता । करना पड़ता है तो इतना ही कि जो नशा पी लिया था, उसे उतर जाने दिया जाय और फिर दुबारा न पिया जाय । नशा पीने से ही शरीर और मन का सम्बन्ध लड़खड़ा जाता है । चलना, करना, बोलना, सोचना-अनियन्त्रित हो जाने की उपहासास्पद स्थिति इसलिए बनती है कि नशे की खुमारी शरीर और मन का सम्बन्ध गड़बड़ा देती है । दोनों अलग-अलग दिशा में जाते-स्वच्छन्द विचरते दीखते हैं । उसमें दोष नशे का है, यदि नशे का परित्याग कर दिया जाय तो शरीर और मन की समता– एक रूपता में कोई अन्तर दिखायी न पड़ेगा । ईश्वर और जीव के बीच में माया का नशा ही प्रधान रूप से बाधक है । यह पर्दा हटा कि उसकी आड़ में बैठे भगवान के दर्शन हुए । बाधक तो यह झीना सा पर्दा ही है ।

निद्राग्रस्त हो जाने पर शरीर और मन के सम्बन्ध गड़बड़ा जाते हैं । शरीर कहीं पड़ा रहता है, मन कहीं घूमता है । विलगाव को देखकर यह नहीं मान लेना चाहिए कि शरीर और मन दूर हैं । असम्बद्ध हैं । इन्हें इकट्ठा करने के लिए कोई बहुत भारी प्रयास पुरुषार्थ करना पड़ेगा । दोनों की एकता अविछिन्न है अन्तर तो निद्रा ने डाला है । शरीर को मृतक जैसा उसी ने बनाया है । मन को देह से असम्बद्ध करने के लिए यह निद्रा ही कारण है यदि उसे हटा दिया जाय तो जागते ही दोनों की एकता फिर यथावत् हो जायगी । शरीर और मन दोनों परस्पर घुले मिले-- और साथ-साथ मिल-जुलकर काम करते दिखाई देंगे ।

आत्मा और परमात्मा दोनों अभिन्न हैं । भिन्नता तो अविद्या रूपी निद्रा ने उत्पन्न की है । इसे हटाना, भगाना ही इस दुःखदायी वियोग के अन्त करने का एकमात्र उपाय है ।

ईश्वर प्राप्ति अति सरल है । क्योंकि वह जीवन की महती आवश्यकता है । उसकी साधना सर्वथा सुगम है । उसमें कोई ऐसी कठिनाई नहीं है, जिसके लिए भारी दौड़-धूप करने और सरंजाम जुटाने की जरूरत पड़े । तपश्चर्या, योग साधना, योग प्रक्रिया का मात्र प्रयोजन इतना है कि नशे की खुमारी और निद्रा की मूर्छना को हटा दिया जाय । जो साधना इस प्रयोजन को पूरा कर सकेगी उसी से ईश्वर प्राप्ति का सरल प्रयोजन सुगमतापूर्वक पूरा हो जायेगा ।

व्यवधान केवल एक है-- इसे सरल भी कह सकते हैं, कठिन भी । वस्तुतः वह साहसी के लिए अति सरल है और असमंजसग्रस्त भीरु व्यक्ति के लिए अति कठिन । करना सिर्फ इतना भर है कि हम अपने व्यक्तित्व और अस्तित्व को शरीर न मान, सुखों की खोज बाहर के पदार्थों में ढूँढ़ना बन्द कर दें । बहिर्मुखी दृष्टिकोण को अन्तर्मुखी बनाये । अपने को आत्मा मानें । आत्मा का हित साधन प्रमुख मानें । उसी में रुचि लें-- उसी की इच्छा करें और उसी की व्यवस्था बनायें । अपना चिन्तन इसी लक्ष्य पर नियोजित करें और कार्यक्रम का पुनः निर्धारण इस दृष्टि से करें कि यह जीवन परमेश्वर का है । परमेश्वर के लिए है और वही कार्य किये जायेंगे जो परमेश्वर द्वारा अपने लिए नियत निर्धारण किये गए हैं । पदार्थों में सुख खोजने की अपेक्षा प्रवृत्तियों में उत्कृष्टता व आनन्द तलाश करना पड़ेगा । यह परिवर्तन जितना स्पष्ट होता जायगा ईश्वर उसी अनुपात से अपने समीप प्रस्तुत दिखायी देगा ।

चिर संचित कुसंस्कारों से दुर्बुद्धि और दुष्प्रवृतियों से जूझना यही एक कठिन प्रसंग है । इसी मोर्चे पर हारने से साधना असफल होती है । तपस्वी का विजय ध्वज इसी शिखर पर गढ़ा हुआ है कि वह अज्ञानान्धकार में भटकने भेड़ों का अन्धानुकरण छोड़कर स्वतन्त्र कर्तृत्व अपनाने में समर्थ हुआ या नहीं । अपना रास्ता आप बनाने की तपस्या अपनी राह पर आप चलने की साधना जो कर सका-- बहिर्मुखी दृष्टि को अन्तर्मुखी बना सका-- भीतर के आकर्षण प्रलोभन और बाहर के उपहास प्रतिरोध का जो सामना कर सका इस उत्कृष्टता पर आरूढ़ योद्धा की सर्वत्र विजय है । जिसने अपने को जीत लिया समझना चाहिए उसने ईश्वर को जीत लिया यह सरलतम है और कटिनतर भी ।

अन्तरंग के इष्ट देव की उपासना ही सार्थक एवं सच्ची साधना

एक मन एक देवता और एक ही उपासना पद्धति अपनाते हुए भी उपासना के परिणामों में भारी अन्तर दिखाई पड़ता है । एक की उपासना चमत्कारी प्रभाव उत्पन्न करती है जबकि दूसरे की निष्प्राण मालूम पड़ती है और कोई विभिन्न प्रयोजन नहीं पूरा कर पाती । भिन्न-भिन्न प्रकार के परिणामों को देखकर असमंजस उत्पन्न होता है और उत्कण्ठा जगती है, कि इसका कारण क्या है ? दैवीय पक्षपात । वाह्य परिस्थितियों अथवा स्वयं की कमजोरियाँ । यह प्रश्न विचारणीय है ।

उपासना देवी-देवताओं की करी जाती है । स्वयं भगवान अथवा उनके समाज परिवार के देवी-देवता ही आमतौर से जन-साधारण की उपासना के केन्द्र होते हैं । विश्वास यह किया जाता है कि पूजा, अर्चा, जप, स्तुति, दर्शन, भोग, प्रसाद आदि धर्म कृत्यों के माध्यम से भगवान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अथवा देवताओं को प्रसन्न किया जा सकता है और जब वे प्रसन्न होते हैं तो उनसे इच्छानुसार वरदान प्राप्त करके अभीष्ट सुख सुविधाओं से लाभान्वित हुआ जा सकता है ।

यह मान्यता कई बार सही साबित होती है कई बार गलत । प्राचीन काल के इतिहास पुराण देखने से पता चलता है कि कितने ही साधकों और तपस्वियों ने कठिन उपासनाऐं करके अद्‌भुत शक्तियाँ, विभूतियाँ एवं उपलब्धियाँ प्राप्त कीं । स्वयं भी इतने समर्थ हुए कि दूसरों को अपनी साधना का एक अंश देकर वरदान, आशीर्वाद से लाभान्वित कर सके । भारत ही नहीं संसार भर का पुराण ऐसी ही घटनाओं से भरा पड़ा है, जिनमें चर्चा के प्रमुख पात्रों में से अधिकांश की सामर्थ्य और विशेषताएँ देव प्रदत्त थीं । ऋषियों, तपस्वियों, सन्तों के जीवन चरित्रों में, अधिकांश में ऐसे वर्णन मौजूद हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि उनमें कितनी ही अलौकिक विशेषताऐं थीं और उन्होंने उनने तप साधना के द्वारा देवताओं से अथवा सीधे भगवान से पाया था । प्रामाणिक इतिहास में भी ऐसे अगणित प्रमाण विद्यमान हैं जिनमें साधना के फलस्वरूप अनेक व्यक्तियों ने अपने व्यक्तित्वों में ऐसी विशेषताऐं उत्पन्न की जो सर्वसाधारण के लिए सम्भव या सुगम नहीं होतीं, अभी भी ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं जो उपरोक्त तथ्य को अपने अद्‌भुत व्यक्तित्व या कर्तृत्व के द्वारा सही सिद्ध कर रहे हैं ।

साथ-साथ यह भी देखने में आता है कि घर-बार छोड़कर--पूरा समय देवाराधन में लगाये हुए व्यक्ति साधना आरम्भ करने के बाद और भी अधिक गुजरी स्थिति में चले गये । न तो उनमें कोई प्रत्यक्ष विशेषता देखी गई, न आत्मिक महत्ता । न उन्हें सुख प्राप्त था न शान्ति । स्वास्थ्य से लेकर सम्मान तक कोई भी सम्पदा उनके पास नहीं थी और न विवेक से आत्मबल तक कोई प्रतिभा विशेषता उपलब्ध हुई, वरन् जिस स्थिति में उन्होंने वह उपासनात्मक प्रक्रिया अपनायी पीछे उनकी स्थिति हर प्रकार बिगड़ती ही चली गई । भौतिक सुख सम्पत्ति न सही, आत्मिक शान्ति और विभूति का प्रकाश मिला होता तो भी सन्तोष किया जा सकता था पर वैसा भी कुछ वे प्राप्त न कर सके ।

यह स्थिति स्वभावतः मन को असमंजस में डालती है । उसी प्रक्रिया का अवलम्बन करने से एक को लाभ एक को हानि ऐसा क्यों ? एक को सिद्धि दूसरे के हाथ निराशा यह किस लिए ? कैसे ? वही देवता, वही मन्त्र वही विधि, एक की फलित एक की निष्फल इसका क्या कारण ? यदि भगवान या देवता और उसकी उपासना अन्ध-विश्वास है तो फिर इससे कितने ही लाभान्वित क्यों होते हैं ? यदि सत्य है तो उससे कितनों को ही निराश क्यों होना पड़ता है । जल हर किसी की प्यास बुझाता है, सूरज हर किसी को गर्मी रोशनी देता है फिर देवता और उनके उपासना क्रम में परस्पर विरोधी प्रतिक्रियाएँ क्यों ?

इस उलझन पर अनेक दृष्टियों से विचार करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि देवता या मन्त्रों में जितनी अलौकिकता दृष्टिगोचर होती है, उनसे लाभान्वित हो सकने की पात्रता साधक में होना नितान्त आवश्यक है । मन्त्र उपासनात्मक कर्मकाण्डों की लकीर पीट लेना इस सन्दर्भ में अपर्याप्त है । तेज धार की तलवार में सिर काटने की क्षमता है । इसमें सन्देह नहीं पर वह क्षमता सही सिद्ध हो इसके लिए चलाने वाले का भुजबल, साहस एवं कौशल भी आवश्यक है । बिजली में सामर्थ्य की कमी नहीं पर उससे लाभान्वित होने के लिए उसी प्रकार के मन्त्र चाहिए । यन्त्र उपकरणों के अभाव में बिजली का उपयोग व्यर्थ ही होगा अनर्थ मूलक भी बन जाता है ।

स्वाँति के जल से मोती वाली सीपें ही लाभान्वित होती हैं । अमृत उसी को जीवन दे सकता है, जिसका मुँह खुला हुआ है । प्रकाश का लाभ आँखों वाले ही उठा सकते हैं । इन पात्रताओं के अभाव में स्वाँति का जल, अमृत अथवा प्रकाश कितना ही अधिक क्यों न हो, उससे लाभ नहीं उठाया जा सकता । ठीक यही बात देव उपासना के सम्बन्ध में लागू होती है । घृत सेवन का लाभ वही उठा सकता है, जिसकी पाचन क्रिया ठीक हो देवता और मन्त्रों का लाभ वे उठा पाते हैं जिन्होंने व्यक्तित्व को भीतर और बाहर से आचार-विचार से परिष्कृत बनाने की साधना कर ली है । औषधि का लाभ उन्हें ही मिलता है जो बताये हुए अनुपात और तथ्य का भी ठीक तरह प्रयोग करते हैं । अतः पहले आत्म उपासना फिर देव उपासना की शिक्षा ब्रह्म विद्या के विद्यार्थियों को दी जाती रही है । लोग उतावली में मन्त्र और देवता के, भगवान और भक्ति के पीछे पड़ जाते हैं इससे पहले आत्मशोधन की आवश्यकता पर ध्यान ही नहीं देते । फलतः उन्हें निराश ही होना पड़ता है । बादल कितना ही जल क्यों न बरसाये, उसमें से जिसके पास जितना बड़ा पात्र है, उसे उतना ही मिलेगा । निरन्तर वर्षा होते रहने पर भी आंगन में रखे हुए पात्रों में उतना ही जल रह पाता है, जितनी उनमें जगह होती है । अपने भीतर जगह को बढ़ाये बिना कोई बरतन बादलों से बड़ी मात्र में जल प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकता । देवता और मन्त्रों से लाभ उठाने के लिए भी पात्रता नितान्त आवश्यक है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से आचरण और चिंतन की दृष्टि से यदि मनुष्य उत्कृष्टता और आदर्शवादिता से अपने को सुसम्पन्न करलें तो उनके कषाय-कल्मषों की कालिमा हट सकती है और अन्तःकरण तथा व्यक्तित्व शुद्ध, स्वच्छ, पवित्र एवं निर्मल बन सकता है । ऐसा व्यक्ति मन्त्र, उपासना तपश्चर्या का समुचित लाभ उठा सकता है और देवताओं के अनुग्रह का अधिकारी बन सकता है । जब तक यह पात्रता न हो तब तक उत्कृष्ट वरदान माँगने की दूरदर्शिता ही उत्पन्न न होगी और साधना के पुरुषार्थ से कुछ भौतिक लाभ भले मिल जाय, देवत्व का एक कण भी उसे प्राप्त न होगा और आसुरी भूमिका पर कोई सिद्धि मिल भी जाय तो अन्ततः उसके लिए घातक ही सिद्ध होगी । असुरों की साधना और उसके आधार पर मिली हुई सिद्धियों से उनका अन्ततः सर्वनाश ही उत्पन्न हुआ । आध्यात्म विज्ञान का समुचित लाभ लेने के लिये साधक का अन्तःकरण एवं व्यक्तित्व जितना निर्मल होगा, उतनी ही उसकी उपासना सफल होगी । धुले कपड़े पर रंग आसानी से चढ़ता है मैले पर नहीं । स्वच्छ व्यक्तित्व सम्पन्न साधक किसी भी पूजा उपासना का आशाजनक लाभ सहज ही प्राप्त कर सकता है ।

भगवान और देवता कहाँ है ? किस स्थिति में है ? उनकी शक्ति कितनी है ? इस तथ्य का सही निष्कर्ष यह है कि दिव्य चेतन सत्ता निखिल विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त है और पग-पग पर उनके समक्ष जो अणु गति जैसी व्यस्तता के कार्य प्रस्तुत हैं, उन्हें पूरा करने में संलग्न हैं । उनके समक्ष असंख्य कोटि प्राणियों की जड़ चेतन की बहुमुखी गतिविधियों को सम्भालने का विशालकाय कार्य पड़ा है सो वे उसी में लगी रहती हैं । एक व्यवस्थित नियम और क्रम उन्हें इन ग्रह-नक्षत्रों की तरह कार्य संलग्न रखता है । व्यक्तिगत सम्पर्क में घनिष्ठता रखना और किसी की भावनाओं के उतार चढ़ाव की बातों पर बहुत ध्यान देना, उनके समग्र रूप से सम्भव नहीं । वे ऐसा करती तो हैं पर अपने एक अंश प्रतिनिधि के द्वारा । दिव्य सत्ताओं ने हर मनुष्य के भीतर उसके स्थूल, सूक्ष्म कारण शरीरों में अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष जैसे आवरणों में अपना एक-एक अंश स्थापित किया हुआ है और यह अंश प्रतिनिधि ही उस व्यक्ति की इकाई को सम्भालता है । वरदान आदि की व्यवस्था इसी प्रतिनिधि द्वारा सम्पन्न होती है ।

व्यक्ति की अपनी निष्ठा, श्रद्धा, भावना के अनुरूप यह देव अंश समर्थ बनते हैं और दुर्बल रहते हैं । एक साधक की निष्ठा में गहनता और व्यक्तित्व में प्रखरता हो तो उसका देवता समुचित पोषण पाकर अत्यन्त समर्थ दृष्टिगोचर होगा और साधक की आज्ञाजनक सहायता करेगा । दूसरा साधक आत्मिक विशेषताओं से रहित हो तो उसके अन्तरंग में अवस्थित देव अंश पोषण के अभाव में भूखा, नंगा, रोगी दुर्बल बनकर एक कोने में कराह रहा होगा । पूजा भी नकली दवा की तरह भावना रहित होने से उस देवता को परिपुष्ट न बना सकेगी और वह विधि पूर्वक मन्त्र जप आदि करते हुए भी समुचित लाभ न उठा सकेगा ।

विराट् ब्रह्म कितना ही महान् क्यों न हो, व्यक्ति की इकाई में वह उस प्राणी की परिस्थिति में पड़ा हुआ लगभग उससे थोड़ा ही अच्छा बनकर रह रहा होगा । अन्तरात्मा की पुकार निश्चित रूप से ईश्वर की वाणी है पर वह हर अन्तःकरण में समान रूप में प्रबल नहीं होती । सज्जन के मस्तिष्क में मनोविकारों का एक जोक घुस जाय तो भी उसकी अन्तरात्मा प्रबल प्रतिकार के लिए उठेगी और उसे ऐसी बुरी तरह धिक्कारेगी कि पश्चाताप ही नहीं प्रायश्चित किये बिना भी चैन न पड़ेगा । इसके विपरीत दूसरा व्यक्ति जो निरन्तर क्रूर कर्म ही करता रहता है, उसकी अन्तरात्मा यदाकदा बहुत हल्का-सा प्रतिवाद ही करेगी और वह व्यक्ति उसे आसानी से उपेक्षित करता रहेगा । दोनों की अन्तरात्मा की प्रकृति एक-सी है दोनों ही अपना कर्त्तव्य निवाहती हैं पर दोनों की स्थिति सर्वथा भिन्न है । सज्जन ने सत्प्रवृत्तियों को पोषण देकर अपनी अन्तरात्मा को निर्मल बनाया है उसकी प्रबलता कभी शाप वरदान के चमत्कार भी प्रस्तुत कर सकती है । पर दूसरों ने अपनी आत्मा को निरन्तर पद-दलित करके उसे भूखा रखकर दुर्बल बना रखा है वह न तो प्रबल प्रतिरोध कर पाता है और न कभी उसके द्वारा ईश्वर की पुकार आदि की जाय तो उसका कुछ प्रतिफल निकल सकता है ।

सर्वव्यापी, साक्षी, दृष्टा, नियन्ता, कर्ता सत् चित आनन्द आदि विभूतियों से सम्पन्न विराट् ब्रह्म है । देव शक्तियाँ भी अपनी सीमित परिधि के अनुरूप निखिल ब्रह्माण्ड में संव्याप्त और निर्धारित प्रयोजनों में तत्पर हैं । उन विराट् सत्ताओं की उपासना सम्भव नहीं । उपासना के लिये प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक छोटा-सा प्रतिनिधि उनका मौजूद है । साधक और तपस्वी अपनी निष्ठा के अनुरूप उसका पोषण करते समर्थ बनाते और लाभ उठाते हैं । एक ग्वाले की गाय स्वस्थ सुन्दर और बहुत दूध देती है दूसरे की ठीक वैसी ही होने पर भी दुबली, रुग्ण और कम दूध देती है । इसका कारण उन दोनों ग्वालों की गौ सेवा में न्यूनाधिकता का होना ही है । अपने अन्तरंग में अवस्थित देवता को भगवान को अपनी आस्था, निष्ठा, पवित्रता आदि विशेषताओं के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

द्वारा समर्थ बनाया जाता है । इसके उपरान्त ही पूजा उपासना रूपी बाल्टी में दूध दुहने की बात बनती है ।

रामकृष्ण परमहंस की काली ने विवेकानन्द को आत्म शक्ति से सम्पन्न बनाकर उन्हें महामानवों की पंक्ति में ला खड़ा किया । दूसरे तान्त्रिक, अघोरी, कापालिक, ओझा, उसी काली देवी से झाड़ फूँक के छुटपुट प्रयोजन ही पूरे कर पाते हैं । विराट् महाकाली एक है, पर रामकृष्ण परमहंस के अन्तरंग में परिपोषित काली अंश की क्षमता उनके अनुरूप थी और ओझा अघोरी लोगों की काली बहुत दुर्बल थी और ओछे किस्म की होती है । अर्जुन के कृष्ण की सामर्थ्य अलग थी । मीरा, सूर के कृष्ण अलग थे और रासलीला करने वालों के, पुजारियों के कृष्ण अलग हैं । आकृति प्रतिमा दोनों की एक-सी हो सकती है पर सामर्थ्य में असाधारण अन्तर होगा । यह अन्तर उन साधकों की आन्तरिक स्थिति के कारण विनिर्मित हुआ होता है ।

इस तथ्य को समझाने से हमें असमंजस और भ्रम में पड़ना पड़ेगा, निराशा हाथ लगेगी और सम्भव है, तब उपेक्षा ही नहीं नास्तिकता भी सामने आ खड़ी हो । उसी विधान से एक व्यक्ति आश्चर्यजनक प्रतिफल प्राप्त करता है, ठीक उसी रीति-नीति को अपना कर दूसरा व्यक्ति सर्वथा निराश असफल रहता है । इसमें विधि विधान को दोष न दिया जाना चाहिए । तथ्य यही है कि हमने अपने इष्ट देव को इतना परिपुष्ट नहीं बनाया कि वे हमारी प्रार्थना के अनुरूप उठ खड़े होने और सहायता कर सकने में समर्थ होते । द्रौपदी के कृष्ण अलग थे, वे एक पुकार सुनते ही दौड़कर आये । हमारे कृष्ण अलग हैं वे लगभग लंघन में पड़े रोगी की तरह हैं, पुकार सुनने और सहायता के लिए खड़े होने की सामर्थ्य उनके हाथ पैरों में है नहीं, फिर वे प्रार्थना का क्या उत्तर दें ।

आध्यात्म विद्या के तत्व दर्शियों ने इस तथ्य को छिपाया नहीं है । उन्होंने सदा कहा है कि इस विराट् ब्रह्म में जो चाहे उसे ठीक तरह सँजोये सम्भालने में लग सकता है और उन मणि मुक्ताओं से अपने जीवन भाण्डागार को भरा पूरा कर सकता है । उपेक्षा करने अथवा दुर्गति करने से वे निरर्थक ही बनकर रह जायेंगे । हर किसी के मस्तिष्क में गणेश विद्यमान हैं जो बुद्धि विकास की साधना करके अपने गणेश को परिपुष्ट बना लेगा वह विद्वान बनकर अनेक विभूतियों के वरदान प्राप्त करेगा । जो अपने गणेश की जड़ों में पानी नहीं देगा, मन के विनायक भगवान सूखे मूर्च्छित एक कोने में पड़े होंगे । लड्डू खीर खिलौने, स्तोत्र पाठ करने पर भी वे कुछ सहायता न कर सकेंगे । बुद्धिमान और विद्वान बन सकना सम्भव न होगा । हर किसी की भुजाओं में हनुमान का निवास है । व्यायाम करने वाले संयमी ब्रह्मचारी लोग बजरंग बली के भक्त प्रमाणित हो सकते हैं पर जिन्होंने अपने असंयमी और भ्रष्ट आचरण से हनुमान जी को पीड़ित प्रताड़ित करने में कमी नहीं छोड़ी, उनका चालीसा पाठ कुछ ज्यादा कारगार नहीं होगा. वे आरोग्य और बलिष्ठता का वरदान अपने रुग्ण हनुमान से कैसे प्राप्त कर सकेंगे ?

बालबुद्धि, उतावले और अदूरदर्शी लोग ही उपासना को जादूगरी, बाजीगरी जैसी चीज मानकर चलते हैं । उनकी कल्पना किन्हीं ऐसे देवताओं की होती है, जो स्तुति जप, पूजा, प्रसाद के तनिक से प्रलोभन पर ललचाये जा सकते हैं, और उनसे इन नगण्य उपहारों के बदले मन चाहे लाभ उठाये जा सकते हैं । अधिकांश पूजा, उपासना में संलग्न लोगों की मनोभूमि इतनी बच्चों जैसी स्तर की होती है । वे विधि विधानों, कर्मकाण्डों या उपहारों का तानाबाना बुनते रहते हैं और उसी टंटघंट से अपना उल्लू सीधा करने की तरकीबें भिड़ाते रहते हैं । तथाकथित भक्तों की मण्डली इसी स्तर की होती है । वे तिलक छापे लगाकर अपनी भक्ति का प्रमाण भगवान के सामने प्रस्तुत करते हैं या कुछ और खेल खड़ा करके भगवान की आँखों में धूल झोंकर अपने असली स्वरूप को छिपाते हुए भक्त को मिलने वाले लाभ प्राप्त करना चाहते हैं । वस्तुतः न भगवान इतने भोले हैं न कोई मन्त्र ऐसा है जिसे कुछ बार जप, रटकर मनचाहा लाभ उठाया जा सके । उपासना का एक सर्वांगपूर्ण विज्ञान है । आध्यात्म विद्या को एक समग्र साइंस ही कहना चाहिए । उसके नियम और प्रयोजनों को समझ कर तदनुकूल चलने से ही लाभान्वित हुआ जा सकता है । यदि यह तथ्य लोगों ने समझा होता तो आध्यात्म मार्ग की देहरी पर पैर रखते ही पहला प्रयोग अपने अन्तरंग में मूर्छित, पद दलित, विभुक्षित, मलिन पड़े हुए इष्टदेव को सम्भालने सँजोने का प्रयत्न किया होता । उन्हें समर्थ और बलवान बनाया होता । इस प्रथम प्रयोजन को पूरा करने के बाद मन्त्र, जप, उपासना, पूजा स्त्रोत आदि का चमत्कार देखने का दूसरा कदम उठाया गया होता तो निस्सन्देह हर उपासक को आशाजनक सफलता मिली होती और किसी को भी निराश होने, अविश्वासी बनने या असमंजस में पड़ने का अवसर न आता ।

उपासना के साथ भावना भी

उपासना के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि उसमें केवल पूजापरक कर्मकाण्ड ही काफी नहीं वरन् साथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में भावनात्मक समावेश भी होना चाहिए । ज्यों-त्यों कुछ पूजा-पत्री कर देने, थोड़ा जप कर लेने मात्र से काम नहीं चलेगा । आमतौर से लोग इतना ही करते हैं और समझ लेते हैं कि उनकी उपासना पूर्ण हो गई । कर्मकाण्ड पूजा का एक महत्त्वपूर्ण अंग तो है पर उतने भर से उपासना में पूर्णता नहीं आ सकती । उपासना के हर कर्मकाण्ड के साथ आवश्यक भावनाओं का समन्वय रहे तभी उनमें प्रखरता आयेगी ।

श्रद्धा में विश्वास का समुचित पुट रहना चाहिए । उपेक्षा, अवज्ञा और कौतूहल की तरह विधि-विधान की लकीरें पीट लेने से काम नहीं चल सकता । शारीरिक क्रियाओं के साथ-साथ आत्मिक उद्‌गारों का समन्वय भी अभीष्ट है । उसी आधार पर उपासना प्राणवान बनती है।

इसलिए हम सदा से इस बात पर जोर देते रहे हैं कि कोई साधक केवल मात्र पूजन, जप कर लेने से सन्तुष्ट न हो जाय, अन्यथा उसे वैसा ही खाली हाथ रहना पड़ेगा, जैसे कि ओर हजारों, लाखों लोग निराशा के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं कर पाते । हमने अपने जीवन का लगभग सारा ही समय उपासना में लगाया है और मंथन, चिन्तन, मार्गदर्शन, अध्ययन एवं अनुभव के आधार पर यह पाया है कि उपासना में पूजा के अतिरिक्त भावना और साधना का भी समन्वय होना चाहिए । तभी वह अभीष्ट परिणाम प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकती है । जितना ध्यान पूजा पद्धति पर दिया जाता है, उससे भी अधिक भावना तथा साधना पर दिया जाना चाहिए । तीनों का सम्मिश्रण जहाँ भी होगा वहाँ सफलता निश्चित रूप से मिलेगी ।

हमने अपना जीवन प्रयोग इसी क्रम पर आधारित रखा और संतोषजनक परिणाम प्राप्त किया । जिन लोगों की एकांगी उपासना रही, जो मात्र पूजा पद्धति को सब कुछ समझते रहे और उसी में संलग्न रहे, वे हमसे अधिक श्रम करते रहने पर भी आज खाली हाथ हैं । हमारा व्यक्तिगत अनुभव और शास्त्रों तथा ऋषियों का निर्देश समग्र साधना करने के पक्ष में है । हमारा अटूट विश्वास है कि यदि सर्वांगपूर्ण उपासना थोड़ी भी की जाय वह आशाजनक परिणाम उत्पन्न करेगी । उसके विपरीत एकांगी पूजा पद्धति तक सीमित रहा गया तो किसी महत्त्वपूर्ण परिणाम की आशा नहीं की जा सकती । उपासना में भावना और साधना का जो जितना समन्वय कर लेगा, उसका श्रम उतना ही सार्थक होगा । यह एक सुनिश्चित तथ्य है और उसकी उपेक्षा किसी भी विवेकवान आध्यात्मवादी को नहीं करनी चाहिए ।

उपासना की भाँति ही साधना भी आत्मिक प्रगति का अनिवार्य अंग है । जीवन-शोधन और परमार्थ प्रक्रिया का समन्वय करने से साधना का प्रयोजन पूरा होता है । जिस प्रकार उपासना को पूजन, जप और ध्यान इन तीन भागों में बाँटा जा सकता है, उसी प्रकार आत्म निर्माण, परिवार-निर्माण और समाज-निर्माण साधना के अविच्छिन्न अंग हैं । भगवान के स्मरण पर जितना ध्यान आवश्यक है, उतनी ही आवश्यकता जीवन शोधन की भी है । आदर्शवादी उत्कृष्ट जीवन आस्तिकता का सबसे प्रमुख प्रमाण है । ऐसे भक्त जो अपने आचरण की शुद्धता लेकर ईश्वर के सन्मुख उपस्थित होते हैं, अपने प्रभु को प्रसन्न एवं द्रवित करने में निःसन्देह समर्थ होते हैं ।

साधना (जीवन शुद्धि) जिसमें आत्म-शोधन और परमार्थ दोनों ही सन्निहित हैं, उपासना की सफलता का पथ प्रशस्त करती है । जमीन अच्छी हो तो बीज उगने में सरलता होती है । भूमि बहुत दाम की खरीदी जाती है । बहुत परिश्रम उसको उर्वर बनाने में लगता है । खाद, पानी, जुताई, मेड़बन्दी आदि की भारी व्यवस्था बना कर उस जमीन को जब उर्वर बना लिया जाता है तब कोई भी फसल उसमें बोई उगाई जा सकती है । साधना भूमि निर्माण और उपासना बीज बोना है । बीज बोना थोड़े खर्च में पूरा हो जाता है । इसी प्रकार उपासना घण्टे, आधे घण्टे करने से काम चल जाता है पर साधना में चौबीसौं घण्टे निरत रहना पड़ता है । हर घड़ी यह ध्यान रखना पड़ता है कि किसी भी समय कोई अनुचित विचार या कार्य अपने से न बन पड़े । अधिक पुरुषार्थ इसी में करना होता है । उपासना में भावना का और साधना में विवेक का समावेश करना होता है । भावना, उपासना को और विवेकशीलता, साधना को समग्र बनाती है । इसलिए अपने आध्यात्मिक क्रिया-कलापों में इनका जुड़ा रहना आवश्यक है ।

एक ऐसी सर्वोपयोगी न्यूनतम उपासना का कार्यक्रम उपस्थित किया जा रहा है, जिसमें उपासना और साधना का आवश्यक समावेश है । व्यस्त रहने वाले या शरीर से दुर्बल लोगों के लिए भी यह कठिन नहीं है । सरल होते हुए भी यह अपनी सजीवता एवं सर्वांगपूर्णता के कारण इतनी प्रभावपूर्ण है कि इसका प्रत्यक्ष लाभ हर कोई अनुभव कर सकता है । प्राप्त अनुभवों के आधार पर यह प्रतिपादन साहसपूर्वक कर सकता है कि कभी किसी की उपासना निष्फल नहीं जाती । वह भौतिक एवं आध्यात्मिक प्रगति में निःसन्देह आश्चर्यजनक रीति से सफल होती हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस महान अवलम्बन का परित्याग न करें

उपासना, आत्मिक प्रगति के लिए एक अति आवश्यक एवं अनिवार्य माध्यम है । जीवन शोधन की साधना के साथ चलता हुआ उपासना क्रम आशाजनक परिणाम प्रस्तुत करता है, उनसे जीवनोद्देश्य की प्राप्ति में भारी सफलता मिलती है । इसलिए तत्वदर्शी आत्मवेत्ताओं ने उपासना को जीवन का एक अनिवार्य नित्य धर्म माना है । जो इस सन्दर्भ में उपेक्षा बरतते हैं, आलस्य, प्रमाद करते हैं, उनकी कटु भर्त्सना शास्त्रकारों ने की है ।

जिस प्रकार शरीर शुद्धि के लिए मलमूत्र विसर्जन, हाथ-मुँह धोना, स्नान करना आवश्यक है (दसों इन्द्रियों को मल रहित करना आवश्यक है) उसी प्रकार मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के अन्तःकरण चतुष्टय की शुद्धि आत्मचिन्तन, आत्म-शोधन, शरीर का परिशोधन, आत्म-निर्माण एवं आत्म-विकास की प्रक्रिया अपनाकर अन्तः शरीर का परिशोधन आवश्यक है । नित्य कर्म केवल शरीर शुद्धि तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए, वरन् नित्य धर्म के रूप में आन्तरिक मलीनताओं का निष्कासन भी नित्य किया जाना चाहिए ।

शारीरिक स्वास्थ्य की तरह, बाह्य शुद्धि की तरह मानसिक स्वास्थ्य और आन्तरिक शुद्धि का ध्यान रखा जाना चाहिए । हम शरीर ही नहीं आत्मा भी हैं, इसलिए दोनों की सन्तुलित सुरक्षा के लिए नित्य-कर्म ही नहीं नित्य धर्म भी आवश्यक माना जाना चाहिए । बाह्य शुद्धि क्रिया को नित्यकर्म कहते हैं और आन्तरिक शुद्धि को नित्य-धर्म । इन दोनों के लिए हमें तत्परतापूर्वक जागरूक रहना चाहिए । अन्यथा समग्र स्वास्थ्य को स्थिर न रखा जा सकेगा और जीवनोद्देश्य की प्राप्ति सम्भव न हो सकेगी ।

अग्नि की समीपता से ही गर्मी प्राप्त की जा सकती है, उससे दूर रहने पर उष्णता के माध्यम से मिल सकने वाले लाभ प्राप्त न हो सकेंगे । ठण्ड लग रही हो तो जलती हुई आग की समीपता से वह कष्ट दूर हो जाता है, भोजन पकाना हो, पानी गर्म करना हो तो इन वस्तुओं को आग के समीप रखना पड़ता है । चूल्हा कहीं और पदार्थ कहीं और रखा जाय तो भोजन पकाने का उद्देश्य पूरा न हो सकेगा । इसी प्रकार समस्त शक्तियों के अधिपति परमात्मा से यदि दूर रहा जाय, उसके पास न बैठा जाय तो वे तत्व, वे गुण हमें प्राप्त न हो सकेंगे, जिनके आधार पर सामान्य नर-पशु महान नर-नारायण के रूप में विकसित होता है ।

समीपता का लाभ और आनन्द सर्वविदित है । सगे-सम्बन्धी दूर रहते हैं, तो मन उदास रहता है, पर जब वे साथ-साथ रहने का अवसर पाते हैं, तब आनन्दित और प्रमुदित रहते हैं । पति-पत्नी, माता-पुत्र, भाई-भाई जब साथ-साथ रहने का अवसर पाते हैं, तब उन्हें बड़ा सन्तोष होता है और बल मिलता है । बिछोह में स्थिति बदल जाती है । उदासीनता घेर लेती है और एकाकीपन, शैथिल्य एवं दौर्बल्य का अनुभव होता है । प्रियजनों के शरीर और मन एक दूसरे को बल, उत्साह एवं आनन्द प्रदान करते हैं, यह एक सुनिश्चित तथ्य है । इसलिये हर कोई प्रियजनों की समीपता प्राप्त करने के लिए लालायित एवं प्रयत्नशील रहता है ।

उपासना का अर्थ है-- समीपता, पास बैठना । जीव का ईश्वर के समीप बैठना इसी का नाम उपासना है । जो सत्ता की दृष्टि से ईश्वर इस विश्व के कण-कण में समाया हुआ है । हमारे शरीर और समीपवर्ती वातावरण में भी ओत प्रोत है । तथ्य की दृष्टि से वह समीप है । पर तत्व की दृष्टि से फिर भी वह दूर ही बना रहता है । भावनात्मक दृष्टि से यदि समीपता न हो तो फिर अभीष्ट आनन्द नहीं मिल सकता । दो प्रियजन एक ही किले में कैद रहें, दोनों की कोठरियों में दीवार मात्र का अन्तर है, तो उतना व्यवधान ही दोनों को हजारों मील की दूरी जैसा कष्ट देता है ।

भावनात्मक दृष्टि से समीपता के अभाव में आनन्द कहाँ ? टकसाल में सिक्के ढालने वाले कारीगर रोज लाखों रुपये उठाते धरते हैं, उन्हें उस सम्पत्ति पर कोई प्रसन्नता नहीं होती । बैंकों के खजांची अपने हाथों कितने धन की उलट-पुलट करते हैं पर उन्हें उससे क्या सुख मिलता है ? जिस घर में हम रहते हैं, उसके नीचे को पृथ्वी को आर पार खोद डाला जाय तो उसमें लाखों टन सोना, चाँदी, ताँबा आदि मूल्यवान धातुएँ मिलेंगी । हम उस जमीन पर बैठे हैं, उसके स्वामी हैं फिर भी उससे लाभान्वित या आनन्दित नहीं होते । कारण एक ही है, भावनात्मक समीपता का न होना ।

जिस धन से हमारी भावनात्मक समीपता जुड़ जाती है, जिसे हम अपना समझने लगते हैं उसी में रस और आनन्द मिलने लगता है । कोई पति-पत्नी बाल्यकाल से परस्पर परिचित रहे हों तो भी उन्हें तब वह आनन्द उल्लास नहीं मिला होगा, जो कि प्रणय-सूत्र में बँध जाने के बाद मिलता है । पहले वे परिचित मात्र थे, अब वे एक दूसरे में सम्बद्ध हो गये । परिचय और सम्बद्ध होने में भारी भावनात्मक अन्तर है, इसी अन्तर के आधार पर सुखानुभूति की नींव रखी होती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईश्वर को हम जानते तो हैं, उसे अपने चारों ओर बिखरा भी अनुभव करते हैं, यह परिचय मात्र है । इतने मात्र से काम नहीं चलता । आनन्द तब आता है, लाभ तब मिलता है जब दोनों के बीच भावनात्मक एकता का सम्बन्ध सूत्र बँध जाता है । उपासना जीव और ईश्वर को एकनिष्ठ आत्मीयता के सम्बन्ध सूत्र में बाँध देने की एक सर्वमान्य एवं सुनिश्चित पद्धति है ।

ईश्वर समस्त सद्गुणों, सत्प्रवृत्तियों, सद्भावनाओं एवं सद्सम्भावनाओं का मूल केन्द्र है । उसकी समीपता हमारे लिए वैसी ही उपयोगी है, जैसे शीत के कष्ट से काँपते हुए व्यक्ति के लिए अग्नि की समीपता । जीवनोद्देश्य की रसायन का परिपाक उस अग्नि की समीपता से ही सम्भव है । जल से दूर रहने वाली मछली की जो दुर्गति होती है, वैसी ही ईश्वर विमुख जीव को भी भुगतनी पड़ती है । जीवन एक बल्ब मात्र है, उसमें जो रोशनी चमकती है, वह विद्युत धारा का चमत्कार है । चमकता तो निःसन्देह बल्ब ही है पर उसके भीतर काम करने वाली शक्ति पावर हाउस से आने वाली बिजली की ही है ।

अनेक विद्युत उपकरण अपने अनोखे करतब दिखाते हैं । बल्ब, पंखे, रेडियो, रेफ्रिजरेटर, हीटर, टेलीफोन आदि के आश्चर्यजनक और उपयोगी कार्य होने का मूल श्रेय उस विद्युत धारा को ही है । जिसके कारण यह सभी यन्त्र गतिशील रहते हैं । यदि बिजली से उनका सम्बन्ध कट जाय तो वे निकम्मे से खिलौने मात्र बन कर रह जायेंगे । उनकी उपयोगिता तभी है, जब बिजली के प्रवाह से जुड़े रहें । ठीक इसी प्रकार जीव जब भावनात्मक एकता के द्वारा ईश्वर के साथ जुड़ा रहता है, तब वह स्वयं प्रकाशवान रहता है और दूसरों को प्रकाशित करता है । यह संयोग यदि कटा रहे तो भीतर और बाहर अंधकार ही अंधकार छाया दृष्टिगोचर होता है । ईश्वर से विमुक्त होकर जीव तेलहीन दीपक की तरह, प्राण रहित शरीर की तरह निरुपयोगी बन कर रह जाता है । उसमें वह तेजस्विता रह नहीं जाती, जो सृष्टि के मुकुटमणि परमेश्वर के परम प्रिय राजकुमार मनुष्य में स्वभावतः होनी चाहिए ।

उपासना उसी अभाव की पूर्ति करती है । ईश्वर और जीव के बीच घनिष्ठ आत्मीयता के सम्बन्धों को सजग एवं गतिशील बनाती है । कहावत है कि दोस्ती और दुश्मनी पास रहने से बढ़ती है और दूर रहने से घट जाती है । ईश्वर और जीव की दोस्ती के बारे में भी यह उक्ति पूरी तरह लागू होती है । बार-बार पास बैठने से हर दिन सम्पर्क बनाये रहने से ईश्वर और जीव के बीच दोस्ती का रिश्ता मजबूत होता चला जाता है । यदि उपासना से विमुख रहें तो दोस्ती सम्भव नहीं तब साधारण जान पहचान मात्र रह जायेगी और वह उतनी लाभदायक सिद्ध न हो सकेगी ।

उच्च राज्य कर्मचारियों एवं शासन सत्ताधारियों से जिनकी मित्रता होती है वे दूसरों के लिए प्रभावशाली रहते हैं, स्वयं गर्व एवं गौरव अनुभव करते हैं, निर्भय और निश्चिन्त रहते हैं और समय-समय पर उस दोस्ती से ऐसे लाभ भी उठा लेते हैं, जो सर्वसाधारण लोगों के लिए सम्भव नहीं । लोग इस तथ्य को समझते हैं, इसलिए राज्याधिकारियों से दोस्ती बढ़ाने में बहुत-सा समय और धन खर्च करते हैं । इतनी समझ जिन्हें है वे शासनाध्यक्ष परमेश्वर के साथ दोस्ती जोड़ने में न जाने थोड़ा समय और मनोयोग लगाने में क्यों उपेक्षा बरतते हैं ? जब यह दोस्ती संसार के किसी भी प्राणी की अपेक्षा असंख्य गुनी अधिक उपयोगी और लाभदायक सिद्ध हो सकती है ।

सम्पर्क में गुणों के आदान-प्रदान की सम्भावना जुड़ी हुई है । बुरे लोगों के साथ बैठने का कुसंग व अच्छे लोगों के साथ बैठने का सत्संग अपना अपना भला-बुरा परिणाम थोड़े ही समय में दिखा देता है । दुष्टों के साथ रहने से उन्हीं जैसे दोष-दुर्गुण साथी में पैदा हो जाते हैं । सज्जनों की संगति में बढ़ने वाले सद्गुणों का लाभ भी सहज ही अनुभव किया जा सकता है । चन्दन वृक्ष के समीप उगे हुए जंगली पेड़-पौधे भी सुगन्धित हो जाते हैं । नदी-नालों में गिरा हुआ गंगा जल भी अपवित्र बन जाता है । संगति की महत्ता कौन नहीं जानता ?

सामान्य बुद्धि का प्रयत्न यही रहता है कि सुसंगति का अवसर मिले इसके लिए लोग क्लबों में सदस्य बनते हैं, संस्थाओं में प्रवेश करते हैं ताकि वहाँ ऊँचे लोगों के साथ सम्पर्क साधने का अवसर मिले । न जाने क्यों हम ईश्वर की सत्ता और महत्ता से अपरिचित हैं ? और न जाने क्यों उससे सम्बन्ध साधने के लिए अति सरल और अति सस्ते उपाय उपासना को उपेक्षापूर्वक त्यागे रहते हैं ?

जिन सत्प्रवृत्तियों की दिव्य शक्तियों की हमें जीवन विकास के लिए जीवनोद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यकता है, वे सभी ईश्वर में सन्निहित हैं । ईश्वर समस्त सत् सम्भावनाओं का केन्द्र है । इस एक ही उद्गम से हमारी सभी आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकती हैं । आवश्यकताओं और अभावों की पूर्ति के लिए कल्प-वृक्ष को स्मरण किया जाता है । बाह्य और आन्तरिक तृप्ति की पयस्विनी कामधेनु मानी गई है, मृत्यु और जराजीर्णता से छुटकारा दिलाने वाला पदार्थ अमृत कहा जाता है, लोहे को स्वर्ण में बदल देने की क्षमता पारस में बतायी जाती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन माध्यमों से मनुष्य के समस्त शोक-सन्तापों और अभावों का निराकरण हो सकने की बात कथा-पुराणों में कही तो जाती है, पर उन्हें देखा नहीं जाता । किन्तु यह सभी सम्भावनाएँ ईश्वर में विद्यमान हैं । उसको स्पर्श करने वाला आप्तकाम बन जाता है, उसकी कोई कामना शेष नहीं रहती । कष्ट और अभावों का दुःख उसे नहीं सहना पड़ता। अग्नि कुण्ड में डाला हुआ पत्थर का टुकड़ा भी थोड़ी देर में अग्नि के गुण धर्म से परिपूर्ण होकर ज्वलन्त अंगारे जैसा बन जाता है । उसी प्रकार साधारण स्तर का तुच्छ-सा जीवधारी मनुष्य देवसत्ता में परिणत हो जाता है ।

लोहा पारस को छूकर सोना बनता है । नहीं यह तथ्य संदिग्ध हो सकता है पर यह असंदिग्ध है कि जीव का ब्रह्म से सम्पर्क होना उसे देव संज्ञा में परिणत कर देता है । भूसुर और भूदेव कल्पना की वस्तु नहीं, उन्हें देखा और परखा जा सकता है । नर-पशु को नर-देव में परिणत कर देने की क्षमता ईश्वर की समीपता में रहने से उपलब्ध हो सकती है । इस दिव्य सान्निध्य की पुण्य प्रक्रिया का नाम ही उपासना है । उपासना मानव जीवन का महानतम सम्बल है । उसे परम पुरुषार्थ कहा जाता है । संसार में जितनी विभूतियाँ, सफलताएँ और उपलब्धियाँ हो सकती हैं, उन सबमें बड़ी यह है कि हम ईश्वर से परिचित मात्र न रहकर उसके साथ दोस्ती का रिश्ता जोड़ लें और उस समस्त वैभव के उत्तराधिकारी बन जायें जो उसके पास है । इससे बढ़कर और कोई उपलब्धि इस जीवन में हो ही नहीं सकती, इसलिए बुद्धिमत्ता एवं दूरदर्शिता इसी में है कि हम अन्य आवश्यक क्रियाकलापों से कम नहीं वरन् अधिक महत्त्व ईश्वर की समीपता के लाभ को दें और उसके लिए 'उपासना' की प्रक्रिया परिपूर्ण निष्ठा के साथ अपनाएँ ।

मानव प्राणी अनेक भूल करता है और उनका दण्ड भी भोगता है । इन भूलों में सबसे बड़ी भूल है उपासना के प्रति उपेक्षा । सृष्टि के संविधान में क्षमा के लिए गुंजाइश नहीं, हर किसी को अपने कर्मों का प्रतिफल भोगना पड़ता है । उपासना की उपेक्षा को चाहे भूल कहा जाय, चाहे उद्दण्डता उसका दण्ड हमें एक ऐसे भारी आत्मिक अभाव के रूप में भुगतना पड़ता है, जिसके कारण जीवन में न रस रह जाता है और न आनन्द । उत्कृष्टता की सरलता की अनुभूति ही वह अमृत है, जिसे पीकर आत्मा तृप्ति का अनुभव करती है और जिसका रसास्वादन करने के लिए वह बार-बार जन्म मृत्यु का कष्ट सहकर भी, मानव शरीर धारण करने के लिए लालायित रहती है । निम्न स्तर के विचारों और कार्यों को तो कीचड़ ही कहा जा सकता है । कृमि कीट उसमें बुजबुजाते हुए अपने दिन गुजार सकते हैं, पर जिसकी आत्मा जाग पड़ी उनके लिए यह स्थिति असह्य है । उसकी तृप्ति और सन्तुष्टि उत्कृष्टता से ही सम्भव है ।

मधुमक्खी और भौंरे पुष्पों की समीता से जीवित रह सकते हैं । जागृत आत्माएँ केवल उत्कृष्टता की भूमि का रसास्वादन करने के लिए जीवन धारण करती हैं । निकृष्टता की विचारणा और प्रक्रिया उन्हें मृत्यु जैसी कष्टदायक प्रतीत होती है । यह स्तर कैसे प्राप्त हो ? कहाँ से प्राप्त हो ? इन प्रश्नों का उत्तर एक ही हो सकता है– ईश्वर की समीपता व उपासना । उपासना हमें वह प्रकाश और मार्ग दर्शन प्रदान करती है, जिसमें समस्त उत्कृष्टताओं का समुच्चय भगवान् हमारे समीप आता है और अपनी श्रेष्ठताओं से हमें ओत-प्रोत कर देता है ।

प्रकृति और परमेश्वर के संयोग से यह जगत बना है । प्रकृति जड़ है । उसमें जड़ता और तमोगण ही भरा है । स्थूल पदार्थ केवल इन्द्रिय सुख दे सकते हैं । वे वासना का क्षणिक सुख और तृष्णा का भ्रम जंजाल पैदा कर सकते हैं, उत्कृष्टता उनमें नहीं । उत्कृष्टता तो उच्च स्तरीय उस स्थिति में है, जिसे ईश्वर की समीपता कहते हैं । ईश्वर उत्कृष्ट है, वही हमें उत्कृष्टता प्रदान कर सकता है । सन्तोष और आनन्द से अन्तःकरण को परिपूर्ण कर सकने वाली स्थिति उत्पन्न करने की क्षमता ईश्वर की समीपता में है और उसी को प्राप्त करने के लिए उपासना की जाती है, इस आवश्यक नित्यकर्म का पालन करना ही हमारे लिए उचित है । उत्कृष्टता की अनुभूतियों के सम्पर्क में आकर ही हम उन दैवी सम्पदाओं के अधिपति बन सकते हैं, जिन्हें प्राप्त करने के लिए यह महान मानव जीवन उपलब्ध हुआ है ।

उपासना की सफलता के मूलभूत आधार

उपासना एक ऐसे वटवृक्ष का बीज है, जिसकी छाया, पल्लव, पुष्प, फल और विशालता से सबका सब प्रकार से हित होता है । ईश्वर की समीपता का लाभ उठा कर जीव अपनी शक्ति सामर्थ्य को अनन्त गुनी बढ़ा सकता है और महापुरुष की, भूदेव की, नर नारायण की, भूमिका सम्पादित कर सकता है । ईश्वर का सान्निध्य, अनुग्रह, प्रकाश और अनुदान जिसने प्राप्त कर लिया उसे और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता । इस उपलब्धि के फलस्वरूप क्या मिलता है, उसे वाणी से कहना और लेखनी से लिखना पर्याप्त नहीं, उसे तो अनुभव करके ही देखना चाहिए । पक्षी की छाती की गर्मी से सेये जाने पर अण्डे कुछ ही दिन में पक्षी के रूप में विकसित हो जाते हैं । यदि यह गर्मी न मिले तो वह गन्दी-सी गोली सड़ गल कर नष्ट हो जाती है । इसी प्रकार ईश्वर की समीपता में जीव का आशाजनक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकास होता है किन्तु यदि उससे वंचित रहना पड़े तो सड़ा हुआ जीवन जीने के अतिरिक्त और कुछ सार इस जीवन में रह नहीं जाता ।

न्यूनतम आधा घण्टा अवकाश हममें से हर एक को उपासना के लिए निकालना ही चाहिए । २३ १।२ घण्टे शरीर की आवश्यकताए और समस्याएँ सुलझाने में लगाये जा सकते हैं, तो क्या आत्मा की प्राप्ति और आवश्यकता की पूर्ति के लि आधा घण्टा भी खर्च नहीं किया जाना चाहिए ? माना की शरीर महत्त्वपूर्ण है और उसका तथा उससे सम्बन्धित प्रियजनों के हित साधन के लिए काफी समय और श्रम लगाना पड़ता है, पर इसका अर्थ यह तो नहीं है कि आत्मा सर्वथा उपेक्षणीय है । उसकी आवश्यकताओं को समझा ही न जाय, उसकी प्राप्ति के लिए कुछ किया ही न जाय ।

शरीरोपयोग में सारी शक्ति का लग जाना और बेचारी आत्मा को कुछ भी न मिलना ठीक कौरव पाण्डवों के बीच चलने वाले अनौचित्य जैसा है । पाण्डव पाँच गाँवों की मांग अपने गुजारे के लिए कर रहे थे और सारा विशाल राज्य कौरवों को दे रहे थे पर दुर्योधन सुई की नोंक की बराबर पृथ्वी देने को भी तैयार न हुआ । अन्ततः भगवान कृष्ण को महाभारत रचाने की व्यवस्था करनी पड़ा । हमारा अज्ञान एवं मोह दुर्योधन, दुःशासन की तरह सारी सामर्थ्य को शरीर सुख में ही खर्च करना चाहता है और आत्मा अर्जुन के लिए आधा घण्टा समय भी नहीं लगने देना चाहता । यह अनीति अन्ततः दुष्परिणाम ही उत्पन्न करेगी और आज जो शरीर हमारा एक मात्र लक्ष्य बना हुआ है वह भी चैन से न रह सकेगा ।

लाभ को परखने की बुद्धि यदि हममें हो तो भी यह अनुमान लगाना कठिन नहीं होना चाहिए कि जितना श्रम शरीर को सुखी बनाने में खर्च किया जाता है उसका एक अंश भी यदि आत्म-कल्याण में खर्च किया जाय तो परिणाम अत्यधित उत्साह वर्धक निकल सकता है । जिन दूरदर्शी, महामानवों ने अपना समय ईश्वर उपासना में लगाया उनके चरित्र और वृतान्त पढ़ने पर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि घाटे में नहीं रहे । तृष्णा और वासना के दो पाटों की चक्की में पिसते रहने वालों को तुलना में वे अधिक ही लाभान्वित रहे जिन्होंने ईश्वर का आश्रय ग्रहण करके उपासना के लिए श्रम किया और मनोयोग लगाया ।

ऋषियों और सन्त-भक्तों के जीवन इसके प्रमाण हैं । उन्होंने अपार आत्म-शांति पाई, अपने आशीर्वाद और वरदान से असंख्यों के भौतिक कष्ट मिटाये, अन्धेरे में भटकते हुओं को प्रकाश दिया और दिव्य विभूतियों के अधिपति बने जिन्हें ऋद्धि और सिद्धि के नाम से पुकारा जाता है । नाम गिनाने की आवश्यकता नहीं । प्रत्येक गृही और विरक्त संत का जीवन चरित्र कसौटी पर कसा जा सकता है और देखा जा सकता है कि कोल्हू के बैल की तरह ढर्रे का नीरस जीवन बिताने की अपेक्षा यदि उन्होंने ईश्वर का आश्रय लेने का निर्णय किया तो कुछ घाटे में नहीं रहे ।

उन्होंने जो पाया वह कोई साधारण श्रमिक, व्यापारी, बुद्धि-जीवी प्राप्त नहीं कर सकता । कम लाभ की अपेक्षा अधिक लाभ का व्यापार करना बुद्धिमत्ता कही जाती है, फिर उपासना का आश्रय लेना क्यों दूरदर्शिता न मानी जायगी ? निःसन्देह यह उपासना की चतुरता कही जायेगी कि हम शरीर के स्वार्थों का ध्यान रखने के अतिरिक्त आत्म-कल्याण की भी आवश्यकता समझें और इसके लिए उपासना का आश्रय लेना आरम्भ करें ।

प्रियजनों के पास बैठने का अपना आनन्द है । ईश्वर और जीव के बीच इतना अधिक घनिष्ठ आत्म-भाव है, जितना संसार के किन्हीं प्राणियों या सम्बन्धियों में नहीं पाया जाता । संसारी लोग प्रेम का मोल-तोल करते हैं जिससे प्रयोजन सिद्ध होता है, प्रतिफल मिलता है, उससे दोस्ती निबाहते हैं अन्यथा उपेक्षा एवं अवज्ञा करने लगते हैं, ईश्वर के बारे में ऐसी बात नहीं, वह हमारा सच्चा प्रेमी है । निस्वार्थी भाव से हमारी पग-पग पर अपार सहायता करता है, उसने जो दिया है वह इतना अधिक है, जितना सृष्टि के किसी प्राणी को नहीं मिला । ऐसे प्रिय पात्र की समीपता में आनन्द ही आनन्द मिलना चाहिए । पति-पत्नी पास बैठकर आनन्द लाभ कर सकते हैं । माँ-बेटे के बीच, मित्र-मित्र के बीच जो भावनात्मक आदान-प्रदान चलता है, उसे दोनों ही पक्ष उल्लसित होते हैं । फिर सच्चा प्रेमी सच्चा मित्र सच्चा सहयोगी परमेश्वर यदि पास में बैठे तो किस को आनन्द एवं उल्लास प्राप्त न होगा ? उपासना एक आनन्द विभोर कर देने वाली भावनात्मक प्रक्रिया है, उसे यदि सही ढंग से अपनाया जा सके तो उपासक उतने स्वर्णिम क्षणों में आनन्द और उल्लास से ओत-प्रोत ही रह सकता है ।

किन्तु खेद की बात है कि कितने ही व्यक्ति पूजा-पत्री बहुत करते हैं, घण्टो उसमें लगाते हैं, पर वह सन्तोष एवं सुख प्राप्त नहीं कर पाते जो प्रिय पात्र के सान्निध्य में मिलना चाहिए । उनका मन नहीं लगता, किसी प्रकार शरीर से टण्ट-घण्ट करते रहते हैं, जीभ से कुछ मन्त्र-तन्त्र उच्चारण करते और हाथ से माला जपते हैं, पर चित्त की उद्विग्नता ज्यों की त्यों बनी रहती है । मन जहाँ-तहाँ दौड़ लगाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहता है । उस थोड़े समय को काटना कठिन पड़ जाता है । किसी प्रकार बेगार भुगता कर वह कृत्य पूरा किया जाता है ।

नित्य कर्म समझ कर ज्यों-त्यों पूजा की लकीर पीटने वाले अधिक हैं, ऐसे लोग कम हैं जिन्हें उस समय अपने प्रिय मिलन जैसा आनन्द अनुभव होता हो । इस अभाव का कारण उपासना प्रक्रिया में रहने वाली एक ऐसी भूल है, जिसकी ओर ध्यान दिया या दिलाया नहीं गया । यदि यह भूल सुधार ली जाय तो उपासना हमारे जीवन की सबसे अधिक उल्लास और उत्साह भरी भूमिका हो सकती है ।

हमें यह जानना ही चाहिए कि उपासना का प्रयोजन ईश्वर और जीव जैसे दो चेतन तत्वों में समीपता एकता की स्थापना करना है । इसके लिए भावनात्मक माध्यम का प्रयोग अनिवार्य रूप से आवश्यक है । उपासना के साथ-साथ भावना को अविच्छिन्न रूप से जुड़ा ही रहना चाहिए । कर्मकाण्ड को शरीर और भावना को प्राण कहा जा सकता है । शरीर और प्राण दोनों को मिला कर ही एक समग्र व्यक्तित्व विनिर्मित होता है । इसी प्रकार सजीव उपासना वही कहला सकती है, जिसमें पूजा प्रयोग के कर्मकाण्ड के साथ-साथ स्नेह की अभिव्यंजना भी जुड़ी हुई हो । उल्लास इस अभिव्यंजना पर ही निर्भर है । जिनके मन नहीं मिले, केवल शरीर ही समीप है, उन्हें मिलने का आनन्द आयेगा ! किन्तु यदि भावनाएँ प्रबल हैं तो शरीर के दूर रहते हुए भी मन उत्साह से भरा रहता है और कल्पना के माध्यम से भी मिलन-सुख उपलब्ध होता रहता है । इस तथ्य को भुला कर जो लोग पूजा-पात्री का कर्मकाण्ड मात्र पूरा करते रहते हैं और भावनात्मक अभिव्यंजना का समन्वय नहीं करते, उन्हें ही मन न लगने की, आनन्द न आने की शिकायत रहती है । अन्यथा वे क्षण तो हर्षोल्लास से भरे हुए ही होने चाहिए । इस सम्बन्ध में बरती गई उपेक्षा ही वह भूल है, जिसके कारण उपासना एक बोझिल प्रक्रिया मात्र बन कर रह जाती है और आरम्भिक उत्साह शिथिल होते ही कितने लोग उसे छोड़ बैठते हैं । यदि प्रारम्भ से ही वस्तुस्थिति का ध्यान रखा जाय, सजीव उपासना क्रम अपनाया जाय, भावनात्मक तत्परता का समावेश रखा जाय। तो एक बार इस आनन्द का रसास्वादन करने के उपरान्त उपासना को छोड़ने का कोई नाम भी न ले ।

सभी की पूजा के बाह्योपचार की पद्धति का आधार प्रायः एक ही होता है । किसी प्रतिमा के आधार पर भगवान को समीप विराजमान अनुभव करना, उसके स्वागत सत्कार की व्यवस्था करना, उसका नाम बार-बार रटना, गुणानुवाद करना और कुछ समर्पण करना । इस थोड़े से शब्दों में हर प्रकार की भारतीय उपासना पद्धति का समावेश माना जा सकता है । साकार और निराकार दोनों की पूजा करने का स्वरूप प्रायः यही है । ईश्वर को साकार मान कर उसकी प्रतिमा स्थापित करने वाले रोरी, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, आरती आदि से पूजन करते हैं, निराकार मानने वाले चित्र अथवा प्रतिमा न रख कर ध्यान में प्रकाश आदि का कोई रूप बनाते हैं । अग्निहोत्र भी एक तरह की मूर्ति पूजा है । ईश्वर को अग्नि रूप में स्थापित कर वेद मन्त्रों से उसकी स्तुति करते हुए, घृत हविष्य आदि की आहुतियाँ देना एक प्रकार से भोग लगाना ही है । नाम-जप दोनों ही मान्यातों वालों को करना पड़ता है । कोई राम नाम लेता है, कोई ओम नाम । अन्तर अक्षरों का है । तथ्य एक ही है । इसी प्रकार ईश्वर के गुणानुवाद गाने में कोई वेद मन्त्रों का उच्चारण कर सकता है, कोई हनुमान चालीसा पढ़ सकता है, बात एक ही है ।

पूजा पद्धतियों के आकार-प्रकार में ब्रह्म स्वरूप में अन्तर हो सकता है, पर मूल तथ्य एक ही है । हर उपासक को मिलते-जुलते क्रियाकलाप ही अपनी पूजा प्रक्रिया में रखने पड़ते हैं । सुविधा, रुचि और परम्परा के अनुरूप यदि कुछ अन्तर पड़ता हो तो हर्ज नहीं, हर पद्धति निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुँचा सकती है, यदि उसे भावनात्मक अभि व्यंजना में समाविष्ट रखा गया है ।

पदार्थों, प्रक्रियाओं, हलचलों का प्रभाव मन पर पड़ता है, इस लिए पूजा उपचार की प्रक्रिया को आवश्यक माना गया है । हलचलें हमारा ध्यान भगवान की उपस्थित और उसकी समीपता का अनुभव कराती हैं, इसलिए पूजन वन्दन के उपकरण काम में लाये जाते हैं । ईश्वर इन अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से प्रभावित या प्रसन्न नहीं होता । इनकी उन्हें आवश्यकता भी नहीं । उपचारों का प्रयोजन मन में भगवान की समीपता की अनुभूति कराना है । जिस पूजा से साधक को ईश्वर की समीपता जितनी अधिक अनुभव होती हो, उसे उतनी ही सफल माना जायेगा ।

कई बार अस्वस्थता अथवा साधनहीन एकाकी जीवन होने की स्थिति में अथवा उच्च भूमिका के विकसित होने पर ध्यान द्वारा मानसिक पूजन करना पड़ता है । इससे भी पूजा प्रक्रिया का लाभ मिल जाता है । उपचार पदार्थों के न होने पर भी भावनात्मक पुरुषार्थ द्वारा मन पर ईश्वर की समीपता की अनुभूति यदि सीमित की जा सके तो वह ध्यान साधना भी पूजा प्रक्रिया का प्रयोजन पूरा कर देती है । उपचार एवं कर्मकाण्ड का अपना महत्त्व है । किन्तु कर्म में उसे सम्मिलित रहना ही चाहिए । पर निरीक्षण यह भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते रहना चाहिए कि समीपता की भावनात्मक अनुभूति हो रही है या नहीं ? इस अनुभूति पर ही उपासना का मूल प्रयोजन सिद्ध होना निर्भर है ।

उपासना काल में प्रयत्न यह किया जाना चाहिए कि पूजा में प्रयुक्त होने वाला हर पदार्थ, हर क्रिया-कलाप, हर विधान हमारे अन्तःकरण पर ईश्वर की समीता एवं मधुर मिलन की सम्वेदना, अनुभूति आस्वादित करने में सहायक हो । जैसे कोई सजीव प्रियजन पास में बैठा हो । और उसे सचमुच ही उन क्रिया-कृत्यों से दुलारा जा रहा हो यदि ऐसी मान्यता और भावना बन सकी तो समझना चाहिए कि उपासना का मूल प्रयोजन पूरा होने लगा । ईश्वर कहीं बहुत दूर रहता है, उसे पाने या बुलाने की अभी अपनी सामर्थ्य कहाँ ? ऐसी निराशात्मक एवं अविश्वासमूलक भावना उपासना का प्रयोजन ही नष्ट कर देती है । मान्यता यह होनी चाहिए कि प्रस्तुत प्रतीक या प्रतिमा सचमुच साक्षात ईश्वर है, वह एक सजीव व्यक्ति की तरह सामने प्रस्तुत है, और जो कुछ किया या कहा जा रहा है, उसे वह पूरी तन्मयता और रुचिपूर्वक सुन समझ अथवा ग्रहण कर रहा है । चुपचाप ग्रहण कर रहा हो सो बात नहीं, वरन् वह हमारी हर प्रक्रिया को स्वीकार करते हुए प्रसन्नता एवं सद्भावना भी व्यक्त कर रहा है । अपने प्रेम का वह अनेक गुना अनुदान भी प्रदान कर रहा है ।

ऐसी भावना एवं मान्यता जितनी स्पष्ट एवं तीव्र होगी, उसी अनुपात से हमारी उपासना प्रखर होगी और प्रतिफल उतना ही उत्साहवर्धक होगा । भाव भरी पूजा पद्धति साधक के अन्तःकरण को पुलकित कर देती है । अपनी भक्ति भावना की प्रखरता भगवान् की मधुर मुस्कान बन कर हमारे साथ हास विलास भरा प्रेमालाप करने लगती है और अनुभव होता है कि भक्त और भगवान दोनों अति निकट होकर एक अनिर्वचनीय आनन्द सागर में निमग्न हो रहे हैं ।

उपासना का सफल स्वरूप यही है, क्रिया-कृत्यों के साथ भावना का समन्वय करने से उसमें सजीवता आती है । आरम्भ में ऐसा न हो तो भी चिन्ता की बात नहीं । मन का स्वभाव क्रीड़ा, कौतुकों में लगने का है । उसकी दौड़ बहिर्मुखी है । अन्तर्मुखी एकाग्र होने में उसे काफी अड़चन लगती है । इसलिए आना-कानी भी बहुत करता है । किसी की प्रेरणा से उत्पन्न हुआ आरम्भिक उत्साह जब तक रहता है, तब तक तो मन लगता है, पर जैसे ही वह आवेश शिथिल हुआ कि उचट जाता है और यदि मनोबल मजबूत न हुआ तो उसे छोड़ बैठने की नौबत आ जाती है । इस स्थिति से बचना ही उचित है । जब शिथिलता आने लगे तो हठपूर्वक मन को उसमें लगाना चाहिए ।

कृषि कार्यों में लगाये जाने पर अल्हड़ बैल आरम्भ में काफी परेशान करता है । नया घोड़ा ताँगे में चलने को, सवार को पीठ पर बिठाने को कहाँ तैयार होता है ? उन्हें बलपूर्वक काम में जोता जाता है । घोड़े को लगाम लगाई जाती है और चाबुक से सीधा किया जाता है । बैल की नाक में छेद कर रस्सी पहनाई जाती है और डण्डों से डरा कर काम कराया जाता है । बाजीगर रीछ-बन्दरों को सिखाते हैं, सरकस वाले हाथी, शेर आदि को सधाते हैं । इसमें उन्हें काफी चतुरता और कड़ाई का प्रयोग करना पड़ता है । मन के साथ भी यही रीति-नीति काम में लानी पड़ती है ।

उसके साथ जबरदस्ती न की जाय तो आरम्भिक दिनों में वह उपासना जैसे रुखे प्रसंग को ग्रहण करने से इनकार ही करने लगता है यदि उसकी बात मान ली गई तो फिर भविष्य में किसी ऐसे ही प्रसंग पर उसे झुका लेना और भी कठिन हो जाता है । अतएव मन के असहयोग के आगे हमें झुकना नहीं चाहिए, वरन् बलपूर्वक तब तक उसे निर्धारित दिशा में जोते ही रहना चाहिए, तब तक कि वह उसका अभ्यस्त न हो जाय । मन में एक अच्छी विशेषता भी है कि वह जिस बात का अभ्यस्त हो जाता है फिर उसे सहज छोड़ता भी नहीं । हानिकारक व्यसनों और दुर्गुणों को जब वह मजबूती से पकड़ बैठता है तो कोई कारण नहीं कि उपासना जैसे श्रेय साधन को सदा सर्वदा निबाहते रहने के लिए तत्पर न हो जाय । कठिनाई आरम्भिक दिनों की है । इससे जब तक स्थिति अनुकूल न हो जाय तब तक उस दिशा में जंगली जानवरों को सधाने सिखाने के समय बरती जाने वाली चतुरता एवं कड़ाई का हमें अनवरत प्रयोग करते रहना चाहिए ।

उपासना--कतिपय मार्मिक भावना स्तर

उपासना का उपचार सम्पन्न करते हुए जप, पूजन, चंदन, अर्चन, स्तवन, ध्यान करते हुए हमें यह अनुभूति भी करनी चाहिए कि इष्टदेव हमारे अति निकटवर्ती, स्वजन, सम्बन्धी, मित्र, कुटुम्बी एवं आत्मीय हैं । प्रियजनों के बीच अनेक रिश्ते होते हैं उन्हीं में से एक रिश्ता उनसे स्थापित कर लेना चाहिए । माता, पिता, गुरु, बन्धु, मित्र, पति आदि अपने से बड़े पक्ष का रिश्ता आदि अधिक उपयोगी रहता है । कभी-कभी पुत्र, पत्नी आदि के रिश्ते भी स्थापित किये जाते हैं । कौशिल्या, देवकी, यशोदा, सूरदास आदि ने बालगोविन्द को इष्ट माना था । फारसी भाषा के सूफी कवियों ने इश्क हकीकी को भक्ति-धारा में भगवान् को अपनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रेयसी के रूप में चित्रित किया है । उमर खय्याम की मधुशाला का एक अर्थ आध्यात्मिक भी लगाया जाता है और भक्ति को मद्य तथा ईश्वर की शाकी, (मद्य पिलाने वाली) के रूप में चित्रित किया जाता है । ऐसी भावनाएँ काफी कठिन पड़ती हैं । सरल वे हैं जिनमें भगवान् से अपने से ऊँचे रिश्ते का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है । ऐसे रिश्ते में माता का सम्बन्ध सबसे बड़ा, सबसे कड़ा, सबसे सरल और सबसे भावपूर्ण है ।

गायत्री उपासना में भगवान् को माता के रूप में माना गया है । माता के प्रति बालक का प्रेम सबसे सरल और स्वाभाविक है । क्या मनुष्य, क्या मनुष्येतर, पशु-पक्षी, कीट-पतंग सभी अपने बच्चों को प्यार करते हैं । माता में तो वह प्यार और भी अधिक होता है । अन्य योनियों में तो बहुधा माता ही एक मात्र शिशु की संरक्षक एवं स्नेह भाजन होती है । अन्य रिश्तों में प्रेम का आधार गुण-दोष एवं लाभ-हानि होती है, पर माता का स्नेह जग में सबसे ऊँचा, परम निःस्वार्थ और त्याग-बलिदानों से भरा पूरा होता है।

''कुपुत्रो जायेत् क्वचिदपि माता कुमाता न भवति'' पुत्र कुपुत्र हो जाता है पर माता, कुमाता नहीं होती । इस उक्ति के आधार पर माता का रिश्ता इस संसार में सर्वोपरि प्रेम का प्रतीक माना गया है । अतएव ईश्वर के साथ उसी की स्थापना अधिक श्रेयस्कर सिद्ध होती है । हम भगवान् को अपनी माता मानें और उसी आधार पर भगवान् हमें अपना पुत्र मानते हुए अनन्त वात्सल्य की वर्षा करे तो यह भावनात्मक आदान-प्रदान प्रेम परम्परा का एक महान् घटक बन जाता है । ईश्वर को माता मान कर एक मातृ-प्रतिमा की अथवा ध्यान छवि की स्थापना के पश्चात् उपासना पथ पर प्रगति में गतिशीलता उत्पन्न होती है । भावनात्मक आदान-प्रदान के लिए इस प्रकार की स्थापना आवश्यक है ।

इसके उपरान्त हमारी अनुभूति में दूसरी स्थापना यह होनी चाहिए कि इष्टदेव सर्वव्यापी और न्यायमूर्ति है । घट-घट में, कण-कण में समाये हैं । अपने रोम-रोम में, भीतर और बाहर उन्हीं की सत्ता ओत-प्रोत है । तिल भर भी जगह ऐसी नहीं जहाँ वे न हों । हर जड़ चेतन पदार्थ में, अपने समीवर्ती और दूरवर्ती वातावण में उन्हीं का प्रकाश जगमगा रहा है । उन्हें हर जगह हम देख सकते हैं और वे हर पदार्थ में अपनी सहस्रों आँखों द्वारा हमारे बाह्य और अन्तरंग स्तर को बारीकी से देखते रहते हैं । हमारा कोई कृत्य, कोई विचार, कोई भाव उनसे छिपा नहीं रहता ।

यह सर्वव्यापी सत्ता पक्षपात से सर्वथा दूर-पूर्णतया न्यायशील है । उनका व्यवहार निष्पक्ष न्यायमूर्ति जज की तरह है, जो अपने प्रिय से प्रिय के साथ पक्षपात और शत्रु के साथ भी अन्याय नहीं कर सकता । कर्म का मापदण्ड ही उसकी दृष्टि में किसी के भले बुरे होने की कसौटी है । सत्कर्म, सद्भाव और सद्विचार ही उसे प्रिय हैं । इन्हीं विशेषताओं के आधार पर वह किसी की महत्ता आँकता है और इसी न्याय तुला पर तोल कर किसी से सन्तुष्ट अथवा रुष्ट होता है । निर्धारित धर्म मर्यादाओं को तोड़ने वाला ही उसका शत्रु, कोप-भाजन अथवा विरोधी है और जो सृष्टि को सुव्यवस्थित बनाये रहने के लिए धर्म कर्तव्यों का उचित रीति से पालन करता है, वही उसका प्रिय पात्र स्नेह भाजन और सहायता का अधिकारी है ।

कोई ईमानदार न्यायाधीश पाप-पुण्य के आधार पर ही किसी को न्याय का पुरस्कार दे सकता है । व्यक्तिगत राग-द्वेष से वह ऊँचा उठा रहता है । किसी की निन्दा स्तुति से प्रभावित नहीं होता । यही प्रकृति परमेश्वर की है । वह गये-गुजरे स्तर के उन लोगों के समक्ष नहीं हो सकता जो जरा-सी खुशामद से फूल कर लट्टू हो जाते हैं और बिना अधिकार एवं पात्रत्व का विचार किये मनमाने पुरस्कार देने लगते हैं । ईश्वर ऐसा निकृष्ट भी नहीं कि, नैवेद्य, पुष्पमाला, आरती, ताम्बूल, पुंगीफल, इत्र-फूलेल जैसी रिश्वतें पाकर किसी के अनुचित प्रयोजन पूरे करने के लिए तैयार हो जाय । ईश्वर को खुशामदी और रिश्वतखोर मानना और उससे उस आधार पर तरह-तरह की आशाएँ करना इस महान् सत्ता के महान् स्तर को हेय घृणित सिद्ध करने की कुचेष्टा है ।

ईश्वर की स्थिति, रुचि, कार्य-पद्धति एवं प्रेम प्रक्रिया का आधार यदि इस प्रकार ठीक से समझ लिया जाय तो हमारी उपासना परम प्रेरक और प्रकाशपूर्ण बन सकती है । तब हमें ईश्वर को अपने समीप और भीतर, बाहर औत-प्रोत अनुभव करने के साथ-साथ अपनी विचार पद्धति और कर्म पद्धति को सुधारना भी अनिवार्य रूप से आवश्यक प्रतीत होगा । हम कोई ऐसा विचार और कार्य न करें जो ईश्वर को अप्रिय हो, उसे रुष्ट करे । साधारण पुलिस दरोगा या सरकारी अफसर की उपस्थिति में कुख्यात चोर, उठाईगीरे भी अपनी हर बात पकड़े जाने के भय से मुँह बन्द रखते हैं फिर जो सर्वत्र ईश्वर को समाया हुआ निष्पक्ष न्यायाकारी अनुभव करेगा वह उसके दण्ड, भय, रोष और कोप से सदा डरेगा और कोई दुर्भाव एवं दुष्कर्म करने को तैयार न होगा।

सच्ची आस्तिकता किसी व्यक्ति को निर्मल एवं निष्पाप ही बना सकती है । वह सदाचारी सज्जन के अतिरिक्त और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ हो ही नहीं सकता । जो पाप की कीचड़ में डूबा खड़ा है, वह भजन का आडम्बर बनाये रहने पर भी वस्तुतः नास्तिक है । आस्तिकता और दुष्टता का साथ-साथ निर्वाह नहीं हो सकता । जो ईश्वर से, पाप कर्मों से डरता है उसे इस संसार में किसी से भी डरने की जरूरत नहीं रह जाती । जो सदाचरण प्रिय सद्भावयुक्त सन्मार्गगामी और सज्जन है, वस्तुतः वह ईश्वर का सच्चा भक्त है, भले ही उपासनात्मक क्रिया-कलाप उससे ठीक तरह न बन पड़ें ।

उपासक के मन में यह सुदृढ़ आस्था जमी होनी चाहिए कि ईश्वर उसके चारों ओर भरा-पूरा है, उसकी हर गुप्त गतिविधि को हजार आँखों से देख रहा है और हर बुरे-भले कर्म का उचित दण्ड-पुरस्कार विनिर्मित कर रहा है । जब यह तथ्य भली प्रकार हृदयंगम कर लिया जाता है, तब सबसे पहले अपने चरित्र और स्वभाव का परिष्कार संशोधन करने की आवश्यकता अनुभव होती है । जहाँ जो त्रुटियाँ हैं, वहाँ उनका समाधान करना होता है । इतना साहस कर लेने पर जब अपना अन्तःकरण निर्मल और व्यवहार निष्पाप बनने लगता है, तो ईश्वर के साथ सच्ची मित्रता स्थापित करने का द्वार खुल जाता है । चोर जब तक अपराधी मनोवृत्ति धारण किये रहता है, तभी तक पुलिस, जेल, अदालत से भयभीत रहता है, किन्तु आचरण सुधरते ही वह पूर्ण निर्भय बन जाता है । तब वह किसी का और कोई उसका शत्रु नहीं रहता । अधिकारी भी उसे मान देने में संकोच नहीं करते । ईश्वर से मित्रता प्राप्त करने की प्राथमिकता योग्यता निर्मल एवं निष्पाप होना है । इससे कम कीमत पर न भगवान को अपना बनाया जा सकता है और न हम भगवान के बन सकते हैं ।

उपासना का अधिकार प्राप्त करने के लिए उपासक को जीवन-शोधन की प्रक्रिया तुरन्त आरम्भ करनी चाहिए । मलीनताओं को हटाना चाहिए और उत्कृष्टताओं को जीवन-क्रम में समाविष्ट करना चाहिए । यह स्थिति जितनी-जितनी अस्पष्ट होती जाती है उतना-उतना ही साहस ईश्वर से मित्रता करने को बढ़ता जाता है । डरना, झिझकना, लज्जा, भय और संकोच में डूबा हेय और घृणित बना प्राणी इतनी ऊँची हस्ती के साथ जी खोल कर प्रेम करने का साहस ही नहीं कर पाता । साहस तब होता है, जब जी साफ हो । चिन्तन, आत्म-निरीक्षण, आत्म-शोधन, आत्म-निर्माण और आत्म-विश्वास में संलग्न होना वस्तुतः 'ईश्वरीय-मित्रता' का आधार साधन जुटाना ही है । इस प्रगति के साथ-साथ उपासक ईश्वर की ओर और ईश्वर उपासक की ओर स्वयं बढ़ने लगते हैं और बढ़ते-बढ़ते दोनों तादात्म्य और एकात्म होने का वह प्रयोजन भी पूर्ण कर लेते हैं, जो ईश्वर की महान् प्रति-कृति-मानव सृजन का पुण्य प्रयोजन है ।

निर्मल मन और शुद्ध आचरण को साथ लेकर आरम्भ की हुई उपासनात्मक आध्यात्मिक प्रगति का परिणाम परिपूर्ण निर्भयता के रूप में परिलक्षित होता है । अनुभव होता है कि ईश्वर हर घड़ी हमारे साथ है । एक सहयोगी, सहचर की तरह अंगरक्षक सुरक्षा अधिकारी की तरह साथ-साथ आगे-पीछे चलता दिखाई देता है । ऐसी दशा में डर किसका ? जब हथियार बन्द पुलिस गारद अपनी सुरक्षा के लिए तैनात हो जाता है, साथ-साथ चलता है, तब शत्रुओं और खतरों से छिपे होने पर भी निश्चिन्तता हो जाती है । सशक्त, सशस्त्र संरक्षक साथ हो तो डर दूर हो जाना निर्भयता और साहस का बढ़ना स्वाभाविक है । जिसे सर्वशक्तिमान्, परमेश्वर अपने साथ-साथ आगे-पीछे साथी संरक्षक की तरह चलता दृष्टिगोचर होता है, उसे बड़े से बड़ा खतरा भी तुच्छ मालूम देता है ।

भविष्य की आशंकाएँ उसे तनिक भी विचलित नहीं करतीं । इतनी बड़ी हस्ती जब साथी, सहचर और संरक्षक के रूप में विद्यमान है, तब फिर इस संसार में किसी से डरने का कोई कारण ही नहीं रह जाता । जिसके साथ इतना बड़ा साथी हो उसका साहस और सन्मार्ग पर आगे बढ़ चलने का उत्साह ही प्रदीप्त रहना चाहिए । वह सिंह की तरह एकाकी निर्जन वन में दहाड़ता फिरता है और अपने बल पुरुषार्थ से ही अपनी समस्याओं को हल कर लेता है ।

स्वल्प साधनों में महती योजनाएँ बना डालना और उन्हें कार्यान्वित करने के लिए चल पड़ना केवल उसी के लिए सम्भव है, जिसका ईश्वर-विश्वास अटल है । सत्कर्मों का सहायक ईश्वर होता है । कर्त्तव्य पथ पर चलने की शक्ति ईश्वर देता है, परमार्थ परायण का पथ ईश्वर प्रशस्त करता है । जिसका जैसा सुदृढ़ विश्वास है उसे उसी तरह के प्रमाण भी मिलते हैं, सचमुच यह अटूट श्रद्धा साधन-सामग्री के रूप में साकार बन कर सामने प्रस्तुत होती है । इतिहास के पृष्ठ ऐसे अगणित प्रमाणों और उदाहरणों से भरे पड़े हैं, जिन्होंने अकिंचन स्थिति में उत्पन्न होकर साधनों का पूर्णतया अभाव रहने, साथियों के सहयोग की सम्भावना न दीखने पर भी परमार्थ पथ पर चलने के दुस्साहस भरे कदम उठाये और उनका प्रयोजन इस तरह पूरा होता चला गया, मानो वे महान् कार्य उन्हीं के करने के लिए पूर्व निर्धारित रुके पड़े थे । सत्पात्र को सोद्देश्य के लिए किये गये सत्प्रयत्नों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में ईश्वरीय सहायता मिलती है । इसमें सन्देह करने की गुंजाइश नहीं । जो चाहे अपने व्यक्तित्व को ईश्वरीय प्रेम भाजन बना कर इस प्रयोग को कर सकता है । उसे यह तथ्य निर्विवाद रूप से सत्य दृष्टिगोचर होगा ।

उपासक को मनोभूमि में यदि उपरोक्त विशेषताएँ हों तो भगवान् की समीपता का आनन्द उपलब्ध होने में कुछ कठिनाई न रहेगी । तब केवल प्रेम भावना का समावेश शेष रह जायेगा । यह तत्व जितना जितना जप ध्यान के साथ-साथ घुलता जायगा, उसी क्रम से उपासना में आनन्द की अभिवृद्धि होती चलेगी । प्रेमी की समीपता सदा सुखद होती है । भगवान को यदि अपना प्रेम-पात्र बना लिया गया है, उसे माता, गुरु या सखा के रूप में वरण कर लिया गया है, तो निस्सन्देह उसके साथ रहने की भावना अति सुखद होगी और उस अवसर पर मन खूब लगेगा । मन का स्वभाव यह है कि वह प्रेम-पात्र के पास, प्रिय वस्तु के साथ, प्रिय कल्पना के सान्निध्य में रहना पसन्द करता है । दौड़-दौड़ कर वहीं जाता है । यदि हम ईश्वर को अपना प्रिय-पात्र बना लें तो मन फिर कहीं भागेगा दौड़ेगा नहीं, वरन् जब भी ध्यान धारणा में संलग्न होंगे, मन वहीं रमण करता रहेगा और चाहेगा कि उसी सुखद सन्दर्भ में अधिक-से अधिक समय बिताने का अवसर मिले । तब मन न लगने का, जी उचटने का, चित्त न लगने का प्रश्न ही उपस्थित न होगा । मन को वश में करने चित्त वृत्तियों एकाग्रता करने की गुत्थी तभी सुलझ सकती है, जब हम ईश्वर को अपना प्रिय सम्बन्धी बनालें और उसके साथ रहने में वैसा ही सुख अनुभव करें, जैसा कि किसी परमप्रिय परिजन के साथ रहने पर अनुभव करते हैं । इसके अतिरिक्त मन को वश में करने तथा चित्त को एकाग्र करने का और कोई मार्ग है ही नहीं ।

आत्मिक प्रगति के दो प्रधान आधार

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस का शुभारम्भ करते हुए भवानी और शंकर की वन्दना की है । ये दोनों क्या हैं, इसका स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने कहा है 'भवानीशकरौं वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ' । भवानी को उन्होंने श्रद्धा और शंकर को विश्वास के रूप में उल्लेख किया है । बात सोलह आने सच है । भवानी और शंकर में जो शक्ति हो सकती है, वह सारी की सारी ज्यों की त्यों श्रद्धा और विश्वास में विद्यमान है । आध्यात्म तत्व ज्ञान का सारा आधार इन्हीं दोनों पर है । दृश्य जगत् के आधार पंच तत्व हैं ।

दिखाई देने वाले समस्त जड़ पदार्थ-- मिट्टी, पानी, हवा, गर्मी और आकाश द्वारा विनिर्मित हैं । इसी प्रकार अध्यात्म जगत का समस्त विस्तार श्रद्धा और विश्वास पर रखा हुआ है । यदि इन आधारभूत तत्वों की कमी रहेगी तो किसी उपलब्धि की आशा नहीं की जा सकेगी ।

जिस प्रकार जड़ जगत में पंच तत्वों का सुनिश्चित आधार है, इन्हीं के हेर-फेर से विभिन्न वस्तुएँ उत्पन्न होती, बढ़ती और जराजीर्ण होकर नष्ट होती हैं, उसी प्रकार श्रद्धा, विश्वास के आधार पर भावनाओं का निर्माण होता है । यह भावनाएँ और मान्यताएँ ही चेतन जगत् में विविध विधि सृजनात्मक ताने-बाने बुनती हैं । श्रद्धा और विश्वास अपने आप में इस सृष्टि के महत्तम शक्ति स्त्रोत हैं । इन्हीं के आधार पर व्यक्ति और पदार्थों के साथ हमारे सम्बन्ध जुड़े हुये हैं । आशा और उत्साह इन्हीं पर निर्भर है । सृजनात्मक प्रेरणा यही उत्पन्न करते हैं । भविष्य का निर्माण और निर्धारण इन्हीं के आधार पर सम्भव होता है । यदि यह दोनों तत्व चेतना क्षेत्र से अलग हटा दिये जायें तो फिर यह जीवन, जीवन कहलाने योग्य ही न रह जायेगा ।

बीज बोने पर फसल पैदा होगी । शिक्षा प्राप्त कर लेने पर अच्छी कमाई कर सकेंगे, मजदूरी करने पर वेतन मिल जायेगा, पत्नी वफादार रहेगी, भोजन विषैला नहीं है, मित्र दगा न करेगा, हम बहुत दिनों जीवित रहेंगे, बैंक में पैसा सुरक्षित है, युद्ध में जीतेंगे, पुरुषार्थ सफल होगा आदि विश्वासों के आधारों पर कष्टसाध्य योजनाएँ बनायी और कार्यान्वित की जाती हैं । यदि उपरोक्त निष्कर्षों पर से विश्वास उठ जाय तो इन कार्यों में हाथ डालने का साहस ही न हो । श्रम निरर्थक चले जाने और बीच में ही विपत्ति खड़ी हो जाने के भय से उनमें से किसी काम को करने का साहस न पड़ेगा । विश्वास के आधार पर ही उत्साह आता है, योजनाएँ बनती हैं और जोखिम भरे कठोर कार्यों में प्रवृत्त होने का साहस उत्पन्न होता है । यदि विश्वास उठ जाय तो फिर निराशा, अकर्मणता, आशंका, भय, विपत्ति और दरिद्रता के अतिरिक्त और कुछ भी हमारे हाथ न जायेगा ।

गुरुजनों का सम्मान, कानून के प्रति आस्था, पारिवारिक उत्तरदायित्व का निर्वाह, सामाजिक मर्यादाओं की रक्षा, नागरिकता का पालन, अपनी कमाई पर निर्वाह, पुण्य की महिमा, धर्म की उपयोगिता, ईश्वर की विद्यमानता, कर्मफल की सच्चाई, मनुष्यता का गौरव यशस्वी होने का सन्तोष जैसे तथ्यों को हमारी श्रद्धा ही खड़ा किये हुए हैं । इन आस्थाओं को उखाड़ फेंका जाय तो मानवीय संस्कृति नाम की कोई वस्तु शेष न रह जाय । सामाजिक ढाँचा क्षण भर में लड़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खड़ा जाय, हमें आदिम युग में लौटना पड़े और नर-पशुओं की तरह गुजर करनी पड़े । वह श्रद्धा ही है जिसने पशुता की अगणित उच्छृंखलताओं को नियन्त्रित कर मनुष्य को सभ्य एवं सुसंस्कृत सामाजिक प्राणी बनने का अवसर दिया है ।

कुतर्क और तात्कालिक लाभ की दृष्टि से उपरोक्त सभी श्रद्धा के आधारों का खण्डन किया जा सकता है और इन्हें तोड़ फेंकने में समर्थ व्यक्ति का नफे में रहना सिद्ध किया जा सकता है । दुष्ट-दुरात्मा, आततायी, अत्याचारी, उद्दण्ड, उच्छृंखल, अपराधी और विश्वासघाती मनोवैज्ञानिक दृष्टि से केवल इतने ही दोषी हैं कि उन्होंने अपने भावना क्षेत्र से मानवोचित् श्रद्धा को उखाड़ फेंका और आस्था के आदर्शों को मिटा डाला । फलतः वे स्वेच्छाचारी रीति-नीति अपना कर नर-पिशाचों जैसा आचरण करने लगे । जिसकी श्रद्धा जितनी दुर्बल होती जायेगी वह उतना ही पतित चरित्र वाला बनता जायेगा । अनावस्था की वृद्धिमानवजाति की सबसे बड़ी विपत्ति सिद्ध हो सकती है और बुद्धिजीवी समर्थ मनुष्य की क्रूरता इस सुन्दर ग्रह, पृथ्वी का अस्तित्व ही खतरे में डाल सकती है ।

सामान्य जीवन में श्रद्धा विश्वास पर ही सारे कारोबार चल रहे हैं । उधार लेन-देन के मूल में यह विश्वास ही काम कर रहा है, वह वापस लौट आयेगा । श्रेय और कर्म के परिणामों पर से विश्वास उठ जाये तो किसी से कुछ करते-धरते न बने । एक दूसरे पर भरोसा न करें तो नौकरों, से काम चलाना कठिन हो जाय । भोजन में किसी ने विष तो नहीं मिला दिया, इस आशंका से मुख में ग्रास रखना कठिन हो जाय । विचार करने पर हम देखते हैं कि श्रद्धा और विश्वास ही हमारे सभ्य जीवन को सुव्यवस्थित बनाये रहने के आधार हो सकते हैं ।

आध्यात्मिक जीवन में तो इन्हें सर्वस्व ही कहा जा सकता है । ईश्वर, उसकी सत्ता, व्यवस्था, उपासना, उसकी नित्य परिणति के पीछे श्रद्धा ही प्रधान आधार है । मस्तिष्कीय तर्क पदार्थ विज्ञान का अभी इतना विकास नहीं हुआ कि सूक्ष्म जगत् और उसकी दिव्य-संवेदनाओं को लेबोरेट्री में प्रत्यक्ष करके देखा जा सके । आत्मा हमारी अनौखी प्रयोगशाला है, उसकी अनुभूतियाँ किसी भौतिक प्रत्यक्षीकरण से कम नहीं, सुख और दुःख की प्रेम और घृणा की अनुभूतियाँ की वास्तविकता एवं स्थिति विज्ञान की प्रयोगशाला में सिद्ध नहीं की जा सकती है, तो क्या यह कहा जाय कि सुख-दुःख अथवा प्रेम, घृणा जैसी कोई वस्तु इस संसार में नहीं है ! आध्यात्म का आधार तर्क या प्रयोगशाला नहीं आत्मा की अनुभूति है और वह असत्य नहीं हो सकती । इन्द्रियों द्वारा अनुभव किये जाने वाले सुखों का विज्ञान के आधार पर कोई विवेचन नहीं हो सकता । आँखें जैसा कुछ देखती हैं, कान जैसा कुछ सुनते हैं, जीभ जैसा चखती है, कामेन्द्रियाँ जैसा अनुभव करती हैं, उस अनुभति को विज्ञान एक मानसिक भ्रान्ति ही बता सकता है । सृष्टि का मूल अण्ड संस्थान तेजी से घूम और चल रहा है, ऐसी आँधी तूफान जैसी गतिशीलता ही विज्ञान द्वारा इस दृश्य जगत् की स्थिति सिद्ध की जा सकती है ।

सुखानुभूतियों को तो हमारी चेतना की एक अनौखी विशेषता बता सकता है और उसका कोई स्वरूप समझाने में असमर्थ है । अतएव यह मानकर चलना होता है कि तर्क एवं विज्ञान ही सब कुछ नहीं । जीव की चेतन सत्ता भी कोई इकाई है और उसकी अनुभूति भी हास्यास्पद नहीं ठहरायी जा सकती । आध्यात्म इसी आत्मानुभूति पर अवलम्बित है और उस आत्मानुभूति का प्रधान आधार श्रद्धा है । श्रद्धा के परिकर परिवार को ही यदि आध्यात्म कहा जाय तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न मानी जानी चाहिए । ईश्वर, धर्म, उपासना, सूक्ष्म जगत्, आत्म-विकास यह सभी दिव्य सत्ताएँ हमारी प्रगाढ़ श्रद्धा पर अवलम्बित हैं ।

श्रद्धा, कल्पना को नहीं उस मान्यता, आस्था एवं दृष्टि को कहते हैं, जो आत्मानुभूति जैसे खरे आधार पर प्रमाणित होती है और जिसके असंख्य प्रमाण सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक के इतिहास में पग-पग पर भरे पड़े हैं । श्रद्धा एक सजीव शक्ति है, जिसका आरोपण जहाँ भी किया जाय वहीं अभिनव चेतना उपज पड़ती है । आग को जिस वस्तु में भी लगा दिया जाय वही गर्म और चमकीली हो जाती है। श्रद्धा का आरोपण जिस भी व्यक्ति अथवा पदार्थ पर किया जाय वह दूसरों के लिए न सही, उस आरोपण करने के लिए न सही, उस आरोपण करने वाले के लिए तो दिव्य सत्ता से परिपूर्ण बन ही जाती है । देव आस्था का यही स्वरूप है ।

निर्जीव प्रतिमाओं को देव भाव से देखने पर उनमें सचमुच देवत्व उत्पन्न हो जाता है और वे उस श्रद्धालु के लिए उसकी श्रद्धा के अनुरूप फल देने लगती है । ईश्वर के बारे में निर्धारित हमारी श्रद्धा उसे हमारे सामने 'भक्त के वश में बने हुए भगवान् का एक घटक बना कर प्रस्तुत कर देती है ।

श्रद्धा से बनी भूत की कल्पना प्राणघातक दुष्परिणाम उत्पन्न करती है । भय और आशंकाओं से आतंकित लोग अपना अच्छा खासा स्वास्थ्य खो बैठते हैं । आत्म-विकास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और मनोबल के आधार पर चमत्कारी प्रतिफल उत्पन्न किये जाते हैं । यह सारे खेल श्रद्धा के ही हैं । साधना के सत्परिणामों की एक विशाल शृंखला है । अगणित साधक, अगणित प्रकार के सत्परिणाम, साधना प्रयोगों के आधार पर प्राप्त करते हैं । इसके मूल में उनकी श्रद्धा की शक्ति ही सन्निहित होती है । साधक अपने ही नाम रूप को साधना करके अपने ही जैसा एक छाया पुरुष निर्मित और सिद्ध कर लेते हैं । यह मनुष्य आकृति का देव बड़े-बड़े अनौखे काम करता है ।

यह रचना हमारी श्रद्धा द्वारा ही की गयी होती है । अनेक देवताओं का सृजन इसी प्रकार होता है । अन्तःकरण में कौन दिव्य शक्ति कितनी, कहाँ कैसी है, यह प्रश्न अलग है । यहाँ तो यह कहा, समझाया जा रहा है कि हमारी श्रद्धा-- अपनी सामर्थ से, अपनी मान्यता, आकृति, रुचि और प्रयोजन का एक स्वतन्त्र देव विनिर्मित कर सकती है । यह देवता उतने ही समर्थ होते हैं, जितनी हमारी श्रद्धा उन्हें बल प्रदान करती है । दुर्बल श्रद्धा से बने देव केवल आकृति मात्र का दर्शन देने में समर्थ होते हैं । वे कुछ अधिक सहायता नहीं कर सकते, पर जिनकी श्रद्धा प्रबल है उनके देव भी अद्भुत पराक्रम प्रस्तुत करते देखे जाते हैं।

श्रद्धा और विश्वास का सम्बल लेकर ही हमें आध्यात्म क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए । ईश्वर है, उसकी सत्ता विद्यमान है, उसका सान्निध्य प्राप्त किया जा सकता है और उसका प्रकाश मिल सकता है । यह विश्वास जितना ही प्रखर एवं स्पष्ट होगा उतनी ही सफलता हमारी साधना प्रस्तुत करेगी । कितना जप करने से, कितने दिन में, ईश्वर की कितनी कृपा मिल सकती है ? इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व यह भी जानना होगा कि साधक की श्रद्धा में कितनी प्रखरता है ? यदि अश्रद्धा और अविश्वास से, उदास मन से बेगार भुगतने की तरह कुछ पूजा-पाठ किया जा रहा है तो उसका परिणाम भी लँगड़े-लूले जैसा होगा । बहुत दिन में थोड़ा-सा लाभ दिखायी देगा । छोटे से दीपक की लौ से जल पात्र बहुत देर में गर्म होगा, किन्तु यदि आग तीव्र हो तो थोड़ी ही देर में पानी खौलने लगेगा । उपासना का क्रिया कृत्य पूरा कर लेना अभीष्ट परिणाम उत्पन्न नहीं करता । आवश्यकता श्रद्धा के समन्वय की है । यह समावेश जितना अधिक और जितना प्रखर होगा, सत्परिणाम उतनी ही बड़ी मात्रा में और उतना ही शीघ्र दृष्टिगोचर होंगे ।

उपासना की सफलता के लिये हमें अपनी मनोभूमि को श्रद्धासिक्त करना होगा । ईश्वर के अस्तित्व, उसके स्वभाव और कर्तृत्व पर वैसा ही विश्वास करना होगा, जैसा कि हम उसके ऊपर अथवा अपने साधन, सहचरों पर करते हैं । भावनापूर्ण उपासना अपना प्रतिफल उत्पन्न किये बिना नहीं रहती, इस तथ्य पर भी हमारी परिपूर्ण मान्यता होनी चाहिए और प्रयत्न यह किया जाना चाहिए कि अपना भावना स्तर उपासना को प्रखर बनाने के अनुकूल बनता और बढ़ता चला जाय । अपने आपका निर्माण ही सबसे बड़ा, सबसे जटिल और सबसे झंझट का काम है, यदि उसे पूरा किया जा सके तो कोई छोटी-सी भी उपासना पद्धति थोड़े दिनों में ही आशाजनक प्रतिफल उत्पन्न कर सकती है ।

ईश्वर हमारे समीप तो पहले से ही है, उसे अनुभव करना मात्र शेष है । कषाय-कल्मष का पर्दा हटते ही वह प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगता है । पुरुषार्थ ईश्वर को ढूँढ़ने में, बुलाने में, पाने में नहीं करना पड़ता, वह तो सहज सुलभ है । प्रयत्न तो अपने क्रिया-कलाप और भावनात्मक स्तर सुधारने में करना होता है । लोग यही भूल करते हैं कि आत्म-सुधार की ओर से बेखबर रह कर केवल ईश्वर-ईश्वर जपते हैं । ईश्वर पीठ पीछे खड़ा हँसता रहता है और कहता है, "जरा मुड़ कर देख मैं तो तेरे साथ ही हूँ । आँखों पर पड़ा अज्ञान और व्यामोह का पर्दा हटा और मुझे देख ।"

परखना यह चाहिए कि हमारी श्रद्धा, विश्वास दुर्बल तो नहीं है ? ईश्वर की सत्ता और प्रकृति पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है या नहीं ? केवल अपना मतलब साधने के लिए ही कोई विलाब दंडवत् कर रहे हैं या ईश्वर की समीपता का लाभ लेना चाहते हैं ? बगुला-भक्ति-दीनता भी कहते हैं । ऐसे दंडवत् कभी-कभी कुछ प्रयोजन तो सिद्ध कर देते हैं पर आत्मा और परमात्मा के बीच ऐसा सम्बन्ध स्थापित नहीं करा सकते, जिससे दोनों एकता और अभिन्नता का दिव्य आनन्द अनुभव कर सकें । सच्ची उपासना तो वह है जिसमें जीव अपना समस्त मोह कलेवर, अहंता, परिवार ईश्वर को समर्पण करता है और ईश्वर उसे उत्कृष्टता एवं आदर्शवादिता के प्रकाश से पूर्णतया प्रकाशवान कर देता है ।

दैनिक उपासना की सरल किन्तु महान् प्रक्रिया

नियमित उपासना के लिए पूजा स्थली की स्थापना आवश्यक है । घर में एक ऐसा स्थान तलाश करना चाहिए जहाँ अपेक्षाकृत एकान्त रहता हो, आवागमन और कोलाहल कम से कम हो ऐसे स्थान पर एक छोटी चौकी को पीत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्त्र से सुसज्जित कर उस पर काँच से मढ़ा भगवान का सुन्दर चित्र स्थापित करना चाहिए । गायत्री की उपासना सर्वोत्कृष्ट मानी गई है । इसलिये उसकी स्थापना को प्रमुखता देनी चाहिए । यदि किसी का दूसरे देवता के लिए आग्रह हो तो उस देवता का चित्र भी रखा जा सकता है । शास्त्रों में गायत्री के बिना अन्य सब साधनाओं का निष्फल होना लिखा है । इसलिए यदि अन्य देवता को इष्ट माना जाय और उसकी प्रतिमा स्थापित की जाय तो भी गायत्री का चित्र प्रत्येक दशा में साथ रहना चाहिए ।

अच्छा तो यह है कि एक ही इष्ट गायत्री महाशक्ति को माना जाय और एक ही चित्र स्थापित किया जाय । उससे एकनिष्ठ और एकाग्रता का लाभ होता है । यदि अन्य देवताओं की स्थापना का भी आग्रह हो तो उनकी संख्या कम से कम रखनी चाहिए । जितने देवता स्थापित किये जायेंगे, जितनी प्रतिमाएँ बढ़ाई जायेंगी निष्ठा उसी अनुपात से विभाजित होती जायेगी । इसलिये यथासम्भव एक अन्यथा कम से कम छवियाँ पूजा स्थली पर प्रतिष्ठापित करनी चाहिए ।

पूजा-स्थली के पास उपयुक्त व्यवस्था के साथ पूजा के उपकरण रखने चाहिए । अगरबत्ती, पंच-पात्र, चमची, धूपबत्ती, आरती, जल गिरने की तश्तरी, चंदन, रोली, अक्षत, दीपक, नैवेद्य, घी, दियासलाई आदि उपकरण यथा-स्थान डिब्बों में रखने चाहिए । आसन कुशाओं का उत्तम है । चटाई से काम चल सकता है । आवश्यकतानुसार मोटा या गुदगुदा आसन भी रखा जा सकता है । माला चन्दन या तुलसी की उत्तम है । शंख, सीपी, मूँगा जैसी जीव शरीरों से बनने वाली माला निषिद्ध है । इसी प्रकार किसी पशु का चमड़ा भी आसन के स्थान पर प्रयोग नहीं करना चाहिए । प्राचीनकाल में अपनी मौत मरे हुए पशुओं का चर्म वनवासी सन्त सामयिक आवश्यकता के अनुरूप प्रयोग करते होंगे । पर आज तो हत्या करके मरे हुए का चमड़ा ही उपलब्ध है । इसका प्रयोग उपासना की सात्विकता को नष्ट करता है ।

नियमित उपासना, नियत समय पर, नियत संख्या में, नियत स्थान पर होनी चाहिए । इस नियमितता से वह स्थान संस्कारित हो जाता है और मन ठीक तरह लगता है । जिस प्रकार नियत समय पर सिगरेट आदि की 'भड़क' उठती है, उसी तरह पूजा के लिए भी मन में उत्साह जागता है । जिस स्थान पर बहुत दिन से सो रहे हैं, उस स्थान पर नींद ठीक आती है । नयी जगह पर अक्सर नींद में अड़चन पड़ती है । इसी प्रकार पूजा का नियत स्थान ही उपयुक्त रहता है । व्यायाम की सफलता तब है जब दंड बैठक आदि को नियत संख्या में, नियत समय पर किया जाय । कभी बहुत कम, कभी बहुत ज्यादा, कभी सवेरे, कभी दोपहर को व्यायाम करने से लाभ नहीं मिलता ।

इसी प्रकार दवा की मात्रा भी समय और तोल को ध्यान में न रख कर मनमाने समय और परिमाण में सेवन की जाय तो उसे उपयुक्त लाभ न होगा । यही बात अस्थिर संख्या की उपासना के बारे में कही जा सकती है । यथा-सम्भव नियमितता ही बरतनी चाहिए । रेलवे की रनिंग ड्यूटी करने वाले, यात्रा में रहने वाले, फौजी, पुलिस वाले जिन्हें अक्सर समय-कुसमय यहाँ-वहाँ जाना पड़ता है, उनकी बात दूसरी है । वे मजबूरी में अपना क्रम जब भी, जितना भी बन पड़े, रख सकते हैं । न कुछ से कुछ अच्छा । पर जिन्हें ऐसी असुविधा नहीं उन्हें यथा-सम्भव नियमितता ही बरतनी चाहिए । कभी मजबूरी की स्थिति आ भी पड़े तो तब वैसा हेर-फेर किया जा सकता है ।

पूजा उचार के लिये प्रातःकाल का समय सर्वोत्तम है। स्थान और पूजा उपकरणों की सफाई नित्य करनी चाहिए। जहाँ तक हो सके नित्यकर्म से शौच स्नान आदि से निवृत्त होकर ही पूजा पर बैठना चाहिए । रुग्ण या अशक्त होने की दशा में हाथ-पैर, मुँह आदि धोकर भी बैठा जा सकता है । पूजा का न्यूनतम कार्य तो निर्धारित रखना ही चाहिए। उतना तो पूरा ही कर लिया जाय । यदि प्रातः समय न मिले तो सोने से पूर्व निर्धारित कार्यक्रम की पूर्ति की जाय। यदि बाहर प्रवास में रहना हो तो मानसिक ध्यान पूजा भी की जा सकती है । ध्यान में नित्य की हर पूजा पद्धति का स्मरण और भाव कर लेने को मानसिक पूजा कहते हैं। विवशता में ऐसी पूजा से भी काम चल सकता है ।

सबसे पहले शरीर, मन और इन्द्रियों को स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों की शुद्धि के लिए आत्म-शुद्धि के पंचोपचार करने चाहिए । यही संक्षिप्त ब्रह्म-संध्या है । (१) बायें हाथ में एक चम्मच जल रख कर दाहिने से ढका जाय । पवित्रीकरण का मन्त्र अथवा गायत्री मन्त्र पढ़कर उस जल को समस्त शरीर पर छिड़का जाय, (२) तीन बार, तीन चम्मच भर कर, तीन आचमन किये जायें । आचमनों के तीन मन्त्र पुस्तकों में हैं, वे याद न हों तो हर आचमन पर गायत्री मन्त्र पढ़ा जा सकता है, (३) चोटी में गाँठ लगाई जाय अथवा शिखा स्थान को स्पर किया जाय । शिखा बन्धन का मन्त्र याद न हो तो गायत्री मन्त्र पढ़ा जाय, (४) दाहिना नथुना बन्द कर बायें से साँस खींची जाय । भीतर रोकी जाय और बायाँ नथुना बन्द करके दाहिने छेद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से साँस बाहर निकाली जाय । यह प्राणायाम है । प्राणायाम का मन्त्र याद न हो तो गायत्री मन्त्र मन ही मन पढ़ा जाय। बाईं हथेली पर जल रख कर दाहिने हाथ की पाँचों अगुंलियाँ उसमें डुबोई जाय और क्रमशः मुख, नाक, आँख, कान, बाहु, जंघा इन पर बाईं और दाईं ओर जल का स्पर्श कराया जाय । यह न्यास है । न्यास के मन्त्र याद न होने पर भी गायत्री का प्रयोग हो सकता है । यह शरीर मन और प्राण की शुद्धि के लिए किये जाने वाले पाँच प्रयोग हैं। इन्हें करने के बाद ही देव पूजन का कार्य आरम्भ होता है ।

देव पूजन में सबसे प्रथम धरती-माता का मातृभूमि का विश्व-वसुन्धरा का पूजन है । जिस धरती पर जिस देश समाज में जन्म लिया है वह प्रथम देव है, इसलिये इष्टदेव की पूजा से भी पहले पृथ्वी पूजन किया जाता है । पृथ्वी पर जल, अक्षत, चन्दन पुष्प रख कर पूजन करना चाहिये। पृथ्वी पूजन का मन्त्र याद न हो तो गायत्री मन्त्र का उच्चारण कर लेना चाहिये ।

इसके बाद इष्टदेव का गायत्री माता का पूजन किया जाय । (१) आह्वान आमंत्रण के लिए अक्षत, (२) स्थान के लिए जल, (३) स्वागत के लिए चन्दन अथवा रोली, (४) सुगन्ध के लिए अगरबत्ती, (५) सम्मान के लिए पुष्प, (६) आहार के लिए नैवेद्य कोई फल, मेवा या मिठाई, (७) अभिवन्दन के लिए आरती, कपूर अथवा दीपक की । यह सात पूजा उपकरण सर्व साधारण के लिए सरल हैं । पुष्प हर जगह, हर समय नहीं मिलते हैं । उनके अभाव में केशर मिश्रित चन्दन से रंगे हुए चावल प्रयोग में लाये जा सकते हैं । प्रथम भगवान की पूजा स्थली पर विशेष रूप से आह्वान आमंत्रित करने के लिए हाथ जोड़ कर अभिवन्दन करना चाहिए और स्थिति का हर्ष व्यक्त करने के लिये माँगलिक अक्षतों (चावलों) की वर्षा करनी चाहिये, इसके बाद जल, चन्दन, अगरबत्ती, पुष्प, नैवेद्य, आरती की व्यवस्था करते हुए उनका स्वागत, सम्मान करना चाहिए । यह विश्वास करना चाहिए कि भगवान् सामने उपस्थित है और हमारी पूजा प्रक्रिया को भावनाओं को ग्रहण-स्वीकार करेंगे । उपरोक्त सात पूजा उपकरणों के अलग-अलग मन्त्र भी हैं । वे याद न हो सकें तो हर मन्त्र की आवश्यकता गायत्री से पूरी हो सकती है । इस विधान के अनुसार इस एक ही महामन्त्र से सभी पूजा प्रयोजन पूरे कर लेने चाहिए।

इसके बाद जप का नम्बर आता है । मन्त्र ऐसे उच्चारण करना चाहिए, जिससे कण्ठ, होंठ और जीभ हिलते रहें । उच्चारण तो होता रहे पर इतना हल्का हो कि पास बैठा व्यक्ति भी उसे ठीक तरह से सुन समझ न सके । माला को प्रथम मस्तक पर लगाना चाहिए फिर उससे जप आरम्भ करना चाहिए । तर्जनी अँगुली का प्रयोग नहीं किया जाता, माला घुमाने में अँगूठा मध्यमा और अनामिका इन तीनों का ही प्रयोग होता है । जब एक माला पूरी हो जाय तब सुमेरु (बीच का बड़ा दाना) उल्लंघन नहीं करके उसे लौट देते हैं ।

अधिक रात गये जप करना हो तो मुँह बन्द करके उच्चारण रहित-मानसिक जप करते हैं । साधारणतया एक माला जप में ६ मिनट लगते हैं । पर अच्छा हो इस गति को और मन्द करके १० मिनट कर लिया जाय । दैनिक उपासना में जबकि दो ही माला नित्य करनी है, गति में तेजी लाना ठीक नहीं । माला न हो तो अंगुलियों पर १०८ गिन कर एक माला पूरी होने की गणना की जा सकती है । घड़ी सामने रखकर भी समय का अनुमान लगाया जा सकता है ।

न्यूनतम उपासना क्रम में एक माला गायत्री महामन्त्र की आत्म कल्याण के लिए और एक माला विश्व-कल्याण के लिए । दो को अनिवार्य माना गया है । इसके अतिरक्त अधिक जप या किसी अन्य देवी देवता का जप पाठ अपनी इच्छा और सुविधा पर निर्भर है । आत्म-कल्याण की भावनाओं की अभिव्यक्ति गायत्री चालीसा में और विश्व-कल्याण की रीति-नीति 'युग-निर्माण सत्संकल्प' में मौजूद है । इसलिए पहली आत्म-कल्याण की माला जपने के बाद गायत्री चालीसा का पाठ और दूसरी विश्व-कल्याण की माला जपने के बाद युग-निर्माण सत्संकल्प का पाठ करना चाहिए ।

आत्म-कल्याण की माला जपते समय गायत्री माता की गोदी में खेलने का और विश्व-कल्याण की माला जपते समय दीपक पर पतंग का आत्म-समर्पण करने की लोक मंगल के लिए विश्व मानव के लिए अपने अस्तित्व को समर्पित करने का ध्यान भावनापूर्वक करते रहना चाहिए । दोनों ही ध्यान बड़े प्रेरक हैं । उन्हें परिपूर्ण श्रद्धा और प्रगाढ़ भावना के साथ इस प्रकार करना चाहिए कि सचमुच वैसी ही स्थिति अनुभव होने लगे ।

इस ध्यान मिश्रित जप और ध्यान को पूरा होने पर विसर्जित करते हुए भगवान् को नमस्कार, प्रणाम करना चाहिए और अक्षत वर्षा करके विदा करना चाहिए । पूजा के प्रारम्भ में जल अग्नि को साक्षी करने के लिए जहाँ धूपबत्ती जलाई जायें वहीं एक छोटा लोटा जल भर कर कलश रूप में भी रखनी चाहिए और पूजा के अन्त में उसे सूर्य नारायण की दिशा में प्रातः पूर्व की ओर तथा सायं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पश्चिम में अर्घ्य चढ़ा देना चाहिए । अर्घ्य का मन्त्र याद न हो तो गायत्री मन्त्र से काम चल सकता है ।

अधजली अगरबत्ती या दीपक की बत्ती दूसरे दिन काम में नहीं आती, इसलिए उसे पूजा के बाद भी जलती ही छोड़ देना चाहिए ताकि अपने आप जल कर समाप्त हो जाय ।

प्रातःकाल एक बार तो इस तरह पूजा करना आवश्यक ही है । सम्भव हो सके तो शाम को भी करना चाहिए । शाम को एक माला आत्म कल्याण की करने से भी काम चल सकता है । आत्म-शुद्धि पाँच संध्या विधान और सप्त विधि पूजा सायंकाल को भी करनी चाहिए । घर के अन्य लोगों को भी, स्त्री बच्चों को भी यह प्रेरणा देनी चाहिए कि वे उस पूजा स्थली के समीप बैठ कर कम से कम एक माला गायत्री मन्त्र की सभी कर लिया करें । सप्त विधि पूजा एक बार कर ली गई हो तो बार-बार करने की आवश्यकता नहीं रह जाती । घर में पूजा स्थली की स्थापना उसके निकट बैठ कर पूजा, उपासना का क्रम हर सद्गृहस्थ को अपने यहाँ चलाना चाहिए । स्वयं तो नियमित उपासना करनी चाहिए । प्रयत्न यह भी करना चाहिए कि बैठ कर थोड़ी बहुत उपासना अवश्य कर लिया करें । घर में आस्तिकता का भक्ति भावना का वातावरण रहना परिवार की भावनात्मक समृद्धि और आत्मिक शुद्धि के लिए अति आवश्यक है ।

आत्म-कल्याण जप के साथ पय-पान का ध्यान

आत्म-कल्याण के लिए गायत्री महामन्त्र की पहली एक माला जप करते समय अपने को एक वर्ष आयु के छोटे बालक के रूप में अनुभव करना चाहिए और सर्व शक्तिमान गायत्री माता की गोद में खेलने, क्रीड़ा-कल्लोल करने की भावना करनी चाहिए । उनका पय-पान करते हुए अनुभूति जगानी चाहिए कि इस अमृत दूध के साथ मुझे आदर्शवादिता, उत्कृष्टता, ऋतम्भरा-प्रज्ञा, सज्जनता एवं सदाशयता जैसी दिव्य आध्यात्मिक विभूतियाँ उपलब्ध हो रही हैं और उनके माध्यम से अपना अन्तःकरण एवं व्यक्तित्व महान बनता चला जा रहा है ।

ध्यान का स्वरूप नीचे दिया जाता है :

(१) प्रलय के समय बची हुई अनन्त-अनन्त जलराशि में कमल के पत्ते पर तैरते हुए बाल भगवान का चित्र बाजार में बिकता है । वह चित्र खरीद लेना चाहिए और उसी के अनुरूप अपनी स्थिति अनुभव करनी चाहिए । इस संसार से ऊपर नील आकाश और नीचे नील जल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं । जो कुछ भी दृश्य पदार्थ इस संसार में थे । वे इस प्रलय काल में ब्रह्म के भीतर तिरोहित हो गये । अब केवल अनन्त शून्य बचा है, जिसमें नीचे जल और ऊपर आकाश के अतिरिक्त और कोई वस्तु शेष नहीं । यह उपासना भूमिका के वातावरण का स्वरूप है । पहले इसी पर ध्यान एकाग्र किया जाये ।

(२) मैं कमल पत्र पर पड़े हुए एक वर्षीय बालक की स्थिति में निश्चिन्त भाव से पड़ा क्रीड़ा-कल्लोल कर रहा हूँ । न किसी बात की चिन्ता है, न आकांक्षा और न आवश्यकता । पूर्णतया निश्चिन्त, निर्भय, निर्द्वन्द्व, निष्काम जिस प्रकार छोटे बालक की मनोभूमि हुआ करती है, ठीक वैसी ही अपनी है । विचारणा का सीमित क्षेत्र एकाकीपन के उल्लास में ही सीमित है । चारों ओर उल्लास एवं आनन्द का वातावरण संव्याप्त है । मैं उसी की अनुभूति करता हुआ परिपूर्ण तृप्ति एवं सन्तुष्टि का आनन्द ले रहा हूँ ।

(३) प्रातःकाल जिस प्रकार संसार में अरुणिमा युक्त स्वर्मिण आभा के साथ भगवान सविता अपने समस्त वरेण्यं, दिव्य, भर्ग, ऐश्वर्य के साथ उदय होते हैं, उसी प्रकार उस अनन्त आकाश की पूर्व दिशा में ब्रह्म की महान शक्ति गायत्री का उदय होता है । उसके बीच अनुपम सौन्दर्य से एक अलौकिक सौन्दर्य की प्रतिमा जगद्धातृ गायत्री माता प्रकट होती हैं । वे हँसती मुस्कराती अपनी ओर बढ़ती आ रही हैं । हम बालसुलभ किलकारियाँ लेते हुए उनकी ओर बढ़ते चले जाते हैं । दोनों माता-पुत्र आलिंगन आनन्द से आबद्ध होते हैं और अपनी ओर से असीम वात्सल्य की गंगा-यमुना प्रवाहित हो उठती है । दोनों का संगम परम-पावन तीर्थराज बन जाता है ।

माता और पुत्र के बीच क्रीड़ा-कल्लोल भरा स्नेह-वात्सल्य का आदान-प्रदान होता है । उसका पूरी तरह ध्यान ही नहीं भावना भूमिका में भी उतारना चाहिए । बच्चा माँ के बाल, नाक आदि पकड़ने की चेष्टा करता है, मुँह नाक में अँगुली देता है, गोदी में ऊपर चढ़ने की चेष्टा करता है, हँसता, मुस्कराता और अपने आनन्द की अनुभूति उछल-उछल कर प्रकट करता है । वैसी ही स्थिति अपनी अनुभव करनी चाहिए । माता अपने बालक को पुकारती है, उसके सिर पीठ पर हाथ फिराती है, गोदी में उठाती छाती से लगाती, दुलराती है, उछालती है, वैसी ही चेष्टाएँ माता की ओर से प्रेम उल्लास के साथ हँसी-मुस्कान के साथ की जा रही हैं ऐसा ध्यान करना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्मरण रहे केवल उपर्युक्त दृश्यों की कल्पना करने से ही काम न चलेगा वरन् प्रयत्न करना होगा कि वे भावनाएँ भी मन में उठें, जो ऐसे अवसर पर स्वाभाविक माता पुत्र के बीच उठती रहती हैं । दृश्य की कल्पना सरल है पर भाव की अनुभूति कठिन है । अपने स्तर को वयस्क व्यक्ति के रूप में अनुभव किया गया तो कठिनाई पड़ेगी, किन्तु यदि सचमुच अपने को एक वर्ष के बालक की स्थिति में अनुभव किया गया, जिसको माता के स्नेह के अतिरिक्त और कोई भी प्रिय वस्तु होती ही नहीं, तो फिर विभिन्न दिशाओं में बिखरी हुई अपनी भावनाएँ एकत्रित होकर उस असीम उल्लास भरी अनुभूति के रूप में उदय होंगी जो स्वभावतः हर माता और हर बालक के बीच में निश्चित रूप में उदय होती हैं । प्रौढ़ता को भुलाकर शैशव का शरीर और भावना स्तर कर सकना यदि सम्भव हो सका तो समझना चाहिए कि साधक ने एक बहुत बड़ी मंजिल पार कर ली ।

मन प्रेम का गुलाम है । मन भागता है पर उसके भागने की दिशा अप्रिय से प्रिय भी होती है । जहाँ प्रिय वस्तु मिल जाती है, वहाँ वह ठहर जाता है । प्रेम ही सर्वोपरि प्रिय है । जिससे भी अपना प्रेम हो जाय वह भले ही कुरूप या निरूप भी हो पर लगता परम प्रिय है । मन का स्वभाव प्रिय वस्तु के आस-पास मँडराते रहने का है । उपर्युक्त ध्यान साधना में गायत्री माता के प्रति प्रेम भावना का विकास करना पड़ता है । फिर उसका सर्वांग सुन्दर स्वरूप भी प्रस्तुत है । सर्वांग सुन्दर प्रेम की अधिष्ठात्री गायत्री माता का चिन्तन करने से मन उसी परिधि में घूमता रहता है । उसी क्षेत्र में क्रीड़ा कल्लोल करता रहता है । अतएव मन को रोकने, वश में आवश्यकता करने की एक बहुत बड़ी आध्यात्मिकी भी इस साधना के माध्यम से पूरी हो जाती है ।

इस ध्यान धारणा में गायत्री माता को केवल एक नारी-मात्र नहीं माना जाता है । वरन् सत्-चित् आनन्द स्वरूप, समस्त सद्गुणों, सद्भावनाओं, सत्प्रवृत्तियों का प्रतीक, ज्ञान-विज्ञान का प्रतिनिधि और शक्ति सामर्थ्य का स्रोत मानते हैं । प्रतिमा नारी की भले ही हो पर वस्तुतः वह ब्रह्म-चेतना क्रम दिव्य ज्योति बन कर ही अनुभूति में उतरे ।

जब माता के स्तन-पान का ध्यान किया जाय तो यह भावना उठनी चाहिए कि दूध एक प्रकार का दिव्य प्राण है जो माता के वक्ष-स्थल से निकल कर मेरे द्वारा उदर में जा रहा है और वहाँ एक धवल विद्युत धारा बन कर शरीर के अंग-प्रत्यंग (रोम-रोम) में ही नहीं, वरन् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, हृदय, अन्तःकरण, चेतना एवं आत्मा में समाविष्ट हो रहा है । स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों में, अन्नमय कोश, मनोमय कोश, प्राणमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोशों में समाए हुए अनेक रोग शोक, कषाय-कल्मषों का निराकरण कर रहा है । इस पय-पान का प्रभाव एक कायाकल्प कर सकने वाली संजीवनी रसायन जैसा हो रहा है । मैं नर से नारायण, पुरुष से पुरुषोत्तम, अणु से विभु, क्षुद्र से महान और आत्मा से परमात्मा के रूप में विकसित हो रहा हूँ । ईश्वर के सद्गुण धीरे-धीरे व्यक्तित्व का अंग बन रहे हैं । मैं द्रुतगति से उत्कृष्टता की ओर अग्रसर हो रहा हूँ । मेरा आत्म-बल असाधारण रूप में प्रखर हो रहा है ।

ब्रह्मसंध्या और उसके मन्त्र

आसन पर बैठ कर अपने शरीर और मन को पवित्र बनाने के लिए, देहगत पाँच तत्वों को शुद्ध करने के लिए भूतशुद्धि की जाती है । इसे ही ब्रह्म संख्या भी कहते हैं । सन्ध्या में पाँच कृत्य करने पड़ते हैं । (१) पवित्रीकरण, (२) आचमन, (३) शिखा-बन्धन, (४) प्राणायाम, (५) न्यास । इनका विधान बहुत सरल है ।

(१) पवित्रीकरण– बायें हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ से गायत्री मन्त्र पढ़कर उस जल को सिर तथा शरीर पर छिड़कें ।

(२) **आचमन–** जल भरे हुए पात्र में से दाहिने हाथ की हथेली पर जल लेकर तीन बार आचमन करें । आचमन के समय गायत्री मन्त्र पढ़ें । तीन आचमनों का तात्पर्य गायत्री की ह्रीं सत्य प्रधान, श्रीं समृद्धि प्रधान और क्लीं बल प्रधान शक्तियों का मातृ दुग्ध की तरह पान करना है।

(३) **शिखा-बन्धन–** आचमन के पश्चात् शिखा को जल से गीला करके उसमें ऐसी गाँठ लगानी चाहिए जो सिरा खींचने से खुल जाय इसे आधी गाँठ कहते हैं । गाँठ लगाते समय गायत्री मन्त्र को उच्चारण करते जाना चाहिए । शिखा-बन्धन का प्रयोजन ब्रह्मरन्ध्र में स्थित शतदल चक्र की सूक्ष्म शक्तियों का जागरण करना है । जिसके शिखा स्थान पर बाल न हों वे जल से उस स्थान को स्पर्श करलें ।

(४) **प्राणायाम–** तीसरा नियम प्राणायाम है । वह इस प्रकार करना चाहिए ।

(अ) स्वस्थ चित्त से बैठिए, मुख को बन्द कर लीजिये, नेत्रों को बन्द या अध-खुला रखिए, अब साँस को धीरे-धीरे नासिका द्वारा भीतर खींचना आरम्भ कीजिए ''ओऽम् भूर्भूवः स्वः'' इस मन्त्र का मन ही मन उच्चारण करते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलिये । भावना कीजिए कि विश्वव्यापी, दुःख-नाशक सुख स्वरूप, ब्रह्म की चैतन्य प्राण-शक्ति को मैं नासिका द्वारा आकर्षित कर रहा हूँ, इस भावना और इस मन्त्र के साथ धीरे-धीरे साँस और जितनी वायु भीतर भर सकें, भरिए ।

(ब) अब वायु को भीतर रोकिए और ''तत्सवितुर्वरेण्यं'' इस मन्त्र भाग का जप कीजिए । साथ ही भावना कीजिए कि ''नासिका द्वारा खींचा हुआ प्राण श्रेष्ठ है । सूर्य के समान तेजस्वी है । उसका तेज मेरे अंग-प्रत्यंग में भरा जा रहा है ।'' इस भावना के साथ पहले की अपेक्षा आधे समय तक वायु को रोक रखें ।

(स) अब नासिका द्वारा वायु को धीरे-धीरे निकालना आरम्भ कीजिए और ''भर्गो देवस्य धीमहि'' इस मन्त्र भाग को जापिए तथा यह दिव्य प्राण मेरे पापों का नाश करता हुआ विदा हो रहा है ऐसा मनन कीजिए । वायु को निकालने में प्रायः उतना ही समय लगना चाहिए, जितना खींचने में लगा था ।

(द) जब भीतर की वायु बाहर निकल जावे तो जितनी देर वायु को भीतर रोक रखा था उतनी ही देर बाहर रोक रखें अर्थात् बिना साँस लिए रहें और ''धियो यो नः प्रचोदयात्'' इस मन्त्र भाग को जपते रहें । साथ ही भावना करें कि ''भगवती वेद-माता गायत्री हमारी सद्बुद्धि को जाग्रत कर रही है ।''

यह क्रिया तीन बार करनी चाहिए जिससे काया के, वाणी के, मन के विविध पापों का संहार हो सके ।

(५) **न्यास-** न्यास कहते हैं धारण करने को । अंग-प्रत्यंगों में गायत्री की सतोगुणी शक्ति धारण करने, भरने, स्थापित करने, ओत-प्रोत करने के लिए न्यास किया जाता है । गायत्री ब्रह्म-सन्ध्या में अँगूठा और अनामिका उँगली का प्रयोग प्रयोजनीय ठहराया गया है । अँगूठा और अनामिका अँगुली को मिलाकर विभिन्न अंगों का स्पर्श इस भावना से करना चाहिए कि मेरे यह अंग गायत्री शक्ति से पवित्र तथा बलवान् हो रहे हैं । अंग-स्पर्श के साथ निम्न प्रकार मन्त्रोच्चारण करना--

(१) ॐ भूर्भुवः स्वः--मूर्धार्य नमः । (२) तत्सवितुः--नेत्राभ्यां नमः । (३) वरेण्य--कर्णाभ्यां नमः । (४) भर्गो--मुखाय नमः । (५) देवस्य--कण्ठाय नमः । (६) धीमहि-- हृदयाय नमः । (७) धियो योनः--नाभ्ये नमः (८) प्रचोदयात्--हस्तापादाभ्यां नमः ।

जो साकार उपासना में विश्वास रखते हैं, वे गायत्री की मूर्ति या शीशे में मढ़ा हुआ चित्र सामने रखकर उसका धूप, दीप, गन्ध, अक्षत, पुष्प, ताम्बूल, पुंगीफल आदि वस्तुएँ जो उपलब्ध हों उनसे पूजन करलें । जो निराकार उपासना पर विश्वास रखते हों वे चित्र या मूर्ति के स्थान पर अग्नि की स्थापना कर सकते हैं । धूप, अगरबत्ती, घृत का दीपक आदि की आग को गायत्री की प्रतीक मानकर उसे प्रणाम करना चाहिए । गायत्री महाशक्ति के उस पूजा स्थान पर आग मन की भावना करते हुए आह्वान मन्त्र पढ़ना चाहिए,

अः यातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मवादिनी ।
गायत्री छन्दसां माता ब्रह्मयोने नमोस्तुते ।।

पूजा के उपरान्त जप प्रारम्भ कर देना चाहिए । जप कम से कप एक माला (१०८) मन्त्र अवश्य हों । अधिक मालायें जपने की सुविधा हो तो ३, ५, ७, ९, ११ इस प्रकार विषम संख्या में मालाएँ जपनी करना चाहिए । उसके मध्य में साकार उपासक गायत्री माता की मूर्ति का और निराकार उपासक ॐ अक्षर का ध्यान करते रहें ।

जप पूरा हो जाने पर प्रार्थना स्वरूप त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थना एवं गायत्री स्त्रोत या गायत्री चालीसा का पाठ किया जाता है । यह सब याद न हो तो केवल भावना से भी प्रार्थना की जा सकती है ।

सगुणोपासक निम्न मन्त्रों से आसन, स्नान, गन्धवान आदि अर्पण करते हुए षोडशोपचार पूजन भी कर सकते हैं ।

।। आसन ।।

रम्यसुशोभन दिव्य सर्वसौख्यकगं शुभम् ।
आसन च मयादत्तं गृहाण परमेश्वरि ।।

।। स्नान ।।

गङ्गा सरस्वती रेवापयोष्णी नर्मदा जलै ः।
स्नापितासि मया देवि तथा शांति कुरुष्व मे ।।

।। गन्ध ।।

श्रीखड चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
विलेपनं सुरश्रेष्ठे चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।।

।। पुष्प ।।

माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वे प्रभो ।
मया नीतानि पुष्पाणि गृहाण परमेश्वरि ।।

।। धूप ।।

वनस्पति रसोद्भूतो गंधाढ्यो गन्ध उत्तम ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽय प्रति गृह्यताम् ।।

।। दीप ।।

आज्य च वर्ति संयुक्तं वह्निना यौजित मया ।
दीपं गृहाण देवेशि त्रैलोक्य तिमिरापहे ।।

।। नैवेद्य ।।

शर्कराघृत संयुक्तं मधुरं स्वादु चोत्तमम् ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपहार समायुक्तं नेवैद्य प्रतिगृह्यताम् ।।

।। आचमन ।।

सर्वतीर्थ समायुक्तं सुगन्धि निर्मल जलम् ।
आचम्यतां मया दत्तं गृहित्वा परमेश्वरि ।।

।। अक्षत ।।

अक्षताश्च महादेवि कुंकुमास्ताः सुशोभिताः ।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ।।

इसके बाद नियमानुसार जप करना चाहिए । जप के बाद आरती, प्रदक्षिणा, विसर्जन करना चाहिए ।

।। आरती ।।

कदली गर्वसम्भूततं कर्पूरं च प्रदीपितम् ।
आर त्रिकमहं कुर्वेपश्य मे वरदाभव ।।

।। प्रदक्षिणा ।।

यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणा पदे पदे ।।

।। विसर्जन ।।

उत्तमे शिखरे देवि भूम्यां पर्वत मूर्धनि ।
ब्राह्मणोभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ।।

यह दैनिक साधना है । प्रातःकाल का समय इसके लिए सर्वोत्तम है । जिन्हें सुविधा हो प्रातः-सायं दोनों समय कर सकते हैं । जल पात्र को सूर्य के सम्मुख अर्घ्य रूप में चढ़ा देना चाहिए । पूजा में चढ़ाई हुई वस्तुएँ चावल नैवेद्य आदि चिड़ियों को डाल देने चाहिए । पूजा की वस्तुएँ इधर-उधर पैरों में कुचलती न फिरें इसका ध्यान रखना चाहिए । यह दैनिक साधना विधि सर्वसाधारण के लिए नित्य प्रयोग करने की है । इससे मनुष्य की आत्मा निर्मल होती है, दैवी तत्व अपने भीतर बढ़ने से अनेक प्रकार के आध्यात्मिक एवम् सांसारिक शुभ परिणाम प्राप्त होते हैं ।

आत्मोत्कर्ष के लिए उपासना की अनिवार्य आवश्यकता

शरीर का नित्य स्नान कराना पड़ता है, वस्त्र नित्य धोने पड़ते हैं, कमरे में बुहारी रोज लगानी पड़ती है और बर्तन रोज ही माँजने पड़ते हैं । कारण यह है कि मलीनता की उत्पत्ति भी अन्य बातों की तरह रोज ही होती है । एक बार की सफाई सदा का काम नहीं चला सकती । मन की एक बार स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन मनन आदि से शुद्ध कर दिया जाय तो समाधान होने के बाद भी वह सदा उसी स्थिति में बना रहेगा ऐसी आशा नहीं की जानी चाहिए ।

अभी आकाश साफ है अभी उस पर धूलि, आँधी, कुहरा, बादल छाने लगें तो इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं । एक बार का समझा-समझाया हुआ मन सदा उसी निर्मल स्थिति में बना रहेगा, इसका कोई भरोसा नहीं । मलीनता शरीर, वस्त्र, बर्तन कमरे आदि को ही आये दिन गन्दा नहीं करती । मन को भी प्रभावित आच्छादित करती है कि अन्य सब मलीनताओं के निवारण की तरह मन पर छाने वाली मलीनता का भी नित्य परिष्कार आवश्यक एवं अनिवार्य मानकर चला जाय और उस परिशोधन को नित्य कर्मों में स्थान दिया जाय । उपासना का यही प्रयोजन है।

यह समझना भूल है कि पूजा करना ईश्वर पर ऐसा अहसान करना है, जिसके बदले में उसे हमारी उचित अनुचित मनोकामनाएँ पूरी करनी ही चाहिए । ओछे स्तर के लोग ऐसा ही सोचते हैं और इसी प्रलोभन से पूजा पत्री का ओंधा-सीधा ठाठा रोपते हैं । आधार ही गलत हो तो बात कैसे बने, पार कैसे पड़े ? पूजा करने वालों से दोस्ती और न करने वालों से 'कुट्टी' । यदि ऐसी रीति-नीति अपनाने लगे तो फिर ईश्वर को समदर्शी कैसे कहा जा सकेगा ? फिर संसार में कर्तव्य और पुरुषार्थ की आवश्यकता क्या रहेगी ? यदि पूजा द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करके मनोकामनाएँ पूर्ण की जा सकती हैं तो फिर इतने सस्ते और सरल मार्ग का छोड़कर क्यों कोई कष्ट साध्य गतिविधियाँ अपनाने को तैयार होगा ? यदि यह तथ्य सही होता तो मन्दिरों के पुजारी सर्व मनोरथ सम्पन्न हो गये होते और साधु पंडित जो ईश्वर का ही झँडा उठाये फिरते हैं सर्व कामना सम्पन्न रहे होते । फिर उन्हें अभाव असन्तोष क्यों सताता ? प्रत्यक्ष है कि यह वर्ग और भी अधिक दयनीय स्थिति में है । कारण कि उपासना की कामना पूर्ति का माध्यम समझा गया और आवश्यक कर्मनिष्ठा से मुँह मोड़ लिया गया । इस गलत आधार को मान्यता मिल जाने से आस्तिकता का उपकार नहीं हुआ वरन् उसे असत्य और संदिग्ध मानने की अनास्था ही बढ़ी ।

प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को मन की, जीवन की स्वच्छता को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानना चाहिए और उसका साधन जुटाने के लिए उपासना का अवलम्बन लेना चाहिए। मन असीम क्षमताओं का भण्डार है वह यदि मलीनताओं से भर जाय तो हमें अपार क्षति उठानी पड़ेगी । दाँत साफ न किये जायें तो उनमें कीड़ा लग जायेगा और मुँह से बदबू आयेगी । शरीर को स्नान न करायें तो चमड़ी पर जमा हुआ मैल अनेक बीमारियाँ पैदा करेगा । मशीनों की सफाई न की जाय तो पुर्जों में जमा हुआ कीचड़, उनका ठीक तरह से काम करना ही असम्भव कर देगा । सफाई अपने आपमें एक आवश्यक कर्म है । मेहतर, धोबी, कहार जैसे अनेक वर्ग इन्हीं कामों में जुटे रहते हैं । साबुन, फिनायल बनाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की फैक्टरियों से लेकर दन्त मंजनों तक के विशाल काय कारखाने गन्दगी के निराकरण के साधन बनाने में ही लगे रहते हैं । मन इन सबसे ऊपर है यदि उस पर निरन्तर चढ़ते रहने वाली मलीनता की उपेक्षा की गयी तो वह बढ़ते-बढ़ते इतनी अधिक हो जायेगी कि हमारा अन्तरंग ही नहीं बहिरंग जीवन भी अव्यवस्थाओं, अस्त-व्यस्तताओं और अवांछनीयता से भरा-घिरा दीखेगा ।

उपासना को नित्य कर्म में सम्मिलित करने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि आन्तरिक स्वच्छता का क्रम बिना व्यवधान के निर्बाध गति से चलता रहे । नित्य का अभ्यास ही किसी महत्त्वपूर्ण विषय में स्थिरता और प्रखरता बनाये रह सकता है । यदि पहलवान लोग नित्य का व्यायाम छोड़ दें, फौजी सैनिक परेड की उपेक्षा कर दें तो फिर उनकी प्रवीणता कुछ ही दिन में अस्त-व्यस्त हो जायेगी । स्कूली पढ़ाई छोड़ने के बाद जिन्हें फिर कभी पुस्तकें उलटने का अवसर नहीं मिलता, वे उस समय के सारे प्रशिक्षण भूल जाते हैं । याद केवल उतना ही अंश रहता है, जितना काम में आता रहता है । मन की भी यही स्थिति है, वह पशु प्रवृत्तियों के निम्नगामी प्रवाह में तो अनायास ही बहता रहता है, पर यदि उसे उच्च स्तर पर बनाये चढ़ाये रहना हो तो पतंग उड़ाने वालों की तरह बहुत कुछ पुरुषार्थ करना होता है । पानी को कुएँ से निकालने टंकी तक पहुँचाने में नित्य ही प्रयत्न करना पड़ता है, पर नालियाँ अपने आप चलती रहती हैं । गिरा हुआ पानी अपने आप नीचे ढुलकता रहता है और उसको बिना किसी यन्त्र मशीन या प्रयास के नालियाँ बहाती रहती हैं । निकृष्ट बनाना हो तो संचित पशु-प्रवृत्ति को स्वच्छंद छोड़ देना पर्याप्त है । वे जीवन वृक्ष पर अमर बेल की तरह छा जायेंगी पर यदि उत्कृष्टता का उद्यान लगाना हो तो उसके लिए चतुर माली जैसा कला-कौशल एवं मनोयोग नियोजित करना पड़ेगा । उपासना मनःक्षेत्र को सुरक्षित उद्यान की तरह फल फूलों से लदा हुआ बनाने के कुशल पुरुषार्थ की तरह ही समझी जानी चाहिए । वस्तुतः मनोकामनाएँ पूर्ण करने का यह विवेक संगत एवं यथार्थ मार्ग है । मन देवताओं का भी देवता है । यदि उसे साध सम्भाल लिया जाय तो वह कल्प वृक्ष से कम नहीं अधिक ही उपयोगी एवं वरदानी सिद्ध होता है । उपासना इस मन रूपी कल्प वृक्ष को सुविकसित बनाने की वैज्ञानिक विधि व्यवस्था का ही नाम है ।

आत्मोत्कर्ष में अभिरुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उपासना अपने नित्य क्रम में सम्मिलित करनी ही चाहिए । यह नहीं सोचना चाहिए कि हम ईश्वरीय आदेशों का पालन करते हैं फिर उपासना की क्या जरूरत ? लुहार, बढ़ई, मूर्तिकार आदि शिल्पी अपने श्रम और प्रयोजन में लगे रहते हुए भी यह आवश्यक समझते हैं कि उनके औजारों पर जल्दी-जल्दी धार धरी जाती रहे । नाई अपने काम में ठीक तरह लगा रहता है, पर उस्तरा तो उसे बार-बार तेज करना पड़ता है । मन ही वह औजार है जिससे क्रिया-कलापों को ठीक तरह करते रह सकना सम्भव होता है । यदि भोंथरा होने लगे तो फिर कर्तृत्व का स्तर भी गिरने लगेगा । इसलिए जहाँ अन्य अनेक कार्यों में समय लगाया जाता है वहाँ मन की मलीनता को स्वच्छ करने और उसे प्रखर बनाने के प्रयास को भी नित्य का एक आवश्यक कर्तव्य माना जाना चाहिए । पेट की भूख बुझाने के लिए बार-बार भोजन करना पड़ता है । आत्मा की भूख बुझाने के लिए भी उसे उपासना का आहार बार-बार नित्य ही दिया जाना आवश्यक है ।

पुरुषार्थ की प्रखरता में उपासना अत्यधिक सहायक होती है, उसे समय नष्ट करने वाली बाधा नहीं माना जाना चाहिए । पारलौकिक पुरुषार्थों में अधिक उत्कृष्टता लाने के लिए अपने समय का एक अंश उपासना में नियत रूप से लगाना चाहिए । धुले कपड़े पर टिनोपाल लगा देने से, लोहा करने से और भी सुन्दरता आ जाती है । निर्मल और उज्ज्वल जीवन क्रम रहते हुए भी यदि उपासना का अवलम्बन ग्रहण किया जायेगा तो उसमें लगे हुए समय की कहीं अधिक सुन्दर सुव्यवस्था जीवन क्रम में विकसित होगी । शर्त यही है कि उपासना मात्र कर्मकाण्ड होकर न रह जाय, उसमें भावना के समन्वय की प्राण प्रतिष्ठा अनिवार्य रूप से जुड़ी रहे ।

हर विचारशील को समझाया जाय कि यह समय की बर्बादी नहीं वरन् उसके श्रेष्ठतम सदुपयोग की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है ।

अधिक प्रभावशाली साधनाएँ तपश्चर्याएँ अनेक हैं । उन्हें कार्यान्वित एवं फलित करने की सम्भावना तभी रहेगी जब प्रारम्भिक उपासना क्रम ठीक से चलने जमने लगे । एकदम उछल कर चक्र वेधन, कुण्डलिनी जागरण, समाधि, ईश्वर दर्शन जैसे प्रसंगों के लिए लालायित होना व्यर्थ है । यह उछलकर चढ़ने का नहीं, क्रमिक रूप से मंजिल पार करने का राजमार्ग है । यदि ऐसा न होता तो स्वयं गुरुदेव को क्यों पैंतालीस वर्ष पापड़ बेलने पड़ते और अब इस वृद्धावस्था में भी क्यों अपने को इस तरह धुनते । कोई जादू ही तुर्तफुर्त चमत्कार दिखा सकता है, पर यह ध्यान रखना चाहिए कि वह जल्दबाजी का जादू अस्थिर होता है। बाजीगर दस मिनट में झोली में से गुठली से आम का पौधा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और उस पौधे पर फल लगा देता है, पर यह छलावा भर होता है। यदि वह बात वास्तविक होती तो बाजीगर पैसे-पैसे को हाथ न फैलाता । अब तक आमों का विशाल व्यापार करके लखपति करोड़पति बन गया होता । भले ही आप अपनी पूजा विधि के बाहरी स्वरूप को अपनी रुचि और परम्परा के अनुसार बनाये रखें पर उसमें भावना का प्राण अवश्य जोड़ें । अनेक मतान्तरों की पूजा-प्रक्रिया भिन्न हो सकती है । पर उनके भीतर भावनात्मक तथ्य तो समुचित मात्रा में रहना ही चाहिए ।

उपासना क्रम के अभ्यासियों को उच्चस्तरीय अनुदान भी साधना क्षेत्र में मिल सकते हैं । सम्भव है अगले दिनों उन्हें अपने तप अंश का कुछ प्रत्यावर्तन जीवन्त आत्माओं में करना पड़े । इस बीज को बोने का ठीक परिणाम निकले। इसके लिए यह आवश्यक है कि भूमि जोतने और उसमें नमी रखने का प्रयास पहले से ही चलता रहा हो । जो भूमि न जोती गई है, न जिसमें खाद पानी की मात्रा है उसमें बहुमूल्य बीज या पौधे का आरोपण भी निरर्थक चला जायेगा । इसलिये आवश्यक है कि इस दिशा में प्रगति की सच्चे मन से आकांक्षा करने वाले अपने नित्य कर्म में उपासना की प्रक्रिया को सम्मिलित कर लें ।

उपासनाएँ सफल क्यों नहीं होतीं ?

उपासना देवी-देवताओं की करी जाती है । स्वयं भगवान अथवा उनके समाज परिवार के देवी-देवता ही आमतौर से जन-साधारण की उपासना के केन्द्र होते हैं । विश्वास यह किया जाता है कि पूजा, अर्चा, जप, स्तुति, दर्शन, भोग, प्रसाद आदि धर्म कृत्यों के माध्यम से भगवान अथवा देवताओं को प्रसन्न किया जा सकता है और जब वे प्रसन्न होते हैं, तो उनसे इच्छानुसार वरदान प्राप्त करके अभीष्ट सुख सुविधाओं से लाभान्वित हुआ जा सकता है ।

यह मान्यता कई बार सही साबित होती है, कई बार गलत । प्राचीनकाल के इतिहास पुराण देखने से पता चलता है कि कितने ही साधकों और तपस्वियों से कठिन उपासनाएँ करके अद्‌भुत शक्तियाँ, विभूतियाँ एवं उपलब्धियाँ प्राप्त कीं । स्वयं भी इतने समर्थ हुए कि दूसरों को अपनी साधना का एक अंश देकर वरदान आशीर्वाद से लाभान्वित कर सके । भारत ही नहीं संसार भर का पुराण ऐसी ही घटनाओं से भरा पड़ा है, जिनमें चर्चा के प्रमुख पात्रों में से अधिकांश की सामर्थ्य और विशेषताएँ देव प्रदत्त थीं । ऋषियों, तपस्वियों, सन्तों के जीवन चरित्रों में अधिकांश में ऐसे वर्णन मौजूद हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि उनमें कितनी ही अलौकिक विशेषताएँ थीं और उन्हें, उन्होंने तप साधना के द्वारा देवताओं से अथवा सीधे भगवान से पाया था । प्रामाणिक इतिहास में भी ऐसे अगणित प्रमाण विद्यमान हैं जिनमें साधना के फलस्वरूप अनेक व्यक्तियों ने अपने व्यक्तित्वों में ऐसी विशेषताएँ उत्पन्न कीं जो सर्वसाधारण के लिए सम्भव या सुगम नहीं होतीं । अभी भी ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं जो उपरोक्त तथ्य को अपने अद्‌भुत व्यक्तित्व या कर्तृत्व के द्वारा सही सिद्ध कर रहे हैं ।

साथ-साथ यह भी देखने में आता है कि घर-बार छोड़कर पूरा समय देवराधना में लगाये हुए व्यक्ति साधना आरम्भ करने के बाद और भी अधिक गुजरी स्थिति में चले गये । न तो उनमें कोई प्रत्यक्ष विशेषता देखी गई न आत्मिक महत्ता न उन्हें सुख प्राप्त था, न शान्ति । स्वास्थ्य से लेकर सम्मान तक कोई भी सम्पदा उनके पास नहीं थी और न विवेक से आत्मबल तक कोई प्रतिभा विशेषता उपलब्ध हुई, वरन् जिस स्थिति में उन्होंने वह उपासनात्मक प्रक्रिया अपनायी पीछे उनकी स्थिति हर प्रकार बिगड़ती ही चली गई । भौतिक सुख सम्पत्ति न सही आत्मिक शान्ति और विभूति का प्रकाश मिला होता तो भी सन्तोष किया जा सकता था पर वैसा भी कुछ वे प्राप्त न कर सके ।

यह स्थिति स्वाभावतः मन को असमंजस में डालती है । उसी प्रक्रिया का अवलम्बन करने से एक को लाभ एक को हानि ऐसा क्यों ? एक को सिद्धि दूसरे के हाथ निराशा यह किसलिये ? कैसे ? वही देवता, वही मन्त्र, वही विधि, एक की फलित एक की निष्फल इसका क्या कारण ? यदि भगवान या देवता और उनकी उपासना अन्ध-विश्वास है तो फिर इससे कितने ही लाभान्वित क्यों होते हैं ? यदि सत्य है तो उससे कितनों को ही निराश क्यों होना पड़ता है ? जल हर किसी की प्यास बुझाता है, सूरज हर किसी को गर्मी रोशनी देता है फिर देवता और उनके उपासना क्रम में परस्पर विरोधी प्रतिक्रियाएँ क्यों ?

इस उलझन पर अनेक दृष्टिकोणों से विचार करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि देवता या मन्त्रों में जितनी अलौकिकता दृष्टिगोचर होती है, उनसे लाभान्वित हो सकने की पात्रता साधक में होना नितान्त आवश्यक है । मात्र उपासनात्मक कर्मकाण्डों की लकीर पीट लेना इस सन्दर्भ में अपर्याप्त है । तेज धार की तलवार में सिर-काटने की क्षमता है, इसमें सन्देह नहीं पर वह क्षमता सही सिद्ध हो, इसके लिए चलाने वाले का भुजबल, साहस एवं कौशल भी आवश्यक है । बिजली में सामर्थ्य की कमी नहीं पर उससे लाभान्वित होने के लिए उसी प्रकार के यन्त्र चाहिए । यन्त्र उपकरणों के अभाव में बिजली का उपयोग व्यर्थ ही होगा अनर्थ मूलक भी बन जाता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वाँति के जल से मोती वाली सीपें ही लाभान्वित होती हैं । अमृत उसी को जीवन दे सकता है जिसका मुँह खुला हुआ है । प्रकाश का लाभ आँखों वाले ही उठा सकते हैं । इन पात्रताओं के अभाव में स्वाँति का जल, अमृत अथवा प्रकाश कितना ही अधिक क्यों न हो उससे लाभ नहीं उठाया जा सकता । ठीक यही बात देव उपासना के सम्बन्ध में लागू होती है । घृत सेवन का लाभ वही उठा सकता है, जिसकी पाचन क्रिया ठीक हो, देवता और मन्त्रों का लाभ वे ही उठा पाते हैं जिन्होंने व्यक्तित्व को भीतर और बाहर से विचार और आचार से परिष्कृत बनाने की साधना कर ली है । औषधि का लाभ उन्हें ही मिलता है जो बताये हुए अनुपात और पथ्य का भी ठीक तरह प्रयोग करते हैं । अतः पहले आत्म उपासना फिर देव उपासना की शिक्षा ब्रह्म विद्या के विद्यार्थियों को दी जाती रही है । लोग उतावली में मन्त्र और देवता के भगवान और भक्ति के पीछे पड़ जाते हैं इससे पहली आत्मशोधन की आवश्यकता पर ध्यान ही नहीं देते । फलतः उन्हें निराश ही होना पड़ता है । बादल कितना ही जल क्यों न बरसाये, उसमें से जिसके पास जितना बड़ा पात्र है उसे उतना ही मिलेगा । निरन्तर वर्षा होते रहने पर भी आँगन में रखे हुए पात्रों में उतना ही जल रह पाता है, जितनी उनमें जगह होती है । अपने भीतर जगह को बढ़ाये बिना कोई बर्तन बादलों से बड़ी मात्रा में जल प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकता । देवता और मन्त्रों से लाभ उठाने के लिए भी पात्रता नितान्त आवश्यक है ।

गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से, आचरण और चिंतन की दृष्टि से यदि मनुष्य उत्कृष्टता और आदर्शवादिता से अपने को सुसम्पन्न करलें तो उनके कषाय-कल्मषों की कालिमा हट सकती है और अन्तःकरण तथा व्यक्तित्व शुद्ध, स्वच्छ, पवित्र एवं निर्मल बन सकता है । ऐसा व्यक्ति मन्त्र, उपासना, तपश्चर्या का समुचित लाभ उठा सकता है और देवताओं के अनुग्रह का अधिकारी बन सकता है । जब तक यह पात्रता न हो तब तक उत्कृष्ट वरदान माँगने की दूरदर्शिता ही उत्पन्न न होगी और साधना के पुरुषार्थ से कुछ भौतिक लाभ भले मिल जाय, देवत्व का एक कण भी उसे प्राप्त न होगा । आसुरी भूमिका पर कोई सिद्धि मिल भी जाय तो अन्ततः उसके लिए घातक ही सिद्ध होगी । असुरों की साधना और उसके आधार पर मिली हुई सिद्धियों से उनका अन्ततः सर्वनाश ही उत्पन्न हुआ । आध्यात्म विज्ञान का समुचित लाभ लेने के लिए साधक का अन्तःकरण एवं व्यक्तित्व जितना निर्मल होगा, उतनी ही उसकी उपासना सफल होगी । धुले कपड़े पर रंग आसानी से चढ़ता है मैले पर नहीं । स्वच्छ व्यक्तित्व सम्पन्न साधक किसी भी पूजा उपासना का आशाजनक लाभ सहज ही प्राप्त कर सकता है।

भगवान और देवता कहाँ हैं ? किस स्थिति में हैं ? उनकी शक्ति कितनी है ? इस तथ्य का सही निष्कर्ष यह है कि यह दिव्य चेतन सत्ता निखिल विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त है और पग-पग पर उनके समक्ष जो अणु गति जैसी व्यस्तता के कार्य प्रस्तुत हैं उन्हें पूरा करने में संलग्न हैं । उनके समक्ष असंख्य कोटि प्राणियों की जड़ चेतन की बहुमुखी गतिविधियों को सम्भालने का विशालकाय कार्य पड़ा है सो वे उसी में लगी रहती हैं । एक व्यवस्थित नियम और क्रम उन्हें इन ग्रह-नक्षत्रों की तरह कार्य संलग्न रखता है । व्यक्तिगत सम्पर्क में घनिष्टता रखना और किसी की भावनाओं के उतार-चढ़ाव की बातों पर बहुत ध्यान देना उनके समग्र रूप से सम्भव नहीं । वे ऐसा करती तो हैं पर अपने एक अंश-प्रतिनिधि के द्वारा । दिव्य सत्ताओं ने हर मनुष्य के भीतर उसके स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों में अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष जैसे आवरणों में अपना एक-एक अंश स्थापित किया हुआ है और यह अंश प्रतिनिधि ही उस व्यक्ति की इकाई को देखता सम्भालता है । वरदान आदि को व्यवस्था इसी प्रतिनिधि द्वारा सम्पन्न होती है ।

व्यक्ति की अपनी निष्ठा, श्रद्धा, भावना के अनुरूप यह देव अंश समर्थ बनते हैं और दुर्बल रहते हैं । एक साधक की निष्ठा में गहनता और व्यक्तित्व में प्रखरता हो तो उसका देवता समुचित पोषण पाकर अत्यन्त समर्थ दृष्टिगोचर होगा और साधक की आशाजनक सहायता करेगा । दूसरा साधक आत्मिक विशेषताओं से रहित हो तो उसके अन्तरंग में अवस्थित देव अंश पोषण के अभाव में भूखा, नंगा, रोगी दुर्बल बनकर एक कोने में कराह रहा होगा । पूजा भी नकली दवा की तरह भावना रहित होने से उस देवता को परिपुष्ट न बना सकेगी और वह विधिपूर्वक मन्त्र जप आदि करते हुए भी समुचित लाभ न उठा सकेगा ।

विराट् ब्रह्म कितना ही महान क्यों न हो, व्यक्ति की इकाई में वह उस प्राणी की परिस्थिति में पड़ा हुआ लगभग उससे थोड़ा ही अच्छा बनकर रह रहा होगा । अन्तरात्मा की पुकार निश्चित रूप से ईश्वर की वाणी है, पर वह हर अन्तःकरण में समान रूप में प्रबल नहीं होती । सज्जन के मस्तिष्क में मनोविकारों का एक झोंका घुस जाय तो भी उसकी अन्तरात्मा प्रबल प्रतिकार के लिए उठेगी और उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसी बुरी तरह धिक्कारेगी कि पश्चाताप ही नहीं प्रायश्चित्त किये बिना भी चैन न पड़ेगा । इसके विपरीत दूसरा व्यक्ति जो निरन्तर क्रूर कर्म ही करता रहता है उसकी अन्तरात्मा यदाकदा बहुत हल्का-सा प्रतिवाद ही करेगी और वह व्यक्ति उसे आसानी से उपेक्षित करता रहेगा । ईश्वर दोनों के हृदय में है दोनों की अन्तरात्मा की प्रकृति एक-सी है दोनों ही अपना कर्तव्य निभाती हैं । पर दोनों की स्थिति सर्वथा भिन्न है । सज्जन ने सत्प्रवृत्तियों को पोषण देकर अपनी अन्तरात्मा को निर्मल बनाया है, उसकी प्रबलता कभी शाप वरदान के चमत्कार भी प्रस्तुत कर सकती है । पर दूसरों ने अपनी आत्मा को निरन्तर पद-दलति करके उसे भूखा रखकर दुर्बल बना रखा है, वह न तो प्रबल प्रतिरोध कर सकती है और न कभी उसके द्वारा ईश्वर की पुकार आदि की जाय तो उसका कुछ प्रतिफल निकल सकता है ।

सर्वव्यापी, साक्षी, दृष्टा, कर्ता, हर्ता, सत-चित-आनन्द आदि विभूतियों से संपन्न विराट् ब्रह्म है । देव शक्तियाँ भी अपनी सीमित परिधि के अनुरूप निखिल ब्रह्माण्ड में संव्याप्त और निर्धारित प्रयोजनों में तत्पर हैं । उन विराट् सत्ताओं की उपासना सम्भव नहीं । उपासना के लिए प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक छोटा-सा प्रतिनिधि उनका मौजूद है । साधक और तपस्वी अपनी निष्ठा के अनुरूप उसका पोषण करते समर्थ बनाते और लाभ उठाते हैं । एक ग्वाले की गाय स्वस्थ और सुन्दर और बहुत दूध देती है दूसरे की ठीक वैसी ही होने पर भी दुबली रुग्ण और कम दूध देती है । इसका कारण उन दोनों ग्वालों की गौ सेवा में न्यूनाधिकता का होना ही है । अपने अन्तरंग में अवस्थित देवता को (भगवान को) अपनी आस्थानिष्ठ, पवित्रता आदि विशेषताओं के द्वारा समर्थ बनाया जाता है । इसके उपरान्त ही पूजा उपासना रूपी बाल्टी में दूध दुहने की बात बनती है ।

रामकृष्ण परमहंस की काली ने विवेकानन्द को आत्म शक्ति से सम्पन्न बनाकर उन्हें महामानवों की पंक्ति में ला खड़ा किया । दूसरे तान्त्रिक, अघोरी कापालिक, ओझा, उसी काली देवी से झाड़ फूँक के छुटपुट प्रयोजन ही पूरे कर पाते हैं । विराट् महाकाली एक है । पर रामकृष्ण परमहंस के अन्तरंग में परिपोषित काली अंश की क्षमता उसके अनुरूप थी और ओझा अघोरी लोगों की काली बहुत दुर्बल और ओछे किस्म की होती है । अर्जुन के कृष्ण की सामर्थ्य अलग थी । मीरा सूर के कृष्ण अलग थे और रासलीला करने वालों के पुजारियों के कृष्ण अलग हैं । आकृति प्रतिमा दोनों की एक-सी हो सकती है पर सामर्थ्य में असाधारण अन्तर होगा । यह अन्तर उन साधकों की आन्तरिक स्थिति के कारण विनिर्मित हुआ होता है ।

इस तथ्य को समझने से हमें असमंजस और भ्रम में पड़ना पड़ेगा, निराशा हाथ लगेगी और सम्भव है तब उपेक्षा ही नहीं नास्तिकता भी सामने आ खड़ी हो । उसी विधान से एक व्यक्ति आश्चर्यजनक प्रतिफल प्राप्त करता है और ठीक उसी रीति-नीति को अपना कर दूसरा व्यक्ति सर्वथा निराश असफल रहता है । इसमें न विधि-विधान को दोष दिया जाना चाहिए और न देवता की निष्ठुरता या भाग्य को कोसा जाना चाहिए । तथ्य यही है कि हमने अपने इष्ट देव को इतना परिपुष्ट नहीं बनाया कि वे हमारी प्रार्थना के अनुरूप उठ खड़े होने और सहायता कर सकने में समर्थ होते । द्रौपदी के कृष्ण अलग थे । वे एक पुकार सुनते ही दौड़कर आये । हमारे कृण अलग हैं वे लगभग लंघन में पड़े रोगी की तरह हैं, पुकार सुनने और सहायता के लिए खड़े होने की सामर्थ्य उनके हाथ पैरों में है नहीं, फिर वे प्रार्थना का क्या उत्तर दें ।

अध्यात्म विद्या के तत्व दर्शियों ने इस तथ्य को छिपाया नहीं है । उन्होंने सदा यह कहा है कि इस विराट् ब्रह्म में जो कुछ दिव्य, महान, पवित्र, प्रखर है उसका एक अंश हर व्यक्ति के भीतर विद्यमान है । जो चाहे उसे ठीक तरह सँजोये सम्भालने में लग सकता है और उन मणि मुक्ताओं से अपने जीवन भाण्डागार को भरा पूरा कर सकता है । उपेक्षा करने अथवा दुर्गति करने से वे निरर्थक ही बनकर रह जायेंगे । हर किसी के मस्तिष्क में गणेश विद्यमान हैं जो बुद्धि विकास की साधना करके अपने गणेश को परिपुष्ट बना लेगा, वह विद्वान बनकर अनेक विभूतियों के वरदान प्राप्त करेगा । जो अपने गणेश की जड़ों में पानी नहीं देगा उनके विनायक भगवान सूखे मूर्च्छित एक कोने में पड़े होंगे । लड्डू, खीर खिलाने, स्तोत्र पाठ करने पर भी वे कुछ सहायता न कर सकेंगे । बुद्धिमान और विद्वान बन सकना सम्भव न होगा । हर किसी की भुजाओं में हनुमान का निवास है । व्यायाम करने वाले संयमी ब्रह्मचारी लोग बजरंगबली के भक्त प्रमाणित हो सकते हैं, पर जिन्होंने अपने असंयमी और भ्रष्ट आचरण से हनुमान जी को पीड़ित प्रताड़ित करने में कमी नहीं छोड़ी, उनका चालीसा पाठ कुछ ज्यादा कारगर नहीं होगा । वे आरोग्य और बलिष्ठता का वरदान अपने रुग्ण हनुमान से कैसे प्राप्त कर सकेंगे ?

बाल बुद्धि, उतावले और अदूरदर्शी लोग ही उपासना को जादूगरी, बाजीगरी जैसी कोई चीज मानकर चलते हैं । उनकी कल्पना किन्हीं ऐसे देवताओं की होती है, जो स्तुति, जप, पूजा, प्रसाद के तनिक से प्रलोभन पर ललचाये जा सकते हैं और उनसे इन नगण्य उपहारों के बदले मन चाहे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लाभ उठाये जा सकते हैं । अधिकांश पूजा, उपासना में संलग्न लोगों की मनोभूमि इसकी बच्चों जैसे स्तर की होती है । वे विधि-विधानों, कर्मकाण्डों या उपहारों का तानाबाना बुनते रहते हैं और उसी टंटघंट से अपना उल्लू सीधा करने की तरकीबें भिड़ाते रहते हैं । तथाकथित भक्तों की मण्डली इसी स्तर की होती है। वे तिलक छापे लगाकर अपनी भक्ति का प्रमाण भगवान के सामने प्रस्तुत करते हैं या कुछ और खेल खड़ा करके भगवान की आँखों में धूलि झोंककर अपने असली स्वरूप को छिपाते हुए भक्त को मिलने वाले लाभ प्राप्त करना चाहते हैं । वस्तुतः न भगवान इतने भोले हैं न कोई मन्त्र ऐसा है जिसे कुछ बार जप, रटकर मनचाहा लाभ उठाया जा सके । उपासना का एक सर्वांगपूर्ण विज्ञान है । आध्यात्म विद्या को एक समग्र साइंस ही कहना चाहिए । उसके नियम और प्रयोजनों को समझ कर तदनुकूल चलने से ही लाभान्वित हुआ जा सकता है । यदि यह तथ्य लोगों ने समझा होता तो अध्यात्म मार्ग की देहरी पर पैर रखते ही पहला प्रयोग अपने अन्तरङ्ग में मूर्छित पद दलित, विभुक्षित, मलिन पड़े हुए इष्टदेव को सम्भालने संजोने का प्रयत्न किया होता । उन्हें समर्थ और बलवान बनाया होता । इस प्रथम प्रयोजन को पूरा करने के बाद मन्त्र, जप, उपासना, पूजा स्त्रोत आदि का चमत्कार देखने का दूसरा कदम उठाया गया होता तो निस्सन्देह हर उपासक को आशाजनक सफलता मिली होती और किसी को भी निराश होने, अविश्वासी बनने या असमंजस में पड़ने का अवसर न आता ।

'उपासना' की सफलता 'साधना' पर निर्भर है

आत्मिक प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ा व्यवधान उन कुसंस्कारों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जो दुर्भावों और दुष्कर्मों के रूप में मनोभूमि पर छाये रहते हैं । आकाश में बादल छाये हों तो फिर मध्यान्ह काल का सूर्य यथावत् उदय रहते हुए भी अन्धकार ही छाया रहेगा । जप-तप करते हुए भी आध्यात्मिक सफलता न मिलने का कारण एक ही है-- मनोभूमि का कुसंस्कारी होना । साधना का थोड़ा-सा गंगाजल इस गन्दे नाले में गिरकर अपनी महत्ता खो बैठता है । नाले को शुद्ध कर सकना सम्भव नहीं होता, बेशक तीव्र गंगा प्रवाह में थोड़ी-सी गन्दगी भी शुद्धता में परिणत हो जाती है । पर साथ ही यह भी सच है कि सँड़ाद भरी गन्दी गटर को थोड़ा-सा गंगाजल शुद्ध कर सकने में असमर्थ असफल रहेगा ।

साधना की अपनी महिमा और महत्ता है उसे गंगाजल से कम नहीं अधिक ही महत्त्व दिया जा सकता है पर साथ ही साथ यह भी समझ लेना चाहिए कि वह सर्व समर्थ नहीं है । गंगा जल से बनी हुई मदिरा अथवा गंगा जल में पकाया हुआ माँस नहीं गिने जायेंगे । शौचालय में प्रयुक्त होने के उपरान्त का गंगा जल भरा पात्र देव प्रतिमा पर चढ़ाने योग्य न रहेगा । गंगा जल की शास्त्र प्रतिपादित महत्ता यथावत् बनी रहे, इसके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि उसके संग्रह, उपकरण एवं स्थान की पवित्रता भी अक्षुण्ण बनी रहे ।

रंगरेज कपड़ा रंगने की प्रक्रिया उसकी धुलाई से आरम्भ करता है । यदि मैला कपड़ा रंगने के लिए दिया जाय तो पहले उसे धोयेगा । धुले हुए कपड़े पर ही रंग चढ़ना या चढ़ाया जाना सम्भव होता है । उपासना को रंगाई कह सकते हैं और साधना को धुलाई । दोनों अन्यान्याश्रित हैं । इनमें प्रधान और गौण का वर्गीकरण करना हो तो साधना को प्रधान और उपासना को गौण मानना पड़ेगा । धुला वस्त्र बिना रंगे भी अपनी गरिमा बनाये रह सकता है पर मैला वस्त्र रंग को बर्बाद करेगा और रंगरेज को बदनाम। स्वयं तो उपहासास्पद बना ही रहेगा । मैले कपड़े पर रंग चढ़ाने की सूझबूझ भी भोंड़ी ही मानी जायेगी इस प्रकार का किया श्रम भी सार्थक न रहेगा ।

आत्मिक प्रगति के पथिक आमतौर से यही भूल करते रहते हैं और असफलता का दोष उस पुण्य प्रक्रिया को देते हैं जिसे सही ढंग से अपनाने वाले सदा कृतकृत्य होते हैं । वस्तुतः यह भूल पथिकों की नहीं उनके मार्ग दर्शकों की है जिन्होंने बहुमूल्य मँहगी वस्तु की सस्ती बताकर लोगों को आकर्षित करने भर का ध्यान रखा और यह भूल गये कि अभीष्ट प्रतिफल न मिलने पर जो निराशा और अविश्वास भरी प्रतिक्रिया उत्पन्न होगी उसका क्या परिणाम होगा । सस्ते प्रलोभनों से भ्रमाया व्यक्ति आरम्भ में अति उत्साहित हो सकता है पर उसकी निराशाजनक प्रतिक्रिया नास्तिकता के रूप में ही परिणत होकर रहेगी ।

आध्यात्म तत्वज्ञान के मूल आधार से अपरिचित हैं, किन्तु उसकी ध्वजा उड़ाने वाले तथाकथित गुरु लोग ओंधी सीधी पुस्तकें रचकर यह मिथ्या मान्यता फैलाते रहते हैं कि अमुक पूजा अर्चा करने से उन्हें पाप फल के दण्ड भुगतने की छूट मिल जायेगी । यह प्रतिपादन लोगों को बहुत ही आकर्षक लगता है । क्योंकि अनाचार अपनाने वाले प्रत्यक्षतः सदाचार परायण लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक भौतिक सुख-सुविधाएँ प्राप्त कर लेते हैं । छल-छद्म का परिणाम अन्ततः बुरा ही क्यों न हो, पर तत्काल तो उन हथकण्डों से लाभ मिल ही जाता है । पाप-पथ अपनाने वाले असुर, देवताओं से अधिक बलिष्ठ रहे हैं यह स्पष्ट है। पीछे भले ही उनकी दुर्गति हुई हो पर आरम्भिक लाभ तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन्हें ही मिलता है । देवत्व प्राप्ति का आरम्भिक कार्य तप साधना की कष्टकर प्रक्रिया से आरम्भ होता है । लम्बे दूर तक उस मार्ग पर चलने के बाद ही देव पुरुष आनन्द उल्लास प्राप्त करते हैं । ऐसी दशा में तत्कालिक लाभ को प्रधानता देने वाले अदूरदर्शी लोग कुमार्गगमिता के सहारे तुरन्त लाभान्वित होने की रीति-नीति अपनाते हैं, पर उन्हें यह खुटका बना रहता है कि कभी न कभी इन कुकर्मों का कष्टकारक प्रतिफल भोगना पड़ेगा ।

इस चिन्ता से तथाकथित धर्म गुरुओं के रचे भोंड़े फूहड़ ग्रन्थ मुक्ति दिला देते हैं । उनका कहना है, कि अमुक माला जपने वाले या अमुक पूजा अर्चा करने वाले को पाप कर्मों के दण्ड भुगतने से छुटकारा मिल जाता है । यह बहुत बड़ी बात है । यदि दण्ड का भय न रहे तो फिर पाप कर्मों द्वारा प्राप्त हो सकने वाले लाभों को छोड़ने का कोई कारण ही नहीं रह जाता । इस प्रकार उपरोक्त आश्वासनों पर विश्वास करने वाले यह मान बैठते हैं कि उनके पाप कट गये । अब वे कुकर्मों के दण्ड से पूर्णतया छुटकारा पा चुके। भूतकाल में किये हुए या भविष्य में किये जाने वाले पापों के दण्ड से वह देवता या मन्त्र बचा लेगा जिसे थोड़ा-सा, जप, स्तवन, पूजन आदि करके या किसी दूसरे से करा के सहज ही बहकाया, फुसलाया और अनुकूल बनाया जा सकता है ।

इस मिथ्या मान्यता का आज बहुत प्रचलन है । हर कोई इसी सस्ते नुस्खे को दुहराता है । मतवादी यही ढोल पीटते हैं कि हमारे सम्प्रदाय में भर्ती हो जाने पर हमारा खुदा सारे गुनाह माफ कर देगा । इस बहकावे में आये बाहर से बताये हुए कर्मकाण्ड करते रहते हैं और भीतर से पाप कर्मों में निर्भय होकर प्रवृत्त रहते हैं । धर्म के नाम पर प्रस्तुत की गयी मिथ्या मान्यताओं ने आज सर्वत्र यही स्थिति उत्पन्न कर दी है और सच्चा विश्लेषण करने पर पूजा-पाठ न करने वालों की अपेक्षा उस प्रक्रिया में निरत लोग अधिक अनैतिक और अवांछनीय गतिविधियों में प्रवृत्त पाये जाते हैं । ऐसी स्थिति में आत्मिक प्रगति सर्वथा असम्भव है । जब साधना का प्रथम चरण ही पूरा नहीं किया गया तो उपासना का दूसरा चरण कैसे उठेगा । जब पहली मंजिल ही बनकर तैयार नहीं हुई तो भवन की दूसरी मंजिल बनाने की योजना कैसे पूर्ण होगी ?

उपासना से पाप न नष्ट होने का वास्तविक अर्थ यह है कि ऐसा व्यक्ति जीवन साधना के प्रथम चरण का परिपालन करते हुए दुर्भावनाओं दुष्प्रवृततियों के दुष्परिणाम समझेगा और उनसे सतर्कतापूर्वक विरत हो जायेगा, पाप नष्ट होने का अर्थ है पाप कर्म करने की प्रवृत्ति का नाश, पर उल्टा अर्थ कर दिया गया, पाप कर्मों के प्रतिफल का नाश । कदाचित ऐसी उल्टा मासी सही होती तो फिर इस संसार में पाप को ही पुण्य और कर्तव्य माना जाने लगता । फिर कोई भी पाप से न डरता । राजदण्ड से बचने की हजार तरकीबें हैं । उन्हें अपना कर अनाचारी लोग सहज ही निर्द्वन्द्व निश्चिन्त रह सकते हैं । दैव दण्ड ही एक मात्र बन्धन था सो इन धर्म ध्वजियों ने उड़ा दिया । अब असुरता को स्वच्छन्द रूप से फलने-फूलने और फैलाने का पूरा-पूरा अवसर मिल गया । पाप कर्मों के दण्ड से मुक्ति दिलाने का आश्वासन पूजा-पाठ की कीमत पर जिन्होंने भी दिया है उन्होंने मानवीय आदर्शों और अध्यात्म के मूलभूत आधारों के साथ व्यभिचार किया है ।

पाप और पुण्य का, उचित और अनुचित का अन्तर उनका दण्ड पुरस्कार ही मानव-समाज के भौतिक मेरुदण्ड को सीधा रखे हुए है । यदि उसे ही तोड़ दिया जाय तो फिर व्यक्ति और समाज की आचार संहिता का ईश्वर ही रक्षक है । पूजा उपासना का प्रयोजन मनुष्य को ईश्वर-विश्वासी अर्थात् धर्म मर्यादाओं का पालन करने के लिए व्रत-बन्ध धारण किये रहने वाला है । यदि पूजा पाप-दण्ड से मुक्ति मिलती है तो फिर यही कहना पड़ेगा कि वह नैतिक, मानवीय धार्मिक और आत्मिक मूलभूत आधारों को ही नष्ट करेगी । ऐसी दशा में यह पूजा वस्तुतः नास्तिकता से भी मँहगी पड़ेगी, पिछले दिनों वही हुआ है यही बताया सिखाया गया है । कथा-वार्ताओं में हम यही सुनते पढ़ते हैं, गुरु लोगों के पास यही सबसे बड़ा आकर्षण अपने मत के पक्ष में है । भोले लोग सस्ते मोल में परमदण्ड की बहुत विपत्ति से बचने के लिए फँसते हैं और दुहरी हानि भुगतते हैं । ईश्वरीय अकाट्य नियम इतने सरल नहीं हैं कि तनिक सी पूजा से छुई-मुई होकर सूख जायें । वे अत्यन्त कठोर हैं । विश्व का कण-कण उनकी पकड़ में जकड़ा है। ईश्वर को कोई पूजे या गाली दे विश्व-व्यवस्था कर्मफल की अपरिहार्य प्रक्रिया में तनिक भी ढील करने वाली नहीं है । ऐसी दशा में पूजा जिस प्रलोभन से की गई थी, ईश्वर की प्रसन्नता की जिस आधार पर आशा बाँधी गई थी, वह बालू के महल की तरह ढह जाती है ।

उपासना की असफलता का एक मात्र कारण है आत्मिक प्रगति की पहली मंजिल साधना की उपेक्षा । गुण-कर्म स्वभाव का परिष्कार साधना का मूलभूत उद्देश्य है । उसका स्वरूप है आत्म-बोध, आत्म-चिंतन, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण, आत्म-विकास । यही आत्म देव का सच्चा पंचोपचार पूजन है । जो उसे कर सकता है उसी की पूजा उपासना सफल होती है । निराकार, निर्विकार परमेश्वर की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साकार प्रतिमा उपासना को व्यावहारिक रूप देने के लिए बनायी जाती है । इसी प्रकार जल, दीप, नैवेद्य, पुष्प, चन्दन के पंच विधि पूजा उपकरण प्रयुक्त किये जाते हैं । इस देवार्पण के पीछे जीवन साधना की ओर इंगित करने वाला गहरा तत्वज्ञान सन्निहित है । उसे यदि न समझा जाय और मात्र उपासनात्मक कर्मकाण्डों को ही सब कुछ मान लिया जाय तो यही कहना पड़ेगा कि यथार्थता को भुला कर विडम्बना की उलझन में पैर फँसा दिया गया ।

उपासना की पूर्व भूमिका जीवन साधना से आरम्भ होती है । तपश्चर्या का प्रयोजन मनोभूमि पर छाये हुए कुसंस्कारों का निराकरण है । एक बार समझ लेना चाहिए कि साधना सर्फ पाउडर है और उपासना 'टिनोपाल' कपड़े को जर्क-वर्क धुला हुआ बनाना हो तो दोनों का उपयोग करना चाहिए । कपड़े को सर्प में धोकर मल रहित करना चाहिए और तदनन्तर टिनोपाल की नीली झलक देनी चाहिए । यह भूल नहीं करनी चाहिए कि धोते में बहुत झंझट समझ कर उसे उपेक्षित विस्मृत कर दिया जाय और मात्र टिनोपाल के छींटे लगाकर चमचमाते वस्त्र पहनने की आशा रखी जाय ।

आत्मिक प्रगति के लिए उपासना का अपना महत्त्व है । जब आवश्यक है । आसन, प्राणायाम क्रिया, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि की छः मंजली इमारत बनानी ही चाहिए । पर उसमें यह नियम का ईंट चूना नींव में गहराई तक भर के नींव पक्की कर लेनी चाहिए । मंत्र विद्या का महात्म्य बहुत है । योग साधना की गरिमा गगनचुम्बी है । विविध-विधि उपासनाएँ चमत्कारी परिणाम उत्पन्न करती हैं । ऋद्धि-सिद्धियों को चर्चा काल्पनिक नहीं है, पर वह सारा आकर्षक विवरण, कथासार आकाश कुसम ही बना रहेगा जब तक, साधना की पृष्ठभूमि को अनिवार्य मान कर न चला जायेगा ।

ओछी मनोभूमि के व्यक्ति यदि किसी प्रकार किसी तन्त्र विधि से कुछ लाभ वरदान प्राप्त कर भी लें तो वह भी अन्ततः उनके लिए विपत्ति ही सिद्ध होगी । आमाशय में अर्बुद और आंतों में व्रण से संत्रस्त रोगी यदि मिष्ठान पकवान खा भी लें उसके लिए वे बहुमूल्य और पौष्टिक होते हुए भी कुछ लाभ न पहुँचा सकेंगे । जबकि पेट के स्वस्थ सबल होने पर ज्वार, बाजरा भी पुष्टि कर सिद्ध होते हैं । रहस्यमय अनुष्ठान साधनों की मन्त्र प्रक्रिया एवं साधना विधि की गरिमा इन पंक्तियों में कम नहीं की जा रही है और न उनका महात्म्य मिथ्या बताया जा रहा है । यहाँ केवल यह कहा जा रहा है कि आत्मिक प्रगति के क्षेत्र में जीवन साधना को आधारभूत मानना चाहिए और उपासना को उसकी सुसज्जा बाल्यकाल पूरा करने के बाद ही यौवन आता है और साधना की प्रथम परीक्षा में उत्तीर्ण होने से ही उपासना की द्वितीय कक्षा में प्रवेश मिलता है ।

अच्छी उपज लेने के लिए केवल अच्छा बीज ही पर्याप्त नहीं, अच्छी भूमि भी होनी चाहिए । पूजा विधान बीज है और साधक की मनोभूमि खेत । किसान भूमि जोतने, सींचने, सम्भालने में छः महीने लगाता है और बीज बोने में एक दिन । अन्तःकरण निर्मल बना लिया जाय तो थोड़ा सा मन्त्र साधन भी शवरी जैसे अनजान साधकों को भी सफलता के चरम लक्ष्य तक पहुँचा सकता है । इसके विपरीत कर्मकाण्ड में पारंगत कठोर प्रयत्नरत होने पर भी मिली हुई सफलता उल्टी विनाशकारी होती है । दूषित मनोवृति बनाये रहने के कारण रावण, कुम्भकरण, मेघनाद, हिरण्यकश्यप, भस्मासुर आदि को दुर्गति के गर्त में गिरना पड़ा । यह तप तथा वरदान उनके अहंकार और अनाचार को बढ़ाने में सर्प को दूध पिलाने की तरह अनर्थ मूलक ही सिद्ध हुए ।

उपासना कारतूस है और जीवन साधना बन्दूक । अच्छी बन्दूक होने पर ही कारतूस का चमत्कार देखा जा सकता है । बन्दूक रहित अकेला कारतूस तो थोड़ी आवाज करके फट ही सकता है । उससे सिंह व्याघ्र का शिकार नहीं किया जा सकता । अनैतिक गतिविधियाँ और अवांछनीय विचारणाएँ यदि भरी रहें तो कोई साधक आत्मिक प्रगति का वास्तविक और चिरस्थायी लाभ न ले सकेगा । किसी प्रकार कुछ मिल भी जाय तो उससे जादूगर जैसा चमत्कार दिखा कर थोड़े दिन यश लिप्सा पूरी की जा सकती है । वास्तविक लाभ न अपना हो सकता है और न दूसरों का ।

अस्तु, आत्मबल से सम्बन्धित सिद्धियाँ और आत्म-कल्याण के साथ जुड़ी हुई विभूतियाँ प्राप्त करने के लिये जो वस्तुतः निष्ठावान् हों उन्हें अपने गुण-कर्म स्वभाव पर गहरी दृष्टि डालनी चाहिए और जहाँ कहीं छिद्र हो उन्हें बन्द करना चाहिए । फूटे हुए बर्तन में जल भरा नहीं रह सकता, छेदवाली नाव तैर नहीं सकती, दुर्बुद्धि और दुश्चरित्र व्यक्ति इन छिद्रों में अपना सारा उपासनात्मक उपार्जन गँवा बैठता है और उसे छूँछ बनकर खाली हाथ रहना पड़ता है।

हर दिन नया जन्म हर रात नयी मौत वाली साधना इस दृष्टि से अति उपयोगी सिद्ध होती है । प्रातःकाल उठते ही यह अनुभव करना कि अब से लेकर सोते समय तक के लिए ही आज का नया जन्म मिला है । इसके एक-एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्षण का सदुपयोग करना है । इस आधार पर दिनभर की पूरी दिनचर्या निर्धारित कर ली जाय । समय जैसी बहुमूल्य सम्पदा का एक कण भी बर्बाद होने की उसमें गुंजाइश न रहे । एक भी अनाचार बन पड़ने की ढील न रखी जाय । निकृष्ट स्तर पर सोचने और हेय कर्म करने पर पूरा प्रतिबन्ध लगाया जाय । इस प्रकार नित्य कर्म से लेकर आजीविका उपार्जन तक सम्भाषण से लेकर कर्तृत्व तक जीवन के हर क्षेत्र में उत्कृष्टता और आदर्शवादिता का समावेश किया जाय । रात को सोते समय लेखा-जोखा लिया जाय कि आज उत्कृष्टा और निकृष्टता में से किस का उपार्जन ज्यादा हुआ । पाप अधिक बना या पुण्य । भूलें प्रबल रहीं या सतर्कता जीती । इस प्रकार आत्म निरीक्षण करने के उपरान्त दूसरे दिन और भी अधिक सतर्क रहने और भी उत्तम दिनचर्या बनाने की तैयारी करते हुए निद्रा माता को मृत्यु समझ कर उसकी गोद में शान्तिपूर्वक जाना चाहिए । यह क्रम निरन्तर जारी रखा जाय तो जीवन में क्रमशः अधिकाधिक पवित्रता का समावेश होता चला जाता है और तदनुरूप आत्मिक प्रगति तीव्र होती चली जाती है ।

अन्तःकरण का परिष्कार, प्रखर उपासना से ही सम्भव

व्यक्तियों की गतिविधियाँ जब श्रेष्ठता से समन्वित रहती हैं तो उनके श्रम, समय, मनोयोग एवं साधनों का उपयोग सत्प्रोजनों में होता है, फलतः सुखद परिस्थितियाँ बढ़ती जाती हैं, निरर्थक कार्यों में लगने से पिछड़ेपन की और अनर्थ कार्यों से अधः पतन की परिस्थितियाँ बनती हैं । जब जन प्रवाह पतनोन्मुख होता है तो स्वभावतः अभाव, संकट एवं विद्रोह बढ़ते हैं । क्रिया की प्रतिक्रिया का कुचक्र चलता है और बुरे युग के पाप-युग, नरक युग के समस्त लक्षण सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं । सत्प्रयत्नों के सत्परिणाम तो स्पष्ट ही हैं । धर्मराज्य, सतयुग आदि ऐसे ही समय को कहा जाता है । युग कैसा है ? कैसा होगा ? इन प्रश्नों का उत्तर यह पर्यवेक्षण करके दिया जा सकता है कि लोग क्या कर रहे हैं और क्या करने की तैयारियों में लग रहे हैं ।

कुविचार और कुकर्म बढ़ने लगें तो वातावरण में भावनात्मक विषाक्तता उत्पन्न होनी स्वाभाविक है । उसका प्रतिफल व्यापक रूप से दुःखद दुर्घटनाओं के रूप में परिलक्षित होता है । यही कलियुग है । चन्दन वृक्ष सुगन्धित होते हैं उन्हें छूकर जो पवन चलता है वह दूर-दूर तक सुवास बिखेरता है । पुष्प वाटिकाएँ भी अपने समीपवर्ती क्षेत्र में सुगन्धित और जीवन दायिनी प्राण वायु बिखेरती हैं । सज्जनों को चन्दन वृक्ष और पुष्प पादपों की संज्ञा दी जा सकती है । वे स्वयं तो आन्तरिक प्रसन्नता और साथियों की सद्भावना से सुखी सन्तुष्ट रहते ही हैं वे अपनी गरिमा का उपहार सारे वातावरण को प्रदान करते हैं । कीचड़ और कूड़े से सड़ नाले से बदबू उठती है, विषाणु बढ़ते हैं, कुरुचिपूर्ण वातावरण बनता है और बीमारियाँ फैलती हैं । मनुष्यों के व्यक्तित्व यदि सड़े नाले और कूड़े के ढेर जैसे बने रहें तो उनकी विकृतियाँ उन अकेले को ही कष्ट नहीं देंगी वरन् समूचे वातावरण में अवांछनीय विक्षोभ उत्पन्न करेंगी । यही कलियुग का पाप युग का स्वरूप है । युगों के भले-बुरे होने में व्यक्तियों का स्तर ही प्रधान कारण होता है। जन समूह के द्वारा अपनायी गई दुष्प्रवृत्तियाँ अपनी प्रतिक्रिया से समूचे वातावरण में ऐसी ही विषाक्तता उत्पन्न करती हैं जो सबके लिए सब प्रकार दुःखदायी परिस्थितियाँ ही उत्पन्न करती चली जाय ।

विषाक्तता से वायुमण्डल का दूषित होना पदार्थ विज्ञान के आधार पर स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है । अध्यात्म विज्ञान के आधार पर यह जानने में भी कठिनाई न होनी चाहिए कि दुष्प्रवृत्तियों के कारण प्रकृति का सूक्ष्म अन्तराल विक्षुब्ध होता है और उसकी प्रतिक्रिया ऐसी व्यापक परिस्थितियों के रूप में बरसती हैं, जिनसे संसार को संकटों का सामना करना पड़े । प्रकृति प्रकोप की दुर्घटनाएँ ऐसे ही विक्षुब्ध वातावरण की देन हैं । आवश्यक नहीं कि जहाँ के लोगों की दुष्प्रवृत्तियाँ हों वहीं बरसें । सूर्य की गर्मी से समुद्र में बादल उत्पन्न होते हैं आवश्यक नहीं कि वे समुद्र में ही बरसें । वे कहीं भी जाकर बरस सकते हैं । जब सारी धरती और सारा आसमान एक है तो बादलों को कहीं भी बरसने की छूट रहती है ।

प्रकृति प्रकोप के रूप में सामूहिक दण्ड व्यवस्था ही चलती है । अति वृष्टि, जनावृष्टि, भूकम्प, बाढ़, तूफान, महामारी, भूमि कीट आदि के रूप में कई प्रकार की विकृतियाँ आये दिन दरवाजे पर खड़ी रहने की घटनाएँ पाप युग में होती हैं । सतयुग के सम्बन्ध में विवरण मिलता है कि तब मनुष्य दीर्घजीवी होते थे । बाप के सामने बेटा नहीं मरता था । वृक्ष मनचाहे फल देते थे । भूमि से प्रचुर अन्न उपजता था । गौएँ बहुत ही दूध देती थीं । वर्षा उपयुक्त समय पर उपयुक्त मात्रा में होती थी । प्रकृति प्रकोप कभी नहीं होता था । यह प्रकृति की अनुकूलता मनुष्य की सत्प्रवृत्तियों के साथ जुड़ी हुई है । इकोलॉजी विज्ञान के अनुसार प्रकृति की विचारशीलता, सन्तुलन व्यवस्था, दूरदर्शिता एवं न्याय प्रियता का अब क्रमशः अधिकाधिक परिचय मिलता जा रहा है । सामूहिक दुष्प्रवृत्तियों का सामूहिक दण्ड भी इसी व्यवस्था के अन्तर्गत आता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति के कर्म का दण्ड व्यक्ति को मिलना चाहिए । यह व्यवस्था तो चलती ही है पर सामूहिक उत्तरदायित्वों से बंधा रहने के कारण मनुष्य को सामूहिक दुष्प्रवृत्तियों की रोकथाम करने का भी जिम्मेदार माना है । उसकी उपेक्षा की जाय तो वह भी एक पाप बनता है । स्वयं अच्छा रहना तो उचित ही है- पर उतना ही आवश्यक यह भी है कि जिस समाज में रहा जा रहा है उसे परिष्कृत बनाये रहने की जिम्मेदारी निभाने में भी उतनी ही तत्परता वरती जाय । अपने आप के हित साधन में लगे रहने वाले दूसरों की उपेक्षा करने वाले स्वार्थी कहलाते हैं और निन्दा के पात्र बनते हैं । यद्यपि स्वार्थ साधन कोई प्रत्यक्ष अपराध नहीं है और न उससे किसी मर्यादा का प्रत्यक्षतः उल्लंघन ही होता है । फिर भी व्यक्तिवादी, स्वार्थ परायण व्यक्ति निन्दित ठहराये जाते हैं, उसका एक ही कारण है कि मनुष्य के लिए सामाजिक सुव्यवस्था के प्रति उतना ही जागरूक रहना आवश्यक माना गया है, जितना कि अपने निर्वाह और सुरक्षा का प्रबन्ध करना ।

सरकार कई अपराधों के लिए सामूहिक जुर्माना करती है । समीपवर्तीय क्षेत्र में अपराध होता रहे इसका हमसे सीधा सम्बन्ध नहीं, यह सोचकर उसे रोका न जाय तो इस उपेक्षा को भी मानवी कर्तव्य शास्त्र में दण्डनीय अपराध माना गया है । सामूहिक जुर्माना ऐसे ही अपराधों में किये जाने की दण्ड व्यवस्था है । पड़ौस के गांव में डकैती पड़ती रहे और जिसके पास बन्दूक का लाइसेन्स है वह डाकुओं का सामना करने न गया तो उस कायरता को अपराध माना जायेगा और उसकी बन्दूक जब्त करली जायेगी । सामूहिक प्रकृति प्रकोप भी ऐसे ही सामूहिक दण्ड विधान के रूप में समूचे मनुष्य जाति पर बरसते हैं । आवश्यक नहीं कि जिन्हें कष्ट भुगतना पड़ा है मात्र उन्हीं का अपराध हो । मुहल्ले में गंदगी के ढेर जमा हों तो जमा करने वाले भी और उसे न रोकने वाले भी उस सड़न से हानि उठावेंगे । पड़ौस का छप्पर जलता रहे और अपने घर शान्तिपूर्वक बैठे रहा जाय तो बढ़ती हुई आग अपने को भी लपेटनी लगेगी। मुहल्ले में गुण्डा गर्दी बढ़ती रहे तो अनेक सौम्य प्रकृति के बालक भी उस कुचक्र के शिकार किसी न किसी प्रकार बनकर ही रहेंगे । एक व्यक्ति दुष्कर्म करता है, बदनामी सारे परिवार या गाँव की होती है ।

यही बात प्रशंसनीय कार्य करने के सम्बन्ध में भी है। सत्कर्म करने वाला अपने वंश, परिवार, क्षेत्र, देश, युग सभी को प्रतिष्ठित करता है । यह सामूहिकता का उत्तरदायित्व जिन दिनों ठीक तरह निभाया जाता है उन दिनों प्रकृति के अनुग्रह की वर्षा सभी पर होती है और जिन दिनों संकीर्ण स्वार्थपरता का बोल बाला होता है तो दुष्प्रवृत्तियाँ पनपती हैं, वातावरण बिगड़ता है और दण्ड उनको भी भुगतना पड़ता है, जो प्रत्यक्षतः तो निर्दोष दिखाई पड़ते हैं, पर समूचे मानव समाज की दुष्प्रवृत्तियों को रोकने और सत्प्रवृत्तियों में संलग्न होने के प्रयास की जिम्मेदारी न निभाने से अनायास ही अपराधी वर्ग में सम्मिलित हो जाते हैं ।

युग परिवर्तन के लिए व्यक्ति और समाज में उत्कृष्टता के तत्वों का अधिकाधिक समावेश करने के लिए प्रबल प्रयत्नों का किया जाना आवश्यक है । व्यक्ति को चरित्रनिष्ठ ही नहीं समाजनिष्ठ भी होना चाहिए । मात्र अपने आपको अच्छा रखना ही पर्याप्त नहीं, अपनापन भी विस्मृत होना चाहिए ।

आस्थाओं की पृष्ठभूमि वस्तुतः एक अलग धरातल है । उसका निर्माण मस्तिष्कीय संरचना की तुलना में कहीं अधिक जटिल और कहीं अधिक कठोर है । अन्तःकरण की अपनी स्वतन्त्र रचना है । उस पर बुद्धि का थोड़ा बहुत ही प्रभाव पड़ता है । सच तो यह है कि अन्तःकरण ही बुद्धि की कठपुतली को अपने इशारे से नचाता है । आन्तरिक आस्थाओं और आकांक्षाओं की जो अभिरुचि होती है, उसी को पूरा करने के लिए चतुर राजदरबारी की भूमिका मस्तिष्क को निभानी पड़ती है । उसका अपना अभिमत जो भी हो उसे करना वही पड़ता है जो अधिपति का निर्देश है । हो सकता है कि मस्तिष्क वस्तुतः भौतिकता का पक्षधर हो, किन्तु व्यवहार में लाते समय वह तब तक समर्थ न हो सकेगा जब तक अन्तःकरण भी अनुकूल न हो जाये । किसी भी नशेबाज से वार्तालाप किया जाय तो वह समझाने वाले से भी अधिक ऐसे तथ्य प्रस्तुत कर देगा, जिससे नशा पीने की हानियों का प्रतिपादन होता है । इतनी जानकारी होते हुए भी वह उस लत को छोड़ने के लिए तत्पर न हो सकेगा । उसका कारण एक ही है कि नशे के पक्ष में उसके अन्तःकरण में इतनी गहरी अभिरुचि जम गयी है जिसे विचारशीलता मात्र के सहारे पलट सकना सम्भव नहीं हो पाता । शराबी आये दिन अपने को धिक्कारता है शपथें लेता है किन्तु जब अन्दर से लत भड़कती है तो असहाय की तरह शराब खाने की ओर इस प्रकार घिसटता चला जाता है मानो कोई बलपूर्वक उसे अपनी पीठ पर लाद कर लिये जा रहा हो । रास्ते में संकल्प विकल्प भी उठते हैं लौटने को मन भी करता है, पर सारे तर्क एक कौने पर रखे रह जाते हैं । आदत अपनी जगह स्थिर रहती है ।

मस्तिष्क की यहाँ निरर्थकता नहीं बतायी जा रही है और न तर्क, प्रभाव अध्ययन का, विचार साधन का महत्व कम किया जा रहा है । उसकी उपयोगिता तो है ही और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहेगी ही । बात इतनी भर है कि मस्तिष्क भौतिक जीवन में अत्यन्त पेचीदा समस्याओं को सुलझाने और महत्त्वपूर्ण फैसले करने और पेचीदगियों को सरल बनाने में अद्‌भुत सूझ-बूझ का परिचय दे सकने में समर्थ होते हुए भी अन्तःकरण में जमे हुए संचित संस्कारों को प्रभावित करने में यत्किंचित ही सहायक हो पाता है । कारण कि वह गहरी पर्त मस्तिष्क के प्रभाव क्षेत्र में पूरी तरह है नहीं, वरन् उल्टे मस्तिष्क को ही अपने इच्छानुकूल चलने के लिए विवश करता है ।

अन्तःकरण ही मानवी सत्ता का केन्द्र बिन्दु है । वह जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही अद्‌भुत । इस अर्थ में कि उसमें तनिक-सा अन्तर आते ही मनुष्य का सारा स्वरूप बदल जाता है । अद्‌भुत इस अर्थ में कि भावनाओं, संवेदनाओं की दृष्टि से अति सरल होते हुए भी अपनी स्थिति के सम्बन्ध में इतना दुराग्रही है कि बदलने में अत्यन्त कठोरता का परिचय देता है । परिवर्तन के लिए किये जाने वाले साधारण प्रयत्नों को तो ऐसे ही उपहास में उड़ा देता है । ईश्वर से मिलने की, सूक्ष्म जगत से सम्पर्क साधने की क्षमताएँ इसी मर्म स्थल में सन्निहित हैं । ऋद्धियों और सिद्धियों की समस्त रत्न राशियाँ इसी तिजोरी में भरी हुई हैं । इतने पर भी इसका खोल सकना अत्यन्त कठिन है । जानकार लोग भी अपने आपको असहाय पाते हैं । आत्मबोध की आवश्यकता समझने-समझाने वाले उसके द्वारा मिलने वाले चमत्कारों का स्वरूप समझने वाले भी इतना संकल्प नहीं जुटा पाते कि आत्म जाग्रति का लाभ उठा सकें और साक्षात्कार कर सकें । अपनी जानकारी से स्वयं लाभान्वित न हुआ जा सके तो समझना चाहिए कि कोई बहुत बड़ा कारण या अवरोध काम करता है ।

अन्तःकरण की स्थिति में थोड़ा-सा परिवर्तन होते ही जीवन के स्वरूप में असाधारण परिवर्तन प्रस्तुत होता है । वाल्मीकि, अजामिल, अम्बपालि, अंगुलिमाल, विल्वमंगल आदि अनेकों के दुष्ट जीवनों ने पलटा खाया और देखते-देखते कायाकल्प कर लिया । बोधि वृक्ष के नीचे एक दिन गौतम राजकुमार के अन्तःकरण ने पलटा खाया और वे दूसरे दिन ही भगवान बुद्ध बन गये । समर्थ गुरु रामदास का विवाह मुहूर्त निकट था, उनके भीतर दुस्साहसपूर्वक दूसरे प्रकार का निश्चय कर बैठा । देखते-देखते सारी दिशाधारा ही उलट गयी । गृहस्थों जैसा सामान्य जीवन क्रम दूसरे ही दिन महामानवों की, ऋषियों की पंक्ति में जा विराजा । ऐसे चमत्कार अन्तःकरण के परिवर्तन से ही होते रहे हैं ।

उत्थान से पतन और पतन से उत्थान के अचानक परिवर्तनों के अगणित प्रमाण उदाहरण इतिहास के पृष्ठों पर विद्यमान हैं । आरम्भिक परिस्थितियों से अन्तिम उपलब्धि तक क्रमिक गति से चलते हुए आकाश-पाताल जितना अन्तर उतपन्न करने वाली घटनाएँ तो अपनी आँखों के सामने ही असंख्यों देखी जा सकती हैं । इसका मूल कारण एक ही है-- अन्तःक्षेत्र की प्रबल आस्था और प्रचण्ड आकांक्षा । इतना भर सार तत्व जहाँ भी होगा वहाँ विपरीत परिस्थितियाँ काई की तरह फटती चली जायेंगी और टिड्डी दल की तरह परामर्शों, सहयोगों और अनुकूलताओं का समूह एकत्रित होता चला जायेगा । पतित, सामान्य और महान जीवनों के अन्तरों में परिस्थिति नहीं मनःस्थिति ही आधार भूत कारण रही है ।

अन्तःकरण के कठोर क्षेत्र को प्रभावित करने के लिए आध्यात्म विज्ञान का तत्व दर्शन और साधना उपचार ही प्रभावी सिद्ध होता है । योग साधना और तपश्चर्या का समूचा कलेवर इसी प्रयोजन के लिए विनिर्मित हुआ है । कठोर चट्टानें हीरे की नोंक वाले बरमे के अतिरिक्त और किसी औजार से छेदी नहीं जातीं । अन्तःकरण में जमी अवांछनीयता को निरस्त करके उत्कृष्टता की प्रतिष्ठापना के लिए आध्यात्म विज्ञान का ही सहारा लेना पड़ेगा । उसी विद्या में पारंगत इन्जीनियर अध्यात्मवेत्ता इस क्षेत्र की समस्याओं का समाधान कर सकेगा । विकृत विपन्नताओं के स्थान पर परिष्कृत परिस्थितियों की स्थापना यदि सचमुच हो, तो उसका हल आध्यात्म विद्या का अवलम्बन लिये बिना और किसी प्रकार निकलेगा नहीं । इस तथ्य को जितनी जल्दी समझा जा सके उतना ही दिशा निर्धारण और सार्थक श्रम करने में सुविधा रहेगी ।

व्यक्ति निर्माण के लिए भौतिक उपायों की सार्थकता तब है, जब अन्तःकरण के स्तर में परिवर्तन हो और दृष्टिकोण सुधरे । यह कार्य प्रशिक्षण मात्र से नहीं हो सकेगा । आस्थाओं का स्पर्श आस्थाएँ करती हैं, भावनाओं की भावनाओं से छूआ जाता है, काँटा काटे से निकलता है और विष विष से ही मारा जाता है । आस्था अन्तःकरण की अत्यन्त गहरी पर्तों में अपनी जड़ जमाये बैठी रहती है । उन तक पहुँचना और सुधार परिवर्तन करना सामान्य प्रयासों से सम्भव नहीं, उसके लिए उच्च स्तर के प्रयत्न करने पड़ते हैं । इनमें उपासनात्मक उपचारों के अतिरिक्त अन्य प्रयत्न अभीष्ट परिणाम उत्पन्न नहीं करते ।

उपासना की प्रक्रिया को अन्तःकरण की वरिष्ठ चिकित्सा समझा जाना चाहिए । कुसंस्कारों को कषाय-कल्मषों की महा व्याधि से छुटकारा पाने के लिए मात्र यही रामबाण औषधि है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपासना सम्बन्धी भ्रान्तियाँ और उनका निवारण

तान्त्रिक, अघोरी एवं कापालिक स्तर की आसुरी वाममार्गी साधनाओं में भावनाओं का नहीं, क्रियाओं का महत्त्व माना जाता है । उनमें चरित्र का नहीं दुस्साहस के रूप में विकसित किये जाने वाले मनोबल मात्र का चमत्कार है । मशीनों में भावना नहीं क्रियी होती है । इस क्रियाशक्ति को ही जड़ पदार्थों में सन्निहित, कार्यरत पाया जाता है । तान्त्रिक साधनाओं में शरीरगत मनोगत विशिष्ट शक्तियों को उभारने वाली उत्तेजनाएँ उत्पन्न की जाती हैं और उस उफान का बिना नैतिक–अनैतिक विचार किये मनचाहे उपचारों में प्रयोग किया जाता है । मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन आदि तन्त्र प्रयोगों के सभी प्रहार लक्ष्य आसुरी अनैतिक हैं । उस स्तर की शक्तियों का उपार्जन स्रष्टा ने कठिन एवं दुरुह रखा है, साथ ही उस क्षेत्र में प्रवेश करना भी खतरे से खाली नहीं रखा गया है ।

बिजली भौतिक शक्ति है । उससे कई काम तो ऐसे होते हैं पर साथ ही तनिक-सी असावधानी से प्राणघातक संकट भी आ खड़ा होता है । बन्दूक चलाने वाले जानतें हैं कि गोली छूटते समय पीछे की ओर झटका भी लगता है। अणु विस्फोट से ऊर्जा तो उत्पन्न होती ही है पर साथ ही विकिरण का सर्वनाशी खतरा भी जुड़ा रहता है । आतिशबाजी का खेल खेलने, हिंसक पशुओं का शिकार खेलने वाले कई बार भारी खतरा उठाते देखे गये हैं । तान्त्रिक साधनाओं के सम्बन्ध में भी यही बात है । कई बार उसके प्रयोक्ता विधि--विधान में तनिक-सी गलती हो जाने के कारण पागल तक होते देखे गये हैं । भौतिक शक्तियाँ सभी ऐसी हैं, उनमें क्षमा का कोई नियम नहीं है। साँप सपेरे पर भी हमला बोलता है । दांव लगने पर सरकस के हिंसक पशु अपने पालनकर्ता की ही बोटी-बोटी नोंच डालते हैं । मशीनों की चपेट में आने पर उनके स्वामी संचालक भी हाथ, पैर काटते, जान गँवाते देखे गये हैं । भौतिक क्षेत्र में क्रिया ही प्रधान है । सही-गलत का प्रयोग वहाँ हाथों-हाथ प्रतिफल मिलता है ।

भावना क्षेत्र उससे सर्वथा भिन्न है । उसमें उच्चस्तरीय आस्थाओं, श्रद्धाओं और सम्वेदनाओं का साम्राज्य है । वहाँ उपचारों का मूल्य कानी कौड़ी और स्नेह--सौजन्य का मूल्य पर्वत के समान है । छोटा बच्चा माता को हर दृष्टि से हैरान ही करता रहता है और एक भी शिष्टाचार का पालन नहीं करता फिर भी ममत्व एवं वात्सल्य की सघनता के कारण माँ बच्चे के बीच जो आत्मीयता पायी जाती है वह देखते ही बनती है । बालक के प्रायः सारे ही व्यवहार अनगढ़, असभ्य जैसे होते हैं फिर भी माता उनके कारण कभी तनिक भी खीजती नहीं पायी जाती । गोदी में चढ़ने के लिए हाथ बढ़ाना, आँख मिलने पर मुस्करा देना भर बालक का ऐसा कृत्य है जिसके बदले माता अपना सब कुछ लुटाने को तैयार रहती हैं । दक्षिणमार्गी उपासना मार्ग के साधक और साध्य के इसी प्रकार के भाव भरे आदान-प्रदान चलते हैं । उनमें कर्मकाण्डों को अधूरापन या व्यतिक्रम कोई खास बाधा नहीं डालता । उचित तो यही है कि हर वर्ग स्तर के लोग नियम-मर्यादाओं के परिपालन में सतर्कता बरतें और सही तरीका ही अपनायें ।

वैदिकी दक्षिणमार्गी भक्ति परम्परा भाव प्रधान है । उसमें भी यों क्रिया--कृत्यों का कर्मकाण्डों का आश्रय तो लिया जाता है पर उतनी चिंता की आवश्यकता नहीं पड़ती जितनी कि तांत्रिक उपक्रमों में तनिक-सा व्यतिरेक उत्पन्न होने पर प्राण संकट आ उपस्थित होने की स्थिति उत्पन्न होती है । यहाँ वैदिकी और तान्त्रिकी साधनाओं का अन्तर है । वैदिकी देव साधनाओं में भल, व्यतिरेक का दुष्परिणाम अधिक से अधिक इतना हो सकता है कि जितने सत्परिणाम की आशा की जानी चाहिए उससे कम मिले या विलम्ब लगे। उलटकर हानि होने की तो किसी भी प्रकार आशंका नहीं की जा सकती ।

प्रसिद्ध है वाल्मीकि को शुद्ध राम-नाम तक उच्चारण करना न आया और वे उल्टा नाम अर्थात् 'राम' के स्थान पर 'मरा' जपते रहे । इतने पर भी सिद्ध पुरुष बन गये । उच्चारण की भूल से कोई अनिष्ट नहीं हुआ वरन् श्रद्धा की उत्कृष्टता उस औंधे-सीधे उपचार के सहारे ऊँची उठती चली गई और पर्वत के मूर्धन्य शिखर पर जा पहुँची । अशिक्षित एवं अनगढ़ भक्तजनों की ऐसी विशालकाय सेना है जो निर्धारित उपचारों के सम्बन्ध में अपरिचित एवं अनभ्यस्त रहे । अपनी अनगढ़ स्थिति में भी वे उच्चस्तरीय उपलब्धियों को हस्तगत करने में सफल रहे । ऐसे भक्तजनों में शबरी, कुब्जा जैसी अनगढ़ नारियाँ और कबीर, रैदास, नामदेव जैसे स्वल्प शिक्षितों की लम्बी सूची प्रस्तुत की जा सकती है जो विधि-विधान की प्रवीणता से नहीं वरन् भाव-श्रद्धा के सहारे चरम लक्ष्य तकर पहुँचने में समर्थ हुए । शास्त्रविधि को देखते हुए उनकी पूजा-पद्धित में निश्चय ही त्रुटियाँ रही होंगी, पर उस व्यवधान ने कहीं किसी प्रकार का संकट उत्पन्न नहीं किया । सामंतवाद के दिनों मध्यकाल में दुर्गा, भैरव जैसे तांत्रिक दैवी-देवताओं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की मान्यता का दौर रहा है । उन दिनों हर किसी को शत्रु को परास्त करके स्वयं सत्ताधीश बनने की बेचैनी थी। इसके लिए आक्रमणकारी आतंकवादी नीति तो वे अपनाते ही थे, साथ ही यह प्रयत्न भी करते थे, कि आध्यात्म क्षेत्र से भी उनके कृत्यों में कुछ सहारा मिल सके । ऐसे लोगों के लिए आसुरी तन्त्र मार्ग ही उपयोगी पड़ता है । असुर परम्परा में उसी का प्रचलन भी रहा है जो अपनी तृष्णा पूर्ति के लिए आसुरी साधना क्षेत्र में उतरते थे, उन्हें क्रिया कृत्यों के बारे में अत्यधिक सतर्क रहना पड़ता था, अन्यथा दुधारी तलवार उलटकर अपना ही अंग-भंग कर सकती थी । उस स्थिति में कृत्यों में सावधानी को प्राथमिकता मिलती थी और मिलनी भी चाहिए थी । इसलिए यजमान लोग हर काम में प्रवीण पण्डितों की ही नियुक्ति करते थे । पुरश्चरण प्रक्रिया आद्योपान्त ऐसी है, जिसे निष्णात पण्डित ही, उच्चारण एवं कृत्य की दृष्टि से सही नीति से सम्पन्न कर सकते हैं । उन दिनों हर प्रयोक्ता पर यह भाय छाया रहता था कि कहीं क्रिया-कृत्यों में भूल-चूक न रह जाय, अन्यथा लाभ के स्थान पर उल्टे विग्रह का सामना करना होगा और लेने के देने पड़ेंगे । इस भय के वातावरण में उस स्तर के सभी उपचार प्रवीण पण्डितों की सहायता से ही सम्पन्न करने पड़ते थे । यहाँ तक कि साधारण अग्निहोत्र में भी उन्हें आगे रखे बिना किसी को कुछ करने का साहस नहीं होता था ।

मध्यकाल के अन्धकार युग में जब प्रचलन तांत्रिक उपचारों का ही हो गया और "मद्य, माँस च मीन च मुद्रा मेथुनमेव च" के पंचमकार ही उपासना क्षेत्र के अधिष्ठाता बन गये, तब उस व्यापक अनाचार को निरस्त करने के लिए भगवान बुद्ध का अवतरण हुआ और उन्होंने उस अनाचार की धज्जियाँ उड़ायीं । उन्हीं दिनों की बात है कि पुरोहित वर्ग ने अपनी विशिष्टता सिद्ध करने तथा अर्थ उपार्जन का नया स्रोत उभारने के लिए उस मान्यता का सम्पूर्ण समर्थन किया कि विधि-विधान में राई रत्ती भूल हो जाने पर भी देवता रुष्ट हो जाते हैं और फिर कर्ता से उलटकर बदला लेते हैं । यह मान्यता योजनाबद्ध ढंग से फैलाई गयी । उसके समर्थन में बहुत कुछ कहा एवं लिखा गया ।

यह मान्यता तांत्रिक उपचारों के क्षेत्र तक ही फैलनी और सीमित रहनी चाहिए थी, पर दुर्भाग्यवश उसने वैदिकी--दक्षिणमार्गी--दैवी साधना, उपासना के क्षेत्र पर आक्रमण बोल दिया । इतना ही नहीं, उसे भी बेतरह अपने चंगुल में फँसा लिया । दैनिक उपासना जैसे नित्य कर्मों के सम्बन्ध में भी यह शंका की जाने लगी कि कहीं भूल होने पर अनर्थ न हो जाय और इष्टदेव उस भूल से रुष्ट होकर उलटे आक्रमण पर न उतर आयें ।

यह भयाक्रान्त आशंका ऐसे अवसरों पर स्पष्टतया प्रगट होती है जब किसी उपासक को सामान्य कारणों से किसी कठिनायी, असफलता या विपत्ति का सामना करना पड़ता है । उसका शंका-शंकित मन सर्वप्रथम इसी बात में उलझता है कि हो न हो यह पूजा-उपचार में कोई भूल त्रुटि रहने के कारण उत्पन्न हुआ अनर्थ है । ऐसी दशा में उसकी मनःस्थिति विचित्र होती है । गर्म दूध न घूँटते बनता है, न उगलते । करते रहें तो प्रस्तुत कठिनाई के और भी बढ़ जाने की आशंका है, छोड़ते हैं तो देवता के और भी अधिक रुष्ट होकर उग्र आक्रमण करने का भय है । ऐसी दशा में एक ओर कुँआ दूसरी और खाई देखकर उपासना के मार्ग पर बढ़ने वाला यही सोचता है कि क्यों इस व्यर्थ के झंझट में फँसे । भविष्य के लिए वह इस जंजाल से किसी प्रकार पिण्ड छुड़ाने भर की बात ही सोचता है ।

उपरोक्त भ्रांति क्रमशः मनों में इतनी गहरी उतरती गई है कि आध्यात्म तत्व ज्ञान से अपरिचित भावुक भक्तजनों में से कितने ही जीवनक्रम में कोई कठिनाई या व्यवधान आते ही यह सोचने लगते हैं कि उनकी पूजा विधि या तो गलत है या फिर उसमें कोई भूल रह गयी है । इसी कारण उन्हें कठिनाई या असफलता का सामना करना पड़ रहा है।

वास्तविकता ऐसी होती नहीं । सात्विक उपासनाएँ ही प्रज्ञा परिवार के लोग करते हैं । न तो कोई तांत्रिक विधान उन्हें बताया गया है और न उस मार्ग को अपनाने के लिए प्रोत्साहन दिया गया है । वे जो कुछ करते हैं, वह विशुद्ध रूप से सतोगुणी, दैवी एवं आध्यात्मिक प्रकृति का है , उसमें ऐसी कहीं कोई गुंजाइश नहीं है कि कृत्यों में भूल होने से किसी विपत्ति या विग्रह की आशंका हो । अधिक से अधिक इतना ही हो सकता है कि अवधिपूर्वक करने से लाभ उससे कम मिले जितना कि मिलना चाहिए था । उल्टा परिणाम तो कभी भी किसी भी स्थिति में नहीं हो सकता। इस सन्दर्भ मे गीता ने दो टूक स्पष्टीकरण किया है--

"नेहाभिक्रम नाशोवस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ।।"

२/४०

अर्थात् उस उपक्रम का न तो उलटा परिणाम निकलता है और न वह सर्वथा निरर्थक ही जाती है । उसे थोड़ी मात्रा में करने पर भी संकटों से मुक्ति मिलती है ।

भगवान का नाम, उपासना का उपक्रम एक ही परिणाम उत्पन्न कर सकता है और वह है, कषाय-कल्मषों के कारण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्पन्न होने वाले त्रासों से परित्राण । उल्टा उपद्रव खड़ा करने की उसकी प्रकृति ही नहीं है । उसके कारण किसी प्रकार का संकट उत्पन्न होने की आशंका तो करनी ही नहीं चाहिए । माता कभी आहत न तो कर सकती है और न वैसा सोच ही सकती है । धरती माता, गो-माता, प्रकृति माता ही सहज प्रकृति स्नेह करने, सहायता करने एवं सुविधा साधन उपलब्ध कराने की है । छेड़खानी करने पर अधिक से अधिक इतना ही कर सकती है कि सहयोग से हाथ खींच ले । पतन पराभव के षड्यन्त्र अपने ही आँचल की छाया में पलने वालों के विरुद्ध वह कर ही नहीं सकती । साधना, उपासना की भक्ति भी ऐसी ही है । उसका आश्रय लेने पर कष्ट घटते हैं, बढ़ते नहीं ।

अचिन्त्य चिन्तन से अपना ही अहित होता है । क्रोध, ईर्ष्या, चिंता, भय, आशंका जैसे मनोविकार धारणकर्ता का ही सर्वनाश करते हैं । जिनके विरुद्ध दुर्भाव रखे जाते हैं उनका अहित तो कदाचित ही स्वल्प मात्रा में हो पाता है। आपत्तियों का कारण आमतौर से मनुष्य के अब के या पिछले विभ्रम दोष, दुर्गुण या कुकृत्य ही होते हैं । दण्ड का तात्पर्य इतना ही है कि मनुष्य भविष्य में अधिक सावधानी बरते और अधिक सही, सक्षम रहे । प्रकृति प्रकोप से भी कोई प्रतिकूलताएँ भुगतनी पड़ें तो उनका तात्पर्य भी आग में पकाने, खराद पर चढ़ाकर चमकीला बनाने, धार रखकर पैना करने जैसा ही होता है । प्रखर और प्रतिभावान बनने वालों में से प्रत्येक को प्रतिकूलताओं में से जूझकर ही अपने को अधिक समर्थ, सक्रिय बनाने का लाभ उपलब्ध हुआ है । ऐसे ही अनेक कारण दण्डात्मक, सुधारात्मक प्रस्तुत कठिनाइयों में हो सकते हैं । विश्व परिस्थितियों का प्रवाह अपने ढंग से चलता है । उससे भी प्रतिकूलता उत्पन्न होती रहती है । वातावरण का प्रभाव भी कई बार निर्दोषों को भी गेहूँ के साथ घुन पिस जाने की तरह हैरान करता रहता है । आसुरी तत्व भी बिना कारण अकारण का विचार किए ऐसे ही भले-बुरे का भेदभाव किये बिना अपने कत्लेआम का शिकार बनाते रहते हैं ऐसे-ऐसे अनेकों कारण मनुष्य के सामने आती रहने वाली कठिनाइयों एवं विपत्तियो के हो सकते हैं । उन सबका विचार किये बिना समस्त आगत कठिनाइयों का दोष अपनी छुट-पुट सी उपासना के मत्थे मढ़ देना सर्वथा अनुचित है ।

लोगों में एक बहुत बुरी आदत यह पायी जाती है कि अपनी कठिनाइयों का कारण किसी दूसरे का कसूर सोचकर सस्ते में अपना मन हल्का करते रहते हैं । अमुक ने जादू टोना करके हमें या हमारे परिवार को हैरानी में डाल दिया है । ऐसा सोचते रहने वाले और निर्दोष पड़ोसियों पर अकारण ही दुर्भाव थोपते रहने वालों की कमी नहीं । भूत-पलीतों और ग्रह-नक्षत्रों पर ऐसे ही इल्जाम लगाने वालों की मूर्ख मण्डली सदस्य लाखों नहीं करोड़ों होंगे । भाग्य को कोसने वाले, हस्त रेखाओं के रचयिता पर अन्याय का दोष लगाने वाले किसी के पीछे नहीं । माँ-बाप ने अमुक कमी नहीं रखी होती तो हम आज कहीं से कहीं होते, जैसे सोचते कहते हुए असंख्यों पाये जाते हैं । ऐसे ही भ्रम जंजाल में फँसने वाले वे लोग हैं जौ अपनी कठिनाइयों के ऐसे असंख्यों कारणों में से एक का भी विचार नहीं करते, जिनके निज के दोष दुर्गुण पर भटका व अनाचरण एवं अचिन्त्य चिंतन का पर्दाफाश होता है । सरलता इसी में प्रतीत होती है कि क्यों न उपासना जैसे किसी ऐसे माध्यम को दोषी ठहरा दिया जाय जो सामने खड़ा होकर अपनी सफाई देने और झूठे इल्जाम के बदले गाल पर तमाचा जड़ने की स्थिति में नहीं है ।

अवांछनीय दोषारोपण से अपनी आत्मा कलुषित होती हैं । आत्म निरीक्षण और आत्म सुधार का अवसर हाथ से निकलता है । प्रतिरोधों से जूझने की सामर्थ्य कुण्ठित होती है । जब देवता या भगवान ही विपत्ति बरसाने के कारण हैं तो उनसे जूझने की प्रतिकार चेतना कोई किस प्रकार उबारे ? ऐसी मनःस्थित में हताश होकर आँसू बहाते रहने या जिस पर दोष थोपा गया है, उसे कोसते रहने के अतिरिक्त और कोई चारा शेष नहीं रह जाता । यह मनःस्थिति मनुष्य का भविष्य अन्धकारमय बनाने वाली सिद्ध हो सकती है ।

यह ध्यान न रखने योग्य तथ्य है कि उपासनां की सफलता में कर्मकाण्ड का महत्त्व दस प्रतिशत है और सघन श्रद्धा की भूमिका नब्बे प्रतिशत होती है । यदि श्रद्धा डगमगाने लगे तो समझना चाहिए कि कर्मकाण्ड की लकीर पीटते रहने से कोई लाभ नहीं । आगत कठिनाइयों का कारण यदि उपासना को सोचा, माना जाने लगे तो समझना चाहिए अब यहाँ श्रद्धा के पैर जमने जैसी कोई सम्भावना रह नहीं गई । जो तन्त्र विनय वन्दन का प्रतिफल अनिष्ट उत्पन्न कर सकता है, वह निश्चय ही निकृष्ट स्तर का घिनौना होना चाहिए । उसका आश्रय लेने पर आये दिन ऐसे ही उपद्रव खड़े होते रहने का भय बना रहेगा । प्रत्यक्ष है कि भय अनिश्चितता और दुष्टता की आशंका मन में उठने लगे तो फिर उस केन्द्र पर श्रद्धा विश्वास का, भक्ति-भावना का, स्नेह-समर्पण का कोई आधार नहीं बन सकता । यदि आस्था सुदृढ़ न हुई तो फिर कोई श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कर्मकाण्डों वाली उपासना भी किसी के लिए किसी भी परिमाण में फलप्रद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं हो सकती । उसमें लगाया हुआ श्रम निष्फल ही नहीं जायेगा वरन् असफलता जन्य आक्रोश के कारण नास्तिकता में परिणत होता चला जायेगा । ऐसे लोगों से तो वे लोग कहीं अच्छे जो उपासना करते ही नहीं । उन्हें कम से कम असन्तोष, आक्रोष एवं नास्तिकता के गर्त में जा गिरने का अनर्थ तो नहीं अपनाना पड़ता । इस प्रकार वे नफा भले ही न कमायें, अकारण घाटा होने का संकट नहीं सहते ।

किसी की उपासना करनी हो तो उसके प्रयोजन परिणाम की आशा इतनी ही करनी चाहिए कि इससे अपने आत्म परिष्कार में सहायता मिलेगी । सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन का द्वार खुलेगा और विकसित व्यक्तित्व के सहारे सुसंस्कारी व्यक्तियों को जिस प्रकार आत्मसंतोष, जन सहयोग एवं दैवी अनुग्रह मिलता रहता है, हमें भी मिलेगा । इससे एक कदम और बढ़ना हो और लाभ-हानि का अनुमान लगाना हो तो यही मान्यता सघन बनानी चाहिए कि उपासना से लाभ बढ़ सकते हैं । उसका भौतिक परिणाम भी संकटों को पूरी तरह समाप्त करने में समर्थ न होने पर भी उसके बोझ को हल्का तो अवश्य ही करता है । आगत संकट दस किलो भारी तो उपासना के आधार पर उपलब्ध हुए मनोबल के कारण आधा तिहाई ही रह जायेगा ।

प्रतिकूलता और उपासना की संगत बिठाने की तत्वतः आवश्यकता है नहीं, क्योंकि दोनों के क्षेत्र सर्वथा भिन्न हैं । प्रतिकूलता और अनुकूलता आमतौर से व्यक्ति को कौशल कुशलता पर निर्भर रहती है, जबकि उपासना से अन्तः क्षेत्र की सत्प्रवृत्तियों का उभारने और व्यक्तित्व में सुसंस्कारिता के समावेश का अवसर मिलता है । कुशलता प्रतिभा पर सांसारिक सफलता सुविधा की न्यूनाधिकता निर्भर है, जबकि उपासना मनुष्य के दृष्टिकोण, चरित्र, सम्मान एवं कार्यक्षेत्र में उत्कृष्टता का समावेश करती है । ऐसी दशा में एक दूसरे को जोड़ने की बात सर्वथा अनुपयुक्त है । फिर भी प्रचलित भ्रम मान्यताओं के अनुरूप यदि उपासना से भौतिक लाभ हानि की संगति जोड़े बिना काम चले तो फिर दो दृष्टिकोण अपनाने चाहिए । सफलताओं का श्रेय उपासनाओं को दिया जाय और असफलताओं का दोष अपने प्रारब्ध पुरुषार्थ में कमी रहना मानकर अपने ऊपर जोड़ा जाय । इस मापदण्ड अपनाकर ही श्रद्धा को जीवन्त रखा जा सकता है और आत्मिक प्रगतियों का द्वार खुला रह सकता है । विकृत चिन्तन से तो सब प्रकार अहित ही अहित है । सफलताओं के लाभ का श्रेय अपने को और जो कठिनायी जिस कारण से उत्पन्न है, उन सबका दोष उपासना पर थोप देने का परिणाम एक ही होगा- अपनी रही-सही श्रद्धा समाप्ति । आत्मिक प्रगति में भावी सम्भावनाओं की इतिश्री । इसी को 'अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी मारना' कह सकते हैं । भ्रांत-भावनाओं से लाभ तो कुछ नहीं मिला, हानि का असंतोष का कुहासा और घिर गया, इसे दोहरी मूर्खता के अतिरिक्त और क्या कहा जाय ।

बुरी परिस्थितियों का दोष उपासना जैसे उत्कृष्ट अवलम्बन पर थोपना जिस प्रकार अनर्गल है, उसी प्रकार यह भी अनुचित है कि उपासना को एक रिश्वत की तरह प्रस्तुत करके देवी-देवताओं को ललचाया जाय । हमारा अमुक काम हो जायेगा तो इतनी राशि पूजा में खर्च करेंगे, इतना जप अनुष्ठान करेंगे--यह शर्तबद्ध प्रलोभन है । दूसरे शब्दों में यह रिश्वत पेशागी भी दी जाती है और बाद में भी अमुक मनोरथ पूरा होने की शर्त पर पेशगी या बाद में पूजा का प्रलोभन किसी को भी प्रस्तुत नहीं करना चाहिए । इसे दैवी शक्तियाँ अपनी अवमानना सोच सकती हैं और रुष्ट होकर वैसा कुछ भी कर सकती हैं, जैसे कि रिश्वत देने की पेशबन्दी करने वालों के साथ कई प्रखरता सम्पन्न न्यायादीश करते हैं । रिश्वत लेना और देना दोनों ही जुर्म हैं । इसी प्रकार अमुक लाभ उपार्जित करने के लिए--अमुक पूजा करने की पेशबन्दी करना भक्त की, भक्ति की और भगवान की दुर्भाग्यपूर्ण दुर्गति के समान ही समझी जायेगी। उपासना करने वाले स्मरण रखें, इस पुनीति अवलम्बन का स्तर न गिरायें भले ही उसे करें या न करें । पूजा न करना उतना बुरा नहीं जितना कि उसकी सड़ी नालियों में घसीट-घसीट कर दुर्दशा एवं बदनामी करना ।

ब्रह्म प्राप्ति के दो साधन [एकाग्रता और निराकुलता]

ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करने के लिए, जीवन लक्ष्य को भेदने के लिए, चित्त की स्थिरता बहुत ही आवश्यक है । बन्दूक चलाने वाले जानते हैं कि लक्ष्य पूर्ण एकाग्रता के साथ निशाना साधने से ही गोली ठीक निशान पर बैठती है। इस समय यदि जरा भी चित्त इधर-उधर चला गया तो निशाना चूकने में देर नहीं लगती । द्रोणाचार्य जब कौरवों और पाण्डवों को धनुष-विद्या सिखाते थे तो एक दिन परीक्षा के लिए उन्होंने अपने सब शिष्यों को बुलाया और एक लकड़ी की चिड़िया पेड़ पर बैठाकर उस पर निशाना सधाया। तीर छोड़ने से पहले गुरु जी उस शिष्य से पूछते--बेटा ! बताओं तुम्हें निशाने के स्थान पर क्या-क्या दिखायी पड़ता है ? निशान साधने वाला कहता गुरु जी ! मुझे पेड़ की डाली, पत्ते और चिड़ियाँ दीखती है । गुरुजी उससे धनुष रखबा लेते और दूसरों के बुलाते । संतोषजनक उत्तर न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिलने पर उनसे भी धनुष रखवा लेते । अन्त में अर्जुन की बारी आयी, उससे भी वही प्रश्न पूछा गया । अर्जुन ने उत्तर दिया--गुरु जी ! मुझे केवल चिड़िया की गर्दन दीखती है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं दीखता । गुरुजी ने कहा निशाना छोड़ों । वाण छोड़ा गया और निशाना ठीक लगा । तब गुरुजी ने शिष्य को लक्ष्य बेध का गुप्त रहस्य बताते हुए कहा--चित्त की स्थिरता ही सफलता की कुंजी है। जिसका ध्यान एक वस्तु पर केन्द्रित होगा, वह उसे प्राप्त कर लेगा । जिसका मन अस्थिर होगा वह अभीष्ट स्थान तक न पहुँच सकेगा ।

आतिशी शीशे के द्वारा एक केन्द्र बिन्दु पर सूर्य की किरणें एकत्रित की जाती हैं । फलस्वरूप वह बिन्दु अत्यन्त गर्म हो जाता है और उस बिन्दु के नीचे जो चीज रखी हुई हो वह जलने लगती है फैली हुई निर्मल वस्तु का भी केन्द्रीयकरण कर देने से उससे प्रचण्ड शक्ति उत्पन्न हो जाती है । मन में भरी हुई अनेकानेक शक्तियों को एक स्थान पर केन्द्रीभूत कर देने का भी ऐसा ही चमत्कारपूर्ण प्रभाव होता है । जिस काम को पूरे मन से स्थिरतापूर्वक किया जाता है, वह असाधारण रूप से चमकने लगता है । एक स्थान पर चित्त वृत्तियों के केन्द्रीभूत हो जाने से वहाँ चतुरता, बुद्धिमत्ता, सफाई, सुन्दरता, शीघ्रता, सावधानी का जमघट इकट्ठा हो जाता है । एक से एक अच्छी युक्ति एवं कार्य प्रणाली सूझ पड़ती है । नयी-नयी पगडंडियाँ निकल आती हैं । सफलता प्राप्त करने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता है, उन्हें उपलब्ध करने के लिए कई मार्ग सामने आ जाते हैं । परन्तु यदि मानसिक एकाग्रता न हो तो नई युक्तियाँ नहीं सूझ पड़तीं और कुशलता एवं उत्तमता प्रकट करने वाली क्रियाशक्ति प्रस्फुटित नहीं होती । फलस्वरूप सफलता की सम्भावना कुण्ठित हो जाती है ।

''एक समय में एक काम'' करने का सुनहरा सिद्धान्त जिसने अपना लिया, समझिए कि जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करने के एक बहुत ही मूल्यवान् शस्त्र इसके हाथ आ गया ।

एक अंग्रेजी की कहावत है कि- ''जब तुम काम करो तब केवल काम करो और जब खेलो तब केवल खेलो ।''

भावार्थ यह है कि एक समय में एक काम करो, एक समय में कई काम करने से शक्तियाँ कई तरफ बँट जाती हैं और एक भी काम ठीक तरह नहीं हो पाता । काम कुछ हो रहा है और मन कहीं पड़ा है, यह स्थिति मनुष्य को लुंज-पुंज कर देती है । इसके कामों को फूहड़पन, अपूर्णता एवं सदोषता से मार देती है । चित्त की अस्थिरता एवं चंचलता एक ऐसा ऐब है जो कितने ही सद्गुणों को निरर्थक बना देता है । आँधी या तूफान के वेग में जैसे कागज पत्र पत्तों की तरह उड़ जाते हैं वैसे ही मन में अस्थिरता की लहरें उठते रहने चिर संचित योग्यता अस्त-व्यस्त हो जाती है कुशल से कुशल कारीगर जब अस्थिर चित्त से काम करते हैं तो उनकी बनाई हुई चीजें गिरे दर्जे की तैयार होती हैं । इस प्रकार कोई साधारण दर्जे का कारीगर पूर्ण मनोयोग के साथ एकाग्र होकर जुटता है तो साधारण साधनों सहायता से भी ऊँचे दर्जे की प्रशंसनीय वस्तुएँ बना सकने में सफल होता है ।

मन और शरीर इन दो संयोग हो जाने से १+१=११ की उक्ति चरितार्थ होती है । एक शरीर + एक शरीर =दो शरीर होते हैं परन्तु एक मन और एक शरीर का समन्वय कम से कम ग्यारह गुनी अधिक शक्ति का निर्माण करता है । पूरा काम पूरे मनुष्य से होता है । पूरा मनुष्य तब बनता है, जब वह मन और शरीर एकत्रित होकर काम कर रहे हों । जब शरीर और मन दोनों निद्रा में निमग्न होते हैं, तब वह मृतक जैसा आस्था होती है । जब शरीर सो रहा हो मन जाग रहा हो तब वह तन्द्रा है । जब शरीर और मन जागते हों पर असम्बद्ध हों तो वह अवस्था पूर्ण अवस्था है । किन्तु जब चित्त और देह का पूर्ण एकीकरण एवं सहयोग होता है तो वह चेतन या जागरूक दशा कहलाती है । उस स्थिति में मनुष्य जो भी काम करता है, उसमें प्रायः सफलता ही मिलती है । इसी तथ्य को ध्यान में रखकर 'एक समय में एक काम' करने का सिद्धान्त निर्धारित किया गया है ।

यह स्वर्णिम सिद्धान्त हर एक को सदा याद रखना चाहिए कि एक समय में एक काम करेंगे । जब भोजन करना हो तो सारी चित्तवृत्तियों को एकत्रित करके सामने परोसे हुए भोजन के मधुर स्वाद का आस्वादन करते हुए उसके स्वास्थ्य प्रद गुणों का स्मरण करते हुए प्रसन्नतापूर्वक उसे उदरस्थ करना चाहिए । जब बाल बच्चों में खेलना हो तो सारी दिलचस्पी से उनकी मधुर बातें सुनो और अपनी कहो, जब हिसाब-किताब करने बैठो तो पूरे अर्थशास्त्री बन जाइये । जब भजन का समय आवे तो सम्पूर्ण एकाग्रता उसी कार्य मे होना चाहिए । खेलते समय पक्के खिलाड़ी और भाषण काल में प्रभावशाली वक्ता होना आवश्यक है और यह तभी हो सकता है, जब चित्त स्थिर हो, वह कूदफाँद न कर रहा हो । कई वक्ता किसीं अच्छे विषय पर भाषण देते हैं, पर बीच-बीच में उनकी प्रवाह श्रृंखल टूट जाती है। अभी एक बात की व्याख्या कर रहे थे वह बात पूरी न हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पायी कि दूसरी बात चल पड़ी और फिर वह भी अधूरी रह गयी । इस प्रकार अनेकों अधूरी बातों से भरा हुआ भाषण एक बकवास मात्र रह जाता है । श्रोताओं पर उनका कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता । इस अधूरेपन के दोष के कारण कितने ही वक्ताओं को वक्तृत्व शक्तियाँ महत्त्व नष्ट हो जाता है । यह दोष चित्त की अस्थिरता का प्रतीक है । मन बार-बार उचट जाता है । कहीं से कहीं पहुँचता है । नियत निर्धारित क्षेत्र से छलाँग मारकर वह कुछ से कुछ विषय उपस्थित कर देता है । बेचारा वक्ता मन को एक स्थान पर केन्द्रीभूत रखने की कला से अनभिज्ञ होने के कारण मन के पीछे-पीछे इधर-उधर भगता फिरता है और अपना उपहास कराता है ।

न केवल वक्ताओं के ऊपर वरन् हर एक दिशा में काम करने वालों के ऊपर यह बात लागू होती है । चंचल चित्त वाला व्यक्ति सदा असावधान, भुलक्कड़ एवं गलती करने वाला होता है । इन दोषों वाला डॉक्टर अपने रोगी के लिए एक खतरा हो सकता है । ऐसा व्यापारी भारी घाटे के चक्कर में फँस सकता है । ऐसा वकील मुकद्मे को हरा सकता है । ऐसा विद्यार्थी फेल हो सकता है । भिखारी से लेकर राजा तक और चोर से लेकर ब्रह्म ज्ञानी तक जितनी भी स्थितियों के आदमी हैं वे अपने-अपने काम को तभी सुचारुरूप से चला सकते हैं, तभी समृद्ध एवं सफल हो सकते हैं, जब शरीर के साथ-साथ उनका मन भी नियत कार्य में समान रूप से सहयोग करता है ।

चित्त की एकाग्रता कोई बहुत बड़ी एवं बहुत कड़ी बात नहीं है । यदि नित्यप्रति छोटे-छोटे कार्यों में दिलचस्पी करने का प्रयत्न किया जाय तो कुछ दिनों में वैसी आदत बन सकती है । जिनको एक नियत प्रकार की दिनचर्या के साथ अपना दिन व्यतीत करना पड़ता है, उन्हें अपना दैनिक कार्यक्रम बना लेना चाहिए और जब जो काम करना नियत हो, उस समय शरीर और मन को साथ-साथ प्रवृत्त करना चाहिए, जब मन को छुट्टल रखा जाता है तो उसे इधर-उधर उछलने कूदने की आदत पड़ जाती है । यदि मन को दुरस्त रखना है उसे एकाग्र रहने के लिए साधना है तो जब जो कार्य शरीर को करना हो, उसमें दिलचस्पी के साथ मनको लगाने का प्रयत्न करना चाहिए । कुछ दिन में ऐसी आदत पड़ जाती है कि मन शरीर के साथ काम करने लगता है। फिर उस व्यक्ति के सब काम सुस्थिरता के साथ सुचारुरूप से होने लगते हैं, और समृद्धि की दिशा में उसके कदम तेजी से बढ़ने लगते हैं ।

अकुलाना, बेचैन होना, घबराना, मानसिक सन्तुलन को डावाँडोल कर देना एक प्रकार से मस्तिषकीय तूफान उत्पन्न करता है । जैसे तूफान के गर्द गुँवार में आँखें ठीक काम नहीं करतीं, रास्ता ठीक प्रकार नहीं दीखता, वैसे ही मन की बेचैनी की दशा में वास्तविक स्थिति को समझाने और उसके निराकरण का समुचित मार्ग ढूँढ़ने में बुद्धि सर्वथा असमर्थ रहती है । जैसे ज्वार-भाटा के समय उछलते हुए पानी का स्तर डाँवाडोल रहता है, वैसे ही आकुलता के समय विवेक का स्तर अस्थिर रहता है । ऐसी दशा में इसके द्वारा उचित निर्णय नहीं किया जा सकता । उचित कार्यक्रम निर्धारित नहीं हो सकता । उछलते हुए पानी में सूर्य, चन्द्र आदि का भी प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं पड़ता, पर ठहरते हुए पानी में अपने चेहरे का भी प्रतिबिम्ब ठीक प्रकार देखा जा सकता है । इसी प्रकार आकुल अवस्था में मोटी बातें भी नहीं सूझ पड़तीं, जबकि निराकुल अवस्था में बारीकियों का भी निराकरण हो जाता है ।

किसी आदमी को उछाला, पटका, गिराया, उठाया, घसीटा, दबाया या तनाया जाय तो उस दशा में उसे कष्ट ही कष्ट होगा । सुख शान्ति पूर्ण निद्रा तो ऐसी दशा में आ ही नहीं सकती, जब इन्द्रियों पर से अनावश्यक दबाब हट जाता है तभी तो शरीर आराम का अनुभव करेगा । आत्मा की भी यही स्थिति है यब वह भय, शोक, उद्वेग, क्रोध, द्वेष, चिन्ता, अहंकार, हर्ष आदि आवेषों में ग्रसित होती है तो इन आघातों के कारण उसे क्षण भर भी चैन नहीं मिलता, वरन् हर घड़ी व्यथा एवं वेदना से भरी हुई कराह उठती रहती है । आवेशों की आकुलता एक प्रकार की आध्यात्मिक जूड़ी-ताप है, जिसके चढ़ आने पर मनुष्य अण्ड-बण्ड बकता है। अन्धाधुन्ध पानी पीता है, पीला मूँतता है, भूख सर्वथा उड़ जाती है, चेहरा लाल हो जाता है, निद्रा गायब हो जाती है, मन में न जाने क्या-क्या कल्पनाएँ आती हैं, उसमें विशेष प्रकार के भयंकर लक्षण प्रकट हो जाते हैं । शोक, क्रोध, द्वेष, अहंकार, अमीरी आदि की आध्यात्मिक जूड़ी चढ़ आने की दशा में भी मनुष्य अर्ध विक्षिप्त हो जाता है । ऐसी दशा में न वह सोचने लायक बातें सोचता है और न करने लायक काम करता है । तिजोरी के रोगी की गाँठ-गाँठ में जैसे हड़फूटन होती है, आवेशों से बैचेन मनुष्य के मनोलोक में ऐसी ही हड़फूटन होती है, जिससे उसकी समस्त आत्मिक शान्ति नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है ।

आवेशों की अशान्त दशा में कोई व्यक्ति न तो सांसारिक उन्नति कर सकता है और न आध्यात्मिक, कारण यह है कि उन्नति के लिए, ऊँचा उठने के लिए, आगे बढ़ने के लिए, जिस बल की आवश्यकता होती है, वह बल मानसिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अस्थिरता के कारण एकत्रिक नहीं हो पाता । जब हाथ काँप रहा हो, उस समय बन्दूक का ठीक निशाना नहीं साधा जा सकता । आवेश की दशा में मानसिक कम्पन की अधिकता रहती है । उस उद्विग्नता की दशा में यह नहीं सूझ पड़ता कि क्या करना चाहिए क्या नहीं करना चाहिए।

अधीर होना, हृदय की संकीर्णता और आत्मिक बालकपन का चिह्न है । बच्चे जब बाग लगाने का खेल खेलते हैं तो उनकी कार्य प्रणाली बड़ी विचित्र होती है । अभी बीज बोया, अभी उसमें खाद पानी लगाया, अभी दो चार मिनट के बाद ही बीच को उलट पुलटकर देखते हैं कि बीज में से अंकुर फूटा या नहीं । अब अंकुर नहीं दीखता तो उसे फिर झाड़ देते हैं और दो-चार मिनट बाद फिर देखते हैं । इस प्रकार कई बार देखने पर भी जब वृक्ष उत्पन्न होने की उनकी कल्पना पूरी नहीं होती तो दूसरा उपाय काम में लाते हैं । वृक्षों की टहनियाँ तोड़कर मिट्टी में गाढ़ देते हैं और उससे बाग की लालसा को बुझाने का प्रयत्न करते हैं । उन टहनियों के पत्ते उठा-उठाकर देखते हैं कि फल लगे या नहीं । यदि दस बीस मिनट में फल नहीं लगते तो कंकड़ों को डोरे से बाँधकर उन टहनियों में लटका देते हैं । इस अधूरे बाग में उन्हें तृप्ति नहीं मिलती । फलतः कुछ देर बाद उस बाग से विगाड़ बिगूड़कर चले जाते हैं । कितने ही जवान और वृद्ध पुरुष भी इसी प्रकार की बालक्रीड़ाएँ अपने जीवन क्षेत्र में किया करते हैं । किसी काम को बड़े उत्साह से आरम्भ करते हैं, इस उत्साह की--अति उताबली बन जाती है । कार्य आरम्भ हुए देर नहीं होती कि वह देखने लगते हैं कि सफलता में अभी कितनी देर है । जरा भी प्रतिक्षा उन्हें सहन नहीं होती । जब उन्हें थोड़े ही समय में रंगीन कल्पनाएँ पूरी होती नहीं दीखतीं तो निराश होकर उसे छोड़ बैठते हैं । अनेकों कार्यों को आरम्भ करना और बिगाड़ना ऐसी ही बाल क्रीड़ाएँ वे ज़ीवन भर करते रहते हैं । छोटे बच्चे अपनी आकांक्षा और इच्छा पूर्ति के बीच में किसी कठिनाई, दूरी या देरी की कल्पना नहीं कर पाते, इन बाल क्रीड़ा करने वाले अधीर पुरुषों की भी मनोभूमि ऐसी ही होती है । यदि हथेली पर सरसों न जमी हो तो खेल बिगाड़ते उन्हें देर नहीं लगती ।

प्राचीन समय में जब शिष्य विद्याध्ययन के लिए जब गुरु के पास जाता था तो उसे पहले अपने धैर्य की परीक्षा देनी होती थी । गायें चरानी पड़ती थीं, लकड़ियाँ चुननी पड़ती थीं, उपनिषदों में इस प्रकार का अनेक कथाएँ हैं । इन्द्र को भी लम्बी अवधि तक इसी प्रकार तपस्यापूर्ण प्रतिक्षा करनी पड़ी थी, जब बस अपने धैर्य की परीक्षा दे चुका तब उसे आवश्यक विद्या प्राप्त हुई । प्राचीनकाल में विज्ञ पुरुष जानते थे कि धैर्यवान् पुरुष ही किसी कार्य में सफलता प्राप्त कर सकते हैं । इसलिये धैर्यवान् स्वभाव वाले छात्रों को ही विद्याध्ययन कराते थे । क्योंकि उनके पढ़ाने का परिश्रम भी अधिकारी छात्रों द्वारा ही सफल हो सकता था । चंचल चित्त वाले, अधीर स्वभाव के मनुष्य का पढ़ना न पढ़ना बराबर है । अक्षर ज्ञान हो जाने या अमुक कक्षा का सर्टीफिकेट ले लेने से कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं होता प्रमाण प्रत्यक्ष है । आज लाखों करोड़ों पढ़े गधे इधर से उधर घूरे के तिनके चरकर लदते मरते रहते हैं । कोई कहने लायक पुरुषार्थ उनसे नहीं हो पाता ।

आतुरता एवं उतावली स्वभाव जीवन को असफल बनाने वाला एक भयंकर खतरा है । कर्म के परिपाक होने में समय लगता है । रुई को कपड़े के रूप तक पहुँचने के लिए कई कड़ी मंजिलें पार करनी पड़ती है और कठोर व्यवधानों में होकर गुजरना पड़ता है । संस्कृतिकाल के मध्यवर्ती कार्यक्रम को धैर्यपूर्वक पूरा होने देने की जो प्रतिक्षा नहीं कर सकता, उसे रुई को कपड़े के रूप में देखने की आशा न करनी चाहिए । किया हुआ परिश्रम एक विशिष्ट प्रक्रिया के द्वारा फल बनता है । इसमें देर लगती है और कठिनाई भी आती है । कभी-कभी परिस्थिति वश यह देरी और कठिनाई आवश्यकता से अधिक भी हो सकती है । उसे पार करने के लिए समय और श्रम लगाना पड़ता है । कभी-कभी तो कई बार का प्रयत्न भी सफलता तक नहीं ले पहुँचता, तब अनेक बार अधिक समय तक अविचल धैर्य के साथ जुटे रहकर अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त करना होता है । आतुर मनुष्य इतनी दृढ़ता नहीं रखते, जरा-सी कठिनाई या देरी से घबरा जाते हैं और मैदान छोड़कर भाग निकलते हैं । यही भगोड़ापन उनकी पराजयों का इतिहास बनता जाता है ।

चित्त का एक काम पर न जमना, संशय और संकल्प विकल्पों में पड़े रहना एक प्रकार का मानसिक रोग है । यदि काम पूरा न हो पाया तो, यदि कोई आकस्मिक आपत्ति आ गई तो, यदि फल उल्टा निकला तो इस प्रकार की दुविधापूर्ण आशंकाएँ मन को डांवाडोल बनाये रहती हैं । पूरा आकर्षण एवं विश्वास न रहने के कारण मन उचटा-उचटा सा रहता है। जो काम हाथ में लिया हुआ है, इस पर निष्ठा नहीं होती । इसलिए आधे मन से वह किया जाता है। आधा मन दूसरे नये काम की खोज में लगा रहता है । इस डांवाडोल स्थिति में एक भी काम पूरा नहीं हो पाता । हाथ के काम में सफलता नहीं मिलती, बल्कि उल्टी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूल पर भूल होती जाती है । ठोकर पर ठोकर लगती जाती है । दूसरी ओर आधे मन से जो नया काम तलाश किया जाता है, उसके हानि-लाभों का भी पूरी तरह नहीं विचारा जा सकता । अधूरी कल्पना के आधार पर नया काम वास्तविक रूप में नहीं वरन् अलंकारिक रूप में दिखाई पड़ता है । पहले काम को छोड़कर नया पकड़ लेने पर फिर उस नये काम की भी वही स्थिति होती है जो पुराने की थी । कुछ समय बाद उसे भी छोड़कर नया ग्रहण करना पड़ता है । इस प्रकार काम शुरू करना और उसे अधूरा छोड़ना इस कार्यक्रम की बराबर पुनरावृत्ति होती रहती है और अन्त में मनुष्य अपने असफल जीवन पर पश्चात्ताप करता हुआ इस दुनिया से कूँच कर जाता है ।

भूतकाल की बीती हुई दुःखदायी घटनाओं का स्मरण करके कितने ही मनुष्य अपने आप को बेचैन बनाये रहते हैं । किसी प्रियजन की मृत्यु, पैसे की हानि, अपमान, विछोह आदि की कटु स्मृतियों को वे भुला नहीं पाते और सदा कुढ़ते एवं जलते रहते हैं । इसी प्रकार कितने ही मनुष्य भविष्य की कठिनाइयों को हल करने की चिन्ता में जला करते हैं । लड़की के विवाह के लिए इतना रुपया कहाँ से आयेगा ? बुढ़ापे में क्या खायेंगे ? लड़के कुपात्र निकले तो प्रतिष्ठा कैसे कायम रहेगी ? गरीबी आ गई तो कैसी बीतेगी ? इतना धन इकट्ठा न हो पाया तो अमुक कार्य कैसे पूरा होगा ? अमुक ने सहारा न दिया तो कैसी दुर्दशा होगी ? अमुक आपत्ति आ गई तो भविष्य अन्धकारमय हो जायेगा । आदि अनेकों प्रकार के भावी संकटों की चिंता में रक्त मांस को सुखाते रहते हैं । भूत का शोक और भविष्य का भय इतना त्रासदायक होता है कि मस्तिष्क का अधिकांश भाग उसी में उलझा रहता है। वर्तमान समय की गुत्थियों को सुलझाने और सामने पड़े हुए कार्य को पूरा करने के लिए शक्तियों का बहुत थोड़ा भाग बचता है । उस बचे, खुचे आंशिक मनोबल से जो थोड़ा सा काम हो पाता है, उतने मात्र से व्यवस्था क्रम यथावत् नहीं चल सकता । फलस्वरूप गति अवरोध उत्पन्न होकर जीवन की बधिया बैठ जाती है । इस उलझन भरी दशा में किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर कितने ही मनुष्य आत्म-हत्या कर लेते हैं, पागल हो जाते हैं, घरबार छोड़कर भाग जाते हैं या और दुःखदायी कार्य कर बैठते हैं । कितने ही घोर निराशावादी या सनकी हो जाते, कितने ही कुसंग के भार से कुछ देर के लिए सलाह पाने का, अपने आप को भूलने का, नशेबाजी का सत्यानाशी प्रयत्न करते है ।

आवेशों के मानसिक तन्तुओं को सदा उत्तेजित रखना सदा अपने आपको जलती मशाल से झुलसाते रहने के समान है । आवेश जीवन की आस्वाभाविक दशा है, उसमें शक्तियों का भयंकर रूप से नाश होता है । डॉक्टरों ने पता लगाया है कि यदि मनुष्य साढ़े चार घण्टा लगातार क्रोध में भरा रहे तो लगभग ८ औंस खून जल जायेगा और इतना विष उत्पन्न हो जायेगा कि १ तोला (११.६३२ ग्राम) कुचला से उत्पन्न होता है । चिन्ता की अधिकता से हड्डियों के भीतर रहने वाली मज्जा सूख जाती है, फलस्वरूप निमोनिया, इन्फ्लूएन्जा सरीखें रोगों के आक्रमण का अन्देशा बढ़ जाता है । ऐसे लोगों की हड्डियाँ टेड़ी पड़ जाती हैं और नियत स्थान से ऊपर आ जाती हैं । कनपटी की, गले की, कंधे की, कान के पीछे की, हड्डियाँ यदि ऊपर उभर आयी हों तो कहा जा सकता है कि यह व्यक्ति चिंता में घुला जा रहा है । लोभी और कंजूसों को कब्ज की शिकायत बनी रहती है और आये दिन जुकाम बना रहता है । भय और आशंका से जिनका कलेजा काँपता रहता है, उनके शरीर में लौह और क्षार की मात्रा कम हो जाती है, बाल झड़ने लगते हैं और सफेद होने लगते हैं । शोक के कारण नेत्रों की ज्योति-क्षीणता, गठिया, स्मरण शक्ति की कमी, स्नायविक दौर्बलता, बहु मूत्र, पथरी सरीखे रोग हो जाते हैं । ईर्ष्या, द्वेष एवं प्रतिहिंसा की जलन के कारण तपेदिक, दमा, बहरापन, कुष्ठ सरीखी व्याधियाँ उत्पन्न होती देखी जाती हैं। कारण स्पष्ट है-- इन मानसिक आवेशों के कारण एक प्रकार का अन्तर्दाह उत्पन्न हो जाता है । अग्नि जहाँ रहती है, वहाँ जलाती है । अन्तर्दाह की अग्नि में जीवन के उपयोगी तत्व ईंधन की भाँति जलते रहते हैं, जिससे देह भीतर ही भीतर खोखली हो जाती है । जहाँ अग्नि जलती है, वहाँ ऑक्सीजन (प्राणवायु) खर्च होती है और कार्बन गैस (विष वायु) उत्पन्न होता है । अन्तर्दाह की प्रक्रिया से भी अनेकों प्रकार के विष उत्पन्न होते हैं, जिनके कारण शरीर तरह-तरह के रोगों का घर बन जाता है और कुछ ही समय में इतना सड़-गल जाता है कि जीवात्मा को असमय में ही उसे छोड़कर भागने के लिए विवश होना पड़ता है ।

आवेशों का तूफान व शारीरिक स्वास्थ्य को न कायम रहने देता है और न मानसिक स्वास्थ्य को । वैद्य को नाड़ी पकड़ने से कोई रोग भले ही न मालूम पड़े पर वस्तुतः आवेश की अवस्था में जीवन की उतनी ही क्षति होती रहती है, जितनी कि बड़े-बड़े भयंकर रोगों के समय होती है । यह सर्वविदित है कि रोगी मनुष्य न तो शारीरिक श्रम कर सकता है और न मानसिक । आवेश का रोगी शारीरिक दृष्टि से एक प्रकार का अपाहिज बन जाता है । चाहता है कि काम करूँ पर होता कुछ नहीं । जरा देर काम करने पर थककर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चूर हो जाता है, मन वहाँ जमता ही नहीं, काम को छोड़कर लेट जाना या कहीं चले जाने की तबियत करती है, करता कुछ है, किन्तु हो कुछ जाता है, जरा देर के काम में काफी समय खर्च हो जाता है, सो भी ठीक तरह होता नहीं, जब निरीक्षण किया जाता है तो भूल पर भूल निकलती हैं । इस तरह अण्ड-बण्ड काम करने वाला एक प्रकार से अपाहिज ही है । क्योंकि उसके किये काम से कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, जितना काम होता है, उससे अधिक हानि हो जाती है । ऐसी स्थिति में बाहर से स्वस्थ दीखते हुए भी वह वस्तुतः शैया-सेवी रोगी जैसी अवस्था में ही गिना जा सकता है, मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी यही दशा होती है । आवेशों से भरा हुआ मनुष्य आधा पागल बन जाता है, जिनके कहने और सुनने से विचारवान् मनुष्य लज्जा के मारे जमीन में गढ़-सा जाता है । ऐसी-ऐसी ऊटपटांग बाते सोचता है, जिनका कहीं सिर पैर नहीं, ऐसे-ऐसे काम कर डालता है, जिहें पागल के अतिरिक्त कोई भला चंगा आदमी नहीं कर सकता । कभी सर्प की तरह फुसकारता है, कभी व्याघ्न की तरह मुँह फाड़कर खाने दौड़ता है, कभी ऐसा दीन और कातर हो जाता है कि कातर रोने, विलाप करने, विरक्त बनने, आत्म-हत्या करने के अतिरिक्त और कुछ समझ ही नहीं पड़ता । मेरे इस आचरण का भविष्य में क्या परिणाम होगा, यह सोचने में उसकी बुद्धि बिल्कुल असमर्थ हो जाती है । इस प्रकार के आवेशग्रस्त उन्मुक्त दशा वाले मनुष्य को पागलपन का डॉक्टरी सर्टीफिकेट भले ही प्राप्त न हो सके, पर वस्तुतः उसकी दशा अर्द्ध-विक्षिप्त से जरा भी अच्छी नहीं होती । ऐसे शारीरिक और मानसिक दृष्टि से बीमार मनुष्य अपने जीवन को किसी प्रकार की भार रूप में काट तो सकते हैं, पर उनके लिए यह सम्भव नहीं कि कोई महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकें, महापुरुष बन सकें, अथवा समृद्धि, समुन्नत अवस्था प्राप्त कर सकें ।

जीवन को समुन्नत दशा की ओर ले जाने के लिए यह आवश्यक है कि विवेक बुद्धि ठीक प्रकार काम करे । विवेक बुद्धि की स्थिरता के लिए निराकुलता की आवश्यकता है । दर्पण या पानी में प्रतिबिम्ब तभी दिखाई पड़ सकता है जब वह स्थिर हो । यदि दर्पण या पानी हिल रहा हो तो उसमें प्रतिबिम्ब भी नहीं ठहर सकेगा । मस्तिष्क में जब उफान आ रहा हो तो विवेक स्थिर नहीं रह सकता । ठीक पथ प्रदर्शन कराने वाली बुद्धि तभी उदभूत होगी जब मन शान्त हो, स्थिर हो, निराकुल हो । किसी काम की अच्छाई, बुराई, हानि-लाभ, सुविधा, कठिनाई आदि की ठीक-ठीक कल्पना करने और अनेक दृष्टियों से विचार करके किसी अन्तिम निर्णय पर पहुँचने की क्षमता रखने वाला विवेक तभी मस्तिष्क में रह सकता है, जब आवेशों की उद्विग्नता न हो । जो कार्य भले प्रकार आगा-पीछा सोचकर आरम्भ किये जाते हैं, वे ही पार पड़ते हैं । जोश और उतावली में बिना विचारे जिन कार्यों को आरम्भ किया जाता है । प्रायः उन्हें बीच में ही छोड़ने को विवश होना पड़ता है ।

आध्यात्म विद्या के प्रायः सभी ग्रन्थों में मन को रोकने, चित्तवृत्तियों को एकाग्र करने, मन को वश में करने का पग-पग पर आदेश किया है । अनेकों साधनाओं में मन को वश में करने की बात बताई गयी हैं । यह मन को वश में करना और कुछ नहीं, निराकुलता ही है । दुःख-सुख हानि-लाभ, जय-पराजय के कारण उत्पन्न होने वाले आवेशों से बचना ही योग की सफलता है । गीता कहती है

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
सम दुःखं सुखं धारं सोऽमृत्वाय कल्पते।।

//२--१५//

सुखे दुःखे समे कृ वा लाभाऽलाभौ जयाजयौ।।

//३-३८//

दुःखे ष्वनुद्विग्न मनः सुखेषु बिगत स्पृहाः ।
वीत राग भय क्रोधः स्थिति धी र्मुनिरुच्यते ।।

//२-५६//

न प्रहष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चा प्रियम् ।
स्थिर बुद्धि रसं मूढ़ो ब्रह्मविद् ब्रह्माणि स्थितः ।।

//५-२०//

आदि अनेक स्थलों पर निराकुलता को वेग की सफलता बताया गया है । आवेश सुख प्रधान और दुःख प्रधान दोनों प्रकार के हैं । शोक, हानि, विछोह, रोग, दण्ड, भय, विपत्ति, मृत्यु, क्रोध, अपमान, कायरता आदि हानि प्रधान आवेश हैं । कुछ आवेश लाभ प्रधान भी होते हैं--लाभ, सम्पत्ति, मिलन, कुटुम्ब, बल, सत्ता, पद, धन, मैत्री, विद्या, बुद्धि, कला विशेषता आदि के कारण एक प्रकार का नशा चढ़ आता है । इस प्रकार की कोई सम्पत्ति जब बड़ी मात्रा में यकायक मिल जाती है तब तो मनुष्य हर्षोन्मत हो जाता है । उसकी दशा अर्द्ध-विक्षिप्त जैसी हो जाती है । सुख के मारे लोग फूले नहीं समाते व कस्तूरी के हिरन की तरह इधर-उधर दौड़ते फिरते हैं, चित्त बल्लियों उछलने लगता है । जब कोई सम्पत्ति स्थायी रूप से प्राप्त हो जाती है तो उसका अहंकार चढ़ आता है उसे ऐसा मालूम पड़ता है मानों मैं साधारण मनुष्यों की अपेक्षा सैकड़ों गुना भारी हूँ । वैभव के मद में वह इतराता है, दूसरों का अपमान करके अपनी महत्ता का प्रदर्शन करता है, मुँह लटकाकर, भौंह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चढ़ाकर, उपेक्षा भाव से बात करता है, बार-बार अपने मुँह अपनी प्रशंसा करता है, दूसरों के मुँह यदि अपनी प्रशंसा न सुनी जाय तो वह चिढ़ जाता है, खुशामदी और चापलूसों के अतिरिक्त किसी से उसकी नहीं पटती ।

सम्बन्धित व्यक्तियों पर नौकरों पर, घर वालों पर, यहाँ तक कि कभी-कभी अपने पर भी रोब जमाता है, अहंकार का मद, वैभव का घमण्ड एक बोतल की तरह चढ़ा रहता है । अपने ''बड़प्पन'' की रक्षा के लिए भारी फिजूलखर्ची का बोझ अपनी पूँछ से बाँधे फिरता है । अमीर, उमराब, राजा, रईस, महन्त, मठाधीश, अफसर, अहलकार, सिद्ध कलाकार कहे जाने वाले लोगों में इस प्रकार के अहंकारी नशे में चूर व्यक्ति अधिक मात्रा में मिल सकते हैं । गर्दन फुलाये, मुँह लटकाये, भौंहें चढ़ाये, अकड़-अकड़ कर उपेक्षा की अपमानपूर्ण ढंग से बात करने के स्वभाव को देखकर यह आसानी से पहचाना जा सकता है, कि यहाँ अहंकार का नशा चढ़ा हुआ है ।

ऐसे अहंकार के नशे में मदहोश पड़े हुए लोगों को अपनी प्रोस्टेज--जोजीशन--मान-बड़ाई--बड़प्पन--खातिर की बड़ी चिन्ता रहती है । इसके लिए हर काम में बहुत अधिक फिजूलखर्ची करनी पड़ती है । उस फिजूलखर्ची की सामग्री को जुटाने के लिए अनुचित साधन जुटाने पड़ते हैं, अनेकों प्रकार की बुराई ओढ़नी पड़ती है । इस प्रकार तो अहंकार के नशे की जलन, दूसरे उस नशे को बनाये रहने के साधनों की चिन्ता, दोनों प्रकार की आकुलताएँ मन में कुहराम मचाये रहती हैं । और दुःख प्रधान आवेशों से अन्तःकरण जैसी अशान्ति रहती है वैसी ही सुख प्रधान आवेशों में भी उत्पन्न हो जाती है । इन दोनों से ही बचना आवश्यक है । शराब का नशा और अफीम का नशा आपस में अलग-अलग प्रकार के अवश्य हैं परन्तु मस्तिष्क को बिगाड़ने में दोनों में से कोई किसी से पीछे नहीं रहता । यही बात सुख प्रधान और दुःख प्रधान आवेशों के बारे में है । दोनों से ही स्वास्थ्य एवं विवेक की क्षति होती है । गीता आदि शास्त्रों में इसीलिए ही दोनों प्रकार के आवेशों–द्वन्दों से दूर रहने का जोरों से प्रतिपादन किया गया है ।

जीवन को समुन्नत देखने की इच्छा करने वालों के लिए यह आवश्यक है कि अपने स्वभाव को गम्भीर बनावें । उथलेपन, लकड़पन, छछोरेपन की जिन्हें आदत पड़ जाती है, वे गहराई के साथ किसी विषय में विचार नहीं कर सकते। किसी समय मन को गुदगुदाने के लिए बाल-क्रीड़ा की जा सकती है, पर वैसा स्वभाव न बना लेना चाहिए । आवेशों से बचे रहने की आदत बनानी चाहिए । जैसे समुद्रतट पर रहने वाले पर्वत, नित्य टकराते रहने वाली समुद्र की लहरों की परवाह नहीं करते । इसी प्रकार अपने को भी उद्वेगों की अपेक्षा करनी चाहिए । खिलाड़ी खेलते हैं, कई बार हारते हैं, कई बार जीतते हैं । कई बार हारते-हारते जीत जाते हैं, कई बार जीतते-जीतते हार जाते हैं । कभी-कभी बहुत देर हार जीत के झूले में यों ही झूलते रहते हैं । परन्तु कोई खिलाड़ी उसका अत्यधिक असर मन पर नहीं पड़ने देता । हारने पर कोई सिर धुनकर क्रन्दन नहीं करता और जीतने पर न कोई अपने को बादशाह मान लेता है । हारने वालों के होठों पर झेंप भरी मुस्कराहट होती है और जीतने वालों के होठों पर जो मुस्कराहट रहती है उसमें सफलता और प्रसन्नता मिली होती है । इस थोड़े से स्वाभाविक भेद के अतिरिक्त और कई विशेष अन्तर जीते हुए तथा हारे हुए खिलाड़ी में नहीं दिखायी पड़ता । विश्व के रंगमंच पर हम सब खिलाड़ी हैं । खेलने में रस है, वह रस दोनों दलों को समान रूप से मिलता है । हार जीत तो उस रस की तुलना में नगण्य चीज है ।

''फल की इच्छा त्याग कर कर्म करो'' गीता के कर्मयोग का यही मूल मन्त्र है । इसका भावार्थ यह है कि अपने काम करने की कार्य प्रणाली में आनन्द अनुभव करो । फल मिलने की प्रतिज्ञा तक आनन्द की प्रतिज्ञा करना बुद्धिमानी नहीं है । अभीष्ट फल मिलने में देर हो सकती है । कई बार बड़े-बड़े विघ्न बीच में आ सकते हैं, कभी-कभी उल्टा परिणाम भी निकल सकता है । कर्म करना अपने हाथ में है, फल मिलना दैवाधीन है । इसलिए कर्म में ही रस अनुभव करना चाहिए, जैसा कि खिलाड़ी लोग खेलने के समस्त क्षणों में प्रसन्नता अनुभव करते रहते हैं । जब सम्पत्ति मिले, वैभव प्राप्त हो तब घमण्ड के नशे में इतराना न चाहिए। जब विपत्ति का सामना करना पड़े तो सिर न धुनना चाहिए । धैर्यवान् पुरुषों का सिद्धान्त कहता है कि ''जब जैसी (सम्पत्ति या विपत्ति) आ पड़े की तब तैसी करेंगे ।'' विपत्ति में से छुटकारा पाने और सम्पत्ति को बढ़ाने का प्रयत्न निरन्तर जारी रहना चाहिए, क्योंकि ऐसा करना पुरुषोचित् कर्त्तव्य है । अधीरता कायरता है और कायरता एक सच्चे पुरुष के लिए लज्जा की बात है ।

जिस सुख को प्राप्त करने के लिए लोग अधीर रहते हैं, जिस सुख के अभाव में लोग अपना सिर धुनते हैं और न करने योग्य कार्य कर बैठते हैं, उस सुख को दुःख निवारण और सुख प्राप्ति के प्रयत्न में भी प्राप्त किया जा सकता है । कर्त्तव्य का पालन, उचित दिशा में काम, लक्ष्य की ओर पूरा प्रयत्न, ईमानदारी, निष्ठा और एकाग्रता का समन्वय इन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सब बातों में पूरा-पूरा आनन्द भरा हुआ है । जब अपने हाथ में अमृत का घट मौजूद है तो प्यास-प्यास रटकर तालू को क्यों सुखाया जाय ? जब कस्तूरी अपने पास मौजूद है तो सुगन्ध के लिए इधर-उधर क्यों भटका जाय ? जब कर्त्तव्यपालन के साथ हर घड़ी प्रसन्नता अनुभव की जा सकती है तो ''जब फल मिले तब आनन्द अनुभव करें'' इतनी बड़ी एवं अनिश्चित प्रतिक्षा के लिए अपने आप को क्यों बाँध रखा जाय ?

सुनहरे भविष्य की आशा करनी चाहिए, अधिक उत्तम स्थिति को प्राप्त करने की आकांक्षा करनी चाहिए, उन्नति के लिए जीतोड़ प्रयत्न करना चाहिए, यह सब करते हुए भी अति लोभ से आतुर होकर हथेली पर सरसों जमने की उद्विग्नता न करनी चाहिए । मन में इतना धैर्य होना चाहिए कि प्रलय तक का समय लगे तो भी प्रयत्न उसी उत्साह से जारी रखेंगे, दृढ़ता इतनी होनी चाहिए कि वज्र जैसे विघ्न आयें तो भी उन्हें पार करेंगे । इसी प्रकार जब मृत्यु, शोक, हानि, रोग, कलह अन्य किसी प्रकार के संकट आवें तो उनके निवारण करने के उपाय सोचने और कार्य करने में शक्ति को लगाना चाहिए । यदि कष्ट में पड़ना पड़े तो उसे हँसते हुए सहकर अपनी वीरता का परिचय देना चाहिए । इन्द्रिय भोगों को प्राप्त करने की आतुरता भी कभी-कभी बेचैन बना देती है, उस पर भी नियन्त्रण करने की आवश्यकता है । स्वादेन्द्रिय को जीतना चाहिए, व्रत उपवास द्वारा स्वाद रहित भोजन करने की आदत डालकर चटोरेपन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए । सिनेमा, नाटक, नाच, रंग जैसे हानिकारक मनोरंजनों से हठपूर्वक मन को रोकना चाहिए। काम-वासना की सीमा मर्यादित रखनी चाहिए । यदि मन असमय चंचल हो तो उसका दमन करना चाहिए। स्वादेन्द्रिय और कामेन्द्रिय से छोटे-छोटे युद्ध समय-समय पर बार-बार ठानते रहना चाहिए । जैसे किसी दिन निश्चय किया कि आज शाम तक मिठाई नहीं खायेंगे, उस दिन उस प्रतिज्ञा को पूरी तरह निभा ही देना चाहिए । किसी दिन नमक न खाने की, किसी दिन दूध न पीने की, किसी दिन उपवास की, किसी दिन कुछ समय मौन रहने का निश्चय करना चाहिए और उसे पूरा कर ही लेना चाहिए । जिस दिन जो इच्छा प्रबल हो, उस दिन उसका जरूर दमन करना चाहिए । इस प्रकार अभ्यास करने से कुछ दिन में आत्म निग्रह की शक्ति बढ़ जाती है और इन्द्रियाँ वश में आ जाती हैं । इन्द्रियों को उनके भोग देने आवश्यक हैं, पर वह उन्हें विवेकपूर्वक, चिकित्सक बुद्धि से देने चाहिए । रोगी जो माँगता है वह उसे नहीं खिलाया जाता, परन्तु डॉक्टर रोगी की रुचि के विपरीत कड़ुवी औषधि दे, तो भी उसे वह खानी पड़ती है । यह दृष्टिकोण इन्द्रिय भोगों के सम्बन्ध में होना चाहिए । इन्द्रियों की स्थिति रोगी की है, उनकी इच्छा केवल रसास्वादन के आधार पर होती है, हानि-लाभ की दूरदर्शिता का विचार उनमें नहीं होता । रसास्वादन के चटोरेपन में मर्यादा का अतिक्रमण करती है, जिससे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को भयंकर हानि होती है । उसके अतिरिक्त जब इन्द्रियाँ बहुत प्रबल हो जाती हैं, विवेक उन्हें परास्त नहीं कर सकता तब वे जब चाहे तब मनमें भयंकर हलचल मचा देती है और शान्ति के स्थान पर चंचलता का साम्राज्य स्थापित कर देती हैं । ऐसी स्थिति सर्वथा अवांछनीय है, स्थिरता को नष्ट करने वाली है । इसलिये इन्द्रियजन्य मनोवेगों को रोकने, लड़ने, प्रतिबन्ध लगाने एवं परास्त करने के लिए नित्य कोई न कोई छोटे बड़े अवसर तलाश करते रहने चाहिए । कुछ दिनों के प्रयत्न से वासना शक्ति निर्बल हो जाती है, उसमें वह प्रबलता नहीं रहती कि जब चाहे तब मानसिक शान्ति को नष्ट करे ।

निराकुलता में अनन्त शान्ति भरी हुई है । योगीजन विचारों को हटाकर चित्त को शून्य बनाने का अभ्यास किया करते हैं, यह निराकुलता का अभ्यास है । कैवल्य, निर्विकल्प, समाधि क्या है ? निराकुलता की सर्वोच्च सफलता है । इस मार्ग में जो जितना आगे बढ़ जाता है, उसे उतना ही आनन्द आता है, उसकी शक्ति उतनी ही बढ़ जाती है, विवेक बुद्धि में उतनी ही स्वच्छता आ जाती है । केवल योगियों के लिए ही नहीं, हर व्यक्ति के लिए निराकुलता की आवश्यकता है । इस निराकुल अवस्था को प्राप्त करना संसार की सबसे बड़ी सफलता है । क्योंकि इसी से आत्म तेज उदय होता है । यही ब्रह्म विद्या का रहस्य है ।

अपने अन्त:के देवता को जगाइये

युग समस्याएँ जानी पहचानी हैं । समाधान भी सभी विचारवानों को विदित है । फिर से उस सन्दर्भ में अधिक ध्यान देने के लिए कहा जाता रहता है, कि तथ्यों पर जिस हल्के ढंग से विचार किया जाता रहा है वह अपर्याप्त है । ढर्रे का आवरण उठाकर हमें वास्तविकता को देखना चाहिए । इसी को तत्व दर्शन या ईश्वर दर्शन कहते हैं। इसी का नाम आत्म साक्षात्कार अथवा ब्रह्म निर्वाण है । ढर्रे का अभ्यास ही भव बन्धन है । माया अर्थात् अवास्तविकता की खुमारी । उसे हटाया और तथ्य को अपनाया जा सके तो समझना चाहिए कि जीवन मुक्ति के मार्ग का अवरोध मिट गया ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य जीवन ईश्वर का बहुमूल्य अनुदान है । इसे इनाम नहीं अमानत माना जायेगा । भव-बन्धनों के कुचक्र से निवृत्ति, पूर्णता की प्राप्ति, स्वर्ग और मुक्ति की उपलब्धियों-सिद्धियों की विभूति, आत्मा और परमात्मा की एकता जैसी महान सफलताएँ इस एक ही तथ्य पर निर्भर हैं कि यथार्थता को हृदयंगम करना सम्भव हो सका या नहीं ?

कहने सुनने को तो आदर्शवादी बकवास आये दिन चलती रहती है, पर वस्तुतः उसमें कुछ सार नहीं । आध्यात्म का लाभ एवं चमत्कार मात्र उन्हीं को मिलता है जो उसे कल्पना लोक की आड़ न मानकर जीवन दर्शन के रूप में मान्यता देते और तदनुरूप दिशाधारा का निर्धारण करते हैं।

युग सन्धि की ब्रह्म बेला में जागृत आत्माओं का आत्म-चिन्तन, जीवन दर्शन की यथार्थता के साथ जुड़ सके तो काम चले । सोचा जाय कि अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य को जो विशेष मिला है वह शौक, मौज भर के लिए है ? विचारा जाय कि चौरासी चक्र के छूटने के पूर्णता तक पहुँचने के, ईश्वर के साथ अनन्य होने के इस स्वर्ण सुयोग को आगे भी इसी तरह नष्ट करते रहना उचित है जैसा कि अब तक किया जाता रहा ? लोग क्या कहते और करते क्या हैं ? इसे देखने, सुनने और इन्हीं का अनुसरण करने से तो एक के पीछे एक-एक करके गर्त में गिरने वाली भेड़ों की तरह अपनी भी दुर्गति ही होनी ही है । क्या इस दुर्भाग्य से बचा नहीं जा सकता ?

थोड़ी दूरदर्शिता और थोड़ी साहसिकता अपनाने पर उन तथाकथित परिस्थितियों का स्वरूप ही बदला जा सकता है जो लक्ष्य पथ पर चल सकने की असमर्थता–विवशता बनकर सामने आती रहती है । मकड़ी अपना जाल आप बुनती है और उस में फँसकर छटपटाती और जिस-तिस को दोष देती है । किन्तु जब अपना चिन्तन उलटती है तो अपने बुने जालों के धागों को समेटती निगलती चली जाती है । निविड़ दीखने वाले बन्धन देखते-देखते साँझ के रंगीन बादलों की तरह अदृश्य होने लगते हैं ।

सामान्यतया मनुष्य जीवन की गरिमा का समुचित उपयोग विश्व उद्यान को सुरम्य बनाने में योगदान देकर इस सुअवसर को सार्थक बनाने में ही है । पेट प्रजनन तक अन्यान्य प्राणियों को सीमित रखना शोभा देता है, मनुष्य को नहीं । अन्य प्राणियों को साधन सीमित मिले हैं । उनकी शरीर संरचना और बौद्धिक क्षमता इतनी ही है कि अपना निर्वाह जीवन भर चला सके । किन्तु मनुष्य तो सृष्टा का युवराज है । उसे इतना मिला है कि अपनी विशेषताओं के सहारे उसे तनिक-सा श्रम मनोयोग लगाकर चुटकी बजाते उपार्जित कर सकता है और शेष विभूतियों से आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण जैसे उच्च उद्देश्यों की पूर्ति कर सकता है ।

इस सुअवसर को ठुकरा कर जो तृष्णा वासना का लोभ-मोह का अनावश्यक भार सँजोते और ढोते हैं, उनकी समझदारी को किस तरह सराहा जाय ? दल-दल में घुसते जाना और उसकी सड़न से खीजते और जकड़न से चीखते जाना, किसी का लादा हुआ नहीं स्वयं ही अपनाया हुआ दुर्भाग्य है । यह अनिवार्य नहीं, अपना ही चयन है कोई चाहे तो इस स्थिति को किसी भी समय बदल भी सकता है । इसके लिए बहुत कुछ करने की आवश्यकता नहीं पड़ती । मात्र दृष्टिकोण उलटना और कार्यक्रम बदलना पड़ता है । इस परिवर्तन से व्यवस्था बिगड़ती नहीं वरन् और भी अच्छी बन जाती है । किन्तु उस अदूरदर्शिता को क्या कहा जाय जो अभ्यस्त ढर्रे के रूप में सिर से पैर तक लद गई है । कोई चाहे तो उसे सहज ही उतार भी सकता है ।

माया छाया की तरह है वह आगे-आगे चलती और नेतृत्व करती है । किन्तु जब प्रकाश की ओर पीठ किये रहने की प्रक्रिया बदलती जाती है, दिशा को उलट दिया जाता है तो सूर्य के सम्मुख होते ही छाया पीछे दौड़ने लगती है । परिस्थितियों की विवशता के सम्बन्ध में ऐसा ही सोचा जाता है कि वही बाधक हो रहा है । किन्तु ऐसा है नहीं । चिन्तन का प्रतिगामी ढर्रा ही बाधक है । यदि आदर्शवादी आधार अपनाकर नये ढंग से सोचना और गतिविधियों का नये सिरे से निर्धारण कर सकना सम्भव हो सके तो प्रतीत होगा कि समस्त गुत्थियाँ सुलझ गईं । ऐसा मार्ग निकल आया जिस पर चलते हुए लोक और परलोक का सुव्यवस्थित रीति से सध सकना सम्भव ही नहीं सरल भी है । इस आन्तरिक परिवर्तन के लिए गतिविधियों के अमिट, निर्धारण के लिए जो साहस जुटा लेते हैं वे देखते हैं प्रगति पथ पर बढ़ चलने की कितनी सहज सुविधा उपलब्ध थी । अदूरदर्शी आदतों ने ही उस सौभाग्य से मुँह मोड़ा जो ईश्वर ने हर किसी को जीवन लक्ष्य पूरा कर सकने के निमित्त उदारतापूर्वक प्रदान किया है ।

सामान्य परिस्थितियों में जन्मे और कठिनाइयों से घिरे व्यक्ति भी चरमोत्कर्ष के लक्ष्य पर पहुँचे और महामानव बने हैं । दूसरे लोग जिन परिस्थितियों को विवशता मानते रहे उन्होंने इन्हें इस रूप में देखा ही नहीं । नये ढंग से सोचा और नया मार्ग निकाला । फलतः परिस्थितियाँ अपनी जगह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर बनीं रहीं और आगमन के लिए दूसरा रास्ता निकल आया । महामानवों में से प्रत्येक का जीवन क्रम इसका साक्षी है कि उन्होंने परिस्थितियों को अपरिहार्य नहीं माना और उनके न बदलने पर अपना ढर्रा बदलने का साहस जुटाया । पिछड़ेपन और प्रगतिशील का मध्यवर्ती अन्तर इतना ही है जो इस रहस्य को समझते हैं उनके लिए दैत्यों के जादू तिलस्म से बाहर निकलना और देवों के उमुक्त आकाश में विचरण करना कुछ भी कठिन नहीं रह जाता तिलस्म अवास्तविक है । स्वसम्मोहन और आत्मसमर्पण ही उसका आधार है । अन्तरंग बदलते ही बहिरंग के उलटने में देर नहीं लगती । जो भीतर की गुत्थी सुलझा सके उनके लिए बाहरी समस्याओं का हल निकालते देर नहीं लगती । प्रपंच का जंजाल तो भीतर ही भरा पड़ा है । अपच होने से ही स्वादिष्ट व्यंजन कडुवे लगते हैं ।

यदि विलासी लिप्सा और संग्रह की तृष्णा को हल्का किया जा सके तो औसत भारतीय जैसा नैतिक निर्वाह आसानी से उपार्जित हो सकता है । यदि परिवार को बढ़ाने की मूर्खता न की जाय जो अब तक की है, उसे स्वावलम्बी सुसंस्कारी बनाना भर कर्तव्य माना जाय तो उस परिपोषण के लिए सामान्य प्रयास से ही काम चल सकता है । बोझिल जीवन तो उनका होता है जो अमीरी के स्वप्न देखते और उत्तराधिकारियों को वैभव से लादने की ललक सँजोये रहते हैं । बोझ इस दुश्चिन्तन भर का है । न किसी के लिए पेट भारी पड़ता है और न परिवार । बोझिल तो वह मूर्खता है जो लिप्सा तृष्णा के रूप में जोंक की तरह शिराओं में दाँत गढ़ाये रहती है । आवश्यकता हर किसी की पूरी हो सकती है, पर तृष्णा की आग को बुझा सकना कितने ही प्रचुर वैभव से सम्भव नहीं हो सकता । ईंधन पड़ने पर वह शान्त कहाँ होती है, दूनी-चौगुनी भड़कती है ।

प्रसुप्ति ग्रस्तो का चिन्तन और आचरण जैसा होता है उसकी तुलना में जाग्रतों को सोचने और करने में भारी अन्तर रहता है । जाग्रतों में मोहग्रस्तों की तरह नहीं सोचना चाहिए, उन्हें सुख में ही लिप्त रहना चाहिए सन्तोष भी उपार्जित करना चाहिए । बड़प्पन ही पर्याप्त नहीं महानता भी अभीष्ट है । वाहवाही लूटने के लिए उद्धत प्रदर्शन का सरंजाम जुटाने में सार नहीं, महत्त्व उस लोक श्रद्धा का है जो उत्कृष्टता और उदारता अपनाने पर प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होती और अन्तरात्मा को आनन्द भरी पुलकन से परितृप्त करती है ।

हर जागरूक को इन दिनों इसी स्तर का प्रगतिशील चिन्तन अपनाना चाहिए और ढर्रे में ऐसा परिवर्तन करना चाहिए जिससे इस विषम वेला में आपत्ति धर्म का निर्वाह कर सकना सम्भव हो सके । ढूँढ़ने पर हर किसी को राह मिलती है । यदि आकांक्षा सच्ची हो तो एक न सही दूसरे ढंग से सही कोई हल निश्चित रूप से ऐसा निकल सकता है, जिसमें निर्वाह भी कठिन न पड़े और जीवन लक्ष्य पाने तथा युग धर्म निभाने का अवसर भी मिलता रहे ।

रोज कुआँ खोदने और रोज पानी पीने वाले भी यदि आदर्शवादिता को अपना सकें तो आठ घण्टा कमाने के, सात घण्टा सोने के, पाँच घण्टा गृहकार्यों के लिए लगाकर बीस घण्टे में संसार यात्रा भली प्रकार चला सकते हैं और शेष चार घण्टे बिना किसी कठिनाई के युग धर्म के निर्वाह में नियमित रूप से लगा सकते हैं । बहानेबाजी की बात दूसरी है, उन्हें बीस बहाने पहले से ही याद हैं । चाहें तो चालीस और भी गढ़ सकते हैं । इन भावना रहित लोगों की आत्म-प्रवंचना ही मूलभूत कठिनाई है । यथार्थ चिन्तन की कसौटी पर उनकी वह मनगढ़ंत नितान्त बनावटी लगती है, जिसका आश्रय लेकर वे अपनी जागरूकता को कर्तव्य पथ पर चलने से रोके रहते हैं ।

पूरा समय आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण में लगा सकने की परिस्थिति प्रायः आधे लोगों की ही होती है । संचित सम्पदा को समेटकर यदि स्थायी निधि के रूप में दमा कर दिया जाय तो दस प्रतिशत ब्याज भर से इतना पैसा सहज ही मिलता रह सकता है जिसमें निर्वाह भी होता रहे और देव जीवन भी लिया जा सके । परिजनों को स्वावलम्बी भर बनाने का लक्ष्य हो तो उनमें अन्य समर्थों को बैठकर न खाने, कुछ कमाने के लिए उत्साह उत्पन्न किया जा सकता है । बैठकर खाने में इज्जत और कमाने में अपमान की मान्यता यदि बदली जा सके तो बच्चे हुए समय घर के समर्थ लोग कुछ न कुछ कमा सकते हैं और एक व्यक्ति पर लदे हुए भार को बहुत कुछ हल्का कर सकते हैं । बेटों को बैरिस्टर बनाने और लड़की को कुबेर के घर में भेजने का नशा हल्का किया जा सके और उन्हें औसत नागरिकों की तरह निर्वाह करने और सुसंस्कारी गतिविधियाँ अपनाने के मार्ग पर चलाया जा सके, तो प्रतीत होगा कि पहाड़ जैसा बोझ उतरकर हल्का हो गया । सन्तानें स्वावलम्बी हो जाने पर छोटे परिवार से विदाई लेनी चाहिए और बड़े परिवार (विश्व परिवार) की बात सोचनी चाहिए।

परिस्थितियाँ असंख्यों की ऐसी हैं जिनको युग धर्म के निर्वाह की समुचित सुविधाएँ प्राप्त हैं । हथकड़ियाँ मोह की और बेड़ियाँ लोभ की हैं जो एक कदम आगे बढ़ने और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक परमार्थ कर देने में अवरोध अटकाती हैं । इन्हें तोड़ा न जा सके तो ऐंठ मरोड़कर ढीला तो किया ही जा सकता हैं । इतने भर से दौड़ना न सही घिसटना तो निश्चित रूप से सम्भव हो सकता है ।

युग सन्धि की इस पुनीत वेला में आपत्ति धर्म के निर्वाह से मुँह मोड़ना ऐसा प्रमाद है जिसके लिए समय निकल जाने पर हाथ मलना और पश्चाताप करना ही शेष रह जायेगा ।

देवताओं से सहायता माँगने की बात तो सदा ही चलती है, पर कुछ विशेष समय ऐसे भी आते हैं जब देवता मनुष्य से याचना करते हैं । ऐसे अवसर किन्हीं सौभाग्यवानों को ही मिलते हैं जब वे देवताओं की मनोकामना पूरी करने में समर्थ हो सकें । दशरथ को देवताओं की सहायता के लिए जाना पड़ा था । अर्जुन भी गये थे । दधीचि ने उदारतापूर्वक उन्हें दान दिया था । कृष्ण साधु के वेश में घायल कर्ण के पास पहुँचे थे । वामन ने बलि के सामने हाथ पसारा था । राम ने शबरी से बेर की याचना की थी । सुदामा से तंदुल माँगे गये थे । अंगद और हनुमान ने देवताओं से अपनी कामना पूर्ण नहीं कराई थी, वरन् उनकी पूरी की थी । इस प्रसंग में ऋषियों की परम्परा याद आ जाती है । विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र से, उद्दालक ने आरुणि से, चाणक्य ने चन्द्रगुप्त से, समर्थ ने शिवाजी से, परमहंस ने विवेकानन्द से, विरजानन्द ने दयानन्द से कुछ माँगा था और सत्पात्र शिष्यों ने जी खोलकर दिया भी था । बुद्ध और गाँधीजी की झोलियाँ आदि से अन्त तक फैली ही रहीं । देने वाले घाटे में नहीं रहे । लोने वाले जितने धन्य हुए उससे अधिक श्रेय देने वाले को मिला । मान्धाता ने शंकराचार्य को दिया था उससे अधिक पाया । अंगुलिमाल और आम्बपाली, हर्षवर्धन और अशोक, बुद्ध को देते समय उदारता की चरम सीमा पर पहुँचे थे । गाँधी के सत्याग्रहियों ने अनुदानों की अपने दाव पर झड़ी लगा दी थी । देखते हैं कि जो दिया गया था वह निरर्थक नहीं गया, वरन् असंख्य गुना होकर उन उदार मनाओं के ऊपर दैवी वरदान की तरह इस प्रकार बरसा कि वे कृत-कृत्य हो गये । धनी अकेले भामाशाह ही नहीं हुए हैं । मरण अकेले भगत सिंह के ही हिस्से में नहीं आया है । जेल अकेले नेहरू पटेल ही नहीं गये हैं । मुसीबतें बहुतों को आती हैं त्यागने के लिए हर किसी को विवश होना पड़ता है । किसी से चोर छीनता है किसी से बेटा । पेट भरने और तन ढकने के अतिरिक्त और किसी के पल्ले कुछ नहीं पड़ता । जब विरानों के लिए ही सब कुछ छोड़ना है तो इन विरानों का स्तर कुछ ऊँचा क्यों न उठा लिया जाय । जब अपना उपार्जन श्रम सहयोग किसी को देना ही है तो उन्हें देवताओं, ऋषियों एवं सदुद्देश्यों के लिए ही क्यों न दिया जाय ? इस उदारनीति को अपनाने वाले बैंक में जमी की गई पूँजी की तरह ब्याज समेत लम्बा लाभ पाते हैं, जबकि मोह के गर्त में धकेली हुई उपलब्धियाँ निरर्थक ही नहीं जातीं विघातक प्रतिक्रिया भी उत्पन्न करती है ।

दूसरों से बात करने में समय और चातुर्य का कचूमर निकल जाता है । यदि अपने से भी एकान्त में जी खोलकर समझदारी की बात की जा सके और अभिन्नों के सहयोग से बनने वाली सृजनात्मक योजना बनाने जैसा कुछ किया जा सके तो अन्तःलोक में पड़े देवता ही जागृत होकर ऐसा परामर्श एवं सहयोग देने लगेंगे जिन्हें पाकर समस्त अभाव की पूर्ति और समस्त वैभव की उपलब्धि हो सकती है ।

हर दिन नया जन्म हर रात नई मौत

उपासना के लिए सर्वोत्तम काल संध्याकाल माना गया है । इसलिए दैनिक उपासना का नामकरण ही संध्यावन्दन कर दिया गया है । संध्यावन्दन की परम्परा प्रातःकाल और सायंकाल की है। यही समय संध्याकाल कहलाते हैं । सन्ध्या शब्द का मूल संधि है । संधि कहते हैं जुड़ने को। रात्रि और दिन के मिलन की वेला संधि हुई । प्रातः रात्रि का अन्त और दिन का आगमन होता है । सायं दिन का अन्त और रात्रि का आरम्भ है । यह दोनों ही समय संध्यावन्दन के लिए उपयुक्त समय माने गये हैं । इस काल की अपनी विशेषता यह भी है । इन घड़ियों में सूक्ष्म वातारवण की कुछ ऐसी विशेषता रहती है कि आत्मिक क्षेत्र में सफलतापूर्वक प्रवेश करना और उसमें से कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ कर सकना सरल पड़ता है ।

दैनिक नित्यकर्म में संध्यावन्दन का अपना महत्त्व है । उसे तो यथावत् चलने ही देना चाहिए साथ ही उस ब्रह्म संध्या को भी अपने साधनाक्रम में सम्मिलित रखना चाहिए जिसका एक सिरा आत्मबोध और दूसरा तत्वबोध है । यह आत्म संध्या प्रातः आँख खुलते समय और रात्रि को सोते समय की जाती है । इसे बिस्तर पर पड़े-पड़े भी किया जा सकता है । निद्रा को रात्रि और जागृति को दिन माना जाय तो उनका मिलनकाल भी संध्याकाल हो जाता है । भले ही घड़ी में कुछ भी क्यों न बजा हो । सूर्योदय और सूर्यास्त से इसकी संगति मिलाने की आवश्यकता नहीं होती ।

जल्दी सोने वालों की नींद जल्दी खुलती है और देर में सोने वालों की देर से । इसलिए इस अध्यात्म संध्या के लिए घड़ी के हिसाब से कोई समय नियत नहीं किया जा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता । जिसकी जब आँखें खुले तभी उसे अपना आत्मिक प्रातःकाल मान लेना चाहिए । उस समय न्यूनतम पन्द्रह मिनट समय मनन चिन्तन के लिए लगाया जाना चाहिए ।

कइयों को उठते ही मल-मूत्र त्यागने की आवश्यकता पड़ती है । यदि हो तो प्रथम वही करना चाहिए । अन्यथा आँख खुलते ही चिन्तन मनन आरम्भ कर देना चाहिए । हर नये दिन को नया जन्म माना जाय और उसका महत्त्व समझने तथा सदुपयोग की रूपरेखा बनाने को इस समय गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय ।

सबसे अधिक विचार करने योग्य तथ्य यह है कि भगवान ने इतना सुविधा सम्पन्न अनन्त भावनाओं से ओत-प्रोत मनुष्य जीवन किस उद्देश्य के लिए दिया ? उसका सदुपयोग किस प्रकार किया जाय ? इस प्रश्नों पर नित्य ही विचार करना चाहिए आवश्यक है कि शरीर निर्वाह के तथा आमोद-प्रमोद के तुच्छ विषयों पर तो पूरा-पूरा मनोयोग लगा रहता है पर यह भुला दिया जाता है कि यह सुर दुर्लभ सौभाग्य जिस काम के लिए दिया गया था उसकी पूर्ति के लिए भी कुछ बन पड़ा या नहीं ।

मनुष्य जीवन एक असाधारण सौभाग्य है । इसे विशेष उद्देश्य के लिए मिली हुई ईश्वरीय अमानत ही माना जाना चाहिए । ईश्वर के लिए सभी प्राणी समान हैं व सभी उसके पुत्र हैं । न्याय की दृष्टि से सभी को समान अनुदान मिलना चाहिए वही सबको मिला भी है । निर्वाह के लिए जितना आवश्यक था सभी को मिला है । मनुष्य को अतिरिक्त मिला है । यह ऐसी ही अमानत है जैसी बैंक के खजांची के पास, फौजी सैनापति के पास अधिकारी, मिनिस्टर आदि के पास विभिन्न प्रकार की साधन सामग्री सुरक्षित रहती है। इनका प्रयोग वे निजी प्रयोजनों में नहीं वरन् निर्दिष्ट उद्देश्य के लिए ही करते हैं । मनुष्य की शरीर यात्रा के अतिरिक्त बच रहने वाली प्रचुर योग्यता लोभ-मोह की वासना-तृष्णा की पूर्ति के लिए नहीं, वरन् इसलिए मिली है कि ईश्वर के इस विश्व उद्यान को अधिक सुरम्य सुविकसित, समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने के लिए सुयोग्य माली की भूमिका निभायी जाय । संसार को सुन्दर बनाने में सृष्टा का हाथ बँटाया जाय आत्म कल्याण के लिए अपने को अनुकरणीय आदर्श महामानव बनाना तथा लोक-कल्याण के लिए सत्प्रवृत्तियों के सम्बर्द्धन में नियत रहना, यही वे उद्देश्य हैं जिनके लिए प्राणी को मनुष्य जीवन की अमानत सौंपी गई है ।

यह अवसर एक कसौटी है जिस पर खरा सिद्ध होने पर मनुष्य अधिक ईश्वरीय अनुग्रह प्राप्त कर सकता है । यदि खोटा सिद्ध होता है तो फिर अयोग्यता अप्रामाणिकता के दण्ड में यह अवसर सदा के लिए छीन लिया जाता है । मनुष्य को यह उपहार देते समय भगवान ने उसकी प्रामाणिकता पर विश्वास किया है और आशा रखी है कि वह सृष्टि के मुकुटमणि कहलाने वाले महान पद का गौरव समझेगा और साथ में जुड़े हुए उत्तरदायित्वों को उचित रीति से पूरा करेगा । आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण के दोनों ही उद्देश्यों का परित्याग करके यदि लिप्सा-लालसाओं में ही लगा रहा जाय तो यह एक प्रकार से ईश्वर के साथ विश्वासघात और अपने आपके साथ आत्मघात जैसा दुर्व्यवहार ही समझा जायेगा ।

प्रातःकाल के आत्म चिन्तन में मानवी जीवन की गरिमा अन्य प्राणियों की तुलना में उसकी असाधारण महानता पर बार-बार विचार किया जाय और ईश्वर की इस अमानत के साथ जुड़े हुए उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए अपने आपे को तैयार किया जाय । आज के दिन को एक महत्त्वपूर्ण जीवन माना जाय और रात्रि को मरणोत्तर जीवन में मिलने वाला विश्राम । अर्थात् चौबीस घण्टे की अवधि में ही एक जन्म और मरण का चक्र पूरा समझा जाय । दूसरे दिन को इसी जन्म-मरण चक्र का दूसरा अध्याय समझा जाय । इस प्रकार हर दिन नया जन्म, हर रात नई मौत का एक दिवसीय जन्म पूरा करते रहा जाय । लम्बा जीवन यदि ७० वर्ष का जीवन है तो उतनी ही अवधि में ३६०X७०= २५२०० जन्म पूरे करने की एक सुविस्तृत श्रंखला मानकर चला जाय उपेक्षा की जाय और प्रमाद बरता जाय तो बात दूसरी है, अन्यथा इतने लम्बे समय को यदि योजनाबद्ध रूप से व्यतीत किया जाय तो कोई कारण नहीं कि संचित कुसंस्कारों और जमे हुए कषाय-कल्मषों का निराकरण न हो सके । इसी प्रकार यदि उतनी अवधि में सत्प्रवृत्तियों की सद्भावनाओं की कृषि करते रहा जाय तो कोई कारण नहीं कि उस उत्पादन से आत्मिक विभूतियों का भण्डार न भरा जा सके । हजारी किसान के एकाकी प्रयत्न से एक सुविस्तृत क्षेत्र आम्र उद्यान-नन्दन वन दीखने लगा था और उसे हजारी बाग के सृजनकर्ता का श्रेय मिला था। फिर कोई कारण नहीं कि एक सजग और सजीव व्यक्तित्व उतनी लम्बी अवधि में आत्म-कल्याण का लक्ष्य पूरा न कर सके । जिस लोक-कल्याण का उत्तरदायित्व भगवान ने मनुष्य को सौंपा है, उसे पूरा कर सकने की समुचित सुविधाएँ हर मनुष्य के पास मौजूद हैं । उसकी आवश्यकताएँ इतनी कम और क्षमताएँ इतनी अधिक हैं कि उचित निर्वाह की समस्या कुछ ही घण्टों के श्रम से भली प्रकार पूरी होती रह सकती है और शेष समय उस प्रयोजन में लगता रह सकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है जिस पर कि सुअवसर की सफलता निर्भर है । सारी कठिनाई जीवनयापन की रीति-नीति निर्धारित न हो सकने की ही है । यदि वह बन पड़े तो सामान्य स्थिति का मनुष्य भी ऊँचे स्तर का सराहनीय और अनुकरणीय जीवनयापन कर सकता है । अपने वातावरण को सच्चे अर्थों में सार्थक बना सकता है ।

प्रातः जागरण के साथ यह विश्वास करके उठना चाहिए कि हम भगवान के सैनिक हैं । उसने हमें महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व सौंप कर भेजा है तो उसके अनुरूप साधन सामर्थ्य भी दी है । सैनिक को सेनापति किसी मोर्चे पर खाली हाथ नहीं भेजता । विश्वास करना चाहिए कि संसार में जो भी परिस्थितियाँ सामने आने वाली हैं उनसे निपटने योग्य शस्त्रास्त्र (शक्तियाँ) प्रवृत्तियाँ हमें प्राप्त हैं । उनका समुचित उपयोग कुशलतापूर्वक करते हुए सफलतापूर्वक अपने लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है । इस आस्था को पुष्ट करके कार्य में प्रवृत्त होने वाला साधक श्रेष्ठ मार्ग से भटक नहीं सकता, विपरीतताओं, बाधाओं से उसका मनोबल टूटता नहीं । उसे सैनिक की तरह विश्वास रहता है कि मेरे पीछे पूरी सेना की शक्ति है । यह आस्था आध्यात्मिक तथा लौकिक दोनों ही क्षेत्रों में व्यक्तित्व में निखार ले आती है ।

अपने चिन्तन को बल देने के लिए हमें ऐसे चरित्र बहुतायत में मिल सकते हैं जिन्होंने सरल निर्वाह पर सन्तोष किया और परमार्थ प्रयोजनों में जुटे रहे । उन्होंने खोया कुछ नहीं, पाया उतना कि उनके सत्साहस पर अनन्त काल तक श्रद्धांजलियाँ चढ़ती रहेंगी । उनकी बुद्धिमत्ता ने जीवन को सच्चे अर्थों में सार्थक बनाया और वे ईश्वर के विश्वास पात्र पार्षद और दिव्य लोक में अधिक ऊँचा पद पाने के अधिकारी बनें । लौकिक चतुरता की तुलना में आत्मिक विवेकशीलता ही अधिक श्रेयस्कर सिद्ध होती है । इसकी परिपुष्टि के अनेकों उदाहरण मौजूद हैं । उनमें से कुछ पिछली रात को ही चुन लिए जायें और प्रातःकाल आध्यात्मिक संध्या के समय उन्हीं का दृश्य देखने, विवेचन करने में निर्धारित समय लगाया जाय ।

स्थिति का पर्यवेक्षण करने को मनन कहते हैं और उस निष्कर्ष के आधार पर विवेकयुक्त योजना बनाना चिन्तन कहलाता है । उठने से लेकर सोने तक की दिनचर्या इसी समय बनायी जानी चाहिए । बुद्धिमत्ता की वास्तविक कसौटी यही है कि जो साधन उपलब्ध हैं, उनका श्रेष्ठतम सदुपयोग कैसे किया जाय, उसका दूरदर्शितापूर्ण निर्धारण कैसे किया जाय ? यह शैया छोड़ने से पहले ही कर लिया जाना चाहिए । इन घण्टों का विभाजन इस प्रकार किया जाय जिसमें शरीर परिवार के उचित निर्वाह की आवश्यकता पूरी करने के लिए उपार्जन और व्यवस्था में जितना समय लगता है उससे अधिक न लगने पाये । प्रायः हर सहृदय व्यक्ति को औसत भारतीय के स्तर का जीवनयापन करने में सन्तोष मानना चाहिए । इससे अधिक जो कुछ उपलब्ध है कमाया बचाया जा सकता है, उसे परमार्थ प्रयोजनों में लगाते हुए अपनी ही तरह समस्त समाज को सुखी समुन्नत बनाने में लगाया जाय । आध्यात्म दृष्टिकोण का समाधान ऐसे ही नीति निर्धारण में हो सकता है । सो दिन भर का समय विभाजन इस प्रकार किया जाय, जिसमें स्वार्थ और परमार्थ का लोक और परलोक का समुचित समन्वय बना रह सके । समय, मस्तिष्क, पैसा, प्रभाव, कौशल आदि शक्तियों की दृष्टि से मनुष्य स्वाभावतः सुसम्पन्न है । जो कमी दिखाई पड़ती है वह कृत्रिम है । चिन्तन की विकृति ही दरिद्रता बनकर मस्तिष्क पर छायी रहती है और वही लिप्साओं में भटकती है । पतन के गर्त में धकेलने वाली राह सुझाना भी उसी का काम है । चिन्तन की विकृति से बचा जा सके । विवेकयुक्त दृष्टिकोण अपनाया जा सके तो कोई कारण नहीं कि किसी भी परिस्थितियों में रहते हुए देवजीवन की प्रक्रिया सहज ही न अपनाई जा सके ।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सवेरे से ही उठने से लेकर सोने तक की ऐसी दिनचर्या बना लेनी चाहिए जिसमें न केवल श्रम समय का वरन् चिन्तन, साधन आदि का भी सही सदुपयोग होता रहे । साधनों का छोटा अंश भी व्यर्थ या अनर्थ सिद्ध होने वाले कामों में न लगने पाये । सुसन्तुलित दिनचर्या बनाकर बिस्तर से उठना चाहिए फिर दिन भर कड़ी दृष्टि से यह देखभाल करनी चाहिए कि संचित कुसंस्कार प्रातःकाल के निर्धारण में कोई बाधा तो नहीं पहुँचा रहे हैं। जो निश्चय किये गये थे, उनसे विपरीत आचरण तो नहीं हो रहा है । जहाँ भी ऐसा व्यतिक्रम होता दिखायी दे उसे तुरन्त रोका सुधारा जाय । चौकसी और कड़ाई रखने से ही प्रातःकाल का निर्धारण कार्यान्वित होता रह सकता है, अन्यथा पुराना अभ्यास और दुष्प्रवृत्तियों से भरा-पूरा वातावरण नये प्रगतिशील निर्णय को कार्यान्वित होने ही नहीं देगा श्रेष्ठता को व्यावहारिक जीवन में उतारने बन ही नहीं पड़ेगा । प्रातः जिस विवेकशीलता एवं दूरदर्शिता के सहारे दिन रूपी जीवन के श्रेष्ठतम सदुपयोग की रूपरेखा बनायी थी, उसी के अनुरूप शौर्य साहस को काम में लाकर अपने ऊपर कड़ाई बरतनी चाहिए । निद्रा और मृत्यु में लगभग समानता ही होती है । दोनों में शरीर और मन निश्चेष्ट हो जाते हैं । इन घड़ियों में सोचा जाय कि मृत्यु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आ गई । एक दिन जीवन का आरम्भ काल प्रातःकाल हुआ था अन्तकाल सोते समय आ पहुँचा । मृत्यु के समय सारे साधनों और सम्बन्धियों को यहीं छोड़कर जाना पड़ता है । इसमें विवशता, दुःख मानना मूर्खता है और स्वेच्छा से शान्तिपूर्वक त्याग करना बुद्धिमत्ता है । मूर्ख मरने में बेतरह डरते और जाते समय रोते कलपते हैं । स्वर्ग सुयोग को गँवा देने पर सिर धुन-धुनकर पछताते हैं किन्तु बुद्धिमानों को हँसते-हँसाते विदाई समारोह मनाना चाहिए । बुद्धिमत्ता इसी में है कि अपने को मालिक न मानकर माली समझा जाय । ऐसी वैरागी की--संन्यासी की मनःस्थिति को प्राप्त करके यह सोचना चाहिए कि अपने कहलाने वाले समस्त साधनों को ईश्वर अर्पण कर दिया गया । वस्तुतः थे भी उसी के । अपने को खाली हाथ ही जाना है । वैभव परिवार ईश्वर का था, उसी का रहेगा । अपने को तो उनकी सेवा सुरक्षा, शोभा उपयोगिता बढ़ाने का उत्तरदायित्व भर सौंपा गया था आधिपत्य जमाने की न तो आवश्यकता है और न वैसा सम्भव ही है । अस्तु, प्रस्तुत साधनों का परिजनों का भार उसी पर छोड़ा जा रहा है जिसके वे थे। हल्के मन से विदाई ली जा रही है ।

मृत्यु की कल्पना के साथ-साथ मृत्यु के बाद अपने शरीर की क्या गति होती है इसके कल्पना मित्र बनाना भी वैराग्य भावना की पुष्टि के लिए बड़ा उपयोगी है । शरीर में अब कुछ नहीं रहा । जिन इन्द्रियों को हम बड़ा प्रबल मानते थे वे स्वयं में कुछ नहीं हैं । चेतना के हटते ही उनकी अनुभूतियाँ समाप्त हो गयीं । अब जलना कटना सब बराबर है । यह दृश्य मन में इन्द्रियों एवं मन को सन्तुष्ट करने की अपेक्षा आत्मिक उत्कर्ष को महत्त्व देने का संस्कार दृढ़ होता है । शरीर को जलते, नष्ट होते देखने से शरीर के प्रति मोह सहज ही समाप्त होता जाता है । साधक शरीर से भिन्न अपने आप को दृष्टारूप में अनुभव करने लगता है । अस्तु अपने मूल स्वरूप के सम्बन्ध में धारणा परिपक्व होती रहती है । खीज और उद्विग्नता की जलन तनिक भी नहीं होती। इस मनःस्थिति में नींद भी ठीक आती है और मृत्यु भी शान्तिपूर्वक होती है । अस्तु, उसका अभ्यास हर दिन सोते समय करते रहना चाहिए ।

सामान्य मान्यता यह है कि-नींद के समय मनुष्य अचेत रहता है, किन्तु वास्तव में उस समय मस्तिष्क का केवल एक छोटा-सा भाग ही विश्राम करता है । मस्तिष्क एवं शरीर की अगणित क्रियाएँ जागृत अवस्था की ही तरह बल्कि उससे भी अधिक प्रखरता से चालू रहती हैं । रक्त परिभ्रमण से लेकर पाचन एवं पोषण तक के कार्य इस अवधि में होते हैं । मस्तिष्क का अचेतन गूढ़ अंश इस समय विशेष सक्रिय रहता है । शयन के समय जो चिन्तन आग्रह लेकर निद्रा की गोद में प्रवेश किया जाता है चेतना उस दिशा में विशेष सक्रियता बरतती है । अस्तु, अगले दिन नये जीन में नयी स्फूर्ति एवं नयी शक्ति लेकर आने का संकल्प, पिछली भूलों से ऊपर उठने योग्य प्रखरता प्राप्त करने की व्यग्रता रात भर में अन्तरंग में अनेक वांछित परिवर्तन परिशोधन का क्रम चलाती रहती है । जितना प्रखर आग्रह होगा उतना ही अधिक लाभ इस प्रक्रिया से मिलता है ।

मनुष्य की स्मृति बड़ी विलक्षण है वह न जाने कब-कब की, क्या-क्या बातें याद रखता है । पर जीवन के दो प्रमुख तथ्यों को जिस बुरी तरह भूल जाता है उस पर आश्चर्य होता है । न तो उसे जीवन का आरम्भ महत्त्व स्वरूप एवं उद्देश्य याद रहता है और न अन्ततःमरण ही स्मरण रहता है । केवल मध्यवर्ती गतिशीलता ही सब कुछ बनी रहती है । कहाँ से आना हुआ और कहाँ जाना हुआ है, इस तथ्य को भुलाकर कोई यात्री यदि कहीं चलता ही चला जाय तो उसका श्रम निरर्थक जायेगा और व्यर्थ की थकान तथा परेशानी सिर पर लदेगी । ऐसी ही दुर्गति हम सबकी होती है । जो लाभ मिलना चाहिए था, जो उद्देश्य सधना चाहिए था, वह हो नहीं पाता । उल्टे पाप की गठरी-ईश्वर की नाराजगी--अन्तरात्मा की प्रताड़ना साथ लेकर ही इस संसार से विदा होता है । यदि जीवन का आरम्भ और उसके अन्त को भली प्रकार ध्यान में रखा जा सके तो मध्यवर्ती गतिविधियों को सुनियोजित रखने में भी कठिनाई न पड़ेगी। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रातःकाल नये-नये जन्म का आरम्भ और सायंकाल जीवन यज्ञ की पूर्णाहूति का दृश्य सामने प्रस्तुत रह सके तो विवेकशीलता हमें वहाँ ले पहुँचेगी जहाँ मनुष्य को धन्य बनने का अवसर प्राप्त होता है ।

योग और तप का तत्वज्ञान

उपासनाओं में गायत्री साधना का स्थान सर्वोपरि माना जाता है । इसका एक कारण यह भी है कि वह अपने आप में समग्र सर्वांगपूर्ण है । अन्य उपासनाओं को मत सम्प्रदाय एवं परम्परागत मान्यताओं के कारण ख्याति भले ही मिल गयी हो, पर इनमें समग्रता के तत्व कम ही पाये जाते हैं । दूध तो अन्य पशुओं का भी उपयोगी ही होता हैं, पर गाय के दूध में लगभग वे ही विशेषताएँ पायी जाती हैं जो नारी के दूध में होती हैं । इसलिए किसी पक्षपात के कारण नहीं गुणों के कारण ही गौ दुग्ध को प्रमुखता दी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाती है । गायत्री उपासना के सम्बन्ध में भी यही बात है । इसलिए अन्यान्य उपासनाओं में रुचि लेने वाले साधकों तक के लिए शास्त्र का परामर्श यह है कि वे गायत्री उपासना को तो अपनाये ही रहें, इसके अतिरिक्त वे अन्यान्य देवोपासना भी कर सकते हैं ।

भूमि को जोतना तो हर हालत में आवश्यक है । इसके उपरान्त बीज बोने में भिन्नता भी रखी जा सकती है । गायत्री उपासना को भूमि शोधन--आत्म शोधन का प्रथम प्रयोजन पूर्ण करने वाली माना गया है । धुलाई तो रंगने से पहले ही की जानी चाहिए । रँगते समय यह भी सोचा जा सकता है कि किस रंग से कपड़े रँगे, धुलाई के सन्दर्भ में कोई मतभेद नहीं, उसकी प्राथमिकता तो सदा ही बनी रहेगी । गायत्री उपासना को मनःसंस्थान की आरम्भिक आवश्यकता पूर्ण करने वाली प्रक्रिया माना गया है, यही है उसकी समग्रता और सर्वांगपूर्णता का कारण ।

उपासना का ब्राह्य स्वरूप ऐसा है जिससे कभी-कभी यह भ्रम होने लगता है कि यह किसी देवता से कुछ याचना करने के लिए गिड़-गिड़ाहट जैसी कोई क्रिया है । साथ ही यह भी भ्रम होता है कि सम्भवतः देवताओं की मनोवृत्ति प्रशंसा और उपहार पाकर प्रसन्न हो जाने और बदले में उपासक को मनचाहा देने लगने जैसी होगी । यह दोनों ही मान्यताएँ भ्रमपूर्ण हैं । तथ्य यह है कि उपासना का उपचार व्यक्तित्व के अन्तराल की गहरी पर्तों को प्रभावित करता है और भाव संस्थान में उत्कृष्ट तत्वों का आरोपण अभिवर्धन करते हुए साधक की आत्म सत्ता में प्रखरता भर देता है । यह प्रखरता ही मनुष्य की वास्तविक सम्पत्ति है । उसी के आधार पर व्यवहार में शालीनता और कुशलता बढ़ती है। दूसरों की दृष्टि इसी प्रखरता की न्यूनाधिकता के आधार पर किसी का मूल्यांकन करती और उसे महत्त्व एवं सहयोग प्रदान करती है । उपासना किसी दूसरे की नहीं वस्तुतः अपने ही अन्तराल की करी जाती है । भीतर से सन्त उगता है तो बाहर उसका विस्तार सिद्ध रूप में परिलक्षित होता है । आत्म परिष्कार की तथ्यपूर्ण साधना ही उपासना के विभिन्न उपचारों के रूप में दृष्टिगोचर होती रहती है । इस प्रयोजन को पूर्ण करने में अपेक्षाकृत अधिक समर्थतायुक्त होने के कारण गायत्री विद्या को उपासना के क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान दिया गया है ।

दैनिक संध्यावन्दन तो आत्मोत्कर्ष का नित्य कर्म है । उससे आगे जब उच्चस्तरीय साधनाओं की प्रक्रिया आरम्भ होती है तो उसमें दो धाराएँ उभरती हैं । इन्हें अन्तराल के हिमालय से निकलने वाली गंगा-यमुना कहा गया है, इसका नाम है--(१) योग (२) तप । इनका समागम जिस बिन्दु पर होता, वहाँ एक नई अव्यक्त एवं अविज्ञात धारा सरस्वती के रूप में प्रकट होती है और तीर्थराज प्रयाग का माहात्म्य प्रत्यक्ष होने लगता है । बिजली के दो तार मिलते ही चिनगारियाँ छूटने लगती हैं । दो रंगों को मिलाने से तीसरा रंग बन जाता है । नर और नारी के संयोग से बालक उत्पन्न होता है । दो के मिलन से तीसरी बनने की बात रसायनशास्त्र के विद्यार्थी भली प्रकार जानते हैं । योग और तप की दिव्य धाराओं का मिलन जहाँ भी हो रहा होगा वहाँ सिद्धियों का अधिष्ठात्री आत्मशक्ति का नया उपहार उपलब्ध होगा । गायत्री साधना के द्वारा जिन आत्मिक विभूतियों और भौतिक सिद्धियों के उपलब्ध होने का माहात्म्य बताया गया है, उन्हें तत्वतः योग और तप के मिलन से उत्पन्न विशिष्टताएँ एवं सफलताएँ ही कहा जा सकता है ।

योग के तप और क्रिया-कृत्यों को देखने पर यों मोटी दृष्टि आमतौर से भ्रमग्रस्त होती है और उन्हें कोई जादुई खिलवाड़ जैसी कौतूहलवर्धक हरकत मान बैठती है । इन प्रयोजनों के लिए किये जाने वाले कृत्यों को ही सब कुछ समझ लिया जाता है और उन्हें ही सीखने-सिखाने पर सारा ध्यान केन्द्रित किया जाता है । तथ्य को न समझने वाले गहराई तक उतर नहीं पाते और यह जानने में असमर्थ रहते हैं कि योग और तप के नाम से प्रचलित क्रिया-कृत्यों के पीछे तत्वदर्शन छिपा पड़ा है और उनकी चमत्कारी शक्ति का उद्गम स्रोत कहाँ है ? उथले शारीरिक प्रयत्न ही साधना बन कर रह जाते हैं । फलतः उनकी स्थिति प्राण-रहित शरीर जैसी, तेल रहित मोटर जैसी उपहासास्पद बनकर रह जाती है । जो परिणाम कहे सुने गये थे, वे न मिल पाने से उस क्षेत्र में प्रवेश करने वालों को निराशा ही हाथ लगती है । उनका उत्साह कुछ ही दिनों में ठण्ड़ा पड़ जाता है, किन्तु जो वास्तविकता समझते हैं और साधना विज्ञान को आत्म-परिष्कार की सुनिश्चित पद्धति मानते हैं, वे अपने प्रयत्नों में अन्तराल को प्रभावित और परिष्कृत करने का उपक्रम जोड़े रहते हैं । ऐसी समग्र साधना प्रायः निष्फल होती नहीं देखी जाती ।

गायत्री उपासना के योग पक्ष में स्वाध्याय, मनन, चिन्तन एवं ध्यान के आधार पर किये जाने वाले सभी उपचार सम्मिलित हैं जो विचारतन्त्र द्वारा किये जाते हैं और आस्थाओं को प्रभावित करते हैं । तप पक्ष में उन क्रिया-कलापों की गणना होती है और जिसमें शरीर के विभिन्न अवयवों को अनभ्यस्त रीति-नीति अपनाने के लिए अभ्यस्त कराया जाता है, इस प्रयत्न को तितीक्षा भी कह सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संक्षेप में इन दोनों प्रयोजनों के लिए मन तथा शरीर को उत्कृष्टता का स्तर अपनाने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है । साधारणतया पानी की तरह मनुष्य का स्वभाव भी निम्नगामी रहता है । पशु प्रवृत्तियों का अभ्यास ही जीव की चिरसंचित सम्पदा है । उसी में रमण करने, रस लेने की सहज रुचि रहती है । वासना, तृष्णा और अहंता की खुमारी ही चढ़ी रहती है और उन्हीं में निमग्न रहने की आदत काम करती है । इस स्थिति को उलटने से ही उत्कृष्टता की ओर उभरना, उछलना सम्भव हो सकता है । इन्हीं प्रयोजनों के लिए योग एवं तप की समूची विधि-व्यवस्था, क्रिया-कलाप, रीति-नीति का निर्माण-निर्धारण किया गया है । योग से मनःसंस्थान को और तप से शरीर तन्त्र को उच्चस्तरीय गतिविधियों में रुचि और उस प्रकार की गतिविधियों में रस लेने के लिए सहमत कर लेना ही साधना विज्ञान का एक मात्र लक्ष्य है ।

इस प्रयोजन में जिसे जितनी सफलता मिलती है वह उसी अनुपात से दिव्य शक्तियों और सफलताओं से लाभान्वित होने लगता है । देवता आन्तरिक्ष में भी रहते हैं और दैवी शक्तियों का आधिपत्य सूक्ष्म जगत में भी छाया हुआ है, पर उनके साथ सम्पर्क बनाने की क्षमता अपने ही परिष्कृत अन्तःकरण में होती है । इसके बिना और किसी तरह उनके सम्पर्क साधना सम्भव नहीं है । व्यक्तित्व में निष्कृष्टता के भरे रहने पर दैवी अनुग्रह उपलब्ध होने की अपेक्षा नहीं की जा सकती । किसी प्रकार किसी अन्धे के हाथ बटेर लग भी जाय तो निकृष्टता के द्वारा उसका दुरुपयोग ही होता है । फलतः साधना के बल पर मिली हुई सफलताएँ अपने और दूसरे को लिए हानिकारक ही सिद्ध होती हैं । रावण, कुम्भकरण, मारीच, सहस्रबाहु, भस्मासुर, हिरण्यकष्यपु, वृत्तासुर आदि दुर्दान्त दस्युओं के उदाहरण सामने हैं । उन्होंने किसी प्रकार साधना से उथलीं सिद्धियाँ प्राप्त तो कर लीं, पर उनका सदुपयोग न कर पाने के कारण उल्टे संकट, विपत्ति एवं अपकीर्ति के ही भागी बन सके । साधना का विज्ञान विशुद्ध रूप से आत्म विकास की विधि-व्यवस्था से भरा पड़ा है ।

उपासना में चिन्तन के द्वारा ईश्वर के समीप पहुँचने एवं घनिष्ठ बनाने के लिए भक्ति भावना को विकसित करना होता है । इस घनिष्ठता को योग कहते हैं । मोटे अर्थों में योग का अर्थ होता है--जोड़ना । आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ देना ही योग है ।

ध्यान के समय किसी शरीरधारी या प्रकाश प्रतिमा आदि के रूप में भी परमात्मा की धारणा की जाती है । वह एक सामयिक प्रयोजन है, वस्तुतः परमात्मा की अनुभूति अन्तःकरण में एक दिव्य संवेदना के रूप में ही होती है और उस संवेदना की व्याख्या वैयक्तिक उत्कृष्टता एवं सामाजिक उदारता के रूप में ही की जा सकती है । देवताओं की आकृतियाँ भी सद्गुणों के समुच्चय के रूप में ही गड़ी गई हैं, उनके साथ घनिष्ठता बनाने का तात्पर्य है दैवी गुणों को अपने व्यक्तित्व की गहराई में समाविष्ट करना । जिसकी आस्थाओं में उत्कृष्टता का जितना अधिक समावेश हो सके, समझना चाहिए कि उसने उतने ही परिमाण में भक्ति साधना की (योग साधना की) ईश्वर प्राप्ति की मंजिल पूरी कर ली। ईश्वर के ढाँचे में ढल जाना उसके आदेशों की नीति-मर्यादाओं का पालन करना ही वह आत्म-समर्पण है, जिसे योगदर्शन में अनेक प्रकार से समझाया जाता है । समस्त योग साधनाओं का मूल उद्देश्य एक है कि ईश्वर को अर्थात् उत्कृष्टता को इतना आत्म सात कर लिया जाय कि व्यक्तित्व में उसी की प्रधानता परिलक्षित होने लगे । उपासना का विवेचन करने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचना होता है कि साधक को अपनी चेतना के चारों उपकरणों को-- मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को उच्चस्तरीय आस्थाओं के रंग मे रंग देना ही पड़ता है । इसकी सामान्य विवेचना की जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि यह अन्तर्जगत में उत्कृष्टता भर देने और व्यक्ति को आदर्शवादी बनाने का ही एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग है ।

उपासना के विभिन्न क्रिया-कलापों पर कर्मकाण्डों पर विधि-विधानों पर गम्भीर दृष्टि डाली जाय और उनका विवेचन वर्गीकरण किया जाय तो प्रतीत होता है कि वे सभी क्रियाओं के माध्यम से सदाशयता का अन्तःकरण को प्रशिक्षण देने का ही प्रयोजन पूरा करती है । दृश्य एवं कृत्य के माध्यम से समझना और समाझाना सरल पड़ता है । विभिन्न प्रकार के अभिनय इसी उद्देश्य के लिए होते हैं । बाल कक्षाओं के शिशुओं को खिलौने, वस्तुओं एवं दृश्यों के माध्यम से ही ज्ञान वृद्धि का आरम्भ कराया जाता है । बड़े लोगों को भी अनेक प्रकार प्रदर्शनों एवं अभिनयों के द्वारा किसी जानकारी को हृदयगंम कराने का प्रयत्न किया जाता है । उपासनात्मक कर्मकाण्डों के पीछे भी इसी उद्देश्य को पूरा करने का उद्देश्य छिपा हुआ है । पूजा उपचार में काम आने वाली अनेक प्रक्रियायें प्रकारान्तर में साधक की चेतना पर सही संस्कार डालती हैं कि उसके चिन्तन एवं अभ्यास को आदर्शवादिता की विचारधारा में ही बहना और बढ़ना चाहिए ।

तप साधना में उन तितीक्षाओं का समावेश है, जिनमें ऊँचे उद्देश्यों के लिए शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक कष्ट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहना पड़ता है । कर्मफल प्रकृतिक्रम एवं दूसरों के व्यवहार में आये दिन अनेकों कष्ट सहने पड़ते हैं, किन्तु आदर्शों के प्रतिपालन में जो थोड़ी-बहुत कठिनाइयाँ आती हैं उन्हें स्वेच्छा और प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करने का साहस नहीं बन पड़ता है, जबकि वह उत्कृष्टता का उपार्जन करने के लिए नितान्त आवश्यक है । महानता के मार्ग पर चलने वाले हर व्यक्ति को आदर्शवादी निष्ठा का प्रमाण देने के लिए जीवनभर तरह-तरह की कठिनाइयों से जूझना पड़ा है । इसी कसौटी पर खरे उतरने के उपरान्त ही किसी को श्रेष्ठता का आत्मसन्तोष और लोक-सम्मान मिल सका है । तप-तितीक्षा की साधना में अनेक प्रकार के संयम बरतने पड़ते हैं और सत्प्रयोजनों के लिए बढ़-चढ़कर अंशदान करने पड़ते हैं । विरोध सहन का भी साहस दिखाना पड़ता है । यह समस्त प्रयोगक्रम तप-साधना कहलाता है । इसे प्रकारान्तर से आत्मबल के अभिवर्द्धन का अभ्यास ही कहा जा सकता है ।

तप के दो प्रतिफल बताये गये हैं ---कषाय-कल्मषों का परिशोधन और आत्मबल का अभिवर्द्धन । तप शब्द का शब्दार्थ होता है-- तपाना-गर्म करना । तपाने से जमीन से निकलने वाली मिट्टी मिली धातुओं का परिशोधन किया जाता है । ताप के प्रभाव से रोग कीटाणुओं को मारने की प्रक्रिया चिकित्सकों द्वारा अपनायी जाती है । तपाने से कच्ची मिट्टी पक्की ईंटों के रूप में मजबूत बनती है । तपाने से पानी को भाप के रूप में प्रचण्ड शक्ति सम्पन्न बनने का अवसर मिलता है । धातुओं को गलाकर उपकरण औजार बनते हैं । भोजन पकाने से लेकर कारखाने चलाने तक में गर्मी की शक्ति ही काम करती है । अपनी भीतर की विशेषताओं एवं विभूतियों को उभारने के लिए भी श्रमशीलता, तन्मयता, उमंग भरी आशा, सुनिश्चित संकल्पशीलता जैसी सद्प्रवृत्तियों को अपनाने से ही काम चलता है । इसी मार्ग पर चलने का अभ्यास तप साधना में करना पड़ता है । प्रकारान्तर से उसे सदुद्देश्यों की पूर्ति में काम आने वाले शौर्य, साहस एवं त्याग, बलिदान का अभ्यास ही कहा जा सकता है ।

उपासनाओं में गायत्री उपासना प्रमुख है । उसके कितने ही प्रयोग एवं प्रकार हैं । इस समस्त समुच्चय का वर्गीकरण, विश्लेषण, विवेचन करने पर दो ही तथ्य सामने आते हैं--मन को योगी और शरीर को तपस्वी बनाना अर्थात् दोनों को उत्कृष्टता एवं आदर्शवादिता अपनाने के लिए प्रशिक्षित करना, अनुकूल बनाना और रुचि लेने की स्थिति तक पहुँचाना । यह व्यक्तित्व में सत्प्रवृतियों का समावेश करने की साधना है । भौतिक समृद्धियाँ और आत्मिक विभूतियाँ मिलने का यह समग्र उत्कर्ष ही एकमात्र उपाय है । उपासना की समूची प्रक्रिया इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए तत्वदर्शियों द्वारा विनिर्मित की गई है । भ्रान्तियों में उलझा जाय तो बात दूसरी है अन्यथा उपासना के तत्वज्ञान को सही रूप से समझने और समझाने की व्यवस्था बन सके तो निश्चित रूप से इस दशा में किया गया परिश्रम हर दृष्टि से हर किसी के लिए उपयोगी ही सिद्ध होता है । उपासना का वातावरण जहाँ भी बनेगा वहाँ शालीनता की दशा में अन्तःप्रवृत्तियों के ढलने का और सज्जनता की परम्परा चल पड़ने का क्रम निश्चित रूप से चल पड़ेगा ।

कहा जा चुका है कि उपासना विज्ञान में सर्वांगपूर्ण साधना गायत्री मन्त्र के माध्यम से जैसी अच्छी तरह बन पड़ता है, उसे अनुपम ही कहा जा सकता है । इस तत्व ज्ञान और साधना विधान को लोकरुचि का अंग बनाया जा सके तो उसकी प्रतिक्रिया व्यक्तियों का स्तर उत्कृष्टता की ऊँचाई में उछाल देना जैसा ही हो सकता है । कहना न होगी कि मनःस्थित के सुधरते ही परिस्थितियाँ सुधरती हैं । व्यक्तियों का समूह ही समाज है । व्यक्तिगत निकृष्टता की परिणति ही अनेकों समस्याओं और विपत्तियों के रूप में सामने आती हैं । तात्कालिक सुधार के लिए अन्य उपाय भी हो सकते हैं, किन्तु विपन्नता की जड़ काटने का एक ही मार्ग है कि जन-समाज में शालीनता की परम्पराएँ चल पड़ें, पर प्रचलन व्यक्तिगत जीवन में श्रेष्ठता का सम्वर्द्धन होने से ही हो सकता है, बौद्धिक श्रेष्ठता बढ़ाने के लिए सुविधा सम्वर्द्धन और बौद्धिक प्रशिक्षण की बात सोची जा सकती है । सो है तो वह ठीक किन्तु इन प्रयत्नों में तब तक अधूरापन ही बना रहेगा जब तक कि अन्तःकरण की गहराई में उतरकर आस्थाओं को उत्कृष्ट बनाने को भी अनिवार्य न माना जाय । आस्थारहित सम्पन्नता अन्ततः वैसा ही अनिष्टकर हो सकती है जैसी कि बढ़ती हुई सुविधाएँ और शिक्षा के साथ-साथ बढ़ती हुई विपत्ति की विभीषिका इन दिनों सामने खड़ी है ।

गायत्री का तत्वज्ञान और विधान, योगपरक चिन्तन और तपपरक अभ्यास की भली प्रकार पूर्ति कर देता है । जिसका जितना अधिक विस्तार होगा उसी अनुपात से व्यक्ति की श्रेष्ठता और समाज की सुव्यवस्था बढ़ती चली जायेगी। युग परिवर्तन का अभियान इसी लक्ष्य तक पहुँचने के लिए है । मोटी दृष्टि से देखने पर पूजा-पाठ की बात छोटी-सी प्रतीत होती है, किन्तु यदि उसको विशिष्टता और सम्भावना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

की दृष्टि से देखा जाय तो प्रतीत होगी कि युग समस्याओं के समाधान की उज्ज्वल भविष्य के निर्माण की आवश्यकता पूरी कर सकने की क्षमता आस्थाओं के स्पर्श करने वाली युग क्रान्ति से ही अभीष्ट परिवर्तन सम्भव हो सकेगा । यह समस्त सम्भावनाएँ गायत्री अभियान में पूरी तरह सन्निहित हैं ।

उपासना ही नहीं साधना भी

आत्मिक प्रगति के लिए उपासना के साथ साधना का आलम्बन लेना अनिवार्य है । उपासना बीजारोपण है और साधना खाद-पानी देने से लेकर देखरेख की समग्र व्यवस्था जुटाने जैसी प्रक्रिया । बीजारोपण तभी सफल एवं सार्थक होता है जबकि उसके अंकुरित हों, पुष्पवित एवं पल्लवित होने के लिए खाद, पानी एवं देखरेख की दुहरी प्रक्रिया चलती रहे । उपासना भी तभी सार्थक एवं फलवती होती है, जबकि मन, मस्तिष्क एवं अन्तःकरण में घुस आये आवांछनीय के बहिष्कार एवं सत्प्रवृत्तियों की प्रतिष्ठापना का सतत् क्रम चलता रहे ।

साधना का अर्थ है-- अपने को साध लेना अपने गुण कर्म एवं स्वभाव को परिष्कृत एवं परिमार्जित करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहना ।

विश्रृंखलित--अव्यवस्थित, अस्त-व्यस्त स्थिति में भी कुछ न कुछ उत्पादन-विकास तो होता है, पर वह किस गति से किस क्रम से और किस दिशा में चलेगा यह नहीं कहा जा सकता । कँटीले झाड़-झंखाड़ जंगलों में उगते हैं और बेढंगी रीति से छितराते हुए उस क्षेत्र की भूमि को कंटकाकीर्ण बना देते हैं । इसके विपरीत माली की देखरेख में सुनियोजित ढंग से लगाये गये पौधे सुरम्य उद्यान बनकर फलते-फूलते हैं । पौधों को क्रमवद्ध रूप से लगाने और उनको निरन्तर सम्भालने वाले माली की सजग कर्तव्यनिष्ठा उसकी साधना है, जिसका प्रतिफल उसे सम्मान तथा अर्थ लोभ के रूप में--पौधों का हरे-भरे, फले-फूले, सौन्दर्य के रूप में तथा सर्वसाधारण को छाया, सुगन्ध, फल, सुषमा आदि के रूप में उपलब्ध होता है । माली की उद्यान साधना सर्वतोन्मुखी सत्परिणाम ही प्रस्तुत करती है ।

मानवी व्यक्तित्व एक प्रकार का उद्यान है । उसके साथ अनेकों आत्मिक और भौतिक विशेषताएँ जुड़ी हुई हैं । उनमें से यदि कुछ को क्रमबद्ध, व्यवस्थित और विकसित बनाया जा सके तो उनके स्वादिष्ट फल खाते-खाते गहरी तृप्ति का आनन्द मिलता है, पर यदि चित्तगत वृत्तियों और शरीरगत व्यक्तियों को ऐसे ही अनियंत्रित छोड़ दिया जाय, तो वे भोंड़े, गँवारू एवं उद्धत स्तर पर बढ़ती है और दिशाविहीन उच्छृंखलता के कारण जंगली झाड़ियों की तरह उस समूचे क्षेत्र को अगम्य एवं कंटकाकीर्ण बना देती हैं ।

जीवन कल्प वृक्ष की तरह असंख्य सत्परिणामों से भरा पूरा है, पर इसका लाभ मिलता तभी है जब उसे ठीक तरह साधा, सँभाला जाय । इस क्षेत्र की सुव्यवस्था के लिए की गई चेष्टा को साधना कहते हैं । कितने ही दैवी-देवताओं की साधना की जाती है और उसे कतिपय वरदान पाने की बात पर विश्वास किया जाता है । इस मान्यता के पीछे सत्य और तथ्य इतना ही है कि इस मार्ग पर चलते हुए अन्तःक्षेत्र की श्रद्धा को विकसित किया जाता है । आदतों को नियन्त्रित किया जाता है । चिन्तन प्रवाह को दिशा प्रवाह को दिशा विशेष में नियोजित रखा जाता है, और सात्विक जीवन के नियमोपनियमों का तत्परतापूर्वक पालन किया जाता है । इन सबका मिला-जुला परिणाम अस्तित्व पर चढ़ी हुई दुष्प्रवृत्तियाँ का निराकरण करने तथा सत्प्रवृत्तियों के स्वभाव का अंग बनाने में सहायक सिद्ध होता है । सुसंस्कारों का अभिवर्द्धन प्रत्यक्षतः दैवी वरदान है । उसके मूल्य पर हर व्यक्ति अभीष्ट प्रयोजन की दिशा में अग्रसर हो सकता है और उत्साहपूर्वक सत्परिणाम प्राप्त कर सकता है।

साधना का महत्त्व किसान जानता है । पूरे वर्ष अपने खेत की मिट्टी के साथ अनवरत गति से लिपटा रहता है और फसल को स्वेद कणों से नित्य ही सींचता रहता है । सर्दी-गर्मी की परवाह नहीं; जुकाम खाँसी की चिंता नहीं । शरीर की तरह ही खेत उसका कर्म क्षेत्र होता है । एक-एक पौधे पर नजर रहती है । खाद, पानी, निराई, गुड़ाई से लेकर रखवाली तक के अनेकों कार्य करने से पूर्व वह उनकी आवश्यकता समझता है और किसी के निर्देश से नहीं अपनी गति से ही निर्णय करता है कि कब, क्या और कैसे किया जाना चाहिए ? किसी के दबाव से नहीं अपनी इच्छा और प्रेरणा से ही उसे खेत की, उसे सम्भालने वाले बैलों की, हल, कुदाल आदि सम्बद्ध उपकरणों की व्यवस्था जुटाये रहने की सूझबूझ सहज ही उठती और स्वसंचालित रूप से गतिशील होती रहती है । यह सब होता है बिना थके, बिना ऊबे, बिना अधीर हुए । आज का श्रम कल ही फलप्रद होना चाहिए, इसका आग्रह उसे तनिक भी नहीं होता । फसल अपने समय पर पकेगी--तब तक उसे धैर्यपूर्वक प्रतिक्षा ही करनी होगी । यह जानने के कारण अनाज की ठेरी कोठे में भरने की आतुरता भी उसे नहीं होती । इतने मन अनाज निश्चित रूप से होना ही चाहिए, इसके लम्बे-चौड़े मनसूबे बाँधना भी उसे अनावश्यक प्रतीत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होता है । मनोयोगपूर्वक सतत् श्रम की साधना चलती ही रहती है, विघ्न अवरोध न आते हों सो बात भी नहीं उनसे भी जैसे बनता है निपटता रहता है, पर उपेक्षा कभी भी खेत की नहीं होती । उसकी आवश्यकता पूरी किये बिना चैन ही नहीं पड़ता । समयानुसार फसल पकती भी है । अनाज भी पैदा होता है । वह ईश्वर को धन्यवाद देता हुआ घर भी ले जाता है । कितने मन अनाज पैदा होना है, यह कभी सोचा ही नहीं तो फिर असन्तोष का कोई कारण भी नहीं । जो मिला उसे ईश्वरीय उपहार समझा गया । यहा है किसान की साधना, जिसे वे होश सम्भालने के दिन से लेकर मरण पर्यन्त सतत् निष्ठा के साथ चलाता ही रहता है । न विश्राम, न थकान, न ऊब, न अन्यमनस्कता। साधना कैसे की जाती है और साधक को कैसा होना चाहिए? यह किसान से सीखा जा सकता है ।

अपनी जन्मजात ईश्वर प्रदत्त अनेकानेक अद्भुत किन्तु प्रसुप्त विशेषताओं और विभूतियों को जागृत करना ही आध्यात्म साधनाओं का लक्ष्य है । उसमें लगता भर ऐसा है मानो बाहर के किसी देवी-देवता को प्रसन्न करने के लिए अनुनय विनय की भेंट उपहार की, गिड़-गिड़ाहट भरी दीनता की, अभिव्यक्ति की जा रही है और साधक उसी का ताना-बाना बुनता है । पर वस्तुतः ऐसा कुछ होता नहीं । देवी-देवताओं को अपने निजी कार्य उत्तरदायित्व और झंझट भी तो कम नहीं होंगे । हमारी ही तरह वे भी अपने निजी गोरख धन्धे में लगे होंगे । जब हमें अपने थोड़े से सगे-सम्बन्धियों की सहायता ठीक तरह करते नहीं बन पड़ती तो असंख्य भक्त उपासकों की चित्र-विचित्र मनोकामनाओं को पूरा करने के लिए दौड़े-दौड़े फिरना उनके लिए भी कठिन ही पड़ेगा और वे सम्भवतः उतना कर भी नहीं पायेंगे जितनी कि अपेक्षा की जाती है ।

साधना का क्षेत्र अन्तःजगत है । अपने ही भीतर इतने खजाने दबे-गड़े हैं कि उन्हें उखाड़ लेने पर ही कुबेर जितना सुसम्पन्न बनाया जा सकता है । फिर किसी बाहर वाले से माँगने जाँचने की हीनता दिखाकर आत्म सम्मान क्यों गँवाया जाय ? भीतरी विशिष्ट क्षमताओं को ही तत्वदर्शियों ने देवी-देवता माना है और बाह्योपचार के माध्यम से अन्ततः संस्थान के भाण्डारागार को करतलगत करने का विधि-विधान बताया है । शारीरिक बल बुद्धि के लिए डम्बल, मुदर उठाने घुमाने जैसे कर्मकाण्ड करने पड़ते हैं । बल इन उपकरणों में कहाँ होता है ? वह तो शरीर की मांस पेशियों से ही उभरता है । उस उभार में व्यायामशाला के साधन-प्रसाधन सहायता भर करते हैं । उनसे मिलना कुछ नहीं, जो मिलना है वह भीतर से ही मिलना है । ठीक यही बात आत्म-साधना के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है । इस सन्दर्भ में प्रयुक्त होने वाले देवी-देवता एवं विधि-विधान अपनी जेब से कुछ नहीं देते । साधक की निष्ठा भर पकाते हैं उसे कार्य पद्धति भर सिखाते हैं । इतने का अभ्यस्त बनना ही साधनात्मक कर्मकाण्डों का प्रयोजन हैं । इतने भर से बात बन जाती है और राह मिल जाती हैं । साधक अपनी मूर्छना जगाकर उज्ज्वल भविष्य की असीम सम्भावनाएँ स्वयं जगा लेता है।

आत्म चेतना की जागृति ही साधना विज्ञान का लक्ष्य है । इसके लिए अपने चिन्तन एवं कर्तव्य का बिखराव रोककर अभीष्ट प्रयोजन के केन्द्र बिन्दु पर केन्द्रीभूत करना पड़ता है । इसके लिए अपना गतिविधियाँ लगभग उसी स्तर की रखनी पड़ती हैं, जैसी कि भौतिक क्षेत्र में सफलताएँ पाने वाले लोगों को अपनानी होती हैं ।

आत्म-साधक की मनःस्थिति भी यही होनी चाहिए । उसे सिद्धि के लिए लालायित रहकर अपनी तन्मयता में व्यधान उत्पन्न नहीं करना चाहिए वरन् साधना को किसी अध्ययन प्रिय की तरह 'स्वान्तः सुखाय' ही अपनाना चाहिए । परिणाम तो हर भले-बुरे कर्म का होता है, फिर कोई कारण नहीं कि आत्म साधना जैसे महान प्रयोजन में संलग्न होने का कोई प्रतिफल उपलब्ध न हो ।

व्यायामशाला में नित नये उत्साह के साथ जूझते रहने वाले पहलवान की मनःस्थिति और गतिविधि का यदि गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया जाय तो आत्म साधना के विद्यार्थी को विदित हो सकता है कि उसे आपको करना क्या पड़ेगा ? पहलवान मात्र कसरत करके ही निश्चिन्त नहीं हो जाता, वरन् पौष्टिक भोजन की, संयम ब्रह्मचर्या की, तेल मालिस की, उपयुक्त दिनचर्या की, प्रसन्नता निश्चिन्तता की भी व्यवस्था करता है । यदि उन सब बातों की उपेक्षा की जाय और मात्र दण्ड बैठकों को ही जादू की छड़ी मान लिया जाय तो सफलता दूर की चीज ही बनी रेहगी एकाकी कसरत से कुछ भला न हो सकेगा । उपासनात्मक विधि-विधान की अपनी महत्ता है, पर उतने भर से ही काम नहीं चलता । चिन्तन और कर्तृत्व की रीति-नीति भी लक्ष्य के अनुरूप ही ढालनी पड़ेगी ।

गायक और वादक एक दिन में अपने विषय में पारंगत नहीं हो जाते, उन्हें स्वर की, नाद की साधना नित्य निरन्तर करनी पड़ती है । 'रियाज' न किया जाय तो गायक का स्वर छितराने लगता है और वादक की अंगुलियाँ जकड़-मकड़ दिखाने लगती हैं । संगीत-सम्मेलन तो यदा-कदा ही होते हैं, पर वहाँ पहुँचने का सफल श्रेय देने वाली स्वर साधना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को नित्य ही अपनाये रहना पड़ता है । गीत सुनने वालों ने कितनी प्रशंसा की और कितनी धनराशि दी यह बात गौण रहती है । संगीत, साधक आत्म-तुष्टि की नित्य मिलने वाली प्रसन्नता को ही पर्याप्त मानता है और बाहर से कुछ भी न मिले तो भी वह एकान्त जंगल की किसी कुटिया में रहकर आजीवन बिना ऊबे संगीत साधना करता रह सकता है । आत्म-साधक की मनःस्थिति इतनी तो होनी ही चाहिए।

शरीर को जीवित और सुसंचालित रखने के लिए दो कार्य आवश्यक हैं-- एक भोजन, दूसरा मल त्याग । इनमें से एक की भी उपेक्षा नहीं हो सकती । भोजन न किया जाय तो पोषण के लिए नितान्त आवश्यक रस रक्त की नई उत्पत्ति न होना और पुराने संचित रक्त की पूँजी समाप्त होते ही काया दुर्बल होकर मृत्यु के मुख में चली जायेगी । इस प्रकार मल-त्याग न करने पर नित्य उत्पन्न होते रहने वाले विष जमा होते और बढ़ते चले जायेंगे और उनका विस्फोट अनेक उपद्रवों के रूप में प्रकट होकर कष्टकारक मृत्यु का आधार बनेगा । पंच भौतिक शरीर की तरह सूक्ष्म शरीर की दिव्य चेतना की भी कुछ आवश्यकताएँ हैं । उसे भी भूख लगती है । उस पर भी मल चढ़ते हैं और सफाई की आवश्यकता पड़ती है, इन दोनों प्रयोजनों को पूरी करने वाली प्रक्रिया साधना कही जाती है । इससे सत्प्रवृत्तियों को जगाकर वह सब उगाया, पकाया जा सकता है, जिससे आत्मा की भूख बुझती है और जीवन भूमि में हरी-भरी फसल लहलहाती है । साधना से उन मलीनताओं का, मनोविकारों का निष्कासन होता है जो प्रगति के हर क्षेत्र में चट्टान बनकर अड़े रहते हैं और पग-पग पर व्यवधान उत्पन्न करते हैं ।

साबुन और पानी से कपड़ा धोया जाता है और धूप में सुखा देने पर वह भकाभक दीखने लगता है । उसे पहनने वाला स्वयं गौरवान्वित होता है और देखने वालों को उस सुरुचि पर प्रसन्नता होती है । साधना में प्रयुक्त होने वाली आत्म-शोधन और आत्म-निर्माण की उभय-पक्षीय प्रक्रिया अन्तःक्षेत्र में धँसे-फँसे कुसंस्कारों को उखाड़कर उनकी जगह आम्र वृक्ष लगाती है । कँटीली झाड़ियों से पिण्ड छुड़ाने और स्वादिष्ट फल सम्पदा से लाभान्वित होने का दुहरा लाभ मिलता है । संसार में जितने भी चमत्कारी देवता जाने माने गये हैं, उन सबसे बढ़कर आत्मदेव है । उसकी साधना प्रत्यक्ष है । नकद धर्म की तरह उसकी उपासना कभी भी, किसी की भी निष्फल नहीं जाती । यदि उद्देश्य समझते हुए सही दृष्टिकोण अपनाया जा सके तो और विधिवत् साधना की जा सके तो जीवन साधना को अमृत, पारस और कल्प-वृक्ष की कामधेनु की सार्थक उपमा दी जा सकती है ।

साधना के सामान्य स्तर के प्राणी आश्चर्यजनक कार्य करके दिखाते हैं । वन गायें मनुष्य को पास भी नहीं आने देतीं और खेतों को उजाड़कर रख जाती हैं, पर जब वे पालतू हो जाती हैं तो दूध, बछड़े, गोबर आदि बहुत कुछ देती हैं । स्वयं सुखी रहती हैं और उसके पालने वाले भी लाभान्वित होते हैं । यही बात अन्य वन्य पशुओं के बारे में लागू होती है । जंगली, घोड़े, कुत्ते, सुअर, हाथी आदि स्वयं भूखे मरते, कष्ट उठाते और अनिश्चित जीवन जीते हैं । पालतू बन जाने पर वे स्वयं निश्चिन्ततापूर्वक रहते हैं और अपने पालने वालों को लाभ पहुँचाते हैं । अपने भीतर शरीर तथा मनःक्षेत्र में एक से एक बढ़कर शक्तिशाली धाराएँ प्रवाहित होती हैं । वे निरुद्देश्य और अनियन्त्रित स्थिति मे रहकर वन्य पशुओं जैसी असंगत बनी रहती हैं। फलतः विकृत होकर वे सड़ी दुर्गन्ध की तरह अपने समूचे प्रभाव क्षेत्र को विषैला बना देती हैं । आग जहाँ भी रहती है वहीं जलाती है, तेजाब की बोतल जहाँ भी फैलती है वहीं गलाती है । विकृत प्रवृत्तियाँ छितराई हुई आग और फूटी तेजाब की बोतल की तरह हैं, उनसे केवल विनाश ही सम्भव होता है । यह दोनों ही वस्तुएँ यदि सुनियोजित रखी जा सकें तो उनमें उपयोगी लाभ मिलते हैं और वे इतने बढ़े चढ़े होते हैं कि सामान्य दीखने वाला मनुष्य पग-पग पर अपनी असामान्य स्थिति का परिचय देता है । साधना जीवन के बहिरंग और अन्तरंग क्षेत्रों में सुसंस्कारिता सुव्यवस्था उत्पन्न करने का नाम है । इसे समझ पाने और कर पाने का प्रतिफल, जंगली जानवरों को पकड़कर पालतू बनाने की कला में प्रवीण व्यवसाइयों जैसा ही प्राप्त होता है ।

घरेलू उपयोग में आने वाले जानवर भी बिना सिखाये, सधाये अपना काम ठीक तरह कहाँ कर पाते हैं । बछड़ा युवा हो जाने पर भी अपनी मर्जी से हल, गाड़ी आदि में चल नहीं पाता । घोड़े की पीठ पर सवारी करना, उसे दूर की चाल चलाना सहज ही सम्भव नहीं होता । ऊँटगाड़ी, ताँगा, बैलगाड़ी में जुतने वाले पशु अपने आप चलने नहीं लग जाते उन्हें कठिनाई से प्यार, फटकार के सहारे धीरे-धीरे बहुत दिन में इस योग्य बनाया जाता कि अपना काम ठीक तरह अंजाम देने लगें । साधना इसी का नाम है । इन्द्रियों के समूह को मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के अन्तःकरण चतुष्टय को वन्य पशुओं के समकक्ष गिना जा सकता है । अपने स्वाभाविक रूप में यह सारा ही चेतना परिवार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उच्छृंखल होता है । जन्म-जन्मान्तरों के पाशविक कुसंस्कारों की मोटी पर्त उस पर जमा होती है । उसे उतारने के लिए जिस खराद का उपयोग किया जाता है उसे साधना कह सकते हैं । पशुता को परिष्कृत करके उसे मनुष्यता के--देवत्व के रूप में विकसित करना, अनगढ़ पत्थर को कलात्मक प्रतिमा के रूप में गढ़ देने के सदृश एक विशिष्ट कौशल है। इस प्रवीणता में पारंगत होने का नाम ही आत्म-साधना है। पशुओं को प्रशिक्षित करने और पत्थर से मूर्तियाँ बनाने की तरह कार्य कुछ कठिन तो है पर है ऐसा जिसमें लाभ ही लाभ भरा पड़ा है ।

कठपुतली नचाने वाले, हाथ की सफाई से बाजीगीरी के कौतुक दिखाने वाले, बन्दर और रीछ का तमाशा करने वाले, जादूगर जैसे लगते हैं और उन्हें चमत्कारी समझा जाता है । यह चमत्कार और कुछ नहीं किसी विशेष दिशा में तन्मयतापूर्वक धैर्य और उत्साह के साथ लगे रहने का प्रतिफल मात्र है । ऐसा चमत्कार कौतूहल प्रदर्शन से लेकर किसी भी साधारण-आसाधारण कार्य में आशाजनक सफलता प्राप्त करने के रूप में कभी भी, कहीं भी देखा जा सकता है । अपनी ईश्वर प्रदत्त विशेषताओं को उभारने और महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों में नियुक्त करने का नाम साधना है । साधना का परिणाम सिद्धि के रूप में सामने आता है । यह नितान्त स्वाभाविक और सुनिश्चित है । यदि अपने आपे को साधा जाय--व्यक्तित्व को खरीदा जाय तो वह सब कुछ प्रचुर परिणाम में अपने ही घर पाया जा सकता है, जिसकी तलाश में जहाँ-तहाँ मारे-मारे फिरना और मृग-तृष्णा की तरह निराश भटकना पड़ता है ।

आत्मदेव की परिष्कृति से पात्रता की प्राप्ति

आत्मिक प्रगति की साधना में कई प्रकार के कठोर नियम पालन करने पड़ते हैं । व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्य जैसी तितीक्षाओं से शरीर को इस योग्य बनाया जाता है कि वह कठिनाइयाँ सहने का अभ्यस्त तथा तज्जनित गर्मी से सुदृढ़ होने का अवसर प्राप्त कर सके ।

उपवास से लाभ सर्वविदित हैं । पेट को विश्राम देने से उसमें जमा अपच दूर होता है और थकान दूर होने से पाचन क्रिया में तीव्रता आती है । प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में रोग निवृत्ति का प्रधान उपाय उपवास को माना गया है । उदर शोधन के अतिरिक्त उपवास का विशेष लाभ यह है कि उससे मनोविकारों का शमन होने लगता है । जो शक्ति पाचन में लगती है वह यदि बच सके तो उसका उपयोग मन के अपच को विचार विकृति को दूर करने में लग सकता है । भारतीय धर्म में पुण्य पर्वों में एवं शुभ अवसरों पर उपवास को बहुत महत्त्व दिया गया है । विवाह के दिन वर-वधु को उपवास करने की प्रथा है । दैनिक उपासना पूरी न हो जाने तक कुछ न खाने पीने का नियम कई लोग पालते हैं यह उपवास का ही छोटा रूप है । उपवास को तप माना गया है ।

अन्न का मन से घना सम्बन्ध है । दैनिक जीवन में सतोगुणी आहार ही अपनाने की बात ध्यान में रखी जाय तो उसका प्रतिफल विचार शुद्धि के रूप में भी परिलक्षित होगा । नीति उपार्जित परिश्रम की कमायी ही खाई जाय । पकाने वाले तथा परोसने वाले व्यक्ति शारीरिक और मानसिक दृष्टि से पवित्र हों । खाते समय भगवान को मन ही मन भोग लगाने और उसे प्रसाद समझकर औषधि रूप में ग्रहण करने की भावना रखी जाय । चटोरेपन की विलासित से बचकर केवल आहार की सात्विकता भर से सन्तुष्ट रहा जाय । अन्न को देवता मानकर उसका सम्मान किया जाय और जूठन के रूप में उसकी अनावश्यक बर्बादी न की जाय । यह बातें सामान्य लगतीं हैं पर आत्मिक प्रगति की दृष्टि से इनका बहुत महत्व है । "जैसा खाये अन्न--वैसा बने मन" वाली उक्ति बहुत ही सारगर्भित है । मन को सात्विक बनाना आत्मोत्कर्ष की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है । उसके लिए आहार शुद्धि का प्रथम चरण कहा जा सकता है । मांसाहारी, नशेबाजी--अशुद्ध व्यक्ति और वातावरण में पकाया और परोसा गया मिर्च मसालों से भरा गरिष्ठ और उत्तेजक आहार मनःक्षेत्र में तमोगुण उत्पन्न करता है और उसका प्रभाव चित्त की अस्थिरता बनकर उपासना क्रम में भारी विघ्न उत्पन्न करता है ।

पिप्पलाद ऋषि पीपल के वृक्ष के फल खाकर निर्वाह करते थे । कणाद ऋषि शिलौच्च वृत्ति से जंगली धान्य खाकर गुजारा करते थे । यह अन्न शुद्ध की प्रक्रिया है । हमें स्वयं लम्बी अवधि तक मात्र जौ की रोटी और छाछ इन दो ही वस्तुओं पर रहकर पुरश्चरण क्रम चलाना पड़ा है । अभक्ष्य खाने से मन की विकृति का होना स्पष्ट है । शरशैय्या पर पड़े भीष्म पितामह जब धर्मोपदेश दे रहे थे तब द्रौपदी ने पूछा--देव ! जब मुझे भरी सभा में निर्वसन किया जा रहा था, तो आपने यही धर्म उपदेश कौरवों को क्यों नहीं दिये ? उत्तर में भीष्म ने उतना ही कहा-उन दिनों में कुधान्य खा रहा था । अस्तु, धर्मज्ञान रहते हुए भी उसे चरितार्थ करने का साहस सम्भव न हो सका ।

आहार शुद्धि के लिए हम अपने खाद्य पदार्थों में सात्विक वस्तुएँ ही स्वीकार करें । दो बार से अधिक भोजन न करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का नियम बनालें । दूध, छाछ, रस, क्वाथ जैसे पेय पदार्थों के अतिरिक्त बीच-बीच में अन्य चीज न लें । भूख से कम खायें । जल्दी न निगलें, चबाकर खायें । सप्ताह में एक दिन अथवा एक जून निराहार रहें अथवा फल शाक दूध आदि पर निर्वाह करें । साप्ताहिक उपवास की परम्परा चल पड़े तो देश की जटिल खाद्य समस्या का सहज समाधान निकल सकता है । साथ ही अपच का हल निकल आने से स्वास्थ्य संकट भी बहुत हद तक हल हो सकता है ।

सप्ताह में एक दिन अस्वाद व्रत का पालन भी एक प्रकार का उपवास ही माना जा सकता है । नमक, मसाले, शक्कर जैसी वस्तुएँ मात्र स्वाद के लिए खायी जाती हैं । उपयोगी स्तर का उपयुक्त मात्रा में नमक, शक्कर आदि तो अन्न, शाक, फल, दूध आदि में सहज ही मिल जाता है । ऊपर से इन चीजों का लिया जाना स्वास्थ्य के लिए नहीं वरन् स्वाद के लिए भी प्रयुक्त होता है । स्वाद के लोभ में आहार की अधिक मात्रा उदरस्थ होती है और अपच उत्पन्न करके तरह-तरह के रोगों को जन्म देती है । स्वाद पर काबू पाना भी एक प्रकार का तप है । बिना नमक, शक्कर मसाले आदि का भोजन सप्ताह में एक दिन भी किया जाता रहे तो इससे स्वादेन्द्रिय पर नियंत्रण करने की तपश्चर्या चल पड़ेगी । गाँधीजी ने अपनी सप्त महाव्रत पुस्तिका में अस्वाद को प्रथम व्रत माना है और उसके फलस्वरूप ब्रह्मचर्य पालन तथा मनोनिग्रह में सफलता मिलने का प्रतिपादन किया है ।

मनोनिग्रह तपश्चर्या में दूसरा व्रत ब्रह्मचर्य पालन है । स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से रति-क्रिया के अवसर न्यूनतम ही आने देने चाहिए । बहुमूल्य जीवन रस को फुलझड़ी की तरह जलाने का अत्यन्त मँहगा खिलवाड़ करने से बचना चाहिए । इससे अपनी और सहयोगी की हानि ही है । क्षणिक विनोद की तुच्छता और शक्ति संचय की महत्ता को समझते हुए इस दशा में अधिकाधिक संयम बरता जाना ही दूरदर्शिता है । इस बचत का लाभ शारीरिक और मानसिक सुदृढ़ता के रूप में सामने आता है और आत्मिक प्रगति की दिशा में उस संचय से भारी सहायता मिलती है ।

शारीरिक ब्रह्मचर्य से भी अधिक महत्त्व मानसिक कामुकता से बचने का है । शरीर क्षरण तो यदा-कदा ही होता है, पर कुदृष्टि एवं काम चिन्तन के फलस्वरूप मानसिक विकृति घड़ी-घड़ी उत्पन्न होती रहती है । काम सेवन से जिस प्रकार शारीरिक शक्ति घटती है उसी प्रकार काम चिन्तन से मनोबल एवं आत्मबल घटता है । इससे आत्मशक्ति में कमी पड़ती जाती है । ऐसी दुर्बल मनःस्थिति में वे आधार नहीं बन पाते, जिनसे आत्मोत्कर्ष की दिशा में आशाजनक प्रगति सम्भव होती है । पुरुषों को नारियों के प्रति और नारियों को पुरुषों के प्रति पवित्र दृष्टि रखनी चाहिए । कामुक चिन्तन भी मानसिक व्यभिचार माना गया है और उससे होने वाली हानि को आत्मिक प्रगति के मार्ग में भारी व्यवधान माना गया है । मन को कामुक चिन्तन से बचाने के लिए उसके प्रति पक्षी पवित्र भावों को अधिक समय तक मन में स्थान देना चाहिए । जितनी देर अशुद्धि चिन्तन के लिए मस्तिष्क को छूट दी जाती है, उतनी ही सुविधा यदि परिष्कृत चिन्तन के लिए दी जा सके तो उस परिष्कृत मनोभूमि से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, चिंता, निराशा, भय आदि का कोई कुविचार, मनोविकार, पनप न सकेगा। सृजनात्मक शुभचिन्तन के विचारों से मन को भरा पूरा रखने के लिए स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन का आश्रय लेकर मनोभूमि ऐसी प्रौढ़ परिपक्व बनाई जा सकती है, जिसमें कुविचारों को पैर जमाने के लिए तनिक भी गुंजाइश न रहे।

हनुमान, भीष्म, शंकराचार्य, समर्थ, विवेकानन्द आदि ब्रह्मचारियों के उज्ज्वल चरित्रों पर बार-बार विचार किया जाना चाहिए । शिवाजी ने एक अनिद्य सुंदरी को उपभोग के लिए प्रस्तुत किये जाने पर इतना ही कहा था--"ऐसी सुन्दर मेरी माता होती तो मैं भी इतना सुन्दर होता ।" अप्सरा उर्वशी ने अर्जुन से उसी जैसा पुत्र पाने के उद्देश्य से काम प्रस्ताव किया । तभी अर्जुन ने उत्तर दिया--"आप कुन्ती की तरह मेरी माता और मैं आपका सगे पुत्र की तरह बालक हूँ । इसी प्रकार तत्काल आपकी पुत्र प्राप्ति की मनोकामना पूर्ण हो जाती है ।" ऐसी ही पवित्र दृष्टि रखने से आत्मबल संचित होता है । इस मनोनिग्रह को तप की ही संज्ञा दी गई है । स्वादेन्द्रिय और कामेन्द्रिय की स्थूल और सूक्ष्म लिप्सा पर काबू पाया जा सके तो समझना चाहिए कि इन्द्रिय निग्रह का उद्देश्य पूरा हो गया । आँख, नाक आदि की चित्त को चंचल बनाने में तनिक-सी भूमिका रहती है । प्रधान तो यही दो स्वादेन्द्रियाँ हैं । इनका उपभोग और चिन्तन रोकने के लिए जो प्रयत्न किये जाते हैं, उन सभी को तपश्चर्या का अंग माना गया है ।

भूलों के लिए शारीरिक, मानसिक दण्ड, प्रताड़ना को प्रायश्चित कहते हैं । यह भी तप वर्ग में ही आती है । दैनिक भूलों को समझना और भविष्य में वैसा न होने देने की सतर्कता तीव्र करना, यदि नैतिक गलतियाँ हुई हों तो उनके लिए भोजन में आंशिक कटौती, अमुक समय का मौन, नींद में कटोती, अतिरिक्त श्रम, उठक-बैठक जैसी प्रताड़ना, दण्ड व्यस्था स्वयं की जा सकती है । पिछले जीवन में कोई बड़े अपराध बने हों तो उनके लिए चन्द्रायण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्रत, दाढ़ी बनाना, अमुक समय तक नंगे पैर रहना, पैदल तीर्थ यात्रा, धनदान जैसी किन्हीं विशेष प्रायश्चित्यों की व्यवस्था किसी उपयुक्त नीतिवेत्ता के परामर्श से करनी चाहिए । इससे मन पर चढ़े हुए पाप भार से निवृत्ति मिलती है ।

स्थूल शरीर को तपाने वाली उपरोक्त कुछ कष्ट साध्य तप-तितीक्षाओं का उल्लेख किया गया है । सूक्ष्म शरीर मन को तपाने के लिए तृष्णा और वासना का लोभ और मोह का परित्याग करना पड़ता है । वैराग्य इसी का नाम है । सादा जीवन उच्च विचार का घनिष्ठ सम्बन्ध है । सूक्ष्म शरीर में उत्कृष्टता बनी रहे इसके लिए सादगी की नम्रता एवं मितव्ययता का अपनाया जाना आवश्यक है । खर्चीली तड़क-भड़क और उद्धत ठाटवाट से बचा जाय और भोजन, वस्त्र, निवास आदि जीवनचर्या के प्रत्येक क्षेत्र में औसत नागिरक जैसी सादगी बरती जाय । खर्च उतना ही किया जाय जितना निर्वाह के लिए नितान्त आवश्यक हो । आवश्यकताएँ और भौतिक महत्त्वाकांक्षाएँ घटाई जायें ताकि उनमें लगने वाला समय श्रम और मनोयोग परमार्थ प्रयोजनों में लगाने के लिए बचाया जा सके ।

(१) संयम और सादगी की नीति अपनाकर शक्तियों का संचय एवं अभिवर्द्धन के लिए प्रयत्नशील रहने में अपने साथ कठोरता बरतना । (२) लोक-मंगल के पुण्य प्रयोजनों में अपनी सामर्थ्य का बड़ा भाग लगाने के कारण स्वयं को कठिनाई में रहने की स्थिति का अभ्यास । (३) स्वार्थरत लोगों जितना भौतिक लाभ उपार्जन करने में, न्यूनता रह जाने पर भी सन्तोष (४) अनीति से संघर्ष करने में आसुरी तत्वों के आक्रमण से आघात । यह सब कारण ऐसे हैं जिनसे उच्चस्तरीय महा मानवोचित जीवन जीने वालों को आये दिन बास्ता पड़ता है । विलासी और महत्त्वाकांक्षी रीति-नीति अपनाने वालों को न्यायोचित उपार्जन अपनी बढ़ी-चढ़ी आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर पाता फिर वे मानवता के महान् कर्तव्यों का पालन करने के लिए समय और साधन कहाँ से पायें । यह प्रयोजन अपने साथ मितव्ययता कष्ट सहिष्णुता, मनोनिग्रह जैसी सख्ती बरते बिना और किसी प्रकार के पूरे नहीं हो सकते ।

अनीति पर उतारू लोगों को सिद्धान्तवादी सहन नहीं हो सकते । वे देखते हैं कि प्रत्यक्ष न सही परोक्ष रूप से वे उनके स्वेच्छाचार में बाधक हैं । नीति का समर्थन और अनीति का विरोध करना भी उनके स्वार्थों पर चोट पहुँचाता है । वे सोचते हैं, यह रोड़ा रास्ते से हटाकर निष्कंटक होना चाहिए । ऐसी दशा में अनीति पोषकों के आक्रमण का शिकार होना पड़ता है । फिर कई बार ऐसी विवशता आ जाती है कि अवांछनीयताओं को चुपचाप सहने के लिए अपनी अन्तरात्मा तैयार नहीं होती और अन्याय से जूझने में बड़ी से बड़ी हानि उठाने के लिए भी अपना शौर्य-साहस तनकर खड़ा हो जाता है । प्रसिद्ध है कि आक्रान्ता लोग संगठित हमला करते हैं, पर बचाव पक्ष के लोग अपनी भीरुता अथवा तथाकथित शान्तिप्रियता के कारण मुँह छिपाये बैठे रहते हैं । चार गुण्डों का मुकाबला करने में चालीस सामान्य लोग हल्के पड़ते हैं । ऐसी दशा में अन्याय विरोधी अकेला पड़ जाता है और उसे अपनी विरोधात्मक साहसिकता के कारण कई प्रकार के आघात सहने पड़ते हैं । इतिहास के पृष्ठों पर सन्तों सुधारकों और शहीदों को दुष्टों द्वारा तरह-तरह से सताये जाने के अगणित घटनाक्रम मिलते हैं। इनका दोष इतना ही था कि उन्होंने अवांछनीयताओं के साथ असहयोग प्रकट किया था और उनका उन्मूलन करने का प्रयास कर रहे थे । विरोध न करने से अनीति को प्रोत्साहन मिलता है और वह सौ गुने उत्साह से विनाश पर उतारू होती है । ऐसी दशा में प्रतिरोध अनिवार्य हो जाता है । तब जो इतना साहस दिखायें वे चोट सहने को भी तैयार रहें । इसी की पूर्व तैयरी के लिए भी कष्ट सहिष्णुता का पूर्वाभ्यास करना पड़ता है ।

सुविधा भरा जीवन आलसी बनाता है और प्रतिभा को प्रसुप्त स्थिति में धकेल देता है । संघर्षमय, कठिनाई भरे जीवन में अन्य असुविधाएँ कितनी क्यों न हों, इतना लाभ स्पष्ट है कि उससे मनुष्य की प्रखरता निखरती है । अमीरी के वातावरण में से कदाचित ही कभी कोई प्रतिमाएँ उभरती हैं । संसार भर के महामानवों के इतिहास में यह तथ्य स्पष्ट है कि वे या तो कठिनाइयों की परिस्थिति में जन्मे थे अथवा उन्होंने जान-बूझकर कठिनाइयों से भरा जीवन-क्रम अपनाया था । पत्थर पर रगड़ने से ही चाकू की धार तेज होती है । मानवी प्रतिभा के तीक्ष्ण होने में भी यही तथ्य काम करता है ।

गायत्री पुरश्चरणों के समय आमतौर से साधकों को भोजन संयम, अस्वाद, व्रत उपवास, ब्रह्मचर्य पालन, अपने शरीर की सेवा--कपड़े धोना, हजामत बनाना, आदि कार्य स्वयं करना, कोमल शैय्या त्यागकर भूमि या तख्त पर सोना, मारे हुए पशुओं का चमड़ा प्रयोग में न लाकर करुणा का परिचय देना, कुछ समय मौन रहना जैसी तितीक्षाएँ बरतने के लिए कहा जाता है । इस निर्देश के पीछे तथ्य इतना ही है कि कष्ट सहिष्णुता का अभ्यास करते हुए हर घड़ी यह विचार किया जाय, कि आदर्श जीवन जीने वाले के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

लिए स्वेच्छापूर्वक सुविधाएँ सहन करने में उत्साह एवं सन्तोष करने का स्वभाव परिपक्व करना आवश्यक है । अभ्यास रहने से, वैसा चिन्तन चलते रहने से अवसर आने पर वे अड़चनें अप्रत्याशित नहीं लगतीं और सोचा जाता है, यह तो होना ही था, इसकी तैयारी तो पूर्वाभ्यास के रूप में देर से की जाती रही है ।

तप तितीक्षा में शारीरिक, मानसिक एवं आर्तिक कठिनाई की स्वेच्छापूर्वक आमन्त्रित किया जाता है इसे देवता के प्रतिभक्त भाव प्रदर्शन का प्रमाण माना जाता है वस्तुतः यह देवता और कोई नहीं 'आत्म देव' ही हैं । अपने आपको परिष्कृत करके देव के स्तर तक पहुँचाने के प्रयास ही वास्तविक साधनाएँ हैं । उसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधन--विधान का ढाँचा खड़ा किया गया है। यह तथ्य समझ लेने पर ही साधक को तत्वज्ञान उपलब्ध हो गया माना जायेगा ।

पात्रता विकसित करें, ताकि उसी अनुपात में निहाल हो सकें

अन्य सभी प्रगति प्रयासों की तरह आध्यात्मिक प्रगति के भी दो पक्ष हैं-- एक पात्रता का सम्पादन योग्यता का विकास, दूसरा तदनुरूप उत्तरदायित्वों का, अधिकारों का उपलब्धि और उनका निर्वाह । बिना योग्यता के कहीं, कोई, किसी को बहुमूल्य सम्पदाएँ प्रदान नहीं करता । भला अपनी बेटी को कोई किसी कुपात्र के हाथों कैसे सौंप देगा ? किसी के हाथ अपने कारखाने की अर्थव्यवस्था क्यों कर सुपुर्द करेगा ?

बादल सर्वत्र बरसते हैं, उस पर पानी को जमा करना छोटे या बड़े बर्तन के हिसाब से ही सम्भव हो सकता है । छोटे गड्ढे या बड़े सरोवर में उनके विस्तार के अनुरूप ही पानी जमा हो होता है । प्रतियोगिताओं में जीतने वाले ही पुरष्कृत होते हैं । पद उन्हें ही सौंपे जाते हैं, जो उनका निर्वाह कर सकने की क्षमता को खरी सिद्ध करके दिखाते हैं । सोने का मूल्यांकन उसे कसौटी पर घिसने और आग में तपाने के आधार पर किया जाता है । यही पात्रता है, जो आध्यात्मिक प्रगति की पहली सीढ़ी है ।

ईश्वर का प्यार और अनुदान उसकी हर सन्तान के लिए प्रचुर परिमाण में विद्यमान है, पर उसकी उपलब्धि पात्रता के अनुरूप ही होती है । इसी के लिए चपरासी बनना भी सौभाग्य है और किसी को जिस श्रेणी का अफसर बनाया गया है, उसे उससे भी बड़ी पदोन्नति जल्दी ही मिल जाती है । इसमें भेदभाव या पक्षपात जैसा कोई अन्याय नहीं । ऊँची श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाले ही पुरस्कृत होते और छात्रवृत्ति पाते हैं ।

दैवी अनुग्रह और अनुदान प्राप्त करने के लिए यह प्रमाणित करना पड़ता है कि प्रार्थी ने उसके लिए उपयुक्त प्रामाणिकता अर्जित कर ली है । इतना कर चुकने के उपरान्य योग्यता का मूल्य प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती, किन्तु यदि इससे बचकर नियुक्ति कर्ता की मनुहार करने या छुटपुट उपहारों के सहारे फुसलाने और अपना उल्लू सीधा करने के लिए स्वामिभक्ति की दुहाई दी जाय, तो उसका सफल होना कहाँ सम्भव है । बैंक में ढेरों रुपया होने पर भी किसी का उतना ही बड़ा चैक स्वीकारा जाता है, जितनी उसकी अमानत जमा हो । कर्ज भी वापसी की गारंटी पर मिलता है । इन मर्यादाओं की उपेक्षा करके कोई मैनेजर का स्तवन, अभिवादन या पुष्प, अक्षत भेंट करके मनचाही राशि प्राप्त नहीं कर सकता । इस विश्व व्यवस्था का कण-कण नियम-मर्यादाओं में बँधा है । ईश्वर से भी कोई नाक रगड़कर, गिड़-गिड़ाकर कुछ ऐसा प्राप्त नहीं कर सकता, जो शानदार हो और आकांक्षाओं के अनुरूप हो । ईश्वर से बहुत कुछ पाया जा सकता है, किन्तु नियत मर्यादाओं के अनुरूप ही ।

जिन आध्यात्मिक अनुदानों की पात्रता के अनुरूप हमें उच्चस्तरीय ऋद्धि-सिद्धियाँ मिलती हैं, उन्हें व्यक्तिगत जीवन की पात्रता एवं प्रखरता कहा जाना चाहिए । दूसरे शब्दों में उसे चिन्तन और चरित्र की प्रामाणिकता भी कहा जा सकता है । सर्वप्रथम साधक को इसी के लिए प्रयत्न करना होता है । अगली उपलब्धियाँ प्राप्त करने वाला एक पक्ष अति सरल है । रँगाई से पहले धुनाई आवश्यक है । बोने से पहले खेत को जोतना पड़ता है । ईश्वर की अनुकम्पा पाने के लिए भी यही करना पड़ता है ।

जुताई, बुबाई, सिंचाई का प्रबन्ध बन पड़ने पर ही फसल लहलहाती है और कोठा भरने जितना उपज देती है । आध्यात्म क्षेत्र में इन्हीं तीन प्रयासों को उपासना, साधना और आराधना कहते हैं । उपासना ईश्वर की, साधना अपनी और आराधना समाज की । इन्हीं तीनों का मिलन गंगा, यमुना, सरस्वती का मिलन त्रिवेणी संगम कहलाता है और उसका अवगाहन करने वाला हर दृष्टि से कृत-कृत्य बनता है ।

उपासना कहते हैं, भगवान के समीप बैठने को । महान तत्वों की समीपता भी असाधारण लाभ प्रस्तुत करती है । स्वॉति बूँद सीपी में पड़कर मोती बनती और बाँस के सहयोग से वंशलोचन । चन्दन के निकट उगे हुए झाड़-झंखाड़ भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महकने लगते हैं । फूलों पर बैठने वाली मधुमक्खियाँ ढेरों शहद एकत्रित कर लेती हैं । राजा के चपरासी की भी इज्जत होती है ।

ईश्वर के पास बैठना अर्थात् उपासना कैसे हो ? उसका उपाय है उसके साथ अपने आपको जोड़ देना । इसमें अपनी हस्ती, अपनी इच्छा मिटाकर ईश्वर को समर्पित करनी पड़ती है । नाली, नदी में मिलती है, बैल पेड़ पर चढ़ती है, ईंधन आग से लिपट जाता है और तद्रूप बन जाता है । पत्नी अपना व्यक्तित्व अलग न रखकर पति में घुला देती है । फलस्वरूप वह विवाह होते ही पति की सम्पदा में साझेदारी हो जाती है और उत्तराधिकार की दावेदार बनती है । यह लाभ वेश्या को नहीं मिल सकता, यद्यपि वह पत्नी से भी बढ़कर रिझाने वाले उत्तेजना उपचार करती है । महत्त्व क्रियाओं का नहीं, भावनाओं का है । किस की उपासना सच्ची, किस की झूठी है, इसकी एक ही परख है, अपनी मर्जी के अनुरूप स्वयं चलकर अपनी स्वामिभक्ति एवं वफादारी का परिचय देना । कठपुतली की तरह हम अपने धागे बाजीगर की उँगलियों में बाँध लेते हैं और उसके इशारे पर नाचना आरम्भ करते हैं, तो तमाशा इतना मजेदार बन पड़ता है कि दर्शकों की तालियाँ बजने लगती हैं । कठपुतली बाजीगर को अपनी मर्जी पर नचाना चाहे, तो बात समझ में आने योग्य भी नहीं रह जाती । हमें ईश्वर के दरबार में भिखारी बनकर, कामनाग्रस्त होकर नहीं जाना चाहिए, वरन् यह देखना चाहिए कि उसकी इच्छा हमारे लिए क्या है ।

मनुष्य जीवन का अनुपम उपहार देखकर स्रष्टा ने हमसे यह आशा की है कि उसकी सृष्टि को अधिक सुन्दर, अधिक समुन्नत बनाने का प्रयत्न करें । इसके लिए जितने भी प्रयास किया जाते हैं वे सभी ईश्वर उपासना के अंग माने जाते हैं । जप, तप, भजन, पूजन का मतलब ईश्वर को रिझाना नहीं वरन् यह है कि मानवीय गरिमा का निर्वाह सतर्कता पूर्वक करेगें और उसे कलंकित न होने देंगे । यह स्मरण नाम रट के आधार पर बारम्बार किया जाता रहे अपने आप को रामनाम का साबुन रगड़ कर शुद्ध स्वच्छ बनाया जाय ।

सिद्धान्त को समझ लेने के उपरान्त पूजा-उपासना का कर्मकाण्ड सरल पड़ता है । उसे अपनी पूर्व मान्यताओं के अनुरूप बहुत या थोड़ी देर अपनी रुचि एवं सुविधा के अनुरूप किया जाता रहता है इन पंक्तियों के लेखक का निजी जीवन में गायत्री उपासना पर असाधारण विश्वास रहा है । शास्त्रों और ऋषियों ने गायत्री को वेदमाता और विश्वमाता कहा है । उसे आद्यशक्ति और उपासना विज्ञान का सार तत्व बताया है । हम उसी का जप और प्रकाश पुंज सविता का ध्यान करते रहे हैं । इसका सत्परिणाम भी प्रत्यक्ष देखा है । इसलिए अपने सम्पर्क क्षेत्र में इसी को अपनाने का परामर्श दिया है । इतने पर भी वह अनिवार्य नहीं है । जिन्हें यह न रुचे वे अपनी मर्जी के अनुरूप अन्य साधनाएँ कर सकते हैं, पर होना चाहिए इन सब में समर्पण भाव । भिक्षुक या दरिद्र बनकर उसके दरबार में सम्मान नहीं प्राप्त कर सकते हैं । कुछ छुट-पुट अनुग्रह पाकर खाली हाथ न आने का उथला सन्तोष भले ही प्राप्त कर सके ।

उपासना भले ही थोड़ी हो पर नियत समय पर नियम पूर्वक और भाव भरी होनी चाहिए । वह हमारी आत्मा को परमात्मा से जोड़ने में बहुत हद तक सफल रहेगी । बिजली के ट्राँसफार्मर के साथ तार जोड़ लेने पर पंखे, बल्ब, हीटर, कूलर आदि यन्त्र गतिशील हो उठते हैं । पानी की टंकी या लाइन के साथ जुड़े हुए नल यथेष्ट पानी देते रहते हैं । छोटे बैंक बड़े बैंकों के साथ जुड़कर सम्पन्न हो जाते हैं । हम भी ईश्वर के साथ जुड़कर उनकी शक्तियों का उद्भव अपने भीतर करने लगते हैं । बूँद समुद्र में गिरकर अपना अस्तित्व खोती नहीं वरन् अपना आकार विस्तृत कर लेती है । ईश्वर की आत्मसमर्पण की उपासना करके हम मात्र 'अहंता' खोते हैं और उतने ही सुविस्तृत, उतने ही समर्थ हो जाते हैं, जितना कि ईश्वर स्वयं है ।

उपासना के उपरान्त दूसरा चरण 'साधना' का है । साधना--अर्थात् अपने अन्तरंग और बहिरंग जीवन को पवित्र, प्रखर एवं प्रामाणिक बना लेना । मनुष्य वस्तुतः एक प्रकार का पशु है । जन्म-जन्मान्तरों में उसके संचित कुसंस्कार इस जन्म में भी चिपके रहते हैं और हमारे अधिकांश आचरण नर-पशुओं जैसे होते हैं । अनगढ़, उच्छृंखल, असभ्य और मानवी गरिमा की दृष्टि से गये बीते। इन्हें सुधारना और सुसंस्कृत बनाने का संकल्पपूर्वक कठोर प्रयास करना यही अपनी साधना है । बिखराव को, चंचलता को, उद्दण्डता को, केन्द्रीभूत करना और मर्यादाओं के बन्धनों से अपने को बाँध लेना ।

अनगढ़, साँप, रीछ, बन्दर को सधाकर ग्रामीण मदारी अपनी आजीविका चलाते हैं । सरकस के रिंग मास्टर शेरों, हाथियों, घोड़ों को साधकर ऐसे करतब कराते हैं, जिन्हें देखकर दर्शक दंग हो सकें और संयोजक की जेब भरें । माली पौधों को काट-छाँटकर कलमें लगाकर इतना सुन्दर बनाता और फल फूल की अनेकानेक प्रजातियाँ उत्पन्न करता है । ऐसे माली प्रशंसा प्राप्त करते हैं । हमें भी ऐसा ही कलाकार बनना चाहिए कि जीव के अन्तराल में प्रसुप्त पड़ी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

हुई अनेकानेक विभूतियों को सजग और सक्षम बना सकें और संत, सज्जन, ऋषि और देवता कहा जा सकें । इसके लिए संयम अपनाना होता है । इन्द्रियों का संयम, समय का संयम, धन का संयम और विचारों का संयम । इसी नियमितता को आध्यात्म की भाषा में 'तप साधना' कहते हैं । तप का अर्थ है-- तपाना-गर्म करना । संचित कुसंस्कारों और आदतों से लड़ पड़ना और उन्हें, अनगढ़ धातु को गलाकर उपयोगी उपकरण के रूप में ढाल लेना। सुसंस्कृत कोयला ही हीरा बनता है । तपाने से कच्ची मिट्टी के बर्तन बनते हैं और पानी को उबालने से शक्तिशाली भाप बनती है । अनुपयुक्त, चिन्तन, चरित्र, रुझान एवं आदतों को बदलने और उनके स्थान पर उच्चस्तरीय प्रवृत्तियों में अपने आपका कायाकल्प कर लेना दूसरा जन्म होना आदि शब्दों से सम्मानित किया जाता है । उपवास, ब्रह्मचर्य आदि में यही भीतरी माहभारत लड़ना पड़ता है । जो जितना निर्मल, पवित्र बन सका, चिन्तन और चरित्र को मर्यादाओं के शिकंजे में कस सका, कुम्हार के आँवे की तरह पक सका, समझना चाहिए कि वह घर में रहने वाला तपस्वी है। अच्छा हो हम तपोवन में घर बनाने की अपेक्षा घर में तपोवन बनायें और अपने सज्जनता पूर्ण सद्व्यवहार से सृजन कार्यक्रम में न केवल अपने को वरन् समूचे परिवार को इसी सुसंस्कारिता के तप साधना के ढाँचे में ढालें ।

पात्रता का विकास अन्तरात्मा का परिष्कार--पात्रता का अभिवर्द्धन करने के लिए हमें साधना करनी चाहिए । सादा जीवन उच्च विचार की नीति अपनायी जानी चाहिए । औसत नागरिक स्तर का निर्वाह किया जाना चाहिए और जो समय, धन, श्रम, चिंतन आदि की बचत हो सके उस कटौती को विश्व-कल्याण के लोक-मंगल के कार्यों में लगाना चाहिए । इसी को पुण्य, इसी को परमार्थ, इसी को आराधना कहते है । पात्रता विकसित करने का यह तीसरा अवलम्बन है ।

भगवान का निराकार स्वरूप वह है जो कण-कण में समाया हुआ है । जो नियम अनुशासन मात्र है । हम उसके कायदे-कानून पर चल कर उसके प्रिय-अप्रिय भक्त-अभक्त बन सकते हैं और कर्मफल की निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार प्राकृतिक शासन व्यवस्था के अनुरूप दण्ड पुरस्कार के भागी बन सकते हैं । भगवान का प्रकट प्रत्यक्ष स्वरूप है यह विराट ब्राह्म प्रत्यक्ष संसार । इसे सुखी समुन्नत बनाने के लिए अपनी क्षमताओं का नियोजन करना आराधना है । इसमें पिछड़ों की सहायता करने और दिग्भ्रांतों को सही राह बताने वाले प्रकाश की व्यवस्था बनाने के कार्यों को सम्मिलित किया जा सकता है । यों धार्मिक कर्मकाण्डों में लगने वाले श्रम साधन और पुरोहितों को दान सम्मान प्रदान करना भी इसी प्रचलन में आता है, पर उसका औचित्य तभी है जब अदृश्य देवताओं को प्रसन्न करने की अपेक्षा उस दान प्रयोजन का उपयोग बुद्धि-संगत और भावनाओं को उमगाने वाला हो ।

आराधना अर्थात् पुण्य परमार्थ आवश्यक है । हम जो बोते हैं वह काटते हैं । संसार के साथ भलाई करना प्रकारान्तर से अपनी ही भलाई करना है । पिछड़ों को उठाना प्रकारान्तर से स्वयं को ही ऊँचा उठाने वाली अदृश्य व्यवस्था का आह्वान करना है । पुण्य का प्रतिफल अगले जन्मों में भी मिल सकता है, भाग्योदय भी बन सकता है, पर प्रत्यक्ष लाभ भी उनके कम नहीं हैं । आत्म सन्तोष यश और बदले में प्रकारान्तर से अनेकानेक प्रकार की उपलब्धियाँ हस्तगत होना ऐसा परिणाम है, जिसमें गँवाने जैसी कोई बात नहीं है । वह बोने काटने जैसी व्यवसाय सिद्धान्तों के अनुरूप भी है और ईश्वर को प्रसन्न करने वाला सर्वोत्तम साधन भी ।

संसार के महामानवों का इतिहास एक ही राजमार्ग पर चला है । उन्होंने जनता की हित कामना से सत्प्रवृत्तियों का लक्ष्य पूरा करने की दृष्टि से कष्ट सहे, त्याग किये । इसका प्रतिफल निरर्थक नहीं गया, जनता ने उन्हें सिर आँखों पर बिठाया और उस पद तक पहुँचना, जिसके लिए असंख्यों तरसते हैं ।

संसार से हमने बहुत कुछ पाया है । जीवनोपयोगी अधिकांश वस्तुएँ लोगों के परिश्रम से बनी हैं । उनके बुद्धि कौशल का अनुग्रह लाभ उठाकर ही हम उस स्थित में पहुँचे हैं, जिसमें आज हैं । यदि किसी का सहयोग न मिला होता तो कदाचित हम जीवित भी नहीं रह पाते, सुसम्पन्न होना तो दूर ऐसी दशा में आवश्यक है कि उस बगीचे को सींचें जिसकी छाया में बैठते में फलों से गुजारा करते हैं । ऋण मुक्ति का सही तरीका इस विश्व वसुधा को सुखी समुन्नत बनाने का ही है । इसे किये बिना कोई जीवन मुक्त नहीं हो सका । ऋणग्रस्त को मोक्ष मिलना कैसा ? हमें अपने समय और धन के एक निश्चित अंश सर्वोत्तम माने जाने वाले 'ज्ञान यज्ञ' के लिए--पिछड़ों को आगे बढ़ाने और ऊँचा उठाने के लिए निश्चित निर्धारित करना चाहिए ।

उपासना, साधना, आराधना के उपर्युक्त तीन माध्यमों को अपनाकर हम अपनी पात्रता को स्तर तक विस्तृत कर सकते हैं, जिससे देवताओं के अनुग्रह आकाश से होने वाली पुष्प वर्षा की तरह बरसने लगें ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पात्रता के अनुरूप पुरस्कार मिलेगा

संसार में एक से एक ऊँचे स्थान, पद और पदवियाँ विद्यमान हैं । सम्मान के अथाह सागर लहरा रहे हैं । धन, वैभव एवं ऐश्वर्य के भण्डार भरे पड़े हैं । विद्या, ज्ञान और कला-कौशल के अक्षय कोष विखरे पड़े हैं । यह सारी सम्पदाएँ एवं विभूतियाँ मनुष्य के लिए, उसके कल्याण के लिए ही हैं । यह सारे पुरस्कार इसलिए बनाये तथा फैलाये गये हैं कि लोग अपने गुणों, अपनी योग्यता एवं अपनी पात्रता को प्रमणित करें और इन पुरस्कारों में अपना भाग सुरक्षित करायें ।

क्या छोटा, क्या बड़ा, क्या नर और क्या नारी सभी इस विशाल प्रतियोगिता के लिए समान रूप से आमंत्रित हैं । जो चाहे मैदान में उतरे और पारितोषिक जीते । किसी पर भी इसमें सम्मिलित होने के लिए प्रतिबन्ध अथवा रोक नहीं है । कोई भी परिस्थितियाँ अथवा स्थिति इसमें बाधक नहीं मानी गयी हैं ।

यदि प्रतिबन्ध का नियम होता तो संसार के कोई एक ही तरह के लोग तरक्की करते दिखाई देते । बाकी सब लोग सदैव ही दीन-हीन दशा में पड़े रहते । इसके विपरीत हम देख सकते हैं कि कल जो गरीब थे आज अमीर हो गये हैं। कल जो मूर्ख और अज्ञानी माने जाते थे वे आज सुजान हो गये हैं । अभी तक जो निरक्षर एवं अशिक्षित थे वे अब ऊँचे दर्जे के विद्वान बन गये हैं । बड़े-बड़े पतित नीच और दुराचारी सन्त महात्मा तथा सज्जन होते देखे गये हैं । छोटे-छोटे किसान बड़े-बड़े फार्मों के कर्त्ता और साधारण मजदूरों को उद्योगपति होते देखा गया है । छोटे पद से बड़े पद पर तो लोग नित्य ही पहुँचते रहते हैं यह सब वांछनीय परिवर्तन इसके प्रमाण हैं कि उन्नति के मार्ग में किसी के लिए प्रतिबन्ध नहीं है । संसार के पुरस्कार न तो किसी के लिए सुरक्षित हैं और न किसी के लिए वर्जित । वे सबके लिए समान रूप से खुले हैं । परमात्मा के विधान में अन्याय अथवा पक्षपात को कोई गुंजाइश नहीं है । अब ऐसी बात है कि संसार की विभूतियों में सबको अधिकार है, तब क्या बात है कि कुछ लोग तो उन्नति एवं ऐश्वर्य के ऊँचे-ऊँचे सोपान चढ़ जाते हैं और अन्य लोग गर्हित गर्त में पड़े-पड़े जिंदगी के दिन पूरा किया करते हैं ?

इस प्रश्न का छोटा-सा उत्तर है--''अपनी-अपनी पात्रता'' । समुद्र मुक्त रूप से लहरा रहा है, सरिताएँ स्वच्छन्द रूप से बह रही हैं, जलाशय एवं झीलें आवेष्ठित नहीं है, झरनों, स्रोतों तथा प्रपातों पर निषेद्य का संकेत अंकित नहीं है । सबके सब संसार के हर प्राणी के लिए खुले हैं । लोग उनसे अपने-अपने कलश और लोटे लेकर पानी भरने जाते हैं । जो जितना चाहे भर ले । ये उदार जलाशय कभी किसी से यह नहीं कहते कि इतना नहीं इतना भरो । किन्तु फिर भी सब लोग जल की समान मात्रा प्राप्त नहीं कर पाते । जिसके पास जितना बड़ा पात्र होगा वह उसी अनुपात से पानी का अधिकारी बनेगा ।

इसी प्रकार संसार में जो व्यक्ति अपने अन्दर जितने अधिक गुण, जितनी अधिक क्षमता और जितनी अधिक योग्यता विकसित कर लेगा, उसी अनुपात में, उतनी ही अधिक विभूतियों का अधिकारी बन जायेगा ।

लोग दूसरों की उन्नत दशा देखते और प्रभावित होते हैं । उसके भाग्य की सराहना करने लगते हैं उसे परमात्मा का कृपा-भाजन मान लेते हैं । उसकी परिस्थितियाँ तथा समय की अनुकूलता का बखान करने लगते हैं । अनेक छोटी तथा ओछी मनोभूमि वाले तो उससे डाह करते हुये उसके इस सारे वैभव का आधार चालाकी, मक्कारी, भ्रष्टाचार, ठगी तथा शोषण आदि की दुष्प्रवृत्तियों को ही मान लेते हैं ।

यह तो सामान्यतः मानव मनोवृत्ति की विचित्रता है । अपनी मनोदशा के अनुसार ही लोग दूसरों पर आरोप किया करते हैं । किन्तु एक बात सबके लिए सत्य है, वह यह कि जब कोई किसी को किसी क्षेत्र में अग्रस्थ देखता है तो उस स्थिति के लिए स्वयं भी स्पृर्धा करने लगता है । उस जैसा होने की इच्छा होने लगती है । जैसे जब कोई किसी को उन्नत भवन, विस्तृत व्यापार अथवा सामाजिक सम्मान से प्रसन्न देखता है तो कामना कर उठता है कि भगवान ऐसा भवन, ऐसा कारोबार और ऐसा सम्मान हमें भी दे देता और मन ही मन उसके लिए प्रार्थना भी करने लगते हैं । जब वे किसी सफल नागरिक, प्रकाण्ड विद्वान, सम्मानित समाज सेवकों, प्रभावशाली नेताओं, शासन के सूत्राधारों, निपुण गायकों, स्वस्थ एवं बलवान पहलवानों अथवा सुन्दर खिलाड़ियों जैसे विशेषताभूषित व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं तो हिर्स कर उठते हैं कि भगवान ने उन्हें भी ऐसा नेता, शासक, शिल्पी, कवि-विद्वान, कलाकार, गायक, पहलवान अथवा समाज का प्रेरक क्यों नहीं बनाया । पता नहीं कि मुझसे मेरा भगवान क्यों अप्रसन्न है जो मुझे किसी उन्नत दशा में नहीं भेजता ?

किन्तु खेद का विषय है कि ऐसे बाल बुद्धि वाले लोग किसी का वैभव, विशेषता अथवा गुण देखकर प्रभावित तो हो लेते हैं । स्पृहा, ईर्ष्या अथवा सराहना तो कर लेते हैं, किन्तु जो तत्व बात मूलाधार हैं उसकी ओर न तो दृष्टि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

डालते हैं और न उस पर विचार करते हैं । ऊपर ही ऊपर दृष्टि डालकर चकित, चामकृत, प्रभावित, प्रसन्न, दुःखी होकर जहाँ के तहाँ रह जाते हैं । उनकी कामना, स्पृर्धा अथवा स्पृहा भी तहाँ उठती और दफन होती रहती है । वे दिन में सैकड़ों बार इन बातों से प्रभावित होते, कामना करते और अपनी दशा पर तरस खाकर रह जाते हैं । ऐसे उथले दृष्टिकोण वाले जीवन भर तरसते तो रहते हैं किन्तु अंतकाल तक न तो कोई उन्नति कर पाते हैं और न सफल ही हो पाते हैं । आकांक्षाओं का वेग और उनकी आपूर्ति यह भी अजीव दण्ड है, जिसे भोगते हुए ऐसे बावले व्यक्ति जिन्दगी पूरी करने पर विवश होते हैं ।

ऐसी क्षिप्र एवं अनस्थिर कामनाओं वालों को चाहिए कि वे दूसरों की महनीय दशाओं से प्रभावित होकर ईर्ष्या अथवा स्पृध करना छोड़ अपनी स्थिति में सन्तोष करें । यही उनके लिए हितकर एवं कल्याणकारी मार्ग है । अन्यथा यदि वे उन्नति करना चाहते हैं, ईश्वरीय प्रसादों एवं पुरस्कारों के अधिकारी बनना चाहते हों तो ऊपरी दृष्टिकोण को त्यागकर किसी की उन्नति के पीछे निहित उन आधारों को देखें, अध्ययन करें और अपनायें जो अमुक व्यक्ति को स्पृहणीय अवस्था में पहुँचाने में सहायक हुए हैं ।

यदि हम किसी की ऊँची अट्टालिका, उन्नति, रहन-सहन के साधनों , कारोबार अथवा धन-दौलत से प्रभावित होकर इच्छुक होते हैं तो जानें कि इसने प्रारम्भिक काल में कितना परिश्रम, कितना पुरुषार्थ, कितनी दोड़-धूप की और कितनी व्यग्रता, एकाग्रता, लगन तथा निष्ठा से काम किया होगा। कितनी बार घाटा और फिसलन को सहन किया होगा । व्यवस्था प्रबन्ध तथा योजनाओं की योग्यता के लिए कितना अध्ययन, अनुभव तथा सम्पर्क उपलब्ध किया होगा ! व्यवसाय की ऊँच-नीच समझने, बाजारों तथा मालों की दशा, निर्माण तथा पूर्ति का संतुलन समझने के लिए कितने दूर तथा विशाल दृष्टि को विकसित किया होगा । सौदा करने, बेचने और आर्थिक खतरों को उठाने के लिए कितना साहस तथा सहनशीलता का अभ्यास किया होगा । कितनी बार हानियों तथा क्षतियों के टूटते साहस को रोका और उत्साह को बनाये रखा होगा । तब कहीं इसकी साधना तथा धैर्य के बाद आज यह इस स्थिति को पा सका है और अब भी इसे इस दशा को बनाये रखने के लिए उतनी ही सतर्कता, जागरूकता, परिश्रम एवं सहनशीलता से एकनिष्ठ होकर काम करना पड़ रहा होगा ! कामना अथवा स्पृहा कर लेना जितना सरल है उससे कहीं अधिक श्रम साध्य है उनको मूर्तिमान करना । फिर भी जीवन में आगे बढ़ने और उन्नति करने का हौसला रखने वाले यथार्थ की पृष्ठभूमि पर उतर कर कष्ट उठाते, परिश्रम करते अपने में तदनुरूप गुणों एवं विशेषताओं को विकसित करते और महारथियों की तरह मैदान मारते और महनीय बनते हैं । केवल काम और मन का योगफल शून्य में ही प्रकट होता है । सफलता के लिए कामना, काम तथा तन, मन इन चारों का योग अपेक्षित होता है ।

जब हम किसी विद्वान, कलाकार, कवि, कारीगर आदि विशिष्ट गुणों वाले लोगों से प्रभावित होकर वैसा बनने की कामना करें तो सबसे पहले यह हृदयंगम कर लेना चाहिए कि उन्होंने यह उपलब्धि, अपने सतत् अध्ययन, अनवरत अभ्यास, अखण्ड एकाग्रता, तत्परता तथा तपस्या के बल पर पायी है । न जाने कितनी रातें बिना सोये, कितने दिनों बिना आश्रम के व्यतीत किये होंगे । कोई उपलब्धि श्रम संयम, दीर्घकालीन अभ्यास एवं अध्यवसाय का ही एकीभूत स्वरूप है । एकनिष्ठ साधना से रहित व्यक्ति किसी पुरस्कार का अधिकारी नहीं होता ।

संसार के सारे सम्मान, सारे साधन, सारे वैभव, सारी विभूतियाँ एवं उपलब्धियाँ एवं ऐश्वर्य, सिद्धियाँ तथा समृद्धियाँ सबके लिए एक समान ही उन्मुक्ति बिखरी पड़ी हैं । जो चाहे अपना साधना एवं अध्यवसाय के बल पर पात्रता प्राप्त कर लूट लें । ईश्वरीय प्रसाद तथा पुरस्कार न तो किसी के लिए सुरक्षित है और न वर्जित ! उसके न्याय विधान में न तो किसी के साथ अन्याय होता है और न पक्षपात ।

लोग दूसरे की तुलना में अपनी दयनीय दशा पर रोते-तरसते, समय, भाग्य अथवा परमात्मा को कोसते हुए हिर्स भर किया करते हैं । किन्तु कभी एक क्षण को यह नहीं सोचते कि जब अमुक व्यक्ति महत्त्वपूर्ण स्थान पाने के लिए जी जान से परिश्रम कर रहा था, पसीना बहा रहा था, नियम एवं संयम की साधना में तप रहा था तब हम आराम से प्रमाद एवं आलस्य की बूटी छाने हुए अँगड़ाई लेकर जम्हा रहे थे । जब इसके कदम अपने लक्ष्य पथ पर तेजी से बढ़ रहे थे तब हम निठल्ले तथा निकम्मे लोगों की मण्डली में बैठे गपशप का मजा मार रहे थे । हम कभी यह नहीं सोचते कि जिस समय यह अपने निश्चित्त उद्देश्य की योजना बनाते उस पर विचार करने और उसको सफल करने का योग खोजने में दीन दुःखियों का भूला हुआ जान से लगा हुआ था तब हम या तो पैर फैलाये कोई जासूसी उपन्यास पढ़ रहे थे या कोई अश्लील फिल्म देख रहे थे । जब यह समाज में कर्मठ कर्मयोगियों के बीच कंधे से कंधा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रगड़कर अपना मार्ग अपना स्थान बनाने के प्रयत्न में व्यस्त था । तब हम खेलने, कूदने मनोरंजन करने, सैर सपाटे, खाने-पीने और मौज उड़ाने में लगे हुए थे । यहाँ उसने एक-एक क्षण, एक-एक पल का सदुपयोग किया है, वहाँ हमने दिन, सप्ताह, माह और वर्षों यों ही चुटकी बजाते नष्ट कर डाले हैं । अब तो इस विपरीत स्थिति में उसके और हमारे बीच यह अन्तर होना स्वाभाविक ही है । इसमें रोने, झींकने अथवा भाग्य को दोष देने की बात ही क्या है । आत्म संयमी तथा आत्म घाती की स्थिति के बीच जो अन्तर होना चाहिए वह पुरुषार्थी तथा प्रमादी के बीच होगा ।

वैसे हम आप सबके लिए संसार में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है । जिसको हम अपने में उसकी पात्रता प्राप्त कर कभी भी पा सकते हैं । आइये प्रमाद छोड़कर पुरुषार्थी बने। अस्त-व्यस्तता से पीछा छुड़ाकर व्यवस्थित जीवन व कार्य पद्धति अपनाएँ, अपने परिश्रम एवं पसीने द्वारा किसी भी पुरस्कार का मूल्य चुकाएँ । अध्ययन एवं अध्यवसाय की साधना करें और तब देखें कि संसार का कौन-सा दुर्भाग्य हमें हमारे महत्त्वपूर्ण स्थान पर आने से रोकता है ।

हमारी भावी पात्रता और उसका स्पष्टीकरण

आध्यात्म महाशक्ति का मानव-शरीर में ठीक तरह अवतरण हो, इसके लिए उसकी कुछ पात्रता चाहिए स्वर्ग से गंगा पृथ्वी पर आयी थी, तब उसने भगीरथ से यही पूछा था कि जब मैं नीचे उतरूँगी तब उस वेग को धारण कौन करेगा ? ऐसा वेग धारण न किया जा सका, तो धरती मे छेद हो जायेगा और धरा पाताल को चली जायेगी । भागीरथ ने वस्तुस्थिति को समझा और वे गंगा-धारण करने वाले सत्पात्र की तलाश में निकले । यह कार्य भगवान शंकर ने पूरा किया । गंगा उनकी जटाओं में उतरीं । यदि धारण करने वाला सत्पात्र न मिला होता, तो सम्भवतः गंगावतरण ही न हो पाता ।

समर्थ गुरु रामदास के पास बड़ी आध्यात्मिक शक्ति थी । वे उसे किसी को देना चाहते थे, पर सत्पात्र न मिलने पर दें किसे ? उन्होंने बालक शिवाजी की परीक्षा ली । आँखों में दर्द का बहाना किया और उसके उपचार में सिंहनी के दूध की आवश्यकता बतायी । यह शिवाजी स्वार्थी शिष्यों की तरह इस झंझट में पड़ने से कतरा गया होता, तो उसे न तो समर्थ गुरु का अनुग्रह मिला होता और न भवानी की दी हुई अपराजिता तलवार उपलब्ध होती ।

गुरु गोविन्द सिंह हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अवतरित हुए थे । उन्हें अपने कुछ सारथी सहचरों की आवश्यकता थी । खोटे सिक्कों की तरह ओछे व्यक्तित्व के लोग किसी महत्वपूर्ण कार्य में नहीं आ सकते । उन्हें सत्पात्र साथियों की जरूरत थी । शिष्यों की भरी सभा में उन्होंने ऐसे सच्चे लोगों का आह्वान किया, जो अपनी बलि देने को तैयार हों । चतुर भाग खड़े हुए, केवल पाँच व्यक्ति शेष रह गये । उन्होंने बलिदान की इच्छा प्रकट की । यह लोग छोटी जातियों के थे । गुरुदेव ने उनकी परीक्षा ली और अपने महान मिशन का कार्य उन्हीं पाँचों के ऊपर छोड़ दिया । वे ही 'पंच प्यारे' सिक्ख धर्म के प्रमुख संचालक कहलाये । इतना ही नहीं गुरुगोविन्द सिंह के प्राण-प्यारे पुत्र भी अपने को जीवित दीवार में चुनवाकर धर्मनिष्ठा की परीक्षा में पंच प्यारों से भी एक कदम आगे बढ़कर और भी खरे उतरे ।

अरुणि, धौम्य, शुकदेव, नचिकेता आदि की गुरुओं द्वारा कठोर परीक्षा लिए जाने की कथाएँ प्रसिद्ध हैं । प्राचीनकाल में जिन्हें भी तत्वदर्शी लोग ब्रह्म-विद्या का अनुदान देते थे, उनकी यह परीक्षा अवश्य कर लेते थे कि यह इस विभूति के धारण करने का पात्र भी है या नहीं ? कुपात्रों को कुछ बड़ी चींज नहीं दी जा सकती क्योंकि वह बेचारा न तो उसे धारण कर सकेगा और न उसकी रखवाली ही इससे बन पड़ेगी । तान्त्रिक उपासना का प्रथम सोपान यही है कि साधक के साहस और धैर्य की परीक्षा कर ली जाय । डरपोक प्रकृति के व्यक्ति तन्त्र-शक्ति को धारण नहीं कर सकते । इसलिए उस साधना क्रम में प्रवेश करने वाले को प्रारम्भ में ही भय और प्रलोभन भरी कितनी ही विभीषिकाओं का सामना करना पड़ता है । जो उनमें असफल हुआ उसे तंत्रि-शक्ति के अवतरण से वंचित रहना पड़ा ।

हरिश्चन्द्र को अविनाशी यश पाने से पूर्व कड़ी परीक्षा की आग से गुजरना पड़ा । प्रह्लाद की भक्ति झूठी है या सच्ची यह उसने एक से एक भयावह संकटों को शिरोधार्य करके सिद्ध किया । निपुत्री दलीप गुरु वशिष्ठ से संतान का वरदान माँगने गये तो उनकी श्रद्धा गौ चराने और उसकी रक्षा की अड़चन भरा कार्य सौंपकर परखी गई । सिंह से गुरु का गौ बचाने के लिए जब वह अपना प्राण देने तक को तैयार हो गया, तभी यह जाना गया कि दलीप श्रद्धावान है । श्रद्धावान को ही आध्यात्मिकता अनुदान मिलते रहे हैं ।

यदि आध्यात्मिक मार्ग की वास्तविक प्रगति के लिए थोड़ा-सा पूजा-पाठ ही पर्याप्त होता तो शिव, दधीचि, हरिश्चन्द्र, मोरध्वज, ध्रुव, प्रह्लाद, भर्तृहरि, बुद्ध, महावीर, सुदामा, शंकराचार्य, ज्ञानेश्वर, मीरा, सूर, तुलसी, अरविन्द,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

बन्दा, वैरागी, गाँधी जैसे सभी धर्म-प्रेमियों को कष्यसाध्य जीवन अपनाने और त्याग-बलिदान के पथ पर अग्रसर होने की क्यों आवश्यकता पड़ती ?

ईसा मसीह अपने शिष्यों से कहा करते थे कि जो सच्चा ईश्वर भक्त है, वह अपना क्रूस (मौत) अपने कन्धे पर रखकर मेरे पीछे-पीछे आये । संसार के प्रायः सभी ईश्वर भक्तों, धर्म-परायणों, महा-मानवों और सत्पुरुषों को अपनी मनोभूमि को वास्तविकता की अग्नि परीक्षा देनी पड़ी है । जो ईंट भट्टों में पकने से पहले इंकार कर दे वह पानी को बूँद पड़ते ही गल जाने वाली निकम्मी चीज बनी रहेगी । मजबूती प्राप्त करने के लिए तो आग को अपनाना ही होगा। कच्चा लोहा भट्टियों में ही तो फौलाद बनता है । ऊबड़-खाबड़, ओछे और घिनौने, स्वार्थी और तृष्णा-वासना ग्रसित मनुष्य को आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर होने के लिए त्याग और बलिदान का मार्ग सदा ही अपनाना पड़ा है। इसका और कोई विकल्प न तो था और न आगे हो सकता है ।

उपासना, साधना, आराधना की योगत्रयी

मानवी सत्ता के तीन पक्ष हैं-- (१) भावना, (२) विचारणा, (३) क्रिया-प्रक्रिया । इन तीनों को परिष्कृत बनाने के लिए पुरातन प्रतिपादन के अनुसार भक्ति योग, ज्ञान और कर्म के योग के अभ्यास की आवश्यकता बतायी गई है । यह एक नियत समय यां नियत स्थान पर, नियत विधान के साथ हो सकने वाले कृत्य नही हैं, वरन् ऐसे उच्चस्तरीय निर्धारण हैं जिनके अनुसार कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर, और स्थूल शरीर की गतिविधियों का नियन्त्रित रूप से निरन्तर सूत्र संचालन करना पड़ता है । उपासना में अन्तःकरण को साधना में मनःसंस्थान को और आराधना में क्रिया-कलापों को उच्चस्तरीय उद्देश्यों के अनुरूप गतिशील रखना पड़ता है । श्वास-प्रश्वास, आकुंचन-प्रकुंचन, निमेष-उन्मेष, गृहण-विसर्जन जैसी गतिविधियाँ अनिवरत रूप से निरन्तर चलती रहती हैं । ठीक उसी प्रकार आत्म सत्ता के उपरोक्त तीनों पक्षों को इस प्रकार प्रशिक्षित करना पड़ता है कि वे अभ्यस्त कुसंस्कारिता से छुटकारा पाकर सुसंस्कारी शालीनता के ढाँचे में ढलने के लिए विवश हो सकें ।

पूजा-पाठ के समस्त उपचारों का एक मात्र लक्ष्य यह उत्कृष्टता संपादन ही है । परब्रह्म को किसी उपहार मनुहार के सहारे फुसलाया नहीं जा सकता । उसने नियत क्रम जड़-चेतन सभी को बाँधा है और स्वयं भी बँध गया है । प्रशंसा के बदले अनुग्रह और निन्दा के बदले प्रतिशोध लेने पर यदि भगवान उतर पड़ें तो समझना चाहिए कि व्यवस्थापरक अनुबंध समाप्त हो गये और सर्वतोन्मुखी अराजकता का उपक्रम चल पड़ा । ऐसा होता नहीं है । लोगों का भ्रम है जो सृष्टा को फुसलाने और नियम क्रम का उल्लंघन करने वाले अनुदान इसलिए माँगते हैं कि वे पूजा करने के कारण पक्षपात के अधिकारी हैं । यह बालबुद्धि जितनी जल्दी हट सके उतना ही अच्छा है । पूजा उपचार का तात्पर्य चेतना संस्थान को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढालने का प्रभावी व्यायाम पराक्रम प्रशिक्षण मात्र है । इस या उस प्रकार जो अपने चेतना क्षेत्र को जितना समुन्नत बना सकेगा वह उतना ही ऊँचा उठेगा, आगे बढ़ेगा और देवत्व के क्षेत्र में प्रवेश पाने का अधिकारी बनेगा ।

उपासना का उद्देश्य है–आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ देना । आत्मा अर्थात् अन्तःकरण भाव संस्थान जिसके साथ मान्यताएँ आकांक्षाएँ लिपटी रहती हैं । परमात्मा अर्थात् उत्कृष्ट आदर्शवादिता । स्मरण रहे परमात्मा को कोई व्यक्ति विशेष नहीं, सृष्टि में जितना भी देव पक्ष है उसके समुच्चय को आत्माओं के समष्टि समुदाय को परमात्मा कहते हैं । संक्षेप में व्यापक क्षेत्र की सत्प्रवृत्तियों का समग्र रूप ही मनुष्य का इष्ट उपास्य है । इसी के साथ आत्मसात, घनिष्ठतम, एकाकार होते जाना ही परमात्मा की उपासना है। सर्वविदित है कि उपासक का स्तर ऊँचा होगा और उपास्य का स्वरूप वास्तविक होगा तो उन दोनों की घनिष्ठता का प्रभाव इसी रूप में प्रकट होगा कि उपासक उपास्य के तद्रूप बनता चला जाय ।

ईंधन आग के जितना समीप पहुँचता है उतना ही गर्म होता जाता है । जब वह इष्ट से लिपट जता है उसकी सत्ता अग्नि रूप में प्रकट होती है नाला नदी में, बूँद समुद्र में, नमक पानी में मिलने पर उन्हें एकात्म होते देखा जाता है । चन्दन के निकट उगे हुए झाड़-झंखाड़ सुगंधित होते हैं । लोहा पारस का स्पर्श करके सोना बनता है । पेड़ से लिपटकर बेल उतनी ही ऊँची चढ़ती जाती है । पत्नी का समर्पण पति के समस्त यश वैभव स्नेह सहयोग की भागीदारी खरीद लेता है । यह प्रक्रिया भाव-भरी उपासना से सम्पन्न होती है । परमात्मा के साथ आदर्शवादी देव परिवार के साथ मनुष्य जितना भाव और कर्म से एकीभूत होता जाता है उसी अनुपात में उसका प्रभाव भी हाथों-हाथ बढ़ता है। बिजली घर के साथ सम्बन्ध जुड़ते ही बल्ब जलने और पंखे चलने लगते हैं । दो तालाबों के बीच नाली बना दी जाय तो ऊँचे वाले का पानी नीचे वाले में चलता रहता है । जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक कि दोनों की सतह एक नहीं हो जातीं । उपासना यदि कर्मकाण्ड की चिह्न पूजा मात्र हो--उपहार मनुहार को लकीर पीट रही हो तो बात दूसरी है, अन्यथा आत्मा के परिष्कृत एक विशद रूप परमात्मा के बीच यदि घनिष्ठ आत्मीयता जुड़े तो उसकी परिणति स्पष्टतः यही हो सकती है कि मनुष्य में देवत्व उभर पड़े । उसका चिन्तन चरित्र और व्यवहार वैसा बन पड़े जैसा उदात्त दृष्टि वाले भगवत भक्तों को होना चाहिए । इस सन्दर्भ में विभिन्न संप्रदायों ने कई प्रकार के पूजा विधान बनाये हैं उनमें से कोई भी चुना जा सकता है किन्तु उस कलेवर के अन्तराल के आदर्शों के प्रति आत्मसमर्पण की जीवन को उसी स्तर का पवित्र प्रखर बनाने की ललक होनी चाहिए । इसी ललक को भक्ति भावना कहते हैं । इष्ट की आकृति मनुष्य जैसी या सूर्य शिवलिंग जैसे पदार्थ की प्रयुक्त हो सकती है । पर ध्यान रहे उसे विराट की प्रतीक प्रतिमाभर माना जाय । ऐसा न हो कि उस सीमित में असीम को सीमाबद्ध करने की भूल की जाय । उपासना यदि निभ्रान्त और श्रद्धा विश्वास से भरी पूरी है तो कोई कारण नहीं कि उसका प्रभाव भक्त में स्तर के क्रमशः उच्च से उच्चतर, उच्चतर से उच्चतम बनाने का प्रगति क्रम निरन्तर गतिशील न बना रहे । यह यात्रा परमलक्ष्य तक पहुँचकर ही रुकती है ।

उपासना का उपरोक्त तत्वदर्शन समझ लेने के उपरान्त शेष इतना ही रह जाता है कि उसे भावनात्मक व्यायाम की तरह पूजा उपचार के क्रिया-कृत्यों के सहारे आगे बढ़ाया जाय । इसके लिए किस पद्धति का अवलम्बन किया जाय इसका उत्तर प्रज्ञा परिजनों के लिए एक ही है कि उनकी जैसी मनोभूमि के लिए 'प्रज्ञायोग' की विधि व्यवस्था ही सर्वोत्तम सिद्ध होगी । यह सर्वांगपूर्ण है । इसमें उपासना, साधना और आराधना के तीनों तत्वों का समान रूप से समावेश है, जबकि अन्य पद्धतियों में से अधिकांश एकांकी पायी जाती है । प्रज्ञायोग की संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित रूपरेखा अगले पृष्ठों पर अलग से प्रस्तुत है । कारण शरीर में सन्निहित भाव श्रद्धा को दिशा देने और ऊँचा उठाने के लिए उपासनात्मक आवश्यकता की पूर्ति प्रज्ञायोग के सहारे सम्पन्न की जानी चाहिए ।

साधना अर्थात् अपने आपे को साधना । उसके अनगढ़पन, पिछड़ेपन, कुसंस्कार का निराकरण संशोधन, निम्नयोनियों से क्रमिक यात्रा करते हुए मनुष्य जन्म तो प्राणी भगवान के अनुग्रह से प्राप्त कर लेता है । पर पिछली कुसंस्कारिता से पीछा छुड़ाना और मानवी गरिमा के उपयुक्त विशिष्टता उत्पन्न करना उसका अपना काम है । भगवान इसी आधार पर किसी की पात्रता जाँचते हैं और उसे अधिक ऊँचे उत्तरदायित्व पद वैभव प्रदान करते हैं । महामानव, मनीषी, ऋषि सिद्ध पुरुष, देवात्मा, अवतार आदि इसी स्तर की प्रगति पदोन्नति है, जिन्हें मनुष्य पात्रता प्रमाणिकता सिद्ध करने के उपरान्त विजेता की तरह उपहार में प्राप्त करता है । चिन्तन और चरित्र में अधिकाधिक उत्कृष्टता का समावेश ही साधना है । इसके लिए पिछले कुसंस्कारी ढर्रे से पग-पग पर जूझना पड़ता है । कुविचारों के सम्मुख सद्विचारों की सेना खड़ी करते हुए उन्हें मल्ल युद्ध में परास्त करना पड़ता है ।

मन को मारना अर्थात् साधना अध्यात्म क्षेत्र में सबसे बड़ा पुरुषार्थ माना गया है । जो मन के पीछे चलते हैं वे अनगढ़ घोड़े की पूँछ में अपनी गर्दन बाँधकर झाड़-झंखाड़ों में खिंचते--घसीटते फिरते और लहु-लुहान होकर बेमौत मरते हैं । जिस मनोनिग्रह को चित्तवृत्ति निरोध को आत्मिक प्रगति का मेरुदण्ड माना गया है उसे नट बाजीगरों द्वारा बरती जाने वाली एकाग्रता मात्र नहीं समझना चाहिए । उसका तात्पर्य है मन को कुसंस्कारी भटकावों से रोककर उत्कृष्टता के, लक्ष्य के राजमार्ग पर संकल्पपूर्वक चल पड़ने की अटूट भाव श्रद्धा ! कहा गया है--''जिसने अपने को जीता वह विश्व विजयी है ।'' इस युक्ति में बहुत कुछ सार है । जिसका दबाव अपने स्वभाव तक को बदलने में सफल न हो सका, उस असफल व्यक्ति को कौन मान्यता देगा ? कौन उसकी बात सुनेगा ? कौन उसके कहने पर चलेगा ? व्यक्तित्व की प्रमाणिकता इसी कसौटी पर कसी जाती है कि अनगढ़ मन के इशारे पर कठपुतली की तरह नाचता है अथवा मनस्वी घुड़सवार की तरह अपने वाहन को अभीष्ट दिशा में, अभीष्ट गति से चलाने, दौड़ने में समर्थ रहता है।

साधना हो या उपासना उसकी चाबी भरने के लिए कोई समय नियत हो सकता, किन्तु काम इतने भर से बनने वाला नहीं । घड़ी के पुर्जों को अनवरत क्रम से चलना और सुइयों को बिना विश्राम के चलते रहना पड़ता है । यह दोनों ही प्रक्रिया ऐसी हैं जिनमें अपनी क्रिया, विचारणा और आकांक्षा को हर घड़ी परखना और सुधारना-सम्भालना पड़ता है । खजाने के रक्षक, जेल के वार्डन और सीमा के प्रहरी निरन्तर चौकस रहते हैं । जीवन सम्पदा में व्यतिरेक न उत्पन्न होने पाये, इसके लिए जो सर्वदा जागरूक रहता है और अवांछनीयता के प्रवेश करते ही रक्त कैसे श्वेत कणों की तरह विजातीयों से गूँथ पड़ता है उसी को विजेता कहते हैं । प्रशंसा, प्रतिष्ठा, सम्पन्नता, सफलता जैसी विभूतियाँ अर्जन करने में ऐसे पराक्रमी लोग ही समर्थ होते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्म निर्माण में गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता अपनायी जाती है । पर उस प्रयास का अभ्यास कहाँ हो ? सिद्धान्त को आदत में बदलने के लिए कहीं न कहीं अभ्यास तो करना ही होगा । बलिष्ठता के लिए व्यायामशाला, विद्वत्ता के लिए पाठशाला, धनाड्य बनने के लिए उद्योगशाला का आश्रय लेना पड़ता है । ठीक इसी प्रकार आत्म-निर्माण के लिए व्यक्तित्व में जिन सत-प्रवृत्तियों के समावेश की आवश्यकता पड़ती है, उसके लिए कोई न कोई कार्यक्षेत्र तो चाहिए ही । समझा जाना चाहिए कि इस स्तर का नियमित, निरन्तर, दीर्घकालीन अभ्यास चलाते रहने के लिए एक सुनियोजित प्रयोगशाला का कार्य परिवार के वातावरण में ही सम्भव हो सकता है । पशु जीवन में जिन उत्कृष्टताओं से कोई वास्ता न पड़ा था, उसे मनुष्य जीवन में अपनाना पड़ता है । यह कार्य पठन, श्रवण से सम्भव नहीं । प्रवृत्तियाँ दीर्घकालीन अभ्यास से स्वभाव का अंग बन जाती हैं । परिवार में पग-पग पर हर सदस्य के मर्यादा-पालन, अनुशासन, सहकार, आत्मभाव एवं उदार व्यवहार का अभ्यास करना पड़ता है । लगता है इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाया गया है । उस सामाजिकता का अभ्यास करने के लिए परिवार की छोटी प्रयोगशाला का संचालन सौंपा गया है । इसमें दुहरा लाभ है । इसमें आत्मिक सद्गुणों का अभ्यास तथा एक छोटे उद्यान को सुविकसित बनाकर, सृष्टि सौन्दर्य बढ़ाने, सृष्टा का मनोरथ पूरा करने वाला उपक्रम है । यह पारिवारिकता ही है जो आत्म विकास का उद्देश्य पूरा करती है और समुन्नत होते ''वसुधैव कुटुम्बकम'' की विश्व परिवार की युग साधना सम्पन्न करती है ।

उपासना साधन के अतिरिक्त तीसरा कार्यक्रम है--आराधना । अर्थात् आराधना विराट ब्रह्म की विश्व मानव की सेवा संलग्नता । हर भगवद्भक्त को भजन एवं जीवन परिष्कार के साथ-साथ इस विश्व उद्यान को सुन्दर, समुन्नत बनाने के लिए किसी न किसी रूप में अपने श्रम, समय और साधन का एक अंश नियमित रूप से लगाना पड़ा है । साधु, ब्राह्मण, वानप्रस्थ, परिव्राजक स्तर के सभी धर्म प्रेमी किसी न किसी रूप में लोक मंगल के लिए सार भरे अनुदान प्रस्तुत कर रहे हैं । इसके अभाव में आध्यात्मिक प्रगति का लाभ किसी को भी नहीं मिला । भूमिशोधन तथा बीजारोपण को उपासना साधना कहा जा सकता है । पर फसल इतने से ही नहीं काटी जा सकती ।

युग सन्धि में सर्वोत्तम लोक साधना एक ही है--लोक का परिष्कार । इसके लिए जन-सम्पर्क साधने और जन-जन को युगान्तरीय चेतना से परिचित अनुप्राणित करना प्रमुख एवं प्रधान कार्य है । व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण के बहुमुखी कार्यक्रम इन दिनों इसी निमित्त चल रहे हैं । प्रज्ञा संस्थानों का निर्माण तथा प्रज्ञा अभियान का संचालन जिन उद्देश्यों को सामने रखकर अग्रसर हो रहा है, उसे लोक सेवा की सामयिक एवं सर्वोत्तम प्रक्रिया कहना चाहिए । इसी में सम्मिलित होकर, सहभागी बनकर आराधना का उद्देश्य पूरा होता है । सभी प्रज्ञा परिजनों को अपनी आत्मबल सम्पादन प्रक्रिया में उपासना और आराधना का समावेश करना चाहिए ।

आत्मिक प्रगति के लिए जिन तीन सोपानों पर चढ़ना पड़ता है उनमें उपासना, साधना के अतिरिक्त तीसरा मोर्चा आराधना का रह जाता है । आराधना के लिए अन्तःकरण कुरेदना पड़ता है । साधना के लिए परिवार की प्रयोगशाला में अपने निर्धारणों को परिपक्व करना पड़ता है । आराधना का अर्थ है--लोक-मंगल के सर्वोत्तम उपाय, सत्प्रवृत्ति सम्बर्द्धन में निरत होना । संक्षेप में इसी को समाज सेवा, लोक साधना, जन-कल्याण, पुण्य परमार्थ आदि नामों से पुकारते हैं । यह भी मानवी गरिमा का एक सुनिश्चित पक्ष है । इसकी अपेक्षा करने पर सत्प्रवृत्तियों को स्वभाव का अंग बना सकना सम्भव ही नहीं हो पाता । सिद्धान्तों का समझना, पढ़ना, सुनना पर्याप्त नहीं । इतने भर से मनोविनोद भर होता रहता है , पल्ले कुछ नहीं पड़ता । श्रेष्ठता को स्वभाव का अंग बनाने के लिए एक ही मार्ग है--''पुण्य परमार्थ का प्रयोग अभ्यास ।'' इसलिए सेवा साधना को मानवी गरिमा का अविछिन्न अंग ठहराया गया है और स्वार्थपरायण को अपराधी की तरह घृणित बताया गया है । मनुष्य का अस्तित्व पारस्परिक सहयोग पर निर्भर है । अन्य प्रणी तो कुछ दिन ही माता की सहायता लेकर स्वावलम्बी बन जाते हैं पर मनुष्य को आजीवन दूसरों की सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है । अन्न, वस्त्र, पुस्तक, औषधि, आजीविका जैसे साधनों को लेकर पत्नी, पिता, माता, सास, श्वसुर आदि सम्बन्धियों की उदार सहायता बिना एक पल भी काम नहीं चलता । एकाकी जीवन अन्य प्राणी जी सकते हैं, पर मनुष्य की संरचना को देखते हुए वैसा सम्भव नहीं । समाज सहयोग से रहित व्यक्ति को रामू भेड़िये जैसा वनचर, मूक-वधिर होकर रहना पड़ेगा । इस उपकार का, प्रत्युपकार होना ही चाहिए । सहयोग आदान-प्रदान का उदारता का सिलसिला चलना ही चाहिए । यही प्रकारान्तर से पुण्य-परमार्थ है । ऋण-मुक्ति, सद्गुणों की उपलब्धि आत्मीयता विस्तार की विभूति जैसी अनेकों सुखद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्भावनाएँ लोक-मंगल की साधना के साथ जुड़ी हुई हैं । भजन का वास्तविक तात्पर्य परमार्थ है । संस्कृत की 'भज्सेवायां' धातु से भजन शब्द बना है, जिसका अर्थ होता है--सेवा को जीवनक्रम में सम्मिलित रखना । व्यक्ति समाज को समुन्नत बनाये । समाज व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने का अवसर प्रदान करे । यही है--देवान् भावयतानेन्.....का गीता प्रतिपादन । हम देवत्व के सम्बर्द्धन परिपोषण करने वाली सेवा साधना, में निरत रहें तो बदले में वह परिपुष्ट हुआ देवत्म हमें सर्वतोन्मुखी प्रगति के साथ जुड़ी हुई अगणित विभूतियों से सुसज्जित करेगा और कृत-कृत्य बनाकर रहेगा ।

आत्मोत्कर्ष के चार आधार

मनुष्य की एक सहज आकांक्षा होती है, हर क्षेत्र में प्रगति करना । भौतिक पक्ष का महत्त्व व्यक्ति न समझ सके उसकी बात तो भिन्न है, किन्तु मानवीय अन्तःकरण भौतिक से लेकर आत्मिक उत्कर्ष तक के लिए स्वाभाविक रूप से लालायित रहता है ।

प्रश्न उठता है कि प्रगति का इच्छुक मनुष्य प्रगति कर क्यों नहीं पाता ? जो लोग आत्मिक प्रगति का महत्व समझें उनकी बात छोड़ भी दें तो जो वैसा चाहते हैं, उन्हें आत्मोत्कर्ष का लाभ क्यों नहीं मिलता ?

वस्तुतः प्रगति की आकांक्षा मात्र से प्रगति सम्भव नहीं इसके लिए प्रयास, पुरुषार्थ अभ्यास करना होता है । सामान्य लौकिक पद-प्रतिष्ठा के लिए भी जब पुरुषार्थ करना पड़ता है तो आत्मिक प्रगति जैसे महान लक्ष्य के लिए उसकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है ? उसके लिए हर साधक के वह अधिकार ढूँढ़ने पड़ते हैं जो जीवन लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होते हैं । उनका नियमपूर्वक अभ्यास करना पड़ता है तब कहीं लक्ष्य सिद्धि होती है । पानी को ढाल की ओर बहने देना हो तो उसके लिए किसी प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती । वह प्रक्रिया अपने आप पूरी हो जाती है, पर यदि उसे ऊँचा उठाना हो तो बाँध बाँधने से लेकर उच्च शक्ति वाले जनरेटर वाटर पम्पों की आवश्यकता होती है। पेट और प्रजनने तृष्णा और अहंता का सामान्य जीवन ही अभीष्ट हो तो उसके लिए न तो कहीं साधन ढूँढ़ने की आवश्यकता पड़ेगी न मार्गदर्शन की । समाज का जैसा कुछ ढर्रा चल रहा होगा व्यक्ति उसमें अपने आप ढलता जायेगा, पर यदि जीवन के किन्हीं उच्च आदर्शों को प्राप्त करना हो तब फिर उन साधनों का आश्रय लेने के अतिरिक्त कोई चारा न रहेगा जो उसके लिए आवश्यक और अनिवार्य हैं।

आत्मिक प्रगति के चार सूत्र हैं, इन्हें व्यक्ति निर्माण का आधार माना जा सकता है । युग प्रवाह बदलने में भी इनका प्रयोग अनिवार्य रूप से करना होगा । वे चार आधार युग निर्माण के सत्संकल्प में आरम्भ से ही जुड़े हुए हैं । अब उनके कार्यान्वित किये जाने पर पूरा-पूरा जोर दिया जा रहा है । वे चार सूत्र हैं---(१) साधना, (२) स्वाध्याय, (३) समय, (४) सेवा । उत्कृष्ट व्यक्तियों के निर्माण में आत्मिक प्रगति के प्रयाण में इन्हें छोड़कर एक कदम भी बढ़ चलना असम्भव है । अस्तु, युग निर्माण परिवार के हर सदस्य को इन्हें अपने दैनिक जीवन में निष्ठापूर्वक सम्मिलित किये ही रहना चाहिए ।

प्रगति एकांगी प्रयासों से नहीं होती । उसके लिए समग्र आधार बनाने होते हैं । खेतों में उपयुक्त भूमि, उपयुक्त संरक्षण तथा उपयुक्त वातावरण की आवश्यकता पड़ती है । भवन निर्माण के लिए ईंट, गारा, लोहा एवं लकड़ी यह चारों वस्तुएँ जुटानी होती हैं । मानवीय जीवन में चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष हैं । इसी प्रकार आत्मोत्कर्ष के लिए यह चार आधार भी अनिवार्य हैं । सभी को क्रमशः पुष्ट एवं विकसित करके ही महामानवों, देव पुरुषों जैसा जीवन निर्मित किया जा सकता है ।

साधना के दो अंग हैं--उपासना एवं साधना । उपासना का तात्पर्य है ईश्वर निकटता की अनुभूति । आत्म चेतना परम चेतना के संसर्ग से ही अपने मुख्य कर्तव्य और स्वरूप का बोध कर पाती है । ईश्वर के प्रति उसकी कार्य व्यवस्था के प्रति अटूट आस्था तभी पैदा होती है । फलस्वरूप साधक में सद्भावनाएँ--सद्विचारणाएँ और सत्प्रवृत्तियाँ अधिकाधिक मात्रा में बढ़ती चली जाती हैं । सामान्य स्थिति में हमारी चेतना शरीराभ्यास और भौतिक आकर्षण में इतनी अधिक लिप्त रहती है, कि जीवन के मूल स्वरूप को समझने और लक्ष्य पर ध्यान देने की बात बन ही नहीं पड़ती । इस दल-दल में से निकलने के लिए अपने निज लोक का ब्रह्म लोक का स्मरण रखा जाना आवश्यक है । इस स्मृति को संजोगकर रखना ईश्वर उपासना से भी सम्भव है । भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की तरह कुछ आत्मिक आवश्यकताएँ भी हैं । उनकी ओर से प्रायः पूर्ण उपेक्षा ही बनी रहती है । इस अवहेलना में मनुष्य सब कुछ गँवा बैठता है, जो उसे पाना और कमाना था । उपासना की सीढ़ियों पर चढ़कर हम आत्मलोक तक पहुँचते हैं और अपने उन उत्तरदायित्वों को समझते हैं जो मनुष्य जीवन की सार्थकता के प्रमुख आधार हैं । मानवी गरिमा का ईश्वर विश्वास से और ईश्वर विश्वास का उपासना से अविछिन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्बन्ध है । अस्तु, उपासना को सही रूप भी जन-जन के मन में उतारना होगा । नैतिकता, शालीनता और उदारता के दैवी तत्व को अन्तःकरण के गहन अन्तराल में उतारना इसी आधार पर बन पड़ेगा । आस्तिकता मानवी गरिमा का ऐसी ही दण्ड है । उसके टूट जाने पर अवयवों का स्वस्थ रहना भी जीवन की सरसता और सफलता को निरस्त कर देगा । हमें न केवल आस्तिकता को अंगीकार ही करना है वरन् उपासना के रूप में उसे दैनिक अभ्यास में समाविष्ट भी रखना है । लोक शिक्षण का यह बहुत बड़ा आधार है । इसलिए साधना के पूर्वार्द्ध उपासना को अपनाने पर इतना जोर दिया गया है ।

साधना का उत्तरार्द्ध है जीवन साधना । जीवन सम्पदा का श्रेष्ठतम प्रयोजनों के लिए दूरदर्शिता पूर्ण सदुपयोग ही साधना का स्वरूप है । इसमें अपने व्यक्तित्व में से अवांछित तत्व एक-एक करके बीनने उखाड़ने पड़ते हैं और उनके स्थान पर उत्कृष्टता के कल्पवृक्षों का आरोपण करते हुए नन्दनवन जैसे उद्यान की संरचना के लिए कटिबद्ध होना पड़ता है । किसान खेती की साधना करता है, माली बगीचे की, पहलवान शरीर की, विद्यार्थी मस्तिष्क की, व्यापारी व्यवसाय की, कलाकार काल की आदि इन साधनाओं के फलस्वरूप ही वे लोग उत्साहवर्द्धक परिणाम प्राप्त करते हैं । जीवन एक अनगढ़ हीरा है जिसे घिसने तराशने से ही उसका स्वरूप और मूल्य बढ़ता है । जीवन एक धातु खण्ड है जिसे तपाने, ढालने, पीटने, खरादने से ही औजार और आभूषण बनते हैं । मदारी हिंसक पशुओं को सुधारते और उनसे आश्चर्य भरे करतब कराकर यश एवं धना कमाते हैं । अनगढ़ दृष्टिकोण एवं अस्त-व्यस्त क्रिया-कलाप ही मनुष्य का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है । इसी भूल का परिणाम पग-पग पर नारकीय आधिव्याधियों के रूप में भुगतना पड़ता है । जीवन साधना ही आत्म देव की वह आराधना है जिसके फलस्वरूप अमृत, पारस, कल्प वृक्ष जैसी अलंकारिक कल्पनाओं को जीवन क्षेत्र में उतरते और सुसम्पन्नता से भरा-पूरा बनते देखा जा सकता है । आत्म निरीक्षण, आत्म सुधार--आत्म निर्माण और आत्म विकास के चार आधार जो जितनी तत्परता से अपनाये रहेगा वह उतनी ही सफलता पूर्वक दिव्य लक्ष्य को प्राप्त करके रहेगा ।

देवी-देवताओं के वरदानों से मिलने वाले अगणित लाभों की चर्चा कथा पुराणों में मिलती है । वस्तुतः मानव जीवन ही समस्त देवी-देवताओं का समुदाय है । सत्प्रवृत्तियाँ ही देवियाँ हैं और सद्गुणों को बिना संकोची देवता कहा जा सकता है । उनकी उपयुक्त रीति-नीति अपनाकर साधना की जा सके तो देवताओं के अनुग्रह से मिलने वाले सभी अनुदानों को अपने इसी जीवन में निश्चयपूर्वक उपलब्ध किया जा सकता है । संसार के महामानवों में से प्रत्येक को जीवन साधना की अग्नि परीक्षा में होकर गुजरना पड़ा है । भ्रष्ट और दुष्ट गतिविधियाँ अपनाये रहकर न भैतिक प्रगति हो सकती है और न आत्मिक क्षेत्र में एक कदम ही आगे बढ़ा जा सकता है । अस्तु, जीवन साधना प्रत्येक विचारशील और प्रगतिशील मनुष्य के लिए ऐसा अनिवार्य कर्तव्य हो जाता है, जिसका परित्याग कर देने पर फिर नर-पशु और नर-कीटक के स्तर पर बने रहने के अतिरक्त ऐसा कुछ शेष ही नहीं रह जाता जिस पर मानवता का गौरव अनुभव किया जा सके ।

साधना उपासना को सभी धर्मों में अनिवार्य माना गया है । उनके स्वरूप क्रिया पद्धति में तो भिन्नता है, किन्तु परमात्म सत्ता की निकटता का बोध सभी के साथ समान रूप से जुड़ा हुआ है । मनुष्य का स्वभाव है कि जैसी संगति में रहता है वैसी उसकी प्रवृतियाँ बनने लगती हैं । यह प्रकृति का नियम है । अग्नि के समीप बैठने से गर्मी आती है, बर्फ की समीपता से शीतलता बढ़ती है । इसी प्रकार ईश्वर की समीपता से ईश्वरत्व की वृद्धि मनुष्य में होती है ।

ईश्वर सत्-प्रवृत्तियों एवं सद्शक्तियों का भण्डार है । उसके स्मीप्य से मनुष्य में उन तत्वों की वृद्धि स्वाभाविक है । यहाँ भी यह सद्तत्व होंगे वहाँ श्री समृद्धि एवं सुख सन्तोष की कमी नहीं रह सकती । जब यह तत्व घटते हैं तो मानना चाहिए ईश्वर से सम्पर्क छूट रहा है । यदि उपासना का क्रम ठीक प्रकार चलता हो तो मनुष्य के स्वाभाविक स्तर में गिरावट आने का कोई कारण नहीं ।

उपासना मात्र कर्मकाण्ड नहीं है । वह तो आत्म चेतना को परमात्म चेतना के सम्पर्क में लाने की विद्या है । जहाँ लोग उसे स्थूल कर्मकाण्ड तक ही सीमित मान लेते हैं, उपासना सही अर्थों में उपासना नहीं रह जाती । उपासना भाव भरी मनोभूति से की जाय, तभी उसका लाभ मिलता है ।

अपने देश में उपासना की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं, किन्तु उन सबमें गायत्री उपासना सर्वश्रेष्ठ मानी गई है । उसका कारण यह भी है कि गायत्री मन्त्र में ईश्वर का कोई नाम विशेष नहीं है । उसे गुण विशेष के रूप में याद किया गया है । साथ ही उससे बुद्धि में स्थापित करने बुद्धि को सन्मार्ग एवं प्रेरित करने की प्रार्थना की गई है । इस आधार पर यह परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ प्रार्थना है । किसी भी धर्म

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एवं सम्प्रदाय का व्यक्ति गायत्री मन्त्र में सन्निहित इन श्रेष्ठतम भावों की प्रशंसा-सराहना किये बिना नहीं रह सकता । किसी भी इष्ट का ध्यान करें, किसी भी पूजा विधि को अंगीकार करें, किन्तु यदि ईश्वर के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध रखने का प्रयास किया जाय तो समझना चाहिए कि उपासना की सही विधि मिल गयी, उसका सही स्वरूप बन गया । फिर उससे मिलने वाले लाभ भी अवश्य प्राप्त होंगे । हर विचारशील को इस आधार पर साधना उपासना का नियमित क्रम अवश्य ही बनाकर चलना चाहिए ।

स्वाध्याय आत्मोत्कर्ष का दूसरा चरण है । श्रेष्ठ शक्तियों के साथ सम्बन्ध कटा रहने पर निकृष्टता ही चारों ओर से छायी रहती है और अन्तरंग एवं बहिरंग को पूरी तरह जकड़कर बैठ जाती है । पशुता की दुष्प्रवृत्तियों में जकड़ा हुआ मनुष्य अशुभ ही सोचता एवं अनर्थ ही करता है । एकपक्षीय दबाव का यही दुष्परिणाम होना चाहिए और होता भी है । जब एक पक्ष के ही बयान, सबूत और वकील कान करें, दूसरी ओर से कोई कुछ कहने वाला भी न हो, तो फिर मुकद्दमे का फैसला एकपक्षीय होगा । श्रेष्ठता की शक्तियों को भी हमारे ऊपर प्रभाव डालने का अवसर मिले तो उत्कृष्टता की दिशा में भी कुछ करते बन पड़े । यह कार्य स्वाध्याय से ही सम्भव हो सकता है । जीवन के असंख्य क्षेत्रों को प्रभावित करने वाली समस्याओं का युग के अनुरूप समाधान पाने के लिए पुराण के पृष्ठों को उलटते रहने से कदाचित ही किसी के कुछ हाथ लगेगा । परामर्श तो युग मनीषियों का ही काम दे सकता है । समय के प्रवाह को परिस्थितियों को मनः स्थितियों को ध्यान में रखते हुए सिद्धान्तों का व्यवहार के साथ तालमेल बिठाने वाला परामर्श साहित्य उपलब्ध करना ही स्वाध्याय का उद्देश्य पूरा करता है । यह कार्य इतिहास पठन अथवा पुरातन प्रचलन को तलाश करते रहने से किसी भी प्रकार पूरा नहीं हो सकता । युगी मनीषियों के साथ प्रत्यक्ष परामर्श निरन्तर करते रहना सम्भव नहीं । उनमें से अनेकों मर चुके अनेकों बहुत दूर हैं जो जीवित हैं उनको व्यस्तता इतनी रहती है कि आये दिन घण्टों परामर्श को सुविधा मिल ही नहीं सकती । यह कार्य युग पुरुषों के श्रेष्ठ सत्साहित्य से ही पूरा हो सकता है । अस्तु, स्वाध्याय को भी साधना के समतुल्य ही आवश्यक एवं श्रेयकर माना गया है ।

स्वाध्याय और सत्संग दोनों का उद्देश्य एक है केवल स्वरूप ही भिन्न है । व्यक्तिगत सम्पर्क को सत्संग और साहित्य के माध्यम से सम्पर्क को स्वाध्याय कहते हैं । दोनों का लाभ लगभग एक-सा है, प्राचीनकाल में ग्रंथ सुलभ न थे सत्संग ही सर्व-साधारण के लिए सम्भव था सो सामान्य लोगों के लिए जो महात्म्य सत्संग का बताया गया है, वह प्रबुद्ध व्यक्तियों के लिए स्वाध्याय का है । अन्तःकरण में सद्गुरु का, दिव्य चेतना का निवास है । अंतर्मुखी होकर अपनी उच्च चेतना को जागृत करके उसके साथ विचार विनिमय किया जाय तो उसकी भूल सुधारने वाली प्रक्रिया को 'मनन' और प्रगति की भावी योजनाओं का पथ-प्रदर्शन करने वाली विवेक नीति को 'चिन्तन' कहा जा सकेगा । बिना एक दूसरे की सहायता लिए अन्तःक्षेत्र में सद्गुरु के साथ जीवित समस्याओं के समाधान का प्रयत्न करना भी सत्संग है । इस मार्ग में प्रमुख कठिनाई यही रहती है कि अपना निजी सद्गुरु तम साछन्न स्थिति में होने के कारण उपयुक्त परामर्श देने की स्थिति में नहीं होता है । इसलिए उसे परिष्कृत एवं प्रखर बनाने के लिए ब्रह्मवेत्ता गुरुजनों से आरम्भिक सहायता लेनी पड़ती है ।

पढ़े लिखे लोग बिना पढ़ों को सुनाकर उनके स्वाध्याय आवश्यकता को पूरी करा सकते हैं । ऐसे स्वाध्याय सत्संग दैनिक या साप्ताहिक रूप से भी कथा शैली पर नियमित चलाये जा सकते हैं । नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक परिवर्तनों के लिए स्वाध्याय प्रक्रिया जीवन प्राण है । इसकी ओर यदि उपेक्षा बरती जायेगी तो वह लक्ष्य किसी भी प्रकार पूरा न हो सकेगा, जिसके लिए यह देव परिवार गठित किया गया है । झोला पुस्तकालय, चल पुस्तकालय, साहित्य सृजन और ज्ञानयज्ञ की सारी गतिविधियाँ विचार क्रान्ति की प्रेरणाएँ इसी बौद्धिक परिवर्तन की धुरी पर घूमती हैं । व्यक्ति निर्माण और समाज निर्माण के दोनों उद्देश्य इसी प्रशिक्षण प्रक्रिया पर निर्भर हैं, जिन्हें स्वाध्याय या सत्संग में से किसी भी आधार पर सुविधानुसार चलाया जा सकता है ।

तीसरा सूत्र है संयम । संयम का क्षेत्र इन्द्रिय संयम एक सीमित नहीं वरन् अत्यन्त व्यापक है । जिस प्रकार ब्रह्मचर्य, उपवास आदि इन्द्रिय संयमों से शारीरिक क्षमताओं की बर्बादी रुकती है और बलिष्ठ दीर्घ जीवन का पथ प्रशस्त होता है उसी प्रकार श्रम, समय, चिन्तन, प्रभाव, कौशल, धन पद आदि सामर्थ्यों को अपव्यय से बचाकर उन्हें सत्प्रयोजनों में लगाया जा सके तो दुहरा लाभ होता है । बर्बादी की हानि और दुष्ट प्रयोजनों में लगने की प्रतिक्रिया विपत्ति से बचना संयमी दृष्टिकोण अपनाने से ही बन पड़ेगा। इस बचत को उद्देश्यपूर्ण कार्यों में लगाने पर सहज ही सत्परिणामों की सुखद सफलता मिलती चली जायेगी । सादा जीवन उच्च विचार के सूत्र में सर्वतोन्मुखी प्रगत्ति की समस्त सम्भावनाएँ झाँकती देखी जा सकती हैं । घड़े के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छेद में होकर धीरे-धीरे सारा पानी बह जाता है । पेंदे में छेद होने पर नाव डूबती है । 'छलनी में दुहे करम कौ रोवें' जैसी उक्तियों में बर्बादी के समस्त छिद्रों को बन्द करने का संकेत है । सम्पन्नता और प्रगति इस नीति को अपनाये बिना मिल ही नहीं सकती । अस्तु, संयम को व्यावहारिक जीवन की तपश्चर्या मानकर चला जाय । हममें से हर एक को संयमी बनने के लिए अपनी वर्तमान प्रगति से आगे के चरण बढ़ाने के लिए योजना बनानी चाहिए और उस मार्ग में आने वाले अवरोधों के हल खोजने चाहिए । स्मरण रखने योग्य बात एक ही है कि उसमें से सभी के बीच इस बात की स्वस्थ प्रतिस्पर्धा बनी रहे कि तपस्वी, संयम, श्रमनिष्ठा एवं कर्तव्यनिष्ठा की दौड़ में कौन किससे आगे निकलता है और कौन किसको इस दिशा में कितना सहयोग तथा प्रोत्साहन प्रदान करता है ।

सेवा धर्म को अपनाते हुए मनुष्य को परमार्थ परोपकार की दिशा में कुछ न कुछ करते रहने की बात हर किसी को सोचनी चाहिए । मनुष्य समाज का ऋणी है । सहकारिता और सहयोग के आधार पर ही प्रगति के पथ पर मनुष्य जाति इतनी आगे बढ़ सकने में असमर्थ हुई है । अस्तु, उस परम्परा को निभाते हुए असंख्यों सहयोग का ऋण भार चुकाने के लिए हमें विश्व को सुखी समुन्नत बनाने के लिए कुछ न कुछ प्रयत्न निरन्तर करने चाहिए । ईश्वर ने जीव को यह सुरदुर्लभ धरोहर दी ही इसलिए है कि वह विश्व उद्यान को अधिक सुरम्य सुसंस्कृत बनाने के लिए बढ़ चढ़कर योगदान प्रस्तुत करें । सेवा के बिना किसी को शान्ति और सन्तोष का आनन्द नहीं मिल सकता और न आत्मिक प्रगति सम्भव हो सकती है । गुण कर्म स्वभाव में उत्कृष्टता के समावेश का अभ्यास परमार्थ परायणता के सहारे ही बन पड़ता है । इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए श्रेष्ठ सत्कर्मों के लिए श्रमदान एवं साधना का सुयोग निरन्तर ढूँढ़ते रहना चाहिए । इस प्रयास के आधार पर ही हमारे व्यक्तित्वों में उत्कृष्टता का समावेश होगा और उसी उपाय से समाज को आदर्श बनाने, युग को बदलने का उद्देश्य पूरा होगा । जन-मन में जब सेवा की प्रवृत्ति उभरेगी-हर किसी को अपने श्रम एवं साधनों को नवनिर्माण के पुण्य प्रयोजनों में लाने की जब परम्परा चल पड़ेगी तो उसी अनुदान के सहारे युग परिवर्तन के लिए अभीष्ट प्रचार साधनों का सरंजाम जुटाया जा सकेगा ।

सेवा के अनेक मार्ग हैं । कुछ ऐसे हैं जिनसे सुविधा बढ़ती है । जैसे—धर्मशाला, जलाशय, अन्न-क्षेत्र आदि । कुछ ऐसे हैं जिनसे लोगों के शारीरिक कष्टों का निवारण होता है---जैसे अस्पताल, प्रसूति गृह आदि । इन सबसे ऊँचे स्तर की सेवा वे हैं जिनसे मनुष्य की पतनोन्मुख प्रवृत्ति को परिष्कृत करके उन्हें उत्कृष्टतावादी बनाने के लिए प्रयत्न किया जाता है । ऐसे कार्य ज्ञान-दान, ज्ञानयज्ञ, ब्रह्म दान ब्रह्म यज्ञ की श्रेणी में गिने जाते हैं । साधु ब्राह्मण और वानप्रस्थों की गतिविधियाँ सदा इस केन्द्र पर नियोजित रही हैं । युग निर्माण योजना का विचार क्रांति-प्रक्रिया ठीक उसी उद्देश्य के लिए है । एक घण्टा समय और दस पैसा नित्य ज्ञानयज्ञ के लिए मिलाते रहने का परमपुनीत व्रत हम लोग इसी सेवा धर्म के इसी श्रीगणेश के लिए लेते हैं । झोला पुस्तकालय, चल पुस्तकाल, दीवार-वाक्य लेखन धर्म प्राचर, तीर्थ यात्रा विचार गोष्ठी आदि के अनेकों कार्यक्रम इसी ज्ञानयज्ञ सेवा धर्म के अन्तर्गत आते हैं ।

आत्मिक प्रगति--आत्मिक कल्याण के इच्छुक हर व्यक्ति को यह चार सूत्री आत्म-निर्माण और समाज-निर्माण की कार्य पद्धित अपने दैनिक जीवन में नित्य व्यवहार में उतारनी चाहिए । उसे आहार निद्रा जैसे अनिवार्य कृत्य की तरह दिनचर्या में सम्मिलित रखना चाहिए । मात्रा भले ही न्यूनतम हो पर फिर उन्हें किसी न किसी रूप में दैनिक जीवन में उतारने का क्रम चल पड़े तो यह आशा की जा सकती है कि आज थोड़ा है तो कल बहुत ही बन पड़ेगा । जहाँ सुभारम्भ ही नहीं, संकल्प ही नहीं तो कभी भी कुछ बन पड़ने की आशा नहीं है । उत्कृष्टता तो प्रखर संकल्पों के बल पर ही गंगावतरण की भाँति जीवन के हिमालय पर अवतरित होती है । आत्मोत्कर्ष की गंगा इससे कम में अपनी जीवन भूमि पर अवतरित नहीं हो सकती ।

सूक्ष्म वातावरण का अनुकूलन सामूहिक उपासना द्वारा

प्रखर व्यक्तियों से वातावरण प्रभावित होता है यह सच है । ओजस्वी, मनस्वी और तपस्वी स्तर की प्रतिभायें अपनी प्रचण्ड ऊर्जा से वातावरण को गर्म करती हैं और गर्मि से में परिस्थितियों के प्रवाह में असाधारण मोड़ आते और परिवर्तन होते देखे गये हैं । इस तथ्य से भिन्न प्रतीत होने वाला एक और भी सत्य है कि वातावरण से व्यक्ति प्रभावित होता है । समय के प्रभाव में तिनकों और पत्तो की तरह अगणित व्यक्ति बहते चले जाते हैं । आँधी के साथ धूलि से लेकर छत, छप्परों तक न जाने क्या-क्या उड़ता चला जाता है । आँधी का रुख जिधर होता है उधर ही पेड़ों की डालियाँ और पौधों की कमरें झुकी दिखाई पड़ती हैं । इसे प्रवाह का दबाव भी कह सकते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

युग परिवर्तन के दोनों ही पक्ष हैं । तपस्वी व्यक्ति अपनी प्रचण्ड आत्म शक्ति से वातावरण को प्रभावित करते हैं । और अभीष्ठ परिवर्तन के लिए व्यापक अनुकूलता उत्पन्न करते हैं । दूसरा पक्ष यह है कि विशिष्ट उपायों के द्वारा वातावरण में गर्मी उत्पन्न की जाती है और उस व्यापक प्रखरता के दबाव से सब कुछ सहज ही बदता चला जाता है । इन दोनों पक्षों में कौन प्रधान है कौन गौण ? इस पर चर्चा करना व्यर्थ है । हमें यही मानकर चलना होगा कि दोनों ही तथ्य अपने-अपने स्थान पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और दोनों की ही उपयोगिता है । दोनों को परस्पर पूरक भी कह सकते हैं । युग सृजेताओं को इन दोनों के ही परिपोषण में संलग्न रहना है ।

युग परिवर्तन की ऊर्जा उत्पन्न करने वाले व्यक्तित्व का निर्माण तपश्चर्या के माध्यम से ही हो सकता है । भौतिक प्रतिभाओं के धनी भी कई प्रकार की सफलताएँ उत्पन्न करते देखे गए हैं । किन्तु वे सभी होते पदार्थ परक ही हैं । मनुष्य की शारीरिक, बौद्धिक क्षमताएँ तथा साधनों की सुविधा सम्पदाएँ कितने ही महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करती देखी गई हैं , पर वे सभी होती जागतिक ही हैं । धन के आधार पर विशालकाय भवन और कल-कारखाने खड़े किये जा सकते हैं । सुविधा, साधन बढ़ाने के कितने ही अन्य आधारों का सरंजाम जुटाया जा सकता है । समस्याओं का सामयिक समाधान करने वाले दबाब भी शक्ति सामर्थ्य के सहारे उत्पन्न किये जाते हैं । विज्ञान, अर्थ-साधन, बुद्धि-कौशल एवं परिश्रम के सहारे सुविधा सम्बर्द्धन की व्यवस्ता बनती आयी है और यह क्रम भविष्य में चलता ही रहने वाला है । इस दृष्टि से भौतिक साधनों और सामर्थ्यों का महत्त्व सदा ही स्वीकार किया जाता रहेगा । इतने पर भी यह यथार्थता अपने स्थान पर ही बनी रहेगी कि मनुष्य की अन्तःचेतना का स्पर्श करने विशेषतः उसे उत्कृष्टता की दिशा में अग्रसर करने की आवश्यकता साधन सामग्री के सहारे पूरी नहीं हो सकती । चेतना मात्र चेतन से ही प्रभावित होती है, उसे प्रशिक्षित और उल्लसित करने के लिए भावनात्मक आधार चाहिए । साधनों से तो मस्तिष्क को प्रभावित और शरीर को उत्तेजित भर किया जा सकात है ।

इतिहास साक्षी है कि आन्तरिक उत्कृष्टता के धनी व्यक्तियों ने अपनी अन्तः ऊर्जा के सहारे अपने समय के अगणित मनुष्यों को प्रभावित किया है । ईसा, बुद्ध, शंकराचार्य, विवेकानन्द, गाँधी जैसे महामानवों ने अपनी अन्तःकरणों को तोड़ा-मरोड़ा और ढाला, गलाया था । सामयिक विकृतियों को सुधारने में उन महान व्यक्तियों ने एक प्रकार से चमत्कार उपस्थित करके रख दिया था । एक अग्रगामी के पीछे अनुगामियों के जत्थे गतिशील होते रहे हैं । राणा प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह जैसी हस्तियाँ साधन हीन परिस्थितियों में भी साधन जुटाने में समर्थ होती रही हैं । यह व्यक्ति के अन्तराल में उभरने वाली आत्म शक्ति का वर्चस्व है । नवयुग के अवतरण में तपश्चर्या की ऐसी परम्परा को विकसित किया जाना है जिसके सहारे आत्मबल के धनी महामानवों के संख्या बढ़ सके । जनमानस को उत्कृत्ता अपनाने के लिए सहमत कर सकना केवल ऐसे ही लोगों का काम है । स्वार्थों की पूर्ति के लिए उत्तेजित और प्रशिक्षित कर सकना तो भौतिक प्रतिभाओं के लिए भी सरल है, किन्तु आदर्शवादिता को व्यवहार में उतारना और उसके लिए त्याता, बलिदान के लिए प्रबल प्रेरणा दे सकना तप-पूत आत्माओं के लिए ही सम्भव हो सकता है । युग विकृतियों से जूझने के लिए इन्हीं ऊर्जा–आयुधों की आवश्यकता पड़ेगी । अणु बमों के विस्फोट जैसी प्रचण्डता यदि सृजन प्रयोजनों के लिए अभीष्ट हो तो उसके लिए व्यक्तित्व को तपश्चर्या की शक्ति से सम्मन्न करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं । सृजन के लिए भागीरथों और ध्वंस के लिए दधीचियों की आवश्यकता पूरी करने का भौतिक विकल्प नहीं । इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए गायत्री उपासना के सामान्य उपचारों से लेकर उच्चस्तरीय तप साधनों तक का विशालकाय आधार खड़ा किया जाना जरूरी है ।

तथ्यों के जानने वाले जानते हैं कि प्रस्तुत शताब्दी में रचे गये स्वतन्त्रता संग्राम के लिए सूक्ष्म वातावरण से आवश्यक रुचि उत्पन्न करने के लिए योगी अरविन्द जैसे तपस्वियों की कितनी बड़ी अविज्ञात भूमिका रही है । असहयोग सत्याग्रह से लेकर 'करो और मरो' तक के संघर्षों के लिए अगणित लोगों की प्राण हथेली पर रख कर बलिदानियों की सेनाएँ ला खड़ी करना एक चमत्कार ही कहा जा सकता है । हजारों वर्ष से दबा कुचला जनमानस एकाकी इतने आवेश के साथ आत्म गौरव की रक्षा के लिए आतुर हो उठे और संकल्प को पूरा करने के लिए बहुत कुछ कर गुजरे तो उसे अद्‌भुत ही कहा जायेगा । एक ही समय में अनेकों महामानवों का उदय एक साथ हुआ हो ऐसे उदाहरण अन्यत्र ढूँढ़े नहीं मिलते । नेता और योद्धा तो एक साथ कितने हो सकते हैं, पर भारतमाता ने उन्हीं दिनों ढेरों महामानव उत्पन्न करके रख दिये । इस उत्पादन के पीछे किन्हीं जादूगरों की करामात काम करती देखी जा सकती है । निश्चय ही वह उत्पादन ज्ञात और अविज्ञात

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तप साधनाओं का ही प्रतिफल था । ऊर्जा उत्पादन के स्रोत इन दिनों शिथिल हो गये तो राष्ट्र निर्माण के कार्य में वैसी ही उत्परता का परिचय देने वाली विभूतियों को ढूँढ़ निकालना भी कठिन हो रहा है । तप शक्ति का लोक चेतना को ऊँचा उछालने में कितना बड़ा योगदान हो सकता है, उसे आज नहीं तो कल एक सुनिश्चित तथ्य की तरह समझ सकना हम सभी के लिए सम्भव हो जायेगा ।

यह व्यक्ति की आत्म ऊर्जा को विकसित करने और उसके द्वारा वातावरण को परिष्कृत करने का एक पक्ष हुआ । युग-परिवर्तन के लिए इन प्रयत्नों में तत्परतापूर्वक संलग्न रहने की आवश्यकता रहेगी । युग सृजेताओं को उस उपार्जन उत्पादन के लिए तत्परतापूर्वक प्रयत्नरत रहना होगा । दूसरा पक्ष है वातावरण को सामूहिक प्रयत्नों से प्रभावित करना और उसके तूफानी प्रवाह में सामान्य जनों को भी असामान्य भूमिका सम्पादन करने के लिए उत्तेजित करना । यह पक्ष सामूहिक प्रयत्नों से ही सम्पन्न हो सकता है । एकाकी व्यक्तिगत प्रयत्नों से तो कार्य सीमित क्षेत्र में, सीमित मात्रा में और सीमित समय तक के लिए ही सम्पन्न हो सकता है । व्यापक परिणाम में बड़े प्रयत्न चिरस्थायी उद्देश्य के लिए करने हों, तो उसके लिए ऐसे सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता होगी जो आध्यात्मिकता की उमंगों से सूक्ष्म जगत को भर सकने में समर्थ हो सके ।

प्राचीनकाल में यह प्रयोजन सप्त ऋषियों की सुगठित मण्डली द्वारा सम्पन्न होते रहे हैं । उनके शरीर तो अलग-अलग थे, पर रहते साथ-साथ थे । जो सोचते थे, जो योजना बनाते थे और जो करते थे उसमें सघन एकता रहती थी । वैसे ही जैसे कि सप्त धातुओं के सम्मिलन से काय-कलेवर का ढाँचा खड़ा होता और गतिशील रहता है । अभी वे आकाश में एक साथ एक मण्डली के रूप में चमकते और कदम से कदम मिलाकर साथ-साथ चलते हैं । दिवंगत होने पर भी उनकी एकता में कोई शिथिलता नहीं आयी है। सामूहिक सत्प्रयत्नों का मूल्य और महत्त्व वे भली प्रकार समझते हैं । इसमें किसी प्रकार का व्यतिरेक कभी भी आने देने के लिए वे कृत संकल्प हैं ।

देवताओं का सहंकार उनकी पूजा के लिए स्थापित की गई उपचार वेदियों को देखकर माना जा सकता है । सर्वतोभद्र आदि स्थापनाओं में सह निवास की उनकी मूल प्रवृत्ति का परिचय मिलता है । एक ही जल कलश में उन सबका आह्वान और प्रतिष्ठापन सम्पन्न हो जाता है । भगवती दुर्गा तो देवताओं की संघ शक्ति का प्रतीक परिचय ही मानी जाती हैं ।

देव प्रयोजनों में सामूहिकता का ही प्रावधान है । यज्ञ प्रक्रिया सनातन है । देवाराधन के समस्त तत्वों का उसमें समावेश है । प्रत्यक्ष है कि यज्ञ का समूचा क्रिया-कलाप सामूहिकता पर अविलम्बित है । ब्रह्म, आचार्य, ऊध्वर्यु, उद्गाता, यजमान ऋत्वक आदि पदाधिकारियों की मण्डली उसका सूत्र संचालन करती है । आहुति देने वाले, परिक्रमा करने वाले, श्रमदानी, संयोजक सहयोगी, व्यवस्थापक आदि जितना बड़ा समुदाय होगा, आयोजन की उतनी ही बड़ी सफलता मानी जाती है । राजनैतिक उद्देश्यों के लिए राजसूय यज्ञों और धार्मिक उद्देश्यों के लिए वाजपेयी यज्ञों की परम्परा रही है । अश्वमेध, राजसूय और गायत्री यज्ञ जैसे आयोजन वाजपेयी कहलाते रहे हैं । इनमें राजनेताओं एवं धर्मवेत्ताओं को अधिक संख्या में एकत्रित करके उनकी विचारणाओं एवं गतिविधियों में सामयिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों में एकता, एकरूपता लाने का प्रयोजन पूरा किया जाता रहा है । नैमिषारण्य आदि आरण्यकों में सूत शौनक कथा प्रसंगों जैसे विशालकाय ज्ञानसत्र सम्पन्न होते थे और उनमें हजारों ऋषि आत्माएँ श्रद्धापूर्वक भाग लेती थीं ।

कुम्भ जैसे महापर्वों के समय होने वाले विशालकाय धर्म सम्मेलनों का उद्देश्य भी एक ही था । श्रेष्ठ व्यक्तियों का सत्प्रयोजनों के लिए सघन, सहकार और सामूहिक प्रयत्न । कथा-कीर्तन, पर्व-संस्कार, सत्र-सत्संग, परिक्रमा, तीर्थयात्रा जैसे धर्मानुष्ठानों में अन्य उद्देश्यो के साथ-साथ एक अति महत्त्वपूर्ण प्रयोजन यह भी सम्मिलित है कि सदाशयता को सम्बद्ध होने और एक दिशा धारा में चल पड़ने की व्यवस्था बन सके ।

ऋषियों ने रावण कालीन अनाचार से जूझने के लिए सूक्ष्म शक्ति उत्पन्न करने के लिए सामूहिक आध्यात्म उपचार किया था । सब ने मिल-जुलकर अपना-अपना रक्त संचय किया और उसे एक घड़े में बन्द करके भूमि में गाढ़ दिया। उसी से सीता उत्पन्न हुई और जानकी भूमिका के फलस्वरूप तत्कालीन अनाचारों का निराकरण सम्भव हो सका ।

महत्त्व तो व्यक्तिगत उपासना का भी है और वैयक्तिक परिष्कार के लिए अलग-अलग एकान्त उपासना की भी आवश्यकता रहती ही है । किन्तु समष्टिगत व्यापक प्रयोजनों के लिए सम्मिलित उपासनाओं के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं । भौतिक उद्देश्यों की पूर्ति भौतिक साधनों से ही हो सकती है, किन्तु सूक्ष्म जगत को प्रभावित करने के लिए अध्यात्म पुरुषार्थ की आवश्यकता पड़ती है । वह एकाकी तो चलना ही चाहिए पर उसे सामूहिक स्तर का भी बनाया जा सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आये दिन देखा जाता है कि एकांकी और सम्मिलित शक्ति में कितना अन्तर पड़ता है । बुहारी की अलग-अलग सीकें चाहे हजारों लाखों ही क्यों न हों अलग रहकर किसी भवन को बुहार न सकेंगी । अलग-अलग रहकर हजारों लाखों धागे परिधान नहीं बन सकेंगे । सींकें सम्मिलित हों तो समर्थ झाड़ू बनेगी । धागे परस्पर गुथे तो कपड़ा बनेगा और तन ढकेगा । अलग दीपक तो सदा ही जलते हैं, जब वे योजनावद्ध रूप में नियत समय पर पंक्तिबद्ध प्रकाशित होते हैं, तो दीपावली का उत्सव दृष्टिगोचर होता है । अलग-अलग रहकर शूरवीर योद्धा भी कोई बड़ा प्रयोजन पूरा नहीं कर पाते । उनका सम्मिलित स्वरूप सेना का प्रदर्शन भी प्रभावशाली होता है और पराक्रम भी सफल होता है । सामूहिक और सुगठित उपासना के विशालकाय आयोजन वातावरण को बदलने और सुधारने का सुविस्तृत उद्देश्य पूरा करते हैं । युग परिवर्तन जैसा महान कार्य में सूक्ष्म जगत का परिशोधन--वातावरण अनुकूलन भी एक बड़ा तथ्य है इसके लिए युग शक्ति का उदय आवश्यक है । यह सामूहिक उपासना के सुनियोजित सुसंस्कारित साधना अनुष्ठानों से ही सम्भव हो सकता है ।

तत्वदर्शी ऋषियों ने उपासना विज्ञान के निर्धारण में इस तथ्य का भी ध्यान रखा है कि नियत समय, नियत क्रम से नियत विधि व्यवस्था और निर्धारित मनोभूमि की व्यवस्था में उपासना की जाती है और उससे सूक्ष्म जगत का उद्देश्य पूरा होता रहेगा और सूर्योदय और सूर्यास्त काल को ही संध्यावन्दन के लिए क्यों निर्धारित किया गया ? उसका एक ही उत्तर है कि इससे संयुक्ति शक्ति की अत्यन्त प्रभावशाली प्रचण्ड धारा उत्पन्न होती है ।

किसी भारी वजन को उठाने के लिए मजदूरों की बड़ी संख्या भी अलग-अलग स्तर की खींचतान करती रहे तो बौझ उठाना, पहिया घुमाना कठिन पड़ता है, पर जब एक साथ आवाज के साथ--एक प्रोत्साहन देकर, एक जोश उत्पन्न करके ''जोर लगाओ हेईशा'' जैसे नारे लगाते हुए सबका बल एक ही समय एक ही कार्य पर नियोजित कर दिया जाता है तो शक्ति का यह केन्द्रीयकरण चमत्कारी परिणाम दिखाता है और रुकी गाड़ी सहज ही आगे बढ़ जाती है ।

सामूहिक नियोजन के परिणाम पग-पग पर पारिलक्षित होते हैं । सैनिकों के कदम मिलाकर चलने से उत्पन्न ताल यों लगती तो साधारण-सी है, पर उसका वास्तविक प्रभाव तब दिखाई पड़ता है जब वे सैनिक किसी पुल पर कदम मिलाकर चलें । उस पदचाप की आवाज में संयुक्त ताल होने के कारण ध्वनि तरंगों की प्रचण्डता असाधारण बन पड़ती है । उससे पुलों के फट जाने का खतरा उत्पन्न हो जाता है ।

संयुक्त उपासना की प्रचण्ड प्रतिक्रिया का तथ्य तत्वदर्शियों ध्यान में सदा ही रहा है । विभिन्न धर्मों में प्रचलित उपासनाओं को सामूहिकता की श्रंखला में बाँधा गया है । मुसलमानों की नमाज के समय यही नियम है और उन्हें कड़ाई के साथ पालन करने पर जोर दिया गया है । अन्यान्य धर्मों में भी यही व्यवस्था अपने-अपने ढंग से मौजूद है ।

अपने यहाँ भी कभी सामूहिक उपासना की प्रक्रिया प्रचलित थी । सामूहिक कीर्तनों एवं पर्व-आयोजनों में जप-यज्ञ का सामूहिक विधान है । एक साथ एक स्थान पर एक उपासना प्रक्रिया अपनाने पर उसकी शक्ति कई गुनी अधिक बढ़ जाती है । इस तथ्य से पुरातन काल के ऋषि-मनीषी सुपरिचित थे । पर्वों-संस्कारों के सामूहिक आयोजनों में वही वैज्ञानिक तथ्य सन्निहित रहता था ।

कालान्तर में यह परम्परा विलुप्त हो गई । पर्वों की न तो अब उतनी गरिमा रही है और न ही उनका महत्त्व समझा जा रहा है । जहाँ-तहाँ उनके नाम पर लकीर पीटने जैसा दृश्य ही दिखायी पड़ता है । जो श्रद्धा उनके साथ जुड़ी रहनी चाहिए यत्किंचित ही उसका दर्शन हो पाता है ।

सामूहिकता की प्रचण्ड शक्ति को जाग्रति करने की दृष्टि से ही गायत्री उपासना की सामूहिक श्रंखला आरम्भ की गई है । गायत्री यज्ञों में भी यही दृष्टि रहती है, उसमें अधिक से अधिक व्यक्ति सम्मिलित होकर लाभ उठाएँ । प्रज्ञा सम्मेलनों में भी सामूहिक यज्ञों को ही महत्त्व दिया गया है । यों तो एकाकी यज्ञ एवं गायत्री उपासना असंख्यों व्यक्ति करते तथा अपनी श्रद्धा के अनुरूप लाभ उठाते हैं । उसके लिए न तो किसी प्रकार का बन्धन है और न ही उनकी महत्ता यहाँ कम की जा रही है । यहाँ तो सामूहिकता से मिलने वाले अतिरिक्त अनुदानों की चर्चा की जा रही है जिसका लाभ व्यक्ति विशेष तक सीमित रहकर असंख्यों को मिलता तथा निकटवर्ती परिस्थितियाँ भी उससे प्रभावित होती हैं ।

युग परिवर्तन के लिए गायत्री उपासना को सामूहिक रूप से नियत समय और नियत क्रम से करने की जो विधि-व्यवस्था एक नियत नियन्त्रण और समर्थ मार्गदर्शन में चल रही है । उसे युगशक्ति का प्रचण्ड उत्पादन समझा जा सकता है और उसके आधार पर सूक्ष्म जगत के अदृश्य वातावरण के अनुकूलन की अपेक्षा की जा सकती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी भावसम्पदा जगाएँ--श्रेय पाएँ

सृष्टि का भार विस्तार बहुत बड़ा है । इसका संतुलन बनाये रखना और नियन्ता की गौरव गरिमा के अनुरूप उसका स्वरूप बनाये रखना एक बहुत बड़ी बात है । इसी प्रयोजन में सहायक बनने, सहायता पहुँचाने हेतु ईश्वर ने अपनी सर्वश्रेष्ठ कलाकृति के रूप में मनुष्य को सृजा है । अन्यथा उसके लिए सभी प्राणी समान प्रिय होने के कारण समान रूप से अनुदान पाने के अधिकारी थे । मनुष्य को जो कुछ अधिक अतिरिक्त मिला है उसका प्रयोजन उसकी वैयक्तिक सुख-सुविधाओं का अभिवर्द्धन नहीं वरन् यह है कि वह इन अतिरिक्त साधनों के आधार पर उसका हाथ बँटाने में, सृष्टि संतुलन के सुखद पक्ष को भारी बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकें । विवेकवान मानव प्राणी को मात्र शरीर यात्रा के ताने-बाने बुनने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए । लोभ मोह के जाल-जंजाल में जकड़ा नहीं रहना चाहिए वरन् उन तथ्यों की ओर भी ध्यान देना चाहिए जो अतिरिक्त रूप में मिले हुए मानव-जीवन की विशेषताओं के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं । जीवन के स्वरूप, प्रयोजन लक्ष्य और उपयोग का चिन्तन न किया जाय, उसे अपेक्षा में गर्त डाले रहा जाय तो इस प्रमाद का परिणाम आज न सही अगले दिनों अनन्त पश्चात्ताप के रूप में ही भुगतना पड़ सकता है ।

आत्मिक प्रगति की कसौटी एक यही है कि मनुष्य आत्म चिन्तन, आत्म सुधार और आत्म विकास में कितना रस लेता है । यदि चिन्ह पूजा की तरह पूजा पत्री की थोड़ी सी लकीर भर पिटती है तो समझना चाहिए कि अभी बाल-बुद्धि, बाल-क्रीड़ा में ही निरत है । ईश्वर की सच्ची उपासना के साथ ईश्वर का प्रगाढ़ अनुग्रह भी अविछिन्न रूप से जुड़ा हुआ है, जो आत्म बोध के रूप मे ही हो सकता है ।

भौतिक सुविधाएँ मनुष्य अपनी सहज सुलभ क्षमता का सदुपयोग करके पाता रहता है, जो सत्परता और तत्परता नहीं बरतता वह रोता कलपता रहता है और दीन दयनीय स्थिति में पड़ा रहता है । उसमें ईश्वर का कुछ लेना देना नहीं । भौतिक उन्नति, अवनति एवं सुख-दुःख की अनुभूति में मनुष्य का स्तर ही प्रधान कारण है । ईश्वर ने हर किसी को कर्म करने और तदनुरूप फल पाने के लिए खुले रूप में छोड़ दिया है । हमें अपने सुव्यवस्थित जीवन क्रम का श्रेय पुण्य पुरुषार्थ को देना चाहिए और दुःख, दारिद्र के पीछे भी अपने पिछले क्रिया-कलापों का मूल्यांकन करना चाहिए। इस झंझट में ईश्वर को अकारण ही सम्मिलित नहीं करना चाहिए ।

हर विवेकवान् व्यक्ति को तथ्य अधिकाधिक गम्भीरतापूर्वक हृदयंगम करना चाहिए कि निर्वाह के अतिरिक्त उसे जो कुछ उच्चस्तरीय अनुदान मिले हैं वे मौज मजा करने के लिए नहीं, बेटे पोतों के गुलछर्रे उड़ाने के लिए दौलत जमा करने के लिए नहीं--वरन् ईश्वरीय प्रयोजनों की की पूर्ति के लिए हैं । कोई अमीर, कोई गरीब, कोई यज्ञ, कोई बिज्ञ बनकर रहे और इस दुनिया में विषमता विच्छृंखलता फैले यह अव्यवस्था ईश्वर को अभीष्ट नहीं, वह अपने सभी मानव पुत्रों को लगभग एक ही स्तर का निर्वाह करते हुए समता को अपना कर चलते हुए देखना चाहता है । दूसरों की तुलना में अधिक विलासी और संग्रही होकर जीना स्पष्टतः जीवनोद्देश्य से विपरीत मार्ग पर चलना है । इस मनोवृत्ति के व्यक्ति की विडम्बना रचकर भी ईश्वरीय अनुग्रह का एक कण प्राप्त कर सकेंगे, इसमें सन्देह ही समझना चाहिए ।

विभूतिवानों को अपने अतिरिक्त सौभाग्य पर सन्तोष और गर्व अनुभव करना चाहिए उन्हें दूसरों की अपेक्षा अधिक उच्च पद और अधिक भारी उत्तरदायित्व सौंपा गया है, सेना में सिपाही बहुत होते हैं पर नायक, कप्तान, जनरल आदि के पद तो चुने और छँटे हुए व्यक्तियों को ही दिये जाते हैं । जिन्हें पेट और परिवार पालने से अधिक आगे बढ़ने की उत्कण्ठा एवं योग्यता प्राप्त हैं । उन्हें मुक्त कण्ठ से ईश्वर का विशिष्ट कृपा पात्र एवं प्रतिनिधि समझा जाना चाहिए । इस कृपा को सार्थक बनाने के लिए उस स्तर के व्यक्तियों को लोभ और मोह का अन्धकार चीरते हुए आगे बढ़ना चाहिए और अवरोधों को कुचलते हुए साहसपूर्वक उस मार्ग पर चलना चाहिए, जिस पर सच्चे भगवद्भक्त अनादिकाल से चलते रहे हैं ।

विभूतिवानों की गणना में भावनाशील प्रतिभाशाली विद्या-बुद्धि, सम्पन्न, कलाकार, लोकनायक, विज्ञानी, राजनेता, धनीवानी, प्रभृति वर्ग के लोगों को गिना जाता है । जिन्हें अपने में इन विभूतियों का जितना अंश दृष्टिगोचर हो उन्हें अपने को ईश्वर का उतना ही विश्वास पात्र और उच्च पद पर नियुक्त, प्रिय पुत्र मानना चाहिए कि वह इस धरोहर का श्रेष्ठतम् उपयोग करने के प्रयत्न में कुछ कोर कसर न छोड़े ।

सबसे बड़ा सबसे प्रथम विभूतिवान व्यक्ति वह है जिसके अन्तःकरण में उत्कृष्ट जीवन जीने और आदर्शवादी गतिविधियाँ अपनाने के लिए निरन्तर उत्साह उमड़ता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसा साहस होता रहता है जो लोभ, मोह के भव बन्धनों के रोके रुक ही न सके । व्यक्तिगत वासना तृष्णा के जाल जंजाल में ही आमतौर से लोग परिवार वालों की मनोकामनाएँ पूरी करते रहने में जुटे रहते हैं । इस चक्रव्यूह को बेध सकना उन्हीं के लिए सम्भव है जिनके भीतर आत्मबोध का आलोक प्रस्फुटित होने लगा । भावनाशीलता व्यक्ति ही ऐसा साहसपूर्ण निर्णय करते हैं कि निर्वाह मात्र के साधनों में सन्तोष करें और परिवार को उतना ही सम्पन्न बनाने तक अपने कर्तव्य की इतिश्री मानें, जितने में कि अपने समाज के औसत नागरिक को जीवन निर्वाह करना पड़ता है । भावनाशील की दिव्यभूति की सार्थकता के लिए इस प्रकार साहसिक निर्णय नितान्त आवश्यक है, अन्यथा परमार्थ के लम्बे-चौड़े सपने मात्र कल्पना बनकर ही रह जायेंगे ।

वासना और तृष्णा--लोभ और मोह के पिशाचों का मुँह इतना सर्वभक्षी है कि मनुष्य अपना समय, श्रम, बुद्धि, बल, मनोबल ही नहीं--दीन, ईमान, लोक-परलोक होम देने पर भी इन्हें तृप्त नहीं कर सकता । इनका आकर्षण भी इतना प्रचण्ड है कि जो इनसे लिपटा उसे समय का एक क्षण एवं सम्पत्ति का एक कण भी किसी अन्य कार्य के लिए लगा सकना सम्भव नहीं होता । सत्कर्मों के लिए फुरसत न मिलने, समस्याओं के उलझे रहने और आर्थिक तंगी का बहाना करने रोना रोने के अतिरिक्त और कुछ करते धरते बनता ही नहीं । यदि निर्वाह मात्र से सन्तुष्ट रहने और परिवार के प्रति उचित कर्तव्य भर निभाने की सीमा में सीमित रहा जाय तो सामान्य स्तर का व्यक्ति भी जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त कर सकता है और इतना कुछ कर सकता है कि उस अनुकरणीय आदर्शवादिता की मुक्त कण्ठा से सराहना की जा सके ।

भावनाओं को यदि उत्कर्ष की दिशा में बढ़ चलने का अवसर मिले तो उसके लिए एक दिशा है वह है-- अपने चिन्तन में उत्कृष्टता और व्यवहार में आदर्शवादिता का सघन समावेश करने की । चिन्तन की उत्कृष्टता की निरन्तर प्रेरणा यह रहती है, कि उसका व्यक्तित्व आदर्श उज्ज्वल और अनुकरणीय हो । ऐसा व्यक्ति संयम, सदाचार, कर्तव्य का पूरा-पूरा ध्यान रखता है और अपने पुरुषार्थ को प्रखर बनाकर मानवी क्षमता के सदुपयोग से सम्भव हो सकने वाली प्रगति को सर्वसाधारणा के सम्मुख प्रमाण रूप में प्रस्तुत करता है । उत्कृष्ट चिन्तन हर घड़ी इसी प्रयास में लगा रहता है कि किस प्रकार गुण, कर्म, स्वभाव का स्तर श्रेष्ठतम बनाया जाय, पुरुषार्थ को किस प्रकार प्रखर और व्यवस्थित किया जाय । आत्म निर्माण में प्रचण्ड तत्परता को देखकर ही यह प्रमाण प्राप्त होता है कि चिन्तन में वस्तुतः उत्कृष्टता का कितना अंश घुल मिल सका है । भावना का अदृश्य पक्ष यही है ।

भावनात्मक उत्कर्ष का दृश्य पक्ष है-- आदर्शवादी क्रियाकलाप । लोक-मंगल, जन-कल्याण, समाजोत्थान, सेवा साधना एवं परमार्थ प्रयोजन की गतिविधियों में इस तथ्य को गतिशील रहता देखा जा सकता है । भावनाशील व्यक्ति स्वार्थ भरी संकीर्णता की सड़न में कृमि-कीटकों की तरह सन्तुष्ट रह ही नहीं सकता । उसे उन्मुक्त आकाश में उड़ने वाले पक्षी की तरह अपना हर क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत दीखता है । विश्व मानव की समस्याएँ होती हैं । विश्व-कल्याण में उसे अपना निज का स्वार्थ दिखायी पड़ता है । अस्तु, निजी महत्त्वाकांक्षाओं की ओर से मुँह मोड़ना पड़ता है पुत्रेष्णा, वित्तेषणा, लोकेषणा की त्रिविध स्वार्थपरताएँ उसे दुर्बुद्धिजन्य दुर्गन्ध मात्र प्रतीत होती हैं ।

भावनाशील व्यक्ति की कुछ न कुछ उपलब्धियाँ विश्व कल्याण के लिए समर्पित होती ही रहती हैं । ऐसे व्यक्ति सोचते हैं, यदि कुटुम्ब में एक व्यक्ति और अधिक होता तो उसके भोजन वस्त्र का प्रबन्ध करना ही पड़ता । परमार्थ को घर का एक अतिरिक्त सदस्य मान लेने पर उसके ऊपर होने वाला खर्चा अखरता नहीं वरन् अनिवार्य आवश्यकताओं से जुड़ जाता है । फिर न उसके लिए कटौती करनी पड़ती है और न हिचक, कंजूसी की जरूरत रहती है, तो उनका खर्च अनिवार्य और स्वाभाविक प्रतीत होने लगता है । यदि परमार्थ प्रयोजनों को भी जीवन क्रम में सम्मिलित कर लिया जाय तो वह न तो भारी प्रतीत होता है और न असह्य । वरन् सहज सरल गति से निर्धन स्थिति में भी यथा क्रम चलता ही रहता है ।

चिन्तन में उत्कृष्टता और आचरण में आदर्शवादिता का प्रगाढ़ समावेश कर सकने में समर्थ मनस्विता और तपस्विता की आवश्यकता पड़ती है । उसे अपनाने का जो शौर्य साहस प्रदर्शित कर सके उसे भावनाशील कहा जायेगा । दूसरे शब्दों में सदुद्देश्य के लिए दुस्साहसपूर्ण संकल्प करने वाले एवं उनके परिपालन में बड़े से बड़ा त्याग बलिदान करने के सुदृढ़ निश्चय को भावनाशील कह सकते हैं । सद्भाव सम्पन्न व्यक्ति उच्चस्तर पर सोचते हैं और उच्च आचरण पर तत्परतापूर्वक कटिबद्ध अड़े-खड़े रहते दीखते हैं । यदि ऐसा न होता तो भावना के खदान में से ही नर रत्न निकलने का तथ्य कैसे मूर्तिमान रहता ? ऐतिहासिक महापुरुषों में से प्रत्येक अनिवार्य रूप से भावनाशील रहा है। उसके अन्तःकरण में उच्चस्तरीय आकांक्षा कोलाहल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करती रहती है । क्रमशः वे इतनी प्रखर हो जाती हैं कि उन्हें तृप्त किये बिना चैन नहीं मिलता ।

युग परिवर्तन के महान प्रयोजन की पूर्ति के लिए जिस पूँजी की सबसे प्रथम सबसे अधिक मात्रा में आवश्यकता है । वह 'भावना' ही है । इसका जागरण, अभिवर्धन किये बिना और किसी युग धर्म की माँग को पूरा नहीं किया जा सकता । यों युग निर्माण परिवार की श्रृंखला में ऐसी ही कड़ियाँ जोड़ी गयी हैं जिनमें जन्म जन्मांतरों से संचित भाव सम्पदा का समिचुत अंश विद्यमान हैं । पत्रिकाओं के ग्राहक अथवा किसी संगठन के सदस्य मात्र वे लोग नहीं हैं जो आज नव निर्माण के पुण्य प्रयोजनों में लोकनायक की भूमिका सम्पन्न करने के लिए अग्रसर हो रहे हैं । यह परिवार अनायास ही इकट्ठा नहीं हो गया है, वरन् किसी दिव्यदर्शी के जन सागर में से अपनी पैनी दृष्टि से ढूँढ़-ढूँढ़कर इन मणि मुक्तकों को एकत्रित किया गया है और बहुमूल्य हार के रूप में इसे संजोया पिरोया गया है । युग-निर्माण योजना के निर्माण का तात्विक स्वरूप यही है । जिसके पीछे कुछ ठोस आधार न हो उसे ठोक पीटकर कुछ अधिक नहीं बनाया बढ़ाया जा सकता । बालू के महल कहाँ खड़े होते हैं । लकड़ी के शस्त्र कहाँ काम देते हैं, खोटे सिक्कों से व्यापार कहाँ होता है ? जिनमें महानता के रूप में परिणत होने वाली भावना के तत्व विद्यमान है, उन्हीं का संकलन संगठन युग-निर्माण परिवार के रूप में हुआ है ।

बीजाकुंर के रूप में जो भाव सम्पदा प्रज्ञा परिवार के सदस्यों में विद्यमान है उसे उभारना और विकसित परिपक्व किया जाना आज की महती आवश्यकता है । इस पंक्तियों द्वारा उसी का आह्वान उद्‌बोधन किया जा रहा है । अहंता और ममता के परिपोषण तक ही जिनकी गतिविधियाँ सीमित हैं, जिन्हें धन, भोग और अहंता की पूर्ति के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं ऐसे धरती के भार लोगों की गणना अंधकार में भटकने वाले असुरों में ही होगी, भले ही वे कितने ही वैभव सम्पन्न क्यों न हों ।

अपने परिवार के हर परिजन को अपनी भाव सम्पदा का अवलोकन करना चाहिए, उसे उठाना और उबारना चाहिए । चिन्तन में उत्कृष्टता का और व्यवहार में आदर्शवादिता का समावेश होना चाहिए । व्यावहारिक अध्यात्मवाद यही है ।

भावना की शक्ति जितनी उभरेगी, परिपक्व होगी उतनी ही प्रतिभा निखरती चली जायेगी । प्रतिभाशाली व्यक्तियों की प्रखरता सभी को आकर्षित, प्रभावित और मुग्ध करती है । हर कोई प्रतिभाशाली बनना चाहता है, क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों की सफलताएँ बहुत करके प्रतिभावानों को ही मिलती हैं । वे जिस कार्य को हाथ में लेते हैं उसे समग्र सजगता के साथ पूरा करते हैं । फलस्वरूप बड़ी खूबसूरती के साथ सफल होते हैं । आधे-अधूरे मन से उपेक्षा और अन्यमनस्कता के साथ किये गये काम अस्त व्यस्त, असंबद्ध होते हैं । अस्तु उनका असफल अपूर्ण अथवा कुरूप होना भी स्वाभाविक ही है । ऐसे लोगों पर उदासी एवं निराशा छाई रहती है । दूसरे लोग उनकी भर्त्सना उपेक्षा करते हैं, तिरस्कार उपहास का व्यवहार करते हैं । इन्हीं सब बातों का समिश्रण असफल जीवन क्रम के रूप में दृष्टिगोचर होता है । प्रतिभाशाली इन अवमाननाओं से बचे रहते हैं, क्योंकि उसकी प्रखर भावशीलता क्रमशः सजग कर्मठता के रूप में बदलती चली जाती है, फलतः व्यक्तित्व में सर्वतोन्मुखी निखार उत्पन्न होता है, प्रतिभा इसी भाव परिपक्वता का नाम है।

कहा जाता रहा है कि मानव जाति के भविष्य निर्माण का यह अभियान विभूतियों की साधन सामग्री पर्याप्त मात्रा में जुटाने से ही सम्भव होगा । विभूतियों में भावना और प्रतिभा दो का महत्त्व ८० प्रतिशत है । शेष विद्या, कला, सम्पत्ति की विभूतियाँ तो बहिरंग भावी मानी जाती हैं । उन सबका सम्मिलित मूल्य २० प्रतिशत है । संसार में जो कुछ महत्त्वपूर्ण होता रहा है उन घटनाक्रमों के पीछे भावना की महत्ता सर्वोपरि रही है । इतिहास की महानता उपलब्धियों का श्रेय बहुत करके भाव उत्कृष्टता को ही दिया जाना चाहिए । भावना ही जब मनोयोग और पुरुषार्थ के साथ जुड़कर प्रखर सक्रिय होती है तो उसी को प्रतिभा कहा जाता है । प्रतिभा जन्मजात भी हो सकती है । पर जहाँ उसकी न्यूनता हो वहाँ मनस्वी भाव सम्पदा बोध के द्वारा उसकी पूर्ति सहज ही की जा सकती है ।

आस्था की ज्योति बुझने न पाये

धर्म की आस्था का परिष्कृत दृष्टिकोण अपनाने और धार्मिक जीवन जीने से परलोक में सद्‌गति प्राप्त होती है और आत्मा को शान्ति मिलती है । इतनी ही नहीं वरन् व्यावहारिक जीवन में ही उसकी बड़ी उपयोगिता है, व्यक्ति को सुखी और समाज को समुन्नत बनाने में आध्यात्म दर्शन की कम उपयोगिता नहीं है ।

कर्मफल, संयम, सदाचार, परोपकार, प्रोम, उदारता, कर्तव्यपालन जैसे अनेक विश्वासों का सौर मण्डल धर्मरूपी सूर्य के इर्द-गिर्द घूमता है । आध्यात्म सर्वथा एकाकी नहीं है । आस्तिकता का मतलब मात्र ईश्वर की पूजा-पत्री कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देना ही नहीं, वरन् यह भी है कि ईश्वर की इच्छा और विधि व्यवस्था को समझें और तदनुकूल अपने जीवन की रीतिनीति ढालने के लिए प्रयत्न करें । स्वर्ग, नरक और परलोक की मान्यता मानवी अनतःकरण को देर-सवेर में कर्मफल मिलने का विश्वास दिलाती है । इससे आस्थावान व्यक्ति पुण्य का श्रेय या पाप का दण्ड तत्काल न मिलने पर भी उस ओर से निश्चिन्त नहीं हो जाता, वरन् यह विश्वास रखे रहता है कि आज नहीं तो कल यहाँ नहीं तो वहाँ भले-बुरे कर्मों का फल मिलकर ही रहेगा । इस आस्था को बनाये रहना मनुष्य के चिन्तन और कर्तृव्य अवांछनीयता न बढ़ने देने के लिए एक अति प्रभावशाली अंकुश है । आध्यात्म की मान्यता व्यक्ति को सदाचरण और आदर्शवादी कर्तव्यपालन के लिए घाटा उठाने तक के लिए प्रोत्साहित करती है । यही वे प्रवृत्तियाँ हैं जिन पर व्यक्ति का स्तर और समाज का गठन सुव्यवस्थित और समुन्नत रखा जा सकता है ।

उत्कृष्ट आदर्शों के प्रति यदि आस्थाएँ लड़खड़ाने लगें तो हर व्यक्ति स्वार्थपरायण होने की दिशा में अधिकाधिक तेजी के साथ बढ़ेगा । फलतः पारस्परिक स्नेह सद्भाव की, सहयोग और उदारता की उन सभी प्रवृत्तियों का अंत हो जायेगा जिनमें मनुष्य को कुछ त्याग करना पड़ता है और कष्ट उठाना पड़ता है ।

समाज का ऋण हमारे ऊपर है, उसे चुकाने के लिए हमें समाज सेवा के अनुदान प्रस्तुत करने चाहिए । माता-पिता तथा गुरुजनों की सहायता से हम पले, बढ़े हुए तथा स्वावलम्बी बने हैं, इस पितृ ऋण को चुकाने के लिए हमें तत्पर रहना चाहिए । पति-पत्नी में से किसी के अरुचिकर हो जाने पर भी उसकी पिछली सद्भावना के लिए ऋणी रहना तथा निभाने को तत्पर रहना चाहिए । सब में अपनी जैसा आत्मा समझकर न्याय और ईमानदारी पर दृढ़ रहना चाहिए । ये शिक्षाएँ धर्म ही दे सकता है । स्वार्थ नियन्त्रण और परमार्थ उत्साह की प्रेरणा आध्यात्म आदर्शों को अपनाने से ही मिल सकती है ।

यदि इन आधारों को अस्त-व्यस्त कर दिया जाय तो मनुष्य जाति को ऐसी क्षति उठानी पड़ेगी जिसकी कभी भी पूर्ति न हो सके । आस्थाएँ बड़ी कठिनाई से बनती और जमती हैं । उन्हें उखाड़ देना सरल है । पेड़ को छायादार होने की लम्बी साधना करनी पड़ती है पर यदि उखाड़ना हो तो कुछ घण्टे ही काँट-छाँट ही पर्याप्त है । धार्मिकता को कल्याणकारी वृक्ष बोने, उगाने और बढ़ाने में लाखों वर्ष लगे हैं । अनास्था का प्रतिपादन करके उसे उखाड़ देना कुछ बहुत कठिन नहीं है । पर यह ध्यान रखना चाहिए कि उसे दुबारा लगाया जाना सम्भव न होगा । विश्वासी को अविश्वासी बनाने के उपरान्त फिर दुबारा उसी स्थान पर लौटाकर ले आना कठिन है ।

तर्क एक अन्धा तीर है । उसे किसी भी दिशा में छोड़ा जा सकता है । कई वकील लोग अपने मुवक्किल के पक्ष में धुआँधार दलील देते और बहस करते हैं । उनकी तर्कशक्ति प्रखर होती है । वस्तुस्थिति जानने पर वे जोर नहीं देते । वादी या प्रतिवादी जो भी सामने आ जाय तो उसी के पक्ष में तर्क दलील या प्रमाण उपस्थिति करते हैं । मस्तिष्क ऐसा ही बेपैंदी का लोटा है । वह रुचि के पीछे चलता है । जो भी बात पसन्द हो उसी के समर्थन में बहुत कुछ कहा जा सकता है । दलील भी दी जा सकती है और प्रमाण उदाहरण भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं । धर्म एवं आध्यात्म के विरुद्ध बहुत कुछ कह सकना कुछ बहुत कठिन है । तेज दिमाग के लिए यह बायें हाथ का खेल है ।

देखना यह है कि क्या अनास्था उत्पन्न करने से व्यक्ति समाज को कुछ लाभ मिलेगा ? इस दिशा में जितना अधिक चिन्तन किया जाय उतना ही स्पष्ट होता जायेगा कि उसमें इसकी तुलना में हानि अधिक है ।

आस्तिकता मात्र पूजा-पाठ तक सीमित नहीं है उसकी शाखा, पल्लव सदाचार कर्तव्यपालन और उदार व्यवहार तक फैले हुए हैं, जड़ के उखाड़ने से वह सभी उखड़ जायेंगे, क्योंकि भौतिकवादी दर्शन में स्वार्थ साधन ही मुख्य है । मांसाहार के पक्ष में यही दलील है कि स्वादिष्ट भोजन के अपने लाभ के लिए दूसरों को प्राण देने का भयानक कष्ट सहना पड़ता है, तो उसकी हम चिन्ता क्यों करें ? स्वार्थ प्रधान हो गया तो दूसरों की सुविधा-असुविधा अथवा न्याय-अन्याय की बात क्यों सोची जायेगी ?

अनास्था का जितना विस्तार हो रहा है, उसी अनुपात से आदर्शवादिता का सारा ढाँचा लड़खड़ाने लगा है । जब ईश्वर नहीं, धर्म नहीं, परलोक नहीं, कर्मफल नहीं, आत्मा नहीं तो फिर कर्तव्यपालन भी नहीं । स्वार्थों पर नियंत्रण भी नहीं, आदर्शों के झमेले में पड़कर स्वयं असुविधा उठाने की भी आवश्यकता नहीं । यह नहीं व्यक्ति की पशुता को बढ़ायेगी और समाज के मूलभूत आधार-उधार व्यवहार का अन्त करेगी । जैसे-तैसे अनास्था परिव्याप्त और प्रबल होती जायेगी वैसे-वैसे उच्छृंखल आचरण सिद्धान्तहीन जीवन और अपराधी प्रवृत्तियों के उद्भव को आँधी, तूफान की तरह बढ़ता हुआ देखा जा सकेगा । ऐसा समाज किसके लिए ? कितना किस प्रकार सुविधाजनक होगा ? उसकी बहुत कुछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

झाँकी इन दिनों की परिस्थितियों में भी जहाँ-तहाँ की जा सकती है ।

इंग्लैण्ड के प्रख्यात पत्र 'स्पेक्टेटर' के कुछ समय पूर्व एक लेख उस देश दयनीय दशा की विवेचना के सन्दर्भ में छपा था संतान की ओर से उपेक्षित इन असमर्थ व्यक्तियों को उस सन्तान का रत्ती भर भी सहयोग नहीं मिलता, जिनके लालन-पालन और स्वावलम्बन में उन्होंने भावनापूर्वक उदार सेवा की थी । लेखक ने इन दुःखियों की मनोदशा का चित्रण करते हुए लिखा है--इस देश के अधिकांश वृद्धजन अपनी असमर्थ स्थिति में सन्तान की रत्ती भर भी सेवा सहानुभूति नहीं हो पाते तो वह करुण विलाप करते हैं कि हे भगवान किसी तरह मौत आ जाये तो चैन मिले । पर उनकी पुकार कोई भी नहीं सुनता । दुखियारे वृद्धों का यह वर्ग द्रुतगति से बढ़ता ही जाता है ।

कोरोनर (लन्दन) के डॉक्टर मिलन को पिछले दिनों ७०० दुर्घटनाग्रस्त मृत शवों का विश्लेषण करना पड़ा उनमें एक तिहाई आत्महत्या के कारण मरे थे । इन आत्महत्या वालों में अधिकांश ऐसे बूढ़े लोग थे, जिन्हें बिना किसी सहायता के जीवनयापन भारी पड़ रहा था और उन्होंने इस तरह घिस-घिसकर मरने की अपेक्षा नींद की अधिक गोलियाँ खाकर मरना अधिक अच्छा समझा । इन आत्महत्या करने वालों में दो-चार को छोड़कर सभी सन्तान वाले थे । किन्तु वयस्क होने के बाद सन्तान ने उनकी ओर मुँह मोड़कर भी नहीं देखा था ।

वृद्ध अभिभावकों ही यह दुर्गति हो रही हो सो बात नहीं । पाश्चात्य जगत में बच्चों की भी एक विपत्ति में गणना होने लगी है । माँ-बाप उन्हें अभिशाप मानते हैं और बच्चे सहमे, सिसके किसी अनाथालय की तरह ही अपनी अल्पवयस्कता की अवधि पूरी करते हैं । पति-पत्नी मिलन जब विशुद्ध रूप से कामुक प्रयोजन के लिए ही रहे तो उसी की प्रधानता रहनी चाहिए । बच्चे जब पेट में आते हैं या जन्म लेते हैं तो अपनी माँ को पिताजी की इच्छा पूर्ति में इतने उपयुक्त नहीं रहने देते । यह पिता के लिए भी क्रोध की बात है और और माता के लिए भी । प्रजनन निरोध कृत्य वहाँ का अति लोकप्रिय प्रचलन है फिर भी कभी-कभी बच्चों की विपत्ति सिर पर आ टपकती है । उन जन्मे हुए बच्चों से कब, किस प्रकार पीछा छूटे यह चिन्ता अभिभावकों को रहती है ।

सौन्दर्य को हानि न पहुँचे इसलिए बच्चों को माता का नहीं बोतल का दूध पीना पड़ता है । अधिकांश बच्चे पालन गृह में पलते हैं । पैसा दे दिया जंजाल से छुट्टी । घूमने-फिरने हँसने खेलने की सुविधा । जैसा ही बच्चा कमाऊ हुआ कि माता-पिता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता । पशु-पक्षियों में भी तो यही प्रथा है । उड़ने चरने लायक न हो तभी तक माता-पिता उनकी सहायता करते हैं। बाप तो उस स्थिति में ध्यान नहीं देता । प्रकृति ने बच्चों की जीवन रक्षा के लिए यदि माता के हृदय में स्वाभाविक ममता उत्पन्न न की होती तो अनास्थावान माताएँ भी बच्चों की साज-सम्भाल करने में रुचि न लेतीं और माता की निगाह बदलने पर बाप तो उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता ।

अनास्थावान मनोभूमि वाले माता-पिता के दृष्टिकोण का बच्चों के प्रति बेरुखा हो जाना स्वाभाविक है । ऐसी दशा में यदि वे बुढ़ापे में अभिभावकों की कोई सहायता नहीं करते और उन्हें कुत्ते की मौत मरने के लिए छोड़ देते हैं तो उन्हें बहुत कुछ दोष भी नहीं दिया जा सकता । आखिर वे भी तो बूढ़े होंगे और अपने बच्चों से भी तो कोई आशा नहीं है । वे स्वयं भी तो इस तरह का नीरस बुढ़ापा बिताने की बात सोचते हैं । ऐसी दशा में मौत के दिन गिनने वाले बूढ़े माता-पिता की वे उपेक्षा अवज्ञा करते हैं तो उन्हें दोष भी कैसे दिया जाय ।

अभिभावकों और बच्चों के बीच आदर्शहीनता ने दीवार खड़ी कर दी है । उससे भी बड़ी बिडम्बना पति-पत्नी के बीच खड़ी है । वेश्या जिस तरह शरीर सौन्दर्य से लेकर वाक्जाल के रस्सों से भड़ुए को बाँधे रहने की चाल चलती रहती है । वह नीति औसत पत्नी को अपने पति के साथ बरतनी पड़ती है । इस तथ्य से वह परिचित है । कामुकता की तृप्ति ही विवाह का उद्देश्य है । जब तक वह प्रयोजन खूबसूरती से सधेगा तभी तक विवाह चलेगा । आर्थिक सुविधा का दूसरा पहलू भी विवाह के साथ जुड़ गया है । इन स्वार्थों की शतरंज ही दाम्पत्य जीवन है । जो बाजी हार जाता है उसे भागना पड़ता है । एक घर में रहते हुए भी, एक बिस्तर पर सोते हुए भी दोनों एक दूसरे को आस्तीन का साँप समझते रहते हैं और बारीकी से यह पता लगा लेते हैं कि साथी के द्वारा उसके शरीर में डंक चुभोये जाने में कितनी देर है । प्रेम पत्र और लम्बे-चौड़े वायदे तथा हाव-भावों का आकर्षण वहाँ एक ''टेकनिक'' मात्र रह गये हैं । उस विडम्बना की निस्सारता समझते हुए भी बन्धन में बाँधने से पूर्व जो दौर चलता था, विवाह के बाद भी चलाते रहना पड़ता है । ताकि साथी को भ्रम में रखा जा सके । साथ ही दूसरा घोंसला बनाने, दूसरी चिड़िया फँसाने का भी अपना-अपना ताना-बाना बुनते रहते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन दाम्पत्य जीवनों का जो ढाँचा खड़ा रहता है और जिस प्रकार अन्त होता है उससे निराशा और दुख की हाथ लगता है । बाहर आदमी कैसा तड़क-भड़क बनाये फिरे, पर पारिवारिक जीवन में भी विश्वास, निष्ठा आत्मीयता का अभाव रहने पर मनुष्य अपने आपको सर्वथा एकाकी और असहाय अनुभव करता रहता है । न कोई उसका, न वह किसी का, वास्तविकता सामने रहती है । छल और दिखावे का ताना-बाना यदि स्त्री बच्चों के साथ भी बुनते रहना पड़े तो मन कितना भारी, कितना उदास और कितना क्षुब्ध और कितना उखड़ा-उखड़ा रहता है, इसकी कल्पना करने में भी कष्ट होता है । फिर जिन लोगों का सारी जीवन इसी वातावरण से भरे पारिवारिक जीवन में बिताना पड़ता है उनकी क्या गति होगी । उसे अनास्थावान भौतिकवादी पश्चिम के देशों में जाकर प्रत्यक्ष ही देखना चाहिए ।

बाहरी ठाट-बाट, शौक-मौज के मन बहलाव से क्या बनता है, आन्तरिक निराशा हर घड़ी खाती रहती है । नसे पीकर गम कम करते रहते हैं और आन्तरिक उद्वेगों की आग में मरघट की चिता बनकर जलते रहते हैं ।

इंग्लैण्ड के डॉक्टरी पत्र 'ब्रिटिश मैडीकल जनरल' में उस देश में बढ़ते हुए पागलपन का विस्तृत विवरण छपा है। उसमें लिखा है, इस देश में पागलों, अर्द्ध-विक्षिप्तों और सनकियों की संख्या तेजी से बढ़ रही है । अस्पताल में जितने रोगी भरती होते हैं, उनमें से प्रायः आधे मानसिक रोगों से पीड़ित होते हैं । गत पांच वर्षों में यह संख्या प्रायः दस गुनी हो गई है ।

नींद की गोलियाँ खाये बिना किन्हीं विरले को ही सोना नसीब होता है । मानसिक तनाव से उत्पन्न अनिद्रा वहाँ का एक सभ्य रोग है । शराब पिये बिना चैन नहीं । आखिर भीतरी उद्वेग को दबाने के लिए नशे के अतिरिक्त और किसका सहारा लिया जाय ?

ईश्वर से, धर्म से, बच्चों पर से, स्त्री से, अभिभावकों व्यक्ति से, समाज से, अपने आप पर से विश्वास खोकर अनास्थावान् सब कुछ खोया-खोया ही अनुभव करता है । जब आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं, मरणोत्तर जीवन की आशा नहीं और शरीर के साथ ही अपने अस्तित्व का अन्त होने वाला है तो भी थके हारे बूढ़े व्यक्ति की आँखों से आशा की चमक कहाँ से आ सकती है ? जवानी में भी मनुष्य जो कुछ देखता है सब कुछ निरर्थक निरुद्देश्य, नीरस पाता है । ऐसी दशा में वह निरर्थकतावादी बन जाय तो आश्चर्य ही क्या है ? हिप्पीवाद इसी नीरस निरर्थक जीवन की निरंकुश अभिव्यक्ति है । अभी इसका आरम्भ है । अनास्था जितनी प्रखर होगी यह क्रम उतना ही उग्र होता चला जायेगा। इसका अन्त कहाँ होगा यह सोचते हुए भी सिर चकराता है । हो सकता है इसी आग में झुलस कर सभ्यता और संस्कृति का अस्तित्व भी समाप्त हो जाय ।

धर्म-विरोधी विचारधारा के प्रचारक और प्रख्यात दार्शनिक लार्ड बेवरिज ने मृत्यु से कुछ समय पूर्व अपने मित्र इटली के प्रोफेसर वलड़ी को एक मार्मिक पत्र लिखा । उसमें उन्होंने कहा–"धर्म ध्वजियों के अनाचार से क्षुब्ध होकर मैंने धर्म विरोधी प्रतिपादन किया था पर उस आवेश में यह ध्यान रहा कि अनास्था फैल जाने पर लोग साधारण मानवीय कर्तव्य की भी उपेक्षा करने पर उतारूँ हो जायेंगे। मेरा प्रयत्न वास्तविकता प्रकट करने का था, इस अंश में वह प्रतिपादन अभी भी सही है कि धर्म को जिस रूप में इन दिनों समझा जा रहा है, वह भ्रान्त है । फिर भी मूल धर्म प्रवृत्ति का उन्मूलन उचित नहीं । इसके कारण उत्पन्न नैतिक उच्छृंखला व्यक्ति और समाज के लिए घातक ही सिद्ध होती है । अनास्थावान् व्यक्ति की गतिविधियों को देखकर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वे धर्म व्यवसाइयों एवं धर्म भीरुओं की अपेक्षा कम नहीं अधिक बुरे सिद्ध हो रहे हैं ।"

युग की यह परम आवश्यकता है कि धर्म श्रद्धा को हर स्थिति में जीवन्त रखा जाय । मानवी आस्थाओं के सुदृढ बने रहने का उससे ही सम्बल मिलेगा । साथ ही उस बात पर भी ध्यान रखना होगा कि धर्म के नाम पर अंधश्रद्धा को किसी भी हालत में प्रश्रय न मिले । इसके लिए विवेक दृष्टि का खुला रहना आवश्यक है ।

महानता से जुड़ें–समय को पहचानें

युग परिवर्तन के इस समय में एक तथ्य विशेषतया हृदयंगम करने योग्य है कि अवसर को पहचानने और उसका सदुपयोग करने वाले ही सदा से श्रेयाधिकारी बनते जा रहे हैं । जब-जब भी समय बदला है, एक अकेले से नहीं अग्रगामियों के समूह के माध्यम से वह पुरुषार्थ सम्पन्न हुआ है । अवतारों की परम्परा भी इनकी साक्षी है ।

विगत अवतारों में उनके सामयिक सहयोगियों का अविस्मरणीय अनुदान कर रहा है । राम अवतरण में लक्ष्मण, हनुमान, अंगद, विभीषण, सुग्रीव, नल-नील जैसे वलिष्ठ और सामान्य रीछ-वानरों जैसे कनिष्ठ समान रूप से सहगामी रहे हैं । गिद्ध, गिलहरी जैसे अकिंचनों ने भी सामर्थ्यानुसार भूमिकाएँ निभायी हैं । कृष्ण काल में पाण्डवों से लेकर ग्वाल-वालों तक का सहयोग साथ रहा है । बुद्ध के भिक्षु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और गाँधी के सत्याग्रही कन्धे से कन्धा मिलाकर जुटे और कदम से कदम मिलाकर चल रहे हैं । भगवान सर्व-समर्थ हैं वे चाहें अँगुली पर उठा सकते हैं और वाराह, नृसिंह की तरह अकेले ही अभीष्ट प्रयोजन पूरे कर सकते हैं, किन्तु प्रियजनों को श्रेय देना भी अवतार का एक बड़ा काम है । शबरी और कुब्जा जैसी महिलाओं ओर केवट सुदामा जैसे पुरुषों को भी अवतार के सखा सहचर होने का लाभ मिला था । गाँधी के सान्निध्य में विनोबा और बुद्ध के सहचर आनन्द जैसे असंख्यों को श्रेय मिला था । भगवान के अनन्य भक्तों में से नारद जैसे देवर्षि, वशिष्ठ जैसे महर्षि और विभीषण जैसे अगणितों को अविच्छिन्न यश पाने का अवसर मिला है । सहकारिता को संगठन की सर्वोपरि शक्ति के रूप में प्रतिपादन करने के लिए महान शक्तियाँ सदा ही यह प्रयत्न करती रहीं हैं कि जागृतों को महत्त्वपूर्ण अवसरों पर अग्रिम पंक्ति में खड़े होने के लिए उभारा जाय । अर्जुन के साथ तो इसके लिए भर्त्सना उपाय बरते गये थे । सुग्रीव को धमकाने लक्ष्मण पहुँचे थे । परमहंस विवेकानन्द को घसीटकर आगे लाये थे । अम्बपाली, अंगुलिमाल, हर्षवर्धन और अशोक से जो लिया गया था, उससे असंख्य गुना उन्हें लौटाया गया था । भामाशाह के सौभाग्य पर कितने ही धनाध्यक्ष ईर्ष्या करते रहते हैं ।

भगतसिंह और सुभाष जैसा यश मिलने की सम्भावना हो तो उस मार्ग पर चलने के लिए हजारों आतुर देखे जाते हैं । समझाया जाय तो कितने ही केवल बिना उतराई लिये पार उतारने की प्रक्रिया पूरी कर सकते हैं । पटेल और नेहरू बनने के लिए कोई भी अपनी वकालत छोड़ सकता है पर दुर्भाग्य इतना ही रहता है कि समय को पहचानना और उपयुक्त अवसर पर साहस जुटाना उन लोगों से बन ही नहीं पड़ता । जागरूक ही हैं जो महत्त्वपूर्ण निर्णय करते साहसिकता अपनाते और अविस्मरणीय महामानवों की पदवी प्राप्त करते हैं । ऐसे सौभाग्यों में श्रेयार्थी का विवेक प्रमुख होता है अथवा उपनिषदकार के अनुसार, ''महानता जिसे चाहती है उसे वरण कर लेती है'' की उक्ति में सन्निहित दैवी अनुकम्पा के प्रतिपादनों में से कौन-सा सही है ?

महानता की अपनी निजी सामर्थ्य है । उसके आधार पर वह स्वयं तो अपनी प्रखरता एवं गरिमा प्रकट करती ही है, साथ ही अपने सम्पर्क परिकर को भी उन विशेषताओं से भरती और कृत-कृत्य बनाती देखी गई है । अतएव महान बनने के लिए जहाँ आत्म साधना और आत्म विकास की तपश्चर्या को आवश्यक बताया गया है, वहाँ इस ओर भी संकेत किया गया है कि उसकी प्रखरता से सम्पर्क साधने और लाभान्वित होने का अवसर भी न चूका जाय । यों ऐसे अवसर कभी-कभी ही आते और किसी भाग्यशाली को ही मिलते हैं । किन्तु कदाचित वैसा सुयोग बैठ जाय तो ऐसा अप्रत्याशित लाभ मिलता है जिसे लाटरी खुलने और देखते-देखते मालदार बन जाने के समतुल्य कहा जा सके ।

चन्दन के समीप उगे झाड़-झंखाड़ों के सुगन्धित बन जाने और उसी मूल्य में बिकने की किन्वदन्ती प्रख्यात है । पानी को दूध में मिलकर उसी भाव बिकने की उक्ति आये दिन दुहराई जाती रहती है । पारस को छूकर काले कुरूप और सस्ते मोल वाले लोहे का सोने जैसा गौरवास्पद बहुमूल्य धातु में बदल जाना प्रख्यात है । स्वाँति की बूँदों के लाभान्वित होने पर सीप जैसी उपेक्षित इकाई को मूल्यवान् मोती प्रसव करने का श्रेय मिलता है । पेड़ से लिपटकर चलने वाली बेल उसी के बराबर ऊँची जा पहुँचती और अपनी प्रगति पर गर्व करती है । जबकि वह अपने बलबूते मात्र जमीन पर ही थोड़ी दूर रेंग सकती है, इसकी दुर्बल काया को देखते हुए इतने ऊँचे बढ़ जाने की बात किसी प्रकार समझ में नहीं आती, किन्तु पेड़ का सान्निध्य और लिपट पड़ने का पुरुषार्थ जब सोना सुहागा बनकर समन्वय बनाते हैं तो उससे महान पक्ष की तो हानि नहीं होती पर दुर्बल पक्ष को अनायास ही दैवी-वरदान जैसा लाभ मिल जाता है ।

यह उदाहरण उस सुयोग का महत्त्व समझाने के लिए दिये जा रहे हैं जिसमें महानता के साथ सम्पर्क साधना उसके सहयोग का सुयोग पा लेना भी कई बार अप्रत्याशित सौभाग्य बनकर सामने आता है । यों वैसे अवसर सदा-सर्वदा हर किसी के लिए उपलब्ध नहीं रहते ।

राम चरित्र के साथ जुड़ जाने पर कितने ही सामान्य स्तर के प्राणियों ने सामान्य क्रिया-कलापों के सहारे असामान्य श्रेय पाया । बन्दर स्वभावतः इधर-उधर लकड़ी, पत्थर फेंकते रहते हैं, समुद्र पर पुल बनाने में प्रायः इतनी ही कूद-फाँद उन्हें करनी पड़ी होगी, उसे सुयोग ही कहना चाहिए कि इतनी छोटी-सी उदार श्रमशीलता को ऐतिहासिक बना दिया और कथावाचक इसका भावभरी चर्चा करते-करते अघाते नहीं, ऐसे आदर्शवादी सहयोगों की सफलता में कर्त्ताओं का पुरुषार्थ ही नहीं– दैवी सहायता भी करती है और श्रेय उन अग्रगामी साहसियों के पल्ले बँध जाता है । नल-नील ने समुद्र पर पुल बनाया और पत्थर पानी पर तैरने लगे । दैवी प्रयोजनों में दैवी सहायता की असाधारण मात्रा उपलब्ध होती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हनुमान का उदाहरण इसी प्रकार का है । वे सदा से सुग्रीव के सहयोगी थे पर जब बालि ने उसकी सम्पदा एवं गृहिणी का अपहरण किया तो वे प्रतिरोध में कोई पुरुषार्थ न दिखा सके । इससे प्रतीत होता है कि उस अवसर पर सुग्रीव की तरह हनुमान ने भी अपने को असमर्थ पाया होगा और जान बचाकर कहीं खोह-कन्दरा आश्रय लेने में ही भला देखा होगा । पर वे जब प्राण हथेली पर रख काम-काज के परमार्थ प्रयोजन में संलग्न हुए तो पर्वत उठाने, समुद्र लांघने, अशोक उद्यान उजाड़ने, लंका जलाने जैसे असम्भव पराक्रम दिखाने लगे । सुग्रीव पत्नी को रोकने में सर्वथा असमर्थ रहने पर भी अन्य देश में-- समुद्र पर बसे अभेद्य दुर्ग को बेधकर वे सीता को मुक्त कराने में सफल हो गये । इसमें दैवी सहायता की बात प्रत्यक्ष है--ऐसा अनुग्रह उन सभी को मिल सका जिन्होंने राम की गरिमा को, उनकी लीला क्रम को सहयोग देने की परिणति की पूर्व कल्पना कर ली । वयोवद्ध जामवन्त और जटायु, अकिंचन गिलहरी, दरिद्र केवट और शबरी की सामर्थ्य और भूमिकाओं को देखा जाय तो उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये अनुदान अकिंचन जितने ही कहे जा सकते हैं । इतने पर भी उनकी गाथाएँ अजर-अमर बन गईं । वे श्रेयाधिकारी बने और अपने उदाहरणों में असंख्यों को भाव-भरी प्रेरणाएँ दे सकने में समर्थ हुए । इन सौभाग्य भरी उपलब्धियों में प्रमुख श्रेय उस सूझ-बूझ को है, जिसने अपनी श्रद्धा-सहायता को महान् व्यक्तित्व और महान् अवसर के साथ जोड़कर लाखों गुना अधिक श्रेय कमाया है ।

कृष्ण चरित्र पर दृष्टिपात करने से भी यह तथ्य असाधारण रूप से उभर कर सामने आता है । गोपियों का छाछ पिलाना, थोड़ी-सी हँसी ठिठोली कर देना, ग्वालबालों की लाठी का सहारा जैसे कृत्य ऐसे नहीं हैं जिन्हें दैनिक जीवन में सर्वत्र घटित होते रहने वाले सामान्य उपक्रमों में से भिन्न समझा जा सके । अर्जुन, भीम जैसों को श्रीकृष्ण से जुड़कर जो श्रेय मिला उनकी गरिमा असामान्य हो गई। अर्जुन, भीम वे ही थे, जिन्हें बनवास के समय पेट भरने के लिए बहुरूपिये बनकर दिन गुजारने पड़े थे । द्रौपदी को निर्वसन होते आँखों से देखने वाले पाण्डव यदि वस्तुतः महाभारत जीत सकने जैसी समर्थता के धनी रहे होते तो न तो दुर्योधन, दुःशासन वैसी धृष्टता करते और न पाण्डव ही उसे सहन कर पाते । कहना न होगा कि पाण्डवों की विजयश्री में उनकी वह बुद्धिमत्ता ही मूर्धन्य मानी जायेगी जिसमें उन्होंने कृष्ण को अपना और अपने को कृष्ण का बनाकर भगवान से घोड़े हँकवाने जैसे छोटे काम कराने को विवश कर दिया था । यदि वे वैसा न कर पाते और अपने बलबूते जीवन गुजारते तो स्थिति सर्वथा भिन्न होती और यायावरों की तरह जैसे-तैसे जिन्दगी व्यतीत करते ।

सुदामा की कृष्ण से सघन मित्रता जमा सकने की दूरदर्शिता ही उन्हें मित्र के समतुल्य बना देने का श्रेय दिला सकी । 'कृष्ण-सुदामा' की संयुक्त चर्चा अनेकानेक अवसरों पर होती रहती है । कोई कृष्ण की उदारता को, कोई सुदामा की गौरव-गरिमा को प्रधानता देते हैं । जो भी हो दोनों का समन्वय रहा तो ऐसा ही जिसमें महानता का सान्निध्य समन्वय अपनी चमत्कारी परिणति सिद्ध कर सके।

बुद्ध और गाँधी के महान् व्यक्ति होने के सम्बन्ध में दो रायें नहीं हो सकतीं । पर इस तथ्य को भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि उनके सघन सम्पर्क में आने वाले असाधारण रूप से लाभान्वित हुए और सौभाग्यशाली बने ।

बुद्ध के साथ जुड़ने का साहस न कर पाते तो हर्षवर्धन, अशोक, आनन्द, राहुल, कुमार जीव, संघमित्रा, अम्बपाली आदि की जीवनचर्या कितनी नगण्य रह गई होती इसका अनुमान लगा सकना किसी के लिए भी कठिन नहीं होना चाहिए । गाँधी के साथ यदि बिनोवा, राजगोपालाचार्य, नेहरू, पटेल, राजेन्द्र बाबू आदि न घुले होते और अपना-अपना वर्चस्व बनाकर चले होते तो वह स्थिति नहीं बन पाती जो बन सकी । नेहरू और लाल बहादुर शास्त्री की घनिष्ठता प्रसिद्ध है । यदि उस सघनता को ताक कर रख दें और अपने-अपने बलबूते उठने-बैठने की बात सोचें तो फिर परिणाम भी कुछ दूसरे ही स्तर के होने की बात सामने आ खड़ी होगी ।

चाणक्य के साथ चन्द्रगुप्त, समर्थ के साथ शिवाजी, परमहंस के साथ विवेकानन्द की सघनता दोनों ही पक्षों के लिए कितनी सन्तोषजनक परिणाम प्रस्तुत कर सकी इसे कौन नहीं जानता । मान्धाता ने आद्य शंकराचार्य के साथ जुड़कर चारों धाम बनाने का श्रेय पाया । भामाशाह का अनुदान राणाप्रताप के साथ सम्बन्ध होने पर ही सार्थक हुआ अन्यथा इतना पैसा तो सेठ साहूकारों के यहाँ से चोर ठग भी उठा ले जाते हैं और बेटे, पोतों में दुर्व्यसनों में उड़ाते-फूँकते देखे जाते हैं । महामानवों के साथ जुड़ जाने पर श्रेय-पथ कितनी द्रुतगति से प्रशस्त होता है, इनके असंख्य उदाहरणों में टिटिहरी का वह कण भी सम्मिलित है जिसमें अगस्त्य ऋषि की सहायता से समुद्र सोखे जाने और अण्डे वापस मिलने की घटना कही जाती है ।

असामान्य पतियों की अर्धाङ्गिनी बनकर कितनी ही ऐसा उच्चस्तरीय श्रेय पा सकी हैं जैसा कि अपने बलबूते उनके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

लिए पा सकना सम्भव नहीं था । कस्तूरबा गाँधी, अहिल्याबाई, लक्ष्मीबाई जैसी अगणित महिलाएँ इसी श्रेणी में आती हैं । पौराणिक युग की राधा, अरंधती, शची, मैत्रेयी, द्रौपदी आदि की गौरव-गरिमा में उनके पतियों के व्यक्तित्वों का योगदान नहीं रहा है । इस सौभाग्य के अभाव में उन्हें सामान्य महिलाओं की तरह ही जीवनयापन करना पड़ता ।

महानता आग के समान है, उसके सम्पर्क में जो भी आता है गरिमायुक्त एवं तद्रूप होता चला जाता है । पृथ्वी को वैभव सूर्य के अनुदान से मिला है । यदि सूर्य का तापमान मात्र बीस डिग्री रह जाय तो समूची धरती चालीस फुट ढक जायेगी । इसी प्रकार तीस डिग्री तापमान बढ़ जाय तो यहाँ भी बुद्ध ग्रह जैसी भयानक गर्मी तपेगी और वृक्ष, वनस्पतियों से लेकर जल, थल और नभचर प्राणियों में से किसी का भी जीवित रह सकना सम्भव नहीं होगा । इसे पृथ्वी का सौभाग्य ही कहना चाहिए कि वह एक उपयुक्त स्तर के स्नेह सूत्र में सूर्य के साथ बँधी और आदान-प्रदान का उपयोगी सिलसिला चल पड़ा ।

संसार भर के आन्दोलनों में जो सर्वप्रथम आगे आये, वे प्रख्यात हुए । यों पीछे आने वाले असंख्यों अविज्ञाताओं का भी त्याग-बलिदान कम नहीं था । स्वतन्त्रता संग्राम में जिन्होंने भाव भरी भूमिका निभायी, वे पेंशन पाने, शासन में उच्च पद पाने के श्रेयाधिकारी बने थे । वह समय निकल जाने के उपरान्त कोई उस सौभाग्य को पाना चाहे तो यही कहना पड़ेगा कि समय निकल गया । उनीदे लोग उन दिनों असमंजस की स्थिति में पड़े रहने पर मात्र पश्चात्ताप ही कर सकते हैं, गाँधी जी की डाँडी यात्रा एवं धरसना के नमक सत्याग्रह का स्मरण सदा ही याद किया जाता रहेगा बाद में तो कितनों ने ही नमक बनाया और कारागार भुगता था ।

सत्साहस अपनाने की गरिमा तो सदा ही रही है और रहेगी, पर इस दिशा में बढ़ने, सोचने वालों में से अत्यधिक भाग्यवान् वे हैं जो किसी महान अवसर के सामने आते ही उसे हाथ से न जाने देने की तत्परता बरत सकें । महान् व्यक्ति भी सदा नहीं जन्मते । जन्मते हैं तो उनके साथ जुड़कर स्वल्प पराक्रम से असीम यज्ञ पाने का सुअवसर हर किसी को कहाँ मिलता है ? इसे दैवी वरदान या पूर्व संचित पुण्यों का प्रतिफल ही कहना चाहिए कि महानता उभरे और उनके साथ सघनता स्थापित करने का साहस जग पड़े ।

समय पर शादी के प्रस्ताव आते हैं और सुयोग्य वधु मिलने का अवसर रहता है । आगत प्रस्तावों को ठुकराते रहने वाली ढलती उम्र में इच्छा उठने पर भी उपयुक्त विवाह का सुयोग खो बैठते हैं । इन दिनों महाकाल ने आग्रहपूर्वक प्राणवानों को सहयोग देने के लिए बुलाया है । वस्तुतः यह श्रेयाधिकारी बनने का सौभाग्य सन्देश भर है । भगवान के काम, समय के उपक्रम एवं दिव्यशक्तियाँ अपनी आदृश्य क्षमता के आधार पर स्वयं ही सम्पन्न कर लेती हैं । रीछ वानर रूठ मटककर बैठ जाते तो सीता वापसी और लंका की दुर्गति निश्चित थी । ऐसे अवसरों का सबसे बड़ा लाभ वे अग्रगामी उठाते हैं जो संकीर्ण स्वार्थपरता को छोड़कर समय की माँग पूरी करने के लिए बिना समय गँबाये अग्रिम मोर्चे पर जा खड़े होते हैं । प्रस्तुत प्रभात वेला को ठीक ऐसा ही मुहुर्त समझा जाना चाहिए, जिसमें साहसी, सदाशयी छोटे--छोटे कदम बढ़ने पर भी अत्यधिक श्रेय संचित कर सकने वाले दूरदर्शियों में गिने जायेंगे ।

महाप्रज्ञा का युगशक्ति के रूप में अरुणोदय

आद्य शक्ति गायत्री अब युग शक्ति बनने जा रही है । प्रायः इस महामन्त्र का उपयोग अन्तराल के सुधार परिष्कार हेतु किया जाता है । व्यक्तित्व को पवित्र और प्रखर बनाने में उसकी शिक्षा का असाधारण उपयोग है । इतने कम अक्षरों का इतना छोटा, इतना सारगर्भित धर्म शास्त्र, तत्व दर्शन संसार में कहीं कोई दूसरा है नहीं । उसके एक-एक अक्षर में जीवित के हर क्षेत्र में प्रयुक्त हो सकने योग्य ऐसा सद्ज्ञान भरा पड़ा है, जिससे आध्यात्म चिन्तन और धर्म व्यवहार के दोनों ही पक्ष सधते हैं । गायत्री को त्रिवेणी कहा गया है आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता रूपी तीन धाराओं का उसके तीन चरणों में समावेश हुआ है ।

ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग का सत्यं शिवमं सुन्दरम् का सत्चित्त आनन्द जैसा संगम त्रिपदा में हुआ वैसा उदात चिन्तन से सम्बन्धित प्रतिपादन अन्यत्र नहीं देखा जा सकता। आत्म विज्ञान के क्षेत्र में उतरने पर उसकी त्रिविध शक्तियाँ स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीरों को प्रभावित कर सकने की क्षमता से सम्पन्न हैं । उपासना, साधना और आराधना के रूप में उसका उपयोग प्रतिभा, प्रखरता और अभिवर्धन के लिए किया जाता है । साधक को ओजस्वी, मनस्वी और तेजस्वी बनने का अवसर मिलता है । अलंकारिक भाषा में त्रिपदा के तीन चरण ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र के रूप में, सरस्वती, लक्ष्मी, काली के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं । तुलसीदास जी ने जिस त्रिवेणी संगम में स्नान करने का माहात्म्य 'काक होंहि पिक बकहुँ मराला' के रूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में वर्णन किया है, उसे उसी आध्यात्मिक संगम के रूप में समझना चाहिए, जिसे त्रिपदा गायत्री कहते हैं । सिद्ध और स्वर्ग मुक्ति को इस महाशक्ति के अवगाहन से मिलने का माहात्म्य जिसने बताया है, उनके साथ-साथ यह भी कहा है कि शालीनतावादी क्रिया-प्रक्रिया दूरदर्शी विचारणा और आदर्शवादी आस्था की परिपक्वता इसी लोक में रहने वाले मनुष्यों में देवत्व का उदय कर सकती है । गायत्री को अमृत, पारस और कल्प वृक्ष इसी दृष्टि से कहा गया है कि उसके अवगाहन से मानवी सत्ता की तीनों पर्तें, चेतन, अचेतन और सुपर चेतन की, मन बुद्धि-चित्त की तीनों ही स्थितियाँ प्रभावित होतीं तथा निखरती हैं । फलतः इन तीनों विभूतियों से लाभान्वित होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता ।

नित्य कर्म में गायत्री को अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया गया है । शास्त्रोक्त विधि से त्रिकाल संध्या करने पर इसका समावेश करना अनिवार्य है । शिखा को ज्ञान केन्द्र मस्तिष्क की ध्वजा कहा गया है और सूत्र यज्ञोपवीत के नौ धागों को सम्मिलित नौ अनुशासनों के कन्धे पर कर्म कौशल क्षेत्र का अंकुश माना गया है । गायत्री गुरुमन्त्र है जिसे देव संस्कृति में प्रवेश पाते समय सर्वप्रथम दिया और पढ़ाया जाता है ।

यह गायत्री का व्यक्तिगत जीवन में व्यवहार हुआ । विश्व व्यवस्था में, समाज संरचना में भी महत्त्वपूर्ण प्रेरणा और दिशा दे सकने की क्षमता उसमें विद्यमान है । गायत्री सार्वजनीन है । उस पर किसी देश, धर्म, समाज संस्कृति का एकाधिकार नहीं है । उसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त कूट-कूटकर भरा है । साथ ही दूरदर्शी विवेकशीलता की कसौटी पर प्रत्येक प्रचलन से परामर्श से कसते रहने का निर्देश है ।

गायत्री का वाहन हंस इसी तथ्य का प्रकटीकरण करता है कि 'नीर क्षीर विवेक' की क्षमता प्रखर रखी जाय और इस कसौटी पर बिना नवीन पुरातन का पक्षपात किये प्रत्येक प्रतिपादन को जागरूकतापूर्वक कसा जाय । महाप्रज्ञा का तात्पर्य यही है कि सत्य और तथ्य की कसौटी पर कसने के उपरान्त ही किसी कथन, प्रचलन को मान्यता दें । तात्कालिक लाभ में लुभाने वाली दुर्बुद्धि का परित्याग करते हुए दूरदर्शी विवेक के सहारे मात्र मोती ही चुना जाय । औचित्य ही अपनाया जाय । यही है हंस निर्धारण, जिसे मनुष्यों में से राजहंस, परमहंस स्तर के व्यक्ति अपनाते और कृत-कृत्य होते हैं ।

अगला समय प्रज्ञा-युग होगा । उसमें विवेक के सहारे ही सब कुछ सोचा परखा और अपनाया जायेगा । प्रचलित कूड़-कवाड़े में से मानव गरिमा के उपयुक्त आदर्शवादी शालीनता की कसौटी पर कसने के उपरान्त ही वे तथ्य अपनाये जायेंगे जो आने वाले समय में नियम अनुशासन के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकें । इन चौबीस अक्षरों में व्यक्ति और समाज में सम्बन्धित सभी तथ्यों का स्पर्श करने वाले सिद्धान्त विद्यमान हैं । इन्हें क्रमबद्ध सँजोकर भावी संसार की आचार संहिता बन सकती है । विश्व व्यवस्था का संविधान बनाना हो तो उसके लिए आवश्यक सूत्र गायत्री मन्त्र के चौबीस अक्षरों में है । उनकी विवेचना इस प्रकार की जा सकती है कि उसे सार्वभौम धर्म जैसी मान्यता मिल सके ।

अगले दिनों बिखराव निरस्त करना होगा और मानवी गतिविधियों को एक दिशाधारा में बहने के लिए दबाया जायेगा । बौद्धिक, वैज्ञानिक और आर्थिक प्रगति ने सुविधा सम्वर्द्धन के साथ-साथ अगणित समस्याओं का घटाटोप संकट खड़ा किया है । इसका समाधान एकता, समता सुचिता के त्रिविध सिद्धान्तों को सर्वमान्य बनाने में ही सम्भव है । एक राष्ट्र भाषा, एक धर्मधारणा के आधार पर ही नवीन विश्व का अभिनव निर्धारण होगा । उसकी रीतिनीति क्या हो ? दिशा धारा क्या रहे, इसका सूत्र संकेत अन्यत्र कहीं ढूँढ़ना न पड़ेगा । दूरदर्शी तत्वदर्शियों ने उसे गायत्री बीज मन्त्र में 'गागर में सागर' की तरह भर दिया है । उपासना क्षेत्र में भी किसी न किसी अवलम्बन की आवश्यकता पड़ेगी । तब सर्वश्रेष्ठ का चुनाव करने पर महाप्रज्ञा को स्थान बड़ी सरलतापूर्वक मिल सकता है ।

धर्म सम्प्रदायों के वर्तमान जंजाल में से उबारने के लिए इसी राजमार्ग को अपनाया जा सकता है । भूमि सीमा और जाति वर्ग के नाम पर बँटने वाली मनुष्य जाति को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सूत्र में बाँधकर उस केन्द्र पर लाया जाना है, जिसमें सभी हिल-मिलकर रह सकें । ऐसा प्रज्ञा युग लाने में महाप्रज्ञा गायत्री की असाधारण भूमिका होगी । वह एक नये सद्ज्ञान को जन्म देगी, जिसके सहारे जन-जन का चिन्तन चरित्र एवं व्यवहार उत्कृष्ट आदर्शवादिता का पक्षधर बन सके । इसी प्रकार वह एक विज्ञान को भी जन्म देगी जिसमें मानवी सत्ता के अंग अवयवों में सन्निहित अजस्र ऊर्जा भण्डार का नवयुग के अनुरूप साधन, सुविधा तथा गौरव गरिमा का समुचित उत्पादन कर सके । आत्म विज्ञान में सभी सम्भावनाएँ विद्यमान हैं । इसमें वाक् प्राण तथा संकल्प की तीन धाराएँ प्रस्तुत भौतिकी के ताप, शब्द और प्रकाश माध्यमों की तरह अनन्त वैभव के स्रोत उद्गम विद्यमान हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन दिनों सबसे विषम सामयिक समस्या हैं अदृश्य वातावरण में भरती जा रही विषाक्तता की । विकिरण प्रदूषण की भयावहता सर्वविदित है । इसके अतिरिक्त मानवी चिन्तन की भ्रष्टता और व्यवहार की दुष्टता ने प्रकृति को बुरी तरह रुष्ट कर दिया है । वह अभी भी अनेकानेक प्रकोप बरसाती है । भविष्य में उस क्षेत्र में और भी भयावह संकट उतरने की आशंका है । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, तूफान, भूकम्प, महामारी जैसे संकट प्रकृति प्रकोप स्तर के गिने जाते हैं । अन्तः विग्रहों, अपराधों की वृद्धि, दुर्बुद्धिजन्य दुरभि संधि ही गिनी जाती है । लिप्सा और अहंता का समन्वय ही गृहयुद्ध, सीमायुद्ध एवं महायुद्ध खड़े करता है । यह आशंका सम्भावनाएँ सामने ही मुँह बायें खड़ी हैं । इनके निराकरण में प्रत्यक्ष प्रयत्नों का उपयोग भी होना चाहिए । राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली विपन्नताओं का सूझ-बूझ और पराक्रमपूर्वक समाधान खोजा ही जाना चाहिए । उपचार प्रक्रिया के लिए प्रयत्नरत रहना ही चाहिए किन्तु साथ ही एक बात और भी ध्यान में रखने योग्य है कि इतना करने पर भी अदृश्य दवाओं का कुचक्र ऐसा है, जिसका निराकरण किया बिना भौतिक प्रयास उपचारों से ही गुत्थी पूरी सुलझाने वाली नहीं है । इसके लिए कुछ ऐसा भी करना होगा जिसमें संव्याप्त विषाक्त का परिमार्जन हो सके । यह प्रयोजन अध्यात्म उपचारों की सहायता से पूरे हो सकते हैं ।

रावण राज्य समाप्त होने पर भी अदृश्य में संव्याप्त असुरता समाप्त नहीं हुई । तब भगवान राम को दस अश्वमेघों की श्रृंखला चलानी पड़ती थी । महाभारत के उपरान्त भी अदृश्य क्षेत्र की विषाक्तता समाप्त न हुई हो तो भगवान कृष्ण ने राजसूय यज्ञ का आयोजन किया । यह धर्मानुष्ठान उसी प्रकार अनेकानेकों के सहयोग से सम्पन्न हुये जैसे कि लंका युद्ध और महाभारत अगणित योद्धाओं के पराक्रम से अनेकानेक आयुधों के आधार पर लड़े गये । इससे पूर्व भी प्रत्येक अवतार ऐसे ही सामूहिक धर्मानुष्ठान हुए हैं । सीता जन्म के लिए ऋषि रक्त संचय से घड़ा भरने की और देवताओं की संयुक्त शक्ति से दुर्गा अवतरण की कथा सर्वविदित है । गिरि गोवर्धन को उठाने और समुद्र सेतु बाँधने से भी उच्चस्तरीय आत्माओं के संयुक्त प्रयास को कार्यान्वित किया गया था । अन्यान्य अवतारों के समय भी आगे या पीछे ऐसे ही धर्मानुष्ठानों की आवश्यकता पड़ी है और वह तत्कालीन ऋषियों द्वारा पूरी की गई है । विश्वामित्र का नरमेध यज्ञ, वाजस्रवा का सर्वमेध यज्ञ उसी श्रृंखला की कड़ियाँ हैं ।

शब्द शक्ति की महत्ता से सभी भलीभाँति परिचित हैं । गायत्री मन्त्र के अजपा या उच्चारित स्वरूप के माध्यम से जो ऊर्जा उद्भूत होती है, वह सामूहिक प्रयासों के रूप में सम्पन्न होने पर तो चमत्कृत कर देने वाली परिणति को जन्म देती है । गायत्री मन्त्र का सृष्टि का आदि से अन्त तक जितना उच्चारण हुआ है, उतना किसी और मन्त्र का नहीं हुआ । इसकी शब्द तरंगें अभी भी सूक्ष्म जगत में संव्याप्त हैं । सहधर्मी गुण वाली शक्तियाँ एक दूसरे को सहज ही खींच बुलाती हैं । सामूहिक धर्मानुष्ठानों के रूप में एक ही समय, एक ही साथ, एक ही चिन्तन से कई व्यक्ति एक साथ जब भावना करते हैं तो उसका प्रभाव शब्द स्फोट के रूप में, लेसर की मार के रूप में होता है । इस वैज्ञानिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत समाधान हेतु ऐसे ही अनुष्ठान की आवश्यकता आ पड़ी है ।

इसके लिए नैष्ठिक उपासकों का बीस वर्षीय गायत्री अनुष्ठान पहले ही चल रहा है । समस्या की गम्भीरता को देखते हुए दबाव और भी बढ़या जाने की आवश्यकता है । महाप्रज्ञा को अदृश्य वातावरण के परिशोधन में प्रयुक्त करने में तत्वदर्शियों का ध्यान अधिकाधिक मात्रा में केन्द्रित हो रहा है । इस दिशा में भी और भी बड़े कदम उठाने की आवश्यकता पड़ रही है । तदनुसार एक नया निर्धारण यह किया गया है कि परिवार के बीस लाख परिजन प्रातः सूर्योदय के समय जिस भी स्थिति में हों काम छोड़कर पाँच मिनट गायत्री मन्त्र का मौन मानसिक जप करें । साथ ही सविता का ध्यान भी । संकल्प करें कि इस प्रयास से उद्भूत शक्ति अनन्त अंतरिक्ष में बिखरेगी और संव्याप्त विषाक्तता का परिशोधन निराकरण सम्पन्न करेगी ।

जो जहाँ, जिस भी स्थिति में है, जूते उतारकर आँखें बन्द करके यह ध्यान जप सम्पन्न करें । सूर्योदय का समय हर देश प्रान्त का समय अलग-अलग होता है जो स्थानीय पंचांगों से जाना जा सकता है । जिनके पास घड़ियाँ हों वे उनके सहारे समय जान लें । जहाँ ऐसा प्रबन्ध नहीं है वहाँ मुर्गे की वाँघ जैसी मस्जिद के अजान, मंदिर के शंख जेसी ध्वनि किसी केन्द्र स्थान पर शंख बिगुल आदि बजाकर इस शुभारम्भ की घोषणा की जा सकती है । प्रज्ञा परिजन इस साधना में स्वयं तो सम्मिलित हों ही साथ ही यह भी प्रयत्न करें कि उनके परिवार तथा सम्पर्क के लोग भी इस न्यूनतम साधना को अपनाएँ । इसमें स्नान पूजा उपचार स्थान आदि का भी प्रतिबन्ध न होने से वह सर्वसाधारण के लिए अति सरल भी है । थोड़ा प्रयत्न करने पर इसमें सम्मिलित होने वालों की संख्या करोड़ों तक पहुँच सकती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रज्ञा परिजनों की संख्या इन दिनों प्रायः बीस लाख है। पाँच मिनट में न्यूनतम जप साठ मन्त्रों का हो जाता है। बीस लाख को साठ से गुणा कर देने पर संख्या बारह करोड़ हो जाती है । लक्षय चौबीस करोड़ प्रतिदिन का है। इसके लिए ठीक दूने युग साधकों की आवश्यकता पड़ेगी। वर्तमान समय में से प्रत्येक अपने हिस्से का एक और जो नागा करेंगे उनके बदले का एक इस प्रकार दो और नये ऐसे युग साधक उत्पन्न करें जो प्रातःकाल पाँच मिनट की उपरोक्त साधना में संकल्पपूर्वक सम्मिलित हों । जो व्रत लें उसे निभायें । इसका विवरण रखने एक उत्तरदायित्व स्वाध्याय मण्डल के संचालक को सौंपा जाय । जो किसी के द्वारा न करने की स्थिति से अवगत रहे और उस कमी की पूर्ति अन्य लोगों में कराता रहे । इस प्रयोजन के लिए वही इतने लोगों से उपरोक्त युग साधना कराने का उत्तरदायित्व उठायें । उनका एक कर्तव्य यह भी है कि अपने सम्पर्क क्षेत्र की जपसंख्या की मानसिक जानकारी शांतिकुंज हरिद्वार पहुँचाते रहें जिससे यह पता चलता रहे कि प्रतिदिन चौबीस करोड़ जप के निर्धारण में कितनी कमी पड़ रही है या उसकी किस क्षेत्र में कितनी पूर्ति हो रही है।

सामूहिकता की शक्ति भौतिक क्षेत्र में बहुत कारगर सिद्ध होती है और उसका प्रतिफल हाथों हाथ देखने को मिलता है । बुहारी, रस्सा, सेना, संयुक्त परिवार, झुण्ड, गिरोह, संगठन आदि उदाहरण यह बताते हैं कि बिखराव का केन्द्रीयकरण कितना सशक्त होता है । आतिशी शीशे पर सूर्य किरणों का चमत्कार तत्काल आग लगने के रूप में सभी ने देखा है । प्रज्ञा परिजनों की उपरोक्त संयुक्त साधना परिस्थितियों के सुधार परिष्कार में असाधारण भूमिका सम्पन्न करेगी । सिपाहियों की टुकड़ी यदि कदम मिलाकर एक ध्वनि उत्पन्न करे तो जिस लोहे के पुल पर से चल रही है वह धंसक या गिर सकता है । पायल की क्रमबद्ध आवाज हाल की छत को गिरा सकती है । यह संयुक्त शब्द शक्ति का चमत्कार है । प्रज्ञा परिजन एक मन से एक उद्देश्य से एक प्रक्रिया अपनाकर एक समय में एक निर्धारण के अनुरूप साधन करें तो वह थोड़ी छोटी होते हुए भी इतना बड़ा प्रयोजन पूरा कर सकती है, जिससे विकृतियों, विषाक्ताओं का निराकरण हो सके और उसके स्थान पर उज्ज्वल भविष्य का प्रज्ञा युग के अवतरण का सुनिश्चित आधार खड़ा हो सके ।

इस विशिष्ट साधना का महत्त्व सभी प्रज्ञा परिजन गम्भीरतापूर्वक समझें और उसे कार्यान्वित करने में अपनी जागरूकता एवं तत्परता का परिचय दें । इस साधना को प्रज्ञा पुरश्चरण नाम दिया गया है तथा सभी परिजनों से उसे जन-जन तक व्यापक बनाने का अनुराध किया गया ह। युग परिवर्तन की इस वेला में आद्य शक्ति को युग शक्ति के रूप से प्रतिष्ठित होना है । परिजनों की नैष्ठिक परीक्षा का ठीक यही समय है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपासना के दो चरण : जप और ध्यान

जप योग की विधि-व्यवस्था

प्रतीक उपासना की पार्थिव पूजा के कितने ही कर्मकाण्डों का प्रचलन है । तीर्थयात्रा, देवदर्शन, स्तवन, पाठ, षोडशोपचार, परिक्रमा, अभिषेक, शोभायात्रा, श्रद्धांजलि, रात्रि-जागरण, कीर्तन आदि अनेकों विधियाँ विभिन्न क्षेत्रों और वर्गों में अपने-अपने ढंग से विनिर्मित और प्रचलित हैं । इससे आगे का अगला स्तर वह है, जिसमें उपकरणों का प्रयोग न्यूनतम होता है और अधिकांश कृत्य मानसिक एवं भावनात्मक रूप से ही सम्पन्न करना पड़ता है । यों शारीरिक हलचलों, श्रम और प्रक्रियाओं का समन्वय उनमें भी रहता ही है ।

उच्चस्तरीय साधना क्रम में मध्यवर्ती विधान के अन्तर्गत प्रधानतया दो कृत्य आते हैं— (१) जप, (२) ध्यान । न केवल भारतीय परम्परा में वरन् समस्त विश्व के विभिन्न साधना प्रचलनों में भी किसी न किसी रूप में इन्हीं दो का सहारा लिया गया है । प्रकार कई हो सकते हैं, पर उन्हें इन दो वर्गों के ही अंग-प्रत्यंग के रूप में देखा जा सकता है ।

साधना की अन्तिम स्थिति में शारीरिक या मानसिक कोई कृत्य करना शेष नहीं रहता । मात्र अनुभूति, सम्वेदना, भावना तथा संकल्प शक्ति के सहारे विचार रहित शून्यावस्था प्राप्त की जाती है । इसी को समाधि अथवा तुरीयावस्था कहते हैं । ब्रह्मानन्द का परमानन्द का अनुभव इसी स्थिति में होता है । इसे ईश्वर और जीव के मिलन की चरम अनुभूति कह सकते हैं । इस स्थान पर पहुँचने से ईश्वर प्राप्ति का जीवन लक्ष्य पूरा हो जाता है । यह स्तर समयानुसार आत्म-विकास का क्रम पूरा करते चलने से ही उपलब्ध होता है । उतावली में काम बनता नहीं बिगड़ता है । तुर्त-फुर्त ईश्वर दर्शन, समाधि स्थिति, कुण्डलिनी जागरण, शक्तिपात जैसी आतुरता से बाल बुद्धि का परिचय भर दिया जा सकता है । प्रयोजन कुछ सिद्ध नहीं होता । शरीर को सत्कर्मों में और मन को सद्विचारों में ही अपनाये रहने से जीव सत्ता का उतना परिष्कार हो सकता है, जिससे वह स्थूल और सूक्ष्म शरीरों को समुन्नत बनाते हुए कारण शरीर के उत्कर्ष से सम्बद्ध दिव्य अनुभूतियाँ और दिव्य सिद्धियाँ प्राप्त कर सकें ।

समयानुसार उस अन्तिम स्थिति की, कॉलेज पाठ्यक्रम की भी, शिक्षा उपलब्ध हो जाती है । ऐसी दिव्य सत्तायें इस संसार में मौजूद हैं जो पात्रता के तालाब को बादलों की तरह बरस कर सदा भरा-पूरा रखने को अयाचित सहायता प्रदान कर सकें । हमें शरीर के जड़ और मन के अर्द्ध चेतन स्तरों को परिष्कृत बनाने में ही अपना सारा ध्यान केन्द्रित करना चाहिए । साधना विज्ञान की दौड़ इन्हीं दो क्षेत्रों के विकास में सहायता करने वाले विधि-विधान बताने में केन्द्रीभूत हैं । इतना बन पड़े तो अगली बात निखिल ब्रह्माण्ड में संव्याप्त दिव्य चेतना के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन पर छोड़ी जा सकती है । अपना आपा ही इतना ऊँचा उठ जाता है कि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से ऊपर निकल जाने के बाद रॉकेट जिस प्रकार अपनी यात्रा करने लगते हैं, उसी प्रकार स्वयमेव आत्म साधन का शेष भाग पूरा हो जाता है ।

आत्मोत्कर्ष की जिन कक्षाओं का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पाठ्यक्रम सीखने-सिखाने की आवश्यकता पड़ती है । वे चिन्तन की उत्कृष्टता एवं कर्तत्व की आदर्शवादिता के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं । उनकी उपेक्षा करके मात्र कर्मकाण्डों के सहारे कोई बड़ी सफलता हाथ नहीं लग सकती । व्यक्तित्व को अमुक विधि-विधानों के सहारे ऊँचा उठाने की शिक्षा की किण्डरगार्डन शिक्षण में प्रयुक्त होने वाले मनोरंजन उपकरणों से तुलना की जा सकती है, जो बच्चे के अविकसित मस्तिष्क में अमुक जानकारी को ठीक तरह जमाने में सहायता करती है । पहलवानी में सफलता पाने वाले डंबल, मुद्गर आदि उपकरणों का सहारा लेकर अपनी बल वृद्धि करते हैं । ऊँचा चढ़ने के लिए लाठी की ओर जल्दी पहुँचने के लिए वाहन की आवश्यकता पड़ती है । यह उपकरण बहुत ही उपयोगी और आवश्यक है, पर यह ध्यान रखना चाहिए कि स्वतंत्र रूप से कोई जादुई शक्ति से सम्पन्न नहीं है । स्वस्थ शरीर को बलिष्ठ बनाने में वे सहायता भर करते हैं । ठीक यही स्थिति उपासना क्षेत्र में फैले हुए अनेकानेक कर्मकाण्डों की है ।

जप द्वारा अध्यात्म ही उस परमेश्वर को पुकारता है, जिसे हम एक प्रकार से भूल ही चुके हैं । मणि विहीन सर्प जिस तरह अशक्त एवं हताश बना बैठा रहता है, उसी प्रकार हम परमात्मा से बिछुड़कर अनाथ बालक की तरह डरे, सहमे बैठे हैं—अपने को असुरक्षित और आपत्तिग्रस्त स्थिति में अनुभव कर रहे हैं । लगता है हमारा कुछ बहुमूल्य खो गया है । जप की पुकार उसी को खोजने के लिए है । बिल्ली अपने बच्चों के इधर-उधर छिप जाने पर उन्हें ढूँढ़ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए म्याऊँ-म्याऊँ करती फिरती है और उस पुकार के आधार पर उन्हें खोज निकालती है । कोई बालक खो जाने पर उसको ढूँढने के लिए नाम और हुलिया की मुनादी कराई जाती है । रामनाम की रट इसी प्रयोजन के लिए है ।

गज की एक टाँग ग्राह के मुँह में चली गई थी । गज पानी से बाहर निकलना चाहता था और ग्राह उसे भीतर घसीटता था । दोनों में से हारता भी कोई नहीं था । इस खींचतान में हाथी को भारी कष्ट हो रहा था । न मरते बनता था न जीते । निदान गज ने भगवान को पुकार लगाई । उनका नाम हजार बार लिया तब भगवान उसे बचाने आये थे । द्रौपदी ने भरी सभा में लाज जाते देखकर भगवान को पुकारा था और वे उसे आश्वस्त करने आये थे । अज्ञानान्धकार में भटकने वाले जीव की स्थिति गज से भी गई बीती है । गज की एक टाँग को एक मगर खा रहा था । यहाँ काम, क्रोध, मद, मत्सर रूपी चार ग्राह दोनों हाथ और दोनों पैर, सिर, धड़ इन छहों को खाये जा रहे हैं ।

द्रौपदी का शरीर ही निर्वसन हो रहा था, पर आत्मा की शालीनता का आवरण उतरता जाने से उसका बहिरंग और अन्तरंग दोनों ही लज्जास्पद बनते चले जा रहे हैं । ऐसी दशा में गज रूपी मन और आत्मा रूपी द्रौपदी का भगवान को पुकारना उचित ही है । जप में भगवत नाम की रट पतन के गर्त में से हाथ पकड़ कर ऊपर उवारने के लिए ही लगाई जाती है ।

परमात्मा की दिव्य चेतना के अभाव में मनुष्य नर-पशु, नर-कीटक मात्र बनकर रह जाता है । पंचतत्वों की काया में पेट और प्रजनन मात्र की दो आकांक्षायें रहती हैं और वह उनकी पूर्ति के लिए वासना-तृष्णा में ग्रसित रह कर अचिन्त्य चिन्तन तथा अकर्म करने में निरत रहता है । आदर्शों को अपनाने के लिए न उसकी उत्कण्ठा जगती है और न चेष्टा ही होती है । सड़ी कीचड़ में कुलबुलाते रहने वाले घिनौने कीड़ों की तरह उसे कुत्साओं और कुण्ठाओं की, शोक-सन्तापों की प्रताड़नायें सहन करते हुए इस सुर-दुर्लभ अवसर को रोते-कलपते गँवाना पड़ता है । इस अन्धकार में भटकने से त्राण पाने के लिए आत्मा प्रकाश को पुकारती है । यह प्रकाश भगवान ही हो सकता है । उसे पाने की आतुरता में जिन शब्दों का उच्चारण होता है, उसे नाम-जप कह सकते हैं ।

यह सोचना व्यर्थ है कि भगवान का मन इतना ओछा है कि वे अपना नाम लेने वाले से— चापलूसी भरे शब्दोचार करने वाले से प्रसन्न हो जाते हैं । उन्हें नाम लेने न लेने से कोई वास्ता नहीं । वह दिव्य सत्ता तो केवल इतना ही देखती है कि जो काम सौंपे गये थे वे पूरे किये गये या नहीं । वे अनुशासन और कर्तव्य पालन भर की अपेक्षा मनुष्य से करते हैं और इसी कसौटी पर कस कर दण्ड, पुरस्कार की व्यवस्था करते हैं । उनका रोष और प्रेम ठीक विद्युत शक्ति की तरह है । बिजली का विधिवत् उपयोग करने वाले उससे तरह-तरह के लाभ उठाते हैं । रोशनी, पंखा, रेडियो, हीटर जैसे अनेक प्रयोजन पूरे करते हैं, किन्तु जो उसके खुले तार छूने की उच्छृंखलता बरतते हैं, वे रोष के भाजन बनते हैं और अपने प्राण गँवा बैठते हैं । भगवान का एक नाम रुद्र भी है । रुद्र अर्थात् भयंकर अनीति बरतने वालों को वे बिना दया माया प्रदर्शित किये कस कर दंड भी देते हैं । नाम-जप की चापलूसी से ईश्वर को फुसला लेने और जो लाभ सन्मार्ग पर चलने वालों को मिलता है, वही पूजापत्री से पा लेने की बात सोचना मूर्खतापूर्ण है । ईश्वर को इतना मूर्ख और ओछा नहीं समझा जाना चाहिए कि नाम लेने भर से किसी को भक्त मान ले और निहाल कर दे । उसका अनुग्रह तो व्यक्तित्व को परिष्कृत करने और सन्मार्ग पर चलने से ही सम्भव हो सकता है । शरीर पर नित्य मैल चढ़ता है और उसे साफ करने के लिए नित्य स्नान करना पड़ता है । कपड़े नित्य मैले होते हैं और उन्हें रोज ही धोना होता है । कमरे में झाड़ू लगाना, दाँत माँजना, बालों में कंघी करना नित्य का काम है । मन पर नित्य ही वातावरण में उड़ती-फिरने वाली दुष्प्रवृत्तियों की छाप पड़ती है । उस मलीनता को धोने के लिए नित्य ही उपासना करनी पड़ती है । भगवत् स्मरण उपासना का प्रधान अंग है । नाम के आधार पर ही किसी सत्ता का बोध और स्मरण हमें होता है । ईश्वर को स्मृति पटल पर प्रतिष्ठापित करने के लिए उसके नाम का सहारा लेना पड़ता है । स्मरण से आह्वान, आह्वान से स्थापना और स्थापना से उपलब्धि का क्रम चल पड़ना मनोविज्ञान शास्त्र द्वारा समर्थित है ।

चेतना को प्रशिक्षित करने के लिए मनोविज्ञान शास्त्र में चार आधार और स्तर बताये गये हैं । इनमें प्रथम है— शिक्षण, जिसे अँग्रेजी में 'लर्निंग' कहते हैं । स्कूल के बच्चों को इसी स्तर पर पढ़ाया जाता है । उन्हें तरह-तरह की जानकारियाँ दी जाती हैं । उन जानकारियों को सुन लेने भर से काम नहीं चलता । विद्यार्थी उन्हें बार-बार दुहराते हैं । स्कूली पढ़ाई का सारा क्रम ही दुहराने, याद करने के सहारे खड़ा होता है । पहाड़े रटने पड़ते हैं । संस्कृत को रटन्त विद्या ही कहा जाता है । प्रकारान्तर से यह रटाई किसी न किसी प्रकार हर छात्र को करनी पड़ती है । स्मृति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पटल पर किसी नई बात को जमाने के लिए बार-बार दुहराये जाने की क्रिया अपनाये बिना और कोई रास्ता नहीं ।

एक बार याद कर लेने से कुछ बातें तो देर तक याद बनी रहती हैं, पर कुछ ऐसी हैं जो थोड़े दिन अभ्यास छोड़ देने से एक प्रकार से विस्मरण ही हो जाती हैं । स्कूली पढ़ाई छोड़ देने के उपरान्त यदि वे विषय काम में न आते रहें तो कुछ समय बाद विस्मृत हो जाते हैं । फौजी सिपाहियों को नित्य ही परेड करनी पड़ती है । पहलवान लोग बिना नागा अखाड़े में जाते और रोज ही दण्ड-बैठक करते हैं । संगीतकारों के लिए नित्य का 'रियाज' आवश्यक हो जाती है । कुछ समय के लिए भी वे गाने-बजाने का अभ्यास छोड़ दें तो उँगलियाँ लड़खड़ाने लगेंगी और ताल-स्वरों में अड़चन उत्पन्न होने लगेगी ।

शिक्षण की 'लर्निंग' भूमिका में पुनरावृत्ति का आश्रय लिया जाना आवश्यक है । जप द्वारा अनभ्यस्त ईश्वरीय चेतना को स्मृति पटल पर जमाने की आवश्यकता होती है ताकि उपयोगी प्रकाश की अन्तःकरण में प्रतिष्ठापना हो सके । कुएँ की जगत में लगे पत्थर पर रस्सी की रगड़ बहुत समय तक पड़ते रहने से उसमें निशान बन जाते हैं । हमारी मनोभूमि भी इतनी ही कठोर है । एक बार कहने से बात समझ में तो आ जाती है, पर उसे स्वभाव की, अभ्यास की भूमिका तक उतारने के लिए बहुत समय तक दुहराने की आवश्यकता पड़ती है । पत्थर पर रस्सी की रगड़ से निशान पड़ने की तरह ही हमारी कठोर मनोभूमि पर भगवत संस्कारों का गहराई तक जम सकना सम्भव है ।

शिक्षण की दूसरी परत है— 'रिटेन्शन' अर्थात् प्रस्तुत जानकारी को स्वभाव का अंग बना लेना । तीसरी भूमिका है— 'री-काल' अर्थात् भूतकाल की किन्हीं विस्मृत स्थितियों को कुरेद–बीनकर फिर से सजीव कर लेना । चौथी भूमिका है– 'रीकॉग्नीशन' अर्थात् मान्यता प्रदान कर देना। निष्ठा, आस्था, श्रद्धा एवं विश्वास में परिणत कर देना । उपासना में इन्हीं सब प्रयोजनों को पूरा करना पड़ता है । यह चारों ही परतें छेड़नी होती हैं । भगवान की समीपता अनुभव कराने वाली प्रतीक पूजा 'रिटेन्शन' है । ईश्वर के साथ आत्मा के अति प्राचीन सम्बन्धों को भूल जाने के कारण ही जीवन में भटकाव होता है । पतंग उड़ाने वाले के हाथ से डोरी छूट जाती है तभी वह इधर-उधर छितराती फिरती है । बाजीगर की उँगलियों से बँधे कठुपतली के सम्बन्ध-सूत्र टूट जायें तो फिर वे लकड़ी के टुकड़े नाच किस प्रकार दिखा सकेंगे । कनेक्शन तार टूट जाने पर बिजली के यन्त्र अपना काम करना बन्द कर देते हैं । ईश्वर और जीव का सम्बन्ध सनातन है पर वह माया में अत्यधिक प्रवृत्ति के कारण एक प्रकार से टूट ही गया है । इसे फिर से जोड़ने की प्रक्रिया 'री-काल' है । जप द्वारा यह उद्देश्य भी पूरा होता है । चौथी भूमिका है—'रीकॉग्नीशन' इसमें पहुँचने पर जीवात्मा की मान्यता अपने भीतर ईश्वरीय प्रकाश विद्यमान होने की बनती है और वह वेदान्त तत्वज्ञान की भाषा में 'अयमात्मा ब्रह्म'-'तत्वमसि', सोहमस्मि, चिदानंदोहम्, शिवोहम् की निष्ठा जीवित करता है । यह शब्दोच्चार नहीं वरन् मान्यता का स्तर है, जिसमें पहुँचे हुए मनुष्य का गुण, कर्म, स्वभाव, दृष्टिकोण एवं क्रिया-कलाप ईश्वर जैसे स्तर का बन जाता है । उसकी स्थिति महात्मा, देवात्मा एवं परमात्मा जैसी देखी और अनुभव की जा सकती है ।

आत्मिक प्रगति के लिए चिन्तन क्षेत्र की जुताई करनी पड़ती है, तभी उसमें उपयोगी फसल उगती है । खेत को बार-बार जोतने से ही उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ती है । नाम जप को एक प्रकार से खेत की जुताई कह सकते हैं । प्रहलाद की कथा है कि वे स्कूल में प्रवेश पाने के उपरान्त पट्टी पर केवल राम नाम ही लिखते रहे, आगे की बात पढ़ने के लिए कहे जाने पर भी राम नाम ही लिखते रहे और कहते रहे । इस एक को ही पढ़ लेने पर सारी पढ़ाई पूरी हो जाती है । युधिष्ठिर की कथा भी ऐसी ही है । अन्य छात्रों ने आगे के पाठ याद कर लिए, पर वे पहला पाठ 'सत्यंवद' ही रटते-लिखते रहे । अध्यापक ने आगे के पाठ पढ़ने के लिए कहा तो उनका उत्तर यही था कि एक पाठ याद हो जाने पर दूसरा पढ़ना चाहिए । उनका तात्पर्य यह था कि सत्य के प्रति अगाध निष्ठा और व्यवहार में उतारने की परिपक्वता उत्पन्न हो जाने तक उसी क्षेत्र में अपने चिन्तन को जोते रहना चाहिए ।

नाम जप में होने वाली पुनरावृत्ति के पीछे युधिष्ठिर और प्रहलाद द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का संकेत है । भगवानमय जीवन बनाने की स्थिति आने तक नाम स्मरण करते जाना चाहिए । अन्तरात्मा द्वारा एक मन और दस इन्द्रियों को पढ़ाने के लिए खोली गई पाठशाला को उपासना कृत्य समझा जा सकता है, उसमें नाम जप की रटाई कराई जाती है ताकि यह छात्र वर्णमाला, गिनती, पहाड़े भली प्रकार याद कर सके । एक ही विधान को दुहराते रहने के पीछे यही बाल-शिक्षण की प्रक्रिया काम करती है ।

कपड़े को देर तक रंग भरी नाद में डुबोये रहने से उस पर पक्का रंग चढ़ जाता है । चन्दन वृक्ष के समीप उगे हुए झाड़-झंखाड़ भी सुगन्धित हो जाते हैं । गुलाब के फूल जिस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिट्टी पर टूट-टूटकर गिरते रहते हैं वह भी सुगन्धित हो जाती है । सान्निध्य का लाभ सर्वविदित है । सत्संग और कुसंग के भले-बुरे परिणाम आये दिन सामने आते रहते हैं। उपासना कृत्य भगवान की समीपता है, उसका सत्परिणाम सामने आये बिना नहीं रह सकता । कीट-भृंग का उदाहरण प्रख्यात है ।

जप के लिए भारतीय धर्म में सर्वविदित और सर्वोपरि मंत्र गायत्री मंत्र का प्रतिपादन है । उसे गुरुमंत्र कहा गया है । अन्तः चेतना को परिष्कृत करने में उसका जप बहुत ही सहायक सिद्ध होता है । वेदमाता उसे इसीलिए कहा गया है कि वेदों में सन्निहित ज्ञान-विज्ञान का सारा वैभव बीज रूप में इन थोड़े से अक्षरों में ही सन्निहित है ।

जप का भौतिक महत्त्व भी है । विज्ञान के आधार पर भी उसकी उपयोगिता समझी-समझाई जा सकती है । शरीर और मन में अनेकानेक दिव्य क्षमतायें चक्रों, ग्रन्थियों, भेद और उपत्यिकाओं के रूप में विद्यमान हैं, उनमें ऐसी सामर्थ्य विद्यमान हैं जिन्हें जगाया जा सके तो व्यक्ति को अतीन्द्रिय एवं अलौकिक विशेषतायें प्राप्त हो सकती हैं । साधना का परिणाम सिद्धि है । यह सिद्धियाँ भौतिक प्रतिभा और आत्मिक दिव्यता के रूप में जिन साधना आधारों के सहारे विकसित होती हैं, उनमें जप को प्रथम स्थान दिया गया है ।

मुख को अग्निचक्र कहा गया है । मोटे अर्थों में उसकी संगति जठराग्नि से मिलाई जा सकती है । मंदाग्नि, तीव्राग्नि का वर्णन मुँह से लेकर आमाशय आन्त्र संस्थान तक विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई पाचन ग्रन्थियों की निष्क्रियता-सक्रियता का परिचय देने के रूप में ही किया जाता है । मुँह चबाता है और पचाने का प्राथमिक कार्य अपने गहवर में पूरा करता है । आगे चलकर आहार की पाचन-क्रिया अन्यान्य रूपों में विकसित होती जाती है ।

अग्निचक्र की, मुख में अवस्थित ऊष्मा की स्थूल चर्चा ही पाचन प्रक्रिया के रूप में की जा सकती है । वस्तुतः उस संस्थान को यज्ञाग्नि का दिव्य कुण्ड कह सकते हैं, जिससे पाचन ही नहीं, वाक् शक्ति का भी उद्भव होता है ।

मुख का अग्निचक्र स्थूल रूप से पाचन का, सूक्ष्म रूप में उच्चारण का और कारण रूप से चेतनात्मक दिव्य प्रवाह उत्पन्न करने का कार्य करता है । उसके तीनों कार्य एक से एक बढ़कर हैं । पाचन और उच्चारण की महत्ता सर्वविदित है । दिव्य प्रवाह संचार की बात कोई-कोई ही जानते हैं । जपयोग का सारा विज्ञान इसी रहस्यमयी सामर्थ्य के साथ सम्बद्ध है ।

शब्दों का उच्चारण मात्र जानकारी ही नहीं देता वरन् उसके साथ अनेकानेक भाव अभिव्यंजनायें, संवेदनायें, प्रेरणायें एवं शक्तियाँ भी जुड़ी होती हैं । यदि ऐसा न होता तो वाणी में मित्रता एवं शत्रुता उत्पन्न करने की सामर्थ्य न होती । दूसरों को उठाने-गिराने में उसका उपयोग न हो पाता । कटु शब्द सुनकर क्रोध चढ़ आता है और न कहने योग्य करने तथा न करने योग्य कहने की स्थिति बन जाती है । चिन्ता का समाचार सुनकर भूख-प्यास और नींद चली जाती है । शोक सम्वाद सुनकर मनुष्य अर्द्धमूर्च्छित जैसा हो जाता है । तर्क, तथ्य, उत्साह एवं भावुकता भरा शब्द प्रवाह देखते-देखते जन-समूह का विचार प्रवाह बदल देता है और उस उत्तेजना से सम्मोहित असंख्य मनुष्य कुशल वक्ता का अनुसरण करने के लिए तैयार हो जाते हैं । द्रौपदी ने थोड़े से व्यंग-उपहास भरे अपमान-जनक शब्द दुर्योधन से कह दिये थे । उनका घाव इतना गहरा उतरा कि अठारह अक्षौहिणी सेना का विनाश करने वाले महाभारत के रूप में उसकी भयानक प्रतिक्रिया सामने आयी । इन तथ्यों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि वाणी का काम जानकारी देना भर नहीं है । शब्द प्रवाह के साथ-साथ उनके प्रभावोत्पादक चेतन तत्व भी जुड़े रहते हैं और वे ध्वनि कम्पनों के साथ घुले रहकर जहाँ भी टकराते हैं, वहाँ चेतनात्मक हलचल उत्पन्न करते हैं । शब्द को पदार्थ विज्ञान की कसौटी पर भौतिक तरंग स्पन्दन भर कहा जा सकता है, पर उसकी चेतना को प्रभावित करने वाली सम्वेदनात्मक क्षमता की भौतिक व्याख्या नहीं हो सकती । वह विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक है ।

जपयोग में शब्द-शक्ति के इसी आध्यात्मिक प्रभाव को छान कर काम में लाया जाता है । नींबू का रस निचोड़ कर उसका छिलका एक ओर रख दिया जाता है । दूध में से घी निकालकर छाछ को महत्त्वहीन ठहरा दिया जाता है । जपयोग में ऐसा ही होता है । उसके द्वारा ऐसी चेतन शक्ति का उद्भव होता है, जो जपकर्त्ता के शरीर एवं मन में विचित्र प्रकार की हलचलें उत्पन्न करती है और अनन्त आकाश में उड़कर विशिष्ट व्यक्तियों को, विशेष परिस्थितियों को तथा समूचे वातावरण को प्रभावित करती है ।

मंत्रों का चयन ध्वनि-विज्ञान को आधार मान कर किया गया है । अर्थ का समावेश गौण है । गायत्री मंत्र की सामर्थ्य अद्भुत है, पर उसका अर्थ अति सामान्य है । भगवान से सद्बुद्धि की कामना भर उसमें की गई है । इसी अर्थ प्रयोजन को व्यक्त करने वाले मंत्र-श्लोक हजारों हैं । हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में भी ऐसी कविताओं की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कमी नहीं जिनमें परमात्मा से सद्बुद्धि की प्रार्थना की गई है । फिर उन सब कविताओं को गायत्री मन्त्र के समकक्ष क्यों नहीं रखा जाता और उनका उच्चारण क्यों उतना फलप्रद नहीं होता ? वस्तुतः मंत्र सृष्टाओं की दृष्टि में शब्दों का गुंथन ही महत्त्वपूर्ण रहा है । कितने ही बीज मंत्र ऐसे हैं जिनका खींचतान के ही कुछ अर्थ भले ही गढ़ा जाये पर वस्तुतः ह्रीं, श्रीं, क्लीं, ऐं, हुं, यं, फट आदि शब्दों का अर्थ क्या हो सकता है ? इस प्रश्न पर माथापच्ची करना बेकार है । इनका सृजन यह ध्यान में रखते हुए किया गया है कि इनका उच्चारण किस स्तर का शक्ति कम्पन उत्पन्न करता है और इनका जपकर्त्ता, बाह्य वातावरण तथा अभीष्ट प्रयोजन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

मानसिक, वाचिक एवं उपांशु जप में ध्वनियों के हलके-भारी किये जाने की प्रक्रिया काम में लाई जाती है । वेद मंत्रों के अक्षरों के साथ-साथ उदात्त-अनुदात्त और स्वरित क्रम से उनका उच्चारण नीचे-ऊँचे तथा मध्यवर्ती उतार-चढ़ाव के साथ किया जाता है । उनके सस्वर उच्चारण की परम्परा है । यह सब विधान इसी दृष्टि से बनाने पड़े हैं कि उन मंत्रों का जप अभीष्ट उद्देश्य पूरा कर सकने वाला शक्ति प्रवाह उत्पन्न कर सके ।

मंत्र जप की दुहरी प्रतिक्रिया होती है । एक भीतरी, दूसरी बाहरी । आग जहाँ जलती है, उस स्थान को गरम करती है, साथ ही वायुमण्डल में ऊष्मा बिखेर कर अपने प्रभाव क्षेत्र को भी गर्मी देती है । जप का ध्वनि प्रवाह, समुद्र की गहराई में चलने वाली जल धाराओं की तरह तथा ऊपर आकाश में छितराई हुई उड़ने वाली हवा की परतों की तरह अपनी हलचलें उत्पन्न करता है । उनके कारण शरीर में यत्र-तत्र, सन्निहित अनेकों 'चक्रों' तथा 'उपत्यिका' ग्रन्थियों में विशिष्ट स्तर का शक्ति संचार होता है । लगातार के एक नियमित क्रम से चलने वाली हलचलें ऐसा प्रभाव उत्पन्न करती हैं, जिन्हें रहस्यमय ही कहा जा सकता है । पुलों पर सैनिकों को पैरों को मिलाकर चलने से उत्पन्न क्रमबद्ध ध्वनि उत्पन्न करने के लिए इसलिए मना किया जाता है कि इस साधारण-सी क्रिया से पुल तोड़ देने वाला असाधारण प्रभाव उत्पन्न हो सकता है ।

जप लगातार करना पड़ता है और एक ही क्रम से इस प्रक्रिया के परिणामों को विज्ञान की प्रयोगशाला में अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है । एक टन भारी लोहे का गार्डर किसी छत के बीचों बीच लटका दिया जाय और उस पर पाँच ग्राम भारी हलके से कार्क के लगातार आघात करने प्रारम्भ कर दिये जायें तो कुछ ही समय में वह सारा गार्डर काँपने लगेगा । यह लगातार, एक गति से आघात क्रम से उत्पन्न होने वाली शक्ति का चमत्कार है । मंत्र जप यदि विधिवत् किया गया है तो उसका परिणाम भी यही होता है । सूक्ष्म शरीर में अवस्थित चक्रों और ग्रन्थियों को जप ध्वनि का अनवरत प्रभाव अपने ढंग से प्रभावित करता है और उत्पन्न हुई हलचल उनकी मूर्च्छना दूर करके जागृति का अभिनव दौर उत्पन्न करती है । ग्रन्थि भेदन तथा चक्र जागरण का सत्परिणाम जपकर्त्ता को प्राप्त होता है । जगे हुए यह दिव्य संस्कार साधक में आत्मबल का नया संचार करते हैं । उसे ऐसा कुछ अपने भीतर जगा, उगा प्रतीत होता है, जो पहले नहीं था । इन नवीन उपलब्धि के लाभ भी उसे प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर होते हैं ।

टाइप राइटर के उदाहरण से इस तथ्य को और भी अच्छी तरह समझा जा सकता है । उँगली से चाबियाँ दबाई जाती हैं और कागज पर तीलियाँ गिर कर अक्षर छापने लगती हैं । मुख में लगे उच्चारण में प्रयुक्त होने वाले कलपुर्जों को टाइप राइटर की कुंजियाँ कह सकते हैं । मंत्रोच्चार उँगली से उन्हें दबाना हुआ । यहाँ से उत्पन्न शक्ति प्रवाह नाड़ी तन्तुओं की तीलियों के सहारे सूक्ष्म चक्रों और दिव्य ग्रन्थियों तक पहुँचता है और उन्हें झकझोर कर जगाने, खड़ा करने में संलग्न होता है । अक्षरों का छपना वह उपलब्धि है, जो इन जागृत चक्रों द्वारा रहस्मयी सिद्धियों के रूप में साधक को मिलती है । यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि यदि जपयोग को विधिवत् साधा गया होगा तो उसका सत्परिणाम उत्पन्न होगा ही ।

पुलों पर से होकर गुजरती हुई सेना को पैर मिलाकर चलने पर ध्वनि प्रवाह उत्पन्न करने की मनाही कर दी जाती है । पुलों पर से गुजरते समय वे बिखरे हुए, स्वच्छन्दतापूर्ण कदम बढ़ाते हैं । कारण यह है कि लेफ्ट-राइट के ठीक क्रम से तालबद्ध पैर पड़ने से जो एकीभूत शक्ति उत्पन्न होती है उसकी अद्भुत शक्ति के प्रहार से मजबूत पुलों में दरार पड़ सकती है और भारी नुकसान हो सकता है । मंत्र जप के क्रमबद्ध उच्चारण से उसी प्रकार का तालक्रम उत्पन्न होता है और उसके फलस्वरूप शरीर के अन्तः संस्थानों में विशिष्ट हलचल उत्पन्न होती है । यह हलचलें उन अलौकिक शक्तियों की मूर्च्छना दूर करती हैं जो जागृत होने पर सामान्य मनुष्य को असामान्य चमत्कारों से सम्पन्न सिद्ध कर सकती हैं ।

हाथों को लगातार थोड़ी देर तक घिसा जाये तो वे गरम हो जाते हैं । रगड़ से गर्मी और बिजली पैदा होती है, यह नियम विज्ञान की प्रथम कक्षा में पढ़ने वाले छात्र भी जानते हैं । जप में अनवरत उच्चारण क्रम एक प्रकार का घर्षण उत्पन्न करता है । पत्थर पर रस्सी की रगड़ पड़ने से घिसाव के निशान बन जाते हैं । श्वास के आवागमन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथा रक्त की भाग-दौड़ से शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है और उसी पर जीवन अवलम्बित रहता है । डायनुमों में पहिया घूमने से बिजली उत्पन्न होने की बात सभी जानते हैं । जप करने में जो घर्षण प्रक्रिया गतिशील होती है, वह दौड़ लगाने पर शरीर के उत्तेजित हो जाने की तरह सूक्ष्म शरीर में उत्तेजना पैदा करती है और उस गर्मी से मूर्च्छित पड़ा अन्तर्जगत नये जागरण का अनुभव करता है । यह जागरण मात्र उत्तेजना नहीं होती उसके साथ-साथ दिव्य उपलब्धियों की सम्भावना भी जुड़ी रहती है ।

ध्वनियाँ उतनी ही नहीं हैं जितनी कि कानों से सुनाई पड़ती हैं । कान तो एक निश्चित स्तर के ध्वनि कम्पनों को ही सुन पाते हैं । उनकी पकड़ से ऊँचे और नीचे कम्पनों वाले भी असंख्य ध्वनि प्रवाह होते हैं जिन्हें मनुष्य के कान तो सुन नहीं सकते, पर उनके प्रभावों को उपकरणों की सहायता से प्रत्यक्ष देखा-जाना जा सकता है । इन्हें 'सुपर सौनिक' ध्वनि तरंगे कहते हैं ।

मनुष्य की ग्रहण और धारण शक्ति सीमित है । वह अपनी दुबली-सी क्षमता के लिए उपयुक्त शब्द प्रवाह ही पकड़ सके, इसी स्तर की कानों की झिल्ली बनी हैं, किन्तु यह संसार तो शक्ति का अथाह सागर है और इसमें ज्वार-भाटे की तरह श्रवणातीत ध्वनियाँ गतिशील रहती हैं । अच्छा ही हुआ कि मनुष्य की ग्रहण शक्ति सीमित है और वह अपने सीमित प्रवाह ही ले पाता है अन्यथा यदि श्रवणातीत ध्वनियाँ भी उसे प्रभावित कर सकतीं तो जीवन धारण ही सम्भव न हो पाता ।

शब्द की गति साधारणतया बहुत धीमी है । वह मात्र कुछ सौ फुट प्रति सैकण्ड की आवाज पीछे सुनाई देती है । जहाँ दृश्य और श्रव्य का समावेश है वहाँ हर जगह ऐसा ही होगा । दृश्य पहले दीखेगा और उस घटना के साथ जुड़ी हुई आवाज कान तक पीछे पहुँचेगी ।

रेडियो प्रसारण में एक छोटी-सी आवाज को विश्वव्यापी बना देने और उसे १ लाख ८६ हजार मील प्रति सेकण्ड की चाल से चलने योग्य बना देने में इलेक्ट्रो-मैगनेटिक तरंगों का ही चमत्कार होता है । रेडियो विज्ञानी जानते हैं कि 'इलेक्ट्रोमैग्नेटिक वेव्स' पर साउण्ड का सुपर कम्पोज रिकॉर्ड कर दिया जाता है और वे पलक मारते सारे संसार की परिक्रमा कर लेने जितनी शक्तिशाली बन जाती हैं ।

इलेक्ट्रो-मैग्नेटिक तरंगों की शक्ति से ही अन्तरिक्ष में भेजे गये रॉकेटों की उड़ान को धरती पर से नियंत्रित करने, उन्हें दिशा और संकेत देने, यांत्रिक खराबी दूर करने का प्रयोजन पूरा किया जाता है । वे 'लैसर' स्तर की बनती हैं, तो शक्ति का ठिकाना नहीं रहता । एक फुट मोटी लोहे की चद्दर में सूराख कर देना उनके बायें हाथ का खेल है। पतली वे इतनी होती हैं कि आँख की पुतली के लाखवें हिस्से में खराबी होने मात्र उतने ही टुकड़े का निर्धारित गहराई तक ही सीमित रहने वाला सफल ऑपरेशन कर देती हैं । अब इन किरणों का उपयोग चिकित्सा क्षेत्र में भी बहुत होने लगा है । कैन्सर, अन्त्रशोथ, यकृत की विकृति, गुर्दे की सूजन, हृदय की जकड़न जैसी बीमारियों की चिकित्सा में इनका सफल उपयोग हो रहा है ।

'सुपर सौनिक' श्रवणातीत तरंगों का जप प्रक्रिया के द्वारा उत्पादन और समन्वय होता है । जप के समय उच्चारण किये गये शब्द आत्म-निष्ठा, श्रद्धा एवं संकल्प-शक्ति का समन्वय होने से वही क्रिया सम्पन्न होती है, जो रेडियो स्टेशन पर बोले गये शब्द-विशिष्ट विद्युत शक्ति के साथ मिलकर अत्यन्त शक्तिशाली हो उठते हैं और पलक मारते ही समस्त भूमण्डल में अपना उद्देश्य प्रसारित कर देते हैं । जप प्रक्रिया में एक विशेषता यह है कि उससे न केवल समस्त संसार का वातावरण प्रभावित होता है, वरन् साधक का व्यक्तित्व भी झनझनाने, जगमगाने लगता है । जबकि रेडियो स्टेशन से प्रसारण तो होता है, पर कोई स्थानीय विलक्षणता दिखाई नहीं पड़ती । लैंसर रेडियम किरणें फेकने वाले यंत्रों में कोई निजी प्रभाव नहीं देखा जाता । वे उन स्थानों को ही प्रभावित करते हैं जहाँ उनका आघात लगता है । जप प्रक्रिया में साधक को और वातावरण को प्रभावित करने की वह दुहरी शक्ति है, जो नव वैज्ञानिकों के सामान्य यंत्र-उपकरणों में नहीं पाई जाती ।

जप सामान्य रूप से उपांशु किया जाता है, जिसमें गायत्री मंत्र का प्रयोग किया जाता है । जप का एक और महत्त्वपूर्ण प्रयोग सोऽहं साधना के रूप में भी होता है जिसमें किसी मंत्र का सीधा प्रयोग नहीं होता । इसमें जप के साथ प्राण विद्या का प्रयोग किया जाता है ।

'सोऽहम्' साधना को 'अजपा जाप' अथवा प्राण गायत्री भी कहा गया है । मान्यता है कि श्वास के शरीर में प्रवेश करते समय 'स' जैसी सांस रुकने से तनिक के विराम समय में 'ो' जैसी और बाहर निकलते समय 'हम' जैसी अत्यन्त सूक्ष्म ध्वनि होती रहती है । इसे श्वास क्रिया पर चिरकाल तक ध्यान केन्द्रित करने की साधना द्वारा सूक्ष्म कर्णेन्द्रिय द्वारा सुना जा सकता है । चूँकि ध्वनि सूक्ष्म है स्थूल नहीं, इसलिए उसे अपने छेद वाले कानों से नहीं, सूक्ष्म शरीर में रहने वाली सूक्ष्म कर्णेंद्रिय द्वारा शब्द तन्मात्रा के रूप में ही सुना जा सकता है । कोई खुले कानों से इन शब्दों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुनने का प्रयत्न करेगा तो उसे कभी भी सफलता न मिलेगी ।

नादयोग में मात्र सूक्ष्म कर्णेन्द्रिय द्वारा शंख, घड़ियाल, बादल, झरना, वीणा जैसे कितने ही दिव्य शब्द सुने जाते हैं, किन्तु हंस-योग में नासिका एवं कर्णेन्द्रिय की समन्वित सूक्ष्य शक्ति का दुहरा लाभ मिलता है । 'सोऽहम्' को अनाहत शब्द कहा गया है । आहत वे हैं, जो कहीं कोई चोट लगने से उत्पन्न होते हैं । अनाहत वे हैं जो बिना किसी आघात के उत्पन्न होते हैं । नादयोग में जो दिव्य ध्वनियाँ सुनी जाती हैं उनके बारे में दो मान्यतायें हैं । एक यह है कि प्रकृति के अन्तराल सागर में पाँच तत्वों और सत, रज, तम यह तीन गुणों की जो उथल-पुथल मचती रहती है यह उनकी प्रतिक्रिया है, दूसरे यह माना जाता है कि शरीर के भीतर जो रक्त संचार, आकुंचन-प्रकुंचन, श्वास-प्रश्वास जैसी क्रियायें अनवरत रूप से होती रहती हैं, यह शब्द उन हलचलों से उत्पन्न होते हैं । अस्तु यह आहत हैं । नादयोग को भी कई जगह अनाहत कहा गया है, पर आम मान्यता यही है कि वे आहत हैं । मुख से जो शब्द उत्पन्न होते हैं, वे भी होंठ, जीभ, कण्ठ, तालु आदि अवयवों की मांसपेशियों की उठक-पटक से उत्पन्न होते हैं, अस्तु जप भी आहत हैं । आहत से अनाहत का महत्त्व अधिक माना गया है। अनाहत ब्रह्म चेतना द्वारा निश्चित और आहत प्रकृतिगत हलचलों से उत्पन्न होते हैं अस्तु उनका महत्त्व भी ब्रह्म और प्रकृति की तुलना जैसा ही न्यूनाधिक है ।

तत्वदर्शियों का मत है कि जीवात्मा के गहन अन्तराल में उसकी आत्मबोध प्रज्ञा स्वयमेव जगी रहती है और उसी की स्फुरणा से 'सोहिम्' का आत्मबोध अजपा जाप बनकर स्वसंचालित बना रहता है । संस्कृत भाषा के स+अहम् शब्दों से मिलकर 'सोऽहम्' का आविर्भाव माना जाता है । यहाँ व्याकरण शास्त्र की संधि प्रक्रिया के झंझट में पड़ने की आवश्यकता नहीं है । जो सनातन ध्वनियाँ चल रही हैं वे व्याकरण शास्त्र के अनुकूल हैं या नहीं यह सोचना व्यर्थ है । देखना इतना भर है कि इस सनातन शब्द संचार का क्या भाव बैठता है ? 'सो' अर्थात् वह । श्अहम्' अर्थात् मैं । दोनों का मिला-जुला निष्कर्ष निकलाद्य''वह मैं हूँ।'' 'वह' अर्थात् परमात्मा, मैं अर्थात् जीवात्मा । दोनों का समन्वय एकीभाव- 'सोऽहम्' । आत्मा और परमात्मा एक है, यह अद्वैत सिद्धान्त का समर्थन है । तत्वमसि, अयमात्मा, ब्रह्म-शिवोहम्, सच्चिदानन्दोहम्, शुद्धोसि, बुद्धोसि, निरंजनोसि जैसे वाक्यों में इसी दर्शन का प्रतिपादन है । उनमें जीव और ब्रह्म की तात्विक एकता का प्रतिपादन है ।

'सोऽहम्' उपासना के निमित्त किये गये प्राणायाम में इसी अविज्ञात तथ्य को प्रत्यक्ष करने का प्रसुप्त को जगाने का प्रयत्न किया जाता है । जीव अपने आपको शरीर मान बैठा है । उसी की सुविधा एवं प्रसन्नता की बात सोचता है, उसी के लाभ प्रयत्नों में संलग्न रहता है । काया के साथ जुड़े हुए व्यक्ति और पदार्थ ही उसे अपने लगते हैं और उसी सीमित सम्बन्ध क्षेत्र तक ममत्व को सीमित करके, अन्य सबको पराया समझता रहता है । 'अपनों' के लाभ के लिए 'परायों' को हानि पहुँचाने में उसे संकोच नहीं होता । यही है माया मग्न, भव-बन्धनों में जकड़े हुए मोहग्रस्त जीव की स्थिति । इसी में बँधे रहने के कारण उसे स्वार्थ के, व्यर्थ के, अनर्थ के, कामों में संलग्न रहना पड़ता है । यही स्थिति प्राणी को अनेकानेक आधि-व्याधियों में उलझाती और शोक-संताप के गर्त में धकेलती है । इससे बचा, उबरा जाय, इस समस्या को हल करने के लिए आत्म-ज्ञान एवं साधना विज्ञान का ढाँचा खड़ा किया गया है ।

'सोऽहम्' को सद्ज्ञान, तत्वज्ञान, ब्रह्मज्ञान कहा गया है । इससे आत्मा को अपनी वास्तविक स्थिति समझने, अनुभव करने का संकेत मिलता है । 'वह परमात्मा मैं ही हूँ ।' इस तत्वज्ञान में माया मुक्ति स्थिति की शर्त जुड़ी हुई है । नर-कीट, नर-पशु और नर-पिशाच जैसी निकृष्ट परिस्थितियों में घिरी 'अहंता' के लिए इस पुनीत शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता । ऐसे तो रावण, कंस, हिरण्यकश्यप जैसे अहंकारग्रस्त आततायी ही लोगों के मुख से अपने को ईश्वर कहलाने के लिए बाधित करते थे । अहंकार उन्मत्त मनःस्थिति में वे अपने को वैसा समझते भी थे, पर इससे बना क्या ? उनका अहंकार ही ले डूबा । 'सोऽहम्' साधना में पंचतत्वों और तीन गुणों से बने घिरे शरीर को ईश्वर मानने के लिए नहीं कहा गया है । ऐसी मान्यता तो उलटा अहंकार जगा देगी और उत्थान के स्थान पर पतन का नया कारण बनेगी । यह दिव्य संकेत आत्मा के शुद्ध स्वरूप का विवेचन है । वह वस्तुतः ईश्वर का अंश है । समुद्र और लहरों की, सूर्य और किरणों की, मटाकाश और घटाकाश की, ब्रह्माण्ड और पिण्ड की, आग और चिनगारी की उपमा देकर परमात्मा और आत्मा की एकता का प्रतिपादन करते हुए मनीषियों ने यही कहा है मल-आवरण, विक्षेपों से, कषाय-कल्मषों से मुक्त हुआ जीव वस्तुतः ब्रह्म ही है । दोनों की एकता में व्यवधान मात्र अज्ञान का है, यह अज्ञान ही अहंता के रूप में विकसित होता है और संकीर्ण स्वार्थ-परता में निमग्न होकर व्यर्थ चिन्तन तथा अनर्थ कार्य में निरत रहकर अपनी दुर्गति अपने हाथों आप बनाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना का उद्देश्य मनःक्षेत्र में भरी कुण्ठाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । सर्वतोमुखी निर्मलता का अभिवर्धन ही ईश्वर प्राप्ति की दिशा में बढ़ने वाला महान् प्रयास माना गया है । सोऽहम्-साधना की प्रतिक्रिया यही होनी चाहिए ।

'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' की उक्ति धर्मशास्त्रों में अनेक स्थानों पर लिखी पाई जाती है और अनेक धर्मोपदेशकों द्वारा आये दिन सुनी जाती है । उसे सामान्य बुद्धि जानती और मानती भी है, पर इतने भर से बनता कुछ नहीं । यह मान्यता अन्तःकरण के गहनतम स्तर की गहराई तक उतरनी चाहिए । गहन आस्था बनकर प्रतिष्ठापित होने वाली श्रद्धा ही अन्तःप्रेरणा बनती है और उसी के धकेले हुए मस्तिष्क तथा शरीर रूपी सेवकों को कार्य संलग्न होना पड़ता है । 'सोऽहम्' तत्वज्ञान यदि अन्तरात्मा की प्रखर श्रद्धा के रूप में विकसित हो सके तो उसका परिणाम सुनिश्चित रूप से दिव्य जीवन जैसा कायाकल्प बनकर सामने आना चाहिए । तब व्यक्ति को उसी स्तर पर सोचना होगा जिस पर ईश्वर सोचता है और वही करना होगा जो ईश्वर करता है । एकता की स्थिति में दोनों का स्वरूप भी एक हो जाता है । नाला जब गंगा में मिलता है और बूँद समुद्र में घुलती है तो दोनों का स्वरूप एवं स्तर एक हो जाता है । ब्रह्म भाव से जगा हुआ जीव अपने चिन्तन और कर्म क्षेत्र में सुविकसित स्तर का देव मानव ही दृष्टिगोचर होता है ।

स्पष्ट है कि जप किन्हीं शब्द विशेषों को बोल देना मात्र नहीं है उसमें वाक्शक्ति, चिन्तन तथा प्राण एवं भाव शक्ति का भी प्रयोग करना होता है । इस प्रकार किया हुआ जप प्राणवान् जीवन्त जप कहा जा सकता है । उपासना के इस महत्त्वपूर्ण अंग को अपनाकर उसका समुचित लाभ निश्चित रूप से उठाया जा सकता है ।

ध्यान धारणा की दिव्य-शक्ति

ध्यान एक ऐसी विद्या है जिसकी आवश्यकता हमें लौकिक जीवन में भी पड़ती है और आध्यात्मिक अलौकिक क्षेत्र में भी उसका उपयोग किया जाता है । ध्यान को जितना सशक्त बनाया जा सके, उतना ही वह किसी भी क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध हो सकता है । मनुष्य को जो कुछ प्राप्त है उसके ठीक-ठीक उपयोग तथा जो प्राप्त करना चाहिए, उसके प्रति प्रखरता--दोनों ही दिशाओं में ध्यान बहुत उपयोगी है । उपासना क्षेत्र में भी ध्यान की इन दोनों ही धाराओं का उपयोग किया जाता है । अपने स्वरूप और विभूतियों का बोध तथा अपने लक्ष्य की ओर प्रखरता दोनों ही प्रयोजनों के लिए ध्यान का प्रयोग किया जाता है ।

हम अपने स्वरूप, ईश्वर के अनुग्रह-जीवन के महत्त्व एवं लक्ष्य की बात को एक प्रकार से पूरी तरह भुला बैठे हैं । न हमें अपनी सत्ता का ज्ञान है, न ईश्वर का ध्यान और न लक्ष्य का ज्ञान । अज्ञानान्धकार की भूल-भूलैयों में बेतरह भटक रहे हैं । यह भुलक्कड़पन विचित्र है । लोग वस्तुओं को तो अक्सर भूल जाते हैं, सुनी, पढ़ी बातों को भूल जाने की घटनायें भी होती रहती हैं । कभी के परिचित भी विस्मृत होने से अपरिचित बन जाते हैं, पर ऐसा कदाचित ही होता है कि अपने आप को भी भुला दिया जाये । हम अपने को शरीर मात्र मानते हैं । उसी के स्वार्थों को अपना स्वार्थ, उसी की आवश्यकताओं को अपनी आवश्यकता मानते हैं । शरीर और मन यह दोनों ही साधन जीवन रथ के दो पहिये मात्र हैं, पर घटित कुछ विलक्षण हुआ है । हम आत्मसत्ता को सर्वथा भुला बैठे हैं । यों शरीर और आत्मा की पृथकृता की बात कही-सुनी तो अक्सर जाती है, पर वैसा भान जीवन में कदाचित ही कभी होता हो । यदि होता भी है तो बहुत ही धुँधला । यदि वस्तु स्थिति समझ ली जाती है और जीव सत्ता तथा उसके उपकरणों की पृथकृता का स्वरूप चेतना में उभर आता है तो आत्म-कल्याण की बात प्रमुख बन जाती है और वाहनों के लिए उतना ही ध्यान दिया जाता है जितना कि उनके लिए आवश्यक था । आज तो 'हम' नंगे फिर रहे हैं और वाहनों को स्वर्ण आभूषणों से सजा रहे हैं । 'हम' भूखे मर रहे हैं और वाहनों को घी पिलाया जा रहा है । 'हम' से मतलब है आत्मा और वाहन से मतलब है शरीर और मन । स्वामी-सेवकों की सेवकाई में लगा है और अपने उत्तरदायित्वों को सर्वथा भुला बैठा है, यह विचित्र स्थिति है । वस्तुतः हम अपने आपे को खो बैठे हैं ।

आध्यात्मिक ध्यान का उद्देश्य है, अपने स्वरूप और लक्ष्य की विस्मृति के कारण उत्पन्न वर्तमान विपन्नता से छुटकारा पाना । 'एक बच्चा घर से चला ननिहाल के लिए । रास्ते में मेला पड़ा और वह उसी में रम गया । वहाँ के दृश्यों में इतना रमा कि अपने घर तथा गन्तव्य को ही नहीं अपना पता भी भूल गया ।' यह कथा बड़ी अटपटी लगती है, पर है सोलहों आने सच और वह हम सब पर लागू होती है । अपना नाम पता, परिचय पत्र, टिकट आदि सब कुछ गँवा देने पर हम असमंजस भरी स्थिति में खड़े हैं कि आखिर हम हैं कौन ? कहाँ से आये हैं और कहाँ जाना था ? स्थिति विचित्र है, इसे न स्वीकार करते बनता है और न अस्वीकार करते । स्वीकार करना इसलिए कठिन है कि हम पागल नहीं, अच्छे-खासे समझदार हैं । सारे कारोबार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलाते हैं, फिर आत्म-विस्मृत कहाँ हुए ? अस्वीकार करना भी कठिन है क्योंकि वस्तुतः हम ईश्वर के अंश हैं--महान मनुष्य जन्म के उपलब्धकर्ता हैं तथा परमात्मा को प्राप्त करने तक घोर अशान्ति की स्थिति में पड़े रहने की बात को भी जानते हैं । साथ ही यह भी स्पष्ट है कि जो होना चाहिए, वह नहीं हो रहा है और जो करना चाहिए वह कर भी नहीं रहे हैं । यही अन्तर्द्वन्द्व उभर कर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में छाया रहता है और हमें निरन्तर घोर अशान्ति अनुभव होती है ।

जीवन का लक्ष्य पूर्णता प्राप्त करना है । यह पूर्णता ईश्वरीय स्तर की ही हो सकती है । आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए उस लक्ष्य पर ध्यान को एकाग्र करना आवश्यक है । महत्त्वपूर्ण इमारतें बनाने से पूर्व उनके नक्शे, छापे एवं मॉडल बनाये जाते हैं । इंजीनियर, कारीगर उसी को देख-देखकर अपना निर्माण कार्य चलाते हैं और समयानुसार इमारत बनकर तैयार हो जाती है । भगवान का स्वरूप और गुण, कर्म, स्वभाव कैसा हो इसकी ध्यान प्रतिमा विनिर्मित की जाती है और फिर उसके साथ समीपता, एकता, तादाम्यता स्थापित करते हुए उसी स्तर का बनने के लिए प्रयत्न किया जाता है । ध्यान प्रक्रिया का यही स्वरूप है ।

व्यक्तिगत जीवन में कितने ही व्याकुल विचलित कर देने वाले ऐसे प्रसंग आते हैं, जो मनःस्थिति को उद्विग्न करके रख देते हैं । इन आवेशग्रस्त क्षणों में मनुष्य संतुलन खो बैठता है--न सोचने योग्य सोचता है, न कहने योग्य कहता है और न करने योग्य करता है । गलती आखिर गलती ही रहती है और उसके दुष्परिणाम भी निश्चित रूप से होते हैं । इसीलिए कहा जाता है कि मुसीबत अकेली नहीं आती अपने साथ विपत्तियों का नया परिवार समेट लाती है । इस कथन में सचाई इसलिए है कि जिन कारणों से मानसिक संतुलन बिगड़ा था उनकी हानि तो प्रत्यक्ष ही थी । हानि न होती तो उद्वेग क्यों होता ? अब उद्वेग के कारण जो असंगत चिन्तन, कथन और क्रिया-कलाप आरम्भ हुआ उसने अन्यान्य कितनी ही नई समस्यायें उत्पन्न करके रख दीं । कई बार तो उद्विग्नता शारीरिक-मानसिक अस्वस्थता उत्पन्न करने से भी आगे बढ़ जाती है और आत्महत्या अथवा दूसरों की हत्या कर डालने जैसे संकट उत्पन्न करती है ।

असंतुलन को सन्तुलन में बदलने के लिए ध्यान-एकाग्रता के कुशल अभ्यास से बढ़कर और कोई अधिक उपयोगी उपाय हो ही नहीं सकता । कई बार मन, क्रोध, शोक, कामुकता, प्रतिशोध, विक्षोभ जैसे उद्वेगों में बेतरह फँस जाता हैं और उस स्थिति में अपना या पराया कुछ भी अनर्थ हो सकता है । उद्विग्नताओं में घिरा हुआ मन कुछ समय में सनकी या विक्षिप्त स्तर का बन जाता है । सही निर्णय कर सकना और वस्तु-स्थिति को समझ सकना उसके बस से बाहर की बात हो जाती है । इन विक्षोभों से मस्तिष्क को कैसे उबारा जाये और कैसे उसे संतुलित स्थिति में रहने का अभ्यस्त कराया जाये इसका समाधान ध्यान साधना में जुड़ा हुआ है । मन को अमुक चिन्तन प्रवाह से हटाकर अमुक दिशा में नियोजित करने की प्रक्रिया ही ध्यान कहलाती है । इसका प्रारम्भ भटकाव के स्वेच्छाचार से मन को हटाकर एक नियत निर्धारित दिशा में लगाने के अभ्यास से आरम्भ होता है । इष्टदेव पर अथवा अमुक स्थिति पर मन को नियोजित कर देने का अभ्यास ही तो ध्यान में करना पड़ता है । मन पर अंकुश पाने, उसका प्रवाह रोकने में, सफलता प्राप्त कर लेना ही ध्यान की सफलता है । यह स्थिति आने पर कामुकता, शोक संतप्तता, क्रोधान्धता, आतुरता, ललक, लिप्सा जैसे आवेशों पर काबू पाया जा सकता है । मस्तिष्क को इन उद्वेगों से रोक कर किसी उपयोगी चिन्तन में मोड़ा-मरोड़ा जा सकता है । कहते हैं कि अपने को वश में कर लेने वाला सारे संसार को वश में कर लेता है । आत्म-नियंत्रण की यह स्थिति प्राप्त करने में ध्यान साधना से बढ़कर और कोई उपाय नहीं है । इसका लाभ आत्मिक और भौतिक दोनों ही क्षेत्रों में समान रूप से मिलता है । अभीष्ट प्रयोजनों में पूरी तन्यमयता, तत्परता नियोजित करने से ही किसी कार्य का स्तर ऊँचा उठता है, सफलता का सही मार्ग मिलता है और बढ़ी-चढ़ी उपलब्धियाँ पाने का अवसर मिलता है । आत्मिक क्षेत्र में भी यही तन्मयता प्रसुप्त शक्तियों के जागरण से लेकर ईश्वर प्राप्ति तक का महत्त्वपूर्ण माध्यम बनती है ।

ध्यान योग का उद्देश्य अपनी मूलभूत स्थिति के बारे में, अपने स्वरूप के बारे में सोच-विचार कर सकने योग्य स्मृति को वापिस लौटाना है । यदि किसी प्रकार वह वापिस लौट सके तो लम्बा सपना देखकर डरे हुए व्यक्ति जैसी अन्तःस्थिति हुए बिना नहीं रह सकती । तब प्रतीत होगा कि मेले में खोये हुए बच्चे से, आत्म विस्मृत मानसिक रोगियों से अपनी स्थिति भिन्न नहीं रही है । इस व्यथा से ग्रसित लोग स्वयं घाटे में रहते हैं और अपने सम्बन्धियों को दुःखी करते हैं । हम आत्मबोध को खोकर भेड़ों के झुण्ड में रहने वाले सिंह की तरह दयनीय स्तर का जीवन-यापन कर रहे हैं और अपनी माता-परमसत्ता को कष्ट दे रहे हैं रुष्ट कर रहे हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विस्मरण का निवारण-आत्मबोध की भूमिका में जागरण–यही है ध्यानयोग का लक्ष्य । उसमें ईश्वर का स्मरण किया जाता है, अपने स्वरूप का भी अनुभव किया जाता है । जीव और ब्रह्म के मिलन की स्मृति फिर से ताजा की जाती है और यह अनुभव किया जाता है कि जिस दिव्य सत्ता से एक तरह से सम्बन्ध विच्छेद कर रखा गया है, वही हमारी जननी और परम शुभचिंतक है । इतना ही नहीं वह कामधेनु की तरह सशक्त भी है कि उसका पय पान करके देवोपम स्तर का लाभ ले सकें । कल्प-वृक्ष की छाया में बैठकर सब कुछ पाया जा सकता है, ईश्वर सत्ता से सम्पर्क, सान्निध्य, घनिष्ठता बना लेने के बाद भी ऐसा कुछ शेष नहीं रहता जिसे अभाव दारिद्रय अथवा शोक-संताप कहा जा सके । ध्यान योग हमें इसी लक्ष्य की पूर्ति में सहायता करता है । स्पष्ट है कि आत्मबोध से बढ़कर मानव-जीवन का दूसरा लाभ नहीं हो सकता । भगवान बुद्ध को जिस वट-वृक्ष के नीचे आत्म-बोध हुआ था उसकी डालियाँ काट-काट कर संसार भर में इस आशा से बड़ी श्रद्धापूर्वक आरोपित की गई थीं कि उसके नीचे बैठ कर अन्य लोग भी आत्म-बोध का लाभ प्राप्त कर सकेंगे और दूसरे बुद्ध बन सकेंगे । किसी स्थूल वृक्ष के नीचे बैठकर महान जागरण की स्थिति प्राप्त कर सकना कठिन है, पर ध्यान-योग के कल्प-वृक्ष की छाया में सच्चे मन से बैठने वाला व्यक्ति आत्म-बोध का लाभ ले सकता है और नर-पशु के स्तर से ऊँचा उठकर नर-नारायण के समकक्ष बन सकता है ।

मन जंगली हाथी की तरह है, जिसे पकड़ने के लिए पालतू प्रशिक्षित हाथी भेजने पड़ते हैं । सधी हुई बुद्धि पालतू हाथी का काम करती है । ध्यान के रस्से से पकड़-जकड़ कर उसे काबू में लाती है और फिर उसे सत्प्रयोजनों में संलग्न हो सकने योग्य सुसंस्कृत बनाती है ।

पानी का स्वभाव नीचे गिरना है । उसे ऊँचा उठाना है, तो पम्प, चरखी, ढेंकी आदि लगाने की व्यवस्था बनानी पड़ती है । निम्नगामी पतनोन्मुख प्रवृत्तियों में ही हमारी अधिकांश शक्तियाँ नष्ट होती रहती हैं । उन्हें ऊपर उठाने के लिए मस्तिष्क में दिव्य-प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने की ध्यान की प्रक्रिया अपनानी पड़ती है ।

शक्ति को उपलब्ध करना बड़ी बात नहीं, उससे बिखराव के निरर्थक एवं अपव्यय की अनर्थ मूलक बर्बादी से भी बचाया जाना चाहिए । शक्ति की उपलब्धि का लाभ तभी मिलता है, जब उसे संग्रहीत रखने और सत्प्रयोजन में लगाने की व्यवस्था बन पड़े ।

धूप, गर्मी से ढेरों पानी समुद्र तालाबों में से भाप बनकर उड़ता रहता है, चूल्हों से कितनी ही भाप उत्पन्न होती और उड़ती है उसका कोई उपयोग नहीं किन्तु इंजन में थोड़ा-सा पानी भाप बनाया जाता है । उसी भाप को हवा में उड़ जाने से बचाकर टंकी में एकत्रित किया जाता है और फिर उसका शक्ति प्रवाह एक छोटे छेद में होकर पिस्टन तक पहुँचा दिया जाता है । इतने मात्र से रेलगाड़ी का इन्जन चलने लगता है । चलता ही नहीं दौड़ता भी है । उसकी दौड़ इतनी सामर्थ्ययुक्त होती है कि अपने साथ-साथ बहुत भारी लदी रेलगाड़ी के दर्जनों डिब्बे घसीटता चला जाता है ।

सेरों बारूद यदि जमीन पर फैलाकर माचिस से जलाई जाये तो थोड़ी-सी चमक दिखाकर भक् से जल जायेगी । उसका कुछ भी उपयोगी परिणाम न निकलेगा न कोई आवाज होगी । किन्तु यदि उसे बन्दूक की छोटी नली के अन्दर कड़े खोल वाले कारतूस में बन्द कर दिया जाये और घोड़ा दबाकर नन्हीं-सी चिनगारी से स्पर्श कराया जाये तो वह एक तोले से भी कम वजन की बारूद गजब ढाती है । सनसनाती हुई दिशा विशेष की ओर प्रचण्ड गति से दौड़ती है । अपने साथ लोहे की गोली और छर्रों को भी घसीटती ले जाती है । और जहाँ टकराती है, वहाँ सफाया उड़ा देती है । बिखरी हुई बारूद की निरर्थकता और उसकी संग्रहीत शक्ति को दिशा विशेष में प्रयुक्त किये जाने की सार्थकता में कितना अन्तर है, इसे सहज ही समझा जा सकता है ।

सूर्य की किरणें सुविस्तृत क्षेत्र में बिखरी पड़ी रहती हैं । रोज ही सूर्य निकलता और अस्त होता है । धूप थोड़ी-सी गर्मी, रोशनी पैदा करने जितना ही काम कर पाती है, किन्तु यदि उन किरणों के एक-दो इंच के बिखराव को आतिशी शीशे द्वारा एक ही केन्द्र पर केन्द्रित कर दिया जाये तो देखते-देखते आग जलने लगेगी और उसे किसी बड़े जंगल में डाल दिया जाये तो दावानल बनकर भयंकर विनाश लीला प्रस्तुत कर सकता है ।

स्थूल शक्तियों की तरह सूक्ष्म शक्तियों का लाभ भी उन्हें एकत्रित करके दिशा विशेष में लगा देने से ही सम्भव हो सकता है । मस्तिष्क एक सशक्त बिजलीघर है । इसमें निरन्तर प्रचण्ड विद्युत प्रवाह उत्पन्न होता रहता है और उसके शक्तिशाली कम्पन ऐसे ही अनन्त आकाश में उड़ते-बिखरते नष्ट होते रहते हैं । यदि इस प्रवाह को केन्द्रित करके किसी विशेष लक्ष्य पर नियोजित किया जा सके, तो उसके आश्चर्यजनक परिणाम हो सकते हैं । एकाग्रता की चमत्कारी शक्ति कहीं भी देखी जा सकती है । सरकस में एक से एक बढ़कर आश्चर्यजनक खेल होते हैं । उनमें शारीरिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्ति का उपयोग कम और एकाग्रता का अधिक होता है । एक पहिये की साइकिल, एक तारर पर चलना, एक से दूसरे झूले पर उछल जाना, तश्तरियाँ तेजी से लगातार एक हाथ से उछालना और दूसरे से पकड़ना जैसे खेलों में एकाग्रतापूर्वक कुछ अंगों को सधा लेने का अभ्यास ही कौतूहल उत्पन्न करता है ।

द्रौपदी स्वयंवर में चक्र पर चढ़ी हुई नकली मछली की आँख को तीर से वेध देना विजेता होने की शर्त थी । द्रोणाचार्य उसका पूर्व अभ्यास अपने शिष्यों को करा चुके थे । निशाने पर तीर छोड़ने से पहले वे छात्रों से पूछते थे कि तुम्हें क्या दिखाई दे रहा है ? शिष्यगण मछली के आस-पास का क्षेत्र तथा उसका पूरा शरीर दीखने की बात कहते । द्रोणाचार्य उनकी असफलता पहले से ही घोषित कर देते थे । जब अर्जुन की बारी आई तो उसने प्रश्न के उत्तर में कहा--मुझे मात्र मछली की आँख दीखती है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं । गुरुदेव ने उसके सफल होने की पूर्व घोषणा कर दी और सचमुच वही स्वयंवर में मत्स्य वेध की शर्त पूरी करके द्रौपदी विवाह का अधिकारी बन सका ।

एकाग्रता की शक्ति असाधारण है । भौतिक प्रयोजनों में उसका चमत्कारी उपयोग नित्य ही देखा जाता है । बहीखाता सही रखने और मीजान ठीक जोड़ने में एकाग्रता के अभ्यासी ही सफल होते हैं अन्यथा सुशिक्षितों से भी पन्ने पर भूल होने और काँट-फाँस करने की कठिनाई उत्पन्न होती रहती है । वैज्ञानिकों की यही विशेषता है कि वे अपने विषय में तन्मय हो जाते हैं और विचार समुद्र में गहरे गोते लगाकर नई-नई खोजों के रत्न ढूँढ लाते हैं ।

लोकमान्य तिलक के जीवन का एक संस्मरण प्रसिद्ध है कि उनके अँगूठे का ऑपरेशन होना था । डॉक्टर ने दवा सुँघाकर बेहोश करने का प्रस्ताव रखा तो उन्होंने कहा--'मैं गीता के प्रगाढ़ अध्ययन में लगता हूँ, आप बेखटके ऑपरेशन कर लो ।' डॉक्टर को तब बहुत आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने बिना हिले-डुले शान्तिपूर्वक ऑपरेशन करा लिया । पूछने पर तिलक ने इतना ही कहा--तन्मयता इतनी प्रगाढ़ थी जिसमें ऑपरेशन की ओर ध्यान ही नहीं गया और दर्द भी नहीं हुआ ।

कहते हैं कि भृंग नाम का उड़ने वाला कीड़ा झींगुर पकड़ लाता है और उसके सामने निरन्तर गुंजन करता रहता है । उस गुंजन को सुनने और छवि देखते रहने में झींगुर की मनःस्थिति भृंग जैसी हो जाती है । वह अपने को भृंग समझने लगता है, अस्तु धीरे-धीरे उसका शरीर ही भृंग रूप में बदल जाता है । कीट विज्ञानी इस किम्बदंती पर सन्देह कर सकते हैं, पर यह तथ्य सुनिश्चित है कि एकाग्रतापूर्वक जिस भी व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति का देर तक चिन्तन करते रहा जाय, मनुष्य की सत्ता उसी ढाँचे में ढलने लगती है । यह सब इच्छा या अनिच्छा से किसी केन्द्र-बिन्दु पर अपने चिन्तन को केन्द्रित करने का परिणाम है ।

असंख्य विशेषतायें और क्षमतायें मानवी सत्ता के कण-कण में भरी पड़ी हैं । दशों इन्द्रियाँ जादू की पिटारियाँ हैं । उन्हें रचनात्मक दिशा में नियोजित रखा जा सके, भटकाव से बिखराव से बचाया जा सके तो अभीष्ट सफलता की दिशा में द्रुतगति से बढ़ा जा सकता है । मन ग्यारहवीं इन्द्रिय है । मस्तिष्कीय क्षमता का कोई अन्त नहीं । उसके विचार-पक्ष और बुद्धि-पक्ष का ही थोड़ा-सा प्रयोग होता है, शेष चित्त, अहंकार वाला अचेतन समझा जाने वाला, किन्तु चेतन से लाखों गुना अधिक शक्तिशाली चित्त और अहंकार कहा जाने वाला भाग तो अविज्ञात स्थिति में निष्प्रयोजन ही पड़ा रहता है । अचेतन का अर्थ यहाँ उपेक्षित कहना ही उचित है । मन और बुद्धि वाले भाग का जितना उपयोग किया जाता है उतना ही चित्त, अहंकार का भी प्रयोग होने लगे तो मनुष्य दुनियादार बुद्धिमानों की तुलना में असंख्य गुनी विचारशीलता, प्रज्ञा, भूमा प्राप्त कर सकता है और मात्र समझदार न रहकर तत्व दृष्टा की स्थिति में पहुँच सकता है ।

बिखराव को रोकने की, उपलब्ध शक्ति को संग्रहीत रखकर अभीष्ट प्रयोजन में प्रयुक्त कर सकने की कुशलता को आध्यात्मिक एकाग्रता कहते हैं । अध्यात्म शास्त्र में मनोनिग्रह अथवा चित्त निरोध इसी को कहते हैं । 'मेडीटेशन' की योग-प्रक्रिया में बहुत चर्चा होती है । इसे एकाग्र हो सकने की कुशलता भर ही समझना चाहिए । सुनने-समझने में यह सफलता नगण्य जैसी मालूम पड़ती है, पर वस्तुतः वह बहुत ही बड़ी बात है । इस प्रयोग में प्रवीण होने पर मनुष्य अपनी बिखरी चेतना को एकत्रित करके किसी एक कार्य में लगा देने पर जादू जैसी सफलतायें-उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकता है ।

एक मोटा लोहा लेकर उसे किसी कड़ी वस्तु में धँसाया जाये तो उसमें भारी कठिनाई पड़ेगी, किन्तु यदि उसकी नोंक पतली कर दी जाये तो साधारण दबाव से ही वह गहराई तक धँसता चला जायेगा । मोटे तार और सुई की पतली नोंक का अन्तर सहज ही देखा जा सकता है । तार को कपड़े या कागज की तह में ठूँसना कठिन पड़ेगा किन्तु पतली नोंक वाली सुई सरलतापूर्वक प्रवेश करती चली जायेगी । लकड़ी, पत्थर, लोहे जैसे कड़े पदार्थों में छेद करने के लिए नोंकदार बरमे ही काम देते हैं । नोंक की इस चमत्कारी शक्ति का इतना ही रहस्य है कि बड़ी परिधि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की अपेक्षा छोटी परिधि में जब दबाव केन्द्रित होता है तो उसकी शक्ति सहज ही बढ़ जाती है ।

जमीन देखने में मिट्टी, धूलि की निरर्थक-सी वस्तु प्रतीत होती है, पर यह उसकी ऊपरी परत का ही मूल्यांकन है । उसे खोदने पर एक से एक बहुमूल्य वस्तुयें मिलती चली जाती हैं । थोड़ा खोदने पर पानी निकल आता है । उससे दैनिक उपयोग के सारे काम चलते हैं । पेड़-पौधों की सिंचाई तथा कल-कारखाने चलते हैं । इससे गहरे उतरने पर अनेक रासायनिक पदार्थ, धातुयें, रत्न, गैस, तेल जैसी बहुमूल्य वस्तुएँ हाथ लगती हैं । स्मरण रखा जाना चाहिए कि यह गहरी खुदाई नोकदार बरमे ही कर सकते हैं । एकाग्रता से ही शक्तियों का एकीकरण कर सकते हैं । इससे अन्तःक्षेत्र में छिपी हुई विभूतियाँ और बाह्य क्षेत्र में फैली हुई सम्पत्तियाँ प्रचुर परिमाण में उपलब्ध हो सकती हैं और सामान्य-सा जीवन असामान्य विशेषताओं और तज्जनित सफलताओं से भरा-पूरा दृष्टिगोचर हो सकता है । जिस प्रकार जमीन खोदने में एक से एक बढ़कर बहुमूल्य खनिज सम्पदायें निकलती हैं, उसी प्रकार एकाग्रता की शक्ति में व्यक्तित्व के साथ जुड़ी हुई गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टतायें और बल, बुद्धि, विद्या, मैत्री, कीर्ति, प्रतिभा जैसी विशेषतायें प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होती रह सकती हैं ।

एकाग्रता का एक चमत्कार मैस्मेरेज्म-हिप्नोटिज्म भी है । प्रयोगकर्ता अपनी दृष्टि को एक बिन्दु पर एकत्रित करने का अभ्यास करता है । अपनी इच्छा शक्ति को समेट कर लक्ष्य केन्द्र में समाविष्ट करता है । फलस्वरूप जादुई शक्ति उत्पन्न होती है और उससे दूसरों को सम्मोहित करके उन्हें इच्छानुवर्ती बनाया जा सकता है । उनमें मानसिक परिवर्तन लाये जा सकते हैं तथा प्रखरता के नये बीज बोये जा सकते हैं । प्राण-विद्या के द्वारा शारीरिक, मानसिक चिकित्सा के अनेक कठिन कार्य पूरे किये जाते हैं । यह सब एकाग्रता का ही चमत्कार है ।

ध्यानयोग का उद्देश्य मस्तिष्कीय बिखराव को रोककर उसे एक चिन्तन बिन्दु पर केन्द्रित कर सकने में प्रवीणता प्राप्त करना है । इस प्रयोग में जिसे जितनी सफलता मिलती जाती है, उसकी अन्तःचेतना में उसी अनुपात से वेधक प्रचण्डता उत्पन्न होती जाती है । शब्दवेधी वाण की तरह लक्ष्यवेध कर सकना उसके लिए सरल हो जाता है । यदि अध्यात्म उसका लक्ष्य होगा तो उसे क्षेत्र में आशाजनक प्रगति होगी और विभूतियों से, दिव्य ऋद्धि-सिद्धियों से उसका व्यक्तित्व भरा-पूरा दिखाई पड़ेगा । यदि लक्ष्य भौतिक उन्नति है तो भी इस एकाग्रता का समुचित लाभ मिलेगा और अभीष्ट प्रयोजनों में आशाजनक सफलता मिलती चली जायेगी । शक्ति का जब, जिस भी दिशा में प्रयोग किया जायेगा उसी में सत्परिणाम प्रस्तुत होते चले जायेंगे ।

एकाग्रता मस्तिष्क में उत्पन्न होते रहने वाली विचार तरंगों के निरर्थक बिखराव को निग्रहीत करना है । छोटे से बरसाती नाले का पानी रोककर बाँध बना लिये जाते हैं और उसके पीछे सुविस्तृत जलाशय बन जाता है । इस जलराशि से नहरें निकालकर दूर-दूर तक क्षेत्र हरा-भरा बनाया जाता है । वही नाला जब उच्छृंखल रहता है तो किनारों को तोड़-फोड़कर इधर-उधर बहता है और उस बाढ़ से भारी बर्बादी होती है । मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाली विचारधारा को किसी विशालकाय विद्युत निर्माण कारखाने से कम नहीं आँका जाना चाहिए । बिजलीघरों की शक्ति सीमित होती है और वे अपनी परिधि के छोटे से क्षेत्र को ही बिजली दे पाते हैं, पर मस्तिष्क के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है । उसकी आज की क्षमता अगले दिनों अनेक गुनी हो सकती है और प्रभाव क्षेत्र, जो आज घर-परिवार तक सीमित है, वह कल विश्व-व्यापी बन सकता है । बिजलीघर के तार निर्धारित वोल्टेज की क्षमता धारण किये रहने के लिए बाध्य हैं, पर मस्तिष्क की प्रचण्ड सत्ता परिस्थिति के अनुसार इतनी अधिक क्षमता सम्पन्न हो सकती है कि क्षेत्र, समाज की सीमा को पार करते हुए अपने प्रभाव से समस्त संसार को प्रभावित कर सके और वातावरण को बदल देने में अति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सके ।

ध्यान की अद्भुत क्षमताओं के कारण उसका उपयोग ईश्वर प्राप्ति, जीवन लक्ष्य प्राप्ति जैसे महानतम उद्देश्यों के लिए भी किया जाता है । उपासना के साथ ध्यान को अविच्छिन्न रूप से जोड़ा जाता है । विभिन्न सम्प्रदायों तथा विधियों में उसके प्रकारों में थोड़ा बहुत अन्तर भले ही हो पर ध्यान का समावेश हर पद्धति में है अवश्य ।

उपासना क्षेत्र में ध्यान साकार और निराकार दो प्रकार के कहे गये हैं । एक में भगवान की अमुक मनुष्याकृति को मान कर चला जाता है, दूसरे में प्रकाश पुंज की आस्था जमाई जाती है । तात्विक दृष्टि से यह दोनों ही साकार हैं । सूर्य जैसे बड़े और प्रकाश बिन्दु जैसे छोटे आकार का ध्यान रखना भी तो एक प्रकार का आकार ही है, अन्तर इतना ही तो हुआ कि उसकी मनुष्य जैसी आकृति नहीं है । ध्यान के लिए ईश्वर की, परम लक्ष्य की, आकृति बनना आवश्यक है । यों नादयोग, स्पर्शयोग, गन्धयोग को आकृति रहित कहा जाता है, पर ऐसा सोचना अनुपयुक्त है । नादयोग में शंख, घण्टा, घड़ियाल, वीणा आदि की ध्वनियाँ सुनी जाती हैं, पर अनचाहे ही वे वाद्य यंत्र कल्पना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में आते रहते हैं, जिनसे वे ध्वनियाँ निःसृत होती हैं । इस प्रकार गन्ध ध्यान में मात्र गंध पर ही चिन्तन एकाग्र नहीं हो सकता, जिस पुष्प की वह गन्ध है, उसकी आकृति अनचाहे ही सामने आती रहेगी । ध्यान में आकृति से पीछा नहीं छूट सकता । मस्तिष्क की बनावट ही ऐसी है कि वह निराकार कहलाने वाले चिन्तन की भी आकृतियाँ बना कर ही आगे चलता है । वैज्ञानिक के गहरे चिन्तन को निराकार कहा जाता है, पर वस्तुतः वह भी जो सोचता है, उसमें कल्पना क्षेत्र की एक पूरी प्रयोगशाला सामने रहती है और प्रयोगात्मक हलचलें आँधी-तूफान की तरह अपना काम कर रही होती हैं । अन्तर इतना ही होता है कि वह स्थूल प्रयोगशाला के उपकरण छोड़कर वही सारा प्रयोग कृत्य काल्पनिक प्रयोगशाला में कर रहा होता है । ध्यान में आकृति से पीछा छुड़ाना सम्भव नहीं हो सकता । अस्तु किसी को साकार-निराकार के वितंडावाद में न पड़कर ध्यान धारणा के सहारे आत्म चिन्तन का प्रयोजन पूरा करना होगा ।

मानसिक ध्यान की सफलता के लिए मस्तिष्कीय विकास सामान्य स्तर की अपेक्षा कुछ अधिक ऊँचा होना चाहिए । यदि उसे अध्ययन, चिन्तन, मनन आदि के द्वारा गहरा गोता मारने, कोमल संवेदनाओं को उभारने, किसी बात पर देर तक चिन्तन कर सकने योग्य विकसित न किया गया होगा तो समुचित ध्यान कर सकना सम्भव ही न हो सकेगा । अविकसित मानसिक स्तर के लोग इन्द्रिय सम्वेदना भर अनुभव करते हैं, वे कान या आँख की सहायता से देख या सुनकर कुछ सोच-समझ सकते हैं । कवियों, वैज्ञानिकों एवं दृष्टाओं जैसा सूक्ष्म चिन्तन उनके लिए सम्भव नहीं होता । अस्तु उन्हें उनकी स्थिति के अनुरूप दृश्य प्रतिमाओं के आधार पर परमात्मा की समीपता का उपासना-उद्देश्य पूरा कराना होता है ।

हर व्यक्ति नये क्षेत्र में प्रवेश करते समय बालक ही होता है, चाहे वह अन्य विषयों में कितना ही सुयोग्य क्यों न हो ? कोई अच्छा वकील अपने विषय का विशेषज्ञ हो सकता है, पर उसे नया शिल्प सीखते समय बाल कक्षा के छात्र की तरह ही आरम्भ करना होगा । उपासना जिनका विषय नहीं रहा, वे अन्य विषयों के विद्वान होते हुए भी इस क्षेत्र में नौसिखियों की तरह ही प्रवेश करते हैं । अस्तु उन्हें ध्यान प्रक्रिया का अभ्यास करने के लिए प्रतीक पूजा का आश्रय सुविधाजनक ही रहता है । छतों पर सीमेण्ट, गिट्टी, लोहे का स्लैव डालने के लिए उसके नीचे 'सहारे' खड़े करने होते हैं । छत कड़ी हो जाने पर 'सहारे' निकाल दिये जाते हैं और फिर वह अपने आप खड़ी रहती है । इतना ही नहीं, अपने ऊपर वजन भी उठा लेती है, किन्तु आरम्भ में जबकि वह ढलाई गीली थी, तो बिना सहारे के काम नहीं चल सकता था । प्रतीक पूजा की आरम्भिक अवस्था में आवश्यकता पड़ती ही है । निराकारवादी व्यक्ति रूप में न सही अन्य किसी प्रतीक को माध्यम बनाकर अपना काम चलाते हैं । नमाज पढ़ते समय कावा की तरफ मुँह किया जाता है । कावा का अर्थ ईश्वरीय शक्ति का विशेष प्रतिनिधित्व करने वाली इमारत है । दूसरे लोग सूर्य आदि की प्रकाश ज्योति को आधार बनाते हैं । कुण्डलिनी जागरण, चक्रवेधन आदि योगाभ्यासों में भी अमुक स्थानों को दिव्य शक्ति का केन्द्र मानकर वहाँ अपनी इच्छा शक्ति नियोजित करनी पड़ती है । यह भी ध्यान के ही रूप हैं और इनमें आकृति का सहारा लेना होता है ।

ध्यान में केवल रूप देखते रहना भर पर्याप्त नहीं उसमें गहरी तन्मयता पैदा करनी होती है । साकार उपासना में इष्ट देव के समीप-अति समीप होने और उनके साथ लिपट जाने-उच्चस्तरीय प्रेम के आदान-प्रदान की गहरी कल्पना करनी चाहिए । इसमें भगवान और जीव के बीच माता-पुत्र, पति-पत्नी, सखा-सहोदर, स्वामी-सेवक जैसा कोई भी सघन सम्बन्ध माना जा सकता है, इससे आत्मीयता को अधिकाधिक घनिष्ठ बनाने में सहायता मिलती है । लोक व्यवहार में स्वजनों के बीच आदान-प्रदान उपहार और उपचार की तरह चलते हैं । मन, वचन, कर्म से घनिष्ठता एवं प्रसन्नता व्यक्त की जाती है । भेंट उपहार में कई तरह की वस्तुयें दी जाती हैं । नवधा भक्ति में ऐसे ही आदान-प्रदान की वस्तु परक अथवा क्रिया परक कल्पना की गई है । वस्तुतः यहाँ प्रतीकों को माध्यम बना कर भावनात्मक आदान-प्रदान की गहराई में जाया जाना चाहिए । भक्त और भगवान के बीच सघन आत्मीयता की अनुमति उत्पन्न करने वाला आदान-प्रदान चलना चाहिए । भक्त अपनी अहंता को क्रिया, विचारणा, भावना एवं सम्पत्ति को भगवान के चरणों पर अर्पित करते हुए सोचता है कि यह सारा वैभव उसी दिव्य सत्ता की धरोहर है । इसका उपयोग व्यक्तिगत वासना, तृष्णा के लिए नहीं ईश्वरीय प्रयोजनों के लिए किया जाता है । वह स्वयं तो मात्र (खजान्ची-स्टोर-कीपर) भर है ।

ध्यान का एक मात्र उद्देश्य भगवान और भक्त के बीच एकात्म भाव की स्थापना करना है, मात्र किसी आकृति का ध्यान चित्र देखते भर रहने से काम नहीं चलता । भक्त अपने स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों को क्रिया, विचारणा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और भावना को ईश्वर अर्पण करके उसे मात्र दिव्य प्रयोजनों में नियोजित रखने का संकल्प सघन करता है । इसके साथ-साथ भौतिक धन सम्पत्ति तो अर्पित हो ही जाती है । समर्पण का तात्पर्य है— व्यक्तिगत-भौतिक महत्त्वाकांक्षाओं की समाप्ति और उसके स्थान पर ईश्वर इच्छा की, उच्च आदर्शों की अपने ऊपर नियंत्रण करने वाली स्थापना । इसी मान्यता को अन्तःकरण में यथार्थवादी निष्ठा के साथ स्थापित करने को आत्म-समर्पण कहते हैं । ध्यान के द्वारा इसी निष्ठा को परिपक्व किया जाता है ।

भक्त का समर्पण, बदले में भगवान का अनुग्रह आश्वासन । इसी के तरह-तरह के लौकिक स्वरूप चित्र कल्पित किये जा सकते हैं । साकार ध्यान में अपनी रुचि की कल्पनायें करते रहने और उस दृश्यावली में डूबे रहने की पूरी छूट है । ध्यान की एकाग्रता इसी सीमा तक है कि उसमें भक्त और भगवान के बीच होने वाले आदान-प्रदान की कल्पनायें ही चलनी चाहिए, भौतिक लाभ का प्रयोजन आड़े नहीं आना चाहिए । पूर्ण एकाग्रता, जिन्हें शून्यावस्था, योगनिद्रा या समाधि कहते हैं, यह आरम्भिक साधना में लगभग असम्भव ही है, इसकी बात नहीं सोची जानी चाहिए। ध्यान साधना का व्यावहारिक रूप इतना ही है कि भक्त और भगवान के बीच उच्चस्तरीय आदान-प्रदान चलना चाहिए । भक्त अपनी समस्त आकांक्षाओं और सम्पदाओं को ईश्वर के लिए समर्पित करता है और इसके बदले में वह सब कुछ पाता है, जो ईश्वर स्वयं है । मनुष्य को स्पष्ट करने वाली ईश्वरीय सत्ता अपनी अनुभूति, आनन्द और उल्लास के रूप में छोड़ती है । भगवान से कुछ मिला या नहीं इसकी परख इस रूप में की जा सकती है कि उल्लास-आदर्शवादिता के प्रति उत्कण्ठा भरा उभार अन्तःकरण में उमंगना आरम्भ हुआ या नहीं । सद्भावना और सत्प्रवृत्ति अपनाने वाले को सहज ही मिलते रहने वाला आत्म-संतोष, आनन्द अनुभव में आता है या नहीं ।

ईश्वर दर्शन के सम्बन्ध में यह भ्रान्त धारणा निरस्त की जानी चाहिए कि सपने में या जागृति में इष्टदेव की किसी आकृति की झांकी मिलती है अथवा प्रकाश आदि दीखने जैसा कोई चित्र-विचित्र दृश्य दिखाई पड़ता है । यदि ऐसा किसी को होता हो तो उसे झाड़ी का भूत, रस्सी का साँप दीखने की तरह अपने संकल्पों की मानसिक प्रतिक्रिया भर समझना चाहिए । जब चेतना की कोई आकृति हो ही नहीं सकती तो फिर उसका निर्भान्त दृश्य दिखाई ही कैसे दे सकता है ? इस तथ्य को हजार बार हृदयंगम कर लिया जाना चाहिए कि ईश्वर का जीवन में समावेश श्रेष्ठ वृत्तियों के रूप में होता है । आदर्शवादी आकांक्षायें प्राणप्रिय प्रतीत होने लगने और तदनुरूप गति-विधियाँ अपनाने पर मिलने वाले आनन्द-उल्लास की अनुभूति का स्तर ही ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र प्रमाण है ।

निराकार ध्यान में प्रायः सर्वत्र सूर्य के प्रकाश को ही माध्यम बनाया जाता है । प्रभातकाल के उदीयमान सूर्य का सविता देवता के प्रतीक रूप में दर्शन, उसकी दिव्य किरणों का शरीर, मन और अन्तरात्मा में प्रवेश, उस प्रवेश की सत्कर्म, सद्ज्ञान के रूप में प्रतिक्रिया । इसी परिधि में निराकार ध्यान धारणा परिभ्रमण करती है । यज्ञाग्नि रूपी ईश्वर में आहुति द्रव्य की तरह जीव सत्ता का समर्पण, नाले का गंगा में, बूँद का समुद्र में सम्पादन, दीप ज्योति का सूर्य ज्योति में विलय, अर्घ्य जल का भाप बनकर व्यापक क्षेत्र में विस्तार, पतंगे का दीपक को समर्पण जैसे कितने ही दृश्य-चित्र कल्पना क्षेत्र में बनाये जा सकते हैं और उनके सहारे एकात्म भाव की अनुभूति का आनन्द लिया जा सकता है ।

यहाँ यह तथ्य स्मरणीय है कि ध्यान में एकाग्रता का महत्त्व तो है किन्तु एकाग्रता ही ध्यान है, यह भ्रम मन से निकाल देना चाहिए । एकाग्रता का अभ्यास क्रमशः होता है और वह समय साध्य है । इसलिए उसमें उतावली बरतने की आतुरता प्रदर्शित करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं । निरन्तर जीवन लक्ष्य का ध्यान रखा जाये तो उस धारा प्रवाह को 'एक दिशा' कहा जाता है और उससे एकाग्रता का वास्तविक प्रयोजन पूरा हो सकता है ।'

ध्यान धारणा में एक बिन्दु पर मन एकाग्र करने की बात बहुत आगे की है । पहले तो साकार ध्यान में साकार की ध्यान प्रतिमायें बनानी पड़ती हैं । निराकारवादी भी सूर्य आदि का कोई रूप बनाते हैं अथवा नादयोग में विभिन्न शब्दों को सुनते हैं । रूप या शब्द का ध्यान करने के माध्यम से एकाग्रता का अभ्यास किया जाता है, पर विचारपूर्वक देखा जाये तो प्रतीत होगा कि उस ध्यान प्रक्रिया में भी बिखराव ही बिखराव भरा पड़ा है । इष्टदेव की प्रतीक छवि में उनके अंग-प्रत्यंग, वस्त्र-आभूषण, आयुध, वाहन आदि का बड़ा आवरण रहता है और उस विस्तृत क्षेत्र में यहाँ से वहाँ उड़ते-फिरने की मन को पूरी छूट रहती है । इष्टदेव यदि शिव हैं, तो ध्यान करते समय साधक को छूट है कि वह उनके सिर पर टँगे चन्द्रमा को, गंगा के उद्भव को, लिपटे हुए सर्पों को, कटि प्रदेश में पहने व्याघ्र चर्म को, गले की मुण्डमाला को, नान्दी वाहन की छवि को देखे और उस सीमित ध्यान क्षेत्र में कहीं भी दौड़ लगाता रहे । फिर एकाग्रता कहाँ हुई ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निराकारवादी प्रायः सूर्य किरणों का शरीर के रोम-रोम में प्रवेश करने का अथवा चित्र-विचित्र ध्वनियाँ सुनने का अभ्यास करते हैं । इसमें भी चिन्तन विस्तार का उतना ही क्षेत्र विद्यमान है, जितना साकारवादी मान्यताओं में । जब मन को इतनी दौड़-धूप करने और इतने भिन्न प्रकार के अनुभव करने की छूट रही तो वह एकाग्रता कैसे बनी ?

वस्तुतः जिसे हम एकाग्रता कहते हैं, वह सब चित्त की भाग-दौड़ को असीम से रोककर एक सीमित क्षेत्र में प्रतिबन्धित करना है । मन बार-बार भागता है और उसे पकड़-पकड़ कर बार-बार निश्चित ध्यान परिधि में लाया जाता है । यही प्रयोग चलता रहता है । पूर्ण एकाग्रता समाधि अवस्था है और वह पूर्णता पर जा पहुँचने पर ही मिलती है । उसके लिए किसी को भी अधीर नहीं होना चाहिए ।

हजार बार इस तथ्य को समझ लेना चाहिए कि पूर्ण एकाग्रता साधना काल की आरम्भिक प्रक्रिया या आवश्यकता किसी भी दृष्टि से नहीं है । उसके लिए न तो लालायित होना चाहिए न खिन्न । प्रयत्न करते रहना भर पर्याप्त है । मीरा, सूर, चैतन्य, रामकृष्ण परमहंस आदि भक्तजनों की भाव स्थिति का सूक्ष्म अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वे एकाग्रता नहीं तन्मयता प्राप्त कर सके और उसी में उनका लक्ष्य मिल गया । भक्त सम्प्रदाय में प्रणय, वियोग, अश्रुपात, समर्पण, आलिंगन जैसे भावोन्मादों की घटायें ही उमड़ती रहती हैं । उस मनःस्थिति में एकाग्रता किसी भी प्रकार सम्भव नहीं । यदि एकाग्रता ही सर्वोपरि रही होती तो भक्तजनों पर हर घड़ी छाया रहने वाला भावोन्माद तथा उसके उभार में उठने वाले हास्य, रोदन, नृत्य, अवसाद आदि की उद्विग्नता लक्ष्य प्राप्ति में बहुत बड़ी बाधा बन गई होती, पर ऐसा हुआ नहीं है ।

यहाँ एकाग्रता का महत्व घटाया नहीं जा रहा है और न उसे त्याज्य या उपेक्षणीय कहा जा रहा है । एकाग्रता की उपयोगिता में किसी को संदेह नहीं होना चाहिए, इतने पर भी सर्वसाधारण के मन में जमी हुई इस भ्रान्ति का निराकरण होना ही चाहिए कि-- 'भजन में मन लगाना अर्थात् चित्त का एकाग्र होना आवश्यक है, वह है तो भजन की सफलता नहीं है तो असफलता', इस चिन्तन को हटाकर यों सोचना चाहिए कि 'चित्त निरोध नहीं चित्तवृत्तियों का निरोध' आवश्यक है । एकाग्रता नहीं 'एक दिशा' अभीष्ट है । यदि ऐसा बन पड़े तो समझना चाहिए कि ध्यान साधना की सही पृष्ठभूमि बन चली ।

समूची ब्रह्म सत्ता को समझा जा सकना मनुष्य की छोटी बुद्धि के लिए असम्भव है । ब्रह्माण्ड बहुत बड़ा है, उसका विस्तार हमारी कल्पना शक्ति से बाहर है । अपनी पृथ्वी पर प्रकृति की जो कार्य पद्धति है, अन्य लोकों में उससे भिन्न है । पृथ्वी के प्राणधारियों की आकृति-प्रकृति चिन्तन एवं जीवन-यापन पद्धति में आकाश-पाताल जैसा अन्तर है । फिर अन्य लोकवासी चैतन्य प्राणियों की रीति-नीति के बारे में तो कहा ही क्या जा सकता है ? समूचा ब्रह्म न तो हमारी समझ में ही आ सकता है और न उसे समझने की आवश्यकता है । मानवी चेतना के साथ ब्रह्म चेतना का जितना अंश सम्बन्धित है उस भाग को ईश्वर या परमेश्वर कहते हैं । हमारे आनन्द एवं उत्थान में उसी की भूमिका रहती है । अस्तु साधना के लिए उसी छोटी ब्रह्म परिधि के साथ हमारा सम्पर्क मिला लेना पर्याप्त माना गया है । उपासना का केन्द्र-बिन्दु यह ईश्वर ही रहता है ।

आवश्यकतानुसार विशेष सूक्ष्म शक्ति उपार्जन करने के लिए अमुक देवी-देवताओं की उपासना की खण्ड साधना भी की जा सकती है, पर अपना अनुभव और परामर्श यह है कि समग्र ब्रह्म की साधना ही सर्वोत्तम है । आहार वही आदर्श माना जाता है जिसमें पोषण के सभी तत्व मौजूद हों। प्रोटीन कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, अकेले उसी को खाना लाभदायक न रहेगा । अमुक देवता की उपासना अकेली प्रोटीन, अकेली कैल्सियम खाने की तरह है । आवश्यकता पड़ जाने पर चिकित्सा उपचार की तरह कोई विशेष तत्व अमुक मात्रा में लिया जाता है, इसी प्रकार विशेष प्रयोजन के लिए कोई देव-साधना उपयोगी हो सकती है, पर सर्वतोमुखी प्रगति के लिए, सर्वकालिक साधना समग्र ब्रह्म की ही होनी चाहिए ।

कई तरह के देवी-देवताओं की, कई प्रकार की आकृतियों का संग्रह करने में ध्यान बँटता है और निष्ठा विकेन्द्रित होती है । पूजा-स्थली एवं ध्यान प्रक्रिया में चित्र-विचित्र साज-सज्जा इकट्ठी इसलिए की जाती है कि कई देवता कई तरह के वरदान देंगे और सभी से थोड़ा-थोड़ा सम्बन्ध बना रहने से पंचमेल स्वाद मिलेगा और भी कई तरह के लाभ होंगे । पर यह मान्यता उपासना के क्षेत्र में उल्टी बैठती है । ध्यान और निष्ठा को केन्द्रित रखना उपासना का महत्त्वपूर्ण आधार है । उसे बिखेरना नहीं चाहिए । हमने एक ही रूप को पर्याप्त माना है और परामर्श मानने वालों को अपनी ही भाँति एक ही ध्यान के लिए अनुरोध किया है । सविता देवता के रूप में परब्रह्म की उपासना सर्वोत्तम है । 'प्रकाश' की साधना साकार और निराकारवादी दोनों ही पक्षों के लिए समाधान कारक है । सभी धर्म सम्प्रदायों ने किसी न किसी रूप में प्रकाश ध्यान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की महत्ता स्वीकार की है । हर साधक उसे अपने इष्टदेव का चेतनात्मक रूप मान सकता है । इसलिए उसे सार्वभौम भी कह सकते हैं । गायत्री मंत्र का देवता सविता है । छवि स्थूल, विचारणा सूक्ष्म, भावना कारण इन तीनों का समन्वय करते हुए अपना उपास्य सद्ज्ञान रूपी सूर्य हो, उसकी किरणों में गायत्री मंत्र की सदाशयता और अन्तराल में अनन्य प्रेम से ओत-प्रोत मातृ सत्ता की झाँकी की जा सकती है । इस ध्यान में तीनों शरीरों की आवश्यकता पूरी कर सकने जैसे सभी तथ्य विद्यमान हैं । साकार, निराकार का भी इसमें समन्वय है । उच्चस्तरीय उपासना के लिए यही ध्यान प्रतिमा सर्वोत्तम समझी गई है ।

ईश्वर सत्-चित्-आनन्द रूप है । सत् और चित् का भाव प्रकाश और अपने परम हितैषी के रूप में उसका ध्यान करने से आता है । आनन्द रूप में उसकी गहन अनुभूति के लिए प्रकाश की अपेक्षा रसरूप में उसका ध्यान अधिक उपयोगी सिद्ध होता है । खेचरी मुद्रा द्वारा भगवान का ध्यान रसरूप में किया जाता है । शास्त्र वचन है 'रसोवै सः' । हमारे जीवन में अतृप्ति, भटकाव, शुष्कता, इसीलिए है कि हम ईश्वर को रस रूप, आनन्द रूप में अनुभव नहीं कर पाते ।

खेचरी मुद्रा में जीभ तालु से लगाकर भगवान को रस प्रवाह के रूप में अवतिरत किया जाता है । हमारा मस्तिष्क शिव का कैलाश है, विष्णु का क्षीरसागर है, ब्रह्मा का सहस्त्रदल कमल, सहस्रार चक्र भी यही है । विश्वव्यापी सूक्ष्म चेतना से हमारा यही केन्द्र बनता है । अस्तु रस रूप में, आनन्द रूप में ईश्वरीय चेतना के प्रवाह की अनुभूति भी इसी केन्द्र से हो सकती है । उपासना में जप और ध्यान के अतिरिक्त खेचरी मुद्रा का भी समावेश इसी दृष्टि से किए जाने का निर्देश दिया गया है ।

प्रकाश का, इष्टदेव की शक्ति से अपने रोम-रोम के प्रभावित होने का, ध्यान जप के साथ भी चल सकता है तथा स्वतंत्र रूप से भी इसे किया जा सकता है । खेचरी मुद्रा में जीभ की विशिष्ट स्थिति रखी जाने से जप नहीं चल सकता इसीलिए यह ध्यान अलग से ही करना पड़ता है ।

ध्यान का सही स्वरूप हम समझें तथा उसका उपयोग ठीक ढंग से कर सकें तो हमारी लौकिक और पारलौकिक प्रगति के अनेक व्यवधान दूर हो सकते हैं । इसका महत्व समझते हुए अपने जीवन में इसका नियमित और संतुलित क्रम बिठाया जाना हर दृष्टि से कल्याणकारी है ।



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आत्मिक प्रगति के लिए अवलम्बन की आवश्यकता

अनुदान एवं अनुग्रह की पावन परम्परा

विद्यार्थी को सुयोग्य बनाने में उसका अपना पुरुषार्थ ही सराहा जाता है, पैर वस्तुतः उस सफलता के पीछे अभिभावकों का अनुदान और अध्यापक का कौशल एवं परिश्रम भी असाधारण भूमिका सम्पन्न कर रहा होता है । आत्म-कल्याण और व्यक्तित्व के निर्माण में मनुष्य का अपना चिन्तन, चरित्र, व्यवहार, संकल्प और साहस काम करता है, तो भी उसके पीछे कुछ परोक्ष एवं दैवी अनुदान भी अपना योगदान करते हैं । यह गुरुतत्व के माध्यम से आते हैं । शिष्य अपनी श्रद्धा शक्ति को इसी आधार पर बलवती बनाते हैं । इतना ही नहीं, वे उसी श्रद्धा के सहारे लक्ष्य तक सरलतापूर्वक पहुँचने में सफल होते हैं ।

जिस श्रद्धा के सहारे मीरा ने गिरधर गोपाल को साथ रहने के लिए विवश किया, एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मिट्टी से बनी प्रतिमा को असली द्रोण से भी अधिक समर्थ बनाया था । रामकृष्ण परमहंस ने पत्थर की प्रतिमा को जीवन्त काली जैसा भोग ग्रहण करने के लिए सहमत कर लिया था । यह श्रद्धा तत्व ही आत्मिक प्रगति का आधारभूत कारण है । इसे उपार्जित करने के लिए जीवन्त गुरु का आश्रय लेना पड़ता है । व्यायामशाला में प्रवेश करके ही बलिष्ठ पहलवान बनने की बात सधती है । डम्बलों, मुगदरों के सहारे भुजदण्ड मजबूत किये जाते हैं । श्रद्धा सम्वर्धन के लिए गुरु प्रतीक को सदाशयता की प्रतिमा मानकर चलना होता है । यह भाव निर्धारण प्रायः वैसा ही है, जैसा कि मिट्टी के ढेले से कलावा लपेट करकर उसे श्रद्धा आरोपण द्वारा साक्षात् गणेश जैसा समर्थ बनाया जाता है ।

हर महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए शिक्षक की आवश्यकता पड़ती है । अभिभावकों से सुनकर बच्चा बोलना सीखता है । 'रामू' बालक भेड़िया द्वारा पाला गया था, वह उन्हीं की तरह चलता, बोलता और खाता था । यदि कोई जन्म-जात बहरा हो तो फिर वह गूँगा भी रहेगा । क्योंकि जब दूसरों के शब्द कान में घुसते ही नहीं, तो अपने आप किस प्रकार भाषा ज्ञान प्राप्त करे और कैसे अनुकरण करने पर आरम्भ होने वाले उच्चारण का अभ्यास करे ? बोलने से ही नहीं, बच्चा खाने, नहाने, पहनने, सोने जैसे सामान्य शिष्टाचार तक बड़ों के व्यवहार को देखकर ही सीखता है । यदि वह शिक्षण न मिले, तो फिर वनमानुष स्तर का निर्वाह ही बन पड़ेगा । यह पारिवारिक शिक्षण का ही प्रभाव है कि मनुष्य को सभ्य बनने का अवसर मिलता है ।

कोई व्यक्ति अपने आप न तो सुशिक्षित हो सकता है, न सुसंस्कृत । इन दोनों विशेषताओं को शिक्षकों के सहारे ही उपलब्ध किया जाता है । अक्षर ज्ञान, गणित आदि अपने आप नहीं सीख सकता । संगीत, शिल्प आदि का शुभारम्भ किसी अध्यापक के द्वारा ही कराया जाता है । पुस्तकों से भी बहुत कुछ सीखा जाता है । अपने मन में कोई बात उपजती है, पर पुस्तक के पढ़ने और मन को कल्पना करने योग्य बनाने के लिए किन्हीं व्यक्तियों का प्रत्यक्ष या परोक्ष आश्रय लेना पड़ता है । जन्म-जात रूप से हर किसी में पशु-प्रवृत्तियों का बाहुल्य होता है । मानवी सुसंस्कारिता विकसित करने के लिए तदनुरूप शिक्षा-संस्थानों एवं अध्यापकों का आश्रय लेना पड़ता है । बढ़ना किसी भी दिशा में क्यों न हो, उसके लिए अभीष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता रहेगी । यह कार्य शिक्षण की उपेक्षा करके सम्भव नहीं हो सकता ।

आत्मिक प्रगति का क्षेत्र भी ऐसा ही है । उसमें मार्गदर्शन एवं सहयोग चाहिए । फिर इस धारा में एक विशेषता यह है कि इसे एक प्रकार से प्रवाह विरुद्ध उपक्रम कहना चाहिए । जन-समुदाय की प्रवृत्तियाँ, विचारणाएँ, इच्छायें, आदतें, गतिविधियाँ प्रायः पेट-प्रजनन में निरत, स्वार्थी, कुसंस्कारियों जैसी होती हैं । इस प्रवाह में सामान्य स्तर के व्यक्तित्व, नदी में बहने वाले पत्ते, आँधी में उड़ने वाले तिनके जैसे होते हैं । जैसा अधिकांश सोचते और करते हैं, उसी का अनुकरण सामान्य स्तर के लोगों से भी बन पड़ता है । आत्मिक प्रगति के लिए भिन्न स्तर का चिन्तन तथा क्रम अपनाना पड़ता है । इसके लिए कोई न कोई अवलम्बन चाहिए । यह कार्य किन्हीं समर्थ आदर्शवादी व्यक्तित्वों के साथ घनिष्ठता स्थापित करने पर ही बन पड़ता है । इसी व्यवस्था का नाम गुरु-वरण या गुरु-दीक्षा है ।

नीचे गिरने के लिए किसी की जरूरत नहीं पड़ती । यह कार्य तनिक भी इच्छा या असावधानी होने पर, पृथ्वी की सहज गुरुत्वाकर्षण शक्ति पूरी कर देती है । ऊँचा उठना

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो तो कई साधन जुटाने पड़ते हैं । कुएँ से पानी निकालना हो, तो रस्सी तथा खींचने के लिए बल चाहिए । आकाश में उपग्रह छोड़ने के लिए प्रचण्ड ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है । जबकि उल्काएँ बिना प्रयत्न के ही धरती पर गिरती रहती हैं । ऊँचा उठना एक बड़ा काम एवं बड़ा सुयोग है, उसके लिए अवलम्बन चाहिए । बिना लकड़ी का सहारा लिए ऊँचे पर्वतों पर चढ़ना कठिन है । इसी प्रकार बिना ऊँचाई की दिशा में उठाने वाले सहायक-अध्यापक के, आत्मिक प्रगति की, मनुष्य में देवत्व के उदय की समस्या हल होती नहीं । बिना किसी अवलम्बन के बल-बूते, पूर्व सन्चित संस्कारों के सहारे कोई ऊँचे उठ सके, यह असम्भव तो नहीं, पर उसे अपवाद ही माना जायेगा । सामान्य विधि यह है कि आत्मिक उत्कर्ष की बात सोचनी हो तो उसके लिए ऐसे समर्थ व्यक्ति के साथ घनिष्ठता स्थापित की जाये, जो उस प्रयोजन को संपन्न कर सकने में समर्थ हो । इसी निर्धारण का नाम गुरु-वरण है ।

गुरु-वरण आवश्यक है या नहीं ? यह कार्य अनेकों सुयोग्यों से सम्पर्क साधते रहने पर भी सम्भव है या नहीं ? इन प्रश्नों के उत्तर में पी०-एच० डी० करने वाले, चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट की परीक्षा देने, एडवोकेट, इन्जीनियर या डॉक्टर की प्रैक्टिस करने से पूर्व निर्धारित समय तक किसी सुव्यवस्थित अभ्यास की विधि-व्यवस्था पर गौर करना होगा । इन सभी प्रयोजनों के लिए निश्चित 'गाइड' नियुक्त करने होते हैं । किसी से भी, कहीं भी, कुछ भी, जहाँ-तहाँ से अनुभव लाभ प्राप्त करते रहने की बात यदि कोई छात्र सोचे और किसी एक से बँधने की बात को व्यर्थ कहे, तो उसका कथन समीचीन नहीं माना जायेगा । निश्चित नियुक्ति में एक निश्चित उत्तरदायित्व बनता है और उस सीमा-बन्धन के आधार पर निश्चिन्तता भी रहती है ।

अनिश्चय की दशा में जहाँ-तहाँ से चंचु प्रवेश करते रहने से उपर्युक्त कार्यों में से एक भी नहीं सधता । इसलिए परम्परा ऐसी ही बनायीं गई है कि महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए विधिवत् एवम् निर्धारित प्रशिक्षण हो, चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट, एडवोकेट, डॉक्टर आदि का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने की अवधि में भी किन्ही विशिष्टों के साथ जुड़े रहने की विधि-व्यवस्था है । इस मर्यादा का उल्लंधन करने से भी बात बनती नहीं । यों अन्यों से पूछताछ करके, तद्विषयक अनेकानेक पुस्तकें पढ़कर, अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करते रहने पर कोई रोक नहीं है, फिर भी निश्चित उत्तरदायित्व में बँधने की प्रचलित विधा का उल्लंघन करने, उसे निरर्थक मान कर उपेक्षा करने से भी बात बनती नहीं ।

छात्र की स्थिति और आवश्यकता बढ़ने के साथ-साथ नये अध्यापक नियुक्त करने की बात तो समझ में आती है, पर नियुक्ति की सर्वथा अवहेलना को बेतुका ही कहा जायेगा । प्राथमिक और माध्यमिक पाठशालाओं में प्रगति करने के साथ-साथ, अध्यापकों का भी परिवर्तन होता है । हाईस्कूल-कॉलेज में पहुँचने पर भी यह परिवर्तन होता है । विषयों के हिसाब से भी अध्यापक नियुक्ति के बिना बात बनती नहीं । हवा में उड़ते-फिरने वाले तिनके की तरह रहकर, विशिष्ट विषयों के गम्भीर ज्ञानार्जन की आवश्यकता पूरी होती नहीं । पी०-एच० डी० के छात्र यों पुस्तकालयों के आश्रय और निजी अध्यवसाय के सहारे भी अपना काम चलाते हैं, पर साथ ही यह भी स्पष्ट है कि वे 'गाइड नियुक्त' की उपेक्षा करके, शोध प्रबन्ध को सीधे विश्वविद्यालय के सम्मुख प्रस्तुत नहीं कर सकते । यही तथ्य आत्मिक क्षेत्र की सुनिश्चित उपलब्धियों के सम्बन्ध में भी लागू होता है।

इन दिनों गुरु-वरण के लिए जन-साधारण में उत्साह नहीं रहा । उपेक्षा भी होती है और अनावश्यक भी समझा जाता है यह घनिष्ठता नितान्त उपयोगी और तर्क संगत होते हुए भी यह अवहेलना क्यों दृष्टिगोचर होती है ? तलाश करने पर इसके पीछे तर्क और तथ्य भी काम करते दिखते हैं ।

विचारणीय है कि आत्मिक प्रगति का क्षेत्र भौतिक प्रगति से किसी भी प्रकार कम नहीं । भौतिक प्रगति तो मात्र दूसरों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करती एवं विलासिता भर बढ़ाती है । इतने पर भी उनके साथ दुष्प्रवृत्तियों और अवांछनीय गतिविधियों के बढ़ने का जोखिम भी जुड़ा रहता है । इसके विपरीत आत्मिक प्रगति में व्यक्तित्व की गरिमा असाधारण रूप से बढ़ती है, फलतः साधन एवं सहयोग की भी कमी नहीं रहती और दोनों क्षेत्रों से लाभान्वित होने का अवसर मिलता है । इस तथ्य के असंख्य साक्षियों से इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े हैं । बुद्ध, ईसा, गाँधी, विवेकानन्द आदि के महान व्यक्तित्वों ने, संसार का एवं अपना सच्चे अर्थों में कल्याण किया और वे दुहरा लाभ उठा ले गये । इसके विपरीत हिरण्यकश्यप, रावण, मारीच, कंस, दुर्योधन, सिकन्दर का एकाकी वैभव और दर्प उन्हें ले डूबा, साथ ही संसार को दुःसह शोक-सन्ताप के पतन-पराभव में धकेल देने का कारण भी बना । इस दृष्टि से आत्मिक प्रगति के साथ जुड़ी हुई विभूतियों को हर दृष्टि से महत्त्वपूर्ण, आवश्यक, उपयोगी एवं सुखद सम्भावनाओं से भरी-पूरी माना जा सकता है । इस क्षेत्र की उपलब्धियों के लिए गुरु का आश्रय लेकर प्रगति पथ के प्रशस्त होने की बात भी स्पष्ट है । इतने पर भी उस सम्बन्ध में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्यमनस्कता क्यों पनपी ? इसके पीछे आधारभूत कारण ढूँढ़ निकालने की आवश्यकता है ।

इन दिनों गुरु-शिष्य के नाम पर चलने वाली विडम्बना कितनी दुर्गतिग्रस्त है, यह देखने योग्य है । अध्यापक को शिक्षण कार्य आरम्भ करने से पूर्व अपने विषय का निष्णात होना चाहिए । आत्मिक प्रगति के लिए दूसरों की सहायता करने का उत्तरदायित्व उठाने के लिए आवश्यक है कि वे स्वयं उस सन्दर्भ में उच्चस्तरीय-स्तर पर अवस्थित हों । उनका ज्ञान, अनुभव, चरित्र, इतिहास इस बात को पुष्ट करता हो, कि उन्होंने जो करने का विश्वास दिलाया है, उसे करने की स्थिति में हैं या नहीं ? आत्मिक बल के लिए कठोर तितीक्षा का आश्रय लेना पड़ता है । यह कार्य बातों के बताशे बनाने से, औंधा-सीधा आडम्बर बना लेने भर से नहीं बनता । इस क्षेत्र का निष्णात होने के लिए उच्चस्तरीय ज्ञान सम्पदा, चरित्रनिष्ठा, परमार्थ-भावना एवं तपश्चर्या का विपुल संग्रह होना चाहिए । इसके बिना कोई व्यक्ति किसी दूसरे को ऊँचा उठाने में सहायता नहीं कर सकता ।

इन दिनों ऐसे व्यक्ति दीख नहीं पड़ते, फिर भी वे अहंकार पूर्ति और लिप्सा से प्रेरित होकर गुरु बनने और चेला बनाने का कुचक्र चलाते ही रहते हैं । इस माया जाल में कई फँसते भी हैं । पर उनके पल्ले कुछ पड़ता नहीं । कान फूँक देने और गुपचुप मन्त्र सिखा देने के बदले गुरु दक्षिणा के नाम पर वस्त्र एवं धनराशि का अच्छा खासा उपार्जन कर लेने का लाभ तो मात्र गुरु नामधारी की ही रहा । पीछे भी ठगते रहने का रास्ता खुला, किन्तु शिष्य तो बेचारा बुरी तरह मारा गया । वह भ्रम-जंजाल में फँसा और किसी कुचक्री द्वारा निरन्तर ठगे जाने का भोला शिकार बना, पर हस्तगत कुछ नहीं हुआ । मिट्टी के बने हाथी, घोड़े देखने भर के होते हैं । उन पर चढ़कर लम्बी यात्रायें करने का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता । कागज की नाव देखने में कितनी ही सस्ती, सुन्दर क्यों न हो, वह किसी को पार करने की भूमिका नहीं निभा सकती । यही स्थिति इन दिनों गुरु-शिष्य के नाम पर चलने वाली विडम्बना की है । जिसके पीछे तथ्य एवं सत्य नहीं, उसकी पोल खुलनी ही है, उपेक्षा एवं अवहेलना होनी ही है । यही है आज के लोकमानस का विश्लेषण, जिसमें गुरु वरण की बात सामने आने पर न केवल उपेक्षा होती है, वरन् प्रचलित विडम्बना का खोखला स्वरूप सामने आते ही चिढ़ भी पैदा होती है ।

यह सामयिक विश्लेषण हुआ । इस दृष्टि से उपेक्षा का औचित्य समझा जा सकता है । इतने पर भी तथ्य जहाँ के तहाँ रहते हैं । यदि वस्तुतः आत्मिक प्रगति की बात उपयोगी प्रतीत होती हो, तो उसके लिए आवश्यक साधन जुटाने ही होंगे । इन साधनों में पूजा-उपचार ही पर्याप्त नहीं, वरन् ऐसा सहयोग एवं अवलम्बन भी चाहिए, जिसके सहारे अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में सहायता कर सकने योग्य अवलम्बन की उपलब्धि हो सके । यह प्रयोजन सध सके, तो समझना चाहिए कि मंजिल पार हो गयी ।

भारतीय संस्कृति में ब्रह्मा, विष्णु, महेश की तरह तीन देवता धरती के माने गये हैं । माता, पिता और गुरु की तुलना उन त्रिदेवों से की गयी है । माता ब्रह्मा है, क्योंकि वह पेट में रखती और अपना शरीर काट कर, बालक का शरीर बनाकर जन्म देती है । पिता को विष्णु माना गया है, क्योंकि वह बालक के भरण-पोषण की शिक्षा, चिकित्सा, शादी, आजीविका जैसी, अनेकों आवश्यकताओं की पूर्ति करके उसे समर्थ बनाता है । इस प्रकार पिता विष्णु ठहरता है । गुरु की गरिमा इन दोनों से ऊँची है । माता-पिता तो मात्र शरीर का ही सृजन और पोषण करते हैं, जबकि गुरु आत्मा में, व्यक्तित्व में सुसंस्कारिता का आरोपण करके, उसे इसी जन्म में दूसरा जन्म प्रदान करता है । द्विजत्व एक उच्चस्तरीय संस्कार है, जिसे यज्ञोपवीत दीक्षा के साथ कर्मकाण्ड के रूप में सम्पन्न किया जाता है । यह प्रतीक पूजा हुई । वस्तुतः इस कृत्य के पीछे गुरु वरण की भूमिका ही काम करती है । माता-पिता के सहयोग से मानव शरीर की उपलब्धि जितनी महत्त्वपूर्ण है, उससे भी अधिक गुरु गरिमा की सहायता, नर-पशु को नर-नारायण बनने की सम्भावना के सम्बन्ध में समझी जा सकती है । आत्मिक क्षेत्र का परिशोधन-परिष्कार कर सकने वाली गुरु गरिमा को वस्तुतः मूर्तिमान शिव कहा जा सकता है । इसी रूप में वन्दना अभ्यर्थना के स्तवन-छंद भी बने और गाये गये हैं।

जब देव संस्कृति की प्रौढ़ता का युग था, तब बच्चों को थोड़ा-सा समझदार होते ही गुरुकुलों में भेज दिया जाता था। वहाँ उनकी प्रतिभा, प्रखरता एवं सुसंस्कारिता उभरती थी । जो काम माता-पिता अपनी अयोग्यता के कारण नहीं कर सकते थे, उनकी पूर्ति गुरु गरिमा की छत्र-छाया में निवास करने पर सहज उपलब्ध होती थी । बचपन की नियमित शिक्षा-व्यवस्था पूर्ण होने के उपरान्त भी, गुरु की आवश्यकता उच्चस्तरीय प्रयोजन के लिए बनी रहती है । यह बात अलग है कि उसकी पूर्ति गुरुकुल वाले उपाध्याय से आगे वाले आचार्य सम्पन्न करें । नियमित-दैनिक रूप से ही नहीं, गुरु समयानुसार, आवश्यकतानुसार शिष्य की सहायता करता है । उसे अपने प्रकाश एवं अनुदान से लाभान्वित करता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गुरुजनों के सान्निध्य-अवलम्बन से, कितने ही सामान्य व्यक्तियों को असामान्य बनने का अवसर मिलता है । बुद्ध के अनुग्रह से हर्षवर्धन, अशोक, आनन्द, कुमारजीव जैसे कितनों को महानता के उच्च शिखर तक पहुँचने का सुयोग मिला । अंगुलिमाल, अम्बपाली जैसे कितने हीन व्यक्ति, महामानव के रूप में काया-कल्प कर सकने का सौभाग्य अर्जित कर सके । समर्थ गुरु रामदास और शिवाजी की, रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द की, चाणक्य और चन्द्रगुप्त की, विरजानन्द और दयानन्द की आत्मिक घनिष्ठता यदि बन न पड़ी होती, तो यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि दोनों ही पक्ष घाटे में रहते । विशेषतया इन युग्मों से सम्बन्धित शिष्य पक्ष को ही, अपेक्षाकृत अधिक घाटे में रहना पड़ता । कल्पना की जा सकती है कि यदि स्व० राजेन्द्र बाबू, पटेल, नेहरू, राजगोपालाचार्य, विनोबा आदि की गाँधीजी के साथ घनिष्ठता न जुड़ी होती, अपना-अपना अभ्यस्त ढर्रा अपनाये रहे होते, तो निश्चय ही दोनों पक्षों को उतना गौरवान्वित होने का अवसर न मिलता, जितना की सम्भव हो सका । सम्भव है उस स्थिति में गाँधीजी अपनी तपश्चर्या को भगीरथ, दधीचि आदि की तरह एकाकी भी चलाते रहते और महानता के उच्च शिखर पर पहुँच जाते, किन्तु उनसे सम्बन्धित अगणित व्यक्तियों की स्थिति सर्वथा भिन्न होती । वे कामकाजी लोगों की तरह मात्र अपना निर्वाह ही चलाते, एक छोटे दायरे में ही दिन गुजारते और धनी-निर्धनी रहकर जिन्दगी के दिन पूरे करते । उन्हें यह सौभाग्य न मिल पाता, जो गाँधीजी की छत्र-छाया का आश्रय लेने पर मिल सका ।

समर्थ बनना हो तो समर्थों का आश्रय लें

बेलें ऊपर उठने के लिए किसी पेड़ का सहारा लेती हैं । हमको भी यदि किसी महान मार्गदर्शक का अनुग्रह न मिला होता तो उस स्थिति में न पहुँच सके होते, जिसमें कि पहुँच सकने में समर्थ हुए । हमने अपने मार्गदर्शक पर समग्र श्रद्धा एकत्रित करके समर्पित की है, फलतः उदार अनुदानों की अमृतवर्षा होने लगी और उसका लाभ आरम्भ से लेकर आज तक अनवरत एवं अविच्छिन्न क्रम से मिलता रहा । यदि इस स्तर पर शिष्य का श्रद्धा समर्पण न रहा होता, तो सम्भवतः अन्य अनेक चित्र-पूजकों की तरह हमारे पल्ले भी कुछ न कुछ पड़ा होता ।

रामकृष्ण परमहंस के तथाकथित अगणित शिष्य थे । सभी को वे आशीर्वाद भी देते रहे, पर जिन्हें निहाल कर दिया, वे एक ही थे विवेकानन्द । एक के साथ पक्षपात, अन्यों के साथ उपेक्षा का आरोप यहाँ लागू नहीं होता । गड्ढा जितना गहरा होता है उतना ही वर्षा का जल उसमें जमा हो जाता है । ऊँचे टीले और चट्टानों पर तो घनघोर वर्षा का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता । वे रूखे के रूखे, प्यासे के प्यासे ही रह जाते हैं । अध्यात्म क्षेत्र में देवता की, सिद्ध पुरुषों की सामर्थ्य का जितना महत्त्व है उससे अधिक शिष्य की श्रद्धा का है । द्रोणाचार्य को शरीर और मन समेत नौकर रख कर भी कौरव वह न सीख सके, जो एकलव्य ने दूर रहकर भी मिट्टी की प्रतिमा के माध्यम से उपलब्ध कर लिया था । यह श्रद्धा का ही चमत्कार है । आत्मिक प्रगति में इसको आधारभूत कारण माना गया है। मन्त्र इसी के आधार पर फलित होते हैं । देवता इसी सीढ़ी के सहारे स्वर्ग से उतर कर साधक के जीवन में प्रवेश करते और कृत-कृत्य बनाते हैं । इस श्रद्धा को जो जिस मात्रा में जमा सका, समझना चाहिए कि उसके लिए आध्यात्म विभूतियाँ उपलब्ध करने का स्वनिर्मित राजमार्ग मिल गया। श्रद्धा विहीनों के लिए मन्त्र को बकवास और देवता को खिलवाड़ से अधिक और कुछ नहीं समझा जा सकता । इसमें गुरु वरण का श्रद्धा अभ्यास ही प्रथम सोपान है ।

इस रहस्य को समझाने के लिए शास्त्रकारों ने प्रबल प्रयत्न किये हैं । यहाँ तक की गुरु को गोविन्द से भी बढ़कर माना है, उसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उपमा दी है । इतने पर भी क्यों उसके लिये उत्साह नहीं उठता ? इसका एक ही कारण है कि वैसे समर्थ व्यक्तित्वों का आज एक प्रकार से सर्वथा अभाव ही हो चला, जिन्हें गुरु वरण किया जा सके ।

जिनकी जीवनचर्या में तपश्चर्या, आदि से अन्त तक गुँथी नहीं है, जिनके अध्ययन-अध्यवसाय की ज्ञान सम्पदा अगाध नहीं है, जो लोक मंगल के लिए आत्म विसर्जन कर सकने में समर्थ नहीं हो सके, जिनका चरित्र दूध जैसा धवल नहीं है; उनमें अपनी गाड़ी आप घसीट सकने तक की तो सामर्थ्य होती नहीं, अपने लिए जिस-तिस के सामने पल्ले पसारते फिरते हैं, फिर वे अन्यान्यों की, शिष्यों की सहायता कर सकने में किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं ? ऐसों का आश्रय लेने पर "लोभी गुरु लालची चेला" वाली उक्ति ही चरितार्थ होती है और एक-दूसरे को "दोनों नरक में ठेलम ठेला" का फलितार्थ उत्पन्न करते हैं । जहाँ ऐसी स्थिति हो, वहाँ गुरुता के अभाव में शिष्य की श्रद्धा कैसे उमँगें और घनिष्ठता स्थापित करने का सहारा और विश्वास किस आधार पर पनपे ?

आज गुरु-शिष्य के क्षेत्र में असमर्थता और अश्रद्धा का बोलबाला है । "गुरु-शिष्य अन्ध-बधिर कर लेखा, एक न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुनई, एक नहि देखा'' की उक्ति ही इन दिनों चरितार्थ होती दिखती है । कथित गुरु यह नहीं देखते कि शिष्य का जीवन किस दिशा को जा रहा है, और कथित शिष्यों को गुरु के निर्देश सुनकर आचरण करने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती है । यही कारण है कि वह पुण्य-परम्परा धीरे-धीरे लुप्त होती चली जा रही है । लकीर पीटने के लिए कहीं कुछ कर्मकाण्ड होते भी हैं, तो उनके बीच वह निर्वाह बनता नहीं, जिसमें गुरु भी यशस्वी होते हैं एवं शिष्य भी मनस्वी बनते हैं । उस सुयोग के फलस्वरूप ही ऐसा वातावरण बन सकता है, जिससे समूचे वातावरण में सत्प्रवृत्तियों का मलयानिल प्रवाहित होता रहे । इन दिनों मन्त्र और देवता, अपनी शक्ति खो चले हैं, क्योंकि आध्यात्मिक प्रगति कल्पवृक्ष, गुरु-शिष्य परम्परा के आधार पर विनिर्मित होने वाली सिंचाई से वंचित रहकर कुम्हलाता, मुरझाता और सूखता चला जा रहा है ।

यदि आत्म-विज्ञान का महत्व समझा जाये और उस दिशा में बढ़ने का साहस किया जाये, तो साथ-साथ इतना और भी होना चाहिए कि श्रद्धा-विश्वास बनाये रहने, बढ़ते चलने वाले आधार को भी किसी प्रकार उपलब्ध कर लिया जाय । किसी निर्धारित-नियुक्त गुरु के अभाव में, अपनायी गई गतिविधियों के सम्बन्ध में संशय ही बना रहता है । व्यक्तियों के कथनों के और ग्रन्थों के उल्लेखों में असाधारण अन्तर और भारी मतभेद माना जाता है । उनकी जितनी अधिक टटोल की जाये, उतना ही सन्देह बढ़ेगा । किसे सही, किसे गलत माना जाय ? इसमें तर्क भी कुछ काम नहीं देते, श्रद्धा को संशय खा जाता है । फलतः अनिश्चय की मनःस्थिति बनी रहती है । एक क्रम अपनाने, दूसरे को छोड़ने का सिलसिला चलता रहता है, फलतः दिग्भ्रान्त की तरह आगे बढ़ते, पीछे हटते, छोड़ते, चक्कर काटते, समय गुजरता है । थकान और खीझ के अतिरिक्त और कुछ पल्ले नहीं पड़ता । इस चक्रव्यूह से निकलना उन्हीं के लिए सम्भव हो सकता है, जो आत्मिक प्रगति की दिशा में सुनिश्चित विधि-व्यवस्था अपना कर, उसे श्रद्धा एवं दृढ़ता के साथ अविच्छिन्न रूप से अपनाये रह सकें । इसके लिए फिर गुरु-वरण की आवश्यकता, अपनी अनिवार्यता सिद्ध करती हुई सामने आ खड़ी होती है ।

सद्गुरु की तलाश प्रत्येक श्रेयार्थी साधक को करनी चाहिए । वह जब तक न मिले, तब तक काम चलाऊ तात्कालिक आवश्यकता पूरी करने के लिए आपत्ति धर्म की तरह प्रज्ञा अभियान के संचालक से भी काम चलाया जा सकता है । भगवान राम के दो गुरु थे, एक गुरु वशिष्ठ दूसरे विश्वामित्र । वशिष्ठ कुल-गुरु थे, योग-वशिष्ठ उन्हीं ने पढ़ाया था । किन्तु बला और अतिबला विद्याएँ प्राप्त करने के लिए उन्हें यज्ञ रक्षा के बहाने विश्वामित्र आश्रम में रहना पड़ा । जो वहाँ सीखा जा सका वह वशिष्ठ की सीमा से बाहर था । बला और अतिबला सावित्री-गायत्री रूपी भौतिकी एवं आत्मिकी को कहते हैं । प्रथम के द्वारा उन्होंने असुरों को परास्त किया और दूसरे के माध्यम से राम राज्य की स्थापना वाले और भी कठिन उत्तरदायित्व को पूर्ण कर सकने में समर्थ हुए ।

एक व्यक्ति के कई गुरु होने में कोई दोष नहीं । हमको गायत्री मंत्र और उपनयन महामना मालवीय जी ने प्रदान किया था । इसके अतिरिक्त हिमालय से युगान्तरीय चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रज्ञात्मा हमारे सूक्ष्म गुरु हैं और उन्हीं के संकेतों पर अपनी गतिविधियों का ताना-बाना बुनते हैं । ऐसा हर कोई कर सकता है । दत्तात्रेय के २४ गुरुओं की बात सर्वविदित है । प्राचीनकाल में भी ऐसा होता रहा है । इसकी असंख्य साक्षियाँ विद्यमान हैं ।

समर्थ सत्ता के साथ जुड़ जाने पर किसी भी सामान्य को असामान्य बनने का अवसर मिल सकता है । बिजली घर के साथ सम्बन्ध जुड़ जाने पर ही बल्ब, पंखे, हीटर, कूलर आदि उपकरण अपना काम करते हैं । टंकी के साथ जुड़े रहने पर नल तब तक पानी देता रहता है, जब तक टंकी खाली नहीं हो जाती । चंद्रमा, सूर्य की चमक से चमकता है । हिमालय से जुड़ी हुई नदियों का जल सूखता नहीं । पुलिस का अदना सा सिपाही भी अपने को शासन तन्त्र का प्रतिनिधि मानता और गर्दन ऊँची उठाकर चलता है । यह सम्बन्ध जुड़ने की बात हुई । समर्थता के साथ जुड़ जाने पर असमर्थता भी समर्थता में बदल जाती है । गंदे नाले का पानी गंगा में मिल जाने पर गंगा जल की तरह सम्मान पाता है । पेड़ से लिपटने पर बेल उतनी ही ऊँची उठ जाती है, जबकि वह सामान्यतया अपने बल-बूते जमीन पर ही रेंग सकती है । अशिक्षित और निर्धन घर की बेटी भी जब किसी विद्वान या सम्पन्न व्यक्ति की पत्नी बन जाती है, तो उसका सम्मान एवं वैभव पति जितना ही हो जाता है ।

सामान्यतया यह उदाहरण भक्त और भगवान के बीच सम्बन्ध स्थापित होने के सन्दर्भ में दिये जाते हैं, पर उन्हें आंशिक रूप से गुरु-शिष्य के मध्य समर्थता और श्रद्धा के संयोग से उत्पन्न घनिष्ठता पर लागू किया जाये, तो वहाँ भी यह उदाहरण सटीक बैठ जाता है । गुरु बृहस्पति के मार्ग दर्शन में देवता देवत्व प्राप्त कर सके और शुक्राचार्य के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुग्रह से असुरों को भौतिक सिद्धियाँ उपलब्ध करने का अवसर मिला । यह सब वे दोनों, मात्र अपने बलबूते प्राप्त नहीं कर सकते थे ।

प्राचीन काल में गुरु परम्परा भी वंश परम्परा की तरह गौरवान्वित होती थी । वंश के गोत्र, पूर्वजों से ही नहीं चलते वरन् गुरु परम्परा से भी चलते हैं । ऋषियों के गोत्र हर जाति-वर्ग में पाये जाते हैं । हो सकता है कि उनके पूर्वज भी ऋषि रहे हों और वंश परम्परा के अनुसार उनके गोत्र चले हों ? हो सकता है, वे उनके गुरु रहे हों और गुरु परम्परा को ही वंश परम्परा का प्रतीक मान कर उनका गोत्र अपनाया गया हो । यहाँ प्रतीत होता है कि पूर्वजों में, दोनों पक्षों को समान महत्त्व एवं सम्मान दिया गया है । तराजू के दो पलड़ों में से एक पर माता-पिता दोनों को, और दूसरे पर अकेले गुरु को रख कर तोला जाता रहा है । कारण स्पष्ट है, शरीर से सम्बन्धित भौतिक साधनों को उपलब्ध करने में माता-पिता का जितना योगदान है, आत्म-कल्याण के लिए व्यक्तित्व में प्रखरता उभारने वाले गुरु का महत्त्व उनसे किसी प्रकार कम नहीं है । यह सरकस में विलक्षण काम करने वाले जानवरों को साधने से भी कठिन काम है ।

तत्वतः यह मानवी विद्युत को हस्तान्तरित करने की प्रक्रिया है । आग के समीप बैठने से गर्मी आती है, ठण्डे तहखाने, बर्फखाने में बैठने से कँपकँपी छूटती है । चंदन वृक्ष के नीचे उगे झाड़-झंखाड़ भी सुगन्ध देने लगते हैं । स्वाति बूँद का सहयोग पाकर सीप मोती उगलने लगती है । यह समर्थ सान्निध्य का प्रभाव है, जिसकी तुलना पारस, कल्पवृक्ष और अमृत से की जाती है और इसके समीप पहुँचने, घनिष्ठ बनने, आत्मसात् करने का परिणाम कायाकल्प जैसा होता है । इन उदाहरणों को गुरु-शिष्य के मध्य प्रतिष्ठापित घनिष्ठता, आत्मीयता एवं प्रत्यावर्तन श्रृंखला के साथ जोड़ा जा सकता है ।

यों हर मनुष्य में एक विद्युत धारा विद्यमान है, पर महामानवों में यह प्राणशक्ति अपेक्षाकृत कहीं अधिक होती है । उसे तेजोवलय के रूप में देखा और अनुभव किया जा सकता है । वह अपने क्षेत्र में एक विशेष प्रकार का प्रभाव छोड़ती है । समीपता-घनिष्ठता होने पर महाप्राणों, सशक्तों का प्राण प्रवाह न्यून प्राण वालों की ओर अनायास ही चल पड़ता है । प्रत्यक्ष-कथनीपरक न होने पर भी, परोक्ष रूप से प्राणवानों के व्यक्तित्व से निकलने वाली ऊर्जा, अपने समीपवर्ती प्राणियों और पदार्थों को प्रभावित करने लगती है । ऋषि आश्रमों के समीपवर्ती क्षेत्र में सिंह एवं गाय बैर भाव भूलकर एक घाट पानी पीते और स्नेह सद्भाव का परिचय देते रहे हैं । वहाँ वे अपने सहज स्वभाव को भूल जाते हैं । यही सब कुछ दीक्षा के माध्यम से सम्पन्न होता है ।

दीक्षा देने का अधिकार मात्र महाप्राणों को है । जिसके पास कुछ वैभव है, वही दूसरे को दान दे सकेगा । जो स्वयं ही खाली हाथ है और याचना कर निर्वाह करता है, उससे कोई अनुदान मिलने की आशा करना व्यर्थ है । दीक्षा दे सकने वाले व्यक्तित्व उपलब्ध होना कठिन है । नाटकीय खिलवाड़ करना हो, तो कोई भी व्यक्ति आपस में गुरु-शिष्य का अभिनय-प्रहसन कर सकते हैं; किन्तु पात्रता और यथार्थता न होने पर वह बात बनती नहीं, जिसकी अपेक्षा की गयी है । इसलिए शास्त्रकारों ने यह सम्बन्ध स्थापित करते समय गुरु की समर्थता और शिष्य की श्रद्धा, पात्रता को भली प्रकार ठोक-बजा लेने की बात कही है, अन्यथा मात्र लकीर पीट लेने से बात बनेगी नहीं, थोथी विडम्बना बन कर रह जायेगी ।

शास्त्रकारों ने गुरु विहीन की निन्दा की है । कहा गया है कि उसके हाथ से किया श्राद्ध-तर्पण पितरों तक नहीं पहुँचता । कहीं तीर्थफल न मिलने की बात है, कहीं उसके हाथ का जल न पीने जैसी प्रताड़ना का उपाय सुझाया गया है । यह कथोपकथन अत्युक्तिपूर्ण, आवेशग्रस्त अथवा आलंकारिक दीखते हैं, तो भी उनके पीछे यह प्रेरणा-प्रतिपादन तो है ही कि माता-पिता का परिचय दे सकने की तरह हर व्यक्ति को अपने गुरुद्वारे का भी परिचय देना चाहिए ।

माता का पता न हो, तो यह समझा जायेगा कि वह अनुचित उत्पादन रहा होगा और लुक-छिपकर कहीं से कहीं पहुँचाया गया होगा । पिता का नाम पता न हो, तो भी माता पर कुलटा होने का आक्षेप आता है और सन्तान पर अवैध होने का लांछन लगता है । सुसंस्कारिता सम्वर्धन के लिए गुरु वरण का विधिवत् प्रयास हुआ नहीं, किया नहीं गया, तो यह एक कमी है, जिसे दूर करने के लिए शास्त्रकारों ने हर किसी को प्रोत्साहित किया है । इसके लिए लाभ और हानि के दोनों ही पक्ष सुझाये जाते हैं । लगता है 'निगुरा' शब्द निन्दाबोधक शब्दावली में एक गाली की तरह प्रयुक्त हुआ है । जो हो, शास्त्र प्रतिपादनों में इस तथ्य को और उत्तेजित शब्दों में स्मरण दिलाये जाने की बात तो स्पष्ट ही है । गुरु की आवश्यकता समझी और उसकी पूर्ति की जानी चाहिए ।

दीक्षा और यज्ञोपवीत का परस्पर सम्बन्ध है । यज्ञोपवीत द्विजत्व का दूसरे जन्म का प्रतीक है । हर माता के गर्भ से नर-पशु ही जन्म लेता है, इसे सुसंस्कारी बनाने की प्रक्रिया समर्थ गुरु द्वारा ही सम्पन्न होती है । खदान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से मिट्टी मिली धातुएँ ही निकलती हैं । उनका परिशोधन भट्टी में तपाने की प्रक्रिया द्वारा ही सम्पन्न होता है । न तपाने पर वह अनगढ़ ही बनी रहेगी । मनुष्य के सम्बन्ध में भी यही तथ्य काम करते हैं । अभिभावक, सन्तान के शरीर उत्पादन एवं परिपोषण भर की प्रक्रिया सम्पन्न कर सकने की स्थिति में होते हैं । सुसंस्कारिता, प्रखरता से सन्तान को सम्पन्न बनाने के लिए किन्हीं ऐसे महाप्राणों का आश्रय लेना पड़ता है, जो इस दृष्टि से समर्थ हों ।

गुरुकुलों में रहकर शिक्षा और प्रखरता उपलब्ध की जाती है । जब यह निकटता सम्भव नहीं होती, तो पत्राचार विद्यालय, रेडियो पाठ्यक्रम, टेलीफोन वार्ता अथवा समय-समय के वार्तालाप द्वारा भी विचार-विनिमय का, आदान-प्रदान का, उपक्रम चलाना पड़ता है । गुरु-शिष्य की दीर्घकालीन समीपता सम्भव न होने पर अन्यान्य सूत्रों से भी गतिशील रखा जा सकता है । मुर्गी अपने अण्डे को पेट के नीचे रखकर सेती है; किन्तु कछुई रेती में अण्डे देकर अपने प्राण-प्रवाह से सेती और पकाती रहती है । यदि इसी बीच कछुई मर जाये, तो रेती में छोड़ा गया उसका अण्डा भी सड़ जायेगा । ऐसा आदान-प्रदान गुरु-शिष्य के बीच चलता है । राम-विश्वामित्र के, कृष्ण-संदीपन के गुरुकुल में पढ़ते थे, किन्तु जब पढ़ने की स्थिति न रही और अलग रहने का अवसर आया, तो भी वह आदान-प्रदान प्रत्यावर्तन सूत्र यथावत् स्थिर रहा । माध्यम बदल गए, तो भी समर्थ मार्गदर्शन और अनुदान-प्रतिदान की श्रृंखला टूटी नहीं । यही क्रम स्नेह सूत्रों के जुड़े रहने पर अन्यत्र भी चलता रह सकता है ।

साधना से सिद्धि की चर्चा से अध्यात्म शास्त्र भरे पड़े हैं । हर साधना का माहात्म्य एवं विधि-विधान विस्तारपूर्वक लिखा गया है, पग-पग पर यह स्पष्टीकरण किया गया है कि इसे पुस्तक पढ़कर मनमाने ढंग से आरम्भ न कर दिया जाये । गुरु की सहायता से, अपनी पात्रता के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल होने के उपरान्त ही क्या करना है, किस प्रकार करना है, इसका निर्धारण कराया जाये । चिकित्सा पुस्तकों में, हर रोग का निदान-उपचार का विस्तृत उल्लेख रहता है । उसी प्रकार विक्रेता के यहाँ हर प्रकार की औषधियाँ तैयार मिलती हैं । इतने पर भी चिकित्सक के परामर्श एवं निर्देशन की आवश्यकता रहेगी ही । कोई रोगी निदान के उपचार के लिए स्वेच्छापूर्वक निर्णय लेने लगे, तो उससे भूल एवं हानि होने की आशंका रहेगी । इसी प्रकार साधना के सन्दर्भ में भी यही उपयुक्त समझा जाना चाहिए । जो भी आकर्षक लगे, उसी को करने लगना अनुचित है । अपनी आन्तरिक स्थिति का पर्यवेक्षण स्वयं नहीं हो पाता । अपनी आँख तक जब अपने को नहीं दिखाई देती, उसके लिए दर्पण का सहारा लेना पड़ता है, तो फिर अन्तःक्षेत्र का विश्लेषण, पर्यवेक्षण अपने-आप कैसे सम्भव हो सकेगा और उसके बिना सही उपचार कैसे बने ? यहाँ चिकित्सक की सूक्ष्म बुद्धि एवं अनुभवशीलता से लाभ उठाने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं । यही कारण है कि साधनाएँ करने-बढ़ाने के लिए,, निर्धारित मार्गदर्शक का परामर्श, संरक्षण, सहयोग एवं अनुग्रह अनुदान उपलब्ध करने की आवश्यकता पड़ती है । वह न मिले, तो फिर समझना चाहिए कि गाड़ी रुक गई और सफलता की सम्भावना धूमिल हो गई । यही कारण है कि "जो सद्गुरु सो दीक्षा पावें- सो साधन को सफल बनावें" की लोकोक्ति में बहुत कुछ सार सन्निहित दीखता है ।

ऐसे अनेकानेक कारण हैं, जिन्हें देखते हुए आत्मिक प्रगति के क्षेत्र में प्रवेश करने वाले को गुरु-वरण की आवश्यकता पड़ती है, विज्ञजन इसकी पूर्ति को महत्त्वपूर्ण मानते हैं और उसका सुयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं ।

इष्टदेव का वरण-निर्धारण

भौतिक प्रगति के लिए, भौतिक पुरुषार्थ करने पड़ते हैं और आत्मिक प्रगति के लिए चेतना का स्तर उठाने और प्रखरता को आगे बढ़ाने की आवश्यकता पड़ती है । पेट में भूख लगती है, तो आहार उपार्जन करने के लिए दौड़-धूप करना आवश्यक हो जाता है । शरीर में समर्थता बढ़ने पर कामुकता की तरंगे उठती हैं और साथी ढूँढ़ने, परिवार बसाने का मानसिक ताना-बाना बुना जाने लगता है । प्राणि-जगत का अस्तित्व और पराक्रम, इन्हीं पेट-प्रजनन के दो गति चक्रों के सहारे सरलतापूर्वक लुढ़कता रहता है । आत्मिक प्रगति का प्रसंग दूसरा है । चौरासी लाख योनियों के संगृहीत स्वभाव-संस्कार मनुष्य जीवन के उपयुक्त नहीं रहते, ओछे पड़ जाते हैं । बच्चे के कपड़े बड़ों के शरीर में कहाँ फिट होते हैं ? मानव जीवन की सार्थकता के लिए जिन सद्भावनाओं से अन्तःकरण को और सत्प्रवृत्तियों से शरीर को सुसज्जित करना पड़ता है, वे पूर्व अभ्यास एवं प्रभावी प्रचलन न होने के कारण कठिन पड़ते हैं । वे सहज सुलभ नहीं, वरन् प्रयत्न-साध्य हैं । नीचे गिरने में पृथ्वी को आकर्षण शक्ति का क्रम ही निरन्तर सहायता करता रहता है, पर ऊँचा उठने के लिए विशेष साधन जुटाने होते हैं । आन्तरिक अभ्युत्थान के इसी पराक्रम को साधना कहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना मार्ग पर चलने के लिए प्रथम चरण 'इष्ट निर्धारण' का उठाना पड़ता है । इष्ट अर्थात् लक्ष्य । प्रगति के लिए आन्तरिक महत्त्वाकांक्षा स्वाभाविक है, पर उसका स्वरूप भी तो निश्चित होना चाहिए । उमंगें असीम हैं, उनकी दिशा-धारा भी अनेकों हैं । पानी पर उठने वाली लहरों की तरह महत्त्वाकांक्षाओं की कोई सीमा नहीं । एक के बाद दूसरी लहरें उठती हैं और हवा के झोंके के साथ अपनी दिशा-धारा बदलती रहती हैं । प्रवाह की दिशा-धारा न हो, तो पराक्रम अस्त-व्यस्त रहेगा । किसी लक्ष्य तक पहुँच सकना सम्भव ही न हो सकेगा । दिशाविहीन भगदड़ से मात्र थकान और निराशा ही हाथ लगती है । कस्तूरी के हिरण को अभीष्ट स्थान का पता नहीं होता, फलतः वह भटकता और थकता-खिन्न होता रहता है । मानवी अन्तरात्मा की भूख, प्रगति की दिशा में अग्रसर होने की है, महत्त्वाकांक्षाओं के उभार इसी का परिचय देते हैं । आत्मिक प्रगति का कोई निश्चित लक्ष्य एवं स्वरूप सामने न रहने से वह कायिक लिप्साओं की ओर ही लुढ़कने लगती है और वासना, तृष्णा और अहंता की पूर्ति ही जीवनोद्देश्य बनकर रह जाता है । इस स्तर की सफलताएँ काया को भले ही कुछ सुख-सुविधाएँ प्रदान कर सकें, अन्तःकरण की उच्चस्तरीय प्रगति में इससे तनिक भी सहायता नहीं मिलती। अनियंत्रित भौतिक महत्त्वाकांक्षाएँ आतुर होकर कुकर्म करके भी वैभव उपार्जन में जुट पड़ती हैं और उलटे अधःपतन एवं विक्षोभ का कारण बनती हैं ।

साधक का कोई न कोई इष्टदेव होता है, साधना का विधि-विधान उसी के अनुरूप चलता है । यों उपास्य केवल एक ही है-- दिव्य जीवन; किन्तु उसके लिए पुरुषार्थ करने की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि उपासनात्मक उपचारों के सहारे बनती है । दिव्य जीवन की चरण परिणति ही पूर्णता है । 'इसी स्थिति को स्वर्ग एवं मुक्ति की प्राप्ति कहते हैं । आत्म-साक्षात्कार एवं ईश्वर-दर्शन भी यही है । इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए जो पुरुषार्थ करना पड़ता है, उसे साधना-विधान के रूप में अपनाना पड़ता है । साधना में शिक्षा और प्रेरणा का समावेश होता है, फलतः उसकी प्रतिक्रिया जीवनोत्कर्ष के रूप में प्रत्यक्ष परिलक्षित होने लगती है ।

प्रगति के किस बिन्दु तक पहुँचना है, इसका सुदृढ़ पूर्वनिश्चय होना आवश्यक है । भव्य भवन बनाने वाले, सर्वप्रथम अभीष्ट निर्माण के नक्शे या मॉडल बनाते हैं । आत्मिक प्रगति के लिए किस मार्ग से जाना है, किस स्तर के साधन जुटाने हैं, इसके लिए कितने ही प्रकार के निर्धारण अपनाये जाते रहे हैं । इन्हें इष्टदेव कहते हैं । राम भक्त बनने के लिए हनुमान, मर्यादा पुरुषोत्तम बनने के लिए राम, पूर्ण पुरुष बनने के लिए कृष्ण, ब्रह्म तेजस् प्राप्त करने के लिए सविता को इष्ट बनाने की परम्परा है । इस निर्धारण से मन को एक निश्चित दिशा में आगे बढ़ने और तदनुरूप प्रयास करने, साधन जुटाने का मार्ग मिल जाता है । इस निर्धारण से न केवल प्रयास को दिशा मिलती है, वरन् उसी स्तर के अन्तःक्षेत्र की प्रसुप्त शक्तियाँ भी जागने लगती हैं । साथ ही परब्रह्म के शक्ति भण्डार में से उसी स्तर की अनुग्रह वर्षा भी अनायास ही आरम्भ हो जाती है । आकांक्षाएँ आवश्यकता बनती हैं, आवश्यकता पुरुषार्थ की प्रेरणा जगाती है । प्रेरणा भरे पराक्रम में प्रचण्ड चुम्बकत्व होता है । वह तीन दिशा में काम करता है । प्रथम व्यावहारिक गतिविधियों को अभीष्ट की प्राप्ति के अनुरूप बनाता है । द्वितीय प्रसुप्त क्षमताओं को जगाकर प्रगति पथ पर अग्रसर होने के लिए अदृश्य आधार खड़े करता है । तृतीय दिव्य लोक से दैवी अनुदानों के बरसने का विशिष्ट लाभ मिलता है । तीनों ही आधार त्रिवेणी संगम बनते हैं ।

इष्ट निर्धारण--प्रगति क्रम का सुनिश्चित आधार-पथ निश्चित करना है । ईश्वरीय सत्ता का मनुष्य में अवतरण 'उत्कृष्टता' के रूप में होता है । चिन्तन और चरित्र में उच्चस्तरीय उमंगें उठने लगती हैं तथा उसी स्तर की गतिविधियाँ चल पड़ती हैं । उत्कृष्टता की उपासना ही ईश्वर उपासना है । यही उपास्य है । लक्ष्य भी इसी को बनाना पड़ता है । इष्टदेव का निर्धारण किस रूप में किया जाये, आज इस सन्दर्भ में अनेकों विकल्पों के जंजाल बने खड़े हैं । प्राचीनकाल में ऐसा न था । तत्वज्ञानी एक निश्चय पर पहुँचे थे और उन्होंने समस्त साधकों को वही निष्कर्ष अपनाने का परामर्श दिया था । भारतीय संस्कृति, जिसे वस्तुतः विश्व संस्कृति कहा जाना चाहिए, साधना के सन्दर्भ में एक ही निश्चय पर पहुँची है, कि आत्मिक प्रगति की साधना के लिए इष्ट रूप में गायत्री का ही वरण होना चाहिए ।

गायत्री को इष्ट मानने की अनादि परम्परा है । सृष्टि के आदि में ब्रह्माजी ने कमल पुष्प पर बैठ कर आकाशवाणी द्वारा निर्देशित गायत्री उपासना की थी और सृजन की सामर्थ्य प्राप्त की थी । इसका उल्लेख पुराणों में मिलता है । त्रिदेवों की उपास्य गायत्री रही है । देव गुरु बृहस्पति ने--दक्षिण मार्गी, दैत्य गुरु शुक्राचार्य ने--वाम मार्गी साधनायें गायत्री के ही आत्मिक और भौतिक पक्षों को लेकर प्रचलित की थी । सप्तऋषि गायत्री की सप्त व्याह्यतियों के प्रतीक माने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाते हैं । राम-कृष्ण आदि अवतारों की इष्ट गायत्री रही है । इसी महामंत्र की व्याख्या में चारों वेद तथा अन्यान्य धर्मशास्त्र रचे गये हैं । दत्तात्रेय के चौबीस गुरु गायत्री के चौबीस अक्षर ही हैं । चौबीस योग, चौबीस तप प्रसिद्ध हैं। यह सभी गायत्री के तत्वज्ञान और साधना विधान का विस्तार है । गायत्री गुरुमन्त्र है । दीक्षा में उसी को माध्यम बनाया जाता है । हिन्दू धर्म के दो प्रतीक हैं-- शिखा और सूत्र । दोनों ही गायत्री के प्रतीक हैं । गायत्री का ज्ञान पक्ष मस्तिष्क पर शिखा के रूप में और कर्मपक्ष कन्धे पर यज्ञोपवीत के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है । परम्परागत उपासना-विधि सन्ध्या है । सन्ध्या में गायत्री का समावेश अनिवार्य है । इन तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि गायत्री की अनादि धर्म परम्परा एवं अध्यात्म परम्परा का आधारभूत तथ्य है । उपासना में उसी का प्रयोग सर्वोत्तम है ।

तत्वदर्शन की दृष्टि से गायत्री 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' है । ऋतम्भरा अर्थात् विवेक संगत श्रद्धा । प्रज्ञा अर्थात् श्रेय साधक दूरदर्शिता । इस समग्र विवेकशीलता को गायत्री कह सकते हैं । इस बीज मंत्र का विशाल वृक्ष ब्रह्म ने लिखा है । अध्यात्म का यह दार्शनिक पक्ष है । साधना प्रयोजन में इसी के विभिन्न उपचार योगाभ्यासों, तप साधनों एवं धर्मानुष्ठानों के रूप में प्रचलित है । इष्ट का-- लक्ष्य का-- उपास्य का निर्धारण, दिव्यदर्शियों ने गायत्री के रूप में गहन अध्यवसाय और अनवरत अनुभव अभ्यास के आधार पर किया है । वह प्राचीनकाल की ही तरह अपनी उपयोगिता यथावत् अक्षुण्ण रखे हुए है ।

गायत्री सार्वभौम एवं सार्वजनीन है । इसे किसी देश, धर्म, जाति, सम्प्रदाय तक सीमित नहीं किया जा सकता है । भारत में उत्पन्न होने के कारण उसका नाम भारतीय संस्कृति पड़ा है, पर उसकी कोई प्रक्रिया इस परिधि में रहने वाले लोगों तक सीमित नहीं रखी जा सकती । गायत्री भारतीय संस्कृति की आत्मा कही जाती है, पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इसी देश के निवासी या इसी धर्म के अनुयायी इसका उपयोग कर सकते हैं । भारतीय संस्कृति वस्तुतः दैवी संस्कृति है, उसे मानवी संस्कृति कह सकते हैं । उसे देश, धर्म, जाति, भाषा, सम्प्रदाय आदि के नाम पर अपने-पराये की विभाजन रेखा नहीं बनानी चाहिए ।

ऋतम्भरा को इष्ट माना जाये, यही मानव जीवन की सर्वोपरि उपलब्धि है । आत्मज्ञान-ब्रह्मज्ञान इसी को कहा गया है । विवेकशीलता-दूरदर्शिता यही है । न्याय और औचित्य इसी के प्रतिफल हैं । परिस्थितियों का पर्यवेक्षण करने वाले जानते हैं कि वह मात्र मनःस्थिति की ही परिणति होती है । बुरी परिस्थितियों के लिए बुरी मनः स्थिति ही उत्तरदायी होती है । भीतर का परिवर्तन बाहरी परिकर में आश्चर्यजनक हेर-फेर उत्पन्न करता है । दरिद्रता, विपन्नता, विग्रह, विपत्ति एवं विभीषिकाएँ, आन्तरिक निकृष्टता की ही प्रतिक्रियाएँ हैं । उत्कृष्ट चिन्तन के कारण बन पड़ने वाले आदर्श क्रिया-कलाप ही मनुष्य को आत्मसन्तोष, जन-सम्मान, विपुल सहयोग एवं दैवी अनुग्रह की अनेक सम्पदाएँ एवं विभूतियाँ प्रस्तुत करते हैं । प्राचीन काल की सतयुगी परिस्थिति और देवोपम मनःस्थिति की सुखद गाथा गाने वाले जानते हैं कि अतीत की गरिमा का एक मात्र आधार, उस समय अपनाया गया उत्कृष्ट दृष्टिकोण एवं आदर्श चरित्र ही था । इस समस्त वैभव को ऋतम्भरा की देन कह सकते हैं । यह प्रज्ञा की देवी का अजस्र अनुदान ही था, जिसे पाकर भारतभूमि और समस्त विश्व वसुधा को चिरकाल तक कृत-कृत्य रहने का अवसर मिला ।

प्रज्ञा को इष्ट मानकर चलने वाला उन सभी लाभों को प्राप्त करता है, जो गायत्री उपासना के माहात्म्य वर्णन में आकर्षक एवं आलंकारिक ढंग से बताये गये हैं । ''नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते', 'आत्म वाऽऽरे ज्ञातव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः', जैसे उद्बोधन वाक्यों में जिस आत्मज्ञान की गरिमा बतायी गयी है, जिसे प्राप्त करके भगवान बुद्ध की तरह अनेकानेक श्रेय-साधक धन्य बनते रहे हैं; वही महाप्रज्ञा आदिशक्ति गायत्री है । उसी का हमें वरण करना चाहिए ।

गायत्री का वाहन हंस है-- राजहंस, परमहंस, विवेकवान, प्रज्ञावान । राजहंस नीर-क्षीर-विवेक से युक्त, कृमि-कीटकों का भक्षण करने से विरत, मुक्ताओं पर निर्भर। यह चित्रण बताता है कि श्रेय-साधक की मनोभूमि कैसी होनी चाहिए । गायत्री जिस पर कृपा करे वह प्रज्ञावान होता है अथवा प्रज्ञावान को गायत्री का अनुग्रह प्राप्त है । दोनों प्रतिपादनों का तात्पर्य एक ही है । गायत्री का इष्टरूप में वरण सर्वोत्तम चयन है । इतना निश्चित निर्धारण करने पर आत्मिक प्रगति का उपक्रम सुनिश्चित रूप से द्रुतगति से अग्रगामी बनने लगता है, तब 'साधना से सिद्धि' के सिद्धान्त में कहीं गुन्जाइश नहीं रह जाती ।

दीक्षा की प्रक्रिया और व्यवस्था

गुरु दीक्षा के तीन स्तर हैं । मन्त्र दीक्षा, प्राण दीक्षा, अग्नि दीक्षा । मंत्र दीक्षा को एक परम्परा अपनाने एवं मार्ग-दर्शन स्वीकार करने के स्तर का समझा जा सकता है। इसमें शुद्ध उच्चारण सिखाया जाता है और सामान्य स्तर के नित्य कर्म का विधि-विधान सीखकर उसे दिनचर्या का छोटा अंग बनाये रहना पड़ता है । इसमें अनुशासन के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिपालन भर का प्रावधान है । यह सामान्य स्तर की है। इसे काम चलाऊ प्रक्रिया के रूप में लिया और साधना क्षेत्र की रुकी हुई गाड़ी को आगे बढ़ाया जा सकता है । इसे प्रशिक्षण, मार्गदर्शन, अनुशासन की हल्की-फुलकी श्रृंखला कहा जा सकता है । कर्मकाण्ड इसका भी होता है । एक हलके सूत्र में दोनों बँधते इसमें भी हैं । इसे प्राथमिक प्रवेश स्तर का समझा जा सकता है । दोनों पक्ष आवश्यकता अनुभव करने पर एक दूसरे को खटखटाते हैं । सामान्यतया वे एक-दूसरे का कोई सुनिश्चित उत्तरदायित्व नहीं ओढ़ते।

उससे ऊँची हाईस्कूल स्तर की शिक्षा के समतुल्य प्राणदीक्षा है । इसमें गुरु अपनी तपश्चर्या, पुण्य सम्पदा और प्राण ऊर्जा का एक अंश देकर शिष्य की पात्रता एवं क्षमता बढ़ाने में योगदान करता है । शिष्य कुछ व्रत धारण करता है और उन्हें निभाता है । इसमें आदान-प्रदान का क्रम आजीवन चलता है । यह सन्तान और अभिभावक स्तर की आत्मीयता और उसके साथ जुड़ी हुई जिम्मेदारी बनाये रखने के समतुल्य समझी जा सकती है । इस उपक्रम को सामान्य पेड़ को कलमी आम बनाने के सदृश समझा जा सकता है जिससे गुरु अपनी टहनी काट कर शिष्य में आरोपित करता है और शिष्य अपना रस उस टहनी को समर्थ रखने के लिए भाव भरा योगदान करता रहता है । कलमी आम पर अपेक्षाकृत अधिक मीठे, अधिक बड़े, अधिक कीमती और अधिक जल्दी फल आते हैं । प्राण प्रत्यावर्तन की दीक्षा में भी यही होता है । इसे अंग प्रत्यारोपण रक्तदान जैसी उपमा दी जाती है । दोनों अधिक घनिष्टता पूर्वक बँधते और मिल-जुल कर किसी महान लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं । विश्वामित्र, हरिश्चन्द्र, समर्थ रामदास-शिवाजी, चाणक्य-चन्द्रगुप्त जैसे युग्मों में इसी प्राण दीक्षा का आभास मिलता है ।

अग्नि दीक्षा अत्यन्त उच्चस्तरीय है । इसे राजा द्वारा युवराज को अपने सामने ही उत्तराधिकारी घोषित करने के समान समझा जा सकता है । सिख गुरुओं में एक के बाद एक की नियुक्ति इसी प्रकार होती रही है । रामकृष्ण परमहँस ने विवेकानन्द को इसी स्तर का अनुदान दिया था । इस स्तर की पात्रता और अनुकम्पा के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है । यह प्रसंग अत्यंत उच्चस्तरीय होने के कारण इन पंक्तियों में सर्वसाधारण के लिए उसकी उपयोगिता नहीं समझी गई और उसका उल्लेख नहीं किया गया है ।

देने की क्षमता और लेने की पात्रता

देने वाला अधिक समर्थ है या लेने वाला ? उसके उत्तर में लैने वालों की पात्रता को कम महत्त्व नहीं दिया जा सकता । बादल कितने ही क्यों न बरसे टीले पर एक बूंद पानी नहीं रुकेगा और चट्टान पर एक पत्ता नहीं उगेगा । पानी उतना ही रुकेगा जितना गड्ढा हो । समुद्र में क्षमता होने पर सभी नदियाँ उसमें जा मिलती हैं जबकि पहाड़ी और रेगिस्तानों की ओर जाने का उनका तनिक भी रुझान नहीं होता ।

आँखें न हों तो दोपहर की धूप में भी कुछ न दीखेगा । कान न हों तो मधुर संगीत और ज्ञान-विज्ञान का लाभ कहाँ मिलेगा ? मस्तिष्क पर मूढ़ता छाई हो तो सत्संग, परामर्श की कोई उपयोगिता नहीं रह जाती । शिष्य की पात्रता, विकसित हो तो मिट्टी के द्रोणाचार्य, पत्थर के गिरधर गोपाल भी चमत्कार दिखा सकते हैं । समर्थ गुरु रामदास-शिवाजी का, चाणक्य चन्द्रगुप्त का, रामकृष्ण परमहंस-विवेकानन्द का, विरजानन्द-दयानन्द का ही भला कर सके । यों उन लोगों के पास शिष्य नामधारियों की मंडलियाँ मँडराती ही रहीं पर उनके पल्ले समर्थता का सान्निध्य पाने पर भी कुछ मिला नहीं ।

गुरु की गरिमा जितनी आवश्यक है । शिष्य की श्रद्धा सद्भावना का महत्त्व उससे कम नहीं वरन् अधिक ही है। उसके अभाव में मात्र वरदान-अनुदान पाने के लिए जिस-तिस की जेब काटने का मनोरथ लेकर शिष्य बनने का आडम्बर ओढ़ने वालों के भी पल्ले कुछ नहीं पड़ता । भीतर की स्थिति प्रकट हुए बिना कहाँ रहती है । छद्म से कौन प्रभावित होता है । देवता, ऋषि और सिद्ध पुरुषों पर व्यक्ति के छद्म का नहीं अन्तराल के स्तर का प्रभाव पड़ता है । उसी से द्रवित होकर वे कुछ ऐसे देने के लिए द्रवित होते हैं जिसके फलस्वरूप कोई कहने लायक विभूति हाथ लग सके दर्शन करने, माला पहनने, नमन करने, बातें बनाने भर से वह लाभ कहाँ मिलता है जो सच्चे शिष्यों को सच्ची पात्रता उपलब्ध करती रही है ।

बेटी विवाहने से पूर्व जमाता की पात्रता हजार बार परखी जाती है और देखा जाता है कि जिसे प्राण प्रिय, सुयोग्य पुत्री दी जा रही है वह उसे पाने का अधिकारी भी है या नहीं । उसे पाकर क्या करेगा ? प्रतीत हो कि कुपात्र जमाता उपलब्ध पुत्री से दासी वृत्ति कराने और घर भरने की बात सोचता है तो इसके लिए कोई अपनी बेटी देगा नहीं । सिद्ध पुरुषों की सिद्धियाँ सुयोग्य बेटी से भी अधिक प्रिय और बड़ी कठिनाई से समर्थ बनाई गई होती हैं । इन्हें पाने के लिए हाथ पसारने भर से काम चलने वाला नहीं है उसके लिए पात्रता प्रस्तुत करनी ही होगी और जिस शर्त पर उसे लिया गया है उस अनुबन्ध को निभाना ही होगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महान गुरु किसी उच्च प्रयोजन के लिए अपनी शक्तियाँ या सिद्धियाँ हस्तान्तरित करते हैं । संकीर्ण स्वार्थपरता की पूर्ति के लिए लोभ, मोह और अहंकार की तृप्ति के लिए कोई विवेकवान अपनी बहुमूल्य कष्ट साध्य कमाई दे सकता है और न इस प्रकार किसी की जेब काटने की बात किसी न्याय निष्ठ को सोचनी चाहिए । सरकारी उच्च पदासीन अफसरों को कितने ही असामान्य अधिकार या साधन मिलते हैं पर उनका उपयोग प्रजाहित में शासन की इच्छानुसार ही किया जा सकता है । कोई अफसर उन साधनों को निजी स्वार्थ साधना में करने लगे तो उसे अपराधियों के कटघरे में खड़ा होना होगा ।

गुरु गरिमा आदर्शों को अपनाकर ही उन्हें उपलब्ध हुई होती है । वे उसे हस्तान्तरित भी उसी प्रयोजन के निमित्त करते हैं । साथ ही यह भी जानते-परखते हैं कि लेने वाला प्रमाणिक एवं ईमानदार भी है या नहीं । यह सिद्ध न कर पाने पर कुपात्र शिष्य जिस-तिस के सामने पल्ला पसारते फिरने पर भी खाली हाथ रहते हैं । गुरुओं के दीक्षा अनुदान इस शर्त पर हस्तान्तरित होते हैं कि जो माँगा जा रहा है, उसका प्रयोग, उपयोग उच्चस्तरीय प्रयोजनों में हो संकीर्ण स्वार्थपरता की पूर्ति के लिए, चाटुकारिता करने भर की ओछी रिश्वत देकर कभी किसी को उच्चस्तरीय अनुदान पाने में सफलता नहीं मिली । इस नंगी सच्चाई को जितनी जल्दी समझ लिया जाये उतना ही अच्छा है ।

हमको हमारे महाप्राण गुरुदेव ने जो अनुदान दिया है उसके पीछे शर्त रही है जिसे हमने आदि से अन्त तक पूरी ईमानदारी के साथ पूरा किया है । पात्रता की कसौटी सदा हमारे ऊपर लगी रही है । हम जितने खरे सिद्ध होते चले हैं उसी आधार पर क्रमशः हमें अधिकाधिक बड़े अनुदान मिलते चले आये हैं । विवेकानन्द, दयानन्द, शिवाजी, चन्द्रगुप्त आदि ने जो माँगा या पाया वह उच्चस्तरीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए था । पाने से पूर्व इनमें से हर किसी को अपनी पात्रता सिद्ध करनी पड़ी है । मेडिकल कालेज में प्रवेश पाने से पूर्व "प्री मेडिकल टेस्ट" देने पड़ते हैं । अफसरों के चुनाव में चुनाव आयोग के सामने कठिन परिक्षाओं में उत्तीर्ण होना होता है । दंगल में इनाम पाने से पूर्व अपना पराक्रम प्रतियोगियों से अधिक होने का प्रमाण प्रस्तुत करना पड़ता है ।

सात लाख की लाटरी खुल जाने के उपरान्त एक हजार का दान करने प्रलोभन देने वाले आध्यात्म क्षेत्र में बचकाने माने जाते हैं । लाटरी का नम्बर बताने की स्थिति में जो है वह किसी को नम्बर बताने और मात्र हजार रुपया से सन्तोष करने की बात सोचेगा ही नहीं, वह किसी को बिचौलिया नहीं बनायेगा, अपनी ही लाटरी खोल लेगा । किसी का अहसान क्यों लेगा ? लाभ होने के उपरान्त दान देने की शर्त विवेकवानों के बीच काम नहीं देती, यह तो ओछे लोगों का प्रलोभन देकर काम कराने का घिनौना तरीका है । उच्च क्षेत्रों में इस हेराफेरी की कोई गुन्जाइश नहीं है। जिसे भी मिले हैं तप करके अपनी पात्रता सिद्ध करने के उपरान्त ही वरदान मिले हैं ।

हमने आदान-प्रदान की जो प्रक्रिया अपने महागुरुदेव के साथ निभाई है, उसी को हमारा शिष्यत्व प्राप्त करने के इच्छुकों में से प्रत्येक को अपनानी चाहिए । हमारे पास जो था, वह सच्चे मन से, हमने परमार्थ के लिए महागुरुदेव की इच्छा, आवश्यकता के निमित्त अपने को, अपने साधकों को खपा देने के रूप में समर्पित किया है । उनके आदेशानुसार अपने आप को तपाया है । यही है वह पात्रता, जिसके बदले में हमारे महाप्राण गुरुदेव ने अपनी भारी कमाई हमारी समर्थता के निमित्त निछावर कर दी है ।

मन बहलाना हो तो बात दूसरी है अन्यथा गुरु-शिष्य की परम्परा अपनाने की, सच्चे अर्थों में कार्यान्वित करने की बात ही सोची जानी चाहिए और उसी आधार पर कोई बड़ा लाभ पाने, महत्त्वपूर्ण आदान-प्रदान का द्वार खोलने की चेष्टा उसी प्रकार करनी चाहिए जैसा कि उदार चेता करते हैं ।

आदर्श गुरु-शिष्य परम्परा फिर जागे ?

तैत्तिरीय उपनिषद् में "मातृदेवो भव", "पितृ देवो भव" के साथ "आचार्य देवो भव" कह कर गुरु का महत्त्व माता-पिता के तुल्य बताया है । इतना ही नहीं अनेक स्थानों पर तो "गुरु साक्षात् परब्रह्म" कहकर उसकी सर्वोपरिता को भी स्वीकार किया गया है । वस्तुस्थिति भी ऐसी ही है । बालक के पालन-पोषण का कार्य माता-पिता करते हैं किन्तु उसे संस्कारवान बनाकर सुसभ्य नागरिक बनाना आचार्य की जिम्मेदारी है । इस महान् उत्तरदायित्व के कारण ही गुरु मनुष्य-समाज का देवता है । उसकी महत्ता पर जितनी लिखी जाय उतनी कम है ।

प्राचीन पद्धति के अनुसार जैसे ही बालक की बुद्धि का विकास प्रारम्भ हो उसे योग्य गुरु को सौंप देने का विधान है । गुरुकुल प्रणाली में विद्यार्थी पूर्ण शिक्षित होने तक अपने गुरु के समीप रहकर जहाँ अक्षराभ्यास, भाषा बोध, व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि का अध्ययन करते थे वहाँ उन्हें चरित्र, सदाचरण, पवित्रता, आन्तरिक निर्मलता, अतिथि-सेवा, भ्रातृ-भावना, सहयोग, सहानुभूति, परदुःख कातरता और परोपकार की शिक्षा दी जाती थी । मानसिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रौढ़ता, विचारशक्ति, उत्तम स्वास्थ्य और शुद्ध जीवन लेकर स्नातक जिस क्षेत्र में प्रवेश करते थे उसी में सत्य को प्रतिस्थापित कर योग्य नागरिक कहलाने का श्रेय प्राप्त करते थे । जो अपने चरित्र और विद्वता को कसौटी पर कस कर पूर्णता प्राप्त कर लेते थे, शिक्षा का गुरुतर कार्य उन्हीं को सौंपा जाता था । ताकि वे विद्यार्थियों को अक्षर ज्ञान के साथ सद्गुणों की क्रियात्मक शिक्षा भी दे सकें । इसके लिये वे पहले अपने उदात्त चरित्र की परीक्षा देते थे । जिनमें विद्यार्थियों के चरित्र और ज्ञान को परिपक्व बनाने की, उनके मन और जीवन को सत्प्रेरणायें देकर उत्कृष्ट बनाने की क्षमता होती थी उन्हें ही आचार्यत्व का गौरवपूर्ण पद प्राप्त होता था । श्रेष्ठ चरित्र की आधारशिला पर विनिर्मित बालकों का जीवन भी तब भव्य और भला बनता था ।

आज गुरु की आज्ञाओं का पालन करना तथा उनकी सेवा करना प्रतिगामिता का चिह्न समझा जाता है । शिक्षा के क्षेत्र में भौतिक शिक्षा-पद्धति का पूर्णतया प्रचलन होने से अब शिक्षक भी वैसे निष्ठावान नहीं रहे । शिक्षकों का कार्य पाठ्य विषय की किसी तरह प्रतिपादित करके समझा देना और विद्यार्थियों ने शिक्षा का उद्देश्य केवल प्रमाण-पत्र पा लेना समझ लिया है । शिक्षा के क्षेत्र में श्रद्धा प्रायः विलुप्त है और सभी ओर अनुशासन-विहीनता ही दृष्टिगोचर हो रही है । व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा देने का कोई प्रयोजन नहीं रह गया । नागरिक जीवन में प्रवेश पाने तक बालकों में इस कारण से न तो बौद्धिक आत्म-निर्भरता आ पाती है और न वे जीवन के सदुद्देश्य को ही समझ पाते हैं । सामाजिक जीवन जो अस्त-व्यस्त हो रहा है वह इसी के कारण है ।

गुरु की महत्ता शिक्षा और गुणों तक ही सीमित नहीं है । सही ज्ञान का दिग्दर्शन कराना उनका प्रमुख उद्देश्य रहा है । मनुष्य संसार की अनेक समृद्धियाँ प्राप्त कर ले, सुख और सुविधाओं की किसी तरह की कमी न हो तो भी उसके शान्तिमय जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती । इस सृष्टि के ''कारण'' और ''उद्देश्य'' को समझे बिना शाश्वत आनन्द की अनुभूति नहीं होती । यह ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य का मूल उद्देश्य है । विद्यार्थी जीवन में मनुष्य की बुद्धि कोमल और ग्रहणशील होती है अतः श्रेष्ठ संस्कारों के बीच उनमें डालना इस समय आवश्यक होता है । ब्रह्म सूत्र का प्रथम सूत्र-- 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'-- विद्यार्थी के मन की ज्ञान पिपासा को प्रकट करता है । विश्व की रहस्यमयी गुत्थियों को सुलझा कर परम सत्य की खोज करना मनुष्य जीवन का लक्ष्य भी है । लक्ष्य पूर्ति के लिए साधना की आवश्यकता होती है । साधना अनुभवी पथ-प्रदर्शक की देख-रेख में ही सम्पन्न हो सकती है । गुरु शब्द से ''ब्रह्म विद्या'' का बोध होता है । साधना और ''ब्रह्म विद्या'' के निष्णात आचार्य यह समझते थे कि साधना काल में साधक के जीवन में जो मोड़ और परिवर्तन लाने होते हैं उसके लिये विद्यार्थी जीवन सबसे उचित है । इस समय मस्तिष्क में श्रद्धा और विश्वास अधिक होता है किन्तु मानसिक परिपक्वता प्राप्त कर लेने के बाद लोगों के विचार और संस्कारों को बदलना कठिन हो जाता है । इसके लिए अधिक शक्ति, समय और श्रम लगा कर भी परिणाम थोड़े ही निकलते हैं । विद्यार्थी जीवन में बुद्धि का उदय होता है इसलिए उसमें आसानी से श्रद्धा उत्पन्न करके ब्रह्मतत्व की ओर प्रेरित किया जा सकता है । इस बात को भारतीय आचार्यों ने गहराई तक समझ लिया था इसीलिए जीवन के प्रारम्भ में ही शिक्षा के साथ साधना का समन्वय किया गया था ।

गुरु के सान्निध्य में रह कर शिष्य साधना का तेजस्वी जीवन बिताते थे । तपोनिष्ठ होने से उनका शरीर स्वर्ण जैसा देदीप्यवान होता था । संसार की कठिनाइयों से संघर्ष करने की उनमें शक्ति होती थी । वार्तालाप विवेचन, विश्लेषण और विचार-विनिमय के द्वारा उनमें गम्भीर चिन्तन की प्रवृत्ति जागती थी । साधना और स्वाध्याय के सम्मिश्रण से उनको आत्म-ज्ञान की अनुभूति हो जाती थी । विद्यार्थी केवल गुण-पुंज या ज्ञान-पुंज ही नहीं शक्ति-पुंज होकर भी निकलते थे । फलस्वरूप उन्हें भौतिक सुखों की कोई आकांक्षा न होती थी तब वे अधिकार नहीं कर्तव्य माँगते थे । सेवा को वे व्रत समझते थे । साहस और कर्मठता उनमें कूट-कूट कर भरी होती थी । मनुष्य शरीर के रूप में उनमें स्वयं देवत्व निवास करता था । ऐसे मेधावी पुरुषों से यह भारतभूमि भरी-पूरी थी । यहाँ सुख और समृद्धि की वर्षा हुआ करती थी ।

गुरु के समीप रहकर जहाँ शिष्य इस तरह की ओजस्विता धारण करते थे वहाँ गुरु-विहीन पुरुषों की भर्त्सना भी होती थी । 'निगुरा' शब्द एक तरह की गाली समझी जाती थी । इसे एक तरह का सामाजिक अपराध समझा जाता था । माता-पिता पहले ही यह व्यवस्था बना लेते थे कि बालक को किसी आचारवान् तथा गुणवान गुरु के समीप भेज देना चाहिये । इससे वे अपने बालकों को गुरु-विहीन होने के अपराध से बचा लेते थे ।

ज्ञानवान् तथा बुद्धिमान् आचार्यों के मार्ग-दर्शन में रहकर जीवन की सर्वाङ्गपूर्ण शिक्षा इस देश के नागरिकों ने पाई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थी, इसी से वे अपने ज्ञान, संस्कृति और सभ्यता को प्रकाशित रख सके । गुरुकुलों के रूप में न सही, उतने व्यापक क्षेत्र में भी भले ही न हो किन्तु यह परम्परा अभी पूर्णरूप से मृत नहीं हुई है । आज भी ब्रह्म विद्या के जानकार आचार्य और ''अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'' के जिज्ञासु शिष्य यहाँ विद्यमान हैं किन्तु उनकी संख्या इतनी कम है कि वे किसी तरह लोक-जीवन में प्रकाश उत्पन्न नहीं कर पा रहे । फिर भी सन्तोष यह है कि 'गुरु-गौरव' अभी भी यहाँ सुरक्षित है और उसका पूर्ण विकास भी सम्भव है । इसमें कुछ देर भले ही लगे किन्तु आत्मा की ज्ञान-पिपासा को अधिक दिन तक भुलाया नहीं जा सकता । उसके जागने का समय अब करीब आ पहुँचा है ।

एक बार फिर से विचार करना पड़ेगा कि पाश्चात्य प्रणाली पर आधारित आधुनिक शिक्षा-संस्थाओं में जो व्यवस्था चल रही है उससे क्या मानवीय जीवन की समस्यायें पूरी होती हैं ? आज की शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य अर्थ-प्राप्ति और कामोपभोग रह गया है । जीवन निर्माण तथा राष्ट्र के उत्थान के लिए ऐसी शिक्षा से कोई लाभ नहीं हो सकता । विद्यार्थी जीवन में तपश्चर्या, तत्परता और संयम भावना जाग्रत करने की आवश्यकता है । इसके लिये गुरु-शिष्यों के सम्बन्धों में अनुशासन का भाव पैदा करना आवश्यक है।

इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए सर्वप्रथम योग्य, विचारवान्, दृढ़ चरित्र तथा ब्रह्मवेत्ता अध्यापकों को ढूँढ़ निकालना पड़ेगा । शिक्षा की नींव जब तक चरित्रवान् व्यक्तियों के हाथों से नहीं पड़ेगी तब तक जातीय-विकास की समस्या हल न होगी । जो स्वयं प्रकाश फैलाने वाला है यदि वही अँधेरे में ठोकर खा कर गिरे तो दूसरों को वह उजाला क्या देगा ? राष्ट्र को ज्ञानवान, प्रकाशवान तथा शक्तिवान बनाने के लिए गुरु और शिष्य परम्परा का सुधार नितान्त आवश्यक है । लोक-जीवन में विकास की समस्या इसके बिना कभी भी पूरी न होगी ।

सद्गुरु प्राप्त कर सकने का असाधारण सौभाग्य

सद्गुरु की महिमा गाते-गाते शास्त्रकार थकते नहीं । मनीषियों ने निरन्तर यही कहा है कि आत्मिक प्रगति के लिए गुरु की सहायता आवश्यक है । इसके बिना आत्म-कल्याण का द्वार खुलता नहीं । साधन सफल होता नहीं । सामान्य जीवन-क्रम में माता, पिता और गुरु को देव माना गया है और उनकी अभ्यर्थना समान रूप से करते रहने का निर्देश किया गया है ।

सामान्य अर्थ में शिक्षक को गुरु कहते हैं । साक्षरता का अभ्यास कराने वाले-- शिल्प-उद्योग, कला, व्यायाम आदि क्रिया-कौशलों की शिक्षा देने वाले भी गुरु ही हैं । तीर्थगुरु, ग्रामगुरु, कुलगुरु आदि कितने ही उनके नियमित वर्ग भी बन गये हैं । असाधारण चातुर्य में प्रवीण व्यक्ति को भी व्यंग में 'गुरु' कहते हैं । जिसका वास्तविक अर्थ होता है हरफनमौला, तिकड़मी अथवा धूर्तराज । कितने ही लोग धर्म की आड़ में चेली-चेला मूँड़ने का धन्धा परम्परा के आधार पर ही चलाते हैं । हमारा बाप तुम्हारे बाप का गुरु था इसलिए हम तुम्हारे गुरु बनेंगे यह दावा करने वाला और इसी तर्क से प्रभावित करके अपना धन्धा चलाने वाला एक बहुत बड़ा वर्ग मौजूद है । परम्परावादी लोगों के गले यह दलील उतर सी जाती है और वे योग्य-अयोग्य का विचार किये बिना इन तथाकथित गुरुओं का नमन करते हुए भेंट-पूजा करते रहते हैं । गले में कण्ठी बँधाई और कान फुकाए तो आजीवन कुछ दान-दक्षिणा देते ही रहनी पड़ेगी । शिष्य लोग एक प्रकार से धर्म सन्तोष कर लेते हैं, भले ही वह निराधार हो । गुरु लोग इस विडम्बना को मुफ्त में मान और धन प्राप्त करते रहने का एक स्वर्ण सुयोग मानकर अपने सौभाग्य पर गर्व करते हैं । इस विडम्बना को जड़ जमाये हुए किसी भी बौद्धिक क्षेत्र में व पिछड़े हुए क्षेत्र में आसानी से देखा जा सकता है ।

यह तो प्रचलन की बात हुई । परम्परा से परम्परा-ढर्रा से ढर्रा उसमें नुक्ताचीनी करने की गुंजायश नहीं रहती । लोगों की बुद्धि भी विलक्षण है । एक ओर जहाँ फूँक-फूँककर कदम रखने और गुण, दोष परखने की क्षमता पाई जाती है दूसरी ओर परम्परा बातों में उनका अन्तर्मन इतना रूढ़िवादी हो जाता है कि ढर्रे को ही सही मानते रहने के अतिरिक्त उनकी बौद्धिक क्षमता एक इंच भी आगे नहीं बढ़ पाती । कितने ही क्षेत्र में बड़े तार्किक और प्रतिभाशाली व्यक्ति कितनी ही ऐसी रूढ़ियों एवं मान्यताओं में जकड़े देखे जाते हैं जिनको तात्विक दृष्टि से देखने पर उपहासास्पद और निरर्थक ही ठहराया जा सकता है । इतने पर भी वे लोग इस बुरी तरह उनसे चिपके होते हैं मानो यथार्थता की कसौटी पर कसकर ही उन्होंने उस मान्यता को अंगीकार किया हो । यह कैसे विचित्रता है कि एक ही व्यक्ति एक दिशा में प्रखर बुद्धि और दूसरे क्षेत्र में सर्वथा मूढ़मति सिद्ध होता है ।

गुरुवाद के ऊपर यह बात आश्चर्यजनक रूप से लागू होती है । कोई विरला ही ऐसा होगा तो इस क्षेत्र में उपयोगिता, आवश्यकता एवं यथार्थता की कसौटी लेकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आगे बढ़ता हो । अनुकरण, अतिशयोक्ति, मूढ़ मान्यताओं एवं अन्ध परम्पराओं का ही उस क्षेत्र में बोलबाला रहता है । अस्तु गुरु-शिष्य परम्परा का वर्तमान स्वरूप लगभग वैसा बन गया है जिसे विचारशील अनावश्यक ही नहीं अवांछनीय भी कह सकते हैं । इस रूढ़ि से आत्मिक प्रगति का नहीं अवगति का ही द्वार खुलता है ।

शास्त्रकारों ने जिस गुरु तत्व की महिमा का वर्णन और आवश्यकता का निरूपण किया है वह प्रचलित विडम्बना के साथ कोई ताल-मेल नहीं खाता । शब्द साम्य भर उनमें है तात्विक अन्तर तो उनके बीच जमीन-आसमान जितना है । शास्त्र सम्मत गुरु तत्व और विडम्बनाग्रस्त गुरु वस्तुतः एक-दूसरे से सर्वदा भिन्न हैं ।

जिस सद्गुरु का माहात्म्य वर्णन शास्त्रकारों ने किया है वह वस्तुतः मानवी अन्तःकरण ही है । निरन्तर सद्शिक्षण और ऊर्ध्वगमन का प्रकाश दे सकना इसी केन्द्र तत्व के लिए सम्भव है । बाहर के गुरु-शिष्य की वास्तविक मनःस्थिति का बहुत ही स्वल्प परिचय प्राप्त कर सकते हैं, अस्तु उनके परामर्श भी अधूरे ही रहेंगे । फिर कोई बाहरी गुरु हर समय शिष्य के साथ नहीं रह सकता जबकि उसके सामने निरूपण और निराकरण के लिए अगणित समस्याएँ पग-पग पर क्षण-क्षण में प्रस्तुत होती रहती है । इनमें से किस का किस प्रकार समाधान किया जाय ? इसका मार्गदर्शन करने के लिए किसी व्यक्ति विशेष पर निर्भर नहीं रहा जा सकता, भले ही वह कितना ही सुयोग्य क्यों न हो । सुयोग्य व्यक्ति अपने गज से सबको नाप सकते हैं और ऐसी सलाह दे सकते हैं जो उन्हीं के लिए फिट बैठतीं । दूसरों की स्थिति में भिन्नता रहने से परामर्श का स्तर भी बदल जाता था-यह अन्तर कौन करे ? इसे केवल अपना अन्तःकरण ही कर सकता है । क्योंकि भीतरी और बाहरी परिस्थितियों की वास्तविक जानकारी जितनी अपने आपको हो सकती है उतनी और किसी को नहीं ।

अपने अन्तःकरण को निरन्तर कुचलते रहने--उसकी पुकार को अनसुनी करते रहने से आत्मा की आवाज मंद पड़ जाती है । पग-पग पर अत्यन्त आवश्यक और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकाश देते रहने का उसका क्रम शिथिल हो जाता है । आत्मा की अवज्ञा करते रहने वालों को ही दुर्बुद्धिग्रस्त और दुष्कर्म लिप्त पाया जाता है अन्यथा सजीव आत्मा की प्रेरणा सामान्य स्थिति में इतनी प्रखर होती है कि कुमार्ग का अनुसरण कर सकना मनुष्य के लिए सम्भव ही नहीं होता। यह आत्मिक प्रखरता ही वस्तुतः सद्गुरु है इसी का नमन, पूजन और परिपोषण करना गुरु भक्ति का यथार्थ स्वरूप है।

गुरु-दीक्षा इस व्रत धारण का नाम है कि "हम अन्तरात्मा की प्रेरणा का अनुसरण करेंगे ।" ऐसा निश्चय करने वाला व्यक्ति मानवोचित चिन्तन और कर्तृत्व से विरत नहीं हो सकता । जैसे ही अचिन्त्य चिन्तन मनःक्षेत्र में उभरता है वैसे ही प्रतिरोधी देवतत्व उसके दुष्परिणामों के सम्बन्ध में सचेत करता है और भीतर ही भीतर एक अन्तर्द्वन्द्व उभरता है । यदि अन्तःचेतना को कुचल-कुचलकर मूर्च्छित न बनाया गया हो तो वह इतनी प्रखर होती है कि अचिन्त्य चिन्तन के साथ विद्रोह खड़ा कर देती है और उस अवांछनीय विजातीय तत्व के पैर उखाड़ कर ही दम लेती है ।

रक्त के श्वेत कण शरीर में रोग विषाणुओं के प्रवेश करते ही उनसे लड़ने के लिए एकत्रित हो जाते हैं और उन विषाणुओं को पूरी तरह खदेड़ देने तक प्रबल संघर्ष करते रहते हैं । रक्त को पहले से ही विषाक्त या दुर्बल बना लिया हो तो बात दूसरी है अन्यथा श्वेत रक्त कण शरीर को रोगों के आक्रमण से बचाये रहने का अपना उत्तरदायित्व पूरी तरह निभा देते हैं । ठीक इसी प्रकार चेतना के क्षेत्र में अन्तःकरण द्वारा यही उत्तरदायित्व निवाहा जाता है । अनैतिक और निकृष्ट स्तर का कोई विचार उस मस्तिष्क में देर तक अपने पैर नहीं जमा सकता, जिसका संरक्षण आन्तरिक 'सद्गुरु' सतर्कतापूर्वक कर रहा है । सद्विचारों की रक्षा पंक्ति को भेदकर मानवी चेतना पर दुर्विचारों का आधिपत्य जम सकना तभी सम्भव होता है जब अन्तरात्मा मूर्च्छित या मृतक स्थिति में पहुँचा दी गई हो ।

कुकर्म करते समय--शरीर-गत दिव्य चेतना का विद्रोह देखते ही बनता है । पैर काँपते हैं, दिल धड़कता है, गला सूखता है, सिर चकराता है और भी न जाने क्या-क्या होता है । ध्यानपूर्वक देखने से कुकर्म के लिए कदम बढ़ाते समय की भीतरी स्थिति ऐसी होती है, मानो किसी निरीह पशु को वध करने के लिए ले जाते समय कातर स्थिति में देखा जा रहा हो । सामान्य व्यक्तियों में से अधिकांश की आन्तरिक स्थिति ऐसी हो जाती है कि वे उस अवांछनीय कार्य को पूरा कर ही नहीं पाते, विचार अधूरा छोड़कर अथवा असफल होकर वापिस लौट आते हैं । वस्तुतः यह पराजय यह असफलता उस अर्न्तद्वन्द्व से ही उत्पन्न होती है जो कुकृत्य न करने के पक्ष में प्रबल प्रतिपादन कर रहा था । सद्गुरु डूबते को उबारते हैं वाला उक्ति ऐसे ही अवसरों पर सर्वथा लागू होती है ।

जिन्हें क्रूर कर्म करने होते हैं वे प्रायः उसके लिए गहरा नशा कर लेते हैं ताकि अन्तःचेतना उस कुकृत्य को करने से रोकने की बाधा उपस्थित न करे । हत्या करने जैसे कार्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो शराब जैसे नशे पिये बिना किसी उस कला में पारंगत व्यक्ति से ही हो पाते हैं । नशे का प्रचलन न हो पाता तो सम्भवतः आधे से अधिक दुष्कर्म सम्भव ही न हो पाते और मस्तिष्क का आधा भाग, आधा समय जिस अचिन्त्य, चिन्तन में रुचिपूर्वक संलग्न रहता है वह बात भी न बन पाती । अन्तरात्मा की पुकार को निरस्त करने में नशे ने शैतान के प्रमुख शस्त्र का काम किया है ।

अन्तरात्मा को कुचलते जाना, अपने आपको सर्वतोमुखी पतन के गर्त में धकेलना है । उज्ज्वल भविष्य को अन्धकारमय बनाने का प्रधान कारण आत्मा की पुकार को अनसुनी करते हुए उसे क्षीणतम दीन-दुर्बल बनाते जाना ही है । स्थिर और उच्चस्तरीय प्रगति के लिए उत्कृष्ट गुण, कर्म, स्वभाव की आवश्यकता पड़ती है । व्यक्तित्व इसी आधार पर निखरता है और प्रतिभा इसी सम्बल के सहारे उभरती है । सफल जीवन--प्रबल पुरुषार्थी महामानवों की प्रधान विशेषता उनका मनस्वी होना ही है । मनस्वी वे हैं जो बाहरी प्रलोभनों एवं परिस्थितियों की परवाह न करते हुए उच्च आदर्शों के लिए अपनी विचारणा एवं क्रियाशीलता को व्यवस्थित रूप से सँजोया करते हैं । ऐसे लोग बाहरी परामर्श की अपेक्षा नहीं करते और न जन-प्रवाह किधर बहता जा रहा है यह देखते हैं । उन्हें अपनी जीवन नीति अन्तरात्मा की पुकार को प्रधानता देते हुए निर्धारित करनी पड़ती है । जो इतना साहस सँजो सकें उन्हीं को असाधारण, अति मानव बनने का सुअवसर मिला है । इसे सद्गुरु कृपा का सबसे बड़ा अनुग्रह एवं वरदान कहा जाये तो कुछ अत्युक्ति न होगी ।

शास्त्रकारों ने सद्गुरु का वंदन करते हुए उसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उपमा दी है । परमानन्ददायक परब्रह्म कहा है । यह उपमा किसी व्यक्ति विशेष के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकती भले ही वह कितना ही सुयोग्य क्यों न हो । यह वर्णन विशुद्ध रूप से परिष्कृत अन्तःकरण के लिए ही किया गया है । गुरु को गोविन्द से बढ़कर मानने की मान्यता अन्तरात्मा को परमात्मा का उपलब्धि आधार समझने के लिए ही प्रतिष्ठापित की गई है । निरन्तर सत्परामर्श देने के लिए अहर्निशि साथ रहना उसी के लिए सम्भव है । अपनी वस्तुस्थिति को समझने और तदनुरूप प्रगति पथ पर आगे बढ़ने का क्रम निर्धारण कर सकना उसी के लिए सम्भव है । अस्तु सद्गुरु की उपमा ऐसी परिष्कृत और प्रखर अन्तरात्मा को ही दी गई है जो अवांछनीयता का डटकर प्रतिरोध खड़ा कर सके और अकर्म में उद्यत उन्मुक्त हाथी जैसे दुस्साहस को जंजीरों में जकड़ कर उलटा टाँग सके ।

व्यक्ति विशेष को गुरु मानने की भी आवश्यकता पड़ती है, पर उसका कार्य सद्गुरु की पहचान करा देना, उसका भक्त-उपासक बना देना भर है । इतने भर से उसकी आवश्यकता पूरी हो जाती है । किसी व्यक्ति को सद्गुरु कहना उसकी अहंकारिता का पोषण करना है । यात्रा पूरी करने में टाँगों की ही प्रधान भूमिका रहती है, लाठी तो सहारा भर देती है । सद्गुरु हमें पार उतारते हैं उन्हें प्राप्त करने के लिए शरीरधारी गुरु भी अपने ढंग की आरम्भिक किन्तु महत्त्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न करते हैं इसलिए पूजन-वन्दन उनका भी किया जाता है ।

सद्गुरु भक्ति को ईश्वर भक्ति के तुल्य माना गया है, पर वह बात सही तभी सिद्ध होगी जब अन्तःकरण को सद्गुरु माना जाये और उसे स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन जैसी सेवा साधना के आधार पर प्रखर और परिष्कृत बनाया जाय । हर कुविचार की काट कर देना और कुकर्म में प्रतिरोध कर सकना सद्गुरु का ब्रह्म तेजस् है जिसके कारण उसे ब्रह्माग्नि की उपमा दी गई है । सत्प्रवृत्तियों को उभार सकना, सद्भावनाओं को समर्थ बना सकना, सद्गुरु का अनुदान वरदान है । जब अपना अन्तःकरण ज्ञान भक्ति की त्रिविध साधना से सम्पन्न होकर शिष्य के व्यक्तित्व पर छा जाने योग्य बन जाय तो समझना चाहिए कि सच्चे सद्गुरु के मिलन का सौभाग्य प्राप्त हो गया । शिष्यत्व के साथ जो दीक्षा संकल्प जुड़ा रहता है, वह यही है कि, सद्गुरु के निर्देश को शिरोधार्य किया जायेगा, उसकी प्रेरणा का सच्चे हृदय से अनुगमन किया जायेगा । ऐसी ही गुरु भक्ति को ईश्वर भक्ति के तुल्य ठहराया गया है । वास्तविकता भी ऐसी ही है ।

श्रद्धा का आधार और अवलम्बन

भौतिक क्षेत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने के लिए ऊर्जा की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है । उसके बिना न कुछ उगता है न पकता है, न बढ़ता बदलता है । ठीक इसी प्रकार अध्यात्म क्षेत्र की ऊर्जा एक ही है, जिसे श्रद्धा के नाम से जाना जाता है । चेतना को उत्कृष्टता की ओर उभारने के लिए, श्रद्धा के बिना एक कदम भी आगे बढ़ सकना सम्भव नहीं ।

पानी का स्वभाव नीचे की ओर ढलना है । ऊपर से गिरी हुई वस्तु नीचे की ओर गिरती है । निम्न योनियों में भ्रमण करते हुए मनुष्य भी संचित कुसंस्कारों से प्रभावित बना रहता है । अवसर आते ही वह उन कुसंस्कारों को चरितार्थ भी करने लगता है । यही कारण है कि मनुष्य शरीरधारियों में से अधिकांश पशु प्रवृत्तियों में संलग्न पाये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाते हैं । उन्हें पेट और प्रजनन के अतिरिक्त और किसी कार्य में रुचि नहीं होती । मन और बुद्धि का परिकर लोभ, मोह और अहंकार के ताने-बाने बुनता रहता है । लालसा और लिप्सा की सनक नशा पीकर उन्मत्त हुए व्यक्ति पर चढ़ी खुमारी की तरह छाई रहती है । इसी में उसे अपनी बुद्धिमत्ता और सफलता भी दीखती है । कई बार तो वह इस स्थिति पर गर्व भी कर लेता है और बढ़ी हुई दुर्भावना तथा दुष्प्रवृत्तियों की दिशा में और भी अधिक बढ़ता है ।

यह लोक प्रवाह हुआ । चर्चा इससे प्रतिकूल पक्ष की करनी है-- आत्मिक प्रगति की । इसके दो पक्ष हैं एक आत्म-सुधार, आत्मविकास, दूसरा लोकमंगल का पुण्य परमार्थ । इन्हीं दो को आत्मिक प्रगति का आधारभूत लक्षण माना गया है । इन प्रयत्नों को कुछ लोग करते भी हैं, तो वह एक कौतुक कौतूहल की तरह यत्किंचित ही बन पड़ता है । अन्तराल की गहराई तक जमी हुई पशु-प्रवृत्तियों से जूझना सहज काम नहीं है । वे छापामार नीति की अभ्यस्त होती हैं । दबाव पड़ने पर दब भी जाती है, पर जब भी चौकीदार को बेखबर पाती हैं, तभी हमला बोल देती हैं । इस प्रकार करा-धरा सब कुछ गुड़-गोबर होता रहता है । आत्मिक प्रगति के लिए किये गये प्रयासों की गर्मी ठण्डी होते ही फिर पुराना माहौल अपना आधिपत्य जमा लेता है । साधकों की असफलता का मुख्य कारण प्रायः यही होता है। वे जागरूकता और निष्ठा को सतत् निरन्तर बनाये नहीं रह पाते ।

आत्मिक प्रगति के लिए दो उपचार निरन्तर करते रहने की आवश्यकता पड़ती है-- एक संयम साधना व दूसरी परमार्थ परायणता । इन दोनों में ही प्रत्यक्षतः हर किसी को घाटा दीखता है । संयम की दिशा में जितना बढ़ा जाता है उतना ही सुख-सुविधा में, वासना-विलासिता में, ठाटबाट में कटौती आरम्भ हो जाती है । औसत नागरिक स्तर का जीवन-यापन करने के लिए तत्पर होने पर दूसरों की तुलना में अपना सरंजाम हलका पड़ जाता है । सुविधाएँ घट जाती हैं । डींग हाँकने और वाहवाही लूटने जैसा भी कुछ शेष नहीं बचता । यह त्याग बलिदान जैसा मार्ग है, अपने को आदर्शों के लिए समर्पित करने जैसा । इसे व्यक्तित्व का कायाकल्प करने जैसा माना जा सकता है । विलास प्रिय कुटुम्बी सहयोगी सम्बन्धी भी इससे चिढ़ने लगते हैं । समर्थन करना तो दूर उलटा उपहास उड़ाते और सनकी ठहराते हैं ।

दूसरा अवलम्बन है-- परमार्थ । इसमें अपने समय, श्रम, मनोयोग, साधन, प्रतिभा, प्रभाव आदि उपलब्धियों को स्वार्थ साधन से बचा कर पिछड़ों को बढ़ाने और गिरों को उठाने और सम्भलों को उछालने में लगाना पड़ता है । सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन और दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन को भी उतना ही महत्त्व देना पड़ता है । इस मार्ग पर चलना संयम साधना से भी भारी पड़ता है । संयम में तो जहाँ के तहाँ तो भी बैठे रहना पड़ता है । परन्तु परमार्थ में तो अपनी संचित सम्पदा को अन्यान्यों के लिए विसर्जित करते रहना पड़ता है । यह प्रत्यक्षतः घाटे का सौदा है । अपना नुकसान सहकर दूसरों की भलाई करने के लिए जिस उदार साहसिकता की आवश्यकता पड़ती है वह कहाँ से आये ? आदर्शवादिता की भाव सम्वेदना ढीली हो तो फिर उस उत्साह में भी स्थिरता नहीं रह पाती । पानी में उठा बबूला कुछ ही समय में शान्त समाप्त हो जाता है । कुछ प्रशंसा दिलाने वाली घटनाओं को स्मरण रखा जाता है और उन्हीं को बार-बार ढिंढोरा पीटते रहा जाता है । निरन्तर यह क्रम कहाँ चल पाता है ? परमार्थ को नित्य कर्म में सम्मिलित करते रहना कितना कठिन है उसे सभी मुक्तभोगी भली प्रकार अनुभव करते हैं । मन का चोर और तथाकथित हितैषियों का दबाव रास्ता रोकने और पीछे खींचने में कोई कसर नहीं रहने देता । देखा गया है कि जिस-तिस बहाने की आड़ में पुण्य परमार्थ भी शिथिल हो जाता है । निरन्तर की व्रतशीलता निभ नहीं पाती ।

इन अवरोधों से कैसे जूझा जाये ? लक्ष्य की दिशा में निरन्तर प्रयाण करते रहने की व्रतशीलता का निर्वाह कैसे किया जाये ? इन दोनों कठिनाइयों की मिली-जुली चौड़ी धार वाली महानदी को किस नाव पर बैठकर पार किया जाये ? इस असमंजस भरे अन्धकार के बीच प्रकाश की एक ही किरण उग सकती है और वह है-- श्रद्धा ।

श्रद्धा क्या है ? इसकी एक शब्द में इतनी ही परिभाषा बताई जा सकती है कि 'आदर्शों के प्रति समर्पित अन्तराल की भाव संवेदना ।' जिसमें सभी महत्त्वाकांक्षाओं का विसर्जन करना पड़ता है । भौतिक महत्त्वाकांक्षाएँ ही उच्चस्तरीय भाव-संवेदनाओं को कुंठित करती हैं । इस महाभारत को जाने बिना कोई धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र में अवस्थित गाण्डीविधारी साधक न तो विजय पताका फहराने की स्थिति तक पहुँच सकता है और न उसके रथ को सम्भालने, चलाने के लिए कोई दिव्य तेज सारथी की भूमिका निभाने दौड़ा आ सकता है ।

भौतिक क्षेत्र में जो महत्त्व ऊर्जा का है, ठीक वही भूमिका आत्मिक क्षेत्र में श्रद्धा निबाहती है । चेतना को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढाल सकने वाली यही कारगर भट्टी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । श्रद्धा विहीन को आत्मोत्कर्ष के मार्ग पर कुछ कदम चल सकना भी कठिन पड़ता है । वह पक्षाघात पीड़ित की तरह कुछ कदम चल कर ही लड़खड़ा जाता है और धड़ाम से नीचे गिरता है ।

श्रद्धा ही एकमात्र वह अवलम्बन है । जिस पर बिठाकर आत्मचेतना को प्रक्षेपशास्त्र की तरह गुरुत्वाकर्षण रहते आन्तरिक्ष तक पहुँचाया जा सकता है । अध्यात्म क्षेत्र के जितने भी चमत्कार हुए हैं, उन सबको श्रद्धा की ही परिणति कह सकते हैं । वही पाषाण, प्रतिभा में सशक्त देवता का उद्भव करती है, उसी के प्रताप से मिट्टी का ढेला गणेश बन जाता है और वैसा ही प्रतिफल उपलब्ध कराता है । एकलव्य के द्रोणाचार्य, मीरा का पाषाण खण्ड गिरधर गोपाल, रामकृष्ण परमहंस की काली, शिवाजी की भवानी प्रकारान्तर से श्रद्धा की ही परिणति थी । यदि उन कलेवरों में से श्रद्धा के प्राण को विलग कर दिया जाये तो उनका कलेवर नगण्य स्थिति का बन कर रह जाता है ।

भयोत्पादक क्षेत्रों में झाड़ी का भूत बनने और उससे डरकर कइयों को बीमार पड़ते मौत के मुँह में जाते देखा गया है । रस्सी का साँप बन जाता है और भ्रमग्रस्त को उठाकर यमलोक पहुँचाती है । वह कथा बहुतों ने सुनी होगी जिसमें मृत्यु पाँच हजार को मारने आई थी, पर पन्द्रह हजार मर गये । यमराज ने जवाब तलब किया तो मौत ने संक्षेप में इतना ही उत्तर दिया कि उसने तो पाँच हजार ही मारे, शेष दस हजार तो डर के मारे मर गये और उसके पीछे लग गये । तंत्र विद्या की सारी प्रक्रिया इस डरने-डराने के ऊपर ही टिकी हुई है ।

भाव संवेदनाएँ अचसर प्रत्यक्ष दृश्यों से प्रभावित होती हैं । कल्पना के मानस चित्र भी कई बार हर्ष, शोक की मनःस्थिति बना देते हैं । वह उपक्रम रोते, हँसते, उठते, अकड़ते और दीन-हीन होकर रोते विलाप करते लोगों के बीच घटित होते हुए देखे जाते हैं । इसमें दृश्य प्रधान है और सम्वेदना उसका उत्पादन । यह जन-साधारण का स्वभाव है । उत्तेजक परिस्थितियों में कितने ही व्यक्ति आवेशग्रस्त भी होते देखे गये हैं और ऐसा कुछ भला-बुरा कर बैठते हैं जो सामान्य सन्तुलित परिस्थितियों में सम्भव नहीं था । वैराग्य लेने से लेकर आत्महत्या अथवा आक्रमण प्रतिशोध पर उतारू होने तक की घटनाएँ आवेश-ग्रस्त मनःस्थिति में ही घटित होते देखी गई हैं । कुकृत्य कर बैठने वाले जेल जाने पर पछताते देखे गये हैं इन्हें मनः क्षेत्र के ज्वार भाटे ही कह सकते हैं । भाव संवेदना की आवेशग्रस्त स्थिति में बन पड़ी प्रतिक्रिया भी ।

श्रद्धा में भाव सम्वेदना तो प्रधान होती है पर वह अविवेक पूर्ण नहीं होती । उसमें व्यक्ति आदर्शों को प्राणप्रिय मान कर उसके लिए उसी प्रकार समर्पित हो जाता है, जिस प्रकार कि भक्त भगवान के लिए समर्पित होता है । भवनों में हनुमान का उदाहरण प्रमुख है । राम भक्त भरत की चर्चा भी इसी रूप में होती है । पतिव्रताओं के आत्म-समर्पण का भी उल्लेख इसी रूप में होता है ।

यों प्रचलन के हिसाब से भगवान की कोई प्रतिमा कल्पित कर ली जाती है और उसी की पूजा-अर्चा, ध्यान धारणापरक क्रिया, कृत्यों को ही श्रद्धा भक्ति की अभिव्यक्ति मान लिया जाता है । इसे प्रयास का शुभारम्भ कह सकते हैं, मार्गदर्शक पट्टिका की तरह । पर इस संकेत से दिशा मात्र का बोध होता है । इतने भर से महायात्रा पूरी नहीं होती । उसके लिए तो लम्बी दूरी पार करने की आवश्यक पाथेय समेत यात्रा करनी होती है ।

यह मार्ग है श्रद्धा के अवलम्बन का । वह चेतना क्षेत्र की प्रचंड ऊर्जा है । वह न केवल लक्ष्य गढ़ती है, वरन् उस पर चलने के लिए आवश्यक सामर्थ्य भी प्रदान करती है । आदर्शवाद की दिशा में महामानवों द्वारा जो कुछ भी जितनी कुछ भी बढ़त बन पड़ती है उसके मूल में श्रद्धा की शक्ति ही काम करती रहती है । बिना उसके न तो आत्मसंयम बरतना बन पड़ता है और न त्याग-बलिदान करते । इसके बिना आदर्शवाद का निर्वाह कैसे हो ? सेवा साधना के लिए श्रम साधना लगाते कैसे बन पड़े ? मन कैसे खाली हो जो वासना, विलासिता, अहंता, संकीर्णता से ऊँचा उठकर कुछ ऐसा सोच सके जिसमें उत्कृष्टता अपनाने के लिए उमंग-उमंगे और कारगर योजना बने । श्रद्धा विहीन इस दिशा में कुछ भी सोचने में असमर्थ रहते हैं । यह दूसरी बात है कि लोग दिखावे के लिए अपने को पुण्यात्मा और उदारचेता सिद्ध करने के लिए जब तब कोई शिगूफे छोड़ते रहें । पर वह पोल अधिक समय तक बिना खुले रहती भी तो नहीं । वास्तविक और चिरस्थायी श्रेष्ठता का अर्जन कर सकने में श्रद्धा को अन्तराल की गहराई में उतारे बिना और कोई उपाय भी तो नहीं ।

आमतौर में श्रद्धा की यह गरिमा और महिमा समझ सकना सामान्य मनःस्थिति में सम्भव भी नहीं हो पाता । इसके बिना न देवता अनुकूल बनते हैं, न भगवत् चेतना के साथ अपने को जोड़ सकना सम्भव होता है । अन्तराल में दबी हुई, सोई हुई महानता का भी इसके अभाव में स्फुरण नहीं होती । उत्कृष्टता इन लक्षणों में से एक भी न उभरे तो व्यक्तित्व में वह प्रखरता कैसे उभरे जिसके सहारे स्वयं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऊँचा उठा और दूसरों को आगे बढ़ाया जाता है । आत्म-विकास की दिशा में बढ़ने वाले के लिए श्रद्धा का अवलम्बन अनिवार्य है । इसके बिना कोई आत्म प्रवचना में भले ही लगा रहे, पर ऐसा कुछ पा नहीं सकता, जिसे महत्त्वपूर्ण कहा और माना जा सके । जब कुछ बोया ही नहीं गया है तो काटने को कैसे मिलेगा ? उत्कृष्टता के क्षेत्र में जो बोया गया है वही आत्म-विकास के रूप में उगकर कोंठे भरता है । इस बीज का संचय इसी आधार पर बन पड़ता है कि अपने को तप-तितीक्षा की कसौटी पर कसा जाये । लिप्सा-लालसाओं में कटौती करके उस बचत को आत्मोत्कर्ष के लिए नियोजित किया जाये । यह सब करा सकने की शक्ति मात्र श्रद्धा से ही उपलब्ध होती है ।

श्रद्धा आकर्षणों, प्रलोभनों और दबावों के आगे झुकने से निरन्तर इन्कार करते रहने का रुख अपनाने का साहस देती है । गिरावट के ऐसे अवसरों की कमी नहीं जो दुर्बल मन वालों को सहज ही अपनी ओर खींच लेते हैं । जो संकीर्ण स्वार्थपरिता की परिधि को लाँघने से स्पष्ट इन्कार करते और इसके लिए चारों ओर फैले हुए उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, उनका कहना है, जब सभी चतुर लोग अपने मतलब से मतलब रखते हैं और दूसरों के झंझट में नहीं पड़ते तो अपने को ही क्या पड़ी है जो स्वयं को निरन्तर कसते रहें और दूसरों पर अपनी क्षमता का लाभ उलीचते चलें । आदर्शवादी कौन बनता है ? सभी अपने धन्धे में लगे हैं, फिर हमें ही क्या ऐसा कुछ करना और सोचना चाहिए उसके आदर्शों के नाम पर अपनी दुर्गति बनाने की मूर्खता अपनाई जाये ?

ऐसे-ऐसे अनेकानेक तर्कों, उदाहरणों की झड़ी लगती रहती और बढ़े हुए कदम पीछे लौटाने के लिए भरपूर दबाव डालती रहती है । पर अकेली श्रद्धा ही है, जो इन सब से जूझती रहती है । चट्टान की तरह पैर जमाने और निर्धारित लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ते रहने की प्रेरणा देती रहती है ।

गया-गुजरा जीवन स्वीकार करने के लिए महामानवों की अन्तःचेतना सदा इन्कार करती रहती है । मानवी गरिमा का मूल महत्त्व समझाती रहती है । लोक-प्रवाह की अनुपयुक्तता और अन्त में हाथ लगने वाली दुर्गति का स्पष्ट चित्र खड़ा करती रहती है । सावधान करने के लिए इतना ही पर्याप्त रहता है । उसके सहारे काम चल भी जाता और समूचा जीवन एक सुव्यवस्थित योजना के अनुरूप में ढल भी जाता है । यही है आत्म-सत्ता के प्रति विश्वास, श्रद्धा के अवलम्बन की शक्ति जो किसी साधारण मानव को महामानव, देवपुरुष की श्रेणी में ला खड़ा कर देती है ।



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गायत्री उपासना द्वारा मनुष्य जीवन की सार्थकता

गायत्री के जप की महिमा

हिन्दूधर्म-शास्त्रों में मनुष्य को आत्मिक शक्ति प्रदान करने वाले और मनोकामनाओं को सिद्ध करने वाले जो अनेक मंत्र बतलाये गये हैं, उन सबमें गायत्री को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है । विश्वामित्र ऋषि का मत है कि "चारों वेदों में गायत्री के समान कोई मन्त्र नहीं है । इतना ही नहीं सम्पूर्ण वेद गायत्री मन्त्र के एक कला के समान भी नहीं हैं ।" भगवान मनु ने कहा है कि "ब्रह्मा जी ने तीन वेदों के सार रूप गायत्री मन्त्र को खोजकर निकाला है । इस मन्त्र को पढ़ने से वेद जानने का फल प्राप्त होता है ।" याज्ञवल्क्य, पाराशर, शंख, शोनक आदि ऋषियों ने भी गायत्री को मनुष्य के उद्धार और मोक्ष प्राप्ति के निमित्त सर्वश्रेष्ठ उपाय बतलाया है ।

वर्तमान समय के महापुरुष भी गायत्री की महिमा स्वीकार करते हैं । महात्मा गाँधी जी ने कहा है कि "स्थिर चित्त और शान्त हृदय से किये हुए गायत्री जप में आपत्तिकाल के संकटों को दूर करने की शक्ति है ।" लोकमान्य तिलक ने कहा है कि "गायत्री मन्त्र में कुमार्ग से हटाकर सत्मार्ग पर चलाने की प्रेरणा विद्यमान है ।" पं० मदनमोहन मालवीय की सम्मति है कि "ऋषियों ने हमको जो अनेक रत्न दिये हैं उनमें गायत्री सर्वश्रेष्ठ रत्न है ।" कविकर रबीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है कि "गायत्री मन्त्र ही राष्ट्र की आत्मा को जाग्रत करने वाला है इसमें सन्देह नहीं।" स्वामी दयानन्द कहते हैं कि "चारों वेदों का मूल मन्त्र गायत्री ही है । आदिकाल में सभी ऋषि मुनि इसी का जप किया करते थे ।" स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे कि "राम को प्राप्त करना सबसे बड़ा काम है और गायत्री मनुष्य के मन को सांसारिक वासनाओं से हटाकर राम में लगा देती है ।" योगी अरविंद के कथनानुसार, "गायत्री में महत्त्वपूर्ण शक्ति मौजूद है ।" श्री रामकृष्ण परमहंस ने स्वानुभव से बतलाया है कि "गायत्री द्वारा बड़ी से बड़ी सिद्ध प्राप्त की जा सकती है ।" स्वामी विवेकानन्द का मत है कि "गायत्री मन्त्र समस्त मन्त्रों का मुकुटमणि है ।"

इसमें सन्देह नहीं कि जिस प्रकार आयुर्वेद शास्त्रों में अनेक ऐसे प्रयोग बतलाये हैं कि जिनके द्वारा मनुष्य शरीर के परिमाण बदलकर उसके शरीर का कायाकल्प हो जाता है, इसी प्रकार गायत्री-मन्त्र का सच्चे हृदय से जप करने से मनुष्य का आत्मिक कायाकल्प हो जाता है और उसे ऐसा जान पड़ता है कि उसके हृदय से सब प्रकार के विकार दूर होकर सत्त्वगुणी तत्वों की अभिवृद्धि हो रही है । इसके प्रभाव से विवेक, दूरदर्शिता, तत्वज्ञान का उदय होकर अनेक अज्ञान जनित दुःखों का निवारण होता है । गायत्री-साधना से मनुष्य के अन्तर में ऐसी दृढ श्रद्धा का आविर्भाव होता है कि वह सब प्रकार के विघ्न बाधाओं और प्रतिकूल परिस्थितियों को हँसते-हँसते सहन कर लेता है । भली-बुरी सब प्रकार की अवस्थाओं में वह साम्यभाव रखकर शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है । उसको संसार की सबसे बड़ी शक्ति 'आत्मबल' प्राप्त हो जाता है जिसके द्वारा वह अनेक प्रकार के सांसारिक लाभों और मनोकामनाओं को भी सहज में प्राप्त कर लेता है ।

गायत्री मन्त्र देखने में बहुत बड़ा नहीं है और उसका अर्थ भी ऐसा सरल है कि कोई भी साधारण पढ़ा-लिखा मनुष्य उसको सहज में समझ सकता है और याद कर सकता है । पर इस सीधे-सादे मन्त्र में ऐसी अमोघ शक्ति भरी है कि लोक और परलोक का बड़े से बड़ा काम उसके द्वारा सिद्ध हो सकता है । स्वामी दयानन्द के उपदेशों को सुनने एक गरीब धुनिया आया करता था । एक दिन अवसर पाकर वह स्वामी जी से पूछ बैठा--"महाराज, मैं तो कुछ पढ़ा-लिखा नहीं हूँ और आपके उपदेश विद्वतापूर्ण होते हैं। इसलिए कोई ऐसा उपाय बतलाइये कि मेरे जैसे मूर्ख का भी कल्याण हो सके ।" यह सुनकर स्वामी जी ने गायत्री मन्त्र अर्थ सहित लिखकर उसे दे दिया और कहा--"इस मन्त्र का उसके अर्थ को स्मरण कर जप करते रहो और साथ ही रुई धुनने के धन्धे में सच्चे और ईमानदार रहने का प्रण करो । इसी से तुम्हारा कल्याण हो जायेगा ।" इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने इस अवसर पर उपदेश देते हुए कहा था कि "आत्मघात करने के लिए मनुष्य के पास एक मामूली सा चाकू होना काफी है । उसको गले में घुसाकर वह अपने जीवन का अन्त कर सकता है । पर दूसरों को मारने के लिये बड़े-बड़े हथियारों की आवश्यकता पड़ती है । इसी प्रकार किसी व्यक्ति के लिए अपने उद्धार के लिये 'ओम्' और गायत्री मन्त्र का जप ही पर्याप्त है ।"

मनुष्य जन्म का सबसे बड़ा फल सन्मार्ग पर चलकर परमात्मा की भक्ति प्राप्त करना ही बतलाया गया है । इसके लिए भी गायत्री की विधिवत् उपासना और उसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदेशानुसार आचरण करना अत्यन्त फलदायी होता है । 'मनुस्मृति' में कहा गया है--

कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः ।
सं भूतिं तस्य तांविद्याद् यद्योनावभिजायते ।।
आचार्य स्त्वस्य यां ऽजातिं विधिवद्वद पारगः ।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजराऽमरा ।।

(मनु० अ० २ श्लोक १४७- ४८)

अर्थात्--''माता-पिता तो काम वश होकर भी बालक को उत्पन्न करते हैं, इससे जिस योनि में वह जाता है, उसी प्रकार के उसके हस्तपादादिक हो जाते हैं । परन्तु सम्पूर्ण वेद का जानने वाला आचार्य विधिवत् गायत्री उपदेश द्वारा इस बालक की जो जाति उत्पन्न करता है, वह जाति सत्य है और अजर-अमर है ।''

गायत्री महिमा भारतवर्ष में अति प्राचीनकाल से चली आई है, जिसका प्रमाण सभी शास्त्रों, इतिहासों और पुराणों में मिलता है । हिन्दुओं के षोड्ष संस्कारों में यज्ञोपवीत सबसे मुख्य और सर्वमान्य समझा जाता है । इस संस्कार के अवसर पर गुरु शिष्य को इसी मन्त्र का उपदेश करता है । इसी प्रकार संयास ग्रहण करने के अवसर पर भी जल में खड़े होकर ''ॐ भूर्भवः स्वः । सावित्री प्रवश्यामि''--का पाठ करना पड़ता है, जिसका आशय यह है कि ''आज से मेरी माता सावित्री (गायत्री) है ।''

बाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि जिस समय विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षा के लिए साथ ले जा रहे थे उस रात्रि के समय विश्राम के लिए मार्ग में ठहरे । प्रातः होने पर ऋषि ने उनको उठाकर कहा--

कौशल्या सुप्रजा राम पूर्वा संध्या प्रवर्तते ।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्त्तव्य दैव मान्हिकम् ।।
तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ ।
स्नात्वा कृतो दकौ वीरौ जपेतुः परमं जपम् ।।

''राम, तू कौशल्या का सुपुत्र है, अब उठकर आन्हिक क्रम करो । इस परम हितकारी वचन को सुनकर दोनों भाई स्नान आचमन करके गायत्री जप करने लगे ।''

इसी प्रकार महाभारत में कहा गया है कि जब श्रीकृष्ण पांडवों की तरफ से संधि का प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जा रहे थे तो उन्होंने मार्ग में रथ से उतरकर नित्य कर्म करके यथाविधि संध्या की--

अवतीर्य रथात् तूर्ण कृत्वा शौचं यथाविधि ।
रथ मोचन मादिश्य संध्यामुपविवेश ह ।।

(उद्योग पर्व ८४-२१)

इसके पश्चात् हस्तिनापुर पहुँचकर स्नान, हवन और जप करके वे कौरवों की सभा की ओर चले--

''कृतोदकानुजप्यः सहुताग्नि समलंकृतः ।''

(उद्योग० ६४-६)

भारतीय हो नहीं विदेशों के विद्वानों ने भी गायत्री की महिमा को स्वीकार किया है । सर मोनियर विलियम ने अपनी 'बुद्धिज्म' नाम की पुस्तक में लिखा है कि ''ईसाई धर्म ईसा के बिना कुछ नहीं, इस्लाम धर्म हजरत मुहम्मद के बिना कुछ नहीं, बौद्ध धर्म महात्मा बुद्ध के बिना कुछ नहीं । परन्तु मुझे यह सत्य बात कहने में कोई संकोच नहीं, यद्यपि मैं ईसाई हूँ, कि हिन्दुओं का मूलमन्त्र गायत्री है, जो बिना किसी ऋषि, मुनि या महान पुरुष के जीवित रह सकता है । हिन्दू धर्म का आधार किसी विशेष मनुष्य पर नहीं है। इस मन्त्र के द्वारा हर एक मनुष्य सीधा परमेश्वर से ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।''

इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि गायत्री मंत्र मनुष्य के आत्मिक और मानसिक उत्थान का सबसे बड़ा साधन है । जिस प्रकार गीता को समस्त उपनिषदों का सार कहा गया है, इसी प्रकार गायत्री मन्त्र वेदों का सार है इसमें कोई सन्देह नहीं । गायत्री मन्त्र के जप से सब देवताओं का अनुग्रह प्राप्त किया जा सकता है। इसके द्वारा देवी की आराधना की जा सकती है, विष्णु की आराधना की जा सकती है, सूर्य की आराधना की जा सकती है और निर्गुण परमात्मा की भी आराधना की जा सकती है।

ब्रह्मचारी में जो तेज पाया जाता है वह गायत्री मन्त्र के जप का ही होता है । गृहस्थ के यहाँ जो वैभव अथवा समृद्धि दिखलाई पड़ती है वह भी गायत्री की ही होती है । वानप्रस्थ में जो शक्ति और सन्तोष प्राप्त होता है वह भी गायत्री का ही है । इस प्रकार जिस क्षण से बालक यज्ञोपवीत धारण करता है और जिस समय वह संन्यास की सर्वोच्च स्थिति में प्रवेश करता है, उसकी मार्गदर्शक, सहायक, शक्तिदाता गायत्री ही रहती है । इसके लिए गायत्री ही सर्वस्व होती है । सत्य तो यह है कि एक हिन्दू का आध्यात्मिक जीवन गायत्री से ही आरम्भ होता है और अंत समय तक गायत्री उसका साथ देती है । यही कारण है कि शास्त्रों ने गायत्री का जप प्रत्येक हिन्दू का अनिवार्य कर्त्तव्य बतलाया है । चाहे उसका कुल देवता कोई भी हो, चाहे वह किसी भी ईश्वरीय अवतार की पूजा क्यों न करता हो, पर नित्यप्रति गायत्री का उच्चारण करके सूर्य को अर्घ्य देना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है । इस मंत्र के रूप में हमारे प्राचीन ऋषि, मुनि हमको ऐसी शक्ति प्रदान कर गये हैं कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिसकी तुलना की अन्य कोई शक्ति संसार में नहीं मिल सकती ।

गायत्री का अद्भुत प्रभाव

यजुर्वेद के पहले अध्याय में एक मंत्र आया है जिसमें बतलाया गया है कि मानव देह कहाँ से आया और इसका क्या प्रयोजन है ? वास्तव में ये दोनों विषय सबसे महत्त्वपूर्ण हैं । इनका ज्ञान न होने से ही मनुष्य अज्ञानान्धकार में ठोकरें खाता है और कुमार्गगामी हो जाता है । यदि हमको निश्चय रूप से यह समझ में आ जाये कि हम वास्तव में कौन हैं और इस संसार में हमारे आने का उद्देश्य क्या है, तो फिर हमारे मार्ग की अधिकांश कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं और हम निरन्तर प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं । यजुर्वेद का वह मन्त्र इस प्रकार है---

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति ।
तस्मै त्वा युनक्ति । कर्मणे वांवेषायवाम् ।। (१-६)

अर्थात्--तुमको किसने युक्त किया ? अर्थात् इस शरीर के साथ आत्मा का सम्बन्ध किसने जोड़ा ? इसका उत्तर यह दिया गया कि उस परमात्मा ने तुम्हारे शरीर और आत्मा को युक्त किया । दूसरा प्रश्न है तुमको किस प्रयोजन के लिए युक्त किया गया ? इसका उत्तर यह है कि-- (१) उस परमात्मा के भजन-दर्शन मिलाप के लिए । (२) सत्यव्रत, यज्ञ, धर्म प्रचार, शुभ गुणों और विद्याओं को धारण करने के लिए तथा (३) ज्ञान की उपलब्धि के लिए । इस प्रकार वेद ने मनुष्य जन्म के तीन प्रधान प्रयोजन बतलाये--ज्ञान, कर्म और उपासना, इन्हीं तीनों तथ्यों का निरूपण चारों वेदों में किया गया है । गायत्री मंत्र में भी इन्हीं तीनों तथ्यों का समन्वय विज्ञान और तर्कयुक्त ढंग से किया गया है और वह भी ऐसे संक्षिप्त रूप में कि प्रत्येक मनुष्य सर्वदा उसे स्मरण रख सकता है और उसका मनन कर सकता है । यही कारण है कि इसे 'गुरु-मन्त्र' अथवा 'महा-मन्त्र' का दर्जा दिया गया है । इसी ज्ञान के प्रभाव से प्राचीनकाल में हमारे देश ने इनती उन्नति की थी कि वह 'जगद्गुरु' के नाम से विख्यात हो गया था । आज भी आध्यात्मिक विषयों में संसार भर के जिज्ञासु उसको उसी प्राचीन भाव से देखते हैं और आत्मिक शान्ति प्राप्त करने के निमित्त यहाँ आते हैं। इस सम्बन्ध में महात्मा आनन्द स्वामी ने अपने अनुभव की एक घटना बतलाई है--

''पहली बार सन् १९५० में जब मैं गंगोत्री गया और वहाँ एक कुटिया में रहकर योगाभ्यास करने लगा तो उन्ही दिनों अमरीका के एक अच्छे पढ़े-लिखे पति-पत्नी वहाँ पहुँचे । एक दिन बातचीत में दुनिया के दुःखी होने की चर्चा जो चली तो मैंने अमरीकन सज्जन से पूछा कि--''हम लोग अभी तक यही सुनते रहते हैं कि अमरीका बड़ा धनी देश है, वहाँ वैज्ञानिक उन्नति भी बहुत हो गई है मानव के सुख, आराम तथा ऐश्वर्य के हर प्रकार के साधन विद्यमान हैं, जितना सोना, अन्न, धन, दूध, कपड़ा, मोटरें, शानदार इमारतें अमरीका में हैं और कहीं भी नहीं । तब इतने सब के सब सुभीते, आराम के साधन छोड़कर आप गंगोत्री जैसे स्थान पर क्यों आये ? यहाँ न ठहरने का स्थान है, न बिजली है, न मोटर, न रेडियो, न कोलतार की सड़कें, न फल मिलते हैं, न शाक, न होटल हैं, न सिनेमा । यहाँ तो केवल बीहड़ जंगल है, देवदारु और भोजपत्र के वृक्षों का । कोई भी आराम का साधन यहाँ नहीं । तब आपको अमरीका जैसे वैभवशाली देश से कौन-सी वस्तु इस तपोभूमि में खींच लाई ?''

''इस प्रश्न के उत्तर में अमरीकन महिला तो मुस्कराकर रह गई, पर उसके पति ने बड़ी गंभीरता से लम्बा श्वास लेकर कहा--'ठीक है, अमरीका में सब कुछ है, परन्तु वहाँ एक चीज नहीं । उसी को प्राप्त करने के लिए, उसी की खोज में अमरीका से निकलकर हम कठिन पैदल यात्रा करते गंगोत्री पहुँचे हैं और वह वस्तु जो वैभवशाली अमरीका में नहीं है, परन्तु यहाँ हमको प्राप्त हो गई, उसका नाम 'शान्ति और आनन्द' है ।''

श्रीकृष्ण मूर्ति आध्यात्मिक जगत के एक प्रसिद्ध व्यक्ति हैं । भारत ही नहीं संसार के अनेक देशों में उनके भक्त और अनुयायी मौजूद हैं, जो उनसे उपदेश और प्रेरणा लेकर आध्यात्मिक साधन में संलग्न हैं । इन कृष्णा मूर्ति ने आरम्भ में मद्रास के आधार स्थान में रहकर गायत्री उपासना द्वारा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त किया था । इसके फल से उनकी आत्मिक शक्ति की ऐसी वृद्धि और विकास हुआ कि लाखों मनुष्य उसको भगवान का अवतार मानने लग गये । उन्होंने इस सम्बन्ध में अपना जो अनुभव प्रकट किया था उसका कुछ अंश पाठकों के लाभार्थ यहाँ दिया जाता है

''विशेष रूप से गायत्री मंत्र का प्रयोग करके उसका अवलोकन किया गया तो परिणाम अद्भुत जान पड़ा । इस मन्त्र का उपयोग स्वार्थ के लिए नहीं, परार्थ के लिए करना चाहिए । मुझे स्वयं ऐसा अनुभव हुआ है कि गायत्री मन्त्र का उच्चारण होता है वहाँ देवता भी सहायता देते हैं ।''

''गायत्री भगवान सूर्य नारायण का आह्वान मन्त्र है । गायत्री मन्त्र का उच्चारण होते ही जप करने वालों के ऊपर प्रकाश की शक्तिशाली झलक स्थूल सूर्य में से पड़ जाती है । प्रार्थना के समय चाहे सूर्य उदय हो रहा हो, चाहे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मध्याह्न का समय हो, चाहे सूर्य अस्त हो रहा हो, चाहे आधी रात का समय हो, पर जिस दिशा में सूर्य होगा, उसी तरफ से झलक आयेगी । रात्रि के समय तो झलक पृथ्वी को भेदकर आती है । यह झलक श्वेतवर्ण की कुछ सुनहलापन लिये होती है । जब उससे जप करने वाले का हृदय पूर्ण हो जाता है, तो वह मेघ-धनुष के सात रंगों में बाहर निकलती है और जप करने वाले के सामने जो कोई होता है उस पर उसका शुभ प्रकाश पड़ता है । यह प्रभाव केवल जप करने वाले के हृदय से ही बाहर नहीं निकलता वरन् उसकी प्रभा (ओरा) में से अर्धचन्द्र के आकार में निकलता है । प्रत्यके किरण त्रिकोणाकार और जीवनी शक्तियुक्त होती है । उस किरण के सामने जो मनुष्य बैठा हो अथवा सामने से आता हो तो यह किरण उसके हृदय और मस्तिष्क को स्पर्श करती है और इन अंगों के दोनों चक्रों को अल्प समय के लिए जाग्रत करती है । प्रत्येक किरण एक ही नहीं अनेक मनुष्यों पर प्रभाव डालने में समर्थ होती है और ऐसी किरणें संख्या में सात होने से उनका असर अनगिनती मनुष्यों पर पड़ सकता है ।''

''यदि एक साधारण मनुष्य की प्रभा उसके शरीर से १८ इंच बाहर तक फैलती हो तो उसकी प्रभा द्वारा जो किरणें निकलेंगी उनके नीचे का भाग नौ फीट लम्बा और पाँच फीट चौड़ा होगा । जिस मनुष्य का अधिक विकास हो चुका है उसकी प्रभा यदि हर तरफ ५० गज फैलती हो तो उसका प्रभाव क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण होगा । मनुष्य की ऐसी प्रभा उसकी वासना तथा मानसिक प्रकृति की बनी होती है और उसकी देह में ओत-प्रोत रहती है । यह प्रभा मस्तक से जितने ऊपर तक जाती है उतने ही पैरों के नीचे पृथ्वी के भीतर भी फैलती है । गायत्री मन्त्र जप करने वाले की प्रभा जितना अधिक विस्तीर्ण होगी उतना ही अधिक प्रभाव उसका पड़ेगा । यदि एक बड़ा समुदाय गायत्री मंत्र का उच्चारण कर रहा हो तो उससे बहुत बड़ी झलक उत्पन्न होती है । इससे मन्त्र का उच्चारण करने वाले सब एक रूप हो जाते हैं और उन सबमें से सात-सात किरणें निकलती हैं । ये किरणें इतने विशाल क्षेत्रफल में फैलेंगी और उनका प्रभाव कितना अधिक होगा यह सहज में समझा जा सकता है ।''

अब आधुनिक विज्ञान ने यह भी पता लगा लिया है कि संसार में कोई शब्द या विचार नष्ट नहीं होता । जो बात मनुष्य कहता या सोचता है वे तरंग रूप में आकाश में फैल जाती हैं और हजारों लाखों वर्ष तक आकाश मंडल में व्याप्त रहती हैं । बहुत से वैज्ञानिकों ने तो यहाँ तक कल्पना की है कि हम दो-चार हजार वर्ष पुराने समय में कही गई बातों की इन तरंगों को यन्त्र द्वारा फिर से ज्यों का त्यों सुनकर उसका रिकार्ड बना सकते हैं । वैज्ञानिकों के लिए इस कल्पना को व्यावहारिक रूप देना चाहे अभी असम्भव हो पर जो भारतीय योगी त्रिकाल की बातें जान लिया करते थे वे इस शक्ति से सम्पन्न अवश्य थे । सारांश यह है कि शब्दों और विचारों का अस्तित्व नष्ट नहीं होता। यही बात गायत्री मन्त्र के विषय में है । अब तक असंख्यों महापुरुष श्रद्धा और साधनापूर्वक जो गायत्री मंत्र का जप करते आये हैं उसका प्रभाव नष्ट नहीं हो गया है, वरन् सूक्ष्म जगत में उसका अस्तित्व बना हुआ है । इतना ही नहीं एक प्रकार के पदार्थों का एक स्थान पर सम्मेलन होने के नियमानुसार उस समस्त गायत्री साधना का सूक्ष्म जगत में एकीकरण होकर एक ऐसी प्रबल आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न हो गई है, कि यदि उसे विधिपूर्वक आकर्षित किया जाये तो उसके द्वारा बड़े-बड़े कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं । यही कारण है कि गायत्री-साधना में हम जितना श्रम करते हैं उससे कई गुना फल हमको इस एकत्रित गायत्री-शक्ति से प्राप्त हो जाता है । अनेक बार हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति गायत्री साधना करते ही बड़े-बड़े चमत्कार अनुभव करने लगता है, बड़ी-बड़ी आपत्तियों से बच जाता है, तो उसका रहस्य यही है कि वह हार्दिक श्रद्धा या विश्वास के फलस्वरूप गायत्री के असीम शक्ति-भण्डार से सहायता पा जाता है और उसके असम्भव समझे जाने वाले कार्य देवी राति से सिद्ध हो जाते हैं ।

पर गायत्री का मुख्य प्रभाव केवल कुछ सांसारिक लाभ प्राप्त कर लेना अथवा विपत्तियों से रक्षा पा जाना नहीं है । उसका सबसे बड़ा प्रभाव तो यह है कि वह मनुष्य के मन को, अन्तःकरण को, मस्तिष्क को, विचारधारा को सन्मार्ग की तरफ प्रेरित करती है और एक सच्चे मनुष्यत्व का विकास करती है । सत्-तत्व की वृद्धि करना ही इसका प्रधान कार्य है । साधक जब इस महामंत्र के अर्थ पर विचार करता है तो वह समझ जाता है कि संसार की सबसे बड़ी समृद्धि जीवन की बड़ी सफलता यही है कि हमारी बुद्धि शुद्ध हो जायें और हम सत्य मार्ग पर चलने लगें । इस विचार के प्रभाव से उसकी मानसिक और शारीरिक क्रियाएँ सतोगुणी होने लग जाती हैं और वह आध्यात्मिक क्षेत्र में अग्रसर होता हुआ अपना और दूसरों का कल्याण करने में समर्थ होता है ।

शरीर और मन में सतोगुणी की मात्रा बढ़ने से और भी अनेक लाभ होते हैं । हमारे अन्तर जगत से तमोगुण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और रजोगुण का हटकर उनके स्थान पर सत्-तत्व का बढ़ना ऐसा ही है, जैसे शरीर में भरे हुए रोग, मल, विष, और विजातीय पदार्थों का घटकर उनके स्थान पर शुद्ध, सजीव रक्त और वीर्य की मात्रा का बढ़ जाना । यह परिवर्तन चाहे हमको प्रत्यक्ष होता न जान पड़े पर उसका प्रभाव हमारे शारीरिक स्वास्थ्य पर स्पष्ट रूप से जान पड़ेगा । गायत्री द्वारा सतोगुण की वृद्धि होकर नीचे श्रेणी के तत्वों का निवारण होता है और इससे साधक का सूक्ष्म कायाकल्प हो जाता है । इसका प्रभाव हमारे मन और विचारों पर पड़ता है और इन्द्रियों की भोगों की हानिकारक लालसा मंद पड़ जाती है । चटोरेपन, तरह-तरह के स्वाद के पदार्थों के लिए मन ललचाते रहना, बार-बार खाने की इच्छा करना, अधिक मात्रा में खा लेना, भक्षाभक्ष का विचार न रहना, चटपटे, मीठे, गरिष्ठ पदार्थों की रुचि जैसी बुरी आदतें धीरे-धीरे कम होने लगती हैं । इस प्रकार जिह्वा के वश में आ जाने से कुपथ्य का एक भारी संकट दूर हो जाता है । इसी प्रकार कामेन्द्रिया की उत्तेजना सतोगुणी विचारों के द्वारा शांत हो जाती है । कुमार्ग में, व्यभिचार में, वासना में, मन में, कम दौड़ता है, ब्रह्मचर्य के प्रति श्रद्धा बढ़ने लगती है । फलस्वरूप वीर्य रक्षा होकर शारीरिक और मानसिक शक्ति की वृद्धि होने लगती है । स्वादेन्द्रिय और कामेन्द्रिय दो ही इन्द्रियाँ विशेष बलवान् हैं जो मनुष्य को पतन की और आकर्षित करती हैं । उनका संयम हो जाने पर स्वास्थ्य की उन्नति और मन का निर्विकार होना स्वाभाविक ही है, इनके साथ-साथ साधना के फल से स्नान, समय पर सोना और जागना, सफाई, सादगी आदि अन्य बातों का भी समावेश होने लगता है और इससे आरोग्य और दीर्घ जीवन की जड़ें मजबूत हो जाती हैं ।

शरीर की तरह मानसिक क्षेत्र में भी सतोगुण की वृद्धि से अभूतपूर्व उन्नति हो जाती है । काम, क्रोध, मोह, लोभ मत्सर आदि दोष कम होने लगते हैं । इनके स्थान पर संयम, नियम, त्याग, सत्यनिष्ठ, निरालस्यता आदि गुणों का आविर्भाव होने लगता है । इस परिवर्तन के फल से जीवन में नित्य अनुभव होने वाले दुःखों से अधिकांश में छुटकारा मिल जाता है । विद्या, बुद्धि, विवेक के जागृत होने से अनेक प्रकार की चिन्ताओं, भय, आशंका, मोह, ममता आदि मनोविकारों में कमी होने लग जाती है । धर्म-प्रवृत्ति की वृद्धि के फल से अन्याय अनाचार से चित्त वृत्ति हटने लगती है । इस प्रकार शारीरिक और मानसिक दोनों क्षेत्रों में सत् तत्व की वृद्धि होने से मनुष्य को वास्तविक आनन्द की प्राप्ति होने लगती है और साधक स्वयं ही सांसारिक दुर्गुणों से दूर हटकर आत्मानन्द का अनुभव करने लगता है । इसीलिए शास्त्र में कहा गया है--

गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्रीत्वं ततःस्मृता ।

अर्थात् जो साधकजन गायत्री का गान करते, सदैव उसका जप करते रहते हैं गायत्री उनकी रक्षा करती है । गायत्री मंत्र की साधना करने से सब तरह की कामनायें सिद्ध होती हैं । जो व्यक्ति निष्काम भाव से उसका जप करते रहते हैं उनको सब प्रकार के सांसारिक फलों की प्राप्ति के साथ मुक्ति की प्राप्ति होती है । इसीलिए हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने संसार के कल्याणार्थ इसको प्रकट किया और परम्परा द्वारा इसकी उपासना अनिवार्य रूप से प्रचलित की । इसी गायत्री उपासना के फल से यह देश लाखों वर्ष तक उन्नति करता हुआ जगत का सिरमौर बना रहा । जब कालक्रम से भोगों में फँसकर अथवा आपस में लड़कर देश का पतन हुआ तब भी आंशिक गायत्री के प्रभाव से दूसरों राष्ट्रों की तरह इसका जड़मूल से नाश न हो सका । राजनैतिक दृष्टि से पराधीन होने पर भी यह नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से अपनी बहुत कुछ रक्षा कर सका । विदेशी आक्रमणकारियों ने साम-दाम, दण्ड-भेद चारों उपायों का उपयोग करके बहुत कुछ प्रयत्न किया कि इसे धर्मच्युत करके पूर्ण रूप से हजम कर लिया जाये पर न तो मुसलमानों को न ईसाइयों को जिस उद्देश्य में सफलता मिली । इसका कारण स्पष्टतया यही था कि यहाँ के धर्म का आधार उन लोगों के धर्मों के आधार से कहीं अधिक उच्च, दृढ़ और सत्य था, जिसके सामने ये नये धर्म निस्तेज प्रतीत होते थे । इस आपत्तिकाल में भी यहाँ धर्म के अनेक साधक गायत्री की महान उपासना में संलग्न रहे और समय-समय पर उन्हीं ने ऐसी शक्तियाँ उत्पन्न कर दीं जिन्होंने विदेशियों के प्रभाव को नष्ट करके उनके पैर न जमने दिये । इस दृष्टि से देखा जाये तो गायत्री उपासना सदा से भारतीय जनता की उन्नति और सुरक्षा का आधार रही है और उसके प्रभाव से यहाँ का सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन प्रगति की ओर अग्रसर होता रहा है ।

गायत्री से मनुष्यत्व की प्राप्ति

मनुष्यत्व का सबसे बड़ा लक्षण विवेक और सदासद् सम्बन्धी ज्ञान है । केवल चार हाथ-पैर हो जाने और आँख, कान, मुँह आदि इन्द्रियों के होने से मनुष्य नहीं कहा जा सकता, सब लक्षण तो पशुओं में भी होते हैं और अनेक अंशों में पशुओं की कुछ इन्द्रियाँ हमसे अधिक शक्तिशाली होती हैं । गायत्री इसी विवेकशक्ति का विकास करने वाला महामन्त्र है और इसी से उसकी श्रेष्ठता सभी विद्वान स्वीकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हैं, चाहे वे किसी धर्म के मानने वाले अथवा किसी देश के रहने वाले हों ।

गायत्री मन्त्र का सबसे पहला शब्द ॐ है । यह ईश्वर का बोध कराने वाला मुख्य शब्द है । 'अ' से सृष्टि की उत्पत्ति, 'उ' से जगत की स्थिति या विस्तार और 'म' से सृष्टि का अंत या प्रलय का बोध होता है । यही तीनों ऐसे गुण हैं जिनसे हम परमात्मा के अस्तित्व और उसकी शक्ति का अनुमान और अनुभव करते हैं । इस सम्बन्ध में 'मुण्डकोप निषद' में कहा गया है--

अराइव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः ।
स राषो अंतश्चरते बहुधा जायमानः ।।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं ।
स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात ।।

अर्थात्--"रथ की नाभि (धुरे) में अरों की भाँति जिस हृदय देश में सब नाडियाँ आश्रित हैं , परमात्मा उसी हृदय-देश के भीतर विचरता है । उस परमात्मा का 'ओम्' के रूप में ध्यान करो । अंधकार से पार होने के लिए यह ओम् का ध्यान तुम्हारे लिए कल्याणकारी हो ।"

गुरु नानक देव ने सिक्ख धर्म की जो मुख्य प्रार्थना बनाई है, उसके आरम्भ में ही कहा जाता है--

"एक ओंकार, सत नाम, कर्ता पुरुष, निर्भो, निर्वैर, अकालमूर्त, अयोनि से भंग, गुरु परसाद जप, आद सच, जुगाद सच है भी सच, नानक होसी भी सच ।"

अर्थात्--"वह परमेश्वर जिसका सत्य नाम ओंकार है, अथवा ओंकार ही सतनाम ईश्वर का है । वह सृष्टिकर्ता तीनों कालों--भूत, भविष्यत्, वर्तमान में है । अपने आप होने वाला, भय रहित और वैर रहित है--जो अजन्मा और अमर है, उसी का जाप गुरु कृपा से करो । वह परमात्मा आदि में सत् था, युगों के आदि में सत् था, वर्तमान में सत् है और भविष्य में भी सत् रहेगा ।"

गायत्री का प्रथम वाक्य 'भूर्भुवः स्वः' यह शिक्षा देता है कि परमात्मा ही स्वयं प्राण-स्वरूप है और उसी से समस्त प्राणियों को जीवन प्राप्त होता है । वह परमात्मा सब प्रकार के दुःखों से दूर है और हमारे समस्त दुःखों का प्रतिकार उसी की सहायता से सम्भव है । संसार में और कोई साधन ऐसा नहीं जो वास्तविक रूप से हमारे कष्टों को दूर कर सके। जो स्वयं बन्धन में पड़ा है, स्वयं कामना और याचना करता है, वह दूसरे को कैसे दुःखों या अभावों से मुक्त कर सकता है ? परमात्मा ही आनन्द स्वरूप है और उसी का आश्रय प्राप्त करके हम सब प्रकार के विकारों से छूट कर स्थायी सुख को प्राप्त कर सकते हैं । यही स्थायी सुख मनुष्यत्व का अन्तिम लक्ष्य है ।

यदि विचार किया जाये तो गायत्री-मन्त्र के इस छोटे से वाक्य में अपार शिक्षाएँ भरी हुई हैं । जिस समय हमको यह ज्ञान हो जाता है कि एक ईश्वर ही सब प्राणियों में व्याप्त है, उसी का विस्तार होने से असंख्यों प्रकार के प्राणियों की, जिनमें मनुष्य भी सम्मिलित है, उत्पत्ति हुई है, तो हम अनेक प्रकार के पापों से, अन्याय और अत्याचार के कामों से बच सकते हैं । उस समय हम सहज ही में यह अनुभव करने लगते हैं कि जिन बातों से हमको कष्ट होता है या पीड़ा पहुँचती है, वे बातें दूसरों के लिये भी हितकारी नहीं मानी जा सकतीं । परमात्मा की दृष्टि में एक छोटा-सा कीड़ा भी उतना प्रिय है जितना कि एक राजा-महाराजा । इसलिए किसी कमजोर या असमर्थ मनुष्य के साथ निर्दयता या कठोरता का व्यवहार करना मनुष्यत्व के विपरीत है । हमको सब प्राणियों में समदृष्टि रखनी चाहिए, कुल, वंश, देश, जाति आदि के कारण किसी को नीच-ऊँच नहीं समझना चाहिए ।

दूसरी शिक्षा यह है कि मनुष्य को कर्म करने का अधिकार है और किसी भी दशा में उसको अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिए । अनेक मनुष्य पुण्य-कर्मों का उत्तम फल न मिलते देखकर यह विचार करने लगते हैं कि इस संसार में पाप-पुण्य की बातें केवल भ्रम है और हमको दूसरों के भले-बुरे का ख्याल छोड़कर अपने लाभ, स्वार्थ का ही ध्यान रखना चाहिए । पर गायत्री की शिक्षा है कि ऐसा विचार बहुत गलत है । जब समस्त संसार एक ईश्वर से उत्पन्न हुआ है तो उसमें अपने को सबसे अलग समझना और दूसरों के हित-अनहित का ख्याल छोड़ देना बुद्धि हीनता का सबसे बड़ा लक्षण है । इससे प्रकट होता है कि उस मनुष्य को आत्मा का कोई ज्ञान ही नहीं है और वह अपने को, केवल हाड़-मांस का एक पुतला मानता है । यह मनुष्य का निकृष्टतम् स्वरूप है । इसलिए हमको गायत्री की शिक्षानुसार अपने उच्च आध्यात्मिक रूप को समझना चाहिए और अपने उचित कर्तव्य से किसी दशा में विमुख न होना चाहिए ।

मनुष्यत्व को प्राप्त कराने वाली तीसरी शिक्षा यह है कि हमको प्रत्येक दशा में अपने विवेक की रक्षा करनी चाहिए और प्रत्येक काम में उचित-अनुचित का निर्णय कर लेना चाहिए । बहुत से मनुष्य थोड़ी-सी सफलता, सम्पत्ति, सम्मान आदि पाकर खुशी से फूल उठते हैं और अभिमान वश दूसरों को छोटा और अपने को सर्वोच्च समझने लगते हैं । इसी प्रकार ऐसे ही मनुष्य विपरीत परिस्थिति में पड़ जाने से गरीबी, निर्धनता, रोग, शोक, निर्बलता का शिकार हो जाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से एक दम हताश और निराश होकर अपने को मृतक तुल्य समझ लेते हैं । ये दोनों ही अविवेकी पुरुषों के लक्षण हैं । जो मनुष्य विवेक से काम लेता है वह दोनों ही तरह की परिस्थितियों में अपना मानसिक सन्तुलन स्थिर रखता है और यह समझ कर कि संसार परिवर्तनशील है, अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों से कभी विशेष चलायमान नहीं होता । ऐसा ही स्थिर चित्त व्यक्ति संसार में अपना और दूसरों का हित साधन करने में समर्थ हो सकता है ।

गायत्री का दूसरा वाक्य 'तत्सवितुर्वरेण्यं' मनुष्य को आत्म निर्माण सम्बन्धी अन्य कर्तव्यों की शिक्षा देता है । मनुष्य का जीवन अनिश्चित है । किसी भी समय कोई स्वाभाविक घटना उसका अन्त कर सकती है । 'बड़े से बड़ा शक्तिशाली व्यक्ति भी यह दावा नहीं कर सकता कि वह दैहिक, दैविक और भौतिक प्रकोपों से कभी आक्रान्त नहीं होगा । यह समझ कर मनुष्य को जीवन का सदैव उत्तम से उत्तम उपयोग करना चाहिए । परोपकार, समाज सेवा, धर्म-प्रचार आदि श्रेष्ठ कामों में कभी विलम्ब न करना चाहिए । साथ ही जीवन की क्षण भंगुरता को समझ कर खोटे कर्मों से दूर रहना भी आवश्यक है, क्योंकि थोड़े समय के लिए कुमार्ग पर चलना भी मनुष्य को पतन के गड्ढे में डालने वाला होता है । जब मनुष्य एक बार पतन की ओर अग्रसर हो गया तो उसके उद्धार की सम्भावना कठिन हो जाती है, क्योंकि पतन का मार्ग निम्नगामी होने से मनुष्य को सुगम जान पड़ता है और वह शीघ्र ही एक के बाद दूसरा अवगुण ग्रहण करके उनके फंदे में इस प्रकार फँस जाता है कि जब तक भगवान की विशेष कृपा न हो उसका पाप-पंक से मुक्त हो सकना असम्भव होता है । इसलिये मनुष्य को सदैव श्रेष्ठ मार्ग पर आरूढ़ रहने का प्रयत्न करना चाहिए और फिसलने का कोई भी अवसर सामने आते ही सावधान होकर उससे दूर हट जाना चाहिए । यह कोई आवश्यक बात नहीं कि हम कोई बहुत बड़ा कार्य करें । पर जिस परिस्थिति में हम हों उसके अनुकूल उत्तम कार्य हमको अवश्य करना चाहिए । अपना भाग्य-निर्माण करना मनुष्य के अपने हाथ में है । इसलिए यदि हम अपनी वर्तमान साधारण परिस्थिति में भी कर्तव्यशीलता का परिचय देंगे और नीच कर्मों से बचते रहेंगे तो हमको यथा समय उच्च स्थिति भी अवश्य प्राप्त हो सकती है । इसलिए हमको सदैव श्रेष्ठ कार्यों और श्रेष्ठ विचारों की तरफ ही अपना झुकाव रखना चाहिये । जो व्यक्ति निरन्तर उत्तम मनुष्यों की सङ्गति में रहेगा, सत् साहित्य का पठन-पाठन करेगा, कल्याणकारी विचार मन में लायेगा और वैसी ही बातचीत करेगा, तो उसके नीचे गिरने की संभावना बहुत कम रहेगी और वह स्वयं भी श्रेष्ठता के मार्ग का पथिक बनेगा ।

इसी प्रकार गायत्री के तीसरे वाक्य 'भर्गो देवस्य धीमहि' में 'भर्ग' शब्द बड़े महत्त्व का है । इसका संदेश यह है कि मनुष्य को पापों का नाश करके प्रभु की कृपा को प्राप्त करने योग्य बनना चाहिए । संसार में मनुष्य को जो तरह-तरह के कष्ट, यंत्रणाएँ, त्रास दिखलाई पड़ते हैं उनका मूल कारण पाप ही है । जो मनुष्य पापों की तरफ से सावधान रहकर उनको अपने भीतर प्रवेश नहीं करने देता और जो पाप पूर्व जन्म या इस जन्म की पिछली भूलों के कारण हो चुके हैं उनको प्रयत्नपूर्वक नष्ट करता है वही आत्मिक उन्नति करने में समर्थ होता है । तभी वह यह अनुभव करने लगता है कि परमात्मा की सृष्टि में जो कुछ है वह पवित्र और आनन्दमय ही है । पाप और बुराइयाँ तो ऐसे विकार हैं, जो परमात्मा के नियमों के प्रतिकूल चलने से उत्पन्न होते हैं । इसलिए सच्चा मनुष्य वही है जो सदैव अपनी और दूसरों की बुराइयों को दूर करते रहने का प्रयत्न करे । इस प्रकार वह सृष्टि को निर्मल और आनन्ददायक बनाने में सहायक होगा, जो परमात्मा को प्रसन्न करने वाला कार्य है । इससे मनुष्य देवत्व के गुणों को धारण करने योग्य बनने लगता है । उसको वह ज्ञान प्राप्त होता है जिसके द्वारा मनुष्य अपने को भौतिक-स्वरूप के स्थान में आत्म-स्वरूप में देखने लगता है । चूँकि आत्मा का स्वभाव अजर-अमर है, इसलिए आत्म-स्वरूप के समझ लेने से मनुष्य संसार के झूठे भय और प्रलोभनों में मुक्त हो जाता है और उस मार्ग का पथिक बन जाता है जो वास्तव में श्रेष्ठ पुरुषों के उपयुक्त कहा गया है ।

यह ठीक है कि वर्तमान समय में भौतिक उन्नति की तरफ ही लोगों का ध्यान विशेष रूप से लगा है । प्रत्येक मनुष्य अपनी शक्ति को अधिक से अधिक धन, वैभव, प्रतिष्ठा, नामवरी प्राप्त करने में लगा रहा है । आत्मिक उन्नति का महत्त्व या तो लोग भूल गये हैं अथवा उसे अव्यावहारिक चीज समझते हैं । पर यदि गम्भीर विचार किया जाये तो स्पष्ट जान पड़ता है कि ये भौतिक सफलताएँ भले या बुरे किसी भी मार्ग से प्राप्त की जायें, वे स्थायी नहीं हो सकती । वर्तमान समय में तो हम ऐसे परिवर्तन बड़े उग्र रूप में होते देख रहे हैं । बड़े से बड़े राजा, महाराजा, सम्राट, बादशाह अपने ऊँचे पदों से गिरते और साधारण श्रेणी में मिलते देखे जा चुके हैं । ऐसी अवस्था में भौतिक उन्नति को सर्वोपरि महत्त्व देना और उसी को मनुष्यता की कसौटी समझ लेना बड़ी भूल है । हमको सबसे पहले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विवेक, संयम, सत्य, दया, परमार्थ आदि दैवी गुणों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए । इन्हीं के द्वारा मनुष्य की आत्मोन्नति होती है । इनका पालन करते हुए जो भौतिक लाभ स्वभावतः प्राप्त हो जाते हैं, वे ही वास्तव में उपयोगी और कल्याणकारी होते हैं । अन्याय, अत्याचार अथवा चालाकी और धूर्तता आदि द्वारा प्राप्त की गई सांसारिक सफलता कभी स्थायी नहीं होती और उससे मनुष्य का आत्मिक पतन ही होता है । इसलिए मनुष्यत्व की प्राप्ति की आकांक्षा रखने वाले को सदैव दैवी गुणों को ही प्रधानता देनी चाहिए ।

गायत्री का अन्तिम वाक्य 'धियोयोनः प्रचोदयात्' में परमात्मा से यह प्रार्थना की गई है कि वह हमारी बुद्धि को ऐसी प्रेरणा दे कि जिससे हम असत् मार्ग को त्याग कर सत्-मार्ग को जानने और उस पर चलने में समर्थ हो सकें । हमारे सब प्रकार के मनोरथों और प्रयत्नों के सफल होने का प्रधान साधन सद्बुद्धि ही है । जिन लोगों की बुद्धि, लोभ, मोह अथवा अहंकार के वशीभूत होकर विपरीत हो जाती है, वे संसार में सच्चा सुख कभी नहीं पा सकते । चाहे प्रकट में वे वैभव सम्पन्न अच्छे मकानों में रहते और बढ़िया वस्त्र पहिनते दिखलाई पड़ें, और चाहे वे ऊपर से दूसरे लोगों पर अपना रौब, शान अथवा आतंक जमा लें, पर अपने मन के भीतर वे स्वयं अपने को श्रेष्ठ अनुभव नहीं कर सकते। इसलिए मनुष्य के लिये सबसे पहला आवश्यक गुण सद्बुद्धि ही है, जिससे वह प्रत्येक कार्य में भले-बुरे अथवा उचित-अनुचित का निर्णय करके सत्पथ पर चल सके ।

सद्बुद्धि की दूसरी विशेषता यह भी है कि वह अनेक मार्गों में से अपने अनुकूल मार्ग का निर्णय कर सके । संसार में अनेक महापुरुष हो चुके हैं और उन्होंने अपने युग के देश-काल के अनुसार उपदेश मनुष्यों को दिये हैं । इनमें से बहुत-सी बातें एक-दूसरे के विरुद्ध भी जान पड़ती हैं । विभिन्न देशों और मजहबों की बात छोड़ दें तो हमारे धर्मशास्त्रों में ही ऐसे विभिन्न सिद्धान्त पाये जाते हैं जिनके आधार पर लोग विभिन्न सम्प्रदायों में बँट गये हैं और एक दूसरे के मत पर आक्षेप करते हैं । ऐसी अवस्था में सद्बुद्धि द्वारा ही हम इस बात का निर्णय कर सकते हैं कि हमारी वर्तमान परिस्थिति में किस मार्ग का कितना अंश उपयोगी है । इसका यह आशय नहीं कि हम किसी सम्प्रदाय या उसके संचालक की निन्दा करें, पर हमको सबमें से वे ही बातें ग्रहण करनी चाहिए जो विवेक, बुद्धि और तर्क के द्वारा वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल सिद्ध हों और जिनसे अपना ही नहीं वरन् सभी का हित साधन हो ।

यह बात भी सत्य है कि ज्ञान, बल, वैभव आदि शक्तियाँ मनुष्यों में समान रूप से नहीं होती और वे परमात्मा की कृपा से ही मिलती हैं । पर जो व्यक्ति इनका प्रयोग केवल अपने लिये न करके लोकहित के लिये करते हैं वे ही उनके सच्चे अधिकारी होते हैं और उन्हीं में आगे चलकर इन शक्तियों का विशेष रूप से विकास होता है । जैसा किसी कवि ने कहा है कि विद्या एक ऐसा धन है कि जिसे ज्यों-ज्यों खर्च किया जाता है, त्यों-त्यों ही वह बढ़ता है, ऐसी ही बात अन्य सद्गुणों के लिये भी सत्य है । विद्वान्, धनवान या बलवान की सार्थकता और गौरव इसी में है कि वह अपने से कम ज्ञान वालों, निर्बलों, निर्धनों को ऊँचा उठाने में सहायता दे । ऐसा करने से केवल हम ही को सुख प्राप्त नहीं होगा, वरन् जगत में सुख का साम्राज्य स्थापित हो सकेगा । इसके विपरीत यदि हम अपनी विशेष शक्तियों का उपयोग इस दृष्टि से करेंगे कि दूसरे लोग आगे न बढ़ सकें, तो परिणाम यह होगा कि दुनिया की अवनति तो होगी ही हम स्वयं भी अपने को प्राप्त दैवी वरदानों का समुचित लाभ न उठा सकेंगे । खेद का विषय है कि वर्तमान समय में अधिकतर लोगों की मति ऐसी ही दिखलाई पड़ती है । वे दूसरे लोगों को आगे बढ़ाने, ऊँचा उठाने के बजाय, उनको नीचे ढकेलने, उनकी उन्नति के मार्ग को अवरुद्ध करने में ही अपना लाभ समझते हैं । वे ख्याल करते हैं कि ऐसा करने से उन लोगों को मिलने वाला लाभ भी हमको प्राप्त हो जायेगा और हम ही सबसे बड़े बने रहेंगे । पर ऐसी नीयत का परिणाम प्रायः उलटा ही देखने में आता है, अपनी संकीर्णता अथवा लोभ की प्रवृत्ति के कारण वे लोग सर्वसाधारण में बदनाम हो जाते हैं और इसके फल से उनकी स्थिति उच्च होने के बजाय गिरने लगती है । अगर हम आँख खोलकर देखें तो ऐसे उदाहरण समाज में लाखों की संख्या में मिल सकते हैं ।

इसलिए जो व्यक्ति इस मनुष्य-जन्म को वास्तव में सार्थक करना चाहता है, उसका कर्तव्य है कि परमात्मा से सदैव यही प्रार्थना करे कि वह उसकी बुद्धि को ऐसी प्रेरणा दे जिससे वह सत्पथ पर स्थिर रह सके । हमारे देश के भक्तों ने भगवान से जो यह प्रार्थना की है कि उनको ऐसी भक्ति प्राप्त हो जिससे उनका ध्यान किसी सांसारिक विषय की ओर न जाये, उसका आशय भी यही है । मनुष्य का वास्तविक लक्षण यही है कि वह श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त करे और फिर उनका उपयोग लोकहित के लिये करे । हमारे बड़े-बड़े महापुरुष बता गये हैं कि दीन-दुःखी और किसी भी प्रकार के अभावग्रस्त व्यक्तियों की सेवा, सहायता करना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही भगवान की सच्ची भक्ति है । परमात्मा इसी प्रकार के कार्यों से प्रसन्न हो सकता है । इसलिए हमारा कर्तव्य यही है कि हमको जो भी शक्ति और साधन अब तक प्राप्त हो चुके हैं और आगे प्राप्त होने वाले हैं उनका सर्वोपरि उपयोग लोकहित-दूसरों के साथ भलाई करना ही समझें । अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करना तो मनुष्य का सहज स्वभाव है, उसके लिये किसी भी प्रकार की शिक्षा या चिन्तन की आवश्यकता नहीं होती । पर यदि हम परमात्मा की दया से अच्छी शक्ति और साधन पाकर भी उन सबका उपयोग केवल अपना पेट भरने के लिये करते हैं, तो हम वास्तविक मनुष्य कहलाने के अधिकारी नहीं हैं । इसलिये सम्पूर्ण गायत्री-मन्त्र का आशय यही है कि हम परमात्मा से ऐसी शुद्ध बुद्धि प्रदान करने की प्रार्थना करें जिससे अपना और दूसरों का कल्याण करने का भाव सदैव बना रहे और स्वार्थ के साथ ही परमार्थ को प्रधानता देकर हम इस मनुष्य जन्म को सफल बनावें ।

हमारा कर्तव्य

गायत्री की महिमा, उसकी अमोघ शक्ति और मानव-जीवन पर उसके कल्याणकारी प्रभाव को भली प्रकार समझ लेने पर, इस बात को कहने की बहुत कम आवश्यकता रह जाती है कि मनुष्य का परम कर्तव्य है कि इस अमूल्य साधन से लाभ उठाकर अपने जीवन को सार्थक बनाये । वैसे हिन्दू शास्त्रों में साधनों की कमी नहीं है, ज्ञान, योग, भक्ति, वैराग्य आदि अनेक साधन परलोक को सुधारने और मुक्ति प्राप्त करने के बतलाये गये हैं, इसी प्रकार सांसारिक विषयों में कृतकार्य होने के लिये अनेक प्रकार के यज्ञ, जप-तप, जन्त्र-मन्त्र आदि का विधान है, पर गायत्री के समान लोक-परलोक के उद्देश्यों को एक साथ पूरा करने वाला और सर्व सुलभ साधन दूसरा कदाचित् ही मिलेगा । इसके सम्बन्ध में एक विद्वान् ने निम्न सम्मति दी है

"इस महामन्त्र के २४ अक्षरों का संगठन इतना अद्भुत है कि इसके मानसिक अथवा वाणी द्वारा उच्चारण करने से विशेष दिव्य तरंगें उठती हैं, जो बुद्धि-मण्डल, मन-मण्डल, मूलाधार चक्र तथा अन्य मर्म स्थलों पर जाकर चोट लगाती हैं । जिस प्रकार वीणा के तार छेड़ने से अद्भुत मधुर स्वर, सुनाई पड़ते हैं, उसी प्रकार गायत्री मन्त्र का जप करने से, अथवा इसके शब्दों के मौन अथवा मुख के भीतर ही उच्चारण से भी हृदयदेश में तरंगें उठने लगती हैं, जो एक अलौकिक प्रभाव डालती हैं । यह क्रिया इतनी सूक्ष्म होती है कि इसे पूरे सावधान और समाहित चित्त वाले साधक ही अनुभव कर सकते हैं । परन्तु यह अनुभव सिद्ध है कि गायत्री-जप करने तथा तदनुकूल आचरण बनाने से साधक का हृदय-कमल खिलने लग जाता है । उसे जीवन में एक ऐसा माधुर्य प्रतीत होने लगता है कि जगत के कार्य फिर अधिक घबराहट उत्पन्न नहीं करते ।"

"यह कहना तो अत्युक्ति होगी कि इस साधन के पश्चात् सांसारिक कष्ट तथा चिन्ताएँ आती ही नहीं । आती तो हैं; बड़े-बड़े योगियों, तपस्वी महानुभावों पर भी आपत्तियाँ आती हैं, परन्तु गायत्री उपासक या साधक की बुद्धि तथा हृदय इस प्रकार का बनने लगता है कि आपत्ति आने पर भी वह शान्त रहता है, सच पूछा जाये तो साधक और असाधक, भक्त और अभक्त में यही मुख्य अन्तर है । "योग दर्शन" में जो "वृत्ति सारूप्यमितरत्र" सूत्र दिया गया है उसका अर्थ यही है कि सांसारिक व्यवहार में योगी की वृत्ति तो सदा हर्ष-शोक रहित, आनन्द से प्रकाशित होकर उत्साह और उल्लासयुक्त रहती है । इसके विपरीत सांसारिक मनुष्य की वृत्ति सदा हर्ष-शोक रूपी समुद्र में डूबती और उछलती रहती है ।"

गायत्री का जप ऐसी मनोवृत्ति बनाने में बड़ा सहायक होता है । चौबीस अक्षरों से जो गायत्री के शब्द बने हैं, उनके उच्चारण से शरीर, मन, बुद्धि और हृदय पर दिव्य प्रभाव पड़ता है । जब निरन्तर प्रतिदिन यह क्रिया जारी रहती है तो बुद्धि का मोटापन दूर होने लगता है और वह तीक्ष्ण बनने लगती है । मनोविज्ञान के ज्ञाताओं ने भी अब यह स्वीकार कर लिया है कि एक ही शब्द और विचार के बार-बार दुहराने—जप करने से मन पर स्थायी प्रभाव पड़ता है और वह बार-बार दुहराया हुआ विचार जीवन में ओत-प्रोत होने लगता है, जिससे हृदय तथा बुद्धि दोनों की मलीनता दूर हटाने में भी पूरी सहायता मिलती है ।"

गायत्री की साधना का मुख्य उद्देश्य यही है कि बुद्धि की मलिनता को दूर करके शुद्धता, निर्मलता प्राप्त करने के निमित्त परमात्मा से प्रार्थना की जाये । जब मनुष्य की बुद्धि शुद्ध और सुमार्ग पर चलने वाली हो जाती है, तो मनुष्य स्वयमेव ही धन, बल, विद्या आदि सांसारिक विषयों में सफलता प्राप्त करने लगता है । महाभारत में कहा गया है--

न देवा दण्डमादाय रक्षान्त पशुऽपालवत् ।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्तितम् ।।
यस्मैदेवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम् ।
बुद्धि तस्यापकर्यऽन्ति निसोऽवाचीनानि पश्यति ।।

(उद्योग पर्व ३४/८०, ८१)

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्थात्-- 'देवता दण्ड लेकर पशु-रक्षक की भाँति पुरुष की रक्षा नहीं करते । वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं उसे बुद्धि देते हैं और जिसे असफल बनाना चाहते हैं उसकी बुद्धि पहले छीन लेते हैं ।''

इसलिए जो मनुष्य लौकिक और पारलौकिक उन्नति करके आत्म-कल्याण की अभिलाषा रखते हैं—मनुष्य जीवन को सफल बनाना चाहते हैं उनके लिये गायत्री-साधना द्वारा सद्बुद्धि की प्राप्ति करना ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है । इसमें कुछ लोग सन्देह कर सकते हैं कि योरोप, अमरीका आदि के देश, जो गायत्री से कोई सम्बन्ध नहीं रखते, क्या विद्या-बुद्धि में हमसे किसी प्रकार कम हैं ? इस विषय में हमारा उत्तर यही है कि उन देशों के लोग विद्या-बुद्धि में हमसे आजकल बहुत बढ़े-चढ़े हैं, पर हमको देखना चाहिए कि उनका क्या परिणाम निकल रहा है ? इन देशों ने पिछले दो-डेढ़ सौ वर्षों में विज्ञान की विविध शाखाओं में अभूतपूर्व उन्नति करके दिखलाई है । पर उस उन्नति का नतीजा यही निकला है कि वे सदैव एक-दूसरे के संहार की योजना करते रहते हैं और परिणाम स्वरूप सभी नाशोन्मुख हो रहे हैं । ऐसी उन्नति को हम आसुरी उन्नति कह सकते हैं और प्राचीन ग्रंथों से पता चलता है कि रावण, मेघनाद आदि राक्षसों ने भी इन विषयों में अद्भुत उन्नति करली थी, पर उससे न तो वे स्वयं सुखी हो सके और न उन्होंने दूसरों का हित किया । वे जब तक जीवित रहे तब तक मानवता का उच्छेद ही करते रहे, और अन्त में अपने कर्मों के फल से स्वयं जड़मूल से नष्ट हो गये । इसलिए केवल विद्या बुद्धि अथवा उसके द्वारा धन और बल की प्राप्ति को ही उन्नति समझना भूल है । विद्या और बुद्धि वही श्रेष्ठ है जिसका आधार आध्यात्मिकता पर हो । इसी विचार से बुद्धि के दैवी और आसुरी, दो विभाग कर दिये गये हैं । मनुष्य का सच्चा हित दैवी बुद्धि अथवा सद्बुद्धि से ही हो सकता है। भगवान् कृष्ण ने कहा है—

नास्ति बुऽद्धिरयुऽक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ।।

''साधन रहित पुरुष के अन्तःकरण में श्रेष्ठ बुद्धि नहीं हो सकती और उसके बिना श्रेष्ठ भावना का विकास भी नहीं हो सकता । बिना श्रेष्ठ भावना के शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती और शान्ति रहित पुरुष सुख प्राप्त नहीं कर सकता।''

गायत्री द्वारा जो बुद्धि प्राप्त होती है वह श्रेष्ठ या 'सद्बुद्धि होती है । उसके द्वारा हमारे भीतर वास्तविक मनुष्यता का विकास होता है और हम अपना तथा दूसरों का कल्याण कर सकते हैं ।

आत्मबुद्धि जागृत कीजिए

मानव जीवन को सफलता के लिये सबसे मुख्य बात यह भी है कि हम अपने भीतर 'आत्मबुद्धि' को जागृत करें, अर्थात् संसार के अन्य व्यक्तियों और प्राणियों को भी अपने ही समान समझें और उनके साथ सदैव ऐसा ही व्यवहार करें जो हितकारी हो । गायत्री-मन्त्र तो आध्यात्मिकता का महान स्रोत है और उसकी शिक्षाओं पर आचरण करने से मनुष्य में आत्मबुद्धि का विकास होना अवश्यम्भावी है । गायत्री की शिक्षा आध्यात्मवाद की व्यवहारिक प्रक्रिया है। श्रेष्ठ नागरिक बनने का मर्म इसमें है कि अन्य लोगों को अपने समान समझा जाये । दूसरे शब्दों में इसी बात को यों कह सकते हैं कि 'दूसरों से वैसा व्यवहार करना चाहिए जैसा कि आप अपने लिये चाहते हैं ।' आप जैसा व्यवहार अपने साथ होता हुआ देख कर प्रसन्न होते हैं, जिस आचरण की दूसरों से आशा करते हैं वैसा ही आप स्वयं भी दूसरों के साथ कीजिए । दूसरों के सुख में सुखी होने से मुफ्त में ही वह सुख प्रचुर मात्रा में मिल जाता है जिसको प्राप्त करने में बहुत खर्च करना पड़ता है । सुख के लिये बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है । यदि आप दूसरों को सुखी देख कर प्रसन्न हुआ करें, दूसरों की बढ़ती देख कर आनन्द अनुभव किया करें तो अनायास ही सुखी होने के असंख्य अवसर प्राप्त होते रह सकते हैं । पास-पड़ौस में, सगे सम्बन्धियों में, परिचितों-अपरिचितों में ईश्वर की कृपा से सुखदायक घड़ियों का आगमन हुआ ही करता है । यदि उनकी बढ़ती को देख कर उदार हृदय व्यक्ति की नाईं खुश होने की आदत डाली जाये तो निस्संदेह अपने आनन्द की सीमा अनेक गुनी बढ़ सकती है । जिसके घर में मुफ्त का माल आकर जमा होता रहता है उसका अमीर बन जाना स्वाभाविक है, जिसको दूसरों के सुख में आनन्द आता है उसका हर घड़ी प्रसन्नता से परिपूर्ण रहना स्वाभाविक है । यदि आनन्द और सुख की प्राप्ति के लिए आप लालायित हैं तो आत्मबुद्धि को जागृत करके अपना आत्मभाव दूसरों के साथ जोड़ दें, उनके सुख में अपने को सुखी करने का अभ्यास करें तो जिसके लिये आप लालायित हैं उस वस्तु को आसानी से पा सकते हैं । वाटिका में खिले हुए पुष्पों को देख कर, सुन्दर चित्रों को देख कर, मनमोहक प्राकृतिक दृश्यों को देख कर आपका चित्त प्रसन्न हो जाता है, जड़ पदार्थों का वैभव देख कर दिल की कली खिल उठती है तो क्या कारण है कि चैतन्य स्वजातीय प्राणियों के उत्कर्ष पर हृदय आनन्द से पुलकित नहीं होता ? ईर्ष्या, डाह, कुढन-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जलन के दुर्गुणों को यदि आपने अपना नहीं लिया है तो कोई कारण नहीं कि अपने सुखी पड़ोसियों के सौभाग्य पर आनन्द प्रकट न करें ।

दूसरों के दुःख में दुःखी होने की वृत्ति को अपना कर आप दया, करुणा, उदारता, सेवा, सहायता जैसी अमूल्य निधियों को प्रचुर मात्रा में संचय कर सकते हैं । यह संचय कुछ कम मूल्यवान नहीं है । दूसरों के दुःख में दुःखी होने से तामसी कष्ट नहीं होता, जो कष्ट होता है उसे पीड़ा नहीं कहते, पराये दुःख में दुःखी होने की वृत्ति को शब्दों में दुःख अवश्य कहा जाता है पर यथार्थ में वह एक प्रकार का आर्द्र सुख है । उससे कर्तव्य की प्रेरणा करने वाली एक कसक उठती है जो प्रेम की तरह मीठी, श्रद्धा की तरह पवित्र और करुणा की तरह तरल होती है । वह दुःख स्वर्गीय शान्ति को अपने अन्दर छिपाये रहता है । पराये दुःख को देख कर जो आँसू गिरता है वह भीतर के अनेक पापों को वहा ले जाता है और हृदय को हल्का तथा पवित्र बना देता है ।

पराये सुख में सुखी और पराये दुःख में दुःखी होने की वृत्तियाँ परम सात्विक एवं उच्चकोटि की हैं । इनका संचार जिसके अन्दर होने लगता है उसको भीतर ही भीतर शान्ति और सन्तोष की आनन्ददायक सरिता बहती हुई दृष्टिगोचर होती है । अन्य सद्गुणों और उत्तम स्वभावों की खेती इस शीतल जल को प्राप्त करके फलने-फूलने लगती है । केवल अपने ही हानि-लाभ से प्रभावित होने वाले और दूसरों की स्थिति में कुछ भी दिलचस्पी न लेने वाले स्वार्थी लोग बहुत ही सीमित क्षेत्र में बँधे रहते हैं, वे ऐशः आराम या दुःख दर्द का निकृष्ट कोटि का हर्ष-विषाद अनुभव करते रहते हैं। सात्विक और उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियाँ स्वार्थ में नहीं परमार्थ में मिलती हैं । जिनको पराये सुख-दुःखों में दिलचस्पी है वे ही उस ऊँचे आनन्द का अनुभव कर सकते हैं ।

आप दूसरों से यह आशा करते होंगे कि यदि कोई व्यक्ति कुछ चीज उधार ले जाये तो उसे अच्छी हालत में ठीक समय पर वापिस कर दे । यदि किसी ने कुछ वचन दिया है तो उसे यथोचित रीति से पालन करे । सभ्य व्यवहार की, समय की पाबन्दी की, दूसरों से आशा की जाती है और यह ख्याल किया जाता है कि यदि कुछ कष्ट हमारे ऊपर आ पड़ेगा तो अन्य लोग हमारी सहायता करेंगे । जिस प्रकार की आशाएँ आप दूसरे लोगों से करते हैं ठीक वैसी ही दूसरे आपसे करते हैं । यह भलमनसाहत का तकाजा है । मनुष्यता के प्रारम्भिक कर्तव्यों का पालन करना हर मनुष्य का कर्तव्य है, कोई नहीं चाहता कि उसे बेढंगे बरताव का सामना करना पड़े, इसलिए उसे भी चाहिए कि इस प्रकार का आचरण स्वयं भी न करे ।

मनुष्य जीवन की सार्थकता के लिये जितनी बातों या गुणों की आवश्यकता है, उनमें यह 'आत्मबुद्धि' की भावना अत्यावश्यक है । क्योंकि जो मनुष्य अपने व्यक्तिगत हित का ही ध्यान रखता है और दूसरों की भलाई-बुराई के प्रति उपेक्षा का भाव रखता है, वह चाहे कैसा भी गुणी या त्यागी तपस्वी भी क्यों न हो कभी सम्माननीय पद का अधिकारी नहीं हो सकता । मनुष्य का सर्वप्रथम लक्षण यही है कि अपनी शक्ति और साधनों का उपयोग दूसरों के हितार्थ करे । यही कारण है कि वेद से लेकर आज तक के ज्ञानी मनुष्यों ने एक स्वर से यही कहा है कि जो केवल अपने लिये जीता है उसका जीवन व्यर्थ है । मनुष्य में परोपकार या परमार्थ की भावना का होना परमावश्यक है और यह तब तक सम्भव नहीं जब तक हम अन्य प्राणियों के प्रति आत्मबुद्धि का भाव न रखें । इसी से शास्त्रों में कहा गया है—

नहीदृशं संवननं त्रिषुलोकेषु विद्यते ।
दया मैत्री च भूतेषु दानं च मधुरा चवाक् ।।

"परमेश्वर को प्रसन्न करने का सर्वप्रधान मार्ग यही है कि दुःखियों पर दया करनी, समान स्थिति वालों से प्रेम रखना, उदारता का व्यवहार करना और मीठी वाणी बोलना ।"

तप्यन्ते लोक तापेन प्रायशः साधवो जनाः ।
परमाराधनं तद्धि पुऽरुषत्याखिलात्मनः ।।

"सज्जन पुरुष दूसरे मनुष्यों की विपत्ति देख कर व्याकुल हो जाते हैं और उसे दूर करने के लिये स्वयं दुःख उठाते हैं । यही भगवान की सबसे बड़ी आराधना है ।"

तितिक्षया करुणया मैत्र्याचाखिल जन्तषु ।
सम्त्वेन च सर्वात्मा भगवान स प्रसीदति ।।

"सहनशीलता, करुणा, सम्पूर्ण प्राणियों से मित्रता, सब के साथ समता का व्यवहार करने से भगवान प्रसन्न होते हैं ।"

गायत्री-मन्त्र का यही उपदेश है कि मनुष्य भगवान से ऐसी सद्बुद्धि की प्रार्थना करता रहे जिससे वह झूठ, अहंकार, मोह, लोभ आदि से बचकर मनुष्य के वास्तविक कर्तव्यों का पालन करता रहे । स्वयं उन्नति के मार्ग पर चले और दूसरों को भी उसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे, सहायक बने । क्योंकि मनुष्य ने आर्थिक, सामाजिक, मानसिक, आत्मिक क्षेत्रों में जो भी प्रगति की है वह ऐसी ही सामूहिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भावना से हो सकी है । अकेला मनुष्य तो बिलकुल बेकार अथवा असमर्थ है । अगर उसने कुछ शक्ति भी प्राप्त की है, उसमें कुछ विशेषतायें भी हैं, तो जब तक उनका उपयोग दूसरों के लिये नहीं किया जायेगा तब तक उनका कोई महत्व नहीं हो सकता । इसलिये मनुष्य-जीवन को सार्थक बनाने का मुख्य उपाय यही है कि हम अपने हित के साथ दूसरों के हित, कल्याण का भी सदैव ध्यान रखें ।

गायत्री-भौतिक सिद्धियों और आत्मिक विभूतियों का अनन्त-भण्डार

गायत्री को भारतीय संस्कृति की जननी और यज्ञ को भारतीय धर्म का पिता कहा गया है । उसे वेदमाता-देवमाता एवं विश्वमाता माना गया है । वेदों से लेकर धर्मशास्त्रों तक का समस्त दिव्य ज्ञान गायत्री के बीजाक्षरों का ही विस्तार है । योग साधना और तपश्चर्या की शक्तिधाराएँ गायत्री के हिमालय से ही प्रकटी हैं । उसकी साधना के सत्परिणाम अमृत-पारस-कल्पवृक्ष-कामधेनु और ब्रह्मानन्द बताये गये हैं । पाँच प्रमुख देवताओं के यही पाँच वरदान हैं । इसी रहस्य के कारण उसका एक स्वरूप पाँच मुख वाला भी चित्रित किया जाता है । भौतिक सिद्धियों और आत्मिक विभूतियों के अनन्त भण्डार इस महाशक्ति के अन्तराल में छिपे पड़े हैं । साधना से सिद्धि का सिद्धान्त विधिवत् गायत्री साधना से प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो सकता है। सांसारिक संकटों में भी गायत्री उपासना वरदान की तरह सिद्ध होती है । आद्य शक्ति गायत्री माता का अंचल पकड़ने वाला कभी निराश नहीं हुआ ।

गायत्री मन्त्र में चौबीस अक्षर हैं । तत्वज्ञानियों ने इन अक्षरों में बीज रूप में विद्यमान उन शक्तियों को पहचाना जिन्हें चौबीस अवतार, चौबीस ऋषि, चौबीस शक्तियाँ तथा चौबीस सिद्धियाँ कहा जाता है । देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा राजर्षि इसी उपासना के सहारे उच्च पदासीन हुये हैं । 'अणोरणीयान महतो महीयान' यही महाशक्ति है । छोटे से छोटा चौबीस अक्षर का कलेवर—उसमें ज्ञान और विज्ञान का सम्पूर्ण भाण्डागार भरा हुआ है । सृष्टि में ऐसा कुछ भी नहीं जो गायत्री में कठिन और विशिष्ट भी है पर साथ ही सरल भी इतनी हैं कि उन्हें हर कोई हर स्थिति में बड़ी सरलता और सुविधा के साथ सम्पन्न कर सकता है । इसी से उसे सार्वजनिक और सार्वभौम माना गया । नर-नारी, बाल-वृद्ध बिना किसी जाति व सम्प्रदाय भेद के उसकी आराधना प्रसन्नतापूर्वक कर सकते हैं और अपनी श्रद्धा के अनुरूप लाभ उठा सकते हैं ।

गायत्री के चार चरणों की व्याख्या स्वरूप चार वेद बने हैं, इसलिए गायत्री को वेदमाता कहते हैं । ज्ञान की विवेचना में ही अन्य शास्त्र-पुराण रचे गये हैं । भारतीय तत्वदर्शन और ज्ञान-विज्ञान गायत्री बीज से ही उत्पन्न हुआ है । इसी की उपासना-आराधना के सहारे प्राचीन भारत के महान नागरिक देवोपम बने थे, अतएव गायत्री को देव-माता भी कहा गया ।

गायत्री को आत्म-शक्ति, ब्रह्म-विद्या कहा गया है और उसकी अमृत कलश से उपमा दी गई । आत्म-कल्याण और ईश्वर-दर्शन का अवलम्बन और मार्गदर्शन गायत्री मन्त्र में ओत-प्रोत है । उसे अपनाने वाले साधक अमृत पान करते हैं और देवताओं की तरह सच्चे अर्थों में अजर-अमर हो जाते हैं । गायत्री को अमृत कलश इसीलिए कहा गया है।

गायत्री का चौथा नाम कामधेनु और पाँचवाँ ब्रह्मास्त्र है । कामधेनु अर्थात् माता की तरह परिपोषण करने वाली, प्रगति और समृद्धि के अजस्र वरदान देने वाली । ब्रह्मास्त्र अर्थात् वह अस्त्र जिसके प्रहार से पतन, संकट और विघ्न चूर-चूर होते चले जायें । जिसने सही रीति से गायत्री का अवलम्बन लिया है उसने अर्थवेद की उस साक्षी रिचा को अक्षरशः सही पाया है जिसमें उस महाशक्ति को दीर्घजीवन प्राण, पराक्रम, सुसन्तति, सहयोगी परिवार, निर्मल यश, साधन, वैभव तथा ब्रह्मवर्चस आत्म बल का वरदान बताया गया है ।

सद्ज्ञान की अधिष्ठात्री-प्रत्यक्ष ऋतम्भरा प्रज्ञा-गायत्री के २४ अक्षरों में मानवी चिन्तन और चरित्र को उच्चस्तरीय बनाये रहने वाला सारा तत्व-दर्शन विद्यमान है । इस महाशक्ति की साधना में योगाभ्यास और तपश्चर्या के वे समस्त आधार, संकेत और विधान मौजूद हैं जिनके सहारे साधनकर्ता को ऋद्धि-सिद्धियों का समुचित लाभ मिल सकता है । आत्मिक प्रगति की दोनों उच्च भूमिकायें स्वर्ग और मुक्ति--पाने के लिए गायत्री तत्व-ज्ञान का अवम्बन अनुपम है ।

प्रत्येक धर्म परायण को गायत्री का अवलम्बन आवश्यक ठहराया गया है । भारतीय धर्मानुसार नित्य उपासना का विधान ''संध्या वन्दन'' कहलाता है । सन्ध्या विधान में गायत्री का स्थान वैसा ही है जैसा कि शरीर में मेरुदण्ड का। भारतीय धर्म के दो प्रतीक चिह्न हैं-- एक शिखा और दूसरा सूत्र (यज्ञोपवीत) । दोनों ही गायत्री की प्रतिमायें हैं। सिर के सर्वोच्च शिखर पर गायत्री की ज्ञान ध्वजा फहराने और कन्धे पर गायत्री के नौ शब्द, नौ धागे बनाकर, तीन व्याहतियों को तीन ग्रन्थियों का रूप देकर यज्ञोपवीत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के रूप में कन्धे पर धारण करने का अनुशासन है । मस्तिष्क ज्ञान का और शरीर कर्म का आधार है दोनों पर ही--शिखा और सूत्र के रूप में--गायत्री की प्रतिष्ठापना की गई है । अर्थात् इन दोनों का उपयोग संचालन इन्हीं २४ अक्षरों में सन्निहित प्रेरणाओं के अनुरूप करने का निर्देश आर्ष ग्रन्थों और आप्त वचनों में किया गया है । शास्त्रों में "गुरु मन्त्र" नाम गायत्री को ही दिया गया है । विद्यारम्भ-वेदारम्भ-उपनयन आदि संस्कारों में गायत्री के आधार पर ही दीक्षा दी जाती है । अन्य मन्त्रों को देव मन्त्र साधना मन्त्र-सम्प्रदाय मन्त्र आदि तो कहा जा सकता है, पर अनादि "गुरु मन्त्र" गायत्री को ही कहा गया है । भगवान राम को गुरु वशिष्ठ ने, एवं भगवान कृष्ण को संदीपन ऋषि ने, यही गुरु मन्त्र दिया था । महर्षि विश्वामित्र द्वारा राम को बला और अतिबला शक्तियाँ इसी साधना के माध्यम से प्राप्त हुई थीं । स्वयं विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्रह्मर्षि इसी के प्रभाव से बने थे ।

उनका कथन है-- गायत्री के समान चारों वेदों में कोई मन्त्र नहीं है । सम्पूर्ण वेद, यज्ञ, दान, तप गायत्री मन्त्र की एक कला के समान भी नहीं हैं ।

भगवान मनु का कथन है-- गायत्री से बढ़कर पवित्र करने वाला और कोई मन्त्र नहीं है । जो मनुष्य नियमित रूप से तीन वर्ष तक गायत्री का जप करता है, वह ईश्वर को प्राप्त करता है । जो द्विज दोनों सन्ध्याओं में गायत्री जपता है वह वेद पढ़ने के फल को प्राप्त करता है । अन्य कोई साधना करे या न करे केवल गायत्री जप से ही सिद्ध पा सकता है । नित्य एक हजार जप करने वाला पापों से वैसे ही छूट जाता है जैसे केंचुली से सर्प छूट जाता है । जो द्विज गायत्री की उपासना नहीं करता वह निन्दा का पात्र है ।

पाराशर जी कहते हैं-- समस्त जप सूक्तों तथा वेद मन्त्रों में गायत्री जप परम श्रेष्ठ है । वेद और गायत्री की तुलना में गायत्री का पलड़ा भारी है । भक्तिपूर्वक गायत्री जपने वाला परम मुक्त होकर पवित्र बन जाता है । वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास पढ़ लेने पर भी जो गायत्री से हीन हैं, उसे ब्राह्मण नहीं समझाना चाहिए ।

शंख ऋषि का मत है-- नरक रूपी समुद्र में गिरते हुए को हाथ पकड़ कर बचाने वाली गायत्री ही है । उससे उत्तम वस्तु स्वर्ग और पृथ्वी पर कोई नहीं है । गायत्री का ज्ञाता निस्सन्देह स्वर्ग को प्राप्त करता है ।

शौनिक ऋषि का मत है-- अन्ध उपासनाएँ करे चाहे न करे, केवल गायत्री जप से द्विज जीवन-मुक्त हो जाता है। सांसारिक और पारलौकिक समस्त सुखों को पाता है। संकट के समय दस हजार जप करने से विपत्ति का निवारण होता है ।

अत्रि ऋषि कहते हैं-- गायत्री आत्मा का परम शोधन करने वाली है । उसके प्रभाव से कठिन दोष और दुर्गुणों का परिमार्जन हो जाता है जो मनुष्य गायत्री तत्व को भली प्रकार समझ लेता है, उसके लिए इस संसार में कोई दुःख शेष नहीं रह जाता ।

महर्षि व्यास जी कहते हैं-- जिस प्रकार पुष्पों का सार शहद, दूध का सार घृत है, उसी प्रकार समस्त वेदों का सार गायत्री है । सिद्ध की हुई गायत्री कामधेनु के समान है । गंगा शरीर के पापों को निर्मल करती है । गायत्री रूपी ब्रह्म गंगा से आत्मा पवित्र होती है । जो गायत्री छोड़ कर अन्य उपासनायें करता है, वह पक्वान्न छोड़कर भिक्षा मांगने वाले के समान मूर्ख है । काम्य सफलता तथा तप की सिद्धि के लिए गायत्री से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है ।

भारद्वाज ऋषि कहते हैं-- ब्रह्मा आदि देवता भी गायत्री का जप करते हैं । वह ब्रह्म साक्षात्कार कराने वाली है । अनुचित काम करने वालों के दुर्गुण गायत्री के कारण छूट जाते हैं गायत्री से रहित व्यक्ति शूद्र से भी अपवित्र है ।

चरक ऋषि लिखते हैं-- जो ब्रह्मचर्य पूर्वक गायत्री की उपासना करता है और आंवले के ताजे फलों का सेवन करता है, वह दीर्घ जीवी होता है ।

नारद जी की उक्ति है-- गायत्री भक्ति का ही रूप है, जहाँ भक्ति रूपी गायत्री है वहाँ भी नारायण का निवास होने में कोई सन्देह नहीं करना चाहिए ।

याज्ञवल्क्य ने उसे "सर्वकाम धुक कहा है अर्थात् ऐसी कोई इच्छा नहीं जो गायत्री उपासना से पूर्ण न हो ।

वशिष्ठ जी का मत है-- मन्दमति, कुमार्गगामी और अस्थिर मति भी गायत्री के प्रभाव से उच्चपद को प्राप्त करते हैं । फिर सद्गति होना निश्चित है । जो पवित्रता और स्थिरतापूर्वक गायत्री की उपासना करते हैं वे आत्म-लाभ करते हैं ।

गौतम ऋषि का मत है-- योग का मूल आधार गायत्री है । गायत्री से ही सम्पूर्ण योगों की साधना होती है ।

महर्षि उद्दालक कहते हैं-- गायत्री में परमात्मा का प्रचण्ड तेज भरा हुआ है । जो इस तेज को धारण करता है उसका वैभव अतुलनीय हो जाता है ।

देवगुरु बृहस्पति जी का मत है-- देवत्व और अमृतत्व की आदि जननी गायत्री है । इसे प्राप्त करने के पश्चात् और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रङ्गी ऋषि की उक्ति है-- ज्ञान-विज्ञान का आदि स्रोत गायत्री ही है । उससे अधिक संसार में और कुछ नहीं है ।

उपर्युक्त अभिमतों से मिलते-जुलते अभिमत प्रायः सभी ऋषियों के हैं । इनसे स्पष्ट है कि कोई भी ऋषि अन्य विषयों में चाहे आपस का मतभेद रखते हों पर गायत्री के बारे में उन सबमें समान श्रद्धा थी और वे सभी अपनी उपासना में उसका प्रथम स्थान रखते थे । शास्त्रों में, धर्म ग्रंथों में, स्मृतियों में, पुराणों में गायत्री-की महिमा तथा साधना पर प्रकाश डालने वाले सहस्रों श्लोक भरे पड़े हैं । इन सबका संग्रह किया जाये तो एक बड़ा गायत्री पुराण ही बन सकता है ।

वर्तमान शताब्दी के आध्यात्मिक महापुरुषों ने भी गायत्री के महत्व को उसी प्रकार स्वीकार किया है जैसा कि प्राचीन काल के तत्त्वदर्शी ऋषियों ने किया था । आज का युग बुद्धि और तर्क का, प्रत्यक्षवाद का युग है ।

महात्मा गांधी कहते हैं-- 'गायत्री मन्त्र का निरन्तर जप रोगियों को अच्छा करने और आत्माओं की उन्नति के लिए उपयोगी है । गायत्री का स्थिर चित्त और शान्ति हृदय से किया हुआ जप आपत्ति काल के संकटों को दूर करने का प्रभाव रखता है ।

लोकमान्यतिलक कहा करते थे कि 'जिस बहुमुखी दासता के बन्धनों में भारतीय प्रजा जकड़ी हुई है उसका अन्त राजनीतिक संघर्ष करने मात्र से न हो जायेगा, उसके लिए आत्मा के अन्दर प्रकाश उत्पन्न करना होगा, जिससे सत् और असत् का विवेक हो, कुमार्ग को छोड़कर श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिले । गायत्री मन्त्र में यही भावना विद्यमान है ।

महामना मदनमोहन मालवीय जी ने कहा था 'ऋषियों ने जो अमूल्य रत्न हमें दिये हैं उनमें से एक अनुपम रत्न गायत्री ऐसा है जिससे बुद्धि पवित्र होती है । ईश्वर का प्रकाश आत्मा में आता है । इस प्रकाश से असंख्य आत्माओं को भव बन्धनों से त्राण मिला है । गायत्री में ईश्वर परायणता में श्रद्धा उत्पन्न करने की शक्ति है । साथ ही वह भौतिक अभावों को दूर करती है । जो ब्राह्मण गायत्री जप नहीं करता वह अपने कर्तव्य धर्म छोड़ने का अपराधी होता है ।

रवीन्द्र नाथ टैगोर कहते हैं-- भारतवर्ष को जगाने वाला जो मन्त्र है वह इतना सरल है कि एक श्वास में उसका उच्चारण किया जा सकता है । वह है गायत्री मन्त्र ! इस पुनीत मन्त्र का अभ्यास करने में किसी प्रकार के तार्किक ऊहापोह, किसी प्रकार के मतभेद अथवा किसी प्रकार के बखेड़े की गुंजाइश नहीं है ।

योगी अरविन्दघोष ने कई जगह गायत्री जप करने का निर्देश किया है । उन्होंने बताया है कि गायत्री में ऐसी शक्ति सन्निहित है जो महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकती है । उन्होंने कइयों को साधना के तौर पर गायत्री का जप बताया है ।

इन उपाख्यानों में वेद उपनिषदों से लेकर मनीषियों तक ने एक स्वर से यह स्वीकार किया है कि व्यक्ति की अन्तःभूमिका को परिष्कृत कर उसे सुखी समन्नत बनाने के सारे तत्व गायत्री में विद्यमान हैं । एकांगी प्रगति कभी चिरस्थायी नहीं हो सकती यह गायत्री महामन्त्र की अद्वितीय विशेषता है । स्वार्थ के साथ परमार्थ, लोक के साथ पारलौकिक कल्याण का योग ही परिपूर्ण कहा जा सकता है । यह सारी शिक्षायें गायत्री उपासना में सन्निहित हैं । व्यक्ति के उत्कर्ष के साथ-साथ सारे समाज और विश्व का अभ्युत्थान ही परमात्मा को अभीष्ट है । उस प्रक्रिया को गायत्री उपासना पूर्ण करती है । इस दृष्टि से सामूहिक पुरश्चरणों की महत्ता हजार गुनी अधिक हो जाती है । इस वर्ष सारे देश भर में स्थान-स्थान पर २५-२५ करोड़ गायत्री मन्त्र जप तथा मन्त्र लेखन के महापुरश्चरण चल रहे हैं । वे, एक-एक उँगली लगाकर ग्वाल-वालों द्वारा गोवर्धन उठा देने की तरह युग की विभीषिकाओं, संकटों के पहाड़ को उठाकर फेंक देंगे और स्थायी सुख-शान्ति की परिस्थितियों को जन्म देंगे, कोई भी दूरदर्शी विवेक की आँखों से वह तथ्य स्पष्ट देख सकता है ।

अपने युग की परिस्थितियाँ अपने ढङ्ग की अनौखी हैं । इनमें न तो कंस और रावण की तरह आक्रमण उत्पीड़न है और न दुर्भिक्ष, दुर्घटना जैसा कोई दैवी संकट । फिर भी स्थिति की विपन्नता ऐतिहासिक महासंकटों की तुलना में कहीं अधिक भयानक है । विपत्ति का नया स्वरूप है-- आस्था संकट । मानवी अन्तराल में ऐसी मान्यताओं ने जड़ जमा ली हैं जिन्हें आदर्शों के प्रति अनास्था कह सकते हैं । संकीर्ण स्वार्थपरता पर आधारित विलासी अहम्मन्यता ही आज जन-जन की आराध्य बन गई है । लोभ और मोह की ललक दावानल की तरह बढ़ रही है और अपनी लपटों में उस सबको लपेट रही है जिसे मानवी गरिमा के रूप में देखा और जाना जाता रहा है ।

इन परिस्थितियों को मनुष्य कृत सामान्य प्रयत्न कदाचित ही संभाल सकते हैं । प्रगति के लिए प्रयत्नशील नेतृत्व ने हर मोर्चे पर असफलता अनुभव की है और निराशा व्यक्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की है । ऐसे असन्तुलन को सन्तुलन में बदलने का महान कार्य सृष्टा की सूक्ष्म चेतना और दिव्य प्रेरणा ही सम्पन्न कर सकती है । यही कार्य इन दिनों हो रहा है । समय की आवश्यकता के अनुरूप महाकाल की प्रचण्ड हलचलें युग अवतार का उद्देश्य पूरा करने के लिए क्रमशः अधिकाधिक प्रखर होती चली जा रही हैं ।

अपने युग का महादैत्य आस्थासंकट है । वह जन मानस की गहरी परतों तक प्रवेश पाने में सफल हो गया है । इतनी गहराई तक भौतिक उपाय उपचारों का प्रवेश नहीं हो सकता है । दलदल में फँसे हाथी को चतुर हाथी ही अपनी बुद्धिमत्ता के सहारे बाहर निकाल पाते हैं । अनास्था के निराकरण में भावश्रद्धा की प्रखरता ही समर्थ हो सकती है, इसलिए इस बार युग अवतार ऋतम्भरा प्रज्ञा के रूप में हो रहा है । गायत्री महाशक्ति का अवतरण ही अपने युग के आस्था संकट को दूर करने का एकमात्र आधार हो सकता था । यह महापुरश्चरण उसी आवश्यकता को पूर्ण करेंगे इसमें भाग लेने का सौभाग्य असाधारण है । यही छोटे आज के साधक इस साधना के पुण्य प्रताप से कल महामानवों की उच्च स्थिति तक पहुँचेंगे व्यक्तिगत जीवन की सुख-शान्ति का लाभ तो उन्हें ब्याज में मिलेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सफल उपासना का फलितार्थ आत्म सन्तोष

आनन्द और उसका उद्गम स्थान

सुख की आकांक्षा हममें से हर एक को स्वभावतः ही होती है और सभी चाहते हैं कि निरन्तर सुख साधन उपलब्ध होते रहें । पर देखा जाता है कि इस आकांक्षा की पूर्ति कोई विरले ही कर पाते हैं । क्योंकि हम यह ढूँढ़ नहीं पाते कि आनन्द का उद्गम स्थान कहाँ है ? जब तक यह पता न हो कि वस्तु कहाँ मिलेगी तब तक अनुमान से जहाँ तहाँ खोजते फिरने से क्या लाभ ? आनन्द की तलाश हम वस्तुओं और साधनों में करते हैं, पर वे बेचारे जड़ पदार्थ जब स्वयं ही चेतनाहीन हैं तो हमें सुख कहाँ से प्रदान करें ? आनन्द का उद्गम स्थान चेतन, आत्मा एवम् ब्रह्म है । यदि उसी का सान्निध्य प्राप्त किया जा सके तो सुख प्राप्ति की समस्या सहज ही हल हो सकती है ।

स्त्री, पुत्र, धन, सम्पत्ति, ठाठ-बाट, विषय-भोग, अहंकार, अधिकार आदि जिन कार्यों में लोग आमतौर से प्रसन्न रहते हैं उनके बारे में गम्भीरता से विचार किया जाय तो दूसरा ही गुल खिलता है । कोई स्त्री बहुत रूपवती है, उसके प्रति बड़ा मोह और आकर्षण लगता है, पर उस शरीर में रहने वाली जीवात्मा अपने से कटु वचन बोले, दुर्व्यवहार करे, शत्रुता रखे तो वह आकर्षण कहाँ रहेगा ? मर जाने पर बहुत सुन्दर और प्रिय लगने वाले शरीर भी नष्ट करने और दूर हटाने पड़ते हैं । इससे सिद्ध हुआ कि रूप-यौवन का आकर्षण धोखा है । सन्तोष तो उसके भीतर रहने वाली सूक्ष्म सत्ता के उन्मुख या विमुख होने पर निर्भर है । अपने कुरूप स्वजन, स्त्री-बच्चे भी सच्चा प्रेम होने पर कितने प्रिय लगते हैं ? पर पड़ोसी के सुन्दर घर वालों के प्रति भी अपना कोई आकर्षण नहीं होता । इससे प्रतीत होता है कि रूपवान शरीरों के सान्निध्य में सुख प्राप्ति की मान्यता मिथ्या है । प्रेम, आत्मीयता तथा सद्भावना के आधार पर ही वह आकर्षण आनन्ददायक एवम् सफल हो सकता है । आत्मीयता की, गृहणी और रमणी की दृष्टि से जब किसी रूपसी को देखा जाता है तो ही उसमें आकर्षण पैदा होता है अन्यथा शत्रुता रखने वाली रूपवती से कहाँ किसी को आकर्षण होता है ? रूप में झलकने वाला आकर्षण इस बात पर निर्भर है कि उसे रमणी की मोह-मयी दृष्टि से देखा गया या नहीं ।

इसी प्रकार धन सम्पत्ति का आकर्षण भी ममता के ऊपर ही निर्भर है । जब तक वह अपने अधिकार में है तभी तक आनन्ददायक रहती है । जो जेवर, चांदी, सोना, मकान, मोटर, जमीन जायदाद आदि आज अपने हैं और प्राणप्रिय लगते हैं । वे यदि बेच देने पर, या छिन जाने पर, या किसी अन्य कारण से पराये हो जाते हैं तो उनमें फिर कुछ भी आकर्षण नहीं रहता । पीछे वे टूटते-फूटते, नष्ट होते रहें तो इससे किसी को कोई दुःख नहीं होता । कल तो जिस चीज को जरा-सी आँच आने पर अपना जी तिल-मिला उठता था । आज वही विरानी होने पर उपेक्षापूर्ण बनी हुई है, इसका कारण 'अपनेपन' की भावना का समाप्त होना ही है । इससे सिद्ध होता है कि 'जो अपना है वह प्रिय है ।' वस्तुओं में नहीं भाव में आकर्षण है ।

मिर्च खटाई एक को प्रिय, दूसरे को अप्रिय लगती है । स्वाद मिर्च-खटाई में नहीं, अपनी पसंदगी में मानना पड़ेगा । नदी, वन पर्वतों के प्राकृतिक दृश्य मनोहर नहीं होते, अपनी सौन्दर्य पारखी दृष्टि के अनुरूप ही वे सुन्दर लगते हैं । जिस वन के सौन्दर्य पर यात्री लोग मुग्ध होते हैं, उसके चित्र उतारते हैं, प्रशंसा करते-करते नहीं थकते, उन्हीं वनों को वहाँ के निवासी असुविधाजनक मानते हैं और सोचते हैं कि यहाँ से कहीं अन्यत्र सुविधा की जगह चल कर रहा जाय । उन्हें शहरों में आकर्षण और वनों में कुरूपता लगती है । जंगल काटने वालों को वही सुन्दर उपवन एक व्यापार-क्षेत्र मात्र प्रतीत होता है । नाव खेने वालों को, मछली पकड़ने वालों को नदी तालाब एक खेत या कारखाने मात्र दीखते हैं । उनके सौन्दर्य का उन्हें आभास भी नहीं होता ।

देवता विश्वास और भावना के आधार पर फल देते हैं । जिनमें श्रद्धा नहीं उनके लिए देव-मन्दिरों में प्रतिष्ठापित प्रतिमायें पत्थर का एक छोटा खिलौना मात्र हैं । तीर्थों, देव-मन्दिरों, ऐतिहासिक स्थानों में भावना उल्लसित करने वाला वातावरण केवल उन्हीं को मिलता है जिसके मन में उस प्रकार की भावनायें विद्यमान हैं अन्यथा साधारण दृष्टि से वे स्थान भी अन्य मामूली जगहों की तरह ही हैं । वहाँ के निवासी तो उन स्थानों को बिलकुल साधारण सी वस्तु समझते हैं । गंगा भी एक मामूली नदी मात्र है । भावना के बिना इसका पवित्रता प्रदान करने वाला गुण कहाँ टिक पाता है ?

इस दृष्टि से विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि जड़ पदार्थों में वस्तुतः कुछ भी आकर्षण, कुछ भी लाभ, कुछ भी आनन्ददायक तत्व नहीं है । जो कुछ आकर्षण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और आनन्द यहाँ दिखाई पड़ता है, उसका आधार केवल चेतन है । कहीं तो हमारा अपना चेतन किन्हीं वस्तुओं को अपना मानकर उन्हें प्यार करने पर, उन्हें प्रिय समझने लगता है, और कहीं दूसरों का चेतन अपनी उत्कृष्ट प्रवृत्तियों का परिचय देकर हमें उल्लास और आहलाद से ओत-प्रोत कर देता है । जड़ पदार्थ तो केवल सुविधा के स्थूल उपकरण मात्र हैं । हम उनके पीछे पागल न बनें वरन् चेतन का महत्त्व समझें, उसका सही मूल्यांकन करें, उसी की समीपता और उपलब्धि का प्रयत्न करें ।

चेतना का अजस्र भण्डार अपने भीतर भरा हुआ है । उसका जितना सम्मिश्रण जिस वस्तु में देंगे वह उतनी ही सुन्दर दीखने लगेगी, प्रिय लगने लगेगी । ऐसी दशा में हम संसार के बाहरी पदार्थों के पीछे क्यों भागें ? प्रिय की प्राप्ति के लिए इधर-उधर क्यों मारे-मारे फिरें ? जब अपनी भावना पर ही वस्तुओं का प्रिय लगना निर्भर है तो जो उपयोगी आवश्यक और उपलब्ध वस्तुयें हों उन्हीं से अपनापन क्यों न करने लगें ? उन्हें ही आत्मीयता की दृष्टि से देख कर प्रिय पात्र क्यों न बनालें । सन्तोष का यही मार्ग है । प्रिय किसे मानना, किसे न मानना यही असन्तोष का कारण है। जो प्राप्त नहीं, जो दूर है, जो स्वप्नलोक में लटका हुआ है, उसके प्रति ममता का अरोपण करके मनुष्य असन्तुष्ट और खिन्न रहता है किन्तु जब वह उपलब्ध वस्तुओं को अच्छी, उचित, पर्याप्त और सुविधाजनक मान लेता है तो अभावग्रस्त दीखने वाला व्यक्ति भी बहुत सुखी और सन्तुष्ट बन जाता है ।

प्रत्येक पदार्थ में चेतन ब्रह्म की सूक्ष्म सत्ता मौजूद है । उसी को हम जब ममतामय दृष्टिकोण के साथ देखते हैं तो सौन्दर्य और आनन्द का आभास होने लगता है । वस्तुतः यह स्थूल जगत जड़ मात्र है । जड़ में न तो जीवन है और न आनन्द । उसको महत्त्व क्यों दें और क्यों उसके संचय, सान्निध्य के पीछे पागल बनें ? जब भावना ही एक मात्र आनन्द का उद्गम है तो उसका परिष्कार करके संसार के समस्त जड़ चेतन को आत्मीयता की भावना के साथ क्यों न देखा करें, जिससे यह सब कुछ आनन्दमय ही आनन्दमय प्रतीत होने लगे । उपासना से इसी सम्वेदना की उपलब्धि करनी पड़ती है । जो इसे जिस परिमाण में उपार्जित कर लेता है उसकी उपासना उतने ही अंशों में सफल समझी जाती है ।

सुख-शान्ति के स्वर्ण-सूत्र

अशान्ति है, दुःख है, असन्तोष है तो निश्चय ही हमारी जीवन विधि में किसी प्रकार की त्रुटियाँ तथा कमियाँ समाविष्ट हैं जिसके कारण वह हर्ष, वह उल्लास, वह आनन्द और वह शान्ति प्राप्त नहीं होती जो मानव जीवन जैसे महान् अवसर में प्राप्त होनी चाहिए । इसके विपरीत आये दिन हम सबकी चिन्तायें, विषमतायें और वितृष्णायें बढ़ती जा रही हैं । जीवन इतना अशान्त और क्लेशपूर्ण बनता जा रहा है कि जीवन एक भार और संसार एक बन्दीगृह सा अनुभव होने लगा है । यह सब अशान्तियाँ और चिन्तायें इस बात का प्रमाण हैं कि निश्चय ही हम त्रुटियों से भरा एक अनुपयुक्त जीवन जी रहे हैं ।

किन्तु, केवल यह जान लेना भर ही पर्याप्त नहीं है कि हम एक अनुपयुक्त जीवन चलाये जा रहे हैं । इस सूचना का महत्त्व तो तब है जब हम अपनी जीवन विधि को बदलें और उसे अनुपयुक्त गति विरत कर उपयुक्त गति में डालें । मूर्ख और अज्ञानियों की जहाँ एक किस्म यह होती है कि वे अपनी भूलों, त्रुटियों तथा कमियों को समझ नहीं पाते । वहाँ एक इससे भी बढ़कर समझ वे लोग होते हैं जो अपनी न्यूनताएँ जान लेने पर भी उन्हें दूर करने की ओर से उदासीन बने रहते हैं । जो कुछ जैसा चला जा रहा है चलने देते हैं । इस प्रकार का प्रमाद मनुष्य जैसे विवेकशील प्राणी को शोभा नहीं देता । यह प्रमाद तो पशुओं की विरासत है कि वे जिस स्थान पर जिस गतिविधि में पड़ गये सो पड़ गये । उसको बदलने की ओर ध्यान नहीं देते फिर चाहे वह उपयुक्त हो या अनुपयुक्त । बेचारे पशुओं के लिए तो एक विवशता है । वे न किसी बात पर विचार कर सकते हैं और न योजनापूर्वक कोई परिवर्तन ला सकते हैं। जिस जीवन विधि में उन्हें पड़ना पड़ता है उसी के अनुरूप अपने को अभ्यस्त बना लेते हैं और एक जड़ सहनशीलता के साथ उसे सहते चले जाते हैं । इस प्राकृत विवशता के कारण वे क्षमा किए जा सकते हैं । किन्तु मनुष्य, जो परम पुनीत, सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा का अंश है, इस प्रकार के पाशविक प्रमाद के लिए क्षमा नहीं किया जा सकता । वह अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप शिव और सुन्दर जीवन जीने के लिए बाध्य है । जो इस प्रतिबन्धन का सम्मान नहीं करता वह विद्रोही ही नहीं नास्तिक तक कहा जा सकता है। अस्तु, इस कलंक को मिटा डालने के लिये आज से ही तत्पर हो जाना चाहिये । अनुपयुक्त जीवन विधि का त्याग कर उपयुक्त जीवन-पद्धति की ओर बढ़ चलना चाहिये। जिससे सामान्य जीवन की समस्याओं का समाधान होगा ही साथ ही आत्म-कल्याण की संराधक आध्यात्मिक दिशा में भी प्रगति होगी और इस प्रकार लोक तथा परलोक दोनों की रचना एक साथ होती चले । क्योंकि परलोक सुधारने सँभालने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिये मनुष्य को अलग से कोई जीवन नहीं दिया जाता। यही एक जीवन है जिसमें लोक के साथ परलोक की भी खोज खबर रखनी होगी ।

संसार की ऐसी कोई भी समस्या नहीं जिसका समाधान सम्भव न हो । फिर मनुष्य तो विशेषतौर पर शक्तियों का स्वामी है । यदि उसके पास लगन, निष्ठा और प्रयत्न की कमी न हो तो उसके लिए सब कुछ सरल सम्भव है । जीवन को अनुपयुक्त से उपयुक्त बनाने के भी अनेक उपाय हैं । उनमें से चार बातें ऐसी हैं जिनका जीवन में समावेश कर लेने से समस्या का बहुत कुछ समाधान हो सकता है। इन चार बातों को जीवन-निर्माण के चार सोपान अथवा आधार भी कहा जा सकता है । जीवन-निर्माण के चार सोपान हैं– सभी प्रकार की तुच्छताओं का त्याग-मिथ्यात्व को छोड़कर सरलता का ग्रहण--बन्धनों से मुक्त होने का साहस और जीवन में अध्यात्मवाद का समावेश करना । निश्चित है यदि मनुष्य जीवन में इन चार बातों को धारण करले तो उसका अनुपयुक्त जीवन उपयुक्त बन जायेगा । उसके जीवन से अशान्ति तथा असन्तोष का तिरोधान हो जायगा और उसके स्थान पर आनन्द और उल्लास, शान्ति और सन्तोष की वृद्धि होने लगेगी ।

तुच्छता मानव-जीवन की बहुत बड़ी कमी है । यह एक ऐसा दोष है जो मनुष्य को न केवल संकीर्ण बल्कि कृपण और पतित भी बना देता है । तुच्छता मनुष्य को उदारता, दान, दया, प्रेम अथवा करुणा की सत्प्रवृत्तियों से वंचित कर देती है । स्वार्थ और केवल स्वार्थ ही उसके जीवन का लक्ष्य बन जाता है । तुच्छता से प्रोत्साहित दरिद्रता की प्रवृत्ति उसे भाव में भी अभाव और सम्पन्नता में भी विपन्नता का अनुभव कराती रहती है । इसलिये उसकी भौतिक वितृष्णायें इस सीमा तक बढ़ जाती हैं कि संग्रह करने में फिर वह उचित, अनुचित, कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य अपने पराये, शोषण-पोषण आदि किसी बात का ध्यान नहीं रखता। उसको शीतलता का मानव सुलभ गुण छोड़ कर चला जाता है । अपने लाभ और लोभ के समक्ष उसे सारे आदर्श सारी मर्यादाएँ और नीतियाँ महत्त्वहीन लगने लगती हैं । इस प्रकार तुच्छता से प्रताड़ित, मनुष्य के जीवन में शोक-सन्ताप और अशान्ति, असन्तोष के सिवाय किस आनन्द को अवसर मिल सकता है ?

तुच्छता मानव जीवन का बहुत घृणित दोष है । इसका तुरन्त त्याग कर देना चाहिए । उदारता और महानता की वृत्ति मनुष्य के लिए दो अलंकार माने गये हैं । उन्हें धारण करना ही उसकी शोभा है । उदारता का गुण अपने दूसरे सजातीय गुण त्याग को प्रोत्साहित करता है । त्याग को किसी तपस्या से कम महत्त्व नहीं दिया गया है । त्याग भाव से संग्रह करने वाला सत्पुरुष भूलकर भी ऐसे साधन तथा उपाय प्रयोग नहीं करता जो नीति अथवा आदर्श के विरुद्ध हों । वह तो नीति एवं न्यायपूर्वक कमाये गये धन-धान्य में ही सुखी और सन्तुष्ट रहता है । त्यागी पुरुष के पास वितृष्णाएँ उसी प्रकार नहीं आ पातीं जैसे शिखा के निकट भयंकर अंधकार नहीं आ पाता । उदार पुरुष जो कुछ उपार्जित करता है वह केवल अपने स्वार्थ में ही नहीं लगता । उसका ध्यान परमार्थ पर भी रहता है । वह जानता है कि लोक-परलोक की स्थिति परमार्थ पुण्य पर ही आधारित है । इस आधार को पुष्ट तथा अधिकाधिक स्थायी बनाने के लिए वह दान देता, अपनी उपलब्धियों का उचित भाग दूसरों की सहायता में लगाता, परोपकार करता और धर्म की रक्षा और वृद्धि के लिए जो कुछ बन पड़ता है करने में कृपणता व संकोच नहीं करता । इस प्रकार पारमार्थिक त्याग से आभूषित सत्पुरुष में जब 'सर्व भूत हितेरता-का भाव लेकर दया, करुणा तथा प्रेम का स्रोत जाग पड़ता है तब संसार का ऐसा कौन-सा खेद, दुःख अथवा अशान्ति हो सकती है जो उसे छू भी सके । तुच्छता से मुक्त उदार पुरुष का 'आनन्द और मंगल' पर जन्म तथा कर्म सिद्ध-दोनों प्रकार का अधिकार होता है । जो निश्चय ही उसे मिलता है । इस निसर्ग नीति में अपवाद की सम्भावना कदापि सम्भव नहीं है ।

मिथ्यात्व का मारा व्यक्ति अपने जीवन में सुख शान्ति की एक नन्हीं बूँद के लिए भी तरसता रहता है । रहन-सहन, खान-पान, आचार-व्यवहार अथवा पूजा-पाठ आदि जिस भी क्रिया-प्रक्रिया में मिथ्यात्व का दोष लग जायगा वही पाप की तरह त्रास दायिनी बन जाएगी । मिथ्या रहन-सहन वाले लोग बहुधा प्रमादी, आलसी तथा प्रदर्शनवादी होते हैं । वे यह दिखलाने का प्रयत्न करते हैं कि वे इतने भाग्यवान हैं कि कम से कम काम करके भी अधिक से अधिक आराम और शान-शौकत से रहते हैं । उनका विचार रहता है कि उनका प्रदर्शनपूर्ण रहन-सहन देखकर लोग शायद उन्हें अमीर समझकर प्रभावित होंगे । उनका मान-सम्मान करेंगे किन्तु सच्ची बात यह है कि कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे मिथ्यावादियों से घृणा किये बिना नहीं रहता । जहाँ इस कर्म-प्रधान संसार में परिश्रम तथा पुरुषार्थ का महत्त्व है वहाँ बिना कुछ किये आराम का जीवन जीने वाले निश्चित ही चोर होते हैं, फिर चाहे वे कामचोर हों, श्रमचोर हों अथवा अधिकार चोर हों । चोर चोर ही है किसी वस्तु का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही क्यों न हो । वह सच्चे समाज और सत्पुरुषों के बीच आदर का पात्र नहीं बन सकता । उसको तिरस्कार ही प्राप्त होगा जो उसके जीवन को अशान्त तथा सन्ताप युक्त बनाकर ही छोड़ता है ।

खान-पान का मिथ्यात्व स्वास्थ्य की ही होली रच देता है । रोगी तथा अशक्त बनाकर सदा सर्वदा के लिए सन्ताप के हाथों में सौंप देता है । इसी प्रकार आचार-विचार का मिथ्यात्व भी मनुष्य को अपमान तथा अवहेलना का ही अधिकारी बनाता है । बाहर कुछ और भीतर कुछ और मन का भाव दुष्ट और व्यवहार सरल, बाहर परमार्थ की बात और भीतर स्वार्थ की विभीषिका, ऐसा मिथ्या व्यवहार तथा आचार वाला व्यक्ति अपनी खैरियत कब तक मनायेगा । एक दिन सत्य उभरेगा, झूठ का भण्डा फूटेगा, और तब उस मिथ्यावादी की क्या दशा होगी या होती है इसे तो कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है ।

उपासना का मिथ्यात्व न केवल लोक बल्कि परलोक को भी नष्ट कर देता है । जो मनुष्य मनुष्यों से छल करता है उसको ही जब सिर छिपाने का स्थान नहीं मिलता तो भला उस मनुष्य की लोक परलोक में कौन रक्षा कर सकता है जो देवताओं के साथ छल करता है । निकृष्ट कामनाओं को साथ लेकर उपासना करना देवता से छल करना है अथवा श्रद्धा, आस्था या भक्ति न होने पर भी जो किसी स्वार्थ सिद्धि के लिए वैसा करता है वह भी देवताओं से छल करता है अथवा किसी साधना से देव कृपा प्राप्त कर लेने पर उसका उपयोग परमार्थ में न करके स्वार्थ में करने वाला अथवा उसके प्रभाव से दूसरों को भयभीत या आतंकित करने वाला देवताओं से छल ही नहीं करता बल्कि उन दिव्य शक्तियों से साथ विश्वासघात करता है । ऐसा विश्वासघाती किसी मूल्य पर भी क्षमा नहीं किया जाता । वह दिन रात आत्म-जन्य ताप से तो जलता ही रहता है साथ ही रौरब जैसे नरक में उसके लिए स्थान की व्यवस्था होती रहती है । ऐसे मिथ्यावादी लोगों को सुख-शान्ति के लिये तरसते रहना स्वाभाविक ही है । अस्तु जीवन में सुख-शान्ति पाने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह सच्चा और सरल जीवन अपनाये ।

बन्धन, बन्धन ही हैं वे किसी प्रकार के भी क्यों न हों सदा दुःखदायी ही होते हैं । शारीरिक अथवा मानसिक किसी प्रकार के बन्धनों में बँधा व्यक्ति कभी भी सुख शान्ति नहीं पा सकता । इसलिये मनुष्य को चाहिये, यदि वह जीवन में सुख-शान्ति के दर्शन करना चाहता है तो हर प्रकार के उन बन्धनों को तोड़कर फेंक दे जो अनुचित एवम् अनुपयुक्त हों । सड़ी-गली रूढ़ियाँ, अर्थहीन रीति-रिवाज, अन्ध परम्परायें तथा मूढ़-विश्वास वे चाहे सामाजिक हों अथवा धार्मिक किसी प्रकार उपयुक्त नहीं हैं । समाज की ताड़ना, अज्ञान का भय और संस्कारों का संघर्ष सहन करके भी इस प्रकार के अनुचित बन्धनों वासनाओं तथा तृष्णाओं के बन्धन भी नहीं ही रखने चाहिये जो मनुष्य जितना अधिक व्यसनों, वासनाओं तथा तृष्णाओं से रहित होता है वह उतना ही अधिक शान्त और सुखी रहता है । व्यसनों अथवा वासनाओं में आनन्द की कल्पना अज्ञान के सिवाय और कुछ नहीं है । अज्ञान को त्याग कर व्यसनों तथा वासनाओं की हानियाँ समझनी और उनका त्याग कर ही देना चाहिए । । व्यसनों तथा वासनाओं का त्याग सुख-शान्ति का सहज संरक्षक माना गया है ।

सुख-शांति के यह चार स्तम्भ तब तक अपूर्ण तथा निर्बल ही रहेंगे जब तक मुख्य आधार अध्यात्मवाद का जीवन में समावेश नहीं किया जायगा । एक तो अध्यात्मवादी स्वभाव से ही प्रसन्न चेता होता है । ज्ञान तथा विवेक की प्रबलता और परमात्मा में अटल विश्वास और उसके न्याय में अखण्ड आस्था रखने से संसार का कोई भी शोक-सन्ताप उसे प्रभावित नहीं कर पाता । वह सहज भाव से सुखी तथा सन्तुष्ट रहता है । पुनः जीवन में अध्यात्मवाद का आश्रय लेने से मनुष्य की तुच्छता, मिथ्यात्व तथा बन्धनों के प्रति आप से आप विरक्ति होने लगती है । इन तीन दोषों को दूर करने में अधिक संघर्ष नहीं करना पड़ता फिर भी यदि मनुष्य ने उपर्युक्त तीनों दोषों को दूर कर भी लिया किन्तु अध्यात्मवाद की उपेक्षा कर दी तो वह एकबार शरीर से भले ही सुखी हो जाये पर आत्मा से दुःखी ही बना रहेगा । शारीरिक सुख लौकिक तथा क्षण-भंगुर हैं । सच्चा सुख आत्मिक सुख ही है वह लक्ष्य भी होता है उसका विस्तार लोक से परलोक तक जाता है । अस्तु सच्चे तथा लक्ष्य सुख को पाने के लिये जीवन में अध्यात्मवाद का समावेश बहुत महत्त्व रखता है । इस प्रकार यदि मनुष्य जीवन सुधार के उपर्युक्त चार आधारों की स्थापित कर अपनी गतिविधि का संचालन करे तो उसका जीवन अनुपयुक्त से उपयुक्त बन जाये । उसकी सारी समस्याओं का समाधान होता चले और उसके लिए तब सुख-शान्ति की जरा भी कमी न रह जाये ।

उपासना इस स्थिति को प्राप्त करने में कितनी सफल सिद्ध होती है ? इस बारे में यही कहा जा सकता है कि वास्तविक पूजा न सिर्फ अन्तःकरण में अपार शान्ति की प्रतिष्ठापना करती है वरन् चरम लक्ष्य तक पहुँचाने में भी सहायक बनती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुख और दुःख क्या है ?

सुख और दुःख का अपना कोई अस्तित्व नहीं है । इनका कोई सुनिश्चित, ठोस, सर्वमान्य आधार भी नहीं है। सुख-दुःख मनुष्य की अनुभूति के ही परिणाम हैं । उसकी मान्यता कल्पना एवं अनुभूति विशेष के ही रूप में सुख-दुःख का स्वरूप बनता है । सुख-दुःख मनुष्य के मानस पुत्र हैं ऐसा कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी । मनुष्य की अपनी विशेष अनुभूतियाँ, मानसिक स्थिति में ही सुख-दुःख का जन्म होता है । बाह्य परिस्थितियों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं । क्योंकि जिन परिस्थितियों में एक दुःखी रहता है तो दूसरा उनमें खुशियाँ मनाता है, सुख अनुभव करता है । वस्तुतः सुख-दुःख मनुष्य की अपनी अनुभूति के निर्णय हैं, और इन दोनों में से किसी एक के भी प्रवाह में वह जाने पर मनुष्य की स्थिति असन्तुलित एवं विचित्र-सी हो जाती है । उसके सोचने समझने तथा मूल्यांकन करने की क्षमता नष्ट हो जाती है । किसी भी परिस्थिति में सुख का अनुभव करके अत्यन्त प्रसन्न होना, हर्षातिरेक हो जाना तथा दुःख के क्षणों में रोना बुद्धि के मोहित हो जाने के लक्षण हैं । इस तरह की अवस्था में सही-सही सोचने और ठीक काम करने की क्षमता नहीं रहती । मनुष्य उल्टा-सीधा सोचता है । उल्टे-सीधे काम करता है ।

कई लोग व्यक्ति विशेष को अपना अत्यन्त निकटस्थ मान लेते हैं । फिर अधिकार भावनायुक्त व्यवहार करते हैं। विविध प्रयोजनों का आदान-प्रदान होने लगता है । एक-दूसरे से कुछ न कुछ अपेक्षायें रखने लगते हैं । जब तक गाड़ी भली प्रकार चलती है तो लोग सुख का अनुभव करते हैं । लेकिन जब दूसरों से अपनी अपेक्षायें पूरी न हों या जैसा चाहते वैसा प्रतिदान उनसे नहीं मिले तो मनुष्य दुःखी होने लगता है ।

अक्सर अनुकूलताओं में सुखी और प्रतिकूलताओं में दुःखी होना हमारा स्वभाव बन गया है । उन्नति के, लाभ के, फल-प्राप्ति के क्षणों में हमें बेहद खुशी होती है तो कुछ न मिलने पर, लाभ न होने पर, दुःख भी कम नहीं होता । लेकिन इसका आधार तो स्वार्थ, प्रतिफल, लगाव अधिकार आदि की भावना है । इन्हें हटा कर देखा जाय तो सुख-दुःख का कोई अस्तित्व ही शेष न रहेगा । दोनों ही निःशेष हो जायेंगे ।

सुख-दुःख का सम्बन्ध मनुष्य की भावात्मक स्थिति से मुख्य है । जैसा मनुष्य का भावना स्तर होगा उसी के रूप में सुख-दुःख की अनुभूति होगी । जिनमें उदार दिव्य सद्भावनाओं का समुद्र उमड़ता रहता है, वे हर समय प्रसन्न सुखी आनन्दित रहते हैं । स्वयं तथा संसार और इसके पदार्थों को प्रभु का मंगलमय उपवन समझने वाले महात्मा को पद-पद पर सुख के सिवा कुछ और रहता ही नहीं । काँटों में भी वे फूलों की तरह मुस्कराते हुए सुखी रहते हैं। कठिनाइयों में भी उनका मुँह कभी नहीं कुम्हलाता ।

इसके विपरीत सङ्कीर्णमना, हीन भावना वाले, राग-द्वेष से प्रेरित स्वभाव वाले व्यक्तियों को यह संसार दुःखों को आगार मालूम पड़ेगा । ऐसे व्यक्ति कभी नहीं कहेंगे कि "हम सुखी हैं ।" वे दुःख में ही जीते हैं और दुःख में ही मरते हैं । दुर्भावनायें ही दुःखों की जनक हैं । इसी तरह वे हैं जिनका पूरा ध्यान अपने पन पर ही है । उनका भी दुखी रहना स्वाभाविक है । केवल अपने को सुखी देखने वाले, अपना हित, अपना लाभ चाहने वाले, अपना ही एकमात्र ध्यान रखने वाले संकीर्णतमना व्यक्तियों को सदैव मनचाहे परिणाम तो मिलते नहीं । अतः अधिकतर दुःख और रोना-धोना ही इस तरह के लोगों के पल्ले पड़ता है ।

आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य का भावनास्तर सार्वभौमिक हो । अपनी सुख-दुःख की अनुभूति का आधार जितना व्यापक होगा उतना ही मनुष्य सुख-दुःख की मोहमयी माया से बचा रहेगा । सबके साथ सुखी रहना सबके साथ दुःखी अर्थात् सबके सुख में अपना सुख देखना और सबके दुःख में अपना दुःख । इससे मनुष्य न तो सुख में पागल बनेगा न दुःख में रोयेगा ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुख भाग्भवेत् ।।

"सभी सुखी हों सभी नीरोग हों । सभी कल्याण प्राप्त करें कोई भी दुःखी न हों ।" इस तरह की चाह ज्यों-ज्यों बढ़ती जायगी हमारे हृदय में स्थायी सुख शान्ति सन्तोष की भी वृद्धि होगी । इसी तरह सबके दुःखों को अपनी अनुभूति का आधार बनाने वाले व्यक्तियों के स्वयं के दुःख द्वन्द्व स्वतः तिरोहित हो जाते है । दुःख का भार जब मनुष्य अपनी ही पीठ पर लादे फिरता है तो उसका दुःखमय रह कर दुःख में ही अन्त होना स्वाभाविक है ।

अति संवेदनाशील व्यक्ति को सुख-दुःख की लहरों में अधिक थपेड़े खाने पड़ते हैं । क्षण-क्षण बदलने वाले, बनने और बिगड़ने वाले, पदार्थ, संयोग-वियोग जब संवेदनशील व्यक्ति के मानस को झकझोर डालते हैं तो उसे संसार दुःखमय जान पड़ता है । वस्तुतः इस तरह के व्यक्ति एक अपनी काल्पनिक दुनियाँ बना लेते हैं । लेकिन जब कल्पना साकार नहीं होती और दूसरे अरुचि के परिणाम मिलते हैं तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संवेदनाशील व्यक्ति दुःखी होता है । संसार यथार्थ की कठोर धरती है । यहाँ सभी तरह की परिस्थितियों के झोंके आते रहते हैं । पद-पद पर प्राप्त परिस्थिति का स्वागत कर दृढ़ता के साथ आगे बढ़ने वाले ही दुःख द्वन्द्वों पर काबू पा सकते हैं ।

मानव जीवन दुहरी कार्य-प्रणाली का संयोग स्थल है । मनुष्य लेता है और त्याग भी करता है । निरन्तर श्वास लेता है और प्रश्वास छोड़ता है । भोजन करता है किन्तु दूसरे रूप में उसका त्याग भी करता है । इस तरह धनात्मक और ऋणात्मक दोनों क्रियाओं में ही मनुष्य जीवन की वास्तविकता है । दोनों में से एक का अभाव मृत्यु है । दोनों के सम्मिलित प्रयास से ही जीवन पुष्ट बनता है । बिजली की ऋण और धन दोनों धारायें चलती हैं तभी प्रयोजन सिद्ध होता है । अकेली एक धारा कुछ नहीं कर सकती । इसी तरह संसार में सुख भी है और दुःख भी । न्याय है और अन्याय भी । प्रकाश है और अन्धेरा भी । संसार सुन्दर उपवन है तो कठोर कारागार भी । जन्म के साथ मृत्यु और मृत्यु के साथ जन्म जुड़ा हुआ है । इस तरह विभिन्न धनात्मक और ऋणात्मक पक्ष मिलकर जीवन को पुष्ट करने का काम करते हैं, केवल मात्र सुख की चाह करना और दुःख-द्वन्द्वों से बचने की लालसा रखना एकांगी है । प्रकृति का नियम तो बदलता नहीं इससे उल्टे मनुष्य में भीरुता, मानसिक दुर्बलता को पोषण मिलता है मनुष्य को निराशामय चिन्ता का सामना करना पड़ता है ।

जो कुछ भी जीवन में प्राप्त हो जैसी भी परिस्थिति आये उसे जीवन का वरदान मान कर सन्तुष्ट और प्रसन्न रहने में कंजूसी न की जाय । वस्तुतः सुख दुःख, अनुकूल प्रतिकूल, धनात्मक-ऋणात्मक परिस्थितियों में जीवन बलिष्ठ और पुष्ट होता है । इनमें से निकल कर ही मनुष्य निरामय, अनावृत्त और निर्मल बन सकता है । वैसे इनसे बचने का कोई रास्ता भी नहीं है । फिर क्यों नहीं हर परिस्थिति में सहज भाव में स्थिर रहा जाय । जब संसार को चलाने वाले नियम परिवर्तनशील हैं, ऋणात्मक और धनात्मक हैं तो फिर अपनी एक-सी दुनिया बसाने की कल्पना या सुखों के अरमानों को पोषण क्यों दिया जाय ? इससे तो दुःख निराशा क्लांन्ति ही मिलेगी । दृढ़ चट्टान की तरह जीवन में आने वाली विविध अनुकूल प्रतिकूल हवाओं में तटस्थ भाव से सब कुछ देखते रहना और हर परिस्थिति में सन्तुष्ट रहना सुख-दुःख से मुक्त रहने का सरल उपाय है ।

वस्तुतः सुख के सम्बन्ध में ही लोगों के विचार सही और पूर्ण नहीं होते । कई बार जिन्हें मनुष्य सुख मानकर चलता है वे ही घोर दुःख का कारण बन जाते हैं । बहुत से लोग शारीरिक सुखों को अपना आधार मान लेते हैं । आराम करना, प्रमादी जीवन बिताने में कई लोग सुख का अनुभव करते हैं किन्तु ये विषवत् दुःखकर होते हैं--

यदग्रे चानु बन्धे च सुखम् मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्य प्रमादोत्थम् तत्तामसमुदाहृतम् ।।

''भोग काल में तथा परिणाम में भी आत्मा को मोहित करने वाला, निद्रा आलस्य प्रमाद आदि से उत्पन्न सुख तामसी-राक्षसी कहा गया है ।'' वस्तुतः निद्रा आलस्य प्रमाद में जीवन बिताने से मनुष्य के मन, बुद्धि, विवेक सुप्त हो जाते हैं । इससे मनुष्य की शारीरिक मानसिक क्षमतायें भी नष्ट हो जाती हैं । और फिर जीवन के संघर्षों में मनुष्य को जल्दी हार बैठना पड़ता है । इस तरह के सुख से मनुष्य की क्रियाशक्ति को मोरचा लग जाता है । हाथ-पांव बेकार और शरीर रुग्ण हो जाता है ।

कई लोग अच्छा खाना, पीना, विषय भोग में रत रहना ही सुख का आधार मान कर चलते हैं । खाओ पीओ और मौज उड़ाओ की नीति का अनुसरण करते हैं । किन्तु प्रारम्भ में सुखकर लगने वाले परिणाम में विषवत् मालूम पड़ते हैं । गीताकार ने लिखा है-

''विषयेन्द्रिय संयोगा द्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ।।''

''विषय और इन्द्रियों के संयोग से होने वाले सुख राजसिक सुख कहलाते हैं जिनका परिणाम विष तुल्य ही होता है ।'' वस्तुतः संसार के भोगों में लिप्त रहना, विषयों में आसक्त रहना प्रारम्भ में तो सुखकर लगता है किन्तु परिणाम में मनुष्य पर हलाहल विष की तरह प्रभाव डालता है । मनुष्य तन, मन से हीन अस्वस्थ हो तड़प-तड़प कर प्राण देता है । जिस तरह पतंग दीपक की लौ का स्पर्शसुख प्राप्त करने की चेष्टा करके झुलस•जाता है अपने पंखों से हाथ धो बैठता है और फिर तड़प-तड़प कर प्राण देता है उसी तरह विविध भोग, विषय वासना की पूर्ति पहले तो सुखकर लगती है किन्तु फिर अनेक शारीरिक मानसिक कष्टों का कारण बन जाती है । साथ ही मनुष्य में अनेकों राजसिक भाव, अहंकार, दर्प, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा की भावना, दम्भ, विषय चिन्तन, शान-शौकत आदि बढ़ जाते हैं जो सम्पूर्ण जीवन को विकारमय बना देते हैं और इनके कारण मनुष्य को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है ।

सांसारिक पदार्थ इन्द्रियों तथा इच्छाओं से सम्बन्ध रखने वाले सभी सुखों का अन्त दुःख में ही होता है । क्योंकि ये सभी नाशवान क्षणभंगुर परिवर्तनशील होते हैं । संसार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और मनुष्य की परिस्थितियाँ हर क्षण बदलती हैं । आज कोई धनवान है तो कल वह निर्धन बन सकता है । आज अनुकूल परिस्थिति है तो कल प्रतिकूलताओं का भी सामना करना पड़ सकता है । आज जो पदार्थ हमें सुख देते हैं वे कल दुःखदायी बन जाते हैं । आज जो अपने हैं वे कल पराये बन जाते हैं ।

हाँ यदि सुख का कोई स्थायी आधार हो सकता है तो वह है सत्य, सनातन, सार्वभौम मानवीय चेतना । अपनी चेतना, अन्तरात्मा में मन, बुद्धि चित्त को केन्द्रित करके तटस्थ निस्पृह अनासक्त भाव से संसार को देखते रहना आत्म स्थित हो जग में अपने कार्य व्यापार करते रहना, आत्मा में ही मस्त रहना, आत्मा में ही सुखी रहना । आत्मा को देखना, आत्मा को ही सुनना, आत्मा में ही रमण करना मनुष्य को सुख-दुःख की सीमाओं से मुक्त कर देता है ।

किसी भी प्रकार के सुख की चाह के साथ दुःख का अभिन्न साथ है । उसे तिरोहित नहीं किया जा सकता । अस्तु सुख-दुःख की सीमा से ही परे हो जाना इसके रहस्य को जान लेना है और यह आत्म केन्द्रित होने पर ही सम्भव है । आत्मस्थ व्यक्ति के लिए न कोई सुख होता न कोई दुःख । हमें सुख-दुःख की सीमा से ऊपर उठने के प्रयास प्रारम्भ कर देना चाहिए ।

जीवन में सामंजस्य

संसार और इसके पदार्थों में अनेक विभिन्नतायें, विचित्रतायें निहित हैं । हर एक व्यक्ति का चेहरा दूसरे से नहीं मिलता । असंख्यों प्रकार के जीव और फ़िर उनमें भी परस्पर असमानतायें । यहाँ तक कि एक पेड़ की पत्तियों शाखाओं में भी परस्पर असमानता, भिन्नता होती है । ये सार्वभौमिक विचित्रतायें, भिन्नतायें सर्वत्र ही हैं । मानव जीवन भी इनसे मुक्त नहीं है । मानव जीवन अनेक अंगों में बँटा हुआ है । अध्यात्म, धर्म, प्रकृति, लोक मर्यादा, आत्मा, देह, विचार, भाव, लोकसंग्रह आदि अनेक भागों में मानव जीवन बँटा हुआ है । लेकिन इस सबके होते हुए भी समस्त संसार और इसके पदार्थ, सभी प्राणि मात्र एक स्थान पर परस्पर अभिन्न हैं । इनमें परस्पर ऐक्य है । भिन्नता, अनेकता, विचित्रता सब बाह्य है किन्तु आन्तरिक रूप से सभी एकता के सूत्र में पिरोये हुए हैं । सभी विश्व-चेतना के अंश हैं । सभी मनुष्य विश्वव्यापी आत्म-तत्व के अंश हैं । सभी एक आत्मा से ओत-प्रोत हैं । इस आन्तरिक एकता के स्थल पर सभी असमानतायें, वैभिन्य, विचित्रतायें तिरोहित हो जाती हैं । अनेक विभागों में बँटा हुआ मानव-जीवन भी आन्तरिक क्षेत्र में एक है, अभिन्न है ।

इस तरह जीवन के मुख्यतया दो विभाग हुए । एक आन्तरिक जीवन, जो जाति, भेद, विभिन्नताओं से रहित और मुक्त है । दूसरा बाह्य जीवन जो अनेक विचित्रताओं विभिन्नताओं, अनेकताओं में बँटा हुआ है । इसी तथ्य की पुष्टि करते हुये उपनिषद्कार ने लिखा है ।

''य एको ह वर्णो बहुधा शक्ति योगात वर्णनने कान्निहितार्थादधाति ।''

''वह एक है उसका कोई वर्ण नहीं वह अपार शक्ति सम्पन्न हैं । उसकी कोई जाति नहीं, किन्तु वे ही अनेक जातियों, समस्त प्रयोजनों का विधान करते हैं ।''

हमारा अनेक प्रवृत्तियों में बँटा हुआ बाह्य जीवन और आन्तरिक जीवन भिन्न नहीं किन्तु एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है । दोनों का अपना-अपना महत्त्व है । दोनों में से एक को भी तिरोहित नहीं किया जा सकता, यदि अनेकताओं में बँटे हुए बाह्य जीवन को महत्त्व देकर आन्तरिक मूलसत्ता को भुला दिया जायगा तो मनुष्य को क्षण-क्षण मौत और पश्चाताप, दुःख और क्लेश का सामना करना पड़ेगा । क्योंकि समस्त पदार्थ और बाह्य जीवन की प्रवृत्तियाँ मरण-धर्मा क्षणभंगुर हैं परिवर्तनशील और नष्ट होने वाले हैं । इसी तरह बाह्य जीवन की प्रवृत्तियों, विभिन्नताओं को भुला कर उन्हें तिरोहित करके एकमेव आन्तरिक सत्य को महत्त्व दिया जायगा तो जीवन एक तरह की शून्यता और व्यर्थता का अवशेष रह जायगा ।

आवश्यकता इस बात की है कि आन्तरिक और बाह्य जीवन में सामंजस्य, सन्तुलन स्थापित किया जाय । गीता में इसे ही साम्ययोग कहा गया है । भगवान बुद्ध ने इसे ही मध्यम मार्ग कहकर जीवन साधना का सर्वोपरि मार्ग बताया है । उन्होंने अपना प्रारम्भिक जीवन राज-महलों में परिपूर्ण उपकरणों, सुख सुविधाओं के बीच बिताया, किन्तु इससे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ । फिर सब कुछ छोड़कर वन की शरण ली और अनेक वर्षों तक घोर तप किया । अनेक कठोर साधनायें कीं और अन्त में भगवान बुद्ध इसी निर्णय पर पहुँचे कि आन्तरिक और बाह्य जीवन में, अध्यात्म और प्रकृति में सामंजस्य, सन्तुलन--होने से ही जीवन में परितोष की प्राप्ति हो सकती है । तब फिर मध्यम मार्ग का उन्होंने संसार को उपदेश दिया, जिसमें जीवन के सभी अंगों में सामंजस्य करके लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है ।

संसार और इसके पदार्थों उपकरणादि को सब कुछ मानकर चलना आसुरी मार्ग है, जिसका परिणाम सर्वथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विनाश, अशान्ति असन्तोष और पश्चाताप ही हो सकता है । रावण ने बड़े प्रयत्नों से सोने की लंका बसाई थी । स्वर्ग की सीढ़ियाँ बना रहा था वह । विश्व विजय के नशे में चूर हो जीवन भर युद्ध किये । वासना और विषय लोलुपतावश पर-नारियों का हरण किया, अनेक का सतीत्व नष्ट किया । आत्मा के गुण धर्म, स्वभाव की भरपूर उपेक्षा की रावण ने, किन्तु उसका परिणाम भी सर्वविदित है ।

इसी तरह केवल अध्यात्म को, अन्तर्जगत को महत्व देकर बाह्य-जीवन के उत्तरदायित्व, कर्त्तव्य, प्रकृति के नियमों को सर्वथा भुला दिया जायगा तो यह बड़ी भूल होगी । शास्त्रकारों ने इसे और भी बुरा बताया है । उपनिषद्कार ने कहा है, "जो केवल ब्रह्म को महत्त्व देकर जीवन के अन्य अंगों की उपेक्षा करते हैं वे और भी अधिक अन्धकार में हैं ।" जीवन में परितोष तो क्या परिणाम में शून्यता ही शेष रहेगी ।

अध्यात्म और जगत, आत्मा और प्रकृति परस्पर भिन्न-भिन्न नहीं हैं । वरन् एक-दूसरे के संयोग से ही परिपूर्ण बनते हैं । दोनों के सामंजस्य से ही मनुष्य जीवन में लक्ष्य की पूर्णता हासिल कर सकता है । अनेक वर्नों के संयोग से ही माला बनती है । तो माला में पिरोये रहने पर ही मनकों की सार्थकता है ।

कोई पदार्थ अपने मूल से और मूल सत्ता पदार्थ से जुदा हो जाने पर परस्पर विरोधी बन जाते हैं और एक-दूसरे को नष्ट करने पर उतारू हो जाते हैं । बाह्य जीवन और आन्तरिक जीवन, प्रकृति और अध्यात्म दोनों में से किसी एक को एकान्तिक भाव से ग्रहण कर लेने पर इन युगलों में परस्पर युद्ध छिड़ जाता है । संसार और इसके पदार्थ को महत्त्व देने पर ये आत्मा की उपेक्षा करने लगते हैं, तो आत्मा को ही केवल महत्त्व देने पर वह प्रकृति और जगत की उपेक्षा होने लगती है । प्रकृतिवादी जगत को सर्वोपरि समझकर संसार के पदार्थ उपकरणों को ही अधिक महत्त्व देते हैं, इन्हीं के पीछे दौड़ते हैं, तब आत्मा के गुण-दया, धर्म-प्रसाद विराम-विश्राम को कोई स्थान नहीं रहता । उधर आत्मवादी प्रकृति मर्यादाओं, जगत के नियत कर्म नियमों का उल्लंघन करके निश्चेष्ट हो जाते हैं । इस तरह की निश्चेष्टता निर्जीवता, एवम् शून्यता ही है । दोनों ही स्थितियों में जीवन अपूर्ण रहेगा ।

अतः आन्तरिक और बाह्य जीवन में सन्तुलन सामंजस्य का होना आवश्यक है । जीवन और जगत की विभिन्नताओं में भी आन्तरिक साम्य का पूर्ण दर्शन कर लेना साम्य-योग की पूर्णावस्था है और इसकी साधना का स्थल है, हमारा चित्त । चित्त ही आन्तरिक और बाह्य जीवन को जोड़ने वाला पुल है । चित्त की अनुकूलता-साम्य से ही सामंजस्य की उक्त आवश्यकतापूर्ण होती है । वस्तु पदार्थ, विचार, राजनीति, समाज, अर्थ, आत्मा और प्रकृति सभी में सामंजस्य पैदा करने का स्थल चित्त ही है । योग विज्ञान का क्षेत्र चित्त ही माना गया है । चित्त का परम साम्य ही पूर्ण योग भी है ।

साम्य-योग की पूर्णावस्था अचानक प्राप्त नहीं हो जाती । इसके लिए छोटी-छोटी बातों में सामंजस्य का अभ्यास करना चाहिए । एक-एक करके जीवन के सभी अंगों में, सभी क्षेत्रों में साम्य-योग की निर्दोष उच्च भूमिका तक पहुँचा जा सकता है ।

व्यवहार में, बात-चीत में, चिन्तन-मनन में व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में सामंजस्य का जितना अभ्यास बढ़ता जायगा उतना ही साम्य-योग की सफलता का क्षेत्र व्यापक होगा । अन्तः और बाह्य जगत में जो जितना सामंजस्य कर लेता है वह उतना ही महान बन जाता है । हम दूसरों के साथ वही करें जो स्वयं अपने लिए चाहते हैं । हमारे क्रिया-कलापों का आधार आन्तरिक सत्य ही हो अर्थात् हम वही गतिविधियाँ अपनायें जो सर्वजनहिताय, सर्वोपयोगी हों। हमारी प्रवृत्तियों का आधार सर्वव्यापी, आन्तरिक सत्य हो ।

साम्य योग में व्यक्तिगत स्वार्थों की प्रतिस्पर्धा को कोई स्थान नहीं है । सबके लाभ के साथ अपना लाभ, विकास, उन्नति, प्रगति के सामूहिक प्रयत्न करना साम्य-योग का आदर्श है ।

इस तरह साम्ययोग, सामंजस्य की साधना के मूलाधार हैं (१) आत्मा और जगत को, आध्यात्म और प्रकृति को जीवन में स्थान देना । (२) चित्त और चितवृत्तियों को सार्वभौम समग्र अखण्ड आन्तरिक सत्य के साथ एकीभूत करना । (३) सबके साथ अपना जीवन, स्वयं जीना और दूसरों को जीने में सहायता करना । (४) व्यक्तिगत लाभ की प्रतिस्पर्धा नहीं वरन् सबके लाभ के साथ अपना लाभ प्राप्त करना । प्राप्त साधन उपकरणों से दूसरों की उन्नति विकास में सहयोग करना । (५) सामूहिक विकास, उन्नति, लाभ में सामूहिक आनन्द में विश्वास रखना । इनका अवलम्बन लेकर परम साम्य मंजिल तक पहुँचा जा सकता है और सच्चा जीवन लाभ प्राप्त किया जा सकता है ।

सन्तोषी--सर्वदा सुखी

कितने ही व्यक्ति अपनी वर्तमान परिस्थितियों से बहुत खिन्न और परेशान रहते हैं । अपना वर्तमान उन्हें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असन्तोषपूर्ण और भविष्य निराशामय दीखता है । वस्तुओं की कमी और परिस्थितियों की प्रतिकूलता के कारण जितना कष्ट होता है उससे कहीं अधिक कष्ट उन्हें अपनी असन्तुलित मनोभूमि के कारण होता है । मानसिक सन्तुलन ठीक न रहने से वे परिस्थितियों को सुधारने, अभावों को मिटाने का मार्ग भी नहीं सोच पाते, फलतः उनकी चिन्ता इस असन्तोषपूर्ण मनःस्थिति के कारण सुधरने की अपेक्षा दिन-दिन बिगड़ती ही जाती है ।

एक व्यक्ति कम आमदनी के कारण, बहुत आर्थिक कष्ट अनुभव करता है और इसीलिए अपने को अभावग्रस्त, भाग्यहीन तथा दीन-दुःखी अनुभव करता है, पर दूसरा व्यक्ति उन्हीं परिस्थितियों में रहकर, उतनी ही आमदनी से अपना काम चलाता है और बड़े आनन्द तथा सन्तोष के साथ दिन काटता है । कई बार तो उससे भी गई बीती आर्थिक परिस्थिति के लोग अपेक्षाकृत और भी अधिक प्रसन्न और सन्तुष्ट देखे जाते हैं । यदि धन की मात्रा ही सुख-दुःख का कारण रही तो उसी आधार पर उसकी न्यूनाधिकता दृष्टिगोचर होनी चाहिए थी । पर देखा इसके विपरीत जाता है । बड़े-बड़े धनपति और श्रीमन्त लोग प्रचुर मात्रा में धन होते हुए भी दुःखी, असन्तुष्ट और चिन्तित देखे जाते हैं और अनेकों निर्धनों की झोंपड़ियाँ स्वर्गीय सुख शान्ति को अपने अन्दर धारण किये होती हैं ।

इसी प्रकार यश, कीर्ति सफलता, स्वास्थ्य, विद्या, बुद्धि, कला-कौशल चातुर्य, देश, जाति, आयु, रूप यौवन आदि विभूतियों के आधार पर भी दुःख निर्भर नहीं है । इनमें से जिस वस्तु का भी अभाव होता है उसी को लोग अपने दुःख का कारण मान लेते हैं और अपने को निर्दोष समझकर उन अभावों का ही रोना रोया करते हैं । वे सोचते हैं कि हमारा अमुक अभाव दूर हो जाय तो फिर प्रसन्नता और सन्तुष्टि उपलब्ध हो सकती है । प्रयत्न करने पर वह अभाव दूर भी हो जाते हैं फिर भी देखा गया है कि प्रसन्नता दूर ही हटती चली जाती है । उस अभाव के पूर्ण होते ही दूसरा अभाव अखरने लगता है । कोई न कोई अभाव तो बना रहेगा । सारे अभावों का दूर हो जाना, समस्त कामनाओं का पूर्ण हो जाना सम्भव नहीं है । इसलिये उनके लिये सुख-शान्ति भी एक असम्भव तथ्य बनी रहती है । रोते, झींकते, खिन्नता और चिन्ताओं में ग्रसित रहते हुए ही उन्हें जीवन के बहुमूल्य क्षण समाप्त करने होते हैं । आज अधिकांश व्यक्तियों की आन्तरिक स्थिति यही है । वे जीते तो हैं पर उसमें कोई आनन्द या सन्तोष अनुभव नहीं करते ।

क्या इस स्थिति का बदला जाना सम्भव नहीं है ? सुख का आस्वादन करते हुए प्रसन्नतापूर्ण जीवन-यापन कर सकना अपने हाथ की बात नहीं है ? इस समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन को सन्तोष और आनन्दपूर्ण परिस्थितियों में व्यतीत कर सकना निश्चय ही मनुष्य के अपने हाथ की बात है । यह ठीक है कि अभीष्ट साधन सामग्री अधिक मात्रा में होने से सुख की सम्भावना बढ़ जाती है । यह भी ठीक है कि अनुकूल परिस्थितियों में मनुष्य अधिक सुविधा अनुभव करता है पर यह भी गलत नहीं है कि स्वल्प साधनों एवं सामान्य परिस्थितियों को भी यदि परिष्कृत दृष्टिकोण से देखा जाय तो उतने से भी प्रसन्नता की उतनी मात्रा उपलब्ध हो सकती है कि व्यक्ति अपने जीवन को असफल एवम् दुर्भाग्यग्रस्त न माने । जब अन्य असंख्यों व्यक्ति हमसे गई गुजरी परिस्थिति में रह सकते हैं तो हम उनसे कहीं अधिक सुविधाएँ प्राप्त होते हुए भी दुःखी रहें इसका कोई कारण नहीं है ।

प्रसन्नता और अप्रसन्नता की गुत्थी बाहरी पदार्थों की संख्या, मात्रा या उत्कृष्टता के आधार पर सुलझाई नहीं जा सकती । क्योंकि जो कुछ हम चाहते हैं वह साधन जिन्हें उपलब्ध हैं वे ही कहाँ सन्तुष्ट हैं ? जो परिस्थितियाँ आज हम चाहते हैं, उनके प्राप्त हो जाने पर वे भी स्वल्प लगेंगी और उससे अधिक उत्कृष्टता की अधिक मात्रा की आवश्यकता अनुभव होगी, फिर वही अभाव खटकने लगेगा । इस कुचक्र का कहीं अन्त नहीं । इस संसार की सारी साधन सामग्री मिल कर भी एक व्यक्ति की तृष्णा को तृप्त नहीं कर सकती । सुरसा राक्षसी की तरह उसका मुँह फटता ही जाता है । इसमें से बच निकलने का एक ही उपाय है, अपने को छोटा बनाना । हनुमान जी ने इसी युक्ति से अपना पिण्ड छुड़ाया था । सुरसा वस्तुतः तृष्णा ही है, हमारा आकार कितना ही बढ़े उसको मुँह और भी अधिक फटता जायगा । राजा और रंक श्रीमन्त और श्रमिक सभी उसकी डाढ़ों के नीचे कुचले जाते और अपने-अपने ढंग से दुर्भाग्य का रोना रोते हुए चीखते चिल्लाते रहते हैं ।

हम सिर्फ अभावों और कठिनाइयों के बारे में सोचते रहे हैं और विशेष जो कुछ उपलब्ध है उसकी महत्ता और प्रचुरता पर ध्यान नहीं देते । यदि हम अपने से नीचे वालों के साथ अपनी तुलना करने लगें तो प्रतीत होगा कि कितने ही प्राणी हमें अपनी तुलना में उतना ही साधन सम्पन्न समझते होंगे जितना कि हम अपनी तुलना में देवताओं को समझते हैं । यदि हम उन बेचारों की परिस्थिति में होते और उस समय कोई देवता आकर यह परिस्थिति प्रदान करता जो हमें आज उपलब्ध है तो निश्चय ही वह परिवर्तन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक वरदान ही माना जाता । संसार में लाखों अंधे हैं यदि उन्हें हमारी तरह देख सकने वाली आँखें मिल जायें तो वे आनन्द से फूले न समावेंगे । इसी प्रकार कितने ही लँगड़े, लूले, बहरे, अपाहिज, पागल रोगग्रस्त, जराजीर्ण मनुष्य ऐसे हैं जो और कुछ न सही केवल शारीरिक स्थिति ही हमारे जैसी मिल जाय तो उसे एक दैवी वरदान ही मानेंगे । पर हमें अपनी उस सम्पन्नता का कभी अनुभव भी नहीं होता। जो कुछ हमें प्राप्त है उसकी उत्कृष्टता पर यदि हम विचार करें तो प्रतीत होगा कि ईश्वर ने जो कुछ दिया है वह भी इतना है कि उस पर सन्तोष और गर्व किया जा सकता है। जो प्राप्त है उससे सन्तुष्ट रहना और अधिक के लिए प्रयत्न करना यही प्रगति का निर्दोष क्रम है । विवेकवान इसी रास्ते उन्नति की मंजिल पर बढ़ते हैं ।

इस संसार में मनोवांछित परिस्थितियाँ किसी को भी प्राप्त नहीं । हर एक को कोई न कोई अभाव रहता ही है । यदि इसी कारण लोग असन्तुष्ट रहने लगें तो फिर सारी दुनियाँ में एक भी व्यक्ति सुखी न मिलेगा । पर बात ऐसी नहीं है, अनेक निर्धन तथा कठिनाइयों में ग्रस्त मनुष्य भी ऐसे मौजूद हैं जो परिस्थितियों से लड़ते हुए उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील तो हैं पर वर्तमान में जो कुछ सामने है उससे खिन्न नहीं होते । हँसते-खेलते उसे ईश्वर की अनुकम्पा मानकर अपना मन प्रसन्न रखते हैं और सन्तोष की साँस लेते हुए जीवन के दिन पार करते हैं ।

कई लोग सोचते हैं कि सन्तोष कर लेने से प्रगति शिथिल हो जायगी, उन्नति के प्रयत्न ढीले हो जायेंगे, जो कुछ है सब ठीक है यह मान लेने की आदत पड़ जायगी और फिर विकास के लिये उत्साह न रहेगा । यह आशंका उन अस्थिर मति वाले क्षणिक बुद्धि लोगों के लिये ही की जाती है जो आवेश में या नशा पीकर ही कुछ कर सकते हैं । विवेकशील अपने जीवन को एक क्रमबद्ध व्यवस्था के रूप में विनिर्मित करते हैं । वे जानते हैं कि असन्तुलित खिन्न और उद्विग्न मन होना एक प्रकार की रुग्ण अवस्था है । जिसमें कुछ कर सकना तो दूर, ठीक तरह सोच सकना भी कठिन होता है । झुँझलाहट, खीज, परेशानी और उद्वेग की स्थिति में मस्तिष्क उलटे ही विचार करता है, उतावला होता है, विपत्ति को बढ़ा-चढ़ा कर सोचता है, दूसरों पर दोषारोपण करता है, अपने भाग्य को कोसता है, भविष्य में भयंकर विपत्ति की आशंका करता है, और सब छोड़ कर कहीं भाग जाने या आत्महत्या करने जैसी ऊटपटांग बातें सोचता है । कभी-कभी वह अपने भयंकर कल्पना चित्रों का दोष किसी दूसरे पर मढ़ कर उस पर ऐसे आक्रमण कर बैठता है जिसके लिये पीछे पश्चाताप ही हाथ रहे ।

सन्तोष बढ़ कर इन उपर्युक्त परिस्थितियों में ही जा पहुँचता है और शारीरिक एवम् मानसिक स्वास्थ्य को बुरी तरह नष्ट कर देता है । यह एक मानसिक रोग है, आन्तरिक उत्पात है, इससे बचने में ही कल्याण है । जो लोग सोचते हैं कि असन्तोष से प्रगति की आकांक्षा जाग्रत होती है, वे भूल करते हैं । प्रगति तो स्वस्थ आत्मा का स्वाभाविक चिह्न है । शान्त और सन्तुलित मस्तिष्क सदा प्रगति की बात सोचेगा और उसके लिये वह गतिविधि भी अपनावेगा जो सफलता की मंजिल पार करने में समर्थ होती है ।

हमें सन्तुष्ट रहना चाहिए । सन्तोष में ही शांति है । आज जो उपलब्ध है उसके लिए ईश्वर को अनेक धन्यवाद देना और उसके लिए पूर्ण रूप से प्रसन्न रहना ही हर विवेकशील के लिए उचित है । जिन्हें हमसे कम मिला है, उनकी तुलना में अधूरे साधन एवं घटिया वस्तुओं के होते हुए भी हम भाग्यशाली हैं । इस अपने सौभाग्य पर हमें क्यों प्रसन्न नहीं होना चाहिए ? क्यों सन्तोष नहीं करना चाहिए ? यदि सुखी रहने की इच्छा है तो सन्तोष को अपने स्वभाव में सम्मिलित करना पड़ेगा और भी अधिक उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त करने के लिये हम प्रयत्न करें, यह उचित है, पर इसके लिये खिन्न या असन्तुष्ट होने की आवश्यकता नहीं है, यह कार्य तो सन्तुष्ट और प्रसन्न मन से ही सुविधा पूर्वक हो सकता है ।

अकारण दुःखी न रहा कीजिए

जीवन में अनुभव किये जाने वाले सुख-दुःख मनुष्य की मानसिक स्थिति पर निर्भर करते हैं, हालाँकि अधिकाँश लोग बाह्य परिस्थितियों को अपने सुख-दुःख का कारण मानकर उन्हें कोसा करते हैं या सराहना करते रहते हैं लेकिन इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि सुख-दुःख मुख्यतया मनुष्य की अपनी मानसिक स्थिति का ही परिणाम है । एक-सी परिस्थितियों में एक व्यक्ति सुखी रहता है तो दूसरा दुःख अनुभव करता है । शास्त्रकार ने कहा है ।

तमेव विषयं प्राप्य-सुख-दुःखे ततो नृणाम् ।
मनोऽवस्थितिभेदेन जायेते इति दृश्यते ।।

"मन ही सुख-दुःख का कारण है इसीलिये ऐसा देखा जाता है कि एक ही विषय को पाकर मन के अवस्था-भेद से लोग सुख-दुःख अनुभव करते रहते हैं ।"

अस्वस्थ मनोवृत्ति के अन्तर्गत अपने अज्ञान एवं अविवेक, नासमझी से सुख के क्षणों का भी हम लाभ नहीं उठा पाते वरन् खुशी में भी दुःख का मातम मनाते रहते हैं । कई बार तो असन्तुलित मन तनिक-सी परेशानी न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होते हुए भी काल्पनिक परेशानियों का ऐसा ताना-बाना बुन लेता है जिसमें जीवन की सम्भावनायें अस्त-व्यस्त हो जाती हैं । इतना ही नहीं सुख के क्षणों को भी हम गँवा बैठते हैं ।

बाह्य परिस्थितियों को ही यदि आधार बनाया जाय तो भी ऐसा कभी नहीं होता कि किसी व्यक्ति के जीवन में दुःख ही दुःख आये और किसी को सुख ही सुख मिले । जगत में सन्तुलन कायम रखना प्रकृति की विशेषता है । वह किसी को सुख साधनों से युक्त करती है तो उतने ही अनुपात में दुःख का कारण भी जोड़ देती है । प्रकृति के नियमानुसार प्रत्येक व्यक्ति का जीवन सुख और दुःख के दो पहियों पर चलता है । जिसके जीवन में दुःख की घड़ियाँ आती हैं तो उसके साथ कुछ ऐसी परिस्थितियाँ भी पैदा हो जाती हैं, जिन पर मनुष्य सन्तोष, शान्ति, प्रसन्नता की साँस ले सके।

अति-सुख या अति-दुःख मनुष्य का अपनी ही अस्वस्थ मनोवृत्ति का परिणाम है । अपने दुःख या अपने सुख में हम एकाकी भाव से इतने डूब जाते हैं कि दूसरे पक्ष का तनिक भी विचार नहीं कर पाते ।

कई बार तो मनुष्य को अपने सुख, सफलता, प्रसन्नता के क्षणों में भी भय होने लगता है, अपनी असन्तुलित मनोवृत्ति के कारण । किसी भी परिस्थिति से प्राप्त अति सुख के समय भी हमारे मन में कई तरह के भय, शंकायें, उठ खड़ी होती हैं और सुख के क्षणों को हम दुःख में परिवर्तित कर लेते हैं । अपनी इच्छानुसार सुस्वादु भोजन पाकर भी कई लोग अपनी स्वाद लोलुपता, अथवा पेटू कहलाने की आशंकाओं से ग्रस्त होकर परेशानी में पड़ जाते हैं । कई व्यक्ति परम्परा और संकोच की भावनाओं से ग्रस्त होकर अपने सुखी दाम्पत्य जीवन का भी लाभ नहीं उठा पाते । कई साधन सम्पन्न व्यक्ति मन की शंकाओं के कारण सुविधायुक्त जीवन भी नहीं बिता पाते । गलत, नीति और दुराचरण की विकृत कल्पनाओं से प्रेरित होकर मनुष्य दूसरे के सुख, वर्चस्व से भी दुखी होने लगता है । दूसरे की सफलता, उन्नति से परेशान होता है, नाक-भौं सिकोड़ता है । यह सब मनुष्य की अस्वस्थ और असन्तुलित मनोवृत्ति का कारण है । दुःख सुख की व्याख्या इसी मनोवृत्ति का परिणाम है ।

दुःख अपने आप में कुछ भी नहीं है न इसका कारण कोई परिस्थिति विशेष ही है । हमारी मनोभावनायें, मानसिक स्थिति ही जीवन में अनुभव होने वाले छोटे से लेकर बड़े दुःख का कारण है । हमारे अपने अन्दर ही अपने व्यक्तित्व के पर्दे में ही दुःख की भयावनी तस्वीर छिपी रहती है ।

दुःख का मूल आधार मनुष्य के अपने नकारात्मक विचार होते हैं । रचनात्मक, विधेयक विचार मनुष्य में बड़े परिश्रम और लम्बे अभ्यास के बाद परिपक्व होते हैं । किन्तु नकारात्मक मनोभूमि मनुष्य की सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति का परिणाम है, जिसके कारण मनुष्य में चिन्ता, परेशानी, क्लेश, भय, निराशा, हीनता अवसाद के भावों का विस्तार होता है और ये ही दूषित भाव मनुष्य के दुःख का आधार बनते हैं । बाह्य परिस्थितियों के अनुकूल और सुख साधनों से सम्पन्न होकर नकारात्मक मनोभूमि का व्यक्ति दुःख ही अनुभव करता है । इतना ही नहीं वह सुख आनन्द के अवसरों का भी लाभ नहीं उठा पाता । इस तरह जीवन में कभी दुःखों से छुटकारा नहीं मिल पाता ।

जीवन पथ पर आगे बढ़ने के लिए हमें स्वस्थ सबल, रचनात्मक मनोभूमि की अत्यन्त आवश्यकता है । इसके बिना हम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकेंगे प्रत्युत हमारा असन्तुलित मन ही हमारे विनाश का कारण बन जायगा । इसके लिए आत्म-निरीक्षण द्वारा अपने मनोविकारों को समझा जाय। अपनी मनोभूमि का पूरा-पूरा निराकरण किया जाय । जो भी नकारात्मक विचार हों उनसे पूर्णतया मुक्त होने का प्रयत्न किया जाय । स्मरण रहे आत्म-निरीक्षण की प्रक्रिया इतनी गम्भीर भी न हो जिससे जीवन के अन्य अंगों की उपेक्षा होने लगे । केवल अपने बारे में ही सोचते रहना, अपने व्यक्तित्व में घुसकर ही ताना-बाना बुनते रहना भी आगे चलकर मानसिक दोष बन जाते हैं । आवश्यकता इस बात की है कि अपनी मनोविकृति के बारे में गम्भीरता से सोचा जाय और फिर उसे सुधारने मे तत्परतापूर्वक लग जाया जाय ।

नकारात्मक विचारों को हटाकर रचनात्मक, विधेयक दृष्टिकोण अपनाने पर दुःखदायी परिस्थितियाँ भी मनुष्य के लिए सुखकर परिणाम पैदा कर देती हैं । वस्तुतः स्वस्थ मनोवृत्ति का व्यक्ति सुख और आनन्द को ही जीवन का सर्वस्व नहीं मानता । एक सीमा तक इन्हें उपयोगी भी माना जा सकता है ।

स्वस्थ मनोवृत्ति का मनुष्य दूसरों के सुख, आनन्द से प्रसन्नता अनुभव करता है । वह दूसरों को सुखी देखकर अधिक सन्तोष अनुभव करता है । जीवन के प्रति सरस और सजीव दृष्टिकोण अपनाने के कारण अपनी कठिनाइयों से भी बहुत कुछ सीखता है और उन्हें एक उग्र अध्यापक मात्र मानकर स्वागत भी करता है ।

यदि हमारा मानसिक संस्थान रचनात्मक, स्वस्थ एवं सबल हो तो ऐसा कोई क्षण नहीं होता जिसमें हमें दुःखी रहने का अवसर मिले । सारा जगत एक चमत्कार और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रसन्नता का स्रोत है हमारे लिए, विशाल नीला आकाश, उड़ते-फुदकते कलरव करते पक्षी, धरती पर फैली हरियाली, छोटे-छोटे बच्चों के खेल, सुन्दर, पुष्प, मित्र सगे सम्बन्धियों का प्रेम आदि अनेक सुख स्रोत धरती पर मौजूद हैं । इतना ही नहीं दुःख और कठिनाइयों में सुख की खोज की जा सकती है यदि हमारा दृष्टिकोण उत्कृष्ट एवं विधेयक हो । सारा जीवन ही सरस, सजीव और उत्साह का स्रोत है धरती पर । हम कितना सुख या आनन्द प्राप्त कर सकते हैं यह हमारे अपने ही दृष्टिकोण पर निर्भर करता है ।

स्वस्थ मानसिक स्थिति में सुख और आनन्द की सीमा मनुष्य के निजी व्यक्तित्व तक सीमित नहीं रहती । वह अकेला सुख अनुभव नहीं कर सकता । दूसरों को सुखी, प्रसन्न देखकर भी उसे आनन्द मिलता है । इसलिये ऐसे लोग अपने सुख आनन्द तक ही सीमित न रहकर दूसरों को भी सुखी बनाने का प्रयत्न करते हुए सन्तोष अनुभव करते रहते हैं ।

जो जीवन से प्यार करता है, उसे ही जीवन का रस और आनन्द का वरदान मिलता है । उसे ही स्वास्थ्य, बल, लोकप्रियता मिलती है जो जीवन से दोस्ती का हक अदा करता है, सुख और आनन्द उनका स्वागत करते हैं, उनसे लिपटे रहते हैं जिनकी मनोभूमि रचनात्मक, विधेयक रहती है । निराशा, कुढ़न, चिन्ता, क्लेश, ईर्ष्या, अवसाद भावावेश जहाँ घर किए बैठे रहते हैं वहाँ से सुख, शान्ति, आनन्द सदैव दूर ही रहते हैं ।

सुख-दुःख हमारे अपने ही पैदा किए होते हैं । हमारी अपनी मनोभूमि का परिणाम है । हम अपनी मनोभूमि परिष्कृत करें, विचारों को उत्कृष्ट और रचनात्मक बनायें भावनायें शुद्ध करें, इसी शर्त पर जीवन हमें सुख शान्ति, प्रसन्नता आनन्द प्रदान करेगा अन्यथा वह असन्तुष्ट और रूठा हुआ ही बैठा रहेगा और अपने लिए आनन्द के द्वार सदैव बन्द रखे रहेगा ।

दुःखी रहना शैतान का काम

सन्त फ्रांसिस का कथन है, "दुःखी रहना शैतान का काम है ।" इस कथन का तात्पर्य इसके सिवाय और क्या हो सकता है कि दुःखी रहना मानवीय प्रवृत्ति नहीं है । यह एक निकृष्ट प्रवृत्ति है जो मनुष्य को शोभा नहीं देती । तथापि, अधिकतर लोग दुःखी ही दिखाई पड़ते हैं ।

अब प्रश्न उठता है कि जब दुःखी रहना मानवीय प्रवृति नहीं हैं, तब आखिर मनुष्य दुःखी क्यों रहते हैं ? क्या कोई ऐसी अदृश्य शक्ति है जो मनुष्य को उसकी प्रवृत्ति के विरुद्ध दुःखी रहने को विवश करती है ?

इस विषय में एक नहीं अनेक ऐसे प्रश्न और शंकायें उठ सकती हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि कोई बाह्य कारण अथवा अदृश्य शक्ति मनुष्य को दुःखी नहीं रखती है, मनुष्य अपने स्वयं के अज्ञान और दुर्बलता के कारण, अकारण ही दुःखी रहता है । वैसे न सुख का और न दुःख का, अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व है । ये मनुष्य की अपनी निर्बल अनुभूतियाँ ही हैं जो सुख-दुःख के रूप में आभासित होती हैं ।

अदृश्य शक्ति को इस प्रसंग के बीच से निकाल ही दिया जाये, यही ठीक होगा । क्योंकि अदृश्य शक्ति तटस्थ और निरपेक्ष शक्ति होती है । वह चेतना प्रदान करने के सिवाय मनुष्य के जीवन में अधिक हस्तक्षेप नहीं करती । उसको इस प्रसंग में खींच लाने पर मानवीय धरातल पर सुख-दुःख और उसके कारणों का विवेचन कर सकना कठिन हो जायेगा ।

दुःख का एक स्थूल-सा कारण है वांछा का विरोध । जो हम चाहते हैं उसको न पा सकने पर जो क्षोभ अथवा निराशा होती है वही दुःख रूप में अनुभव होती है । मनुष्य को समझना चाहिए कि सभी वांछायें कभी पूरी नहीं होती, वांछायें वे ही पूरी होती हैं जो उचित और उपयुक्त होती हैं। किन्तु अज्ञानी व्यक्ति इसका विचार न कर अपनी वांछायें बढ़ाते चले जाते हैं कि वे सब बिना विरोध के पूरी होती रहें । ऐसे आदमी यह नहीं सोच पाते कि इस संसार में और दूसरे लोग भी हैं । उनकी भी अपनी कुछ वांछायें होती हैं, जिनकी पूर्ति का अधिकार उन्हें भी है । यदि किसी एक की ही सारी वांछायें पूरी होती रहें तो क्या दूसरे लोग अपनी वाँछा पूर्ति के अधिकार से वंचित रह जायेंगे ? किसी एक की सारी वांछायें पूरी होती रहें यह सम्भव नहीं ।

किन्तु स्वार्थी मनुष्य जिनको केवल अपनेपन का ही ध्यान रहता है इस न्याय पर ध्यान नहीं दे पाते । उन्हें अपना स्वार्थ, अपना हित और अपना लाभ ही दीखता रहता है । दूसरों के हित अहित, हानि-लाभ से जैसे कोई मतलब ही नहीं रखते । ऐसे संकीर्णमना व्यक्तियों का दुःखी रहना स्वाभाविक ही है । वे स्वार्थ पूर्ण वांछायें करते ही रहेंगे वे असफल और अपूर्ण होती रहेंगी, उनके मन में क्षोभ और निराशा उत्पन्न होगी और जिसके फलस्वरूप वे दुःख अनुभव ही करते रहेंगे । इस क्रम में न बाधा आ सकती है और न व्यवधान ।

ऐसे संकीर्ण, स्वार्थी, लिप्सु और हीन-भावना वाले किसी भी व्यक्ति से मिल कर, फिर चाहे वह अमीर हो या गरीब, सम्पन्न हो अथवा अभावग्रस्त पढ़ा हो अथवा अनपढ़ हो, स्त्री हो या पुरुष मालूम किया जा सकता है कि क्या वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने में जरा भी सुखी है ? निश्चय ही वह दुःखी ही निकलेगा । विश्वासपूर्वक पूछने पर वह बतलायेगा कि वह बहुत दुःखी है, संसार उसे क्लेशों से परिपूर्ण विदित होता है । निश्चय ही ऐसे लोगों के दुःख का कारण उनकी हीन और स्वार्थपूर्ण भावनायें ही होती हैं । दुःख दुर्भावनाओं के कारण होता है । दुर्भावना रखने वाला शैतान ही तो माना गया है, इसलिए महात्मा फ्रांसिस ने कहा है, "दुःखी रहना शैतान का काम है ।"

दुःख के कुछ मनोवैज्ञानिक कारण भी हैं । उसमें से एक सम्वेदनशीलता भी है । यों तो सामान्य रूप में सम्वेदनशीलता एक गुण है किन्तु जब यह औचित्य की सीमा से परे निकल जाती है तब दुर्गुण बन जाती है जिसका परिणाम दुःख ही होता है । अति सम्वेदनशील व्यक्ति का हृदय भावुकता के कारण बड़ा निर्बल हो जाता है । वह यथार्थ दुःख तो दूर काल्पनिक दुःखों से भी व्यग्र एवम् व्याकुल होता रहता है । इस क्षण-क्षण बदलते रहने वाले संसार का एक साधारण-सा थपेड़ा ही उन्हें व्याकुल कर देने के लिये बहुत होता है । क्षण-क्षण परिवर्तित और बनने बिगड़ने वाले पदार्थ, परिस्थितियों और संयोगों के प्रभाव से सुरक्षित रह सकना उनके वश की बात नहीं होती । उन्हें संसार की एक नगण्य सी परिस्थिति झकझोर कर रख देती है और वे क्षुब्ध होकर दुःख अनुभव करने लगते हैं ।

इस प्रकार के सम्वेदनशील व्यक्ति भावुकता के कारण अपनी ही एक काल्पनिक दुनियाँ बनाए और उनमें ही विचरण करते रहते हैं । विशेषता यह है होती है कि उनकी वह काल्पनिक दुनियाँ इस यथार्थ संसार से सर्वथा भिन्न होती है । होना भी चाहिए यदि उनका संसार इस संसार से भिन्न न हो तो उसके बनाने का प्रयोजन ही क्या रह जाता है ? इस भिन्नता के कारण इस यथार्थ संसार और उनकी काल्पनिक दुनियाँ में टकराव पैदा होता रहता है । कमजोर एवं निराधार होने से उसकी दुनियाँ टूटती है, जिसके शोक में वे दुःखी और व्यग्र होते रहते हैं । यदि मनुष्य भावुकता का परित्याग कर, यथार्थ के कठोर धरातल पर ही रहे उसी के अनुसार व्यवहार करे, हर तरह की आने वाली परिस्थिति को संसार का स्वाभाविक क्रम समझकर खुशी-खुशी स्वागत करने को तत्पर रहे तो वह बहुत कुछ दुःख के आक्रमण से अपनी रक्षा कर सकता है ।

अज्ञान को तो सारे दुःखों का मूल ही माना गया है । मनुष्य को अधिकांश दुःख तो उसके अज्ञान के कारण ही होते हैं । सुख-दुःखों के विषय में यदि मनुष्य का अज्ञान दूर हो जाये तो वह एक बड़ी सीमा तक दुःखों से छुटकारा पा सकता है । सुख-दुःख का अपना कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है । उनका अनुभव भ्रम अथवा अज्ञान के कारण ही होता है । यदि मनुष्य एक बार यह समझ सके और विश्वास कर सके कि सुख-दुःखों का सम्बन्ध किन्हीं वाह्य परिस्थितियों से नहीं है, यह मनुष्य की अपनी अनुभूति विशेष के ही परिणाम होते हैं तो शायद वह उनसे उतना प्रभावित न हो जितना कि होता रहता है । मनुष्य की मान्यता, कल्पना, अनुभूति विशेष और उसकी अपनी मानसिक अवस्था से सुख-दुःख का जन्म होता है । यदि इन अवस्थाओं में अनुकूल परिवर्तन लाया जा सके तो दुःख से छूटने की सम्भावना कोई काल्पनिक बात नहीं है । यदि मनुष्य के दुःखों का सम्बन्ध परिस्थितियों से होता तो उनका प्रभाव सब पर एक समान ही पड़ना चाहिए ! किन्तु ऐसा होता नहीं है । जिन एक तरह की परिस्थितियों में कोई एक दुःख और शोक का अनुभव करता है, उन्हीं परिस्थितियों में दूसरा हर्षित और प्रसन्न होता है ।

दुःख का आधार अपनी अनुभूति विशेष को न मान कर किन्हीं वाह्य परिस्थितियों को मानना अज्ञान है । इस अज्ञान को दूर किये बिना यदि कोई चाहे कि दुःख से छुटकारा हो जाये तो यह सम्भव न होगा । अनुकूल परिस्थितियों में हर्षातिरेक के वशीभूत हो जाना और प्रतिकूलताओं में रोने-झींकने का स्वभाव स्वयं एक अज्ञान है । इससे मनुष्य का मस्तिष्क असन्तुलित सा हो जाता है । यह यथार्थ से हटकर अधिकतर भ्रम में ही भटकता और ठोकरें खाता रहता है । उसके ठीक समझने और मूल्यांकन करने की क्षमता नष्ट हो जाती है । वह किसी बात में ठीक-ठीक यह नहीं समझ पाता कि जिन बातों में मैं दुःख मना रहा हूँ वह दुःख के असन्तुलित स्थिति में मनुष्य गलत-सलत सोचता और वैसा ही व्यवहार करता है, जिससे दुःख का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है ।

दुःख के कारणों में आशक्ति भी एक बड़ा कारण है । यहाँ पर आसक्ति का एक मोटा-सा अर्थ यह लिया जा सकता है- अत्यधिक अपनेपन का लगाव । जिन बातों में अत्यधिक लगाव होता है, उनको सर्वथा अपने अनुकूल रखने की कामना रहती है । किन्तु किसी भी वस्तु अथवा व्यक्ति को हर स्थिति में सर्वथा अपने अनुकूल रख सकना सम्भव नहीं होता । वे अपनी गति में कभी किसी समय भी विपरीत दिशा में घूम सकती हैं । ऐसी दशा में उनके प्रति अत्यधिक अपनत्व के कारण दुःख की अनुभूति से बचा नहीं जा सकता। यदि वस्तुओं और व्यक्तियों का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार किया जा सके और उन्हें सर्वथा अपने अनुकूल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखने की इच्छा का त्याग किया जा संके तो कोई कारण नहीं कि व्यर्थ में अनुभव होने वाले बहुत से दुःखों का सामना करना पड़े ।

ऐसे लोग जो संसार नाटक के पट परिवर्तन से जल्दी प्रभावित नहीं होते दुःखों के आक्रमण से बचे रहते हैं । कामनाओं की पूर्ति के समय उल्लसित हो उठने और आपूर्ति के समय मलीन मन हो जाने का यदि अपना स्वभाव बदला जा सके तो दुःखों के बहुत से कारण आप से आप ही नष्ट हो जायें । यदि संसार में उदार गम्भीर और यथार्थ जीवन लेकर चला जा सके और आसक्ति के साथ अत्यधिक सम्वेदना को संक्षेप किया जा सके तो हमारी मनोभूमि निश्चय ही इतनी दृढ़ और परिपक्व हो सकती है कि उस पर सुख-दुःख की कोई प्रतिक्रिया ही न हो ।

''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वेसन्तु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुखभाग्भवेत्''-- का ऋषि सिद्धान्त लेकर चलने वालों को संसार में किसी प्रकार का दुःख शेष नहीं रह जाता । इस सार्वभौमिक भाव से मनुष्य की स्वार्थपूर्ण संकीर्णता विस्तृत एवं व्यापक हो जाती है । वह अपने को पीछे रख कर दूसरों के लिए सोचता है, दूसरों के लाभ के लिए काम करता है और दूसरों के कल्याण के लिए जीता है । हृदय में जब अपनत्व का स्थान सर्वस्व ले लेता है तो मनुष्य की अनुभूतियाँ भी उसकी नहीं रह जातीं । वह दूसरे के दुःख से दुःखी और दूसरे के सुख से सुखी होने लगता है । ऐसी दशा में पर दुःख से कातर मनुष्य को उस कष्ट उस क्लेश में भी एक आध्यात्मिक सुख सन्तोष मिला करता है । अपने को समष्टि में मिला देने पर तो दुख का सर्वथा अभाव ही हो जाता है ।

तथापि बहुत से लोगों को यह प्रक्रिया कठिन तथा दुरूह दिखलाई दे सकती है उनकी मनोभूमि इस योग्य न होना कोई बहुत बड़ी बात ही है । ऐसा हो सकता है । अस्तु मध्यम मनोभूमि वाले व्यक्तियों को मध्यम मार्ग का अवलम्बन ले ही लेना चाहिए । वह मध्यम मार्ग इस प्रकार का हो सकता है । अपनी स्थिति, शक्ति और अधिकार सीमा में रहकर वाँछायें की जायें उन्हें पूर्ण करने का प्रयत्न किया जाये । फिर भी यदि उनमें से कोई अपूर्ण रह जाये तो इसे संसार की एक साधारण प्रक्रिया मानकर सन्तोष किया जाये। अनुकूल एवं प्रतिकूल दोनों अवस्थाओं में तटस्थ रहकर अपना कर्त्तव्य किया जाये और किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति आसक्ति रखकर कोई अपेक्षा न की जाये दुःख से बचने का यह मध्यम उपाय ऐसा नहीं है जो साधारण मनोभूमि वालों के लिए कठिन हो ।

सामान्य मध्यम अथवा उच्च जो भी उपाय किया जा सके । दुःख से बचने के लिये करना ही चाहिए, क्योंकि दुःखी रहना शैतान का काम है, मनुष्य का नहीं । हमारे लिए मानवोचित रीति-नीति अपना कर ही चलना बुद्धिमानी भी है और कल्याणकारी भी ।

दुःख से छुटकारा कैसे मिले ?

देखने में आता है कि सुख-स्वास्थ्य, दूध पूत, धन-दौलत, यश-मान सभी कुछ होते हुए भी अधिकाँश व्यक्ति दुःखी रहते हैं । कोई विरले व्यक्ति होंगे, जो परिवार के कीचड़ में फँस कर भी कमल की तरह उससे अलिप्त और अप्रभावित रहते हों । तब क्या नानकजी की यह वाणी सत्य है कि 'नानक दुःखिया सब संसार ।' किसी ज्ञानी ने सुख की परिभाषा इन शब्दों में की है-- "इस सृष्टि में दुःख ही दुःख व्यापक है । दुःख के अभाव को ही सुख कहना उचित होगा ।"

तब तो यह मानकर ही चलना अधिक कल्याणकर होगा कि सुख तो दो दिन का साथी है असल में दुःख ही चिरसंगी है । इस चिरसंगी के साथ जो व्यक्ति समझौता करना जानता है, उसे दुःख गहराई तक प्रभावित नहीं कर पाता । मनुष्य जीवन की सार्थकता इस सांसारिक रगड़े-झगड़े से ऊपर उठने में है, नहीं तो ये आप पर हावी हो जायेंगे । आपको पराजित कर आपकी आत्मिक शक्ति को मरोड़कर रख देंगे ।

दुःख के मूल कारण माने जाते हैं अभाव, प्रियजन की मृत्यु, बीमारी, कुरूपता, शारीरिक बल की कमी, प्रेम में असफलता, ईर्ष्या, घृणा और घर की बातें ।

उपर्युक्त परिस्थितियों में प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूति विभिन्न प्रकार से हो सकती है । किसी व्यक्ति के लिए अभाव का मतलब है जीवन की जरूरतों को पूरा करने के साधनों की कमी । सन्तोषी मनुष्य भगवान से केवल इतना ही माँगकर सन्तुष्ट है कि--

साईं इतना दीजिए, जामें कुटुम्ब समाय ।
मैं भी भूखा ना रहूँ, अतिथि ना भूखा जाय ।।

जबकि ठीक इसके विपरीत ऐसे लोग भी हैं कि सब कुछ पाकर भी तृष्णा के शिकार बने रहते हैं । उनकी 'हाय और, हाय और, की पुकार कभी बन्द ही नहीं होतीं । दुर्बल हृदय व्यक्ति को यदि जरा-सा जुकाम भी हुआ या ९९ डिग्री भी बुखार हुआ तो वह दिन में दस बार अपनी नब्ज देखेगा और इसी चिन्ता में परेशान रहेगा कि शायद अब उसे निमोनिया होने जा रहा है, जबकि दूसरों की चिन्ता में रत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परोपकारी व्यक्ति अपना दुःख दर्द भूलकर बीमारी और अभावों में भी सेवा कार्य करते देखे गए हैं । जीवन में असफलता दृढ़ निश्चयी को आगे बढ़ने की प्रेरणा देगी, जबकि एक निराशावादी को जीवन में मामूली-सी असफलता भी आत्मसात करने की हद तक पागल बना सकती है ।

इससे यह प्रमाणित होता है कि प्रतिकूल परिस्थितियों को हम वास्तव में दुःख का कारण नहीं कह सकते । असल में यह प्रत्येक मनुष्य की अपनी-अपनी समझ, परख और जीवन के प्रति दृष्टिकोण है, जो कि अभाव, असफलता और प्रतिकूल परिस्थितियों को दुःख की संज्ञा देता है । अब देखना यह है कि क्या धन-दौलत, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, सन्तान, भोग-विलास आदि मनुष्य के जीवन को सुख, शान्ति और सन्तोष से भर देने में समर्थ हैं ? क्या इनके द्वारा दुःखों से छुटकारा मिल सकता है ?

कर्मशील व्यक्ति के लिए तो धन हाथ का मैल है । उसको यदि कार्य में सफलता मिलती है तो यही उसका पुरस्कार है । हाँ, मेरा बैंक-बैलेंस दिन पर दिन बढ़ रहा है और मेरा परिश्रम धन के रूप में साकार हो रहा है यह जान कर चाहे उसे आत्म-सन्तुष्टि हो, पर क्या वह स्वअर्जित अपार धन राशि को भोगने में खुद समर्थ है ? पुरुष पुरातन की वधू लक्ष्मी चंचला है । अगर धन बटता नहीं और उसे होनहार पुरुषार्थियों का संरक्षण प्राप्त नहीं होता तो वह जरूर नष्ट हो जाता है । धन मनुष्य को निर्दय, अधिकार से अन्धा और दंगी बना देता है । अमीरों और धनियों की अपनी मुसीबतें हैं हरदम उन्हें अपने धन की रक्षा की चिन्ता बनी रहती है । आगे इसको सँभालने वाला सुयोग्य वारिस होना चाहिए इसी चिन्ता में वे घुलते रहते हैं । निन्यानवे के फेर में पड़कर वे धन का सदुपयोग ही भूल जाते हैं । धन का बढ़ता हुआ ढेर ही उनके जीवन की चिन्ताओं का मूल कारण बन जाता है । धन साधन न होकर जीवन का ध्येय बनकर रह जाता है ।

अब लीजिये स्वास्थ्य को । इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'तन्दुरुस्ती हजार न्यामत है' और सुन्दर तथा सुडौल काया एक वरदान है, पर यह भी तो चिरस्थायी नहीं है । कई बूढ़े पंगु भी अपने में मस्त और सुखी पाये गये हैं जबकि बड़े-बड़े पहलवान, नौजवान और रूपगर्विता नारियाँ भी किसी रोग या दुर्घटना का शिकार होकर अपना महत्त्व खो बैठते हैं । सभी स्वस्थ पुरुष सुखी तो नहीं होते और न सभी आकर्षक सुन्दरियाँ पति की प्यारी ही होती हैं । जो वस्तु अपने को प्राप्य न हो उस ओर मनुष्य लपकता है । सुन्दरी युवती का पति भी दूसरी स्त्रियों के प्रति आकृष्ट होता देखा गया है ।

युवावस्था में मित्रता, घनिष्ठता, विश्वास और भावुकता मिलकर प्रेम का रूप लेते हैं । मैं किसी का हो जाऊँ किसी को अपना बना लूँ, यह लालसा प्रेमी को दीवाना बना देती है । प्रेमिका के बिना उसे दुनिया सूनी लगती है । उसको पाकर वह निहाल हो जाता है । पर थोड़े दिनों में जब प्रेम का खुमार उतर जाता है, तब वे प्रेमी-प्रेमिका का एक-दूसरे के दोषों की कटु आलोचना करते नहीं थकते । कभी-कभी यौवन का उन्माद प्रेम वासना की सुनहली गली को पार करके जब यथार्थता की भूमि पर से गुजरता है तो समझदार प्रेमी-प्रेमिकाएँ अपना सन्तुलन नहीं खोते । एक-दूसरे के गुणों की कद्र करते हैं । उनका प्रेम विश्वास और सहयोग का पुट पाकर गम्भीर और स्थायी हो जाता है । यह प्रेम की विजय न होकर उनकी समझदारी की जय होती है ।

प्रेम में ईर्ष्या या अधिकार की भावना ही दुःख का कारण बनती है । सच्चा प्रेम किसी व्यवसाय में लगाई हुई पूँजी नहीं हैं कि जिसके बदले में प्राप्ति दिनों दिन बढ़ती जाए, न वह फिफ्टी-फिफ्टी का सौदा ही है । यहाँ तो देने में ही सुख है । लेने का जहाँ हिसाब लगाने बैठे कि प्रेम दुःख का कारण बन जाएगा ।

लालसाओं का अन्त नहीं एक के बाद एक बढ़ती ही जाती हैं । जिस बात की पूर्ति इन्सान अपने जीवन में नहीं कर पाता, उसकी पूर्ति वह अपनी सन्तान के जीवन में देखना चाहता है । निस्सन्तान व्यक्ति अपने वंश की बेल को समाप्त होते देख अत्यन्त दुःखी होता है । उसे इस बात से सन्तुष्टि नहीं होती कि मनुष्य का नाम उसकी सन्तान से नहीं सुकर्मों से अमर होता है । सन्तान जहाँ नाम चलाती है, वहाँ डुबोती भी है । गृहस्थियों की अनेक चिन्ताओं का कारण सन्तान ही होती है । बच्चे का पालन पोषण, उसकी तरक्की के लिए अनेक साधन जुटाने का काम क्या कम परेशानी का है ? सन्तान के पीछे मनुष्य कितने प्रलोभनों और दुर्बलताओं का शिकार बनता है । उद्दण्ड और अनुशासन-हीन लड़के माँ-बाप की जिन्दगी को दूभर करके रख देते हैं । इसलिए निस्सन्तान व्यक्ति को इस पहलू से विचार करते हुये आत्म-सन्तोष करना चाहिए । अपनी सन्तान नहीं तो दूसरों के बच्चों को प्यार दुलार कर वे अपने मन को प्रसन्न कर सकते हैं । किसी गरीब, पर योग्य बालक को अपना कर अपना जीवन सरस बना सकते हैं ।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि कर्म करो पर फल की आशा मत करो । सुख पाने में नहीं त्यागने में है । सुख के पीछे बाबले होकर दौड़ने में नहीं, अपितु कर्मशील होकर दुःख और मुसीबतों से जूझने में है । यदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आप दुःख को जीत लेते हैं, उसे अपने पर हावी नहीं होने देते तो आप सुखी हैं । आसक्ति से दूर रहकर दूसरों के लिए जिओ । जो मनुष्य अपने परिवार को भूलकर दूसरों के लिए जीता है, उसी को जीने का सच्चा आनन्द मिलता है । माँ-बाप इसी प्रेरणा के वशीभूत होकर अपने बच्चों के लिए जीते हैं । उनकी सफलता, सुख और आनन्द में उन्हें सन्तोष मिलता है । इसी भावना को अधिक व्यापक बनाने का प्रयत्न करने से मनुष्य परिवार के दायरे से निकल कर समाजोपयोगी जीवन व्यतीत करने में समर्थ होता है । माया-मोह आर्थिक दृष्टिकोण, स्वार्थ, अर्थ प्रधान नीति मनुष्य को जहाँ एक ओर स्वार्थी बनाती है, उसकी वृत्ति को संकुचित करती हैं, वहाँ दूसरी ओर दुःख की अनुभूति को तीव्र भी कर देती है । मनुष्य परिस्थितियों का दास बन जाता है और जीवन के वास्तविक सौन्दर्य से भी अनजान रह जाता है । उसकी दिलचस्पी, प्रेम, त्याग और सहयोग का दायरा संकुचित हो जाता है ।

इन्सान दुर्बलताओं का पुतला है, वह परिस्थिति का दास बन जाता है इस तथ्य को स्वीकार करके मनुष्य को दूसरे को उदारता और सहानुभूति के साथ समझने की चेष्टा करनी चाहिए । आप जैसा व्यवहार अपने प्रति चाहते हैं, वैसा ही दूसरे के प्रति करें । अपने मन को टटोलें । यदि आपकी आत्मा आपको चेतावनी देती है, तो उसे सुनें । अपराधी और अन्यायी चाहे समाज से बच जाए पर आत्मा की कचोट उसे चैन से नहीं रहने देगी । अपने को धोखा देना ही सबसे बड़ा धोखा है । पछतावे की अग्नि बड़ी दारुण होती है । उसमें तपे बिना आत्मा पवित्र नहीं हो सकती ।

दूसरों से कुछ पाने में ही सुख नहीं है, देने में भी सुख है । किसी भूखे को खाना खिलाकर या किसी असहाय की मदद करके आपको जो आनन्द मिलता है, उसके आशीर्वाद से आपका जो आत्मिक बल बढ़ता है, वह कुछ कम नहीं है । "मैं भी दूसरों को सुखी बना सकता हूँ, मेरे सहयोग की किसी को अपेक्षा है" यह भरोसा आत्म-विश्वास पैदा करता है । जो इन्सान अपने को भूलकर दूसरों के लिए जीता है, उसको दुःख नहीं व्यापता । अधिकांश माताएँ और पत्नियाँ अपने बच्चों व पतियों के लिए बड़े से बड़ा दुःख सहने को तैयार रहती हैं । उन्हें अपने खाने-पीने या आराम की परवाह नहीं रहती । इसीलिये माता का दर्जा पिता से अधिक ऊँचा माना गया है ।

दुःख को जीतने के लिए हमें अपनी कमजोरियों को ही जीतना होगा । स्वार्थ, माया-मोह, ईर्ष्या, क्रोध, द्वेष आदि से ऊपर उठकर ही मनुष्य दुःख के शिकंजे से छुटकारा पा सकता है ।

अपूर्णता से पूर्णता की ओर

वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रगति कर अपने सुख सुविधाओं के साधन एकत्र कर लेना और उन्हें सुनियोजित ढंग से प्रयुक्त कर अपनी जीवन-यापन की पद्धति को ऊँचा उठा लेना मानवी पुरुषार्थ का ही कमाल है । उसने प्रकृति के रहस्यों को अपनी पैनी बुद्धि से खोजा और उनका उपयोग करने की विधा विकसित की, उसके लिए गत शताब्दियों के वैज्ञानिक उद्भव को श्रेय दिया जा सकता है । पर यही सब कुछ नहीं है । आत्मिकी के अनुशासन के अभाव में तो भौतिकी के उच्छृंखल होने के अवसर बढ़ जाते हैं । आत्मिकी अर्थात् अध्यात्म के सिद्धान्तों का सुख सुविधाओं के सुनियोजित उपयोग हेतु परिपालन । यह परिधि इतनी विशाल है कि व्यक्ति से लेकर विश्व-परिवार के प्रत्येक घटक को अपने अन्दर समाहित कर लेती है ।

अध्यात्म मनुष्य को जीवन जीने की विद्या का शिक्षण देता है । मानवी काया के समस्त यंत्रों तथा उपार्जित वैभव रूपी पुरुषार्थजन्य अनुदानों का दुरुपयोग किन परिस्थितियों को जन्म दे सकता है । इसका समग्र स्वरूप आत्मिकी की शिक्षाओं में देखने को मिल सकता है । अध्यात्म बताता है कि मनुष्य अपने उच्चस्तर से अपनी दुर्बलताओं के कारण ही अधःपतित होता है और दुःख, क्लेश भरा नरक भोगता है । मनुष्य को इस विश्व के साथ सम्पर्क बना कर सुखानुभूति प्राप्त करने के तीन उपकरण मिले हुए हैं । यदि वह उनका ठीक तरह उपयोग जान सके तो उसे पग-पग पर यह अनुभव हो कि यह संसार कितना सुन्दर और जीवन कितना मधुर है । इन तीन उपकरणों के नाम हैं । (१)अन्तरात्मा (२) मन (३) इंद्रिय समूह ।

इन्द्रियों की बनावट ऐसी अद्भुत है कि दैनिक जीवन की सामान्य प्रक्रिया में ही उन्हें पग-पग पर असाधारण सरसता अनुभव होती है । पेट भरने के लिए भोजन करना स्वाभाविक है । भगवान की कैसी महिमा है कि उसने दैनिक जीवन की शरीर यात्रा भर की नितान्त स्वाभाविक प्रक्रिया को कितना सरस बना दिया है । उपयुक्त भोजन करते हुए जीव को कितना रस मिलता है और चित्त को उस अनुभूति से कैसी प्रसन्नता होती है ।

आँख का साधारण काम है वस्तुओं को देखना ताकि हमारी जीवन यात्रा ठीक तरह चलती रह सके । पर आँखों में कितनी विचित्र विशेषता भर दी है कि वह रूप, सौन्दर्य,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कौतुक जैसी रस भरी अनुभूतियाँ ग्रहण करके चित्त को प्रफुल्लित बनाती हैं । संसार में उत्पादन, परिपुष्टि, विनाश का क्रम नितान्त स्वाभाविक है । मध्यवर्ती स्थिति में हर चीज तरुण और सुन्दर लगती है । क्या पुरुष क्या मनुष्य हर किसी को तीनों स्थितियों में होकर गुजरना पड़ता है । मध्यकाल सौन्दर्य लगता है । वस्तुतः यह तीनों ही स्थितियाँ अपने क्रम, अपने स्थान और अपने समय पर सुन्दर हैं । पर आँखों को सुन्दर असुन्दर का भेद करके मध्य स्थिति को सुन्दर समझने की कुछ विचित्र विशेषता मिली हैं । फलस्वरूप जो कुछ उभरता हुआ विकसित परिपुष्ट दीखता है सो सुन्दर लगता है । सुन्दर-असुन्दर का तात्विक दृष्टि से यहाँ कुछ भी अस्तित्व नहीं है पर हमारी विचित्र आँखें ही हैं जो अपनी सौन्दर्यानुभूति वाली विशेषता के कारण हमारे दैनिक जीवन से सम्बन्धित समीपवर्ती वस्तुओं में से सौन्दर्य वाला भाग देखतीं, आनन्द अनुभव करतीं, उल्लसित और पुलकित होती हैं । चित्त को प्रसन्न करती हैं ।

इसी प्रकार जननेन्द्रिय की प्रक्रिया है । प्रजनन मक्खी मच्छरों, कीट-पतंगों, बीज अंकुरों में भी चलता रहता है । यह सृष्टि का सरल स्वाभाविक क्रम है पर हमारी जननेन्द्रिय में कैसा अजीव उल्लास रसाबोर कर दिया है कि सम्भोग के क्षण ही नहीं, उसकी कल्पना भी मन के कोने-कोने में सिहरन पुलकन, उमंग और आतुरता भर देती है । तत्वतः बात कुछ भी नहीं है । दो शरीर के दो अवयवों का स्पर्श, इसमें क्या अनोखापन ? क्या निरालापन है ? क्या उपलब्धि है? फिर स्पर्श का कुछ प्रभाव हो भी तो उसकी कल्पना से किस प्रकार, क्यों, किस लिए चित्त को बेचैन करने वाली ललक पैदा होनी चाहिए ? बात कुछ भी नहीं है । मात्र जननेन्द्रिय की बनावट में एक अजीब प्रकार की सरसता का समावेश मात्र है जो हमें सामान्य स्वाभाविक दाम्पत्य जीवन के वास्तविक या काल्पनिक प्रत्यक्ष और परोक्षक्षेत्र में एक विचित्र प्रकार की रसानुभूति उत्पन्न करके जीने भर के लिये प्रयुक्त हो सकने वाले जीवन को निरन्तर उमंगों से भरता रहता है ।

ऊपर जीभ आँख और जननेन्द्रिय की चर्चा हुई, कान और नाक के बारे में इसी प्रकार समझना चाहिए । यहाँ कान वाला भाग इन्द्रिय समूह अपने साथ रसानुभूति की विलक्षणता इसलिए धारण किए हुए है कि सरस, स्वाभाविक सामान्य जीवन क्रम ऐसे ही नीरस ढर्रे का जीने भर के लिए मिला हुआ प्रतीत न हो वरन् उसमें हर घड़ी उत्साह, उल्लास, रस, आनन्द बना रहे और उसे उपलब्ध करते रहने के लिए जीवन की उपयोगिता, सार्थकता और सरसता का भान होता रहे । इन्द्रिय समूह हमें इसी प्रयोजन के लिए उपलब्ध है । यदि उनका उचित, संयमित, विवेकपूर्ण, व्यवस्थापूर्वक उपयोग किया जा सके तो हमारा भौतिक सांसारिक जीवन पग-पग पर सरसता, आनन्द उपलब्ध करता रह सकता है ।

दूसरा उपकरण मन इसलिए मिला है कि संसार में जो कुछ चेतन है उसके साथ अपनी चेतना का स्पर्श करके और भी ऊँचे स्तर की आनन्दानुभूति प्राप्त करे । इन्द्रियाँ जड़ शरीर से सम्बन्धित हैं । जड़ पदार्थों का स्पर्श करके उस संसर्ग का सुख लूटती हैं । जड़ का जड़ से स्पर्श भी कितना सुखद हो सकता है । इस विचित्रता का अनुभव हमें इन्द्रियों के माध्यम से होता है । चेतन का चेतन के साथ, जीवधारी का जीवधारी के साथ स्पर्श- सम्पर्क होने से मित्रता, ममता, मोह, स्नेह, सद्भाव, घनिष्ठता, दया, करुणा, मुदिता जैसी अनुभूतियाँ होती हैं । प्रतिकूल परिस्थितियों में द्वेष, घृणा जैसे भाव भी पैदा होते हैं पर उनका अस्तित्व है इसीलिए कि मित्रता के वातावरण में सम्पर्क, संसर्ग का आनन्द बिखरता रहे, यदि अन्धकार न हो तो प्रकाश की विशेषता ही नष्ट हो जाय । वस्तुतः मन की बनावट दूसरों के सम्पर्क, सहयोग, स्नेह भावों के आदान-प्रदान का सुख प्राप्त करने में है । मेलों-ठेलों में सभा सम्मेलनों में जाने की इच्छा इसीलिए उठती है कि उन जन संकुल स्थानों से व्यक्ति की घनिष्ठता न सही समीपता का अदृश्य सुख तो अनायास मिलता ही है ।

चूँकि इन्द्रिय सुख और जन सम्पर्क की घनिष्ठता में सहायक एक और नया माध्यम सभ्यता के विकास के साथ-साथ बनकर खड़ा हो गया है इसलिए अब प्रिय वह भी लगने लगा है इस तीसरे मनुष्य कृत आकर्षण तत्व का नाम है-- धन, धन में स्वभावतः कोई आकर्षण नहीं । इसमें इन्द्रिय समूह या मन को पुलकित करने वाली कोई सीधी क्षमता नहीं है । धातु के सिक्के या कागज के टुकड़े भला आदमी के लिये प्रत्यक्षतः क्यों आकर्षक हो सकते हैं। पर चूँकि वर्तमान समाज व्यवस्था के अनुसार धन के द्वारा इन्द्रिय सुख के साधन प्राप्त होते हैं । मैत्री भी सम्भव होती है । इसलिए धन भी प्रकारान्तर रूप से मन का प्रिय विषय बन गया । अस्तु, धन की गणना भी सुखदायक माध्यमों से जोड़ ली गई है ।

तीन शरीरों को जीवात्मा धारण किये हुए है । तीनों की तीन रसानुभूतियाँ हैं । ऊपर दो की चर्चा हो चुकी । स्थूल शरीर की सरसता-इन्द्रिय समूह के साथ जुड़ी हुई हैं । आहार, निद्रा, भय, मैथुन जैसे सुख इन्द्रियों द्वारा ही मिलते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । सूक्ष्म शरीर का प्रतीक मन है । मन की सरसता मैत्री पर, जन सम्पर्क पर अवलम्बित है । परिवार मोह से लेकर समाज सम्बन्ध, नेतृत्व, सम्मिलन, उत्सव, आयोजन जैसे सम्पर्क परक अवसर मन को सुख देते हैं । घटित होने वाली घटनाओं को अपने ऊपर घटित होने की सूक्ष्म सम्वेदना उत्पन्न करके वह समाज की अनेक हलचलों से भी अपने को बाँध लेता है और उन घटना क्रमों में खट्टी-मीठी अनुभूतियाँ उपलब्ध करता है । उपन्यास, सिनेमा, अखबार, रेडियो आदि मन को इसी आधार पर आकर्षित करते और प्रिय लगते हैं ।

तीसरा रसानुभूति उपकरण है– अन्तरात्मा । उसका कार्य क्षेत्र 'कारण शरीर' है । उसमें उत्कृष्टता, उत्कर्ष, प्रगति, गौरव की प्रवृत्ति रहती है जो उच्च भावनाओं के माध्यम से चरितार्थ होती है । मनुष्यता की श्रेष्ठता और सन्मार्गगामिता प्रखर होती रहे इसके लिए उसमें भी एक रसानुभूति विद्यमान है । उसका नाम है-- वर्चस्व, यश, कामना, नेतृत्व गौरव-प्रदर्शन । उस आकांक्षा से प्रेरित होकर मनुष्य अगणित प्रकार की सफलतायें प्राप्त करता है ताकि वह स्वयं दूसरों की तुलना में अपने आपको श्रेष्ठ, पुरुषार्थी, पराक्रमी, बुद्धिमान अनुभव करके सुख प्राप्त करे और दूसरे लोग भी उसकी विशेषताओं, विभूतियों से प्रभावित होकर उसे यश, मान, प्रदान करें ।

कारण शरीर के साथ एक तथ्य यह और जुड़ा है कि यदि इसे सही दिशा न मिले और विकृति की ओर मुड़ जाय तो अहंता, बड़प्पन की ललक, उद्दण्डता के रूप में इसकी परिणति हो सकती है । श्रेष्ठता सहज है, मानवी गरिमा के अनुरूप है परन्तु जन्म-जन्मान्तरों के कुसंस्कार जो मनुष्य के पल्ले बंधे रहते हैं । सतत संघर्ष हेतु उसे उत्तेजित करते हैं । उनके सामने माथा टेक देने वाले आत्मिक दृष्टि से उन्नति नहीं कर पाते, भ्रम में उलझकर अपनी दुर्गति और करा लेते हैं । कारण शरीर रसमय सम्वेदना का समुच्चय काया का एक अमूल्य उपकरण है । इसका सुनियोजनकर व्यक्ति देश भक्त, सुधारक, परमार्थ परायण, विभूतिवान बनता है । सत्प्रवृत्तियों के साथ सम्मान एवं यश तो सहज ही जुड़ा रहता है । ऐसे व्यक्ति छोटे-छोटे आकर्षणों एवं चाटुकारों की निन्दा प्रशंसा से प्रभावित न होकर स्वयं को सन्मार्ग गामी बनाए रखते हैं ।

जब भी कभी प्रयत्न पुरुषार्थ के साथ उच्चस्तरीय प्रयोजन जुड़ जाते हैं तो यही कारण शरीर कलाकारिता साहित्य, समाज सेवा, राष्ट्रभक्ति, दलितोत्थान, वैज्ञानिक शोध जैसे क्षेत्रों में मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ पद पर पहुँचा कर रहता है। अभी तक हुए महामानवों ने इसी स्तर की साधना की है व दैवी अनुग्रह उन पर लोक सम्मान और जन सहयोग के रूप में बरसा है । यश न पचाने वालों ने अब तक विश्व में सारी दुरभि सन्धियाँ रची हैं । सारे षड्यन्त्री-कलह द्वेष के मूल में अहं की विकृति ही मुख्य भूमिका निभाती। इन सभी में वे सभी विशेषताएँ विद्यमान थीं जो उन्हें ऋषि, देवदूत स्तर तक पहुँचा सकती थी लेकिन जीवन का एक भटकाव, शरीर के इस उपकरण को विकृत मोड़ मनुष्य को उस श्रेष्ठता से वंचित कर देता है जिसका कि वह श्रेयाधिकारी आसानी से बन सकता था । मानव का यह विश्लेषण उस स्तर तक करना इस कारण अभीष्ट भी है कि अगणित व्यक्ति अपने जीवन प्रवाह के हिचकोलों के मूल कारण को समझ नहीं पाते ।

संक्षेप में यह मनुष्य के तीन शरीरों की, तीन रसानुभूतियों की चर्चा हुई । हमारी अगणित योजनायें इच्छा, आकांक्षायें, गतिविधियाँ इन्हीं तीन मूल प्रवृत्तियों के इर्द-गिर्द घूमती हैं । जो कुछ मनुष्य सोचता और करता है उसे तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है । भगवान ने यह तीन उपहार जीवन को सरसता से भरा पूरा रखने के लिये दिये हैं । साथ ही उनका अस्तित्व इसलिए भी है कि व्यक्ति निरन्तर सक्रिय बना रहे । इन सुखानुभूतियों को प्राप्त करने के लिये उसके तीनों शरीर निरन्तर जुटे रहें ।

व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने वाली संकल्प शक्ति

भगवान ने मनुष्य को जहाँ अन्य प्राणियों की तुलना में अनेक शारीरिक मानसिक विशेषताएँ, साधनों की विशेषताएँ प्रदान की हैं वहाँ एक और भी विलक्षण अनुदान, संकल्प बल भी दिया है । इसकी सामर्थ्य अपार है । आत्म-सत्ता के अन्तराल में अगणित विभूतियाँ छिपी पड़ी हैं । इन्हें रहस्यमय कहा जा सकता है । सामान्य परिस्थितियों को चीरते हुए उन्नति के शिखर पर जा पहुँचना, अवरोधों से लड़ सकना, उपयुक्त साधनों को व्यक्तित्व के चुम्बकत्व द्वारा खींचने और जुटाने में सफल होना, असंख्यों का सम्मान सहयोग पा सकना यह परिष्कृत व्यक्तित्व के लिए बायें हाथ का खेल है । संकल्प बल ही है जो सन्मार्ग पर चल पड़े तो व्यक्तित्व को इतना ऊँचा उठा सकता है जिस पर देवता भी ईर्ष्या करने लगें ।

सदुद्देश्यों के लिए आगमन, पर्वत-शिखर पर चढ़ने के समान गौरवास्पद है, साथ ही कष्ट साध्य भी । उसमें सुसंस्कार और दिग्भ्रान्त जनसमाज पग-पग पर थकान उत्पन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करता है । जिस आधार पर यह साहसिक यात्रा सम्पन्न होती है उसे परिपक्व संकल्प ही कहा गया है । नेपोलेयन ने इसी के सहारे अजेय आल्पस पर्वत को सेना सहित पैदल पार करके संसार में अनोखा कीर्तिमान स्थापित किया था। शेरपा, तेनसिंह और हिलेरी ने संसार के सर्वोच्च पर्वत शिखर एवरेस्ट पर जा पहुँचने का दुस्साहस किया था और वहाँ अपनी विजय पताका फहराते हुए यह उद्घोष किया था कि इस संसार में कुछ भी ऐसा दुष्कर नहीं है जिसे संकल्प बल से निरस्त न किया जा सके ।

उदाहरण बताते हैं कि वाल्मीकि और अंगुलिमाल जैसे डाकू सन्त बने । किसी समय का क्रूर निर्दयी शासक अशोक जब बदला तो उसने धर्म चक्र के प्रवर्तन में मूर्धन्य भूमिका निबाही और बौद्ध धर्म को व्यापक बनाने में अपनी विभूतियों को लगा देने का अनोखा परिवर्तन सम्भव कर दिखाया किसी समय अनेक को भरमाने, गिराने वाली नगर वधू अम्बपाली व्रत लेकर परम साध्वी बनी और ऋषियों जैसे श्रद्धा के साथ सर्वत्र सराही गई । अजामिल, सदन आदि अनेक क्रूर कर्मियों के समय-समय पर ऐसे ही आन्तरिक कायाकल्प उनकी संकल्प शक्ति प्रस्तुत करती रही है । ऐसे असंख्यों काया-कल्प संकल्प शक्ति के सहारे ही सम्भव होते रहे हैं ।

असफलताएँ सिर्फ इतना बताती हैं कि सफलता पाने के लिए जो तत्परता बरती जानी चाहिए उसमें कहीं भी कोई कमी तो नहीं रह गई है । मनस्वी हारते नहीं, वे हर असफलता के बाद दूने साहस, चौगुने उत्साह के साथ अपने सुनिश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं । अब्राहम लिंकन चुनावों में १७ बार पराजित होने के उपरान्त ही राष्ट्रपति का चुनाव जीत पाये थे । निर्धन परिवार में जन्म होने के कारण उन्हें हर प्रकार की कठिनाइयाँ सहन करनी पड़ती थीं । फिर भी वे कभी निराश नहीं हुए । कठिनाइयों के साथ पग-पग पर संघर्ष करते हुए आगे ही बढ़ते चले गये, जार्ज वाशिंगटन अमेरिका के श्रद्धापात्र राष्ट्रपति माने जाते हैं, उनका जन्म से ही घोर गरीबी के साथ वास्ता पड़ा और प्रौढ़ बनने तक अपने ही पुरुषार्थ के सहारे क्रमिक विकास करने में संलग्न रह सके । अपने आप के अतिरिक्त और किसी का महत्त्वपूर्ण सहारा उन्हें मिल ही नहीं सका ।

भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया और उसे बिना किसी कठिनाई के पूरा कर दिखाया । गिराता शरीर नहीं मन है । मनोबल ऊँचा रहने पर न तो मानसिक दुर्बलताओं की दाल गलती है और न पशु प्रवृत्तियाँ ही सिर पर चढ़ बैठने का साहस करती हैं ।

भागीरथ को गंगावतरण अभीष्ट था । वे इसके लिए सतत् प्रयत्नशील रहने की तत्पर तपश्चर्या के सहारे उसे पूरा कर सकने में सफल हुए । शीरी का प्रेमी फरहाद भी ऊँची पहाड़ खोदकर लम्बी नहर खोद निकाल लाने में सफल हो गया था ।

जगत् गुरु शंकराचार्य की आरम्भिक परिस्थितियाँ ऐसी नहीं थीं जिनमें उसके द्वारा किसी बड़े उपक्रम की आशा की जा सके किन्तु वे अपनी प्रचण्ड प्रतिभा को समझते हुए जब किसी महान प्रयोजन में जुट गये तो उनके द्वारा किये गये महान कृत्यों से संस्कृति को एक नवीन दिशाधारा का लाभ मिल सका ।

सामान्य मनुष्य आदर्शों के प्रति आस्था दुर्बल होने के कारण अपनी कामुक दृष्टि पर अंकुश नहीं रख पाते, यदि आन्तरिक दृढ़ता के तत्व विद्यमान हों तो प्रलोभन और अवसर की कमी न रहते हुए भी मनुष्य इस प्रकार के पतन पराभव से अपने आप को सहज ही बचाये रह सकता है। बाधक परिस्थितियाँ नहीं मनःस्थिति होती है । अर्जुन ने उर्वशी के अनुचित प्रस्ताव को अमान्य ठहराते हुए उसके चरणों की धूलि मस्तक पर लगाते हुए उसे माता कुन्ती की तरह पूजनीय ठहराया था । शिवाजी ने भी अपने अधिकार में आयी युवती के प्रति मातृश्रद्धा व्यक्त की थी । गान्धारी ने वृद्ध और अन्ध पति के अतिरिक्त और किसी की ओर वासना दृष्टि न जाने देने के उद्देश्य से जन्म से आँखों पर पट्टी ही बाँधे रखी । ऐसी व्रतशीलता किसी भी विषम परिस्थिति में किसी भी व्रतधारी की चरित्र रक्षा कर सकने में पूर्ण समर्थ हो सकती है ।

कोलम्बस अपनी नाव लेकर सोने की चिड़िया समझे जाने वाले भारत को खोजने निकला और तभी समुद्र यात्रा की प्राण घातक चुनौतियों का सामना करते-करते अमेरिका को खोज निकालने में सफल हो सका । नैपोलयिन की आरम्भिक स्थिति और सफलताओं की महान उपलब्धियों के बीच केवल मनोबल का चमत्कार ही काम करता दृष्टिगोचर होता है । अन्धी, गूँगी, बहरी हेलन केलर का विद्या का मूर्तिमान भाण्डागार बन सकना सत्रह विश्वविद्यालयों से डॉक्टर का सम्मान दिला सकना, उसकी संकल्प शक्ति का ही चमत्कार है । इसके विपरीत साधन सम्पन्न छात्र भी असफलता का रोना रोते रहते हैं । इसमें अन्य कारण कम और मनोबल की दुर्बलता ही प्रधान अवरोध कर रही होती है ।

अंग्रेजी के विश्व-विख्यात साहित्यकार एच. जी. वेल्स की माता घरों में बर्तन माँजने की मजदूरी करके अपना और बच्चे का पेट पालती थी । ऐसे बालक का सामान्यतया कोई भविष्य नहीं होता किन्तु वेल्स ही थे जो अपने अदम्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्साह से शिक्षा प्राप्त करने के अवसर ढूँढ़ते रहे और उस प्रयास से चलते-चलते उच्चकोटि के साहित्यकार बन गये। वैज्ञानिक एडीसन की जीवन-गाथा भी लगभग वेल्स से ही मिलती-जुलती है । ढूँढ़ने पर देश-विदेश के ऐसे अगणित प्रमाण, उदाहरण अपने इर्द-गिर्द ही बिखरे मिल सकते हैं जिनमें आर्थिक, पारिवारिक, शारीरिक, सामाजिक कठिनाइयों से जूझते हुए मनस्वी लोगों ने अपने अभीष्ठ प्रयोजनों में इतनी बड़ी सफलता पाई है जिन्हें चमत्कार कहा जा सकता है । वस्तुतः संकल्प ही अपने प्रत्यक्ष जीवन का ऐसा देवता है जिसके वरदान का लाभ उठा सकना किसी के लिए भी सम्भव हो सकता है ।

सदुद्देश्य की पूर्ति के लिए आदर्शवादी जब आगे बढ़ते हैं तो उन्हें धीरे-धीरे दूसरे सज्जनों की सहायता भी मिलती चली जाती है । इस तथ्य को रामचरित के साथ भली प्रकार जुड़ा हुआ देखा जा सकता है । लक्ष्मण, भरत, केवट यहाँ तक कि रीछ वानर तक उनकी सहायता करते हैं और शत्रु का भाई तक उनके साथ आ मिलता है । आदर्शवादी दृढ़ता में आरम्भिक कठिनाइयाँ अवश्य हैं किन्तु अपनी दृढ़ता और सच्चाई प्रमाणित कर देने पर हर दिशा से सहयोग की वर्षा होने लगती है । तब प्रतीत होता है कि उत्कृष्टता अपनाने की साहसिकता में आरम्भ में जो कठिनाई उठानी पड़ी आगे चलकर कितनी अधिक सुखद और श्रेयस्कर सिद्ध होती हैं ।

कितने ही व्रतशील उच्च उद्देश्यों को लेकर कार्य-क्षेत्र में उतरे और तुच्छ सामर्थ्य के रहते हुए भी महान कार्य कर सकने में सफल हुए हैं । उन्हें निरन्तर आगे बढ़ने और अवरोधों को गिराने की सामर्थ्य आन्तरिक मनोबल से ही मिली है । बिहार के हजारी बाग जिले के हजारी नामक किसान ने इस प्रदेश के गाँव-गाँव में आम के बगीचे लगाने का निश्चय किया था । यदि दृढ़ संकल्प प्रबल आकांक्षा बनकर उभरे तो फिर मस्तिष्क को उसका सरंजाम खड़ा करने और शरीर को उसे व्यवहार में परिणित करते देर नहीं लगती । यही सदा सर्वदा से होता रहा है यही हजारी किसान ने भी कर दिखाया । उसने उस सारे इलाके में आम के दरख्त लगाये और अन्ततः उन आम्र उद्यानों की संख्या एक हजार तक जा पहुँची । वही इलाका इन दिनों हजारी बाग जिला कहलाता है । सत्संकल्पों की परिणति सदा इसी प्रकार से व्यक्ति और समाज के लिए महान उपलब्धियाँ प्रस्तुत करती रही हैं ।

नर हो या नारी, बालक हो या वृद्ध, स्वस्थ्य हो या रुग्ण, धनी हो या निर्धन परिस्थितियों से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं । प्रश्न संकल्प शक्ति का है । मनस्वी व्यक्ति अपने लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ बनाते और सफल होते हैं । समय कितना लगा और श्रम कितना पड़ा उसमें अन्तर हो सकता है पर आत्म-निर्माण के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति अपनी आकाँक्षा को सक्रियता एवं प्रखरता के अनुरूप देर-सबेर में सफल करके ही रहता है । यह निश्चित है नारी की परिस्थितियाँ नर की तुलना में कई दृष्टियों से न्यून मानी जाती हैं किन्तु यह मान्यता वहीं तक सही है जहाँ तक कि उनका मनोबल गया--गुजरा बना रहे । यदि वे अपनी साहसिकता को जगा लें, संकल्प शक्ति को सदुद्देश्य के लिए उपयोग करने लगें तो कोई कारण नहीं कि अपनी गौरव गरिमा का प्रभाव देने में किसी से पीछे रहें ।

मैत्रेयी याज्ञवल्क्य के साथ पत्नी नहीं धर्म पत्नी बनकर रहीं । राम कृष्ण परमहंस की सहचरी शारदा मणि का उदाहरण भी ऐसा ही है । सुकन्या ने च्यवन के साथ रहना किसी विलास वासना के लिए नहीं उनके महान लक्ष्य को पूरा करने में साथी बनने के लिए किया था । जापान के गान्धी कागावा की पत्नी भी दीन-दुःखियों की सेवा का उद्देश्य लेकर ही उनके साथ दाम्पत्य सूत्र में बंधी थी । नर पामरों को जहाँ दाम्पत्य जीवन में विलासिता के पशु प्रयोजन के अतिरिक्त और कोई उद्देश्य दृष्टिगोचर ही नहीं होता वहाँ ऐसी आदर्शवादी नर-नारियों की भी कमी नहीं जो विवाह बन्धन की आवश्यकता तभी अनुभव करते हैं जब उससे वैयक्तिक और सामाजिक प्रगति का कोई उच्चस्तरीय उद्देश्य पूरा होता है ।

कुन्ती भी सामान्य रानियों की तरह एक महिला थी । जन्मजात रूप से तो सभी एक जैसे उत्पन्न होते हैं । प्रगति तो मनुष्य अपने पराक्रम पुरुषार्थ के बल पर करता है । कुन्ती ने देवत्व जगाया, आकाशवासी देवताओं को अपना सहचर बनाया और पाँच पराक्रमी पुत्रों को जन्म दे सकने में सफल बन सकी । सुकन्या ने अश्विनी कुमारों को और सावित्री ने यम को सहायता करने के लिये विवश कर दिया था । उच्चस्तरीय निष्ठा का परिचय देने वाले देवताओं की-ईश्वरीय सत्ता की सहायता प्राप्त कर सकने में भी सफल होते हैं । टिटहरी के धर्म युद्ध में महर्षि अगस्त सहायक बनकर सामने आये थे । तपस्विनी पार्वती अपने व्रत संकल्प के सहारे शिव की अर्द्धांगिनी बन सकने का गौरव प्राप्त कर सकी थीं । पति को आदर्श पालन के लिए प्रेरित करने वाली लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला स्वयं भी वनवास जैसी साधना घर रहकर करती रही । इन महान गाथाओं में आदर्शवादी संकल्प ही अपनी गरिमा प्रकट करते दीखते हैं ।

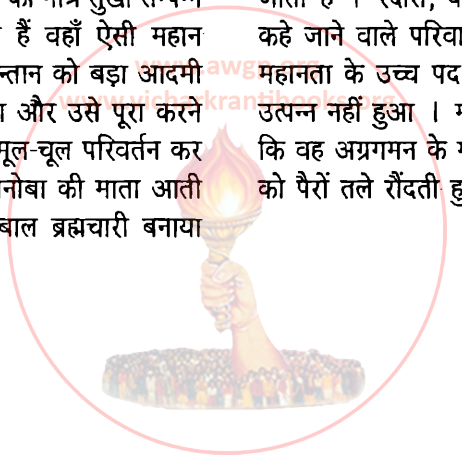
Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बंगाल के निर्धन विद्वान प्रताप चन्द्र राय ने अपनी सारी शक्ति और सम्पत्ति को बाजी पर लगाकर महाभारत के अनुवाद का कार्य हाथ में लिया वे उसे अपने जीवन में पूरा न कर सके तो उनकी पत्नी ने अपना संस्कृत ज्ञान पूरा करके उस अधूरे काम को पूरा करके दिखा दिया । ऐसी साहसिकता वहाँ ही दिखाई पड़ती है जहाँ उच्चस्तरीय आदर्शों का समावेश हो ।

विद्वान कैयट व्याकरण शास्त्र की संरचना में लगे हुए थे उनकी पत्नी भारती मूँज की रस्सी बटकर गुजारे का प्रबन्ध करती थीं । साम्यवाद के प्रवर्तक कार्ल्समार्क्स भी कुछ कमा नहीं पाते थे यह कार्य उनकी पत्नी जैनी करती थीं । वे पुराने कपड़े खरीदकर उनमें से बच्चों के छोटे कपड़े बनाती और फेरी लगाकर बेचती थीं । आदर्शों के लिए पतियों को इस प्रकार प्रोत्साहित करने और सहयोग देने में उनका उच्चस्तरीय संकल्प बल ही कार्य करता था ।

जहाँ सामान्य नारियाँ अपने बच्चों को मात्र सुखी सम्पन्न देखने भर की कामना संजोये रहती हैं वहाँ ऐसी महान महिलायें भी हुई हैं जिन्होंने अपनी सन्तान को बड़ा आदमी नहीं महामानव बनाने का सपना देखा और उसे पूरा करने के लिए अपनी दृष्टि और चेष्टा में आमूल-चूल परिवर्तन कर डाला । ऐसी महान महिलाओं में विनोबा की माता आती है जिन्होंने अपने तीनों बालकों को बाल ब्रह्मचारी बनाया था । शकुन्तला अपने बेटे भरत को सीता अपने लवकुश को सामान्य नर वानरों से भिन्न प्रकार का बनाना चाहती थी । उन्हें जो सफलताएँ मिलीं, वे अन्यान्यों को भी मिल सकती है, शर्त एक ही है कि आदर्शों के अन्तःकरण में गहन श्रद्धा की स्थापना हो सके और उसे पूरा करने के लिए अभीष्ठ साहस सँजोया जा सके । संकल्प इसी को कहते हैं ।

वंश परम्परा या पारिवारिक परिस्थितियों की हीनता किसी की प्रगति में चिरस्थाई अवरोध उत्पन्न नहीं कर सकी है । इस प्रकार की अड़चनें अधिक संघर्ष करने के लिए चुनौती देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकतीं । सत्यकाम जाबाल वेश्या पुत्र थे । उनकी माता यह नहीं बता सकी थी कि उस बालक का पिता कौन था । ऐतरेय ब्राह्मण के रचयिता ऋषि ऐतरेय-- इतरा रखैल के पुत्र थे। महर्षि वशिष्ठ, मातंगी आदि के बारे में भी ऐसा ही कहा जाता है । रैदास, कबीर, बाल्मीकि आदि का जन्म छोटे कहे जाने वाले परिवारों में ही हुआ था । पर इससे इन्हें महानता के उच्च पद तक पहुँचाने में कोई स्थाई अवरोध उत्पन्न नहीं हुआ । मनुष्य की संकल्प शक्ति इतनी बड़ी है कि वह अग्रगमन के मार्ग में उत्पन्न होने वाली प्रत्येक बाधा को पैरों तले रौंदती हुई आगे बढ़ सकती है ।



प्रार्थना के प्रत्यक्ष चमत्कार

प्रार्थना में शक्ति है

कठोर परिश्रम, युद्ध की थकावट व चिंता के कारण मुगल सम्राट बाबर का स्वास्थ्य बिगड़ गया था किन्तु अब भी उसके संकल्पों की दृढ़ता, आत्मविश्वास एवं धर्मनिष्ठा ज्यों की त्यों ध्रुव-अटल थी । इसी समय उसका प्रिय पुत्र हुमायूँ बीमार पड़ गया । अनेक उपचार करने पर भी प्रति-दिन उसकी अवस्था गिरती गई । वैद्यों ने घोर निराशा प्रकट की । हुमायूँ की दशा देखकर उनकी चिंता और द्विगुणित हुई । तब बाबर ने अपने पुत्र के बदले प्राण देने का संकल्प किया । उसके मित्रों ने उसे बहुत समझाया और जो वस्तु आपको अधिक से अधिक प्रिय हो, हुमायूँ की जान के बदले में दे दीजिए तो संभव है ईश्वर दया करें और हुमायूँ पूर्ण स्वस्थ हो जायें । बाबर ने उत्तर दिया कि मेरे पास सबसे अधिक प्यारी मेरी जान है और हुमायूँ के लिए मुझे इसे दे देने में किंचित भी संकोच नहीं है । यह कहकर उसने तीन बार हुमायूँ के पलँग की परिक्रमा की और नेत्र मूँद एकाग्रचित से प्रार्थना की "हे ईश्वर ! यदि मेरी जान के बदले में हुमायूँ स्वस्थ हो सकता है और जीवित रह सकता है, तो मैं इसे हुमायूँ पर निछावर करने को पूर्ण प्रस्तुत हूँ । हुमायूँ का समस्त रोग मेरे ऊपर आ जाय और वह पूर्ण स्वस्थ हो जाय ।" ईश्वर की लीला विचित्र है । दूसरे ही दिन से हुमायूँ क्रमशः स्वस्थ होने लगा, किन्तु धर्मनिष्ठ बाबर का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा । बाबर के हृदयोद्‌गार स्वीकार लिए गए थे । वस्तुतः २६ दिसम्बर, सन् १५३० को आगरे में बाबर का देहान्त हो गया ।

यह ऐतिहासिक घटना प्रत्येक व्यक्ति जानता है और ऐसी ही अनेक प्रचलित घटनाओं तथा व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर मानता है कि प्रार्थना में अद्‌भुत शक्ति है । जो व्यक्ति प्रार्थना करते हैं, उनके जीवन में अनेक बार ऐसा हुआ है कि उनकी हार्दिक कामनाएँ अक्षरशः पूर्ण हुई हैं । कभी-कभी तो हार्दिक प्रार्थना का उत्तर इतना शीघ्र मिलता है कि प्रार्थी उसे एक प्रकार का चमत्कार ही समझता है । पंडित शिवदत्त जी शर्मा ने अपने एक परिचित का उल्लेख किया है । उनकी पुत्री अत्यन्त बीमार हुई और क्रमशः मरणासन्न दशा में पहुँच गई । तब उन्होंने अपनी समस्त तरकीबें निष्फल देखीं तो सबको छोड़कर अपने गृह के तीसरी मंजिल पर जाकर रोने लगे और आकाश में हाथ जोड़कर पृथ्वी की ओर मुँह करके साष्टांग गिर पड़े । फिर अत्यन्त दैन्य भाव से प्रार्थना की कि "हे प्रभु ! आप इस दास की ओर निहारिये और उसकी बच्ची को जीवन-दान दीजिए ।" इसी प्रकार से बहुत देर तक अपने अश्रु-बिंदुओं से हृदयस्थित प्रभु के मानसचित्र के चरण पखारते रहे । जब वे वहाँ से नीचे उतरे तो उनके आश्चर्य का पारावार न रहा जब उन्होंने देखा कि लड़की बिल्कुल चेतना लाभ कर रही है । उसका रोग बहुत कम हो गया है और वह स्वस्थ हो रही है ।

इस प्रकार प्रभु के द्वार में की गई आन्तरिक प्रार्थना तत्काल फलवती होती है । महात्मा तुकाराम, स्वामी रामदास, मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास आदि भक्त संतों एवं महात्माओं की प्रार्थनाएँ जगत्प्रसिद्ध हैं । इन महात्माओं की आत्मायें उस परम तत्व में विलीन होकर उस देवी अवस्था में पहुँच जाती थीं जिसे ज्ञान की सर्वोच्च भूमिका कहते हैं। उनका मन उस पराशक्ति से तदाकार हो जाता था । जो समस्त सिद्धियों एवं चमत्कारों का भण्डार है । उस दैवी जगत् में प्रवेश कर आत्मा श्रद्धा द्वारा वे मनोनीति तत्व आकर्षित कर लेते थे । चेतन तत्व से तादात्म्य स्थापित कर लेने के ही कारण वे प्रार्थना द्वारा समस्त रोग, शोक, भय व्याधियाँ दूर कर लिया करते थे । भगवत् चिंतन में एक मात्र सहायक हृदय से उद्वेलित सच्ची प्रार्थना ही है । हृदय में जब परम प्रभु का पवित्र प्रेम भर जाता है, तो मानव-जीवन के समस्त व्यापार, कार्य-चिंतन इत्यादि प्रार्थनामय हो जाता है । सच्ची प्रार्थना में मानव हृदय का संभाषण दैवी आत्मा से होता है प्रार्थना श्रद्धा, शरणागति तथा आत्म समर्पण का ही रूपान्तर है ।

आजकल के लोगों की दृष्टि में प्रार्थना

आजकल प्रार्थना को गलत समझा जा रहा है । बीसवीं सदीं के युवकों की सुशिक्षित दृष्टि में प्रार्थना एक ढकोसला, एक बिडम्बना, खाने-पकाने, ठगने-ठगाने का एक धंधा है। जीवन की क्रियाशील वीरता मानव मन की एक सूक्ष्म प्रतिक्रिया में विश्वास नहीं करती । हवाई जहाज में इंजिन चलाने वाला हाथ, या परमाणु बम द्वारा सृष्टि विध्वंस करने देने वाला हृदय किसी के प्रति विनीत रूप से भिक्षा अथवा दया के प्रतीक बनकर नहीं उठ सकते । नवीन रक्त स्वभावतः विद्रोही होता है । वह क्रांति चाहता है, प्रत्येक दिशा में क्रांति, परिवर्तन, नई सृष्टि । वह नए सिरे से सब कुछ जमाना चाहते हैं और मन्दिर, मस्जिद, गिरजे या गुरुद्वारे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में बेकार का बखेड़ा नहीं फैलाना चाहते । ईश्वर, दैवी शक्ति या परम आत्मा जैसी कोई शक्ति हुआ करें, वह स्वयं अपने-आपको इतना मजबूत समझते हैं कि प्रार्थना द्वारा कुछ भी याचना नहीं करना चाहते । प्रार्थना उनकी दृष्टि में व्यर्थ प्रलाप है ।

यह प्रार्थना का सम्पूर्ण चित्र नहीं है । यह नास्तिकों की मिथ्या शेखी ही कही जायगी । इसमें दंभ है, अभिमान है, और धूल में मिला देने वाला स्वार्थ । प्रार्थना का अभिप्राय ही गलत समझा जा रहा है । कुछ का कुछ समझ लिया गया है । लोग समझते हैं कि प्रार्थना करके हम परमेश्वर को फुसला सकते हैं, बच्चों की तरह मीठी-मीठी बातें करके लुभा सकते हैं । प्रार्थना मन का मोदक नहीं है । जो व्यक्ति बिना परिश्रम के मुफ्त का माल उड़ाने की फिक्र में है उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि ईश्वर उनके गिड़गिड़ाने, नाक रगड़ने या भीख माँगने की ओर ध्यान नहीं देता । जो प्रार्थना को ढपोरशंख मानते हैं, वे भयंकर भूल करते हैं ।

प्रार्थना के असंख्य लाभ

जिस प्रकार जप, पूजन, अर्चन, पाठ, हवन, अनुष्ठान, मन-संयम, आत्म-संयम एवं मनोजय के विभिन्न मार्ग हैं उसी प्रकार प्रार्थना भी एक प्रकार का सुव्यवस्थित आध्यात्मिक व्यायाम है । जिस प्रकार डंड, मुग्दर, डम्बल इत्यादि की प्रक्रियाओं से शरीर पुष्ट होता है, अंग-प्रत्यंग सुदृढ़ होकर निरोगता, सौन्दर्य, परिश्रम की क्षमता, उपार्जन, उत्पादन आदि की समृद्धियाँ हाथ लगती हैं, उसी प्रकार प्रार्थना के आध्यात्मिक व्यायाम से मनुष्य का मनोबल सुदृढ़ होता है, आत्मविश्वास, आत्मश्रद्धा, इच्छाशक्ति विकसित होती है, कलुषित मन धुलकर स्वच्छ एवं पूर्ण पवित्र हो जाता है प्रार्थना से चित्त में सुव्यवस्था, मन में एकाग्रता, बुद्धि में तीक्ष्णता, तथा विवेक की जागृति में असाधारण उन्नति होती है ।

इन उन्नतियों के कारण पेचीदा तथा सुदृढ़ कार्यों को भी सरलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया जाता है । पूजा अनुष्ठान की कर्मकाण्डमयी प्रक्रियाओं का मनोवैज्ञानिक पद्धति के अनुसार अर्न्तमन के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ता है । मनुष्य को अपनी सफलताओं में अपेक्षाकृत अधिक विश्वास हो जाता है । दैवी कृपा की अदृश्य सहायता मिलने के कारण आशा की पीठ बहुत भारी हो जाती है । साहस, आशा, उत्साह एवं सफलता का विचार मनुष्य के व्यक्तित्व में घनीभूत होकर घुमड़ने लगता है । ऐसी मनोभूमि सफलता के लिए अत्यन्त उर्वर क्षेत्र है । प्रार्थना से सिक्त मानस प्रदेश वाले सैनिक उत्तम मनःस्थिति के कारण मोर्चे पर मोर्चा फतह करते जाते हैं ।

प्रार्थना तो एक प्रकार का प्रायश्चित है । विभिन्न प्रकार के स्वार्थों, चिन्ताओं, व्याकुलताओं, रोगों, व्याधियों, दुर्बलताओं को प्रक्षालित करने के लिए यह एक सर्वसुलभ साधन है । हमारे अभिमान के मिथ्यात्व को मिटा देने वाली महौषधि है । प्रार्थना में जो संभावनाएँ, जो उत्तम इच्छाएँ प्रकाशित की जाती हैं, उनसे एक प्रकार का आध्यात्मिक प्रवाह फैलने लगता है । प्रार्थी के इर्द-गिर्द का समस्त वातावरण पवित्रता, शांति तथा विश्व प्रेम की पुष्ट धाराओं से धनीभूत हो उठता है ।

जीवन के साथ आरम्भ होने वाली प्रार्थना एक आशीर्वाद है, और जीवन की समाप्ति के साथ की जाने वाली प्रार्थना उस आशीर्वाद के प्रति हार्दिक कृतज्ञता है । इन दोनों के मध्य में जीवन का कार्यक्षेत्र है । प्रार्थना के जल से अभिसिंचित होकर हमारी प्रार्थना तलवार के पानी की तरह हमारी कलाइयों के बल सहायता देती है, वह प्रशिक्षण श्वाँसों के संचार के साथ हमें बल प्रदान करती रहती है । जब पवित्र तथा दिव्यता के ये सुमधुर क्षण क्रम-क्रम से हमारी एक-एक पुकार के साथ हृदय में नक्षत्रों की तरह चमकने लगते हैं, तब अंधकार भी हमें सुहावना प्रतीत होने लगता है । उस समय निराशा का तिमिर भी हमारे लिए सौंदर्यमय हो जाता है । हमारी साधना जीवन के घोर अंधकार में उस दिव्यता का दर्शन पाने के लिए व्याकुल हो उठती है । तब एक क्षण आता है, हमारी निराशा यकायक चमक उठती है, तब चन्द्र दर्शन होता है । वह हमारी प्रार्थना की शुभ ज्योति है, वह हमारी साधना का फल है । हम कृतज्ञता भरी आँखों से जिधर निगाह डालते हैं एक हास्य, एक उल्लास और एक शोभा हमें दीख पड़ती है ।

आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रार्थना का स्थान

अंग्रेज कवि टैनीसन ने कहा है कि "बिना प्रार्थना मनुष्य का जीवन पशु-पक्षियों जैसा निर्बोध है । प्रार्थना जैसी महाशक्ति से कार्य न लेकर और अपनी थोथी शान में रहकर सचमुच हम बड़ी मूर्खता करते हैं । यही हमारी अंधता है।" प्रार्थना तो परमेश्वर से वार्तालाप करने की एक आध्यात्मिक प्रणाली है । प्रार्थना में हृदय बोलता है, विश्व हृदय सुनता है । जिस महाशक्ति से यह अनंत ब्रह्माण्ड उत्पन्न लालित-पालित हो रहा है, उससे संबंध स्थापित करने का एक रूप हमारी प्रार्थना ही है । प्रार्थना करना जिसे आता है उसे बिना जप, तप, मन्त्रजाप आदि साधन किए ही पराशक्ति से तदाकार हो सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में प्रार्थना का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । इस अंधकारावृत्त संसार में मनस्तापा, कष्ट, दुःख, पश्चात्ताप की जो कलुषित वासनाएँ मस्तिष्क में वास करती हैं, उनसे छुटकारा पाने का अमृतोपम उपाय प्रार्थना ही है । आंतरिक हृदय के गुप्त प्रदेश में निकली हुई सद्प्रार्थना से हृदय की दीनता दूर होती है, सद्ज्ञान का उदय होता है जिससे संसारी मानव ईश्वर के अनुग्रहों को पहिचानता है तथा आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करता है । परमात्म तत्व से तादात्म्य स्थापित करना ही सच्ची प्रार्थना का मूल अभिप्राय है । परमात्मा तो महासागर है । तर्क से, बहस से, बड़े-बड़े विवाद करने से इसकी थाह कदापि नहीं मिल सकती । प्रार्थना के मापदण्ड से अथाह जलराशि को नापा जा सकता है । स्वार्थपरता, भिक्षावृत्ति को लेकर जो प्रार्थना में प्रवृत्त होते हैं उनकी आराधनाएँ व्यर्थ हो जाती हैं । वे भगवान् से अबाध सम्बन्ध स्थिर नहीं हो पाते । उनकी प्रार्थना से चिन्ताओं एवं क्लेशों का नाश नहीं होता।

यदि परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करने की कोई विधि मनुष्य के हाथ में है, तो वह प्रार्थना ही है । यह वह ब्रह्मास्त्र है जिसके बल का पारावार नहीं । अंतःप्रेक्षण (भीतर की ओर देखना) के द्वारा प्रार्थना ढूँढ़कर हमारी कमजोरियों, दुर्बलताओं का मूलोच्छेदन करती है और नवीन अंतर्मन का निर्माण होता है । अहंकार, पाप, दुःख को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय प्रार्थना की शक्ति ही है । यह हमें पाप एवं दुःखों की आँधियों से बाहर निकालती है । इससे हमारे मनोविकार परिष्कृत, शुद्ध, बुद्ध होकर निखर आते हैं । पवित्र प्रार्थना जीवन की प्रेरक शक्ति है । मन को साधन और शिक्षित करने की सबसे पहली सीढ़ी प्रार्थना ही है ।

गीता का महा-गीत, वह सर्वश्रेष्ठ गीत-प्रार्थना-भक्ति का ही संगीत है । भक्त परमानन्द स्वरूप परमात्मा से प्रार्थना के सुकोमल तारों से ही संबंध जोड़ता है । इन संतों की प्रार्थनाओं में भक्ति का ही संगीत है । जरा महाप्रभु चैतन्य के हृदय को टटोलो, मीराबाई की प्रार्थनाओं को मापो, महाप्रभु चैतन्य तथा मीराबाई अपने हृदयाधार श्रीकृष्ण के नामोच्चारण से ही अश्रु धारा बहा देते थे, प्रार्थना से मनुष्य ईश्वर के निकट से निकटतम पहुँच जाता है । संसार की अतुलित सम्पत्ति में भी वह आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता । सच्चे भावुक प्रार्थी को, जब वह अपना अस्तित्व विस्मृत कर केवल आत्मस्वरूप में ही लीन हो जाता है, उस क्षण जो आनन्द आता है उसका अस्तित्व एक भुक्तभोगी को ही हो सकता है ।

सबसे सीधा रास्ता

यदि हम आध्यात्मिक क्षेत्र में वास्तव में अग्रसर होना चाहते हैं तथा मृत्यु के बंधन से मुक्त हो उस दिव्य ज्योति के सुदिव्य साहचर्य का आनन्द लूटना चाहते हैं तो हमें प्रार्थना की शरण लेनी होगी । भय, विपत्ति, रोग, शोक, चिंता, व्याधि से मुक्ति के लिए प्रार्थना की छोटी-सी प्रतिक्रिया भी महान फल देने वाली होती है । भगवान की सर्वग्रासनी दया का आश्रय पकड़ हम अपने अन्तःकरण में विशुद्ध आनन्द का अटूट स्रोत खोल सकते हैं तथा वर्षों के जमे हुए पाप एवं कुवासनाएँ समूल नाश कर सकते हैं । भारतीय शास्त्रों में जितने प्रकार के प्रायश्चितों का उल्लेख है, उन सबमें प्रार्थना महान् सामर्थ्यशाली है । अदृश्य शक्ति से तादात्म्य स्थापित कर प्रार्थी आवश्यकतानुसार वस्तु प्राप्त कर सकता है । सच्ची पुकार को सुनकर वह पराशक्ति अपने अदृश्य हाथों से उसकी सब प्रकार से सहायता करती है । सच्ची प्रार्थना से आत्मा के गहनतर भाग में एक आंतरिक प्रकाश प्रकट होता है, जो वह अव्यक्त, अपार्थिव, अनिर्वचनीय, स्वयम्भू ज्योति है, वह गूढ़ आन्तरिक प्रकाश है जो विश्व के समस्त प्राणियों को आलोक प्रदान करता है । यथा--**"तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सकलं विभाति ।"** प्रार्थना सत्य से असत्य की ओर, अंधकार से दिव्य प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर ले जाने वाली तेजोमय प्रभा है । विश्व का इतिहास उठाकर देखिए प्रार्थना ने अनेक महान् आचार्यों, पैगम्बरों को बड़े मार्मिक रूप से तत्वज्ञान एवं पूर्णता प्राप्त कराई है । यदि परमेश्वर से साक्षात्कार करने का उस परमात्व तत्व से सामंजस्य स्थापित करने का कोई ढंग है तो वह प्रार्थना के मार्ग का ही अनुसरण रहे । इसी मार्ग से हम जगत की एक महान् विभूति एवं ज्योति स्तम्भ बन सकते हैं ।

प्रार्थना केवल प्रार्थना मंदिर तक ही सीमित नहीं रहती, किन्तु जीवन के समस्त व्यापार प्रार्थना रूप हो जाते हैं । प्रार्थना जितनी सरल और सच्ची होगी। आंतरिक हृदय से होगी भगवान के हृदय को उतना ही द्रवित कर सकेगी । एक बार आप प्रार्थना के रहस्य को समझ लेंगे तो आपको अनुभव होगा कि आप बिना प्रार्थना के नहीं रह सकते । विकृत मन प्रार्थना से सुष्ठु और सुसंचालित होकर आत्मिक आनन्द ग्रहण करता है । समस्त आधि-व्याधियाँ दूर होती हैं और मन में ईश्वरी शक्ति का आभास संचरित होता है।

प्रार्थना वास्तव में क्या है ?

प्रार्थना मनुष्य के मन की समस्त विशृंखलित एवं अनेक दिशाओं में बहकने वाली प्रवृत्तियों को एक केन्द्र पर एकाग्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने वाले मानसिक व्यायाम का नाम है । चित्त की समग्र भावनाओं को मन के केन्द्र में एकत्र कर चित्त को दृढ़ करने की एक प्रणाली का नाम प्रार्थना है । जब मनुष्य के मन में किसी प्रकार की इच्छा उत्पन्न होती है, वह संसार के व्यतिक्रम, दुरभिसंधि, प्रवंचना से क्लान्त हो जाता है, कोई आशय नहीं दृष्टिगोचर होता, तब सब प्रकार से विवश होकर वह शक्ति और साहस के एक कल्पित आदर्श की मन में स्थापना करके आश्रय तथा सहायक की खोज में अपने ही आंतरिक जगत् में प्रवेश करता है । उसके अंतःकरण में परमात्मा की अमित शक्ति अद्भुत सामर्थ्य एवं अतुलित बल की एक प्रतिमा निवास करती है । इस मानस चित्र की सृष्टि उसकी व्यक्तिगत श्रद्धा, आत्म विश्वास एवं आस्तिकता के बल पर विनिर्मित होती है । यह उसके वर्षों के संचित शुभ संस्कारों का स्थूल स्वरूप है । उसके संस्कार ज्यों-ज्यों परिवर्तित होते हैं, त्यों-त्यों यह मानस चित्र बदलता और पुनः विनिर्मित होता है । यह हमारे अपने दृष्टिकोण के अनुसार परमेश्वर का सर्वशक्ति सम्पन्न, अमित फलदाता परमेश्वर का चित्र है । यह हमारी आस्था की मूर्ति है । प्रार्थना में हम इसी आंतरिक शक्ति केन्द्र की ओर उन्मुख होते हैं । यहीं से एक प्रकार का ऐसा बल उत्साह प्राप्त करते हैं, जो मन में किसी गुप्त सामर्थ्य के भण्डार को यकायक खोल देता है । मन का यह आंतरिक गुप्त सामर्थ्य शरीर के अणु-अणु में अद्भुत बल का संचार करता है । आशा की ज्योति जगमगा उठती है, पुरुषार्थ शक्ति से मन विभोर हो उठता है । वहाँ से ऐसी शान्तिदायक विचार धाराएँ प्रस्फुटित होती हैं, जो प्रार्थी को अभय और सावधान बना देती हैं, यही प्रार्थना की स्पष्ट व्याख्या है ।

एक तत्वदर्शी का कथन है कि प्रार्थना का सम्बन्ध मानव के परम पुनीत तत्व आत्मा से है । आत्मा अनन्त शक्तिवान् है । सर्वगुण सम्पन्न, निर्विकार, निर्लेप है । उसमें पवित्र शक्ति का अज्ञेय खजाना है । मन इसके समीप निवास करता है । मन अन्य सब अंगों की अपेक्षा सूक्ष्म एवं शक्तिशाली है । वस्तुतः जिस समय मन की शक्तियाँ आत्मविश्वास से आंतरिक केन्द्र पर एकाग्र हो जाती हैं, तब इस पर आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है, जो मन को अद्भुत सामर्थ्य से सम्पन्न कर देता है । इसे दैवी प्रेरणा के नाम से अभिहित किया जा सकता है । आंतरिक दैवी प्रेरणा प्राप्त करने का नाम ही प्रार्थना है ।

मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रार्थना

मनोवैज्ञानिक तो प्रार्थना को अव्यक्त मन से उठी हुए एक चेतना मात्र कहेगा । मनुष्य की अज्ञात चेतना परम लीलामयी है । उसमें एक से एक आश्चर्यजनक सामर्थ्यों का भण्डार है । हमारी प्रार्थना को ध्यान चेतन मन की ओर से गुप्त मन की ओर आकर्षित कर देती है । हमारी समस्त शक्तियाँ एक बार भी मानसिक सामर्थ्य के उस विशाल क्षेत्र की ओर जिसका कि हमारे चेतन मन को कभी भान भी नहीं होता, अग्रसर हो जाती हैं । यह अज्ञात चेतन प्रदेश हमारे जीवन का मूल स्रोत है जिसकी सूक्ष्म धाराएँ हमें अपने दैनिक जीवन में निरंतर प्रवाहित होती हुई अनुभव होती हैं यद्यपि हम इन धाराओं के मूल स्थान अव्यक्त मन को समझ नहीं पाते हैं । अचेतन जगत् मन के अव्यक्त प्रदेश, का अन्वेषण अत्यन्त दुःसाध्य है । बुद्धि, सद्भाव, आंतरिक सामर्थ्य तथा आंतरिक शक्ति का केन्द्र यही गुप्त मन है । गुप्त मन के सन्मुख चेतन मन की कोई गणना नहीं हो सकती। गुप्त मन सदैव दिन रात निर्विघ्न रूप से कार्य करता है किन्तु रात्रि में निद्रा के समस्त गुप्त मन का कार्य और भी क्षिप्र गति से सम्पन्न होता है । तुलनात्मक दृष्टि से यह देखा जाय तो अनंत शक्ति मनुष्य के इसी गुप्त मन में है । निर्बल से निर्बल मनुष्य की शक्ति का भी वास्तविक केन्द्र गुप्त मन ही है ।

क्या कारण है कि पापी एकदम पुण्यात्मा बन जाता है, डरपोक मनुष्य दृढ़तापूर्वक टिकने लगता है । साधारण व्यक्ति अनायास ही प्रतिभा सम्पन्न हो उठता है ? कारण यह ही है कि उनके गुप्त मन का कोई अज्ञात केन्द्र एक दम खुल जाता है और अदृश्य शक्तियाँ अत्यन्त वेग से प्रवाहित हो उठती हैं, बड़े से बड़ा पापी इन रन्ध्रों के खुल जाने से अकस्मात् पुण्यात्मा बन जाता है । गुप्त मन के संस्कारों से संवेगों में परिवर्तन होने के कारण मनुष्यों के व्यवहारों में भी परिवर्तन हो जाते हैं ।

गुप्त मन की प्रतिक्रियाएँ

गुप्त मन की शक्ति केन्द्र है । शक्ति, प्रवाह, प्रेरणा, बल उसी में भरा है । शक्ति मनुष्य के अंतर में वास करती है। आन्तरिक सामर्थ्यों का स्रोत 'गुप्त मन' ही है । वही शान्ति, सुख और आनन्द का कन्ट्रोलर है । वही हमारा रक्षक या भक्षक है । जिस प्रकार प्रत्येक चेतन वस्तु का अचेतन जगत में सर्वप्रथम सूत्रपात होता है, उसी प्रकार प्रत्येक चेतन भावना, उस अचेतन जगत् में पदार्पण कर हमारे व्यक्तित्व की एक स्थाई वृत्ति बनकर उसे प्रवाहित करती है । इस प्रकार वह मनुष्य के मानसिक एवं शारीरिक संगठन कार्य में समुचित भाग लेती है । यदि वह स्वास्थ्य, शक्ति, बल, सामर्थ्य, बुद्धि या अन्य किसी उत्कृष्ट भाव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्बन्धी भावना हुई हो तो हमें अन्दर से एक प्रकार का उत्कर्ष तथा साहस मिलता है ।

मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रार्थना एक प्रकार का 'आत्म संकेत' अथवा 'आत्म सूचना' ही है । जीवन में संकेत तथा सूचनाएँ हमें परिचालित करती हैं उदाहरणार्थ, आप खिन्न मन होकर मार्ग में चले जा रहे हैं कि अकस्मात् किसी प्रफुल्लवदन मित्र से आपकी भेंट हुई । उसकी मुस्कान तथा उत्साहवर्द्धक वचन आप पर बलप्रद औषधि का कार्य करते हैं और आपकी निराशा विलीन हो जाती है । यह है संकेत या सूचना का प्रभाव ! ऐसी ही एक विशेष प्रकार की सूचनाएँ आपकी प्रार्थनाएँ भी हैं । आपकी अपनी ही भावनाएँ आपके मुख श्री से उद्वेलित होकर शब्द समूह अचेतन (गुप्त मन) में पहुँची तो वह परिणित होकर मानसिक स्तर का एक भाग बन गईं ।

प्रार्थना का मनोवैज्ञानिक आधार गुप्त मन ही है । जिन विचारों का प्रभाव जितना ही शीघ्र गुप्त मन पर पहुँचाया जा सकता है, जितनी दृढ़ता एवं श्रद्धा से पहुँचाया जा सकता है, उतनी ही शीघ्र प्रार्थना फलवती होती है । प्रार्थना करते समय प्रकट मन की अवस्था अचल एवं कुछ निष्क्रिय सी होकर मंद पड़ जाती है । अतः उस समय एकाग्रता होने से सूचनाओं का प्रवाह सीधा गुप्त मन में प्रवेश कर जाता है । हमारे अंतर की अचेतन वृत्तियाँ उन सूचनाओं को ग्रहण कर लेती हैं । विरोधी भावनाएँ नहीं उठतीं । स्वअवस्था, निद्रावस्था, मधुर राग, सरिस कविता के श्रवण इन सभी मानसिक दशाओं में अंतर नव वृत्ति खूब ग्रहण कर सकता है । प्रार्थना की अवस्था में शरीर ढीला पड़ जाता है और जितनी भी हमारी तन्मयता एवं विश्वास होता है, उतनी ही अधिक हमें अंतर की प्रवृत्तियों तक पहुँचने तथा अपनी इष्ट भावना के बीजारोपण में सुगमता होती है।

उचित ढंग से प्रार्थना कीजिए

प्रार्थना की तन्मयता में इतनी एकाग्रता होनी अनिवार्य है कि संक्षय की विरोधी भावनाएँ तनिक भी न उठें । विरोधी भावनाओं के न उठने से अंतःकरण की अचेतन वृत्तियाँ प्रार्थना की सूचनाओं को भली-भाँति ग्रहण कर लेती हैं और फिर हमारे जीवन का स्वाभाविक अंग बनकर प्रकट होती हैं । जितनी बार मन को शिथिल कर नेत्र मूँद सब विरोधी विचारों को हटाकर हम प्रार्थना पर चित्त को एकाग्र करेंगे, उतनी ही बार परमात्मा के परम पावन संस्पर्श से रोम-रोम में पवित्रता का संचार होगा । ऐसे ही ढंग से रोगी स्वास्थ्य की प्रार्थना करके रोग मुक्त तथा स्वस्थ हो सकता है । बलपूर्वक, चेतन, विरोधी तर्क-वितर्कों के विपरीत अपनी किसी इष्ट भावना का अंतर ही अचेतन व्यक्तियों द्वारा ग्रहण कराना, इसलिए सफल होता है कि जरा-सी बेखबरी में चेतन मन पुनः सतर्कता से अपना काम करने लगता है।

प्रार्थना करना सभी जानते हैं किन्तु उचित एवं शास्त्रीय ढंग से बहुत अल्प संख्या में लोग जानते हैं । शब्दों को सपाटे से तोते की तरह दुहरा जाना प्रार्थना नहीं, यह तो एक प्रकार का अभिनय है, प्रार्थना तो आत्म विश्वास से सिंचित होनी चाहिए, **'विश्वासः फलदायकः'** । आपके शब्दों में जितनी श्रद्धा होगी, विश्वास से जितनी सराबोर होगी शक्तिमान परब्रह्म सत्ता से उतना ही आपका तादात्म्य स्थापित हो सकेगा । अंतर से प्रेरित सच्ची प्रार्थना एक स्वसंकेत की ऐसी पद्धति है जिससे हम स्वयं अपने गुप्त मन से अपनी ही शक्ति का महासागर खोलते हैं ।

प्रार्थना का तात्त्विक विश्लेषण

प्रार्थना का निर्माण करने वाले कौन-कौन पृथक्-पृथक् तत्व हैं ? किन-किन वस्तुओं से प्रार्थना विनिर्मित होती है? यह प्रश्न अनायास ही मन में उत्पन्न होता है ।

प्रार्थना की आत्मा उच्चतर सत्ता में अखंड विश्वास है। छान्दोग्योपनिषद् में निर्देश किया गया है **श्रद्धैव श्रद्धयाजुहोति तदेव वीर्यवत्तरं भवेति,** अर्थात् श्रद्धापूर्वक की गई प्रार्थना ही फलवती होती है । प्रार्थना में साधक का जीता-जागता विश्वास होना अनिवार्य है । ''सारा संसार ब्रह्ममय है तथा उस ब्रह्म का केन्द्र मेरे मन अंतःतकरण में वर्तमान् है । मैं विश्वव्याप्त परमात्मा से सम्बन्ध रखता हूँ और प्रार्थना द्वारा उस सम्बेन्ध को अधिक चमका देता हूँ''--ऐसा विश्वास रखकर हमें प्रार्थना में प्रवृत्ति करनी चाहिए । प्रार्थना स्वतः कोई शक्ति नहीं होती किन्तु विश्वास से वह महान शक्तिशालिनी मनोनीति फल प्रदान करने वाली बनती है । पहले अदृश्य शक्ति, परमात्मा की अपार शक्ति में भरोसा करो, पूर्ण विश्वास करो तब प्रार्थना फलीभूत होती है । प्रार्थना की शक्ति विश्वास से उत्तेजित हो उठती है। मन, बचन तथा कर्म तीनों ही आत्मश्रद्धा से परिपूर्ण हो उठें, प्रत्येक अणु-अणु साधक के विश्वास से रंजित हो उठें, तँब ही उसे अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है ।

एक कथा है कि एक लड़की को सम्मान प्राप्ति की बड़ी प्रबल इच्छा हुई । उसने अनेक साधन किए । रुपया, पैसा पानी की तरह बहाया, बड़े-बड़े आदमियों से मुलाकात की, नाना प्रकार के षड्यंत्रों में भाग लिया । तब उसकी ऐसी दशा हुई जो एक ऐसे व्यक्ति की होती है, जो समस्त संसारी प्रयत्न कर चुकने पर भी अपने अभीष्ट फल को प्राप्त नहीं होता । उस सयम **'निर्बल के बल राम'** की ही स्मृति आती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । वह लड़की एक महात्मा के पास आई और उनसे अपनी इच्छा प्रकट की । लड़की बोली, ''महाराज ! मैंने अपने-ध्येय प्राप्ति की चेष्टा में बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ सहन कीं। अपना समस्त धन नष्ट कर दिया । तन, मन, धन जो कुछ भी संभव था, मैंने किया पर मुझे ध्येय की प्राप्ति किंचित मात्रा में भी नहीं हुई ।'' साधु बोला--''बेटी ! घबराओ नहीं । भगवान को धन्यवाद दो । उस परम प्रभु ने तुम्हें अतुलित सम्पत्ति का मार्ग दर्शाया है । तुम्हारी इच्छा की पूर्ति पहले ही कर दी है । अब तुम केवल इस प्रार्थना को नित्यप्रति करती रहो, यहाँ तक कि ये शब्द ही तुम्हारे सामने नृत्य करने लगें ।''

'हे, सर्वसमर्थ भगवान् ! आप ही मेरे माता-पिता हैं । आपकी सामर्थ्य अपार है, अनन्त है । आपके सामने मेरा दूसरा कोई हितैषी नहीं है । मैं आपकी शरण आई हूँ, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई बच्चा थककर अपनी माता की गोद में दौड़ता है । मैं आपकी बार-बार अनुग्रहीत हूँ कि आपने मुझ पर इतनी दया की । मैं आपकी अतुल सहायता की हृदय से प्रार्थना करती हूँ । मेरी अंतरात्मा ही मेरे हृदय से सराहना करती है । मेरी अंतरात्मा ही मेरे हृदय तथा मन की संचालक हो, जिससे मैं आपकी प्रेरणा को समझ सकूँ। आपने मुझे अतुलित सम्पत्ति प्रदान की है, इतनी तो मेरे अनुमान में भी नहीं आ सकती थीं जितनी आपने प्रदान कर दी हैं । यह सब आपका ही सुधर वरदान है ।'

लड़की इस प्रार्थना को लेकर चली गई तथा तीन दिन पश्चात् पुनः उस महात्मा के पास आकर बोली कि तुम्हारी प्रार्थना ढकोसला मात्र थी । उससे किंचित भी लाभ उपलब्ध नहीं हुआ । मैंने प्रातः-सायं दोनों समय उसका उच्चारण किया, किन्तु मेरी दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ,वह ज्यों की त्यों बनी रही । मैं पहले ही जानती थी कि इस प्रार्थना से कुछ लाभ न होगा । ऐसी प्रार्थानाएँ मुझे न जाने कितनी बतलाई गईं हैं, किन्तु प्रत्येक बार मैं निष्फल हुई हूँ । मैं तो इस निष्कर्ष पर आ टिकी हूँ कि तोते की भाँति शब्दों को पुनः-पुनः कहने से मनोवांछित फल की प्राप्ति नहीं हो सकती । क्या कभी प्रार्थना से प्रतिकूल स्थिति भी अनुकूल बन सकती है ?

जिस बात के लिए हमने उक्त कथा का उल्लेख किया है, वह अब आती है । यही विचारणीय तत्व है । साधु ने उत्तर दिया, ''बेटी ! जो मैंने तुम्हें बतलाया है, वह मेरे वर्षों का अनुभव है । प्रार्थना में तुम्हारा विश्वास नहीं है। तुम प्रार्थना के विषय तथा उसकी शक्ति के प्रति संदिग्ध हो। तुम जब प्रार्थना करती हो तो उसमें पूरा-पूरा भरोसा नहीं रखती हो । तुम्हारी उन्नति केवल दो बातों पर निर्भर है कि क्या तुम्हारा यह पूरा विश्वास है कि परमात्मा प्रार्थना सुनता है तथा उसे पूर्ण करता है ? द्वितीय यह है कि क्या तुम भली-भाँति समझती हो कि परमात्मा में इतनी शक्ति है कि वह तुम्हारी प्रार्थना को पूर्ण कर दें ?''

लड़की बोली--''हाँ, अवश्य, परमात्मा सब कुछ कर सकता है ।'' पर साधु ने उत्तर दिया कि ''बस जब तुम्हारे अंदर विश्वास है कि परमात्मा में अपार शक्ति है तो फिर संदेह के लिए स्थान कहाँ ?''

इसके अनंतर उस साधु ने प्रार्थना के प्रत्येक शब्द की विस्तृत व्याख्या की और उस लड़की को प्रत्येक दिन धीरे-धीरे, पूरी-पूरी श्रद्धा से ध्यानपूर्वक प्रार्थना करने का आदेश दिया । ज्यों-ज्यों लड़की का विश्वास बढ़ा, अंतःकरण में श्रद्धा उत्पन्न हुई त्यों-त्यों लड़की की इच्छा भी पूर्ण होती गई ।

इस पूरी कथा का मर्म है--विश्वास, जीता-जागता विश्वास--प्रार्थना में श्रद्धा सबसे मूल्यवान् तथ्य है । श्रद्धा की अखंड धारा रोम-रोम में, कण-कण में, अणु-अणु में भर लो, तब प्रार्थना आरम्भ करो । श्रद्धा प्रत्येक वस्तु को असीम, आंतरिक शक्ति प्रचुरता से अनुप्राणित करती हुई, अग्रसर होती है । श्रद्धाभाव के बिना समस्त वस्तुएँ प्राणहीन, जीवनहीन, निरर्थक एवं व्यर्थ हैं । श्रद्धा से युक्त प्रार्थना बुद्धि को प्रधानता नहीं देती प्रत्युति इसे उच्चतर धारणा शक्ति की ओर बढ़ाती है जिससे हमारा मनोराज्य विचार और प्राण के अनंत साम्राज्य के साथ एकाकार हो जाता है । इस गुण से प्रत्येक प्रार्थी की बुद्धि में अभिनव शक्ति एवं सौन्दर्य आ जाते हैं तथा उसकी चेतना उस अनंत ऐश्वर्य की ओर उन्मुक्त हो जाती है, जो **'वान्छां कल्पतरु'** है तथा जिसके बल पर मनुष्य मनोवांछित फल पा सकता है । स्वास्थ्य, सुख, उन्नति, आयु जो कुछ भी हम प्राप्त करना चाहे वह श्रद्धा के द्वारा ही मिल सकते हैं । श्रद्धा उस अलौकिक साम्राज्य का राजमार्ग है । श्रद्धा से ही प्रार्थना में उत्पादक शक्ति, रचनात्मक बल का संचार होता है ।

तुम जिस प्रकार से चाहो प्रार्थना करो, चाहे चिल्लाकर या मूक रहकर मन ही मन प्रार्थना करो, जी चाहे जैसे करो, हर हालत, हर, स्थान, हर प्रकार से परमेश्वर तुम्हारी प्रार्थना सुनेगा, यदि उसमें विश्वास और श्रद्धा का प्राण है ।

प्रार्थना का द्वितीय तत्त्व-एकाग्रता

प्रार्थना एक प्रकार का मानसिक व्यायाम है । यह एकाग्रता तथा ध्यान के नियमों पर कार्य करता है । जितनी ही प्रार्थना में एकाग्रता होगी, निष्ठा होगी और जितनी एक रसता से ध्यान लगाया जायगा, उतनी ही लाभ की आशा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करनी चाहिए । एकाग्रता पर ऐसी अद्भुत मौन-शक्ति है जो मन की समस्त शक्तियों को एक मध्यबिन्दु पर केन्द्रित कर देती है । सूर्य रश्मियाँ छिन्न-भिन्न रहकर कुछ गर्मी उत्पन्न नहीं करतीं किन्तु शीशे द्वारा उन रश्मियों को जब एक केन्द्र पर डाला जाता है, तो उनमें अद्भुत शक्ति का संचार होता है । इसी प्रकार एकाग्र प्रार्थना से मन की समस्त बिखरी हुई शक्तियाँ एक केन्द्र बिन्दु पर एकाग्र होती हैं ।

प्रार्थना का रहस्य मन की एकाग्रता पर है । प्रार्थना पर, प्रार्थना के लक्ष्य पर, मन की समस्त चित्तवृत्तियों को लगा देना, इधर-उधर विचलित न होने देना, निरन्तर उसी स्थान पर दृढ़तापूर्वक लगाये रखने की एकाग्रता है । जहाँ साधारण व्यक्ति किकर्तव्यविमूढ़ से खड़े रह जाते हैं, वहाँ एकाग्रचित वाला साधक थोड़ी-सी प्रार्थना के बल पर अद्भुत चमत्कारों का प्रदर्शन करता है ।

एकाग्रता प्राप्त करने में प्राण-शक्ति पर अपना पूर्ण अधिकार रखना पड़ता है, प्राणायाम का अभ्यास करना पड़ता है और अन्तरात्मा के निरीक्षण में निरन्तर रहना पड़ता है । मन में प्रबल इच्छा भी होनी चाहिए जिससे कि संकल्प दृढ़ बना रहे, हिलने न पावे । एकाग्रता का जब अभ्यास करने बैठे तो शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दो । ध्यान में मौन होना आवश्यक है । अतः शांत चित्त हो नेत्र मूँदकर बैठना चाहिए । लेट भी सकते हैं किन्तु ''शिथलीकरण'' पूरा-पूरा रहे । शरीर को ऐसी आदत डालनी चाहिए कि वह मन की समस्त आज्ञाओं का पालन करे । सुखासन बैठकर, या लेटकर जैसा, तुम्हें ठीक मालूम हो, शिथिल हो जाओ । शरीर और मन को पूर्ण शिथिल कर लो । शरीर का अंग-प्रत्यंग शिथिल और ढीला बन जाय, भारीपन दूर हो जाय, तुम्हारा बल उसमें किंचित मात्र भी न लगे । शिथिलीकरण में इतना अभ्यस्त हो जाना चाहिए कि यह मालूम ही न हो कि हमारे शरीर भी है । यह ध्यान की प्रथम अवस्था है ।

तृतीय तत्व--सृजनात्मक ध्यान

प्रार्थना का तृतीय तत्व सृजनात्मक ध्यान है । एकाग्रता से ध्यान शक्ति की अभिवृद्धि होती है । महान पुरुष का निश्चित लक्षण उत्तम साधन ही है । ध्यान वह तत्व है जिससे स्मृति का ताना-बाना विनिर्मित होता है । सर आइजक न्यूटन ने तो यहाँ तक निर्देश किया है यदि विज्ञान की उन्नति का कोई रहस्य है, तो वह गंभीर ध्यान ही है । डॉ० लेटसन लिखते हैं कि ''ध्यान ही एकाग्रता शक्ति की प्रधान कुंजी है । ध्यान के अभाव में प्रार्थना द्वारा कोई भी महान् कार्य सम्पादन नहीं किया जा सकता । अत्यन्त पूर्ण इन्द्रिय-बोध, उत्तम धारणा शक्ति, सृजनात्मक कल्पना-बिना गम्भीर ध्यान के कुछ भी सम्पादन नहीं कर सकते ।'

प्रार्थना को फलवती करने के लिए सृजनात्मक ध्यान अत्यावश्यक है । गंभीर एवं आशाप्रद ध्यान से ईश्वर का साक्षात्कार एवं तादात्म्य होता है । जैसा ध्यान, जैसा मानस-चित्र, जैसी मानस पूजा, वैसी ही प्राप्ति । ध्यान से मन को आध्यात्मिक उन्नति पर केन्द्रीभूत कीजिए, दृढ़तापूर्वक समस्त शक्तियों को उसी परमात्मतत्व पर लगा दीजिए । **'अहं ब्रह्मास्मि'** मैं ब्रह्म हूँ- इस तत्व का ध्यान करो । मैं परमेश्वर से निर्मलता पा रहा हूँ, मैं पवित्र बन रहा हूँ । परम पिता मुझे शक्तिशाली बना रहे हैं । वे अनन्त महाप्रभु मेरे अन्तस्थल में विराजे हुए हैं । हृदय में परमेश्वर की मूर्ति सजग कर ध्यान-धारणा करनी चाहिए ।

स्मरण रखिए, संसार के समस्त धर्मों, शास्त्रों, मतों ने एक मत से, एक ध्वनि से हृदय में परमेश्वर का निवास स्थान बताया है तथा हृदय ही में स्थिति परमेश्वर को भगवान की उपासना और प्राप्ति का स्थान माना है । ऐसे ध्यान से हृदय गुहा दिव्य प्रकाश से जाज्वल्यमान हो सकती है । साधक के मुखमंडल पर एक अप्रतिभ आभा झलक उठती है । दिव्य तेज उसे संस्पर्श करता है और वह दिव्यानुभव से उद्वेलित हो उठता है । जब सच्चे प्रेम का पवित्र स्रोत हृदय में प्रवाहित हो उठता है, तो कभी-कभी साधक को रोमांच, अश्रुपात, तन्मयता, आनन्द आदि सात्विक भावों का उदय होता है । ऐसा ही साधक प्रार्थी, भक्त पृथ्वी को पावन करने वाला होता है, **'मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति'** इस प्रकार सृजनात्मक ध्यान से असद्भावनाओं से मुक्ति, भगवत्प्रेम की प्रतिष्ठा एवं सत्यं शिवम् सुन्दरम् स्वरूप का प्रकाश होता है ।

ध्यान अन्तःकरण की मानसिक क्रिया है । इसमें केवल मनः शान्ति की आवश्यकता है । यहाँ बाह्य मिथ्याडम्बरों की आवश्यकता नहीं । ध्यान तो अन्तर की वस्तु है- करने की चीज है, इसमें दिखावा कैसा ? चुपचाप ध्यान में संलग्न हो जाइये, दिन-रात परम प्रभु का आलिंगन करते रहो । भगवान् की दिव्य मूर्ति को अन्तःकरण के कमरे में बन्द कर लो, तथा बाह्य जगत् को विस्मृत कर दो । वस्तुतः ऐसे दिव्य साक्षात्कार के समक्ष बाह्य जगत् की स्मृति आती ही किसे है ? ऐसा ध्यान अमर शान्ति प्रसार करने वाला है ।

एकान्त स्थान में अकेले ध्यान करते समय मन को अपने ध्येय में तल्लीनतापूर्वक लगाना चाहिए । अभ्यास में श्वाँस द्वारा जप, भगवान् के प्रेम, ज्ञान, भक्ति तथा शक्ति सम्बन्धी धारणाओं की स्मृति इत्यादि से पर्याप्त सहायता मिल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती है । ध्यान के समय मन को मजबूती से इष्ट वस्तु पर केन्द्रित करना चाहिए, किसी भी सांसारिक विषय की ओर मन को न जाने देना चाहिए । उस समय तो सब ओर से चित्त हटाकर एकमात्र ध्येय का ही लक्ष्य होना चाहिए । सर्वव्यापी परमात्मा में स्थित होकर ज्ञान के नेत्रों से ऐसा दर्शन करना चाहिए मानो सब कुछ मेरे ही संकल्प पर निर्भर है ।

एक ध्येय वस्तु का ही निरन्तर चिन्तन ध्यान है । ध्यान में जिस प्रकार के गुण स्थिति होते हैं, उसी प्रकार के गुण सहित जब ध्येय का साक्षात्कार होता है, तब उसको यथार्थ मानना चाहिये । कुछ साधक प्रार्थी ध्यान में ध्येय के स्थूल स्वरूप को ही कल्पना में लाया करते हैं, उसकी झाँकी को ही ध्यान की सिद्धि मानते हैं किन्तु यह भी यथार्थ ध्यान नहीं किया जा सकता । ध्येय के गुणों में जब वृत्ति स्थिर होती है और ध्याता जब उन गुणों से युक्त हो जाता है, तब यथार्थ ध्यान की सिद्धि कही जाती है । यदि ध्येय के गुणों में आपकी चित्तवृत्ति तदाकार नहीं होती, तो चाहे जितनी देर ध्यान में स्थित क्यों न बैठे रहो, प्रार्थना में सिद्धि कदापि नहीं हो सकती । ध्येय तथा ध्याता में अभेद भाव उस समय उत्पन्न होता है जब ध्येय के गुण-धर्म के साथ ध्येय के स्वरूप के साथ ध्याता सम्बन्ध में आता है । ध्येय के साथ जब प्रार्थी तन्मय हो जाता है । एक साधक का कथन है, 'जहाँ कहीं ध्येय के गुण-धर्म दिखाई पड़ें, वहाँ तुम्हारा आन्तरिक शुद्ध भाव उमड़ आवे, वह वस्तु देखते ही तुम ध्येय को ही देख रहे हो, ऐसा प्रतीत होने लगे, तो जान लो कि तुमको ध्यान की सिद्धि हो गई । तुम्हारे विरोधी की ओर दृष्टि जाय किन्तु यदि तुमने वास्तविक ध्यान किया होगा तो ध्येय का कोई भी गुण उसमें दिखाई देते ही तत्काल तुम विरोध को भूल जाओगे । उसने जो कुछ तुम्हारा अहित किया है उसे भी विस्मृत कर दोगे और उससे प्रेमपूर्वक मिलोगे, यही ध्यान की सिद्धि है ।

ध्यान के समय ध्येय के प्रतिभान पूर्वक वृत्ति को एकाग्र करो और बचे हुए समय को जहाँ-तहाँ ध्येय के गुणों को तलाश में वृत्ति स्थिर किया करो । ढूँढ़ो और उन गुणों को धारण करो । ऐसा करने से तुम बहिर्मुख वृत्ति में भी जहाँ तहाँ ध्येय का ही दर्शन करते रहोगे । यही ध्यान का स्वरूप है ।

ध्यान करते समय नेत्र मूँदना आवश्यक है । नेत्र मूँदने से यह प्रपंचमय विश्व अदृश्य हो जाता है । विश्व को दूर हटा देना और ध्येय पर सब मनःशक्तियों को केन्द्रित कर देना ही ध्यान प्रधान उद्देश्य है, परन्तु केवल बाहर का दृश्य अदृश्य होने से पूर्ण ध्यान नहीं होता जब तक हमारा मन भीतर नवीन दृश्य निर्माण करता रहे । अतः भीतर के नेत्र भी बन्द कीजिए । इस प्रकार जब स्थूल और सूक्ष्म दोनों जगत् अदृश्य हो जाते हैं, तभी तत्काल और तत्क्षण एकाग्रता हो जाती है । ध्यान करने की विधि का उल्लेख सांख्य तथा योग दोनों ने ही बताया है, पर सांख्य का 'ध्यान निर्विषयं मनः' अर्थात् मन को निर्विषय बनाना, ब्लैंक बनाना महा कठिन है, परन्तु योग का ध्यान सबकी पहुँच के भीतर है । किसी वस्तु या मनुष्य का मानस-चित्र निर्माण कर उसके प्रति एकता, एकाग्रता करना व उसके साथ पूर्ण तदाकार हो जाना-इसी का नाम योग शास्त्र का ध्यान है। ऐसे ही ध्यान के अभ्यास से प्रार्थना में शक्ति का संचार होता है ।

चतुर्थ तत्त्व-आत्म निवेदन

यह प्रार्थना का अन्तिम तत्त्व है । अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक प्रेम से आप अपना निवेदन प्रभु के दरबार में कीजिए । आपकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होंगी । जहाँ कहीं भक्तों ने दीनता से प्रार्थना की है, उस समय उनका अन्तः करण, उनका चित्त प्रभु प्रेम में सराबोर हो गया है, उस प्रशान्त स्थिति में गद्‌गद् होकर उन्हें आत्मसुख की उपलब्धि हुई है। एक भक्त का आत्म निवेदन देखिए । वह कहता है, "हे दयामय प्रभु ! मैं संसार में अत्यन्त त्रसित हूँ, अत्यन्त भयाकुल हो रहा हूँ । आपकी अपार दया से ही मेरे विचार आपके चरणों में खिंचे हैं । मैं अत्यन्त निर्बल हूँ- आप मुझे सब प्रकार का बल दीजिए और भक्ति में लगा दीजिये।" गिड़गिड़ा कर प्रभु के प्रेम के लिए, भक्ति के लिए, आत्म निवेदन करना सर्वोत्तम है । आपका आत्म-निवेदन आशा से भरा हो, उसमें उत्साह की उत्तेजना हो, आप यह समझें कि जो कुछ हम निवेदन कर रहे हैं वह हमें अवश्यमेव प्राप्त होगा । आप जो कुछ निवेदन करें वह अत्यन्त प्रेम भाव से होना चाहिए । उत्तम तो यह है कि जो निवेदन किया गया हो वह सब प्राणियों के लिए हो, केवल अपने लिए नहीं ।

प्रार्थना के भिन्न-भिन्न रूप

वैज्ञानिकों का सिद्धान्त है कि प्रत्येक चुम्बक के दो ध्रुव होते हैं- नेगेटिव तथा पाजिटिव । धन ध्रुव एवं ऋण ध्रुव की भाँति प्रार्थना की भी दो कोटियाँ मानी जा सकती हैं । (१) आकर्षक प्रार्थना (२) प्रवाहक प्रार्थना ।

आकर्षक प्रार्थना

आकर्षक प्रार्थना वह आध्यात्मिक प्रयोग हैं जिनके द्वारा विश्व के अनन्त शक्ति भंडार से वायुमण्डल में विकीर्ण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थरथराने वाली ओज या दिव्य शक्ति के महासागर से दृढ़ संकल्प के अनुसार आत्म शक्ति खींचते हैं । कुछ समय के निमित्त मन एक सचेतन चुम्बक बन जाता है । जो स्थान यह वायुमण्डल में घेरता है, वह भी वैसा ही महान् आकर्षण केन्द्र बन जाता है । ''मैं शक्ति हूँ, मैं आत्म-शक्ति को आकर्षित करने वाला चुम्बक हूँ ।''- इस सत्ता से अनुप्राणित एवं सद्बुध मस्तिष्क-रूपी यन्त्र वायुमण्डल से ओजस् शक्ति खींचता है और महाशक्ति पुंज बनता है । ''मैं शक्तिपुंज बनता है । ''मैं शक्तिपुंज हूँ । महान् आकर्षण-केन्द्र हूँ।'' ऐसा उच्चारण करते ही एकदम एक विशेष विचार-अनुक्रम उत्पन्न होता है । ज्यों ही तुम ध्यान में एकाग्र होते हो, झट गति की थरथराहटें उत्पन्न होने लगती हैं । आकर्षक प्रार्थना आध्यात्मिक शक्तियों के उस प्रयोग को कहते हैं जिसके द्वारा विश्व व्याप्त अनन्त शक्ति भण्डार से बुद्धि, शक्ति व प्रेम की तरङ्गों का आकर्षण होता है ।

प्रवाहक प्रार्थना

द्वितीय प्रकार की प्रार्थना ''प्रवाहक प्रार्थना'' है । प्रवाहक प्रार्थना द्वारा पहली प्रकार की मानसिक तरङ्गों को कार्य में लगाया जाता है । अनेक साधक, महात्मा, मानसोपचारक आध्यात्मिक चिकित्सा में प्रवाहक प्रार्थना का ही उपयोग किया करते हैं । रोगी को बिना देखे, रोगी चाहें कितने भी हजार मील की दूरी पर हो, इसी प्रार्थना से इलाज किया जाता है । गरीब, दरिद्र, दिवालिए और बेरोजगारों की समृद्धि के लिए प्रवाहक प्रार्थना का ही विशेष उपयोग किया जाता है । शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक कठिनाइयों को, इसी प्रार्थना के असीम बल से दूर किया जाता है । इस प्रार्थना में व्यक्त सद्भावनाएँ लहरों के रूप में ईथर पदार्थ के अप्रत्यक्ष माध्यम द्वारा बिना रोक-टोक के हजारों रुकावटों को पार करती हुई यथास्थान पर पहुँचती हैं । एकत्रित विचारों के सूक्ष्म परमाणुओं द्वारा आकाश में एक शक्तिशाली वायुमंडल विनिर्मित होता है और प्रार्थी की इच्छाशक्ति एवं एकाग्रता के अनुसार इच्छानुकूल सिद्धि प्राप्त होती है ।

''संसार में सबका भला हो । सबकी खैर हो सर्वत्र एक्य मंगल का प्रसार हो । आरोग्य, आनन्द, शान्ति, प्रेम, सुख-समृद्धि की वर्षा हो । हे करुणानिधान ! आपकी मंगल कामना पूर्ण हो ।'' ऐसी मंगलकारी प्रार्थना से आसपास के वायुमण्डल में सुख-शान्ति, आरोग्य भ्रातृ-भाव तथा प्रेम के विशुद्ध, परमाणु विकीर्ण होते हैं । दरिद्रता, व्याधि, रोग, शोक, लड़ाई-झगड़े का दूषित वातावरण नष्ट होकर प्रेम तथा भ्रातृ-भाव का साम्राज्य फैलता है ।

एक अनुभवी प्रार्थी का कथन है- कि ''कोई भी सिद्धान्त जिसमें कुछ शब्द समूहों में सूचना देने मात्र से प्रार्थना का अर्थ सिद्ध हो जाना बताया जाता है, वह अवश्य अधूरा है, क्योंकि सूचना से उस शक्ति को कार्य में लाने का प्रयत्न किया जाता है, जो बहुधा उसमें वर्तमान ही नहीं रहती और जिस शक्ति को उपार्जन करने का साधन भी उसमें नहीं है, यह है प्रार्थना का एकांगित रूप ।''

ऊपर जिन ''प्रवाहक एवं आकर्षक प्रार्थनाओं का उल्लेख किया गया है वह अन्योन्याश्रित हैं । सर्वप्रथम हमें वायुमण्डल से दीप्तबल खींचना पड़ता है । आध्यात्म बल की निरन्तर वृद्धि से मन अमित शक्ति आकृष्ट करता है । मन की एकाग्रता द्वारा आत्मशक्ति को खींचकर हम जब अपने दीप्तबल का संचय करेंगे, तभी हम भौतिक जगत् पर नियमन कर सकते हैं । इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रवाहक प्रार्थना आकर्षक प्रार्थना के बिना व्यर्थ है एकांगी है ।

सर्वप्रथम दीप्तबल का संग्रह कीजिए । आकर्षक प्रार्थना का प्रयोग इस दिशा में बड़ा गुणकारी सिद्ध होगा। आकर्षक प्रार्थना बलवती इच्छाशक्ति, उच्चकोटि के ध्यान, आत्मसंयम एवं एकाग्रता पर कार्य करती है । अपनी अटल इच्छाशक्ति द्वारा प्रार्थी वायुमण्डल से दीप्तबल का संग्रह कर सकते हैं। दीप्तबल से युक्त प्रार्थी ऐसे चुम्बक बन जाते हैं कि निम्नकोटि के विचार वाले तथा अस्थिर चित्त-वृत्तियों वाले अनेक व्यक्ति उनकी ओर आकर्षित होकर चले आते हैं । सारा संसार उनके लिए निम्नकोटि का है । चुम्बक का धनात्मक केन्द्र उनके ऋणात्मक केन्द्र को आकर्षित करता है ।

दीप्तबल कैसे संग्रह करें ?

प्रतिदिन एक निश्चित स्थान पर कुछ काल के लिए अपनी सम्पूर्ण भावनाओं को हटाकर नेत्र मूँद कर सुखासन से बैठ जाओ । शरीर एवं मन को शिथिल कर लो । शिथलीकरण पूरा-पूरा रहे । तनाव (Tension) की अवस्था में कुछ न होगा । जब शरीर तना हुआ होता है, तो ज्ञानतन्तु भी कसे रहते हैं । मांस पेशियाँ भी सख्त रहती हैं अतएव हमसे कुछ भी नहीं हो पाता । शिथिल हो जाइये । शरीर का कोई अवयव तना हुआ न रहे, मन निश्चेष्ट रहे, ढीला हो जाय, भारीपन या तनाव बिल्कुल न रहे । सब प्रकार के विचारों को हटाकर अलौकिक शक्ति से तादात्म्य की भावना पर दस मिनट तक चित्त को एकाग्र करो । दृढ़ता से निम्न भावना पर मनः शक्ति डालो-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

''मैं अपने हृदय में विराजे हुए शक्तिशाली सुख स्वरूप परमात्मा की ही प्रार्थना करता हूँ । मैं अपनी समस्त वृत्तियों को मनःक्षेत्र में स्थित दैवी शक्ति में ही केन्द्रित करता हूँ । अहा ! मेरे अन्तर में परमात्मा का सुदिव्य प्रकाश है । मैं अपनी शक्तियों का संचालक हूँ । मैं अपने मन को कभी भी अस्थिर, चलायमान और विकृत वासनाओं के वशीभूत नहीं होने देता । मैं अमित शक्तिशाली आत्मा हूँ । मैं परम तेजस्वी शक्ति-पिण्ड हूँ । परमात्मा की महान् शक्तिशाली शक्तियों से मेरा मन निरन्तर भरपूर हो रहा है । मेरे अन्तःकरण में निर्मल प्रेम, अचल श्रद्धा तथा अपूर्व उत्साह का प्रभाव प्रकट हो रहा है । मेरे अन्तर में ईश्वरीय प्रकाश का केन्द्र है । वही केन्द्र मेरी शक्ति का प्रधान स्थान है । मेरे हृदय में परमात्मा का दिव्य प्रकाश-ज्ञान सूर्य उदय हो गया है । संसार के क्षुद्र लालच, अभिमान, भोगविलास, मुझे इस प्रकाश केन्द्र से हटा नहीं सकते । मैं उस महाशक्ति-अनन्त बल का दिव्य अंश हूँ ।

''मैं ब्रह्माण्ड की प्राणशक्ति एवं जीवन-शक्ति को अपने अन्दर संग्रह कर रहा हूँ । उससे ओत-प्रोत हूँ । मेरे रोम-रोम में वही अद्‌भुत शक्ति भर रही है । मुझ में अनन्त परमात्म देव का प्रकाश होने लगा है और मेरा मन दृढ़ बलशाली शक्ति सम्पन्न बन रहा है ।''

उक्त प्रकार के संकेतों से शान्त होकर ऐसा सुन्दर मानसिक वातावरण विनिर्मित होता है, जिससे जगत् पिता और हमारे मध्य में एक तादात्म्य स्थापित होता है । हममें शक्ति की विद्युत् तरंगों का संग्रह होता है । इस आकर्षक प्रार्थना की तीन अवस्थाएँ हैं ।

आकर्षक प्रार्थना की तीन अवस्थाएँ

परम पिता से निःसंकोच भाव से आवश्यक शक्ति की याचना को हम प्रथम अवस्था के अन्तर्गत ले सकते हैं । इस मत के अनुसार साधक को एकान्त स्थान में शान्तचित्त से लेटकर अपने अंग-प्रत्यंगों को शिथिल कर अथवा सुखासन से सीधे बैठकर परम पिता से अभीप्सित शक्ति की याचना करनी चाहिए । यदि आप शुद्ध एवं सच्चे हृदय से तन्मय होकर प्रार्थना करोगे तो परमेश्वर आपकी पुकार अवश्य सुनेंगे और ठीक उसी पुकार सुनेंगे जिस प्रकार आप किसी के शब्दों को सुनते हैं, यह प्रथमावस्था हुई ।

द्वितीय अवस्था वांछित शक्ति को अपने में पूर्ण रूप से लबालब भर देना है । आपको ऐसा मानसिक चित्र बनाना चाहिए जिसमें आप अपने आपको दीप्तबल से उद्वेलित होता हुआ देखें । कल्पना को उत्तेजित कीजिए और उसके द्वारा मन में एक ऐसा शक्तिशाली स्वरूप बनाइये जिसमें आप अपने आपको उस दिव्य शक्ति से भरा-पूरा देखें । नेत्र मूँदकर आप ऐसे ध्यान-मग्न हो जाइये जैसे बहुत दूर एक ज्योतिपुंज है और सूर्य जैसी उसकी किरणें सृष्टि में बिखरी चली जा रही हैं । कल्पना कीजिए कि ये किरणें मेरी हैं। वे मेरे ही लिए आई हैं । वह सारी की सारी ज्योत्सना मेरी है । मेरे ही लिए है । ज्योत्सना चिन्तन का अभ्यास क्रमशः उत्तरोत्तर बढ़ता जाना चाहिए । आप में शक्ति का प्रवाह भरता है या नहीं- इस विषय में दूसरे से न कहें । निसर्ग को अपना कार्य करने दें । इस अवस्था में आप परम पिता की गोद में खेलते हैं ।

इसके पश्चात् तृतीय अवस्था का प्रारम्भ होता है । इसे 'अनुभव' की अवस्था कहते हैं । जिस शक्ति या बुद्धि की आपने याचना की होगी, क्रमशः वह आपको प्राप्त होने लगेगी । उसका कुछ-कुछ अनुभव भी होगा । आप इस धारणा को लेकर अपने नित्य के काम धन्धे में प्रवृत्त हों कि आपको मनोवांछित फल मिल गया है, आप जिसकी कामना करते थे, वह क्रमशः उपलब्ध हो रहा है, आप अपने आदर्श को धीरे-धीरे प्राप्त करते जा रहे हैं । आप में 'दीप्तबल, आ रहा है । नेत्रों में, मुख मण्डल में, अंग-प्रत्यंगों में दीप्त बल भर गया है । संक्षेप में, जिन वस्तुओं की आपने प्रार्थना की है उन्हें अपने में आता हुआ देखो । इस प्रकार नव शक्ति से सम्पन्न होकर आप प्रवाहक प्रार्थना से कार्य ले सकते हैं । क्रमशः तुम्हें सत्य का प्रकाश दृष्टिगोचर होने लगेगा ।

सकाम तथा निष्काम प्रार्थनाएँ

प्रार्थना के दो और भेद हैं- सकाम तथा निष्काम । इन दोनों में कौन सी अधिक महत्वपूर्ण हैं, यह निर्णय करने से पूर्व हमें इनका विभिन्न स्वरूप समझना चाहिए । पाश्चात्य देशों में सर्वत्र सकाम प्रार्थना का प्रचार है । इसके विपरीत प्राचीन आर्यों में निष्काम प्रार्थना का ही अधिक महत्व था। दोनों ही मार्ग वाले प्रार्थी मिलते हैं ।

सकाम प्रार्थना से कामनाएँ पूर्ण होती हैं, जिन वस्तुओं के लिए आग्रह किया जाता है, उनकी प्राप्ति होती है । इस बात को सिद्ध करने के लिए अनेक प्रमाण समय-समय पर 'यूनिटी' नामक अमेरिकन पत्रिका में प्रकाशित होते रहते हैं। यदि इन सब प्रार्थनाओं का संग्रह किया जाय, तो एक स्वतन्त्र पुस्तक तैयार हो सकती है । अतएव हम इन कथाओं का उल्लेखन कर यही निर्देश करेंगे कि जिस वस्तु के लिये विधिपूर्वक, सच्चे हृदय से प्रार्थना की जाती है वह अवश्यमेव प्राप्त होती है । ईश्वर प्रार्थना सुनते हैं तथा उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूर्ण करते हैं । इसमें किंचित भी सन्देह नहीं है । टेलीफोन के रिसीवर की तरह प्रार्थना साधन से सैकड़ों मील की दूरी पर बैठे हुए किसी हृदय से अपना सम्बन्ध जोड़ लेते हैं । प्रार्थना के लिये सच्ची निष्ठा, पूर्ण श्रद्धा एवं जीता-जागता विश्वास अपेक्षित है । साकार या निराकार, सगुण अथवा निर्गुण के व्यर्थ बकवास में मत पड़ो । सच्चे आत्म-चिन्तन द्वारा तुम आत्म-निवेदन के योग्य बन सकते हो । उसी के द्वारा तुम अपने शरीर की सीमाओं को उल्लंघन करके अध्यात्म मार्ग पर आरूढ़ हो सकोगे और परमात्मा का सजीव स्पर्श कर सकोगे । ईश्वर द्वारा हमें प्रत्येक वस्तु मिलेगी यह विश्वास हमारी प्रार्थना को अनुप्राणित करता रहे । यह विश्वास ही मनुष्य की आत्मा की चिर-सम्पत्ति है । बिना इस श्रद्धा के हमारी आत्मा आवश्यक पोषण नहीं पा सकती।

निष्काम प्रार्थना ही सर्वोत्तम है

हमारे प्राचीन मनीषियों ने निष्काम प्रार्थना को ही सर्वोत्तम माना है तथा उसकी महिमा का गुणगान किया है। ईश्वर के शरणागत होकर निष्काम (अर्थात् बिना किसी इच्छा अथवा कामना के) और प्रेम भाव से उसके नाम का अभ्यास करना, बिल्कुल स्वार्थ रहित होकर मानस-पूजा करना उनकी दृष्टि में बड़ा उत्तम था । वे अपने जीवन निर्वाह की समस्त चिन्ताएँ ईश्वर पर छोड़ देते थे । निष्काम प्रार्थना से ही वास्तविक शान्ति प्राप्त होती है । सकाम प्रार्थना में तो यह इच्छा बनी रहती है कि कुछ प्राप्ति होगी, फल मिलेगा, यह होगा वह होगा, किन्तु निष्काम में मन परिशान्त हो जाता है । निष्काम भाव से और गुप्त रीति से की हुई प्रार्थना का फल अल्पकाल में ही मिल जाता है । साधक को अपनी रुचि के अनुसार भगवान् की मूर्ति विशेष का या मानसिक स्वरूप का नित्य भक्तिपूर्वक पूजन करना और प्रार्थना करनी चाहिए । अहंकार रहित होकर अपना स्वार्थ भी भगवान् को अर्पण कर देना चाहिए । जिस प्रार्थी ने कामना, इच्छा, स्वार्थ को तिलांजलि देकर निष्काम प्रार्थना का आश्रय ग्रहण किया है, वह जब प्रार्थना में ध्यानावस्थित होता है, तो अपने भीतर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को उसके वास्तविक रूप में देखता है । उस समय उसे आत्मा की पूर्णता का भी ज्ञान हो जाता है और वह ईश्वरीय नियम की समता को भी देखता है । उसे विदित हो जाता है कि ईश्वर ने मनुष्य तथा सृष्टि को सर्वांगपूर्ण बनाया है । ईश्वर के शाश्वत संकल्प में पूर्णता, जीवन, प्रेम और सामंजस्य रहता है वह मनुष्य को तदनुसार विचारने का आदेश भी करता है । अतएव प्रतिदिन उसकी प्रार्थना करते रहो कि वह तुम्हें भलाई तथा कल्याण का मार्ग ही दर्शावे, प्रतिकूल हानिकार मार्ग से सदैव रक्षा करे । बीते हुए कटु अनुभवों, प्रतिकूलताओं को विस्मृतकर ईश्वर को स्थान पाने के लिए मन को खाली कर डालो ।

निष्काम प्रार्थना से मनुष्य को आन्तरिक शान्ति प्राप्त होती है, मन की कल्मष धुलती है, दैवी सम्पदा की वृद्धि होती है, आत्मबल बढ़ता है, तथा आत्म-ज्ञान प्राप्त होता है। आत्म-ज्ञान ही मनुष्य के जीवन का सर्वोच्च फल है किन्तु मोहवश मनुष्य सकाम प्रार्थना में ही अटका रहता है और अन्त समय उसे बड़ा पश्चाताप होता है ।

एकान्त में बैठकर करुण भाव से और गद्‌गद् वाणी से भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए कि "हे परमेश्वर ! मैं आपकी हृदय से स्मृति चाहता हूँ । जब सर्वशक्तिमान् सर्वाधार, सर्वलकमहेश्वर भगवान् सबके प्रेरक सर्वान्तर्यामी और सबके परम सुहृद हैं, तो आप मेरे भी सब कुछ हैं । मैं अपने मन, बुद्धि, शरीर, इन्द्रिय, प्राण और समस्त धनादि को आपके अर्पण करना चाहता हूँ और परमशान्ति एवं शाश्वत् शान्ति को प्राप्त करना चाहता हूँ । हे देवाधिदेव ! वही मुझे प्रदान कीजिए ।" तात्पर्य यह है कि इस सिद्धान्त के अनुसार प्रार्थी किसी भी जीव से न तो द्वेष रख सकता है, न स्वार्थ में अन्धा होकर संकुचित ही रह सकता है, ममता एवं अहंकार की दुर्द्धर्ष विभीषिकाओं से भी बच सकता है। भगवान् ने स्वयं ऐसे प्रार्थियों के लक्षण वर्णन करते हुए निर्देश किया है-

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुख क्षमी ।।
संतुष्टः सततं योगी पतात्मा दृढ़निश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।

(गीताजी १२/१३/१४)

अर्थात् जो सब भूतों में द्वेषभाव से रहित, स्वार्थ रहित, सब का प्रेमी और हेतु रहित दयालु हैं, तथा ममता से रहित और अहंकार से रहित सुख-दुःखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान् है, तथा जो योगी निरन्तर संतुष्ट है तथा मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए हैं और मुझमें दृढ़ निश्चय वाला है वह मुझमें अर्पण किए हुए मन, बुद्धि वाला मेरा भक्त मुझे प्रिय है ।

उपर्युक्त सिद्धान्तों के अनुसार निष्काम प्रार्थना में क्षुद्रता तथा संकुचितता की गन्ध तक नहीं रहती । प्रार्थी सबका, समस्त चराचर का कल्याण चाहता है । इस प्रकार की प्रार्थना से मनुष्य के जन्म-जन्मान्तर की मोह निद्रा टूटती है । मन वासनाओं, स्वार्थों, प्रतिकूलताओं का परिक्षालन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होता है, मन को आन्तरिक शान्ति, समत्वबुद्धि, विवेक, सौष्ठव, तथा दैवी प्रेरणा प्राप्त होती है । ईश्वर की अचिन्त्य शक्ति मन को आन्तरिक प्रबोध देती है ।

तृष्णा, आसक्ति, स्वार्थ से परे अनन्त आत्मा का परमात्मा में तादात्म्य कर देना चाहिए । जब तक तादात्म्य न होगा, दैवी आनन्द का अनुभव न हो सकेगा । यदि ऐसी बात न हो तो श्री गीताजी में भगवान् भक्ति को आकांक्षा, इच्छा एवं तृष्णा से रहित न बतलाते । यह भाव फ्रांसीसी भक्त कनैला की एक प्रार्थना में बड़ी सुन्दर रीति से स्पष्ट किया गया है । वह भक्त प्रार्थना करता है- "प्रभो ! मैं नहीं जानता कि आप से क्या माँगू । हे पिता ! आप अपने बच्चे को वह वस्तु प्रदान करें जिसकी याचना करना वह स्वयं नहीं जानता । भगवान् ! मैं न शान्ति चाहता हूँ न सूली। मैं तो अपने आप के श्रीचरणों में भेंट करता हूँ, अपने हृदय को खोलकर आपके सम्मुख रहता हूँ । प्रभो ! आप मेरी आवश्यकताओं को देखें और उन्हें अपनी असीम करुणा से कम करें । आप चाहे मुझे मारें, चाहे मेरी रक्षा करें, चाहे मुझे ठुकरावें, और चाहे उबारें । मैं अपने आपको आपके श्री चरणों में भेंट चढ़ाता हूँ । मैं आपके सम्मुख आत्म-समर्पण करता हूँ । मेरे अन्दर आप काम कीजिए । मेरी इच्छा है कि आपके इच्छानुकूल कार्य करूँ जिससे आप प्रसन्न हों । भगवान् ! आप मुझे प्रार्थना करना सिखावें । मैं ऐसी प्रार्थना करूँ कि आपको अपने में पाऊँ ।"

प्रार्थना का एक और रूप

प्रार्थना का एक प्रकार और भी है । उसे सकाम तथा निष्काम का मिश्रण कहा जा सकता है । श्रीगीता जी में भगवान् श्री कृष्ण ने इस तृतीय प्रकार की प्रार्थना पर विशेष जोर दिया है । इसका आशय है कि काम करते जाओ और राम भजते जाओ । 'काम' और 'राम' साथ-साथ चलने दो । कर्म करो, अधिकारी बनो, सुपात्र बनो फिर माँग पेश करो केवल ख्याली पुलाव न पकाओ । इस प्रकार की पुरुषार्थ पूर्ण प्रार्थना द्वारा अधिकारी और उपयुक्त पात्रों को ही उपहार मिलते हैं ।

सकाम आराधना से अपनी इच्छित वस्तु के प्रति उत्कृष्ट अभिलाषा तथा उसकी प्राप्ति के लिए निश्चयपूर्ण आशा जागृत होती है । यह जागरण इष्ट सिद्धि का द्वार है । जहाँ तीव्र चाह होती है वहीं राह निकल आती है । रामायण का मत है- **"जेहिकर जेहि पर सत्य सनेहू, सो तेहि मिले न कछु सन्देहू ।"** श्रीगीता में भी **"अनन्य चैन्तयन्तो मां ये जना पयुर्पासते"** श्लोक में इसी भाव की पुष्टि है । निर्बल इच्छा से नहीं वरन् उत्कृष्ट अभिलाषा से अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है तथा तीव्र इच्छा के आकर्षण से अनुकूल परिस्थितियाँ एकत्र होकर सफलता को निकट खींच लाती हैं ।

इस प्रकार पूजा, आराधना द्वारा इष्ट सिद्धि के प्राप्त होने में सहायता मिलती है । प्रार्थना ऐसी होनी चाहिए जिससे उत्कृष्ट अभिलाषा, दृढ़ता, सफलता की आशा, प्रयत्नशीलता, अभीष्ट योग्यता, विवेक शीलता एवं सात्विकता की जागृति हो । ऐसी कर्म-मार्गी प्रार्थना बड़ी बलशालिनी होती है तथा उससे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में ऐसे अवसर उपस्थित होते हैं जिसमें कठिन प्रतीत होने वाले कार्य बड़ी सुगमता से पूरे होते हुए देखे जाते हैं । उसे प्रार्थना का चमत्कार कह सकते हैं ।"

स्मरण रखिए, ईश्वर प्रार्थना एक आध्यात्मिक व्यायाम है । आत्मिक स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए हर व्यक्ति को नित्य नियमपूर्वक प्रार्थना करनी चाहिए । सकाम उपासना का भी बहुत उत्कृष्ट प्रभाव पड़ता है तथा मनोबल की वृद्धि द्वारा इच्छित कामनाएँ पूर्ण होने में आश्चर्यजनक सहायता मिलती है, परन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रयत्न तथा पुरुषार्थ ही सफलता के निर्माता हैं । भिक्षा वृत्ति पर कदापि निर्भर न रहना चाहिए । भाग्य तथा प्रारब्ध भी कोई स्वतन्त्र वस्तुएँ नहीं, पुराना पुरुषार्थ ही है । जो कुछ मिलता है, पुरुषार्थ से मिलता है ।

प्रार्थना भी एक प्रकार का पुरुषार्थ है !

प्रार्थना हमारे पुरुषार्थ को प्रदीप्त करती है । परमात्मा उसी की सहायता करता है, जो स्वयं अपनी सहायता करता है । भिक्षुकों का यहाँ भी अपमान है और परमात्मा के दरबार में भी कहा भी है-

माँगन मरन समान है, मत कोई मांगो भीख ।
माँगन से मरना भला, यह सतगुरु की सीख ।।

माँगने वाली प्रार्थना के विरोधी सबसे अधिक बौद्ध हुए हैं । बुद्ध भगवान् कर्मयोगी थे और कर्मयोगी भी ऐसे कि जगत् भर में एक । हमें पुरुषार्थ पूर्ण प्रार्थना करनी चाहिए। मजदूरों को उनके परिश्रम के अनुसार यहाँ इस दुनियाँ में भी मिलता है और परमात्मा भी उन्हें देने को सदैव प्रस्तुत रहता है । हमारी प्रार्थनाएँ पुरुषार्थ का एक प्रधान अङ्ग होनी चाहिये, भिक्षा का अंग नहीं । प्रयत्न पूर्ण सकाम प्रार्थना भी निष्फल नहीं जाती, प्रत्युत इनका इहलोक एवं परलोक में सर्वत्र सन्तोषजनक परिणाम मिलता है । प्रार्थना वास्तव में मानसिक संस्कारों को क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत करने का, कर्म-मार्ग में प्रवृत्त होने का एक नाम है । इसी में ज्ञान है, इसी में अभ्यास है, इसी में पूजा है, इसी में पाठ है । यह प्रार्थना है हिन्दू धर्म का सच्चा स्वरूप ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामुदायिक प्रार्थना बलशाली है

प्रार्थना व्यक्तिगत एवं सामुदायिक दोनों प्रकार से की जा सकती है । व्यक्तिगत प्रार्थना से हम केवल अपनी भलाई की भावनाएँ प्रकट करते हैं । अपने तक ही सब कुछ परिमित रखते हैं, यह दृष्टिकोण कुछ संकुचित सा है। अकेले-अकेले केवल अपनी भलाई के लिये प्रार्थना करने में वह शक्ति नहीं जो सामूहिक प्रार्थना में होती है । वेदों में जहाँ भी प्रार्थना सम्बन्धी ऋचाएँ और मन्त्र दिये गये हैं, उक्त वैदिक प्रार्थनाओं में एक व्यक्ति के लिये नहीं, किन्तु समुदाय के लिये, सब समाज के लिये, राष्ट्र के अभ्युत्थान के निमित्त, विश्व के कल्याण के लिये प्रार्थनाएँ की गई हैं। विश्व की भलाई में हमारी भलाई सम्मिलित है । सम्पूर्ण विश्व के साथ हम हैं- यह भाव लेकर की गई प्रार्थना उच्चता है ।

वेदों का मूल मन्त्र गायत्री है । उस गायत्री मन्त्र में **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** का अर्थ वही है कि 'जिस सर्वश्रेष्ठ आनन्ददायक तेज से सब विश्वव्याप्त हो रहा है उस अत्यन्त आनन्ददायक तेज का हम ध्यान करते हैं । वह 'हमें सद्बुद्धि दे, हमारे मन में शुभ विचार उत्पन्न करे ।'

'हे देव ! मेरा या इसका कल्याण कर दीजिए, दूसरों का हो या न हो, इसकी मुझे चिन्ता नहीं ।' ऐसा भेद-भाव वैदिक प्रार्थनाओं में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता । वहाँ जो कुछ माँगा गया है, वह समस्त प्राणियों के लिए है । उसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थों तक सीमित नहीं । 'प्रार्थना, शब्द का 'प्र' उपसर्ग अधिक अर्थ से बना है जिसका अभिप्राय है सब प्रकार के समाज के लिए, विश्व में सबके कल्याण के लिए याचना करना विनीत भाव से निवेदन करना है । यह निवेदन अपने तक ही मर्यादित नहीं है । इसके अन्तर्गत संसार के समस्त प्राणी आ जाते हैं ।

वस्तुतः हमें एकत्र होकर सच्चे, निष्कपट एवं विशुद्ध हृदय से सब भेद भाव त्यागकर सामूहिक (अथवा व्यक्तिगत जैसी अनुकूलता हो) प्रार्थना करनी चाहिए और स्वयं तथा प्राणिमात्र का कल्याण करना चाहिए, साथ-साथ प्रार्थना के पवित्र कार्य का उत्तरोत्तर प्रचार करना चाहिए ।

हममें से प्रत्येक का कर्तव्य है कि प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व जागृत हो कुछ अपने हृदयस्थ आत्मा से परम-पिता परमात्मा का साक्षात्कार करे और अपना रोम-रोम पवित्र करले । शान्ति को प्रवाहित होने दे । विशुद्ध हृदय से महाप्रभु के अनन्त उपकारों का आभार मान कर समग्र प्राणीमात्र के जीवन, आनन्द, सुख वृद्धि के लिये प्रार्थना करे । इस निर्मल विशुद्ध उपासना से परमात्मा का दिव्य स्पर्श आपकी आत्मा को होगा । आपके समस्त मनस्ताप और क्लेश भस्मीभूत होकर नवजीवन और नवीन बल प्राप्त होगा और जीवन परम शान्ति और सुखी होगा । यह क्लेशों से मुक्ति का सुगम उपाय है । यही प्रार्थना का रहस्य है ।

आशावादी प्रार्थना या भावना

जो लोग यह कहते हैं-''मैं मूरख खल, कामी'' मैं मूर्ख हूँ, मैं पाप में पड़ा हूँ, मुझे पाप-पंक से निकालिए ।'' वह बड़ी भूल करते हैं । ऐसे प्रार्थियों का विश्वास पाप में है। पाप में परमात्मा कब मिला है ? आपको तो प्रार्थना में कहना चाहिए ''हे परमेश्वर आप तेज पुंज हो, आप बुद्धि के सागर हो, शक्ति के अथाह उदधि हो । मुझे भी तेज से परिपूरित कीजिए । बुद्धि उड़ेल दीजिए शक्ति से अंग-अंग भर दीजिए । प्रार्थना हमेशा आशावादी होनी चाहिए । मन में आशावादी भावना धारण कीजिए और कहिए- **''तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ।''** हे तेज के पुंज, मुझे भी तेज युक्त कीजिए । आपकी प्रार्थना में कोई निकृष्ट शब्द न रहना चाहिए । सावधान ! निकृष्ट शब्द घातक शत्रु है।

प्रार्थना के लिए सर्वोत्तम समय

प्रकृति की ओर ध्यान देने से विदित होता है कि प्रातः काल में ही सम्पूर्ण रस भरा हुआ है । भजन प्रार्थना के लिए वही अमृत बेला सर्वोत्कृष्ट है । ऋषिवर इसी ब्राह्ममुहूर्त में उठकर प्रार्थना में संलग्न होते थे । साधक को सूर्योदय से पूर्व ही उठ शौचादि कर्म से निवृत्त हो, स्नान आदि करने के पश्चात् शान्त चित्त हो ध्यान में प्रविष्ट होना चाहिए । ब्राह्ममुहूर्त सूर्योदय से डेढ़ घन्टे पूर्व प्रारम्भ होता है । ब्राह्ममुहूर्त में प्रार्थना करना बड़ा उत्तम एवं स्वास्थ्यप्रद है । निर्देश किया गया है कि-

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वास्थ्यो रक्षार्थ मायुषः ।
तत्रं दुःखस्य शान्त्यर्थे स्मरेद्धि मधुसूदनम् ।।

अर्थात् स्वस्थ मनुष्य को चाहिए कि वह अपने जीवन की रक्षा के लिए ब्राह्म-मुहूर्त में शैय्या त्याग कर उठ जाय तथा दुःखनाश के लिए भगवान् की प्रार्थना करे । शय्या पर दिन निकले तक पड़े रहने से अनेक प्रकार के दूषित विचार हमें आ घेरते हैं, मनोवासनाएँ उच्छृंखल हो उठती हैं और हम पतित हो जाते हैं । अधजगे व्यक्ति को काम वासनाएँ पटक-पटक कर मारती हैं । आलस्य की कुछ ऐसी प्रकृति है कि ज्यों-ज्यों उसमें अधिक प्रवृत्त हो, त्यों-त्यों वह अधिकाधिक सताता है । प्रायः सुबह की अमृत वेला में जब उठने का प्रयत्न किया जाता है तो बहुधा हमारी प्रमादिक एवं तामसिक वृत्तियों का उत्तम पवित्र भावनाओं से द्वन्द्व

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुआ करता है । एक ओर यह प्रवृत्ति होती है कि पड़े रहें, निद्रा का आनन्द लूटें, तो दूसरी ओर बुद्धि विवेक तीव्रता से हमें कर्तव्य की ओर सजग किया करता है । ऐसे द्वन्द्व में फँस कर दृढ़ इच्छा कर उठ जाना प्रत्येक दृष्टि से श्रेयस्कर है ।

सूर्योदय का आगमन जीवन-ज्योति के आगमन का सूचक है । वृक्षों की हिलती हुई पत्तियाँ, पक्षियों का सुमधुर कूजन, पुष्पों का नृत्य, मधुकरों की अमृतोपम गुंजार सबकी सब आनन्द विभोर होकर स्वर्गीय आनन्द की सृष्टि करती हैं । सूर्योदय की प्रथम रश्मियों के स्पर्श मात्र से समस्त प्रकृति गद्‌गद् हो चहुँ ओर सुगन्धित सौरभ, मतवाली महक, अलौकिक आनन्द, सुमधुर गुंजन, अनूठी कान्ति बिखेरती फिरती है । ऐसे सुन्दर समय में साधक ईश्वरीय आनन्द से विभोर हो अन्तःकरण का कल्मष धो डालता है और परम श्रद्धा एवं दृढ़ विश्वास से दोनों हाथ जोड़ कर ऊपर उठाता है और प्रार्थना प्रारम्भ करता है:-

'हे लोकेश ! हे चैतन्यमय आदि देव ! हे श्रीकान्त ! हे विष्णु ! आपकी आज्ञा से प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठ कर आपकी प्रसन्नता के लिए मैं दिन की यात्रा का प्रारम्भ करता हूँ । हे प्रभो ! मैं समस्त जीवों को क्षमा करता हूँ, सबका कल्याण हो । सब दुःखों से पार हों, सब कल्याण का दर्शन करें । सबको सब कुछ प्राप्त हो, सब सभी जगह आनन्दित हो जायँ । दुर्जन सज्जन हो जायँ, सज्जन शान्ति प्राप्त करें, शान्त बन्धनों से मुक्त हो जायँ और दूसरों को मुक्त करें ।

प्रार्थना के पश्चात् सूर्य की रश्मियों को अपने ऊपर लेना चाहिए । सूर्य को अर्घ्य देना, सूर्य भगवान् के प्राथमिक दर्शन करना, प्रातःकालीन वायु में दीर्घ श्वाँस-प्रश्वाँस लेना, फुफ्फस के समस्त विकारों को दूर कर, समस्त शरीर में प्राण शक्ति का संचार करता है । प्रातःकालीन सौरभ युक्त वायु स्मरण शक्ति को बढ़ाने और कल्पना की अभिवृद्धि करने वाली है ।

प्रातःकाल की ही भाँति सन्ध्यावेला सूर्य छिपने से कुछ पूर्व गौधूलि के समय भी नित्य-नियमित रूप से प्रार्थना का क्रम चलना चाहिये । किसी ऐसे मन्दिर में चले जाइये जहाँ का वातावरण शान्त हो । प्रार्थना-मन्दिर भी उत्तम है क्योंकि यहाँ सब स्त्री पुरुष बालक सम्मिलित बैठ कर उपासना में प्रवृत्त होते हैं । प्रार्थना मन्दिर से जो विश्वकल्याण की सूक्ष्म तरंगें सम्मिलित रूप में निकलती हैं, उनसे आध्यात्मिक उन्नति होती है और अदृश्य रूप से रोगी, दुखियों को सहायता मिलती है ।

रात्रि में सोने से पूर्व प्रार्थना करना अत्यावश्यक है। शैय्या पर बैठकर या लेटकर, जैसा रुचे शिथलीकरण कीजिए। फिर रात्रि सुखकर हो, आनन्ददायिनी हो, स्वप्नों से छुटकारा मिले-इस भावना को लेकर निद्रा में प्रविष्ट होना अत्यन्त कल्याणकारी है । रात्रि के समय निद्रावस्था में प्रत्येक मनुष्य का जीवात्मा स्थूलोपाधि से पृथक् होकर अपने निज लोक में प्रविष्ट हो इष्टगुरु से ज्ञान प्राप्त करता है । उस समय जीवात्मा की सन्धि परमात्मा से स्वयमेव ही होती है । उस समय जीवात्मा को शरीर की सुध नहीं रहती । शरीर तो केवल मशीन की भाँति स्वमेव क्रिया करता रहता है और अपने राग द्वेष के अनुसार ब्रह्मी भावों प्रवाहों से प्रभावित होता रहता है । जो-जो प्रार्थनाएँ निद्रा से पूर्व हम करते हैं, उनकी प्रतिक्रियाएँ निद्रित अवस्था में निरन्तर चला करती हैं । अतः निर्विकार एवं शान्त होकर साधक को प्रार्थना करनी चाहिए । इससे साधक अपनी अज्ञात चेतना को बहुत ऊँचे लोक में सरलता से ले जा सकेगा ।

जिन जिज्ञासुओं के मन वश में नहीं हैं, उन्हें निद्रा में बड़ी कठिनाई पहुँचती है क्योंकि मन दुश्चिन्ताओं एवं कुवासनाओं की ओर स्वभावतः दौड़ता है । उन्हें नींद से जागकर पुनः भोजन करना चाहिए चाहिए। इस प्रकार वह स्मरण रखना चाहिए कि ब्रह्मांड में पिड के परस्पर सम्बन्ध के लिए रात्रि का प्रार्थना में हमें बहुत सतर्क रहना अनिवार्य है ।

प्रार्थना तीनों कालों में की जाती है-- प्रातःकाल, मध्यान्ह, तथा सायंकाल । प्रातःकाल की प्रार्थना सर्वोत्कृष्ट श्रमित फलदायिनी है । उत्तम प्रार्थना ब्राह्म मुहूर्त की अमृत वेला में होती है । यह वह समय है जब प्रातःकाल के आक्रोश में तारे झिल-मिलाते रहते हैं । सूर्य उदय से लगभग डेढ़ घण्टे पूर्व यह पुनीत समय प्रारम्भ होता है । जिस समय तारे लुप्त हो जायँ, उस समय की प्रातः संध्या मध्यम श्रेणी में परिणित हो जायगी। सूर्योदय के पश्चात् की प्रार्थना में वह तीव्रता नहीं रहती । अतएव उसे कनिष्ठ कहते हैं।

इसी प्रकार सायं संध्या के भी तीन विभेद हैं-- सूर्य अस्त होने के पूर्व जो संध्या की जावे, यह उत्तम कहलाती है और सूर्य अस्त होने के पश्चात् और तारों के निकलने के पूर्व जो सन्ध्या की जावे, वह मध्यम कहलाती है । तारों के झिलमिलाने के पश्चात् जो संध्या की जाती है, वह कनिष्ठ कहलाती है ।

उपरोक्त शास्त्रीय संध्याकाल ब्रह्मांड और पिण्ड पर परस्पर निर्भर है । पृथ्वी एक बड़ा भारी चुम्बक है । उस पर सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रभाव भिन्न-भिन्न काल में भिन्न-भिन्न होता है । इसी प्रकार मनुष्य भी एक चुम्बक है । उसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थूल शरीर का सम्बन्ध पृथ्वी से है । शरीर रूपी चुम्बक का उत्तर सिरा मस्तिष्क, दक्षिण सिरा नाभि स्थान तथा मध्य स्थान हृदय है । चन्द्रमा का सम्बन्ध चित्त से है तथा सूर्य का आत्मा से और भिन्न-भिन्न समयों में की गई प्रार्थनाओं का भिन्न-भिन्न फल होता है । उपरोक्त काल इन्हीं वैज्ञानिक नियमों के अनुसार नियत किए गए हैं । सूर्योदय पर समस्त शक्तियाँ उत्तेजित रहती हैं, रात्रि के समय ब्रह्मांड की सर्व शक्तियाँ सो जाती हैं, अतः शरीर की समस्त शक्तियाँ भी सोई हुई सी रहती हैं । ब्राह्म मुहूर्त में की गई प्रार्थना प्रत्येक दृष्टि से उत्तम है ।

अतः निद्रा से जागृत होते ही साधक को चाहिए कि गुरुदेव का ध्यान करे और उनकी मूर्ति को अपनी मानसिक दृष्टि के सम्मुख समाधिस्थ प्रत्यक्षाकार करे, ऐसा करने से उसका चित्र एकाग्र होने लगेगा । उस समय जीवन के उच्च लक्ष्य पर चित्त का एकाग्र करे और श्रीगुरु से प्रार्थना करे कि वे इस कार्य में सहायता प्रदान करें । तत्पश्चात् मलमूत्र, शौचादि से निवृत्त हो दातुन और स्नान से शुद्ध होवे और शुद्ध वस्त्र धारण कर नियत स्थान पर ब्राह्म मुहूर्त में प्रार्थना करे ।

प्रार्थना द्वारा रोग-निवारण

प्रार्थना द्वारा जो-जो आश्चर्यकारी कार्य सम्पन्न हुए हैं उन सबका सविस्तार विवेचन एक पृथक्-पृथक् पुस्तक का विषय है । यहाँ हम कुछ उदाहरण ''कल्पवृक्ष'' मासिक पत्र से उद्धृत करते हैं । इनसे प्रार्थना की शक्ति स्पष्ट होती है ।

श्री नयनसिंहजी भंडारी, हवलदार लिखते हैं- ता० १७ अप्रैल ४३ की रात्रि को ग्यारह बजे हैं । इण्डियन मिलिटरी हॉस्पिटल सिकन्दराबाद में सब बीमार अपनी चारपाईयों पर कथाओं को लेकर निद्रादेवी से उसकी शान्तिमय गोद में शरण पाने के लिए मिन्नते कर रहे हैं । किसी-किसी को तो प्रार्थनाएँ स्वीकृत हो भी चुकी थीं किन्तु एक नवयुवक सरदार तेजसिंह हवलदार क्लर्क जिसके हाथ पर साईकिल से गिरकर टूट जाने के कारण प्लास्टर चढ़ा दिया गया था, दूसरे हाथ से दर्द वाले हाथ को थामे हुए विक्षिप्त की तरह रोता हुआ शान्ति की खोज में व्यग्र हो इधर-उधर घूम रहा था । लगभग पाँच मिनट उसे रोते हुए व्यतीत हुए होंगे कि मुझसे सहन न हो सका । उसकी दर्दनाक अवस्था पर मुझे असह्य वेदना हुई । ईश्वर की कृपा पर ध्यान गया । मैंने समझा एक महौषधि मिल गई । पीठ के बल लेटे-लेटे मैं निम्नलिखित प्रार्थना मूक भाव से करने लगा--

''हे करुणामय पिता ! यह दुःखी भी तो आपका ही शिशु है । यह रो रहा है, और आपको दया नहीं आ रही है भगवन् ! इसका दुःख हरो, प्रभु ! इसका दर्द ! हरो, हरो । शीघ्र हरो, करुणानिधान क्यों इसको रोते देख रहे हो, प्रभो ? आपका यह पुत्र पीड़ा से हाय-हाय कर रहा है, भगवन् ! और यह आपको बरदाश्त हो रहा है ? क्षमा करो भगवन् और शीघ्र इसका दुःख हरो, हरो, हरो । दयासिन्धु तुम्हारा हृदय तो बहुत ही करुणामय है । तुम करुणासागर हो । परन्तु मुझे आश्चर्य हो रहा है कि अपने पुत्र का रोना आपको कैसे सहन हो रहा है ? बस कीजिए महाप्रभु! अपने इस पुत्र का दुःख शीघ्र दूर कीजिए । प्रभो, अब अधिक न रुलाइये । इसकी पीड़ा हरिये, करुणासागर ।'

मैं कल्पना के जगत् में भगवान् का पल्ला पकड़े हुए बार-बार यह ऊपर लिखे शब्द भगवन् से गिड़गिड़ाते हुए आग्रह पूर्ण आवेश में कह रहा था । बीच-बीच में बार-बार दुःखी नवयुवक की ओर भगवान् का ध्यान आकर्षित करता था । मेरा यह गिड़गिड़ाना ठीक उसी प्रकार का था जिस प्रकार मैं बालकपन में अपनी स्नेहमयी माता का पल्ला पकड़ कर कलेवे के लिये रोटी में घी, मक्खन, या शहद के लिये गिड़गिड़ाता था । उक्त प्रार्थना करते समय मुझे ऐसा भाव होने लगा, जैसे भगवान् गौर से मेरी बातें सुन रहे हैं और कभी मेरे मुँह पर कभी सिक्ख नवयुवक के दुखते हुए हाथ पर देख कर कुछ गौर कर रहे हैं । यह अनुभव कर मुझे आशा हो गई कि ईश्वर उसका दुःख शीघ्र ही हरने वाले हैं और अभी हरते ही हैं । ऐसा समझते समय कि अभी हरते ही हैं-- मेरे मुँह से यह शब्द निकलते थे 'हरो भगवान् ! बहुत हो गया । अब कर दो इसका दर्द बन्द ।

ओह ! इतनी शीघ्र भगवान् को दुःखी पर करुणा आ गई । अधिक से अधिक दस पन्द्रह मिनट सच्ची हार्दिक प्रार्थना कर सका था कि दुःखी का रोना कम और फिर बन्द हो गया । फिर क्या था मेरी आँखें डबडबा आईं, हृदय प्रेम से गद्गद् हो गया और मैं भगवान् को यों धन्यवाद देने लगा--

'भगवान् ! आप कितने शीघ्र पसीजते हैं । कितनी जल्दी दर्द भरी पुकार सुन लेते हैं । करुणानिधान ! धन्य हो आपको । कितने दयालु हैं आप । पुकार की देरी थी कि आपका करुणा हस्त शीघ्र पीड़ा को हरने के लिये आतुर हो उठा ।

सच्चे हृदय से की गई प्रार्थना के करिश्मे अनेक बार देखे जा चुके हैं । निःसन्देह मनुष्य के अन्दर वह शक्ति है जो कि ईश्वर की सन्तान में होनी चाहिये । इस शक्ति को आन्तरिक प्रार्थना द्वारा जिसने जिस मात्रा में जागृत कर लिया, उसने उतना ही पुरुषार्थ कर दिखाया । अपने अन्तःकरण में इस दैवी शक्ति को उत्पन्न करने के लिये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईश्वर के प्रति पूर्ण विश्वास और भक्ति की परम आवश्यकता है । मेरा विचार है कि इसे उत्पन्न करने के लिये जितना अधिक हो सके, ईश्वर के असीम उपकारों का स्मरण, चिन्तन, मनन करना उचित है । जितनी ही अधिक मात्रा में हम ईश्वर के उपकारों का स्मरण करेंगे उतनी ही मात्रा में उन महाप्रभु पर हमारा प्रेम, श्रद्धा एवं भरोसा बढ़ेगा । ऐसे प्रार्थी के हृदय की ऐसी अवस्था हो जाती है कि वह परमेश्वर से सम्भाषण कर सकता है ।

श्री रामलालजी पहाड़ा प्रार्थना की रोग निवारक शक्ति को साबित करते हुए निम्न उदाहरण देते हैं-- एक स्त्री अपने पति के व्यवहार से क्षुब्ध होकर आत्म-हत्या करने को तत्पर थी । संयोगवश एक साधु पुरुष ने उस स्त्री को समझाया- 'हे देवि परमात्मा बड़े दयालु हैं । उनके दरबार में की गई विनय सदैव सुनी जाती है । तू प्रार्थना किया कर कि परमात्मा, मेरे स्वामी का मन शुद्ध कर दो । ऐसा करते-करते उस स्त्री ने अपूर्व आश्चर्य से देखा कि सचमुच उसके स्वामी का मन बदल गया है । वह अपनी स्त्री को प्रेम करने लगा और उसके व्यवहार से प्रसन्न रहने लगा । इस परिवर्तन को देखकर स्त्री को बड़ा आश्चर्य हुआ । उसे प्रार्थना की शक्ति में पक्का विश्वास हो गया ।

प्रार्थना द्वारा रोगों का अच्छा होना कोई नवीन बात नहीं है । पाश्चात्य देशों में इस शक्ति के प्रयोग चल रहे हैं। यदि रोगी प्रार्थना करता है, तब तो अविलम्ब रोग दूर हो जाते हैं । यह मनोविज्ञान की दृष्टि से भी सत्य प्रतीत होता है । उस दशा में प्रार्थना एक प्रकार का पुष्ट संकेत या सजेशन बन जाती हैं । मन की छिपी हुई शक्तियाँ शनैः शनैः प्रदीप्त हो उठती है । यदि प्रार्थी में विश्वास एवं श्रद्धा के तत्व उचित मात्रा में प्रस्तुत रहें, तो ये सजेशन (निर्देश) बड़ी तीव्रता से कार्यशील होते हैं । विकृत मन सुष्ठु होकर स्थिरता ग्रहण करता है । बुद्धि तथा सृजनात्मक कल्पना के सामंजस्य से कुछ ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं कि विकृति दूर होकर पुनः सन्तुलन स्थापित हो जाता है । अनिष्ट प्रभावों को दूर करने के लिये, निज मन की पीड़ाओं, व्याधियों, दुश्चिन्ताओं से मुक्ति के लिये प्रार्थना का अवश्य प्रयोग कीजिए । स्मरण रखिए, आपकी प्रार्थना जितनी श्रद्धा तथा विश्वासयुक्त होगी, उतनी ही सृजनात्मक कार्य संपन्न करने में समर्थ होगी । प्रार्थना द्वारा प्राचीन समय से रोग दूर किए जाते रहे हैं । मनुष्य पर जब कठिन अवसर आवें, तब प्रार्थना का आध्यात्मिक प्रयोग ही अमृतोपम ओषधि है ।

प्रार्थना सम्बन्धी गलतफहमियाँ

प्रार्थना का अर्थ भिक्षा माँगना नहीं है । कुछ व्यक्ति बिना परिश्रम, अध्यवसाय, कठिनाइयों के केवल मुफ्त का माल उड़ाने के लिये प्रार्थना करते हैं या यों ही ख्याली पुलाव पकाया करते हैं । प्रायः ऐसी प्रार्थनाएँ निष्फल जाती हैं । ये व्यक्ति शायद समझ लेते हैं कि ईश्वर रोने, गिड़गिड़ाने, भिक्षुक वृत्ति धारण कर हाथ पसारने से मनचाही वस्तुएं देते हैं । अधिकांश साधकों की प्रार्थनाएँ भिक्षुक जैसी मनोदशा पर अवलम्बित रहती हैं । दूसरे शब्दों में जिस प्रकार भिन्न-भिन्न कारणों से सामर्थ्यविहीन व्यक्ति एक अदृष्ट और अज्ञात रूप सामर्थ्य सत्ता से भौतिक सुख साधन माँगा करते हैं, उसी प्रकार अधिकांश आध्यात्मिक सज्जन भी कुछ अस्पष्ट सी अभौतिक सिद्धि माँगा करते हैं । यह मनोदशा द्वार-द्वार फिरने वाले भोजन-भिक्षुक की अन्तर्दशा से कुछ ही अंशों में उच्च है । यह कथन है तो कठोर, पर है सत्य। इस दुर्दशा का कारण है अन्धगतानुगति ।

ऐसे भिखमंगे प्रार्थी यह नहीं सोचते कि ईश्वर किसी की गिड़गिड़ाने, नाक रगड़ने या भिक्षा माँगने की ओर ध्यान नहीं देता । ईश्वर तो न्यायाकारी है । उसके सहस्रों नेत्र हैं । वह प्रत्येक प्रार्थना को सुनता है, किन्तु साधक के प्रयत्न, योग्यता, अध्यवसाय, तथा जागरूकता के अनुसार फल देता है । ईश्वर स्वयं कर्मरत है । उसे आलसियों, प्रमादियों, मन के मोदक खाने वाले ढपोलशंखों की थोथी कल्पनाओं के लिये समय नहीं है । उसके दरबार में तो कर्म फल के अनुसार ही मिलने का सुनिश्चित विधान है । वह अधिकारी तथा अनाधिकारी पात्रों को उनकी योग्यतानुसार ही उपहार देते हैं ।

हमारी प्रार्थनाएँ क्यों नहीं पूर्ण होतीं- इस विषय पर जार्ज-ई-कारपेन्टर साहब लिखते हैं कि या तो (१) प्रार्थना करने वाला उन वस्तुओं के पाने का अधिकारी ही नहीं है। वह पुरुषार्थी, पराक्रमी या जागरूक नहीं है अथवा (२) वह अज्ञानवश जो कुछ माँग रहा है, उससे उसकी कुछ हानि होने की सम्भावना है । जैसे कोई मनुष्य किसी धनवान् से जाकर दस हजार रुपये माँगे तो वह धनवान् उससे पूछेगा कि तुमने मेरा कौन सा कार्य सम्पन्न किया है कि तुम्हें दस हजार रुपया दिया जाय । यही प्रश्न भगवान् के सम्बन्ध में लागू होता है । वह आपसे पूछते हैं-- महोदय ! आप यह माँग तो पेश करते हैं पर आपने ऐसा कौन महत्त्वपूर्ण कार्य किया है कि यह माँग पूरी की जाय । आपने कौन-सा तप, त्याग या आत्म-बलिदान किया है कि जिसके बदले में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तुम्हारी कामना की पूर्ति की जाय । प्रार्थना की पूर्ति केवल मनसूबे बाँधने से, मनगढ़न्त बातें बना लेने से ही नहीं हो जाती प्रत्युत प्रार्थना की पूर्ति में प्रयत्न, योग्यता, पात्र का अधिकार तथा जागरूकता भी अनिवार्य है ।

कारपेन्टर साहब की दूसरी राय भी कुछ तथ्यपूर्ण है । अज्ञानवश जो कुछ हम माँगते हैं सम्भव है उनसे हानि निकले। दूरदर्शी परमात्मा सब कुछ सोच समझकर देते हैं। मान लीजिए एक नौ वर्ष का बालक अपने धनाढ्य पिता से एक तेज चलने वाली कटार माँगता है या मोटर माँगता है । पिता जानता है कि बालक कटार या मोटर सम्भाल न सकेगा । वह कहता है कि पुत्र ! तुम किंचित् बड़े हो जाओ तब इन वस्तुओं से खेलना । भगवान् जानते हैं कि यदि वे प्रत्येक उचित-अनुचित माँग को योंही बिना सोचे समझे, दयार्द्र होकर पूर्ण करदें तो सम्भव है उससे दूसरों की हानि हो । अतः हमारी अज्ञानता के कारण हमारी अनेक प्रार्थनाएँ पूर्ण नहीं होतीं ।

एक तत्व और है, प्रार्थना का बल-विश्वास एवं श्रद्धा है । अपने इष्ट पर जिसका जितना कम या अधिक विश्वास होता है उसी के परिमाण में उसकी प्रार्थना का परिणाम होता है ।

पुरुषार्थ पूर्ण प्रार्थना

अधिकांश प्रार्थियों के मन में तो निश्चित रूप से एक अस्पष्ट भिक्षा प्रवृत्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता । इस अस्पष्टता का कारण भारतीय दर्शनों की दुरूहता है । बात यह है कि भारतीय धर्म के कतिपय सिद्धान्त दार्शनिक तत्वों पर स्थित नहीं है अतः कितने ही धर्मावलम्बी दाता-याचक वाली कल्पना में डूबकर भिक्षा प्रवृत्ति का उपदेश देते और प्रार्थी को अकर्मण्यता के जाल में डालते हैं । हिन्दू प्रार्थना अकर्मणयता से सदैव दूर है । वह भिक्षा प्रवृत्ति से सर्वथा उन्मुक्त है । जो धर्मोपदेशक भौतिक सुख लालसा में पड़ कर भिक्षा प्रवृत्ति को उत्साहित करते हैं, वे वास्तविक हिन्दू प्रार्थना के मर्म को नहीं हृदयंगम कर सके हैं ।

प्रार्थना का त्रुटिपूर्ण दृष्टिकोण

जो प्रार्थना प्रयत्न रहित हो, केवल मन के किले बनाने के लिए तथा बिना परिश्रम मुफ्त के माल की तरह एक ही झटके में, बटन दबाने भर से सब कुछ मिल जाने की कल्पना उत्साहित करे, वह प्रार्थना का त्रुटिपूर्ण रूप है । ऐसे थोथे ख्याली पुलाव कभी पूर्ण नहीं होते । ऐसी दाता-याचक वाली कल्पनाएँ, प्रयत्नहीन, भिक्षा-प्रवृत्ति वाली नाजायज माँगे प्रायः निष्फल चली जाती हैं । ईश्वर किसी के गिड़गिड़ाने, नाक रगड़ने या भिक्षा माँगने की ओर ध्यान नहीं देता । वह स्वयं कर्म रत है । कर्म के फलानुसार ही कुछ मिलने का उसके साम्राज्य में सुनिश्चित विधान है । उसके संसार में कठोर नियन्त्रण तथा पूर्ण व्यवस्था है । सृष्टि के सम्पूर्ण कार्य नियमबद्ध रूप से चलाने वाला परमात्मा स्वयं भी नियम रूप है । वह प्रार्थना में साधकों की कामनाएँ पूर्ण करता है किन्तु एक नियमित रूप के अनुसार । वास्तव में, परमात्मा की प्रशंसा करके हम उसे धोखा नहीं दे सकते । उसकी प्रसन्नता तथा अप्रसन्नता इस तत्व के ऊपर निर्भर नहीं है कि कोई व्यक्ति उसकी स्तुति करता है अथवा निन्दा। निष्पक्ष, न्यायकारी, समदर्शी नियन्ता, नियमरूप परमात्मा इस बात पर ध्यान नहीं देता है कि कौन व्यक्ति उसके गुण गाता है या कौन अवगुण बखानता है । उसे तो वह प्रिय है जो नियम पर चलता है । उद्योगी पुरुष को ही समृद्धि, सफलता, सिद्धि मिले- वह ईश्वरीय सीधा-साधा नियम है।

परमात्मा को प्रसन्न करने की सर्वप्रथम प्रक्रिया- पूजा विधि यह है कि जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिए जिन साधनों, परिस्थितियों तथा योग्यताओं की आवश्यकता हो, उन्हें संग्रह किया जाय । उद्योग, प्रयत्न, विवेक एवं नियत व्यवस्था के अनुसार कार्य करना परमात्मा को सबसे अधिक प्रिय है । इस कर्म की पद्धति से जो प्रभु को प्रसन्न करता है, उसकी सकाम प्रार्थना अत्यन्त शीघ्र स्वीकार कर ली जाती है तथा तुरन्त फलवती होती है ।

प्रार्थना-आत्मा की करुण पुकार

आज का मनुष्य औरों की अपेक्षा अपने प्रति अधिक भयानक हो गया है । उसने अपने हृदय में द्वेष, द्वन्द्व, छल कपट, ईर्ष्या और मत्सरता के इतने बीज वो लिये हैं कि उसकी सुगन्धित हृदय वाटिका विषैली वनस्थली बन गई है। इसका मुख्य कारण है उसकी कामसक्ति ।

जो मनुष्य जितनी अधिक कामना रखता है, वह उतना ही अधिक दरिद्र होता है । उसकी व्यग्रता उतनी ही बढ़ जाती है और उसका मन विविध तृष्णाओं की ओर दौड़ता रहता है । मनुष्य की विषय विविधता ही उसको पतन की ओर ले जाती हैं और पतनोन्मुख मनुष्य से किसी सदाशयता की आशा नहीं की जा सकती । उसका सन्तोष नष्ट हो जाता है और इस प्रकार उसे संसार में सभी प्राणी अपने से अधिक सुखी दिखाई देते हैं जिससे उसे औरों से ईर्ष्या और अपने से खीझ होने लगती है । वह हर समय हर बात पर असन्तुष्ट रहता है, जिससे उसमें क्रोध का बाहुल्य ही हो जाता है । क्रोध से विवेक नष्ट हो जाता है और विवेक के विनाश से वह सर्वनाश की ओर बड़ी तीव्र गति से अग्रसर हो पड़ता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य को अपना विनाश रोकने के लिये कामनापूर्ण विषयासक्ति को छोड़ना पड़ेगा । मनुष्य की विषय वृत्ति की सन्तुष्टि नहीं हो सकती । इसके विषय में प्रकृति का कुछ ऐसा नियम है कि विषयों को जितना सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है, वे उतने ही अधिक बढ़ते हैं । अस्तु इनका त्याग ही इनसे पीछा छुड़ाने का एक मात्र उपाय है ।

विषय वासनायें हाथ में पकड़ी हुई छड़ी की तरह तो हैं नहीं कि हाथ खोल दीजिये वह स्वतः गिर जायेंगी । यह जन्म-जन्मान्तर का कलुष है, जो मनोदर्पण पर संचित होकर स्थायी बन जाता है । इसे मल-मल कर धोना पड़ेगा। जिस प्रकार मैल को मैल से साफ नहीं कर सकते उसी प्रकार विषयों को वासनात्मकता से नहीं धोया जा सकता । इनको धोने के लिये निर्मल भावनाओं की आवश्यकता होगी ।

निर्मल भावनाओं में करुणा की भावना सर्वोत्कृष्ट है मनुष्य को अपने में अधिक से अधिक करुणा का स्फुरण करना चाहिये । करुणा एक दैवी गुण है, आत्मा का प्रकाश है इसकी उत्पत्ति होते ही मनुष्य के सारे मानसिक मल धुल जाते हैं और उसका हृदयदर्पण अपनी स्वर्गीय छटा से चमक उठता है, जिसमें वह आत्मा रूप परमात्मा का दर्शन कर सकता है ।

इस करुणा को प्रस्फुटित करने के लिए मनुष्य को सर्व प्रथम विनम्रतापूर्ण दया-दाक्षिण्य की उपासना करनी होगी। संसार का कोई भी धर्म अथवा मत-मतान्तर ऐसा नहीं है जिसमें विनम्रता, दया, क्षमा, सहानुभूति आदि गुणों को महत्ता न दी गई हो ।

करुणा लाने के लिये मनुष्य को करुणा वरुणालय भगवान का आश्रय लेना होगा । विनम्रतापूर्वक उसकी शरण जाना होगा प्रेमपूर्वक उसकी सृष्टि को दया से ओत-प्रोत करना होगा । विनम्रता को अपनाना होगा ।

यह सारे गुण परमात्मा को आतुर, कातरता पूर्वक स्मरण करने से अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं । उसे याद करिये, पुकारिये, अपनी याद दिलाइये, उसकी अनुनय-विनय करिये।

सांसारिक व्यक्तियों की अनुनय-विनय करने से जो दैन्य मनुष्य में आता है, वह आत्मा को कलुषित और निर्बल बनाता है, किन्तु इसके विपरीत परमात्मा की अनुनय-विनय करने से जो दैन्य प्राप्त होता है, उससे आत्मा का परिमार्जन होता है, उसमें प्रकाश आता है ।

अपने अनुनय-विनय में यदि आप परमात्मा से भौतिक सुख-साधनों की याचना करें तो फिर अपने ध्येय मार्ग करुणा की प्राप्ति से विचलित हो जायेंगे । पुनः उन्हीं विषय वासनाओं की ओर उन्मुख हो चलेंगे, जिन्हें छोड़ने के लिये आपने परमात्मा की पुकारें प्रारम्भ की हैं । यदि याचना ही करनी है तो केवल ध्येय के विषय की याचना करें, अन्यथा एक मात्र उसकी प्रसन्नता के लिए प्रार्थना करिये उसकी कृपा से क्या लौकिक क्या पारलौकिक कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं, जिसकी उपलब्धि न हो जावे । किन्तु फिर भी उसकी दी हुई उपलब्धियों में से आप केवल महान गुण-सम्पत्ति की ओर ही आकर्षित रहिये और उन्हें अधिक से अधिक प्राप्त करने की कोशिश कीजिये ।

परमात्मा को प्रसन्न करने के लिये प्रार्थना सबसे सरल साधन है । एक निश्चित समय पर पवित्र तन मन से उसे विह्वलतापूर्वक याद करते हुए कातरवाणी से उसकी प्रार्थना कीजिये । प्रार्थना के शब्द अधिक से अधिक करुणाजनक, सरल एवं सरस हों और उनका तात्पर्य तो नितान्त पवित्र, निष्काम और उसके उदार नामों से परिपूर्ण हो । उनके अर्थों से एक निस्पृह आनन्द का उद्रेक होता है । उसका संगीत सहज गेय और मनोहर हो, प्रार्थनाएँ भी तो गद्य में की जा सकती हैं, किन्तु भावना की अभिव्यक्ति जितनी सुन्दरता से पद्य में होती है उतनी गद्य में नहीं । आपकी प्रार्थना में हृदय के भावों की जितनी तीव्र समाविष्ट होगी, जितनी तन्मयता होगी, उतना ही शीघ्र आप उस परम प्रभु की करुणा और कृपा को प्राप्त कर लेंगे ।

प्रार्थना करते समय हर ओर से निश्चिन्त रहिये और समस्त संसार को भुलाकर इतने एकाग्र चित्त से तन्मय होइये कि उस समय आपके लिए एक प्रार्थना के अतिरिक्त और कुछ शेष न रह जाये । प्रार्थना में एकाग्रता मूलमन्त्र है ।

आप जितनी विह्वलता से परमात्मा को याद करेंगे उतनी आतुरता से वह आपका स्मरण करेगा । आप ज्यों-ज्यों उसकी ओर आकर्षित होंगे, त्यों-त्यों वह आपकी ओर आकर्षित होगा । इस प्रकार दोनों ओर का पारस्परिक आकर्षण बीच के व्यवधान और दूरी को बहुत शीघ्र समाप्त कर देगा और आप आत्मा के आनन्द के रूप में साक्षात्कार कर सकेंगे ।

उपासनाओं में प्रार्थनाओं का बहुत बड़ा महत्व है । संसार का कोई भी ऐसा महात्मा अथवा धर्म-प्रवर्तक नहीं हुआ, जिसने किसी न किसी रूप में परमात्मा की प्रार्थना न की हो । यहाँ तक कि एक दूसरे की प्रार्थना करते हैं । विष्णु महेश की, महेश विष्णु की, ब्रह्मा विष्णु और महेश की तो ब्रह्मा की प्रार्थना विष्णु और महेश किया करते हैं । बिना परमात्मा की प्रार्थना किये कोई भी ध्येय पूरा नहीं हो सकता । महात्मा गाँधी कहा करते थे कि- '' प्रार्थना मेरा प्राण है, जीवन है । मैं भोजन छोड़ सकता हूँ, पानी छोड़ सकता हूँ, संसार की सारी चीजें छोड़ सकता हूँ, किन्तु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रार्थना नहीं छोड़ सकता । प्रार्थना करने से में अपने अन्दर एक सुख-शान्ति, शक्ति और सम्पूर्णता का अनुभव करता हूँ । जिस दिन प्रार्थना में बिलम्ब हो जाता है या किसी कारणवश नहीं कर पाता हूँ, वह दिन मेरे लिए सबसे खराब दिन होता है । मुझे लगता है जैसे मैं निर्जीव हो गया हूँ अशक्त हो गया हूँ न मैंने कुछ किया है और न कुछ कर सकता हूँ और प्रार्थना कर लेने पर तत्काल सारी दुर्बलतायें दूर हो जाती हैं और अपने अन्दर फिर पूर्णता का अनुभव करने लगता हूँ ।'' उनका कहना था कि-- ''मैं सारे दुःख, सारे कष्ट और सारे संघर्ष प्रार्थना के बल पर ही हँसते-हँसते सहन कर लेता हूँ। हर प्रकार से प्रसन्न और प्रफुल्लित रहता हूँ।''

कहने का तात्पर्य यह है कि ईश प्रार्थना में सारी शक्तियाँ और सारे दुःख सन्निहित रहते हैं । महात्मा गाँधी की सारी सफलता के कारणों में प्रभु-प्रार्थना एक सम्मुख कारण है । इसी के बल पर उन्होंने इतने बड़े राष्ट्र का नेतृत्व किया, स्वतंत्रता का संग्राम जीता और विविध धर्मावलम्बियों को एकता के सूत्र में बाँध दिया । उन्होंने इस प्रार्थना के बल पर ही बड़े-बड़े भौतिकवादी विदेशी राजनीतिज्ञों को द्रवित कर झुका दिया ।

परमात्मा का करुण वरदान प्राणिमात्र को उपलब्ध होता है । बिना किसी प्रतिफल की भावना के परमेश्वर प्रत्येक जीव पर अपनी अनन्त करुणा बखेरता रहता है । प्राणियों के सुखों के अभिवृद्धि और कष्टों की निवृत्ति के लिए उसने कई प्रकार के अनुदान पग-पग पर प्रस्तुत किये हैं । उन्हीं के सहारे जीवधारियों की जीवन-लीला चल पाती है । शरीर और मन की विलक्षण रचना इतने उत्तम प्रकार से न हुई होती तो जीवों का अस्तित्व ही प्रकट नहीं हो पाता तो वे आनन्द रीति से जीवन का रसास्वादन कर सकने में समर्थ न हुये होते । एक शब्द में इसी बात को यों भी कहा जा सकता है कि प्रभु की करुणा अनुकम्पा के सहारे ही जीवनधारी अपना योग क्षेम करते हुए सरस जीवन बिता रहे हैं ।

प्रभु की अनन्त अनुकम्पा और करुणा प्राप्त करने वाले मनुष्य के लिए यह उचित ही है कि वह इस अनुदान का अंश दूसरे असहाय, असमर्थ और बिछुड़े हुओं को प्रदान कर अपनी सत्पात्रता सिद्ध करता रहे । यह ठीक है कि परमात्मा को उसकी करुणा का बदला नहीं चुकाया जा सकता, पर इतना तो हो ही सकता है कि उसकी दुर्बलता सन्तानों को सुखी और समुन्नत बनाने के लिए हम आवश्यक सहृदयता का परिचय देते रहें, अपने से जो बन पड़े उतना लोक कल्याण के लिए प्रयत्न करते रहें ।

करुणा की सहानुभूति और सहृदयता का रूप मिलना ही चाहिये । भावना वही सार्थक है, जो कार्यान्वित हो सके। संसार में पीड़ा बहुत है, यदि हम दूसरों की पीड़ा का एक अंश बँटा सकें और अपनी सद्भावना से टूटे हृदय को जोड़ सकें तो यह मानवोचित महानता ही होगी । ईश्वर प्रार्थना केवल पूजा के समय किये जाने वाले सच्ची प्रार्थना या दुहराये जाने वाले शब्दों को ही नहीं कहते । सच्ची प्रार्थना वह है जो चिरस्थायी सद्भावना का रूप धारण कर प्राणी मात्र की कामनाओं के लिए सहानुभूति बनकर विचलित होती है ।

हम प्रभु से प्रार्थना करें, करुणा पूर्व भावना के साथ और उनसे एक ही याचना करें कि हमारी अंतरात्मा में उस करुणा का एक छोटा-सा झरना प्रस्फुटित करें जिसमें वे प्राणीमात्र को स्नान कराके उन्हें निरन्तर सुखी, समृद्धि और सुविकसित बनाते हैं ।

प्रार्थना में बड़ा बल है

मनुष्य जितना दीन-हीन, स्वल्प शक्ति वाला, कमजोर प्राणी है । यह प्रतिदिन के जीवन से पता चलता है । उसे पग-पग पर परिस्थितियों के आश्रित होना पड़ता है । कितने ही समय तो ऐसे आते हैं, जब औरों से सहयोग न मिले तो उसकी मृत्यु तक हो सकती है । इस तरह विचार करने से तो मनुष्य की लघुता का ही आभास होता है । किन्तु मनुष्य के पास एक ऐसी भी शक्ति है जिसके सहारे वह लोक-परलोक की अनन्त सिद्धियों सामर्थ्यों का स्वामी बनता है । यह है प्रार्थना की शक्ति, परमात्मा के प्रति अविचल श्रद्धा और अटूट विश्वास की शक्ति । मनुष्य प्रार्थना से अपने को बदलता है, शक्ति प्राप्त करता है और अपने भाग्य में परिवर्तन कर लेता है । विश्वासपूर्वक की गई प्रार्थना पर परमात्मा दौड़े चले आते हैं । सचमुच उनकी प्रार्थना में बड़ा बल है, अलौकिक शक्ति और अनन्त सामर्थ्य है ।

प्रार्थना विश्वास की प्रतिध्वनि है । रथ के पहियों में जितना अधिक भार होता है, उतना ही गहरा निशान वे धरती में बना देते हैं । प्रार्थना की रेखायें लक्ष्य तक दौड़ी जाती हैं, और मनोवाँछित सफलता खींच लाती हैं । विश्वास जितना उत्कृष्ट होगा परिणाम भी उतने ही सत्वर और प्रभावशाली होंगे ।

प्रार्थना आत्मा की आध्यात्मिक भूख है । शरीर की भूख अन्न से मिटती है, इससे शरीर को शक्ति मिलती है। उसी तरह आत्मा की आकुलता को मिटाने और उसमें बल भरने की सत् साधना परमात्मा की ध्यान-आराधना ही है । इससे अपनी आत्मा में परमात्मा का सूक्ष्म दिव्यत्व झलकने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगता है और अपूर्व शक्ति का सदुपयोग आत्मबल सम्पन्न व्यक्ति कर सकते हैं । निष्ठापूर्वक की गई प्रार्थना कभी असफल नहीं हो सकती ।

आत्मा-शुद्धि का आवाहन भी प्रार्थना ही है । इससे मनुष्य के अन्तःकरण में देवत्व का विकास होता है । विनम्रता आती है और सद्गुणों के प्रकाश में व्याकुल आत्मा का भय दूर होकर साहस बढ़ने लगता है । ऐसा महसूस होने लगता है, जैसे कोई असाधारण शक्ति सदैव हमारे साथ रहती है । हम जब उससे अपनी रक्षा की याचना, दुःखों से परित्राण और अभावों की पूर्ति के लिए अपनी विनय प्रकट करते हैं तो सद्य प्रभाव दिखलाई देता है और आत्म-सन्तोष का भाव पैदा होता है ।

असन्तोष और दुःख का भाव जीव को तब परेशान करता है, जब तक वह क्षुद्र और संकीर्णता में ग्रस्त है । मतभेदों की नीति ही सम्पूर्ण अनर्थों की जड़ है । प्रार्थना इन परेशानियों से बचने की रामवाण औषधि है । भगवान की प्रार्थना में सारे भेदों को भूल जाने का अभ्यास हो जाता है । सृष्टि के सारे जीवों के प्रति ममता आती है इससे पाप की भावना का लोप होता है ।

जब अपनी असमर्थता समझ लेते हैं और अपने जीवन के अधिकार परमात्मा को सौंप देते हैं तो यही समर्पण का भाव प्रार्थना बन जाता है । दुर्गुणों का चिन्तन और परमात्मा के उपकारों को स्मरण रखना ही मनुष्य की सच्ची प्रार्थना है। महात्मा गाँधी कहा करते थे-- मैं कोई काम बिना प्रार्थना के नहीं करता । मेरी आत्मा के लिये प्रार्थना उतनी ही अनिवार्य है, जितना शरीर के लिये भोजन ।

मनुष्य जीवन में अच्छी, बुरी दोनों तरह की प्रवृत्तियाँ रहती हैं, आत्मा के गहन अन्तराल में तो सत्-तत्व पाया जाता है । इस शुभ, शिव और परमतत्व से एकाकार प्रार्थना से होता है, जिससे आसुरी वृत्तियों का लोप और दैवी गुणों का प्रादुर्भाव होता है । प्रार्थना से ही अन्तरतम में प्रवेश मिलता और बुद्ध की सूक्ष्म-ग्रहणशीलता उपजती है । इस परिवर्तनशील जगत के सारे रहस्य खुलने लगते हैं मोक्ष की दुरभिसन्धि मिटकर सत्य प्रकाशित होने लगता है ।

प्रार्थना प्रयत्न और ईश्वर तत्व का सुन्दर समन्वय है। मानवीय प्रयत्न अपने आप में अधूरे हैं क्योंकि पुरुषार्थ के साथ संयोग भी अपेक्षित है । यदि संयोग सिद्ध न हुए तो कामनायें अपूर्ण ही रहती हैं । इसी तरह संयोग मिले और प्रयत्न न करे तो भी काम नहीं चलता । प्रार्थना से इन दोनों में मेल पैदा होता है । सुखी और समुन्नत जीवन का यही आधार है कि हम क्रियाशील भी रहें और दैवी विधान से सुसम्बद्ध रहने का भी प्रयास करें । धन की आकांक्षा हो तो व्यवसाय और उद्यम करना होता है साथ ही इसके लिये अनुकूल परिस्थितियाँ भी चाहिये ही । जगह का मिलना, पूँजी लगाना, स्वामिभक्त और ईमानदार नौकर, कारोबार की सफलता के लिए चाहिए ही । यह सारी बातें संयोग पर अवलम्बित हैं । प्रयत्न और संयोग का जहाँ मिलाप हुआ वहीं सुख होगा, वहीं सफलता भी होगी ।

यह अनिवार्य नहीं है कि प्रार्थना पूर्णतया निष्काम हो। सकाम प्रार्थनाओं का भी विधान है किन्तु सांसारिक कामनाओं के लिए की गई प्रार्थना में वह तल्लीनता नहीं आ पाती जो परमात्मा तक अपना सन्देश ले जा सके । ऐसी प्रार्थनायें भोग के निविड़ में भटक कर रह जाती हैं । परिणामतः समय का अपव्यय और शक्ति का दुरुपयोग ही होता है । परोपकार, आत्म-कल्याण और जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति के लिये ही प्रार्थना का सदुपयोग होना चाहिये । ऐसी प्रार्थनाओं में सजीवता होती है, चुम्बकत्व होता है और परमात्मा को प्राप्त करने की प्रबल आकुलता होती है, ये कभी निष्फल नहीं जातीं । सदुद्देश्यों के लिए की गई हृदय, आत्मा की पुकार अनसुनी नहीं जाती । परमात्मा उसे जरूर पूरा कर देते हैं ।

अभी तक जो शक्तियाँ मिलीं और जो मानव जीवन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, इससे भी पूर्व भावनाओं की सौम्यता ही प्रतीत होती है । हमने उसका आश्रय छोड़ दिया होता तो अन्य जीवधारियों के समान हम भी कहीं भटक रहे होते किन्तु यह अभूतपूर्व संयोग मिलना निश्चय ही उनकी कृपा का फल है । प्राप्ति परिस्थितियों का सदुपयोग तब है जब इन साधनों का उपयोग आत्म-विकास में कर सकें । इसके लिये हमारा सम्पूर्ण जीवन एक प्रार्थना हो । हम अनन्य भाव से अपने आपको उस परमात्मा के प्रति समर्पित किए रहें और उनकी दुनिया को सुन्दर और सरस बनाने के लिए अपने कर्तव्यों का यथा-रीति पालन करते रहें।

हृदयहीन मुखर प्रार्थना नहीं चाहिए । जिसमें केवल स्वर का महत्व प्रकट होता है वह प्रार्थना नहीं, वह तो बिडम्बना हुई, प्रार्थना वह होती है जो हृदय से निकलकर सारे आकाश को प्रभावित करती और परमात्मा के हृदय में भी उथल-पुथल मचाकर रख देती है । ऐसी प्रार्थना निष्काम, सच्ची और सजीव ही हो सकती है । वर्षा का जल गिरता है तो सारी धरती गीली हो जाती है । प्रार्थना के अभाव से परमात्मा का अन्तःकरण द्रवित होता है और साधक की उपासना से अधिक परिणाम प्राप्त होता है । सन्त टेनीसन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने लिखा है-- ''जितना संसार समझता है, प्रार्थना में उससे अधिक कार्य होता है ।'' इसलिए अपनी प्रार्थना ऐसी हो कि हे प्रभु ! तेरी शरण आए हैं तुझसे वह प्रकाश प्राप्त करना चाहते हैं जिससे अन्धकार में भटकते हुए मनुष्यों के दुःख और सन्ताप दूर कर सकें ।

असहाय अवस्था में जब मनुष्य को चारों तरफ से निराशा ही दिखाई देती है, शक्तियाँ काम नहीं देतीं, भाग्य की कुटिलता पग-पग पर सताने लगती है, अपने भी पराये बन जाते हैं, तब प्रार्थना ही उसका मित्र बनती है । प्रार्थना दुर्दिनों की सहारा, अँधियारे का पाथेय और दुःख का साथी है । जब किसी तरह मनुष्य के प्रयत्न काम नहीं देते तब प्रार्थना से ही उसे बल मिलता है । सच्ची करुण प्रार्थना का उत्तर तत्काल ही मिलता है ।

दुष्ट-दुर्भावनाओं को दूर करने में प्रार्थना एक अमोघ साधन है । कामुकता, क्रोध, मोह और अहंकार के मनोविकार प्रार्थना की आग में जलकर खाक हो जाते हैं । स्वार्थ की क्षुद्रता घटती और आन्तरिक विशालता बढ़ती है। जीवन शोधन की यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रणाली है । प्रार्थना एक अभूतपूर्व शक्ति है जिसे अपनी भावनाओं के द्वारा कोई भी उत्पन्न कर सकता है । आग का गुण है कि वह जहाँ रहती हैं वहाँ उष्णता भी रहती है । प्रार्थना के ताप के पास पाप रह नहीं सकते ।

पापों का प्रायश्चित करना प्रार्थना का ही करुण स्वरूप है । जब हम अपने अपने पापों को सच्चे हृदय से स्वीकार कर लेते हैं तो उनके कठोर परिणाम भोग लेने की क्षमता आ जाती है । इससे अगले जीवन का प्रकाश आँखों के आगे झलकने लगता है, आशा लगती है । जिससे कठिन परिस्थितियों में भी आत्म-सन्तोष और अलौकिक शान्ति बनी रहती है । इसलिये प्रत्येक धर्म में प्रार्थना की प्रमुखता दी गई है । आत्म-विकास की प्रक्रियाओं में इनका सर्वप्रथम स्थान है । दूसरी योजनाओं के लिए इसी से बल मिलता है । इसलिए कोई भी शुभारम्भ करने के पूर्व प्रार्थना अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है, इससे एक तरह का बल, विश्वास और आशा जागृत होती है जो किसी भी काम की पूर्णता में सहायक होती है ।

आसुरी शक्तियों से आत्म-रक्षा और सद्गुणों के विकास के लिए इस युग में प्रार्थना का महत्व और भी अधिक है। झगड़ने की आवश्यकता नहीं है कि अमुक प्रार्थना अच्छी और अमुख खराब है । सद्बुद्धि की प्रार्थना ही परमेश्वर की सच्ची उपासना है । जिसकी वाणी में सम्पूर्ण प्राणियों के कल्याण की भावना सन्निहित है । वही परमात्मा की सच्ची प्रार्थना है । स्वार्थपूर्ण कामनायें इस विशालता में वाधा उत्पन्न करती हैं, इसलिए इनसे ऊपर उठकर हमारी भावनाओं ऐसी हों जो आत्म-कल्याण और संसार की भलाई से प्रेरित हों । यही प्रार्थना सार्थक हो सकती हैं कि ''हे भगवान ! हमें असत्य से सत्य की ओर ले चलो । अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो । मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो ।'' जब इस तरह के उद्गार अन्तःकरण से उठेंगे तो जीवन में एक नया प्रकाश प्रस्फुटित होगा । उनकी प्रार्थना में वह शक्ति है जो तुम्हारे सारे कष्टों को दूर कर देगी । हम उस परमात्मा को कभी न भूलें, हमारा जीवन भी एक सच्ची प्रार्थना हो ।

प्रार्थना को दैनिक जीवन में स्थान मिले

आज भारत ही नहीं सारे संसार की बड़ी भयावह स्थिति होती गई है । संसार एक ऐसे बिन्दु के समीप पहुँच गया है । जहाँ पर किसी समय भी उसका ध्वंस हो सकता है। आज संसार को भयानक ध्वंस से बचाने के लिए वैयक्तिक तथा सामूहिक प्रार्थनाओं की परम आवश्यकता है ।

द्वापर काल में महाभारत युद्ध की भयानक भूमिका देखते हुए दूरदर्शी भगवान व्यास, राष्ट्र और विश्व की कल्याण भावना से विकल होकर दोनों भुजाएँ उठाकर पुकार करते रहे कि ''ऐ मदान्ध लोगो ! अर्थ और काम से धर्म श्रेष्ठ है, अर्थ को इतनी महत्ता देकर अनर्थ मत करो, परमार्थ का आश्रय लो ।'' किन्तु अर्थ और काम के गुलाम लोगों ने उनकी पुकार न सुनी, जिसके फलस्वरूप महाभारत का युद्ध हुआ ।

आज संसार पुनः उसी महाभारत की स्थित में पहुँच गया है । आज के आणविक अस्त्र उस समय के अस्त्र शस्त्रों से अधिक भयानक और विनाशक हैं । साथ ही आज का संसार उस समय से कहीं अधिक लोलुप, स्वार्थी और अर्थलिप्सु बन गया है । आज भी जाने कितने मनीषी महात्मा व्यास की भाँति विह्वलता से पुकार कर रहे हैं किन्तु आज का मनुष्य उसी प्रकार से जैसे बहरा हो गया । न उसे कुछ दिखलाई देता है और न सुनाई ।

फिर भी सदैव की भाँति जहाँ एक ओर आसुरी सम्पदा के लोग भौतिक साधनों द्वारा संसार के विनाश की तैयारी कर रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर संसार का कल्याण चाहने वाले दैवी सम्पद के लोग आध्यात्मिक साधनों द्वारा परमात्मा से कल्याण की कामना करते हैं और इस देवासुर द्वन्द्व में ''अधर्म का नाश'' के सिद्धान्त पर अन्ततोगत्वा धर्म की ही विजय होगी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज जिस प्रकार विनाशक तत्व संसार में व्याप्त हो गये हैं, उसी प्रकार उनका नाश करने के लिए व्यापक प्रयत्न की आवश्यकता है । धर्म प्रिय लोगों के पास ध्वंसक वृत्ति के व्यक्तियों की भाँति भौतिक साधनों का भण्डार तो होता नहीं और न वे इसमें विश्वास करते हैं, अपितु उनके पास जो प्रभु-स्मरण और उसकी प्रार्थना रूपी अपरिमित शक्ति है वह संसार की सारी शक्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़कर है । यदि आज संसार के सब सदाशयी व्यक्ति एक-एक अथवा एक साथ प्रभु से प्रतिदिन प्रार्थना ही करने लगें तो संसार के सारे अनिष्ट दूर हो जायें और उनके स्थान पर सुख और शान्ति का स्रोत बहने लगे ।

यह निर्विवाद है कि यदि आज के धनधारी, सत्ताधारी, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ आदि अपना काम करते हुए नित्य कुछ समय प्रभु की प्रार्थना का भी कार्यक्रम अपना लें, तो आज के यह सारे विनाश साधन स्वतः निर्माण साधनों में बदल जायँ । उनके जीवन का प्रवाह अनायास ही स्वार्थ की ओर से परमार्थ की ओर वह चलेगा और तब वे स्वयं ही ध्वंसक उपादानों से घृणा करने लगेंगे और अपनी क्षमताओं को विश्व कल्याण की दिशा में मोड़ देंगे ।

किन्तु उनमें यह परिवर्तन लाने के लिए अधिक से अधिक लोगों को प्रार्थनायें करनी चाहिए । अपनी प्रार्थनाओं में लोगों को सद्बुद्धि मिलने का भी भाव रहना चाहिये ।

निरन्तर देखा जाता है कि जब किसी व्यक्ति या राष्ट्र पर कोई आपत्ति आ जाती है तो वे भी तत्परता से ईश्वर से आपत्ति दूर करने के लिए प्रार्थनायें करने लगते हैं युद्ध के समय मन्दिरों, मस्जिदों गिरिजों व गुरुद्वारों में सामूहिक प्रार्थनायें होने लगती हैं, घण्टे, घड़ियाल और घण्टियाँ बजने लगती हैं । नमाजें और ग्रन्थों की पाठ-ध्वनि होने लगती हैं । लोग अनुष्ठानों और प्रभु की कृपा के लिए पण्डितों, पुजारियों को नियुक्ति करने लगते हैं । इस बात से स्पष्ट प्रकट होता है कि लोग प्रार्थनाओं के महत्व को समझते हैं और उनमें विश्वास करते हैं, किन्तु तब पता नहीं कि नित्य प्रति प्रभु प्रार्थना क्यों नहीं करते जिससे संसार में आपत्तियाँ आयें ही नहीं ।

आज प्रत्येक व्यक्ति संसार के तट पर खड़ी आपत्ति को देख रहा है, फिर क्यों नहीं प्रार्थनाओं के अमोघ साधन द्वारा उनके निराकरण में लग जाता ? क्या वह इस बात की राह देख रहा है कि विनाश का तांडव-नृत्य होने लगे तब वह प्रार्थानाओं को आरम्भ करे । यह ठीक नहीं है । तब विनाश अपना तांडव प्रारम्भ कर देगा, तब तो मनुष्य की बुद्धि ग्रसित हो जायेगी । सबको अपनी-अपनी पड़ जायेगी और तब उस अशान्त भाव मनःस्थिति में प्रार्थनाओं का वह प्रभाव न होगा जो शान्त मनः स्थिति में होता है ।

अतः आज से ही हम सबको वैयक्तिक और सामूहिक रूप से प्रभु-प्रार्थना का कार्यक्रम अपने और संसार के कल्याण के लिए बना लेना चाहिये ।

परमात्मा की प्रार्थना एक ऐसा साधन है जिससे एक स्थायी शान्त सहज रूप में संसार में लाई जा सकती है । यदि प्रतिदिन संसार में हो रहे शान्ति सम्मेलनों का सत्य उद्देश्य ही लाना है तो उनके साथ थोड़ी-सी प्रार्थना भी आवश्यक है । ईश्वर की प्रार्थना करने से मनुष्य में सद्भावनाओं का विकास होता है । बिना सच्ची सद्भावनाओं के शान्ति स्थापना नहीं की जा सकती फिर क्यों न लाख शान्ति सम्मेलन होते रहे ।

मनुष्य जितना परमात्मा की ओर उन्मुख रहता है उतनी ही उसमें शान्ति आती है । संसार में शान्ति लाने के लिए अपने हृदय में जितनी अधिक शान्ति लेकर प्रयत्न किया जायेगा वह उतना ही अधिक सफल होगा ।

केवल संसार ही नहीं अपने छोटे से दायरे, परिवार और यहाँ तक कि अपने व्यक्तित्व जीवन में शान्ति की परम आवश्यकता है । आज संसार में सामूहिक अशान्ति ही नहीं वैयक्तिक अशान्ति भी बढ़ जाती है । प्रत्येक मनुष्य अशान्त से जलता हुआ दिखाई देता है । पिता, पुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहिन, स्वामी सेवक सब एक-दूसरे से कलह करते और अशान्ति होते देखे जाते हैं । क्या मनुष्य को ऐसा नारकीय जीवन बिताना शोभा देता है ? क्या यह अच्छा लगता है कि कदम-कदम, ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट और अन्ध-विश्वास का वातावरण मिलता रहे ? संसार में सुन्दर, स्निग्ध स्नेह की धारा बहने के बजाय आग की लपटें बढ़ती रहें ?

कौन ऐसा है जो आज इस अशान्त वातावरण से त्रस्त नहीं हो गया है ? एक भी ऐसा व्यक्ति देखने को नहीं मिलेगा जो इससे मुक्ति न चाहता हो । इन सारे दुःखों से छूटने का एक ही उपाय है-- 'प्रार्थना ।' सच्चे अंतःकरण से मानव को दोष, दुर्गुणों से रहित, सत्पथगामी बनाने की प्रार्थना प्रारम्भ होते ही संसार के सारे दुःख-क्लेश दूर होने लगेंगे।

प्रार्थना एक विज्ञान है जिसमें मनुष्य को बदल देने की शक्ति होती है । साधारण व्यवहार में जब विनम्रता सफलता का कारण बनती है तो ईश्वर को लक्ष्य बनाकर जो विनय की जावेगी, उसकी शक्ति का कितना व्यापक प्रभाव पड़ेगा, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है ।

जब एक व्यक्ति भी प्रार्थना करेगा तो उससे वातावरण में जो प्रभाव पड़ेगा, उससे अन्य व्यक्ति प्रभावित होकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रार्थना करने के लिए उत्सुक हो उठेंगे, और अन्यों से अन्य। इस प्रकार एक दिन सारे संसार का वातावरण प्रभावित हो उठेगा । जब अनुकरण की सहज बुद्धि से मनुष्य दूसरों की बुराइयों को सीख लेता है तो क्या कारण है कि वह अच्छाइयों को ग्रहण न करेगा ? आज जब एक राष्ट्र अन्य राष्ट्र का अनुकरण कर रहा है, तो कौन कह सकता है कि एक देश में यदि नियमित रूप से सामूहिक प्रार्थनाओं का राष्ट्रगत कार्यक्रम अपनाया जावे तो दूसरे राष्ट्र इसका अनुकरण नहीं करेंगे ।

प्रार्थना का हमारे दैनिक जीवन में नित्य के आवश्यक कार्यों की तरह स्थान रहना चाहिए । जिस प्रकार स्नान, भोजन आदि को भुलाया नहीं जाता उसी प्रकार प्रार्थना को भी भुलाया न जाय । आत्मा को परमात्मा से मिलाने वाली इस पुण्य प्रक्रिया को दैनिक जीवन की एक आवश्यक क्रिया मानकर उसे नित्य प्रति निष्ठापूर्वक करते रहा जाय ।

प्रार्थना का स्वरूप, स्तर और प्रभाव

प्रार्थना ईश्वर के बहाने अपने आप से ही की जाती है। ईश्वर सर्वव्यापी और परमदयालु है, उसे हर किसी की आवश्यकता तथा इच्छा की जानकारी है । वह परमपिता और परमदयालु होने के नाते हमारे मनोरथ पूरे भी करना चाहता है । कोई सामान्य स्तर का समान्य दयालु पिता भी अपने बच्चों की इच्छा आवश्यकता पूरी करने के लिए उत्सुक एवं तत्पर रहता है । फिर परमपिता और परमदयालु होने पर वह क्यों हमारी आवश्यकता को जानेगा नहीं । वह कहने पर भी हमारी बात जाने और प्रार्थना करने पर ही कठिनाई को समझें, यह तो ईश्वर के स्तर को गिराने वाली बात हुई । जब वह कीड़े-मकोड़ों और पशु-पक्षियों का अयाचित आवश्यकता भी पूरी करता है । तब अपने परमप्रिय युवराज मनुष्य का ध्यान क्यों न रखेगा ? वस्तुतः प्रार्थना का अर्थ याचना ही नहीं । याचना अपने आप में हेय है क्योंकि वह दीनता, असमर्थता और परावलम्बन की प्रवृत्ति उसमें जुड़ी हुई है जो आत्मा का गौरव बढ़ाती नहीं घटाती ही है । चाहे व्यक्ति के सामने हाथ पसारा जाय या भगवान के सामने झोली फैलाई जाय, बात एक ही है। चाहे चोरी किसी मनुष्य के घर में की जाय, चाहे भगवान के घर मन्दिर में--बुरी बात तो बुरी ही रहेगी । स्वावलम्बन और स्वाभिमान को आघात पहुँचाने वाली प्रक्रिया--चाहे उसका नाम प्रार्थना ही क्यों न हो मनुष्य जैसे समर्थ तत्व के लिए शोभा नहीं देती ।

वस्तुतः प्रार्थना का प्रयोजन आत्मा को ही परमात्मा का प्रतीक मानकर स्वयं को समझाना है कि वह इसका पात्र बने कि आवश्यक विभूतियाँ उसे उसकी योग्यता के अनुरूप सहज ही मिल सकें । यह अपने मन की खुशामद है । मन को मनाना है । आपे को बुहारना है । आत्म-जागरण है आत्मा से प्रार्थना द्वारा कहा जाता है, कि हे शक्ति-पुंज तू जागृत क्यों नहीं होता । अपने गुण कर्म स्वभाव को प्रगति के पथ पर अग्रसर क्यों नहीं करता । तू सँभल जाय तो सारी दुनिया सँभल जाय । तू निर्मल बने तो सारे संसार की निर्बलता खिंचती हुई अपने पास चली आये । अपनी सामर्थ्य का विकास करने में तत्पर और उपलब्धियों का सदुपयोग करने में संलग्न हो जाय, तो दीन-हीन, अभावग्रस्तों को पंक्ति में क्यों बैठना पड़े । फिर समर्थ और दानी देवताओं से अपना स्थान नीचा क्यों रहे ।

प्रार्थना के माध्यम से हम विश्वव्यापी महानता के साथ अपना घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करते हैं । आदर्शों को भगवान की दिव्य अभिव्यक्ति के रूप में अनुभव करते हैं और उसके साथ जुड़ जाने की भाव-विह्वलता को सजग करते हैं । तमसाच्छन्न मनोभूमि में अज्ञान और आलस्य ने जड़ जमा ली है । आत्म विस्मृति ने अपने स्वरूप एवं स्तर ही बना लिया है । जीवन में संव्याप्त इस कुत्सा और कुण्ठा का निराकरण करने के लिए अपने प्रसुप्त अन्तःकरण से प्रार्थना की जाय कि यदि तन्द्रा और मूर्छा छोड़कर तू सजग हो जाय, और मनुष्य को जो सोचना चाहिए वह सोचने लगे, जो करना चाहिए सो करने लगे तो अपना बेड़ा ही पार हो जाय। अन्तःज्योति की एक किरण उग पड़े तो पग-पग पर कठोर लगने के निमित्त बने हुए इस अन्धकार से छुटकारा ही मिल जाय जिसने शोक-सन्ताप की बिडम्वनाओं को सब ओर से आवृत्त कर रखा है ।

परमेश्वर यों साक्षी, दृष्टा, नियामक, उत्पादक, संचालक सब कुछ है । पर उसके जिस अंश की हम उपासना प्रार्थना करते हैं वह सर्वात्मा एवं पवित्रात्मा ही समझा जाना चाहिए। व्यक्तिगत परिधि को संकीर्ण रखने और पेट तथा प्रजनन के लिए ही सीमाबद्ध रखने वाली वासना, तृष्णा भरी मूढ़ता को ही माया कहते हैं । इस भव बन्धन से मोह, ममता से छुड़ाकर आत्म-विस्तार के क्षेत्र को व्यापक बना लेना यही आत्मोद्धार है । इसी को आत्म-साक्षात्कार कहते हैं । प्रार्थना में अपने उच्च आत्म स्तर से परमात्मा से यही प्रार्थना की जाती है कि वह अनुग्रह करे और प्रकाश की ऐसी किरण प्रदान करे जिससे सर्वत्र दीख पड़ने वाला अन्धकार--दिव्य प्रकाश के रूप में परिणित हो सके ।

लघुता को विशालता में--तुच्छता को महानता में समर्पित कर देने की उत्कण्ठा का नाम प्रार्थना है । नर को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नारायण--पुरुष को पुरुषोत्तम बनाने का संकल्प प्रार्थना कहलाता है । आत्मा को आबद्ध करने वाली संकीर्णता जब विशाल व्यापक बनकर परमात्मा के रूप में प्रकट होती है तब समझना चाहिए प्रार्थना का प्रभाव दीख पड़ा, नर-पशु के स्तर से नीचा उठकर, जब मनुष्य देवत्व की ओर अग्रसर होने लगे तो प्रार्थना की गहराई का प्रतीक और चमत्कार माना जा सकता है । आत्म समर्पण को प्रार्थना का आवश्यक अंग माना गया है । किसी के होकर ही हम किसी से कुछ प्राप्त कर सकते हैं । अपने को समर्पण करना ही हम ईश्वर के हमारे प्रति समर्पित होने की विवशता का एक मात्र तरीका है । 'शरणागति' भक्ति का प्रदान लक्षण माना गया है । गीता में भगवान ने आश्वासन दिया है कि जो सच्चे मन से मेरी शरण में आता है, उनके योग क्षेम की-- सुख-शान्ति और प्रगति की जिम्मेदारी मैं उठाता हूँ । सच्चे मन और झूठे मन की शरणागति का अन्तर स्पष्ट है । प्रार्थना के समय तन-मन-धन सब कुछ भगवान के चरणों में समर्पित करने की लच्छेदार भाषा का उपयोग करना और जब वैसा करने का अवसर आवे तो पल्ला झाड़कर अलग हो जाना झूठे मन की प्रार्थना है । आज इसी का फैशन है । जिस तरह व्यभिचारी किसी भोली लड़की को फँसाने के लिये लम्बे-चौड़े सब्जबाग दिखाता है और यह जानते हुए भी कि यह आश्वासन मुझे पूरे करने नहीं हैं, बड़े-बड़े विश्वास दिलाता है, कसमें खाता है । उसी प्रकार झूठे मन से की हुई प्रार्थना ईश्वर को ठगने, बहकाने के लिए होती हैं । समर्पण शरणागति जैसे दिव्य स्तर के अर्थ समझता होगा वह इतना भी जानता होगा कि उसका तात्पर्य अपनी लिप्साओं को भगवान की इच्छाओं में परिणित कर देने--गतिविधियों को तृष्णा, वासना के चंगुल से छुड़ाकर ईश्वर की इच्छानुसार उत्कृष्ट विचारणा तथा आदर्शवादी क्रिया पद्धति से अपने वर्तमान ढाँचे को बदलना ही होता है । जो इसके लिये तैयार होकर समर्पण शरणागति की बात करे उसी को सच्चे मन से प्रार्थना करने वाला कहा जा सकता है ।

एक शराबी ने नशे में धुत्त होकर किसी के हाथों अपना मकान सस्ते दामों में बेच डाला । होश आया तो अदालत में अर्जी दी कि नशे में होश-हवाश ठीक न होने के कारण वह बिक्री की थी । अब होश में आने पर उस इकरार नाम से इनकार करता हूँ । पूजा, प्रार्थना के समय लोग न जाने क्या-क्या स्तुति, प्रार्थना करते हैं । मैं तेरी शरण में आया हूँ, तेरा ही हूँ, तेरे चरणों में पड़ा हुआ हूँ, मेरा तो तू ही है। तेरे सिवा मेरा कौन है आदि आदि । वे इन शब्दों का अर्थ भी नहीं समझते और न फलितार्थ । जो शब्द कहे जा रहे हैं यदि वे समझ-बूझकर--होश-हवाश में कहे गये होते तो जरूर उस स्थिति के अनुरूप जीवनक्रम ढ़ालने और विचारों तथा कार्यों में उनका समावेश करने का प्रयत्न किया गया होता । पूजा-स्थल से निकलते ही--जब प्रार्थना कथन को कार्यान्वित होने की आवश्यकता अनुभव होती है, तब सब कुछ बहुत कठिन प्रतीत होता है । होश में आये हुए शराबी की तरह तब उस कथनी को करनी में परिणित न कर सकने की हिम्मत न होने से यही कहना पड़ता है, उस इकरारनामे से इनकार करता हूँ जो पूजा के समय सब कुछ भगवान को समर्पण करने वाली शब्दाबली के साथ कहा गया था ।

प्रार्थना में यही कामना जुड़ी रहनी चाहिए कि परमात्मा हमें इस लायक बनाये कि उसके सच्चे भक्त अनुयायी एवं पुत्र कहला सकने का गौरव प्राप्त करें । परमेश्वर हमें वह शक्ति प्रदान करें, जिसके आधार पर भय और प्रलोभन से मुक्त होकर--विवेकसम्मत कर्तव्य पथ पर साहसपूर्वक चल सकें और इस मार्ग में जो भी अवरोध आवें उनकी उपेक्षा करने में अटल रह सकें । कर्मों के फल अनिवार्य हैं । अपने प्रारब्ध भोग जब उपस्थिति हों तो उनके धैर्यपूर्वक सह सकने और प्रगति के लिए परम पुरुषार्थ हुए कभी निराश न होने वाली मनःस्थिति बनाये रह सकें । भगवान हमारे मन को ऐसा निर्मल बना दें कि कुकर्म की ओर प्रवृत्ति ही उत्पन्न न हो और हो भी तो उसे चरितार्थ होने का अवसर न मिल पायें । मनुष्य जीवन की सफलता के लिये गतिशील रहने से पैरों में शक्ति बनी रहे, ऐसी उच्चस्तरीय प्रार्थना को ही सच्ची प्रार्थना के रूप में पुकारा जा सकता है, जिसमें धन, सन्तान, स्वास्थ्य, सफलता आदि की याचना की गई हो और जिसमें अपने पुरुषार्थ कर्तव्य के अभिवर्द्धन का स्मरण न हो ऐसी प्रार्थना को याचना मात्र कहा जायेगा। ऐसी याचनाओं का सफल होना प्रायः संदिग्ध ही रहता है।

पर मनोविज्ञान वेत्ता डॉ० एमेली केडी ने लिखा है प्रार्थना, मात्र ईश्वर को धन्यवाद देने या उससे कुछ याचना करने की प्रक्रिया का नाम नहीं है । वरन् यह वह मनःस्थिति है जिससे व्यक्ति शंका और सन्देहों के जंजाल में से निकलकर श्रद्धा की भूमिका में प्रवेश करता है । अहंकार को खोकर समर्पण की नम्रता स्वीकार करना और उद्धत मनोविकारों को ठुकराकर परमेश्वर का नेतृत्व स्वीकार करने का नाम प्रार्थना है । जिसमें यह संकल्प भी जुड़ा रहता है कि भावी जीवन परमेश्वर के निर्देशों के अनुसार पवित्र और परमार्थी बनाकर जिया जायेगा । ऐसी गहन अन्तस्थल से निकली हुई प्रार्थना जिसमें आत्मपरिवर्तन की आस्था जुड़ी हुई हो भगवान का सिंहासन हिला देती है । ऐसी प्रार्थना के परिणाम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसे अद्भुत होते हैं जिन्हें चमत्कार कहने में कुछ हर्ज नहीं है ।

चिकित्सा शास्त्र पर नोबेल पुरस्कार विजेता एवं फ्रांस के लियो विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ० कैरल ने अपनी प्रत्येक सफलता के पीछे ईश्वर की अनुकम्पा को छिपा हुआ देखा है । वे कहते थे तुच्छ मानव प्राणी उन्नति के उस स्तर पर नहीं पहुँचते । इन विशिष्ट साधन, विशिष्ट परिस्थितियों और विशेष सूझ-बूझ के पीछे उन्होंने सदा परमेश्वर का दिव्य सहयोग झाँकता देखा और सदा यही कहा--यह वाहन अन्तरंग से निकलने वाली भावी भरी प्रार्थना की प्रतिक्रिया है । उन्होंने अपनी चिकित्सा पद्धति के साथ औषधियों से अधिक प्रार्थना को महत्व दिया । वे हर रोगी से कहते थे सच्चे मन से प्रार्थना करो--अपनी भूलों के लिए पश्चाताप और भविष्य में निर्मल जीवन जीने की प्रतिज्ञा के साथ यदि प्रार्थना करोगे तो वह जरूर सुनी जायगी । सच्चा इलाज तो पश्चाताप है और ईश्वर के चरणों में अपना समर्पण, जो ऐसा कर सकेगा वह शारीरिक ही नहीं आन्तरिक रोगों से भी छुटकारा पा जायगा ।

महात्मा गाँधी ने अपने एक मित्र को लिखा था-- "राम नाम मेरे लिए जीवन अवलम्बन है जो हर विपत्ति से पार करता है ।" जब तुम्हारी वासनायें तुम पर सवार हो रही हों तो नम्रतापूर्वक भगवान को सहायता के लिये पुकारो, तुम्हें सहायता मिलेगी ।

जब मन दुर्बल हो रहा हो, मनोविकार बढ़ रहे हों और लगता हो कि पैर अब फिसला तब फिसला । तो सच्चे मन से प्रभु को पुकारना चाहिए । गज को ग्राह के चंगुल से छुड़ाने वाले भगवान, पतन से परित्राण पाने के लिए व्याकुल आर्त्त भक्त की पुकार अनसुनी नहीं करते हैं और उस मनोबल रूप में अन्तःकरण में उतरते हैं जिसे गरुड़ कह सकते हैं और जो पतनोन्मुख दुष्प्रवृत्तियों के सर्पों को उदरस्थ करते रहने का अभ्यासी है ।

भगवान को आत्मसमर्पण करने की स्थिति में जीव कहता है--तस्यैवाहम् (मैं उसी का हूँ) **तवै वाहम्** (मैं तो तेरा ही हूँ) यह कहने पर उसी में इतना तन्मय हो जाता है--इतना घुल-मिल जाता है कि अपने आपको विसर्जन, विस्मरण ही कर बैठता है और अपने को परमात्मा का स्वरूप ही समझने लगता है । तब वह कहता है--**त्वमेवाहम्** (मैं ही तू हूँ) **शिवोहम्** (मैं ही शिव हूँ) **ब्रह्माऽस्मि** (मैं ही ब्रह्मा हूँ) ।

भगवान को अपने में और अपने को भगवान में समाया होने की अनुभूति की जब इतनी प्रबलता उत्पन्न हो जाय कि उसे कार्य रूप में परिणित किये बिना रहा ही न जा सके तो समझना चाहिए कि समर्पण का भाव सचमुच सजग हो उठा । ऐसे शरणागति व्यक्ति को प्रार्थना द्रुतगति से देवत्व की ओर अग्रसर करती है और यह गतिशीलता इतनी प्रभावकारी होती है कि भगवान को अपनी समस्त दिव्यता समेत भक्त के चरणों में शरणागत होना पड़ता है । यों बड़ा तो भगवान ही है पर जहाँ प्रार्थना, समर्पण और शरणागति की साधनात्मक प्रक्रिया का सम्बन्ध है, इस क्षेत्र में भक्त को बड़ा और भगवान को छोटा माना जायगा क्योंकि अक्सर भक्त के संकेतों पर भगवान को चलते हुए देखा गया है ।

प्रार्थना का मतलब चाहे जो माँगना नहीं है

इंगलिश में एक जगह कहा गया है कि-- "जो तुम माँगते हो सो पाते नहीं--क्यों कि तुम गलत माँगते हो ।" सचमुच माँगना भी एक कला है और उसमें भी समझदारी की आवश्यकता है । अन्यथा बिना विचार किये गये अन्य कामों की तरह हमारी प्रार्थना, याचना भी निष्फल चली जायगी । यदि माँगना ही है तो पहले यह देख लेना चाहिए कि किस शर्त पर माँगना चाहिए । डाकखाने में जाकर आप जलेबी माँगे तो उपहास के अलावा क्या हाथ लगेगा। दर्जी की दुकान पर किताबें माँगी जायें तो निराश ही होना पड़ेगा । भिक्षुओं के याचना के साथ कारण बताना पड़ता है । शारीरिक असमर्थता या किसी आकस्मिक विपत्ति की चर्चा न की जाय और कोई तन्दुरुस्त व्यक्ति ऐसे ही भिक्षा माँगने लगे तो उसे कोई विरला ही कुछ देगा ।

ईश्वर दयालु और दाता तो है, पर देते समय वह भी विवेक से काम लेता है और पात्रता परखते हुए भी देने वाली मुट्ठी खोलता है । जहाँ तक सहज अनुदान का प्रश्न था वहाँ उसने सबको बहुमूल्य शरीर एक से एक उपयोगी अंग, वृद्धि, सुन्दर दुनिया तथा सुविधाजनक परिस्थितियाँ प्रदान की हैं । एकाकी तो हम एक मक्खी भी नहीं बना सकते और उनकी प्रदत्त सामग्री न हो तो अन्न का एक दाना भी उगा सकना संभव नहीं । आदमी के पुरुषार्थ और बुद्धि का बहुत मूल्य है पर वह तभी कुछ कर सकने और पा सकने में सफल हो सकता है, जब आवश्यक साधन और सुविधायें उपलब्ध हों । कहना न होगा कि वस्तुयें तथा सुविधायें इस प्रकार से भगवान ने ही उपलब्ध की हैं । मनुष्य तो उनमें थोड़ी हेर-फेर कर लेता या उपयोग, उपभोग में अपनी चतुरता का तालमेल बिठा लेता है । उसके पुरुषार्थ और बुद्धि वैभव का दायरा इतना ही सीमित है मूल उत्पादित और अनुदान तो सर्वत्र परमात्मा का ही बिखरा पड़ा है ।

यह समस्त उपलब्धियाँ भगवान ने आरम्भ से ही मनुष्य को दे दी हैं और उसे इस लायक बना दिया है कि दैनिक जीवन की अपनी आवश्यकताओं को अपने कौशल से स्वयं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूरी कर लिया करे । इसके अतिरिक्त परिस्थितियों को अनुकूल बनाने, परस्पर सद्भाव सहयोग बनाये रहने तथा प्रगति के लिये साधन जुटाने के लिये इतना बुद्धि कौशल दिया है कि आये दिन सामने आती रहने वाली उलझनों को सुलझाया जा सके । धैर्य, साहस, पुरुषार्थ, पराक्रम, विवेक, स्नेह आदि विशेषताओं से सम्पन्न ऐसा मन बनाये हैं जो प्रतिकूलता में अनुकूलता उत्पन्न कर सकें और अपनी हँसी-खुशी को हर स्थिति में अक्षुण्ण रख सके । हर दिशा में प्रगति की इतनी सम्भावनाएँ प्रस्तुत करके रखी गई हैं कि यदि बुद्धिमानी से काम लिया जा सके तो इतना मनोबल दिया गया है, जिससे विपत्तियों के सहने तथा उन्हें बदलने की चेष्टा करते हुए जीवनक्रम की सरसता को अक्षुण्ण बनाये रखा जा सके ।

यह सब ईश्वर प्रदत्त अनुदान इतने बड़े और इतनी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं जिसे महान दयालु और महान दानी कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए । जीवनयापन की आवश्यक सुविधा, साधन देकर भगवान ने सब प्राणियों को भेजा है । फिर मनुष्य को तो वाणी, समझ तथा कुशलता का अनुदान अतिरिक्त रूप से दिया है जिसके आधार पर अन्य जीवों की तुलना में असंख्य गुना सुविधा सम्पन्न जीवन जी सकता है तो यही कहा जायगा कि उसने उपलब्ध साधनों तथा परिस्थितियों का ठीक से उपयोग करना एवं लाभ उठाना नहीं सीखा । इस नासमझी का दण्ड यदि उसे मिलता और अपने को विपत्ति स्थित में पड़ा पाता है, तो उसमें दोष उसी का है । इसलिये किसी अन्य को यहाँ तक कि भगवान को भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता । थाली सामने परसी रखी हो पर यदि कोई उसे ठुकरा दे और खाना न चाहे तो उस आमन्त्रित कठिनाई से कोई क्यों कर किसी को बचा सकता है ।

नब्बे प्रतिशत कठिनाइयाँ ऐसी हैं जो न भाग्य से उत्पन्न हुई हैं और न किसी दूसरे ने पैदा की हैं वरन् उनका कारण मात्र नासमझी या कर्तव्य की दोषपूर्ण पद्धति है । इन्हें सुधार लिया जाय तो मनुष्य हँसी-खुशी का शान्त और सन्तुष्ट जीवन जी सकता है । मनुष्य की वास्तविक आवश्यकतायें बहुत स्वल्प हैं । उसका आहार अन्य पशुओं से कम है । भोजन, वस्त्र, मकान आदि के साधन जुटा लेना इस मँहगाई के जमाने में भी बहुत कठिन नहीं है । शिष्टता, सादगी, व्यवस्था और सज्जनता से रहना आता हो तो मिल-जुलकर शान्ति और स्नेहपूर्वक रहने का वातावरण बना रह सकता है । आहार-विहार का ज्ञान हो तो रोगी बनने की भी नौबत न आवें । परिस्थितियों के अनुरूप चिन्तन को ढ़ालने-मोड़ने का मानसिक लोच बना रहे तो आवेश, उद्वेग और शोक-सन्तांप भी सहन न करने पड़ें । संग्रह और स्वामित्व का अहंकार अमीरी और आतंक की अभिलाषा न हो तो न असन्तोष की आग में जलना पड़े और न पाप अपराध करने की आवश्यकता पड़े । वासनाओं और तृष्णाओं को काबू में रखा जा सके, तो इस सुन्दर से भगवान के संसार उद्यान में हँसते-खेलते दिन बिताये जा सकते हैं । मनुष्य का जीवन अन्य प्राणियों की तुलना में अधिक सुविधा सम्पन्न है । उसे पाकर आदमी को भलमनसाहत आती हो तो संतोष और शान्ति के साथ स्वयं जी सकता है । और दूसरों को जीवित रहने दे सकता है ।

पर हम देखते हैं कि मनुष्य को जितनी सुविधायें मिली हैं उतना ही ज्यादा वह दुःखी तथा उलझा हुआ है । इसका कारण वस्तुओं की कमी नहीं वरन् उसके सदुपयोग की क्षमता का अभाव है । इसका कारण परिस्थितियों की क्षमता का अभाव है । इसका कारण परिस्थितियों की प्रतिकूलता नहीं वरन् उसके अनुकूल ढ़लने या उन्हें अपने अनुकूल ढ़ालने वाले कलात्मक दृष्टिकोण की कमी है । यदि इन अपनी त्रुटियों को दूर कर लिया जाय तो न अभाव ग्रस्तता अनुभव होगी और न उसकी पूर्ति के लिए किसी से प्रार्थना करनी पड़ेगी, न अपने ऊपर संकट की घटायें घिरी दीखेंगी और न किसी का सहारा तकना पड़ेगा ।

भगवान से माँगने योग्य वस्तुयें श्रद्धा, हिम्मत, धर्मनिष्ठा, सच्चरित्रता, करुणा, ममता, पवित्रता और विवेकशीलता जैसी वे सद्भावना एवं सत्प्रवृत्तियाँ हैं जो विपन्नता को सम्पन्नता में बदल देती हैं और अभाव रहते हुए जिनके कारण विपुल सम्पन्नता का सुख अनुभव होता रहता है । प्रगति और सफलता का सारा आधार सद्गुणों पर अविलम्बित है । उनके बिना अकस्मात् किसी प्रकार कोई लाभ मिल भी जाय तो उसे सँभालना और स्थिर रखना सम्भव न होगा । सदुपयोग केवल उस वस्तु का किया जा सकता है जो उचित मूल्य देकर उपार्जित की गई है । अनायास बिना परिश्रम के मिली हुई सम्पत्ति का अपव्यय ही होता है और और उससे अनेक व्यसन और उद्वेग पैदा होते हैं जिनके कारण वह उपलब्धि सुखदायक न होकर अनेक विपत्तियाँ और विकृतियाँ उत्पन्न करने का कारण बन जाती हैं । भगवान जिस पर प्रसन्न होते हैं उसे सद्गुणों का उपहार देते हैं क्योंकि वे अपने आप में इतने महान हैं कि यदि साधन सम्पन्नता भी न हो तो भी केवल उन सद्गुणों की सम्पदा के आधार पर मनुष्य सुखी, समुन्नत और सम्मानित जीवन जी सकता है । यही दिव्य सम्पदायें भगवान से माँगनी चाहिए । यही हैं वे विभूतियाँ जिन्हें वे अपने भक्तों को दिया करते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भौतिक सुख, सम्पदाओं का जितना अपना हक था उतना जन्मते ही मिल चुका अब अपने पुरुषार्थ और प्रयत्न की बात रह जाती है जितनी योग्यता संग्रह करेंगे, जितनी कुशलता का परिचय देंगे और जितना मनोयोगपूर्वक श्रम करने की आदत डालेंगे उतने ही सुख-साधन मिलते जायेंगे। इसमें परमात्मा से माँगने की क्या बात है जो हम अपने पुरुषार्थ को प्राप्त कर सकते हैं उसके लिए हाथ पसारने की क्या जरूरत ? शरीर रोगी है तो आहार-विहार का संयम आरोग्य के नियम पालन में कड़ाई और उपयुक्त चिकित्सा परिचर्या की व्यवस्था करनी चाहिए । पैसों की तंगी पड़ती है तो उपार्जन के लिए अधिक पुरुषार्थ योग्यता की अभिवृद्धि तथा खर्च में कम करने वाली सादगी अपनानी चाहिए और उस संकट को पार करना चाहिये । यदि आरोग्यधन जैसी वस्तुओं को माँगे परीक्षा में उत्तीर्ण होने की अथवा मुकद्मा जीतने की योजना करे और माँगने मात्र से भगवान उन कामनाओं को पूरी कर दें तो फिर योग्यता एवं पात्रता बढ़ाने की क्या आवश्यकता रह जायगी । फिर वे घाटे में रहेंगे जो पराक्रम करने में जुटे हुए हैं । जब सरलतापूर्वक प्रार्थना मात्र से अभीष्ट सफलतायें मिल सकती हैं और मनोकामनायें पूर्ण हो सकती हैं तो फिर उनके लिए इतना कष्टसाध्य पुरुषार्थ कौन करेगा ? फिर कर्मफल का सिद्धान्त ही गलत हो जायेगा और लोग कर्मनिष्ठ बनने की अपेक्षा प्रार्थना परायण बनना पसन्द करेंगे । क्योंकि सरलता उसी में है। इसी प्रवृति ने अपने देश में भिक्षुओं की संख्या ५६ लाख बढ़ा दी है । यह परावलम्बन देश की आर्थिक और सामाजिक स्थिति को दुर्बल कर रहा है । प्रार्थना के साथ भौतिक सुख-सुविधाओं की याचना जोड़ देने से अध्यात्म तत्व की महत्ता गिर गई । उस क्षेत्र में अब आत्म-बल सम्पन्न महामानव नहीं दीखते वरन् दीनता भरी गिड़गिड़ाने की वाणियाँ मात्र सुनाई पड़ती है ।

क्या माँगने मात्र से अभीष्ट प्रयोजन पूरे हो सकते हैं? क्या सुख-सुविधाओं का उपहार याचना मात्र से मिल सकता है ? उत्तर नहीं में ही मिलेगा । इंजील ने ठीक ही कहा है--''जो तुम माँगते हो सो पाते नहीं--क्योंकि गलत माँगते हो । गलत जगह पर गलत चीज माँगने से उसका मिलना कैसे संभव हो सकता है । भौतिक सफलतायें हमें अपनी भुजाओं और कलाइयों से माँगनी चाहिए । अपनी अकल को तेज करना चाहिए और सूझ-बूझ से काम लेना चाहिए। अवरोध उत्पन्न करने वाली त्रुटियों को सुधारना चाहिए । सफलता का द्वार खुल जायगा । नास्तिक लोग जो कभी पूजा, प्रार्थना नहीं करते, भौतिक उन्नति के पर्याप्त साधन जुटा लेते हैं इसके विपरीत जो पूजा-प्रार्थना में ही लगे रहते हैं, वे अभाव-दारिद्रय की, निराशा और असफलता की परिस्थितियों से घिरे रहते हैं । इसका एक मात्र कारण यही है कि जो चीज जहाँ से माँगी जानी चाहिए थीं वह भगवान से माँगा गईं ।''जो भगवान से माँगा जा सकता था उसकी आवश्यकता ही अनुभव नहीं हुई । इस भ्रमग्रस्त दशा में मनोरथ पूरे हो भी कैसे ।

भगवान स्वयं अपनी विधि-व्यवस्था में बँधे हुए हैं । उन्होंने इस सम्बन्ध में अपनेआप के साथ तक कोई रियायत नहीं की, अपने सगे सम्बन्धियों तक को छूट नहीं दी । कर्मफल की व्यवस्था को ही सर्वत्र प्रधान रखा । ऐसा न होता तो कोई पुरुषार्थ करने के लिए तैयार ही क्यों होता और कुकर्मों से बचने के लिए किसी की आवश्यकता ही क्यों पड़ती । प्रार्थना मात्र से सारी सुविधायें मिल जातीं तो फिर कठोर, कर्मठता के लिए कटिबद्ध होने की इच्छा ही क्यों होगी ।

दशरथ जी ने श्रवण कुमार को क्यों मारा--मृतक के पिता ने शाप दिया कि मेरे पुत्र को मारने वाले को इसी प्रकार पुत्र के शोक में विलख कर मरना पड़ेगा । दशरथ जी की मृत्यु उसी प्रकार हुई । भगवान राम अपने पिता को कर्मफल भोगने की अनिवार्यता से छुटकारा न दिला सके। त्रेता में राम ने छिपकर बाली के वाण मारा---द्वापर में बालि ने बहेलिया बनकर भगवान कृष्ण के पैर में तीर मारा। मृत्यु के समय कृष्ण जी ने कर्मफल की अनिवार्यता का इस घटना को प्रमाण बताया । अर्जुन पुत्र--अभिमन्यु श्री कृष्ण की बहिन का पुत्र , मृत्यु का विधान और प्रारब्ध को टाल सकने की अपनी असमर्थता को ही भगवान व्यक्त करते रहे। उन्होंने **कर्म प्रधान विश्व करि राखा** की उक्ति को विश्व के व्यवस्था संचालन का प्रधान तथ्य माना है । सो उसे प्रार्थना के बदले रियायत के रूप में भी टाला जा सकना सम्भव नहीं है । भगवान की भक्ति और प्रार्थना का स्वरूप व्यावहारिक जीवन में कर्मनिष्ठा के रूप में होना चाहिए। उन सत्प्रवृत्तियों को विकसित करने के रूप में होना चाहिए जो परिस्थितियों को बदलने या उनके धैर्य और साहस के साथ कामना करने की क्षमता प्रदान करती है । वह विवेक प्रार्थना का उपहार कहा जायगा जो हर परिस्थिति में हँसते-मुस्कराते हुए हल्का-फुल्का जीवन जी सकने की क्षमता प्रदान करता है ।

कुछ तो कामनायें ही ऐसी होती हैं जिनकी कोई उपयोगिता नहीं, फिर भी उन्हें अकारण चाहते हैं । जैसे सन्तान का न होना, आज की परिस्थिति में भारत जैसे गरीब देश में एक सौभाग्य ही है, पर कितने ही बुद्धिहीन लोग इस सौभाग्य को भी दुर्भाग्य मानते हैं और दुःखी रहने तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उस दुर्भाग्य की याचना के लिए प्रार्थना करते हैं । ऐसे लोग न प्रार्थना का रूप समझते हैं और न उपयोग । जो भी जी में आया, सो मुफ्त की लूटमार कर माँगने के लिए हाथ पसारने लगते हैं । ऐसे लोगों की कामनायें यदि भगवान यों ही स्तुति, प्रार्थना से प्रभावित होकर पूरी करने लगें तो फिर इस संसार में कर्म, पुरुषार्थ--पात्रता और विवेकशीलता की कुछ आवश्यकता ही न रह जायगी फिर यहाँ अन्धेर नगरी वेवूझ राजा की उक्ति ही सर्वत्र चरित्रार्थ होती दिखाई देगी । वस्तुतः ऐसा होता नहीं, न हो ही सकता है । उपलब्धियों के लिए पात्रता आवश्यक है । पात्रता की अभिवृद्धि के लिए आत्म-बल प्राप्त करना ही प्रार्थना का प्रयोजन है । ऐसी सार्थक प्रार्थना ही सफल होती है और उन्हें ही सफल होना ही चाहिए ।

अन्तरात्मा की सच्ची प्रार्थना

प्रार्थना मनुष्य जीवन का ध्रुव तारा है । उसे नितान्त आवश्यक नित्य कर्मों में भी सबसे आवश्यक समझा जाना चाहिए और शरीर निर्वाह के अन्य कार्यों की उपेक्षा करके भी प्रार्थना को प्रमुखता देनी चाहिए । भोजन न मिलने से शरीर को ही भूखा रहना पड़ेगा, पर प्रार्थना का अभाव रहने से तो आत्मा की प्रगति ही रुक जायगी । हम शरीर नहीं आत्मा हैं । इसलिए शरीर की उपेक्षा करके भी आत्मा की आवश्यकताओं को प्रमुखता मिलनी चाहिए । शरीर की शुद्धि के लिए स्नान और वस्त्रों की सफाई के लिए साबुन जितना आवश्यक है, उससे भी अधिक उपयोगिता आत्मिक शुद्धि के लिए प्रार्थना की है । उसमें न तो आलस्य करना चाहिए और न प्रमाद । प्रार्थना की उपेक्षा जीवन के सर्वोत्कृष्ट स्वार्थ का तिरस्कार करने जैसी भूल है । इस भूल के लिये जितना पश्चात्ताप करना होता है उतना और किसी के लिए नहीं ।

नियत निर्धारित समय पर शरीर, वस्त्र और स्थान शुद्धि के साथ पूजा-उपकरणों की सहायता से विधिवत् उपासना की जा सके तो सर्वोत्तम है । पर यदि किसी कारणवश वैसा न बन पड़े तो प्रातः नींद खुलने से लेकर शैया-त्याग तक का जो समय मिलता है, उसमें उत्तर संन्ध्या की जा सकती है । यह दोनों समय हर व्यक्ति के पास सुविधा के रहते ही हैं । व्यस्तता का बहाना इन क्षणों के लिये तो बताया भी नहीं जा सकता । प्रार्थना के लिये हर समय सर्वोत्तम है । नियमित उपासना करने वालों की भाव प्रार्थना तो इस समय भी होनी चाहिये । मानसिक उपासना बिना किसी पूजा-उपकरण एवं शुद्धि के भी, चारपाई पर पड़े-पड़े भी मनोभाव, श्रद्धा, विश्वास एवं ध्यान धारणा के आधार पर भी हो सकती है । इसे तो अनिवार्य ही मानना चाहिये। विधिवत् उपासना जिनसे बन पड़े वे उसे भी किया ही करें।

प्रार्थना में भाव का प्रमुख स्थान है । भावना जितनी सच्ची गहरी और श्रद्धापूर्ण होगी, उतना ही उसका सत्परिणाम भी होगा, इसलिये शब्दों को रटने की चिह्न पूजा को वरन् समुचित श्रद्धा के साथ प्रार्थना की भावनाओं को अन्तःकरण में बैठा हुआ अनुभव करते हुए उसके सम्मुख अपने मनोभाव प्रस्तुत करने चाहिए । भगवान अपने रोम-रोम में समाया हुआ है, साँसों के साथ थिरकता हुआ बाहर आता और भीतर जाता रहता है । हृदय में उसी की धड़कन और रक्त में उसी की गर्मी काम कर रही है । प्राण चेतना और भावना के रूप में वही तो अपनी प्रेरक शक्ति बना बैठा है ऐसे अभिन्न हृदय मित्र से, स्वजन स्नेही से जी खोलकर बातें करने में संकोच ही क्यों होना चाहिये ? उसके साथ जी खोलकर बातें करने में भय ही क्या है ? प्रार्थना यदि भावनापूर्ण है तो वह बिना पूजा साधना के भी उतनी ही प्रभावशाली हो सकती है जितनी विधि-विधान के साथ किये गये पूजा-पाठ की नियमित आराधना ।

भगवान के निकट भावना का महत्व सर्वोपरि है । विस्तृत कर्मकाण्ड भी यदि अश्रद्धा के साथ चिह्न पूजा के साथ की तरह भार उतारने के निमित्त किया है तो उसका फल होगा, उससे वह भाव प्रार्थना श्रेष्ठ है, जो सच्चे हृदय से जी खोलकर की गई हो । नियमित उपासना का महत्व कम करने की बात किसी को सोचनी भी नहीं चाहिए । यहाँ ऐसा कुछ नहीं कहा जा रहा है कि नियमित विधिवत् साधना बन्द करके ध्यान प्रार्थना ही करते रहा जाय । यह तो घाटे की बात होगी । नियमित साधना का अपने स्थान पर अपना महत्त्व है । उससे एक प्रकार का योगाभ्यास होता है । सूक्ष्म शरीर के चक्रों और उपत्यिकाओं का जागरण होता है और संस्कारों में दृढ़ता आती है । हमारे घरों में पूजा, आरती, योग, प्रसाद, जप, तप, पाठ ध्यान का कार्यक्रम चलते रहने चाहिए । यह भाव ध्यान जिसका उल्लेख इन पंक्तियों में किया जा रहा है, ऐसा है कि उसे प्रातः सायं उठते-सोते तो करना ही चाहिये, अन्य किसी अवकाश के समय में भी किया जा सकता है ।

हम प्रार्थना करें

"हे भगवन् ! आप सर्वत्र समाये हुए हैं, कोई स्थान आपकी उपस्थिति में रिक्त नहीं, जड़ चेतन में आपकी ही सत्ता प्रकाशवान् हो रही हैं । अन्य प्राणियों की भाँति में मेरे कण-कण में भी समाये हुए हैं । संसार भर में जो कुछ हो रहा है । उससे आप परिचित हैं । अन्तःकरणों में बैठे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हम सबकी भावनाओं को आप जानते हैं । मेरी प्रत्येक गति विधि और भावना विचारणा का आपको भली भाँति परिचय है । इस विश्व में कुछ भी ऐसा नहीं जो आपसे छिपा हो।''

''आप निष्पक्ष और न्यायकारी हैं । आपको सभी मनुष्य सभी प्राणी समान रूप से प्रिय हैं । आप सबके पिता हैं इसलिए सभी प्राणी आपको समान रूप से पुत्रवत् प्रिय होने स्वाभाविक हैं । आप सब पर प्रसन्न हैं और सब पर करुणा करते हैं । संसार की सुव्यवस्था के लिए न्याय-तुला का आपने जो पुण्य विधान बनाया है । वह सबके हित का होने से सब प्रकार उचित और उपयुक्त है। आप न्याय की रक्षा करने में तनिक भी विचलित नहीं होते। किसी के साथ पक्षपात नहीं करते । कर्म फल के अनुसार सबको दुःख-सुख का उचित दण्ड पुरस्कार देते हैं, इसमें आपकी करुणा, न्यायशीलता और निष्पक्षता ही सन्निहित है।''

''सत्कर्म ही आपकी सबसे बड़ी पूजा है । सद्भावनाओं के पुण्य ही आपको प्रिय हैं । सद्विचारों में ही आपको अपनी सच्ची भक्ति की प्रतीत होती है । आपको बनाये हुए नियमों को कर्तव्यनिष्ठ होकर जो दृढ़तापूर्वक पालन करता है, उसके सदाचार रूपी भजन को ही आप मान लेते हैं । ऐसा भजन करने वाला भक्त ही आपकी विशेष कृपा का अधिकारी बनता है ।''

''दूसरों को सताने या ठगने वाला वस्तुतः अपने आपको ही सताता और ठगता है । क्योंकि आप ही सबमें विद्यमान होने के कारण उस अनाचार के शिकार होते हैं । प्राणियों के प्रति सद्भाव रखना और सद्व्यवहार करना वस्तुतः आपकी ही अर्चना-वन्दना करना है । अपने पुत्रों के साथ सज्जनता का व्यवहार करते देखकर ही आप किसी को अपना भक्त मानते हैं । ठीक भी है, पिता उसी से तो विशेष प्रसन्न होगा जो उसके पुत्रों के प्रति कर्तव्य से भी अधिक बढ़कर उदारता की श्रेणी का सद्व्यवहार करने का साहस करेगा। प्राणियों के साथ दुर्व्यवहार करके जिसने नीचता का परिचय देते रहने का क्रम बना लिया है वह आपको शूल चुभाने वाला किस मुँह से यह आशा करेगा कि आप उस पर प्रसन्न होंगे ।''

''ख्याति और बड़प्पन या अन्य किसी प्रकार का भौतिक प्रतिफल पाने के लिये किये गये धर्म आडम्बर आपको प्रिय नहीं । आप कर्त्ता की भावनाओं को परखते हैं । इसलिए परमार्थ केवल उसे ही मानते हैं जो निस्वार्थ एवं उदात्त भावनाओं से प्रेरित होकर किया गया है । ऐसे ही सत्कर्मों की आप पुण्य में गणना करते हैं और उसी आधार पर किसी को पुण्यात्मा मानकर सद्गति प्रदान करते हैं ।''

''कर्तव्यपालन में चट्टान की तरह अडिग धर्म आपको परम प्रिय है । प्रलोभनों में, असंयम में पड़कर भी जो अपने शील को सुरक्षित रखता है उस आत्मविजेता से आप प्रसन्न रहते हैं । जो पाप के अतिरिक्त और किसी से नहीं डरता उस निर्भय को आप प्यार करते हैं । आपत्तियों से जो भयभीत नहीं होता, चिन्ता निराशा और क्षोभ जिसे सताते नहीं उस सज्जन और संतुलित व्यक्ति पर आपकी अनुकम्पा सहज ही होती है ।''

''आप सत्य हैं, आप शिव हैं, आप सुन्दर हैं । जो आपको अन्तरात्मा में धारण करता है, उसकी प्रवृत्तियाँ सत्य से प्रेरित होती हैं । वह शिव, कल्याणकारक कार्य करता है और उसकी समस्त चेष्टाएँ सुन्दर दीखती हैं । आप दिव्य है आपको प्रेम करने वाला दिव्य गुणों वाला देवता बनता है । आप प्रेम हैं आपकी किरण जिसके भीतर प्रतिभासित होंगी, वह सबको प्रेम की, मैत्री की, आत्मीयता एवं उदारता की ही दृष्टि से देखेगा । दूसरों के सुख-दुःख जैसी भली-बुरी अनुभूति होगी ।''

''आप जिस पर प्रसन्न होते हैं उसे सद्बुद्धि और सन्मार्ग पर चलने की साहसपूर्ण प्रेरणा प्रदान करते हैं । अपना स्वरूप गौरव और वर्चस्व समझ लेने पर मनुष्य विश्वविजयी बनता है । समस्त कठिनाइयों को पार कर लेना उसके लिए सरल हो जाता है । आपका प्रकाश पुरुषार्थ के रूप में जब प्रकट होता है तो मनुष्य आलस्य और प्रमाद को परास्त कर समय, धन, आहार, व्यवहार, विचार आदि को नियमित एवं व्यवस्थित बना लेता है । आपका वरदान किसी के जीवन की नियमित व्यवस्था बनी हुई देखकर ही जाना जा सकता है ।''

''आप मानव शरीर देकर सृष्टि के समस्त प्राणियों की अपेक्षा अत्यधिक श्रेष्ठ उपहार हमें दे चुके हैं, अब एक वस्तु विशेष उपहार हमें देने के लिए शेष है । उसे पाने का अधिकारी हमें बनाइये । ऐसी कृपा कीजिए कि हम मानव अन्तःकरण प्राप्त कर सकें । नर-पशु से ऊँचे उठकर गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से सच्चे मनुष्य बन सकें । जिस दिन हम सच्चे मनुष्य बन सकेंगे उसी दिन आपकी कृपा मिलेगी और हम इसी जीवन में शरीरधारी रहते हुए भी जीवन मुक्ति का आनन्द लेते हुए लक्ष्य की पूर्णता और इस जन्म की सार्थकता अनुभव करेंगे।''

''प्रभो ! हमें सन्मति दीजिए, साहस दीजिए और सज्जनता के पथ पर ले चलिए । आपके पास यही सर्वश्रेष्ठ उपहार वरदान हमारे लिए हो सकता है तो हमें इस योग्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनने की शक्ति दीजिए कि अपने आचरणों से आपको प्रसन्न करके यह अनुग्रह प्राप्त कर सकें । भगवन ! हमें असत्य से सत्य की ओर ले चलिए, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलिए, मृत्यु से अमृत की ओर ले चलिए । हमारा कल्याण कीजिए और इस समस्त संसार का कल्याण कीजिए ।''

प्रार्थना की आवश्यकता

प्रायः सभी धर्मों में ईश्वर की सर्वव्यापक, सर्वसमर्थ, परमशक्तिमान सत्ता को अपनी श्रद्धा और विश्वास का आधार बनाया है । मनुष्य की अपनी शक्ति अल्प, सीमित और मर्यादित है । संसार और जीवन की विभीषिकाओं में मनुष्य अपनी ''स्वः'' शक्ति पर अपने आपको निरीह, असहाय अनुभव करता है । किन्तु जब वह ईश्वर की व्यापक शक्तिशाली सत्ता से अपने आपको जुड़ा हुआ पाता है तो उसके द्वन्द्व स्वतः ही तिरोहित हो जाते हैं । ईश्वर का संसर्ग पाकर स्व-शक्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि द्वन्द्व उसके लिए द्वन्द्व नहीं रहते । कठिनाई, क्लेश, परेशानियों में भी मनुष्य सन्तुलित होकर आगे बढ़ता रहता है । ईश्वर पर दृढ़ आस्था और विश्वास मनुष्य को सन्तुलन और शक्ति प्रदान करता है ।

अपने को ईश्वर सत्ता से संयुक्त करने के लिए शरणागति आत्म निवेदन, प्रार्थनाओं को धर्म का रचनात्मक रूप माना गया है । चिन्तन, मनन, धारणा, ध्यान, समाधि का आयोजन ईश्वरीय सत्ता से एकीभूत होने के लिए, शक्ति प्रेरणा पाने के लिए, मानसिक सन्तुलन प्राप्त करने के लिए हुआ । मन के अन्तर्द्वन्द्व शान्त होने पर मनुष्य को क्लेश पहुँचाने वाले अनेकों मनोभावों का सहज ही निवारण हो जाता है ।

इस तरह धर्म के अनेकों कार्यक्रम, आस्था, व्यवस्थाओं का आदि काल से अबोध क्रम चलता रहा और समय-समय पर इनमें विकास साथ ही परिवर्तन, नवीनीकरण भी होता रहा ।

ईश्वर के विश्वास के साथ ही प्रार्थना धर्म की दूसरी देन है । प्रार्थना से मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य में बहुत बड़ी सहायता मिलती है । प्रार्थना एकान्त में स्वच्छ शान्त वातावरण में विभिन्न मुद्राओं के साथ की जाती है । प्रार्थना सामूहिक होती है । प्रार्थना की पूर्णता और विधि-व्यवस्था के लिए शारीरिक पवित्रता, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर, मूर्तियाँ विभिन्न प्रतीकों का माध्यम लिया गया । अनेक प्रकार के कर्मकाण्डों का प्रादुर्भाव हुआ । संगीत और कला के समन्वय से उसे अधिक रोचक बनाया गया । सभी धर्मों में प्रार्थना का कोई न कोई रूप रखा गया है । किन्तु सभी का एक ही उद्देश्य है, संसार के बाह्य जीवन से कुछ क्षणों के लिए विश्राम लेना उत्तेजना, संघर्ष, अशान्ति, क्लेश आदि से कुछ समय उपराम लेकर अन्तर्मुखी बनना । असीम अनन्त के साथ एकाकार होकर आत्म-निदान करके या आत्मानुभूति प्राप्त करके मानसिक सन्तुलन, आत्म प्रसाद, मानसिक दृढ़ता-शक्ति कराना प्रार्थना का मूल उद्देश्य है ।

प्रार्थना से मानसिक सन्तुलन, आत्मानुभूति ईश्वरीय सत्ता के साथ एकात्मकता के साथ ही शारीरिक तनाव ही दूर होता है । दिन-रात संसार के ताने-बाने में ही रत यहाँ के संघर्षों में लिप्त रहने से शरीर के स्नायु-संस्थान, पेशियों, नस, नाड़ी, दिल-दिमाग, एवं अन्य अवयवों में एक तरह का तनाव, खिंचाव सा पैदा हो जाता है । आज के युग में तो मानव-जीवन की दौड़-भाग, संघर्ष आदि और भी अधिक बढ़ गये हैं । प्रार्थना के समय मनुष्य यदि प्रयत्नपूर्वक संसार से अपने आपको कुछ देर के लिए समेटकर एक सत्ता में केन्द्रित हो जाय तो उसे सहज ही उपराम मिले और उसका समस्त मानसिक स्नायुविक तनाव दूर होकर पर्याप्त विश्राम मिलता रहे । प्रार्थना एक रूप में संसार की ओर से मानसिक शिथिलीकरण का आध्यात्मिक उपाय है जिससे मानसिक मन के साथ-साथ शरीर को भी काफी आराम-उपराम मिलता है ।

नदी की भयंकर लहरों में पड़े हुए मनुष्य को कुछ क्षणों के लिए यदि किनारे पर लाकर सुरक्षा की छाया में बैठा दिया जाय, तो उसे कितना परितोष, आनन्द, आराम मिलेगा इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । ठीक इसी तरह संसार सागर की विभीषिकाओं संघर्षों से विरत हो मनुष्य कुछ क्षणों के लिए प्रार्थना के द्वीप पर असीम अनन्त प्रभु की छत्र-छाया में बैठकर उसकी अनुभूति करे तो वह सहज ही जीवन की क्लान्ति को दूर करके अधिक सक्षय हो जाय । संसार की ज्वालाओं से दग्ध उसका मानस पुनः हरा-भरा हो जाय । उसे सर्वत्र सौन्दर्य शान्ति के दर्शन हों फिर से नई ताजगी, नई शक्ति सहज पाकर संसार में उतर कर अपना कर्तव्य पूरा कर सकता है । प्रार्थना मानव का अन्तर बाह्य सभी तरह से काया-कल्प कर सकती है ।

प्रार्थना से मनुष्य के निराशावादी, हीन दृष्टिकोण में परिवर्तन हो जाता है । उसे सर्वत्र, शान्ति सौन्दर्य, भवन-माधुर्य के दर्शन होते हैं । संसार की विभीषिकाएँ गौण हो जाती हैं । उत्तेजनायें शान्त हो जाती हैं । प्रार्थना आन्तरिक और बाह्य जीवन में सन्तुलन व्यवस्था पैदा करती है । एकदम बाह्य जगत में खो जाना, यदि दुःख-द्वन्द्वों से लिपटना तो एक दम आन्तरिक जगत में रहना भी धरती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और संसार के कर्तव्यों से दूर हटना है । योगी की अर्धोन्मीलित दृष्टि की तरह आधी से संसार और आधी से अन्तर देखकर जीवन में समता, सन्तुलन व्यवस्था प्राप्त करना ही आध्यात्मिकता का सरल अर्थ है । प्रार्थना इसका एक महत्वपूर्ण उपाय है ।

प्रार्थना आत्म-विश्लेषण का एक वैज्ञानिक तरीका है जिसके अन्तर्गत मनुष्य संसार स्वयं और ईश्वरीय सत्ता के सम्बन्ध में अपने विचारों को सुलझा सकता है । सूक्ष्म तथ्यों का समाधान कर सकता है ।

धर्म की मनुष्य को एक और महत्वपूर्ण देन है वह है, ''आत्मा की अमरता का प्रतिपादन'' । कुछ नास्तिक मतों को छोड़कर संसार के अधिकांश धर्मों में पुनर्जीवन, आत्मा की अमरता आदि को स्वीकार किया गया है । पूर्व जन्मों की बात बताने वाले अनेक बच्चों का प्रत्यक्ष प्रमाण अन्य योगसाधनाओं से प्राप्त होने वाले सूक्ष्म रहस्यों से यह सब प्रयोगात्मक रूप से सिद्ध भी होते आये हैं ।

जन्म और मृत्यु जीवन की दो महत्वपूर्ण घटनायें हैं । इनमें मृत्यु का नाम सुनकर प्राणी भयभीत हो जाता है । मृत्यु का भय अन्य सभी प्रकार के भयों से अधिक प्रभावशाली है, जो मनुष्य के मन में बहुत बड़ी प्रतिक्रिया पैदा करता है। इस प्रतिक्रिया के फलस्वरूप मनुष्य में एक तीव्र तनाव पैदा होता है और इस तनाव से मनुष्य की शक्ति और क्षमताओं का बहुत बड़े रूप में क्षय होता है । मृत्यु के भय से कई लोग तत्क्षण मरते देखे गये हैं --पागल हो जाते हैं। इसी मृत्यु भय को आदिकाल से मनुष्य अनेकों प्रयत्नों से दूर करता आ रहा है , अमृत की खोज **''मृत्योर्माअमृत गमय''** प्रार्थना और धर्म के द्वारा अमरता के वरदान की प्राप्ति के प्रयत्न सदा से होते रहे हैं--

''न जायते म्रियते वा कदाचन्,
नायं भूत्वा भविता वा न भूया ।
अजो नित्यं शाश्वतोयं पुराणो,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।''

- गीता

आदि शब्दों में गीताकार ने अमरता का प्रतिपादन कर अर्जुन की भीति, संशय का छेदन किया । हिन्दू धर्म में तो आत्मा की अमरता बड़े ही ठोस और प्रभावशाली तथ्यों में प्रतिपादित की गई है ।

अमरता से मृत्यु-भय का निवारण कर मनुष्य के दृश्य जीवन को क्षणिक, नाशवान, अनित्य कहकर, धर्म के मृत्यु के भयजनक और प्रश्न और शरीर के मोह-आशक्ति को दूर करने का प्रयत्न किया है । इतना ही नहीं जन्म-मृत्यु सामान्य-सी घटनायें बताईं हैं । नित्य चिरन्तन जीवन में जन्म-मृत्यु को केवल दिन-रात की संज्ञा दी गई है । इसी के कारण अनेक लोगों ने आत्मा की अमरता अनित्यता से प्रेरणा पाकर महान आदर्शों के लिए अपने तुच्छ अनित्य, क्षण भंगुर जीवन का त्याग किया, मृत्यु का वरण किया क्योंकि मृत्यु से उनकी अजर-अमर आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । इस तरह आत्मा की अमरता ने मनुष्य के समस्त भयों से भी ऊपर मृत्यु भय को दूर कर उसे निर्भय बनाया जिससे उसकी जीवन यात्रा निर्बाध क्रम से चलती रही ।

ईश्वर पर विश्वास, प्रार्थना, आत्मा की अमरता इन तीनों ही धार्मिक आधारों के प्रति विज्ञान ने मनुष्य के आस्था-विश्वास को नष्ट कर दिया है और वह आस्था और विश्वास का कोई नवीन आधार नहीं दे पाया । फलतः बेचारा मनुष्य आज निरीह, असहाय, उत्तेजनाओं से पीड़ित और परेशान है । जीवन की विभीषिकाओं, भय, संघर्षों में असन्तुलित हो गया है । मानव मन की शान्ति प्रसन्नता आत्म-प्रसाद आनन्द तिरोहित हो गये हैं । इनकी पुनः प्रतिष्ठापना, आस्तिकता की व्यापक आस्था उत्पन्न करने से और धर्म के अवलम्बन लेने से ही सम्भव हो सकती है ।

पुरुषार्थ पूर्ण प्रार्थना

ईश्वर प्रार्थना से सकाम कामना की सिद्धि होती है या नहीं ? यह प्रश्न साधकों के मन को सदा ही उद्विग्न किया करता है । कारण यह है कि दोनों ही प्रकार के प्रमाण सामने आते रहते हैं । कभी-कभी स्वल्प प्रार्थना करने वालों की ही कामनायें आश्चर्यजनक ढंग से ही अनायास पूरी हो जाती हैं । और कभी-कभी दीर्घकाल तक सुनिश्चित ढंग से उपासना-आराधना करने पर भी अभीष्ट वस्तु प्राप्त नहीं होती । इन असमानताओं को देखकर कोई ईश्वर को, कोई साधना विधि को, कोई साधक को, कोई कोई भाग्य को, कोई किसी को दोष देते हैं । जिन्हें सुगमतापूर्वक अधिक समृद्धि मिल गई, वे अतिशय विश्वासी हो जाते हैं और जिन्हें कठिन प्रयत्न करने पर भी निराश रहना पड़ा वे अविश्वासी हो जाते हैं ।

उपरोक्त अस्थिरता को व्यवस्थित करने के लिए प्रार्थना का ईश्वर पर क्या प्रभाव पड़ता है और उस प्रभाव के द्वारा किस प्रकार सफलता मिलती है इस तथ्य को विधिवत् जानने का हमें प्रयत्न करना होगा । तभी इन विकल्पों का कारण ठीक प्रकार समझ में आवेगा ।

हमें यह जानकर चलना चाहिए कि समस्त विश्व को नियम और नियंत्रण में कसकर गति से चलाने वाली ईश्वरीय सत्ता स्वयं अनियमित या अव्यवस्थित नहीं है । सृष्टि के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्पूर्ण कार्य नियमबद्ध रूप से चलाने वाला परमात्मा स्वयं भी नियम रूप है । उसके समस्त कार्य नियमित प्रणाली के अनुसार होते हैं । उसकी प्रसन्नता और अप्रसन्नता इस बात के ऊपर निर्भर नहीं है कि कोई व्यक्ति उसकी स्तुति करता है या निन्दा । अग्नि की निन्दा या स्तुति करने से उसकी कृपा या दुरुपयोग से प्राप्त होती है । अग्नि का यदि सदुपयोग किया जाय तथा नियमों के अनुसार काम किया जाय, तो बड़ी-बड़ी मशीनें चल सकती हैं, स्वादिष्ट भोजन पक सकते हैं, शीत का निवारण हो सकता है तथा और भी अनेकों काम हो सकते हैं । पर यदि उसे अनियमित ढंग से काम में लाया जाय तो हाथ झुलस सकते हैं घर जल सकता है, भयंकर अग्निकाण्ड उपस्थित हो सकता है । अग्नि की कृपा-अकृपा निन्दा स्तुति के ऊपर निर्भर नहीं वरन् उसके सदुपयोग, दुरुपयोग पर निर्भर है । इसी प्रकार निष्पक्ष, न्यायकारी, समदर्शी, नियन्तानियम रूप परमात्मा इस पर ध्यान नहीं देता कि कौन व्यक्ति उसके गुण गाता है या कौन अवगुण वखानता है । उसे तो वह प्रिय है जो उसके नियम पर चलता है । उद्योगी पुरुष सिद्धों को लक्ष्मी मिलती है । यह ईश्वरीय सीधा-साधा नियम है । परमात्मा को प्रसन्न करने की सर्वप्रथम प्रक्रिया पूजा-विधि यह है कि जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिए जिन साधनों परिस्थितियों और उन्हें संग्रह किया जाय । उद्योग, प्रयत्न विवेक एवं नियत व्यवस्था के अनुसार कार्य करना परमात्मा को सबसे अधिक पसन्द है। इस पद्धति से जो प्रभु को प्रसन्न करते हैं उनकी सकाम प्रार्थना बहुत शीघ्र स्वीकार कर ली जाती है और फलवती होती है ।

जप, पूजन, अर्चन, पाठ, हवन, अनुष्ठान यह एक प्रकार के आध्यात्मिक व्यायाम हैं । इनसे मनोबल सुदृढ़ होता है। जैसे शारीरिक व्यायाम से देह के अंग-प्रत्यंग पुष्ट होकर निरोगता, सौन्दर्य, परिश्रम की क्षमता, उपार्जन, उत्पादन, आदि की समृद्धियाँ मिलती हैं, उसी प्रकार मनोवल की बढ़ोतरी से चित की सुखावस्था मन की एकाग्रता, बुद्धि की तीक्ष्णता, विवेक की जागृति में असाधारण उन्नति होती है। इन उन्नतियों के द्वारा कठिन पेचीदा और दुरूह कार्यों को सरलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया जाता है । पूजा-अनुष्ठान की कर्मकाण्डमयी प्रक्रियाओं का मनोवैज्ञानिक पद्धति के अनुसार अन्तर्मन के ऊपर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है । सफलता में अपेक्षाकृत अधिक विश्वास हो जाता है, दैवी कृपा का सहारा मिलने की आशा से पीठ बहुत भारी हो जाती है । साहस, आशा, उत्साह एवं सफलता के विचार मनोलोक में घनीभूत होकर घुमड़ने लगते हैं । ऐसी मनोभूमि सफलता के लिए बहुत ही उर्वर क्षेत्र है । ऐसी मनोदशा वाले व्यक्ति अपनी उत्तम स्थिति के कारण मोर्चे पर मोर्चा फतह करते जाते हैं ।

जप-तप द्वारा सात्विकता की वृद्धि होती है । सद्गुणों का आविर्भाव होता है । सत्प्रवृत्तियाँ जगती हैं । स्वभाव में नम्रता, भलमनसाहत, मधुरता, शिष्टता, स्थिरता, महानता, छलकने लगती है, जिसका निकटवर्ती वातावरण पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है । जो लोग सम्पर्क में आते हैं वे प्रभावित होते हैं और सहायता एवं सहानुभूति का हाथ बढ़ाते हैं । समाज की जरा सी सहानुभूति से बड़े-बड़े दुस्तर कार्य सुगम हो जाते हैं । यह सुगमताएँ और असफलताएँ कभी-कभी ऐसे अनूठे ढंग से सामने आ जाती हैं कि उन्हें ईश्वरीय कृपा का फल ही कहा जाता है ।

सकाम आराधना से अपनी इच्छित वस्तु के प्रति उत्कृष्ट अभिलाषा और उसकी प्राप्ति की अधिक निश्चय पूर्ण आशा जागृत होती है । यह जागरण इष्ट-सिद्धि का द्वार है । जहाँ तीव्र चाह होती है वहाँ राह निकल आती है, रामायण का मत है--

''जेहि पर जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलहि न कछु सन्देहू ।'' गीता ने भी **'अनन्यश्चिन्तयन्तो मां येजना पर्युपासते'**, श्लोक में इसी भाव की पुष्टि की है । निर्बल इच्छा से नहीं वरन् उत्कृष्ट अभिलाषा से अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है । यह स्थिति सकाम आराधना से प्राप्त होती है और तीव्र इच्छा के आकर्षण से अनुकूल परिस्थितियाँ एकत्र होकर सफलता को निकट खींच लाती हैं ।

इस प्रकार पूजा आराधना द्वारा इष्ट सिद्धि के प्राप्त होने में सहायता मिलती है । प्रार्थना ऐसी होनी चाहिए जिससे उत्कृष्ट अभिलाषा, दृढ़ता, सफलता की आशा, प्रयत्नशीलता, अभीष्ट योग्यता, विवेकशीलता एवं सात्विकता की जागृति हो । ऐसी प्रार्थना बड़ी बलशालिनी होती है, उससे प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे अवसर उपस्थिति होते हैं जिनमें कठिन दिखाई देने वाले कार्य बड़ी सुगमता से पूरे होते हुए देखे जाते हैं । उसे प्रार्थना का चमत्कार भी कह सकते हैं।

किन्तु जो प्रार्थना, प्रयत्न रहित हो, मन के मोदक बनाने और बिना परिश्रम मुफ्त के माल की की तरह एक झटके में सब कुछ मिल जाने की कल्पना हो तो ऐसे खयाली पुलाव पूरे नहीं होते । संसार के बाजार में 'इस हाथ दे, उस हाथ ले' की नीति ही प्रचलित है । अधिकारी और पात्रों को ही उपहार मिलते हैं । पुरुषार्थी पराक्रमी और जागरूक व्यक्ति जीतते हैं और सुख भोगते हैं । योरोपियन स्त्री, पुरुष और बालकों की शारीरिक मानसिक, सामाजिक और आर्थिक उन्नति अवस्था हम नित्य अपनी आँखों प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं, इसके विपरीत प्रयत्न और जागरूकता के अभाव में हमसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से अधिकांश व्यक्ति दुःखी एवं दुर्दुशामय परिस्थितियों में पड़े सिसकते रहते हैं । प्रयत्न योग्यता और जागरूकता को बढ़ाने वाली प्रार्थना सफलता के वरदान उपस्थित करती हैं परन्तु मजूरी से अधिक माँगने के मनसूवे आमतौर से पूरे नहीं होते । परमात्मा भिखमंगों को नहीं परिश्रमी पुत्रों को प्यार करता है ।

पूर्व संचित शुभ-अशुभ कर्मों का उदय, अस्त भी वर्तमान जीवन में सुख और दुःख को उत्पन्न करता है । संचित प्रारब्ध और क्रियमाण कर्मों के अनुसार कभी-कभी कोई आकस्मिक सम्पत्ति या विपत्ति सामने आ खड़ी होती है । उनकी संगति प्रार्थना के साथ न जोड़नी चाहिए । पानी पीते समय सिर पर ईंट गिरे और सिर फूट जाय तो पानी से ईंट से संगति न जोड़नी चाहिए । यद्यपि पानी पीने और ईंट गिरने के कार्य साथ-साथ ही हुए तो भी इनका आपस में कोई संबंध नहीं है । यह आकस्मिक संयोग है । इस प्रकार प्रार्थना पूजा अनुष्ठान करते हुए भी कोई आकस्मिक विपत्ति आ जाय तो उस सम्पत्ति पूजा और विपत्ति सम्पत्ति का आपस में सम्बन्ध न जोड़ना चाहिए ।

स्मरण रखिए ईश्वर प्रार्थना एक आध्यात्मिक व्यायाम है । आत्मिक स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए हर व्यक्ति को नियमपूर्वक पूजा, उपासना करनी चाहिए । काम उपासना का भी बहुत अच्छा प्रभाव होता है और मनोवल की वृद्धि द्वारा इच्छित कामनायें पूरी होने में आश्चर्यजनक सहायता मिलती है परन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रयत्न और पुरुषार्थ ही सफलता के निर्माता हैं । भाग्य और प्रारब्ध ही कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं, वह भी पुराना पुरुषार्थ ही है । जो कुछ मिलता है पुरुषार्थ से मिलता है । प्रार्थना भी एक प्रकार की पुरुषार्थ ही है । परमात्मा उसी की मदद करता है जो अपनी सहायता आप करता है । भिक्षुकों का यहाँ भी अपमान है और परमात्मा के दरबार में भी । मजदूरों को उनके परिश्रम के अनुसार यहाँ भी मिलता है। और परमात्मा भी उन्हें देने के लिए नियमबद्ध है । हमारी प्रार्थनाएँ पुरुषार्थ का एक अंग होना चाहिए । भिक्षा का अंग नहीं । प्रयत्नपूर्ण प्रार्थना निष्फल नहीं जातीं उनका लोक और परलोक में सन्तोषजनक परिणाम अवश्य ही उपलब्ध होता है ।

प्रार्थना की चमत्कारी शक्ति

आत्म-चेतना को परमात्मा सत्ता से जोड़ने, उससे वार्तालाप करने तथा उसमें निवास करने का सर्वोत्तम उपाय प्रार्थना है । यह वह उपक्रम है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी अंतरात्मा की भूख को मिटाता है । शरीर की क्षुधा अन्न जल से मिटती है और उससे उसको शक्ति मिलती है। उसी तरह अंतरात्मा अपनी आकुलता को मिटाने, अपने ऊपर चढ़े मल-विक्षेपों, कषाय-कल्मषों को हटाने और उसमें बल तथा प्रकाश भरने, अपूर्णता से पूर्णता की ओर ले चलने की प्रार्थना भगवान से करता है । **पितु, मातु-सहायक, स्वामीसखा** की भावना रखकर आराध्य के सम्मुख की गयी प्रार्थना कभी निष्फल नहीं जाती है । परमात्मा चेतना को जहाँ कहीं जब-कभी भी श्रद्धासिक्त भाव भरी हार्दिक अभिव्यक्ति मिलती है तो उनकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता उभरे बिना नहीं रह सकती । ऐसी अनेकों घटनायें अनादिकाल से लेकर अब तक के पुराण एवं इतिहास के पृष्ठों पर अंकित है जिसमें सनातन सत्ता के मानवी प्रार्थना पर द्रवीभूत होते और उसकी सहायता मिलते रहने को प्रमाणित करते हैं ।

सुप्रसिद्ध मनीषी नार्मन विन्सेन्ट पोल ने अपनी कृति ''ट्रेजरि ऑफ करेज एण्ड कान्फीडेन्स' में कहा है कि जीवन को पवित्र, प्रखर, सुखमय एवं अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न बनाने के लिए नियमित रूप से प्रार्थना करना अनिवार्य है। प्रार्थना न केवल पूजा, अर्चना का विषय है, अपितु आत्मसत्ता को विराट् चेतना के साथ जोड़ने की प्रचण्ड प्रक्रिया है । प्राण ऊर्जा उत्पन्न करने की शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन की सर्वोच्च साधना है । शारीरिक दृष्टि से इसका प्रभाव हार्मोन ग्रंथियों पर तो पड़ता ही है, साथ ही मानसिक स्तर को भी उत्कृष्ट चिन्तन की दिशाधारा मिलती है । विधेयात्मक दृष्टोकोण इसी की परिणति है । पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण के समतुल्य ही प्रार्थना भी ईश्वरीय सहायता को अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम है । भौतिक-वेत्ताओं एवं चिकित्साविज्ञानियों ने भी अब प्रार्थना को समर्थ आध्यात्मोपचार के रूप में मान्यता प्रदान की है। उनका मानना है कि प्रार्थना से न केवल उदासीनता और निराशा जन्य लाइजाज मानसिक व्याधियों वरन् असाध्य समझी जाने वाली शारीरिक बीमारियों का निदान भी प्रार्थना की शक्ति से सम्भव है । पाश्चात्य देशों में इसके लिए नियमित रूप से सामूहिक प्रार्थना-सभायें आयोजित की जाती हैं और उनके प्रतिफल भी उत्साहवर्द्धक रूप से सामने आते हैं ।

इस संदर्भ में मूर्धन्य विद्वान फ्रैंक एडवर्डस ने अपनी पुस्तक ''स्ट्रैन्ज वर्ल्ड'' में अमेरिका के टेनेन्सी राज्य के शेखुड स्थान की माग्रेट, जेक्शन नामक एक बालिका का उदाहरण प्रस्तुत किया है । माग्रेट तब दो ही वर्ष की थी कि अचानक बीमार पड़ गयी । चिकित्सकों ने बहुत जाँच-पड़ताल की,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर रोग की भयंकरता उनके समझ में न आ सकी । अतः उसे नेशविले के वांडरविल्ट अस्पताल ले जाया गया । महीनों की सघन चिकित्सा के वावजूद भी उसको अंधी होने से बचाया न जा सका । बालिका अपने घर लौट आयी ।

पता नहीं यह बीमारी आगे चलकर क्या स्वरूप धारण करे, यह भय माग्रेट के पिता को जो एक विद्युतकर्मी था, सताता रहता । अतः उन्होंने अपनी यह व्यथा एपिसकोपल मिशन के पादरी रेवरेण्डजॉन हस्के को बतायी और कहा कि इस लड़की की बीमारी का निदान डॉक्टर ठीक से नहीं कर पा रहे हैं, क्या किया जाय ? पादरी ने लड़की के माता-पिता को प्रार्थना की शक्ति में विश्वास कराते हुए नियमित रूप से लगातार प्रार्थना करते रहने का सुझाव दिया । अब तो माग्रेट सहित उसके माता-पिता दो वर्ष तक नियमित रूप से उसकी आँख की दृष्टि लौट आने के लिए प्रार्थना करते रहे, बीच-बीच में पादरी महोदय भी सामूहिक प्रार्थना में सम्मिलित हो जाते । दो वर्ष पूरे होने के आये ही थे कि एक दिन फिर से पूर्व हुई बीमारी का पुनरावर्तन हुआ जिसके कारण उसे अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा । चार वर्ष की माग्रेट पर फिर अनेकों परीक्षण किये गये, पर इस बार भी रोग का सही पता लगा पाने में चिकित्सकों को असफलता ही हाथ लगी । रोग को असाध्य मानकर उसे अस्पताल से छुट्टी दे दी गयी । नेत्रहीन लड़की को भाग्य भरोसे छोड़कर उसके माता-पिता साथ लेकर घर आ गये और उसकी स्वास्थ्य रक्षा के लिए अपने उपासना गृह में बराबर ईश्वर से प्रार्थना करते रहे ।

कुछ ही दिन बीते थे कि एक रात्रि मार्गेट के पिता ने सिगरेट सुलगाने के लिए ज्यों ही माचिस जलायी--उसके प्रकाश को देखकर वह उसे पकड़ने को दौड़ी । लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि ढ़ाई वर्ष की लम्बी बीमारी के पश्चात् मार्गेट की आँखों की रोशनी लौट आयी थी । इस घटना के बाद उसकी दृष्टि में सुधार होता गया और कुछ ही महीनों में वह पूर्ण स्वस्थ हो गयी । आँखों पर किसी प्रकार के चश्मे की भी आवश्यकता नहीं रही । पादरी हर्स्के ने इस घटना को प्रार्थना की शक्ति का जीवन्त उदाहरण बताया है और कहा है कि "मनुष्य यदि उसके भीतर ईश्वरीय शक्ति में सच्ची श्रद्धा उत्पन्न कर सके तो उस आधार पर बड़े-से-बड़े संकटों पर भी विजय प्राप्त कर सकता है ।"

इसी तरह की एक अन्य घटना का वर्णन "बिऑण्ड रीजन मिरेकल्स कैन चैन्ज योर लाइफ" नामक अपने ग्रंथ में पी० राबर्टसन ने किया है । बारबरा कास्की नामक एक किशोरी ६ वर्ष से "मल्टिपिल स्केलोरिसिस" नामक महाव्याधि से ग्रस्त थी जिसकी चिकित्सा अमेरिका के इलिनोइस राज्य के एक अस्पताल में चल रही थी । इसकी देखभाल कर रहे उसी राज्य के प्रसिद्ध चिकित्सक विज्ञानी डॉक्टर थॉमस मारसल के अनुसार यद्यपि बारबारा मराणासन्न स्थिति में पहुँच चुकी थी, फिर भी उसकी आँखों में जिजीविषा की चमक विद्यमान थी । उन्होंने अपनी सूझबूझ के सहारे निराश के घने अन्धकार में डूबते हुए कास्की के माता-पिता को धैर्य बँधाते हुए कहा कि जब जगत के सब दरवाजे बन्द दीखते हों, तब अदृश्य चेतना के महासागर से आवश्यक सहायता खींच बुलाने के लिए ईश प्रार्थना ही एकमात्र कारगर उपाय-उपचार शेष रह जाता है । कारण बारबारा की स्थिति ऐसी ही हो गयी थी जिसमें मानवीय प्रयत्नों की चिकित्सकीय उपचारों की इति श्री हो चुकी थी । मानवी बुद्धि के माध्यम से जो कुछ भी सम्भव था, अस्पताल में किया जा चुका था।

डॉ. थॉमस ने केवल भौतिक चिकित्सा विज्ञानी थे, किन्तु प्रार्थना की शक्ति में उनका अटूट विश्वास था जिसके माध्यम से वे अब तक सैकड़ों मरीजों को स्वस्थ करने की ख्याति अर्जित कर चुके थे । उन्होंने लड़की के पिता का ध्यान अस्पताल की मुख्य दीवाल पर लिखे हुए महाकवि टेनीसन के एक महाकाव्य की ओर आकर्षित किया जिसमें लिखा था-- "सांसारिक मनुष्य जो सोचता और करता है, उससे कहीं अधिक समर्थ शक्ति प्रार्थना में हैं ।" चूँकि बारबारा के रोग को चिकित्सकों ने असाध्य घोषित कर दिया था अतः उन्होंने उसके माता-पिता को अध्यात्मोपचार की ओर प्रेरित किया । अस्पताल में ही टी० वी० पर प्रतिदिन 'प्रार्थना द्वारा रोगोपचार' विषय पर कार्यक्रम दिखाये जाने लगे कि किस प्रकार रोगी औषधि प्रचार की अपेक्षा प्रार्थना की अध्यात्मोपचार प्रक्रिया द्वारा अनेक गुनी शक्ति प्राप्त करता और पूर्ण नीरोग हो जाता है । इस प्रक्रिया से बारबारा का खोया आत्म-विश्वास वापस लौटने लगा और वह स्वयं प्रार्थना के उन शब्दों को गुनगुनाने लगी । अब उसके मन में जिजीविषा की आकांक्षा प्रबल हो उठी थी और नर्स की सहायता से प्रतिदिन सामूहिक प्रार्थना में सम्मिलित होने लगी। एक वर्ष तक यही क्रम चलता रहा ।

अमेरिका के इलिनोइस प्रांत में डॉ० एफ० डिविनिटी पेट राबर्टसन ने 'क्लब ७००' नामक एक संस्था स्थापित की है। यह संस्था टी० वी० प्रसारण के माध्यम से आध्यात्मिक रोग शमन के विभिन्न कार्यक्रम प्रसारित करती है । रोगियों से मुलाकातें तथा उनके उपचार प्रार्थना सभाओं का आयोजन आदि की जानकारी केबिल टी. वी. के जरिये लगभग ढ़ाई करोड़ व्यक्तियों तक पहुँचाई जाती है । बारबारा के लिए भी उन्होंने सामूहिक प्रार्थनाएँ आयोजित करनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आरम्भ कर दीं जिसमें उसके साथ सैकड़ों लोग शीघ्र स्वास्थ्य लाभ के लिए प्रार्थनाएँ करने लगे । फलस्वरूप जो लड़की पहले विस्तर से उठ नहीं पाती थी, धीरे-धीरे क्रमशः ठीक होने लगी । मल्टिपिल स्केलोरिसिस नामक जिस महाव्याधि से वह पीड़ित थी, उसका लक्षण भी यह है कि वह जिस प्रकार किसी विद्युत उपकरण में जिन तारों से बिजली पहुँचाई जाती है, उन पर चढ़ी प्लास्टिक खोल यदि जल जाती है तो दो तार जहाँ सटे हुए होते हैं, वहाँ शार्ट, सर्किट होने लगती है और शक्ति स्रोत से सम्बन्ध विच्छेद हो जाने के कारण उपकरण निरुपयोगी हो जाता है । इसी प्रकार मस्तिष्क से विभिन्न अंगों नियंत्रण में रखने के लिए संकेत स्नायु-मण्डलों के माध्यम से दिये जाते हैं । इन स्नायु तन्तुओं पर भी 'माइलिन' नामक एक वसीय परत चढ़ी होती है । बारबारा के स्नायु तन्त्र की माइलिन भी गलने लगी थी । फलस्वरूप हाथ-पैरों से लेकर क्रमशः सभी शारीरिक प्रणालियाँ एक के बाद एक बेकार होती चलीं गयीं । साँस लेना तक दूभर हो गया था अतः कृत्रिम श्वाँस पर इसे जीवित रखा जा रहा था । ६ वर्षों तक वह इसी प्रकार कृत्रिम यन्त्रों के माध्यम से किसी प्रकार जीवित रही, सातवें वर्ष सामूहिक प्रार्थना की शक्ति ने अपना चमत्कारिक प्रभाव दिखाना आरम्भ कर दिया । सर्वप्रथम फेफड़ों की क्षमता धीरे-धीरे लौटने लगी । इसके बाद कैथेटर की सहायता में भी कमी आने लगी । जैसे-जैसे प्रार्थना में उसकी अभिरुचि बढ़ती गयी, आत्म विश्वास जगने लगा, त्यों-त्यों उसके स्नायु-मण्डल की माइलिन परतें जो विगलित हो गयीं थी पुनर्स्थापन होने लगीं और चिकित्सकों के प्रयत्न भी सफल होने लगे । पी० राबर्टसन के अनुसार बारबारा के ही शब्दों में सात जून १९७१ को जब डॉ० थॉमस मुझे देखने आये थे तब मैंने जीने की आशा छोड़ दी थी, लेकिन उनकी सद्भावना पूर्व विशाल चिकित्सकीय अनुभव के साथ प्रार्थना शक्ति को जोड़ने की अद्भुत कुशलता ने मुझे नया जीवन प्रदान किया । मेडिकल साइंस के साथ स्पिरिचुअल साइंस का बेमिसाल समन्वय लोगों की सद्भावना तथा विश्वासपूर्वक सच्ची लगन से अन्तःकरण की पुकार का मनोविज्ञान क्या-क्या चमत्कार नहीं कर सकता है, अपने आप में एक अवर्णनीय सत्य है। ठीक दस वर्ष बाद अर्थात् ७ जून, १९८१ में सोलह वर्ष की उम्र में पूर्ण स्वस्थ हो गयी और चलने फिरने लगी । डॉ० थॉमस सहित सभी चिकित्सकों के लिए सुखद आश्चर्य था । सभी ने उस परमसत्ता की अनुकम्पा के प्रति जो अहो-भाव अनुभव किया था, वह वर्णनातीत है ।

प्राचीनकाल से ही प्रायः सभी देशों में इस प्रकार की असाध्य बीमारियों में आध्यात्मिक उपचारों का सहारा लिया जाता रहा है । यूरोप, अमेरिका, आदि पाश्चात्य देशों में इंद्रियगम्य उपचारों के अतिरिक्त 'फेथ हीलिंग' जैसे अध्यात्मोपचारों में प्रार्थना के बल पर अनेकानेक--आधि-व्याधियों से मुक्ति दिलायी जाती है । इसके लिए अशरीरी आत्माओं की भी सहायता ली जाती है । उदाहरण के लिए इटली की एक घटना को लिया जा सकता है । इस देश के ब्रसिया काउण्टी के मोन्टीकियारो नगर में पेरिनागिली नामक एक नर्स रहती थी । १३ जुलाई, १९४७ के दिन अचानक उसने हवा में तैरती हुई एक दिव्य नारी को देखा जिसके सीने पर सफेद, पीले और लाल रंग के तीन फूल थे । उस देवी ने उसे बताया कि यदि लोग सामूहिक प्रार्थना करके रोगग्रस्त व्यक्तियों की आधि-व्याधि दूर करने का सच्चे हृदय से संकल्प करेंगे तो उनकी बीमारियाँ दूर होने लगेंगी । नर्स ने जब यह बात अस्पताल में बतायी तो वहाँ का सारा स्टाफ और रोगियों के मित्रों ने मिलकर सामूहिक सभा का आयोजन किया जिसका आश्चर्यजनक सत्परिणाम निकला । रोगियों में नयी आशा की किरणें उभरने लगीं जिसकी कोई उम्मीद तक नहीं थी । तब से न केवल उस अस्पताल में वरन् पूरे नगर में उस दिन सामूहिक प्रार्थनायें आयोजित की जाती हैं जिसे 'रोजामिस्टिका' पर्व नाम दिया गया है । दैवी सहायता को खींच बुलाने का प्रार्थना से बढ़कर दूसरा कोई कारगर उपाय नहीं है ।

सच्ची भावना की शक्ति-सामर्थ्य

प्रातःकाल अखबार वाले ने आवाज लगाई और आप भागे । अखबार हाथ में आते ही सबसे पहली निगाह प्रथम पृष्ठ की ''थ्री लाइन'', ''टू लाइन'' और ''वन्निक'' टाइप की मोटी हेडिंगों पर जाती है और आप यह जानने के लिये उतावले हो जाते हैं कि मन्त्रिमण्डल में क्या परिवर्तन हुये, किस देश में सैनिक क्रान्ति हुई, इलैक्शन में कौन जीता, अपोलो--१४ चन्द्रमा तक पहुँचा या कहीं और खो गया आदि-आदि । लन्दन में एक ऐसी महिला भी है जो अखबार के इन प्रसंगों को उपेक्षा से देखती है सबसे पहले यह ढूँढ़ती है, संसार में कहीं सूखा पड़ने का तो समाचार नहीं छपा । यदि ऐसा कोई समाचार हुआ तो वह आगे अखबार पढना बन्द करके अपने साधना कक्ष की ओर चल पड़ेंगी यह उनका निजी कमरा है जहाँ वे भगवान् के भजन से लेकर मानव जाति के सेवा के काम-काज किया करती हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नाम है श्रीमती डोरिस मुंडे । पचास वर्ष की वृद्धा शरीर से सामान्य व्यक्तियों की तरह साधारण किन्तु असाधारण भावनाओं वाली डोरिस एटलस निकालकर देखती है वह स्थान किस देश किस महाद्वीप में है । फिर ध्यान लगाकर बैठ जायेंगी और कुछ ही क्षणों में उनकी स्थित समाधिस्थ योगी की सी हो जायेगी । शरीर कमरे में रखा हुआ होगा और भाव शरीर उस सूखे वाले इलाके में । वह अपने हृदय की सम्पूर्ण एकाग्रता और तल्लीनता के साथ भावना करती हैं कि मेरी अजस्र प्राण शक्ति बादलों में घुल रही है । अब इन बादलों को लेकर मैं उस सूखे वाले क्षेत्र की ओर चल पड़ी । बादलों की क्या बिसात ! जो मेरी आज्ञा न मानें, आगे-आगे मैं पीछे-पीछे बादल । लो आ गया ये सूखाग्रस्त क्षेत्र । बादलो ! यह देखो, प्यासी धरती, प्यासे लोग, प्यासे जीव-जन्तु कितने दुःखी हो रहे हैं, संसार का सुख और शान्ति करुणा पर टिका है, हर सम्पन्न व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अभावग्रस्त प्राणियों के उत्थान और उद्धार के लिये कुछ दे तुम स्वार्थ क्यों बरतते हो देने की कंजूसी मत करो अब बरसो ! बरसो । बादलो अब तो तुम्हें बरसना ही पड़ेगा ।

पानी बरसने लगता है । लोग खुशी से नाचने लगते हैं और उनकी प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता घुलाकर श्रीमती डोरिस की आत्म-चेतना वापस लौट आती है । दूसरे दिन अखबार में समाचार आता है उस स्थान में इतनी जलवृष्टि हुई कि सूखा समाप्त हो गया । वह समाचार पढ़कर श्रीमती डोरिस की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता ।

श्रीमती डोरिस का कहना है कि सच्चे हृदय से की गई प्रार्थना के आगे बादल तो क्या भगवान को भी झुकना पड़ता है । उन्होंने ''नाफिन'' को बताया कि अपनी इस इस भावना शक्ति द्वारा हमने लालचीन, पेरू, अमरीका तथा भारत का सूखा दूर कराया है । कुछ दिन पूर्व बिहार और पाँच वर्ष पहले आस्ट्रेलिया में पड़े जबरदस्त अकाल को दूर करने में उन्होंने अपनी इस शक्ति का प्रयोग किया था और उन्हें सफलता मिली थी । यह समाचार २८ जुलाई की ''नई दुनिया'' और संसार के अन्य समाचार पत्रों में भी छपा था उससे लोगों को भावनाओं की शक्ति का पता चला।

हमारे देश में जो भावनाओं की शक्ति से पत्थर से भगवान को पैदा करके विष को अमृत बना देने तक के प्रयोग हो चुके हैं, यह उदाहरण उसका ही एक संक्षिप्त प्रमाण है भाव विज्ञान की शक्तियाँ तो इससे भी हजारों गुना बड़ी और आश्चर्यजनक हैं ।

प्रकृति जब महाकाली बन गई

मार्च का महीना प्रारम्भ हुआ ही था कि एकाएक मौसम में विलक्षण परिवर्तन दिखाई देने लगे । आमतौर पर यह महीना शीत के उतार का होता है । किन्तु एकाएक शीत बढ़ी, आँधियाँ चलने लगीं, बर्फीली तूफानों की गरज से अमरीका के न्यूयार्क व दक्षिणी ओटोरिया के क्षेत्रों में प्रलय की सी स्थिति उत्पन्न हो चली । बात सन् १८४८ की है। लोगों के दिल किसी अज्ञात् अनिष्ट की कल्पना से काँप उठे।

मनुष्य बड़ा शक्तिशाली है पर मनुष्य बड़ा निर्मल और कठोर भी है क्योंकि वह ज्ञान-विज्ञान का इतना क्षेत्र विकसित कर लेने पर भी प्रकृति को जीत नहीं सका प्रकृति का सन्देश मनुष्य को व्यवस्थित और अनुशासित जीवन जीते हुए आत्म कल्याण करने का है, वह प्राणि-मात्र को पुत्र की भाँति पालती है । अपनी छाती पर हल चलाना और अन्न देने की खाद और पानी के बदले मधुर फल देने की, जलती जगती को अरबों नदियाँ सरोवर और समुद्र भर देने की ममता उसी ने दिखलाई । प्रकृति की गोद में ही मनुष्य सुखी-जीवन यापन करता है । इस दृष्टि से वह पूज्य और संरक्षणीय है पर आज के मनुष्य ने प्रकृति की इस देवोपम महत्ता को ठुकरा दिया, उलटा उसे जीतने का समर रच डाला तो प्रकृति को भी अपनी सामर्थ्य और सर्व शक्ति मत्ता का परिचय देना ही पड़ा । शीत लहर, भीषण गर्मी अतिजल वृष्टि सूखा जैसे प्रकोप मानवीय दुष्ट विवादों के ही परिणाम होते हैं पर इस काण्ड ने तो सचमुच खण्ड प्रलय जैसा ही दृश्य उपस्थित कर दिया । नियाग्रा जैसा जल प्रपात जो १८१ १।२ फीट ऊँचा और ३६३० फीट चौड़ा है और संसार के सात आश्चर्यों में से गिना जाता है जो मनुष्य की अद्वितीय सामर्थ्य का परिचायक माना जाता है, उसके प्रवाह को भी रोककर प्रकृति ने मनुष्य को भी एक सबक दिया है कि हे ! मनुष्य तू सृष्टि का नियामक नहीं, तुझसे अनन्त गुनी शक्ति वाली सत्ताऐं इस सृष्टि में विद्यमान हैं । वही संसार का नियमन करती हैं उनकी इच्छा से ही तू आगे बढ़ सकता है । देवशक्तियों का तिरस्कार करके सो तेरे सुविधाजनक जीवन की भी कल्पना नहीं हो सकती है ।

प्रकृति इस तरह के पाठ न पढ़ाती तो मनुष्य उद्दण्ड हो गया होता उसने ईश्वरीय अस्तित्व को बिल्कुल ही ठुकरा दिया होता । इसलिये जब-जब मनुष्य दुर्बुद्धि ग्रस्त होता है । प्रकृति मनुष्य को ऐसे दण्ड निश्चित रूप से देती है। उन दिनों अमरीका का यह भाग पाप और दुर्गुणों का जमघट बन गया था । अभी मौसम का प्रकोप प्रारम्भ ही हुआ था

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि वहाँ के धर्माचार्यों और भविष्यवक्ताओं ने घोषणा कर दी कि प्रलय आने वाली है, लोगों के पाप बहुत बढ़ गये हैं इसलिये भगवान पुरानी सृष्टि नष्ट करके नई सृष्टि उत्पन्न करेंगे । नये मनुष्य भले ही न गढ़े हों पर इस प्रकोप ने सचमुच ही सैकड़ों हजारों लोगों को नष्ट कर दिया, जो कभी मंदिरों में नहीं गये थे, जिन्होंने फिल्मी गीत गाये थे पर भक्तिगान जिनके ओंठों को छू गया था । उन्हें भी मंदिरों में जाते और भगवान् की प्रार्थना करते देखा गया । पहली बार परस्पर सेवा, प्रेम-भावना और मनुष्य का मनुष्य के प्रति इस तरह आदर करते देखकर वहाँ का हर विचारशील व्यक्ति यही कहता था कि मनुष्य सदा ही इस तरह प्रेमभाव और भाई चारे का जीवन जिए तो क्यों प्रकृति को दण्ड देने की स्थिति में आना पड़े । अब यह घटना समाप्त हो जाने के भी बहुत समय बाद तक लोग पाप तक करने की हिम्मत नहीं करते थे । सचमुच कुछ समय के लिए उस क्षेत्र में स्वर्गीय स्थित का आभास होने लगा था ।

मार्च का पूरा महीना इसी तरह अंधड़ और बर्फीली तूफानी वर्षा शीत लहर के साथ बीता । ३० मार्च को तो ये झंझावात अपनी पराकाष्ठा पर थे । चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी पहाड़ियों पर पहाड़ियाँ बर्फ से ढक गईं । मकानों पर बर्फ की चादरें बिछ गईं । यही अनुमान हो रहा था कि यह स्थिति एक दो दिन और रही तो सारे अमरीका और कनाडा का अन्त ही हो जायगा । लोग घरों में व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से गिरजाघरों में पूजायें किये जा रहे थे । धर्माचार्यों का धर्म शिक्षण तेज हो गया । कथा-कीर्तनों का दौर दिन भर चलता रहा ।

उस रात एकाएक मौसम बदल गया । हवा शान्त हो गई, बादल बिल्कुल साफ हो गये, बर्फीला तूफान रुक गया शीत में कमी आ गई । इस आकस्मिक परिवर्तन ने लोगों को और भी विस्मित कर दिया । सभी यह कहने लगे कि यह प्रलय की पूर्वावस्था है जिस प्रकार बुझने से पूर्व दीपक एक बार तेज लौ करता है उसी प्रकार उसे लोगों ने प्रलय की पूर्णावस्था ही माना है ।

तभी लोगों को कोई कमी सी महसूस हुई, सवेरा होता आ रहा है किन्तु कल-कल हर-हर वाली नियाग्रा जल प्रपात की ध्वनि सुनाई नहीं दे रही । पहले वह लोगों को थपकी देकर सुलाने का काम करती थी पर आज जब सब लोग जा रहे हैं तो उसका कलरव सुनाई नहीं पड़ रहा । अभी वर्षा होकर चुकी है उसे तो और भी भीषण हा-हाकार करते रहना चाहिए था यह क्या कि नीरव निस्तब्धता छा गई है। लोग प्रपात की ओर दौड़े । जाकर देखा कि सवा सौ फुट गहराईवाले प्रपात में पत्थर ही पत्थर बिछे हैं । जल का एक कण भी वहाँ नहीं । उँगली जिसके मुँह में थी मुँह में रह गई जिसके सिर में थी बाल खुजलाती रह गई, लोगों में सोचने की शक्ति थी वह नष्ट सी हो गई । अवाक् एक दूसरे का मुँह ताकते नियाग्रा के किनारे करोड़ों लोगों की भीड़ खड़ी थी तो भी इतनी नीरवता छाई थी कि पत्थर में एक सुई गिर जाती उसका भी स्वर सुनाई दे जाता । नियाग्रा जिसमें एक सैकण्ड में १००० हजार टन जल बहता है । उसका एकाएक रुक जाना ऐतिहासिक घटना थी लोग विस्मित थे ऊपर की साँस न तो नीचे आ रही थी न नीचे की साँस ऊपर लगता था, आसमान से मेरे कोई तारा टूटकर भूमण्डल पर गिरने और उसे नष्ट भ्रष्ट करने वाला हो ।

पादरी ने कहा लोगों ! प्रार्थना करो अब हम सब की रक्षा भगवान् ही कर सकते हैं । जो जहाँ थे वहीं बैठकर प्रार्थना करने लगे । अभूतपूर्व दृश्य था वह भी जिसने एक बार सारे अमरीका और कनाडा और आत्मानुभूति और ईश्वर के अस्तित्व द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया ।

प्रार्थना दोपहर तक चलती रही । आखिर भगवान् ने उन सबकी सुनी । सूर्य जितना ऊपर चढ़ आया धीरे-धीरे वैसे ही कलरव धीरे-धीरे सुनाई देना प्रारम्भ हुआ । जलधारा भयंकर अवस्था में कल्याण का दृश्य का, उस जल राशि का स्वागत किया । काँपते अन्तःकरणों में फिर से नई आशा का संचार हुआ ।

कुछ लोग कहते हैं कि पहाड़ पर तापमान बिल्कुल गिर जाने से सारा जल बर्फ हो गया होगा इसलिए नियाग्रा का बहना बन्द हो गया होगा जहाँ तक बर्फ जमी होगी वहाँ के आगे का पानी बहकर निकल गया होगा इसलिये बीच का स्थान सूना पड़ गया होगा । पर दूसरे विशेषज्ञ कहते हैं। पहाड़ में अभ्रक और सल्फर आदि की ऐसी खाने हैं जिनकी उपस्थित में जल कभी जम नहीं सकता । चाहे जितनी शीत हो, प्रपात हो बहते ही रहना चाहिये था । यदि मैदानी भाग में पानी जम जाता तो आस-पास के क्षेत्र में बाढ़ आ जानी चाहिये थी पर ऐसा भी नहीं हुआ । सचमुच वह कौन सी शक्ति थी जिसने नियाग्रा जैसे जल प्रपात को रोक दिया यह अभी तक रहस्य ही बना हुआ है । यदि यह सब प्रकृति का ही खेल था तो भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि यह उसका महारौद्र रूप था । मनुष्य को सीधी राह लाने के लिये कभी-कभी उसे यह वीभत्स रूप भी धारण करना पड़ता है । प्रलय उसी का नाम है । वह आगे भी हो सकती है । हमारी बुद्धिमत्ता तो इसमें है कि हम प्रकृति माता को रुष्ट न करें वरन् उनको प्रतिष्ठा दें ताकि उनकी कृपा और प्यार भरा आशीर्वाद हम पर हमेशा बरसता रहे।

• •

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आत्मा का उद्धार करें

आत्म-निर्माण द्वारा युग-निर्माण

अपना उद्धार करना संसार का उद्धार करने का प्रथम चरण है । समाज या संसार कोई अलग वस्तु नहीं, व्यक्तियों का समूह ही समाज या संसार कहलाता है । यदि हम संसार का उद्धार या कल्याण करना चाहते हैं तो वह कार्य अपने को सुधारना सबसे अधिक सरल एवं सम्भव हो सकता है । दूसरे लोग कहना मानें या न मानें, बताये हुए रास्ते पर चलें या न चलें यह संदिग्ध है, पर अपने ऊपर तो अपना नियंत्रण है ही । अपने को तो अपनी मर्जी के अनुसार बना या चला सकते ही हैं । इसलिये विश्व कल्याण का कार्य सबसे प्रथम आत्म-कल्याण का हाथ लेते हुए ही आरम्भ करना चाहिए ।

संसार का एक अंश हम भी हैं । अपना जितना ही हो सुधार हम कर लेते हैं उतने ही अंशों में संसार सुधर जाता है । अपनी सेवा भी संसार की ही सेवा है । एक बुरा व्यक्ति अनेकों तक अपनी बुराई का प्रभाव फैलाता है और लोगों के पाप-तापों एवं शोक-सन्तापों में अभिवृद्ध करता है । इसी प्रकार एक अच्छा व्यक्ति अपनी अच्छाई से स्वयं ही लाभान्वित नहीं होता वरन् दूसरे अनेकों लोगों की सुख-शान्ति बढ़ाने में सहायक होता है, सामाजिक होने के कारण मनुष्य स्वभावतः अपना प्रभाव दूसरों पर छोड़ता है । फिर जो जितना ही मनस्वी होगा वह अपनी अच्छाई या बुराई का भला बुरा प्रभाव भी उसी अनुसार से संसार में फैलावेगा । इस प्रकार मनुष्य अपना सुधार करने में लग जाय तो वह संसार का बहुत भारी सुधार कर सकता है । अपनी सच्ची सेवा भी विश्व सेवा का ही अंग मानी जा सकती है । संकुचित भौतिक स्वार्थों की इसलिये ऋषियों ने निन्दा की है कि उनमें ग्रस्त होकर मनुष्य अपने धर्म कर्तव्यों की उपेक्षा करने लगता है ।

दूरदर्शितापूर्ण स्वार्थ ही परमार्थ भी होता है । आत्मा का स्वार्थ जिन विचारों और कार्यों द्वारा सिद्ध होगा, उन्हीं के माध्यम से संसार का हित साधन भी बनेगा, उत्कृष्ट स्तर का स्वार्थ वस्तुतः परमार्थ ही बन जाता है । अपना आत्म-सन्तोष, आत्म-सुख, आत्म-कल्याण, सद्भावनाओं के अपनाने एवं सत्कर्म करने से ही सम्भव होता है । यही प्रक्रिया लोकहित का माध्यम बन जाती है । सत्कर्म स्वतः ही परमार्थ होते हैं । आत्म-कल्याण उन्हीं गतिविधियों को अपनाने से सम्भव है जिनसे जन-साधारण का हित साधन होता है ।

मानव जीवन का सदुपयोग परमार्थ से है । परमार्थ का तात्पर्य है--सच्चे स्वार्थ की साधना । झूठा स्वार्थ, वासनाओं और तृष्णा से ग्रसित होकर अकर्म या कुकर्म करने से माना गया है । ऐसे मार्ग पर चलने वाला क्षणिक लाभ भले ही प्राप्त कर ले, अन्ततः उसे लोक-निन्दा, अविश्वास, घृणा, असन्तोष, राजदण्ड, आत्म प्रताड़ना, विक्षोभ, असन्तोष, नरक एवं पतन के रूप से ही भोगना पड़ता है । इसलिये मनीषियों ने उसे निन्दित एवं हेय ठहराया है । परमार्थ की प्रशंसा इसलिये की है कि वह प्रारम्भ में थोड़ा कष्ट-साध्य भले ही हो, तृष्णा की सीमित पूर्ति ही उससे भले होती है पर अन्ततः सब प्रकार की प्रगति के द्वार उसी से खुलते हैं । परमार्थी व्यक्ति अपनी सच्चरित्रता, कर्तव्य-परायणता एवं उदारता के कारण दूसरों के हृदय में अपने लिये स्थान बनाता है और उनका सद्भाव, सहयोग पारलौकिक दृष्टि से भी लाभ में रहता है और आध्यात्मिक दृष्टि से तो आत्म-सन्तोष का सुख हमें निरन्तर मिलता ही रहता है ।

अपने जीवन को सार्थक बनाने की दृष्टि से भी और विश्वहित साधन का पुण्य परमार्थ करने की दृष्टि से भी हमें सबसे पहले यह प्रयत्न करना चाहिये कि अपना व्यक्तित्व निर्दोष, निर्मल एवं निष्पाप हो । दोष, पाप और मल ही हमारी प्रगति में सबसे बड़े बाधक हैं । उन्हें जितना ही हटाया या मिटाया जावेगा, उतनी ही अन्तर्ज्योति प्रदीप्त होती चलेगी और उसके प्रकाश में जीवन का प्रत्येक पहलू प्रकाशवान बनता चलेगा । इस प्रकाश में भौतिक एवं आत्मिक प्रगति की सभी समस्याएँ अपने आप ही सुलझती चलेंगी ।

आध्यात्म विद्या का प्रथम सूत्र वह है कि प्रत्येक भली। बुरी परिस्थिति का उत्तरदायी हम अपने आपको मानें । बाह्य समस्या का बीज अपने में ढूँढ़ें और जिस प्रकार का सुधार बाहरी घटनाओं, व्यक्तियों एवं परिस्थितियों में चाहते हैं उसी के अनुरूप अपने गुण-कर्म-स्वभाव में हेर-फेर प्रारम्भ कर दें । भीतरी सुधार बाहरी समस्याओं को सुधारने में सबसे बड़ा सबसे प्रभावशाली उपाय सिद्ध होता है । माना कि दूसरों की गलतियाँ और बुराइयाँ भी हमें परेशान करती हैं और अनेक प्रकार की बाधायें खड़ी करके प्रगति का द्वार

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रोकती हैं । संसार में बुरे लोग हैं और उनमें बुराइयाँ भी कम नहीं हैं इस बात से कोई इन्कार नहीं करता, पर साथ ही यह ध्यान देने योग्य है कि कोई वस्तु सजातीय एवं अनुकूल परिस्थितियों से ही बढ़ती एवं पनपती है । बुराई को अपना रूप प्रकट करने का अवसर तभी मिलेगा जब वैसी ही बुराई अपने अन्दर भी हो । अपना स्वभाव उत्कृष्ट हो तो बुरे लोगों को भी झक मारकर निरस्त होना पड़ता है ।

क्रोधी मनुष्य को आक्रमण करने का अवसर उसी पर मिलता है जो स्वयं भी क्रोधी हो । क्रोध से क्रोध बढ़ता है और उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया द्वन्द्व-युद्ध का रूप धारण कर लेती है । यदि एक व्यक्ति नम्र, सहनशील, हँस-मुख, क्षमाशील और दूरदर्शी हो तो क्रोधी स्वभाव का मनुष्य भी उत्तेजित नहीं कर पाता । वह अपनी नम्रता और सज्जनता से उसे शान्त कर देता है और क्रोध का जो मूल कारण था उसके समाधान का भी उपाय सोच लेता है । इसके विपरीत यदि दोनों ही क्रोधी हुए तो कोई बड़ा कारण न होते हुए भी केवल शब्दों की उच्छृंखलता लेकर परस्पर लड़ मरते हैं और मित्रता शत्रुता में बदल जाती है ।

दुराचारी की दाल वहीं गलती है जहाँ सदाचार का पक्ष दुर्बल हो गया हो । ठग हमेशा लोभी पर हाथ साफ करते हैं । दरिद्रता आलसी के घर आती है, बीमारियाँ असंयमी पर हावी होती हैं । भय डरपोक को सताता है, अदूरदर्शी एवं जल्दबाज को चिन्तायें घेरती हैं । यदि अपना व्यक्तित्व सच्चा खरा और मजबूत हो तो इन बाहरी विकृतियों को उलटे पाँवों लौटना पड़ेगा । पत्थर पर तलवार का प्रहार क्या सफल होगा ? ताली दोनों हाथों से बजती है । मक्खी गन्दगी पर बैठती है । घाव होता तो उसमें कीड़े भी पड़ेंगे । यदि अपना पक्ष पहले से ही स्वच्छ रखा जाय तो सारे संसार के दोष मिलकर भी व्यक्ति का कुछ नहीं बिगाड़ सकते । चन्दन के पेड़ में लिपटे रहने वाले अनेकों सर्प उसे विषैला नहीं बना सकते । दुष्टों की दुष्टता सज्जनों को खरोंच भले ही पहुँचावे, पर उन्हें परास्त नहीं कर सकती । इतिहास का पन्ना-पन्ना इस बात का साक्षी है कि सज्जनता और दुर्जनता के युद्ध में, सज्जनता को नहीं, दुर्जनता को ही परास्त होना पड़ा है ।

कोई अध्यात्मवादी यह स्वीकार नहीं कर सकता कि उसे ग्रहदशा ने, परिस्थितियों ने या दूसरों ने सताया है, वह सदा यही मानेगा कि अपने भीतर कोई कमी रह गई जिसके कारण दुष्टता को सफल होने का अवसर मिल गया । प्रत्येक बाह्य आघात या असफलता का कारण वह अपने अन्दर ढूँढ़ता है और जो त्रुटियाँ सूझ पड़ती हैं, उन्हें सुधारने के लिए जुट जाता है । इस तरीके को अपनाने से तीन-चौथाई समस्याएँ हल हो जाती हैं । एक चौथाई जो अनिवार्य बनी रहती हैं उन्हें वह उपेक्षा में, अपनी सहनशीलता के बलबूते हँसते-खेलते भुगत लेता है । कठिनाई के कारण दूसरे लोग जिस पर उद्विग्न रहते और रोते-चिल्लाते हैं वैसी परिस्थिति उसकी गम्भीरता उत्पन्न ही नहीं होने देती । तितीक्षा और सहनशीलता के बल पर बड़े से बड़े अभाव एवं कष्टों को हँसते हुए भुलाया या भुगता जा सकता है ।

इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि बाहर से जो बाधायें उपस्थिति होती हैं उन्हें हटाने का कोई प्रयत्न न किया जाय । वह तो करना ही चाहिए । संघर्ष ही जीवन है । प्रत्येक पुरुषार्थी को मार्ग की बाधायें हटाकर ही उनसे छूटकर ही अपना मार्ग बनाना पड़ता है । पर छूटने की शक्ति भी तो आत्म-निर्माण से ही प्राप्त होती है, यदि मनुष्य अस्त-व्यस्त मनोभूमि का हुआ तो उसके लिए बाधाओं से लड़कर प्रगति का मार्ग बना सकना तो दूर होगा, उल्टे उनके कल्पना और आशँका से ही भयभीत होकर मानसिक सन्तुलन खो देगा और चिन्ता एवं परेशानी से अपना स्वास्थ्य तक गँवा देगा ।

अपने स्वभाव और दृष्टिकोण को सुधारने की ओर जिसका ध्यान है जो अपनी त्रुटियों को ढूँढ़ने और हटाने में सचेष्ट है, उसे बुद्धिमान और दूरदर्शी कहना चाहिए । अपनी परिस्थितियाँ जिन्हें सुधारनी हों, अपने भाग्य और भविष्य को जो उज्ज्वल देखना चाहते हों उनके लिये एक मात्र उपाय यही है कि अपनी दुर्बलता पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाय और यह पता लगाया जाय कि अब की अपेक्षा हम किन श्रेष्ठताओं को और भी बढ़ा सकते हैं । यह आकांक्षा जितनी तीव्र होगी, जितना ही इस दिशा में प्रयत्न बढ़ेगा उतना ही उत्थान का मार्ग प्रशस्त होगा ।

आहार और विहार के असंमय की कठोर समीक्षा करते हुए यदि अपना रहन-सहन सुव्यवस्थित करने पर ध्यान दिया जाय, जिव्हा और कामेन्द्रियों पर काबू रखा जाय, अनियमितता को हटाकर दिनचर्या को सुव्यवस्थित बनाया जाय, आलस्य को छोड़कर समय के एक-एक क्षण को मनोयोगपूर्वक निर्धारित कार्यक्रम में संलग्न रखा जाय तो शरीर का बिगड़ा हुआ ढंग देखते-देखते कुछ ही दिनों में ठीक हो सकता है और बीमारी कमजोरी के कारण जो आये दिन चिकित्सकों के दरवाजे पर नाक रंगड़नी पड़ती है उससे सहज ही छुटकारा मिल सकता है । दवाई का खर्च, अस्वस्थता के कारण पीड़ा एवं परेशानी, काम हर्ज, सम्बन्धियों का तिरस्कार, कुरूपता, बुढ़ापा एवं अकाल मृत्यु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की छाया इन सब विपत्तियों का तीन-चौथाई निवारण मनुष्य स्वयं कर सकता है यदि वह संयम से छुटकारा पा सके तो अस्वस्थता भी उसका पीछा जरूर छोड़ देगी ।

मानसिक दृष्टि से अगणित व्यक्ति चिन्ता, भय, शोक, क्षोभ, आवेश, उत्तेजना, ईर्ष्या, द्वेष, निराशा, आशंका, आदि में ग्रस्त होकर उद्विग्न जीवन बिताते हुए नारकीय यंत्रणायें सहते रहते हैं । इनके कारणों को तलाश करने पर वस्तु स्थिति बहुत ही सामान्य होती है । आत्म-हत्या तक कर बैठने वालों के संक्षोभ का कारण तलाश करने पर बात बहुत ही सामान्य-सी निकलती है, कई बार तो इतनी छोटी होती है कि उसे उपेक्षा से गुजारा जा सकता था, या कोई दूसरा उपाय उस क्षोभ से बच निकलने का आसानी से ढूँढ़ा जा सकता था, पर उतावली एवं आवेश में वे किकर्तव्यविमूढ़ होकर अपनी विवेकशीलता खो बैठे और न करने लायक कर गुजरे । ऐसे उत्पाती, अधीर और आवेशग्रस्त मनुष्य साधारण घटनाओं को लेकर विक्षुब्ध बने फिरते हैं और अपने लिए तथा अपने सम्बन्धियों लोगों के लिए अशान्ति को ज्वाला प्रज्ज्वलित करते रहते हैं । यदि इस स्थिति की भयानकता को मनुष्य समझे और अपने धैर्यवान्, गम्भीर, विचारशील एवं हँस-खेलकर कठिनाई को काट देने की आदत बना ले, तो निश्चय ही उसका मन सदा सन्तुलित और प्रसन्न बना रहे । कुढ़ने की अपेक्षा समस्या का हल वह आसानी से सोच सके और गई-गुजरी परिस्थितियों में आशा एवं उत्साह का कारण उपलब्ध कर ले ।

मन को सन्तुलित करने के लिये किया हुआ प्रयत्न जीवन के सारे स्वरूप को ही बदल देता है । नरक को स्वर्ग में परिवर्तित करने की कुन्जी मनुष्य के हाथ में है । सोचने का तरीका यदि बदल डालें, खिलाड़ी की भावना रखकर जिन्दगी का खेल खेंले, नाटक के पात्रों की तरह अभिनय का आनन्द लेते हुए दिन गुजारें, बुराई में भलाई और निराशा में से आशा की किरणें ढूँढ़ने का अभ्यास करें तो कोई कारण नहीं कि रोता रहने वाला मनुष्य हँसते-खेलते गुलाब के रूप में परिणित होकर न केवल अपनी ही मानसिक समस्या हल करले वरन् पडौसियों और सम्बन्धियों के लिये भी प्रसन्नता आशा एवं प्रेरणा का केन्द्र बन जाय ।

हमें अपना उद्धार करना चाहिये, अपने को सुधारना और सम्हालना चाहिये । आज की अपेक्षा कल अधिक निर्मल और अधिक उत्कृष्ट बनाने का प्रयत्न करना चाहिए । यदि इस मार्ग को अपना सकना हमारे लिए सम्भव हो सका तो न केवल अपना वरन् समाज का, सारे विश्व का, भी हित साधन करने का श्रेय प्राप्त करेंगे । युग निर्माण का कार्य व्यक्ति निर्माण से ही आरम्भ होता है । संसार की सेवा करने का व्रत लेने वाले प्रत्येक परमार्थी को अपने आप की सेवा करने का व्रत लेकर विश्वमानव की उतने अंश में सेवा करने को तत्पर होना चाहिये जितने का कि उत्तरदायित्व अपने ऊपर है । समस्त संसार की सेवा कर सकना कठिन है । अपनी सेवा तो आप कर ही सकते हैं । समस्त संसार को सुखी-सन्तुलित एवं सन्मार्गामी तो बना ही सकते हैं । दूसरों का उद्धार कर सकना उसी के लिये संभव होता है जो अपना उद्धार आप कर सकने में समर्थ होता है ।

आत्म-शोधनः आत्मा का श्रीगणेश

कहावत है कि अपनी अकल, दूसरों की सम्पत्ति, चतुर को चौगुनी और मूरख को सौगुनी दिखाई पड़ती रहती है। संसार में व्याप्त इस भ्रम को महामाया का मोहक जाल ही कहना चाहिए कि हर व्यक्ति अपने को पूर्ण निर्दोष और पूर्ण बुद्धिमान मानता है । न तो उसे अपनी त्रुटियाँ सूझ पड़ती हैं और न अपनी समझ में दोष दिखलाई पड़ता है । इस एक ही दुर्बलता ने मानव जाति की प्रगति में इतनी बाधा पहुँचाई है, जितनी संसार की समस्त अड़चनों ने मिलकर भी न पहुँचाई होगी ।

अपनी निर्दोषिता के बारे में फैले हुए व्यापक भ्रम को देखते हुए मानव जाति की मूर्खता की जितनी भर्त्सना की जाए उतनी ही कम है । सृष्टि के सब प्राणियों से अधिक बुद्धिमान माना जाने वाला मनुष्य जब यह सोचता है कि--''दोष तो दूसरों में ही हैं, उनकी निन्दा करनी है, उन्हें ही सुधारना चाहिए । हम स्वयं तो पूर्ण निर्दोष हैं, हमें सुधरने की कोई जरूरत नहीं ।'' तब यह कहना पड़ता है कि उसकी तथाकथित अवास्तविकता है । चौरासी लाख यौनियों में अनेकों दोष और कुसंस्कार जीव पर चढ़े रहते हैं, मनुष्य योनि में उसे यह अवसर मिलता है कि उन पिछली त्रुटियों और गन्दगियों का परिष्कार कर सके--अपने को शुद्ध बनाने का प्रयत्न करे, इस शरीर का सबसे बड़ा उद्देश्य यह है कि उन मल-विक्षेप और आवरणों को ढूँढ़-ढूँढ़कर देखे, जो पिछले जन्मों की दुरावस्था में उसके गले बँधे चले आये हैं । इस ढूँढ़-खोज के पश्चात् इस बात का प्रयत्न करे कि इन कुसंस्कारों को किस प्रकार हटाकर अपने को अधिक स्वच्छ-निर्मल एवं प्रगतिशील बनाये ।

प्रगित की स्वाभाविक गति में सबसे बड़ा व्यवधान यह है कि मार्ग को रोकने वाली सबसे बड़ी बाधा का स्वरूप वह समझ नहीं पाता और न उसको हटाने का प्रयत्न करता है । पेट में दर्द हो और सिर पर दवा मली जाय तो कष्ट कैसे दूर होगा ? अपने दोष-दुर्गुणों के कारण जीवन क्रम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अस्त-व्यस्त बना रहता है पर उसका कसूर दूसरों के मत्थे मढ़ते रहा जाय, तो इससे झूठा आत्म-सन्तोष भले ही कर लिया जाय, समस्या का हल कहाँ सम्भव हो सकेगा ? कहते हैं कि भगवान ने अक्ल की कुल डेढ़ मात्रा पैदा की है जिसमें एक तो हर मनुष्य अपने में मानता है और शेष आधी में सारे संसार को काम चलाता हुआ देखता है । इस दृष्टिकोण के कारण अपनी गलतियों का सुधार कर सकना तो दूर उलटे जब कोई उस ओर इशारा करता है तो हमें अपना अपमान दिखाई पड़ता है । दोष दिखाने वाले को अपना शुभ-चिन्तक मानकर उसका आभार मानने की अपेक्षा मनुष्य जब उल्टे उस पर क्रुद्ध होता है, शत्रुता मानता है और अपना अपमान अनुभव करता है तो यह कहना चाहिये कि उसने सच्ची प्रगति की ओर चलने का अभी एक पैर उठाना भी नहीं सीखा ।

स्कूली शिक्षा के मूल्य पर कई व्यक्तियों को ऊँची नौकरी मिल जाती है । पूँजी होने पर ब्याज-भाड़े से या किसी ढर्रे के व्यापार को अपनाये रहने से धन कमाते रहना भी सरल हो जाता है । शरीर और मस्तिष्क की अच्छी बनावट होने से सुन्दरता, चतुरता एवं कला-कौशल में निपुणता मिल जाती है । संयोग एवं परिस्थितियाँ भी किसी को सम्मानास्पद स्थिति पर ले जाकर बिठा देती हैं । इन माध्यमों से कितने ही लोग बड़े माने जाते हैं और सफलता का गर्व-गौरव अनुभव करते हैं । पर यह सारे आधार बाहरी दिखावा मात्र हैं । संयोगवश या दुर्भाग्य से किसी कारण यह परिस्थितियाँ बदल जायँ और सम्मान-सौभाग्य छिन जाय तो ऐसे व्यक्ति सर्वथा निस्तेज और दीन-हीन दिखाई पड़ते हैं। अपने निज के सद्गुण होने के कारण परिस्थितियों के आधार पर बड़े बने रहने वाले व्यक्तियों को ही राजा से रंक और अमीर से भिखारी होते देखा जाता है । जिसमें अपने गुण होंगे वह गई-गुजरी परिस्थिति में से भी अपने लिए रास्ता निकालेगा और नरक में जायेगा तो वहाँ भी जमादार बनकर रहेगा ।

सरकारी ऊँचे पदों पर काम करने वाले व्यक्ति जब सेवा-निवृत्त होते हैं तो उनमें से कितने ही मौत के दिन पूरे करते हुए, शेष जीवन नीरस, निस्तेज और निकम्मा ही व्यतीत करते हैं । पद ने इन्हें जो गौरव दिया था वह पद छिनते ही चला गया । व्यक्तिगत सद्गुणों के अभाव में अब वे एक निकम्मे, निरर्थक मनुष्य की तरह ही बने हुए रहते हैं, जिनकी कहीं कोई पूजा नहीं । किन्तु यदि उनमें वैयक्तिक सद्गुण रहे होते हैं तो सेवा-निवृत्त होकर अपनी स्वतंत्रता प्रतिभा के आधार पर जहाँ भी रहते हैं वहीं नवीन चेतना उत्पन्न करते हैं ।

प्राचीनकाल में वानप्रस्थी और संन्यासी लोग गृह-त्याग देने के पश्चात् भी समाज की असाधारणा सेवा करते थे पर आज तो लाखों साधु-महात्मा समाज के लिये भार-भूत होकर निरर्थक जीवन बिताते हैं । इसका एक मात्र कारण इतना ही होता है कि उनमें अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं हुआ होता है । गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से वे पिछड़े हुए या अविकसित होते हैं । ऐसी दशा में जब तक वे गृहस्थ के किसी ढर्रे में फिट थे, तब तक कुछ काम भी कर सकते थे पर वे साधन न रहने पर एकाकी विरक्त जीवन में उन्हें शून्यता के अतिरिक्त और कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता ।

प्रगति की जड़ व्यक्तित्व को विकसित करने वाले सद्गुणों की मात्रा पर निर्भर रहती है । वह जितनी ही अधिक हो गई उतना ही व्यक्ति सुदृढ़ या उपयोगी हो सकेगा । ऐसे व्यक्ति जहाँ भी, जिस परिस्थिति में रहते हैं वहीं अपनी उपयोगिता और आवश्यकता देखते हैं । हर स्थिति में उनका स्वागत और सम्मान होता है । अन्धे, अपाहिज और दरिद्रों में भी कितने लोग ऐसे होते हैं जिनकी समीपता को लोग अपना सौभाग्य समझते हैं । इसके विपरीत कितने ही साधन सम्पन्न लोगों से वे भी मन ही मन घोर घृणा करते हैं जो उनसे निरन्तर लाभ उठाते रहते हैं । सद्गुण तो वह जादू है जिसकी प्रशंसा शत्रु को भी करनी पड़ती है ।

किसने कितनी उन्नति की, इसकी सच्ची कसौटी यह है कि उस मनुष्य के दृष्टिकोण और स्वभाव में कितना परिष्कार हुआ ? किसी की बाह्य स्थिति को देखते हुए उसकी उन्नति और अवनति का अन्दाज नहीं किया जा सकता । कितने ही बेवकूफ और बदतमीज आदमी परिस्थितियों के कारण शहनशाह बने होते हैं, कितने ही लुच्चे, लफंगे षड्यंत्रों के बल पर सम्मान के स्थानों पर अधिकार जमाये बैठे होते हैं । कोई ऐसे लोग जिन्हें धर्म का क, ख, ग, घ, सीखना बाकी है, धर्म गुरु के पद पर पुजते देखे जाते हैं और अयोग्यताओं से भरे रहते हुए भी सुयोग्यों पर हकूमत चलाते हैं । इस बिडम्बना के रहते हुये भी व्यक्तित्व के विकास का, सुसंस्कारिता और श्रेष्ठता का मूल्य किसी प्रकार भी कम नहीं होता । वह जहाँ कहीं भी होगा, अपना प्रकाश फैला रहा होगा । गई-गुजरी परिस्थितियों में भी उसने अपने उत्कृष्ट दृष्टिकोण के कारण उस छोटे से क्षेत्र में एक नये स्वर्ग की रचना कर रखी होगी । मानवीय स्वभाव की श्रेष्ठता गुलाब के फूल की तरह महकती है । उसे मनुष्य ही नहीं, भौंरे, तितली और छोटे-छोटे नासमझ कीड़े तक पसन्द कर रहे होते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बाहरी उन्नति की जितनी चिन्ता की जाती है, उतनी ही भीतरी उन्नति के बारे में की जाय तो मनुष्य दुहरा लाभ उठा सकता है । आध्यात्मिक दृष्टि से तो वह ऊँचा उठेगा ही, साथ ही लौकिक सम्मान एवं भौतिक सफलताओं की दृष्टि से भी वह किसी से पीछे न रहेगा । किन्तु यदि आन्तरिक उन्नति को गया-बीता रखा जाय और बाहरी उन्नति के लिये ही निरन्तर दौड़-धूप होती रही तो कुछ साधन-सामग्री भले ही इकट्ठी कर ली जाय पर उसमें भी उसे शान्ति न मिलेगी । कई धनी-मानी और बड़े कारोबारी व्यक्ति सामान्य स्तर के लोगों की अपेक्षा भी अधिक चिन्तित और दुःखी देखे जाते हैं । कारण यही है कि कार्य-विस्तार के साथ उनकी उलझनें तो बढ़ती हैं पर उन्हें सुलझाने का उचित दृष्टिकोण न होने से उन्हें अधिक उद्विग्न रहना पड़ता है । ऐसे लोग आमतौर से निरन्तर उद्विग्न रहते, कुढ़ते और झुँझलाते देखे जाते हैं । सम्पन्नता-सुख भी केवल उन्हें मिलता है जिनने अपना आन्तरिक परिष्कार कर लिया होता है । धन का सदुपयोग करके तथा पद एवं मान द्वारा उपलब्ध प्रभाव को परमार्थ में लगाकर ऐसे ही लोग ईश्वर प्रदत्त सुविधाओं का समुचित लाभ उठाया करते हैं । दूसरे लोग तो सर्प की तरह चौकीदारी करते हुए निरन्तर उद्विग्न रहने का उल्टा भार वहन करते हैं ।

आन्तरिक परिष्कार की ओर समुचित ध्यान देना यही बुद्धिमता और दूरदर्शिता का प्रथम चरण है । अध्यात्म का पहला शिक्षण यही है कि मनुष्य अपने स्वरूप को समझे । यह सोचे कि मैं कौन हूँ ? क्या हूँ और क्या बना हुआ हूँ ? आत्म-चिन्तन की साधना प्रथम सोपान कहा जाता है। यह चिन्तन ईश्वर जीव-प्रकृति की उच्च भूमिका से आरम्भ नहीं किया जा सकता । कदम तो क्रमशः ही उठाये जाते हैं । नीचे की सीढ़ियों को पार करते हुये ही ऊपर को चढ़ा जा सकता है । सोऽहम्, शिवोऽहम् की ध्वनि करने से पूर्व; अपने को सच्चिदानन्द मानने से पूर्व हमें साधारण जीवन पर विचार करने की आवश्यकता पड़ेगी और देखना पड़ेगा कि ईश्वर का पुत्र-जीव आज कितने दोष-दुर्गुणों से ग्रसित होकर पामरता का उद्विग्न जीवन-यापन कर रहा है । माया के बन्धनों ने उसे कितनी बुरी तरह जकड़ रखा है और षड्रिपु पग-पग पर उसका कैसा त्रास कर रहे हैं । माया का अर्थ है वह अज्ञान--जिससे ग्रस्त होकर मनुष्य अपने को निर्दोष और सारी परिस्थितियों के लिए दूसरों को उत्तरदायी मानता है । भव-बन्धनों का अर्थ है-- कुविचारों, कुसंस्करों और कुकर्मों से छुटकारा पाना । अपने दोषों की ओर से अनभिज्ञ रहने से बड़ा प्रमाद इस संसार में और कोई नहीं हो सकता, इसका मूल्य जीवन की असफलता का पश्चात्ताप करते हुए ही चुकाना पड़ता है ।

अध्यात्म मार्ग पहला कदम बढ़ाते हुए साधक को सबसे पहले आत्म चिन्तन की साधना करनी पड़ती है, ब्रह्मचर्य, तप, त्याग, सत्य, अहिंसा आदि उच्चतम आध्यात्मिक शब्दों को अपनाने से पहले उसे छोटी-छोटी त्रुटियों को सँभालना होता है । परीक्षार्थी पहले सरल प्रश्नों को हाथ में लेते हैं और कठिन प्रश्नों को अन्त के लिए छोड़ रखते हैं । लड़कियाँ गृहस्थ की शिक्षा गुड़ियों के खेल से आरम्भ करती हैं । युद्ध में शस्त्र चलाने की निपुणता पहले साधारण खेल के रूप में उसका अभ्यास करके ही की जाती है । सबसे पहले एम० ए० की परीक्षा देने की योजना बना लेना गलत है । पहले बाल कक्षा, फिर मिडिल, मैट्रिक इण्टर, बी० ए० पास करते हुए एम० ए० का प्रमाण-पत्र लेने की योजना ही क्रमबद्ध मानी जाती है । सुधार के लिये सबसे पहले सत्य, ब्रह्मचर्य या त्याग को ही हाथ में लेना आवश्यक है । आरम्भ छोटे-छोटे दोष-दुर्गुणों से करना चाहिए । उन्हें ढूँढ़ना और हटाना चाहिये । इस क्रम से आगे बढ़ने वालों को जो छोटी-छोटी सफलतायें मिलती हैं उनसे उसका साहस बढ़ता चला जाता है । उस सुधार के जो प्रत्यक्ष लाभ मिलते हैं उन्हें देखते हुए बड़े कदम उठाने का साहस भी होता है और उन्हें पूरा करने का मनोबल भी संचित हो चुका होता है ।

जो असंयम, आलस्य, आवेश, अनियमितता और अव्यवस्थता की साधारण कमजोरियों को जीत नहीं सका, वह षड्रिपुओं, असुरता के आक्रमणों का मुकाबला क्या करेगा ? सन्त, ऋषि और देवता बनने से पहले हमें मनुष्य बनना चाहिए । जिसने मनुष्यता की शिक्षा पूरी नहीं की, वह महात्मा क्या बनेगा ?

जप-तप आवश्यक है । आत्म-कल्याण के लिए उनकी भी आवश्यकता है । पर यह ध्यान रखना चाहिए कि गुण, कर्म, स्वभाव में आवश्यक सुधार किये बिना न आत्मा की प्रगति हो सकती है न परमात्मा की । इसलिए आत्म-कल्याण के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को आत्म-चिन्तन की साधना भी आरम्भ करनी चाहिए और उसका श्री गणेश जप-त्याग जैसे उच्च आदर्शों से नहीं--गुण-कर्म, स्वभाव का मानवोचित परिष्कार करते हुए व्यक्तित्व को सुविकसित करने में संलग्न होकर रहना चाहिये ।

आप भला तो जग भला

जीवन अनेकों समस्याओं के साथ उलझा हुआ है । उन उलझनों को सुलझाने में, प्रगति पथ पर उपस्थिति रोड़ों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को हटाने में बहुधा हमारी शक्ति का एक बहुत बढ़ा भाग खर्च होता रहता है । फिर भी कुछ समस्याओं का हल हो पाता है । अधिकांश तो उलझी ही रह जाती हैं । उस अपूर्णता का कारण यह है कि हम हर समस्या का हल अपने बाहर ढूँढ़ते रहते हैं जबकि वस्तुतः वह हमारे भीतर ही छिपा रहता है ।

जब जी में जो कुछ आता है, जो जँचता है उसके अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त करने की अभिलाषा होती है । पर वैसी परिस्थितियाँ मिल ही जायँ इसका कोई ठिकाना नहीं । उनका मिलना केवल इस बात पर निर्भर नहीं है कि हम उनकी इच्छा करते हैं, वरन् योग्यता, परिश्रम, अवसर, सहयोग, साधन एवं प्रारब्ध आदि अनेक बात मिलने से ही किसी वस्तु या परिस्थिति के मिलने का अभीष्ट मनोरथ सफल होने का अवसर मिलता है । पर आकांक्षा करते समय इतनी बातों का ध्यान कौन रखता है ? जिस प्रकार अमुक व्यक्ति यह मनोरथ प्राप्त कर सका उसी प्रकार हमें भी ऐसा सुयोग क्यों नहीं मिलना चाहिये ? बस इतने पर ही अपनी इच्छा की बेल चल पड़ती है । बिना बन्दूक के कारतूस चलाने के समान उनका लक्ष्य भेद अधूरा रह जाता है इस प्रकार अगणित व्यक्तियों की असंख्यों आकांक्षायें अधूरी ही रह जाती हैं और वे इससे खिन्न भी रहते हैं ।

यदि हम कोई आकांक्षा करने से पूर्व अपनी सामर्थ्य और परिस्थितियों का अनुमान लगालें और इसी के अनुसार चाहना करें तो उनका पूर्ण होना विशेष कठिन नहीं है । एक बार के प्रयत्न में न सही, आगे पीछे न्यूनाधिक सफलता इतनी मात्रा में तो मिल ही जाती है कि काम चलाऊ सन्तोष प्राप्त किया जा सके । पर यदि आकांक्षा के साथ-साथ अपनी क्षमता और स्थिति का ठीक अन्दाजा न करके बहुत बढ़ा-चढ़ा लक्ष्य रखा गया है तो सिद्धि कठिन ही है । ऐसी दशा में असफलताजन्य खिन्नता भी स्वाभाविक ही है । पर यदि अपने स्वभाव में आगा-पीछा सोचना, परिस्थिति के अनुसार मन चलाने की दूरदर्शिता हो तो उस खिन्नता से बचा जा सकता है और साधारण रीति से जो उपलब्ध हो सकता है उतनी ही आकांक्षा करके शान्तिपूर्वक जीवन-यापन किया जा सकता है ।

अपने स्वभाव की त्रुटियों का निरीक्षण करके उनमें आवश्यक सुधार करने के लिए यदि हम तैयार हो जायें तो जीवन की तीन चौथाई से अधिक समस्याओं का हल तुरन्त ही हो जाता है । सफलता के बड़े-बड़े स्वप्न देखने की अपेक्षा हम सोच-समझकर कोई सुनिश्चित मार्ग अपनावें और उस पर पूर्ण दृढ़ता एवं मनोयोग के साथ कर्तव्य समझकर चलते रहें, तो मस्तिष्क शान्त रहेगा । उसकी पूरी शक्तियाँ लक्ष्य को पूरा करने में लगेंगी और मन्जिल तेजी से पार होती चली जाएगी । समय-समय पर थोड़ी-थोड़ी जो सफलता मिलती चली जायगी, उसे देखकर हर्ष और सन्तोष भी मिलता जायेगा । इस प्रकार लक्ष्य की ओर अपने कदम व्यवस्थित गति के अनुसार बढ़ते चले जायेंगे ।

इसके विपरीत यदि हमारा मन बहुत कल्पनाशील है, बड़े-बड़े मनसूबे गाँठता और बड़ी-बड़ी असफलताओं के सुनहरे महल बनाता रहता है, जल्दी से जल्दी बड़ी से बड़ी सफलता के लिए आतुर रहता है तो मंजिल काफी कठिन हो जायेगी । जो मनोयोग कार्य की गतिविधियों को सुसंचालित रखने में लगाना चाहिये या वह शेखचिल्ली के सपने देखने में उलझा रहता है । उन सपनों को इतनी जल्दी साकार देखने की उतावली होती है कि जितना श्रम और समय उसके लिये अपेक्षित है वह उसे भार रूप प्रतीत होता है । ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं त्यों-त्यों बेचैनी बढ़ती जाती है, और यह स्पष्ट है कि बेचैन आदमी न तो किसी बात को ठीक तरह सोच सकता है और न ठीक तरह कुछ कर ही सकता है उसकी गतिविधि अधूरी, अस्त-व्यस्त और अव्यवस्थित हो जाती है । ऐसी दशा में सफलता की मंजिल अधिक कठिन एवं अधिक संदिग्ध होती जाती है । उतावला आदमी सफलता के अवसरों को बहुधा हाथ से गँवा ही देता है ।

जिसके मस्तिष्क में हर घड़ी सफलता के रंगीन सपने संजोये रहते हैं उसे अधिक असफलता का सामना करना पड़े तो बारी आघात लगता है, भारी निराशा आती है, दिल टूट जाता है और आगे के लिए कोई बड़ा कदम उठाने का साहस जाता रहता है । कई बार तो वह असफलता का आघात इतना बड़ा होता है कि व्यक्ति आत्महत्या तक कर बैठता है । परीक्षा में असफल हुए कुछ छात्र हर साल आत्महत्या कर बैठते हैं । यद्यपि बात बहुत मामुली सी है । १०० में से ३०-३५ छात्रों का उत्तीर्ण होने का परिणाम जहाँ रहता हो वहाँ ६५-७० फीसदी को फेल होना ही है । जब इतने अनुत्तीर्ण छात्र किसी प्रकार सन्तोष कर अगले वर्ष के लिए फिर तैयारी में लग जाते हैं तो उन आत्महत्या करने वालों के लिये ही कोई विशेष कारण नहीं है कि वे इतने खिन्न होकर ऐसा अनर्थ कर डालें । पर भावुकता तो आखिर भावुकता ही है । जिसने सफलता के इतने रंगीन सपने देखे और असफलता को इतना भयंकर सामना उसकी समझ के लिये आत्महत्या भी कोई बड़ी बात नहीं है ।

यदि मनुष्य सफलता और असफलता को दो समानन्तर रेखायें मानकर चले और यह भली भाँति समझ ले कि किसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी क्षेत्र में सफलता इतनी सरल नहीं कि उसे सुनिश्चित ही मान लिया जाय और समझ लिया जाय कि इतना लाभ इतने समय में अवश्य ही हो जायेगा । जिन लोगों ने सफलताएँ प्राप्त की हैं उनने सपने कम देखे हैं और प्रयत्न अधिक किये हैं । असफलताओं और बाधाओं को अप्रत्याशित नहीं माना है वरन् यही समझा है कि अनेक बार असफलता को समाप्त करके ही जब कोई अपनी दृढ़ता का परिचय दे लेता है तब सफलता की विजय माला उसके गले में पड़ती है । वे पहिले से ही यह सोचकर चलते हैं कि हमें बार-बार असफलता का मुकाबला करते हुए भी आगे बढ़ते चलना है और धैर्यपूर्वक सफलता प्राप्त होने के दिन तक अविचल भाव से प्रयत्न एवं पुरुषार्थ करने में लगा रहता है ।

बीज बोने से लेकर अंकुर पैदा होने, पौधे के बड़े होने बढ़कर पूरा वृक्ष होने और अन्त में फलने-फूलने में समय लगता है, प्रयत्न भी करना पड़ता है । पर जो बच्चे अभी बीज लेकर आज ही उसमें से अंकुर होते ही उसे पेड़ बनने और परसों ही फल-फूल से लदा देखने की आशा करते हैं, उनका उत्साह देर तक नहीं ठहरता । पहले ही दिन वे बीज में दस बार पानी, दस बार खाद लगाते हैं, पर जब अंकुर और वृक्ष सामने नहीं आता तो दूसरे ही दिन निराश होकर उस प्रयत्न को छोड़ देते हैं और अपना मन मोटा कर लेते हैं । उन बालकों की सी ही मनोवृत्ति बहुत से व्यक्तियों की होती है । वे अधीरतापूर्वक बड़े-बड़े सत्परिणामों की आशाएँ बाँधते हैं और उसके लिये जितना श्रम और समय चाहिये उतना लगाने को तैयार नहीं होते । सब कुछ उन्हें तुर्त-फुर्त ही चाहिये । ऐसी बाल-बुद्धि रखकर यदि किसी बड़ी सफलता का आनन्द प्राप्त करने की आशा की जाय तो वह दुर्दशा मात्र ही सिद्ध होगी । इसमें दोष किसी का नहीं अपनी उतावली का ही है । यदि हम अपनी बाल-चपलता को हटाकर पुरुषार्थी लोगों द्वारा अपनाये जाने वाले धैर्य और साहस को काम में लायें तों निराश होने का कोई कारण शेष न रह जायेगा । सफलता मिलनी ही चाहिये और ऐसे लोगों को मिलती भी है ।

गीता के कर्मयोग का तात्पर्य यही है कि हम अपनी प्रसन्नता को कर्तव्यपरायणता एवं प्रयत्नशीलता पर अविलम्बित रखें । जो कुछ करें उच्चादर्शों से प्रेरित होकर करें और इस बात से सन्तोष मानें कि एक ईमानदार एवं पुरुषार्थी व्यक्ति को जो कुछ करना चाहिये था वह वह हमने पूरे मनोयोग के साथ किया । अभीष्ट वस्तु न भी मिले, किया हुआ प्रयत्न सफल भी न हो तो भी इसमें दुःख मानने, लज्जित होने या मन मोटा करने की कोई बात नहीं है, क्योंकि सफलता मनुष्य के हाथ में ही नहीं है । अनेकों कर्तव्य-परायण व्यक्ति परिस्थितियों की विपरीतता के कारण असफल होते हैं । पर इसके लिए कोई उन्हें दोष नहीं दे सकता । यदि अपनी बनावट भी ऐसी हो जाये कि सफलता और असफलता की चिन्ता किये बिना अपने कर्तव्यपालन में ही जी सन्तुष्ट रहने लगे तो समझना चाहिए कि अपना दृष्टिकोण सही हो गया, अपनी प्रसन्नता अपनी मुट्ठी में आ गई । कर्तव्यपालन पूर्णतया अपने हाथ में है, इसे कोई रोक नहीं सकता । यदि प्रसन्नता को कर्तव्य-परायणता पर आधारित कर लिया गया है तो अपनी प्रसन्नता भी अपनी मुट्ठी में है और वह डायनुमा से उत्पन्न होती रहने वाली बिजली की तरह कर्तव्यपालन के साथ-साथ स्वयमेव उत्पन्न होकर चित्त को आनन्द, उत्साह और सन्तोष से भरे रह सकती है ।

अपनी प्रसन्नता को अपनी मुट्ठी में रखा जा सकता है और हर घड़ी आनन्दित रहने का नुस्खा मालूम है तो क्यों न उसी का प्रयोग किया जाय ? फिर क्यों इस बात पर निर्भर रहा जाय कि जब कभी सफलता मिलेगी अभीष्ट वस्तु प्राप्त होगी तब कहीं प्रसन्न होंगे । इस प्रतीक्षा में मुद्दतें गुजर सकती हैं और यह भी हो सकता है कि सफलता न मिलने पर वह प्रतीक्षा ही प्रतीक्षा जीवन भर हाथ रहे । इसलिये गीताकार ने हमें सहज नुस्खा हमें बताया है कि फल की प्रतीक्षा मत करो, उस पर बहुत ध्यान भी मत दो, न तो सफलता के लिए आतुरता दिखाओ और न असफलता मिलने पर परेशान होओ । चित्त को शान्त और स्वस्थ रखकर अपने कर्तव्य को एक पुरुषार्थी व्यक्ति की तरह ठीक तरह पालन करो । ऐसा करने से तुम्हें लोक में भी शान्ति मिलेगी और परलोक भी सुधरेगा ।

विचारणीय बात यही है कि हम जब अपनी जीवन की समस्याओं में से अधिकांश को, अपना भीतरी सुधार करके अपने विचारशैली में थोड़ा परिवर्तन करके हल कर सकते हैं तो फिर उलझन भरा जीवन क्यों व्यतीत करें ? मनुष्य बहुत चतुर है, विभिन्न क्षेत्रों में असाधारण चातुर्य का परिचय देता है, उसकी बुद्धिमता की जितनी सराहना की जाए उतना ही कम है । पर इतना होते हुए भी जब वह अपने दृष्टिकोण को सुधारने की आवश्यकता को नहीं समझ पाता और उस पर समुचित ध्यान नहीं दे पाता तो उसकी बुद्धिमता पर सन्देह होने लगता है । वह प्रयत्नपूर्वक बड़े-बड़े काम सम्पादन करता है, अपने शरीर और मस्तिष्क से बड़े-बड़े महान् कार्य पूरे करता है, तब यह बात उसके लिये क्यों कठिन होनी चाहिये कि अपनी मनोगत, भावनागत त्रुटियों पर विचार करे और उन्हें सुधारने के लिए तैयार हो जाय ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्म-चिन्तन, आत्मशोधन एवं आत्म-निर्माण का कार्य उतना ही सरल है जितना शरीर को सर्वांगासन, मयूरासन, शीर्षासन, आदि आसनों के लिए अभ्यस्त कर लेना । आरम्भ में इस झंझट में पड़ने से मन आनाकानी करता है, पुराने अभ्यास को छोड़कर नया अभ्यास डालना अखरता है कुछ कठिनाई एवं परेशानी भी होती है । यदि अभ्यासी इन बातों से डरकर अभ्यास न करें और छोड़ दें तो आसनों के द्वारा होने वाले सत्परिणामों में से लाभान्वित होना सम्भव न होगा । इसी प्रकार यदि आत्म-निरीक्षण करने में अपने दोष ढूँढ़ने में उत्साह न हो जो कुछ हम करते या सोचते हैं सो सब ठीक है, ऐसा दुराग्रह हो तो फिर न तो अपनी गलतियाँ सूझ पडेंगी और न उन्हें छोड़ने का उत्साह होगा--वरन् साधारण व्यक्तियों की तरह अपनी बुरी आदतों का भी समर्थन करने के लिए दिमाग कुछ तर्क और कारण ढूँढ़ता रहेगा, जिससे दोषी होते भी अपनी निर्दोषिता प्रमाणित की जा सके ।

अधिकांश मनुष्यों की मानसिक बनावट ऐसी ही होती है कि वे अपने आपको हर बात में निर्दोष मानते हैं । अपनी बुराइयाँ इसी प्रकार सूझ नहीं पड़ती जिस प्रकार अपनी आँखों में लगा हुआ काजल दिखाई नहीं देता । कोई दूसरा व्यक्ति यदि अपनी गलती सुझावे तो मन इस बात के लिये तैयार नहीं होता कि उसे स्वीकार करे । हर आदमी दूसरे के दोष ढूँढ़ने में बड़ा चतुर और सूक्ष्मदर्शी होता है, उसकी आलोचना शक्ति देखते ही बनती है, पर जब अपना नम्बर आता है तो वह सारी चतुरता, सारी आलोचना शक्ति न जाने कहाँ गायब हो जाती है । जैसे खोटा व्यापारी खरीदने और बचने के बाँट तोल में घटे-बढ़े बनाकर अलग-अलग रखता है और बेचने के समय घटे बाँटों को और खरीदने के समय बढ़े बाँटों को काम में लाता है, उसी प्रकार दूसरों की बुराइयाँ ढूँढ़ने में हमारी दृष्टि अलग तरीके और अपनी बात आने पर और तरीके से काम करती है । यदि यह दोष हटा दिया जाए और दूसरों की भाँति अपनी बुराइयों को भी देखने लग जायें, दूसरों को सुधारने की चिन्ता करने की भाँति यदि अपने सुधारने की चिन्ता करने लगें तो इतना बड़ा काम हो सकता है कि जितना सारी दुनियाँ को सुधार लेने पर ही हो सकना सम्भव है ।

महात्मा इमर्सन कहा करते थे कि "मुझे नरक में भेज दो मैं वहाँ भी अपने लिए स्वर्ग बना लूँगा ।" उनका यह दावा इसी आधार पर था कि अपने निज की अन्तःभूमि परिष्कृत कर लेने पर व्यक्ति में ऐसी सूझ-बूझ की, गुण, कर्म, स्वभाव की उत्पत्ति हो जाती है जिससे बुरे व्यक्तियों को भी अपनी सज्जनता से प्रभावित करने एवं उनकी बुराइयों का अपने ऊपर प्रभाव न पड़ने देने की विशेष क्षमता सिद्ध हो सके । यदि ऐसी विशेषता कोई व्यक्ति अपने में पैदा कर ले तो यही माना जायगा कि उसने सारे संसार को सुधार लिया । यों सबका सुधार होना असंभव है पर जब अपने दृष्टिकोण एवं स्वभाव में आवश्यक परिवर्तन करके ऐसी स्थिति प्राप्त करली गई कि बुरे आदमी भी अपना कुछ बिगाड़ न सकें तो यही मानना पड़ेगा कि अपने लिये तो संसार सुधर गया । भले ही वह तत्वतः ज्यों का त्यों बना रहे ।

जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिये भी सबको प्रथम अनिवार्य रूप से आत्म-निरीक्षण और आत्म-सुधार ही करना पड़ता है। भगवान का नाम स्मरण करने जप, तप पूजा-पाठ के अनुष्ठान करने का उद्देश्य भी यही है कि मनुष्य भगवान को सर्वव्यापी एवं न्यायकारी होने की मान्यता को अधिक गहराई तक हृदय में जमा ले, ताकि दुष्कर्मों से डरे और सत्कर्मों में रुचि ले । ईश्वर उसी से प्रसन्न होता है जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, उसकी पूजा एवं प्रार्थना को वह सुनता और स्वीकार करता है । आत्मा पर चढ़े हुए मल-आवरणों को हटाने के प्रयत्न का नाम ही तप साधन है । उसे निर्मल, निर्विकार बनाने में जितनी सफलता मिलती जाती है उतना ही देवत्व अन्दर बढ़ता जाता है और परमात्मा की समीपता निकट आती जाती है । विकारों से पूर्ण निर्मल हो जाने पर ही आत्मा जीवनमुक्त होकर परमात्मा स्वरूप बन जाता है। आत्मोन्नति की यही एक मात्र प्रक्रिया है जिसे विभिन्न धर्म शास्त्रों ने, विभिन्न मार्ग-दर्शकों ने देश काल पात्र के अनुसार विभिन्न रूपों में उपस्थित किया गया है ।

अकेला चल अकेला

क्या आप उस स्थान पर खड़े हैं जहाँ सभी ने अपना साथ छोड़ दिया है, आपसे मुँह मोड़ लिया है, आपसे नाता तोड़ लिया है ? तो निराश होने अथवा घबराने की आवश्यकता नहीं है । आपसे पहले भी अनेकों नर-नाहर अकेले चल चुके हैं । अपने पैरों पर जीवन की यात्रा कर चुके हैं । आप अकेले हैं यह अनुभव कर लेना आपके लिए वरदान सिद्ध होगा । सदुपयोग कीजिये ।

महात्मा कन्फ्यूसियस ने कहा-- "महान् व्यक्ति जो चीज ढूँढ़ते हैं वह उन्हें अपने ही अन्दर मिलती है, जबकि कमजोर दूसरों का मुँह ताका करते हैं ।" अपने ऊपर निर्भर रहकर भी मनुष्य जीवन में किसी सत्य का साक्षात्कार कर सकता है कुछ प्राप्त कर सकता है । अन्य लोगों को अपने से ही फुरसत नहीं । सचमुच दूसरों का मुँह ताकने वाले व्यक्ति को अपनी सफलता, आशा, आकांक्षाओं के लिए निराश हीं रहना पड़े तो कोई बात नहीं । किसी भी क्षेत्र में सच्ची

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और स्थायी सफलता मनुष्य अपने ही प्रयत्नों से प्रात कर सकता है । महान् बनने वाले और साधारण व्यक्तियों में यही अन्तर है कि वह अपनी शक्ति, क्षमता पर भरोसा रखकर अपने बल पर जीवन यात्रा पूरी करता है दूसरा अन्य लोगों का पिछलग्गू बनकर दूसरों का सहारा पकड़ता है । लेकिन परिणाम में महान् व्यक्ति जीवन की उच्च मंजिल तक पहुँच जाते हैं तो अन्य परावलम्बी लोग बीच में ही अटके रह जाते हैं । वे किधर के भी नहीं रहते ।

प्रसिद्ध विद्वान् इब्सन ने कहा है-- "संसार में सबसे शक्तिशाली व्यक्ति वही है जो अकेला (आत्म निर्भर) है ।" कमजोर वही जो दूसरों का मुँह ताका करते हैं, दूसरों के ऊपर आशा लगाये बैठे रहते हैं । साथ ही परावलम्बी व्यक्तियों को, दूसरों के सहारे चलने वाले लोगों को अपने जीवन का बहुत अधिक समय नष्ट करना पड़ता है जबकि नेपोलियन के शब्दों में "जो अकेले चलते हैं वे तेजी से बढ़ते हैं ।"

मनुष्य को दो प्रकार से शिक्षा मिलती है एक दूसरों के कहने-सुनने, अथवा पुस्तकों को पढ़ने पर दूसरी शिक्षा मनुष्य स्वयं जीवन और जगत् की खुली पुस्तक से, अपने अनुभवों से सीखता है । लेकिन दूसरे प्रकार की शिक्षा ही स्थायी और ठोस होती है । पहले प्रकार की शिक्षा केवल ऊपरी सहायता मात्र कर पाती है । यही कारण है कि आजकल ऊँची से ऊँची बातें कही जाती हैं पुस्तकों में पढ़ाई जाती हैं । लेकिन लोगों का उससे कोई विशेष भला नहीं होता । उन सबसे भी वही व्यक्ति लाभ उठा सकता है जो स्वयं निर्माण की बुद्धि का प्रयोग करता है । कई बार तो यह ऊपरी शिक्षा मनुष्य को भ्रम में डालने का कारण भी बन जाती है ।

अस्तु, चाहे व्यापार हो या शिक्षा, उद्योग, आविष्कार, उपार्जन के सभी क्षेत्रों में वही मनुष्य आगे बढ़ सकता है जिसमें अपने को अकेले समझने, उसका प्रयोग करने की क्षमता होती है । जिसने अकेलेपन का रहस्य समझ लिया, वही आगे बढ़ेगा ।

कभी आपने विचार किया है कि आपके अकेले में भी एक महान् शक्ति निवास करती है, ऐसी महान् शक्ति जो संसार को हिला सकती है । और इसी के बल पर अकेला व्यक्ति शक्तिमान, निर्द्वन्द्व रह सकता है, वह है आत्मा की शक्ति । वेद में महर्षियों ने कहा है --**"अहमिन्द्रो न पराजित्ये"** मैं आत्मा हूँ मुझे कोई हरा नहीं सकता । "आत्मशक्ति पर विश्वास रखने वाले व्यक्ति को मृत्यु भी नहीं डरा सकती।" **"तमेव विद्वान न विभाय मृत्योः ।"** "उस आत्मा को जान लेने पर मनुष्य मृत्यु से भी नहीं डरता ।"

आप अकेले हैं । तब संसार के सब सहारों की आशा छोड़कर अपनी आत्मा का अवलम्ब लें । अपनी आत्मा की ज्योति को अपना पथ-प्रदर्शक बनावें । शास्त्रकार ने कहा है-- **"अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयोहिशुभ्रो.....** अन्तर में विराजमान ज्योर्तिदीप ही मनुष्य का पथ-प्रदर्शन करता है ।" इसलिये **"आत्मदीपो भव"** अपने दीपक आप बनें । उस आत्मज्योति पर विश्वास रक्खें जो आपके अन्तर में अखण्ड रूप से जल रही है । इस ज्योति के सिवा अन्य कोई आपको सही-सही प्रकाश नहीं दे सकती । जब भी आप अकेले हों आप किसी कठिनाई में भटक रहे हों, समस्या में उलझ रहे हों तब अन्तःज्योति के प्रकाश में जीवन का पथ ढूँढ़े । इधर-उधर न भटकें । आपके लिए अनुकूल, बाहर से नहीं, हितकर श्रेयस्कर मार्गदर्शन आपकी आत्मज्योति से ही मिलेगा, गीताकार ने इसी तथ्य पर जोर देते हुए कहा है--

"उद्धरेदात्मनावत्मानं नात्मानम्मवसादयेत् ।"

हम स्वयं भी अपना उद्धार कर सकते हैं, अन्य कोई नहीं । इसे हृदय में पक्की तरह अंकित करले । अकेले ही आगे बढ़ने के लिए आपको अपनी आत्मा पर विश्वास करना होगा, उसे ही अपना सर्वस्व समझना होगा । आत्म तत्व को भुला देने वाला व्यक्ति अधिक दिन नहीं चल सकता, उसे संसार नष्ट कर डालता है । आत्म शक्ति को समझने, जानने और उसे बढ़ाने के लिए उन सभी बुरे कर्मों से बचना होगा जो हमारे अन्तर्बाह्य जीवन को कलुषित करते हैं इसके लिये सबसे बड़ी आवश्यकता है, संयम की । संयमी ही स्वावलम्बी हो सकता है ।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वावलम्बी बनने का प्रयत्न करें । कर्म-क्षेत्र में व्यावहारिक जीवन में आप अपना जितना बोझ अपने ऊपर उठायेंगे उतने ही आपके 'अकेले' की शक्ति बढ़ती जायगी, उतनी ही आपकी क्षमतायें उर्वर होंगी । अपने प्रत्येक कार्य को स्वयं पूर्ण करें । किसी भी काम को दूसरे पर न छोडें, दूसरे के सहारे की आशा तनिक भी न रखें । अपने लिये ऐसे कार्यों का चुनाव करें जिन्हें आप स्वयं अपने बलबूते पर कर सकें । दूसरों के भरोसे कल्पना के बड़े-बड़े महल न बनावें । बालकों की तरह दूसरों के कन्धे पर चढ़कर चलने की वृत्ति का त्याग करें । दूसरों के बलबूते अपने आपको स्वर्ग का भी राज्य, अपार धन सम्पत्तियों का अधिकार, उच्च पद-प्रतिष्ठा में भी मिले तो उसे ठुकरा दें । अपने आत्म सम्मान के लिए अन्तर्ज्योति को प्रज्वलित रखने के लिए स्वावलम्बी बनने के लिए अपने प्रयत्न से आप छोटी सी झोपड़ी में रहकर, धरती पर विचरण करके, मिट्टी खोदकर, कड़ा जीवन भी बिता लेंगे तो बहुत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बड़ी सफलता होगी, आपके अपने लिये । इससे आपके अकेले के स्वत्व में वह शक्ति क्षमता पैदा होगी जो किसी भी वरदान प्राप्त शासक, पदाधिकारी, सम्पत्तियों के स्वामी को दुर्लभ होती है ।

जगत के कोलाहल के बीच, तथाकथित अपने कहने वालों के बीच, साथियों के बीच भी अपने अकेलेपन को न भूलिए । जगत के व्यवहार के बीच भी अपने को अकेला समझने का अभ्यास करते रहें । नियमित रूप से आप ऐसा समय निकाल सकते हैं, जब अपने अकेलेपन पर आप विचार कर सकें, अपनी अन्तःज्योति से सान्निध्य प्राप्त कर सकें, उस पर विश्वास कर सकें ।

लेकिन यह भी ध्यान रखने की बात है कि अकेले चलने का अर्थ व्यक्तिवादी स्वार्थी होना नहीं है और अहंकारी बनना भी नहीं । जहाँ व्यक्तिवाद और अहंकार पैदा हुआ कि मनुष्य अपने श्रेय-पथ से भटक जाता है, गलत काम कर बैठता है जो उसे पतन की ओर अग्रसर कर देते हैं । अकेलेपन का अर्थ लोक-व्यवहार को तोड़ बैठना अपना सामाजिक उत्तरदायित्व से आँख मूँद लेना, परस्पर सहयोग, सहायता, मेलजोल से हाथ धो बैठना भी नहीं है । अकेले स्वत्व का अर्थ है, मनुष्य जीवन और जगत् में विचरण करने के लिये बाह्य वस्तु पदार्थों पर दूसरे लोगों की सहायता पर ही अवलम्बित न रहें । वरन् उसकी इस यात्रा का शक्ति स्रोत उसके अन्तर से बहे । अन्तः प्रेरणा पर चलने वाले ही सफल होते हैं । बाह्य अनुभव, ज्ञान दूसरों के दृष्टिकोण विचारों को हेय समझने की गुन्जाइश नहीं है । यहाँ आवश्यकता इस बात की है कि बाह्य ज्ञान, अनुभव, विचारों को अन्तःद्वीप के प्रकाश में देखें । आँख मूँदकर उसको न मान लें । इस तरह स्वतंत्र निर्माण करने वाला व्यक्ति ही जीवन में सही तथ्य तक पहुँच सकता है ।

जीवन में अकेले चलने की क्षमता पैदा करें । क्योंकि एक न एक दिन आपको अकेले ही चलना होगा । कोई भी अपने कन्धों पर आपको मंजिल तक नहीं पहुँचा सकता । परावलम्बी, पराश्रित, पिछलग्गू का भी कोई जीवन है ? प्रकृति ने आपको स्वतंत्र बुद्धि दी है, स्वतंत्र शरीर दिया है । ऐसी शक्तियाँ दी हैं जो किसी दूसरे के सहारे काम नहीं करतीं । अपनी इन मौलिक शक्तियों, क्षमताओं का उपयोग कीजिये, स्वतंत्र जीवन बिताइये, स्वावलम्बी बनिये । इसी में आपका गौरव है, ज्ञान है, आपका स्वत्व है ।

आत्मा की अनन्त शक्ति

संसार की रचना छोटे-छोटे परमाणुओं से मिलकर हुई है, जड़ और चेतन परमाणुओं के विचित्र सहयोग से ही यह संसार गतिमान हो रहा है । जड़ परमाणुओं की शोध बीसवीं शताब्दी के विज्ञान की बड़ी देन है । कहते हैं जब इस परमाणु शक्ति का पूर्णरूपेण उपयोग होने लगेगा, तब मनुष्य के लिये इस संसार में कुछ भी असंभव न रहेगा । वह स्वेच्छापूर्वक ग्रह-नक्षत्रों में ऐसे ही विचरण कर सकेगा जैसे इस पृथ्वी में एक गाँव से दूसरे गाँव को चले जाते हैं । यह शक्ति कितनी बड़ी होगी इसका अनुमान लगाना भी कठिन है ।

जिस परमाणु की शक्ति और महत्ता इतनी बढ़-चढ़कर है वह इतनी सूक्ष्म वस्तु है कि उसे बड़ी से बड़ी खुर्दबीन लगाकर भी देख पाना सम्भव न हुआ । केवल उसकी प्रतिक्रियाओं के आधार पर उसका नामांकन हुआ है । पदार्थ का सबसे छोटे से छोटा टुकड़ा जिसके और अधिक अंश न हो सकें वह 'अणु' कहलाता है । इस अणु में भी 'न्यूक्लियस' या केन्द्र पिण्ड और इसके किनारे अण्डाकार कक्षा में गति करता हुआ 'इलेक्ट्रॉन' स्थिर 'न्यूट्रॉन' और 'प्रोटॉन' से मिलाकर बना हुआ परमाणु होता है, जिसको हम देख भी नहीं सकते । उस एक परमाणु का जब एक विस्फोट होता है, तो आइन्स्टाइन के 'मासवर्जन' सिद्धान्त के अनुसार ३३ लाख कैलोरी ताप पैदा होता है । यह शक्ति एक विशाल भू-भाग को जलाकर खाककर देने में पूर्णतया समर्थ है । अभी तो उस पर अनेकों खोजें और भी होनी शेष हैं ।

प्रत्येक पदार्थ इन छोटे-छोटे परमाणुओं से मिलकर बना है । मिट्टी के छोटे-छोटे कणों का वृहत्स्वरूप यह पृथ्वी है, समुद्र का आधार पानी की एक छोटी-सी बूँद है । विशाल वट वृक्ष का निर्माण उसके बीज के एक बहुत छोटे अंश से होता है । परमाणु एक प्रकार से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नक्सा है, जो कुछ शक्तियाँ इस सृष्टि में दिखाई देती हैं वे सब बीज रूप में वे एक परमाणु में विद्यमान हैं । इस शक्ति की हम कल्पना भी नहीं कर सकते ।

जड़ परमाणु की इतनी सामर्थ्य देखकर आश्चर्य होता है, पर चेतन अणु की शक्ति उससे ही अधिक है । जड़-पदार्थ स्वाधीन नहीं होते । उनकी अपनी कोई इच्छा-शक्ति नहीं होती । किन्तु चेतना शक्ति स्वछन्द है वह पदार्थ पर शासन करती है शासित से शासक की शक्ति अधिक होनी चाहिये ।

आत्मा को विश्व चेतना का परमाणु ही समझना चाहिये । पदार्थ के परमाणु की शक्ति का हिसाब लगा चुके हैं उससे आत्म-शक्ति की तुलना कर सकते हैं । हमें अपने को पहचानना चाहिये और शक्ति का स्वस्थ सम्वर्धन करना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्म-कल्याण का राज-मार्ग

लौकिक सुखों का एकमात्र आधार

अनेकों गुत्थियों और समस्याओं के साथ मनुष्य का जीवन उलझा हुआ है । उन्हें वह सुलझाना चाहता है और शान्तिपूर्वक रहना चाहता है, पर वे सुलझ नहीं पातीं । कारण यह है कि समस्याओं का वास्तविक स्वरूप एवं उन्हें सुलझाने का सही तरीका मालूम न होने से इस प्रकार के प्रयत्न किये जाते रहते हैं जो जड़ की उपेक्षा करके पत्तों को सींचने के समान हास्यास्पद सिद्ध होते हैं ।

परमात्मा सबका पिता है । उसे अपने सभी पुत्र समान रूप से प्यारे हैं । वह सबका हित और कल्याण चाहता है और सभी के लिए समान स्नेह से सुख-साधन एवं सुविधाएँ प्रदान करता है । किन्तु देखा जाता है कि कितने व्यक्ति दुःखी और कितने सुखी हैं । इस भिन्नता का कारण कोई बाहरी व्यक्ति, परिस्थिति, ग्रह-नक्षत्र, या देव-दानव नहीं वरन् वह स्वयं ही है । प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है । प्रारब्ध और आकस्मिक हानि-लाभ जो कि दैवी अनुग्रह या कोप समझे जाते हैं वस्तुतः हमारी अपनी निज की कृति ही हैं । भूतकाल में हमने जो कुछ शुभ-अशुभ कर्म किए हैं वे ही आज प्रारब्ध बनकर सामने खड़े होते हैं । पूर्ववत् सुख कर्मों का दुःखदायी परिणाम सामने आता है तो वह ईश्वरीय कोप या भाग्यहीनता जैसा प्रतीत होता है । वस्तुतः अपनी प्रत्येक भली-बुरी परिस्थिति का उत्तरदायित्व स्वयं अपने ऊपर ही होता है । सुख और दुःख देने की शक्ति बाहर की अन्य किसी सत्ता में नहीं, वह तो व्यक्ति स्वयं ही है जो अपने लिए शुभ-अशुभ परिस्थितियों का निर्माण किया करता है । मकड़ी अपना जाला स्वयं बुनती है और उसमें स्वयं ही उलझी रहती है। मनुष्य ने भी अपनी परिस्थितियों का जाला स्वयं ही बुना होता है और वह स्वयं ही उसमें फँसता-निकलता रहता है ।

इस तथ्य को हम जितना ही हृदयगंम करते हैं, उतना ही यह निश्चय होता जाता है कि अध्यात्म ही इस संसार की सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता है । जिस आधार पर हमारे सुख-दुःख की, उत्थान पतन की, सन्तोष-सन्ताप की धुरी घूमती है, उस पर ही सबसे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है । जड़ को सींचने से ही जब पत्ते हरे होंवे तो हर कुम्हलायें हुये पत्तों को अलग-अलग सींचने या उन पर हरा रंग पोतने का श्रम करने से क्या लाभ ? अनेकों प्रकार की गुत्थियाँ और परेशानियाँ हमारे सामने रहती हैं । यदि उनको उलझना और सुलझना हमारी आन्तरिक स्थिति पर ही निर्भर है तो बाह्य उपचार की अपेक्षा अपने आन्तरिक स्तर का सुधार करने का ही प्रयत्न क्यों न किया जाय ?

हर कोई सुखी रहना चाहता है । प्रचुर मात्रा में वैभव और ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहता है । पर यह भूल जाता है कि इन्हें प्राप्त करने का स्वस्थ आधार पुण्य ही है । अतीत के शुभ कर्म ही कालान्तर में ऐश्वर्य और वैभव बनकर सामने आते हैं । किसी समय जिनने शुभ कर्मों पर, पुण्य परमार्थों पर अधिक श्रम किया था, वे आज उसका प्रतिफल सुख-सामिग्री के रूप में उपलब्ध कर रहे हैं । कई व्यक्ति अनीति से भी धन कमाते या बड़े बनते देखे जाते हैं पर यह दृष्टि भ्रम ही है ।

अनीति का परिणाम तो राजदण्ड, ईश्वरीय दण्ड, अपशय और दुःख ही हो सकता है । इसके विपरीत जिन्हें इससे लाभ मिल रहा है, उनके बारे में यह विचित्र संयोग ही बन पड़ा है कि एक ओर वे पाप कर्म करके अपने भविष्य को बिगाड़ने में लगे हुए हैं और दूसरी ओर पूर्व संचित शुभ कर्मों का उदय होने से सुख-सफलता भी मिल रही है । एक ओर पाप कर्मों का करना, दूसरी ओर पूर्व कृत शुभ कर्मों के सत्परिणामों का उदय होना यह एक ऐसा विचित्र संयोग है कि मनुष्य भ्रम में पड़ जाता है और समझने लगता है कि पाप कर्मों से ही यह लाभ कमा लिया गया । यदि वस्तुतः ऐसा ही होता है तो सभी दुष्ट कर्म करने वाले फलते-फूलते और सुख-सौभाग्य प्राप्त करते । पापियों में कुछ थोड़े ही ऐसे होते हैं जो लाभदायक स्थिति में रहते हैं, अधिकांश तो दुःख-दारिद्र में ही पड़े रहते हैं ।

यह एक बहुत बड़ा और नितान्त भ्रम ही है कि पाप-कर्मों द्वारा सुख-साधन जुटाये जा सकते हैं । संयोगवश यदि पूर्वकृत सुकृतों का फल पाप कर्म करने के साथ ही मिलने भी लगे तो भी उन दुष्कृतों को कारण मन में इतनी अधिक जलन होती है कि उस लाभ से होने वाली प्रसन्नता उसके सामने बहुत ही तुच्छ सिद्ध होती है । ऐसे लोग कुछ कमाई कर लेने पर भी पश्चाताप और संताप की आग में ही जलते रहते हैं ।

सुख-सम्पत्ति का, श्री-समृद्धि का, वैभव-ऐश्वर्य का, एक मात्र आधार पुण्य है । जिन्हें सुख-साधनों की इच्छा हो सत्कर्म करने चाहिए । यह सत्कर्म करने की प्रवृत्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

केवल मात्र आध्यात्म विचार-धारा से ही उत्पन्न होती है और किसी प्रकार नहीं । इसीलिए यह सुनिश्चित तथ्य मान ही लेना होगा कि यदि किसी को वस्तुतः सुखी रहने की आकाँक्षा हो, यदि कोई इसका ठोस और वास्तविक आधार प्राप्त करना चाहता हो तो उसे सन्मार्ग ही अपनाना होगा, सद्भावों को ही धारण करना होगा, सत्कर्मों को ही करना होगा और यह तभी सम्भव है जब मनःक्षेत्र में आध्यात्म विचारधारा की सुदृढ़ स्थापना हो । विचारों से ही क्रिया उत्पन्न होती है । प्रेरणा से ही प्रवाह बनता है । पुण्य-परमार्थ की दिशा में विचार और प्रेरणा देने का कार्य आध्यात्मिकता पर ही निर्भर है । यही सुख की एक मात्र कुंजी है । जिसने इसे माना और जाना उसका सुख सुरक्षित है इसके लिए दुःख दैन्य का कोई कारण शेष नहीं रह जाता ।

देखते हैं कि आज सभ्य कहे जाने वाले वर्ग में अध्यात्म के प्रति उपेक्षा ही नहीं तिरस्कार भी है । जो युक्ति अध्यात्म की, लोक-परलोक की, ईश्वर-आत्मा की, भजन-पूजन की बात करता है वह मूर्ख समझा जाता है । उसका मखौल बनाया जाता है । इस खेदजनक स्थित का एक मात्र कारण यही है कि अध्यात्म का शुद्ध स्वरूप आज हमारी आँखों के आगे नहीं है । जिस तत्वज्ञान का अवलम्बन करके प्राचीन काल में इस देश का प्रत्येक व्यक्ति नर-रत्न, महा-मानव, पुरुषार्थी, पराक्रमी, सद्गुणी, मनस्वी, दीर्घजीवी, नीरोग, सम्पन्न, सुखी, समृद्ध एवं सभी दिशाओं में सफल होता था । राजा अपने राजकुमारों को, श्रीमन्त अपने लाड़लों को, ऋषियों के आश्रम में जिस अध्यात्म की शिक्षा प्राप्त करने भेजते थे और जिसे सीखकर वे पृथ्वी के देवता बनकर लौटते थे, वह अध्यात्म आज कहाँ है ? यदि अपनी वह प्राचीनकाल वाली उपयोगिता आध्यात्मिकता ने आज भी उपस्थिति की होती, तो निश्चय ही उसका गौरव और सम्मान अक्षुण्ण रहा होता । जिस प्रकार भौतिक विज्ञान का आज कोई तिरस्कार नहीं कर सकता उसकी उपयोगिता और वास्तविकता के आगे सभी को सिर झुकाने के लिए विवश होना पड़ता है वैसे भी यदि अध्यात्म विज्ञान भी अपने शुद्ध स्वरूप को कायम रख सका होता तो घर-घर में उस महाविज्ञान का सम्मान होता । प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको अध्यात्मवादी होने पर गर्व अनुभव करता ।

परन्तु आज तो स्थिति ही दूसरी है । जैसे हर चीज की नकल चल पड़ी है, असली का स्थान हर क्षेत्र में नकली को मिलता जा रहा है उसी प्रकार नकली अध्यात्म का भी झण्डा चारों ओर फहरा रहा है । निकम्मे, निठल्ले, हरामखोर, आलसी, दुर्गुणी, व्यसनी लोग बिना किसी श्रम, पुरुषार्थ, गुण एवं महानता के केवल रामनामी दुपट्टा ओढ़कर संत, महात्मा, सिद्ध, ज्ञानी और गुरु बन जाते हैं । वे कुछ राम-नाम लेते हैं । इतनी मात्र विशेषता बनाकर वे जनता से अपने लिए अमीरों जैसा बढ़िया किस्म का निर्वाह ऐशो-आराम और पैर पुजाने का सम्मान प्राप्त करते हैं । दूसरी ओर उनकी शिक्षा को मानने वाले अपने परिवार को, समाज को, धर्म-कर्तव्यों को, जिम्मेदारियों को तिलांजलि देकर संसार को मिथ्या बताने, भाग्य पर निर्भर रहने की बिडम्बना में पड़ जाते हैं । ऐसे लोग सभी दिशाओं में असफल, आलसी, प्रमादी और आजीविका की दृष्टि से भी पराश्रित होते देखे गये हैं । दुनियाँ हर चीज का मूल्य उसके प्रत्यक्ष स्वरूप को देखकर आँकती है । छप्पन लाख 'अध्यात्मवादियों' की यूनीफार्म धारी रजिस्टर्ड सेना तथा घर-बाजारों में रहने वाली अन्य भक्तों की उससे भी बड़ी 'मिलेशिया' के गुण कार्य और महत्व को देखकर हर विचारशील को बड़ी निराशा होती है । हर समझदार आदमी अपने को तथा अपने बच्चों को उससे छूत की बीमारी की तरह बचाने की कोशिश करता है ताकि उसी प्रकार का घटिया जीवन उनके पल्ले भी न बँध जाय ।

आज के नकली अध्यात्म का तिरस्कार होना उचित ही है । भजन भी अध्यात्म का अंग है, पर केवल मात्र भजन तक ही वह सीमित नहीं है । उसका वास्तविक उद्देश्य है आत्मा का सर्वांगीण विकास । ईश्वर का भजन इसमें एक बड़ा आधार है । पर आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण, आत्म-विकास के सुव्यवस्थित आत्म-विज्ञान को अनावश्यक तुच्छ एवं उपेक्षणीय मानकर केवल मात्र भजन करते रहने से भी कुछ विशेष लाभ सम्भव नहीं । ऐसे अगणित व्यक्ति देखे जाते हैं जो भजन सारे दिन करते हैं, पूजा-पाठ में बहुत मन लगाते हैं पर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सर की दृष्टि से वे सामान्य श्रेणी के लोगों से भी गये बीते हैं । इनका कारण यही है कि उनकी साधना एकाकी रही'' भजन को ही उनने सब कुछ माना और आत्म-निरीक्षण, आत्म-चिन्तन, आत्म-शोधन, आत्म-परिष्कार, आत्म-दर्शन एवं आत्म-कल्याण के महान् कार्य को हाथ में ही नहीं लिया। ऐसी अव्यवस्थित साधना के परिणामों से वैसी ही आशा की जा सकती है जैसी कि आज दृष्टिगोचर हो रही है ।

अध्यात्म वस्तुतः एक महान विज्ञान है । इसे जीवन-विद्या या संजीवन-विद्या कह सकते हैं । जीवन जैसे महान् कार्य का सही उपयोग करना इसी ज्ञान के आधार पर सम्भव होता है । किसी बड़ी जागीर, मिल, फैक्टरी, फार्म, संस्था, उद्योग या विशालकाय मशीन को चलाने,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुधारने और लाभदायक स्थिति में रखने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है । यदि अनाड़ी के हाथों में ऐसे बड़े काम सौंप दिये जायें तो अनर्थ की ही सम्भावना रहेगी मानव-जीवन भी ऐसी ही एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी है । चौरासी लाख यौनियों को बाद प्राप्त हुआ, सृष्टि का सर्वोपरि उपहार यह सुरदुर्लभ मनुष्य शरीर है, इसको ठीक प्रकार से जीने की भी एक सर्वांगपूर्ण विद्या है । उसे ही अध्यात्म कहते हैं । जिसने अध्यात्म का शुद्ध स्वरूप जान लिया और अपना लिया उसके लिए यह मानव शरीर ऋद्धि-सिद्धियों का भण्डार है । सुख-शान्ति का रत्न-कोष है । आनन्द और उल्लास का खजाना है । ऐश्वर्य और वैभव का कल्पवृक्ष है । अध्यात्मयुक्त जीवन ही वह जीवन है जिसे प्राप्त कर मनुष्य अपने आपको देवता की स्थिति में पहुँचा हुआ अनुभव करता है ।

लौकिक जीवन में जितने भी सुख-साधन एवं प्रसन्नतादायक अवसर हैं उनका मूल अध्यात्म ही है । यदि इस विचारधारा का प्रभाव मन पर न हो तो पुण्य कर्म किस प्रकार बन पड़ेंगे ? और उनके बिना सुख-साधनों से परिपूर्ण प्रारब्ध कैसे बनेगा ? स्त्री-पुत्रों का, स्वजनों-परिजनों का सज्जन और सद्भाव सम्पन्न होना एक बहुत बड़ा सुख है। पर यह सुख उसे ही मिलता है, जिसने अपने निकटवर्ती लोगों को प्रभावित कर लिया है । दूसरों को सज्जन बनाने के लिये अपना सज्जन होना आवश्यक है ।

क्रोधी बाप के बेटे अवज्ञाकारी ही हो सकते हैं । बालक के स्वभाव का बहुत कुछ निर्माण उसके जन्म से पूर्व हो जाता है । माता-पिता के रज-वीर्य से बच्चे का शरीर बनता है और स्वभाव एवं चरित्र से उसका मन विनिर्मित होता है । अच्छी संतान पैदा करने के इच्छुक माता-पिता को इसके लिये वर्षों पूर्व आत्म-निर्माण की साधना करनी पड़ती है । अपना चेहरा कुरूप हो तो फोटो भी कुरूप ही खिंचेगा । माता-पिता का स्वभाव अव्यवस्थित हो तो उनके बालक कैसे सज्जन और सद्भावी होंगे ? बच्चों को पौष्टिक भोजन कराके उन्हें स्वस्थ और कपड़े जेवर आदि से सजाकर सुन्दर बनाया जा सकता है, पर उसके स्वभाव में श्रेष्ठता तो तभी आवेगी जब माता-पिता अपनी श्रेष्ठता का प्रभाव प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से उन पर डालेंगे ।

यह कार्य आध्यात्मिक विचारधारा से ओत-प्रोत दम्पत्ति ही कर सकते हैं । इसलिये उत्कृष्ट प्रकार की सन्तान प्राप्त करना भी उन्हीं के लिए संभव होता है । कभी-कभी सज्जनों के घर में भी कुसंस्कारी बालक जन्मने के अपवाद होते तो हैं पर मोटा नियम यही है कि जैसे भावना प्रवाह में बालक पलता है वैसे ही संस्कार उसके बनते हैं और धीरे-धीरे वह उसी ढाँचे में ढल जाता है । उपदेशों से नहीं, बालक संस्कारों से ढलते हैं और श्रेष्ठ ढालने का साँचा एक मात्र अध्यात्म ही है ।

यही बात परिवार के अन्य सदस्यों के ऊपर लागू होती है । पति-पत्नी में से एक भी उत्कृष्ट स्वभाव का हो तो दूसरे की अपूर्णता को बहुत हद तक दूर करके सभी को बहुत अंशों में अपने अनुकूल बना सकता है । व्यवहार की सज्जनता से परिवार के अन्य सदस्य भी अपने अनुकूल बन जाते हैं । मित्रों और सम्बन्धित व्यक्तियों पर भी यह बात बहुत हद तक लागू होती है ।

सम्बन्धित व्यक्ति अपने अनुकूल स्वभाव और आचरण रखें, अपने प्रति सद्भाव रखें तो उनके सान्निध्य में रहने से स्वर्ग जैसा सुख मिल सकता है । जिसके निकटवर्ती परिजन विरोधी दुर्भाव रखते हैं उसके लिए प्रत्यक्ष नरक ही है । भौतिक जीवन के इस स्वर्ग को नरक में और नरक को स्वर्ग में बदल देना हमारे अपने दृष्टिकोण एवं स्वभाव की उत्कृष्टता एवं निकृष्टता पर बहुत कुछ निर्भर है । अध्यात्म की ओर अभिमुख होकर यदि कोई व्यक्ति अपने परिजनों को स्नेही एवं सहयोगी बना लेता है तो क्या यह कुछ कम लाभ है ? धनी होना उतना सुखकर नहीं जितना स्नेही परिवार प्राप्त करना । यह दोनों ही सुख प्रदान करने की अनन्त क्षमता अध्यात्म विद्या में सन्निहित है । ऐसी महान विद्या की उपेक्षा करना निश्चित रूप से कोई समझदारी की बात नहीं है ।

बहुत आमदनी होने पर तो कोई भी सुख-साधन इकट्ठे कर सकता है पर आध्यात्मवादी के लिये कम आमदनी में धनियों की अपेक्षा अधिक सुखपूर्वक जीवनयापन करना सुख सम्भव है । आमदनी की मर्यादा में ही अपना वजट चलाना, फिजूलखर्चियों को त्याग देना, मितव्ययिता और विवेकपूर्वक एक-एक पाई का खर्च करना, शौकीनी और विलासिता से घृणा करते हुए सादगी को अपनाना, खर्च में दूसरों की होड़ न करके अपनी ही परिस्थितियों में सन्तोष रखना, आदि अनेक सद्गुण आध्यात्मिकता की ही देन हैं, जो गरीबी में भी अमीरी का आनन्द उपलब्ध करा सकते हैं । इन गुणों के होने पर गरीबी–गरीबी नहीं लगती और इनके अभाव में अमीरी भी रूखी, फीकी, असन्तोषजनक एवं अपर्याप्त लगती है ।

स्वास्थ्य की समस्या का सम्बन्ध लोग पौष्टिक आहार से जोड़ते रहते हैं । सोचते हैं कि बढ़िया खाना मिले तो तन्दुरुस्ती बढ़े पर वास्तविकता यह है कि मानसिक स्थिति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर ही आरोग्य निर्भर रहता है । हँसमुख, चिन्ता रहित, सरल स्वभाव, निष्कपट, सदाचारी व्यक्ति आमतौर से स्वस्थ रहते हैं क्योंकि उनका अन्तःकरण उस आग में नहीं जलता रहता जो स्वास्थ्य को चौपट करने में सबसे बड़ा कारण सिद्ध होती है । असंयम ही स्वास्थ्य की बरबादी का एक महत्वपूर्ण कारण है । जिह्वा का चटोरापन, अंट-शंट चीजें अनावश्यक मात्रा में पेट में ठूँसते रहने के फलस्वरूप आँतें खराब होती हैं, रक्त दूषित होता है और नाना प्रकार की बीमारियाँ जड़ जमाती हैं । ब्रह्मचर्य सम्बन्धी असंयम शरीर को खोखला कर देता है और युवावस्था में ही बुढ़ापा लाकर अल्पायु में मरने के लिये विवश करता है । इससे शरीर का हर अंग क्षीण और दुर्बल होने लगता है और बीमारियाँ घेरती हैं ।

लौकिक जीवन में आरोग्य, धन, स्नेह, सौजन्य यह तीन ही सबसे बड़ी विभूतियाँ मानी गई हैं । इन्हीं से मनुष्य अपने को सुखी अनुभव करता है । यह तीनों ही विभूतियाँ अध्यात्म के छोटे से उपहार हैं, जिन्हें सच्चे अध्यात्मवाद का कोई भी उपासक निश्चित रूप से प्राप्त कर सकता है । आन्तरिक जीवन की वह सुख-समृद्धि तो इन लाभों के अतिरिक्त ही है, जिन्हें प्राप्त करने वाला अपने को सब प्रकार धन्य और कृतकृत्य अनुभव करता है ।

आत्मा की अनन्त सामर्थ्य

किन्हीं आध्यात्मिक व्यक्तियों में कुछ अलौकिक चमत्कारी शक्ति देखी जाती है । वे कई बार ऐसे आश्चर्यजनक कार्य करते हैं जिन्हें देखकर उनकी विशेषता स्वीकार करनी पड़ती है । कई आध्यात्मिक व्यक्तियों के आशीर्वाद से दूसरों का भला और शाप से अहित होता देखा जाता है । पुराणों, इतिहासों में ऋषि तपस्वियों के जीवन में अगणित अलौकिक कार्यों का विवरण मिलता है ।

योग की सिद्धियाँ और विभूतियाँ प्रसिद्ध हैं । योग शास्त्र के दक्षिणमार्गी और वाममार्गी ग्रंथों में इस प्रकार की विभूतियों के कारणों और विधानों को विस्तारपूर्वक बताया गया है । जिन लोगों ने उस मार्ग पर चलते हुए जितनी मंजिल पार की है उनमें उस साधना विज्ञान में संलग्न अनेकों साधक अपने में कुछ विशेष प्रकार की सूक्ष्म शक्ति संग्रह करने में समर्थ होते हैं और उनका लाभ स्वयं उठाते अथवा दूसरों को देते रहते हैं । यह प्रत्यक्ष तथ्य है । प्राचीनकाल में ऐसे अगणित साधक सर्वत्र दृष्टिगोचर होते थे । यह ऋषियों का देश ही था । इस अध्यात्म विद्या का गौरव सभी को विदित था और सभी उसके साथ अपने को किसी न किसी रूप में सम्बद्ध रखने का प्रयत्न करते थे । प्रातः और सायं सन्ध्या-वन्दन की साधना तो सभी के लिए अनिवार्य थी जो उसकी उपेक्षा करता था उसे पतित माना जाता था । इसी अपराध के अपराधी समाज बहिष्कार का दण्ड पाते थे और शूद्र, अन्त्यज, चाण्डाल आदि नामों से पुकारे जाते थे ।

आज तो दुर्भाग्य से इन नामों की जातियाँ ही बन गई हैं । कैदियों की कालान्तर में कोई जाति ही बन जाय तो इसे उचित नहीं कहा जायगा । इसी प्रकार आज अन्त्यज चाण्डाल, आदि जो जातियाँ देखी जाती हैं, वस्तुतः उनका आरम्भ साधना की उपेक्षा करने के दण्डस्वरूप हुआ था । यह कभी नहीं सोचा गया था कि आगे चलकर यह वंश परम्परा ही चल पड़ेगी । आज तो आत्म-कल्याण की आध्यात्मिक साधनाओं से विमुख हममें से अधिकांश लोग चाण्डाल, अंत्यज कहे जाने के ही अधिकारी हैं ।

हमारे पूर्वज जानते थे कि मनुष्य बड़ा आलसी और स्वार्थी है । उसकी दृष्टि चिरस्थायी किन्तु दूरवर्ती लाभों को देखने में चूक करती है और तुरन्त के छोटे से सुख के लिए वह भविष्य को अन्धकारमय बना लेने का प्रमाद बहुधा करता रहता है । इसी की रोकथाम के लिए इस प्रकार के बन्धन लगाये गये थे, दण्ड विधान बने थे, ताकि आत्म-साधना की उपेक्षा करके कोई व्यक्ति उन लाभों से वंचित न रहे जो मानव जीवन की सफलता के लिए नितान्त आवश्यक हैं ।

ऋषि-मुनि प्रचण्ड साधनाएँ करके असाधारण और अलौकिक आत्मबल सम्पादन करते थे और अपने लोक-परलोक को शानदार बनाते थे । पर इतना आत्मबल तो सभी के लिए आवश्यक समझा जाता था जिससे वह सुखी-सन्तुष्ट और शान्तिपूर्ण जीवनयापन कर सके । साधना और स्वाध्याय की अनिवार्यता पर धर्म-शास्त्रों में अत्यधिक जोर दिया गया है क्योंकि आन्तिरिक स्थिति की स्वस्थता के लिए यह दोनों ही बातें आवश्यक हैं । आन्तरिक स्वास्थ्य के बिना बाह्य जीवन नितान्त असफल एवं संतापयुक्त ही रहता है चाहे उसमें भौतिक सम्पदाएँ कितनी ही अधिक क्यों न हों ।

अध्यात्म के सत्परिणाम प्रसिद्ध हैं । उसके आधार पर लौकिक और पारलौकिक दोनों ही प्रकार की सुख-शान्ति उपलब्ध होती है । शान्ति, सन्तोष, प्रसन्नता, निर्भयता और स्वतंत्रता के पाँच प्रतिफल सम्बन्ध में अन्यत्र बताये जा चुके हैं । जब यह लाभ प्राप्त होते हैं तो उनके स्थूल साधना भी साथ ही जुड़े रहेंगे । सन्तोषजनक धन, स्त्री, पुत्र, परिवार,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वास्थ्य, पद, यश, विद्या, चतुरता, मैत्री आदि जो साधन इस लोक की सुख-सम्पत्ति के रूप में पुकारे जाते हैं, ये आत्म-परिष्कार के साथ सम्बन्धित हैं । जितनी आत्मिक स्थिति विकसित होती चलेगी उतनी ही यह साधन सामिग्री भी अपने आस-पास एकत्रित होती चली जायेगी ।

आत्मिक सिद्धियों से सम्पन्न जो तपस्वी एवं सिद्ध पुरुष देखे जाते हैं उनका अपने अस्थिर शरीर और मन पर नियंत्रण होते ही प्रकृति पर भी एक सीमा तक अधिकार हो जाता है । सूक्ष्म जगत में जो कुछ हो रहा है, या होने जा रहा है, उसे वे वैसे ही देख सकने में समर्थ होते हैं, जैसे हम चर्म चक्षुओं से साधारण दृश्यों को देखते हैं । प्रकृति के साधारण नियमों का उल्लंघन करना भी उनके लिए कठिन नहीं होता । वस्तुतः प्रकृति का उल्लंघन कोई बड़ी बात नहीं है, जीव की कुछ अपूर्णताऐं ही उसे सीमित रखती हैं। पक्षी आकाश में उड़ सकते हैं, मछली दिन-रात पानी में डूबी रह सकती है, हंस पानी पर चलते रहते हैं, अनेकों सूक्ष्म कीड़े हवा और पानी में घूमते रहते हैं पर हमें दीखते नहीं । यही बातें यदि मनुष्य करने लगे तो वे बातें सिद्धियाँ लगती हैं । आत्म शक्ति सम्पन्न व्यक्ति अपनी अपूर्णताएँ दूर कर सकता है और अन्य अनेक प्राणियों की तरह विशिष्ट शक्तियों से सम्पन्न हो सकता है । यह लाभ यों सामान्य ही हैं पर उनसे मानव जीवन को और भी सर्वांगपूर्ण बनाने में सहायता मिलती है ।

वैज्ञानिक जानते हैं कि एक विशाल ग्रह में जो शक्तियाँ और क्षमताएँ होती हैं वे सभी बीज रूप से एक परमाणु में मौजूद रहती हैं । इसी प्रकार ब्रह्माण्ड का ढाँचा पिण्ड के अन्दर मौजूद है । आत्मा आखिर परमात्मा का अंश तो है, जीव में ईश्वर के सभी गुण विद्यमान हैं । पर वे सभी प्रसुप्त अवस्था में पड़े हैं । साधना द्वारा उनका जागरण किया जाता है । वैज्ञानिक एक छोटे से अणु की छिपी शक्ति का जब ठीक उपयोग कर लेने में समर्थ हो जाते हैं तो विनाशकारी एटमबम बनकर तैयार हो जाता है । मनुष्य यों एक परमाणु के समान ही तुच्छ प्रतीत होता है पर साधना के द्वारा जब उसकी प्रसुप्त शक्तियों का जागरण किया जाता है तो वह अत्यन्त शक्तिशाली और महान् बन जाता है । स्वयं ही वह सुसम्पन्न नहीं होता वरन् और भी अनेकों को सुसम्पन्न बना देने की क्षमता उसमें प्रस्फुटित हो जाती है । कुण्डलिनी जागरण, ब्रह्म समाधि आदि ऐसी ही अवस्थाएँ हैं जिनमें सामान्य शरीर रहते हुए भी जीव वस्तुतः अत्यन्त उच्च भूमिका में जा पहुँचता है और प्रकृति के सूक्ष्म रहस्यों का इसी प्रकार साक्षात्कार करता है जैसे हम सामान्य वस्तुओं को चर्म चक्षुओं से देखते हैं । ऐसे सिद्ध पुरुष अपने आत्मिक प्रभाव का उपयोग करके किन्हीं परिस्थितियों को बदल भी सकते हैं । व्यक्तियों को वस्तुओं में भी उनके द्वारा परिवर्तन होता देखा जाता है । ईश्वर की कार्य-प्रणाली में वे भी एक प्रकार से भागीदार बन जाते हैं और एक नियत सीमा तक वे ईश्वरीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सृष्टि व्यवस्था का संचालन भी कर सकते हैं ।

आत्मिक क्षेत्र का विस्तार और महत्व अत्यन्त विशाल है । उसकी सफलताएँ इतनी महान् हैं कि विवेकवान् व्यक्ति भौतिक जीवन में बड़े से बड़े कष्ट सहकर भी, बड़े-से-बड़े त्याग करके भी उस क्षेत्र में प्रवेश करते हैं । ऋषि, मुनि, त्यागी, तपस्वी मूर्ख नहीं थे, वे सच्चे व्यवहारवादी थे । बड़े लाभ के लिए छोटे लाभ का त्याग करने की व्यावहारिक नीति का ही उनने पालन किया है । मिट्टी में बीज बखेरते समय किसान भी तो यही करता है । साधना की प्रक्रिया देखने में घाटे का काम, समय की बर्बादी भले ही लगे पर वस्तुतः वह वैसी बात नहीं है । उसमें बहुत कुछ तथ्य है, बहुत कुछ सार है ।

देवी-देवताओं के अनुग्रह और उनके सत्परिणामों पर आमतौर से धार्मिक लोग विश्वास करते हैं । उनकी पूजा उपासना के अनेकों विधि-विधान, भजन-पूजन होते रहते हैं और भक्ति-भावना से उनके लाभ भी मिलते हैं । पुराणों में देवताओं की शक्ति और कृपा के अनेकों उपाख्यान मौजूद है वे असत्य नहीं हैं । यदि असत्य होते तो अतीत काल से अब तक वह श्रद्धा, भक्ति और पुण्य परम्परा यथावत् चलती न आती । असत्य कमजोर होता है इसलिए वह कम समय तक ठहरता है । केवल सत्य में ही वह क्षमता है कि देर तक ठहरे और बराबर बढ़ता एवं फलता-फूलता रहे ।

साधना किन्हीं देवी-देवताओं की भी की जाती है । कुछ यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र भी ऐसे हैं जो किन्हीं कर्मकाण्डों एवं अनुष्ठानों के साथ सिद्ध किये जाते हैं । इस प्रकार की सभी साधनाएँ साधक की आत्मिक स्थिति के अनुसार ही सफल होती हैं । श्रद्धा और विश्वास, साहस और धैर्य, एकाग्रता और स्थिरता, दृढ़ता और संकल्प ही वे तत्व हैं, जिनके आधार पर यह साधनाएँ सफल होती हैं । यदि साधक का संकल्प दुर्बल हो, श्रद्धा और विश्वास ढ़ीले हों, चित्त अस्थिर और अधीर रहे तो विधि-विधान सही होते हुए भी वैसा परिणाम न मिलेगा जैसा मिलना चाहिये । अदृश्य जगत में जो महान देव-शक्तियाँ अवस्थित हैं उनको अपनी ओर आकर्षित कर सकना निश्चित रूप से अपनी आत्मिक स्थिति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर निर्भर है । जो लोग साधनारत रहते हैं पर अपनी मनोदशा को परिष्कृत नहीं करते वे उन लाभों से वंचित रह जाते हैं जो दूसरे अन्य साधक उसी मार्ग पर चलते हुए बहुत कुछ प्राप्त कर लेते हैं ।

सच तो यह है कि आत्मा के अंतरंग प्रदेश में ही उन अदृश्य दैव-शक्तियों का निवास होता है जो हमें कहीं बाहर रहती दीखती हैं । साधना के द्वारा हमारे गुप्त चक्रों, संस्थानों, आन्तरिक ग्रन्थियों का जागरण होता है और वे ही हमारे विश्वास के अनुरूप देवता का रूप धारण करके सामने आ उपस्थित होती हैं । जैसे चतुर माली अपने परिश्रम से किसी पौधे को भली प्रकार विकसित कर लेता है । उसी प्रकार श्रद्धावान् साधक भी अपने अन्तः प्रदेश में रहने वाली किन्हीं दो देव-शक्तियों को अपनी श्रद्धा और साधना की सुनिश्चितता के आधार पर सफल एवं सत्परिणामदायिनी बना लेता है । आलसी और अनाड़ी माली वैसा ही खेत, वैसा ही पौधा, वैसे ही उपकरण होते हुए भी अपने पौधे को निष्प्राण बना देता है । देवताओं के लिए सभी समान हैं । सभी प्रिय हैं । पर वे किसी पर कृपा किसी पर उपेक्षा करते देखे जाते हैं तो उसके मूल में साधक की आत्मिक स्थिति ही काम करती है । किन्हीं की उत्कृष्ट भावनाएँ स्वल्प काल में देव-शक्तियों को द्रवित कर लेने में सफल होती हैं पर किन्हीं की अश्रद्धा उन्हें कुछ भी प्राप्त न होने की स्थिति में ही रखे रहती है ।

किसी भौतिक स्वार्थ-सिद्धि के लिए सकाम उपासना करने वाले लोगों की मनोभूमि सांसारिक स्तर पर निम्न श्रेणी की ही होती है । इसलिए वे मंत्र शक्ति से अपना कोई प्रयोजन भले ही सफल कर लें पर सच्ची दैव-कृपा से वंचित ही रहते हैं । इसके विपरीत जिनकी आत्मा में सच्ची श्रद्धा भक्ति होती है, जिनका मन निःस्वार्थ और निष्काम होता है उन्हें उच्च कोटि के दैवी अनुग्रह प्राप्त होते हैं, उनके लोक और परलोक दोनों ही सार्थक होते हैं । इस तथ्य पर विचार करने से भी यही स्पष्ट होता है कि उच्च स्तर की आत्मिक भूमिका ही देव-कृपा उपलब्ध होने का प्रधान कारण है ।

ईश्वर को भक्त के वश में कहा जाता है । गोप-वालाऐं प्रेम के बल पर ही कृष्ण को अपने आँगन में नाच नचा सकीं, मीरा ने प्रेम की मजूरी देकर ही उसे 'चाकर' बना लिया, सूरदास की लकड़ी पकड़कर चलने और द्रौपदी की लाज रखने के लिये नंगे पैर दौड़ने के लिये उसे विवश होना पड़ा था । एक ओर अधूरे और नीरस मन से किए हुए बड़े-बड़े पूजा-उपचार भी निरर्थक होते हैं दूसरी और वह सच्चे भक्तों के पीछे-पीछे फिरता देखा जाता है । इस प्रसंग में भी एक ही निष्कर्ष निकलता है कि ईश्वर को प्रसन्न करना उसके अनुग्रह से सद्गति, सुख, शान्ति, स्वर्ग, मुक्ति प्राप्त करना केवल आन्तरिक स्थिति की उत्कृष्टता पर ही निर्भर है ।

आत्मा ही ज्ञान-विज्ञान का केन्द्र है । सुख, शान्ति का मूल आधार वही है । उन्नति और समृद्धि के बीज उसी में छिपे हैं । स्वर्ग और मुक्ति का आधार वही है । कल्पवृक्ष बाहर नहीं अपने भीतर ही है । अगणित कामनाओं की तृप्ति आत्मज्ञान रूपी कल्पवृक्ष से ही सम्भव हो सकती है । आत्मा ही पारसमणि है, जिसे छूकर लोहे जैसा काला-कलूटा मानव जीवन खरे सोने--देवत्व में परिणित होता है । यही वह अमृत है जिसे पीकर युग-युग की अतृप्ति का समाधान होता है । आत्मा अपने आप में पूर्ण है, जिसने उसे देख लिया वही सच्चा दृष्टा है जिसने उसे प्राप्त कर लिया उसके लिए और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता ।

अध्यात्म ही सब कुछ है

सृष्टि में अनेकों प्रकार के आनन्ददायक पदार्थ हैं पर वे जड़ होने के कारण स्वयं किसी को किसी प्रकार का सुख-दुःख नहीं दे सकते । आत्मा की चेतना ही उन पदार्थों के साथ जब घुलती है, तब पदार्थ में रस उत्पन्न होता है और तभी वे सुखदायक बन जाते हैं । इस संसार में पदार्थ कोई भी ऐसा नहीं है जो अपने आप किसी को सुख या दुःख दे सके ।

संसार में अनेकों सुन्दर दृश्य पदार्थ मौजूद हैं पर यदि अपनी आँखें जाती रहें, दिखाई न पड़ें तो सृष्टि के सभी पदार्थ अदृश्य हो जावेंगे, सर्वत्र अन्धकार ही छाया दीखेगा । दृश्य पदार्थों की सारी सुन्दरता नष्ट हो जायेगी । संसार में बहुत-बहुत मधुर शब्दों की ध्वनि होती है । पक्षियों का कलरव, मेघ, गर्जन, मधुर-भाषण, प्रेमालाप, बालकों की तोतली बोली, गायन, वाद्य, प्रवचन आदि बहुत कुछ सुनने योग्य इस संसार में मौजूद है, पर यह सब हैं तभी तक जब तक अपने कानों में चैतन्यतत्व जागृत है, यदि कानों की सजीवता जाती रहे तो यह सारी शब्द-धारा समाप्त हो जायगी तब सर्वत्र नीरवता का साम्राज्य ही दीखेगा ।

जिह्वा में कोई रोग हो जाय, मुँह में छाले भर जायँ या स्वाद अनुभूति की इन्द्रिय में कोई विकार आ जाय तो फिर संसार के सुस्वादु पदार्थों में क्या विशेषता रह जायगी ? उत्तम से उत्तम भोजन भी मिट्टी जैसे स्वादहीन लगेंगे । नपुंसकता या कोई और मूत्रेन्द्रिय का रोग हो जाय तो काम सेवन की सुविधायें रहते हुए भी उस सम्बन्ध में कोई आनन्द

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शेष न रहेगा । पेट की पाचन क्रिया काम न करे तो पौष्टिक पदार्थों का सेवन भी भला पेट शरीर का क्या पोषण कर सकेगा ? यदि मस्तिष्क की सजीवता कुण्ठित हो जाय, मूढ़ता, स्मरण शक्ति का लोप, उन्माद आदि कोई रोग घेर ले तो फिर ज्ञान-सम्पादन के अगणित साधन होते हुए भी अपना क्या लाभ होगा । तब विद्यालयों ग्रंथों, शिक्षकों एवं अन्यान्य ज्ञानवर्द्धक सुविधाओं से भी क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ।

आत्मा की सूक्ष्म चेतना सारे शरीर का नियन्त्रण और संचालन करती है । उस व्यवस्था में रत्तीभर भी अन्तर आ जाय तो यह सुन्दर, सुगठित स्वस्थ और सूक्ष्म लगने वाला शरीर भी भार रूप हो जाता है । साधारण-सा रोग उठ खड़ा होने पर पीड़ा और परेशानियों का ठिकाना नहीं रहता । फिर कोढ़, क्षय, उपदंश, हैजा, प्लेग जैसा कोई संक्रामक रोग हो जाय तो तब तो दूसरे लोगों का सहयोग भी कठिनता से मिलता है । लोग छूत से बचने के लिये दूर-दूर रहते हैं और स्वजन सम्बन्धी भी परिचर्या से कतराते हैं । इस प्रकार का कोई विकार खड़ा होने पर पहले जो लोग अपने ऊपर जान देते थे वे ही दूर रहने और अपना पिण्ड छुड़ाने का प्रयत्न करते हैं ।

अपनी निज की विशेषताओं के कारण जो लोग प्रिय-पात्र थे, वे ही उन विशेषताओं के समाप्त हो जाने पर उपेक्षा करने लगते हैं, शत्रु बन जाते हैं । जिस वेश्या पर यौवनकाल में प्रेमीजन चील-कौओं की तरह मँडराते रहते थे, वृद्धा होने पर उसके पास कोई दुःख-दर्द की भी सुधि लेने नहीं आता । माता से जब तक बालक दूध तथा जीवन धारण करने की सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए उस पर निर्भर रहता है, तब तक उससे अत्यधिक प्रेम करता है । माता जरा-सी देर के लिये भी बच्चे को छोड़कर कहीं चली जाय तो वह रोने लगता है । उसी को गोदी में चिपके रहने की इच्छा करता है । पर जब वही माता बूढ़ी हो जाती है, जवान बच्चे के लिये कुछ लाभदायक नहीं रहती, तब बेटे का व्यवहार बदल जाता है । वह उपेक्षा ही नहीं करता तिरस्कृत भी करने लगता है ।

यह परिस्थितियाँ बताती हैं कि आत्मा की सजीवता, सूक्ष्मता और सुदृढ़ स्थिति ही एक मात्र वह तथ्य है जिसके कारण पदार्थों और व्यक्तियों का सहयोग, सुख और स्नेह प्राप्त होता है । इसमें कमी आने पर व्यवहार ही बदल जाता है । अपने पराये हो जाते हैं, मित्र शत्रु में बदल जाते हैं । अपने पास बहुत धन हो उसकी रखवाली के लायक शक्ति शेष न रहे तो वह धन ही प्राणों का ग्राहक बन जाता है । स्वजन सम्बन्धी भी प्रतीक्षा देखते हैं और चोर-डाकुओं का लालच बढ़ जाता है । वे किसी बलवान् और सुरक्षा सम्पन्न के ऊपर आक्रमण करने की अपेक्षा दुर्बलों को ही अपना शिकार बनाते हैं । अशक्त व्यक्ति के लिये धन उसकी जान का गाहक है । रूपवती स्त्री भी उसके लिये विपत्ति ही है । कारोबार, व्यापार आदि में अनेक प्रतिद्वन्द्वी खड़े हो जाते हैं । अपनी मनमानी करने में जिसको भी वह कमजोर व्यक्ति कुछ बाधक लगता है, वही उसे काँटा समझकर रास्ते में से हटाने की कोशिश करता है । दुर्बल काया पर अगणित रोगों का आक्रमण होता है । बीमारियाँ उसे अपना घर बना लेती हैं । मरने पर तो इस देह को जल्दी से जल्दी घर से निकाल बाहर करने और उसे नष्ट करने की व्यवस्था करनी पड़ती है ।

यह सब बाते अचरज की नहीं, स्वाभाविक हैं । रोज ही आँखों के सामने इस प्रकार की घटनायें घटित होती रहती हैं । संस्कृति में एक उक्ति है जिसका अर्थ है "दैव भी दुर्बल के लिए घातक सिद्ध होता है ।" जितना बल है, जीवन है, प्राण है इसके उतने ही सहायक और प्रशंसक रहते हैं । जब इनमें कमी आरम्भ हुई, अपने बिराने बनने लगते हैं और मित्र शत्रु का रूप धारण करने लगते हैं । दुर्बलता को देखकर अकिंचन जीव भी आक्रमण करने और आधिपत्य जमाने की चेष्टा करते हैं । युद्ध-क्षेत्र में घायल और अर्धमृत हुए सैनिकों की आँखें कौये निकाल ले जाते हैं और सियार उनका पेट चीरकर आँते खींचते फिरते हैं । यदि वह सैनिक इस दशा में न होता, स्वस्थ और जीवित होता तो इन कौओं की, सियारों की हिम्मत पास आने की भी न पड़ती वरन् उससे डरकर प्राण बचाने के लिए भागते फिरते । जीवित मनुष्य इन चींटियों को पैरों से कुचलता रहता है, मृत होने पर वे ही चींटियाँ उस शरीर को नोंच-नोंच कर खाने लगती हैं । गुलाब-सा सुन्दर शरीर वृद्ध या रोगी होने पर कुरूप एवं घृणास्पद बन जाता है ।

यह सब बातें बताती हैं कि जब तक कि जीवन तत्व की प्रचुरता है तभी तक संसार के पदार्थ उपयोगी अनुकूल एवं सहायक सिद्ध होते हैं । जब प्राण घटा तभी स्थिति बदलने लगती है और शक्ति के क्षीण होते ही सब कुछ प्रतिकूल हो जाता है,। जो अग्नि मनुष्य की जीवन भर सेवा सहायता करती रही, भोजन पकाने, सर्दी मिटाने, प्रकाश देने आदि कितने ही प्रयोजनों से जीवन संगिनी की तरह सहायक रही वह अग्नि शरीर के मृतक हो जाने पर जला डालने के लिए चिता की ज्वालाओं के रूप में धू-धू करती है । नौकर को बूढ़े होते ही नौकरी से हटा दिया जाता है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बूढ़ा बैल कसाई के यहाँ अपनी गरदन कटाने को विवश होता है, रूप और यौवन के लोभी भौंरे जवानी ढ़लते ही पुष्प पर मँडराना छोड़ देते हैं । निर्धन को कौन मित्र बनाता है ? दुर्बल की कौन प्रशंसा करता है ? अशक्त को किसका आश्रय मिलता है ?

जितना भी गंम्भीरतापूर्वक सोचा जाय उतना ही तथ्य स्पष्ट होता है कि अपनी आन्तरिक जीवनी शक्ति ही विभिन्न पदार्थों के ऊपर दबाव डालकर उन्हें चमकीला बनाती है अन्यथा वे सब कुछ स्वभावतः कुरूप हैं ? कोयला काला करूप और निस्तेज है, पर जब अग्नि के सम्पर्क में आता है तब वह भी तेज और उष्णता से भरपूर अग्नि जैसा दीखने लगता है । आत्मा ही अग्नि है । वह जिस पदार्थ के साथ जितने अंशों में घुली-मिली रहती है वह उतना ही प्रियपात्र एवं हितकारी बन जाता है । आत्मा का सम्बन्ध जिस पदार्थ से जितना ही शिथिल होता जायेगा वह उतना ही व्यर्थ, अप्रिय एवं अनुपयोगी लगने लगेगा ।

जिस मकान, जायदाद, कोठी, मोटर, धन, जेबर, घोड़ा, गाय के प्रति अपनी ममता है, मोह है, स्वामित्व की अनुभूति है, वह बहुत ही प्रिय लगने लगता है, उनकी सुरक्षा एवं सुन्दरता के लिए निरन्तर ध्यान रहता है । उन पर गर्व भी होता है । पर यदि यह वस्तुएँ बिक जायें तो उनकी ओर से उपेक्षा हो जाती है । किसी दूसरे के अधिकार में जाने के बाद वे भले ही आँखों के सामने बनी रहें, जहाँ पहले थीं भले ही वहीं रहती रहें पर उनके प्रति कुछ भी आकर्षण न रहेगा । ऐसा क्यों हुआ ? यदि वस्तुओं से प्रेम रहा हो तो वे पराई होने पर भी पहले की भाँति प्रिय लगती रही होतीं । इस प्रेम और उपेक्षा में केवल आत्म-भाव का ही अन्तर होता है । आत्मा अपने आपको प्यार करता है, जिस चीज में आत्मा का प्यार झलकता है, अपनापन अनुभव होता है केवल वही प्रिय लगती है ।

पडौसी के सुन्दर बच्चे भी अपने लिये कोई मूल्य नहीं रखते, पर अपने कुरूप बालक भी प्राणप्रिय लगते हैं । पड़ौसी के बच्चे बीमार पड़ें या मर जायँ तो भी अपने को कुछ भी कष्ट नहीं होता पर यदि अपने बालक को थोड़ा भी कष्ट हो तो भारी चिन्ता हो जाती है और उसे नीरोग बनाने के लिए भारी दौड़-धूप एवं बहुत धन खर्च करने में भी संकोच नहीं होता । अपने परिवार के प्रति जो ममता रहती है वह पड़ौसियों के प्रति, अजनवियों के प्रति कहाँ दृष्टिगोचर होती है ? अपने गुणहीन स्वजन भी विराने गुणवान व्यक्तियों से अधिक महत्वपूर्ण एवं गुणवान लगते हैं । क्या पदार्थ, क्या व्यक्ति सभी का प्रिय अप्रिय लगना उनकी विशेषताओं पर नहीं अपनी ममता और आत्मीयता पर निर्भर है । जिसकी जैसी अभिरुचि है उसे वैसे ही दृश्य, पदार्थ या व्यक्ति पसन्द आते हैं । संसार में सभी कुछ होता रहता है , सभी कुछ मौजूद है पर अपने को अच्छा वही लगेगा जिसमें अपनी अभिरुचि होगी । सुखानुभूति का अभिरुचि से, पसन्दगी से सम्बन्ध है । एक आदमी को दूध पसन्द है तो दूसरे को शराब प्रिय लगती है । यहाँ दूध और शराब के गुण-दोषों का प्रश्न नहीं, प्रश्न केवल अभिरुचि का है, जिसके कारण बुरी वस्तुएँ भी अच्छी लगने लगती हैं और अच्छी चीज बुरी प्रतीत होती हैं ।

इस संसार में वस्तुतः कोई भी वस्तु न तो आकर्षक है और न सुन्दर । यहाँ सब कुछ जड़ पंचायतों का परायण है, सर्वथा निर्जीव निष्ठुर और निस्सार है । प्रिय केवल आत्मा है । आत्मा की आभा ही अपना विस्तार जहाँ-जहाँ करती है, वही प्रियता, मधुरता, सुन्दरता, सरसता का अनुभव होता है । आत्मा जितनी बलवान् है उसी अनुपात से दूसरे पदार्थ या प्राणी अपने उपयोगी एवं सहायक रहते हैं । यह तथ्य सत्य से नितान्त परिपूर्ण है । मोटे रूप से इसे हर कोई जानता भी है किन्तु कैसा आश्चर्य है कि जानते हुए भी हम सब अन्जान बने हुए हैं । आत्मा के महत्व को भुलाये बैठे हैं और पदार्थों के पीछे पागल बने फिरते हैं ।

वस्तुओं की, व्यक्तियों की, साधनों की परिस्थितियाँ अपने सुख-दुःख का कारण मानी जाती हैं । उन्हीं के बदलने या सुधारने के लिए प्रयत्न किया जाता है। पर क्या कभी यह सोचा है कि अपनी आन्तरिक स्थित में हेर-फेर किये बिना बाह्य परिवर्तन हमारे लिए कैसे अभीष्ट परिणाम उपस्थित कर सकेंगे ?

इस कुरूप संसार में सुन्दरता कहाँ है ? यदि सौन्दर्य का अजस्र दर्शन करना हो तो अपनी अन्तरात्मा में सौन्दर्यानुभूति का विकास करना होगा, इस परिवर्तन के साथ ही हर वस्तु सुन्दर दीखने लगेगी । इस निर्जीव, निष्प्राण, निष्ठुर दुनियाँ में प्रेम कहाँ ? यदि प्रेम की प्यास है तो अपनी आत्मा में भरे हुए प्रेम को अमृत के चारों ओर बखेरना पड़ेगा। उसके छीटें जहाँ कहीं भी पड़ेंगे वहाँ सब कुछ प्रेमास्पद ही दीखने लगेगा । इस दुख रूप जड़ जगत में भोगने योग्य क्या है ? सब कुछ स्वाद रहित है । स्वाद तो अपनी इन्द्रियों में बसी हुई रसना में है । रसना नष्ट होने पर यहाँ स्वादिष्ट रह ही क्या जायेगा ? यदि स्वाद की लालसा हो तो अपनी शुद्ध रसना को जागृत करें हर पदार्थ रसमय लगने लगेगा ।

हम निर्धन क्यों रहें । अपने सीमित धन को ही अपना मानने की अपेक्षा इस धरती की सारी सम्पदा को अपने बाप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(परमात्मा) की ही जायदाद क्यों मानें ? हम मित्रों, पुत्रों का, स्वजनों का अभाव क्यों अनुभव करें ? इस सारी वसुधा को ही कुटुम्ब क्यों न मानें ? हम असहाय एवं दुर्बल क्यों रहें ? अपने आत्मा में भरे हुए अनन्त बल को ही विकसित क्यों न करें ? यह विकास जितना ही अग्रगामी होगा उतने अनुपात से संसार हमारे लिए सहायक एवं उपयोगी प्रतीत होने लगेगा ।

अपने अन्दर बहुत कुछ है । बहुत कुछ ही नहीं सब कुछ है । बाहर तो केवल भीतर की छाया मात्र है । इस अन्दर के बहुत कुछ को–सब कुछ को ढूँढ़ना, समझना, सुधारना, बनाना और बढ़ाना यही अध्यात्म है । अध्यात्म का महत्व अनन्त है । जो कुछ इस संसार में सुख, सौन्दर्य, सहयोग, प्रिय, मधुर, लाभ, सन्तोष, आनन्द एवं उल्लास दिखाई देता है, वह सब अपने भीतरी तत्व का ही छाया दर्शन है । छाया के पीछे न भागकर हम उद्गम का आश्रय ग्रहण करें यही अध्यात्म है, यही अध्यात्म का सन्देश है ।

आत्म-निर्माण के चार आधार

दृष्टिकोण के हेर-फेर के आधार पर ही जीवन की अन्य सब प्रक्रियाएँ बदलती हैं, इसलिए हमें अपनी आधार-नीति में आवश्यक परिवर्तन करने के लिए तैयार होना चाहिये । प्रारम्भिक बात यह है कि हमारा समय श्रम, धन और मस्तिष्क जितना शारीरिक उद्देश्यों की पूर्ति में, भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में लगता है, उतना ही आत्मिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये लगाने को तत्पर होना चाहिये । उतना न बन पड़े तो उससे आधा तो लगना ही लगना चाहिये ।

१–शरीर को नहीं आत्मा को प्रमुखता दें

हम आत्मा हैं, शरीर नहीं । आत्मा का स्वार्थ ही हमारा सच्चा स्वार्थ है । शरीर की सुविधा और मन की प्रसन्नता का ध्यान तो रखना चाहिये इतना नहीं कि आत्मा के हाथ पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ लगे ही नहीं । मनुष्य जीवन इसलिये प्राप्त हुआ है कि हम आत्मा की हित-साधना करते हुये अपना और दूसरे अनेकों का कल्याण करें । इसलिये जन्म नहीं मिला है कि इन्द्रियों की प्रसन्नता और मोह, लोभ, मद, मत्सर की पूर्ति में निरन्तर व्यस्त रहने के अतिरिक्त और कुछ सूझ ही न पड़े । आजीविका का उपार्जन आवश्यक है पर इतना नहीं कि इसके अतिरिक्त और किसी काम के लिये अवकाश ही न मिले ।

आमतौर से हम सब यही भूल करते हैं कि आजीविका उपार्जन, शरीर-सेवा और घर-गृहस्थी के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं । उन कार्यों को करना तो चाहिए पर वे लक्ष्य की पूर्ति में सहायक होंगे, इसी दृष्टि से करना चाहिये । उनके लिये इतना ही समय एवं मनोयोग देना चाहिये जितना कि आवश्यक है । स्वार्थ के अतिरिक्त कुछ परमार्थ की बात भी सोचनी चाहिये और उसके लिये भी श्रम, समय एवं मनोयोग का अंश नियमित रूप से लगाते ही रहना चाहिये ।

जिस प्रकार अपने शरीर, परिवार, सम्पत्ति एवं मान बढ़ाई का ध्यान रखकर अपने कार्य किये जाते हैं, अनेक प्रयत्न होते हैं और अनेक योजनाएँ बनाई जाती हैं, उसी प्रकार आत्म-कल्याण के लिये उपर्युक्त तथ्यों पर भी ध्यान दिया जाना आवश्यक है । स्वार्थ का ही नहीं परमार्थ का भी ध्यान रखा जाना चाहिये ।

जिस प्रकार सांसारिक कार्यों की चिन्ता रहती है और उनकी सफलता-असफलता में, लाभ-हानि में हर्ष-शोक होता है उसी प्रकार आत्मिक उद्देश्यों और निर्धारित कार्यक्रमों को पूरा करने की जब चिन्ता रहने लगे, तब समझना चाहिये कि अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ । यही आधारभूत परिवर्तन है । इसके सम्पन्न हो जाने पर उत्कृष्ट जीवन पालन के लिये जितने भी कार्यक्रम बनाये जाते हैं, जितने भी संकल्प किये जाते हैं वे सब पूरे होने लगते हैं । पर यदि मानसिक स्थिति ऐसी न हो, परमार्थ को एक मनोरंजन, प्रयोग, कौतूहल, समझकर किया जा रहा हो तो उससे कोई ठोस परिणाम नहीं निकलता । आवेश में उत्पन्न हुआ जोश-खरोश कुछ ही दिन में पानी के बबूले की तरह बैठ जाता है । समय न मिलने, आर्थिक तंगी या अन्य कोई अड़चन आने का बहाना करके लोग सत्कर्मों के लिए आरम्भ की हुई प्रक्रियाओं का परित्याग कर देते हैं । यदि यही अपनी स्थित हो तो समझना चाहिये कि अभी परिवर्तन कुछ नहीं हुआ ।

दृष्टिकोण में परमार्थ के महत्व को समुचित स्थान मिल जाना और उसके लिए समय एवं मन के लगने में प्रसन्नता अनुभव होना, निष्ठापूर्वक इस दिशा में प्रयत्नशील रहने की दृढ़ता जड़ पकड़ लेना, आत्म परिवर्तन का प्रथम चिह्न है ।

२–रूढ़ि को नहीं विवेक को अपनायें

दूसरा चिह्न यह है कि जीवन का क्रम अब तक जिस ढर्रे पर चलता चला आया है, उसका अन्य अनुयायी न रहकर विवेक के आधार पर अपनी गतिविधियों का निर्धारण करने का साहस उत्पन्न हो जाय । साहस के बिना कोई बड़ा काम नहीं हो सकता । जीवन परिवर्तन जैसी प्रक्रिया को कायर और डरपोक आदमी नहीं कर सकते । ढर्रे में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हेर-फेर करने की एक तो अपनी हिम्मत नहीं पड़ती, फिर कुछ साहस भी किया जाय तो घर के अन्य सदस्य एवं साथी लोग उपहास करते हैं, मजाक बनाते हैं । कमजोर आदमी झेंप जाते हैं और अपने को अपराधी या मूर्ख बनने जैसी झिझक में फँसा हुआ देखकर उठाये हुये कदम को वापिस ले लेते हैं ।

सौ मूर्खों के बीच रहते हुए किसी बुद्धिमान व्यक्ति को मूर्खतापूर्ण गतिविधियों का अपना लेना शोभा नहीं देता । स्कूल में सैकड़ों बच्चे पढ़ते हैं, वे तरह-तरह की नादानी करते रहते हैं । यदि अध्यापक उन्हीं की बातों में आ जाय और अपनी रीति-नीति छोड़कर उन्हीं की रुचि को देखकर चलने लगे तो उस अध्यापक का क्या गौरव रहेगा ? अस्पताल में ढ़ेरों मरीज रहते हैं, उनकी सलाहों और इच्छाओं को महत्व देकर यदि डॉक्टर अपना कार्यक्रम निर्धारित करे तो इसमें उसकी क्या समझदारी रहेगी ? चिरकाल से जो बुरा ढर्रा जो संसार में चल रहा है लोग तो उसी के अभ्यस्त हैं । अभ्यस्त नशेबाजों की तरह वे भी अपनी मानसिक दासता को छोड़ने के लिये तैयार नहीं होते । स्वार्थ और दुष्प्रवृत्तियों में मूर्खताओं और विडम्बनाओं में डूबी हुई दुनियाँ अपनी ओछी बातों को ही बढ़ा-चढ़ाकर महत्व देती है । छोड़ना तो दूर उसका जोरदार समर्थन भी करती है और जो लोग उन दोष-दुर्गुणों को हटाना चाहते हैं उनका विरोध करती है, व्यंग्य कसती है, मूर्ख बताती है और कई बार तो इसी कारण क्रुद्ध होकर पागलों की तरह ईंट मारने को भी उद्यत हो जाती है । ऐसे ही अज्ञानी लोगों से आज का जन समाज भरा पड़ा है । उनकी रुचि का उल्लंघन करने में कुछ अड़चनें आती हैं और उनका मुकाबला करना ही शूरवीरों का काम है । आदर्श की रक्षा के लिये विरोध और कष्ट सहने का साहस जब उत्पन्न हो जाय तो समझना चाहिये कि व्यक्ति के अन्तःकरण में आवश्यक परिवर्तन का दूसरा चिह्न भी उत्पन्न हो गया ।

३—सरलता, सादगी और सन्तोष

परिवर्तन का तीसरा चिह्न है सरलता, सादगी और सन्तोष । उच्च दृष्टिकोण के व्यक्ति इस तरह की वेश-भूषा और रहन-सहन की पद्धति पसंद नहीं करते जो आडम्बर, अपव्यय और छछोरपन से भरी हुई हो । खर्चीले और बनावटी जीवन को सादगी में बदल देने से बहुत समय और धन सहज ही बच जाता है । आर्थिक तंगी अनुभव करने और निरन्तर उसी की पूर्ति में व्यस्त रहने का एक ही कारण है—खर्चों का बहुत बड़ा होना । चौका-चूल्हा और पहनने-ओढ़ने का साधारण खर्च जितना होना चाहिए उससे कहीं अधिक खर्चा लोग आडम्बर और विलासिता की बातों में करते रहते हैं । उसकी पूर्ति में फिर निरन्तर व्यस्त और चिंतित रहना पड़ता है । ऐसे लोग परमार्थ, आत्म-निर्माण पारिवारिक उत्तरदायित्व, लोक-सेवा आदि के लिए समय कहाँ से निकाल पायेंगे । जिसके पास पेट धन्धों और आडम्बरों से फुर्सत नहीं, उसे जीवन लक्ष्य की ओर ध्यान देने और उसके लिए कुछ करते रहने की इच्छा ही क्यों होने लगी ।

सादगी, सन्तोष और सरलता का जीवन बिताने से, सांसारिक उन्नति की बड़ी-बड़ी महत्वाकांक्षाएँ न रखने से शारीरिक और मानसिक अवकाश मिलने लगता है । चिन्तायें बहुत हल्की हो जाती हैं और समस्याएँ सुलझी हुई दीखती हैं । ऐसे ही व्यक्ति लोकहित और आत्म-कल्याण की दिशा में कुछ कर सकने में समर्थ हो सकते हैं । जीवन को लौकिक आडम्बरों से भरना हो तो स्वभावतः आत्म-कल्याण एवं परमार्थ के कार्यों के लिये कुछ ठोस काम करना होतो सांसारिक दृष्टि से साधारण काम चलाऊ और सन्तोतो-दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा । जिन्होंने जीवन का सदुपयोग करना निश्चय किया हो, उन्हें सादगी की बात भी अपना लेनी चाहिए । श्रेयार्थी को यह तीसरा परिवर्तन भी करना ही होता है । बहुत कमाने की अपेक्षा यह बहुत सत्कर्म करने की बात ही सोचता है ।

४—दया, प्रेम और करुणा

परिवर्तन का चौथा चिह्न है प्रेम, करुणा, दया, क्षमा और उदारता की अनुभूतियों का अन्तःकरण में बढ़ते चलना । अपने ही सुख की बात सोचना दूसरों के प्रति निष्ठुरता का व्यवहार करना, दूसरे के दुःख-दर्द से द्रवित न होना और पत्थर जैसा हृदय लेकर केवल भोग और संग्रह की ही बात सोचते रहना आसुरी प्रकृति का परिचायिक है । मानवता का प्रतीक करुणा ही कही गई है । दूसरों का दर्द जिन्हें अपना दर्द लगता है, और दूसरों को ऊँचा उठाने में जिन्हें आनन्द आता है, उन्हें ही मनुष्य कहना चाहिए । सेवा, उदारता और दया आचरण में छलकते रहते हैं, उन्हें सज्जन ही कहा जा सकता है । दुष्टता और निष्ठुरता केवल विविध-विधि भोग भोगते रहने और अधिकाधिक संग्रह करते चलने की प्रेरणा देती है । इसे बदलकर व्यक्ति यदि त्याग एवं संयम को अपनावे और परहित में अपनी सामर्थ्य का उपयोग करने लगे तो समझना चाहिये कि निर्माण और परिवर्तन की मंजिल पर प्रगति हो रही है । अन्यथा सिद्धान्तवाद की बातें बढ़ा-चढ़ाकर बताने वाले और व्यवहार में पूरे कंजूस और निष्ठुर रहने वाले धूर्त तो घर-घर में भरे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़े हैं । इस धूर्तता का प्रदर्शन तो अपने को सज्जन सिद्ध करने के लिए कोई भी करता रहता है ।

दान को मानव जीवन का प्रधान धर्म माना गया है । दया की भावनात्मक प्रवृत्ति का प्रत्यक्ष स्वरूप दान ही है । यों दान की सत्प्रवृत्ति का आज दुरुपयोग ही अधिक होता है । भोले लोगों को धूर्तों द्वारा दान-धर्म के नाम पर ही ठगा जाता है और उससे बुराइयाँ भी बढ़ती हैं, यह दोष दान का नहीं अविवेक का है । विवेकपूर्वक गिरे हुए को उठाने और पीड़ितों की सहायता करने के लिए कुछ दिया जाता रहे तो इससे आत्मा को सन्तोष होता है । उसका उत्साह और बल बड़ता है । सत्प्रवृत्तियाँ भी संसार में दान-धर्म के आधार पर ही जीवित रहती और पनपती हैं। परिवर्तित दृष्टिकोण का व्यक्ति कितना ही गरीब क्यों न हो, संसार को उत्कर्ष की ओर अग्रसर करने के लिए उसके दैनिक जीवन में दान के लिए कुछ न कुछ स्थान रहता ही है । शरीर से, बुद्धि से, धन से, भावना से वह दूसरों के हित साधन में कुछ न कुछ त्याग करता ही रहता है ।

तुच्छता त्यागें-महानता अपनायें

त्याग में एक बहुत बड़ा त्याग है-आलस्य, प्रमाद और दीर्घसूत्रता को छोड़ देना । समय की बर्बादी, मन्दगति से काम करना, आलस्य में पड़े रहना, अपनी आत्मा के साथ शत्रुता बरतने के समान है । दया और प्रेम में हित साधना की भावना रहती है । जो दूसरों के लिए दया, भावना रखेगा, वह अपने हित और कल्याण की बात भी सोचेगा । जो इस प्रकार सोचने लगा उसे जीवन की बहुमूल्य सम्पत्ति का एक क्षण बर्बाद होता हुआ भी सहन न होगा । उसे आलस्य को छोड़ने और श्रमशीलता अपनाने के लिए तत्पर होना ही होगा ।

उदार, त्यागी, दयालु, सेवाभावी, और परिश्रमी व्यक्ति ही इस संसार में महापुरुष बन सकेंगे । हम निकृष्ट जीवन में जीते रहें या उत्कर्ष की ओर अग्रसर हों । यह फैसला करने के साथ-साथ अपने जीवन परिवर्तन की बात को भी सम्बद्ध कर लेना चाहिए । यदि श्रेष्ठ जीवन की कल्पना मात्र ही करनी हो, मनमोदक ही खाने हों और वस्तुतः कुछ न करना हो, तो जैसा क्रम चलता आ रहा है उसे ही चलने दिया जा सकता है । पर यदि वस्तुतः युग परिवर्तन करना हो तो सर्वप्रथम अपने आपको बदलने का शुभारम्भ करना ही चाहिए । इस परिवर्तन के चार चिह्न हैं (१) शारीरिक स्वार्थों के स्थान पर आत्मिक स्वार्थ को महत्व देना (२) ढर्रे को छोड़कर विवेकपूर्ण गतिविधियाँ अपनाने का साहस संग्रह करना (३) सन्तोष और सादगी को अपनाना (४) दया, उदारता और सेवा कार्यों में प्रसन्नता अनुभव करना । यह तथ्य यदि व्यवहारिक जीवन में स्थान प्राप्त करने लगे, तो समझना चाहिए कि हम बदले और अब संसार को बदल सकने की क्षमता हमें प्राप्त हो चली । इस क्षमता के सम्पादन में हम सब संलग्न हों तो अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने की समस्या सुलझेगी ।

आदर्श और आस्था

अस्थिर विचार और डाँबाडोल सिद्धान्तों के मनुष्य इस संसार में कम नहीं हैं । चोरी न करने का उपदेश करने वाले, अस्तेय की महिमा गाते-गाते न थकने वाले, लोगों में से कितने ही ऐसे मिलते हैं जो मौका पाते ही चोरी करने में नहीं चूकते । ब्रह्मचर्य के समर्थक होते हुए भी व्यभिचारत, ईश्वरसर्व-व्यापकता का बखान करते-करते न थकने वाले मन्दिरों में बैठकर गजब ढाते हमने देखे हैं । धर्म का महत्व मानने वालों को झूठी गवाही देते हुए, अपहरण करते हुए, अनीति में प्रवृत्त होते हुए हमने देखा है । गीता का पाठ करके आत्मा की अमरता को सौ-सौ बार दुहराने वाला जब मौका पड़ता है, तो मरने का जोखिम उठाना हो तो दूर मामूली चोट खाने से भी बुरी तरह डरते हैं । हमारे परिचित एक पंडितजी १७ वर्ष से गीता की कथा कहने का पेशा करते हैं, कथा से उन्हें काफी धन मिलता है । अच्छी, खासी पूँजी उनके पास जमा हो गई है । एक बार उनके घर पर डाकू चढ़ आये--रुपया लूटने के साथ उन्होंने पंडितजी की धर्म-पत्नी और सयानी लड़की के साथ दुराचार भी किया । पंडितजी जी डाकुओं से आँख बचाकर एक चारपाई की आड़ में छिपे बैठे थे और यह सब दृश्य देख रहे थे । शारीरिक कष्ट के भय से डाकुओं का विरोध करने की हिम्मत न पड़ी और उन खून खौला देने वाले दृश्यों को चुपचाप देखते रहे ।

यदि सचमुच पण्डितजी को गीता की शिक्षा का ज्ञान होता और आत्मा की अमरता पर सच्चे हृदय से विश्वास करते होते तो कर्तव्य की पुकार को इस प्रकार न दबा देते । मृत्यु से इतना न डरते । हम यह नहीं कहते कि वे गीता को झूठा मानते हैं या अमरता की बात छल से कहते हैं । जहाँ तक विचारों का ताल्लुक है, वे अपने विचारों के प्रति सच्चे हैं परन्तु विचारों के साथ वह दृढ़ विश्वास नहीं था जिसको श्रद्धा कहा जाता है । विचार तो ऐसा तत्व है जो जरा-सा दबाव पड़ने पर आसानी से बदल जाता है। कोई विद्वान या बुद्धिमान मनुष्य तक प्रमाण और बहस के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आधार पर आपको हरा सकते हैं, उनकी युक्तियाँ और प्रमाण शैली ऐसी जोरदार हो सकती है कि आप निरुत्तर हो जावें, हार मान लें और ऐसा अनुभव करने लगें कि शायद मैं गलती पर हूँ । तब यह बहुत सरल है कि अपने विचार बदल दें । यदि दुर्भाग्य से परस्पर विरोधी विचार वाले बहुत से विद्वानों के बीच में रहने का प्रसंग आ पड़े और परस्पर विरोधी तर्कों को सुनें तो आपको रोज विचार बदलने के लिए विवश होना पड़ सकता है । उस स्थिति में किसी निश्चित नतीजे पर पहुँचना कठिन होगा, बुद्धि भ्रम की अस्थिरता बढ़ जायगी । इसी प्रकार यदि कोई भारी कष्ट,पीड़ा, आघात, व्यथा, वेदना सामने आवे तो उनके दबाव से विचारों को पलट सकते हैं । चोरों को विचार होता है कि पकड़े जाने पर हम अपने साथियों का नाम प्रकट न करेंगे पर राजदण्ड की यन्त्रणा से घबराकर कइयों को अपना विचार बदलना पड़ता है और वे अपने साथियों का नाम प्रकट कर देते हैं । लोभ का दबाव कुछ ऐसा ही है, रुपये का लालच, रूप सौंदर्य का लालच, ख्याति का लालच, मनोरंजन का लालच, बड़े-बड़े विचारवानों को डिगा देता है । अपनी पत्नी और पुत्री का अपमान देखते हुए भी शरीर कष्ट के भय से यदि पंडितजी के अमरता के विचार क्षण भर में विलीन हो गये हों तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है ।

किसी प्रकार के विचार रखना ही इसके लिए पर्याप्त नहीं है कि यह व्यक्ति इस प्रकार के कार्य भी करेगा । बहुत से मनुष्य एक प्रकार के काम में लगे हुए हैं पर विचार इसके विपरीत दूसरे प्रकार के रखते हैं । बाहर से आचरण कुछ और करते हैं भीतर से विचार कुछ और रखते हैं । कार्य और विचारों का एक न होना इस बात का प्रमाण है कि विचार बहुत ही उथले, निर्बल एवं अपूर्ण हैं । दिमाग तक ही उनकी प्रगति है, अन्तःकरण तक वे प्रवेश नहीं पा सके हैं । ऐसे ही लँगड़े-लूले, आधे-अधकचरे विचार विश्वासों को लोभ मन में भरे फिरते हैं । जब मौका पड़ता है, परीक्षा का अवसर आता है तो झट फिसल जाते हैं, जैसी हवा चलती है वैसी ही पीठ कर लेते हैं अभी यह कहते हैं अभी वह कहने लगते हैं । यह अस्थिरता मनुष्य की मानसिक आवारागर्दी प्रगट करती है, ठीक वैसी ही जैसी शारीरिक स्थिति के कारण दफा ३०६ ताजीरात हिन्द के अनुसार जेलखाने की हवा खानी पड़ती है ।

यदि मनुष्य का अपना निजी कोई विश्वास न हो, निजी आधार न हो तो हवा के रूख के साथ इधर-उधर उड़ता फिरेगा और जीवन में कोई कहने लायक उन्नति न कर सकेगा । एक मील पूरब को चले फिर लौट पड़े, आधा मील पश्चिम को आये, फिर विचार बदला दो मील उत्तर को बढ़े, फिर समझ में आया कि पश्चिम को चलें, डेढ़ मील चलकर वहाँ से भी रुक गये और किसी और तरफ चलने की सोचने लग गये । इस पद्धति से महीनों चलते रहने वाला कोई निश्चित मन्जिल तय कर न सकेगा, किन्तु जो लगातार एक ही दिशा में चलता रहता है वह एक ही महीने में काफी मन्जिल पार कर लेगा । जिसके सुदृढ़ विश्वास हैं, परिपक्व निश्चय हैं, अपने स्थिर सिद्धान्तों पर आरूढ़ रहता है, वह समाज में अपना एक नियत स्थान बना लेता है । मजबूती का आदर होता है । जो जिन विश्वासों पर मजबूती के साथ डटा हुआ है उन्हें उनके द्वारा ही पर्याप्त लाभ हो सकता है । दृढ़ता में शक्ति है--और शक्तिशाली पुरुष वीरों की तरह सम्मानित होता है ।

महापुरुषों में सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वे अपने विचारों पर पूरी निष्ठा के साथ दृढ़ रहते हैं, अपने उद्देश्यों के प्रति उन्हें पूरी श्रद्धा होती है । उस श्रद्धा से, निष्ठा से, प्रेरित होकर कार्य करते हैं और कितने ही बड़े कष्ट एवं प्रलोभन सामने आने पर भी विचलित नहीं होते । अपनी निष्ठा के लिये सर्वस्व की बाजी लगा देते हैं । इस प्रामाणिकता के कारण लोग उस पर विश्वास करते हैं, जिसके ऊपर विश्वास किया जाता है वह सचमुच महान् है उसकी महानता चिरकाल तक स्थिर रहेगी, कद्र-दानी का संसार में से लोप नहीं हो गया है । दृढ़ता का बहुमूल्य रत्न सदैव उपेक्षित नहीं पड़ा रहता उसे पहचानने वाले, कदर करने वाले, जौहरी मिल ही जाते हैं । कई महापुरुषों के विचार कुछ त्रुटिपूर्ण थे तो भी उनकी निष्ठा, श्रद्धा और दृढ़ता ने उन्हें प्रातस्मरणीय और पूज्यनीय बना दिया ।

महाराणा प्रताप का जंगलों में फिरते रहना, भामाशाह का दान, हकीकतराय का फाँसी पर चढ़ा जाना, बन्दा बैरागी का खौलते तैल के कढ़ाव में उबलना, राम का वनवास, हरिश्चन्द्र का स्त्री-पुरुषों का बेचना, दधीचि का अस्थिदान, मोरध्वज का बलिदान, रानी पद्मिनी का अग्नि दाह, सुकरात का विषपान, ईसा का क्रूसारोहण, यह सब गाथायें निष्ठा के ऊपर अवलम्बित हैं । अपने विश्वासों की रक्षा करने के लिए सर्वस्व की बाजी लगा देना श्रद्धालु आत्माओं का ही काम है । आज के अस्थिर विश्वास लोगों को सामने ऐसे अवसर आवें तो वे चट बदल जावें । बालक हकीकतराय ने मृत्युदण्ड को पसन्द किया पर हिन्दू धर्म छोड़ने को तैयार न हुआ, आज का कोई चालाक लड़का होता तो सोचता जान गँवाने की बजाय तो मुसलमान हो जाना ठीक है-- वह चट मुसलमान हो जाता । प्राचीन समय में लोग अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वचन पालन के लिए, धर्म रक्षा के लिए, सिद्धान्तों की पुष्टि के लिये बड़ी से बड़ी कुर्बानी करने को तैयार रहते थे, आज कूटनीति का, चालबाजी का, अधिक लाभ का व्यापार है। फैशन की तरह विचारों को धारण करते हैं और जब वे चाहते हैं सफाचट कर देते हैं । बड़े-बड़े जोरदार व्याख्यान देकर साम्यवाद का महत्व समझाने वाले स्वयं पूँजीवाद के केन्द्र बने हुए हैं, धर्म-धर्म पुकारने वाले स्वयं अधर्म के संचालक हैं, यह उदाहरण बताते हैं कि लोगों ने विचारों को फैशन से अधिक महत्व नहीं दिया है ।

आज वे शंकराचार्य कहाँ हैं, जो वैदिक धर्म की रक्षा के लिए प्राण हथेली पर रखकर निकल पड़े और नन्हीं सी जान को विरोधी अपार जनसंख्या के सामने खड़ा करें ? आज वे दयानन्द कहाँ हैं जो मेवाड़ की रत्नजटित महन्ती को अस्वीकार करके दर-दर अपमान सहते फिरें और अन्त में विषपान करके प्राण त्यागें । आज का प्रोफेसर मोटी तनुख्वाह के बदले कुछ घण्टे लैक्चर देकर छुट्टी पाता है । उन दिनों ऋषि लोग रूखा-सूखा अन्न खाकर अपनी असाधारण विद्या, शिष्यों को घोट-घोटकर पिलाते थे । यदि चाहते तो वे ऋषि लोग भी अपनी विद्या के बदले में पैसा कमा सकते थे । परन्तु उनके सामने अपने कर्तव्य धर्म का सिद्धान्त था जिसे पालन करने के लिए गरीबी का जीवन स्वीकार करना मामूली-सी बात थी ।

अध्यात्मवाद के आचार्यों ने सदैव इस बात पर जोर दिया है कि मनुष्य श्रद्धालु बने । काफी सोच-समझकर, पर्याप्त छान-बीनकर, किन्हीं सिद्धान्तों को स्वीकार किया जाय। वे विश्वास इतने दृढ़ होने चाहिए कि परीक्षा और कठिनाई के समय भी ठहर सकें, उनके लिये कुछ त्याग और बलिदान भी किया जा सके ।

अपनी महानता में श्रद्धा रखिये, अपनी पत्नी के प्रेम में विश्वास कीजिये, बालकों की निष्कपटता पर भरोसा रखिये, माता-पिता और गुरुजनों के वात्सल्य पर यकीन कीजिये । इस दुनियाँ में पाप की अपेक्षा पुण्य अधिक हैं । अधर्म से धर्म ज्यादा है । भलाई से बुराई कम है, प्रकाश से अन्धकार न्यून है ऐसी मान्यतायें बनाइये । अविश्वास और आशंका को कम कीजिए, प्रियजनों की सचाई पर भरोसा बढ़ाइये ।

आत्मीयता का अमृत

जो भी वस्तुयें आपके पास मौजूद हैं, उनमें से कुछ आपको अच्छी लगती हैं कुछ बुरी, कुछ की ओर ध्यान भी नहीं जाता । जो अच्छी लगती हैं उनसे प्यार करते हैं, जो बुरी लगती हैं उनसे घृणा करते हैं जो उपेक्षित हैं उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते । आप चाहते हैं कि प्रिय वस्तुयें सदा अधिक मात्रा में आपके पास रहें, वे आपको सुख देती हैं, सुखदायक वस्तुओं की समीपता सभी को पसन्द है ।

आइए, अब यह विचार करें कि वस्तुओं को अच्छा लगने का क्या कारण है ? यह कहना ठीक नहीं है, गुणवान् वस्तुएँ स्वभावतः प्रिय लगती हैं । यह अधूरी व्याख्या है । सच बात यह है कि जिस वस्तु में जितनी मात्रा में अपनापन, आत्मभाव, स्वार्थ-भाव है, वह उसी परिमाण में प्रिय लगती है, गुण रहित हो तो भी अच्छी लगती है । आपका अपना छोटा सा बालक है, वह सिर्फ रोना ही जानता है, दिन को रोता है, रात को बार-बार रोकर नींच उचटा देता है, गोदी में लें तो मल मूत्र में साफ कपड़ों को खराब कर देता है । उसमें एक भी गुण नहीं, दुर्गुण बहुत हैं, तो भी आप उसके लिये कपड़ों की, दूध की, दवा-दारू की खर्चीली व्यवस्था करते हैं, कष्ट उठाते हैं, फिर भी उसे प्यार करते हैं । कारण यह है कि उस बालक में आपका आत्म-भाव है, अपनापन है । दूसरो के बच्चे यदि आपके ऊपर टट्टी कर दें तो यह बुरा लगेगा । पडौसी का गोरा-सलौना बच्चा अपने काले-कलूटे बच्चे से अच्छा थोड़े ही लगेगा ? यहाँ सौंदर्य या गुण की प्रमुखता नहीं है अपनेपन का महत्व है ।

एक मकान के आप मालिक हैं, वह बहुत अच्छा लगता है, उसकी अच्छाई की प्रशंसा करते नहीं थकते । टूट-फूट, मरम्मत, सजावट का खूब ध्यान रखते हैं । संयोगवश यह मकान बिककर दूसरे के हाथ में चला जाता है, अब आप निश्चिन्त हो गये, टूट-फूट से कोई मतलब नहीं, आज टूट जाय, चाहे हजार वर्ष खड़ा रहे । कल तक जो मकान इतना प्रिय था, आज ही उससे सारा सम्बन्ध छूट गया । इतनी शीघ्र इतनी अधिक विरक्ति का कारण क्या है ? कारण यह है कि कल तक उसके साथ जो अपनापन चिपटा हुआ था, आज नहीं रहा । कल जिस रुपयों से भरी थैली को अत्यन्त उत्साह से छाती से चिपटाये रहते थे, वह आज दूसरे व्यापारी के पास चली गई, यदि वे रुपये अब चोरी चले जायँ तो आपको कुछ भी कष्ट न होगा । उन रुपयों को बदले में जो माल खरीदा है वह अब प्यारा लगने लगने लगा, कल वह माल भी पडौस में पड़ा था, तब उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते थे, आज उसको सुरक्षित रखने के लिये चोटी का पसीना ऐड़ी तक बहा रहे हैं, माल वही कल था, वही आज है । अन्तर केवल इतना हुआ कि कल वह पराया था, आज अपना हो गया । अपनापन ही तो अच्छा लगने का कारण है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नित्य कई आदमी मरते हुए आप देखते हैं, मरघट में आये दिन चितायें जलती रहती हैं, इसका जरा भी प्रवाह नहीं होता, एक उपेक्षा भरी दृष्टि से उस शव-संस्कार को देखकर अपने काम में लग जाते हैं । पर जब अपना कोई प्रियजन मरता है, तब तो फूट-फूटकर रोते हैं, आँसुओं की झड़ी नहीं रुकती, दुनियाँ सूनी दीखती है, भूख-प्यास उड़ जाती है, दुःख शोक की व्याकुलता में चारों ओर अँधेरा छा जाता है । पडौसी का भाई मरा था, तब चेहरे पर जरा भी शिकन नहीं आई थी,पर आज इतनी व्यकुलता क्यों ? मरते तो सभी एक समान हैं, पर एक की मृत्यु का जरा भी शोक न हो, दूसरे के लिये इतनी वेदना क्यों ? कारण यह है कि जिस व्यक्ति में आत्म-भाव सम्मिलित कर रखा गया था, वह प्रिय था, प्रिय के विछोह में ही तो दुःख होता है । अपने घर पुत्र पैदा हुआ तो खुशी से फूले नहीं समाते, पडौसी के घर बच्चा जन्मे तो कुछ प्रयोजन नहीं । यह स्वाभाविक बात है । कुछ शिकायत या भर्त्सना के रूप में यह पंक्तियाँ नहीं लिखी जा रही हैं । हमारा प्रयोजन केवल यह बताने का है कि गुण-अवगुण के कारण ही हम वस्तुओं को प्यार नहीं करते वरन् प्रमुख कारण उनमें आत्म-भाव का, अपने स्वार्थ का समन्वित होना है । जिससे जितना स्वार्थ है, वह उतना ही अधिक प्रिय लगेगा । शोक का कारण भी यही है जिसके अभाव में अपनी जितनी क्षति मालूम पड़ेगी, उसी मात्रा में उसके लिए वेदना होगी ।

उपन्यास पड़ने में वह पात्र आपको पसन्द आता है, जिसके साथ मन ही मन आत्मीयता की एक पतली-सी डोरी बाँध लेते हैं । उस पर जब विपत्ति पड़ती है या सफलता पाता है, विजयी होता है तो आपका हृदय भी उसी प्रकार की भावनाओं से तरंगित हो उठता है । सिनेमा, नाटक, खेल देखने जाते हैं–जिस अभिनेता के साथ किसी कारण वश आत्मभाव का पतला तार बँध जाता है, उसकी हार-जीत, आशा-निराशा के साथ आपका मन भी तरंगित होता है । मनोरंजन, दिलचस्पी, भावान्दोलन का रहस्य यही है । यदि किसी अभिनेता या पात्र के साथ एकीभाव स्थापित न कर सकें तो उस खेल के देखने या उपन्यास के पढ़ने में आपको जरा भी मजा न आवेगा । दर्शनीय स्थानों को देखकर कुछ व्यक्ति तो बहुत प्रसन्नता अनुभव करते हैं, तरंगति होते हैं, परन्तु कुछ ऐसे भी होते हैं जिन पर उन दृश्यों का जरा भी असर नहीं पड़ता । कारण यह है कि उस सुन्दर दर्शनीय स्थान में जो व्यक्ति एक मानसिक सम्बन्ध जोड़ता है, स्थापित करता है, उस वातावरण की अनुभूति अपने में आकर्षित करता है, उसे आनन्द आता है । जो ''हमें क्या मतलब, हमको क्या लाभ'' ऐसा सोचकर देखता है, उसे कुछ भी विशेषता दिखाई नहीं पड़ती । किसी अद्भुत दृश्य को वह कौतूहल की दृष्टि से देख तो सकता है, परन्तु भावुक-हृदय व्यक्ति उस दृश्य से जो आनन्द ग्रहण करता है, वह दूसरी ही बात है ।

तत्व स्थिति यह है–संसार की एक भी वस्तु न तो प्रिय है, न अप्रिय । किसी कारणवश आकर्षित होकर जब उसमें आत्मभाव जोड़ दिया जाता है तो वह प्रिय लगने लगती है । जिससे स्वार्थ का विरोध पड़ता है, वह बुरी लगती है और जिससे प्रत्यक्ष का अप्रत्यक्ष कुछ भी सम्बन्ध नहीं, उसके प्रति उपेक्षा रहती है । यह प्रिय और अप्रिय का दार्शनिक विवेचन है ।

आप चाहते हैं कि हमारे चारों ओर प्रिय ही प्रिय तत्त्व जमा रहें, तो इसका एक ही उपाय है कि आत्म-भाव को उन सबसे सम्बन्धित कर दें । सोये हुये, निष्क्रिय बल्बों के रहते हुए भी अन्धकार बना रहता है, पर जैसे ही बिजली की धारा उन बल्बों तक पहुँची, वैसे ही वे क्षण भर में दीप्तिमान हो उठते हैं और अपने प्रकाश से निकटवर्ती स्थानों को जगमगा देते हैं । अपने निकटवर्ती लोगों पर यदि आप आत्मीयता की भावनायें आरोपित कर दें तो वे सब आपको प्रिय, आनन्ददायक, मनोहर और प्रसन्नता बढ़ाने वाले प्रतीत होने लगेंगे । जो लोग अल्पज्ञ और अपराधी हैं, वे भी कपड़ों पर मल-मूत्र त्याग देने वाले अपना बालक के समान आनन्दप्रद ही लगेंगे । क्रोध, चिड़चिड़ाहट, द्वेष, घृणा की जो अग्नि शिखायें दिन-रात मन में जलती रहती और खून सुखाती रहती हैं, वे अनायास ही शान्त हो जावेंगी ।

प्रिय वस्तुओं का चारों ओर एकत्रित रहना–यही तो स्वर्ग है । स्वर्ग की बड़ी महिमा गाई गई है, कथा-पुराणों में उसका बहुत विस्तृत वर्णन मिलता है, उस सारे वर्णन का सार यह है कि वहाँ सब प्रिय ही वस्तुएँ हैं, जैसे स्थानों में रहना चाहते हैं, वह सब वहाँ मौजूद हैं । ऐसा स्वर्ग आप स्वयं बना सकते हैं, इसी जीवन में उसका आनन्द लूट सकते हैं । दूर जाने की जरूरत नहीं, जिस स्थान पर रह रहे हैं, वहीं उसकी रचना हो सकती है । क्या आप सचमुच ऐसा चाहते हैं ? क्या अपनी आँखों से इस जीवन में ही उस स्वर्ग की झाँकी करने के लिए सचमुच उत्सुक हैं । यदि हैं, तो सच्चे हृदय से तैयार हो जाइये । अपने आत्मभाव को संकुचित मत रखिये वरन् उसे निकटवर्ती लोगों के ऊपर बिना भेदभाव के बखेर दीजिए । विद्युत धारा का स्पर्श होते ही समस्त सम्बन्धित जन प्रेमपात्र बन जायेंगे, प्रिय लगने लगेंगे, उन प्रियजनों के बीच रहकर आप स्वर्ग जैसा आनन्द अनुभव करेंगे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्बन्धित लोगों के लिए अपना समझिये, उनमें अपनापन रखिये । इस प्रकार उनमें यदि कुछ दोष होंगे, तो भी वे प्रिय रूप में दृष्टिगोचर होंगे । अपनों के लिए स्वभावतः उनके दोषों को छिपाने और गुणों को प्रकट करने की वृत्ति रहती है, अपने प्यारे पुत्र के दोषों को कौन पिता प्रकट करता है । वह तो उसी प्रशंसा के ही पुल बाँधता रहता है । दुर्गुणी बालकों को कोई न तो मार डालता है और न ही जेल पहुँचा देता है वरन् सारी शक्तियों के साथ यह प्रयत्न किया जाता है कि किसी सरल उपाय से उसके दुर्गुण दूर हो जायँ या कम हो जायँ । यदि ऐसी ही वृत्ति अपने परिजनों के साथ रखें तो उनके अन्दर जो बुरे तत्व वर्तमान हैं, वे घट जायेंगे, कम से कम आपके लिए वे निस्तेज ही हो जायेंगे । डाकू, हत्यारे, ठग, व्यभिचारी आदि क्रूरकर्मी लोग भी अपने स्त्री, पुत्र, भाई, बहिन आदि के साथ अपने पैशाचिक स्वभावों का उपयोग नहीं करते । सिंह अपने बाल-बच्चों को नहीं फाड़ खाता, इसी प्रकार जिनके प्रति आप आत्म-भाव रखते हैं, वे भी कम से कम आपके लिए तो दुखदायी नहीं रहेंगे । महात्मा इर्मसन कहा करते थे कि "यदि मुझे नरक में रखा जाय तो मैं अपने सद्गुणों के कारण वहाँ भी स्वर्ग बना लूँगा ।" आप में यदि विवेक हो तो वे कुटुम्बी जिनके साथ आपका दिन-रात कलह होता है, आसानी से प्रेमपात्र बन सकते हैं ।

प्रेम एक ऐसा गोंद है जो टूटे हुए हृदय को जोड़ता है, बिछुड़ों को मिलाता है, विद्वेष को शान्त करता है । शिकायतों को दूर करता है । अपने मनोभावों को वाणी या आचरण द्वारा दूसरे पर इस प्रकार प्रकट करें जिससे उसे यह विश्वास हो जाय कि आपका आत्म-भाव सच्चा है, बिना किसी खुदगर्जी या मायाचार के अपनेपन की भावना रखते हैं तो विश्वास कीजिये कि वह आपका गुलाम हो जायेगा । संघर्ष और कलह के लिये फिर कोई गुंजायश ही न रहेगी । दोषों से रहित व्यक्ति इस संसार में एक भी नहीं है । काम, क्रोध, मोह, लोभ की वृत्तियाँ न्यूनाधिक अंशों में हर एक मन में बस रही हैं, किसी की एक बुराई को देखकर उस पर आग-बबूला हो जाना, सब बुराइयों की खान मान लेना, घृणास्पद मानना उचित नहीं । आप निष्पक्षता के साथ तलाश करेंगे तो उसमें बुराइयाँ मिलेंगी पर बुराइयों से अच्छाइयों की मात्रा अधिक होगी । क्या आप ऐसा नहीं कर सकते कि इन अच्छाइयों से आनन्दित हों, उन्हें प्रकट करें और प्रोत्साहित करके आगे बढ़ावें ? क्या आप ऐसा नहीं कर सकते कि बुराइयों को कुछ देर के लिए दर-गुजर कर जायँ, उन्हें दफना दें, घटावें और सुधारने का प्रयास करें ? ऐसा नहीं कर सकते तो इसका एकमात्र कारण यह है कि उस व्यक्ति के प्रति आपका सच्चा आत्मभाव नहीं है ।

"लोग क्या करते हैं"--इस आधार पर यदि सुखी-दुःखी होने की आदत डालेंगे तो सदैव दुःख ही दुःख भोगना पड़ेगा, क्योंकि यह सम्भव नहीं है कि सब लोग आपकी मन-मर्जी के बन जावें और वैसे ही आचरण करें जैसे कि आप चाहते हैं । "हम क्या करते हैं"--इस आधार पर यदि सुखी होने की आदत डालेंगे तो सदैव सुख ही सुख सामने पड़ेगा, क्योंकि अपने को मन-मर्जी का बनाना अपने हाथ में है । इसे कौन रोक सकता है कि हम दूसरों को अपना समझें, उन्हें प्यार करें और उस प्यार एवं अपनेपन के कारण जो आनन्द उपजे उसका उपभोग करें । स्वर्ग निर्माण की यही कुंजी है । अपने प्रेम-भाव के कारण बहुत अंशों में दूसरों का व्यवहार नरम, मधुर, सुखकर हो जाता है । कदाचित् कहीं अपवाद उपस्थित हो, किसी ऐसे जड़ से पाला पड़े जो उलटा ही उलटा चलता हो तो उसकी गतिविधियों को उपेक्षा की दृष्टि से देखिये--उसे अपनी मौत मरने दीजिए, आप तो अपने कर्तव्य में प्रसन्न रहिए । संसार में अनेक दुष्टात्मा भरे पड़े हैं उनके होने से आपको कुछ बड़ा भारी शोक-सन्ताप नहीं होता, फिर क्या कारण है कि अमुक व्यक्ति के दोषों का दण्ड आप अपने को दें । दूसरों के बुरे विचार और कार्यों से अपने को प्रभावित मत होने दीजिये । सहनशीलता और समझौते की नीति से काम लीजिये । बदला या कर्ज चाहने की इच्छा छोड़कर विशुद्ध प्रेम का, आत्म-भाव का प्रसार कीजिये, इससे आप अपने लिये एक स्वर्ग की रचना बड़ी आसानी से कर सकेंगे ।

आध्यात्मिक साधना में अहंभाव का विस्तार करना यह तत्व प्रधान रूप से विद्यमान है । आत्मोन्नति यही तो है कि अपनेपन के दायरे को छोटे से बड़ा बनाया जाय । जिनका अपनापन केवल अपने शरीर तक ही है, वे कीट, पतंग नीची श्रेणी के हैं जो अपनी सन्तान तक आत्म-भाव को बढ़ाते हैं वे पशु-पक्षी उनसे कुछ ऊँचे हैं, जिनका अपनापन कुटम्ब तक सीमित है वे असुर हैं, जिनका अहंकार अपनी संस्था राष्ट्र तक है वे मनुष्य हैं, जो समस्त मानव जाति को अपनेपन से ओत-प्रोत देखते हैं वे देवता हैं, जिनकी आत्मीयता चर-अचर तक विस्तृत हैं वे जीवनमुक्त परम सिद्ध हैं । जीव अणु है, छोटा है, सीमित है । ईश्वर महान् है, विभु है, व्यापक है । जब जीव ईश्वर से तद्रूप होने के लिए आगे बढ़ता है तो वह भी महानता विभुता, व्यापकता के गुणों से समन्वित होने लगता है । जिन पर भूत चढ़ता है । उनके वचन और आचरण भूत जैसे हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाते हैं, ईश्वरीय कृपा की किरण जिन महात्माओं पर पड़ती हैं, उनकी स्पष्ट पहचान आत्म-भाव का विस्तार है , जिसका स्वार्थ जितने कम लोगों तक सीमित है, वह ईश्वर से उतना ही दूर है । जो आत्म-भाव का जितना विस्तार करता है, अधिक लोगों को अपना समझता है, दूसरों की सेवा-सहायता करना आवश्यक कर्तव्य समझता है और उनके सुख-दुःख में अपना सुख-दुःख मानता है वह ईश्वर के उतना ही निकट है । आत्म-विस्तार और ईश्वर आराधना एक ही क्रिया के दो नाम हैं ।

संसार से ममता को हटा देने या संसार भर में ममता का विस्तार कर देने का एक ही अर्थ है । दोनों का तात्पर्य यह है कि थोड़े ही दायरे में ममता को केन्द्रीभूत न रहने दिया जाय वरन् उसका उपयोग विस्तृत क्षेत्र में किया जाय । केवल अपने शरीर तक या स्त्री, सन्तान तक ममता का सीमित रहना पापमूलक है, क्योंकि अन्य लोगों को बिराना समझने से उनका शोषण करने की प्रवृत्ति बलवती होती है । जिससे अपना सम्बन्ध नहीं, उसकी हानि-लाभ में भी कोई दिलचस्पी नहीं रहती, ऐसी दशा में अपनों के लाभ के लिए बिरानों को हानि पहुँचाने का अवसर आवे तो उसे करने में कुछ झिझक या संकोच अनुभव नहीं होती। चोर यदि यह अनुभव करे कि जिसका माल चुरा रहा हूँ, उसे जितना दुःख चोरी में होता है, उतना ही दुःख मुझे होगा तो वह चोरी कैसे कर सकेगा । हत्यारा यदि अनुभव करे कि वध करते समय उसे जितना कष्ट होता है, उतनी ही मुझे भी होगा उसकी छुरी कैसे किसी का गला कतरने में समर्थ होगी ? आत्मीयता का अभाव ही सताने और शोषण करने की छूट देता है, अपनों के लिये तो त्याग और सेवा करने की इच्छा ही होगी । अपनी बीमारी को दूर करने के लिए मनमाना पैसा खर्च किया जा सकता है, यदि भाई को अपना मानते हैं तो उसकी बीमारी में भी सहायता किये बिना न रहा जायगा । इस प्रकार पाप और पुण्य की प्रवृत्तियाँ ही इसी अहंता को सिकोड़ने और विस्तार करने पर निर्भर हैं । आप सदैव यही उद्योग करते रहिये कि अपना अहम् सीमित न रहे वरन् जितना हो सके विस्तृत किया जाय ।

आत्मभाव के विस्तार की सूक्ष्म मनोवृत्ति का व्यवहार उदारता में दर्शन किया जा सकता है । जिनके विचार और कार्य उदारतापूर्ण हैं, जो दूसरे लोगों की सुविधा का अधिक ध्यान रखते हैं, वास्तव वे इस भू-लोक के देवता हैं । अभागा कंजूस सोचता है, सारी दौलत अपने लिए जोड़-जोड़कर रख लूँ, अपनी विद्या किसी पर न प्रकट करूँ, अपनी शक्तियों को किसी को मुफ्त न दूँ, ऐसे लोग सर्प बन सम्पदाओं की चौकीदारी करते हुए मर जाते हैं, उन्हें वह आनन्द जीवन भर उपलब्ध नहीं होता, जो उदारता के द्वारा मिलता है । एक उदार हृदय व्यक्ति पडौसी के बच्चों को खिलाकर बिना खर्च के उतना ही आनन्द प्राप्त कर लेता है जितना कि बहुत खर्च और कष्ट के साथ अपने बालकों को खिलाने में किया जाता । अपने हँसते हुए बालकों को देखकर आपकी छाती गुदगुदाने लगती है, पडौसी के उससे भी सुन्दर फूल से हँसते हुए बालक को देखकर आपके दिल की कली क्यों नहीं खिलती ? अपनी फुलवारी को देखकर खुश होते हैं, पर पास में ही जो सुरभित उद्यान लहलहा रहे हैं, वे आप में तरंगें क्यों नहीं उत्पन्न करते ? आपके आस-पास अनेक सदाचारी, कर्तव्य-परायण, मधुर स्वभाव वाले,धर्मात्मा, परोपकारी, विद्वान निवास कर रहे हैं । उनका होना आपको क्यों शान्तिदायी नहीं होता ? कारण यह है कि आप खुद अपने हाथों अपनी एक निजी अलग दुनियाँ बसाना चाहते हैं, उसी से सम्बन्ध रखना चाहते हैं, उसी की उन्नति को देखकर प्रसन्न होना चाहते हैं ।

पुराणों की कथा है कि शंकरजी ने अपनी अलग सृष्टि रची और वे सर्प, बिच्छू, भूत, पिशाच जैसे दुःखदायी जन्तुओं की रचना ही कर सके । एक आख्यान ऐसा है जिसके अनुसार विश्वामित्र ने भी अलग सृष्टि बसाई ती, यह रचना भी ऐसी ही भौंड़ी और बेहूदी रही । ईसाई-धर्म में एक स्थल पर शैतान द्वारा अलग सृष्टि बनाने का वर्णन है । यह रचना उसके लिये अनेक कष्ट और विपत्तियों का कारण बनी । आप उन दुःखदायी स्मृतियों को पुनः दुहराने का प्रयत्न मत कीजिये । आपका अपना बेटा भीम जैसा बलवान् सूर्य-सा तेजस्वी, वृहस्पति-सा विद्वान, इन्द्र-सा पदारूढ़ बने, तब प्रसन्नता होगी । आपकी पत्नी रति-सी सुन्दर, सीता सा साध्वी, सरस्वती-सी बुद्धिमान हो, तब आपको प्रसन्नता होगी । ऐसी आशा करेंगे तो प्रसन्नता एक काल्पनिक वस्तु बन जायगी, जो कभी भी प्राप्त न हो सकेगी । अपनी अलग दुनियाँ मत बसाइये, आनन्द को किन्हीं अमुक व्यक्तियों तक ही सीमित मत रखिये । शैतानी करतूतें छोड़िये और ईश्वर के उपासक बनिये । ईश्वर की पुण्य रचना में एक से एक उत्तम अनूठे मधुर रत्न भरे पड़े हैं, उनको मालिकी की दृष्टि से नहीं, समता-सेवा और स्नेह की दृष्टि से अपना ही समझिये ईश्वर आपका है, उसकी सुरम्य वाटिका भी विरानी नहीं है, उसे भी अपनी समझिये । दूसरों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखिये । परायेपन को अपनेपन में बदल दीजिये । खत्ती में मुट्ठीभर जौ डालकर आप भी साझी हो जाइये । चारों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ओर आनन्ददायक घटना और परिस्थितियों की बाढ़ आ रही है, शीतल जल के फब्बारे छूट रहे हैं,फिर आप क्यों प्यासे खड़े हैं ? दूसरों की उन्नति अपनी उन्नति समझिये और बिना खर्च का आनन्द मनमानी मात्रा में लूटिये ।

आत्म-भाव का प्रसार करिये इससे आसपास की रूखी उपेक्षणीय, अप्रिय वस्तुओं का रूप बिल्कुल बदल जायेगा--विज्ञ लोग कहते हैं कि अमृत छिड़कने से मुर्दे जी उठते हैं । हम कहते हैं कि प्रेम की दृष्टि अपने चारों ओर निहारिये, मुर्दे-सी अस्पृश्य वस्तुएँ सजीव और सर्वांग सुन्दर बनकर आपके सामने आनन्द नृत्य करने लगेंगी । ऐसा कहा गया है कि पारस को छूकर काला-कलूटा लोहा बहुमूल्य सोना हो जाता है । हम कहते हैं कि सच्चे प्रेम का अरुचिकर और उपेक्षणीय वस्तुओं से स्पर्श कराइये, वे कुन्दन के समान जगमागाने लगेंगी । दुनियाँ आपको काटने दौड़ती है, दुर्व्यवहार करती है, सताती है, पाप-पंक में धकेलती है । इसका कारण एक ही है कि आपके मन-मानस में प्रेम का सरोवर सूख गया है, उसमें एकान्त-शून्यता की साँय-साँय बीत रही है, उसका डरावनापन अन्दर से निकलकर बाहर आ खड़ा होता है और दुनियाँ बुरी दीखने लगती है । रक्त में जब पित्त बढ़ जाता है तो पीलिया रोग प्रकट होता है, इस रोग में बीमार की आँखें पीली पड़ जाती हैं और उसे सभी वस्तुएँ पीले रंग की दीखने लगती हैं । जब कोई व्यक्ति दुनियाँ से बिल्कुल घबराया हुआ, निराश, चिढ़ा हुआ हमारे सामने आता है और संन्यासी हो जाने का विचार प्रकट करता है, तब हम उसके सिर पर हाथ फेरते हुए समझाया करते हैं कि दोस्त इस दुनियाँ में कुछ भी बुरा नहीं है । आओ, अपने पीलिया का इलाज करें और संसार का उसके असली आनन्ददायी रूप में दर्शन करके शान्ति लाभ करें ।

कुटिलता, अनुदारता, कंजूसी और संकीर्णता, को छोड़ दीजिये, इसके स्थान पर सरलता और उदारता को विराजमान कीजिये । मुद्दतों से सूखे पड़े हुए हृदय सरोवर को प्रेम के अमृत जल से भर लीजिये । इस सरोवर में लोगों को पानी पीकर प्यास बुझाने दीजिये, स्नान करके शान्ति लाभ करने दीजिये, क्रीड़ा करके आनन्दित होने दीजिये । अपना प्रेम उदारतापूर्वक सबके लिए खुला रखिए । आत्मीयता की शीतल छाया में थके हुए पथिकों को विश्राम करने दीजिये । प्रेम इस भूलोक का अमृत है, आत्म-बल इस भू-लोक का पारस है । इस सुरदुर्लभ मानव जीवन को सफल बनाना है तो इन दोनों महा-तत्वों को उपार्जित करने से वंचित मत रहिये ।

अपने प्रेमरूपी अमृत को चारों ओर छिड़क दीजिये, जिससे यह श्मशान सा भयंकर दिखाई पड़ने वाला जीवन देवी-देवताओं की क्रीड़ा भूमि बन जाय । आपने आत्म भावरूपी पारस को कुरूप लोहे- लंगड़ से स्पर्श होने दीजिये, जिससे स्वर्णमयी सुरम्य इन्द्रपुरी बनकर खड़ी हो जाय । यह स्वर्ग सच्चे विश्वासियों और दृढ़ निश्चय करने वालों के लिये बिलकुल सरल और सुसाध्य है । यह पूर्णतः आपके हाथ में है कि इच्छा और प्रयत्न द्वारा इसी जीवन में स्वर्ग का प्रत्यक्ष आनन्द उपलब्ध करें ।

मानव जीवन का अमृत-प्रेम

सच्चा प्रेम केवल देना जानता है । उसमें बदले के लिये कोई आकांक्षा नहीं होती । वह प्रेमी का हित चाहता है और इसके लिए उसके पास जो कुछ छोटी-मोटी सामर्थ्य है उसको लेकर वह उसका भला करता है । वह कभी सोचता भी नहीं कि इसका प्रतिफल मुझे मिलेगा । जिस चीज के बारे में सोचा तक नहीं गया था वह यदि न मिले तो किसी को भला उसमें दुःख क्यों होगा ? कोई उसके लिये शिकायत क्यों करेगा ?

ईसा ने कहा--'परमेश्वर की इच्छा पर मैं अपना सर्वस्व सौंपने को तैयार हूँ । इस दुनियाँ की कोई चीज मैं उससे नहीं चाहता । मैं उसे इसलिये प्यार करता हूँ क्योंकि वह प्यार के ही योग्य है-- परमेश्वर में क्या-क्या शक्ति और विशेषता है, इसे जानने की मुझे तनिक भी इच्छा नहीं है, क्योंकि उससे मैं कोई सिद्धि या अधिकार नहीं चाहता । मेरे लिए इतना ही जानना पर्याप्त है कि वह प्रेममय है । प्रेम उसे प्रिय है ।'

यदि हम किसी से प्रेम करते हैं तो उसकी बुराइयाँ भी अप्रिय नहीं लगतीं, किन्तु यदि किसी से द्वेष है, तो उसकी अच्छाइयाँ भी द्वेष सरीखी लगती हैं । कोई धनवान व्यक्ति हमें यदि किसी कारण खटकता है तो उसकी कमाई बेईमानी की दिखाई पड़ती है, उसका कारोवार ठगी, जालसाजी और चोरी से भरा प्रतीत होता है । पर यदि अपना कोई धनी मित्र हो तो उसके परिश्रम की, भाग्य की, बुद्धि-कौशल की भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती है । कहते हैं कि "अपना काना लड़का भी सुन्दर लगता है और पराया सुन्दर बालक भी भौंदू जैसा दीखता है ।" प्रेम में ऐसी ही विशेषता है, केवल प्रेम पात्र ही नहीं उसकी वस्तुएँ भी सुन्दर, निर्दोष एवं उत्तम लगने लगती हैं, किन्तु इस प्रेम भावना के हटते ही सब कुछ कुरूप, त्रुटिपूर्ण, हानिकारक, अवांछनीय एवं भयंकर लगने लगता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईश्वर का सच्चा प्रेमी अपने प्रेमपात्र परमेश्वर से कहता है "हे प्रभु, इस दुनियाँ में जो दुःख मौजूद हैं, मैं उनसे डरता नहीं । इस दुनियाँ में पाप मौजूद हैं, मैं उनके दण्ड भुगतने में कोई रियायत नहीं चाहता । धन, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, वृद्धि आदि सम्पदायें प्राप्त करने के लिए भिखारी बनकर तेरे दरवाजे पर नहीं आया और न मुक्ति की, स्वर्ग की कामना के लालच में फिर रहा हूँ । मुझे जन्मने और मरने दें । अपने बोये हुये कष्टों को काटते हुए मुझे तुमसे कुछ शिकायत नहीं । मैं एक ही आकांक्षा करता हूँ तू मुझे अपने से प्यार करने दे । प्यार के लिए प्यार । सिर्फ प्यार ।"

कई व्यक्ति प्रेम की असफलता का रोना रोते हैं । वे कहते हैं हमने बड़े मन से प्यार किया पर साथी ने उसका बदला बेवफाई से चुकाया । ऐसी शिकायत करने वाले प्रेम की वास्तविकता से बहुत दूर हैं । प्रेम में केवल देना ही देना है, उसमें लेने का, प्रतिफल का, बदले का प्रश्न ही नहीं उठता । जहाँ बदला पाने के लिये प्रेम किया जाता है वहाँ तो विशुद्ध व्यापार है । व्यापार में कभी लाभ होता है तो कभी घाटा भी उठाना पड़ता है । पासा खेलने में कभी वह चित्त पड़ता है, कभी पट्ट । बदले के लिए किया हुआ प्रेम भी एक बाजी खेलने के समान है, उसमें हार-जीत दोनों ही हो सकती हैं । जैसे दाँव फँस जाय वैसी ही सफलता सामने आ जाती है । व्यापारिक प्रेम--बाजारू मोहब्बत करने वालों की कौड़ी सदा चित्त ही नहीं पड़ती । कभी-कभी निराशा भी हाथ लगती है । सामने वाला यदि अधिक उस्ताद हुआ तो अपना दाव चलाकर अलग हो जाता है । इस प्रकार के प्रेम में दोनों पक्षों में से किसी एक को अवश्य ही शिकायत करनी पड़ती है । एक पहलवान तो गिरेगा ही, खरीद बेच करने वालों में एक को लाभ होता है तो दूसरे को घाटा, इसमें पश्चात्ताप या दोषारोपण करना व्यर्थ है ।

भोगेच्छा को प्रेम कहना एक बहुत बड़ी प्रवंचना है । प्रेम तो आत्मा में ही हो सकता है और भोग शरीर का किया जाता है । इसलिये जिनके प्रेम के पीछे भोग का लालसा छिपी है, उनकी दृष्टि शरीर तक ही है । आत्मा का भोग नहीं हो सकता । वह स्वतंत्र है, वह किसी के बन्धन में नहीं आती बन्धन में केवल शरीर बँधता है । सच्चा प्रेम आत्मा से ही किया जाता है । उसमें चुभन, पीड़ा, बेचैनी, बेवसी, निराशा कुछ नहीं है न उसमें विरह है, न वेदना, इन दोनों ही विषों से वह मुक्त है । जिससे प्रेम करना हो उसके शरीर पर घात न लगाई जाय, जिसका शरीर भोगना हो उसके साथ प्रेम का नाटक न किया जाय, यही उचित है ।

प्रेम करने का उद्देश्य अपनी आत्मा को प्रेम रस से सराबोर करना है । उसका और कोई प्रतिफल नहीं । भौतिक दृष्टि से प्रेमी घाटे में रह सकता है, उसे ठगा जा सकता है, धोखा हो सकता है और ऐसा त्याग करना पड़ता है जिससे उसे स्वयं बड़ी कठिनाई उठानी पड़े । किन्तु प्रेम भावनाओं के उत्पन्न होने के कारण आत्मा में जो स्वर्गीय आनन्द अविर्भूत होता है, उसका मूल्य बहुत है । इतना अधिक है कि उसकी तुलना में सब कुछ गँवाना पड़े तो प्रेमी नफे में ही रहता है ।

मन्दिर में आँसू बहाने वाला प्रेम यदि दुःखी, क्लान्त भाइयों को देखकर द्रवित न हो तो वह प्रेम नहीं ढ़ोंग है । दूसरों का खून करने वाला व्यक्ति अपने घर के सदस्यों से प्रेम करे, तो वह प्रेम नहीं स्वार्थ है, भोग है । दूसरों के बच्चों से कटु व्यवहार करने वाले माँ-बाप अपने बच्चों से प्रेम नहीं कर सकते । दूसरों के साथ धोखेबाजी, चालाकी, कूटनीति, छल-कपट बरतने वाले व्यक्ति किन्हीं से प्रेम करें यह कठिन है । सच्चा प्रेम वह है जो घर, बाहर, मन्दिर, मस्जिद, समस्त जाति वर्ण में एकरस व्याप्त होकर हमारी नस-नस में समा जाय, और जीवन का अंग बन जाय । वही प्रेम, प्रेम कहलाने का अधिकारी है । यदि इस कसौटी पर उतरने वाले प्रेम पूजकों की संख्या बढ़ जावे तो यह धरती ही स्वर्ग बन जावे ।

प्रेम आत्मा का सहज प्रकाश है जो प्रत्येक जीवन में स्थित है । उसे प्राप्त करने के लिए धन-दौलत कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता । प्रेम का अथाह समुद्र हमारे चारों ओर बाहर-भीतर उमड़ रहा है, केवल आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी हृदय गगरी में जो मल-विक्षेप अहंकार, स्वार्थ, पद-प्रतिष्ठा आदि भरे पड़े हैं उन्हें निकालकर प्रेम समुद्र का मधुर अमृत भर लें । पीड़ित मानवता में, दीन दुःखी भाइयों में, अन्य जीव पशु-पक्षियों के बीच हृदय खोलकर आना होगा; उन्हीं की पंक्ति में खड़ा होना होगा । यहाँ कोई निर्बल-सबल, गरीब-अमीर, ऊँच-नीच नहीं है । प्रभु के सब समान पुत्र हैं । हमें हृदय खोलकर अपने सारे भौतिक आवरणों को दूर उतारकर प्राणी मात्र से प्रेम करना है । सबके साथ सहानुभूति सहयोग करके अपना कर्तव्य निभाना है । प्रेम सारे भौतिक आकर्षणों से ऊपर रहता है, इनका त्याग किये बिना सच्ची प्रेम साधना सम्भव नहीं हो सकती ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महात्मा गाँधी एक कोढ़ी की स्वयं पट्टी आदि करते थे, अपने हाथों से घाव धोते थे, जबकि अन्य लोग दूर भागने का प्रयत्न करते थे । ईसामसीह, चैतन्य महाप्रभु, राम कृष्ण आदि महापुरुषों के जीवन आज भी उनकी प्रेम साधना के ज्वलन्त उदाहरण हैं । उनके हृदयों में प्रेम की भागीरथी निरन्तर बहती रही, जिनमें प्राणीमात्र ने अपने आपको कृतार्थ किया । वहाँ कोई भेदभाव नहीं था । इस तरह जिसके हृदय में प्रेम का अखण्ड दीप जलता रहे वस्तुतः सच्चा प्रेमी है ।

प्रेम के लिए अपने आपको उत्सर्ग करने वाला जीवित कहलाने का अधिकारी है । जीवन में सभी कुछ बदलता रहता है । अवस्था, विचार, परिस्थितियाँ, मनुष्यों का विश्वास, यहाँ तक के यह देह भी बदलती है । इस परिवर्तन प्रधान संसार में यदि अजर-अमर रहता है, तो वह है प्रेम ।

प्रेम का मूल्य ही बलिदान से चुकाया जाता है । महात्मा गाँधी ने देश से, मानवता से प्रेम किया था और अन्त में इसी के लिये अपने आपको बलिदान किया । देश प्रेम के मतवाले राणाप्रताप अरावली की पथरीली घाटियों में भूखे-प्यासे फिरते रहे । धर्म से प्रेम करने वाले तेग बहादुर, गुरुगोविन्द सिंह के बच्चों ने मुगलों के हाथों सहर्ष अपना वलिदान स्वीकार किया था । आजादी और देश प्रेम के अनेकों मतवालों ने सूली, फाँसी, गोली, तोपों को सहर्ष स्वीकार किया था । ऐसे प्रेम पथिकों की भारत में साथ ही विदेशों में भी कमी नहीं रही, जिन्होंने अपने विश्वास, ध्येय, उद्देश्य, लक्ष्य आदि के लिए प्रेम किया अपने को जीवित ही तिलतिल मिटाया और अन्त में इसी के लिये वलिवेदी पर सहर्ष चढ़े ।

विचार शक्ति को एक मोड़ इस दिशा में भी दिया जाना चाहिए कि मनुष्य-मनुष्य के बीच में स्नेह, सद्भाव और सौजन्य की मात्रा निरन्तर बढ़ती रहे । हम एकाकी जीवनयापन नहीं कर सकते, हमारी आवश्यकताएँ ऐसी हैं जिनके लिए विवश होकर दूसरों से सम्बन्ध बनाना पड़ता है । एकान्त गुफाओं में रहने वाले वैरागियों को भी आसन, कमण्डल, ईंधन, दियासलाई, माला, कोपीन, कम्बल, पुस्तक एवं भोजन की आवश्यकता पड़ती है और इसके लिए उन्हें दूसरों की सहायता अपेक्षित होती है । हर व्यक्ति समाज के साथ किसी न किसी रूप में जुड़ा हुआ है, इसलिये उसे सामाजिक सद्भाव की आवश्यकता पड़ेगी ही । द्वेष, कलह, अपमान, प्रवंचना, अशिष्टता, उद्दण्डता के व्यवहार की आशा हम दूसरों से नहीं करते हैं । हर किसी की स्वाभाविक इच्छा यही रहती है कि उसके साथ दूसरे लोग प्रेम, सौजन्य, आदर, ईमानदारी, सम्मान, सज्जनता, एवं उदारता का व्यवहार करें । प्रेम की भूख मानव प्राणी की सबसे बड़ी भूख है । इस संसार में सबसे मधुर, सबसे आकर्षण एवं आनन्ददायक एक ही वस्तु है और वह है प्रेम । जिसे किसी का सच्चा प्रेम नहीं मिला वह अभागा इस संसार में मरघट के ब्रह्मराक्षस की तरह अशान्त, उद्विग्न, तृषित और असन्तुष्ट भ्रमण करता रहेगा । जिसे सच्चे प्रेम का एक कण भी मिल जाता है वह अपने भाग्य को सराहता है । अभाव और दरिद्रता के रहते हुए भी जिसे प्रेम के कुछ क्षण उपलब्ध हो जाते हैं वह अपने आपको किसी बड़े अमीर से कम सुखी नहीं मानता । माता का, पत्नी का, भाई का, मित्र का, जनता का प्रेम जिसें प्राप्त है उसे जीवन की सबसे बड़ी विभूति मिल गई यही मानना पड़ेगा ।

प्रेम के मूल में आत्मीयता रहती है । स्वार्थ, मोह, रूप, यौवन, वासना, उपयोगिता, प्रतिभा आदि के बाह्य आकर्षणों से भी कई बार प्रेम जैसी लगने वाली घनिष्ठता उपन्न हुई दिखाई देने लगती है, पर उसकी जड़ नहीं होती, इसलिए वे बाह्य कारण समाप्त होते ही वह तथाकथित प्रेम भी बालू की भीति की तरह ढह जाता है । प्रेम में गहराई, स्थिरता एवं आत्म-त्याग की स्थिति तभी रहेगी जब आत्मीयता की निष्ठा का समावेश हो । जो अपना है उसके साथ त्याग, सेवा, सौजन्य, स्नेह और उदारता के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का व्यवहार नहीं किया जा सकता । इस प्रकार ईश्वर को घट-घट वासी, सर्वव्यापी, निष्पक्ष और कर्मफल प्रदाता मानने वाला सच्चा आस्तिक मनुय कुविचारों और कुकर्मों से दूर रहेगा उसी प्रकार प्रेम की भावनाएँ जिसके मन में उमड़ेंगी वह दूसरों के साथ सौजन्यपूर्ण सद्व्यवहार ही करेगा, उदारता बरतेगा और स्वयं कष्ट में रहकर दूसरों को सुखी बनाने का प्रयत्न करता रहेगा । आस्तिकता और प्रेम की भावनाएँ जब भी विकसित होती हैं तब सदाचार और सद्व्यवहार ही उनका बाह्य रूप प्रकाश में आता है ।

किसी मनुष्य के पास दूसरे को देने योग्य यदि कोई सबसे अधिक उत्कृष्ट एवं महत्त्वपूर्ण वस्तु हो सकती है तो वह है प्रेम । यों आर्थिक या बौद्धिक सहायता देकर भी किसी का कुछ उपकार किया जा सकता है । पर उसका लाभ स्वल्पकालीन रहता है, इसलिये उसकी प्रसन्नता भी क्षण भर ही टिकेगी । प्रेम और सद्भाव पाकर आत्मा जितनी प्रसन्नता अनुभव करती है उतनी और किसी वस्तु से नहीं करती । उपकार करने में जो त्याग करना पड़ता है उससे कई गुना प्रतिफल तब वसूल हो जाता है । जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिसके साथ उपकार किया गया था वह सच्चे हृदय से कृतज्ञता और प्रेम भावना प्रकट करता है । यह कृतज्ञता और प्रेम भावना उपकारी को ही प्राप्त हो सकती है । इस संसार में पाप और दुष्टता की तरह प्रेम और सौजन्य भी परिपूर्ण मात्रा में भरा पड़ा है, पर उसे वे लोग प्राप्त नहीं कर सकते जिनका मन कुटिलता और व्यवहार-अनीति से भरा पड़ा है । सज्जनता, सरलता, सच्चाई और सहृदयता में ही वह गुण है कि सामने वाले पत्थर को भी अपने लिए मक्खन जैसा कोमल बनाकर रख दे । सच्चा प्रेम प्राप्त करने के लिए सज्जनता की आवश्यकता है । सज्जन व्यक्ति कई बार चालाक लोग ठग लेते हैं पर तो भी उसकी उदारता और भलमनसाहत के प्रति उन्हें नत-मस्तक ही होना पड़ता है । ठगाये जाने पर भी जिसने अपनी सज्जनता को नहीं छोड़ा है वह किसी भी बलिदानी वीर से कम प्रशंसनीय नहीं है ।

जिनके प्रति दूसरों के मन में कोमल भावनाएँ रहेंगी वे ही दूसरों का स्नेह और सम्मान प्राप्त कर सकेंगे । मतलब के लिये गधे को बाप बनाने की नीति हर कोई जानता है । खुशामद, चापलूसी और भुलावा देने वाली मीठी बोली बोलने की कला को अब बहुत लोग जान गये हैं और दूसरों को उल्लू बनाकर अपना मतलब निकालने के लिये कितने ही लोग इस हथियार का भरपूर प्रयोग करते हैं । क्योंकि वे जानते हैं कि हर व्यक्ति की आत्मा स्नेह, सम्मान और सद्भाव की प्यासी है । यदि वे नकली रूप में भी कहीं दिखाई पड़ते हैं तो भी उन्हें लुभाने के लिए कितने ही लोग इस हथियार का भरपूर प्रयोग भी करते हैं । बहेलिये जिस प्रकार दाने डालकर अपना जाल कबूतरों से भर लेते हैं । इन हथकण्डों के बीच एक ही सत्य छिपा हुआ है, कि वह हर व्यक्ति प्रेम का प्यासा है । हर किसी को सद्व्यवहार और सज्जनता की प्यास है । यह इतना प्रकट तथ्य है कि नकली प्रेम की विडम्बना कर वेश्याओं से लेकर प्रपंची ठगों तक सभी ने नकली मधुरता को अपने लिए एक सफलता का व्यावसायिक अस्त्र बनाया हुआ है।

यह तो हुई नकलीपन की बात । असली रूप का आनन्द तो इतना उत्कृष्ट है कि इसकी बूँद के बदले में मनुष्य अपना सर्वस्व निछावर कर सकता है । प्रेम की सफलता में अनेकों आत्म-हत्या करते रहते हैं, प्रेम की प्राप्ति के लिये लोग बड़े से बड़ा त्याग करते हैं । पति-पत्नी के प्रेम सम्बन्ध में तो बात स्पष्ट ही है । स्त्री -स्त्री और पुरुष-पुरुष प्रेम भाव में भी गहनता होने पर एक दूसरे के लिए मर मिटने के अवसर सहज ही आ सकते हैं । निस्सन्देह मनुष्य को अपना धन और तन प्राणप्रिय है, पर प्रेम की महानता इतनी ऊँची है कि इसके लिए इन दोनों को भी तिलांजलि दी जा सकती है ।

यदि सच्चे स्नेह और सच्चे सदभाव की कुछ बूँदें मनुष्य को मिलती रहें तो वह रूखी रोटी खाकर और फटे चिथड़े पहनकर अमीरों और रईसों से अधिक आनन्द एवं गर्व अनुभव करता हुआ जीवन व्यतीत कर सकता है परिवार के छोटे-छोटे दायरे में जिस धर्म पत्नी की अनन्यता, बच्चों की श्रद्धा, भाई का विश्वास, बहिन की ममता, माता का वात्सल्य, पिता का प्रेम, नौकर की बफादारी, प्राप्त है, उसे अगणित समस्याएँ सामने रहते हुए भी अपना जीवन स्वर्गीय शान्ति से परिपूर्ण दिखाई देगा । फिर जिसके मित्र स्वजन, परिजन, परिचित, सम्बधी प्रेम का व्यवहार रखने लगे तो कहना ही क्या है । उस जीवन में हर दिशा में आनन्द की निर्झरणी बहती रहेगी ।

ऐसा प्रेममयी--आत्म-भाव से परिपूर्ण परिस्थितियाँ प्राप्त कर सकना, हर किसी के लिये नितान्त सरल और सम्भव है । दुनियाँ में हर चीज की कीमत होती है, यहाँ बिना कीमत चुकाये कुछ भी नहीं मिलता । दूसरों का सम्मान स्नेह सद्भाव और सहयोग प्राप्त करने के लिए हमें वही तत्व अपने भीतर पैदा करने पड़ेंगे और उसका उपयोग दूसरों के लिये करना पड़ेगा । चुम्बक अपने सजातीय लोहे को अपनी तरफ खींचता है यदि चुम्बक में आकर्षण शक्ति न हो तो पास में पड़े हुए लौह कण भी उपेक्षा का भाव दिखाते रहेंगे, उधर अभिमुख होने की कोई चेष्टा न करेंगे ।

प्रेम, प्रेम की कीमत पर खरीदा जा सकता है । वह एकाकी नहीं हो सकता है । एक का सच्चा प्रेम दूसरे को कभी न कभी अपने अनुगत बना ही लेता है । बुरे लोगों को भी यदि हम प्यार करने लगें तो उनका सुधार ही होगा । आज नहीं तो कल हमारे जितना न सही उससे कम, कुछ तो प्रभाव उनके मन में बढ़ेगा और उपजेगा ही । सच्चे मन से किया हुआ प्रेम कभी निरर्थक नहीं जाता । उसके द्वारा पत्थर की मूर्तियाँ और कागज के चित्र देवता बनकर हमें आनन्द से ओत-प्रोत कर सकते हैं तो फिर हाँड-माँस वाला सजीव प्राणी प्रत्युत्तर में सर्वथा प्रेमविहीन कैसे बना रहेगा ।

यदि प्रेम के बदले प्रेम का प्रत्युत्तर न भी मिले, अपने को ठगे जाने और घाटे में रहने का अवसर आवे तो भी उसकी हानि केवल भौतिक हानि ही रहेगी । प्रेम की दिव्य अनुभूतियाँ अपने अन्तःकरण में जब उठती रहती हैं तो वहाँ पुष्प वाटिका की तरह सौंदर्य और सुगन्ध का साम्राज्य छाया रहता है । उसका आनन्द तो अपने को मिलता ही है । आत्मा की सबसे बड़ी अनुभूति प्रेम ही है, उसका रसास्वादन होते रहने से आत्मतृप्ति, आत्म सन्तोष और आत्मोल्लास का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो हर घड़ी लाभ होता रहता है उसकी तुलना में यदि कुछ भौतिक हानि उठानी भी पड़े तो वह तुच्छ एवं नगण्य ही मानी जायगी ।

प्रेम की एक-एक बूँद के लिये यह दुनियाँ तरस रही है । अनावृष्टिकाल में पानी का जैसा अकाल रेगिस्तानों में पड़ता है वैसा ही प्रेम दुर्भिक्ष आज सर्वत्र छाया हुआ है । प्रेम के नाम पर ठगी, चापलूसी, वासना और शोषण की प्रवंचना तो खूब बढ़ी है पर सच्चा प्रेम जिसमें आत्म-दान और निस्वार्थ सेवा का ही समावेश होता है । अब देखने को नहीं मिलता । इस आध्यात्मिक विभूति के अभाव में जीवन नीरस ही बने रहते हैं । सब और कुछ खोया-खोया सा सब ओर अभाव - अभाव सा ही दिखाई पड़ता है । यदि सच्चि प्रेम के कुछ कण भी किसी को प्राप्त हो जाते हैं तो सचमुच ही उसके सब अभाव पूर्ण हो जाते हैं ।

हमें अपने भीतर सच्चे प्रेम की भावनाएँ जागृत करनी चाहिए, दूसरों को अपना मानना चाहिए, फलस्वरूप हम भी सच्चे प्रेम के रसास्वादन से वंचित न रहेंगे । संसार के खेत में अपना प्रेम बीज बिखेरते फिरें तो कोई-कोई पौधा उसका जरूर उगेगा और उसकी सुगन्ध से भी हमें आनन्द और तृप्ति देने लायक बहुत कुछ मिल जायेगा ।

त्याग और सेवा की मिठास

त्याग में कितना मिठास है, इसे बेचारे स्वार्थ-परायण और कंजूस भला क्या समझेंगे ? जो इस भूतल के अमर मिठास का आस्वादन करना चाहते हैं, उसकी नीति होनी चाहिए--"आप लीजिये, मुझे नहीं चाहिये" । यही नीति है, जिसके आधार पर सुख और शान्ति का होना सम्भव है । "मैं लूँगा, आपको न दूँगा" की नीति को अपनाकर कैकेयी ने अयोध्या को नरक बना दिया था । सारी नगरी विलाप कर रही थी । दशरथ ने तो प्राण त्याग दिये । राजभवन मरघट की तरह शोकपूर्ण हो गया । राम जैसे निर्दोष तपस्वी को वनवास ग्रहण करना पड़ा । किन्तु जब "आप लीजिये, मुझे नहीं चाहिये" की नीति व्यवहार में आई तो दूसरे ही दृश्य उपस्थित हो गये । राम ने राज्याधिकार को त्यागते हुये भरत से कहा--"बन्धु ! तुम्हें राज्य सुख प्राप्त हो, मुझे यह नहीं चाहिये ।" सीता ने कहा--'नाथ ! यह राज्यभवन मुझे नहीं चाहिये मैं तो आपके साथ रहूँगी ।' सुमित्रा ने लक्ष्मण से कहा--**"अवध तुम्हार काम कछु नाहीं । जो पे राम सिया वन जाहीं ।"** पुत्र ! जहाँ राम रहें, वहीं अयोध्या मानते हुये उनके साथ रहो । कैसा स्वर्गीय प्रसंग है ? भरत ने तो इस नीति को और भी सुन्दर ढंग से चरितार्थ किया । उन्होंने राजपाट में लात मारी और भाई के चरणों में लिपटकर बालकों की तरह रोने लगे । बोले--'भाई ! मुझे नहीं चाहिये, इसे तो आप ही लीजिये ।' राम कहते हैं--"भरत ! मेरे लिये तो वनवास ही अच्छा है, राज्य-सुख तुम भोगो ।" त्याग के इस सुनहरे प्रसंग में स्वर्ग छिपा हुआ है । एक परिवार के कुछ व्यक्तियों ने त्रेता को सतयुग में परिवर्तित कर दिया । सारा अवध संतयुगी रंग में रंग गया । वहाँ के सुख-सौभाग्य का वर्णन करते-करते बाल्मीकि और तुलसीदास अघाते नहीं हैं ।

प्रभु ने मनुष्य को इसलिये इस पृथ्वी पर नहीं भेजा है कि एक दूसरे को लूट खायें और आपस में रक्त की होली खेलें । परमपिता की इच्छा से कि सब लोग प्रेमपूर्वक भाई-भाई की तरह आपस में मिल-जुलकर रहें । यह तभी हो सकता है, जब त्याग की नीति को प्रधानता दी जाय, स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ का अधिक ध्यान रखा जाय ।

आप किसी को कुछ दें या उसका किसी प्रकार का उपकार करें तो बदले मे किसी प्रकार की आशा न रखें । जो कुछ आप देंगे वह हजार होकर लौट आवेगा, परन्तु उसके लौटने की तिथि नहीं गिननी चाहिये । अपने में देने की शक्ति रखिये, देते चलिये, क्योंकि देकर ही फल प्राप्त कर सकेंगे । ध्यानपूर्वक देखिये सारा विश्व आपको कुछ दे रहा है, जितने आनन्दपूर्वक पदार्थ आपके पास हैं, वे सब आपके ही बनाये हुए नहीं हैं, वरन् वे दूसरों के द्वारा आपको प्राप्त होते हैं । फिर आप दूसरों को देने में इतना संकोच क्यों करते हैं । आज नहीं तो कल, हँसकर नहीं तो रोकर, आपको किसी दिन त्याग करना ही पड़ेगा । आप खूब इकट्ठा करते हैं । संसार की सम्पदायें अपनी मुट्ठी में बाँध लेते हैं, परन्तु प्रकृति यह पसन्द नहीं करती कि उसकी चलती-फिरती चीजों पर एक व्यक्ति कब्जा करके बैठ जाय, वह आपका गला दबाकर मुट्ठी खुलवा लेती है । जब आप कहते हैं कि--"नहीं, मैं न दूँगा" उसी क्षण जोर की चपत पड़ती है और आप घायल हो जाते हैं । संसार में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो प्रत्येक वस्तु को देने, परित्याग करने के लिए बाध्य न हो । इस अखण्ड नियम से प्रतिकूल आचरण करने के लिए जो जितना ही प्रयत्न करेगा, वह अपने को उतना ही दुःखी अनुभव करेगा ।

शास्त्र कहते हैं कि मनुष्य जीवन में परोपकार ही सार है, हमें सदैव परोपकार में रत होना चाहिये किन्तु यह अभिमान, दम्भ या कीर्ति के लिये नहीं आत्म-कल्याण के होना चाहिये । मेरे कारण दूसरों का भला हुआ यह सोचना मूर्खता है । हमारे बिना संसार में कोई कार्य अटका न रहेगा । हमारे पैदा होने से संसार का सब काम ठीक-ठीक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चल रहा था और हमारे बाद भी वैसा ही चलता रहेगा । परमात्मा इतना गरीब नहीं है कि हमारी मदद के बिना सृष्टि का काम न चला सके । किसी भिखारी को हमारे ही देने की कोई बड़ी भारी आवश्यकता नहीं है, वह हमारी एक रोटी के बिना भूखा न मर जायगा ।

सच पूछें तो जिसने हमारे उपकार करने का अवसर दिया है उसका कृतज्ञ होना चाहिये । हमारे उपकार बुद्धि जागृत करके हमें ऋणी कर देता है । इससे जो मानसिक उन्नति होती है और आत्मा को जो शक्ति प्राप्त होती है, वह दान लेने वाले को नहीं वरन् दोने वाले को प्राप होती है । दूसरों का उपकार करना मानो एक प्रकार से अपना ही कल्याण करना है । किसी को एक पैसा देकर भला उसका कितना भलाकर सकते हैं । किन्तु उसकी अपेक्षा अपना भला हजारों गुना कर लेते हैं । हमारी उदारता का विकास न होने से संसार का रत्ती भर भी हर्ज न होगा, किन्तु हमारा ही आनन्द स्रोत नष्ट हो जाएगा, इसलिये आप परोपकार को अपना जीवन लक्ष्य बनाइये । जितना हो सके दूसरों को भलाई कीजिए, इसमें आपका ही भला है, आपका ही कल्याण है ।

त्याग करना-- किसी की कुछ सहायता करना, उधार देने की एक वैज्ञानिक पद्धित है । जो कुछ हम दूसरों को देते हैं ।, वह हमारी रक्षित पूँजी की तरह जमा हो जाती है । जो अपनी रोटी दूसरों को बाँटकर खाता है, उसको किसी बात की कमी न रहेगी । जो अपनी सम्पदा को जोड़-जोड़कर जमा करता आता है । उस पाषाण हृदय को क्या मालूम होगा कि दान में कितना मिठास है ।

'मैंने इतना दिया, पर इसका बदला मुझे क्या मिला ।' ऐसे विचार करने में उतावली न कीजिये । बादलों को देखिये, वे सारे संसार पर जल बरसाते फिरते हैं , किसने उनको अहसान का बदला चुका दिया । बड़े-बड़े भूमिखण्डौ का सिंचन करके उनमें हरियाली उपाजने वाली नदियों से परिश्रम की कीमत कौन देता है ? हम पृथ्वी की छाती पर जन्म भर लदे रहते हैं और उसे मल-मूत्र से गन्दी करते रहते हैं । किसने उनका मुआवजा अदा किया है । वृक्षों से फल छाया, लकड़ी पाते हैं । पर उन्हें क्या कीमत देते हैं । परोपकार स्वयं ही एक बदला है । त्याग करना आज भले ही घाटे का सौदा प्रतीत होता हो, पर जब कोई उपकार करने का अनुभव स्वयं करेंगे तो देखेंगे कि ईश्वरीय वरदान की तरह यह दिव्य गुण स्वयं ही कितना शान्तिदायक है । हृदय को कितनी महानता प्रदान करता है । उपकारी जानता है कि मेरे कार्यों से जितना लाभ दूसरों को होता है । उससे कई गुना स्वयं मेरा होता है । ज्ञानवान् पुरुष जो कमाते हैं, वह दूसरों को बाँट देते हैं । वे सोचते हैं कि प्रकृति जब जीवन सरीखी बहुमूल्य वस्तु मुफ्त दे रही है तो हम अपनी फालतू चीजें दूसरों को देने में कंजूसी क्यों करें । आप बुरे दिनों में, विपत्ति की घड़ियों में भी परोपकार के दिव्य गुण का परित्याग मत कीजिये । जब आप किसी को भौतिक पदार्थ देने में असमर्थ हों तो भी अपनी सद्भावनाएं और शुभ कामनाएँ दूसरों को देते रहिये ।

निस्वार्थ भावना से जीवन व्यतीत करने वाले के लिए संसार में निरुत्साह, पश्चाताप और दुःख की कोई बात नहीं है । आप जरा सी बात के आवेश में आकर लड़ने मरने पर उतारू मत हूजिये वरन् अपने विरोधियों पर दया और प्रेम की वर्षा करते रहिये । सद्भावना से दिव्यदृष्टि मिलती है । जिसके हृदय में समस्त प्राणियों के प्रति सद्भावना भरी हुई है, यथार्थ में वही दिव्यज्ञान का अधिकारी है। मनुष्यों में देवता वह है जो पवित्र है, निःस्वार्थ है, प्रेमी है, त्याग भावी है, अपने तुच्छ शारीरिक स्वार्थों को परित्याग करने के उपरान्त जो सन्तोष प्राप्त होता है ।वह चक्रवर्ती राजा हो जाने के सुख से भी हज़ारों गुना अधिक है । इसलिए आप स्वार्थ को त्यागने का अभ्यास आरम्भ कीजिये । ज्ञान के द्वारा अपनी पाशविक कंजूस वृत्ति को काबू में लाने का प्रयत्न करिये । तुच्छ स्वार्थो के गुलाम बनने से इन्कार कर दीजिये । नम्रता, भलमनसाहत, क्षमा, दया, प्रेम और त्याग भावना को अन्दर धारण करने से हृदय में शास्वत शान्त का आविर्भाव होता है । स्वार्थ रहित प्रेम के इस महान् नियम को अपने में केन्द्रस्थ करना मानो, सन्तोष, शीतलता, विश्राम और ईश्वर को प्राप्त करने के मार्ग पर पदार्पण करना है ।

निस्संदेह आत्मा प्रेममय है । उसे सुख प्रेममय में ही प्राप्त होता है । मछली को पानी में आनन्द है । इसके अतिरिक्त और कहीं चैन नहीं । प्राणी का मन तब तक शान्त लाभ नहीं कर सकता जब तक कि वह प्रेम में निमग्न न हो जाय जब तक प्यास नहीं बुझती तब तक इधर-उधर भटकते हैं, और जब मधुर शीतल जल भर पेट पीने को मिल जाता है तो चित्त ठिकाने आ जाता है, सन्तोष लाभ करके एक स्थान पर बैठ जाता है । सर्प का जब पेट भर जाता है तो जब अपने बिल में प्रवेश कर जाता है , बाहर घूमने की उसे जरूरत नहीं रहती । सीप समुद्र में ऊपर उतरती फिरती है। जब स्वाँति की बूँद उसमें पड़ जाती है तो मोती को प्राप्त करके समुद्र की तली में बैठ जाती है । आत्मा प्रेम का आनन्द लूटने इस भूमण्डल पर आई है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी प्रिय वस्तु को ढूँढ़ने के लिये इधर-उधर भटकती फिरती है । जिस दिन उसे इच्छित वस्तुएँ प्राप्त हो जायेंगी उसी दिन तृप्ति लाभ करके अपने परम धाम को लौट जायगी। भव-भ्रमण और मुक्ति का यही मर्म है ।

हमें बार-बार जन्म इसलिये धारण करना पड़ता है कि प्रेम की प्यास बुझा नहीं पाते । मोह-ममता की मृगतृष्णा में मारे-मारे फिरते हैं और भव-बन्धन में उलझते फिरते हैं। जिस दिन हमें सद्गुरु की कृपा से यह समझ आजायगी कि जीवन का सार प्रेम है, उस दिन हम शाश्वत प्रेम को अपने अन्तःकरण में से ढूँढ़ निकालेंगे । अन्तःकरण में जिस दिन प्रेम भक्ति का अविरल स्रोत फूट निकलेगा, जिस दिन प्रेम गंगा में आत्मा स्नान कर लेगी, जिस दजिन प्रेम का सागर हमारे चारों ओर लहरावेगा उसी दिन आत्मा को तृप्ति मिल जायेगी और वह अपने मुक्तधाम को लौट जायगी । सच्चा प्रेमी अपने सुःखों की तनिक भी इच्छा नहीं करता वरन् जिस पर प्रेम करता है उसके सुख पर अपने सुख को उत्सर्ग कर देता है । लेने का उसे ध्यान भी नहीं आता, देना ही एक मात्र उसका कर्तव्य हो जाता है । जिसके हृदय में प्रेम की ज्योंति जलेगी वह गोरे चमड़े पर फिसलकर अपने चमारपन का परिचय न देगा और न व्यभिचार की कुदृष्टि रखकर अपनी आत्मा को पाप पंक में घसीटेगा । वह किसी स्त्री के रंक, चमक-दमक, हाव-भाव या स्वर-कण्ठ पर मुग्ध नहीं होगा वरन् किसी देवी में उज्वल कर्तव्य का दर्शन करेगा तो उसको झुककर प्रणाम करेगा । प्रेमी का दिल तो बेकाबू हो सकता है पर दिमाग काबू में रहेगा । वह दूसरों के सुख के लिये त्याग करने में अपने को बेकार पावेगा, परन्तु किसी को पतन के मार्ग पर घसीटने का स्मरण आते ही उसकी आत्मा काँप जायेगी । इस दशा में उसका एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता । अपने प्रेम-पात्र को बदनामी, पतन, दुःख, भ्रम और नरक में घसीटने वाला व्यक्ति किसी भी प्रकार प्रेमी नहीं कहा जा सकता । वह तो नरक कीड़ा है, जो अपनी विषय ज्वाला में जलाने के लिए प्रेम-पात्र को फँसाकर काँटों में घसीटता है ।

आप प्रेमी बनना चाहते हैं, तो पवित्र प्रेम का अभ्यास पहिले अपने घर से आरम्भ कीजिये । प्रेम की प्रारम्भिक पाठशाला अपना घर ही हो सकता है । घर के समान स्त्री-पुरुषों, बाल-बालिकाओं से निःस्वार्थी प्रेम करिये । फिर देखिये कि बदले में कितना अधिक प्रेम आपको प्राप्त होता है ।

जानना चाहिए कि प्रेम का अर्थ है त्याग और सेवा । आप घर के हर एक व्यक्ति के पक्ष में स्वार्थों को छोड़िये और जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता है, उसे वह प्रदान कीजिए । वृद्ध जब आपसे शारीरिक सेवा चाहते हैं, बालक आपके साथ हँसना-खेलना चाहते हैं, भाइयों को आपका आर्थिक सहयोग चाहिए, स्त्री को आपके स्नेहपूर्ण वार्तालाप की आवश्यकता है । जो जिस वस्तु को चाहता है, उसे वह प्रदान कीजिये, परन्तु ध्यान रखिये प्रेम कोई व्यापार नहीं है । एक हाथ से लेकर दूसके हाथ से माँगने की नीति प्रेमी को शोभा नहीं दे सकती । वृद्धजनों से आप आशा मत करिये कि आपकी प्रशंसा करे ही । न भाइयों से यह चाहिए कि कमाऊ होने के नाते आपको कुछ महत्व दें । स्त्री यदि आपकी इच्छानुकूल सुश्रूषा करने में असमर्थ है तो उस पर झुँझलाइए मत, क्योंकि आप प्रेमी बनने जा रहे हैं । प्रेमी देकर माँग नहीं सकता ।

दुनियाँ में सारे झगड़ों की जड़ यह है कि हम देते कम हैं और माँगते ज्यादा हैं । हमें चाहिये यह कि दें बहुत और बदला बिलकुल न माँगे या बहुत कम पाने की आशा रखें । यह नीति ग्रहण करते ही हमारे आस-पास के सारे झगड़े मिट जाते हैं । प्रेमी त्याग करता है--उसका त्याग बेकार नहीं जाता, वरन् हजार गुना होकर लौट आता है । झगड़ा करने पर जितना बदला मिलता है, उससे अनेक गुना उसे बिना माँगे मिल जाता है । कदाचित् कुछ कम भी मिले तो प्रेम में उत्पन्न होने वाले आन्तरिक आनन्द के मुकाबले में वह कभी नगण्य नहीं है । निरन्तर देते रहने का स्वभाव जिनके हृदयों में स्थान कर लेता है, वह जानते हैं कि स्वर्गीय निर्धन आत्माऐं हर्षान्दोलित करने में कितनी समर्थ हैं । त्याग का दैवी वृत्तियाँ हमारे आस-पास के वातावरण को स्वर्गीय सम्पदाओं से भर देती हैं ।

त्याग के साथ-साथ सेवा भी होना चाहिए । जिस व्यक्ति को जिस चीज की आवश्यकता है उसे वही दी जाय । कौन क्या चाहता है, उसके आधार पर यह निर्णय नहीं हो सकता है कि उससे वहीं वस्तु मिलनी चाहिए । सन्निपात का रोगी मिठाई माँगता है, पर मिठाई देना तो उसे दुश्मनी करना है । आपका कोई प्रियजन कुमार्ग पर चलता है और उस दुष्कर्म की पूर्ति में आपको सहायक बनाना चाहता है । यदि आप उसकी सहायता करने लगें तो यह उसके साथ एक भयंकर अपकार करना होगा । आपको सुयोग्य सिविल सर्जन की की तरह यह जाँच करनी होगी कि उसे वास्तव में क्या कष्ट है और उसका उपचार किस प्रकार करना चाहिये । हैजे की बीमारी में बड़ी भारी प्यास लगती है, पर सुयोग्य डॉक्टर बीमार को मनमानी मात्रा में पानी नहीं पीने देता । हो सकता है कि रोगी उस समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

डॉक्टर से नाराज हो और उसके साथ अभद्र व्यवहार करे पर डाक्टर प्रेमी है, इसलिये वह तात्कालिक प्रतिक्रिया की ओर ख्याल नहीं करता और रोगी के दीर्घकालीन हित को अपने मन में रखता हुआ अपना कार्य आरम्भ करता है ।

घर के जिन लोगों की मनोभूमि में जो त्रुटि देखें वह दूर करने में प्रयत्नशील रहें । त्याग-वृत्ति से उन्हें प्रसन्न रखने का प्रयत्न करें, पर कैंची से काँट-छाँटकर इन पेड़ों को सुरम्य बनाने के प्रयत्न में भी न चूकें, अन्यथा यदि उनकी कुभावनाओं को सिंचन मिलता रहा तो वे एक दिन बड़े विकृत और कँटीलें झाड़ बन सकते हैं । प्रेम के दो अंगों को पूरी तरह हृदयगंम कीजिये--त्याग और सेवा, दान और सुधार । खेती को पानी की जरूरत है, पर नराई की भी कम आवश्यकता नहीं है । दोनों काम एक दूसरे से कुछ विपरीत जान पड़ते हैं, सहायता और सुधार का एक साथ मेल मिलता नहीं दीखता, यह कार्य बड़ा कठिन प्रतीत होता है। इसलिये तो प्रेम करना तलवार की धार पर चलना कहा गया है । प्रेमी को तलवार की धार पर चलना पड़ता है।

नट अपने घर के आँगन में कला खेलना सीखता है । आप अपने परिवार में प्रेम की साधना आरम्भ कीजिये । शिक्षा से अपने प्रियजनों के अन्तःकरणों में ज्ञान की ज्योति जलाइये, उन्हें सत्, असत का विवेक प्राप्त करने में सहायता दीजिये, परन्तु सावधान ! यह कार्य गुरु की तरह आरम्भ न किया जाय अहंकार का इसमें एक कण भी न हो । सेवा का दूध अहंकार की खटाई से फट जायेगा । अहंकारपूर्वक उपदेश करेंगे तो तिरस्कार और उपहास ही हाथ लगेगा, इसलिये जिसमें जो सुधार करना हो, वह विनयपूर्वक उसे सलाह देते हुये कहिये या करिये । ''धीरे-धारे, बार-बार और सद्भावना से'' ढाक को चन्दन और् कौए को हंस बनाया जा सकता है ।

आप प्रेम की महान साधना में प्रवृत्त हो जाइये । त्याग और सेवा को अपना साधन बनाइये, आरम्भ अपने घर से कीजिये । आज से अपनी पुरानी दुर्भावनाएँ मन के कौने-कौने से ढूँढ़कर निकालिये और उन्हें झाड़-बुहारकर दूर फेंक दीजिये। प्रेम की उदार भावनाओं से अन्तःकरण को परिपूर्ण कर लीजिये और सगे-सम्बन्धियों के साथ त्याग एवं सेवा का व्यवहार करना आरम्भ दीजिये । कुछ क्षणों के बाद उपरान्त आप एक चमत्कार हुआ देखने लगेंगे । आपका यही छोटा सा परिवार जो आज शायद कलह-क्लेशों का घर बना हुआ है, आपको स्वर्ग-शान्ति का घर दीखने लगेगा । आपकी प्रेम-भावनाएँ आसपास के लोहों से टकरा आपके पास ही लौट आवेंगी और वे आनन्द के भीने-भीने सुगन्धित फुहार छिड़ककर प्रेम के रंग में सरोवर कर देंगी। प्रेम की पाठशाला का आनन्द अनुभव करके ही जाना जा सकता है । बिलम्ब मत कीजिये, आज ही आप इसमें भर्ती हो जाइये ।

एक काला-कलूटा आदमी जिसे आप पूर्णतया कुरूप, गँवार तथा असभ्य कह सकते हैं अपनी स्त्री के लिये कामदेव सा रूपवान और इन्द्र के समान सामर्थ्यवान है । जैसे शची अपने इन्द्र को पाकर प्रसन्न है, उसकी सेवा करती है और अपने को सौभाग्यशालिनी मानती है वैसे ही एक भीलनी अर्धनग्न, धनहीन भील को पाकर प्रसन्न है । विचार कीजिये कि इसका कारण क्या है ? जो आदमी सबको कुरूप और गन्दा लगता है वह स्त्री को इतना प्रिय क्यों लगता है । इसका कारण है--प्रेम ! प्रेम एक प्रकार का प्रकाश है, अँधियारी रात में आप अपनी बैटरी को बत्ती से किसी वस्तु पर रोशनी फेंके तो वह वस्तु स्पष्ट रूप से चमकने लगेगी। जबकि पास में पड़ी हुई दूसरी अच्छी-अच्छी चीजें भी अँधियारी के कारण काली-कलूटी और श्रीहीन सी मालूम पड़ेंगी, तब वह वस्तु चाहे सस्ती या भद्दी क्यों न हो, बैटरी का प्रकाश पड़ने के कारण स्पष्ट तथा चमक रही होगी, अपने रंग-रूप का भला प्रदर्शन कर रही होगी, आँखों में जँच रही होगी । प्रेम में ऐसा ही प्रकाश है । जिस किसी से भी प्रेम किया जाता है वही सुन्दर, गुणकारी, लाभदायक, भलामूल्यवान, मनभावन मालूम होने लगता है । माता का दिल जानता है कि उसका बालक कितना सुन्दर है । अमीर अपने हीरे, जवाहरात और महल-तिवारी की जैसी कीमत अनुभव करते हैं गरीबों को अपनी टूटी-फूटी, झोंपड़ी, फटे-पुराने कपड़े और मैले-कुचेले सामान से वैसी ही ममता होती है ।

किसी वस्तु को कुछ से कुछ बनाने के लिये एक शक्तिशाली धारा की आवश्यकता है । लोहे को स्वर्ण, लघु का महान बनाने के लिये एक बलवान् सत्ता चाहिये । मनुष्य जीवन में भी एक ऐसी सत्ता मौजूद है जो नीरस उदासीन और तुच्छ वातावरण को दिव्य एवं स्वर्गीय बना देती है । यह सत्ता है--प्रेम । निर्जीव मशीनें बिजली की धारा का स्पर्श करते ही धड़धड़ाती हुई चलने लगती है, अँधेरे में पड़े हुए बल्ब बटन दबाते ही प्रकाशित हो जाते हैं, बन्द रखा हुआ पंखा विद्युत की धारा आते ही फर-फर करके घूमने लगता है और अपनी हवा द्वारा लोगों को शीतल कर देता है, प्रेम एक सजीव बिजली है, वह जिसके ऊपर पड़ती है उसे गतिशील बनी देती है । निराश, उदास, रूखे, गिरे हुये और झुँझलाये, झल्लाये हुये लोगों को एकदम परिवर्तित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर देती है । वे आशा, उत्साह, उमंग, प्रसन्नता और प्रफुल्लता से भर जाते हैं । देखा गया है कि उपेक्षा और तिरस्कार ने जिन लोगों को दुर्जन बना दिया था, वे प्रेम की डली चखकर बड़े उदार सद्गुणी और सज्जन बन गये । दीपक स्नेह की चिकनाई को पीकर जलता है मनुष्य का जीवन भी कुछ ऐसा ही है जिसे स्नेह से सींचा गया है उसका दिल हरा-भरा और फला-फूला रहेगा । जो स्नेह से वंचित है वह रूखा, झुँझलाया हुआ निराश और अनुदार बन जायेगा । इसलिये दूसरों को यदि अपना इच्छानुवर्ती, मधुरभाषी, प्रिय व्यवहारी बनाना है तो इस निर्माण कार्य के लिए प्रेम चाहिये । अंधकार को प्रकाश में, निर्जीवता को जीवन में, मरघट को उद्यान, बदल देने की शक्ति का नाम प्रेम है । इतनी चमत्कारपूर्ण, सजीव, परिवर्तन, कर सकने वाली शक्ति को यदि पारस कहा जाता है तो कुछ अत्युक्ति नहीं है ।

प्रेम--चैतन्य आत्मा को सर्वोत्तम गुणों का प्रतिनिधित्व करता है । जड़ वस्तुओं का यह नियम है कि खिंचकर आपस में एक-दूसरे से मिलने का प्रयत्न करती हैं, धूलि में मिले हुये धातुओं के कण आपसी आकर्षण शक्ति के बल से खिंच-खिंचकर एक स्थान पर इकट्ठे होने शुरु होते हैं और एक दिन बड़ी-बड़ी खानें जमा हो जाती हैं । यह आकर्षण शक्ति चैतन्य तत्वों में और भी तीव्र होती है । जड़ तत्वों को देखिए, उनका जीवन एक दूसरे को कुछ दान करने और प्रेम से निकटस्थ होने के लिए हर घड़ी क्रियाशील हो रहा है । नाले, नदियों के साथ अपने को आत्मसात् कर देने के लिए दौड़ रहे हैं और नदियाँ सागर की ओर भागी जा रही हैं । इनमें से कोई अपने संकुचित स्वार्थ में तल्लीन नहीं है ।

क्या आपने कभी सोचा है कि मलमूत्र की इस गठरी में बँधने के लिए यह सत्यं, शिवं, सुन्दरं आत्मा क्यों रजामन्द हुआ ? जन्म-मरण के इन दुःखदायी ग्रन्थियों में उलझकर नाना प्रकार की यातनाएँ सहने के लिए वह क्यों तत्पर हो गया ? सुनिए, हड्डियों को इस अपवित्र गठरी में बँधने को वह इसलिये तैयार हुआ है कि परमात्मा की पुण्य सृष्टि में प्रेम का जो अमृत हिलोरें ले रहा है , उसका रसास्वादन करूँ । इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों को दौड़ती हैं, कान मधुर संगीत सुनना चाहते हैं, आँखें सुन्दर दृश्य देखना चाहती हैं, जिव्हा सुस्वादु चाहती है, स्पर्शेन्द्रिय स्पर्श सुख चाहती है । इसी प्रकार आत्मा का एक विषय है, वह प्रेम के अमृत में गोते लगाकर अविरल आनन्द लूटना चाहती हैं । इसलिए तो यह स्वर्ग-अपवर्गों के सुख को छोड़कर इस भूलोक में अवतार लेता है । रीछ अपनी झाड़ी में से तब बाहर निकलता है, जब उसे शीतल वायु का आनन्द लाभ करने की इच्छा होती है, सर्प अपने बिल से बाहर ओस चाटने के लिए आता है, कोयल बसन्त सुख लूटने आती है, खंजन पक्षी शरद ऋतु में प्रकट होता है । आत्मा का भोजन प्रेम है । राजा के राजकुमार अपने पिता के राज्य का सौन्दर्य देखने के लिये भ्रमण करते हैं, प्राणधारी आत्माएँ परमात्मा की सृष्टि का प्रेम सौन्दर्य निहारती आती है और इच्छित वस्तु को प्राप्त कर लेने पर अपने स्वस्थान को लौट जाती है ।

हमें बार-बार जन्म इसलिये धारण करना पड़ता है कि प्रेम की प्यास बुझा नहीं पाते । मोह-ममता की मृग-तृष्णा में मारे-मारे फिरते हैं, और भव-बन्धन में उलझते फिरते हैं। जिस दिन हमें सद्गुरु की कृपा से यह समझ आ जायगी कि जीवन का सार प्रेम है उस दिन हम शाश्वत प्रेम को अन्तःकरण में से ढूँढ़ निकालेंगे । हमारे अन्तःकरण में जिस दिन प्रेम का, भक्ति का, अविरल स्रोत फूट निकलेगा, जिस दिन प्रेम नदी में आत्मा स्नान कर लगी, जिस दिन प्रेम का सागर हमारे चारों ओर लहरावेगा, उसी दिन आत्मा को तृप्ति मिल जायगी और वह अपने मुक्ति धाम को लौट जायगी।

प्रेम का अर्थ है--त्याग और सेवा ! सच्चा प्रेमी अपने सुखों की तनिक भी इच्छा नहीं करता वरन् जिस पर प्रेम करता है उसके सुख पर अपने को उत्सर्ग कर देता है । लेने का उसे ध्यान ही नहीं आता, देना ही एकमात्र उसका कर्त्तव्य हो जाता है ।

आत्मवत् सर्व भूतेषु

"आत्मवत् सर्व भूतेषु" की शिक्षा आध्यात्मवाद की व्यवहारिक प्रक्रिया है । श्रेष्ठ नागरिक बनने का मर्म इसमें है कि अन्य लोगों को अपने समान समझा जाय । दूसरे शब्दों में इसी बात को यों कह सकते हैं कि 'दूसरों से वैसा व्यवहार करना चाहिये जैसा कि आप अपने लिये चाहते हैं ।' आप जैसा व्यवहार अपने साथ होता हुआ देखकर प्रसन्न होते हैं, जिस आचरण की दूसरों से आशा करते हैं वैसा ही आप स्वयं भी दूसरों के साथ कीजिए । दूसरों के सुख में सुखी होने से मुफ्त में ही सुख प्रचुर मात्रा में मिल जाता है जिसको प्राप्त करने में बहुत खर्च करना पड़ता है । सुख के लिये बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है । यदि आप दूसरों को सुखी देखकर प्रसन्न हुआ करें, दूसरों की बढ़ती देखकर आनन्द अनुभव किया करें तो अनायास ही सुखी होने के असंख्य अवसर प्राप्त होते रह सकते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पास-पड़ौस में, सगे-सम्बन्धियों में परिचितों-अपरिचतों में ईश्वर की कृपा से सुखदायक घड़ियों का आगमन हुआ ही करता है । यदि उनकी बढ़ती को देखकर उदार हृदय व्यक्ति की नाईं खुश होने की आदत डाली जाय तो निस्सन्देह अपने आनन्द की सीमा अनेक गुनी बढ़ सकती है । जिसके घर में मुफ्त का माल आकर जमा हो जाता है, उसका हर घड़ी प्रसन्नता से पूर्ण रहना स्वाभाविक है आनन्द और सुख की प्राप्ति के लिए आप लालायित हैं यदि 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' का मंत्र हृदयंगम करके अपना आत्मभाव दूसरों के साथ जोड़ दें उनके सुख में अपने को सुखी करने का अभ्यास करें तो जिसके लिए आप लालायित हैं उस वस्तु को आसानी से पा सकते हैं । वाटिका में खिले हुए पुष्पों को देखकर, सुन्दर चित्रों को देखकर, मन-मोहक प्राकृतिक दृश्यों को देखकर आपका चित्त प्रसन्न हो जाता है, जड़ पदार्थों का वैभव देखकर दिल की कली खिल उठती है तो क्या कारण है कि चैतन्य, स्वजातीय प्राणियों में उत्कर्ष पर हृदय आनन्द से पुलकित नहीं होता ? ईर्ष्या, डाह, कुढ़न, जलन के दुर्गुणों को आपने यदि अपना नहीं लिया तो कोई कारण नहीं कि अपने सुखी मित्रों के सौभाग्य पर आनन्द प्रकट न करें ।

दूसरों के दुःख में दुःखी होने की वृत्ति को आप दया, करुणा, उदारता, सेवा, सहायता जैसी अमूल्य निधियों को प्रचुर मात्रा में संचय कर सकते हैं । यह संचय कुछ मूल्यवान नहीं हैं । दूसरों के दुःख में दुःखी होने से तामसी कष्ट नहीं होता, जो कष्ट होता है उसे पीड़ा नहीं कहते, पराये दुःख में दुःखी होने की वृत्ति को शब्दों में दुःख अवश्य कहा जाता है पर यथार्थ में वह एक प्रकार का आर्द्र-सुख है । दूसरों को कष्ट से देखकर फोड़े के समान दर्द, ज्वर के समान ताप नाश-धन की तरह वेदना या पुत्र मृत्यु की तरह हाहाकारी क्रन्दन उत्पन्न नहीं होता । वरन् कर्तव्य की प्रेरणा करने वाली एक कसक उठती है, जो प्रेम की तरह मीठी, श्रद्धा की तरह पवित्र, और करुणा की तरह तरल होती है । वह दुःख स्वर्गीय शान्ति को अपने अन्दर छिपाये रहता है पराये दुःख को देखकर जो आँसू गिराता है वह भीतर के अनेक पापों को बहा ले जाता है और सदैव को हलका तथा पवित्र बना देता है ।

पराये सुख में सुखी और पराये दुःख में दुःखी होने की वृत्तियाँ परम सात्विक एवं उच्च कोटि की हैं, इनका संचार जिसके अन्दर होने लगता है उसको भीतर ही भीतर शान्ति और सन्तोष की आनन्ददायक सरिता बहती हुई दृष्टिगोचर होती है । अन्य सद्गुणों और उत्तम स्वभावों की खेती इस शीतल जल को प्राप्त करके फलने-फूलने लगती है । केवल अपने ही हानि-लाभ से प्रभावित होने वाले और दूसरों की स्थिति में कुछ भी दिलचस्पी न लेने वाले स्वार्थी लोग बहुत ही सीमित क्षेत्र में बँधे रहते हैं, वे ऐश-आराम या सुख-दर्द की निकृष्ट कोटि का हर्ष विषाद अनुभव करते रहते हैं । सात्विक और उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियाँ स्वार्थ में ही नहीं परमार्थ में मिलती हैं । जिनके पराये सुख-दुःखों में दिलचस्पी है, वे ही इस ऊँचे आनन्द का अनुभव कर सकते हैं ।

आप दूसरों से यह आशा करते होंगे कि यदि कोई व्यक्ति कुछ चीज उधार ले जाय तो उसे अच्छी हालत में ठीक समय पर वापिस कर दें । यदि किसी ने कुछ वचन दिया है तो उसे यथोचित रूप से पालन करें । सभ्य व्यवहार की, समय की, पाबन्दी की, दूसरों से आशा की जाती है और यह ख्याल किया जाता है यदि कुछ कष्ट हमारे ऊपर आ पड़ेगा तो अन्य लोग हमारी सहायता करेंगे । जिस प्रकार की आशाएँ आप दूसरे लोगों से करते हैं ठीक वैसे ही दूसरे आप से करते हैं । यह भलमनसाहत का तकाजा है । मनुष्यता के प्रारम्भिक कर्तव्यों का पालन करना हर मनुष्य का फर्ज है । सार्वजनिक स्थानों का उपयोग करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि हमारे व्यवहार से किसी को अनुचित कष्ट न पहुँचे । छत के ऊपर से सड़क पर कूड़ा फेंकना, आम रास्ते पर केले या नांरगी के छिलके फेंकना, छड़ी या छाता हिलाते चलना, रेल, धर्मशाला या पार्क में बैठने के स्थान को जूठन से गन्दा करना, नल आदि के निकट थूकना या नाक साफ करना, इस प्रकार के कार्य करते समय लोग यह परवाह नहीं करते कि हमारे इन कार्यों से अन्य लोगों को कितना कष्ट होगा। छत से फेंका गया कूड़ा रास्ते चलते आदमी पर गिरकर उसे गन्दा कर सकता है, सड़क पर पटके गये केले के छिलके पर चलने वाले का पैर फिसल सकता है, छाता या छड़ी हिलाते चलने में किसी की आँख फूट सकती है, टिकिट खरीदते समय या सभा मण्डप में प्रवेश करते समय धक्का-मुक्की करके आगे धँस जाने के प्रयत्न में सबकी कठिनाई बढ़ सकती है । सार्वजनिक जगह पर जूठन, कूड़ा या नाक, थूक डालने से अन्य लोगों के चित्त में घृणा और रोष उत्पन्न होता है । क्या यह व्यवहार सभ्योचित है ? कोई नहीं चाहता कि ऐसे बेढंगे बरताव का उसे सामना करना पड़े, इसलिए उसे भी चाहिए कि इस प्रकार का बुरा आचरण स्वयं भी न करें ।

संसार की हर एक जड़ चेतन वस्तु चाहती है कि मेरे साथ सद्व्यवहार हो । जिसके साथ दुर्व्यवहार करेंगे वही बदला लेगी । छाते को लापरवाही से पटक देंगे तो जरूरत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ने पर उसकी टाँगें टूटी और कपड़ा फटा पावेंगे । जूते के साथ लापरवाही समझेंगे तो वह तो काट लेगा या जल्दी टूट जायेगा । सुई को जहाँ तहाँ पटक देंगे तो वह पैर में चुभकर अपनी उपेक्षा का बदला लेगी, कपड़े उतारकर जहाँ-तहाँ डाल देंगे तो दुबारा तलाश करने पर वे मैले, सलवट पड़े हुए, दाग-धब्बे युक्त मिलेंगे । यदि आप घर की सब वस्तुओं को सँभालकर रखेंगे तो वे समय पर सेवा करने के लिये हाजिर मिलेंगी । ढूँढ़ने में बहुत-सा समय बर्बाद करना पड़ेगा और नष्ट-भ्रष्ट दशा में देखना पड़ेगा । इसी प्रकार यदि अपने समान सबको समझकर यथोचित नीति बरता करेंगे अन्य लोगों से भी आप बहुत अंशों में वैसे ही व्यवहार की आशा कर सकते हैं । स्त्री, पुत्र, भाई, बहिन, माता, पिता, मित्र, सम्बन्धी, परिचित, अपरिचित यदि आपसे भलमनसाहत का व्यवहार पावेंगे तो बदले में उसी प्रकार का बर्ताव लौटा देंगे ।

'बचन का पालन करना' इस पवित्र कर्तव्य को जहाँ तक हो सके पूरा करने का शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिये। अक्सर देखा जाता है कि मोची, धोबी आदि को कोई काम दिया जाय तो इसका भरोसा नहीं रहता कि मेरी मजदूरी का पैसा समय पर मिल जायेगा । फलतः दोनों अनिश्चित रहते हैं और झूठी आवश्यकता बताकर तकाजे पर तकाजा जारी रखते हैं । कभी-कभी तो जितने पैसे का काम नहीं होता उससे अधिक कीमत का समय काम कराने वाले महाशय से मजदूरी के पैसे प्राप्त करने में खर्च हो जाता है । निमन्त्रण देने वाले को यह विश्वास नहीं होता कि निमन्त्रित महानुभाव ठीक समय पर उपस्थित होंगे, और न निमन्त्रित व्यक्ति को यह यकीन होता है कि ठीक समय पर पहुँच जाऊँगा तो भोजन तैयार मिलेगा । यही हाल सभाओं का होता है । सुनने वाले यही नहीं समझते कि ठीक समय पर सभा की कार्यवाही आरम्भ होगी और न सभा का आयोजन करने वाले यह इत्मीनान रखते हैं कि सुनने वाले और लापरवाही की सम्भावना का ख्याल करके दोनों पक्ष देर करते हैं और इस मराठी घिस-घिस में बहुत सा बहुमूल्य समय बर्बाद हो जाता है । हमारे चरित्र की यही भारी कमी है । अध्यात्मवाद का उपदेश है कि दूसरों को अपने समान समझिये । यदि दूसरों से 'बचन का पालन करना चाहते हैं तो पहले इसका आरम्भ अपने ऊपर से कीजिये ।'

दूसरों को अपने समान समझने का तात्पर्य इतना ही है कि अन्य लोगों के सुख-दुःख को भी उसी दृष्टि से देखिए मानो वह अपने ऊपर बीत रहा हो । इस प्रकार विचार करने से आत्म-भाव विस्तृत होता है, न्याय बुद्धि जागृत होती है और कर्तव्य की प्रेरणा ऊँची उठने लगती है । अपने लिए किस प्रकार का व्यवहार चाहते हैं ? इस आवश्यकता को अनुभव करते रहिए और जब कभी ऐसा प्रसंग उपस्थित हो कि अमुक व्यक्ति के साथ किस प्रकार व्यवहार करें तब यह देखना चाहिए कि हम इस व्यक्ति की परिस्थिति में होते और यह व्यक्ति हमारी स्थिति में होता तो इसका क्या कर्तव्य निर्धारित करना ठीक होता, उसी को अपना कर्तव्य मानकर पालना करना आपके लिए उचित एवं आवश्यक है ।

यदि आपका बच्चा मेले में खो जाय तो आप यह आशा करेंगे कि मेले वाले लोग अपना काम हर्ज-खर्च करके आपके बच्चे को घर तक पहुँचा जावें । यदि दूसरे का बालक आप कहीं खोया हुआ पावें तो ठीक वैसा ही कार्य करें, अपने निजी को काम में थोड़ा हर्ज करके भी उस बालक को यथास्थान पहुँचाने का प्रयत्न करें, यह कार्य **'आत्मवत् सर्व भूतेषु'** के अनुसार पवित्र आध्यात्मिक कर्तव्य होगा । इसी प्रकार दूसरों की सेवा सहायता के अन्य अवसरों पर जहाँ तक सम्भव हो अपना कर्तव्य पालन करना न चूकना चाहिए । साथ ही उचित और आवश्यक होने का भी ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि चाहने को तो लोग यहाँ तक चाहते हैं कि कोई ग्रास तोड़कर उनके मुँह में रख जाय, अपने कपड़े-लत्ते उनके सुपुर्द कर जाय । ऐसी इच्छाएँ अनुचित अनावश्यक एवं अन्यायमूलक हैं, उनको पूरा करने से अकर्मण्यता बढ़ती है, इसलिए ऐसी इच्छाओं को पूरा करने में सहयोग देना ठीक नहीं । अपनी जिस सहायता से दूसरों का ज्ञान-वृद्धि होती है, आगे का मार्ग प्रशस्त होता है, अकस्मात आयी हुई आपत्ति का निवारण होता है, उनमें निस्वार्थ भाव से सहायता करना कर्तव्य है ।

जिन लोगों से कुछ सहयोग मिलता है उसका बदला चुकाना तो आवश्यक है ही क्योंकि ऋण चुकाये बिना छुटकारा नहीं मिल सकता । यदि किसी ने आपके ऊपर उपकार किया है तो या तो उसी का प्रत्योपकार कीजिये, अन्यथा किसी ऐसे अन्य व्यक्ति के साथ उपकार करके चुकाइये जिससे आपको कोई निजी स्वार्थ न हो । निजी स्वार्थ का तात्पर्य यह है कि अपनी स्त्री को साड़ी खरीद कर देकर आप उपकारी नहीं कहा सकते, यह तो स्त्री की सेवा का पुरस्कार है, यह उसको कुछ चाहने के लिए दिया हुआ कर्ज है । यदि शीत से ठिठुरते हुए किसी अनाथ बालक को एक पुराना कपड़ा देते हैं और उससे बदले की कुछ आशा नहीं करते तो वह उपकार है। दूसरों ने आपके ऊपर कुछ उपकार किये हैं और वे उपकारी महानुभाव अब सामने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं हैं अथवा प्रत्युपकार नहीं लेते तो उसका बदला किसी निस्वार्थ उपकार द्वारा चुकाया जा सकता है ।दूसरों द्वारा जो उपकार आपके ऊपर हुए हैं उनका स्मरण कीजिये ढूँढ़-ढूँढ़कर उनकी एक सूची बनाइये और अपने ऊपर रखे हुए इन भारों को हलका करने के लिए सदैव व्यग्र रहिये । जो भारी है वह वेग के साथ नीचे को गिरता है जिसे ऊँचे पर्वतों पर चढ़ना है उसे अपने बोझों की संख्या जितना भी हो सके कम करनी चाहिए, तभी तो सत्य के ऊर्ध्व मार्ग पर चढ़ना सरल हो सकेगा । कर्ज आज नहीं तो कल आपको चुकाना ही है, बिना उस कर्ज को चुकाये काम चल नहीं सकता । इसलिए आज की समर्थ स्थित में ही उसे चुकाने का प्रयत्न करिए अन्यथा सम्भव है भविष्य में शक्तियाँ कम हो जायँ और उस निर्बल दशा में बलात् वसूल किये जाने पर अधिक कष्ट उठना पड़े ।

दूसरे लोगों के साथ जैसा आप व्यवहार करते हैं प्रत्यक्षतः ठीक वैसा ही बदला उन व्यक्तियों द्वारा प्राप्त न हो तो उतावला न होना चाहिए और न भलाई के सिद्धान्त पर अविश्वास करना चाहिए । जिसके साथ में उपकार किया गया है वह बदला देने की स्थित में न हो तो भी वह अकारथ न जायेगा । सम्पूर्ण आत्माएँ एक ही परम आत्मा की अणु सत्ताएँ हैं । एक प्याले में पानी भरा हो और उसके किसी भी भाग में नमक या शक्कर डाल दें तो प्याले भर का पानी नमकीन या मीठा हो जायेगा । इसी प्रकार एक आत्मा के प्रति जो व्यवहार किया गया है वह सामूहिक आत्मा को प्रभावित करता है और वह उसके लिये वैसा ही फल उपस्थित करता है । सम्पूर्ण पृथ्वी एक है पर अपने खेत में जिसने जो बोया उसे वही अनाज मिल जाता है । परमात्मा की सत्ता में आपने उपकार जो बीज बोये हैं वह अन्य घटना को लेकर वैसा ही फल उपस्थित करते हैं । दयावान् और भले मनुष्यों के साथ अपरिचित मनुष्य भी उचित व्यवहार करते हैं कारण यह है कि उनके चेहरे पर जो भलमनसाहत की रेखाएँ खिंची रहती हैं उससे अन्य व्यक्तियों को अनायास ही आकर्षित होना पड़ता है । दो-चार अपवादों को छोड़कर अधिकतर भले आदमियों को परिचित और अपरिचितों से भलमनसाहत का व्यवहार ही प्राप्त होता है ।

जिन लोगों में साधारणतः कोई मन-मुटाव या संघर्ष नहीं होना चाहिए उनमें भी अक्सर मनोमालिन्य पाया जाता है । दोनों पक्ष यह चाहते हैं कि झगड़ा न रहे और मेलजोल से सब काम चलता रहे, फिर भी झड़पें होती रहती हैं, एक दूसरे पर दोषारोपण का सिलसिला चलता रहता है । कारण यह है कि दूसरे का दृष्टिकोण समझने में गलती की जाती है । लोग एक भारी भूल यह करते हैं कि अपने जैसे स्वभाव, विचार, ज्ञान, इच्छा, रुचि, संस्कार का दूसरों को मानकर आशाएँ बाँधते हैं । लेकिन हर आदमी का स्वभाव, विचार संस्कार, ज्ञान विवेक, पृथक् हो जाता है, ईश्वर ने कोई दो व्यक्ति एक समान नहीं बनाये हैं हर एक में अपना निजी व्यक्तित्व, निजी स्वभाव और निजी ज्ञान होता है, जिसका दायरा जितना है वह उसी मर्यादा के अनुसार इच्छा और रुचि रखता है अपने ज्ञान की मर्यादाओं के अनुसार ही प्रभाव ग्रहण करता है । यदि इस भिन्नता के तथ्य को अच्छी तरह समझ लिया तो बहुत सी गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं । अपने ज्ञान एवं सुधार का दूसरों को समझ लेने से उसके कार्य और विचार मनमर्जी न होने पर क्रोध उत्पन्न होता है या दुर्भावों की जड़ जमती है, किन्तु यदि सब धान वाईस पसेरी मान लेने की गलती न की जाय तो आधे से अधिक लड़ाई-झगड़े शान्त हो सकते हैं ।

जिनके स्वार्थों में विरोध है, जिनमें एक दूसरे को नष्ट करके स्वयं प्रभुत्व जमाने की इच्छाएँ प्रबल हो रही हैं उनका मामला दूसरी प्रकार का है, पर जिनमें स्नेह और मनमुटाव साथ-साथ रहते हैं अभीष्ट न चाहते हुए भी कुढ़ते रहते हैं, उनके मन में वास्तविक स्वाभाविक न मिट सकने वाला संघर्ष नहीं होता वरन् भ्रमजन्य धारणाओं के मनोभावों को ठीक न समझने के कारण एक गलतफहमी उपज पड़ती है जिससे जिनके हृदय एक होने चाहिए थे उनमें कपट और सन्तोष बढ़ने लगता है । आप अपने ज्ञान, स्वभाव और संस्कार के आधार पर हर बात को सोचते हैं उसी प्रकार दूसरे भी अपने ढंग में सोचते हैं । जैसे अपने स्वभाव, संस्कार और विवेक द्वारा आप कुछ इच्छा, आशा करते हैं वैसे ही दूसरे लोग भी अपनी योग्यताओं के अनुसार स्वतंत्र रीति से इच्छा-आशा करते हैं । 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' सिद्धान्त की प्रतिध्वनि है कि अपने गज से सबको मत नापिए वरन् उसकी स्वतंत्र गज स्थित को नापकर तब कुछ धारणा बनाइये, उसी के अनुसार उतनी ही मात्रा में उससे आशा कीजिये ।

किसी मनुष्य की मानसिक धारा समझने के लिये अपने को उसकी स्थिति में रखकर तब फिर विचार करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए । यह अभ्यास अधिक दिनों में होता है अपने आपको बिलकुल भुला दीजिये इसका जरा भी स्मरण मत आने दीजिये कि हमारी भीतरी और बाहरी स्थिति क्या है । जिस-जिस आदमी की मनोदशा जानना चाहते हैं अपने को उसी स्थिति में ले जाइये, ज्ञान, स्वभाव और संस्कार जो उसके हैं उन्हें ही अपने ऊपर आरोपित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर लीजिये । नाटकों में अभिनय करने पात्र नक़ल बनाने की पूरी कोशिश करते हैं, वे वेषभूषा और बोलचाल की नकल करते हैं । आपको मानसिक दशा की नकल करनी है, यह नकल इतनी स्वच्छ होनी चाहिए कि आप करीब-करीब असलियत तक पहुँच जावें । अनायास, अकारण ऐसे अभ्यास किया कीजिये । जब आपका चित्त शान्त हो और फ़ुर्सत का वक्त हो तो पास में दिखाई पड़ने वाले किसी आदमी की स्थिति में पहुँचने का अभ्यास करिये । तब आप देखेंगे कि जो आदमी कार्य कर रहा है वह अपनी दृष्टि से ठीक ही कर रहा है । मन की परख करने और विभिन्न अन्तःकरणों में जो पृथकता विराज रही है उसे समझने में जैसे-जैसे आप सफल होते जायेंगे वैसे-वैसे ही संसार का वास्तविक चित्र समझने में सफल होने लगेंगे ।

दूसरे की स्थिति में पहुँचकर आप यह अनुभव कर सकते हैं कि अपनी वर्तमान स्थित के अनुसार यह क्या सोचता है ? क्या चाहता है ? और क्यों असन्तुष्ट है ? रोग का निदान होने पर उसका इलाज सरल होता है इसी प्रकार अपने असन्तुष्ट प्रियजन की मानसिक उलझन का पता चल जाने पर उसका सुलझना भी कठिन नहीं रहता । मनमुटाव का कारण वास्तविक एक चौथाई से भी कम होता है और तीन चौथाई भाग भ्रम का रहता है । आप उसकी स्थिति को नहीं समझते, वह आपकी स्थित को नहीं समझता, दोनों अपने पैमाने से एक-दूसरे को नापते हैं । जिस बात में दूसरा पक्ष जरा भी दुर्भावना नहीं रखता वह बात भी अपनी मनमर्जी न होने का कारण दुर्भावपूर्ण दिखाई पड़ती है । दोनों पक्ष अपने-अपने भ्रम को बढ़ाते हैं, गुत्थी उलझती है, तिल का ताड़ बन जाता है, भीतर ही भीतर नाना प्रकार -के आरोप उठते हैं, और असन्तुष्ट मन लँगड़े लूले तर्कों के आधार उन आरोपों की पुष्टि करता चला जाता है । इस प्रकार काल्पनिक दोषों का जमघट दूसरे व्यक्ति में दिखाई पड़ने लगता है । यह काल्पनिक रचना कभी-कभी तो बिलकुल वे बुनियादी होती है, कभी उसमें थोड़ा बहुत तथ्य भी होता है कि यह देखकर आश्चर्य करना पड़ता है कि इतने छोटे से कारण को लेकर क्यों कर इतना बड़ा विष-वृक्ष उत्पन्न हो गया ।

आप दूसरों का सम्मान करना सीखिए इससे आपके सम्मान की रक्षा होगी । नियम है कि-- ''दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार करिए जैसा अपने लिए चाहते हैं ।'' किसी को ''तू'' कहकर मत पुकारिए । यह असभ्य भाषा का शब्द है जिसको अध्यात्म मार्ग के पथिक को जल्द से जल्द अपने शब्दकोष में से निकालकर बाहर खड़ा कर देना चाहिए। अच्छा हो कि--आप आज से, अभी से ही, इसी घड़ी से ही ''तू'' का उच्चारण भुला देने का प्रयत्न कर देना आरम्भ कर दें । नौकर को, बालकों को, स्त्रियों को, छोटों को, किसी को भी 'तू' मत कहकर पुकारिए । यह अपमान सूचक शब्द जिसके लिए कहा जाता है उसके आध्यात्म गौरव को गिरा देता है । वैसे तो 'आप' शब्द ही सबके लिए ठीक है पर अधिक से अधिक ढ़ील यह रखी जा सकती है कि 'तुम' शब्द का प्रयोग कर लिया जाय । यह 'तुम' भी मधुर स्वर में हल्के ढंग से इस प्रकार प्रयोग करना चाहिए जिसमें आदर सूचक ध्वनि निकलती हो ? जब उस बात को नरमी के साथ कहा जा सकता है और उसका प्रभाव भी अधिक होता है तब नाराज होकर अपना खून सुखाने, दुर्गुण बढ़ाने और दूसरे को चिढ़ाने की मूर्खता करने से फायदे क्या होता है, हम यह नहीं समझते । गाली देना और खासकर गन्दी अश्लील गाली देना तो बिल्कुल हैवानियत है । माँ, बहिन और बेटियों के प्रति सरेआम बेइज़्ज़ती के वचन बोलना यह घोर असभ्यता और निर्लज्जता का चिह्न है। यदि लड़ना हो तो आप लोग सिर फोड़कर लड़ें पर बहिन बेटियों को बीच में न घसीटें । जिव्हा अन्न खाने और दिव्य वचन बोलने के लिए है । इसमें कोई अभक्ष नहीं खाता, उचित है कि इसी श्रेणी के काम 'गन्दी' गाली देने का भी उससे न किया जाय ।

मधुर बोलने की आदत डालेंगे तो दूसरे लोग आपके साथ भी करीब-करीब उसी तरह पेश आवेंगे । कहते हैं कि अपनी इज्जत अपने हाथ में है । जब भलमनसाहत, नम्रता, मधुरता और प्रतिष्ठापूर्ण शब्दावली दूसरों के लिए प्रयोग करेंगे तो विश्वास रखिए वैसा ही मधुर वर्ताव आपके साथ भी होगा । यह दुनियाँ दर्पण के समान है, हर एक को अपना ही मुँह सामने खड़ा दिखाई पड़ता है । दुनियाँ की वाणी कुएँ के प्रतिध्वनि के समान है । पक्के कुएँ की मुँडेर पर खड़े होकर जैसे शब्द बोलेंगे कुएँ में से वैसे ही शब्दध्वनि, प्रतिध्वनि होकर लौट आवेगी । जवान से मीठा बोलेंगे तो कान से मीठा सुनेंगे । 'इस हाथ दे उस हाथ ले' का सीधा सौदा दुनियाँ की हाट में बिका करता है । इस खेत में अपने बोये बीज अनेक गुने होकर उग आते हैं । यदि आप भाषण करते हैं जो दूसरों को आदर सूचक प्रतीत हों तो विश्वास रखिए आप भी अपने लिए वैसा ही व्यवहार पावेंगे, जिसमें आदर भाव की पर्याप्त मात्रा होगी । व्यवहार के साथ आचरण भी सम्बन्धित है । केवल वाणी से ही नहीं, आचरण से भी नम्रता, सुजनता और शिष्टता का संमिश्रण होना चाहिए । यथास्थान बिठाना, स्वागत करना,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिलने की प्रसन्नता प्रकट करना, शिष्टाचार और सभ्यता का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए । हँसी-मजाक का स्वभाव अच्छा है पर उसमें ऐसी उजड्डता, उच्छृखंलता न होनी चाहिए जो दूसरों को अपमानित करे, उनके ऊपर ऐसा प्रभाव डाले कि मुझे तिरस्कृत किया जा रहा है ।

हम अपने दुःख जैसा दूसरों का दुःख समझें, दूसरों के सुख में अपने सुख के समान सुखी हों तो अन्य व्यक्ति भी हमारे प्रति वैसा ही व्यवहार करेंगे । क्रिया की प्रतिक्रिया होती है । हमारा व्यवहार ही लौटकर वापिस आता है । कुएँ की आवाज की तरह हमें वैसा ही प्रत्युत्तर मिलता है जैसे कि अपने शब्द होते हैं । यदि हम दूसरों से आत्मीयतापूर्ण, सज्जनतापूर्ण व्यवहार की आशा करते हैं तो उचित यही है कि हमारा व्यवहार सौजन्यपूर्ण हो । आत्मवत् सर्व भूतेषु का आदर्श पालन करने वालों के ऊपर चारों ओर से आत्मीयता की ही वर्षा होती रहती है ।

क्या आत्मकल्याण के लिए गृहत्याग आवश्यक है

मध्यकाल में यह मानता चल पड़ी कि गृहस्थ त्यागे बिना, संन्यास ग्रहण किये बिना आत्मिक साधना नहीं हो सकती । बौद्ध और जैन धर्मों ने इस विचारधारा का प्रसार किया । बुद्ध ने राज्य परिवार में जन्म लेकर स्त्री-बच्चों को त्यागकर युवावस्था में संन्यास ग्रहण किया था । उनका प्रभाव जिन पर पड़ा उनने भी उनका अनुकरण किया और लाखों नर-नारियों ने पारिवारिक जीवन को तिलांजलि देकर भगवा वस्त्र धारण कर लिए । भारत में सहस्त्रों मठ जगह-जगह पर बन गये जिनमें भारी संख्या में भिक्षु-भिक्षुणी रहने लगे ।

चूँकि यह गृहत्याग आवेश में होता था, अनुकरण ही उसका प्रधान आधार था । संन्यास के लिए जिस पूर्ण भूमिका की आवश्यकता होती है, वह अनजाने में होती न थी । फलस्वरूप कुछ ही समय में बौद्ध मठ दुराचार के केन्द्र बन गये । वज्रयान, हीनयान जैसी तांत्रिक प्रक्रियाएँ उनमें से फूट पड़ीं, भैरवी चक्रों में व्यभिचार प्राप्त हो गया। बिना पूर्व तैयारी के संन्यास, गृहत्याग जैसे अत्यन्त कठिन कार्य को कन्धे पर उठा लेने के लिये जैसे परिणाम होने चाहिये थे वैसे ही हुए ।

प्राचीनकाल में ऐसी पद्धित न थी, संन्यास कोई बाह्यचार न था वरन् एक मानसिक स्थिति मात्र थी । जिस प्रकार ब्रह्मचर्य पूर्ण होकर गृहस्थ धर्म अपनाने पर साधारण और स्वाभाविक मानसिक एवं रहन-सहन सम्बन्धी परिवर्तन अपने आप हो जाता है वैसे ही गृहस्थ से वानप्रस्थ और वानप्रस्थ से संन्यास की मनोभूमियों में प्रवेश करते समय बाह्य जीवन में कोई भारी परिवर्तन नहीं करना पड़ता था ।

ऋषियुग के सभी ऋषि मुनि गृहस्थ थे । उन सबके स्त्रियाँ तथा बच्चे थे । उनमें से कुछ परिव्राजक बनकर भ्रमण का क्रम अपनाते थे या सदा ब्रह्मचारी रहना चाहते थे वे विवाह ही नहीं करते थे, पर ऐसे ऋषियों की संख्या उँगलियों पर गिनने लायक ही थी । अधिकांश तो पारिवारिक जीवन के साथ ज्ञान-धर्म तथा आत्म कल्याण की साधना संलग्न रहते थे ।

सप्त ऋषियों में से सातों ही गृहस्थ थे । कश्यप की पत्नी अदिति, वशिष्ठ की अरुन्धती, अत्रि की अनुसूया, गौतम की अहिल्या, जमदग्नि की रेणुका, भारद्वाज की पैठिनसी, विश्वामित्र की हेमवती थी । इन सभी की संतानें थीं । भृगु, अंगिरा, कृतु पुलह, प्रचेता, मरीचि, पुलस्त, उद्दालक, कण्व, याज्ञवल्क्य, पिप्लाद, धदीचि, श्रंगी, धौम्य, उत्तंग आदि सभी ऋषियों के सपत्नीक तथा सन्तानयुक्त होने का पुराणों में विस्तारपूर्वक वर्णन है ।

उस जमाने में वन अधिक थे । रहन-सहन की पद्धति उस युग के अनुसार ही थी । बड़े नगर थे । नदी सरोवरों के तट पर जल की सुविधा की दृष्टि से छोटे-छोटे आश्रम बनाकर रहने की एक सरल पद्धति सभी लोग अपनाते थे । औद्योगिक तथा यातायात सम्बन्धी सुविधाएँ न होने से समीपवर्ती सस्ती वस्तुओं से जीवन क्रम चलाते थे । भस्म धारण, वल्कल वसन, मृगचर्म, कमण्डल, हिंसक पशुओं से रक्षा के लिए धूनी जमाना उस समय की साधारण जीवन पद्धति थी, इससे वैराग्य का कोई सम्बन्ध न था ।

वैराग्य का अर्थ है-- ''रागों को त्याग देना । राग मनोविकारों को, दुर्भावों और कुसंस्कारों को कहते हैं । अनावश्यक मोह, ममता, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, शोक, चिन्ता, तृष्णा, भय, कुढ़न आदि के कारण मनुष्य जीवन में बड़ी अशान्ति एवं उद्विग्नता रहती है । कितने ही लोग अपने को बड़ा दीन, दुःखी, अभावग्रस्त, संतप्त, अभागा समझते हैं और यह रोना रोते रहते हैं कि हमारे पास अमुक वस्तु नहीं, अमुक स्थिति अनुकूल नहीं, अमुक त्रास है । परन्तु असली बात दूसरी ही होती है । अन्तःकरण में रहने वाले राग-द्वेष, भीतर से उठते हैं और मन में घुमड़ते हैं उन्हीं की विषैली गर्मी से मनुष्य संतृप्त रहता है ।''

तत्वदर्शी सुकरात का कथन है कि--''संसार में जितने दुःख हैं उनमें तीन चौथाई काल्पनिक हैं ।'' मनुष्य अपनी कल्पना शक्ति के सहारे उन्हें अपने लिए गढ़कर तैयार करता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है और उन्हीं से डर-डरकर खुद दुःखी होता रहता है । यदि वह चाहे तो अपनी काल्पनिक शक्ति को परिमार्जित करके अपने दृष्टिकोण को शुद्ध करके इन काल्पनिक दुःखों के जंजाल से आसानी से छुटकारा पा सकता है । अध्यात्म शास्त्र में इसी बात को सूत्र रूप में इस प्रकार कह दिया है कि--"वैराग्य से दुःखों की निवृत्ति होती है ।" हम मन चाहे भोग नहीं भोग सकते । धन की, सन्तान की, अधिक जीवन की, भोग की, एवं मनमानी परिस्थिति प्राप्त होने की तृष्णाएँ किसी भी प्रकार की पूरी नहीं हो सकतीं, एक इच्छा पूरी होने पर अनेक नई दस इच्छाएँ उठ खड़ी होती हैं । उनका कोई अंत नहीं, कोई सीमा नहीं, इस अतृप्ति से बचने का कोई सीधा-साधा उपाय अपनी इच्छाओं एवं भावनाओं को नियंत्रित करना है । इस नियंत्रण द्वारा, वैराग्य द्वारा ही, दुःखों से छुटकारा मिलता है । दुखों से छुटकारे का वैराग्य ही एक मात्र उपाय है ।

वैराग्य हिन्दू धर्म की शिक्षाओं में आदि से अन्त तक ओत-प्रोत है । जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त हर मनुष्य को वैरागी रहने का आदेश है । क्योंकि वैरागी मनुष्य अपने मानसिक सन्तुलन को ठीक रख सकता है । उन्नत, समृद्ध, यशस्वी, प्रतापी एवं पारलौकिक सम्पन्नता के लिए भी वैराग्य की प्राथमिक आवश्यकता है । एक शब्द में यों कह सकते हैं--"जीवन को सुसम्पन्न बनाने का एक मात्र आधार वैराग्य है ।" गीता का कर्मयोग, वैराग्य का ही दूसरा नाम है ।

हर स्थिति के व्यक्ति को सदैव अपना दृष्टिकोण वैराग्यमय रखना चाहिए, यह भारतीय दर्शनशास्त्र का सर्वमान्य सिद्धान्त है । इस सिद्धान्त की चर्चा प्राचीन ग्रंथों में हमें सविस्तार मिलती है । पर कितने दुख की बात है कि आज वैराग्य के अर्थ का अनर्थ कर दिया गया है । इसका तात्पर्य कुछ का कुछ निकाला जाने लगा है । आज हमें वैरागी कहने वालों की एक भारी जनसंख्या निरुद्देश्य बेकारी में समय काटती हुई, मुफ्त की रोटियाँ खाती हुई, इधर से उधर मारी-मारी दीखती फिरती, है । आज के वैराग्य का अर्थ यह समझा जाता है कि घर छोड़कर चल देना, संसार को मिथ्या बताना, उत्तरदायित्व को तिनके के समान तोड़कर फेंक देना, फिर भी संसार के अन्न, वस्त्र, मकान, धन आदि का उपयोग करना । लोक सेवा से सर्वथा दूर रहकर अपनी निजी मुक्ति का स्वर्ग प्राप्ति की खुदगर्जी की बातें सोचते रहना । भाँग, चरस, गाँजा, तम्बाकू आदि नशीले पदार्थों की भरमार रखना, पात्र-कुपात्र का विचार न करके दीनतापूर्वक भीख माँगना; भाग्यवादी, अकर्मण्यता का उपदेश करना, विचित्र प्रकार का वेष बना लेना आदि ।

आज के वैरागियों ने वैराग्य की जो दुर्दशा कर रखी है, आइए उस पर विचार करें और यह देखें कि उनकी कार्यपद्धति ठीक है या नहीं ? छोटे-छोटे बाल-बच्चों को अनाथ बनाकर, तरुण पत्नी वृद्ध माता-पिता को छोड़कर कई लोग घर से भाग खड़े होते हैं, यह कर्म परित्याग किसी भी दृष्टि से उचित नहीं ठहराया जा सकता । प्राचीन समय में ऐसे उदाहरण हमें देखे नहीं मिलते । साधारण जनता अपना साधारण गृहस्थ जीवन बिताते हुए ही वैराग्य का दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास करती थी । पर जो विशेष रूप से वैराग्य साधन का कार्यक्रम बनाते थे वे भी कुटुम्ब को त्यागते न थे । योगेश्वर भगवान शंकर ने दो बार विवाह किया, उनकी पहली पत्नी स्त्री सती और दूसरी पार्वती थीं । गणेश और स्वामिकार्तिक दो पुत्र उनके थे । गीता ने प्रवक्ता योगिराज कृष्ण की कई स्त्रियाँ और कई सन्तानें थीं । शुकदेवजी को ब्रह्मविद्या सिखाने वाले राजा जनक की एक सौ पत्नियाँ थीं । याज्ञवल्क्य ऋषि की कात्यायनी और मैत्रेयी दो स्त्रियाँ थीं । गौतम ऋषि की अहिल्या पत्नी थीं, जमदग्नि की रेणुका स्त्री और परशुराम पुत्र थे । च्यवन ऋषि की सुवन्या पत्नी थी । अत्रि ऋषि की स्त्री अनुसूया थी जिन्होंने सीताजी को पतिव्रत धर्म का उपदेश किया । व्यास जी की पत्नी मत्सोदरी ने शुकदेव को जन्म दिया । वशिष्ठजी के शत पुत्रों को विश्वामित्र जी ने मार डाला । लोमश ऋषि के पुत्र श्रृंगी ऋषि ने परीक्षित को शाप दिया। दुर्वासा ऋषि की शकुन्तला कन्या थी । पुलस्ति ऋषि का पौत्र रावण हुआ । उद्दालक ऋषि के पुत्र नचिकेता थे । उद्दालक वाजिस्रवा के पुत्र थे । द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा था । छाग्दोन्य उपनिषद में अभिमन्यु के पुत्र प्राचीनशाल, पुलुष के पुत्र सत्ययज्ञ, भल्लव के पुत्र इन्द्रद्युम्न शर्कराक्ष के पुत्र जन और अश्वतराश्विका के पुत्र बुडिल इन पाँचों को महाशाल अर्थात् वेद पढ़ाने वाले महा अध्यापक लिखा है, वे पाँचों ऋषि कुमार थे । अरुण के पुत्र आरुणी, उद्दालक के श्वेतकेतु पुत्र था । इन सबकी माताओं के ना अविदित हैं तो भी उनकी माताएँ रही अवश्य होगीं । इस प्रकार उन ऋषियों का सपत्नीक होना निश्चित है । यह आम प्रथा थी । गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए ऋषि लोग वैराग्यमय जीवन बिताते थे । इसमें न तो कोई दोष है और न कभी कोई दोष समझा गया है । आज का वैराग्य तो विचित्र वैराग्य है, उसमें उत्तरदायित्व और कर्तव्य-कर्मों का त्याग ही त्याग समझा जाने लगा है ।

आज के वैरागी दुनियाँ को मिथ्या बताते हैं और लोक सेवा से नाक-भौं सकोड़कर अपने निजी स्वर्गमुक्ति की तरकीब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लड़ाते हैं । पर प्राचीनकाल में यह विचारधारा बहुत बुरी दृष्टि से देखी जाती थी । यह तो एक विशुद्ध खुदगर्जी है । व्यापारी लोग अपने निजी लाभ के लिए धन कमाते हैं । ऐसी दशा में उनके लिए भिक्षा माँगने का अधिकार नहीं है और न वे माँगते ही हैं । इस प्रकार जो व्यक्ति अपने निजी स्वर्ग या मुक्ति की साधना में लगे हुए हैं उन्हें दूसरों से भिक्षा माँगने या दूसरों पर अपनी किसी प्रकार का कोई भार डालने का अधिकार नहीं है । प्राचीनकाल में ऋषिगण इस प्रत्यक्ष सत्य को भली भाँति जानते थे और वे अपने जीवन को लोकोपयोगी कार्यों में लगाये रहते थे । जब अपना सारा जीवन जनता जनार्दन के चरणों में अर्पण कर दिया तो प्रसादस्वरूप दान या भिक्षा के रूप में निर्वाह साधन लेने का भी उन्हें अधिकार था । आज तो वैरागी कहे जाने वाले लोग लोक-सेवा से कोसों दूर भागते हैं और दूध मलाई उड़ाने के लिए तैयार रहते हैं ।

प्राचीनकाल में ऋषि लोग लोक-सेवा में तल्लीन रहते थे । धन्वन्तरि, अश्विनीकुमार, चरक, सुश्रूत, वागभट्ट, शागंरधर आदि ऋषियों ने शरीर विज्ञान स्वास्थ्य औषधि अन्वेषण और चिकित्सा में अपना सारा जीवन लगाया । जनता को रोग मुक्त करके उसे सुखी बनाने के लिए उन्होंने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया । नागार्जुन सरीखे कितने ही वैज्ञानिक रसायन विद्या की शोध करके जनता के लिए उपयोगी ज्ञान सामने लाये । आर्यभट्ट सरीखे ऋषि खगोल विद्या के अन्वेषणों में लगे रहे और ग्रह नक्षत्रों की गतिविधि-की महत्वपूर्ण जानकारी जनता के सामने रखीं । नालन्दा, तक्षशिला जैसे पचासों विश्वविद्यालय उन्हीं के द्वारा चलते थे और संसार में विद्या का प्रकाश किया जाता था । वात्स्यायन जैसे कामशास्त्र के अन्वेषक भी वैरागी ही थे । वाणविद्या द्रोणाचार्य सिखाते थे । नारद जी सदा भ्रमण ही करते रहते थे और एक स्थान के समाचारों से दूसरे स्थान की जनता को अवगत कराते थे । विश्वकर्मा ऋषि शिल्प विद्या के आचार्य थे । चाणक्य राजनीति के अनुपम महारथी थे । समय पड़ने पर परशुराम जी ने अत्याचारी शासकों के विरुद्ध स्वयं फरसा उठाया और उन्हें मिटाकर जनता को अभय किया । अशुरों के नाश के लिए दधीचि ने अपनी अस्थियाँ तक निकाल कर दे दीं । व्यासजी ने अनुपम काव्य पुराण लिखे, सूतजी कथा और उपदेशों द्वारा धर्म प्रचार करते थे । संगीत, साहित्य, व्याकरण, सर्प विद्या, मल्ल विद्या, विमान विद्या, शस्त्र विद्या, अर्थशास्त्र, युद्ध विद्या, मन्त्र विद्या, रसायन विद्या, पशु विद्या आदि अनेकों प्रकार के वैज्ञानिक अन्वेषण ऋषियों के आश्रमों में होते थे और वहाँ से बड़ा महत्वपूर्ण ज्ञान संसार को मिलता था । वे एकान्तसेवी नहीं थे वरन् संसार की गतिविधि पर अपना पूरा नियन्त्रण रखते थे, राजाओं के शासन उनकी इच्छानुसार चलते थे । दशरथ के गुरु वशिष्ठ जी, अशुरों के गुरु शुक्राचार्य, देवताओं के गुरु बृहस्पति जी निमन्त्रण जीमकर दक्षिणा लेने वाले गुरु नहीं थे । उनके नियन्त्रण में ही राजसत्ता की सारी गतिविधि चलती थी ।

आज के तथाकथिक वैरागी 'दुनियाँ से हमें क्या मतलब' की रट लगाते हैं । पर प्राचीनकाल में इस दूषित, ओछे संकीर्ण, दृष्टिकोण को कोई सच्चा वैरागी पास भी नहीं फटकने देता था । भगवान बुद्ध कहा करते थे--"मैं तब तक स्वर्ग या मुक्ति नहीं चाहता जब तक कि संसार का एक भी प्राणी बन्धन में है ।" कहाँ वह बोधिसत्वमयी ऋषियोचित भावनाएँ, कहाँ आज के वैरागियों का खुदगर्ज दृष्टिकोण ? दोनों में जमीन आसमान का अन्तर है । आज देश और जाति की जो दुर्दशा है उसे देखकर सच्चे संत का हृदय पानी की तरह पिघल पड़ता है । प्रतिवर्ष लाखों गौओं के सिर धड़ से अलग हो जाते हैं, असंख्यों स्त्री, बच्चे उदर की ज्वाला शान्त करने के लिए विधर्मी बन जाते हैं । बीमारी, गरीबी, विदेशी शासन की रक्त शोषक दासता, अविद्या, साम्प्रदायिक कलह आदि के कारण भारत माता जर्जर हो रही है । जिसके हृदय में संतपन या वैराग का एक कण भी मौजूद है वह चुप नहीं बैठ सकता, अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार पीड़ित जनता की सेवा के लिए कुछ न कुछ किए बिना उससे रहा ही नहीं जा सकता । ५६ लाख वैरागी जिस काम को भी हाथ में ले लें उसे बात की बात में पूरा कर सकते हैं । पर करें तब न, जब संतपन या वैराग की सचाई उनके पास हो ।

वेष की नकल करने से कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता । सिंह की खाल ओढ़कर गधा सिंह नहीं बन सकता । जिस वेष की नकल करके आज लोग वैरागी कहलाते हैं । वह प्राचीन समय में सर्व साधारण का गृहस्थों का वेष था । प्राचीन समय के महापुरुषों के या देवताओं की तस्वीरे या मूर्तियाँ जो आजकल प्राप्त होती हैं उनमें हम देखते हैं कि वे प्रायः नंगे बदन रहते थे धोती और बहुत हुआ तो कन्धे पर दुपट्टा यही भारतीय पहनाव था । सिर पर सब कोई लम्बे बाल रखते थे । आबादी कम थी, जंगल अधिक थे । छोटे-छोटे गाँवों में झोपड़ी बनाकर निवास करना पड़ता था । लकड़ी की खड़ाऊँ आसानी से बिना खर्च और कठिनाई के बन जाती थीं । वस्त्रों के अभाव में अपने आप मरे हुए मृग आदि पशुओं का चर्म आसन आदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के काम में ले लिया जाता था । दियासलाई उस वक्त थी नहीं, जंगली हिंसक पशुओं को डराने के लिए अग्नि जलती रखी जाती थी, लकड़ियों की कमी न थी, यह धूनी हर घर में सदी ही जलती रहती थी । यह सब रहन-सहन आम जनता का था । सन्तों का, वैरागियों का भी वहीं रहन-सहन था । आज स्थित बदल गई है पुरानी रहन-सहन की नकल करना उतना उपयोगी नहीं रहा है पर आज तो वह नकल वैरागी हो जाने के साइनबोर्ड की तरह काम में लाई जाती है । इस अन्ध अनुसरण में क्या विवेकशीलता है इसे वे नकलची ही समझ सकते हैं । जबकि न तो हिंसक पशुओं के आक्रमण का भय है न लकड़ियों की बहुतायत, दियासलाई की अग्नि प्राप्त की असुविधा ही नहीं रही ऐसी दशा में धूनी जलाने का क्या प्रयोजन है इसे वे ही समझ सकते है ।

विवेकशीलता हमें पुकारती है कि प्राची से प्रकाश का उदय हो रहा है । हमें हर समय विवेक के आधार पर विचार करना पड़ेगा । वैराग्य जैसे महातत्व को हमारे दैनिक व्यवहार में उपयोग करके जीवन को सच्चे अर्थ में आनन्दित बनाना लाभदायक है या वैराग का ऊँटपटाँग आडम्बर करना उचित है ? इस प्रश्न का भी हमें सही उत्तर प्राप्त करना होगा । तभी सही दिशा में अग्रसर हो सकेंगे ।

विचारणीय प्रश्न है कि क्या इन साधु कहलाने वालों का कार्यक्रम ऋषि परम्परा के अनुकूल है । स्त्री-बच्चों को अभाव की स्थिति में छोड़ देना क्या उनके साथ विश्वासघात नहीं है । स्वयं उपार्जन न करके दूसरों की कमाई खाने से क्या उनका श्रम अगले जन्म में चुकाना न पड़ेगा । दूसरों का दिया हुआ दान यदि पाप उपार्जित है तो उसे खाकर क्या अपनी बुद्धि भी भ्रष्ट न होगी । जीवन धारण करने के लिए आवश्यक वस्तुएँ जब तक चाहिए जब तक कि संसार से कोई सम्बन्ध न रखने की बात कैसे बन सकती है । भजन या चिन्तन के समय एकान्त में रहा जाय यह बात तो समझ में आती है पर सारा समय एकान्त में बिताकर दूसरों के सत्संग से स्वयं लाभ उठाने और अपना प्रभाव दूसरों पर छोड़ने की प्रकृया को तोड़ देना क्या मानव जीवन का सदुपयोग कहा जा सकता है । जब कि छै घण्टे के ध्यान भजन में मन पूर्ण रीति से थक जाता है तो सारा समय भजन करते रहने की ही बात क्या सम्भव हो सकती है । जिस समाज का अगणित ऋण अपने ऊपर है उसका ऋण न चुकाकर एकान्त में छिप बैठना क्या ऋण मार बैठने के समान अनैतिक नहीं है ? अनुत्पादक जीवन क्या समाज और राष्ट्र के लिए सारभूत एवं कष्टदायक नहीं है ? आलस्य मे बैठे -बैठे फालतू समय बिताने से क्या अनेकों कुविचार मन में नहीं आवेंगे और "खाली दिमाग शैतान की दुकान" वाली उक्ति चरितार्थ न होगी । लकड़ियों का अभाव होने और हिंसक जन्तुओं को भय न रहने पर भी धूनी जलाना क्या राष्ट्रीय अपव्यय नहीं है । आज जबकि सस्ते और धुल सकने वाले वस्त्र आसानी से उपलब्ध हो सकते हैं, और मृग भी अपनी मौत मरने के बजाय बधिकों, द्वारा मॉस तथा चमड़े के लोभ से मारे जाते हैं तब भी मृग चर्म पहने फिरना क्या ऋषियों की भावना के प्रतिकूल तथा उनका असामयिक अन्धानुकरण नहीं है ? जब दो रुपये में लोटा मिल जाता है तो बीस रुपये में मिलने वाले नारियल के कमण्डल की क्या उपयोगिता है ।

इस प्रकार के कितने ही प्रश्न ऐसे हैं जिन पर विचार करने से यह गुत्ती सुलझी नहीं कि घर त्यागकर संन्यासी बन जाने और आज जिस प्रकार का आस्वाभिक जीवन हजारों साधु बिता रहे हैं इससे उनका स्वयं का तथा जन समाज का जिसके सम्मिलित उत्तरदायित्व से किसी को छुटकारा नहीं मिल सकता, भला किस प्रकार हित साधन हो सकता है ।

ईश्वर को प्राप्त करने में केवल मनोदशा बाधक है, स्त्री बच्चे नहीं ? वैराग्य मोह जनित दृष्टिकोण के त्यागने को कहते हैं। लोभ और ममता को साधु को अपनी कुटी और लंगोटी में भी रह सकती है और वह भी उतनी ही बन्धन रूप हो सकती है जितना विशाल वैभव । आत्म कल्याण के लिए अमुक प्रकार का वेश या अमुक स्थान आवश्यक नहीं, इसके लिए तो आन्तरिक दुर्बलताओं को जीतना पड़ता है । यह कार्य घर के त्याग या संन्यासी का वेष बना लेने से अवश्य ही हो जायेगा इसका कुछ भी निश्चय नहीं । क्योंकि देखा जाता है कि अधिकांश साधु वेषधारी चरित्र और मानसिक स्तर की दृष्टि से साधारण श्रेणी के लोगों से भी गये बीते होते हैं । यदि वेश बदलने से ही आत्मोन्नति होती तो इन इतने बहुसंख्यक साधुओं की क्यों नहीं होती। इसके अतिरिक्त यदि गृहस्थ परमार्थ साधन में बाधक ही है। तो फिर सभी देवता सपत्नीक क्यों हैं । प्राचीनकाल के सभी ऋषि इसे क्यों स्वीकार करते रहे ? अगणित महापुरुष और तत्वदर्शी रहते हुए किस प्रकार परमगति प्राप्त करने के अधिकारी हो सके ?

जो लोग सोचते है कि परमार्थ साधन के लिए गृह त्याग आवश्यक है, या वेष बदले बिना काम न चलेगा, उन्हें भारतीय ऋषि परम्परा और आध्यात्म विद्या के मूल दर्शन पर गम्भीरता से विचार करना होगा । जितना-जितना वे गहराई में उतरेंगे उतना ही निश्चय होता जायेगा के वेश

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बदलने से काम न चलेगा । आत्म-कल्याण के लिए जिस वस्तु के बदलने की आवश्यकता है वह है आन्तरिक दृष्टिकोण, और यह परिवर्तन गृहस्थ में रहकर भी हो सकता है । फिर वेष बदलने की उस अण्ड-बण्ड प्रकृया को क्यों अपनाया जाय, जो आज की परिस्थितियों में अनावश्यक ही नहीं, अवांछनीय भी है ।

इसी व्यक्ति के उच्च आध्यात्मिक भूमिका तक पहुँचने में, जीवन लक्ष्य प्राप्त करने में गृहस्थ धर्म बाधक नहीं है । गृही और विरक्त दोनों ही स्थिति में रहकर ईश्वर की उपासना और आध्यात्मिक साधना कर सकते है । इन दोनों मार्गों में से जिसे जो अनुकूल जँचा है उसे उसने स्वीकार किया है । प्राचीनकाल में अनेकों ऋषि ग्रहस्थ धर्म का पालन करते हुए साधना संलग्न रहे और बहुतों ने एकाकी जीवन को सुविधाजनक समझकर ब्रह्मचारी या संन्यासी रहकर आत्मिक प्रगति की ।

आन्तरिक विकास का संबंध भावना की उत्कृष्टता से है । सत्यनिष्ठता, सदाचार, दया, निस्पृहता, अनासक्ति, निरहंकारिता, ईश्वर उपासना, परमार्थ-भावना आदि सद्वृत्तियों को अपनाने से किसी भी वर्ण आश्रम में रहते हुए मनुष्य लक्ष्य तक पहुँच सकता है । इनके अभाव में वेश धारण कर लेने या घर त्याग देने, अविवाहित रहने जैसी बाह्य प्रक्रियाओं द्वारा ही कोई लक्ष्य प्राप्त करना चाहें तो संभव नहीं ।

सिख-गुरुओं का उदाहरण

संतों के कई सम्प्रदाय ऐसे हैं जिनमें पत्नी न रखने का विधान है, पर कई सम्प्रदाय ऐसे भी हैं जिनमें गृहस्थ जीवन पर कोई प्रतिबंध नहीं है । सिक्ख धर्म भी उन्हीं सम्प्रदायों में से एक हैं जिसके गुरुओं और संतों ने गृहस्थ धर्म में रहकर आत्म-कल्याण और लोक-सेवा का महत्वपूर्ण उदाहरण उपस्थित किया है ।

सिख धर्म के संस्थापक और आदि गुरु नानक का विवाह १९ वर्ष की आयु में हुआ । गृहस्थ होने पर भी वे विरक्त की भाँति भावनाएँ रखे रहे । उनके दो पुत्र हुए । प्रथम उदासीनमत के प्रवर्तक श्रीचंद जी और दूसरे लक्ष्मीदास ।

दूसरे गुरु अंगद देव भी गृहस्थ थे । उनकी धर्मपत्नी का नाम जीवी था, जिससे चार संतान हुईं, दो पुत्र तथा दो कन्याऐं ।

तीसरे गुरु अमरदासजी हुए हैं, उनकी धर्म-पत्नी का नाम राम कुँवर था । उनकी भी चार संतानें थीं, दो कन्यायें, दो पुत्र ।

चौथे गुरु रामदास जी का विवाह गुरु अमरदासजी की कन्या भानी कुँवर से हुआ । उनके तीन पुत्र हुए । पृथ्वीचंद, महादेव और अर्जुन देव । सबसे छोटे पुत्र अर्जुन देव को उन्होंने अपनी गद्दी सौंपी ।

पाँचवे गुरु अर्जुनदेव जी के दो विवाह हुए । पहला मोड़ गाँव के चंदनदास खत्री की कन्या रामदेवी जी के साथ, दूसरा कृष्णचंद की पुत्री गंगादेवी के साथ । प्रथम स्त्री से कोई संतान नहीं थी । दूसरी से भी कई वर्षों तक संतान नहीं हुई । अंत में गंगादेवी के गर्भ से एक बालक जन्मा- हरगोविन्द सिंह, सिख धर्म के वे ही छठवें गुरु बने ।

छठवें गुरु हरगोविन्दजी के तीन विवाह हुए । पहला उल्लेगाँव में नारायणदास की पुत्री दामोदरी के साथ । दूसरा अमृतसर निवासी हरिचन्द की पुत्री नानकी के साथ । तीसरा मंदियाली के दयाराम की पुत्री महादेवी के साथ । प्रथम पत्नी से पुत्र गुरुदत्ता और कन्या बीबी वीरोजी थी । द्वितीय पत्नी से तेगबहादुर और तीसरी पत्नी से तीन पुत्र सूरजमल, हरराम और अटलजी जन्मे । इसी प्रकार गुरु हरगोविन्दजी की तीन पत्नियों से पाँच पुत्र और एक कन्या का जन्म हुआ । इसके साथ ही गुरुजी के एक और विवाह का पता लगता है । एक मुसलमान काजी की कन्या कौल्ला उनके पास किसी प्रकार आ गई । बड़ी रूपवती और बुद्धिमती थी । गुरु साहब उस पर बहुत अनुराग रखते थे। गुरु साहब ने उसके नाम पर अमृतसर के स्वर्ण मंदिर के पास एक सरोवर बना दिया और उसका नाम कौलसर रखा । गुरु हरगोविन्दजी अपने पौत्र- गुरुदत्त के पुत्र हरराय से विशेष प्रेम रखते थे । अतः उन्होंने उन्हें ही अपना उत्तराधिकारी बनाया ।

सातवें गुरु हरराय का विवाह सं० १७०४ में दयाराम की पुत्री कृष्णकौर से हुआ । उससे दो पुत्र हुए, रामराय और हरकिशन । अपने छोटे पुत्र हरकिशन को उन्होंने अपना उत्तराधिकारी घोषित किया । तब वे केवल पाँच वर्ष के थे । गुरु गद्दी प्राप्त करने के तीन वर्ष बाद ही- आठ वर्ष की आयु में वे स्वर्गवासी हो गये । इसलिए उनका विवाह न हो सका । इस प्रकार आठवें गुरु हरकिशनजी अविवाहित ही स्वर्गवासी हुए ।

नौवे गुरु तेगबहादुरजी का विवाह सं० १६८६ में लालचंद की पुत्री गुजरीजी से हुआ । उनके पुत्र गुरु गोविन्दसिंह सं० ११३ में जन्मे ।

दसवें गुरु गोविन्दसिंह के दो पत्नियाँ थीं । उनका बड़ा पुत्र अजीतसिंह मुसलमान आक्रमणकारियों के साथ लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ । दूसरे पुत्र जुझारसिंह ने भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसी प्रकार वीरगति प्राप्त की । दो छोटे पुत्र जोरावरसिंह और फतेहसिंह मुसलमानों द्वारा पकड़े गये और उन्हें जीवित ही दीवार में चुनवा कर मारा गया । इस प्रकार दसवें गुरु गोविन्दसिंह जी के चारों पुत्र धर्म के लिए बलिदान हो गये ।

इस प्रकार दसों गुरुओं की परम्परा गृहस्थ-धर्म की है । यह उचित एवं युग-धर्म के सर्वथा अनुकूल भी है । विरक्त जीवन जन-समाज से सर्वथा दूर जंगलों में एकाकी रहने वाले महात्माओं के लिए अनुकूल हो सकता है पर यदि वे जनसंपर्क में आते हैं तो उने चारित्र्यक पतन की भारी संभावना रहती है जैसी कि आजकल आमतौर से देखी जाती है । आत्म कल्याण के जो पथिक जनसम्पर्क से दूर नहीं रह सकते हैं उनके लिए गृहस्थ धर्म ही उपयुक्त है । इस दृष्टि से सिख गुरुओं ने एक अनुकरणीय परम्परा की स्थापना की है ।

साधनावस्था के सामान्य कार्यक्रम परिवार के सान्निध्य में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रमों में रहते हुए पूरे किये जाते हैं । आन्तरिक दोषों के समाधान के लिए यही स्थिति उचित भी है, क्योंकि सांसारिक जीवन में ही काम. क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर के अवसर आते हैं । उनसे लड़ना और निपटना इन्हीं परिस्थितियों में रहकर सम्भव है । तैरना उसी को आवेगा जो जल में घुसेगा । बेशक उसमें डुबकी लगने का खतरा भी है, पर तैरना सीखना हो तो यह जोखिम भी उठाना ही पड़ेगी । जो डुबकी लगने के डर से पानी से दूर ही रहे वह तैरना क्या सीखेगा ?

जो लोग यह सोचते हैं कि सांसारिक जीवन में अनेक दोष हो सकते हैं इसलिए जंगल में, एकान्त में, विरक्त बनकर रहना चाहिए, उनका रास्ता सुगम तो अवश्य है, कारण कि एकाकी जीवन में बुरी परिस्थितियों के कारण बुराई बन पड़ने का अवसर कम है । पर साथ ही यह जोखिम भी है कि मनोभूमि दुर्बल रह जाती है । प्रलोभन का अवसर आने पर ऐसे एकान्तवासी ही आसानी से फिसल सकते हैं, क्योंकि उन्हें बुराई से लड़ने का और उस पर विजय प्राप्त करने का अवसर ही नहीं मिला । जिसने युद्धक्षेत्र देखा ही न हो ऐसा सैनिक को आसानी से हटाया जा सकता है, पर जो आये दिन लड़ता ही रहता है वह शत्रु चाल की और उसकी काट को भली प्रकार जानता है, ऐसा अनुभवी सैनिक आसानी से नहीं हटाया जा सकता । गृहस्थ अनुभवी सैनिक है । विरक्त तो परीक्षा से डरकर अपनी जान छिपाये बैठा है । वह कठिन प्रसंग आने पर उत्तीर्ण हो जायगा, इसकी आशा कैसे की जाय ?

शास्त्र में ज्ञान-वृद्ध ब्राह्मण को ही संन्यास लेने का अधिकारी माना गया है । यह दोनों शर्तें मनुष्य की पूर्णता का प्रमाण हैं । ज्ञान वृद्ध वह व्यक्ति होता है जो उच्च शिक्षा, विशाल स्वाध्याय चिन्तन, मनन, तत्व-दर्शन और आत्म-ज्ञान द्वारा अपने अंतः करण का पूर्ण समाधान कर चुका हो । अपने संशय, भ्रम, मोह, अज्ञान का पूर्णतया निवारण कर चुका हो तथा अन्य व्यक्तियों की आन्तरिक एवं सांसारिक जीवन की समस्याओं को धार्मिक एवं व्यवहारिक समन्वय के आधार पर हल करने की क्षमता जिसने प्राप्त कर ली हो । ऐसा ही व्यक्ति संसार के मार्ग-दर्शन के लिए, धर्मोपदेश के लिए अधिकार कहा जा सकता है, उसे ही परिव्राजक बनना चाहिये, उसे ही संन्यास लेना चाहिए ।

संन्यास ग्रहण करने की दूसरी शर्त है, ब्राह्मण होना । यहाँ ब्राह्मणत्व का तात्पर्य जाति से नहीं, गुण, कर्म स्वभाव से है । ब्रह्म परायण, वासनाओं और तृष्णाओं के विजयी, काम, क्रोध, लोभ, मोह से विरत, उदारमना, अपरिग्रही, लोकसेवी सत्कर्म परायण व्यक्ति ब्राह्मण कहलाते हैं । ऐसे ही लोग किसी को उपदेश या ज्ञान देने के अधिकारी भी हैं । जिनका आन्तरिक और बाह्य जीवन अपने आप में ही अपूर्ण एवं कलुषित है वे किस मुँह से संसार का धार्मिक नेतृत्व कर सकते हैं । इसलिए ऐसे लोगों को ब्राह्मेतर वर्ण वालों को संन्यास लेने का अनाधिकारी बताया गया है ।

जो लोग साधना के लिए आत्म-उद्धार के मार्ग पर बढ़ने के लिए संन्यास लेते हैं वे भारी भूल करते हैं । यह कार्य तो उन्हें पारिवारिक जीवन में रहते हुए करने का है । जब पूर्ण परिपक्व स्थिति प्राप्त हो जावे, अपने में किसी प्रकार की कोई कचाई या त्रुटि दिखाई न पड़े और अन्तरात्मा यह स्वीकार करे कि हमें अब अपने लिए कुछ करना शेष नहीं रहा है, धर्म प्रवचन एवं ज्ञानदान के योग्य पूर्ण परिपक्वता प्राप्त हो चुकी है, तो ऐसे व्यक्ति संन्यास ग्रहण करके परिव्राजक बन सकते हैं । परिव्राजक बनने के लिए आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त कर चुकने के अतिरिक्त दो सांसारिक प्रतिबंध भी हैं । एक यह कि स्वास्थ्य भ्रमण के योग्य हो । परिव्रज्जा के कारण अस्त-व्यस्त रहने वाले आहार-विहार को सहन कर सके । दूसरे धर्मपत्नी की आन्तरिक स्वीकृति प्राप्त हो । उसे भी अपने साथ-साथ वानप्रस्थ में रहकर इस मनोभूमि को बना लेना आवश्यक है कि पति के कार्य के महत्व को समझते हुए मोह निवृत्त मन से उसे स्वीकृति दे । यह स्वास्थ्य संबंधी तथा पत्नी की स्वीकृति संबंधी समस्या हल न हो तो भी जो लोग आवेश में संन्यास ले लेते हैं उनका लक्ष्य पूरा नहीं होता ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह दोनों बातें अभिशाप की तरह उनके पीछे पड़कर मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती हैं ।

ऐसे लोगों की यह धारणा बना लेना कि संन्यास ग्रहण कर लेना कोई बहुत बड़ी धर्म और पुण्य की बात है और गृहस्थ आश्रम में अधर्म और पाप की संभावना ही रहती है, सर्वथा एक भ्रान्त विचार है । पाप, पुण्य तो मानसिक स्थिति और विकास पर निर्भर हैं । गृहस्थ में मनुष्य के सिर पर कई प्रकार के उत्तरदायित्व और कर्तव्यों का भार रहने से उसे स्वभावतः भी ऐसा आचरण करना पड़ता है कि जिससे उसकी विशेष बदनामी न हो, प्रतिष्ठा और साख बनी रहे । पर आजकल के अधिकांश संन्यासी और साधु वेषधारी तो उनमें से होते हैं जो निठल्लापन या किसी प्रकार के आलस्य दुर्गुण, दुर्व्यसन के कारण संसार में सफलता न पाकर भाग खड़े होते हैं और हरामखोरी का जीवन बिताने के लिए इस वेष की आड़ ले लेते हैं । वास्तव में ऐसे लोगों को साधु या संन्यासी कहना इन शब्दों को विडम्बना करना है, ऐसा करने से ही आजकल एक उच्च और प्रशंसनीय आश्रम की मिट्टी खराब हो गई ।

संन्यास की स्थिति मानव जीवन की सर्वांगीण पूर्णता की घोषणा है और इसका प्रमाण है कि इस व्यक्ति ने सभी गुत्थियाँ शान्ति और मर्यादापूर्वक सुलझाली हैं । अब यह इस स्थिति में है कि औरों का मार्ग दर्शन कर सके । इतनी सफलता प्राप्त करने वाले व्यक्ति के चरणों में जन-समाज सच्चे हृदय से मस्तक झुकाता है । उन्हें देव-श्रेणी में गिना जाता है । ऐसे दस-बीस भी संन्यासी जिस देश में होते थे उसकी कीर्ति चारों ओर फैल जाती थी । संन्यासी का आतिथ्य करने और सौभाग्य मात्र को लोग भारी पुण्य मानते थे, क्योंकि वह जीवन की सर्वांगीण पूर्णता का प्रतीक जो था ।

नारद, दत्तात्रेय, शुकदेव, बुद्ध, महावीर ऐसे ही संन्यासी थे जिन्होंने अपना जीवन जन-मानस के उद्धार के लिये उत्सर्ग करने का निश्चय कर लिया था । इसलिये उनको संन्यास लेने का अधिकारी माना गया ।

साधना करने के लिए अपरिपक्व बुद्धि के लोगों का भगवा कपड़ा पहनकर संन्यासी हो जाना और अपनी अपूर्णताओं से वेष को कलंकित करते फिरना, संन्यास धर्म के साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार है । ऐसे व्यक्ति अपराधियों की श्रेणी में रखने योग्य है । ईश्वर-प्राप्ति तो उन्हें होनी ही कहाँ है ?

आज साधु संन्यासियों का समाज इतना बढ़ जाना और उनका स्तर इतना गिर जाना, प्रत्येक धर्म प्रेमी के लिए एक बड़ी चिन्ता एवं वेदना का विषय है । उनमें से जो थोड़े से सच्चे साधु भी हैं वे भी इस भिखमंगों की भीड़ में अपना प्रभाव खोते चले जा रहे हैं । पूर्व काल में साधु महात्मा को देखकर स्वभावतः ही हर व्यक्ति में उनके त्याग के प्रति श्रद्धा का संचार होता था पर आज ठीक उसके विपरीत स्थिति है । त्याग, साधना और भावना ऊँची होते हुए भी वेष देखकर तो पहले लोग नाक-भौं चढ़ाते हैं पीछे अधिक व्यक्तिगत परिचय होने पर भले ही कोई सम्मान करे । अब भिक्षुओं भी कोई सम्मान प्राप्त नहीं कर सकता और न ऐसा सात्विक अन्न ही उपलब्ध है जिसे भिक्षा में लेकर खाने वाले की बुद्धि सात्विक बनी रहे । जंगल, वन भी कट गये, जहाँ कंद, मूल, फल पैदा होते थे तथा जहाँ गायें पालकर दूध भी उपलब्ध हो सकता था । अब तो वे ही जंगल किसी प्रकार बच रहे हैं और जब प्रकार से साधनहीन हैं । बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए इन बातों को भी अब खैर नहीं ।

इन परिस्थितियों को देखते हुए अध्यात्म मार्ग के पथिक के लिए गृहत्याग या संन्यास धारण करने की बात नहीं सोचनी चाहिये । उसके लिए यही उचित है कि अपनी सात्विक जीविका कमाते हुए अपने परिजनों के भरण पोषण का पुनीत कर्तव्य पालन करते हुए, अपने दोष, दुर्गुणों का शमन करने एवं ईश्वर उपासना में लगने का प्रयत्न करें । यही मार्ग सीधा सरल और सुगम है ।

★ ★ ★

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मानव में ईश्वरीय सत्ता की अभिव्यक्ति

विश्व का सर्वोच्च सत्य

जिस जगत में हम रहते हैं, उसके पीछे एक ऐसी अनन्त सामर्थ्यशाली सत्ता पाई जाती है जो सबमें व्याप्त है, सबको 'जीवन' प्रदान करती है और सबमें 'प्रकट' होती है । वही इस संसार या विश्व का सर्वोच्च सत्य है । उस स्वयंभू तत्व में से ही यह सब कुछ आया है और अब भी आया करता है । यों तो हमको प्रत्येक संसारी जीवन पृथक्-पृथक् दिखाई पड़ता है, जिसे हम व्यक्तिगत रूप में जानते और पहिचानते हैं । पर यह 'जीवन' जहाँ से आता है, वह जीवन का कोई अनन्त भंडार होना निश्चय है । अगर हमको इस संसार में 'प्रेम' का अनुभव होता है तो उस प्रेम का भी कोई अनन्त भंडार होना आवश्यक है । अगर हमको इस जगत में किसी प्रकार के ज्ञान की प्रतीत होती है तो वह ज्ञान जहाँ से उत्पन्न होता है उसका भी कोई असीम भंडार होना चाहिये । यह नियम संसार की प्रत्येक शक्ति-बल, शान्ति, बुद्धि, प्रज्ञा प्रत्येक चैतन्य और जड़ पदार्थों में समान रूप से लागू होता है ।

संसार की प्रत्येक वस्तु के पीछे रहने वाले इस अनन्त, असीम, अनादि भंडार का नाम ही 'परमात्म तत्व' है । वही इस संसार का मूल अथवा जड़ है । जो महान और अचल नियम इस संसार में दिखाई पड़ रहे हैं, जो आश्चर्यजनक शक्तियाँ हमारे चारों ओर व्याप्त हैं, उनका अवलोकन करने से, उन पर विचार करने में ही हमको इस सर्वाधार तत्व का ज्ञान और अनुभव होता है ।

हमारे प्रतिदिन के जीवन का हर एक काम इन महान नियमों तथा शक्तियों द्वारा ही सम्पन्न होता है । रास्ते के किनारे खिलने वाला प्रत्येक फूल बढ़ता है, विकसित होता है, और मुरझा जाता है । वह भी इन महान नियमों का ही कार्य होता है । इसी प्रकार समुद्र से असंख्य मन जल भाप रूप से उठता है, उसके बादल बनते हैं, वह पृथ्वी पर गिरता है और सबको नव-जीवन देता हुआ फिर समुद्र में जा पहुँचता है, यह सब क्रिया भी उन्हीं महान और अटल नियमों का ही परिणाम हैं ।

अगर थोड़े शब्दों में कहें तो इस विश्व में नियम के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है । अगर यह बात सत्य है तो इन नियमों को बनाने वाला, इनका संचालन करने वाला कोई ऐसा तत्व होना ही चाहिये जो इन नियमों से अधिक सामर्थ्यशाली, शक्तिवान् हो । यह अनन्त जीवन और अनन्त बल रूपी महान तत्व प्रत्येक पदार्थ की स्थिति अस्तित्व के पीछे मौजूद है, उसी को हम परमात्मा कहेंगे । आप उसे प्रकाश कह सकते हैं, 'सर्व शक्तिमान' कह सकते हैं, 'परम तत्व कह सकते हैं अथवा और भी किसी नाम से पुकार सकते हैं । पर इस प्रकार नाम भेद से उसकी सत्ता, शक्ति तथा वास्तविकता में रत्ती भर भी अन्तर नहीं पड़ता, अगर हम उसकी सत्ता को समझ लें और मानने लगें तो फिर इस बात का कोई महत्व नहीं कि कौन उसे किस नाम से पुकारता है ।

सारांश यह कि परमात्मा ही एक ऐसी अनन्त चैतन्य सत्ता है जो स्वयं ही विश्व को परिपूर्ण कर देती है जिसमें से सब उत्पन्न होते हैं, रहते हैं और जिसके बाहर कोई भी वस्तु अथवा शक्ति रह ही नहीं सकती । वस्तुतः हम उसी परमात्मा में रहते हैं, चलते-फिरते हैं और हमारा अस्तित्व उसी के भीतर है हमने अपना जीवन उसी परमात्मा जीवन तत्त्व से प्राप्त किया है और सदैव प्राप्त किया करते हैं । हममें और उस परमात्मतत्व में इतना ही भेद है कि हम व्यक्ति रूप हैं और परमात्मतत्व समष्टि रूप है । परमात्मतत्व और हमारा व्यक्तिगत जीवन का मूल स्वरूप तो सर्वथा एक ही है । इन दोनों में जो अन्तर है वह परिमाण का अधिक और न्यून होने का है ।

जिन महापुरुषों को दैवी-प्रकाश प्राप्त हो गया है वे कहते हैं कि हम अपना जीवन परमात्मतत्व में से एक दिव्य-प्रवाह के रूप में प्राप्त करते हैं । अन्य महापुरुष कहते हैं कि हमारे जीवन का परमात्म तत्व के साथ ऐक्य भाव है। मनुष्य और परमात्मा एक ही है । इन दोनों में ठीक सिद्धान्त कौन सा है ? ये दोनों ही सच्चे हैं, इनमें केवल कहने के ढंग का अन्तर है ।

पहले मत के अनुसार जो कुछ हमको संसार में दिखाई पड़ता है या अनुभव होता है, उस सबका आधार परमात्म-तत्व है और इसलिये हमारा व्यक्तिगत जीवन भी उसी तत्व में से दिव्य-प्रवाह के रूप में निरन्तर बहता रहता है । दूसरे मत के अनुसार यह माना जाता है कि हमारा व्यक्तिगत जीवात्मा उस परमात्मा का एक अंश है । जैसे कहा है कि **'ईश्वर अंश जीव अविनाशी'** । जिस प्रकार समुद्र से उठाया हुआ एक जल का बिन्दु स्वरूप और लक्षण में समुदर के साथ पूर्णतः मिलता हुआ होता है, वही नियम यहाँ भी चरितार्थ होता है । इस दृष्टि से यद्यपि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तिगत-जीवन (जीवात्मा) और समष्टिगत जीवन (परमात्मा) मूल रूप में एक समान हैं, तो भी परमात्म-तत्व व्यक्तिगत जीव की अपेक्षा इतना अधिक बड़ा, असीम और महान है कि उसमें समस्त देश-काल-पदार्थ और समस्त प्राणियों का समावेश हो जाता है । इस बात को दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी कह सकते हैं कि मूल स्वरूप अथवा जाति की दृष्टि से तो परमात्मा और जीवात्मा एक रूप तो हैं, पर शक्ति और परिमाण की निगाह से दोनों में बड़ा भारी अन्तर भी है ।

जब हम इस प्रकार विचार करते हैं तो क्या यह प्रतीत नहीं होता है कि ये दोनों मत सत्य हैं । वे सत्य ही नहीं हैं वरन् वस्तुतः वे एक ही बात को अलग-अलग ढंग से कहते हैं । इस बात को समझने के लिये हम एक और दृष्टान्त देना चाहते हैं ।

किसी पर्वत के ऊपर एक अगाध जलाशय अथवा पानी की झील है । उसमें से नीचे की खान में बने हुये एक जल कुण्ड में थोड़ा पानी आता रहता है । अब यह बात तो स्पष्ट और प्रत्यक्ष है कि ऊपर के अगाध जलाशय और नीचे के जलकुण्ड के पानी का स्वरूप, स्वाद और लक्षण तो एक सा ही है पर पर्वत के ऊपर वाले जलाशय के जल का परिमाण इतना अधिक है कि उसमें से ऐसे असंख्यों जलकुण्ड बन सकते हैं और तब भी उसके जल में किसी प्रकार की कमी नहीं पड़ सकती । इस प्रकार एक जाति होने पर दोनों के परिमाण और शक्ति में महान् अन्तर भी है ।

मनुष्य के जीवन की भी यही स्थिति है । अन्य विषयों में चाहे हममें कुछ मतभेद हो, पर इस संबंध में प्रायः समस्त विचारशील एक मत हैं कि हमारे सबके पीछे, संसार के प्रत्येक पदार्थ के पीछे उसी चैतन्य स्वरूप परमात्मा की अनन्त सत्ता काम कर रही है । उसी में से प्रत्येक जीवन प्रकट होता है । फिर वह चाहे मेरा हो या आपका हो अथवा किसी अन्य का हो समस्त व्यक्तिगत जीवन इसी दिव्य प्रवाह में से इसी अनन्त जीवन स्रोत में से आता रहता है । इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य में पाया जाने वाला जीवन चैतन्य स्वरूप परमात्मा से पूर्णतः मिलता-जुलता है । इन दोनों में स्वरूप का भेद नहीं है अगर भेद है तो वह परिमाण (डिग्री) का ही है ।

जब हम इस सिद्धान्त की सत्यता को पूरी तरह समझ लेते हैं, तो यह स्पष्ट जान पड़ता है कि मनुष्य अपने हृदय के द्वार को इस दिव्य प्रवाह की ओर जितना अधिक खुला हुआ रखेगा उतना ही अधिक वह परमात्म-तत्व के समीप पहुँचता जायगा और जितना अधिक वह उसके समीप पहुँचेगा उतना अधिक उसमें परमात्मा की शक्तियाँ प्रकट होती जायेंगी । अगर मनुष्य उस परमात्म तत्व का अनुमान नहीं करता और उसकी शक्तियों का लाभ न उठाकर अशक्त और दीन-हीन बना है, तो यह उसकी समझ की त्रुटि है क्योंकि वह ऊपर बतलाये सत्य को जान नहीं सका है ।

मानव-जीवन का महानतम् लक्ष्य

पिछले प्रकरण में हमने इस बात पर विचार किया कि विश्व का सर्वोच्च सत्य क्या है ? उससे हमको विदित हुआ कि परमात्म तत्व ही प्रत्येक पदार्थ का आधार है और उसी में से समस्त जीवन का आविर्भाव होता है । अब इसके पश्चात् हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि मनुष्य जीवन का अंतिम लक्ष्य क्या है ? जिन बुद्धिमान पाठकों ने पिछले अध्याय को ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा, उनको इस प्रश्न का उत्तर स्वयमेव मिल गया होगा ।

वह उत्तर यही है कि मानव जीवन को सर्वोच्च लक्ष्य परमात्म तत्व के साथ ज्ञानपूर्वक सम्बन्ध स्थापित करना और अपने उसमें से बहने वाले प्रकाश को ग्रहण करने के पूर्णतः योग्य बनना ही है । यही हमारे सबके जीवन का परमलक्ष्य है । यही मनुष्य जीवन का एक मात्र, और सबसे अधिक सत्य रहस्य है, क्योंकि इसमें सब विषयों का समावेश हो जाता है । जितने परिमाण में हम परमात्म-तत्व के साथ ऐक्य का अनुभव करते हैं और जितने परिमाण में उस दिव्य प्रवाह को ग्रहण के योग्य बनते हैं, उतने ही परिमाण में परमात्म तत्व की शक्तियाँ और गुण हम पर प्रकट होने लगते हैं ।

इसका आशय यह है कि जब हम अपने वास्तविक रूप को समझ जाते हैं, तो जिस प्रकार संसार के महान अवतार, पैगम्बर, ऋषि, योगी जगद्गुरु और अलौकिक शक्ति वाले समस्त महापुरुष, अपने को इन महान नियमों तथा शक्तियों के अनुकूल बनाकर अतीन्द्रिय जगत की प्रेरणाओं को प्राप्त करने लगते हैं, वैसा ही हम सब भी कर सकते हैं क्योंकि जब हम अपने वास्तविक स्वरूप को पहिचान लेते हैं तो हमारा सम्बन्ध इस परमात्म तत्व से स्पष्ट और प्रकट हो जाता है और उतने ही परिमाण में उच्च शक्तियाँ हममें प्रकट होकर अपना प्रभाव संसार को दिखलाने लगती हैं ।

इसके विपरीत यदि हम अज्ञान मार्ग पर चलकर इस दिव्य प्रवाह के प्रति अपने हृदय-द्वार को बन्द कर लेते हैं तो उससे इन उच्च शक्तियों का प्रकट होना रोका भी जा सकता है । हम लोगों में एक बहुत बड़ा भाग अज्ञानता में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़कर इसी तरह का काम किया करता है । इस प्रकार हम जान बूझकर इन दैवी शक्तियों के मार्ग को अवरूद्ध कर देते हैं और अपने दिव्य-अधिकार को खो देते हैं । यदि हम अपनी इस गलती को अब भी समझ लें और परमात्म-तत्व से आने वाले इस प्रवाह को अपने भीतर ग्रहण करने लग जायें तो कुछ ही समय में हम नाम मात्र के मनुष्य से बदलकर सच्चे और दिव्य मनुष्य बन सकते हैं ।

दिव्य मनुष्य का अर्थ क्या है ? जो मनुष्य के रूप में दिखलाई पड़ने पर भी परमात्म-तत्व की शक्तियों को ग्रहण करके प्रकट करने लगता है, उस पुरुष अथवा स्त्री के विकास का मार्ग खुल जाता है, कोई उसमें किसी तरह की बाधा नहीं डाल सकता । अगर उसमें कभी कोई अड़चन आती है तो उसके उत्पन्न करने वाले वे स्वयं ही होते हैं । इसी का नाम अज्ञान है । वह जब तक जितने अंश में मनुष्य के भीतर शेष रहता है उतना ही दुःखमय जीवन उसे व्यतीत करना पड़ता है । इस अज्ञान से छुटकारा पाना ही दैवी-जीवन को प्राप्त करने का सच्चा उपाय है ।

दुर्भाग्यवश अभी तक मनुष्य जाति के एक बहुत बड़े भाग ने इस तथ्य को नहीं समझ पाया है कि परमात्म तत्व और हमारे जीवन के मध्य ऐक्य है । इस अज्ञान के कारण ही हम उस दिव्य-प्रवाह की तरफ अपने हृदय के द्वार को खोल नहीं पाते और उन उच्च शक्तियों से वंचित रहते हैं । जब तक हम अपने को मनुष्य के रूप में जानते रहते हैं, तब तक हम मनुष्य का-सा ही जीवन भी व्यतीत करते हैं पर जब हमको यह अनुभव हो जाता है कि हम दिव्य-मनुष्य हैं, तब हमारा जीवन भी वैसा ही बन जाता है और दिव्य-शक्तियाँ हममें प्रकट होने लगती हैं । जितने परिमाण में हम अपने हृदय को दिव्य-प्रवाह की ओर खुला रखते हैं उतने ही परिमाण में हम एक साधारण मनुष्य से बदलकर दिव्य मनुष्य से बनते जाते हैं ।

कल्पना कीजिये कि एक अच्छे किसान के खेत के समीप एक रमणीक कमल सरोवर है, उसमें थोड़ी दूर पर स्थित एक बहुत बड़े जलाशय से एक छोटी नाली द्वारा जल आता रहता है । नाली के इस छोर पर एक दरवाजा है कि जिसके द्वारा उस जल को लाया अथवा रोका जा सकता है । वह स्थल अलौकिक सौन्दर्य वाला है कि जहाँ सदैव रंग-बिरंगे पक्षी जल पीने लगते हैं और अपने मधुर स्वर से आने-जाने वालों को आनन्दित करते रहते हैं । चारों तरफ भाँति-भाँति के सुगन्धित पुष्प खिले हैं, जिनका पराग एकत्रित करने को भौंरा गुंजार किया करते हैं । तरह-तरह के वृक्ष, लता और फल-फूलों से वह स्थान अत्यन्त आनन्द-दायक बना हुआ है ।

इस स्थान का मालिक किसान एक दिव्य मनुष्य है । वह मनुष्य मात्र से प्रेम रखने वाला है और इसलिये उसने उस भूखण्ड पर कहीं ऐसी सूचना लिखकर टाँगी है कि यह निजी (प्राइवेट) जमीन है, इसमें होकर निकलने की किसी को आज्ञा नहीं है । इस नियम को भंग करने वाले को दण्ड दिया जायगा । इसके बजाय उसने उस कमल सरोवर के सामने यह लिखवा दिया है कि यहाँ पर आने का सबको अधिकार है इस कारण वहाँ आने वाले सब मनुष्य उस दिव्य पुरुष से प्रेम रखते हैं, उसका सम्मान करते हैं और वह भी हर तरह से उनकी सुख-सुविधा का ख्याल रखता है ।

वह दिव्य पुरुष बड़े जलाशय से आने वाली नाली के दरवाजे को सदैव खुला रखता है, जिससे इतना पानी आता है कि उसके खेतों की पूरी सिंचाई होने के सिवाय वह चारों ओर भर जाता है जिसे पीने के लिये अनेक जीव-जन्तु वहाँ आते हैं और दूसरे लोगों के खेतों को भी उनसे थोड़ा बहुत लाभ मिलता रहता है ।

संयोगवश उस दिव्य पुरुष को कार्यवश कहीं बाहर जाना पड़ा और उस समय उस स्थल का अधिकार किसी दुनियादार या व्यवहारकुशल व्यक्ति को मिल गया । इस व्यक्ति को कोई ऐसा काम पसन्द न था जिससे उसको कुछ लाभ न हो । वह नहीं चाहता था कि उसके अधिकार की चीज से गैर लोग बिना कुछ खर्च या परिश्रम किये मुफ्त में फायदा उठाते रहें, उसने बड़े जलाशय से आने वाले जल प्रवाह के दरवाजे को बन्द कर दिया और यहाँ सबको आने का अधिकार है इस सूचना पट को भी हटा दिया, परिणाम यह हुआ कि वह कमल-सरोवर सूखने लग गया, निर्मल और स्फटिकवत् जल की जगह उसमें कीचड़ दिखाई पड़ने लगी, हँसते-खेलते स्त्री-पुरुष और बालकों की टोलियों का वहाँ आना बन्द हो गया और जो पशु-पक्षी उस पानी से अपनी प्यास बुझाते थे वे भी कहीं और जगह चले गये । थोड़े ही समय में वह आनन्ददायक रमणीक स्थल बिल्कुल बदल कर रूखा-सूखा और कुरूप बन गया और उसमें सर्वत्र जो दर्शनीय जीवन के जो चिन्ह दिखलाई पड़ते थे वे नष्ट होकर वह सर्वथा आकर्षणहीन और महत्वशून्य बन गया ।

इस सरोवर की वर्तमान तथा पहले की अवस्था में जो भेद दिखाई पड़ता है, उसका कारण यही है कि बड़े जलाशय से जल के आने का जो मार्ग था, दरवाजा था, उसे बन्द कर दिया गया । इससे सरोवर को जीवन युक्त जल मिलना बन्द हो गया और उसकी समस्त शोभा नष्ट हो गई । इतना ही नहीं उसके द्वारा आस-पास के रहने वालों को, पशु पक्षियों को, मार्ग पर चलने वाले यात्रियों को जो लाभ मिला करता था वह भी जाता रहा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह दृष्टान्त क्या हमारे अपने जीवन से सादृश्य नहीं रखता ? जितना अधिक हम परमात्मतत्व के साथ सम्बन्ध रखते हैं और ऐक्य भाव का अनुभव करते हैं और जिस परिमाण में उसके दिव्य-प्रवाह को ग्रहण करने के लिये अपने जीवन-द्वार को खुला रखते हैं, उसी परिमाण में वह जीवन-प्रवाह हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति करके चारों तरफ बहने लगता है और हमसे सम्बन्ध रखने वाले बहुसंख्यक मनुष्यों को तरह-तरह से लाभ पहुँचाता है ।

यह कमल सरोवर हमारे और आपके ही जीवन का एक रहस्य है । जिस बड़े जलाशय से इसे नवजीवन-जल प्राप्त होता है, उसके दरवाजे को खोलने की शक्ति इस सरोवर में स्वयं नहीं होती और न इसके लिये उसे किसी अन्य साधन पर निर्भर होना पड़ता है । वह साधन भी प्रत्येक मनुष्य के पास रहता है और जो उसका उपयोग करना जानते हैं अथवा करना चाहते हैं वे सहज में दरवाजे को खोल या बन्द कर सकते हैं । वह साधन हमारे मन अथवा विचारों की सत्ता ही है ।

दिव्य-जीवन परमात्मतत्व में से उत्पन्न होता है और इस कारण उसका संबंध परमात्मा के साथ है । हमारे स्थूल जीवन का सम्बन्ध आस-पास के जड़ जगत के साथ है । इन दोनों प्रकार के जीवनों को जोड़ने का कार्य मन अथवा विचार द्वारा होता है ।

इसके लिये पहले यह विचार करना चाहिये कि विचार क्या चीज है ? अनेक अनजान व्यक्ति तो इसे कल्पना अथवा हवाई ख्याल ही समझते हैं, यह धारणा ठीक नहीं है । विचार एक वास्तविक, प्रबल, सूक्ष्म और संसार की महान शक्ति है । विचार एक शक्ति है इसको सिद्ध करने के लिये आजकल वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में तरह-तरह के परीक्षण किये जाते हैं । उनसे विदित होता है कि विचारों द्वारा जो शक्ति उत्पन्न होती है वह केवल नाम की ही शक्ति नहीं होती वरन् उसका एक निश्चित प्रभाव और परिणाम होता है ।

हमारे आस-पास की दुनिया में दिखाई पड़ने वाली हर एक चीज की उत्पत्ति का सर्वप्रथम स्रोत विचार ही है । कोई भी वस्तु या पदार्थ ही वह विचार का जन्म होने के पश्चात् ही स्थूल रूप में प्रकट हो सकती है । प्रत्येक किला, प्रत्येक मूर्ति, प्रत्येक चित्र, प्रत्येक मशीन- संक्षेप में कहा जाय तो प्रत्येक भौतिक वस्तु की उत्पत्ति पहले उसके निर्माणकर्त्ता के विचारों में ही होती है, उसके पश्चात् वह दृश्य अथवा स्थूल रूप में प्रकट होती है । जिस विश्व में हम रहते हैं वह भी सबके आधारभूत परमात्मा के विचारों का ही फल है । अगर यह बात सत्य है और साथ ही यह भी यथार्थ है कि परमात्म तत्व और मनुष्य के बीच ऐक्य संबंध है, तो यह निश्चय है कि यदि हम अपने को परमात्मतत्व के साथ संयुक्त करें तो हम भी अपनी आध्यात्मिक शक्तियों द्वारा अनेक अंशों में परमात्मा जैसे कार्य कर सकते हैं । हिन्दू पुराणों में ऋषियों के वरदान तथा शाप से सृष्टि का निर्माण तथा नाश का वर्णन किया है । वह इसी सिद्धान्त का प्रतिपादक है ।

प्रत्येक वस्तु जब दृश्य जगत में प्रकट होती दिखाई देती है, उससे पहले अदृश्य जगत में उसका अस्तित्व रहता है । इससे सिद्ध होता है कि अदृश्य जगत ही वास्तविक है और दृश्य जगत माया अथवा भ्रम है । अदृश्य जगत कारण रूप है और दृश्य जगत माया अथवा भ्रम है अदृश्य जगत कारण रूप है और दृश्य जगत कार्य रूप है । अदृश्य वस्तुएँ नित्य अथवा स्वामी हैं जबकि दृश्य वस्तुएँ अनित्य और नाशवान हैं ।

उदाहरण के लिये शब्द की शक्ति भी अदृश्य होते हुये विज्ञान द्वारा सत्य सिद्ध हो चुकी है । जब कोई बात कहते हैं तो पहले उसका विचार मन में उठता है, तत्पश्चात् वह शब्दों के रूप में बाहर प्रकट होता है । इस दृष्टि से हम उन लोगों को भी उपेक्षणीय नहीं कह सकते जिनको सामान्यता हवा में किला बनाने वाला कहा जाता है । यद्यपि अधिकांश मनुष्य उनको सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते पर सच्ची बात यह है कि हमको जमीन पर अभेद्य किला बनाने से पूर्व हवा में ही किला बनाना पड़ता है । इतनी बात अवश्य है कि बहुसंख्यक हवाई किला बनाने वाले आगे बढ़कर इन बातों को मूर्त रूप नहीं देते, इसी से अन्य लोग उनकी बातों और विचारों को महत्व नहीं देते ।

विचार शक्ति के विषय में एक स्मरणीय विषय यह है कि प्रत्येक विचार में अपने जैसे अन्य विचारों को आकर्षित करने का गुण पाया जाता है । समस्त विश्व में यह नियम पाया जाता है कि समान वस्तुएँ एक दूसरे को अपनी तरफ खींचती हैं । हम अपने विचारों के अनुकूल शक्तियों और संयोगों को निरन्तर दृश्य और अदृश्य जगत में से अपनी तरफ आकर्षित करते रहते हैं । चाहे हम को इस तथ्य का ज्ञान हो अथवा न हो, पर यह नियम अपना काम करता ही रहता है । हम विचारों के महासागर के मध्य में ही निवास करते हैं । विचार की जो शक्तियाँ प्रवाह के रूप में हममें से बाहर निकलती हैं और बाहर से हमारे भीतर आती हैं, उनसे हमारे आस-पास का वातावरण भरा रहता है । जानते हुये या अनजान में विचारों के इस प्रवाह का हमारे ऊपर न्यूनाधिक प्रभाव अवश्य पड़ता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हमारी प्रकृति जितनी अधिक विचारों के सूक्ष्म आन्दोलन को ग्रहण करने वाली होगी, उसी के अनुसार उनका प्रभाव हमारे ऊपर पड़ेगा । निर्बल मन वाले व्यक्तियों पर बाहरी विचारों का बहुत अधिक असर पड़ता है और वे बाहर से आने वाली हर एक विचार तरंग से प्रभावित हो जाते हैं । इसके विपरीत जो मनुष्य अधिक दृढ़ प्रकृति के होते हैं वे स्वयं सोचकर इस बात का निश्चय करते हैं कि किस विचार तरंग को अपने मन में जगह दी जाय और किसको दूर ही रखा जाय । कितने ही उत्तम प्रकृति के व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो विचारों के सूक्ष्म आन्दोलनों को अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक शीघ्र और सहज में ग्रहण कर सकते हैं । एक समाचार पत्र के स्वामी के विषय में कहा जाता था कि वह जब कभी किसी सभा या उत्सव में जाता, किसी के साथ बातें करता, किसी से हाथ मिलाता, तो उन सबके विचारों का प्रभाव उस पर बहुत शीघ्र पड़ जाता था । यह असर मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार का होता था और जब कभी ऐसी घटना होती तो वह दो-तीन दिन तक उन्हीं विचारों से अभिभूत रहता था । इस बीच में वह अपना दैनिक कार्यक्रम भी ठीक ढंग से पूरा नहीं कर सकता था ।

कितने ही लोग शरीर और मन की ऐसी कोमल प्रकृति को दुर्भाग्य का चिन्ह मानते हैं, पर वास्तव में बात ऐसी नहीं होती । आत्मा की उच्च प्रेरणाओं को अथवा बाहर से आने वाली उच्च या शुभ शक्तियों को ग्रहण करने योग्य शरीर तथा मन का होना कोई बुरी बात नहीं है । इस विषय में सावधानी इतनी ही रखनी चाहिये कि केवल शुभ विचारों को ही ग्रहण किया जाय और अशुभ विचारों के लिये दरवाजा बन्द कर दिया जाय किसी व्यक्ति की प्रकृति चाहे जितनी कोमल अथवा ग्रहणशील हो, पर उसे इतनी शक्ति अवश्य प्राप्त कर लेनी चाहिये कि जिन विचारों को उचित समझे उन्हीं को अपने भीतर प्रवेश करने दे और शेष को बाहर ही रोक दे ।

इस प्रकार का संयम मनुष्य मन के द्वारा अभ्यास करके प्राप्त कर सकता है । मनुष्य का मन सूक्ष्म आन्दोलनों से चाहे शीघ्र प्रभावित होता हो अथवा देर से प्रभावित होता हो, तो भी आगे लिखी विचार श्रेणी का समय-समय पर ध्यान करने से लाभ हो सकता है--

मैं अपने क्षुद्र विचारों के लिये अपने मन में दरवाजे को बन्द करता हूँ और सब प्रकार के उच्च विचारों तथा भावनाओं को ग्रहण करने के लिये उसे खोले रखता हूँ, इस प्रकार समय-समय पर विचार करने से वैसा करने की आदत पड़ जाती है । जब यह आदत दृढ़ हो जाती है, मन के भीतर की कितनी ही सूक्ष्म शक्तियाँ काम करने लग जाती हैं और इसके परिणामस्वरूप कुछ लाभ होता ही है । इस उपाय से मनुष्य दृश्य तथा अदृश्य जगत के समस्त घटिया और अनिष्ट विचारों से दूर रह सकता है और समस्त प्रेरणाओं और भावनाओं को अपनी तरफ आने के लिये आमन्त्रित करता है । इस आमंत्रण अथवा आकर्षण के बल से वे उसके हृदय में अवश्य प्रवेश करती हैं ।

कुछ पाठक प्रश्न करेंगे कि अदृश्य-जगत कौन-सा है ? हमारे आसपास के वातावरण में स्थूल जगत में रहने वाले जीवात्मा जो विचार, भावनाएँ इच्छायें उत्पन्न करते हैं उन्हीं से अदृश्य जगत बनता है । इसके अतिरिक्त जिन जीवात्माओं ने स्थूल शरीर को त्याग दिया है अथवा जिनका स्थूल शरीर नष्ट हो गया है, ऐसे मनुष किसी भिन्न प्रकार के (अर्थात् सूक्ष्म) शरीर द्वारा जो विचार, भावनाएँ आदि उत्पन्न करते हैं उनका भी अदृश्य जगत में समावेश होता है ।

मनुष्य के प्रत्यक्ष जीवन का आरम्भ स्थूल-लोक से होता है पर वह जो कुछ प्रभाव तथा महत्ता प्राप्त करता है, उसका स्रोत सूक्ष्म अथवा स्वर्गीय लोक को ही माना जा सकता है । यह सूक्ष्म लोक हमसे कहीं दूर नहीं होता वरन् हमारे स्थूल शरीर के आस-पास वह भी अवस्थित रहता है । उसमें एक से बढ़कर एक दिव्य और चमत्कारी शक्तियाँ, मौजूद हैं, पर उनमें से उन्हीं को प्राप्त कर सकता है जो उसके दिव्य-जीवन तथा मानसिक वृत्तियों से मिलती-जुलती उसके अनुकूल होती है । सच पूछा जाय तो हमारा स्थूल शरीर, वाह्य शरीर तो उस सूक्ष्म अथवा दिव्य-शरीर का प्रतिबिम्ब मात्र ही होता है । ऊपर जिस सूक्ष्म लोक का वर्णन किया है, उसी में तुरन्त के देह त्यागने वाले जीवात्मा रहते हैं । उसके भीतर और बाहर अनेक एक से एक सूक्ष्म आध्यात्मिक लोग ऐसे हैं कि हमारी इन्द्रियाँ उनकी कल्पना भी नहीं कर सकतीं ।

इस प्रकार मनुष्य शरीर को दो भागों में बाँटा जा सकता है-- एक स्थूल, दूसरा शरीर । यह स्थूल शरीर ऊपर के खोल या छिलके की तरह है, जिसके भीतर वास्तविक और शाश्वत (स्थायी) सूक्ष्म शरीर वृद्धि करता हुआ पूर्णता को प्राप्त होता है । जिस प्रकार छिलके के भीतर रहने वाला अनार का दाना धीरे-धीरे विकसित होकर पकता रहता है और जब वह पूरी तरह पक जाता है तो बाहर निकल जाता है तथा ऊपर का छिलका बेकार हो जाता है । उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर के पूर्ण विकसित हो जाने पर स्थूल शरीर भी बेकार और व्यर्थ हो जाता है । इसके पश्चात् मनुष्य सूक्ष्म शरीर और इससे सम्बन्धित सूक्ष्म लोकों में ही रहकर उच्च

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन व्यतीत करता है और आध्यात्मिक विकास की वृद्धि करता रहता है ।

आन्तरिक और बाह्य जीवन

मानव-जीवन का शरीर रूपी वाह्य आकार चाहे जैसा बदलता रहे, परन्तु उसमें रहने वाला जीव अथवा आत्मा तो अपरिवर्तनशील और अमर ही है । जब हमारा जीवन ही विश्व का शाश्वत सत्य है, तो उसका बाह्य साधन शरीर में चाहे जैसा परिवर्तन होता रहे उसमें आत्म-तत्व के स्थायित्व में अन्तर नहीं पड़ता । जो यह कहा जाता है कि प्रभु अनन्त ब्रह्माण्डों के नाथ हैं, इसका आशय यही है कि विश्व में इस स्थूल लोक के अतिरिक्त और भी अनेक लोक और ब्रह्माण्ड हैं । यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, उसमें हमको यह नहीं समझ लेना चाहिये कि उसके जीवन का अन्त हो गया । इसका अर्थ यह भी नहीं लगाया जा सकता कि नये लोक में नये जीवन का आरम्भ होता है क्योंकि जीवन का तो कभी नाश ही नहीं होता, किन्तु जीवात्मा इस स्थूल लोक और शरीर को त्यागकर इससे पश्चात् आने वाले लोक के नये आकार में जीवन-क्रम को चालू रखता है । जीवात्मा का स्वभाव इसी प्रकार एक-एक सीढ़ी चढ़कर उन्नति करने का होता है । वह कूदकर या छलाँग मारकर इस मार्ग को तय नहीं कर सकता । जिस तरह इस स्थूल लोक में तरह-तरह के मनुष्य हैं उसी तरह सूक्ष्म लोक में भी भाँति-भाँति की मानसिक स्थिति वाले जीवात्मा दिखलाई पड़ते हैं ।

जिन दो पदार्थों में समानता होती है वे एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं । यह नियम सृष्टि में सदैव कार्य करता रहता है और इसके फलस्वरूप हम अपने जीवन के अनुकूल विचारों तथा शक्तियों को सूक्ष्म भुवन में से आकर्षित करते रहते हैं । इस प्रकार बाहरी विचारों का हमारे ऊपर प्रभाव पड़ना, बहुत से लोगों को ठीक मालूम नहीं पड़ता, पर जब इस विषय में सोचते हैं तो इसके लाभ हमारी समझ में आ जाते हैं । हम सबका जो जीवन एक ही मूल अथवा स्रोत से प्रकट हुआ है और हम सब इस सर्वगत जीवन में एक दूसरे से जुड़े हुये हैं इसके सिवाय यह भी कहा जा चुका है कि किन विचारों को अपने भीतर स्थान देना अथवा किस प्रकार की स्थिति को अपनी तरफ आकर्षित करना यह बात भी हमारे अधिकार में है । हम संयोगों के गुलाम नहीं वरन् स्वामी हैं, संयोगों या अवसरों के अधीन होना या न होना यह हमारे ही हाथ में है ।

अपनी जीवन रूपी नाव की पतवार अपने हाथ में रख कर उसे अमुक मार्ग की तरफ न जाने देना अथवा पतवार को छोड़कर अपनी नौका को विचार रूपी तरंगों में इधर उधर चाहे जहाँ भटकाते रहना ये दोनों बातें हमारे ही हाथ में हैं । अगर हम अपनी जीवन नौका को अपने नियंत्रण में रख सकेंगे तो हमारी सब देशों तथा कालों के महान तथा श्रेष्ठ पुरुषों के विचारों से भेंट होती रहेगी । यह स्थिति निस्सन्देह प्रोत्साहक और आनन्ददायक है ।

कुछ समय पहले की बात है कि दो मित्र घोड़े पर सवार होकर हवाखोरी के लिये जा रहे थे । उस समय चर्चा उठी कि अब लोग जीवन के महत्त्वपूर्ण विषयों में अधिक ध्यान देने लगे हैं, और आन्तरिक शक्ति तथा बल की जानकारी के लिये भी प्रयत्न करते रहते हैं । उनमें अपने वास्तविक स्वरूप तथा परमात्मा के साथ अपने संबंध को जानने की उत्कंठा भी बढ़ रही है । समस्त जगत में आध्यात्मिक वृत्ति बढ़ती जा रही है । कुछ अंशों में निस्सन्देह इतनी बढ़ जायगी कि जो कोई उसे देखेंगे वे अपने को सौभाग्यशाली समझेंगे । एक मित्र ने कहा कि यदि इस समय महान दार्शनिक इमर्सन, जिसके विचार बहुत अग्रगामी थे और जिसने जगत में आत्मिक उत्कर्ष की स्थिति को प्रसारित करने का भागीरथ प्रयत्न किया था इस परिस्थिति को देखता होगा तो उसे कितना अधिक आनन्द होता होगा ? दूसरे मित्र ने उत्तर दिया आप कैसे कह सकते हैं कि वह तमाम स्थिति को नहीं देख रहा है, अथवा उसका इसमें कुछ हाथ नहीं है ? अगर इस परिवर्तन में उसका पहले की अपेक्षा भी अधिक हाथ हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । वास्तव में इस कथन में बहुत कुछ सार है । जिन महान व्यक्तियों ने इस लोक में रहकर जन-कल्याण के कार्य किये हैं, वे सूक्ष्म लोक में रहकर भी वैसे ही कार्य करते रहते हैं । संसार में अधिकतर कार्य ऐसे ही होते हैं जिनका ज्ञान हमको अपनी इन्द्रियों द्वारा नहीं हो सकता और जिनको हम अपने चर्म चक्षुओं से नहीं देख सकते हैं । फिर भी यह निश्चय है कि संसार के बहुसंख्यक महत्व के कार्य इन अदृश्य और अज्ञान शक्तियों द्वारा ही सम्पन्न हो रहे हैं और उनका मानव जीवन पर बहुत हितकारी प्रभाव पड़ रहा है ।

एक ज्ञानी पुरुष ने, जिसकी दिव्य-दृष्टि विकसित हो चुकी है, सम्पत्ति इस प्रकार प्रकट की है--

''आध्यात्मिक और भौतिक पदार्थों के बीच एक समान नियम काम कर रहा है । जो उदास प्रकृति के होते हैं वे उदासीन वस्तुओं को आकर्षित करते हैं । जो मनुष्य सदैव निरुत्साही तथा विजय में विश्वास न रखने वाले होते हैं, वे कभी विजयी नहीं बन सकते, उलटे दूसरों को भाररूप सिद्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होते हैं । पर उत्साही, श्रद्धालु और आनन्दयुक्त पुरुष विजय के तत्वों को ही आकर्षित करते हैं । मनुष्य के भीतर की उच्च अथवा निम्नस्थिति का बहुत कुछ पता उसके वाह्य स्वरूप से भी चल जाता है । जिसके शरीर पर चिथड़ा, फटे वस्त्र और मैल दिखाई दे तो समझ लो कि उसके मन में पहले ही अव्यवस्था की जड़ जम चुकी है ।

''आपके हर एक विचार का एक निश्चित मूल्य है । आपके शरीर का बल, अथवा मानसिक बल, आपकी व्यापारिक सफलता और आपके सम्पर्क से दूसरों को मिलने वाला आनन्द, इस सबका आधार आपने विचारों पर ही है। जिस दिशा में आप अपने मन को फेरते हो, उसी दिशा में से आपका आत्मा अनुकूल अदृश्य तत्वों को अपनी तरफ खींचता है । यही नियम रसायन शास्त्र तथा अध्यात्म शास्त्र का है । यह नियम केवल उन्हीं पदार्थों पर लागू नहीं होता जिनको हम देखते रहते हैं क्योंकि जितने पदार्थों को हम आँखों से देखते हैं उससे दस हजार गुने अधिक पदार्थ हमारे नेत्रों से अगोचर रहते हैं । इसी सत्य को समझाने के लिये भगवान बुद्ध ने कहा था--

न हि वेरेण वेराणि सम्मन्तीध कदाचनं ।
अवेरेण च सम्मन्ति एस धम्मो सनातनो ।।

अर्थात्- ''वैर कभी वैर से शान्त नहीं हो सकता वरन् अवैर (प्रेम) से ही शान्त होता है, यही सनातन धर्म और सनातन नियम है । भलाई का कार्य करना ही प्रकृति में उपस्थिति शुभ और शक्तिमान तत्वों को अपनी तरफ आकर्षित करने के समान है । खराब, बुरे काम करने से बुरे तत्व अपनी तरफ आने लगते हैं, जब हम इस तथ्य को सिद्धान्त को अच्छी तरह समझ लेंगे, तभी अपने कल्याण की दृष्टि से खराब विचारों को अपनी तरफ आने से रोक सकेंगे । कहा गया है कि जो द्वेष में रहते हैं वे द्वेष में ही मृत्यु पायेंगे । इसी बात को किसी अन्य महापुरुष ने इस प्रकार कहा है कि जो तलवार से जीते हैं वे तलवार से ही मरते भी हैं । हर एक खराब विचार सामने खड़े हुये विरोधी मनुष्य पर उठाई हुई तलवार है । अगर सामने खड़ा मनुष्य भी तलवार उठाले तो दोनों को भयंकर परिणाम भोगना पड़ेगा ।

आकर्षण का उपरोक्त नियम प्रत्येक लोक में समान रूप से काम करता रहता है । जिस चीज की हम इच्छा करते हैं और आशा रखते हैं वही हमारी तरफ खिंचकर आती है। हम इच्छा तो एक वस्तु की करें और आशा दूसरी चीज की रखें तो उसका परिणाम इस कहावत के अनुसार होगा कि दो घरों का मेहमान भूखा मरता है । ऐसा व्यक्ति जीवन में कोई लाभ नहीं उठा सकता । इसलिये सफलता और सिद्धि का मार्ग यही है कि जिसकी इच्छा करो उसी की आशा रखो । इसी रीति से तुम्हारा इष्ट पदार्थ तुमको प्राप्त हो सकता है । किसी भी विशेष विचार को पसन्द करके तुम अपने साथ रखो, तो इसका परिणाम यह होगा कि जहाँ तक वह विचार कायम रहेगा वहाँ तक आप चाहे जिस देश और अवस्था में रहें, वह मुख्य विचार सर्वत्र अपने अनुकूल तत्वों को आकर्षित करता ही रहेगा ।

किसी विचार का बहुत प्रबल इच्छा के रूप में होना और उस इच्छा के पूर्ण होने की दृढ़ आशा रखना इसी का नाम श्रद्धा है । यह इच्छा जितनी अधिक प्रबल होती है और जितने परिमाण में उस पर आशा रूपी जल सींचा जाता है उतने परिमाण में वह इष्ट पदार्थ को अपनी तरफ आकर्षित करती है । अगर वह पदार्थ अदृश्य होता है तो श्रद्धा ही उसे दृश्य स्वरूप में ले आती है ।

परन्तु इस श्रद्धा में जो थोड़ा-सा भी शंका या भय का विचार मिल गया तो उसकी शक्ति क्षीण पड़ जाती है और तब उसका सफल होना कठिन हो जाता है । किसी भी विचार को यदि बार-बार मन के सम्मुख रखा जाय और उसे दृढ़ श्रद्धा रूपी जल सिंचाई के लिये मिलता रहे, तो उस विचार को शक्ति इतनी अधिक बढ़ जाती है कि कोई भी विघ्न बाधा उसके सामने नहीं टिकती, और उसका परिणाम अवश्य संतोषजनक सिद्ध होता है ।

हमको अब यह प्रतीत होने लग गया है और भविष्य में अधिकाधिक प्रतीत होता जायगा कि श्रद्धा के संबंध में ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह कोई हवाई कल्पना नहीं है वरन् एक वैज्ञानिक तथ्य है और उसकी नींव अचल नियमों पर टिकी हुई है । रसायन विज्ञान भी धीरे-धीरे विचार शक्ति के मूल में रहने वाले नियमों की खोज करने में प्रयत्नशील है ।

आजकल संकल्प-बल के संबंध में बहुत बातें सुनने में आती हैं । संकल्प बल के शब्दार्थ पर से ही मालूम पड़ता है कि वह संकल्प अर्थात् विचारों का बल है । जिसे हम संकल्प कहते हैं, उस संकल्प के द्वारा ही विचार एकत्रित होकर एक विशेष रूप ग्रहण करते हैं और उसी अनुपात से अपने निश्चित कार्य में विजयी सिद्ध होते हैं । संकल्प बल दो प्रकार का होता है- एक लौकिक, दूसरा दैवी । इनमें से लौकिक संकल्प बल तो मन तथा शरीर से संबंध रखता है और इस कारण उसे द्वितीय श्रेणी में गिना जाता है । जिन लोगों को इस बात का ज्ञान नहीं है कि स्थूल इन्द्रियों और मन की अपेक्षा उच्च श्रेणी का एक आध्यात्मिक जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी होता है, वे ही मनुष्य इस द्वितीय श्रेणी के जीवन को पसन्द करते और व्यतीत करते हैं । उच्च जीवन का अनुभव मिलने पर भी, मन तथा इन्द्रियों की शक्ति कुछ घटती नहीं है, उल्टा आध्यात्मिक शक्ति द्वारा मन तथा इन्द्रियों का पूर्ण रूप से विकास होता है और उनकी ग्रहण करने की शक्ति बहुत तीव्र बन जाती है ।

जो मनुष्य परमात्म-तत्व के साथ अपनी एकता के सिद्धान्त को समझ लेता है, उसी का संकल्प बल दैवी कहलाता है । वह इस बात का निश्चय रखता है कि मेरे भीतर रहने वाला परमात्म-तत्व बहुत अधिक समर्थ है ।

लौकिक संकल्प बल संकुचित और सीमित होता है, जबकि दैवी संकल्प-बल अपरिमित अर्थात् सीमा-रहित और सर्वश्रेष्ठ होता है । यह उच्च श्रेणी का आध्यात्मिक नियम मुक्त कण्ठ से आपको बतलाता है कि समस्त वस्तुएँ आपके लिये मौजूद हैं और आपके नियंत्रण में है । जितने परिमाण में आप अपने लौकिक बल को दैवी संकल्प बल में बदल डालोगे, अथवा जितना अधिक आप दैवी-संकल्प बल के साथ संबंध स्थापित कर लेते हैं और तदनुसार आचरण करते हैं उतना अधिक श्रेष्ठ आप बनते हैं । जीवन का और उसमें पाई जाने वाली शक्ति का रहस्य यही है कि मनुष्य को उस परम तत्व के साथ संबंध स्थापित करना चाहिये और उस संबंध को निरन्तर ज्ञानपूर्वक चलाते रहने का प्रयत्न करना चाहिये ।

एक मनुष्य का जीवन किस संकल्प बल के साथ संबंध रखता है, इसी आधार पर उसकी वृद्धि अथवा न्यूनता होती है । परम तत्व यद्यपि विश्वव्यापी है, पर वह विश्व से पृथक् स्वभाव वाला है । यह तत्व आपके और मेरे तथा प्राणीमात्र के जीवन में व्याप्त हो रहा है । वह जीवन द्वारा ही कार्य करता है और उस पर शासन करता है । सामान्य मनुष्य समझता है कि परमात्म-तत्व ने एक बार विश्व का निर्माण करके उसे चालू कर दिया और उसके पश्चात् इसके पृथक् कहीं अन्यत्र चला गया पर ऐसा विचारना एक बड़ी गलती है । जितना अधिक हम इस तत्व के विश्वव्यापी और साथ ही विश्वातीत होने की विशेषता को समझते और मानते जायेंगे, उतने ही परिमाण में हम उसकी महत्ता और शक्ति में भाग लेने के योग्य बनेंगे । जितने परिमाण में हम उस परम तत्व के जीवन और शक्ति के अनन्त भंडार के रूप में अनुभव करेंगे, उतना ही अधिक उसके साथ हमारा संबंध बढ़ता चला जायगा और उसी परिमाण में इस तत्व के दिव्य गुण हममें प्रकट होते चले जायेंगे ।

मन रूपी माध्यम के द्वारा ही आन्तरिक और बाह्य-जीवन का सम्बन्ध जुड़ता है और आन्तरिक जीवन स्थूल जीवन द्वारा व्यक्त होने लगता है । जितना ही अधिक मन रूपी माध्यम के द्वारा हम दैवी तत्व के साथ अपना ऐक्य अनुभव करते हैं, उतना ही अधिक दिव्य-जीवन का प्रकाश हमारे भीतर स्फुरित होता है, अन्तरिक प्रतिभा विकसित होती है और प्रकृति के रहस्य उसके आगे प्रकट होने लगते हैं । उसे अपने दैवी स्वभाव का प्रत्यक्ष दर्शन होने लगता है । इस प्रकार आध्यात्मिक शक्ति और ज्ञान के प्रकाश से अन्तर की दृष्टि खुल जाती है । तब वह जिस वस्तु पर निगाह डालता है, तो उसका स्वभाव, लक्षण, कारण आदि सहज में समझ में आ जाते हैं । जिस प्रकार स्थूल इन्द्रियाँ बहिर्मुख होकर कार्य करती हैं, उसी प्रकार भीतरी प्रतिभा अन्तर्मुख होकर सत्य को पहिचानने और ग्रहण करने के कार्य करती है । जिन बातों को हम प्रेरणा द्वारा प्राप्त ज्ञान (इन्सपायर्ड टीचिंग) अथवा आध्यात्मिक उद्‌गार कहते हैं, वह समस्त अन्तरात्मा की अपूर्व शक्ति द्वारा ही उत्पन्न होती हैं । इस प्रकार मनुष्य अनन्त ज्ञानमय दिव्य शक्ति के संबंध में आता है, उसकी प्रेरणा ग्रहण करता है और स्वयं धीरे-धीरे अनुभव सिद्ध ज्ञानी अथवा दृष्टा बन जाता है ।

ऊपर बतलाई हुई अवस्था में मन बंधन रहित बन जाता है और पक्षपात रहित होकर प्रथम दृष्टि में ही सत्य को ग्रहण कर सकता है । ज्ञान प्राप्त करने के बाह्य साधनों की अब उसको आवश्यकता नहीं रहती । वह सब मनुष्यों और पदार्थों को दिव्य दृष्टि से देखता है और सर्वज्ञता की शक्ति द्वारा सब बातें उसको प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं । जिसको हम आत्म-प्रतिभा कहते हैं । उसके प्रकाश में ईश्वरीय-योजना उनकी समझ में आने लग जाती है और वह उसके साथ तन्मय हुये बिना नहीं रहता ।

कितने ही इस आन्तरिक-प्रतिभा को आत्मा की आवाज कहते हैं, कितने ही उसे ईश्वरीय नाद के रूप में मानते हैं, कितने ही छठी इन्द्रिय के नाम से पुकारते हैं, अर्थात् उसे अपनी आध्यात्मिक इन्द्रिय मानते हैं ।

जितने परिमाण में हमको अपने सत्य-स्वरूप का ज्ञान होता जाता है और परमात्म तत्व के साथ अपना ऐक्य स्थापित होता जाता है उतनी ही यह आत्मिक आवाज पर ईश्वरीय नाद हमको अधिक स्पष्ट सुनाई पड़ने लगता है और अन्त में वह हमारे तथा अन्य अनेक व्यक्तियों के लिये मार्ग-दर्शन बन जाता है ।

परमात्मा प्रेम का समुद्र है

यदि हमको इस बात का निश्चयपूर्वक ज्ञान हो जाय कि हम परमात्मा से भिन्न अथवा पृथक् कदापि नहीं हैं, हममें और उसमें पूर्ण एकता है, तो संसार के अन्य सब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राणियों के प्रति भी हमारी यही भावना हो सकती है । तब हम न किसी प्राणी को नुकसान पहुँचा सकते हैं और न किसी की तरफ से हम को हानि होने की आशंका हो सकती है ।

समस्त मनुष्यों के जीवन की एकता (अद्वैत) का जैसे-जैसे हमको साक्षात्कार होता जायगा, वैसे-वैसे ही हमारी समझ में यह बात आती जायगी कि जो परमात्म सत्ता इस विश्व की मूल रूप है हम सब उसी के अंश रूप ही है । और सब लोगों में वही एक चैतन्य सत्ता काम कर रही है । इस प्रकार का विचार उत्पन्न होते ही हमारे भीतर रहने वाला सब प्रकार का द्वेष और अन्य लोगों के सम्बन्ध में उत्पन्न हो चुके खराब विचार अपने आप दूर होने लगते हैं । तब हम चाहे जैसे मनुष्य के सम्पर्क में आवें उसमें हम ईश्वर को ही देखना सीखने लगते हैं । हम तब शुभदर्शी बनने लेगते हैं और हमको चारों ओर शुभ ही दिखलाई पड़ता है । सच पूछा जाय तो इस भावना का मूल्य शब्दों द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता ।

इस मार्ग पर जब हम अग्रसर होने लगेंगे तो धीरे-धीरे हमको यह अनुभव हो जायगा कि स्वार्थ ही सब अपराधों की जड़ है, सब पापों का मूल है और सब प्रकार के स्वार्थ का मूल अज्ञान है । इस अनुभव के होने पर हम दूसरों के कार्यों और सब प्राणियों की तरफ उदार-भावना रखना सीख जायेंगे । केवल अज्ञानी मनुष्य ही दूसरों की हानि करके अपना ही स्वार्थ-साधन करने की इच्छा रखता है । ज्ञानी अच्छी तरह समझता है कि परमात्मा के विराट रूप- इस प्राणि-जगत में हम सब भिन्न-भिन्न अंशरूप अथवा परमाणु रूप हैं, इसलिये अगर दूसरे अंशों अथवा परमाणुओं का अहित करके अपने हित-साधन की चेष्टा करेंगे तो उसका परिणाम हमारे लिये हानिकारक ही होगा । सबके लाभ में ही हमारा लाभ भी समाया हुआ है । इस सिद्धान्त को ज्ञानी पुरुष सदा सत्य मानते हैं और उसी के अनुसार व्यवहार भी करते हैं ।

जैसा हमको विदित हो चुका है, मनुष्य के समस्त अपराधों, दोषों और पापों का मूल एक मात्र स्वार्थ की जड़ अज्ञान है । इससे यह निष्कर्ष भी निकलता है कि मनुष्य में किसी प्रकार दुर्गुण स्वभावतः नहीं होता, वरन् अज्ञान ही समस्त अवगुणों की खान है । इसलिये हमारा कर्तव्य है कि हमारे सम्पर्क में जो कोई आवे, उसमें हम दोष ढूँढ़ने की अपेक्षा दैवी गुणों का ही दर्शन करें और उन गुणों को ही प्रोत्साहन दें । अगर हमारा अन्तरात्मा सामने वाले व्यक्ति की अन्तरात्मा से ऐसी भावना रखकर सम्भाषण करेगा तो निश्चय ही दूसरा व्यक्ति भी हमारे प्रति सद्भावना ही प्रकट करेगा । इस रीति से दोनों पक्षों में सद्गुणों की वृद्धि होगी। पर यदि हम दूसरे-व्यक्ति में आसुरी गुणों की भावना करके बातचीत करेंगे तो उसके भीतर से भी आसुरी गुण ही प्रकट होने लगेंगे । इसका परिणाम यह होगा कि दोनों तरफ अशुभ गुणों की वृद्धि होने लगेगी ।

"अमुक मनुष्यों में तो किसी तरह का सार नहीं है" इस प्रकार के शब्द हम बहुत से मनुष्यों को बोलते हुए सुनते हैं । पर इस प्रकार कहने वाले ज्ञानी नहीं होते । अगर आप दीर्घ दृष्टि से गहराई में उतरकर देखें तो प्रत्येक मनष्य में प्रभु की झाँकी प्राप्त कर सकते हैं । पर प्रभु को देखने के लिये आपको भी प्रभु के जैसा ही बनना पड़ेगा । महात्मा और सन्त हर एक मनुष्य में सत्य, उच्च, श्रेष्ठ तत्व का अस्तित्व मानकर वैसा ही दैवी गुण युक्त उपदेश देते हैं, क्योंकि वे स्वयं साक्षात्कार कर लेने से प्रत्येक व्यक्ति में रहने वाले प्रभु को देख सकते हैं । इसी कारण वे पापी और चाण्डाल मनुष्य के साथ मिलने और उपदेश देने में जरा भी संकोच नहीं करते, फिर चाहे अन्य स्वार्थी और संकुचित विचारों के व्यक्ति उनकी निन्दा और उपहास ही क्यों न करते रहें । आज तक अधिकांश धर्म संस्थापकों ने अपने सत्कार्यों के लिये स्वार्थी व्यक्तियों अथवा सामान्य जन-समाज की तरफ से ऐसी ही निन्दा, तिरस्कार और विरोध के व्यवहार को सहन किया है । पर मिथ्याभिमान, ढोंग, आडम्बर और स्वार्थ में डूबे हुये व्यक्ति, चाहे वे बड़े पंडित ही क्यों न कहलाते हों, पतित और पददलित लोगों में ऐसे परमात्म-तत्व का दर्शन नहीं कर सकते ।

इस प्रकार के प्रेममय विचारों का प्रभाव मनुष्य पर नहीं पशुओं पर भी पड़ता है । कितने ही पशुओं का शरीर इतना संवेदनशील (नाजुक) होता है कि उन पर हमारे विचारों, भावनाओं और व्यवहार प्रभाव मनुष्यों की अपेक्षा भी अधिक शीघ्रता से पड़ता है । हम चाहे अपने विचारों को बोलकर प्रकट करें और चाहे मन में ही रखें पर सामने खड़े प्राणी पर उसका प्रभाव पड़ता ही है । पशु पर कितनी जल्दी असर होता है और वह कितनी तत्परता से हमारे प्रेम तथा सद्भावना का प्रत्युत्तर देता है, इसका दृश्य वास्तव में बड़ा अद्भुत और आनन्ददायक होता है ।

जैसे-जैसे हम प्रत्येक में प्रभु के दर्शन करना सीखते हैं, वैसे-वैसे उस व्यक्ति में परमात्म-तत्व के प्रकट होने में हम सहायक बनते हैं । तनिक विचारिये कि यह कितना महान् कार्य है । कितना बड़ा सौभाग्य है । यह अधिकार प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक व्यक्ति को मिल सकता है । यदि आप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस अधिकार को प्राप्त करना चाहते हैं तो अन्य व्यक्तियों के संबंध में खराब विचार रखना छोड़ दीजिये और उसके प्रतिदिन के भले-बुरे कामों की खोज करने के बजाय उसके भीतर अवस्थित निर्विकार, शाश्वत, चैतन्य, आनन्दमय प्रभु को ही देखने का अभ्यास कीजिये । ऐसा करने से आपके अन्तत्करण में भी प्रभु का भव्य स्वरूप प्रकट होने लगेगा ।

इस प्रकार विचार करने से मालूम पड़ता है कि प्रेम ही सर्वस्व है । मानव जीवन की कुंजी प्रेम ही है और उसी में समस्त संसार को हिला सकने की सामर्थ्य है । इसलिये प्रत्येक की तरफ प्रेम के विचार रखो और सबसे प्रेम के ही विचार प्राप्त करो । यदि ऐसा न करके दूसरों के प्रति द्वेष और ईर्ष्या के विचार रखोगे तो अन्य लोगों से भी आपको वैसे ही विचार और व्यवहार प्राप्त होंगे ।

द्वेष और उससे उत्पन्न होने वाली अन्य भावनायें अस्वाभाविक, अप्राकृतिक होने के सबसे विश्व-व्यवस्था के प्रतिकूल होती हैं । जिस प्रकार प्रेम ईश्वरीय नियम का अनुसरण करना है उसी प्रकार प्रेम की विरोधी भावनायें ईश्वरीय नियमों की विरोधी हैं । यह स्पष्ट है कि जहां ईश्वरीय नियम का विरोध अथवा उल्लंघन होगा, वहाँ उसके फलस्वरूप किसी दुख या व्याधि का किसी न किसी रूप में उत्पन्न होना अनिवार्य है । इस नियम से बच सकना असम्भव है । यदि तुम क्रोध, द्वेष, निन्दा, तिरस्कार, बुराई के विचार करते रहोगे तो उसका जहरीला और हानिकारक प्रभाव तुम्हारे मन और शरीर पर भी अवश्य पड़ेगा । इसी के फलस्वरूप हमारे शरीर का ढाँचा निर्बल होकर तरह-तरह के रोगों की उत्पत्ति होती है ।इस तरह आपके अशुभ विचार आपके लिये ही विनाशकारी सिद्ध होते हैं । इतना ही नहीं उन अशुभ विचारों से आकर्षित होकर अन्य लोगों की तरफ से वैसे ही दूषित विचार आपके भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं और आपके शरीर का और भी अधिक नाश करते हैं ।

"जो तलवार उठाता है वह तलवार से ही मरता है" जो दूसरे के लिये गड्ढा खोदता है उसके लिये कुआँ तैयार रहता है, इन लोकोक्तियों में गम्भीर वैज्ञानिक सत्य निहित है । जो लोग विचार शक्ति की सूक्ष्म शरीर के विषय में ज्ञान रखते हैं, वे अच्छी तरह जानते हैं कि जब हम किसी दूसरे व्यक्ति के विरुद्ध द्वेष के विचार करते हैं तब वे विकराल राक्षस की तरह उस व्यक्ति के पास जाते हैं और वहाँ भी वैसे ही द्वेष के विचार उत्पन्न करके प्रथम मनुष्य के पास ही वापस चले जाते हैं । केवल द्वेष के विचारों का ही नहीं वरन् काम, क्रोध, मद, लोभ आदि के विचारों का भी ऐसा ही अवसर होता है । ऐसी दूषित भावनाओं को हृदय में स्थान देने से, जिसके प्रति वे प्रकट की जाती हैं उसकी बजाय अपनी ही अधिक हानि करती हैं ।

इस प्रकार प्रेम, प्रेम का उत्पादक है और द्वेष, द्वेष को पैदा करने वाला होता है । प्रेम और शुभ भावनायें शरीर को प्रोत्साहन तथा जीवन प्रदान करती हैं जबकि द्वेष और अशुभ भावना से शरीर के भीतर खराबी पैदा होती है और वह धीरे-धीरे निर्बल या दूषित होने लगता है ।

इसके विपरीत जो द्वेष का भी उत्तर प्रेम से देता है उसके मन तथा शरीर की दिन पर दिन उन्नति होती जाती है । इतना ही नहीं इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप हमसे द्वेष रखने वाला व्यक्ति भी हमारा मित्र बन जाता है और उसका भी कल्याण ही होता है ।

गुरुनानक कहा करते थे-- गुस्सा की बात का उत्तर नम्रता से दो और द्वेषयुक्त आक्षेप का उत्तर स्नेहपूर्ण शब्दों में दो । तुम प्रेमयुक्त हाथों से हाथी के केवल एक बाल को पकड़कर उसे चला सकते हो । इसलिए अपने शत्रुओं को भी नम्रता और विनय से जबाव दो । शान्ति का उल्लंघन करना ही पाप है । हिन्दू शास्त्रों का तो सर्वत्र यही मत है कि - अशुभ का बदला शुभ से दो, द्वेष को प्रेम से जीते । द्वेष का नाश कभी द्वेष के द्वारा नहीं हो सकता, पर प्रेम से ही हो सकता है ।

कुछ लोग कहा करते हैं कि 'मैंने अमुक व्यक्ति के प्रति कभी द्वेष का विचार नहीं किया है, न मेरी ऐसी कोई भावना है, तो भी वह मेरे प्रति शत्रुता का भाव रखता है, इसका कारण क्या है ? पूर्व जन्म के किसी कारण से ऐसी बात भी कभी-कभी सत्य हो सकती हैं, पर वास्तव में यदि आपके मन में और हृदय में प्रतिकूल भावनायें नहीं होंगी तो आपका कदाचित् ही कोई शत्रु हो सकेगा । इस लिये पहले तो आप इस बात की पूरी तरह से जाँच कीजिए कि आपके भीतर किसी प्रकार की गुप्त या प्रकट द्वेष-भावना नहीं है । यदि आपको ऐसी किसी भावना का जरा भी चिन्ह न जान पड़े और तब भी वह आपसे शत्रुता का व्यवहार करता हो तो इसका आशय यह है कि आप आरम्भ से अन्त तक उसकी तरफ प्रेम और शुभेच्छा के विचार प्रेरित करते रहिए। ऐसा करने से उसका द्वेष-भाव सामर्थहीन बन जायगा और वह आपको किसी प्रकार की हानि न पहुँचा सकेगा । याद रखिये कि प्रेम, द्वेष की अपेक्षा अधिक बलवान है ।

दूसरों की उन्नति के लिए चेष्टा करने से आपकी उन्नति स्वभावतः होती रहती है । दूसरों की भलाई करते समय आप अपने ममत्व और स्वार्थ को जितना भूल जाते हो, आपके काम का प्रभाव उतना ही अधिक हो जाता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरा आपके साथ जैसा खराब वर्ताव करता है अगर आप भी उसके साथ वैसा ही खराब वर्ताव करने को तैयार हो जाते हो तो यह स्पष्ट हो जाता है कि द्वेष अथवा शत्रुता का तत्व आपके ही भीतर है और आपको जो विरोध तथा कठिनाई सहन करनी पड़ रही है आप उसी के योग्य हो ।

भाइयो ! एक दूसरे का हाथ पकड़ो । प्रेम की मधुरता से और सहानुभूति भरी आँखों से एक दूसरे को देखो । अनेक लोग , जीवन की खुराक-प्रेम बिना भूखों मर रहे हैं। ऐसे समय में आप अपने प्रेम को हृदय में ही बन्द मत रखो । ऐसे अवसर पर नम्र और प्रेमयुक्त वाणी स्वर्ग से गिरते हुए झरने के समान दिव्य आनन्द देने वाली सिद्ध होती है ।

दया से रहित जीवन सच्चा जीवन नहीं है, वरन् यह जीवित रहते हुए भी मृत्यु के समान है । इसलिए अपने हृदय से चारों तरफ दया का, प्रेम का प्रवाह बहने दो, इससे आपको अलौकिक आनन्द तथा शान्ति की प्राप्ति होगी । इस बात को कभी मत भूलिये कि ईश्वर ही प्रेम है और प्रेम ही ईश्वर है ।

सब प्रकार के पाप, दोष, अनुचित व्यवहार अज्ञान से ही उत्पन्न होते हैं । जब हम इस नियम को सच्चे स्वरूप में समझ लेते हैं तो फिर जिस किसी व्यक्ति में हमको ऐसे दोष, पाप आदि दिखाई पड़ते हैं, उसके प्रति हमारे हृदय में दया, सहानुभूति की भावना ही उत्पन्न होता अनिवार्य है । दया की यह भावना प्रेम का रूप ग्रहण कर लेती है और फिर उसे प्रत्यक्ष सेवा के रूप में प्रकट होना चाहिये हमारा यह अज्ञानी और निर्बल बन्धु जब तक सीधा खड़ा होना और अपने व्यक्तित्व का स्वामी स्वयं बनना न सीख ले तब तक हमको उसकी सहायता करनी चाहिये, यही हमारा दिव्य मार्ग है पर इतना होने पर भी मनुष्य का वास्तविक विकास तो अपने ऊपर ही निर्भर है । मनुष्य को जैसे-तैसे अपने दिव्य स्वभाव का ज्ञान होने लगता है वैसे-वैसे ही वह अपना स्वामी आप बनने लगता है ।

हम जैसा बोते हैं वैसा ही काटते हैं । बोई हुई वस्तु अपनी ही जैसी अनेक वस्तुओं को उत्पन्न करती है । जैसे हम किसी व्यक्ति को शारीरिक चोट लगाकर हानि पहुँचा सकते हैं उसी प्रकार विरोधी विचारों द्वारा भी उस पर प्रहार कर सकते हैं, और ऐसा हम करते भी हैं । इस प्रकार जब हम किसी अन्य व्यक्ति को मारते हैं तो उसके साथ अपने को भी अवश्य क्षतिग्रस्त करते हैं । सैकड़ों मनुष्यों के अशुभ विचारों से प्रभावित होने के कारण अनेक मनुष्य बीमार हो चुके हैं और कुछ तो इसी के फलस्वरूप मृत्यु को भी प्राप्त हो चुके हैं ।

"द्वेष से जिस प्रकार हम जगत को नर्क के समान बना देते हैं और उसी प्रकार प्रेम द्वारा हम उसे स्वर्ग के समान भी बना सकते हैं ।"

जो मनुष्य स्वार्थी होते हैं वे अपने ही फायदे का विचार करते हैं, अपने लाभ को ही देखते रहते हैं । ऐसे व्यक्ति हीन-कोटि के समझे जाते हैं । पर जो उदार स्वभाव वाले तथा निःस्वार्थी होते हैं वे अन्य लोगों को बड़े प्रेमी जान पड़ते हैं । संकुचित स्वभाव के लोग सदा फल पाने के लिए ही उत्सुक रहते हैं, जबकि उदार स्वभाव वाले निष्काम भाव से अपना कार्य करते रहने में ही आनन्द का अनुभव करते हैं । संकीर्ण मनोवृत्ति वाले आदर-सम्मान पाने के लिए इधर-उधर भटकते फिरते हैं, जबकि उदारवृत्ति वाले घर में बैठे हुये ही अनगिनती लोगों को अपनी तरफ आकर्षित करते रहते हैं । स्वार्थी मनुष्य अपने को ही चाहते हैं जबकि उदार मनुष्य संसार भर को चाहते हैं, और संसार का एक अंग होने के नाते अपने को भी चाहते हैं ।

मनुष्य में प्रेम का भाव जितना अधिक होता है वह उतना ही अधिक ईश्वर के समीप पहुँचता जाता है, क्योंकि ईश्वर ही अनन्त प्रेम का स्वरूप है । जैसे-जैसे हमको उस दिव्य चैतन्य शक्ति के साथ अपनी एकता का अनुभव होता जाता है, वैसे-वैसे ही वह प्रेम हमारे हृदय, मन, तन और आत्मा को इतना अधिक परिपूर्ण कर देता है कि वह उमड़ कर चारों तरफ फैलने, बिखरने लगता है और समस्त जगत के जीवन को अधिक सफल और आनन्दित बना देता है ।

परमात्मा-तत्व के साथ अपनी एकता का जैसे-जैसे हमको अधिक निश्चय होता जाता है वैसे-वैसे ही हम इस बात को भी समझते जाते हैं कि अपने मानव बन्धुओं के प्रति हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए । तब अन्य लोगों की सेवा करने में अपने स्वार्थ का बलिदान करने में ही हमको जीवन का वास्तविक उपयोग जान पड़ता है । साथ ही हमको यह भी अनुभव होने लगता है कि हम दूसरों के साथ जो भलाई या उत्तम व्यवहार करते हैं, उसका लाभ उन लोगों के साथ-साथ हमको भी मिलता रहता है । इसके विपरीत यदि हम अन्य लोगों को हानि पहुँचाते हैं तो साथ-साथ हमको भी हानि उठानी पड़ती है । इस प्रकार हमारी समझ में यह बात अच्छी तरह समा जाती है कि जो मनुष्य स्वार्थी जीवन व्यतीत करता है उसका जीवन सूखा, नीरस और संकुचित बना रहता है । उसे विशाल मानव-जीवन का कुछ भी पता नहीं लगता । पर जो मनुष्य अन्य लोगों की सेवा में अपने को भूल जाता है उसका जीवन बहुत विशाल और भव्य बन जाता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिव्यज्ञान का अनन्त स्रोत

परमात्मा दिव्य-ज्ञान का अथाह सागर है और हम उसके साथ-साथ जितना अधिक ऐक्य-भावना अनुभव करते जाते हैं उतना ही अधिक उस दिव्य-ज्ञान का प्रवाह हमारे अन्तःकरण में भी बहने लगता है । तब हम विश्व के उस मूल स्वरूप को भी समझ सकते हैं जो अधिकांश मनुष्यों को एक गूढ़ रहस्य के समान जान पड़ता है ।

जब हम ज्ञान के इस अनन्त स्रोत को जानने का प्रयत्न करने लगते हैं और उसी को हम अपना लक्ष्य बना लेते हैं, तब हम किसी खास व्यक्ति या धर्म-संस्था अथवा किसी विशेष धर्म-ग्रन्थ के गुलाम नहीं रहते । उस समय किसी महान् व्यक्ति या धर्म-सम्प्रदाय अथवा धर्मशास्त्र की बातों को सुनने और उनमें पाये जाने वाले सत्य सिद्धान्तों को ग्रहण करने में तो हमको उपेक्षा नहीं दिखलानी चाहिए, पर उन बातों को दैवी ज्ञान का मूल स्वरूप नहीं वरन् साधनस्वरूप ही समझना चाहिए । इन विभिन्न प्रकार के धार्मिक मतों द्वारा परमात्म-तत्व का महत्व, साधन की विधि, मार्ग में आने वाले अन्तर आदि का तो ज्ञान हो सकता है, पर वह मूल वस्तु तो हमारे भीतर ही मिल सकती है । एक विद्वान् ने ठीक ही कहा है कि सत्य हमारे अन्दर में ही मौजूद है । तुम चाहे जिस सिद्धान्त या मत को मानते रहो पर सत्य बाहर से प्राप्त नहीं हो सकता । हमारे सबके भीतर एक गुप्त केन्द्र-बिन्दु है, जहाँ सत्य अपने वास्तविक रूप में स्थित रहता है ।

प्रत्येक धर्म-ग्रन्थ में यह कहा गया है कि अमुक जिज्ञासु और पवित्र मनुष्य को कुछ साधन करने के पश्चात् अपने अन्तर में से ऐसी आवाज सुनाई दी कि 'धीरे-धीरे शान्तिपूर्वक' यह उनकी आत्मा का ही आदेश था जो स्वयं परमात्मा शक्ति से प्राप्त हुआ था । यदि हम भी इस आवाज को स्वीकार करके धीरे और शान्ति के सिद्धान्त पर आचरण करने लगे तो हम भी उसे अपने भीतर सुन सकते हैं और उसके मार्ग-दर्शन में सीधे मार्ग पर चलते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं । पर कठिनाई यही है कि हम उस आवाज को या तो सुनते ही नहीं अथवा सुनकर भी उसका अनुसरण नहीं करते । इस प्रकार हमारे घर में ही फूट फैली रहती है । हम एक क्षण किसी एक तरफ आकर्षित होते हैं और दूसरे क्षण अन्य तरफ खिंचने लग जाते हैं । इस खींचातानी में हम जरा भी स्थिर अथवा सफल नहीं हो पाते । इसका परिणाम गीता के कथनानुसार **'संशयात्मा विनश्यति,** अर्थात् संशयग्रस्त आत्मा वाले नष्ट हो जाते हैं ही होता है ।

अनन्त चैतन्य स्वरूप परमात्मा की आवाज को सुनने के लिये यदि हम अपने हृदय के द्वार को खुला हुआ रखें, तो हमको जानने योग्य समस्त विषय अपने आप स्पष्ट रूप से विदित होते चले जायें और हम यथार्थ ज्ञानी बनकर अपने तथा अन्य समस्त पदार्थों के सच्चे स्वरूप को पहिचानने में समर्थ हो जायें ।

इस ईश्वरीय ज्ञान का ही नाम प्रज्ञा कहा जाता है । यह प्रज्ञा अन्तःकरण के स्फुरण से ही प्रकट होती है । बाहर की बहुत-सी वस्तुओं का ज्ञान तो हमको उत्तम स्मरण शक्ति द्वारा दूसरों से उपदेश सुनकर हो सकता है, पर 'प्रज्ञा' इस प्रकार के ज्ञान से बहुत ऊँची वस्तु है और बाहर से प्राप्त होने के बजाय अन्तःकरण में ही स्फुरित होती है ।

जो मनुष्य इस गंभीर ज्ञान अर्थात् 'प्रज्ञा' के प्रदेश में पदार्पण करना चाहे, उसे सबसे पहले तो मानसिक अभिमान से छुटकारा पाना चाहिये । उसे एक छोटे बच्चे की तरह बन जाना चाहिये । पहले से ही बनाये हुये विचार, भावनाएँ और तर्क, सत्य के द्वार में प्रवेश करने के लिये विघ्न रूप सिद्ध होते हैं ।

धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और विज्ञान सम्बन्धी संस्थाओं की तरफ दृष्टिपात करने से विदित होता है कि उनमें भाग लेने वाले अनेक व्यक्ति अपने निजी विचारों और पहले से स्वीकार कर ली गई भावनाओं में ऐसे लुब्ध हो जाते हैं कि सत्य के विशाल और प्रतिदिन प्रकट होने वाले नये-नये स्वरूपों के लिये उनके हृदय में स्थान ही नहीं रहता । ऐसे मनुष्य विकास क्रम में आगे बढ़ने की अपेक्षा संकुचित विचारों के बनकर बहुत समय तक जैसी की तैसी स्थिति में पड़े रहते हैं । वे सत्य को ग्रहण करने में असमर्थ बन जाते हैं और संसार की उन्नति में सहायक बनने के बजाय प्रगति के मार्ग में रोड़े की तरह विघ्न-रूप सिद्ध होते हैं । पर ऐसी स्थिति अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकती । जैसे-जैसे समय व्यतीत होता जाता है, ऐसे मनुष्यों का शरीर उन्नति-चक्र के वेग से रगड़कर छार-छार होकर एक तरफ फेंक दिया जाता है और ईश्वरीय सत्य का रथ आगे बढ़ता चला जाता है । जब भाप के इंजिन का आविष्कार किया गया था और उसका पूर्ण रूप से विकास नहीं हो पाया था उस समय इंग्लैण्ड के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने एक पुस्तिका प्रकाशित कराई थी, जिसमें यह सिद्ध किया गया था कि यदि भाप का इंजिन कामलायक बन भी जाय तो भी वह समुद्री जहाजों को चलाने में तो कदापि उपयोगी नहीं हो सकता, क्योंकि इतनी दूर की यात्रा करने के लिये जितने अधिक कोयला की आवश्यकता होगी उसको रखने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की जगह ही उसमें नहीं मिल सकती । आश्चर्य की बात है कि इसके थोड़े ही वर्ष उपरान्त भाप से चलने वाला जो सबसे पहला जहाज इंग्लैण्ड से अमरीका को गया उसमें भेजे गये माल में उपरोक्त पुस्तिका का भी एक पार्सल रखा था । जो लोग जान-बूझकर सत्य की तरफ से अपने हृदय-द्वार को बन्द कर लेते हैं उनको इससे भी विस्मयजनक अनुभव होते हैं ।

सत्य किन्हीं रूढ़िग्रस्त मान्यताओं अथवा जन-साधारण में फैले विशेष विचारों के द्वारा नहीं जाना जा सकता । अनेक बार तो वह इनके विपरीत मार्ग से हमारे सम्मुख आता है । इसलिये इस संबंध में हमको किसी आत्मदर्शी विद्वान का यह कथन याद रखना चाहिये-

अपने अन्तःकरण रूपी घर में बहुत-सी खिड़कियाँ रखो जिससे विश्व की समस्त भव्यता उसे सुन्दर बनाने में सहयोग दे सकें । एकाध पंथ या सम्प्रदाय रूपी छोटी सी खिड़की, दिशाओं में चमकती हुई प्रकाश की किरणों को उसके भीतर प्रविष्ट कराने में असमर्थ सिद्ध होती है । इसलिये शंका अथवा संशय के एकदेशीय पर्दों को चीड़-फाड़ कर अलग कर दो और बड़ी तथा बहुसंख्यक खिड़कियों द्वारा सत्य के प्रकाश को आने दो । तारागणों के अलौकिक गीत तथा कृति-प्रकृति मधुर आवाज को सुनने के लिये अपने कानों को अभ्यस्त करा दो तो फिर जिस प्रकार सूर्यमुखी का फूल अपना मुख सदैव सूर्य के सामने ही रखता है, उसी प्रकार तुम्हारा हृदय भी सत्य और भलाई की तरफ अवश्य उन्मुख रहेगा ।

जहाँ सत्य को स्थान नहीं मिलता, वहाँ सत्य के साथ रहने वाले आशीर्वाद, अनेक प्रकार के लाभ भी नहीं मिल सकते । इसके विपरीत उनकी जगह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक जड़ता, रोग और मृत्यु ही प्राप्त होते हैं । जो मनुष्य किसी अन्य मनुष्य को स्वतंत्र और बन्धन रहित सत्य को खोजने से रोकता है वह लुटेरे और चोर से भी अधम त्याग देने योग्य है क्योंकि वह अन्य व्यक्ति के जीवन विकास जैसे दैवी कार्य में भारी नुकसान पहुँचाता है ।

ईश्वरीय-सत्य इतना विशाल, महान और भव्य है कि कोई उसका एक मात्र ठेकेदार नहीं बन सकता । संसार में सत्य के शिक्षक बहुत से मिल सकते हैं, पर जो सच्चा शिक्षक होगा वह यह दावा हर्गिज नहीं करेगा कि सब मनुष्यों को मेरा बतलाया विशेष प्रकार का सत्य मानना चाहिये । सच्चा शिक्षक तो शिष्य को उसके व्यक्तित्व और उसकी आन्तरिक शक्तियों का परिचय करा देता है जिसके द्वारा वह स्वयं सत्य के वास्तविक स्वरूप को समझ सकता है ।

एकाकी शिक्षकों में स्वार्थ, अहंकार वृत्ति अथवा सांसारिक सुखों की तृष्णा होती है । सम्पूर्ण सत्य मेरे सिवाय और किसी के पास नहीं है । ऐसा दावा करने वाला धर्म गुरु धर्मान्ध, मूर्ख अथवा कपटी ही होता है ।

एक मेंढक एक कुँआ में रहता था और उससे बाहर कभी नहीं निकला था । एक दिन समुद्र में रहने वाला कोई मेढक उस कुएँ में आ गया । कुआँ में रहने वाले मेढक ने पूछा- तुम कौन हो ? कहाँ रहते हो ? आगन्तुक ने उत्तर दिया मैं अमुक जाति का मेढक हूँ और समुद्र में रहता हूँ ।

समुद्र ! समुद्र क्या होता है ? और वह कहाँ है ?''

''समुद्र वह है जहाँ पानी की कोई थाह नहीं है । और जो यहाँ से ज्यादा दूर भी नहीं है ।''

''तुम्हारा, समुद्र कितना बड़ा है''

''ओह, समुद्र तो बहुत बड़ा है ।

कुयें के मेढक ने पास पड़ा हुआ पत्थर दिखलाकर कहा इतना बड़ा है ?

नहीं इससे ज्यादा बड़ा है ।

जिस पट्टी पर वे दोनों बैठे हुये थे, उसको बतलाकर पूछा- क्या इतना बड़ा है ?''

''नहीं, नहीं, बहुत ज्यादा बड़ा है ।

तब कितना बड़ा है

जिस समुद्र में मैं रहता हूँ वह तो तेरे इस कुयें से भी बहुत अधिक बड़ा है । ऐसे अगर लाखों कुएँ पानी से भर दिये जायें, तो भी सब मिलकर समुद्र के बराबर नहीं हो सकते ।

कुयें का मेढक चिल्ला उठा ढोंग-ढोंग, तू कपटी और झूँठा है । मेरे कुआँ में से चला जा । तेरे जैसे गप्प उड़ाने वालों से मैं बात भी नहीं करना चाहता ।

शास्त्रों का कथन है कि तुम सत्य को जान जाओगे तो तुरन्त ही वह सत्य तुमको स्वतंत्र बना देगा और यदि तुम सत्य के लिये अपने हृदय के दरवाजे को बन्द रखोगे और अपने पहले से माने हुये संकुचित विचारों को ही पकड़े हुये बैठे रहोगे तो तुमको वे विचार मूर्ख और विचार शून्य बनावेंगे । जो लोग अपनी बुद्धिमत्ता के संबंध में घमंड करने लगते हैं वैसे बहुत मनुष्यों पर उपरोक्त लक्षण चरितार्थ होता है । मानसिक विकास के अवरुद्ध हो जाने का अर्थ ही सनकीपन या मूर्खता होता है । किसी भी कारण से जो मनुष्य सत्य को न मानकर अपने हृदय के द्वार को बन्द कर लेते हैं, उनको चाहे पागल के नाम से पुकारा न जाय पर वस्तुतः वे पागल ही होते हैं । किसी व्यक्ति विशेष, किसी खास धर्मग्रन्थ अथवा किसी समुदाय या संस्था की तरफ से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

जो बात कही गई हैं, उनके संबंध में स्वयं भली प्रकार विचार किये बिना यह मान लेना कि वह सत्य ही है, मानसिक विकास को रोक देता है ।

जो मनुष्य अपने आन्तरिक प्रकाश की वृद्धि करने की अपेक्षा बाह्य साधनों पर ही आश्रित रहते हैं, उनकी स्थिति ऊपर लिखे अनुसार ही होती है इसलिये हमको सत्य के निर्भय तथा दृढ़ उपासक वाल्ट विटमैन के शब्दों को इस प्रकार कहना चाहिये--

''इसी क्षण से मैं अपनी अन्तरात्मा को सब प्रकार के काल्पनिक बन्धनों तथा सीमाओं से मुक्त मानता हूँ । मैं अपने विचारानुसार ही चलूँगा । अपने व्यक्तित्व का मैं पूर्ण रूप से स्वामी हूँ । दूसरों के कथन को मैं पूरी तरह विचारूँगा, खोज करूँगा, ग्रहण करूँगा और मनन करूँगा । इस प्रकार धीरे से किन्तु दृढ़ संकल्प बल से मैं समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाऊँगा ।''

ईश्वर का सीमाबन्धन रहित सत्य सबके लिए एक समान रूप से प्राप्त हो सकता है ।''- यह विचार ही हमारे लिए अतिशय आनन्द देने वाला होना चाहिए । जितना अधिक मनुष्य सत्य की खोज करता है और उसे प्राप्त करने के लिए अपने हृदय के द्वार को खुला हुआ रखता है, उसी परिमाण में सत्य उसके हृदय में स्थान ग्रहण करता है ।

अन्तरात्मा के आदेश का पालन कीजिए

यदि हमारे जीवन में कभी ऐसा समय आता है कि जब हम यह निश्चय न कर सकें कि क्या करना चाहिए अथवा किस मार्ग को स्वीकार करना चाहिए तो समझ लेना चाहिए कि इसमें दोष हमारा ही है ।

जिस दोष की जड़ हमारे भीतर है, उसका प्रतिकार करने का उपाय भी हमारे भीतर से ही मिल सकता है । अगर हम निरन्तर जाग्रत रहें और अपने भीतर स्थित प्रकाश और शक्ति का अनुभव करते रहें तो फिर क्या करें अथवा क्या न करें ? इस प्रकार के संशय करने का अवसर ही न आयेगा । क्योंकि अन्तरात्मा का तेज सदैव प्रकाशित रहता है और यदि हम उस प्रकाश को रोकने वाली कोई बाधा उत्पन्न न होने दें तो हमको अपने वास्तविक कर्तव्य का ज्ञान सदैव होता रहेगा ।

एक महान् पुरुष, जिसने आन्तरिक प्रकाश को प्राप्त कर लिया है और जिसे कभी इस बात का संशय उत्पन्न नहीं हुआ कि क्या करना और क्या न करना है-- इस संबंध में कहना है कि जब कभी ऐसी शंका उत्पन्न हो कि किस मार्ग को ग्रहण किया जाय और किसका त्याग किया जाय और जब बाह्य साधनों का आश्रय लेने से सत्य-मार्ग का निश्चय न होता हो तो उस समय तुम्हारे अन्तःचक्षु को देखने दो और अन्तः श्रवणेन्द्रिय को सुनने दो । इस सीधे-सादे और स्वाभाविक नियम पर बिना किसी शंका, कुतर्क अथवा प्रश्न के आचरण करने से सब प्रकार की समस्याओं और दुविधाओं का समाधान अपने आप हो जाता है ।''

एक ऐसे ही आन्तरिक स्फुरण करने वाले मनुष्य के विषय में कहा जाता है कि उसके बैठने का स्थान एक ऐसे हॉल, (बहुत बड़े कमरे) में था जिसमें अनेक व्यक्ति व्यापार सम्बन्धी बातचीत जोर-जोर से करते रहते थे और बीसियों मनुष्य अन्य कामों के लिए आते-जाते रहते थे, परन्तु उस शोरगुल से वह मनुष्य कभी संक्षोभ को प्राप्त नहीं होता था । जब कभी उसके सामने कोई गंभीर प्रश्न आता था तो वह आत्म-श्रद्धा वाला मनुष्य उसी हॉल के भीतर बैठा-बैठा अपने चारों तरफ एक ऐसा मानसिक पर्दा डाल लेता था कि मानो किसी एकान्त स्थान या निर्जन वन में बैठा हो । वह मौन और शान्तिपूर्वक बैठा हुआ अपनी समस्या के सिवाय न तो कुछ देखता था और न कुछ सुनता था और जब तक उसके प्रश्न का उत्तर अन्तःकरण से सफुरित न हो तब तक उसी स्थिति में बैठा रहता । परिणामस्वरूप वह मनुष्य अपनी किसी समस्या के समाधान में कभी धोखा नहीं खाता था ।

अपने भीतर से सत्य का दर्शन होने पर हृदय की भूख दूर होती है । इस दर्शन का होना ऐसा है जैसे ऊसर में अमृत की वृष्टि होना । अन्तःस्फुरण वाले मनुष्य को अपना आध्यात्मिक भोजन हर रोज इस स्फुरण द्वारा प्राप्त होता रहता है । पर इस अन्तःस्फुरण का प्रयोग अथवा इसका अनुसरण तुरन्त करना चाहिए । जो मनुष्य अन्तःस्फुरण के अनुसार चलने में अधिक विलम्ब लगाता है तो फिर ऐसी स्थिति आ जाती है जब मन में झूँठे भ्रम पैदा हो जाते हैं और अन्तःस्फुरण में हीन श्रेणी की वासनाओं की मिलावट हो जाती है ।

हम शारीरिक इन्द्रियों तथा सांसारिक बुद्धि की सीमा का अतिक्रमण करके अपने जीवन तथा परमात्म-तत्व के बीच जितना ऐक्य स्थापित करते जायेंगे, उसी परिमाण में हमको आन्तरिक आवाज सुनाई पड़ने लगेगी और यदि हम उसके अनुसार व्यवहार करते रहेंगे तो वह आवाज हमको कभी धोखा नहीं देगी तथा निरन्तर हमको यथार्थ मार्ग दिखलाती रहेगी । इस श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करने वाला मनुष्य मरने के पश्चात् स्वर्ग जायगा, ऐसा न समझना चाहिए, वरन् वह सदैव स्वर्ग में ही रहता है ऐसा विश्वास रखना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह स्थिति सबको प्राप्त हो सकती है । जब कभी हम सत्य के मार्ग पर चलने लगते हैं यह स्थिति हमारे सम्मुख उसी प्रकार उपस्थित हो जाती है जैसे वायु स्वभावतः हमें मिल जाती है अथवा फूल स्वयमेव खिल जाते हैं ।

यह स्थिति न तो धन से खरीदी जा सकती है और न उसके मूल्य में किसी स्थूल पदार्थ का लेन-देन हो सकता है । यह तो एक ऐसी स्थिति है कि जिसका साक्षात्कार धनी और दरिद्र, सेवक और सेठ, राजा और रंक समान रूप से कर सकते हैं, प्रत्येक मनुष्य उसका समान रूप से हकदार है । अगर किसी ग्रामीण किसान को उस स्थिति का अनुभव हो जाय तो वह एक राजा की अपेक्षा भी महान भव्य और वास्तविक सत्ता वाला बन जाता है । यदि किसी सेवक को उस स्थिति की प्राप्ति हो जाती है तो वह अपने अमीर स्वामी अथवा सेठ की अपेक्षा श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर सकता है ।

अगर आपको भी इस ऊँचे से ऊँचे, पूर्ण से पूर्ण और विशाल से विशाल जीवन को अनुभव करना हो तो सबसे पहले इस भ्रमपूर्ण विचार को दूर करो कि "दिव्य परमात्म-चैतन्य से आपका आत्म-चैतन्य भिन्न है ।" इसके लिये आवश्यक है कि आप परमात्म-शक्ति के साथ अपनी अभेदता के सिद्धान्त पर दृढ़ विश्वास रखो । आप इस विचार पर जितने अधिक दृढ़ बने रहोगे, उसी परिमाण में आपको विशेष अनुभव होने लगेगा । जैसे-जैसे आप इस प्रकार का अनुभवयुक्त जीवन व्यतीत करते जाओगे वैसे-वैसे ही समस्त शुभ वस्तुएँ आपकी तरफ आकर्षित होती चली जायेंगी । जब आपकी ऐसी स्थिति हो जायगी तो आपको जो कोई भी काम करना पड़ेगा उसे आप किसी भी प्रकार के भय के बिना अथवा भविष्य की किसी चिन्ता किए बिना पूरा कर सकोगे । उस समय आपको आने वाले कल की कुछ भी फिक्र न होगी क्योंकि आपको दृढ़ विश्वास होगा कि आने वाले कल की आध्यात्मिक खुराक उस दिन अवश्य मिल जायगी ।

जो मनुष्य उपरोक्त सत्य सिद्धान्त को मानता है उसे ईश्वर कभी निराश नहीं करता । अनिश्चित और असन्तोषजनक परिणाम उन्हीं लोगों को सहन करने पड़ते हैं कि जिनकी श्रद्धा अनिश्चित तथा अधूरी होती है । ईश्वर से बढ़कर सत्य, उत्तम और विश्वस्त वस्तु और कोई नहीं है । जो पूर्ण रूप से उसकी शरण में जाता है, उसे वह धोखा दे, यह विचार स्वप्न में भी नहीं किया जा सकता । क्योंकि ईश्वर तो ऐसे व्यक्ति को अपना सर्वस्व सौंपने और उसे अपने समान बनाने को आतुर रहता है । इसलिए कोई भी काम करते हुए, किसी भी स्थिति में, दिन में या रात्रि में, सोते या जागते हुए मनुष्य को अपने और परमात्मा के बीच अभेद भाव का साक्षात्कार करते हुए जीवन बिताना ही उचित है । जीवन का वास्तविक रहस्य भी यही है । केवल जाग्रतावस्था में ही ईश्वरीय साक्षात्कार हो सकता है ऐसी बात भी नहीं है । सोते हुए भी वैसा ही साक्षात्कार हो सकता है । हम यहाँ पर पाठकों को यह समझाने का प्रयत्न करेंगे कि निद्रा के समय भी हम किस प्रकार ज्ञान और प्रकाश प्राप्त कर सकते हैं ।

निद्रा आने पर हमारा यह स्थूल शरीर ही आराम करता है और शान्त होकर पड़ा रहता है । मानसिक शरीर तो अपनी क्रिया करता ही रहता है । निद्रा का उद्देश्य शरीर की उस कमी एवं घिसाई की पूर्ति करना है जो दिन में, जाग्रत अवस्था में काम करते रहने से शरीर में पैदा होती है । निद्रा उस घटी को पूरा करके शरीर को नव-जीवन प्रदान करती है । वह नवीन शक्ति देने वाली एक प्राकृतिक विधि है । अगर हम उचित निद्रा द्वारा शरीर में होने वाली इस घिसाई की पूर्ति न करते रहें तो हमारा शरीर दिन पर दिन निर्बल पड़ता जायगा और उसमें रोगों का प्रविष्ट होना सुगम हो जायगा ।

हम वर्तमान समय में शरीर का जो उपयोग करते हैं उसकी अपेक्षा उच्च कार्य की पूर्ति के लिये हमें दिया गया है । जहाँ शरीर अपने स्वामी का स्वामी बन जाता है, वहाँ ऐसी ही स्थिति पैदा हो जाती है । परन्तु जब हम मन तथा आत्मा की उच्च शक्तियों को जानने लगते हैं, तो यह स्थिति बदलने लगती है और हमारे शरीर पर उच्च तत्वों का असर होने लगता है । इसके फलस्वरूप हमारे शरीर से घटिया किस्म के परमाणु दूर होने लगते हैं तथा हमारा शरीर अधिक सूक्ष्म और देखने में अधिक भव्य जान पड़ने लगता है । उच्च तत्वों के साथ संबंध होने से मन में एक अपूर्व आनन्द का आविर्भाव होने लगता है और उसके प्रभाव से खाने की नेकी तथा अनेक प्रकार के भोगों की आसक्ति कम होने लगती है । तब माँस-मदिरा और शरीर को उत्तेजित करने वाले अन्य मादक पदार्थों की तरफ से मनुष्य को स्वयं अरुचि होने लग जाती है और उसकी अपेक्षा वह ऐसे सात्विक भोजन की इच्छा करने लगता है जो शरीर का उचित पोषण करे, मस्तिष्क को शान्त रखे, स्नायुओं को दृढ़ बनावे । इससे उसका शरीर अधिकाधिक सत्वगुण युक्त, सूक्ष्म और श्रेष्ठ परमाणुओं वाला बन जाता है जिससे उसकी घिसाई कम हो जाती है और जो कुछ होती है, वह शीघ्रतापूर्वक पूरी हो जाती है । इससे शरीर बहुत नियमित और सन्तुलित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहने लगता है । उस अवस्था में शरीर को बहुत कम निद्रा की आवश्यकता होती है और वह थोड़ी नींद भी ऐसे सूक्ष्म तथा श्रेष्ठ परमाणुओं से बने शरीर को विशेष लाभदायक सिद्ध होती है ।

इस प्रकार शरीर जैसे-जैसे अधिक सूक्ष्म तथा शुद्ध परमाणुओं से युक्त बनता जाता है, और जैसे-जैसे उनकी उन्नति शीघ्रता से होने लगती है, वैसे-वैसे ही वह मन तथा आत्मा को उच्च स्थिति में पहुँचाने में सहायक होने लगता है । जिस प्रकार मन शरीर की मदद करता है उसी प्रकार शरीर भी मन का सहायक बन जाता है, इसी तथ्य को ध्यान रखकर एक महाकवि ने कहा है कि ''समस्त श्रेष्ठ वस्तुएँ अपनी ही हैं, क्योंकि आत्मा जिस प्रकार शरीर की मदद करता है उसी प्रकार शरीर भी आत्मा की मदद करता है ।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि शरीर को विश्राम देने तथा समस्त दिन में उत्पन्न होने वाली घटत की पूर्ति करने के लिये निद्रा बड़ी महत्त्वपूर्ण है । परन्तु आत्मा को ऐसे आराम की जरूरत नहीं है । शरीर निद्राहीन हो तब और दिन की भाँति रात्रि के समय भी आत्मा अपना काम करती ही रहती है ।

अन्तरात्मा की प्रवृत्तियों का गहरा ज्ञान रखने वाले व्यक्ति बतलाते हैं कि निद्रा लेते समय हम किसी भी स्थान की यात्रा कर सकते हैं । कितने ही मनुष्य निद्रा के समय देखी हुई घटना, प्राप्त की हुई जानकारी और विविध दृश्यों का ज्ञान जाग्रत होने पर स्थूल मस्तिष्क में ला सकने की सामर्थ्य रखते हैं । तो भी अधिकांश मनुष्यों को ऐसी शक्ति प्राप्त नहीं होती और वे बहुत से जीवनोपयोगी ज्ञान से वंचित रह जाते हैं । इस विषय के अनुभवी बतलाते हैं कि यदि हम इस प्रकार की सूक्ष्म निद्रा के नियमों को भली प्रकार समझ जायें, तो हम सोते समय जहाँ चाहें वहाँ जा सकते हैं और वहाँ प्राप्त होने वाले अनुभवों की याद जागने के बाद स्थूल मस्तिष्क में ला सकते हैं । कुछ भी हो इतना तो स्पष्ट है कि सामान्य मनुष्य निद्रा के समय जिस प्रकाश और ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकते हैं उसे उपरोक्त प्रकार के अभ्यासी प्राप्त कर लेते हैं ।

इतना अनुभव तो अनेक लोगों को होता है कि वे सोते समय जितने बजे उठने का दृढ़ निश्चय कर लेते हैं ठीक उसी समय उनकी आँखें खुल जाती हैं । एक अन्य अनुभव एक ऐसी महिला का है जो एक समाचार पत्र में सहायक सम्पादक का काम करती थी । एक दिन पत्र के संचालक ने उसे किसी खास विषय पर एक लेख प्रातःकाल तक लिख कर तैयार करने का आदेश दिया । विषय बहुत गम्भीर था और उसमें अनेक तथ्यों की ठीक-ठाक जानकारी प्राप्त कर लेनी आवश्यक थी । परन्तु उस विषय में उस महिला का ज्ञान बहुत अपूर्ण था और उससे संबंध रखने वाली पुस्तकों को पढ़कर जानकारी प्राप्त करने लायक समय मौजूद न था । वह स्त्री रात्रि को लिखने के लिये बैठी पर उसकी कलम चल ही नहीं सकी । विचार बिना कलम किस प्रकार आगे बढ़ सकती है । अन्त में थककर उसने सोने का विचार किया और इस विषय की आवश्यक जानकारी सोते समय प्राप्त हो सके, इसकी भावना करते हुए वह निद्राधीन हो गई । प्रातःकाल उठते ही रात्रि का विषय उसे याद आया । वह थोड़ी देर चुपचाप पड़ी रही । उस समय उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो उस विषय का सम्पूर्ण लेख लिखा हुआ उसके सामने पड़ा है वह उस लेख को पढ़ेगी और उसी समय उठकर कलम लेकर उसे कागज पर ज्यों का त्यों उतार दिया । उस समय उसको ऐसा अनुभव हो रहा था मानो कोई उसे लिखा रहा है और वह लिखती जाती है।

हमारा मन निरन्तर काम करता रहता है और अपने अनुकूल विचारों को अपनी तरफ आकर्षित करने की शक्ति उसमें होती है । इसलिये जाग्रत अवस्था में जिस प्रकार के विचारों को करने की आदत मन को पड़ी होती है, निद्रावस्था में भी वह उस तरह के विचारों को अपनी तरफ खींच सकता है । इसलिये अपने को जिस विचार-स्थिति में रखना चाहें उसमें रख सकते हैं और सोते हुये भी उस संबंध का बहुत-सा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं ।

जाग्रत अवस्था की अपेक्षा निद्रावस्था में हमारी आन्तरिक शक्तियाँ प्रकाश प्राप्त कर सकती हैं । इसलिये हमको सोते समय अपने विचारों को कैसा रखना इस संबंध में बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है । यह कार्य हमारे ही हाथ में है । अगर हम इस विषय के नियमों को समझकर तदनुसार आचरण करते रहें तो हम जाग्रतावस्था से भी अधिक लाभ निद्रावस्था में प्राप्त कर सकते हैं । इस संबंध में जानकार लोगों का कहना है कि जब आप इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना चाहें तो प्रथम तो सोने से पहले समस्त प्राणियों की तरफ प्रेम, शुभेच्छा से अपने मन को भरपूर कर लें । ऐसा करने से आपका मन शान्त बनेगा और बाहर से भी वैसी ही स्थिति आपकी तरफ आकर्षित होकर आने लगेगी ।

ऊपर बतलाई विधि से शान्त स्थिति में आकर आवश्यक प्रकाश अथवा ज्ञान प्राप्त करने के लिये व्यग्रता रहित और शान्तियुक्त चित्त से दृढ़ इच्छा करो, वह प्राप्त होगा या नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसी शंका मन से सर्वथा दूर कर दो । इसका दृढ़ विश्वास रखो कि जब आप जगोगे तो आपकी इच्छित जानकारी अथवा प्रकाश मिल जायगा, फिर जब आप सोकर उठें तो बाह्य-जगत की प्रवृत्तियाँ आपको आकर्षित करें उससे पहले ही आपका अन्तरात्मा आपके मस्तिष्क पर जो छाप डाले, उसे ग्रहण करने के लिये थोड़ी देर जहाँ की तहाँ शान्त भाव से लेटे रहें और जब वह प्रकाश या जानकारी आपको प्राप्त हो जाय तो तुरन्त उसके अनुसार चलने को तैयार हो जायें आप अपनी इस आन्तरिक आवाज को जितना आदर या मान देकर उसके अनुसार चलने का प्रयत्न करेंगे वह आवाज भी आपको उसी परिणाम में विशेष रूप से अपना प्रकाश प्रदान करती रहेगी ।

इस प्रकार जो मनुष्य अपनी स्थिति को जितना अधिक उच्च नियमों के अनुकूल बनाता जाता है, वह उतना ही अधिक दिव्य ज्ञान और प्रेरणाएँ प्राप्त कर सकता है । इस संबंध में एक अनुभव प्राप्त महात्मा की सम्मति है कि "जिस समय शरीर निद्रावस्था में पड़ा हो उस समय आध्यात्मिक मार्ग में प्रगति करने का अभ्यास करना कुछ कठिन बात नहीं है । हम सब अपनी बाह्य स्थिति पर जितना ध्यान देते हैं अगर उतना ही ध्यान अपनी अन्तःस्थिति पर भी देने लगें तो हमको भी ऐसा ही अनुभव हो सकता है । हमारी वर्तमान तथा भविष्य में सन्मुख आने वाली स्थिति का आधार हमारे विचारों पर ही रहता है और दिन की अपेक्षा रात्रि में हमारे विचार अधिक जाग्रत होते हैं, क्योंकि जिस समय हम बाह्य-सृष्टि में सोते हैं तब अन्तःसृष्टि में जगते हैं । अन्तःसृष्टि ही वास्तविक दुनियाँ है, जिसकी भली या बुरी स्थिति पर मनुष्य की मानसिक और नैतिक उन्नति निर्भर होती है ।

जिस समय हम अपनी बाह्य इन्द्रियों द्वारा अनुभव करना बन्द कर देते हैं, उस समय आन्तरिक इन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करने लगते हैं । निद्रा के समय साधारण मनुष्यों को तरह-तरह के निरर्थक स्वप्न आया करते हैं, पर ज्ञानी पुरुष उसी निद्रा के समय अनेक-अनेक अनुभव प्राप्त कर सकते हैं । साधारण मनुष्यों में अपने स्वप्नों का रहस्य समझने की योग्यता नहीं होती पर आध्यात्मिक मार्ग में आगे बढ़े हुए जीवात्मा अपने तथा दूसरों के भी स्वप्नों का रहस्य समझ सकते हैं । इस भेद का कारण समझने के लिए बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं है । आवश्यकता केवल पवित्र और निर्मल जीवन व्यतीत करने की है, बातें करने की नहीं हैं । मनुष्य की सच्ची सामर्थ निर्मल जीवन व्यतीत करने में ही है । अपनी उच्च भावना के अनुसार आचरण करने वाले को श्रेष्ठ सामर्थ प्राप्त होती है और आनन्द का अनुभव होता है । इतना ही नहीं वरन् ऐसा मनुष्य संसार के लिये भी बहुत उपयोगी सिद्ध होता है ।

अस्तु, इस रहस्य को समझ लेने पर भी मनुष्य कब तक नरक में पड़ा रहेगा, यह उसकी मर्जी पर है । जिस समय वह नरक से छुटकारा पाने का निश्चय कर लेगा उस समय विश्व की समस्त शक्तियाँ भी उसको वैसा करने से रोक नहीं सकतीं ।

मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाला भी वह स्वयं ही है और जिस समय वह सच्चे मन से स्वर्ग प्राप्त कर लेने का संकल्प कर लेता है, उस समय प्रकृति की सब शक्तियाँ इस कार्य में उसकी सहायता को तत्पर हो जाती हैं ।

मनुष्य जिस समय प्रातःकाल जाग्रत स्थिति में आता है उस समय की स्थिति विशेष प्रभाव पड़ सकने के उपयुक्त होती है । उस समय बाहरी दुनियाँ के संबंध थोड़ी देर के लिये बन्द हो जाते हैं, उसका मन अधिक स्वतंत्र और स्वाभाविक स्थिति में होता है । वह फोटो ग्रहण करने वाले काँच (प्लेट) की तरह तुरन्त प्रभावित हो सकने की अवस्था में रहता है । प्रातःकाल दिन का कार्यक्रम आरम्भ करने और मन के विक्षोभमय होने से पहले उपरोक्त कारणों से मनुष्य के मन में ऊँचे और सत्य विचारों का स्फुरण हो जाता है । अनेक लोग प्रातःकाल के समय जो बहुत अधिक और उत्तम काम कर लेते हैं उसका रहस्य भी यही है ।

प्रातःकाल का एक घण्टा ! आह ! उसमें कितनी अधिक भव्य, श्रेष्ठ और शाश्वत जीवन का अनुभव प्राप्त करने की सामर्थ भरी रहती है । इसलिए भूतकाल को भूलकर, भविष्य की चिन्ता छोड़कर, इस एक घण्टे में आत्म-चिन्तन द्वारा नया जीवन व्यतीत करने का दृढ़ निश्चय करो । दूसरा घण्टा जब तक शुरू न हो तब तक उसका विचार भी न करो । उच्च चरित्र निर्माण करने का रहस्य और शक्ति प्रातःकाल के इस एक घण्टे में निहित है । मनुष्य जहाँ तक कल्पना कर सकता है वैसा श्रेष्ठ से श्रेष्ठ जीवन इस समय का सदुपयोग करने से प्राप्त किया जा सकता है । क्योंकि इस विश्व में कोई भी ऐसी भव्य स्थिति अथवा पदार्थ नहीं है । जिसे उस तरफ सतत प्रयत्न करने वाला व्यक्ति प्राप्त न कर सके ।

प्रत्येक मनुष्य इस प्रयोग की स्वयं परीक्षा करके देख सकता है । संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो अपनी उच्च भावना के अनुसार एक घण्टा तक जीवन व्यतीत न कर सके । मान लो किसी व्यक्ति को इतनी सुविधा भी नहीं है, तो भी जो दृढ़ निश्चय के साथ इस प्रयत्न में संलग्न होगा वह प्रत्येक घण्टा अपनी उच्चभावना के समीप पहुँचता जायगा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और अन्त में ऐसा समय आ जायगा जबकि वह उच्च स्थिति उसके लिए स्वाभाविक बन जायगी और घटिया या हीन स्थिति उसे अस्वाभाविक प्रतीत होने लगेगी ।

इस प्रकार जो व्यक्ति विश्व के ऊँचे से ऊँचे तत्व के साथ प्रेम करता है, उससे संबंध स्थापित कर लेता है तो उसके प्रभाव से वह उच्च तत्व भी उससे प्रीत करने लगता है और संबंध करने को आतुर हो जाता है । तब संसार के उच्च तत्व उसके अनुकूल हो जाते हैं और उसकी सहायता करते जान पड़ते हैं । कारण यही कि उस व्यक्ति ने उस स्थिति के अनुकूल चलना सीख लिया है ।

शान्ति तथा निर्भयता का मार्ग

अपने चारों तरफ़ दृष्टिपात करने से हमको विदित होता है कि लाखों स्त्री-पुरुष चिन्ता में डूबे हुए जीवन व्यतीत कर रहे हैं और शान्ति रूपी वायु से उनका स्पर्श भी नहीं होता । मन, शरीर और बाह्य परिस्थितियों से परेशान होकर वे शान्ति प्राप्त करने के लिए चारों तरफ जगह-जगह फिरते रहते हैं, देश-विदेशों का पर्यटन करते हैं, तो भी उनका समस्त प्रयत्न व्यर्थ हो ही जाता है । उनको न तो अब तक शान्ति मिल सकी है और न आगे मिल सकेगी, क्योंकि वे उसे ऐसी जगह ढूँढ़ते हैं जहाँ उसका अस्तित्व नहीं है । शान्ति का स्थान तो अपने भीतर ही है और यदि अपने अन्तःकरण में शान्ति की खोज न की गई तो फिर किसी अन्य स्थान पर वह कभी मिलने वाली नहीं है ।

शान्ति सांसारिक पदार्थों में या बाह्य-जगत में नहीं है । वह तो अपनी आत्मा में ही निवास करती है । उसे बाहर से प्राप्त करने के लिए हम चाहे जितने उपाय करें, तरह-तरह के सांसारिक भोगों को भोगें, संसार के विभिन्न स्थानों में उसकी तलाश करें, तो भी वह हमको मिल नहीं सकती । क्योंकि जहाँ वह है ही नहीं, वहाँ से उसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ? इसके लिए तो मनुष्य जिस सीमा तक भोगों और वासनाओं को संयम में रखकर अपनी अन्तरात्मा के आदेशानुसार व्यवहार करता है उसी परिणाम में सफल होकर वह यथार्थ शान्ति और आनन्द का अनुभव कर सकता है। इसके विपरीत मनुष्य जितना अधिक वासनाओं के आदेशानुसार चलता है, उतना ही वह अधिक रोगी, अधिक दुःखी और अधिक असन्तोषी बनता है ।

शान्ति अनुभव करने का मूल आधार ईश्वर के साथ ऐक्य को समझना और अनुभव करना ही है । जिस प्रकार छोटा बालक अपनी माता के साथ स्वाभाविक प्रेम और ऐक्य-भाव रखकर सुख शान्ति से रहता है । उसी प्रकार हम भी अपने परम पिता ईश्वर के साथ एकता स्थापित करके ही सच्ची शान्ति प्राप्त कर सकते हैं । जो लोग परमात्मा के साथ अपने इस संबंध को जान जाते हैं उनके जीवन में आनन्द छलकने लगता है । इसके उदाहरण के लिये हम एक ऐसे व्यक्ति को जानते हैं जो युवावस्था में ही वर्षों तक बीमार, निराश, उत्साहरहित रहकर जीवन को भार समझने लगता था । उसे जीवन में आनन्द देने वाली कोई वस्तु दिखलाई नहीं देती थी । चारों तरफ उसे निराशा ही निराशा जान पड़ती थी । जो अन्य व्यक्ति उसे देखता था उसके मन में भी उसके लिए निराशा का ही भाव उत्पन्न होता था । पर बाद में जब वह सर्वशक्तिमान परमात्मा के साथ ऐक्य का अनुभव करने लगा तो उसके अन्तःकरण में दिव्य-शक्ति और दिव्य-आरोग्य प्रविष्ट होने लगे और परिणाम स्वरूप वह मनुष्य सब प्रकार की आधि-व्याधियों से मुक्त होकर शरीर और मन से सम्पूर्ण आरोग्य की स्थिति को प्राप्त हो गया । तब कोई उसे देखता था तो उसके चेहरे से उसे यही भाव प्रकट होता जान पड़ता था कि 'जीवन असार नहीं है और वह जीने योग्य है ।'

इस तरह की एकता का अनुभव करने वाला मनुष्य सर्वथा निर्भय हो जाता है । जब उसे इस बात का दृढ़ विश्वास हो जाता है कि 'परम शक्तिमान सत्ता मेरी रक्षक है' और ऐसा ही अनुभव दिन पर दिन दृढ़ होता जाता है, तो उसका आत्म-विश्वास तथा निर्भयता का भाव निरन्तर बढ़ता जाता है । ऐसे व्यक्ति के संबंध में यह कथन सत्य ही समझा जा सकता है कि उसको किसी अस्त्र-शस्त्र का आघात नहीं लगता और उसके निवास-स्थान के समीप रोगों का प्रवेश नहीं होता । प्रकति भी उसके अनुकूल बन जाती है और जंगल में रहने वाले हिंसक पशु भी उसके पास आकर शान्त हो जाते हैं ।

ऐसी अमोघ शक्ति उसके जीवन में प्रकट होती दिखाई देती है । अन्य लोगों को ऐसा जान पड़ता है मानो उसे किसी तरह की वशीकरण विद्या आती है ।

जब हमको भय लगता है, तभी हम भयजनक वस्तु को अपने समीप आने का द्वार खोल देते हैं । जो मनुष्य भयंकर पशु से नहीं डरता उसे वह कदापि हानि नहीं पहुँचा सकता । डरने से ही भयजनक वस्तु हमारी तरफ आकर्षित होती है । कुत्ता जैसा पालतू प्राणी भी डरने वाले मनुष्य को तुरन्त पहिचान लेता है और उसे काटने का साहस करता है । इसलिए परमात्मा के साथ अपनी एकता को हम जितना अधिक समझते जाते हैं उतना ही शान्त और गम्भीर होते जाते हैं । जो छोटी-छोटी बातें हमको उत्तेजित किया करती हैं उनसे तब हम प्रभावित नहीं होते । ऐसे मनुष्य दूसरों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से ठगे भी नहीं जा सकते, क्योंकि वे दूसरों के हृदय की बात जान जाते हैं, उनके आन्तरिक आशय को समझ लेते हैं ।

एक दिन एक दुनियादार आदमी किसी दैवी स्वभाव वाले व्यक्ति से मिला और बाहरी शिष्टाचार दिखलाकर बोला- ''आपके दर्शन से आज मुझे बड़ा आनन्द हुआ है ।'' दैवी स्वभाव वाले ने तुरन्त उसके मन की बात समझ ली और कहा- 'नहीं, आप भूल करते हो । मुझसे मिलकर आपको आनन्द नहीं हुआ है, वरन् खिन्नता हुई है, यह आपके मुख के भाव से स्पष्ट प्रकट हो रहा है ।' उस व्यक्ति ने उत्तर दिया कि 'आजकल वाह्य शिष्टाचार तो दिखाना पड़ता है मन के भीतर चाहे जैसा भाव हो ।' दैवी व्यक्ति ने उसे समझाया- 'भाई साहब, आपका ख्याल ठीक नहीं है । आपके हृदय में एक बात हो और प्रकट में आप दूसरी बात कहें, तो इससे किसी का लाभ नहीं हो सकता । इस प्रवृत्ति का नाम ही कुटिलता कहा जाता है, जो सज्जन पुरुषों के योग्य नहीं मानी जाती । यदि आप इस आदत को त्याग दें और जो कुछ हृदय में हो उसे स्पष्ट कह दें तो इससे आपका महत्व बढ़ेगा और सांसारिक विषयों में भी सफलता प्राप्त होगी ।'

अगर हम लोगों की सच्ची परीक्षा करना सीख जायें तो फिर हमको निराश होने का अवसर कम ही आयेगा । हम किसी को एकदम आकाश में नहीं चढ़ा देंगे कि उसके गिरने से हमारी आशा निष्फल हो जाय । दूसरे मनुष्यों की वास्तविक परीक्षा करने की शक्ति न होने से ही हम चाहे जब किसी मनुष्यों की हद से बाहर प्रशंसा कर डालते हैं, पर इसको सच्ची मित्रता का लक्षण नहीं माना जा सकता । अगर हम शान्तिस्वरूप परमात्मा के साथ अपनी एकता का विचार यथार्थ रूप में कर सकें, तो फिर 'अमुक व्यक्ति ने हमको हानि पहुँचाई है ऐसा विचार हमारे मन में उत्पन्न नहीं हो सकता और न उसके कारण हमारी शान्ति भंग हो सकती है ।

यदि हमको परमात्मा के साथ अपनी एकता का ख्याल सदैव बना रहता तो अपने मित्र अथवा संबंधियों की मृत्यु से अथवा आधि-व्याधि से भी हम व्याकुल नहीं हो सकते। जो व्यक्ति आत्मा के सत्य स्वरूप को समझता है वह जानता है कि शरीर के नष्ट होने से आत्मा के अमरत्व में किसी तरह का अन्तर नहीं पड़ सकता । उसके हृदय में सदैव गीता का भाव उदित होता रहता है ।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणे न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।

यह आत्मा वास्तव में न तो कभी पैदा होता है और न मरता है । इसका जन्म और मृत्यु केवल एक भ्रम या कल्पना है । यह तो सदा से एक अजर और अमर तत्व है । इस भावना में उसका चित्त सदा शान्तियुक्त बना रहता है ।

हम जिस वस्तु के लिए अपने हृदय का द्वार खोलकर रखते हैं, वही हमको प्राप्त होती है । प्राचीनकाल में मनुष्य ईश्वरीय दूतों अथवा देवताओं को देखने की प्रबल इच्छा रखते थे और इस कारण वे उनको देख भी सकते थे । अगर वे उस समय आते थे, तो आजकल भी आ सकते हैं, क्योंकि सृष्टि के महान् नियम सदा एक तरह काम करते रहते हैं । वर्तमान समय में जो देवदूत नहीं आते, उसका कारण यही है कि हम उनको बुलाते ही नहीं, अथवा वे आ सकें ऐसा वातावरण उत्पन्न नहीं करते । साथ ही जिन द्वारों में होकर देवदूत आते हैं । उनको भी हम बन्द रखते हैं । जो शान्ति के अपार सागरस्वरूप परमात्मा के साथ अधिकाधिक संबंध स्थापित करना जानता है उसके भीतर शान्ति का अधिकाधिक प्रसार होता है । ऐसा मनुष्य स्वयं ही चिन्ता और कठिनाइयों से मुक्त नहीं रहता वरन् जो अन्य लोग उसके सम्पर्क में आते हैं उनको भी शान्ति और आनन्द प्रदान करता रहता है ।

ऐसे पुरुष की शक्ति असीम होती है और भय अथवा निष्फलता के विचार कभी उसके मन में आते भी नहीं । कदाचित् कोई ऐसा विचार उसके हृदय में उत्पन्न भी हो जाता है तो वह तुरन्त उसको अपने मनः क्षेत्र से अलग कर देता है । पर जो मनुष्य इसके विपरीत निर्बलता तथा भय के विचार ही करते रहते हैं उनकी मानसिक शक्ति और शारीरिक बल का निरन्तर ह्रास होता जाता है । इस प्रकार मनुष्य जिस स्थिति को प्राप्त होता है उसका उत्पादक वह स्वयं ही होता है । इससे यह भी सिद्ध होता है अपनी स्थिति को कैसा बनाना, इसका आधार प्रत्येक मनुष्य पर स्वयं ही होता है । इस दृश्य जगत की प्रत्येक वस्तु का उद्भव अदृश्य, आध्यात्मिक और विचार सृष्टि से ही होता है । दृश्य जगत कार्यरूप है और अदृश्य जगत कारण रूप है । मनुष्य अदृश्य विचार सृष्टि में जो जीवन व्यतीत करता है वही धीरे-धीरे स्थूल रूप में प्रकट होता जाता है । इसलिये जिस किसी को अपनी बाह्य-परिस्थिति बदलनी हो उसे पहले अदृश्य-जगत में अपनी आन्तरिक स्थिति में परिवर्तन करना चाहिए । अगर मनुष्य इस सिद्धान्त की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वास्तविकता को समझ लें, तो हजारों व्यक्ति जो आज निराशा में डूबे हुए हैं, धैर्य धारण करके मर्मशील बनकर सफल-जीवन व्यतीत कर सकते हैं, रोगों में कराहते हुए अनेक व्यक्ति उत्तम स्वास्थ्य और शक्ति प्राप्त कर सकते हैं और शोक सागर में डूबे हुए बहुसंख्यक लोग आनन्दयुक्त बन सकते हैं ।

भय की दासता में पड़े हुये हजारों मनुष्य हमारे आस-पास दिखाई पड़ा करते हैं । जिन स्त्री-पुरुषों को वस्तुतः शक्ति सम्पन्न और पराक्रमी होना चाहिये था वे निरुत्साही और निर्बल बने हुये हैं । उनकी शक्ति मंद पड़ गई है, उनके प्रयत्न शिथिल जान पड़ते हैं, चारों तरफ उनको भय ही भय दिखाई देते है । किसी भी वस्तु के अभाव का भय, भूखों मरने का भय, लोकमत का भय, किसी व्यक्ति का निजी सम्मति का भय, बीमारी का भय, मृत्यु का भय, इन तरह-तरह के भयों में से मनुष्य किसी न किसी में ग्रसित दिखाई पड़ते हैं । अनेक मनुष्यों को तो भयभीत रहने की आदत ही हो जाती है और इसके फलस्वरूप संसार के वातावरण में चारों तरफ फैले हुये भय के विचार उनकी तरफ आकर्षित होते रहते हैं । मेरा उच्च अधिकारी नाराज हो जायगा, मेरी नौकरी जाती रहेगी, मैं कंगाल हो जाऊँगा मेरा कारबार रुक जायगा-- ऐसे-ऐसे अनेक भ्रमपूर्ण और भय का संचार करने वाले विचार इन मनुष्यों के मन में उठा करते हैं ।

भय से किसी प्रकार का लाभ नहीं है, पर उसकी हानि स्पष्ट दिखाई पड़ती है । कुछ लोग यह भी कहा करते हैं कि मैं जानता हूँ कि भय करने से हानि होती है, पर क्या करूँ उससे पीछा छुड़ा सकने की शक्ति मुझमें नहीं है । जो व्यक्ति ऐसा कहते हैं वे वस्तुतः अपने स्वरूप से अनजान हैं, वे नहीं जानते कि वे स्वयं कौन हैं ? अपनी शक्तियों को जानने के लिये पहले आपको अपनी आत्मा को पहिचानना पड़ेगा और जब तक आप अपनी शक्तियाँ का ठीक-ठीक अनुभव नहीं करने लगेंगे तब तक वे पूर्णतः उपयोगी भी नहीं हो सकतीं ।

'भय दूर नहीं हो सकता' ऐसी भावना कभी मत करो । मुझसे यह काम तो नहीं हो सकेगा ऐसा विचार यदि आप मन में रखोगे तो उस काम में प्रायः असफल ही रहोगे । पर जो मैं कर सकता हूँ, ऐसी भावना रखोगे और तदनुसार आचरण करोगे तो उस कार्य में आपका बहुत कुछ सफल होना संभव है । एक कवि ने किसी जहाज के मल्लाहों का वर्णन करते हुये लिखा है कि वे इसलिये सफलता प्राप्त कर सके क्योंकि उनमें पूर्ण श्रद्धा थी । मन की श्रद्धामय स्थिति उनके मन में नया उत्साह भरती थी । जिससे उनको बल तथा उत्साह प्राप्त होता था उसके द्वारा वे विजयी बना सके ।''

इसलिये आप सदैव ऐसी श्रद्धा रखो कि अमुक कार्य को हम पूरा कर सकते हैं अगर आपमें ऐसी प्रबल श्रद्धा हो तो पहले इन विचारों को बीजरूप में ग्रहण करो । उनको अपने चैतन्य में आरोपित करो, उनको सींचते रहो, उनकी रक्षा करते रहो । धीरे-धीरे वे फैलने लगेंगे, चारों तरफ से शक्ति ग्रहण करेंगे । तुम्हारी इधर-उधर बिखरी हुई और इस कारण निरुपयोगी बनी हुई आत्म-शक्ति को ये विचार एक स्थान पर इकट्ठी करके उपयोगी और फलदायक बनायेंगे । इसके परिणामस्वरूप आपको अपने से मिलते-जुलते स्वभाव के धैर्यवान और निर्भय मनुष्यों की सहायता स्वयमेव मिलने लगेगी । अगर आप अपने प्रयत्न में हृदय से संलग्न रहोगे तो शीघ्र ही ऐसा अवसर भी आवेगा कि जब भय का वश आप पर नहीं चल सकेगा और आप एक निर्बल तथा भयग्रस्त प्राणी होने के बजाय बलवान, सुदृढ़ और परिस्थितियों के स्वामी बन जायेंगे ।

आवश्यकता इस बात की है कि आप सबका उपकार कर सकने वाली शक्ति, अनन्त शक्ति के भंडाररूप परमात्मा में और स्वयं अपने में अधिकाधिक विश्वास रखना सीख लें । परिस्थितियाँ चाहे जैसी प्रतिकूल हों, संयोग चाहे जैसे विरुद्ध जान पड़ते हों, तो भी आप कभी इस सत्य सिद्धान्त का त्याग न करें कि अनेक ब्रह्माण्ड और समस्त सृष्टि जिनके नियमानुसार चल रही है, उस सर्वशक्तिमान परमात्मा के हाथ में हमारी लगाम है । जिस मनुष्य का मन परमात्मा में लीन है उसकी रक्षा परमात्मा स्वयं करता है।

परमात्मा से बढ़कर कोई भी वस्तु दृढ़, सुरक्षित अथवा विश्वासपात्र नहीं है । अपने हृदय के द्वार खोलकर परमात्म-शक्ति को उसमें होकर प्रविष्ट होने देना अपने ही हाथ में है । इस विषय में हमको जितना अधिकाधिक भरोसा होता जायगा वैसे ही अपने भीतर पहले की अपेक्षा अधिक बल प्रकट होता जान पड़ेगा ।

यदि हम परमात्मा पर विश्वास रखकर काम करेंगे तो वह भी हमारी सब तरह से सहायता करेगा । इस प्रकार हमको यह अनुभव हो सकेगा कि जो लोग भलाई को पसन्द करते हैं, उनको भलाई के लिये संसार की सब वस्तुएँ इकट्ठी होकर कार्य करती हैं । उस समय भय और संशय हममें से चला जाता है और उसकी बजाय श्रद्धा तथा अपनी शक्ति में विश्वास उत्पन्न हो जाते हैं । उसका यथार्थ उपयोग किया जाय तो उसके समान और कोई बल संसार में नहीं है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जड़वाद अथवा भौतिकवाद मनुष्य में निराशा तथा दोष ढूँढ़ने की प्रवृत्ति पैदा कर देता है । इसके अतिरिक्त जड़वाद का परिणाम हो भी क्या सकता है ? हममें तथा संसार की समस्त वस्तुओं में जो आध्यात्मिक शक्ति काम कर रही है, वह मनुष्य में धार्मिक भावना उत्पन्न करती है । जब मनुष्य के हृदय में इस प्रकार का ज्ञान बद्धमूल हो जाता है तो वह स्वभावतः आशायुक्त और शुभदर्शी बन जाता है । अशुभदर्शी होना ही निर्बलता है । शुभदृष्टि मनुष्य को सामर्थ्य की तरफ प्रेरित करती है । जिसको परमात्मा में विश्वास है वह हर प्रकार के कष्ट को सहन कर सकता है । ऐसा व्यक्ति श्रद्धा तथा आत्म शक्ति के आधार पर जिस प्रकार मंद सुगन्धित वायु का सेवन करके प्रसन्न होता है उसी प्रकार गम्भीरता तथा शान्त चित्त से हर तरह के तूफान का सामना भी कर सकता है । इसका क्या परिणाम होगा इसे वह पहले से ही समझता है । रक्षा करने वाली शाश्वत शक्ति सदा उसकी सहायता को प्रस्तुत रहती है । उसको इस सत्य सिद्धान्त पर पूरा भरोसा होता है कि 'प्रभु पर विश्वास रखो धैर्यपूर्वक उसकी राह देखो तो तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होकर रहेगी ।' जो मनुष्य ग्रहण करने को तैयार है उसी को सब कुछ मिलता है । इससे अधिक स्पष्ट शब्दों में और क्या कहा जा सकता है ?

हम जितना अधिक उस सर्वशक्तिमान परमात्मा के साथ रहकर काम करना सीखेंगे, उतनी ही फल की चिन्ता हमको कम करनी पड़ेगी । इस सच्चाई को समझकर जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति को पूर्ण शान्ति प्राप्त होती है । वह शांति आरम्भ में भी पूर्ण जान पड़ती है और जैसे-जैसे समय बीतता जाता है उसकी शक्ति बढ़ती है । जिस मनुष्य को परमात्मा पर पूर्ण विश्वास है और जो ऐसी शान्ति प्राप्त कर चुका है, वही उसका अनुभव कर सकता है और अपने आत्म-विश्वास को निम्न शब्दों में प्रकट कर सकता है--

''मैं उतावली से नहीं वरन् धैर्यपूर्वक काम करता हूँ, क्योंकि उतावली करने से क्या लाभ हो सकता है ? मैं शाश्वत मार्ग का पथिक हूँ और जो कुछ मेरा है वह अवश्य मुझे प्राप्त होगा । जागते हुये अथवा सोते हुये, दिन में अथवा रात्रि में, मैं जिन मित्रों को ढूँढ़ता हूँ वे मित्र भी मुझे ढूँढ़ते रहते हैं । कोई भी तूफान मेरी जीवन नौका को प्रतिकूल मार्ग पर ले जाने अथवा मेरे भाग्य प्रवाह को लौटा सकने में समर्थ नहीं हो सकता । जिस प्रकार समुद्र अपने जल को पहिचानता है और पर्वत के ऊपर पैदा होने वाले झरने को नदी के रूप में परिवर्तित करके अपनी तरफ आकर्षित करता है, उसी प्रकार पवित्र और आनन्दयुक्त आत्मा की तरफ शुभ वस्तुएँ आकर्षित होती हैं । जिस प्रकार तारागण रात्रि में चमकने लगते हैं और समुद्र में ज्वार की लहर आती हैं- उसी प्रकार जो कुछ मेरा है वह अवश्य मुझे मिलेगा । उसमें देश, काल, ऊँचाई, निचाई का कोई कारण बाधक नहीं बन सकता ।''

शक्ति सम्पन्न कैसे बन सकते हैं

ईश्वर अनन्त शक्तिमय है और जितना अधिक हम अपने हृदय को परमात्मा की तरफ संलग्न रखेंगे उतनी ही अधिक शक्ति हमारे भीतर भी प्रकट होगी । क्योंकि ईश्वर के लिए सब कुछ कर सकना संभव है, इसलिए जो व्यक्ति ईश्वर से ऐक्य-भाव का अनुभव करता है उसके लिए भी कुछ असम्भव नहीं है । सर्व वस्तुओं के नियामक प्रभु के साथ एकता का अनुभव करना ही सब प्रकार की सामर्थ्य का मूल है और जितना अधिक हम इस एकता को प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे उतना ही हम भी सांसारिक मर्यादा से बढ़कर कार्य करके दिखला सकेंगे ।

अगर उपरोक्त नियम को सत्य माना जाय (और वह सत्य ही है) तो फिर शक्ति प्राप्त करने के लिए इधर-उधर भटकते फिरने से क्या लाभ ? उसे प्राप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न विषयों को सीखने की क्या आवश्यकता है ? पर्वत के शिखर पर एक दम चढ़ने के बजाय उसकी खानों तथा अगल-बगल में भटकने में कौन-सी बुद्धिमत्ता है ? संसार के समस्त धर्म-ग्रन्थों में मनुष्य का जो सर्वोपरि महत्व वर्णन किया गया है उसका कारण, उसका स्थूल दो हाथ और दो पैरों वाला शरीर नहीं वरन् उसका दैवी स्वभाव है । संसार में ऐसे बहुत बड़े और बलवान पशु मौजूद हैं कि जिन पर स्थूल दृष्टि से मनुष्य का स्वामित्व स्थापित नहीं हो सकता । पर उसे जो मानसिक, नैतिक और आत्मिक शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं उनको उपयोग करके मनुष्य उन पशुओं को भी वशीभूत कर सकता है ।

जो कार्य शारीरिक बल से नहीं हो सकता वह आत्मिक शक्ति से हो सकता है । जो मनुष्य अपने को जितना ही अधिक शरीर की अपेक्षा आत्मरूप मानने लगता है उतनी ही उसकी शक्ति में वृद्धि होने लग जाती है । पर जो लोग अपने को शरीर अर्थात् एक जड़ पदार्थ ही मानते रहते हैं, वे ऐसा लाभ नहीं उठा पाते । दुनियाँ के धार्मिक साहित्य में जहाँ-तहाँ हम जिन चमत्कारों का वर्णन पढ़ते हैं, उनमें यदि कोई सचाई है तो भूतकाल की तरह वर्तमान समय में भी उसका अनुभव किया जा सकता है । यह ख्याल करना कि वे चमत्कार अमुक स्थान में अथवा अमुक युग में ही हो सकने सम्भव थे, एक भ्रमजनक बात है । उन चमत्कारों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को दिखाने वाले मनुष्य ही थे, कोई भिन्न प्रकार के प्राणी न थे । जो लोग परमात्मा के साथ एकता प्राप्त करके दिव्य पुरुष बन गये थे और जिनमें उच्च दैवी शक्तियाँ काम कर रही थीं, वे ही मनुष्य चमत्कार दिखला सके थे ।

शायद कोई पाठक यह प्रश्न करे कि चमत्कार का क्या अर्थ है ? क्या चमत्कार किसी अलौकिक घटना को ही कहते हैं ? सामान्य मनुष्य सामान्य स्थिति में जो काम कर सकते हैं, उससे ऊँचे प्रकार के कामों को ही अलौकिक कहा जा सकता है । चमत्कार का अर्थ इसके अतिरिक्त और कुछ समझना ठीक नहीं । सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान परमात्मा के साथ जिनने ऐक्य-भाव का अनुभव कर लिया है, वे ही मनुष्य ईश्वरीय नियमों और शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करके उसका उपयोग करते हैं । जब उन कार्यों को सामान्य श्रेणी के लोग देखते थे, तो वे अल्प और मर्यादित शक्ति संपन्न होने से, उन दैवी शक्ति सम्पन्न पुरुषों के कार्यों को चमत्कार रूप मानते थे और उन चमत्कार करने वालों को लोकोत्तर पुरुष कहते थे । पर चमत्कार करने वाले पुरुष जिन नियमों तथा शक्तियों का प्रयोग करते हैं, उन नियमों तथा शक्तियों को समझकर यदि हम भी उनका उपयोग करने लगें तो हम भी वैसे ही चमत्कार कर सकते हैं । हमको इसके साथ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जैसे-जैसे हम नीची स्थिति में से ऊँची स्थिति पर पहुँचते जाते हैं, और ज्यों-ज्यों जड़वाद से अध्यात्मवाद की तरफ अग्रसर होते जाते हैं, त्यों-त्यों भूतकाल में चमत्कार मानी जाने वाली घटनायें हमको सामान्य तथा स्वाभाविक लगने लगती हैं । इसी तरह आज जो बातें चमत्कार रूप लगती हैं वे भविष्य में स्वाभाविक जान पड़ने लगेंगी । यही रीति आरम्भ से चली आती है ।

जो व्यक्ति ईश्वर के साथ ऐक्य-भाव उत्पन्न कर चुके हैं, वे ऐसे कार्य कर सकते हैं, जो सामान्य मनुष्यों की दृष्टि में चमत्कार जैसे माने जाते हैं । इस कारण वे व्यक्ति साधारण मनुष्यों के बीच विशेष समझे जाते हैं । जो काम एक व्यक्ति कर सकता है उसे दूसरा भी कर सकता है । यह एक सर्वमान्य नियम है । इसलिये शक्तिमान अथवा शक्तिहीन होना मनुष्य के अपने हाथ की बात है । जब मनुष्य को इस बात पर पूर्ण विश्वास हो जाता है कि मैं उच्च स्थिति प्राप्त कर सकता हूँ, तो वह अपने उद्देश्य में अवश्य सफलता प्राप्त कर सकता है । मनुष्य अपने लिए जो बंधन कल्पित कर लेता है, वे ही उसको आगे बढ़ने से रोक देते हैं । जैसे दूध की मलाई उत्तम होने से ऊपर ही तैर आती है, वैसे ही जो व्यक्ति अपने में पाई जाने वाली उच्च शक्तियों को विकसित करने की इच्छा रखते हैं, वे भी उत्तम होने के कारण अन्य सामान्य मनुष्यों से ऊपर और श्रेष्ठ दिखाई पड़ने लगते हैं ।

हम परिस्थितियों- बाह्य संयोगों के संबंध में बहुत सी बातें सुनते रहते हैं । पर निश्चय समझ लेना चाहिए कि परिस्थितियाँ मनुष्य को नहीं बनातीं वरन् मनुष्य ही परिस्थितियों का निर्माता होता है । इसलिये मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपनी भावना के अनुसार परिस्थितियों को मोड़ ले । जब इस विषय का वास्तविक रहस्य हमको विदित हो जायगा, तब हम यह भी समझ लेंगे कि परिस्थितियों से बाहर निकलने की चेष्टा करना अनेक समय अनावश्यक होता है । कारण यह है कि प्रत्येक परिस्थिति में से हम बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं । हमारे भीतर ईश्वर ने जो शक्ति प्रदान की है यदि हम उसका उचित उपयोग करने लगें तो हमारी वर्तमान परिस्थिति ही हमारे लिए कल्याणकारी सिद्ध हो सकती है ।

यही सिद्धान्त वंश परम्परा के संस्कारों पर भी लागू होता है । अनेक व्यक्ति पूछा करते हैं कि क्या उन संस्कारों पर विजय प्राप्त की जा सकती है ? ऐसा प्रश्न वे ही लोग करते हैं जिनको अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होता । अन्य विषयों की तरह इसका उत्तर भी यही है कि इसका आधार हमारी मनोवृत्ति पर निर्भर है । अगर हम यह मान लेते हैं कि वंश परम्परा के सिद्धान्तों पर विजय प्राप्त करना सम्भव नहीं है तो फिर हमारी स्थिति जैसी की तैसी ही रहेगी । पर जैसे-जैसे हमको अपने स्वरूप का ज्ञान होता जायगा और हम आत्मशक्ति की प्रचण्डता का अनुभव करते जायेंगे वैसे-वैसे ही पुरानी परम्परा के संस्कार भी घटते जायेंगे । जब इस प्रकार प्रगति करते-करते हमको अपने आत्मस्वरूप का यथार्थ ज्ञान हो जायगा तब वे संस्कार जड़-मूल से नष्ट हो जायेंगे । इस संबंध में एक मनीषी का कथन है--

"ऐसी एक भी आदत नहीं है कि जिस पर विजय प्राप्त न की जा सकती हो । ऐसा कभी मत कहो कि यह दूषित प्रवृत्ति तो हमको अपने बाप-दादों से संस्कार रूप में प्राप्त हुई है । यह भी मत कहो कि अमुक प्रकृतिदत्त आदत जीवन को नीरस बनाती है अथवा हानिकारक कार्यों की तरफ प्रेरित करती है ।"

आपके पिता और पितामह के साथ भी वही शाश्वत शक्ति मौजूद थी और वही आपका वास्तविक उत्तराधिकार है । वह शक्ति अत्यन्त दृढ़ सुन्दर और दैवी है और उस पर विश्वास रखने वाले को विजय प्राप्त होना निश्चित है।

"ऐसी एक भी उच्च पदवी नहीं है जिस पर आप आरूढ़ न हो सकें । आपसे अब तक चाहे जैसी भूलें हुई हों, तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी सुस्त न बनकर ईश्वरीय रक्षा रूपी ढाल पर निर्भर रहकर प्रयत्नशील बने रहो ।''

संसार की समस्त वासनाओं पर आत्मा विजय प्राप्त कर सकती है । तुम उस अनन्त परमात्मा के एक अंश हो, इसको सदा याद रखो । आत्मा के बल के सम्मुख कोई अन्य बल टिक नहीं सकता ।

कितने ही मनुष्य घटिया किस्म का जीवन व्यतीत करते हैं, क्योंकि उनमें व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना नहीं होती । क्या आपको इस जगत में प्रभावशाली बनना है ? तो फिर अपने ऊपर ही आधार रखना सीखो, स्वातंत्र्य बनो । अपने व्यक्तित्व को साधारण मनुष्यों की तरह मत समझो, न कभी ऐसी बात कहो कि हम दीन-हीन हैं, हमसे क्या हो सकता है ?

जिन लोगों में व्यक्ति स्वातंत्र्य नहीं है और जो अपने को रूढ़िगत बन्धनों में जकड़ चुके हैं, ऐसे मनुष्यों के बनाये नियमों और रिवाजों के हाथ अपनी आत्मा को अधीन मत कर दो । अगर आप ऐसे खराब रूढ़ियों के गुलामी के अनुयायी बन जाओगे तो आपकी अनिष्ट दशा दीर्घकाल तक कायम रहेगी और उसकी बहुत कुछ जिम्मेदारी आप पर ही रहेगी । फिर एक समय ऐसा भी आवेगा कि जिनको खुश करने को आपने हानिकारक रूढ़ियों को स्वीकार किया था वे भी आपकी निन्दा करने लग जायेंगे ।

अगर आप बुद्धिमत्ता से काम लेकर अपने व्यक्तित्व को बनाये रखोगे तो अपने स्वामी आप बन सकोगे, और अधिक उच्च तथा लाभदायक स्थिति को प्राप्त करना आपके लिए सहज होगा । व्यक्तित्व को त्यागकर दूसरे लोगों के पीछे भेड़ की तरह चलने पर आपको जितना मान प्राप्त होगा, उसकी अपेक्षा अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रकट करने से संसार आपका अधिक आदर करेगा और आपके संबंध में अधिक उत्तम सम्मति रखेगा । सच्चा वीर पुरुष सब लोगों को अपनी तरफ आकर्षित करता है और सब उस पर विश्वास रखते हैं ।

अपनेपन की जानकारी होना ही सर्वाधिक महत्व की बात है और संसार में करने योग्य कर्तव्य भी वही है । परिस्थिति के अनुसार काम चला लेना क्या ठीक नहीं है ? इस प्रश्न का उत्तर केवल यही दिया जाता है कि उत्तम नीति तो यही है कि मनुष्य अपने आत्मा के आदेश को मानकर व्यवहार करे । किसी विद्वान का कथन है--

''सब विषयों का ध्यान छोड़कर आप अपनी आत्मा के प्रति आज्ञाकारी बनो । ऐसा करने से जिस प्रकार दिन के पीछे रात्रि निश्चित रूप से आती है , उसी प्रकार आप भी अन्य लोगों द्वारा सच्चे और प्रामाणिक माने जाओगे ।'

जिस प्रकार परमात्मा पर विश्वास रखने के विषय में हम लोगों की अच्छी या बुरी सम्मति से नहीं डरते, तो प्रभु भी अवश्य अपनी सहायता करते हैं । अगर हम लोगों को खुश करने के विचार से जीवन व्यतीत करेंगे तो उससे लोग भी खुश न होंगे, वरन् उलटा अपनी मागों को बढ़ाते जायेंगे । अपने जीवन को किस प्रकार व्यतीत करना यह आपके और ईश्वर के बीच का प्रश्न है । यदि आप इस विषय में अन्य कारणों को ध्यान में रखकर निर्णय करोगे तो मार्गच्युत हो रहने का भय बना रहेगा ।

जब हम अपने आन्तरिक-राज्य के संबंध में यथोचित् ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं और सर्वनियन्ता परमात्मा को अपने जीवन का मध्यबिन्दु बना लेते हैं, तब हम स्वयं अपने लिये नियमों का निर्माण करने वाले बन जाते हैं । तब हम दूसरे रूढ़ियों के गुलामों के उद्धार का काम भी आरम्भ कर सकते हैं ।

जब हमको परमात्मा रूपी केन्द्र की प्राप्ति हो जाती है, तब हमारे जीवन में उस मनोहर सरलता का आर्विभाव होता है, जिससे कोई भी व्यक्ति आकर्षक और शक्तिशाली बन जाता है । इसके पश्चात् हमारे भीतर से आडम्बर दूर हो जाता है । कारण यह कि जिसमें निर्बलता होती है और वास्तविक शक्ति का अभाव होता है, वही मनुष्य अधिक आडम्बर करता है । जो लोग बाहरी तड़क-भड़क दिखलाकर दूसरों को चकाचौंध में डालना चाहते हैं, उनमें किसी वस्तु की कमी अवश्य रहती है ।

इस अवसर पर हमको पूँछ काटे हुये घोड़े पर सवारी करने वाले व्यक्ति की याद आती है । दूसरों का ध्यान आकर्षित कर सकने लायक कोई विशेषता अपने में न होने से उसने अपने घोड़े की पूँछ ही काट डाली जिससे अन्य लोगों का ध्यान किसी भी रूप में उसकी तरफ जाय ।

पर जो इस तरह दूसरों को मूर्ख बनाने की चेष्टा करते हैं वे स्वयं ही अधिक मूर्ख बनते हैं । जिन मनुष्यों में कुछ भी ज्ञान और विवेक शक्ति होती है वे तुरन्त समझ जाते हैं कि अमुक व्यक्ति अमुक कार्य किस उद्देश्य से कर रहा है । जो स्वाभाविक रीति से अपनी सामर्थ्य प्रकट करता है वही वास्तविक महान् पुरुष होता है । जिन स्त्री-पुरुषों को अपनी शक्तियों का ठीक-ठीक ज्ञान होता है, वे चाहे प्रकट में बहुत थोड़ा काम करते हों, पर वे ही बड़े कर्मयोगी होते हैं । वे ऊँची स्थिति में रहकर उच्च शक्तियों का उपयोग किया करते हैं । अनन्त जीवन के साथ उनका घनिष्ट संबंध होने से वे सब प्रकार के खतरों से मुक्त रहकर चिन्ता रहित स्थिति में रहते हैं । उनके भीतर अनन्त शक्ति ही कार्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करती रहती है और वे जो कुछ कार्य करते हैं उसमें अपने को उस शक्ति का निमित्त मात्र मानते हैं ।

आत्म-शक्ति का महान चमत्कार

यहाँ तक हमने जिन सिद्धान्तों पर विचार किया है उन सबका आधार एक मात्र मनुष्य की बुद्धि और अर्न्तदृष्टि पर निर्भर है । दूसरे लोगों के उपदेशों को आधार मानकर किसी विषय का प्रतिपादन अभी तक हमने नहीं किया है । अब हम उपर्युक्त सिद्धान्तों की तुलना जगत प्रसिद्ध महापुरुषों के विचारों से करेंगे ।

अब तक जो कुछ कहा गया है उसका सारांश यही है कि मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी सफलता अनन्त-चैतन्य के साथ ज्ञानपूर्वक एकता का अनुभव करना और उससे आने वाले दिव्य-प्रवाह की तरफ अपने अन्तःकरण को खुला रखना है । इसी तथ्य को समझकर प्राचीन शास्त्रों में कहा गया है कि "जीवात्मा और परमात्मा में इतना ही अन्तर है कि वह सर्वव्यापी है और मनुष्य की शक्ति सीमित है" पर साथ ही यह भी कह दिया गया है कि मनुष्य अपने सच्चे स्वरूप को समझकर परमात्मा के साथ एकात्मता स्थापित करे तो वह भी वर्तमान स्थिति की अपेक्षा बहुत ऊँची स्थिति को प्राप्त कर सकता है । इसके लिये मनुष्य को अपनी अहंवृत्ति को यथाशक्ति मन से दूर कर देना चाहिये और अपने कार्यों का कर्त्ता अपने को न समझकर सबको प्रेरणा देने वाले परमात्मा को ही समझना चाहिये, यदि मनुष्य इस भाव को मन में जमाकर ईश्वरीय राज्य और धर्म सिद्धान्तों की खोज करे तो उसे सब वस्तुएँ अपने आप मिल जाती हैं । धर्म के ज्ञाता मुनि-ऋषियों ने यह भी कहा है कि स्वर्ग अथवा मुक्ति मनुष्य के बाहर कहीं नहीं है वरन् वे उसके भीतर से, अन्तरात्मा से ही प्रकट होती हैं ।

एक दिन एक महात्मा से किसी ने आकर कहा कि आपके भाई-बहिन आपसे मिलने आये हैं । महात्मा ने उत्तर दिया- मेरा कौन है ? मेरी बहिन कौन है ? मेरी माता कौन है ? जो मेरे परम पिता परमात्मा के आदेशानुसार जीवन व्यतीत करता है, वही मेरा भाई है, वही मेरी बहिन है, और वही मेरी माता है । सन्त तुलसीदास ने भी यही कहा है-

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँलों ।
अंजन कहाँ आँख जेहि फूटहिं बहुतो कहौं कहालौं ।।
तुलसी सो सब भाँति परमप्रिय पूज्य प्राण सो प्यारौ ।
जासौ होहि सनेह राम पद एतौ मतो हमारो ।।

अनेक मनुष्य सांसारिक स्वजनों, बन्धु-बान्धवों के बंधन में बँधे रहते हैं, पर इसका परिणाम यही होता है कि मनुष्य अपने सच्चे हितैषी और पालनकर्त्ता परमात्मा से पृथक् झूठे नाते-रिश्तों को ही सब कुछ समझकर जीवन को व्यर्थ में खो डालता है । सच पूछा जाय तो रक्त-संबंध वाले व्यक्ति हमारे सच्चे सबंधी नहीं हैं, वरन जो लोग आचार-विचार में हमारे साथ समानता रखते हैं वे ही हमारे वास्तविक संबंधी हैं । फिर चाहे वे हमारे समीप रहते हों अथवा दुनियाँ के किसी भी अन्य भाग में बसते हों ।

शास्त्र में एक स्थान पर कहा गया है कि "त्वमेव माता च पिता त्वमेव ।" इस कथन में ईश्वर के महान पितृत्व का सिद्धान्त समाविष्ट है, और यह भी प्रतीत होता है कि जब ईश्वर हमारा पिता है तो हम सब लोग आपस में भाई ही हैं । इससे एक बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त यह भी प्रकट होता है कि मनुष्य और ईश्वर में अवश्य ही एकता है और इस कारण समस्त मनुष्य जाति भी एक ही है । इस विषय का हम जितना अधिक विवेचन करते हैं, उतना ही यह विदित होता है कि एकता की भावना रखना मानवमात्र के लिये परम कल्याणकारी है और इसके द्वारा वह विकास के मार्ग में निरन्तर प्रगति करने में समर्थ होता है ।

मनु भगवान ने भी कहा है "जो मनुष्य अपनी आत्मा में बसे प्राणियों के आधारभूत परमात्मा को देख सकता है और सबको समदृष्टि से देखता है वही मनुष्य सर्वोत्कृष्ट आनन्द प्राप्त करता है । एक यूनानी महापुरुष का कथन है कि हम इस स्थूल देह के रहते हुये भी ईश्वर स्वरूप बन सकते हैं । गौतम बुद्ध ने भी इन्हीं सत्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है । वे कहते थे कि "लोग अहंभाव को नहीं छोड़ते हैं, इसी से बंधन में पड़े हैं ।" इसका आशय यही है कि जब हम देहाभिमान को छोड़कर परमात्म शक्ति के साथ ऐक्य-भावना अनुभव करेंगे तभी बंधन मुक्त होकर जीवन मुक्त अवस्था को प्राप्त हो सकेंगे ।

महात्मा स्वीडन वर्ग का मत है कि उच्च जीवन को प्राप्त करने के लिये दिव्य प्रवाह को ग्रहण करने की आवश्यकता है । हम जितना ही अधिक उस प्रवाह को अपने भीतर प्रविष्ट होने देंगे उतना ही वह अपना प्रभाव दिखलायेगा । एक अन्य संत का कहना है कि हम सब परमात्म-शक्ति को बहने देने के लिये नाले-नालियों की तरह हैं । जो मनुष्य जितने अधिक परिमाण में उस प्रवाह को अपने अंदर बहने देता है उसी परिमाण में वह भविष्यवेत्ता या पैगम्बर, महापुरुष बन जाता है ।" समस्त संसार के इतिहास पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि जिन मनुष्यों ने अध्यात्म राज्य में प्रवेश करके अलौकिक शक्ति प्राप्त की है वे ही सच्ची शान्ति और अपूर्व आनन्द का अनुभव कर सके हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"जो ईश्वरीय आज्ञा को सुनते हैं और उसके अनुसार अपना जीवनयापन करते हैं, उनको धन्य है इस वाक्य में एक बहुत बड़ा सत्य समाया हुआ है । जितना अधिक इस उच्च प्रकाश को अनुसरण करके हम अपने आचार-विचार को निर्मल और पवित्र बनायेंगे उतना ही हमारे ज्ञान और शक्ति की वृद्धि होती जायगी ।

समस्त संतों, महात्माओं, ऋषियों, पैगम्बरों और जगत गुरुओं को यह महत्वपूर्ण पदवी कुछ विशिष्ट ईश्वरीय नियमों के अनुसार आचरण करने से ही प्राप्त हुई है । परमात्मा तो सबको समभाव से देखता है । वह स्वयं संतों, ऋषियों, पैगम्बरों या महापुरुषों को उत्पन्न नहीं करता । वह तो केवल मनुष्य उत्पन्न करता है, पर जो मनुष्य परमात्मा से ऐक्य का अनुभव कर लेता है, वही ऋषि या पैगम्बर बन सकता है । ऐसा महापुरुष किसी देश या जाति के साथ पक्षपात का भाव नहीं रखता, पर जिस जाति या देश के निवासी उसे पहिचानते हैं उन्हीं को अपना समझकर मार्ग-दर्शन करता है ।

प्रभु किसी को सुखी या समृद्धिशाली नहीं बनाते । पर जो लोग परमात्म-शक्ति का अनुभव करके उसके नियमों का पालन करते हुये जीवन व्यतीत करते हैं, वे समृद्धिशाली बन जाते हैं । इसी से गीता में कहा गया है--

आत्मा ही आत्मा का बन्धु-मित्र है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है । अर्थात् अपने मित्र और शत्रु हम स्वयं ही हैं और कोई दूसरा नहीं है जितना अधिक हम अपने भीतर रहने वाले दैवी तत्व के अनुकूल रहेंगे उतने ही अधिक सबके मित्र समझे जायेंगे और जितने अधिक हम उस अविनाशी तत्व के विरोधी बनेंगे उतने ही अंशों में सबके शत्रु कहे जायेंगे । जितने परिमाण में हम अपने हृदय को उच्च-शक्तियों की तरफ उन्मुख रखेंगे और दैवी-प्रवाह को अपने भीतर होकर बहने देंगे उसी अनुमान से हम मनुष्य जाति के और एक दूसरे के उद्धारक बनेंगे ।

सर्वोत्कृष्ट सम्पत्ति और उसकी प्राप्ति

एक प्रश्न यह भी किया जाता है कि ऊपर बतलाये हुये सिद्धान्त बड़े सुन्दर और यथार्थ हैं पर उनको व्यवहार में किस प्रकार लाया जाय ? परमात्मा के साथ ऐक्य भाव का अनुभव करना निःसन्देह बड़ा श्रेष्ठ और प्रभावोत्पादक है, पर उसका आचरण जीवन में किस प्रकार किया जा सकता है ?

इसका मार्ग सीधा और सरल है । आवश्यकता केवल इतनी ही है कि अपने हृदय के द्वार को खुला रखो, जिससे चैतन्य शक्ति का दिव्य प्रवाह हमारे भीतर प्रवेश कर सके। पर्वत के ऊपर स्थित जलाशय में दिव्य चैतन्य रूपी जल भरा हुआ है यदि आप उससे संबंध रखने वाले दरवाजे को खोल दें तो जल अपने स्वभावानुसार नीचे की तरफ बहकर खेतों और बगीचों में भर जायेगा और उनको हरा-भरा बना देगा । अनन्त ज्ञान, सामर्थ्य और आनन्द के अनुपम समुद्र रूप परमात्मा के साथ हमारा क्या संबंध है, इस विषय को हम पिछले अध्यायों में बहुत अच्छी तरह समझा चुके हैं । अब इतना ही और कहा जा सकता है कि आप सर्वदा अपने मन तथा हृदय को खुली स्थिति में रखो, जिससे परमात्म-शक्ति को उसमें प्रवेश करने में बाधा न हो । दूसरी बात है इसके लिये अन्तःकरण में तीव्र इच्छा का जाग्रत करना । हर रोज एकान्त शांति स्थिति में थोड़ी देर तक रहने का अभ्यास करना, जिसे हम ध्यान भी कर सकते हैं, इस उद्देश्य की पूर्ति में बहुत सहायक होगा । इस प्रकार शान्त अवस्था में बैठने के अवसर पर प्रभु की कृपा अथवा उनसे ऐक्य-भाव का अनुभव करने की स्थिति में रहो, और उनका प्रसाद हमको अवश्य मिलेगा, इस बात का दृढ़ विश्वास रखो । तब अनुभव रूप पहली किरण आपकी अन्तरात्मा में उतरेगी फिर वह आपके मन में प्रकट होगी और अपने शरीर के प्रत्येक अंग में उसे प्रकट होती आप अनुभव करोगे । यह अनुभव जितना अधिक होगा, उतना ही अधिक उसकी शान्ति और प्रकाश देने वाली शक्ति अपने भीतर काम करती जान पड़ेगी ।

इस प्रकार अभ्यास करते-करते तुम्हारे जीवन में ऐसा भी समय आ जायगा जब कि किसी व्यापारी की दुकान पर या हलचलपूर्ण बाजार में बैठकर भी बाहरी विषयों से मन को हटाकर अन्तर्मुख बना सकोगे । इससे तुम प्रभु को पहिचान कर उनके अनुकूल चल सकोगे । इसी का नाम दूसरा जन्म या आध्यात्मिक जन्म है । हमारा प्रथम जन्म माता के गर्भ से स्वाभाविक जन्म होता है, दूसरा आध्यात्मिक जन्म होता है क्योंकि इस समय पशुवृत्ति का नाश होकर दैवीवृत्ति का जन्म होता है ।

अगर हमारी इच्छा हो और हम दृढ़ संकल्प कर लें तो इसी दिन इसी घंटा अथवा इसी क्षण हमको इस प्रकार के अनुभव की प्राप्ति हो सकती है । अगर हम अपना मुख ठीक पर्वत की दिशा में रखें, तो फिर धीरे या जल्दी कैसे भी चलें कभी न कभी पर्वत के शिखर पर जाही पहुँचेंगे ।

गौतम बुद्ध ने अपने किसी पिछले जन्म में कहा था कि सत्य क्या है, यह मेरी समझ में आ गया है । मैं जरूर कार्य-सिद्ध करूँगा, मैं बुद्ध बन सकूँगा "इस प्रकार के निश्चय से वे बुद्ध बन गये और उस जन्म में ही निर्वाण की स्थिति प्राप्त कर सके । बुद्ध ने अन्य लोगों को भी यह बतलाया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि इस प्रकार का निर्वाण यहीं इस लोक में और अभी संभव है ।

महात्मा ईसा ने कहा था कि मैं और मेरा पिता एक ही हैं, और मुझे उसी का काम करना है इसका भी आशय यही था कि वेदान्त सिद्धान्त के अनुसार ईसामसीह भी परमात्मा और जीवात्मा की एकता में विश्वास रखते थे, और इसी मान्यता को वे मानव प्राणियों के चरम उत्थान का मार्ग स्वीकार करते थे । इसी आधार पर उन्होंने अपने अनुयायियों को यह उपदेश दिया था- "पहले प्रभु के आदेश और सत्य परायणता का अनुभव करो, उसके पश्चात् दुनियाँ के सब पदार्थ तुमको प्राप्त हो सकेंगे ।

अनन्त-जीवन रूप परमात्मा के साथ हमारी एकता है, इसका यथार्थ विचार करके तदनुसार जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति एक प्रकार से सदैव स्वर्गीय राज्य में विचरण करता है । ऐसे मनुष्य को सब चीजें पर्याप्त मात्रा मिलती हैं और किसी चीज की कमी नहीं पड़ती । क्या करना और क्या नहीं करना इस विषय की भी उसे चिन्ता नहीं करनी पड़ती । अनन्त शक्ति उसका मार्गदर्शन करती रहती है । इससे उसे किसी प्रकार के खतरे का सामना नहहीं करना पड़ता । ऐसे लोगों के गुणों का वर्णन इस थोड़े स्थान में नहीं किया जा सकता । इस प्रकार का दिव्य जीवन समस्त जगत में व्याप्त रहता है । जो मनुष्य इस जीवन रूपी-प्रवाह में बहने लग जाता है उसको जीवन कभी भार रूप प्रतीत नहीं होता । जिस प्रकार पृथ्वी और ग्रहों के अनेक परिवर्तन स्वाभाविक और नियमबद्ध रूप से होते रहते हैं वैसे ही उसका जीवन भी स्वाभाविक क्रम से निर्विघ्न चलता रहता है ।

इस उच्च शक्ति का अनुभव होने के पश्चात् वह मनुष्य जब कभी किसी जगह जाता है और अन्य मनुष्यों के सम्पर्क में आता है, तो उन सबको ऐसा अनुभव होता है कि उस व्यक्ति ने प्रभाव से उनमें एक नई शक्ति उत्पन्न हो गई है । इस संबंध में हमें उन मल्लाहों का उदाहरण याद आता है जो हिन्द महासागर में अपने जहाज चलाते रहते हैं । वे कहते हैं कि वहाँ के अनेक टापुओं में से चंदन की सुगंध बहुत दूर से आने लगती है और उस सुगंध के कारण वे जान जाते हैं कि अमुक टापू उनके समीप ही है । इसी प्रकार आपको अपने अन्तःकरण को ऐसा शुद्ध और पवित्र बना लेना चाहिये कि जहाँ कहीं जाओ वहाँ आप में व्याप्त प्रबल शक्ति चारों ओर बहती रहे और सब पर शुभ प्रभाव डालती रहें ऐसा करने से जहाँ कहीं अपनी प्रेरणा शक्ति को लेकर जाओगे वहीं आपका आगमन आशीर्वाद रूप प्रतीत होगा । इस प्रकार का जीवन भी किसी व्यक्ति के लिये एक बड़े सौभाग्य या महत्व की बात समझी जाती है । पर जब आप दिव्य-जीवन का साक्षात्कार करोगे तब तो आपको आनन्द का ठिकाना नहीं रहेगा और आपके हृदय में से स्वयमेव इस प्रकार के उद्‌गार निकलने लगेंगे–

"ओहो मैं अनन्तकाल के लिये अनन्त जीवन में विद्यमान हूँ । अब मुझे सब वस्तुएँ दिव्य जान पड़ती हैं । मैं स्वर्ग के योग्य पदार्थ ग्रहण करता हूँ और स्वर्गीय अमृत का ज्ञान करता हूँ । जब मैं इन्द्रधनुष के चमकते हुये लाल आसमानी सारंगी रंगों से प्रकाशमय मिश्रण को देखता हूँ, तब उस प्रकाश में मुझको प्रभु का प्रेम दिखाई देता है । जब मैं पक्षियों को आनन्दपूर्वक गाता देखता हूँ, अथवा सुन्दर और सुगन्धित फूलों को खिलता हुआ अवलोकन करता हूँ, अथवा प्रातःकाल के तेजस्वी रंग मुझे दृष्टिगोचर होते हैं, तो मेरी आत्मा आनन्द में निमग्न हो जाती है और मेरी चित्त वृत्तियाँ प्रभु की महिमा में तन्मय हो जाती हैं ।"

जैसे-जैसे मनुष्य प्रभु के अनन्त-जीवन के साथ अपने अंशरूप जीवन के साथ ऐक्य भाव का अनुभव करता है तो वह स्वर्गीय वातावरण में पहुँच जाता है और उसकी समस्त आवश्यकतायें अपने आप पूर्ण होने लगती हैं । ऐसा होने से दुर्बलता होने के बदले सबलता, निस्तेजिता के बदले तेजस्विता, दुख और शोक के बदले आनन्द, भय और शंका के बदले निर्भयता, इच्छा के बदले अनुभव प्रकट होता है । इस प्रकार मनुष्य को शांति, शक्ति और समस्त वस्तुओं की विपुलता का साक्षात्कार होने लगता है और वह अपने भीतर ही ईश्वर के दर्शन करने लगता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भक्तियोग का स्वरूप

मनुष्य जैसे-जैसे उन्नति करता जाता है वैसे ही उसकी आत्मीयता-ममता का विस्तार होता जाता है। नीच योनि के जीव अपने निजी शारीरिक स्वार्थ तक सीमित रहते हैं, पशु यदि भूखा हो तो अपने बच्चे के आगे का भोजन भी खा जायगा, उसे इसका जरा भी ख्याल न होगा कि बच्चे को भूखा रहना पड़ेगा। इस पशुवृत्ति में बहुत से मनुष्य भी ग्रसित होते हैं- कितने ही ऐसे घोर स्वार्थी मनुष्य देखे जाते हैं, जो अपने शरीर को ही अपना समझते हैं और उसकी जितनी परवा करते हैं उतनी अपने बाल-बच्चों की भी नहीं करते, यह उन लोगों की स्थिति है, जो मनुष्य शरीर में तो आगये हैं पर पशुवृत्तियों को त्याग नहीं सके हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से ऐसे लोगों को अविकसित कहा जाता है। जिसका स्वार्थ का दायरा जितना संकीर्ण है वह उतना ही नीची कोटि का जीव है।

जब पशुता घटने लगती है और उच्च दैवी गुणों का विकास होने लगता है तो उसका परिचय आत्मीयता के विस्तार में मिलता है। अपने निजी शारीरिक स्वार्थों से आगे बढ़कर यह बाल-बच्चों में, कुटुम्ब-परिवार में, मित्रों में, सम्बन्धी-रिश्तेदारों में दिलचस्पी बढ़ता है और उन्हें भी अपनेपन की सीमा के अन्दर ले आता है। अपने शरीर के स्वार्थों के समान ही इन लोगों की भी फिक्र और देख-भाल करते हैं, उनके स्वार्थों को भी अपना ही स्वार्थ समझता है। क्रमशः यह आत्मीयता का विस्तार बढ़ता है, पहले अपना ही स्वार्थ प्रधान था फिर वह कुटुम्ब- परिवार तक बढ़ा, पीछे यही देश, जाति, विश्व तक अपना दायरा बढ़ाता है और अन्त में नमक की डली जैसे पानी में घुल जाती है वैसे ही स्वार्थ, परमार्थ में घुल जाता है। हर एक में एक ही आत्मा, एक ही परमात्मा दिखाई देता है, इसी ऊँची अवस्था को मुक्ति कहते हैं। अब स्वार्थ और परमार्थ का भेद मिट जाता है मेरा-तेरा नहीं रहता, द्वेष-भाव समाप्त हो जाता है तब पूरी आत्मोन्नति समझी जाती है, उसी अवस्था को प्राप्त करा देने के लिए सारी आध्यात्मिक साधनाओं की रचना हुई है।

यह एक अमिट मानव स्वभाव है कि जो वस्तु उसे अपनी प्रतीत होती है, उससे प्रेम करता है। अपनेपन का परिचय प्रेम में ही है। देने-लेने से आत्मीयता नहीं झलकती। साहूकार से कर्ज ले सकते हैं, रिश्वत, उधार या दान के रूप में किसी को दे भी सकते हैं यह लेन-देन साधारण व्यापार है, इसे करने के साथ-साथ प्रेम भी हो यह आवश्यक नहीं। ग्राहक और दुकानदार दोनों अपने-अपने हिसाब से आपस में लेन-देन करते हैं, दुनियाँ में तरह-तरह के, रुपये-पैसे के, रूप-सौन्दर्य के, सेवा सत्कार के, विद्या-बुद्धि के, मेहनत-मजूरी के व्यापार हो रहे हैं इनके लिए यह आवश्यक नहीं कि खरीददार और बेचने वाले आपस में एक-दूसरे को अपना निजी आत्मीय समझे, मनुष्य जिसे अपना समझता है, भले ही उससे देन-लेन न करे पर प्रेम अवश्य करता है, उतना ही गहरा उससे प्रेम भी होता है। माता बच्चे को अपना समझती है, इसलिए यदि वह लाभदायक न हो तो भी उसे भरपूर स्नेह करती है। पतिव्रता पत्नियों को अपने काले-कलूटे और दुर्गुणी पति भी इन्द्र से सुन्दर और बृहस्पति से गुणवान लगते हैं, यह इस बात के प्रमाण हैं कि तुच्छ और निकम्मी वस्तु भी यदि अपनी हो तो उसके प्रति सहज ही प्रेम उमड़ आता है।

पाठक जानते हैं कि आत्मोन्नति के साथ-साथ दूसरों के प्रति अधिक गहरी आत्मीयता बढ़ती है, अपना निजी स्वार्थ घटता है और परमार्थ में ही स्वार्थ दिखाई देने लगता है, दूसरों का हित अपने ही हित के समान जान पड़ता है, क्रमशः बढ़ते-बढ़ते स्वार्थ का बिल्कुल अन्त होकर उसका विशुद्ध स्वरूप परमार्थ ही शेष रह जाता है। इस आत्म-विस्तार के साथ-साथ ही प्रेम का भी विस्तार होता है, जब दूसरे लोगों का स्वार्थ अपना स्वार्थ हो गया, एक ही आत्मा की ज्योति सबमें दिखाई पड़ने लगी और अपनान चारों ओर फैल गया तो यह स्वाभाविक ही है कि दूसरों के प्रति उत्कृष्ट प्रेम उमड़ पड़े, सब बच्चे अपने पुत्र के समान, स्त्रियाँ माता या बहिनों के समान, तरुण पुरुष भाईयों के समान, वृद्ध लोग पिता के समान अपने जान पड़ें और उनसे सच्चा प्रेम भाव स्थापित हो जाय। व्यष्टि में से आगे बढ़कर जब समष्टि में चेतना का प्रवेश हुआ तो प्रेम का दायरा भी बढ़कर अनन्त हो जाता है। बूँद जब समुद्र के साथ सम्बन्धित हो गई तो उसका अहंभाव भी उतना ही लम्बा-चौड़ा हो गया है।

यह एक निश्चित तथ्य है कि आत्मोन्नति और प्रेम विस्तार एक-साथ रहते हैं, इनमें से कोई एक भी आगे पीछे नहीं रह सकता है, जिसका प्रेम का दायरा विस्तृत है उसकी निस्संदेह आत्मोन्नति हुई है, भले ही पूजा-पत्री न जानते हों। जो स्वार्थी, अनुदार, कठोर, रूखा और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कंजूस है- वह नीचे दर्जे में पड़ा हुआ है भले ही वह तिलक, छापे, कण्ठी, माला, चोटी, जनेऊ धारण किए हुए हो, चाहे एक घण्टे भजन करता हो चाहे दिन-रात गौमुखी हाथ में डाले रहता हो। आत्मोन्नति एवं प्रेमोन्नति एक ही बात है, इसलिए प्रेमोन्नति को एक ही बात कहा जायगा। ज्ञान और कर्म के द्वारा आत्मा को ऊँचा उठाने का उपयोग किया जाता है, साथ ही एक तरीका वह भी है कि प्रेमोन्नति की साधना द्वारा आत्मा को ऊपर उठाया जाय।

संस्कृत में 'भक्ति' शब्द का जो अभिप्राय है, हिन्दी में पर्यायवाची शब्द 'प्रेम' है। भक्त और प्रेमी दोनों एक ही हैं, इनमें किसी प्रकार का कुछ अन्तर नहीं है। आजकल 'भगतजी' शब्द से किसी धूर्त, बड़पेटा, हाऊ, हप्प, ढोंगी, नाच-कूद करने वाले, ढोल-मजीरा पीटने वाले, हरामखोर, मायाचारी व्यक्ति का अर्थ लिया जाता है। हमारा तात्पर्य इन पेशेवर लोगों से बिलकुल नहीं है। हम तो 'भक्त' के असली तात्पर्य का उल्लेख कर रहे हैं, जिसके अन्तःकरण में अनन्त प्रेम की अजस्र धारा बह रही है वही भक्त है, प्रेम से जो गद्‌गद् हो जाता है और अपने प्रेम-पात्र के लिए आत्मोत्सर्ग करने को तैयार रहता है जिसमें वह गुण न हों वह तो भक्ति की आड़ में जीविका या प्रतिष्ठा कमाने वाला मायाचारी व्यापारी मात्र है।

भक्त का प्रेम-पात्र में आत्मभाव होता है- ईश्वर। भक्त अपना सम्पूर्ण प्रेम ईश्वर के ऊपर उड़ेल देता है, उसी की भक्ति में तन्मय रहता है, यह भक्ति उसके अन्तर स्रोतों को खोल देती है, उसके आनन्द का पारावार नहीं रहता, ईश्वर का स्मरण, चिन्तन, कीर्तन, अर्चन करने में गद्‌गद् हो जाता है, प्रभु को अपने में और अपने को प्रभु में एकीभूत हुआ देखता है और इस प्रेम के प्याले को पीकर मस्त हो जाता है। यह मस्ती अपने ढंग की निराली है, जिसे एक बार इसका चस्का पड़ा कि फिर दूसरी कोई वस्तु सुहाती ही नहीं, यह मधुरता इतनी अद्वितीय है कि प्याला होठों के आगे से हटाया ही नहीं जाता, जिस लोहे ने, एक बार इस पारस को छुआ वह पुराना चोला बदल कर दूसरे ही रंग-ढंग का हो जायगा।

ईश्वरीय भक्ति को एक उचंग, सनक, उन्माद, मानसिक बीमारी, उत्तेजना या आवेश कहा जाता है। कहते हैं कि जिस प्रकार किसी क्रोधी या उन्मादी को कोई बे-सिर पैर की सनक उठ खड़ी होती है और वह उसी तरंग में अंट-शंट बकता है और बुद्धि रहित आचरण करता है उसी प्रकार यह भक्त लोग भी ईश्वर को बिना जाने-बूझे, किन्हीं के बहकावे में आकर ऊल-जलूल आचरण करते हैं। उपरोक्त आरोपों को हम उचित नहीं समझते क्योंकि ईश्वर भक्ति में अवैज्ञानिकता नहीं है।

प्रेम की मर्यादा बढ़ाने से आत्मीयता की सीमा बढ़ती है और इसी के साथ आत्मोन्नति भी होती है। इस मर्यादा को अधिकतम विस्तृत करने की आवश्यकता है। ईश्वर से अधिक विस्तृत और यथावत् उत्तर देने वाली शक्ति और दूसरी कोई नहीं है। जड़ वस्तुओं से जो प्रेम किया जाता है वह नश्वर और अस्थिर होता है क्योंकि उस वस्तु के गुण, स्वभाव या अस्तित्व में अन्तर आते ही प्रेम में भी घट-बढ़ हो जाती है और कभी-कभी तो असाधारण परिवर्तन के कारण वहाँ प्रेम के स्थान पर द्वेष तक उपस्थित हो जाता है। विछोह होने पर बड़े दुःख और शोक का सामना करना पड़ता है, इसलिए प्रेम का पात्र ऐसा चुनना चाहिए जो सदा एकरस रहे और परिवर्तनशील न हो, ऐसा एकमात्र परमात्मा ही है।

निस्संदेह ईश्वर को हमारे द्वारा खुशामद कराने की कोई आवश्यकता नहीं है, न वह प्रशंसा, स्तुति, गुणगान सुनकर प्रसन्न होता है और न निन्दा, आलोचना सुनकर अप्रसन्न होता है। उसके लिए भक्त और निन्दक समान हैं। न तो भक्तों को कुछ पुरस्कार देता है और न अभक्तों को किसी दंड में डालता है, उसने किसी जीव का यह कर्तव्य नहीं ठहराया है कि नित्य पूजा-उपासना किया करे। यह सब तो अपने लाभ की, अपने हित की बातें हैं। जिन्हें ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए नहीं वरन् अपनी आत्मिक चेतना को ऊँची उठाने की दृष्टि से करना चाहिए। रबड़ की गेंद को जब हम जोर से खींचकर दीवार में मारते हैं तो वह उतनी ही जोर से टक्कर खाकर वापिस लौट आती है, ईश्वर के लिए जितना प्रेम फेंका जाता है, वह अखिल विश्व-व्यापी प्रेम तत्व से टक्कर खाकर वापिस लौटकर ब्याज समेत अपने ही पास आ जाता है। भक्त को अक्सर ऐसे अनुभव होते हैं मानो ईश्वर उसकी प्रार्थना सुन रहा है, प्रेम का उत्तर दे रहा है और वैसा ही व्यवहार कर रहा है जैसा कि सच्चा मित्र अपने मित्र के उपकार का बदला किसी न किसी रूप में चुकाता है। यह प्रत्युपकार कहाँ से मिलते हैं? कौन देता है? उसका उत्तर पूर्व पंक्तियों में दिया जा चुका है, अपने अन्तःकरण से निकला हुआ प्रेम जब वापिस लौटता है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई दूसरा हमसे प्रेम कर रहा है।

दर्पण के काँच पर अपनी छाया पड़ती है, वह छाया चमकदार पारे की पॉलिस से टक्कर खाकर वापिस लौटती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, तो दर्पण में अपना ही प्रतिविंब इस प्रकार दिखाई पड़ता है, मानो हूबहू अपने ही जैसा कोई दूसरा आदमी सामने खड़ा हुआ है। किसी पक्के बंद मकान में या पक्के कुएँ में यदि कुछ शब्द किया जाय तो वह दीवारों से टक्कर खाकर वह वापिस लौटता है और ऐसा प्रतीत होता है मानो वैसे ही शब्द कोई दूसरा व्यक्ति उच्चारण कर रहा है। हम दर्पण के प्रतिविम्ब और पक्के मकान की शब्द प्रतिध्वनि को अपने से प्रथक् देखते हैं तो भी वह असल में अपनी शक्ति का ही छायाचित्र है। ईश्वर की ओर से प्रेम के बदले में प्रेम या अन्य प्रत्युपकार प्राप्त होते हैं, वे एक वैज्ञानिक नियम के अनुसार अपने ही प्रयत्न के ही फल हैं। भौतिक वस्तुओं के प्रति फेंका गया प्रेम उन्हीं में घुल जाता है यदि वे वस्तुएँ बदला दे सकें तो ठीक अन्यथा वह प्रयत्न व्यर्थ चला जाता है किंतु ईश्वरीय प्रेम में ऐसा विकल्प नहीं है उसका परिणाम निश्चित है, बदला मिलने की उसमें तो गारण्टी है। अपने धन को लोग ऐसी जगह में लगाना चाहते हैं जहाँ से वह सुरक्षित रूप से लौट आये, फिर प्रेम जैसे हृदय रस को पंचभूतों से बने हुए साख रहित कर्जदारों के पास धरोहर रखने की अपेक्षा यदि ईश्वर रूपी प्रतिष्ठित बैंक में जमा किया जाय तो यह उचित ही है, इसमें बुद्धिमानी ही है।

आचार्यों ने भक्ति को दो भागों में विभाजित किया एक गौणी भक्ति, दूसरी परा भक्ति। आरम्भिक साधक को गौणी भक्ति का आसरा लेना पड़ता है पर जब थोडा-बहुत आत्म-विकास हो जाता है तो फिर उसकी आवश्यकता नहीं रहती, तब परा भक्ति का अवलम्बन ग्रहण करना होता है। ईश्वर का महान्, व्यापक, विभु, सर्व शक्तिमान स्वरूप का प्रारम्भिक अभ्यासी अपनी निर्बल चेतना द्वारा चिन्तन करने में समर्थ नहीं होते, इसलिए उन्हें ईश्वर की एक प्रतिमा का सहारा लेना पड़ता है, यह प्रतिमा मनुष्याकार ही हो सकती है। सर्प यदि ईश्वर का कोई स्वरूप निर्धारित करता, तो उसका ईश्वर एक बलवाल मोटा-ताजा सर्प होता, इसी प्रकार यदि अन्य जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े ईश्वर के रूप की कल्पना कर सकें तो वे अपनी-अपनी जाति में ही उसकी प्रतिमा निर्धारित करेंगे। मनुष्यों में भी ऐसा ही है, विभिन्न देशवासियों ने ईश्वर के जो रूप कल्पित किये हैं जिन वस्त्र-आभूषणों से उसे सजाया है, उसका स्वभाव जैसा माना हैं वह उनकी अपनी स्थिति के अनुकूल ही है। अंग्रेजों का 'गौड' पूरी साहबी पोशाक में गोरा चट्टा होगा मुसलमानों के अल्लाह मियाँ चूड़ीदार पजामा पहने, टर्की टोपी लगाये दाढ़ी हिलाते हैं। हिन्दुओं के ईश्वर भारतीय वेशभूषा और विचारधारा को पसंद करते हैं, यह विभिन्न रूप ईश्वर एकांगी कल्पनाएँ हैं तो भी इनका उपयोग है ही।

मूर्ति, आरती, नमाज, भजन, पूजा, जप, कीर्तन आदि साधनों द्वारा अपना प्रेम ईश्वर के निमित्त प्रेरित किया जाता है। यह गौणी भक्ति है और आरंभिक साधकों के लिए बहुत हद तक इसकी आवश्यकता भी है परन्तु जब आत्मोन्नति में प्रगति हो चुके तो सदा इन्हीं से उलझे रहने की जरूरत नहीं है। एक कक्षा पार कर लेने पर दूसरा पाठ ग्रहण करना ही उचित है। पहली सीढ़ी पर चढ़ जाने के पश्चात् दूसरी के ऊपर चढ़ने की तैयारी करनी ही चाहिए। 'गौणी' भक्ति के पश्चात् 'पराभक्ति' का दर्जा आता है।

जो लोग आध्यात्मिक बचपन को पार कर चुके, जिन्हें खिलौनों से खेलने की दिलचस्पी उतनी न रहे, जिनकी जिज्ञासा और विवेक बुद्धि जागृत होने लगे, उन्हें पराभक्ति की ओर कदम उठाना चाहिए, गौणी भक्ति में प्रेमी बनने का जो छुट-पुट अभ्यास किया था उसे ठीक प्रकार उपयोग करने के लिए तैयार होना चाहिए। ईश्वर के बनाये हुए इस विश्व के जड़-चेतन्य पदार्थ सभी हैं, पर चेतन्य में ईश्वरीय अंश अधिक है। साधारण मनुष्यों की कोई परवाह नहीं करता पर अवतारी महापुरुष जिन ईश्वर की अधिक कलाएँ होती हैं, संसार में बड़े सम्मान के साथ पूजे जाते हैं। यह पूजा ठीक भी है क्योंकि अधिक प्राप्त करने के लिए अधिक बलवान का सहारा लेना पड़ता है। गर्मी की आवश्यकता तारागणों से पूरी नहीं होती इसके लिए सूर्य की सहायता लेनी पड़ती है। इसी प्रकार ईश्वरीय शक्ति की अधिक कलाएँ जड़ पदार्थों की अपेक्षा चेतन्यों में देखते हुए हमारी श्रद्धा और पूजा के वे ही अधिकारी हो सकते हैं। गौणी भक्ति में मनुष्य जड़ पदार्थों की मूर्ति, वृक्ष, नदी, पर्वत, पुस्तक आदि के ऊपर निर्भर रहता है, इन्हीं की पूजा-अर्चा विविध कर्मकाण्डों द्वारा किया करता है। पर पराशक्ति में चेतन्य प्राणियों के अन्दर जगमगाती हुई अखण्ड ज्योति में अपने प्रेम को नियोजित करता है।

धातु या पाषाण की प्रतिमाओं की कक्षा पारकर लेने के बाद उससे अधिक बड़ी और अधिक चेतन्य प्रतिमा का आश्रय लेकर अपना प्रेम ईश्वर तक पहुँचाना होता है। यह विश्व ब्रह्माण्ड एक प्रकार की प्रतिमा ही है, भगवान् के अपने विराट् स्वरूप का दर्शन अर्जुन को कराया है, उसका उल्लेख गीता के ११वें अध्याय में मिलता है, यह समस्त विश्व भगवान् का ही विराट् रूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। पराभक्ति की कक्षा वाले इसी प्रतिमा को अपना अवलम्बन बनाते हैं। राजपूतों में एक समय ऐसा रिवाज था कि यदि विवाह के समय किसी कारणवश वर उपस्थित न हो सके तो उसके फेंटा और कटार के साथ कन्या का विवाह हो जाता था, गौणी भक्ति फेंटा-कटार का विवाह है यदि ईश्वर को समझने योग्य विवेक न हो, उसे ठीक तरह अनुभव न किया जा सके तो निर्जीव प्रतिमाओं की सहायता से भी काम चला लिया जा सकता है। जिनकी आँखें दुःखने आजाती हैं या कमजोर होती हैं उन्हें सूर्य की तेज धूप देखना सह्य नहीं होता, ऐसी दशा में उनकी आँखों पर रंगीन काँच का चश्मा पहना देते हैं ताकि नेत्रों की सामर्थ्य के अनुसार ही प्रकाश मिले परन्तु जब आँखें अच्छी हो जाती हैं तो उसे चश्मे की जरूरत नहीं रहती। प्राणियों की चेतन्यता साक्षात् परमात्मा की ही दिव्य ज्योति है पर कई व्यक्तियों की चेतना उसे असली रूप में देख नहीं सकती, वह मोह में फँसकर किसी को मित्र, किसी को शत्रु, किसी को अपना, किसी को विराना, किसी को नीच, किसी को ऊँच देखती है। यह भेद-भाव ही वह कमजोरी है जिसके कारण सामने खड़े ईश्वर का प्रचण्ड तेज देखा नहीं जाता और कल्पित प्रतिमाओं से किसी प्रकार काम निकाला जाता है।

गीता के ११वें अध्याय के आठवें श्लोक में भगवान् से अर्जुन ने कहा है कि-"तू अपने इन चर्म चक्षुओं से मेरे वास्तविक रूपों को न देख सकेगा इसलिए मैं तेरी दिव्य दृष्टि को खोलता हूँ, उससे तू मेरे योग और ऐश्वर्य को देख।" दिव्य दृष्टि द्वारा, ज्ञान दृष्टि द्वारा ही ईश्वर की झाँकी की जा सकती हो, चर्म चक्षुओं की उस तक पहुँच नहीं हो सकती। आँखों से पंचभौतिक वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं क्योंकि नेत्र स्वयं पंचभौतिक हैं, ईश्वर सूक्ष्म है, सत्-चित् आनन्द स्वरूप है इसलिए उसका दर्शन आत्मा की, ज्ञान की दिव्य दृष्टि से ही हो सकता है। गौणी भक्ति चर्म-चक्षुओं का विषय है, चुहिया के बच्चों की आँखें जन्म के समय बन्द रहती हैं उन दिनों वे अपनी माता को पंजा से टटोल-टटोलकर ढूँढ़ते हैं पर जब आँखें खुल जाती हैं तो झट दौड़कर अपनी माता के पास पहुँच जाते हैं, ज्ञान की दिव्य दृष्टि न खुलने तक गौणी भक्ति आवश्यक है, उसके बिना काम नहीं चल सकता। अनेक व्यक्ति लोक व्यवहार में बहुत ही चतुर और क्रिया-कुशल होते हुए भी आत्मिक दृष्टि से बिलकुल बालक हो सकते हैं, उनके लिए गौणी भक्ति की ही आवश्यकता है, उन्हें प्रतिमाओं का दर्श-स्पर्श, पूजन, अर्चन करके अपने लौकिक प्रेम का विस्तार करना चाहिए पर जिनका आत्मिक बचपन समाप्त हो जाय जिनके नेत्र उतने कमजोर न रहे हैं, उन्हें पराभक्ति की ओर प्रगति करनी चाहिए, ईश्वर के अधिक तेजस्वी और अधिक स्पष्ट स्वरूप का दर्शन करना चाहिए।

कई लोग कहते हैं कि हाथ से गढ़े हुए या दिमाग के बने हुए ईश्वर की ओर दिलचस्पी नहीं यह तो हाथ के खिलौने हैं वास्तविक ईश्वर नहीं। वे कहा करते हैं कि धातु-पत्थर की मूर्तियाँ और तस्वीरें शिल्पकारों द्वारा बनाई हुई हैं यह नष्ट होने वाली हैं, जड़ हैं और भावना रहित हैं किन्तु ईश्वर सत् है सदा रहने वाला है, चित् है, चेतन्य है, आनन्द है, आनन्द से परिपूर्ण है, पर इन तीनों में से एक भी गुण जिनमें नहीं है, उस प्रतिमा को ईश्वर क्यों कर मानें? और क्योंकर उसे उच्च श्रद्धा के साथ प्रेम करें? यह लोग अदृश्य लोक के निवासी ईश्वर के बारे में भी ऐसे संदेह उठाते हैं कि ध्यान किये जाने वाले चित्र हमारी कल्पना की उपज है, अमुक लोक में अमुक आकार-प्रकार का ईश्वर रहता है, इन अप्रत्यक्ष बातों का कोई प्रमाण नहीं, सम्भव है यह सब कपोल कल्पनाएँ ही हों। प्रमाण रहित बात की प्रतीत वे कहते हैं कि हम अन्धविश्वास पूर्वक यों ही अंधा-धुन्ध भक्ति करने में असमर्थ हैं, जो बात विवेक सम्मत हो उसे ही स्वीकार कर सकते हैं।

उपरोक्त प्रकार के प्रश्न हमारे सामने प्रकारान्तर से प्रायः नित्य ही आते रहते हैं। यह बौद्धिक युग है, इसमें हर बात तर्क की कसौटी पर कसी जाती है और प्रत्यक्षवाद में विश्वास किया जाता है। फिर ईश्वर और ईश्वर भक्ति के सम्बन्ध में भी तार्किक आधारों की अपेक्षा की जाती है तो इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है ऐसे महानुभावों को पराभक्ति के विज्ञान का मनन करना चाहिए, जितना ही अधिक इस सम्बन्ध में विचार किया जायगा उतना ही अधिक संतोष होता जायगा। जो चैतन्य प्राणी हमें दिखाई दे रहे हैं इन सबमें ईश्वर का अंश मौजूद है, अपने पिता के समान पुत्र में भी गुण हैं। परमात्मा के समान आत्मा भी सच्चिदानन्द स्वरूप है, वह न तो शिल्पकार का बनाया हुआ है, न कपोल-कल्पना है और जड़ ही है। ईश्वर की जीती-जागती, चलती-फिरती प्रतिमा हमारे सामने प्रत्यक्ष रूप से घूम रही हैं, इनके अस्तित्व को तर्क और प्रमाणों के साथ जिसका जी आवे परख सकता है और अपनी दिलजमई कर सकता है।

इन प्राणियों के प्रति, भक्त अपनी भक्ति का विस्तार करके नर-नारायण की पूजा कर सकता है। यह पराभक्ति प्रत्यक्ष है, स्पष्ट है, आत्मा को संतोष देने वाली है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रत्युत्तर देती है, आस्तिक और नास्तिक दोनों ही इस लक्ष्य पर अपने-अपने दृष्टिकोण से एकत्र हो सकते हैं, आस्तिक भूत मात्र में ईश्वर को देखता हुआ उसकी पूजा की भावना से लोक सेवा को अपना लक्ष्य बनाता है। नास्तिक समाज की सुव्यवस्था और उन्नति के लिए लोक सेवा को प्रधान कर्तव्य नियत करता है। दोनों ही इस तथ्य से सहमत हैं कि मनुष्य की उच्च आध्यात्मिक भावनाओं का उपयोग लोक सेवा में होना चाहिए, प्राणियों को ऊँचा उठाने और सुखी बनाने की प्रक्रया के लिये अन्तःकरण की सद्भावनाओं को नियोजित किया जाना चाहिए।

प्रेम को जिसके ऊपर आरोपित किया जाता है उसके प्रति आत्मीयता उमड़ आती है, जो अपनी प्रतीत होता है उसके लिए कुछ त्याग करने की, देने की, सेवा की उमंगें उठा करती हैं। जवानी जमा खर्च से या मन ही मन भक्ति के हवाई किले बनाने से उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती, वे भक्त अधूरे हैं जो मन की कल्पनाओं के मोद खिला-खिलाकर ईश्वर का पेट भरना चाहते हैं, या रोली चन्दन अक्षत्, पुष्प, धूप में पैसा दो पैसा खर्च करके मनोवांक्षा पूरी करना चाहते हैं। प्रेम का मार्ग कठिन है, इस पर शूरवीर चल सकते हैं। प्रेमी बनने के लिए हाथ भर का कलेजा होना चाहिए। अपने लिए कुछ न चाहना और दूसरों के लिए सब कुछ दे डालना यह कार्य जिसे सरल प्रतीत होता है, जो इधर दिलचस्पी रखते हैं वे ही भक्ति का कुछ मर्म समझ सकते हैं, अन्य लोग जिनका जीवन स्वार्थ बन्धनों में जकड़ा हुआ है जिन्हें आपापूती से फुरसत नहीं वे भक्ति बेचारी को बेकार अपने साथ काँटों में घसीटते हैं।

विश्व प्रेम का क्रियात्मक रूप अपने पास के और समान स्थिति के लोगों की सेवा करना है। अपने से बहुत दूर रहने वाले और अपने स्वभाव, विचार तथा पहुँच से दूर वालों की सेवा उतनी सरल नहीं है जितनी कि निकटवर्ती और समान वृत्ति के लोगों की सरल है, इसलिए देश, जाति की सेवा विश्व सेवा ही हो जायगी, यह विश्व सेवा परमेश्वर की सर्वोत्तम भक्ति है, इससे बढ़कर अन्य कोई प्रकार हो नहीं सकता। अपनी शारीरिक, मानसिक और भौतिक शक्तियों को पूजा की सामग्री बनाकर उसे अपने प्राणप्रिय देवता के चरणों पर चढ़ाना चाहिए और त्याग तथा बलिदान का ऊँचा आदर्श उपस्थित करके अपने सच्चे प्रेम का परिचय देना चाहिए। यह भक्ति कठिन है क्योंकि इसमें कड़ी कसौटी रखी गई है, जो अपनी शक्ति का जितना भाग परमार्थ में लगावे वह उतना ही बड़ा भक्त कहा जायगा। यहाँ परिणाम की प्रमुखता नहीं वरन् अंश की अधिकता का महत्त्व है। जैसे एक करोड़ रुपया वाला व्यक्ति यदि एक लाख रुपया लोक सेवा में लगाता है तो उसने अपनी शक्ति का सौवां भाग खर्च किया, किन्तु जिसके पास सौ रुपये हैं, उसने पचास लगा दिये तो उसका आधा भाग खर्च हुआ। लौकिक दृष्टि से पचास रुपये की अपेक्षा एक लाख देने वाला बड़ा दानी है पर आध्यात्मिक दृष्टि से निष्ठा और श्रद्धा की सेवा की जाती है। वहाँ सौवां भाग देने की अपेक्षा आधा भाग देने वाला ऊँचे दर्जे का है, उसकी श्रद्धा अधिक प्रशस्त है। अपनी शक्ति की न्यूनतम भाग स्वार्थ में खर्च करना और अधिकतम भाग परमार्थ में व्यय करना यह सच्ची भक्ति की परीक्षा है। इससे नाप कर यह जान लिया जा सकता है कि किस भक्त में सच्ची भक्ति का कितना अंश है।

ईश्वर भक्त अपनी भक्ति भावना को विश्वव्यापी प्रभु के चरणों में अर्पण करता है, अपने प्रेम पुष्पों को अंजलि में भरकर पूजा की वेदी पर बिखेर देता है, वह हर घड़ी यही सोचता है कि मैं अपने प्रेमपात्र की चलती-फिरती प्रतिमाओं की क्या-क्या और किस प्रकार सेवा करूँ? जो छोटी-बड़ी, शारीरिक, मानसिक और भौतिक शक्तियाँ उसके पास होती हैं, उन्हीं को अंजलि में लेकर वह नर-नारायण के सामने उपस्थित होता है। मन्दिर की अव्यवस्था को सुधारता है, गंदगी को साफ करता है, पूजा के पात्रों को मौज कर स्वच्छ बनाता है, गर्द-गुवार को हटाता है, दूसरे शब्दों में यों कहिए कि अपने चारों ओर फैले हुए पाप, दुर्गुण, दुराचार, कुविचार, अन्याय, शोषण, गुण्डापन, अज्ञान आदि आसुरी तत्वों से निरन्तर संघर्ष करता है, उन्हें दूर करने में मार भगाने में जी-जान से जुटता है, यद्यपि बदले में उसे नित्य ही अपशब्द, बुराई, बदनामी, पीड़ा, हानि, अपमान आदि सहन करने पड़ते हैं, तो भी वह अविचल भाव से धैर्य पूर्वक हँसते इन सबको सहन करता है और अपने कर्तव्य पथ पर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ता चलता है। मन्दिर में दूसरा काम उसे भगवान को प्रसन्न करने वाली सामग्री जुटाना होता है। आरती, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन, रोली, अक्षत्, फल, मधुपाक आदि पूजा के उपादान सामने उपस्थित करने पड़ते हैं, दूसरे शब्दों में सेवा, उपकार, दया, सहानुभूति, उदारता, त्याग, नम्रता, ईमानदारी, पवित्रता आदि सद्प्रवृत्तियों द्वारा नर-नारायण को संतुष्ट और प्रसन्न करता है। पापों से लड़ना और पुण्यों को बढ़ाना, यह दोनों कार्य उसे समान रूप से प्रिय होते हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूजा के यह दोनों अंग हैं, रथ दो पहियों से चलता है, एक पहिया न हो वह आगे न चल सकेगा, ईश्वर के मन्दिर में गंदगी हटाकर स्वच्छता लाने की भी जरूरत है और पूजन-सामग्री की भी। भक्त इन दोनों ही कार्यों को समान रूप से कँधे पर उठाता है।

भक्ति में तन्मयता होती है, आवेश होता है, लगन होती है, प्रेम में उन्माद होता है, रस होता है विह्वलता होती है और अपने प्रेमी में घुल जाने की उत्कंठा होती है। अपना आपा भूल जाता है और प्रेमी ही स्मरण रहता है यह चिह्न गौणी भक्ति में भी पाये जाते हैं, कई भक्त कीर्तन करते हुए, हरि चर्चा करते हुए, कथा कहते हुए प्रेम में गद्‌गद् हो जाते हैं, उनकी आँखों से अश्रुपात होने लगता है और तन्मयता में देह की सुधि-बुधि भूल जाते हैं। पराभक्ति में प्रेम के साथ विवेक, दूरदर्शिता, गम्भीरता और मननशीलता भी रहती है, इसलिए उसमें उपरोक्त लक्षणों का रूप कुछ बदल जाता है। पराभक्ति का उपासक परमार्थ में तन्मय हो जाता है, दूसरों को दुःखी देखकर आँसू भर लाता है, अपने स्वार्थ की सुधि-बुधि भूल जाता है अन्य प्राणियों की हित साधना करते हुए वह गद्‌गद् हो जाता है और पुण्य का उत्कर्ष होता देख कर पुलकित हो जाता है, धर्म के लिए कष्ट सहते हुए उसे तीर्थ-यात्रा जैसा, तपस्या जैसा आनन्द आता है। गौणी भक्ति में भक्त को जो आवेश आता है, वह ज्वर की तरह उतर जाता है या ढाक के फूल की तरह निष्फल झड़ जाता है, किन्तु पराभक्ति का आवेश नपुंसक नहीं होता उससे कार्य की उत्पत्ति होती है, उत्तम, लोक कल्याणकारी, संसार का सुख बढ़ाने वाले, पुण्यमय कर्मों की सृष्टि होती है। धर्म को प्रोत्साहन मिलता है। जीवित जगत् को प्रेम दान देने वाला उसकी सुख-शान्ति के लिए कर्म भी करता है और वे कर्म इतने उच्चकोटि के होते हैं कि चिरकाल तक उनके आदर्श का प्रकाश जनता का पथ-प्रदर्शन करता रहता है।

प्रेम मानव प्रकृति का एक अमूल्य तत्व है, यदि इसे जीवन का सार कहें तो अनुचित न होगा, पशुता से जितना ऊँचा उठकर दैवीतत्व के निकट मनुष्य बढ़ता जाता है, उतना ही वह प्रेम का उपासक बनता जाता है। प्रेम और परमात्मा एक ही वस्तु के दो नाम हैं जिनके अन्तःकरणों में प्रेम का अमृत कलश झलकता है समझिए कि वहाँ स्वयं साक्षात् प्रभु विराजमान हैं। भक्ति, ईश्वर को प्राप्त करने का द्वार है, इसमें प्रवेश करने के लिए पाठकों को श्रद्धापूर्वक कदम बढ़ाना चाहिए। ईश्वर की प्रतिज्ञा है, कि जो सच्चे हृदय से मेरी भक्ति करता है उसके योगक्षेम की जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर ले लेता हूँ और शीघ्र ही इस संसार-सागर से पार कर देता हूँ। भक्ति का ऐसा ही माहात्म्य है पर वह भक्ति, सच्ची भक्ति होनी चाहिए।

विहंगावलोकन

भक्ति योग की संक्षिप्त रूप-रेखा पाठक पिछले पृष्ठों में पढ़ चुके हैं। अब उसका क्रियात्मक और व्यावहारिक रूप जानना है। प्राथमिक सीढ़ी ज्ञान योग है, ईश्वर जीव और प्रकृति यह तीन ही जानने योग्य वस्तुएँ इस संसार में हैं, इनको जानने के लिए पूरा-पूरा प्रयत्न करना ही ज्ञानयोग है। सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, कर्त्ता, भर्त्ता, हर्त्ता प्रभु कौन है, कहाँ है; कैसा है, क्या उसका उद्देश्य है और किस प्रकार उसकी कार्य प्रणाली चलती है ? इन प्रश्नों का पूरी गम्भीरता और सावधानी के साथ विवेचन करना चाहिए, केवल जन-श्रुति के आधार पर नहीं वरन् तात्विक मीमांसा के आधार पर, विवेकपूर्वक उसका समाधान करना चाहिए। जिस सरकार के राज्य में रहते हैं उसका ढाँचा और कानून जानने की हर आदमी को जरूरत है, जो शक्ति हमें उत्पन्न करती है, अपने शासन में रखती है और अन्त में नष्ट कर देती है उसके सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है, जिससे प्रतिकूल आचरण के कारण उत्पन्न होने वाले दुःखों से बचकर अनुकूल आचरण का सुख भोग सकें।

हमारा अपना अस्तित्व क्या है? आत्मा का स्वरूप क्या है, उसकी प्रवृत्ति किधर हो रही है, मृत्यु के उपरान्त क्या होता है, स्वर्ग-नरक की व्यवस्था किस प्रकार की है, जीवन किसलिए धारण किया जाता है, मुक्ति क्या है ? सुख का स्रोत कहाँ है ? आदि प्रश्न आत्मा की जानकारी के सम्बन्ध में उठते रहते हैं, इनको समझना और विवेचना करना यह आत्म-ज्ञान है। इसी प्रकार प्रकृति की व्यवस्था समझनी चाहिए, आरोग्य शास्त्र, राजनीति शास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, भूगोल, खगोल, पदार्थ विज्ञान, मनोविज्ञान, यह सब प्रकृति के, संसार के रहस्यों की जानकारी के विज्ञान हैं, इनका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और वर्तमान काल की जो सांसारिक व्यवस्था है और उसमें जो प्रगति हो रही हो उसकी जानकारी खासतौर से रखनी चाहिए। समाचार पत्रों का नित्य पढ़ना संसार की वर्तमान स्थिति से परिचित होने का इस युग में एक अच्छा साधन है। ''ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है'' और गहणा कर्मणा गति तथा ''जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर तात्विक प्रकाश,'' पुस्तकों में हम ईश्वर, जीव और प्रकृति सम्बन्धी तत्व ज्ञान की बहुत कुछ चर्चा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर चुके हैं, अन्य सद्ग्रन्थों से, अनुभवी सत्पुरुष के सत्संग से मनन निदिध्यासन से इन तथ्यों के सम्बन्ध में और अधिक ज्ञान संग्रह करना चाहिए। सरसरी निगाह से पुस्तकें पढ़ जाने या कान से सुन लेने मात्र से काम न चलेगा, वरन् जानकारियों को अन्तःचेतना में बहुत गहरा उतारना होगा। ज्ञान, विश्वास और आचरण को एक पंक्ति में खड़ा करना होगा, तब ही ज्ञान योग की सफलता कही जायगी। जो बात विवेक की कसौटी पर कसने के बाद खरी जँचे उसे सच्चे हृदय से दृढ़तापूर्वक अपना लिया जाय, इसी सत्य साधना पर मनुष्य को प्रेरित करना ज्ञान-योग का उद्देश्य है।

ज्ञान की आधारशिला पर कर्म की प्रवृत्ति होनी चाहिए, आप जो भी काम करें उसके सम्बन्ध में पहले पर्याप्त सोच-विचार, खोज-बीन, तर्क-वितर्क, ढूँढ़-तलाश करनी चाहिए, पहले ज्ञान पीछे कर्म के क्रम का जहाँ ध्यान रखा जाता है, वहाँ भूल होने की सम्भावना बहुत कम रहती है, किसी कार्य का बचपन ज्ञान है और तरुणाई कर्म है। ज्ञान परिपक्व होकर कर्म की प्रेरणा करता है। यों तो लोग रोज ही कुछ न कुछ कर्म करते हैं। पर वह अन्धाधुन्ध हैं, इनका फल उलटा और सीधा दोनों प्रकार का मिलता है। इस अनमेल ताने-बाने में जीव उलझ जाता है और बन्धन में पड़कर भव बाधाएँ सहता रहता है। यदि उद्देश्यपूर्वक विचार और विवेक पूर्वक कर्तव्य भावना से कर्म किया जाय तो यही मामूली काम-काज, जिन्हें हर आदमी आमतौर से करता है। यज्ञ रूप हो सकते हैं और गृहस्थी में ही तपोभूमि की साधना की जा सकती है। स्वार्थ के लिए नहीं कर्तव्य के लिये कर्म करो, ड्यूटी समझकर पवित्र भावना से अपने काम-काज में जुटे रहो। छोटा काम हो तो भी उसे पूरी दिलचस्पी, ईमानदारी, मेहनत और खूबसूरती के साथ करो, अपने कार्य में पूर्णरूपेण व्यस्त हो जाओ, जिससे चित्त में अनावश्यक विक्षेप उत्पन्न न होने पावे, काम को खेल समझकर मनोरंजन की तरह करते रहो, उसका भार मन पर मत पड़ने दो, यदि परिश्रम के अनुसार फल न मिले तो भी उदास या दुःखी मत बनो, फल की, तरह-तरह की आशाओं के महल मत बाँधो वरन् अपने कर्तव्य-पालन के आनन्द में हर घड़ी मस्त रहो।'' यही कर्मयोग का संदेश है। इस संदेश को ठीक तरह हृदयंगम कर लेने से जीवन अत्यन्त ही उत्साह, हर्ष और आनन्द से भर जाता है, प्रसन्नता में असाधारण वृद्धि हो जाती है, क्रोध, झुंझलाहट, चिन्ता, व्यथा, वेदना, शोक, निराशा की दुःखदायी अग्नियों से अनायास ही छुटकारा मिल जाता है।

भक्तियोग अन्तिम अवस्था है। ज्ञान और कर्म से परिपक्व मनोभूमि में से प्रेम की मखमली हरियाली उपज पड़ती है, वह इतनी स्वच्छ और विस्तृत होती है कि स्वार्थों के तुच्छ दायरे में बन्धित रहकर विश्वव्यापी चेतन्य तत्व के साथ, विश्वकर्मा के साथ, परम् आत्मा के साथ घुल-मिल जाती है। यह विकसित प्रेम ईश्वर का ही रूप है, अखिल विश्व में सूक्ष्म रूप से जो दिव्य तत्व व्याप्त हो रहे हैं, मनुष्य जाति ईश्वर के रूप में उन्हीं की उपासना करती हैं, इन दिव्य तत्वों में प्रेम सर्वोपरि है, यह बात निस्संकोच रूप से कही जा सकती है कि जिसके अन्तर में जितना ही निर्मिल प्रेम है, उतना ही उसमें ईश्वर का निवास है। जल से भरा हुआ बादल आकाश से उतर कर भूमि के निकट आ जाता है और अपनी देह को बूँद-बूँद गलाकर प्यासी पृथ्वी के मुँह में टपका देता है, भक्त का, प्रेमी का यही लक्षण है, ऊँची सम्पदायें लेकर वह आकाश में नहीं रहना चाहता वरन् नीचे दर्जे का सादा जीवन पसन्द करता है। छोटे पतित अज्ञान ग्रस्त, भूले-भटकों को छाती से लगाता है और उनके दुःख दूर करने में अपनी शक्तियों को बूँद-बूँद करके निचोड़ देता है। इस पराभक्ति में भक्त को इतना अधिक आत्म-संतोष और परमानन्द प्राप्त होता है जिसकी तुलना और किसी सुख से नहीं हो सकती।

इस पराभक्ति का प्रारम्भ गौणी भक्ति से होता है। उस भक्तवत्सल, प्रेम धाम परमेश्वर को अन्तःकरण में उकसाने और मानसिक चेतना में स्थान देने के लिए बराबर नामस्मरण करना होता है। नाम के साथ उसके गुण का भी ध्यान हो आता है, हाथी शब्द कहने से उस विशालकाय जन्तु के शरीर का ध्यान आ जाता है इसी प्रकार कुत्ता, बिल्ली, महल, नदी, पर्वत आदि शब्दों के उच्चारण के साथ ही उनका रूप, गुण, ध्यान में आ जाता है। शब्द यद्यपि मुख की कुछ पेशियाँ की हलचल से ही उत्पन्न होता है तो भी वह शब्द ध्यान चेतना में एक रूप का भी बोध कराता है। ईश्वर का नाम लेने से उस विश्वव्यापी चेतना का बोध होता है, बराबर नाम लेने से अन्तःकरण और मस्तिष्क में वह उकसाहट बराबर होती है, इस अभ्यास को जारी रखने से वह बारबार उकसाया हुआ भाव पुष्ट और विस्तृत हो जाता है। पत्थर पर रस्सी की घिसावट से गड्ढा पड़ जाता है। इसी प्रकार बार-बार नाम जपने से ईश्वर की मन में स्थापना हो जाती है। भगवान् की मूर्ति का दर्श, स्पर्श, भोग, आरती, धूप, दीप आदि से पूजा-अर्चा करना, कीर्तन करना, हरि चर्चा करना, तीर्थयात्रा, स्नान, ध्यान, व्रत, वन्दन करना यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सब ऐसे ही आरम्भिक प्रयत्न हैं जिनके द्वारा भक्त यह प्रयत्न करता है कि ईश्वर का मेरे अन्तःकरण में निवास हो, यदि उसका प्रयत्न शुद्ध भाव से हुआ है, तो अवश्य ही एक दिन भक्ति भावना जागृत हो जाती है निर्बल एवं व्यापक प्रेम की कली खिल जाती है और पराभक्ति का आनन्द लेने लगता है।

भक्तियोग आध्यात्मिक वृद्धावस्था की साधना है। ज्ञान और कर्म द्वारा पुष्ट हुए वृक्ष पर भक्ति का फल लगता है। वृद्ध पुरुष जो दृष्टिमंद हो जाने के कारण स्वाध्याय नहीं कर सकते, स्मृति नष्ट हो जाने के कारण ज्ञानार्जन नहीं करते, शरीर शिथिल हो जाने के कारण कर्म करने की भी सामर्थ्य नहीं, जो मृत्यु के मुख में एक पाँव लटकाये बैठे हैं, उनके लिए भक्ति में, नाम जप में, ईश्वर के ध्यान में ही सारा समय लगाना चाहिए, जिनका शरीर असक्त है, उन्हें ज्ञान, कर्म की सीढ़ियों पर चढ़कर पराभक्ति की उपासना करनी चाहिये। यही सनातन विधान है।

आलस्य का, अकर्मण्यता का, कर्म त्याग का मानव जीवन में कोई स्थान नहीं है। ईश्वरीय नियम के अनुसार सृष्टि की प्रत्येक वस्तु क्रियाशील है, गतिहीन कोई भी पदार्थ या प्राणी नहीं है। ग्रह,नक्षत्र, वन, प्रकाश, शब्द आदि की गति निरन्तर चालू रहती है। सृष्टि का प्रत्येक परमाणु अपनी धुरी पर निरन्तर घूमता है, आगे की ओर चलता रहता है। गीता में भगवान् ने कहा है कि "किसी प्राणी के लिये बिना कर्म किये जीवित रहना संभव नहीं। मैं स्वयं भी सदैव कर्मरत् रहता हूँ, यदि ऐसा न करूँ तो लोक व्यवहार नष्ट हो जावे। जीवित प्राणी निःचेष्ट नहीं रह सकता।

कर्म त्याग करके संसार छोड़ने की विडम्बना व्यर्थ है। केवल कर्मफल का त्याग ही सम्भव है। भूख, प्यास, निद्रा, सर्दी, गर्मी, मल-विसर्जन, आत्मरक्षा, जिज्ञासा, महत्त्वाकांक्षा आदि कितनी ही स्वाभाविक आवश्यकताएँ ऐसी हैं जो बलात् प्रेरणा करके मनुष्य को कर्म में लगा देती हैं। इससे कोई भी बच नहीं सकता फिर यह कहना कि हमने कर्म का त्याग कर दिया है हमारे लिये कोई कर्म करना शेष नहीं रहा, हम संसार से अलग हो गये एक उपहासास्पद एवं भ्रमपूर्ण धारणा है।

मानव जीवन कर्म करने के लिये है। हमें निरन्तर क्रियाशील रहना चाहिए। यह क्रियाशीलता जब ज्ञान, कर्म और भक्ति की त्रिवेणी बन जाती है, तो उसके तट पर रहने वाला जीव, जीवन मुक्त हो जाता है। बालकपन, ज्ञान योग के लिए, यौवन कर्मयोग के लिए, बुढ़ापा भक्तियोग की साधना के लिए विशेष रूप से उपयुक्त अवसर है तो भी तीनों आपस में घनिष्टतापूर्वक मिले हुए होने के कारण हर समय तीनों की साधना होती रहती है।

जिन दिनों ज्ञान सम्पादन किया जा रहा है, उन दिनों सारा समय केवल मात्र पढ़ने या सुनने में ही नहीं लग सकता है। कर्तव्य कर्मों को भी करना पड़ता है और उदार हृदय से सहवासियों के साथ प्रेम एवं सेवामय परमार्थ भी करना पड़ता है। इसी प्रकार यौवन में विशेष रूप से कर्मरत रहते हुए भी ज्ञान सम्पादन एवं प्रेम-प्रदर्शन को छोड़ा नहीं जा सकता। हर छोटे-बड़े कार्य में तीनों के समन्वय की आवश्यकता होती है। मात्रा की न्यूनाधिकता का अन्तर हो सकता है पर प्रत्येक अवस्था में, प्रत्येक कार्य में ज्ञान, कर्म और भक्ति का सम्मिश्रण रहना चाहिए तभी कोई क्रिया आनन्ददायक फल देने वाली और सच्ची सफलता देने वाली बन सकती है। योग साधन के लिए कपड़े रंगने, जटा रखाने, कमण्डल, चिमटा या मृगछाला धारण करने की जरूरत नहीं है आप अपने मनोभावों का परिवर्तन कीजिए। दृष्टिकोण को बदल डालिए। घर में रहकर भी योग-साधना हो सकती है और आत्मा को परमात्मा बनाने का जीवन लक्ष्य पूरा हो सकता है। ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग हमारे नित्य के जीवन में हर घड़ी व्यवहृत होने वाली साधनाएँ हैं, इन्हें अपने विचार और कार्यों में ओत-प्रोत कर लीजिए। आपका जीवन तप रूप बन जायगा और आप तपस्वियों को प्राप्त होने वाले महान् फल प्राप्त करेंगे।

तत्व ज्ञान ही नहीं भक्ति भावना भी

मनुष्य में मस्तिष्क है और हृदय भी। बुद्धि मस्तिष्क की उपज है और भाव-संवेदनाएँ हृदय की। दोनों की अपनी महत्ता एवं उपयोगिता है। इन दोनों में से कोई भी एक कार्य करना बन्द कर दे तो सारी जीवन प्रणाली अस्त-व्यस्त हो जाती है। अध्यात्म क्षेत्र की दो धाराएँ प्रमुख हैं, ज्ञान और भक्ति। सामान्यतया दोनों में मतभेद समझा और देखा जाता है। प्रचलित मान्यता है कि ये दोनों ही धाराएँ परस्पर विरोधी हैं। दोनों में समन्वय नहीं है। ज्ञान मार्गी दर्शन में विश्वास करता है, तत्वदर्शन ही उसका लक्ष्य होता है। भक्ति मार्ग का अनुयायी भक्ति भावना में अपने को तन्मय रखना चाहता है, दर्शन के रूपरेखा में उसे रस नहीं आता। दर्शन की बौद्धिक गंवेषणाओं में वह अपना समय और श्रम नहीं गँवाता। भाव समुद्र में ही डूबे रहना उसे अच्छा लगता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ज्ञान मार्गी तर्क एवं तथ्यों के आधार पर सत्य का अन्वेषण करता तथा प्राप्त तथ्यों के आधार पर सत्य को स्वीकारता है। सृष्टि के रहस्यों को समझने के लिए वह बुद्धि को परिमार्जित करता और चिन्तन को प्रखर बनाता है। भावनाओं के उफान में बहना उसे विवेक सम्मत नहीं लगता, हृदय के भाव-उद्‌गारों की तुलना में वह बृद्धि को अधिक महत्त्व देता है और चिन्तन, मनन द्वारा आत्म-तत्व, परमात्व-तत्व को जानने का प्रयास करता है।

भक्ति मार्ग का साधक भाव-संवेदनाओं को इष्ट प्राप्ति का सशक्त माध्यम मानता है। उपासना, प्रार्थना, अभ्यर्थना के सम्पूर्ण उपचारों का प्रयोग भाव-संवेदनाओं के विकास में करता है। तर्क एवं बुद्धि को साधना मार्ग का, सत्य प्राप्ति का अवरोध मानने के कारण वह उनका अवलम्बन नहीं चाहता। फलस्वरूप उसकी समस्त चेष्टाएँ भाव समुद्र में इष्ट से भावानात्मक तादात्म्य स्थापित करने में नियोजित रहती हैं।

यह दोनों ही मान्यताएँ एकांगी, अपूर्ण एवं अतिवादी हैं। शरीर में मस्तिष्क है और हृदय भी, बुद्धि भी है और भाव-संवेदनाएँ भी। दोनों परस्पर विरोधी नहीं पूरक हैं। बुद्धि अपना कार्य करती है और हृदय अपना। महत्ता एवं उपयोगिता विचारों की है और भावनाओं की भी। कार्य अलग-अलग दीखते हुए भी दोनों एक-दूसरे से अन्योन्याश्रित रूप से जुड़े हुए हैं। चाहते हुए भी इन दोनों को अलग नहीं किया जा सकता, हृदय की भाव-संवेदनाएँ ही अपनी कोमलता द्वारा विचारों को अभियोजित करती हैं। बुद्धि को प्रज्ञा बनाती हैं। विचार कितने भी सशक्त एवं प्रभावशाली क्यों न हो जब तक उनमें संवेदनशीलता न जुड़ी हो कल्याणकारी नहीं हो सकते। शून्य-भावनाओं से रहित महान् ज्ञानी तत्वदर्शी किस काम का ? उसका ज्ञान तो पुस्तकों, ग्रन्थों एवं शास्त्रों जैसा नीरस एवं निष्प्राण होगा। एकांगी भावनाएँ भी उतनी ही उपयोगी नहीं सिद्ध होतीं। विचारों से शून्य भावनाओं के केन्द्र हृदय एवं विचारों के केन्द्र मस्तिष्क को परमात्मा एक शरीर में क्यों सँजोता? यह इस बात का प्रमाण है कि भाव-संवेदनाओं के साथ विचारों की भी उतनी ही उपयोगिता एवं महत्ता है। आवश्यकता दोनों में सन्तुलन और समन्वय की है।

बहुत दिनों से ज्ञान एवं भक्ति की अविच्छिन्न धाराओं को एक-दूसरे का विरोधी माना जाता रहा है। यह अध्यात्म क्षेत्र की बहुत बड़ी कमी रही है कि शरीर के दो पैरों, दो आँखों के रूप में परस्पर जुड़े दो आध्यात्मिक घटकों को अलग-अलग समझा गया। जबकि दोनों अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। दोनों को अलग कर देने से तो समस्या उठ खड़ी होती है। अध्यात्म मार्ग की महान उपलब्धियों से वंचित रहना पड़ता है। समुचित लाभ तो दोनों ही अनिवार्य पक्षों को समान रूप में अपनाने से ही मिल पाता है।

इस तथ्य को जानने के लिए इतिहास का पर्यवेक्षण, अध्ययन करना होगा। संसार भर में जितने भी महान अध्यात्मवादी महापुरुष, सन्त, महात्मा, ऋषि हुए हैं वे इन दोनों ही विशेषताओं से पूर्णतया भरे-पूरे थे। उनके हृदयों में जहाँ भाव-संवेदनाओं की करुण धाराएँ बहती थीं वहीं विवेक से ज्ञान का प्रवाह फूटता था। ज्ञान एवं भक्ति से बुद्धि और भावना सम्पदा से वे समस्त विश्व को सिक्त एवं तृप्त करते थे। परस्पर दोनों धाराएँ किस प्रकार मिलकर समग्र अध्यात्म स्वरूप बन सकती हैं, इसके लिए विश्व के महानतम अध्यात्मवादियों पर दृष्टिपात करना होगा।

दर्शन के मूर्धन्य तत्ववेत्ता के रूप में आद्य शंकराचार्य का नाम प्रतिष्ठित है। उनका वेदान्त दर्शन अद्वितीय एवं विश्व के सभी दर्शनों में समग्र एवं श्रेष्ठ है। ब्रह्म-विद्या का इतना सशक्त प्रतिपादन अन्यत्र दुर्लभ है। दर्शन के मूर्धन्य ज्ञाता होते हुए भी उनका हृदय उद्‌दात्त भाव-संवेदनाओं से लबालव भरा था। उसमें से भक्ति की तरंगें उद्वेलित होती थीं। सौन्दर्य लहरी ग्रन्थ का सृजन इस भक्ति भाव के प्रस्फुटन का ही परिचायक है। जहाँ उन्होंने शुष्क नीरस पर ज्ञान के अविरल स्रोत वेदान्त का प्रचार किया वहीं भक्ति की अविच्छिन्न धारा को भी साथ में जोड़े रखा। फलतः भक्ति का अवलम्बन पाकर ही वेदान्त सरस एवं ग्राह्य बन सका।

विश्व भर में वेदान्त की पताका फहराने वाले स्वामी विवेकानन्द का जीवन भक्ति रस से सिक्त था। उनकी ज्ञान प्रखरता ने भारतीय संस्कृति को विश्व भर में प्रतिष्ठापित किया। इसके पूर्व विदेशों में भारत के प्रति मान्यता दूसरी ही थी। इसे मात्र अन्ध-विश्वासों में जकड़ा, धर्म के नाम पर मूर्ति पूजक देश के रूप में समझा जाता था। आदिकाल से मनुष्य जाति को सिक्त करते चले आ रहे भारतीय दर्शन का स्पष्ट स्वरूप विदेशों में रखा, तत्ववेत्ता- दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान के रूप में यह उनका एक स्वरूप था। दूसरा पक्ष भी था माँ काली के समक्ष एक अनन्य भक्ति का। दूसरा पक्ष भी था काली की प्रतिमा में अपने इष्ट का दर्शन करने वाले, अपनी सत्ता को ही भूल जाने वाले विवेकानन्द को कौन भक्ति मार्गी नहीं कहेगा। एक ओर जहाँ उन्होंने भारतीय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

तत्वज्ञान को विश्व के सम्मुख रखा, वहीं दूसरी ओर भक्ति की महत्ता एवं उपयोगिता का भी प्रतिपादन किया।

भक्ति रस के अभाव में दर्शन एकांगी नीरस एवं शुष्क बन जाता है, इस तथ्य से अवगत विवेकानन्द ने एक बार कहा था कि दर्शन की शुष्कता एवं नीरसता को भक्ति रस से उठने वाली भाव तरंगें ही दूर कर सकती हैं। मानवी अन्तराल को छू सकने में भाव-संवेदनाएँ ही समर्थ हो सकती हैं। अतएव दर्शन के साथ भक्ति-भावना को भी विकसित करना उतना ही आवश्यक है। साधना पथ की महान उपलब्धियाँ इन दोनों के समन्वय पर ही अवलम्बित हैं।'' विवेकानन्द के ये उद्‌गार परस्पर पूरक तथ्यों का ही प्रतिपादन करते हैं।

सन्त इमर्सन तत्व-वेत्ता थे। उनके अगाध ज्ञान ने असंख्यों को प्रेरणा एवं प्रकाश दिया। उनकी उक्तियों के अध्ययन करने पर गहन दार्शनिक विचारों का समावेश मिलता है। तत्ववेत्ता दार्शनिक होते हुए भी उनका जीवन क्रम भक्ति रस की धाराओं में सदा डूबा रहता था। वे कहा करते थे कि 'परमात्मा को वही प्राप्त कर सकते हैं जो हृदय के पवित्र हैं। करुण हृदय में ही परमात्मा अवतरित होते हैं।' प्रार्थना, अभ्यर्थना का उनके अनिवार्य दैनिक कृत्यों में समावेश था।

प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात का अधिकांश समय लोगों के दुःख-दर्दों के निवारण में लगता था। वे कहते थे मानव सेवा ही मेरी भक्ति है।'' दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान होते हुए भक्ति को उन्होंने अपने जीवन में सर्वोपरि स्थान दिया। मानव सेवा प्रकारान्तर में भक्ति भावना का ही प्रतीक था।

'कन्फ्यूशियस' न केवल तत्वज्ञानी थे वरन् ईश्वर भक्ति में उसकी प्रगाढ़ आस्था थी। प्रकृति को वह परमात्मा का स्वरूप मानते थे। अनुपम सौन्दर्य के अवलोकन में उनका अधिकांश समय व्यतीत होता था। वह कहते थे देखो ! प्रकृति के भीतर से परमात्मा झाँक रहा है।'' प्रकृति में भावनाओं द्वारा परमात्मा का दर्शन करना भक्ति-भावना की ही पराकाष्ठा है। कन्फ्यूशियस के जीवन क्रम में ज्ञान एवं भक्ति का अद्‌भुत समन्वय मिलता है।

सेन्ट आगस्टाइन कहा करते थे कि परमात्मा को बुद्धि द्वारा नहीं पवित्र हृदय द्वारा पाया जा सकता है। इसलिए बुद्धि का प्रयोग भावनाओं को पवित्र बनाने में करो। परमात्मा तुम्हारे हृदय में अवतरित होगा।''

फ्रेंच सन्त ज्या पालसार्त्र प्रकाण्ड विद्वान थे। उनकी दार्शनिक विचारधारा ने बौद्धिक वर्ग को विशेष प्रभावित किया। तत्व ज्ञान के मर्मज्ञ होते हुए भी उनका हृदय भक्ति भावना से अभिपूरित था। प्रार्थना में उनकी अगाध श्रद्धा थी। प्रार्थना को ईश्वर प्राप्ति एवं आत्म-परिष्कार का सशक्त साधन मानते थे।

ये उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि ज्ञान को भक्ति से अलग नहीं किया जा सकता। तत्वदर्शन को भक्तिभाव का अवलम्बन लेना होगा। इसे मध्यकाल का अभिशाप समझा जाना चाहिए कि अविच्छिन्न रूप से जुड़ी अविरल रूप में बहती दोनों धाराओं को दो अलग पथों पर प्रवाहित करने का प्रयास किया गया। फलतः दर्शन मात्र वैचारिक उड़ान बनकर रह गया। भक्ति ने तर्कों की तथ्यों की उपेक्षा की। जिसके कारण उसमें भी अन्धविश्वास एवं पाखण्डों का समावेश हुआ। दोनों ही क्षेत्रों में विद्यमान इन कमियों को वर्तमान में सर्वत्र देखा जा सकता है। दार्शनिक पूरब का हो अथवा पश्चिम का। उनके तात्विक विचारों में तर्क एवं तथ्यों का समावेश तो है पर मनुष्य के अन्तराल में पहुँचकर हृदय के मर्म बिन्दुओं को छूने की उनमें क्षमता नहीं। विश्व भर में दार्शनिक विचारों की कमी नहीं है। तत्ववेत्ता विचारक भी एक से बढ़कर एक विद्यमान हैं। पर उनके विचार मात्र बौद्धिक धरातल को ही स्पर्श कर पाते हैं। हृदय में उतरकर मनुष्य को श्रेष्ठता की ओर उछाल देने की सामर्थ्य उनमें नहीं है। यह दर्शन की, विचारों की शुष्कता का ही परिचायक है। एकांगी दर्शन बुद्धि को सन्तुष्ट तो कर सकता है पर अन्तःकरण को तृप्त नहीं कर सकता। इसके लिए भक्ति रस की धाराओं में ही अवगाहन करना होगा। अन्तरात्मा की तृप्ति एवं तुष्टि तभी सम्भव है।

अहम् 'ब्रह्मास्मि', सोऽहम, सच्चिदानन्दोहम्, तत्वमसि के तत्वज्ञान को दार्शनिक विचारधारा को सैद्धान्तिक स्तर पर स्वीकार कर लेना सरल है। कितने तथाकथित तत्वज्ञानी अपने लम्बे-चौड़े उद्‌बोधन में इनका प्रयोग करते हुए देखे जा सकते हैं, पर व्यावहारिक जीवन में तत्वज्ञान के समावेश से जिस महानता एवं श्रेष्ठता का दिग्दर्शन होना चाहिए उसका सर्वथा अभाव ही दीखता है। यह इस बात का प्रमाण है कि हृदय में उदात्त भाव-संवेदनाओं का अभाव है, जिसके कारण उनका व्यावहारिक जीवन भावनाओं की दृष्टि से शून्य, कठोर, शुष्क एवं नीरस बना रहता है।

एकांगी तत्व-दर्शन वैचारिक, तार्किक एवं प्रतिपादनों की दृष्टि से सशक्त होते हुए भी भटकाव का कारण बनता है। भारतीय नास्तिकतावादी दार्शनिकों में चार्वाक का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मूर्धन्य स्थान है। उन्होंने 'ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्' की उपयोगितावाद की जो विचारधारा प्रस्तुत की उसने समस्त नैतिक आधारों को डगमगा दिया। नीति-अनीति जैसे भी बने अपना स्वार्थ साधो, का सिद्धान्त व्यक्ति एवं समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध नहीं हो सकता। विचारशील दार्शनिक होते हुए भी चार्वाक को जनश्रद्धा नहीं प्राप्त हो सकी। न ही उसका दर्शन मनुष्य के लिए उपयोगी माना गया। दार्शनिक विचारधारा मात्र बुद्धि पर आधारित हो उसमें हृदय से निकली संवेदनाओं का पुट न हो तो कितनी हानिकारक सिद्ध हो सकती हैं, इस तथ्य को हृदयंगम कराने के लिए ही भारतीय मनीषियों ने चार्वाक के दर्शन को भी संस्कृति में स्थान दिया।

भक्ति-भावना, हृदय की संवेदनशीलता के अभाव में मनुष्य का जीवन कितना नीरस, कठोर, अहमन्यता से भरा हो सकता है, यह नीत्से के जीवन दर्शन को पढ़ने से मालूम पड़ता है। उसकी निरंकुश वैचारिक उड़ान ने परमात्मा को दफनाने तक का प्रयत्न किया। भाव नेत्रों द्वारा नीत्से ने परमात्मा को व्यक्ति न मानकर सृष्टि की विशालता, प्रकृति की सौन्दर्यता, सुव्यवस्था में कार्य करती एक शक्ति के रूप में किया होता तो उसकी विचारधारा भी कल्याकारी सिद्ध होती। पर ऐसा न हो सका। निरंकुश बुद्धि ने भावसंवेदनाओं को अनुपयोगी ठहराया। फलतः नीत्से की विचारधारा मात्र बौद्धिक व्यायाम का साधन बनकर रह गई। मनुष्य को कल्याणकारी पथ दिखा सके इसका उनके दर्शन में सर्वथा अभाव है।

जान स्टुअर्ट मिल का अस्तित्ववादी दर्शन भौतिकवादी दृष्टि से उपयोगी है। प्रत्यक्षवाद का सिद्धान्त विचारों की दृष्टि से सशक्त है। पर इस दर्शन ने मनुष्य को नैतिक सिद्धान्तों से और भी अधिक दूर हटाया है। यह जीवन ही सब कुछ है। अपना अस्तित्वि भी भौतिक शरीर के साथ समाप्त हो जाता है। परमात्मा एक दरवान है। मनुष्य ही सर्वोपरि सत्ता है। यह सिद्धान्त मान लेने पर न परमार्थ की उपयोगिता समझ में आती है और न ही नीति, सदाचार की। खाओ-पीओ और मौज करो अदृश्य परमात्म तत्व पर ध्यान न दो, यह विचारधारा हर दृष्टि से घातक है। इससे मानवी संवेदनाएँ बुरी तरह रौंदी जाती हैं।

फ्राड के दर्शन ने तो विकट समस्याएँ खड़ी कर दीं। सर्वसमर्थ मानवी चेतना को सेक्स का गुलाम घोषित कर संयम, सदाचार के नैतिक आधारों को लड़खड़ा दिया। फलतः मानसिक पराधीनता की एक नयी विचारधारा फैल गई। जिसने मनुष्य के विकास की सम्भावनाओं को ही अवरुद्ध कर दिया।

दर्शन उपयोगी है पर भाव संवेदना के अभाव में मनुष्य के मर्म स्थल को नहीं छू सकता। उलटे वह दिग्भ्रान्त ही कर सकता है। उपरोक्त प्रमाण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। भक्ति की विह्वलता में विचारों में डूबे रहने से भी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। विवेक को ताक पर रख देने वाले अन्ध-विश्वास में जकड़े आज के लाखों भक्तों का निरुद्देश्य जीवन क्रम इस सत्य का प्रत्यक्ष उदाहरण है। विवेक युक्त दार्शनिक विचारों का अवलम्बन लिया होता तो भक्ति का वास्तविक लक्ष्य पूरा हो जाता।

अध्यात्म क्षेत्र की इन कमियों से स्वामी विवेकानन्द परिचित थे। अतएव अध्यात्म मार्ग के पथिकों को आगाह करते हुए कहा कि इस युग के लिए आचार्य शंकर जैसे मस्तिष्क और भगवान् बुद्ध जैसे हृदय की आवश्यकता है, जिसने इन दोनों को प्राप्त कर लिया वही अध्यात्मवादी है। अध्यात्म क्षेत्र में प्रगति करने एवं महान उपलब्धियों से लाभान्वित होने के लिए दोनों का ही अवलम्बन लेना होगा। तत्व-ज्ञान एवं भक्ति रस की दोनों अविच्छिन्न धाराओं को साथ लेकर चलना होगा। ईश्वरीय दिव्य-अनुदानों का वास्तविक आनन्द तभी उठाया जा सकता है।

भाव-संवेदना की चमत्कारी शक्ति

मानवी काया में अनेकों अंग-अवयव हैं। वे सभी अपनी हलचलों से शरीर यात्रा के साधन भर जुटाते और जड़-तत्वों से विनिर्मित समझे जाते हैं। हृदय ही शरीर का एक ऐसा अवयव है जिसकी स्थिति सर्वथा भिन्न एवं उच्चस्तरीय है। इसका सम्बन्ध मात्र रक्ताभिसंचरण से ही नहीं वरन् करुणा की भाव संवेदनाओं के साथ अध्यात्म विभूतियों के साथ भी जुड़ा हुआ है। रक्त फेंकने वाली यह थैली यों तो सभी के सीने में विद्यमान है, पर जिस अर्थ में हृदय का उल्लेख होता है, वह करुणा और मैत्री की भाव-संवेदना ही है। इसके अभाव में मनुष्य को हृदयहीन कहा और आततायी माना जाता है। देवताओं का वैभव जिस आधार पर बना और बढ़ा है उसे सहृदयता ही कह सकते हैं। इस विश्व में जो कुछ अभिनन्दनीय और अनुकरणीय है, उस सबका उद्भव सहृदयता की पृष्ठभूमि पर हो संभव हुआ है।

अध्यात्मवेत्ताओं ने चेतना की उच्चस्तरीय विभूतियों में से मस्तिष्क को बुद्धि का और हृदय को भावना का केन्द्र माना है। जड़ शरीर के साथ चेतना का समीकरण करने वाले इन दो अवयवों का अपना विशेष स्थान है। इसलिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मिक प्रगति के प्रयोजनों में समय-समय पर इनका विशेष उपयोग होता रहता है। ध्यान-धारणा की साधनायें प्रायः इन्हीं दो केन्द्रों के इर्द-गिर्द घूमती रहती हैं।

इतने पर भी सूक्ष्म संस्थानों में हृदय का महत्व सर्वोपरि है। सामान्य वैज्ञानिक विश्लेषण करने पर तो यह आकुंचन-प्रकुंचन या 'लप-डप' करता हुआ रक्त से भरी थैली मात्र जान पड़ता है, जो शरीर के विभिन्न अंगों को रक्त भेजता, अशुद्ध रक्त को एकत्रित एवं परिशोधित करता मात्र प्रतीत होता है। जीवविज्ञानी इसी सीमा तक हृदय का महत्त्व स्वीकार करते रहे हैं और कहते रहे हैं कि यह संस्थान शरीर में रक्त संचार की भूमिका सम्पन्न करता है। पर यह तो इसका स्थूल पक्ष है। आध्यात्मिक प्रतिपादनों में इस संस्थान को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। योगियों ने इस अंग को चेतना का केन्द्र माना है। गीताकार ने इसे ही आत्मा का निवास स्थल बताया है। तीन शरीरों से बनी मानवी काया में सबसे महत्त्वपूर्ण शरीर 'कारण शरीर' को बताया गया है। इसे जाग्रत एवं विकसित कर लेने पर मनुष्य ऋद्धि-सिद्धियों का स्वामी बन जाता है। अध्यात्मवेत्ताओं द्वारा इस क्षेत्र को विकसित करने के लिए अत्यधिक जोर दिया गया है जो अकारण नहीं है। इस आग्रह के पीछे ठोस वैज्ञानिक आधार हैं जिन्हें समझा और उनका लाभ उठाया जा सके तो मनुष्य का व्यक्तित्व एवं उसकी सामर्थ्य कई गुना अधिक प्रखर हो सकती है।

धड़कते हृदय एवं उससे निकलने वाली ध्वनि तरंगों में भावसंवेदनाओं की आत्मीयता की सघनता हो तो उसका चमत्कारी प्रभाव, परिणाम दिखायी पड़ता है। दूसरों को प्रभावित करने, अनुकूल बनाने तथा श्रेष्ठ मार्ग पर बढ़ने के लिए प्रेरित करने में भाव-संवेदनाओं की ही प्रमुख भूमिका होती है। ऋषि-मनीषियों, सन्त-महात्माओं, महापुरुषों में यह विशेषता देखने को मिलती है कि वे अन्तःकरण की महानता द्वारा ही दूसरों को अनुवर्ती बनाते हैं। अन्यों को श्रेष्ठ जीवन जीने, परमार्थ प्रयोजनों में जुटने को बाध्य करते हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में हृदय की महत्ता, उसमें उठने वाली भाव-संवेदनाओं की उपयोगिता को बहुत पहले से ही स्वीकार किया जाता रहा है।

इस तथ्य को अब वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा भी मान्यता मिल रही है। सामान्यतया मातायें नवजात शिशुओं को अपने बायें वक्षस्थल से चिपकाये रहती हैं। इसका कारण दाहिने हाथ का कामों से व्यस्त रहना माना जा सकता है, पर वास्तविक कारण यह नहीं है। सर्वेक्षणकर्त्ता वैज्ञानिकों का कहना हैं कि बायें हाथ से काम करने वाली महिलायें भी अपने शिशुओं को बायीं गोद में ही लिये रहती हैं। पुरातत्व संग्रहालयों में संकलित मूर्तियों, प्राचीन तैल चित्रों में उन चित्रों, कलाकृतियों का अध्ययन किया गया जिनमें नवजात शिशु को माँ के साथ चित्रित किया गया है। निष्कर्षों में पाया गया कि अस्सी प्रतिशत महिलाएँ अपने शिशुओं को बायें सीने से चिपकाये रहती हैं। इसे चित्रकारी की परम्परागत विशेषता कहकर नहीं टाला जा सकता।

इस सन्दर्भ में कार्नेल विश्वविद्यालय, अमेरिका के मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने नये तथ्यों का रहस्योद्घाटन किया है। सुप्रसिद्ध मानवशास्त्री डॉ० ली० साल्क ने अपने अनुसंधान निष्कर्ष में बताया है कि माताओं द्वारा अपने शिशुओं को बायीं ओर चिपकाये रहने के विशेष कारण हैं। हृदय बायीं ओर अवस्थित होता है। जाने-अनजाने माँ अपने बच्चे को उसका अधिक से अधिक सामीप्य देना चाहती है। मातृहृदय की धड़कन के साथ भाव-संवेदनाएँ भी तरंगित होती और उभरती रहती हैं। उनके आदान-प्रदान से वे स्वयं तो संतोष की अनुभूति करती ही हैं, बच्चे के ऊपर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है। हृदय की ध्वनि तरंगों को सुनकर बच्चा एक अनिर्वचनीय आनन्द में डूबा रहता है। इस सम्बन्ध में डॉ० डिस्पाण्ड मॉरिस ने महत्वपूर्ण खोजें की हैं। अपनी अनुसंधानपूर्णाकृति 'द इन्टिमेट बिहेवियर एण्ड द नेकेड एप' में उनने कहा है कि हृदय की ध्वनि ही एकमात्र वह शाश्वत ध्वनि है जिसे शिशु गर्भावस्था में सुनता है। माँ के गर्भ से बाह्य संसार में आने पर वह विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ सुनकर परेशान रहता है और पूर्व परिचित ध्वनि की आस लगाये रहता है। माँ जब उसे गोदी में लेती है तो उसे सुखद अनुभूति होती है। देखा गया है कि रोते हुए बच्चों को सीने से चिपकाते ही वे चुप हो गये, माँ के धड़कते हुए संवेदनशील हृदय की ही यह प्रतिक्रिया है जिसकी सुखद ध्वनि तरंगों को सुनते ही बच्चे रोना बन्द कर देते हैं।

इस तथ्य को परीक्षण की कसौटी पर कसने के लिए अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ० ली० साल्क ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर कुछ अन्य प्रयोग किये, जिसके आश्चर्यजनक परिणाम निकले। यह परिणाम मातृहृदय के साथ जुड़ी संवेदनशीलता की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं। वैज्ञानिकों ने इस प्रयोग में जब मातृहृदय की धड़कन की ध्वनि को टेप करके रोते हुए नवजात शिशुओं को सुनाया तो उन्होंने रोना बन्द कर दिया। उनके मुख मण्डल पर शान्ति एवं प्रसन्नता के भाव उभरने लगे। इससे निष्कर्ष निकाला गया कि माताओं के धड़कते हृदय के साथ उनकी सुकोमल वात्सल्य भावनायें भी जुड़ी रहती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। इस ध्वनि से पूर्व परिचित होने के कारण शिशु सहज ही आकर्षित हो जाते हैं। ध्वनि तरंगों में घुली भाव-संवेदनाएँ बच्चे के हृदय को उद्वेलित करतीं और सुखद प्रभाव डालती हैं।

यह तो प्रकृति प्रदत्त मातृहृदय के साथ जुड़ी भाव-संवेदनाओं का सामान्य पक्ष रहा जिसका लाभ बच्चे सहज ही उठाते रहते हैं। असामान्य पक्ष की सामर्थ्य एवं संभावनाएँ अनन्त हैं, कारण शरीर में विद्यमान भावसंवेदनाओं को- आत्मीयता को उभारा, उछाला जा सके, तो उससे न केवल मनुष्य जाति को एकता, स्नेह, सौहार्द के सूत्र में बाँधा जा सकता है, वरन् जीव-जन्तुओं, पशु-पक्षियों एवं पेड़-पौधों को भी वांछित दिशा में मोड़ा-मरोड़ा तथा वशवर्ती बनाया जा सकता है।

कैलीफोर्निया के विलक्षण संत लूथर बरबैक अपनी भाव साधना में इतने सिद्धहस्त हो गये थे कि प्रकृति के कण-कण से वे प्यार करने लगे और प्यार बाँटने लगे। उनकी सहृदयता से प्रभावित होकर वनस्पतियों को भी अपने गुण, कर्म, स्वभाव में परिवर्तन लाने को मजबूर होना पड़ा। उनके बगीचे में जो भी वृक्ष-वनस्पति हैं, उनसे वे पुत्रवत् आत्मीयता रखते हैं। इससे उनके बगीचे में काँटे रहित गुलाब उगते हैं और दिन में कुमुदिनी खिलती है। अखरोट के वृक्ष जो ३२ वर्ष में फल देने योग्य होते हैं, १७ वर्ष में ही फलने-फूलने लगते हैं। यह सब भावनाओं का आत्मीयता का ही चमत्कार है।

इस दृष्टि से शरीर के अन्य अंगों की तुलना में हृदय का महत्त्व कहीं अधिक है। सामान्य बोलचाल के प्रसंगों में सबसे प्रिय वस्तु व्यक्ति का सम्बन्ध हृदय से जोड़ने के पीछे यही कारण है। प्रार्थना, उपासना, साधना में भावनाओं का महत्त्व प्रतिपादित करने, उन्हें विकसित करने पर जोर देने के पीछे यही मनोवैज्ञानिक आधार है कि परमात्मा द्वारा दिये गये भावसूत्रों में ही मनुष्य को बाँधा जा सकता है। भाव-संवेदनाओं से भरपूर व्यक्ति असंख्यों को अपना बना लेते हैं और सहयोग करने के लिए विवश कर देते हैं। वस्तुतः यह भावनाओं का ही खेल है। मनुष्य को एकता के सूत्र में बाँधने के अन्य प्रयत्नों की सफलता तब तक संदिग्ध ही बनी रहेगी जब तक कि भाव-संवेदनाओं की सहृदयता को विकसित करने की उपेक्षा होती रहेगी। मनुष्य जीवन का सौभाग्य और आनन्द सहृदयता-आत्मीयता के सहारे ही उपलब्ध होता है।

प्रेम-भक्ति का विकास और विस्तार

आज भी जिसने एक कड़े काठ को काटकर छेद डाला था, वह भ्रमर सायंकाल एक कमल के फूल पर जा बैठा। कमल के सौन्दर्य और सुवास में भ्रमर का मन कुछ ऐसा विभोर हुआ कि रात हो गई, फूल की बिखरी हुई पंखुड़ियाँ सिमटकर कली के आकार में आ गईं। सौंरा भीतर ही बन्द होकर रह गया।

रात भर प्रतीक्षा की, भ्रमर चाहता तो उस कली को कई ओर से छेदकर रात भर में कई बार बाहर आता और फिर अन्दर चला जाता। पर वह तो स्वयं भी कली की ही एक पंखुड़ी हो गया प्रातःकाल सूर्य की किरणें उस पुष्प पर पड़ीं, पंखुड़ियाँ फिर खिलीं और वह भौंरा वैसे ही रस-मग्न अवस्था में बाहर निकल आया।

यह देखकर सन्त ज्ञानेश्वर ने अपने शिष्यों से कहा– देखा तुमने प्रेम का यह स्वरूप समझने ही योग्य है।

भक्ति कोई नया गुण नहीं, वह प्रेम का ही एक स्वरूप है। जब हम परमात्मा से प्रेम करने लगते हैं, तो द्रवीभूत अन्तःकरण सर्वत्र व्याप्त ईश्वरीय-सत्ता में सविकल्प तदाकार रूप धारण कर लेता है, इसी को भक्ति कहते हैं। भगवान् निर्विकल्प और प्रेमी सविकल्प दोनों एक हो जाते हैं, तो द्वैत भाव भी अद्वैत हो जाता है। इसी बात को शास्त्रकार ने यों कहा है-

"द्रवी भाव पूर्विका मनसो भगवदेकात्म रूपा सविकल्प वृत्तिर्भक्तिरिति।"

वस्तुतः मनुष्य के अन्तःकरण में प्रेम जब तक स्फुरित न हो, तब तक वह स्थूल पिंड मात्र है। जल को लहरें लेने-देने के लिये वायु के झोंके आवश्यक है, हिलोरें जरूरी हैं। उसी प्रकार जड़ शरीर में भरी चेतना में भाव-तरंगें तब तक नहीं फूटतीं जब तक आत्म-चेतना में प्रेम की स्फुरणा न हो। यह प्रेम जहाँ भी स्थिर हो जाता है। वहीं का आकार, गुण, स्वभाव और सत्तात्मक रूप ग्रहण कर लेता है, इसलिये प्रेम एक ऐसी सत्ता है, जो मानवीय जड़ता को देवत्व में बदल देती है। गीता में भगवान् कृष्ण ने इसी तथ्य की और भी अग्रिम सीमा व्यक्त करते हुए लिखा है-

मायि निर्बद्ध हृदयाः साधवः साधवः समदर्शिनः।
वशे कुर्वन्ति मां भक्तया सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा।।

"हे अर्जुन! जिस प्रकार साध्वी स्त्री अपने प्रेम से पति को वश में कर लेती है, उसी प्रकार मेरे परायण हुए मेरे भक्त मुझे वशीभूत कर लेते हैं और मुझे उनकी इच्छानुसार चलना पड़ता है।"

भक्ति प्रेम के विकास की चरम अवस्था है, जिससे अन्तःकरण में मैं-मेरे का भाव भी समाप्त हो जाता है और रहता वह भी नहीं जिसका ध्यान किया जा रहा था। न वह रहता है न यह, दोनों एक हो जाते हैं और भक्त मानवीय स्वरूप में ही ईश्वरीय स्वरूप की उपलब्धि कर लेते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भक्ति निःसन्देह ईश्वरीय प्रेम की प्रगाढ़ अवस्था है, पर अनेक लोग ईश्वर-भक्ति से इसीलिये कतराते हुए पाये जाते हैं कि उनका कुछ ऐसा विश्वास होता है कि ईश्वर-भक्त को संसार, बन्धु-बान्धव, स्वजन-परिजन, माया-ममता सब छोड़ देने पड़ते हैं- पर ऐसी धारणा मिथ्या भ्रम है। जो परमेश्वर स्वयं अपने भक्त के प्रेम में ऐसा आसक्त हो सकता है कि उसका निजी अस्तित्व ही प्रकट न रह जाता हो, वह भगवान सांसारिक कर्तव्यों के प्रति अवहेलना करने की इच्छा क्यों करेगा ?

ऐसी आशंका किसी ने सन्त तुलसीदास के समक्ष भी की थी, तब उन्होंने कहा था-

प्रीति राम सो नीति पथ, चलिय राग रिस जीति।
तुलसी सन्तन के मते इहै भगत की रीति।।

भक्ति की रीति यह है कि वह भगवान् को प्रेम करे और राग अर्थात् आसक्ति रिस अर्थात् द्वेष को जीतकर नीति-परायण बना रहे।

इस नीति को व्यावहारिक जीवन में धारण करने वाले व्यक्ति की दृष्टि में, संसार में सौन्दर्य के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। प्रेम के साथ वासना का संयोग अर्थात् यदि हम अपने प्रेमास्पद से कुछ चाहते हैं, विनिमय का भाव रखते हैं, तो वही आसक्ति है और इसी प्रकार यदि किसी से द्वेष रखते हैं तो सौन्दर्य-दृष्टि का अन्त होता है। इसलिए भक्ति यदि नीति-पथ पर आरूढ़ रहती अर्थात् हम सृष्टि के कण-कण को 'सीया राम मय' जानकर निष्काम व्यवहार करते रहें, तो ऐसे भगवद्भक्त के लिये यह दृश्य संसार ही अलौकिक आनन्द का धाम बन जाता है।

भगवान् के प्रति इस प्रकार का पवित्र प्रेम जिसके भी अन्तःकरण में जागृत होगा, उसके लिये इस संसार में दुःखद कुछ रहेगा ही नहीं, दुःख का कारण तो हमारी अनीति और दोषदृष्टि है। हम क्यों मानें कि कोई बुरा कर रहा है, पर यदि वह बुरा कर रहा है, तो भक्त को अपनी बुरी भावनाएँ भी तो मारनी और उनकी उपेक्षा करनी पड़ती है। उसी प्रकार संसार की अभद्रता को मारता और उसकी अपेक्षा करता हुआ भी भक्त दोष रहित बना रहता है।

वह सर्वत्र उल्लास ढूँढ़ता और वही पाता है। उसे नदियों का प्रवाह, समुद्र के ज्वार-भाटे, पुष्पों के सौन्दर्य, नक्षत्रों का प्रकाश, चिड़ियों की चहक, फूलों की महक और सम्पूर्ण जीवों की चेतना में आनन्द के ही दर्शन होने लगते हैं। यह वृत्ति रागात्मक होते हुए भी सांसारिक माया-मोह से विमुक्त और भगवद् भावना में तल्लीन होती है। गीताकार ने इसी तथ्य का उल्लेख करते हुए लिखा है-

सर्व भूतस्थतात्मानं सर्वभूतानिचात्मनि।
इक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र सम दर्शनः।।

इस प्रकार मेरे से युक्त हुए मेरा भक्त, सृष्टि के सम्पूर्ण प्राणियों में मुझे ही देखता है और सबमें प्रेम की इस अवस्था को समाधि-सुख की तरह अनुभव करता है।

इन पंक्तियों में यह स्पष्ट है कि भगवान् और सृष्टि दो रूप नहीं हैं। संसार परमात्मा का ही तो विराट् रूप है। जब हम परमात्मा की भक्ति करते हैं तो वह भावना सृष्टि के प्रत्येक प्राणी को भी बाँधती है। इस तरह भक्ति तो मानवीय कर्तव्यों से बाँधने का सर्व सुदृढ़ आधार है। यदि व्यक्ति उस रूप में नहीं ढल पाता तो उसका सीधा-साधा अर्थ यह है कि उसने किसी स्वरूप, मूर्ति, नाम या स्थल की पूजा की, भगवान् से प्रेम नहीं किया। भक्ति तो भावनाओं का वह विस्तार है, जिससे पेड़, पौधे और पत्थर तक अछूते नहीं रह सकते। वह भला सगे सम्बन्धी, स्वजातियों के प्रति विलगता का भाव क्यों आने देगा, जो उसे भक्ति से रोका जाये।

भक्ति आत्मा के विकास की सम्पूर्ण साधनाओं का प्राण है, पर उसके तत्व-ज्ञान को कोई प्रेमी अन्तःकरण ही समझ सकता है। जो प्रेम तत्व को समझता है, वही सच्चा भक्त है, वही सच्चा ईश्वर-परायण है। यह तथ्य समझने ही योग्य है।

भावनाएँ भक्ति मार्ग में नियोजित की जायँ

भावनाओं की शक्ति भाप की तरह हैं यदि उसका सदुपयोग कर लिया जाय तो विशालकाय इंजन चल सकते हैं पर यदि उसे ऐसे ही खुला छोड़ दिया जाय तो वह बर्बाद ही होगी किसी के काम न आ सकेगी।

भावनाओं में भक्ति का स्थान बहुत ऊँचा है। उसका सहारा लेकर मनुष्य नर से नारायण बन सकता है। किंतु यदि उसे एक कल्पना, आवेश मात्र मन, बहलाव रहने दियाजाय तो उससे किसी का कुछ प्रयोजन सिद्ध न होगा।

रविशंकर महाराज ने आज के भक्तों को तीन रोगों से ग्रसित गिनाया है (१) गाना, (२) रोना, (३) दिखावा।

भजन कीर्तन के नाम पर दिन-रात झाँझ बजतीं और हल्ला होता है। गाना वही सार्थक है, जो विवेकपूर्वक गाया जाय जिसमें प्रेरणा हो और उसे हृदयंगम करने का लक्ष्य सामने रखा गया हो। जहाँ केवल कोलाहल ही उद्देश्य हो वहाँ भक्ति का प्रकाश कैसे उत्पन्न होगा।

रोना–अर्थात् संसार को शोक-संताप से भरा भव-सागर मानना। इस दुनियाँ से छुटकारा पाकर- किसी अन्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोक में जा बसने की कल्पना, अपने आपसे भागने के बराबर है। भगवान् के सुरम्य उद्यान का सौन्दर्य निहार कर आनन्द-विभोर होने की भक्ति-भावना यदि विश्व के कण-कण में संव्याप्त भगवान् को देखने की अपेक्षा सर्वत्र दुःख और पाप ही देखें तो इसे बुद्धि विपर्यय ही कहा जायगा भक्ति भाव नहीं। पलायन नहीं- भक्ति का तात्पर्य दुःखों का निराकरण एवं दुःखियों की सहायता करना है। जहाँ केवल घृणा का विषाद छाया रहे वहाँ भक्ति की आत्मा जीवित कैसे रहेगी। अपने को आर्त और दुःखी के रूप में प्रस्तुत करने वाला इस कुरूप चित्रण से अपने सृष्टा को ही अपमानित करता है।

भक्ति का तीसरा छन्द है– दिखावा। इन दिनों धार्मिक आडम्बर पहाड़ जितना बढ़ चला है पर उसकी मर्म संवेदनाएँ हृदयंगमकर सकने वाले लोग कितने हैं ?

धर्म का आडम्बर अब इतना अधिक बढ़ता चला जा रहा है कि कई बार तो यह भ्रम होने लगता है कि धर्मयुग में रह रहे हैं। कथा, कीर्तन, प्रवचन, सत्सङ्ग, पारायण, लीला, सम्मेलन आदि के माध्यम से जगह-जगह विशालकाय आयोजन होते हैं और उनमें एकत्रित विशाल भीड़ को देखने से प्रतीत होता है कि धर्म रुचि आकाश छूने जा रही है, पर जब गहराई में उतरकर देखते हैं तो लगता है कि यह धर्म दिखावा बहुत से लोग अपनी आन्तरिक अधार्मिकता को झुठलाकर आत्म-प्रवञ्चना करने के लिये अथवा लोगों की दृष्टि में धार्मिक बनने के लिये रचकर खड़ा करते हैं। यह आवरण इसलिये खड़े किये जाते हैं ताकि उनकी यथार्थता पर पर्दा पड़ा रहे और लोग उन्हें उस ऊँचे स्तर का समझते रहें जिस पर कि वे वस्तुतः नहीं हैं।

कुछ लोग वस्तुतः इन आयोजनों को सद्भावना के साथ सदुद्देश्य के लिए भी करते हैं पर वे यह भूल जाते हैं कि धर्म-आवरण का आरम्भिक प्रयोग भक्ति-भावना जागृत करने के लिए ही हो सकता है उसका वास्तविक लाभ तो तभी मिलेगा जब आस्थाओं और क्रिया-कलापों में उच्चस्तरीय परिवर्तन सम्भव हो। इस कार्य के लिए उपयुक्त पथ-प्रदर्शक वे हो सकते हैं जिनने अपने को मन, वचन, कर्म से सच्चा भक्त बनने में सफलता प्राप्त की हो और इस श्रेय पच्चा में प्रगति का प्रकाश वे ही पा सकते हैं जिन्होंने आवरण से आगे बढ़कर अपने आपको सुधारने, सँभालने के लिये उत्कट प्रयास किया हो।

भावनाओं की शक्ति को भक्ति मार्ग में यदि नियोजित किया जा सके तो मनुष्य इतनी प्रगति कर सकता है जिससे उसकी अपूर्णता, चरम पूर्णता में परिणत हो सके।

प्रभु की शरण में

जब तक मनुष्य का बचपन रहता है, तब तक वह अपने माता-पिता से तरह-तरह की फरमाइशें करता रहता है। छोटा बच्चा अपनी हर जरूरत के लिये माता-पिता से फरियाद करता है। बच्चे के छोटे तथा कमजोर होने के कारण माता-पिता उस पर दया करते हैं और उसकी उपयोगी वस्तुओं को जुटाने के लिये यथासम्भव प्रयत्न भी करते हैं। परन्तु जब बच्चा बड़ा हो जाता है तो उसे वृद्ध माता-पिता से अपनी आवश्यक वस्तुएँ माँगने में संकोच लगता है। वह सोचता है माता-पिता ने मुझे पाल पाल-पोषकर जवान बना दिया और सब प्रकार समर्थ कर दिया, अब उनसे सदा माँगते रहना ही मेरे लिये उचित नहीं, अब तो मुझे उनकी सेवा करनी चाहिये, उनकी इच्छाओं और आवश्यकताओं को समझना तथा पूर्ण करना चाहिए। उनकी इच्छाओं और आवश्यकताओं का ध्यान न रखकर युवावस्था में भी उनसे ही अपनी जरूरत की चीजें माँगते रहना उचित नहीं। श्रवण कुमार आदि अनेक मातृ-पितृ भक्त ऐसे हुए हैं जिनने अपनी कठिनाइयों की रत्ती भर चिन्ता न करते हुये माता-पिता की इच्छा और अभिलाषा पूर्ण करने के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया। यही एक सच्ची सन्तान का आदर्श हो सकता है। निकम्मे लड़के तो बूढ़े माँ-बाप को अन्त समय तक त्रास देते रहते हैं और अपने लाभ के लिए उन्हें परेशान करते रहते हैं।

हम सब ईश्वर की सन्तान हैं। परमात्मा ने अनेक प्रकार की सुविधाएँ देकर हमें बड़ा कर दिया। मानव शरीर जैसा बहुमूल्य वाहन, स्वास्थ्य, बुद्धि, विद्या, परिवार, आजीविका, मित्र आदि साधन देकर इस योग्य बना दिया कि संसार में भली प्रकार जीवन निर्वाह कर सकें। उसने हमारी अन्तरात्मा में सद्बुद्धि की एक पुकार भी पैदा की है जिसकी सलाह पर आचरण करने से हमें सदैव सुख और सुविधाएँ ही उपलब्ध होती रह सकती हैं।

हम करते यह हैं कि उस अन्तरात्मा की पुकार को पग-पग पर ठुकराते हैं- अनुचित मार्ग अपनाते हैं, अनावश्यक इच्छाएँ करते हैं, अवांछनीय तृष्णाओं और वासनाओं का जंजाल अपने ऊपर लाद लेते हैं, इतना सब करने के बाद, इनकी गड़बड़ियों के फलस्वरूप जो नाना प्रकार की परेशानियाँ, चिन्ताएँ, पीड़ाएँ कमियाँ अनुभव होती हैं इन्हें हमारी मन-मर्जी के अनुसार हल करने के लिये परमात्मा से आशा करते हैं और जब वह हमारी उलटी गतिविधि, उलटी तृष्णा को पूर्ण नहीं करता तो कभी अपने ऊपर कभी अपने भाग्य के ऊपर, कभी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमात्मा के ऊपर, नाराज होते हैं। हममें से अधिकांश व्यक्ति इसी प्रकार के जंजालों में उलझे रहते हैं। परमात्मा को पुकारते तो हैं पर अपनी ऊट-पटांग गतिविधि से उत्पन्न भौंड़ी समस्याओं को हमारी तृष्णा और वासना के अनुरूप हल करने के लिए पुकारते हैं। शरीर का बचपन समाप्त हो गया पर मानसिक बचपन नहीं जाता।

माता-पिता छोटे बच्चे की टट्टी धोते हुए कुछ संकोच नहीं करते पर यदि जवान बेटा पाखाने में टट्टी न जाकर माता से बचपन की भाँति टट्टी समेटवाने की क्रिया करावें तो माता उसके कार्य को अनुचित ही समझेगी। जब बेटा समर्थ हो गया तो माता की इच्छा, अभिलाषाओं को पूर्ण करने के लिए उसे कुछ करना चाहिये था न कि उलटे उसे उन आवश्यक बातों के लिये परेशान करना- जिनमें से अधिकांश तो बिलकुल निरर्थक होती हैं और अधिकांश ऐसी होती हैं कि मनुष्य अपनी समझ और कार्य प्रणाली में थोड़ा हेर-फेर कर ले तो उन्हें आसानी से हल कर सकता है। पर उतना कष्ट कौन करे? आत्म-निरीक्षण, अपनी त्रुटियों को ढूँढ़ना, अपने विचारों, आदतों और कार्यों में सुधार करना उस झमेले में पड़ने की बजाय लोग अपनी ओंधी इच्छाओं को परमात्मा से पूर्ण करने की मनौती मानते रहते हैं। ऐसे लोगों के प्रति, परमात्मा के प्रति परमात्मा की मान्यता वैसी ही रहती है, जैसी पिता से टट्टी समेटवाने वाले जवान बेटे के प्रति पिता की रह सकती है। हम भक्ति करते हैं, प्रार्थना करते हैं, पूजा करते हैं, पर उसके भीतर जो कुछ छिपा रहता है वह लगभग इसी श्रेणी का होता है। दयालु पिता कई बार हमारी कुछ आवश्यकताएँ पूर्ण भी कर देते हैं पर उनके मन में हमारे प्रति कोई सद्भाव उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि प्रभु इतना कुछ दे देने के बाद जवान बेटों से तरह-तरह की फरमाइशों की नहीं, वरन् अपनी इच्छाओं की पूर्ति की आशा रखते हैं। जैसी कि सभी माता-पिता अपनी समर्थ सन्तान से रखते हैं।

परमात्मा हमें मनुष्य का बहुमूल्य शरीर इसलिए प्रदान नहीं करता कि हम अपनी आवश्यकताएँ, लालसाएँ, वासनाएँ, तृष्णाएँ बढ़ाते जावें और उनकी पूर्ति के लिए दिन-रात परेशान रहने में ही सारा समय लगा दें। मनुष्य जीवन का उद्देश्य यह है कि जीव अपने विवेक को जागृत करके चिर-संचित कुसंस्कारों से अपनी मनोभूमि को शुद्ध करे, भव बन्धनों को काटे, दूसरों की सेवा करे और अपने आदर्श चरित्र द्वारा संसार के सामने उदाहरण उपस्थित करके अपनी कीर्ति को अमर करे। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये जो प्रयत्न करते हैं वे ही ईश्वर को प्रिय लगते हैं और उन्हीं को वे अपना सच्चा प्रेम, वात्सल्य तथा अनुग्रह प्रदान करते हैं। ऐसा अनुग्रह प्राप्त कर लेना ही जीवन की सार्थकता है। इस मार्ग पर चलने के लिये मनुष्य को छः कार्यक्रम अपनाने पड़ते हैं। (१) अपनी आवश्यकताएँ कम से कम रखना, (२) अपनी वस्तुओं को ईश्वर की वस्तु समझकर अपने को उनका ट्रस्टी-संरक्षक मात्र समझना, (३) सामने उपस्थित कठिनाइयों से परेशान न होकर उन्हें विवेकपूर्वक सुलझाना- जो न टल सकें उन्हें प्रारब्ध भोग समझकर धैर्यपूर्वक सहना, (४) मन को भगवान में लगाये रखने के लिए भजन, साधन करना, (५) अपने कुविचारों, दुर्गुणों तथा अकर्मों को हटाने तथा घटाने के लिए निरन्तर प्रयत्न करना, (६) दूसरों की भलाई के लिए कुछ न कुछ काम ईश्वर की सेवा समझकर नित्य ही करते रहना। जो व्यक्ति इन छः कार्यक्रमों को जितने अंशों में अपनाता है, वह उतना ही भगवान का भक्त है। परमपिता उससे उतना ही प्रसन्न और सन्तुष्ट रहता है। जिसके कार्य इन छः बातों से जितने ही विपरीत हैं समझना चाहिये कि वह ईश्वर की उतनी ही अवज्ञा कर रहा है और उसका कोप-भाजन बन रहा है।

सुरदुर्लभ मनुष्य जीवन प्राप्त करने का अलभ्य अवसर प्राप्त करने के पश्चात् सबसे बड़ी बुद्धिमानी यह है कि अपने आपको भवबन्धनों से मुक्त करने के लिए सच्चे हृदय से और पूरी सावधानी के साथ लगा जाय। शरीर को जीवन यात्रा के प्रयोजनों में और मन को भगवान् में लगाये रहे। सत्कर्मों के द्वारा अपना आदर्श उज्ज्वल करना- प्रभु के बगीचे संसार को अधिक सुरम्य बनाने के लिये निरन्तर लोक-सेवा एवं परमार्थ के कार्यों में संलग्न रहना यही जीवन का सर्वोत्तम सदुपयोग है। भगवान् हमसे ऐसी ही आशा रखते हैं। वे सब कुछ देकर हमें समर्थ इसलिये बनाते हैं कि हम उनके आदेशों और प्रयोजनों को पूरा करें। तृष्णाओं और वासनाओं को बढ़ाते रहकर नाना प्रकार की कामनाएँ करते रहना ईश्वर को प्रसन्न करने का नहीं नाराज करने का तरीका है।

राजा अपने सेनापतियों और मन्त्रियों से अधिक प्रसन्न रहता है क्योंकि वे उसके शासन की व्यवस्था ठीक रखने और राज्य बढ़ाने में सहायक होते हैं। ईश्वर के सेनापति और मन्त्री वे हैं, जो उसके आदेशों और उद्देश्यों को संसार में प्रतिष्ठित करने के लिए अपने जीवन को अर्पण करते हैं। यों राजा के द्वार पर भिखारी, कोढ़ी, दरिद्र भी कुछ पाने की आशा से खड़े रहते हैं उन्हें कुछ मिलता भी रहता है, पर ये भिखारी राजा के व्यक्तिगत प्रेम के अधिकारी नहीं हो सकते। क्योंकि संसार का यही नियम है कि 'माँगने वाले को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तिरस्कार और देने वाले को सम्मान मिलता है।' ईश्वर ने हमें बहुत कुछ दिया है अब हमारी बारी है कि हम उसे कुछ दें। ईश्वर की शरण में अपने को अर्पण करके उसके आदेशों तथा उद्देश्यों की अपने में, समस्त संसार में, मानव मात्र में स्थापना करने के लिए श्रद्धा और तत्परतापूर्वक संलग्न हों। यह गतिविधि अपनाने के पश्चात् हमारा कल्याण सुनिश्चित हो जाने में कोई सन्देह नहीं रहता।

इस ईश्वरार्पण संकल्प के लिए, आत्मदान के लिए, भावना वाले चैतन्य आत्मा वाले सक्रिय सत्पुरुषों के लिए एक आज के देश, काल, पात्र की स्थिति के अनुरूप सुव्यवस्थित योजना सर्वसाधारण के सामने उपस्थित है।

सात्वस्मिन—परम-प्रेम-रूपा

एक बार एक व्यक्ति ने सन्त सुकरात से पूछा-''मानवी जीवन में सबसे मूल्यवान वस्तु कौन-सी है?'' उनका उत्तर था-'प्रेम'। पूछने वाला चौंक पड़ा। उत्तर उसकी अपेक्षा के विपरीत था। उसने सोचा था-आत्मा, परमात्मा या इनसे सम्बन्धित कोई अन्य दार्शनिक शब्द उनके मुख से निकलेगा, पर सन्त के उस उत्तर से वह अवाक् रह गया।

यों विचार किया जाय, तो जबाव साधारण होते हुए भी असाधारण अर्थ सँजोये हुए है। प्रेम संसार की अकेली ऐसी अपार्थिव चीज है, जिसे हर कोई प्राप्त करना चाहता है, चाहे वह गरीब हो या अमीर, शिक्षित हो या अशिक्षित- सब समान रूप से इसकी अपेक्षा दूसरों से करते हैं। यह अद्वितीय है। मनुष्य का सारा दर्शन, समस्त काव्य, सम्पूर्ण धर्म एवं समग्र संस्कृति इसी एक शब्द से अनुप्रेरित है। मानवीय जीवन में जो भी श्रेष्ठ और सुन्दर है, वह सब स्नेह से ही जन्म और जीवन पाता है।

जीवन में संवेदना की कमी सबसे बड़ी दरिद्रता है। जिसके भीतर का यह स्त्रोत सूख गया, उससे बढ़कर दीन इस संसार में दूसरा कोई नहीं। इससे संसार के किसी भी कोने में किसी बिराने का भी सहयोग हस्तगत किया जा सकता है, जबकि इसका अभाव अपनों को भी अजनवी बना देता है। यह प्रेम का बाह्य प्रतिफल हुआ, किन्तु जब इसका उत्स फूटता है, तो अन्तरंग का, अन्तःकरण का वह कौना भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहता, जहाँ परमेश्वर का वास बताया जाता है। फिर यह स्पष्ट आभास मिलने लगता है कि 'मैं' और 'वह' दो नहीं एक हैं। दूसरे सभी उसी की पृथक् अभिव्यक्तियाँ हैं। बस, तादात्म्य की अनुभूति ही तो स्वर्ग-मुक्ति है।

एक सूफी कथा है, किसी प्रेमी ने अपनी प्रेमिका का द्वार खटखटाया। भीतर से आवाज आयी कौन है? प्रेमी ने जबाव दिया- मैं हूँ, तुम्हारा प्रेमी। प्रत्युत्तर मिला- यहाँ दो का स्थान नहीं है। कुछ दिनों बाद प्रेमी पुनः उस द्वार पर आया। दस्तक दी, किन्तु इस बार ''कौन है?'' के उत्तर में जबाव था-''तू ही है।'' इसके साथ ही बन्द पट खुल गये।

कथा के पीछे एक गूढ़ दार्शनिक सत्य निहित है, इसमें दो मत नहीं। आत्म-योग का साधक अपने अन्तरंग में भावनात्मक और बहिरंग में क्रियात्मक प्रेमतत्व की दिव्य संवेदनाओं का परिचय देता है। इसके रसास्वादन से आत्मा को असीम तृप्ति मिलती है। यही तृप्ति बाह्य जीवन में तुष्टि और शांति के रूप में प्रकट होती है। जिसने इसकी अनुभूति कर ली, समझा जाना चाहिए कि उसने प्रेम-तत्व का पान कर लिया। उसका ''स्व'' ''पर'' में समाहित हो गया और जहाँ ''पर'' आ गया, वहाँ प्रेम के घनीभूत रूप में परमेश्वर को पाने में भी देरी नहीं लगती।

वियोगी हरि ने अपनी पुस्तक ''प्रेम योग'' में प्रेम के तीन रूप बताये हैं- निष्काम प्रेम, सकाम प्रेम और ज्ञानयुक्त प्रेम। सकाम प्रेम आसक्ति है। निष्काम प्रेम भक्ति है। ज्ञानयुक्त प्रेम तर्क पर आधारित अनुराग है। इसमें सबसे उत्तम प्रकार का प्रेम भक्ति बताया गया है। अध्यात्म क्षेत्र में जहाँ कहीं भी ''भक्ति'' शब्द का प्रयोग हुआ है, वहाँ उसका प्रच्छन्न अर्थ प्रेम ही होता है। प्रेम किसके प्रति ? ईश्वर के प्रति। प्रेम की पराकाष्ठा ही समर्पण है। यह समर्पण वहीं हो सकता है, जहाँ उच्च आदर्शों का समुच्चय हो। यह भगवान् के अतिरिक्त दूसरा हो ही नहीं सकता। अतः जहाँ कहीं भी इस प्रकार का समर्पण होता है, वहाँ किसी की कृपा बरसने की प्रतीक्षा नहीं की जाती, वहाँ किसी याचना की कामना नहीं होती। जो होता है, वह शुद्ध प्रेम-भाव है। यही आदि और यही अन्त है। प्रेम से आरम्भ कर व्यक्ति अन्तिम पड़ाव - महाप्रेम - ईश्वर प्रेम में ही ठहरता है। पृथ्वी गोल है। अतः उसका कोई अन्त और आरम्भ नहीं- कोई ओर-छोर नहीं। चाहे जहाँ से प्रारम्भ करें, अन्त में वहीं आना पड़ेगा, जहाँ से यात्रा की शुरूआत हुई थी। इसी प्रकार प्रेम का श्री गणेश चाहे जिस रूप में जहाँ से किया जाय, उसका समापन उस महाप्रेम में ही होगा, जिसे **''रसो वै सः''** कहकर आप्तजनों ने सम्बोधित किया है।

देवर्षि नारद का भक्ति सूत्र में कथन है- **''सा त्वस्मिन परम प्रेमरूपा''**। सचमुच, वह परम सत्ता प्रेमरूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही है। उसकी प्राप्ति हम अपने अन्दर प्रेम-तत्व का विकास ही कर सकते हैं। इस सन्दर्भ में जो अपने भीतर इसका जितना विकास कर सका, समझना चाहिए, वह भगवद् सत्ता के उतने ही सन्निकट पहुँचा। इस परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाय तो सुकरात का उत्तर अत्यन्त सारगर्भित जान पड़ेगा।

साधना की श्रेष्ठतम उपलब्धिःसमर्पण

त्रिपदा गायत्री के तीन चरण वस्तुतः ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग रूपी तीन सीढ़ियाँ हैं, जिनके द्वारा उपासना की गहराई तक पहुँचकर ऋद्धि-सिद्धियाँ हस्तगत की जा सकती हैं। प्रथम दो सीढ़ी साधक की प्रारम्भिक अवस्था है वस्तुतः भक्तियोग ही तक पहुँचना एवं समर्पण साधना में अपने आप का परमसत्ता में विसर्जन कर देना ही साधक का लक्ष्य होता है। यह वह अवस्था है जिसमें अग्नि के लिए समर्पित होने वाला ईंधन अग्नि रूप ही हो जाता है। भक्त की समस्त भाव-संवेदनाएँ ईश्वर जैसी उदार एवं महान् बनती जाती है। आदर्शों के समुच्चय परब्रह्म के साथ जुड़कर आत्मा परमात्मा में समर्पित हो जाती है। समर्पण साधना यही है। अद्वैत चिंतन इसी को कहते हैं। तादात्मयता में ही ईश्वर दर्शन का ऐसा रसास्वादन मिलता है जिसकी प्यास में जीव कस्तूरी हिरन की तरह दिशा-दिशा में तलासता भागता फिरता है। इसीलिए भक्तियोग को सबसे ऊँचा माना गया है। मीरा कहती थीं **"सबसे ऊँची प्रेम सगाई।"**

अध्यात्म की तीन अवस्थायें हैं बाल्यावस्था, तरुणावस्था एवं वृद्धावस्था। प्रारम्भिक दीक्षित जानकारी प्राप्त करना ज्ञानयोग है। अपने विचारों विश्वासों को दृढ़ एवं निश्चित करने के पश्चात् कर्तव्य करना, आचरण को उसी साँचे में ढालना कर्मयोग, तरुणावस्था है। ज्ञान और कर्म के आधार पर परिपक्व मनोभूमि बनती है, उच्च दृष्टिकोण बनता है, जिसमें से त्याग, सेवा, उदारता एवं प्रेम की अजस्रधारा अन्तःकरण में से फूट निकलती है, उस प्रेम की धारा को ईश्वर की नर, नारायण की उपासना में प्रवाहित करना भक्तियोग, वृद्धावस्था है। दूसरे शब्दों में बालकपन-विद्यार्थी अवस्था ज्ञानयोग का समय है। तरुणाई कर्तव्य-परायणता कर्मयोग की स्थिति है। वृद्धावस्था प्रेम-परोपकार और आत्मीयता के प्रसार की दशा भक्तियोग की अवस्था है।

शरीर के साथ मन की अवस्थाएँ बदलने का कोई नियम नहीं। यह हो सकता है कि किसी किशोर व्यक्ति की मनोभूमि इतनी ऊँची एवं ज्ञान से परिपूर्ण हो जाय जो मानसिक वृद्धावस्था कही जा सके। आद्य शंकराचार्य, महर्षि शुकदेव, स्वामी विवेकानन्द जैसे अनेक महापुरुष छोटी अवस्था में ज्ञानवृद्ध हुए। यह भी सम्भव है कि वृद्धावस्था तक आत्मिक ज्ञान से शून्य रहा हो फिर उसकी रुचि इस ओर बढ़ी हो ऐसे व्यक्ति शरीर से वृद्ध होते हुए भी योग मार्ग में बालक ही कहे जायेंगे। यह अपवाद स्वरूप है, किन्तु सामान्यतया छलाँग लगाने का विधान नहीं है। अध्यात्म पथ में भी क्रमिक विकास क्रम है। प्रेम जिसको योग की भाषा में भक्ति कहते हैं एक ऐसी अवस्था है जो चिरकाल तक ज्ञान एवं कर्मयोग की साधना से अन्तःकरण को स्वच्छ करते रहने के उपरान्त उदय होती है। अन्तःचेतना को जब सतत् अभ्यास के बाद अत्यन्त निस्वार्थ, विस्तारित, स्वार्थ रहित बना लिया जाता है, पराये और अपने का भेद कम हो जाता है तब सच्चा प्रेम उदय होता है। यह एक दिन की साधना से नहीं हो सकता।

ज्ञानयोगी, सत्य का निष्पक्ष पुजारी होता है, वह अन्धविश्वास को छोड़कर विवेक को अपना प्रधान साधन मानता है। विवेक की कसौटी पर कसे जाने के उपरान्त जो बातें उचित जँचती हैं उन्हें ही वह वरण करता है। ज्ञानयोग अध्यात्म मार्ग में प्रारम्भिक साधना है जिस पर अवलम्बित होना हर एक प्राथमिक जिज्ञासु के लिए अनिवार्य आवश्यकता है। स्वाध्याय, सत्संग, चिंतन, मनन की साधना इसी प्रयोजन के लिए की जाती है।

ज्ञान की आधारशिला पर ही कर्म की प्राचीरें खड़ी होती हैं। ज्ञान परिपक्व होकर कर्म की प्रेरणा देता है। यदि उद्देश्यपूर्वक विचार और विवेकपूर्वक कर्तव्य-भावना से कर्म किया जाय तो सामान्य कार्य भी यज्ञ रूप हो सकता है और गृहस्थ जीवन में ही तपोवन में रहने के समान साधना की जा सकती है। फल के लिए नहीं वरन् कर्तव्य पालन एवं आनन्द के लिए कर्म किया जाय। यही कर्मयोग का संदेश है। इसे हृदयंगम करने पर जीवन अत्यन्त उत्साह, हर्ष और आनन्द से भर जाता है। प्रसन्नता में असाधारण वृद्धि हो जाती है। क्रोध, झुँझलाहट, व्यथा, चिंता, वेदना, शोक, निराशा दुःखदायी अग्नियों से अनायास ही छुटकारा मिल जाता है। क्रिया-कलापों में आदर्शवादिता का समन्वय चरित्र-निष्ठा एवं समाज-निष्ठा का परिपालन, कषाय-कल्मषों की निवृत्ति के लिए तपश्चर्या का अवलम्बन, पीड़ा और पतन निवारण के लिए सेवा साधना का अनुगमन ये सभी क्षेत्र कर्मयोग के ही हैं।

भक्तियोग अन्तिम अवस्था है, ज्ञान और कर्म से परिपक्व मनोभूमि में से प्रेम की मखमली हरियाली उपज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ती है, वह इतनी स्वच्छ और विस्तृत होती है कि स्वार्थों के तुच्छ दायरे में बँधा तन विश्वव्यापी चैतन्य तत्व के साथ घुल-मिल जाता है। यह विकसित प्रेम ईश्वर का ही रूप है, अखिल विश्व में सूक्ष्म रूप से जो दिव्य तत्व व्याप्त हो रहे हैं, मनुष्य जाति ईश्वर के रूप में जिनकी उपासना करती है, इन दिव्य तत्वों में प्रेम सर्वोपरि है। जिसके अंतर में जितना ही निर्मल प्रेम है उतना ही उसमें ईश्वर का निवास है। जल से भरा हुआ बादल आकाश से उतरकर भूमि के निकट आ जाता है और अपनी देह को बूँद-बूँद गलाकर प्यासी पृथ्वी के मुँह में टपका देता है। भक्त का, प्रेमी का यही लक्षण है, ऊँची सम्पदायें लेकर वह आकाश में नहीं रहना चाहता वरन् नीचे दर्जे का सादा जीवन पसन्द करता है, छोटे पतित अज्ञान ग्रस्त, भूले भटकों को छाती से लगाता है और उनके दुःख दूर करने में अपनी शक्तियों को बूँद-बूँदकर निचोड़ देता है।

भक्तियोग आध्यात्मिक वृद्धावस्था की साधना है। ज्ञान और कर्म द्वारा पुष्ट हुए वृक्ष पर भक्ति का फल लगता है। भक्ति में तन्मयता होती है, आवेश होता है, लगन होती है, प्रेम में उन्माद होता है, रस होता है, विकलता होती है और अपने प्रेमी में घुल जाने की उत्कण्ठा होती है। अपना आपा भूल जाता है।

अयमात्मा, ब्रह्म, तत्वमसि, सोहमस्मि, चिदानन्दोऽहम्, ''शिवोऽहम्'' जैसी भावनायें गौणी भक्ति है। इस समर्पण भाव को रामकृष्ण परमहंस ने रूपक की भाषा में बिल्ली के बच्चे की उपमा दी है। इसका तात्पर्य है मन, प्राण, बुद्धि का अंतःसमर्पण। वट-वृक्ष के बीज की सत्ता नगण्य सी होती है। पर जब वह अपनी क्षुद्रता के अहम् को त्याग पृथ्वी की विराट्ता में समर्पित हो जाती है तो उसमें नव-जीवन अंकुरित होने लगता है। गंगा में विसर्जित कर देने वाले छोटी सामर्थ्य के नदी, नाले भी वैसा ही सम्मान पाते हैं और श्रद्धास्पद होते हैं जैसा कि गंगा। आग में पड़ने पर बबूल, आम, चन्दन सभी एक-सा रूप प्राप्त करते अर्थात् अग्निमय हो जाते हैं। समर्पण वह प्रखर पराक्रम है जिसमें अपनी क्षुद्रता संकीर्णता, स्वार्थपरता को पूरी तरह से त्यागकर परम सत्ता की दिव्यता महानता से एक हो जाना पड़ता है।

पराभक्ति में प्रेम के साथ विवेक, दूरदर्शिता, गंभीरता और मनन-शीलता भी रहती है। पराभक्ति का उपासक परमार्थ में तन्मय हो जाता है। अन्य प्राणियों का हित साधन करते हुए वह सत्य गद्गद् होता रहता है और पुण्यकर्मी का उत्कर्ष होते देख पुलकित होता है। प्रेम मानव प्रकृति का एक अमूल्य तत्व है, यदि इसे जीवन का सार कहें तो अनुचित न होगा, पशुता से जितना ऊँचा उठकर दैवी तत्व के निकट मनुष्य बढ़ता जाता है, उतना ही वह प्रेम का उपासक बनता जाता है। प्रेम और परमात्मा एक ही वस्तु के दो नाम हैं, जिनके अन्तःकरण में प्रेम का, भक्ति का, अमृत कलश छलछलाता हो समझना चाहिए वहाँ साक्षात् ईश्वर विराजमान है।

गायत्री साधना में स्थूल शरीर कर्मयोग से, सूक्ष्म-शरीर ज्ञानयोग से परिष्कृत होता है। कारण शरीर को सुसंस्कृत बनाने के लिए भक्तियोग का विधान है जिसके अन्तर्गत उपासना भी आती है। उपासना क्षेत्र में सभी क्रिया-कलाप सम्मिलित किये जाते हैं जो जप, ध्यान आदि पूजा पद्धतियों के रूप में प्रथा-परम्पराओं के अनुसार प्रचलित हैं। गायत्री महामंत्र जप के साथ यदि भाव विह्वल होने, तल्लीन होने, माँ का आँचल पकड़ने अपने आपको विसर्जित करने का भाव किया जा सके तो समझना चाहिए कि हम भक्तियोग की साधना में प्रवृत्त हो गये हैं। त्रिपदा गायत्री की साधना इसी प्रकार की जाती है जिसके साथ ज्ञान, कर्म एवं भक्तियोग का समन्वय है। जहाँ प्रथम दो की महत्ता पृष्ठभूमि बनाने की है, वहाँ भक्तियोग का चरम पराकाष्ठा वाला रूप साधना का उच्चतम सोपान है। हमें इसी गन्तव्य तक पहुँचने के लिए स्वयं को प्रयासरत करना चाहिए। निश्चित ही गायत्री साधना वह भी संधिकाल की साधना तो इसके लिए सर्वश्रेष्ठ सुअवसर व मानच-मात्र के लिए एक सौभाग्य है।

समर्पण योग की साधना और प्रतिफल

साधना क्षेत्र में समर्पण का असाधारण महत्त्व बताया गया है। अपने पुरुषार्थ के बलबूते तो एक सीमा तक ही आगे बढ़ा जा सकता है। स्वयं के पुरुषार्थ के साथ-साथ बाह्य अनुदान भी आगे बढ़ने के लिए आवश्यक हैं। मनुष्य को कितनी ही ऐसी सुविधाएँ प्राप्त हैं जिनके लिए उसे कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ा है। प्रकृति ने उसे मुक्त-हस्त से प्रदान किया है। यदि वे अनुकूलताएँ नहीं मिली होतीं तो उसका पुरुषार्थ अपने स्थान पर धरा रह जाता और अपना अस्तित्व भी सुरक्षित रखना कठिन पड़ता। सूर्य का प्रकाश, ताप, और प्राण सतत् प्रचुर परिमाण में मिलता रहता है जिनकी न तो कीमत लगायी जा सकती है और न चुकायी जा सकती है। प्राणवायु का उपलब्ध भाण्डागार मनुष्य की उपार्जित सम्पदा नहीं है। पृथ्वी एवं सम्बद्ध खनिज पदार्थ मनुष्य द्वारा विनिर्मित नहीं हैं। जल रूपी जीवन सम्पदा का विपुल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भण्डार मनुष्य ने नहीं जुटाया है। सृष्टा ने अपनी करुणा एवं उदारता का पूरा-पूरा परिचय देकर इन सुविधाओं को प्राणी मात्र के लिए पहले से ही अनुदान के रूप में दे रखा है। यह सब अनुकूलताएँ न मिली होतीं तो जीवन की सुरक्षा न हो पाती।

पुरुषार्थ का अपना महत्त्व है और बाह्य अनुदान का अपना। बाहरी सहयोग न मिले तो प्रगति पथ पर एक कदम भी आगे बढ़ सकना सम्भव नहीं होगा। गर्भस्थ शिशु पूर्णतया पराश्रित होता है। माँ के अनुदान न मिले तो वह दम तोड़ देगा। जन्म लेने के बाद भी उसे माता-पिता का अनुग्रह सतत् मिलता रहता है।

शारीरिक परिपोषण से लेकर मानसिक, बौद्धिक विकास के लिए अनेकानेक प्रकार के साधन माता-पिता द्वारा जुटाये जाते हैं। समाज उसे शिक्षा आदि की व्यवस्था जुटाता है। सतत् दूसरों का सहयोग पाकर ही वह आगे बढ़ता है। उसका पुरुषार्थ अभीष्ट वातावरण पाकर ही फलीभूत होता है। अपने पुरुषार्थ की भूमिका तो लम्बे समय बाद आरम्भ होती है। प्रारम्भ में तो दूसरों के सहयोग से ही जीवन की गाड़ी आगे बढ़ती है।

उपरोक्त अनुदान ऐसे हैं जो लगभग सभी को प्राप्त होते हैं। उन्हें पाकर अपने-अपने पुरुषार्थ के अनुरूप लोग आगे बढ़ते और सफलताएँ प्राप्त करते हैं। भौतिक क्षेत्र की भाँति आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रगति करने के लिए भी प्रचण्ड पुरुषार्थ का परिचय देना पड़ता है। आत्म-शोधन और आत्म-परिष्कार के लिए तप-तितीक्षा के साधनात्मक, शारीरिक एवं मानसिक उपचार करने पड़ते हैं। ये आवश्यक हैं और उपयोगी भी। आत्म-निर्माण का प्रथम चरण इन्हीं के सहारे पूरा होता है, पर इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है दैवी-अनुग्रह-अनुदान प्राप्त करना। जीवात्मा में सत् चित् आनन्द स्वरूप परमात्मा के अवतरण के बिना साधना का, पूर्णता का लक्ष्य पूरा नहीं होता है। इसके लिए समर्पण योग, भक्तियोग की साधना करनी पड़ती है।

कर्मयोग की साधना से कर्मों में प्रखरता आती है, ज्ञानयोग से चिन्तन उत्कृष्ट होता है- तत्व दृष्टि विकसित होती है। भक्तियोग से अन्तःकरण सुविकसित होता, पवित्र बनता और इस योग्य होता है कि परमात्म सत्ता का वहाँ अवतरण हो सके। जीवात्मा की सामर्थ्य सीमित है, परमात्मा से मिलने पर ही उसमें परिपूर्णता आती है। यह सम्मिलन समर्पण के आधार पर ही सम्पन्न होता है। कर्म और ज्ञानयोग की साधना में कर्त्तापन का बोध बना रहता है जिसके कारण आत्म-सत्ता और परमात्म-सत्ता के बीच एकत्व स्थापित नहीं हो पाता। इस स्थिति के कारण ही अर्जुन का संशय बना हुआ था जिसका समाधान भगवान् कृष्ण ने गीता के उपदेश में 'समर्पण योग' के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा- "हे अर्जुन! मुझमें अपना मन रख, मुझे अपनी बुद्धि सौंप दे उतने भर से तेरा कल्याण हो जायेगा।"

'मय्येवयन आधत्स्वमपि बुद्धि निवेशय।
निवसिष्यति मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशय।।'

-गीता

अर्थात्- हे अर्जुन! तू अपना मन मेरे में लगा। मेरे में ही बुद्धि को लगा इसके उपरान्त तू मेरे में निवास करेगा। मेरे को ही प्राप्त करेगा। इसमें कुछ संशय नहीं।

समर्पण के, शरणागति के, अनेक आमन्त्रणों में भगवान् इतना कहते हैं कि 'अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं को, अहम् को- ईश्वर को समर्पित कर दे। इसके बाद सच्चे अर्थों में समर्पण का जो लाभ मिलना चाहिए वह अनेकों प्रकार के अनुग्रह के रूप में भक्त को मिलता है। यहाँ ईश्वर से अभिप्राय किसी अदृश्य व्यक्ति अथवा सूक्ष्म शरीरधारी देवी-देवता के साथ दोस्ती बढ़ा लेने- मनुहार उपहार के आडम्बर रचने से नहीं, आदर्शों के समुच्चय के रूप में विद्यमान विश्व चेतना, समष्टि चेतना- के सम्मुख आत्म-समर्पण से है। इस तथ्य को और अधिक समझना हो तो यों कहना चाहिए कि व्यष्टि का समष्टि में, व्यक्तिवाद का समूहवाद में, संकीर्णता का उदारता में, निकृष्टता का उत्कृष्टता में विसर्जन करना है। समर्पण के महत्त्व का प्रतिपादन अध्यात्म-सिद्धान्तों में अनेक स्थानों पर अनेक ढंग से किया गया है। गोपियों के साथ कृष्ण के रास रचाने के पीछे यही प्रेरणा है कि सभी प्रवृत्तियाँ आत्मा की पुकार का-वेणुनाद का अनुसरण करें। अर्जुन को भी भगवान कृष्ण ने यही करने के लिए कहा। भक्ति योग के अनेकानेक कृत्य पूजा, स्तवन, अर्चना में समर्पण की भावना को प्रबल बनाने का ही अभ्यास किया जाता है। भक्ति योग में समर्पण की ही प्रधानता है। वेदान्त में अद्वैत के प्रतिपादनों में भक्ति योग का- समर्पण योग का ही समर्थन है-

'भक्ति' शब्द अपने लक्ष्य को और भी अधिक स्पष्ट करता है। यह संस्कृत के 'भज्' धातु से बना है जिसका अर्थ होता है 'भज्-सेवायाम्' अर्थात् सेवा को भजो। सेवा किसकी? ईश्वर की। ईश्वर अर्थात् उच्चस्तरीय आदर्शों का समुच्चय। व्यावहारिक भाषा में- श्रेष्ठ आदर्शों से लिपटी सघन आत्मीयता को भक्ति कहते हैं। अर्थात् भक्ति में समर्पण किन्हीं विशेष आदर्शों के लिए होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्पण के उपरान्त उन्हीं आदर्शों पर चलना और प्रबल पराक्रम करना पड़ता है। जिन विशेषताओं से परमात्मा युक्त है वैसा ही बनना-ढलना पड़ता है। ईश्वर की अपनी स्वयं की कोई इच्छा नहीं है। विश्व-वसुधा का कल्याण ही उसे अभीष्ट होता है। भक्त को भी इन्हीं विशेषताओं से अनुप्राणित होना पड़ता है। संकीर्णता से निकलना और आत्म-विस्तार के लिए बढ़ना होता है। संसार के पीड़ा-पतन को देखकर वह द्रवित हो उठता है। यह पीड़ा भावनाओं को उद्वेलित करने तक सीमित नहीं रहती- व्यवहार में परिलक्षित होने लगती है। संव्याप्त पीड़ा-पतन को दूर करने के लिए वह अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य लगा देता है। आत्मीयता जब व्यापक होती है, तो उसी के अनुरूप अनुभूतियाँ भी होती हैं। दूसरों की कष्ट-कठिनाइयाँ अपनी ही जान पड़ती हैं। जितना प्रयत्न-पुरुषार्थ अपने लिए किया जाता दूसरों के कष्टों के निवारण के लिए सच्चे भक्त कहीं अधिक करते देखे जाते हैं। वे उदार होते हैं– करुणा की प्रतिमूर्ति होते हैं। दुःख, दारिद्रय, पीड़ा, पतन को देखकर उनकी करुणा सहज ही उमड़ पड़ती है।

समर्पण के चमत्कारी परिणाम सर्वत्र देखे जा सकते हैं। बीज की सत्ता अत्यन्त लघु, नगण्य होती है, पर जब वह अपने आपको तुच्छ घेरे से निकालकर धरती माता की गोद में समर्पित कर देता है तो उसमें से नन्हें-नन्हें अंकुर फूटने लगते हैं। सूर्य किरणें उसे शक्ति देती हैं। पवन उसे दुलारता है, मेह उसका अभिसिंचन करता है। सम्पूर्ण प्रकृति उसकी सेवा- उसके विकास- के लिए जुट जाती है। बीज नीचे बढ़ता और अपनी जड़ें धरती की गोद में सुदृढ़ कर लेता है। ऊपर उठता है तो एक विशाल वृक्ष जिसकी छत्र-छाया में सैकड़ों जीव-जन्तुओं को पोषण, पक्षियों को विश्राम मिलता है। अपने सम्पूर्ण जीवन में वह एक नन्हा-सा बीज करोड़ों बीज का जनक होने का गौरव प्राप्त करता है। नवजात शिशु की अपनी कुछ भी सामर्थ्य नहीं रहती है, पर समर्पण के आधार पर उसे सारी सुविधाएँ प्राप्त हो जाती हैं। माता-पिता स्वयं कष्ट सहकर भी उसके पोषण की व्यवस्था जुटाते। उनका स्नेह-वात्सल्य अनायास ही बच्चे के प्रति उमड़ता रहता है।

समर्पण का चमत्कारी प्रतिफल दाम्पत्य-जीवन में भी देखा जा सकता है। पति के समक्ष अपना तन, मन और आत्मा सब कुछ समर्पित कर देने वाली पत्नी कुछ खोती नहीं पाती ही है। वह घर की मालकिन बन जाती है। जो अधिकार और सुविधाएँ पति को प्राप्त होती हैं उनकी अधिकारिणी बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के वह हो जाती है। उसे स्वामित्व के कानूनी अधिकार भी मिल जाते हैं। अपनी सत्ता को गंगा में विसर्जित कर देने वाले नदी-नाले भी गंगा जैसा ही श्रेय प्राप्त कर लेते और श्रद्धास्पद बनते देखे जाते हैं। मात्र उन्हें समर्पण का साहस भर जुटाना पड़ता है। अमरबेल वृक्ष से लिपट जाती है और वृक्ष की ऊँचाई जितनी ही जा पहुँचती है। ये उदाहरण समर्पण की महिमा का ही प्रतिपादन करते हैं।

समर्पण से अभिप्राय विलय-विसर्जन से है। आग के निकट आकर ईंधन भी उसी जैसा बन जाता है। दूध और पानी मिलकर एक जैसे बन जाते हैं। नाला गंगा में मिलकर गंगा का स्वरूप ही नहीं विशेषताएँ भी प्राप्त कर लेता है। भक्त को भी समर्पण के लिए भगवान् जैसा ही बनना पड़ता है। उन्हीं के गुणों को अपने व्यक्तित्व में भरना पड़ता है जो कि परमात्मा में हैं। भक्ति का अर्थ- मनुहार, चापलूसी नहीं प्रखर पराक्रम के लिए अपने को तैयार करना है। अपने गुण, कर्म, स्वभाव को परमात्मा के आदर्शों के अनुरूप बनाना-ढालना पड़ता है। समर्पण ईश्वर भक्ति के नाम पर जहाँ कहीं भी निष्क्रियता दिखायी पड़ रही हो तो समझा जाना चाहिए कि मात्र विडम्बना रची जा रही है। भक्ति और भक्त की एक ही कसौटी है कि सदुद्देश्यों के लिए वह शरीर, मन और अन्तःकरण से कितना अधिक सक्रिय है। उसकी क्रियाशीलता, मस्तिष्क की विचारणा और अन्तःकरण की उदारता परमार्थिक कार्यों में कितना अधिक नियोजित हो रही है।

समर्पण भक्ति की, निष्ठा की परख है। एक सन्त ने कहा है कि समर्पण का अर्थ है, 'मन अपना विचार इष्ट के, हृदय अपना भावनाएँ इष्ट की, आपा अपना किन्तु समग्र कर्तव्य इष्ट का।' इस परिभाषा के अनुसार जीव को अपनी अहंता से पूरी तरह अवकाश पा लेना है। शरीर, मन और अन्तःकरण पर स्वयं का आधिपत्य होते हुए भी इनकी विशेषताएँ क्षमताएँ पूरी तरह इष्ट के लिए अर्थात् उच्चस्तरीय प्रयोजनों में नियोजित हो जायँ।'' समर्पण के लिए इस भावना को सदा परिपुष्ट करते रहना पड़ता है कि 'मैं पतंगे की तरह हूँ, इष्टदेव दीपक की तरह। अनन्य प्रेम के कारण द्वैत श्रद्धा को समाप्त कर अद्वैत की उपलब्धि के लिए, अपने इष्ट के साथ प्रियतम के साथ एकात्म होता हूँ। जिस प्रकार पतंगा दीपक पर आत्म- समर्पण करता है, अपनी सत्ता को मिटाकर प्रकाश पुंज में लीन होता है। उसी प्रकार मैं अपना अस्तित्व इस अहंकार को मिटाकर ब्रह्म में समष्टि चेतना में विलीन होता हूँ। अपनी अहंता की परिधि और द्विधा मिटा देने के कारण मैं आत्मा की परिधि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से उठकर परमात्म-सत्ता के रूप में विकसित होता हूँ, उसी स्तर की व्यापकता धारण करता हूँ। अपनी समस्त श्रद्धा को मैं प्रभु को समर्पण करता हूँ। वे मुझे अपने में एकाकार कर लेते, अपने समान बना लेते हैं। मेरे अन्तः को वे ज्ञान, विवेक, प्रकाश एवं आनन्द से भर देते हैं। अपने समान ही रीति-नीति अपनाने की प्रेरणा एक प्रकाश प्रदान करते हैं।''

ईश्वर के प्रति परिपूर्ण समर्पण भक्त को भी उसी जैसा बना देता है। उसके दिव्य अनुग्रहों का अधिकारी भक्त सहज ही बन जाता है। परमात्मा का स्वरूप 'सत् चित् आनन्द है। भक्त का अन्तःकरण भी वैसा ही हो जाता है। भीतर का आनन्द सतत् बाहर छलकता रहता और सान्निध्य में आने वाले अनेकों व्यक्तियों के अन्तःकरण को परितृप्त करता है। ऐसे भक्तों की समीपता प्राप्त करने के लिए कितने ही व्यक्तियों का मन लालायित होता रहता है। उनका व्यक्तित्व स्वयं दूसरों के लिए प्रेरणा-प्रकाश देने का केन्द्र बनता है। सदुद्देश्य की सत्प्रेरणाएँ उभारने वाले भक्त स्वयं तो धन्य होते ही हैं, वह समाज धन्य बनता है जहाँ वे पैदा होते हैं।

समर्पण की महत्ता

कामना, लालसा, वासना की संकीर्ण परिधि में ही सामान्यतया मानव मन का चिंतन घूमता रहता है। शास्त्रकारों ने इसे ही पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लौकैषणा कहकर इससे उबरने को कहा है। आत्मोत्कर्ष के मार्ग में यही प्रधान बाधाएँ हैं। जन-सामान्य में व्याप्त राग, द्वेष, कलह, कटुता इन्हीं में जकड़े रहने का परिणाम है। जब तक इस संकीर्णता से मुक्ति न मिले मनुष्य जैसा देव-दुर्लभ जीवन कौड़ियों के मोल बिकता है। इन्द्रियों, आकर्षणों में फँसा हुआ जीवन ''प्रेय'' मार्ग कहा गया है। इसमें शाश्वत अपेक्षाओं और गम्भीर आस्थाओं के प्रति अभिरुचि तो दूर इस मनःस्थिति का प्राणी उन्हें अस्वीकारने भी लगता है। जिससे सामाजिक जीवन में अशांति और अव्यवस्था का ही विकास होता है।

इसके विपरीत एक और जीवन भी होता है जो उत्कृष्टता, आदर्शवादिता, चरित्रनिष्ठा और समाज निष्ठा के प्रति समर्पित होता है इसे 'श्रेय पथ' कहते हैं। इसमें इन्द्रियों को संतुष्ट करने की हेय प्रवृत्ति का परित्याग होने से भावनाओं का अन्तःकरण का विकास होता है। जीवन सत्ता मानवीय तथा दैवी विभूतियों और क्षमताओं से विभूषित होती चली जाती हैं। प्रत्यक्ष में यह सौदा घाटे का हो सकता है, पर यही श्रेय समर्पित जीवन क्रमशः उत्कृष्टता और आत्मिक आनन्द की श्रेणियों में उठता हुआ मनुष्य को उसके जीवन लक्ष्य-परमात्मा तक पहुँचा देता है। अन्तःकरण की पुकार को अनसुनी न किया जाय तो परमात्मा की यह प्रकाश किरण उसकी प्रेरणा महापुरुषों के माध्यम से, सत्साहित्य के माध्यम से मानवीय पीड़ा, पतन के प्रति संवेदना के रूप में हर किसी के पास आती है। इसे स्वीकार कर, समर्पित होकर जिया जा सके तो निस्सन्देह मनुष्य जीवन धन्य हो सकता है।

वट का बीज अत्यन्त लघु और नगण्य सा होता है, पर समुचित खाद-पानी पाकर वह विकसित होकर वृक्ष का रूप धारण कर लेता है और पशु-पक्षियों को भोजन एवं आश्रय प्रदान करने से लेकर मनुष्य जाति की अनेक प्रकार से सेवा करता है। इसके विपरीत अपने आप में सीमित प्रकृति का नन्हा प्रतिनिधि किसी कीड़े-मकोड़े को भले ही संतुष्टि प्रदान कर दे, पर उससे अधिक की क्षमता उसमें नहीं। अपने आप तक सीमित रहने, अपने स्वार्थों तक केन्द्रीभूत रहने की संकीर्ण मनोवृत्ति कभी भी किसी व्यक्ति को ऊँचा नहीं उठा सकती।

आदान-प्रदान के व्यक्त-अव्यक्त दो ही रूप हैं। एक का नाम है सहयोग सहकारिता अर्थात् किसी व्यक्ति संस्था उद्योग के कार्यों में अपनी उपलब्ध क्षमताओं को मिलाना अपना कर्तव्य जोड़ना। यह भावना सांसारिकता के दायरे में ही सीमित है। उसके बदले में भौतिक लाभ चाहे पद-प्रतिष्ठा के रूप में हो अथवा अर्थोपार्जन यश आदि के रूप में प्राप्त होता है। इस प्राप्ति को सहकर्तृत्व ही कहा जायेगा। यह सहयोग समाज की एक सुसंस्कृत परम्परा और सामुदायिक विकास का आधार है, किन्तु समर्पण उससे हजारों गुने उन्नत स्तर की अध्यात्म साधना है। सहयोग से भौतिक प्रगति के लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं, परमार्थिक प्रयोजनों की भी एक सीमा तक शक्ति सहायता मिल सकती है, किन्तु महान् कार्य, बड़े उद्देश्य, समर्पित सेवाओं के बिना संभव नहीं हो पाते। श्रेष्ठता के प्रति समर्पण आत्मा की क्षमताओं और सम भावनाओं को प्रकट करके व्यक्ति, समुदाय और संसार को प्रगति का मार्ग नई ज्योति और सदाशयी लक्ष्यों की सफलता प्रदान कर सकती है। आध्यात्मिक साधनाएँ या पारमार्थिक सेवाएँ तो समर्पण के अभाव में पनप ही नहीं सकतीं।

उत्कृष्टता, श्रेष्ठता के प्रति श्रद्धासिक्त समर्पण एक उदात्त आध्यात्मिक भावना है, जो किसी क्षेत्र के लिए अनवरत शक्ति संचार की प्रेरणा एवं स्रोत बनकर काम करने लगती है।

प्रभु समर्पित व्यक्ति का प्रत्येक चिंतन और कर्तृत्व एक ही दिशा में नियोजित रहने से अत्यधिक प्रखर और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गतिशील हो उठता है। यही नहीं उसके साथ पवित्रता की ऐसी भावना सन्निहित रहती है, जो ध्येय को भौतिक प्रवंचनाओं से धराशायी होने से बचाती है।

सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम की एक महत्वपूर्ण घटना ताँत्याटोपे के जीवन से सम्बन्धित है। अजीजान नाम की एक नर्तकी सेनापति ताँत्या टोपे की ओर आसक्त हो गयी। उसने ताँत्या का मन जीतने के लिए आकर्षणों का जाल बिछा दिया। वे उसके मन की बात भाँप गये। उन्होंने एक दिन अजीजान से कहा 'मेरे जीवन का एक ही ध्येय है, अंग्रेजों को भारत भूमि से मार भगाना। यदि सचमुच तुम मुझे प्यार करती हो तो मेरे इस श्रेष्ठ लक्ष्य में तुम्हें समर्पित होना पड़ेगा' अजीजान तैयार हो गई। किन्तु समर्पण इतनी सरल प्रक्रिया नहीं है कि उसे यों ही निबाहा जा सके। अजीजान ने अपनी सारी सम्पत्ति स्वाधीनता संग्राम में लगा दी। स्वयं को गुप्तचर सेवाओं के लिए समर्पित किया। अंग्रेजों की छावनियों में जाना वहाँ के सुराग लाना जोखिम भरा कार्य था, जिसे अविचल निष्ठा ही पूरी कर सकती थी। अजीजान को भी भयंकर कष्टों एवं संकटों का सामना करना पड़ा, किन्तु वह ध्येय के प्रति अविचल बनी रही। समर्पण की पवित्रता ने उसके हृदय की वासना को भी धो दिया।

समर्पण से ही व्यक्ति की निष्ठा परखी जाती है। इसमें खरा उतरने पर ही उसका समर्पण सार्थक होता है। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने अपनी पुस्तक ''आत्मदानियों से'' में समर्पण की व्याख्या विवेचना करते हुए कहा है कि समर्पण का अर्थ है ''मन अपना, विचार इष्ट के, हृदय अपना भावनाएँ इष्ट की, आपा अपना किन्तु समग्र रूप से इष्ट का' इस परिभाषा का अर्थ अपनी अहंता से पूरी तरह अवकाश पा लेना है। योग साधनाओं में सिद्धि के गुणों में यह स्थिति अनिवार्य मानी गयी है। अतएव समर्पण को आत्म-कल्याण की सर्वोपरि साधना के रूप में लिया जाना चाहिए।

महाराष्ट्र के प्रख्यात संत जनार्दन पन्त के चरणों में समर्पित होने के बाद एकनाथ लोक वरेण्य हो गये। मार्ग्रेट एलिजाबेथ नोबुल विवेकानन्द के चरणों में अपनी क्षुद्र अहंता निवेदित करके ही निवेदिता बन सकीं। भारतीय स्वतन्त्रत-संग्राम बिना किसी विशेष रक्तपात के जीता जा सका- उस में जन नेताओं के समर्पित भावनाओं को ही श्रेय जाता है। तब उसमें से किसी में भी न तो महत्त्वाकांक्षा थी, न पूर्वाग्रह, तथा न सेवा के फल की कामना थी न यश की। सर फरोशी की तमन्ना- अर्थात् सच्चे समर्पण की भावना का जहाँ उदय होगा वहीं उद्देश्य सार्थक होते चले जायेंगे। समर्पण में आशाओं, आकांक्षाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। पारमार्थिक साधनाओं में या आत्मोपलब्धि, मोक्ष के लिए समर्पित होने के लिए सम्पूर्ण कामनाएँ नष्ट करनी पड़ती हैं। मार्गदर्शक या ध्येय की प्रामाणिकता सिद्ध हो जाय तो फिर कर्तव्य में अवांछनीयता की गुंजाइश रहती ही नहीं।

अन्तःकरण में न कोई छल है न छद्म अपनी बौद्धिक क्षमताएँ, सक्रियता, प्रगति सब ध्येय के प्रति अर्पित हों, यही सच्ची साधना है। यह सौभाग्य जिन प्रयोजनों के लिए मिल जाते हैं, चाहे वह सांसारिक हों या आध्यात्मिक उनकी सफलता की आधी मंजिल तत्काल पूर्ण हो जाती है। साथ ही उस समर्पित आत्मा को ईश्वर सान्निध्य का एक ऐसा दिव्य लाभ इसी साधना से मिल जाता है जिसके लिए योगाभ्यास और जन्म-जन्मान्तरों की कठिन और लंबी साधना पूरी करनी पड़ती है। सत्प्रवृत्तियों, उच्च आदर्शों को समर्पित जीवन का अर्थ है- परमात्मा को समर्पित जीवन। ऐसे साधक के लिए ही भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है, ''तू अपना मन और बुद्धि मेरे ईश्वरीय प्रयोजनों की पूर्ति में लगा। इस तरह तू मेरे में ही निवास करेगा, मेरे को ही प्राप्त होगा इसमें कुछ संशय नहीं। सच्चे समर्पण की यही फलश्रुति है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मा और परमात्मा का मिलन-संयोग

सर्वशक्तिमान परमेश्वर और उसका सान्निध्य

प्रत्येक कर्म का कोई अधिष्ठाता जरूर होता है। परिवार के वयोवृद्ध मुखिया के हाथ सारी गृहस्थी का नियन्त्रण होता है, मिलों-कारखानों की देखरेख के लिये मैनेजर होते हैं, राज्यपाल-प्रान्त के शासन की बागडोर सँभालते हैं, राष्ट्रपति सम्पूर्ण राष्ट्र का स्वामी होता है। जिसके हाथ में जैसी-विधि-व्यवस्था होती है उसी के अनुरूप उसे अधिकार भी मिले होते हैं। अपराधियों की दण्ड व्यवस्था, सम्पूर्ण प्रजा के पालन-पोषण और न्याय के लिये उन्हें उसी अनुपात से वैधानिक या सैद्धान्तिक अधिकार प्राप्त होते हैं। अधिकार न दिये जायें तो लोग स्वेच्छाचारिता, छल-कपट और निर्दयता का व्यवहार करने लगें। न्याय व्यवस्था के लिये शक्ति और सत्तावान होना उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी है।

इतना बड़ा संसार एक निश्चित व्यवस्था पर ठीक-ठिकाने चल रहा है, सूरज प्रतिदिन ठीक समय से निकल आता है, चन्द्रमा की क्या औकात जो अपनी माहवारी ड्यूटी में रत्तीभर फर्क डाल दे, ऋतुयें अपना समय आते ही आती और लौट जाती हैं, आम का बौर बसन्त में ही आता है, टेसू गर्मी में ही फूलते हैं, वर्षा तभी होती है जब समुद्र से मानसून बनता है। सारी प्रकृति, सम्पूर्ण संसार ठीक व्यवस्था से चल रहा है, जो जरा-सा इधर-उधर हुआ कि उसने मार खाई। अपनी कक्षा से जरा डाँवाडोल हुये कि एक तारे को दूसरा खा गया। जीवन-क्रम में थोड़ी भूल हुई कि रोग-शोक, बीमारी और अकाल-मृत्यु ने झपट्टा मारा। इतने बड़े संसार का नियामक परमात्मा सचमुच बड़ा शक्तिशाली है। सत्तावान न होता तो कौन उसकी बात सुनता। दण्ड देने में उसने चूक की होती तो अनियमितता, अस्त-व्यस्तता और अव्यवस्था ही रही होती। उसकी दृष्टि से कोई भी छुपकर पाप और अत्याचार नहीं कर सकता। बड़ा कठोर है वह, दुष्ट को कभी क्षमा नहीं करता। इसलिये वेद ने आग्रह किया है-

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बा कस्मैदेवाय हविषाविधेम।।

—ऋ० वेद १०।१२।४

हे मनुष्यों! बर्फ से आच्छादित पहाड़, नदियाँ, समुद्र जिसकी महिमा का गुणगान करते हैं। दिशायें जिसकी भुजायें हैं हम उस विराट् विश्व पुरुष परमात्मा को कभी न भूलें।

गीता के "येन सर्वमिदं ततम्" अर्थात् "यह जो कुछ है परमात्मा से व्याप्त है" की विशुद व्याख्या करते हुये योगीराज अरविन्द ने लिखा है—

"यह सम्पूर्ण संसार परमात्मा की ही सावरण अभिव्यंजना है। जीव की पूर्णता या मुक्ति और कुछ नहीं भगवान् के साथ चेतना, ज्ञान, इच्छा, प्रेम और आध्यात्मिक सुख में एकता प्राप्त करना तथा भागवती शक्ति के कार्य सम्पादन में अज्ञान, पाप आदि से मुक्त होकर सहयोग देना है। यह स्थिति उसे तब तक प्राप्त नहीं होती जब तक आत्मा अहङ्कार के पिंजरे में कैद है, अज्ञान में आवृत्त है तथा उसे आध्यात्मिक शक्तियों की सत्यता पर विश्वास नहीं होता। अहङ्कार का जाल, मन, शरीर, जीवन, भाव, इच्छा, विचार, सुख और दुःख के संघर्ष, पाप, पुण्य, अपना-पराया आदि के जटिल प्रपंच मनुष्य में स्थित एक उच्चतर आध्यात्मिक शक्ति के बाह्य और अपूर्ण रूपमात्र हैं। महत्ता इसी शक्ति की है, मनुष्य की नहीं, जो प्रच्छन्न रूप से आत्मा में अधिगत है।"

योगीराज के इस निबन्ध से तीन अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त व्यक्त होते हैं। (१) यह जो संसार है परमात्मा से व्याप्त है उसके अतिरिक्त और सब मिथ्या है, माया है, भ्रम है, स्वप्न है। (२) मनुष्य को उसकी इच्छानुसार सृष्टि-संचालन के लिये कार्य करते रहना चाहिये। (३) मनुष्य में जो श्रेष्ठता, शक्ति या सौन्दर्य है वह उसके दैवी गुणों के विकास पर ही है।

मनुष्य जीवन के सुख और उसकी शान्ति के लिये इन तीनों सिद्धान्तों का पालन ऐसा ही पुण्य फलदायक है जैसा त्रिवेणी स्नान करना। मनुष्य दुष्कर्म अहंकार से प्रेरित होकर करता है पर वह बड़ा क्षुद्र प्राणी है, जब परमात्मा की मार उस पर पड़ती है, तो बेहाल होकर रोता चिल्लाता है। सुख तो उसकी इच्छाओं के अनुकूल सात्विक दिशा में चलने में, प्राकृतिक नियमों के पालन करने में ही है। अपनी क्षणिक शक्ति के घमण्ड में आया हुआ मनुष्य कभी सही मार्ग पर नहीं चलता इसीलिये उसे सांसारिक कष्ट भोगने पड़ते हैं। परमात्मा ने यह व्यवस्था इतनी शानदार बनाई है कि यदि सभी मनुष्य इसका पालन करने लगें तो इस संसार में एक भी प्राणी दुःखी और अभावग्रस्त न रहे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईश्वर उपासना मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है। नदियाँ जब तक समुद्र में नहीं मिल जातीं अस्थिर और बेचैन रहती हैं। मनुष्य की असीमता भी अपने आपको मनुष्य मान लेने की भावना से ढकी हुई है। उपासना विकास की प्रक्रिया है। संकुचित को सीमा रहित करना, स्वार्थ को छोड़कर परमार्थ की ओर अग्रसर होना, ''मैं'' और मेरा छुड़ाकर 'हम' और 'हमारे' की आदत डालना ही मनुष्य के आत्म-तत्व की ओर विकास की परम्परा है। यह तभी सम्भव है जब सर्वशक्तिमान परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करलें, उसकी शरणागति की प्राप्ति हो जाय। मनुष्य रहते हुये मानवता की सीमा को भेदकर उसे देवस्वरूप में विकसित कर देना ईश्वर की शक्ति का कार्य है। उपासना का अर्थ परमात्मा से उस शक्ति को प्राप्त करना ही है।

जान-बूझकर या अकारण परमात्मा कभी किसी को दण्ड नहीं देता। प्रकृति की स्वच्छन्द प्रगति प्रवृत्ति में ही सबका हित नियन्त्रित है। जो इस प्राकृतिक नियम से टकराता है वह बार-बार दुःख भोगता है और तब तक चैन नहीं पाता जब तक वापस लौटकर फिर उस सही मार्ग पर नहीं चलने लगता है। भगवान् भक्त की भावनाओं का फल तो देते हैं किन्तु उनका विधान सभी संसार के लिये एक जैसा ही है। भावनाशील व्यक्ति भी जब तक अपने पाप की सीमायें नहीं पार कर लेता तब तक अटूट विश्वास, दृढ़ निश्चय रखते हुये भी उन्हें प्राप्त नहीं कर पाता। अपने से विमुख प्राणियों को भी वह दुःख दण्ड नहीं देता, दुख दण्ड देने की शक्ति तो उसके विधान में ही है। मनुष्य का विधान तो देश, काल और परिस्थितियोंवश बदलता भी रहता है किन्तु उसका विधान सदैव एक जैसा ही है। भावनाशील व्यक्ति भी उसकी चाहे कितनी ही उपासना करे, सांसारिक कर्त्तव्यों की अवलेहना कर या दैवी-विधान का उल्लंघन कर कभी सुखी नहीं रह सकते। जैसा कर्मबीज वैसा ही फल यह उसका निश्चल विधान है। दूसरों का तिरस्कार करने वाला कई गुना तिरस्कार पाता है। परमार्थ उसी तरह लौटकर असंख्य गुने सुख पैदाकर मनुष्य को तृप्त कर देता है। सुख और दुःख, बन्धन और मुक्ति मनुष्य के कर्म के अनुसार ही प्राप्त होते हैं। दुष्कर्मों का फल भोगने से मनुष्य बच नहीं सकता, इस विधान में कहीं राई-रत्ती भर भी गुञ्जाइश नहीं है।

अशुभ कर्मों का सम्पादन और देह का जड़ अभिमान ही मनुष्य को छोटा बनाये हुये है। शुभ-अशुभ कर्मों के फलस्वरूप सुख-दुःख का भोक्ता न होने पर भी आत्मा मोह वश होकर दुःख भोगती है। ''मैं देह हूँ, मुझे सारे अधिकार मिलने ही चाहिये'' यह मान लेने से जीव स्वयं कर्त्ता-भोक्ता बन जाता है और इसी कारण वह ''जीव'' कहलाता है। जब तक वह इतनी- सी सीमा में रहता है तब तक उसकी शक्ति भी उतनी ही तुच्छ और संकुचित बनी रहती है। जब वह इस भ्रम रूप देहाव्यास का परित्याग कर देता है तो वह शिव-स्वरूप, ईश्वर-स्वरूप हो जाता है। उसकी शक्तियाँ विस्तीर्ण हो जाती हैं और वह अपने आपको अनन्त शक्तिशाली, अनन्त आनन्द में लीन हुआ अनुभव करने लगता है।

अपनी तुच्छ सत्ता को परमात्मा की शरणागति में ले जाने से मनुष्य अनेकों कष्ट-कठिनाइयों से बच जाता है। गृहपति की अवज्ञा करके जिस तरह घर का कोई भी सदस्य सुखी नहीं रह सकता, उसी प्रकार परमात्मा का विरोधी भी कभी सुखी या सन्तुष्ट नहीं रह सकता। परमात्मा की अवमानना का अर्थ है उसके सार्वभौमिक नियमों का पालन न करना। अपने स्वार्थ, अपनी तृष्णा की पूर्ति के लिये कोई भी अनुचित कार्य परमात्मा को प्रिय नहीं इस तरह की क्षुद्र बुद्धि का व्यक्ति ही उसके कोप का भाजन बनता है पर जो विश्व-कल्याण की कामना में ही अपना कल्याण मानते और तदनुसार आचरण करते हैं ईश्वर के अनुदान उन्हें उसी तरह प्राप्त होते हैं जैसे कोई पिता अपने सदाचारी, आज्ञा पालक और सेवा भावी पुत्र को ही अपनी सुख-सुविधाओं का अधिकांश भाग सौंपता है।

पापों का नाश हुये बिना, इन्द्रियों का दमन किये बिना, अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती। संसार में रहते हुये मनुष्य कर्मों से भी छुटकारा नहीं प्राप्त कर सकता। अतः निष्काम कर्मयोग परमात्मा की प्राप्ति और सांसारिक सुखोपभोग का सबसे सुन्दर और समन्वययुक्त धर्म है। निष्काम भावनाओं में पाप नहीं होता वरन् दूसरों के हित की, कल्याण की और सबको ऊँचे उठाने की विशालता होती है जिससे अन्तःकरण की पवित्रता बढ़ती है और सुख मिलता है, अतएव प्रत्येक को संसार समर का योद्धा बनकर ही जीवनयापन करना चाहिये। वह साहस, वह गम्भीरता और वह कार्य करने की भावना मनुष्य ब्रह्म-ज्ञान और ब्रह्म सानिध्यता में ही प्राप्त करता है।

ईश्वर का ज्ञान हो जाने पर सांसारिक संयोग-वियोग से उत्पन्न होने वाले सुख-दुख मनुष्य को बन्धन में नहीं बाँध पाते। यह कल्पित संसार जीव की अपनी कल्पना के सिवा और कुछ नहीं है। इससे घट-बढ़ हुआ ही करता है और इसमें जीव की ममता होने के कारण इसमें बढ़ती होने पर वह प्रसन्न होता है और कमी होने पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुःखी होता है। उदाहरण के लिए-जब परिवार में कोई बच्चा पैदा होता है तो लोग खुशी मनाते हैं। पर इससे परमात्मा की सृष्टि में कोई कमी नहीं आई। जीव तो अमर है जैसे पहले था, वैसे ही अब भी है, केवल पंच भौतिक तत्वों का एक शरीर के रूप में संयोग हुआ। इसी प्रकार कोई मर जाता है तो दुःख मानते हैं पर पहली स्थिति की तरह इस बार भी परमात्मा की सृष्टि में कोई बढ़ोत्तरी नहीं हुई। पंच भौतिक शरीर का वियोग मात्र हुआ, जीव तो अपने मूल-रूप में अब भी विद्यमान है। इस गूढ़ रहस्य को न जानने के कारण ही मनुष्य सांसारिक बन्धनों में बँधकर तरह-तरह के दुःख भोगता है। अतः कल्याणकारी पुरुष के लिये बादल के समान क्षण-क्षण रङ्ग बदलने वाले विनाशशील व्यावहारिक जगत में मोह का सम्बन्ध न बाँधकर अविनाशी और अचल परम सत्ता में चित्त को जोड़ देने और लोक-कल्याण के लिये निष्काम कर्म करने में ही इस जीवन की सार्थकता है।

सद्-प्रेरणायें प्रत्येक मनुष्य के अन्तःकरण में छिपी रहती हैं। दुष्प्रवृत्तियाँ भी उसी के अन्दर होती हैं अब यह उसकी अपनी योग्यता, बुद्धिमत्ता और विवेक पर निर्भर है कि वह अपना मत देकर जिसे चाहे उसे विजयी बनादे। चित्त का मूल स्वभाव शान्त है, आत्मा आनन्दमय है, जो इस अपनी मूल प्रवृत्ति को डिगाता नहीं अर्थात् सद्प्रेरणाओं में स्थिर रहता है, जगत में वही योद्धा अजेय है। जिसका स्वभाव किसी भी प्राणी पदार्थ के स्वभाव से अपने शान्त स्थिर चित्त के स्वभाव को चलायमान नहीं होने देता। जगत के प्राणी और पदार्थों में इन्द्रियों के द्वारा जिसके चित्त में क्षोभ उत्पन्न होता है वह निर्बल है। उसे अपनी निर्बलता का दण्ड भी भोगना ही पड़ता है। सुख का उपभोग तो वहाँ शक्तिमान शूरमा ही करते हैं।

परमात्मा जितना कृपालु है कठोर भी उससे कम नहीं है। उनकी एक शिव शक्ति भी है जो निरन्तर ध्वंस किया करती है। ईश्वर की आज्ञाओं की जो जान-बूझकर अवज्ञा करता है उसे परमात्मा की कठोरता का दण्ड भुगतना ही पड़ता है। संसार की व्यवस्था, गृह समाज, राज्य या राष्ट्र से भी सर्वोपरि है। अतः गृहपति, राज्यपाल या राष्ट्रपति की तुलना में उसके पास शक्तियाँ भी अतुल होती हैं। विश्व नियम का प्रजा में पालन कराने वाला परमात्मा बहुत बड़ा है, बड़ा कठोर, बड़ा शक्तिशाली है। गीता में भगवान कृष्ण ने स्वयं कहा है-मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूँ। इस समय इन लोगों को नष्ट करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ, इसलिये हे- अर्जुन! जो यह प्रतिपक्षी सेना है वह तेरे न मारने पर भी जीवित नहीं बचेंगे। बिना युद्ध के भी इनका नाश हो जायगा।''

-गीता ११।१३

बह परमात्मा सचमुच बड़ा शक्तिशाली, बड़ा बलवान् है। उसकी अवज्ञा करके कोई बच नहीं सकता। अतः उसी के होकर रहें, उसी की आज्ञाओं का पालन करें, इसी में मनुष्य मात्र का कल्याण है।

मनुष्य महान है और उससे भी महान उसका भगवान

सच कहा जाय तो इस संसार में दो वस्तु बड़ी अद्भुत और महत्त्वपूर्ण हैं। एक हमारा परमेश्वर और एक हम स्वयं। इन दोनों से बढ़कर और कुछ आश्चर्यजनक और सामर्थ्य सम्पन तत्व इस दुनिया में हमारे लिये हो ही नहीं सकते। यदि अपनी महिमा, और क्षमता को समझ लिया जाय और उसका बुद्धिमत्ता एवं व्यवस्था के साथ उपयोग किया जाय तो उसका परिणाम इतना बड़ा हो सकता है कि संसार के साथ ही हम स्वयं उसे देखकर दंग रह जायँ। मनुष्य देखने में जितना तुच्छ और हेय लगता है वस्तुतः वैसा नहीं है। उसकी सम्भावनाऐं अनन्त हैं। गड़बड़ इतनी भर पड़ जाती है कि वह अपने स्वरूप को समझ नहीं पाता और जितना कुछ समझा है, उसका सदुपयोग करने के लिये जो प्रचलित ढर्रा बदलना चाहिए उसके लिये मनोबल और भावनात्मक साहस एकत्रित नहीं कर पाता। यदि इस छोटी सी त्रुटि को सँभाल-सुधार लिया जाय तो उसके अद्भुत विकास की सारी सम्भावनायें खुल जाती हैं। जिस भी दिशा में उसे बढ़ना हो, उस पथ के समस्त अवरोध स्वयमेव हट जाते हैं।

देवताओं की चर्चा कही- सुनी बहुत जाती हैं पर किसी ने उन्हें देखा नहीं है। यदि देव-दर्शन करने हों तो अपने परिष्कृत स्वरूप में अपने आप का दर्शन करना चाहिये। इस छोटे से कलेवर में समस्त देव शक्तियाँ एक ही स्थान पर केन्द्रीभूत मिल सकती हैं। स्थूल और कारण शरीरों में भूः भुवः स्वः पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग तीनों लोक सन्निहित हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र की तीनों शक्तियाँ इसी में भरी पड़ी हैं। दसों इन्द्रियों में दस दिगूपाल बसते हैं। मनुष्य जीवन एक समुद्र है जिसके आस-पास शेष सर्प, सुमेरु पर्वत, देव, असुर और कच्छप भगवान चिरकाल से विराजमान हैं और यह प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कोई आत्मबल का धनी उनका सदुपोयग करे और इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समुद्र में से रत्न निकाले। समुद्र मंथन की पौराणिक कथा पुरानी हो गई । इस कथानक की पुनरावृत्ति हममें से कोई भी कर सकता है यदि जीवन संघर्ष और जीवन के सदुपयोग की विधि-व्यवस्था और पद्धति समझ में आ जाय। समुद्र मंथन से १४ रत्न निकले थे हमारे लिये सिद्धियाँ और विभूतियाँ १४०० उपहार लेकर सामने प्रस्तुत हो सकती हैं। सचमुच हम स्वयं एक आश्चर्य हैं, काश! हमने अपने को समझ पाया होता और उसका श्रेष्ठतम उपयोग क्या हो सकता है इसका विनियोग समझ पाया होता तो इन परिस्थितियों में कदापि न पड़े होते जिनमें आज पड़े हुए हैं।

अपने आपे से भी बड़ा आश्चर्य है- अपना भगवान। उसके एक विनोद कल्लोल भर का प्रयोजन पूरा करने के लिये यह इतना बड़ा विश्व बनकर खड़ा हो गया है जिसकी विशालता की कल्पना तक कर सकना कठिन है। वह अकेला था, उसकी इच्छा अपना विस्तार देखने की-अपने आप में रमण करने की हुई, सो इस इच्छा मात्र ने इतने विशाल विश्व का सृजन खड़ा कर दिया। यह तो उसकी इच्छा का चमत्कार हुआ। उसकी सामर्थ्य और क्रिया का परिचय तो प्राप्त करना अभी शेष ही रह गया। मनुष्य मुद्दतों से प्रकृति के रहस्य जानने और उसकी ईथर, विद्युत, आणविक आदि शक्तियों के उपयोग का मर्म समझने के लिये चिरकाल से प्रयत्न कर रहा है। इस पुरुषार्थ से उसे कुछ मिला भी है। उसका परिणाम इतना ही है कि छोटा बच्चा इस गुब्बारे को पाकर उछल-कूद ही सके। पर प्रकृति के जितने रहस्य अभी जानने को शेष हैं उसकी तुलना में प्राप्त उपलब्धियाँ उतनी ही कम हैं जितनी कि पर्वत की तुलना में धूलि का एक कण। भगवान की अगणित कृतियों से अति तुच्छ सी कृति अपनी धरती का वैभव इतना विशाल है कि मनुष्य की तृष्णा, इच्छा और कल्पना से असंख्य गुना वैभव उसमें भरा पड़ा है। फिर समस्त ब्रह्मांडों से मिलकर बने हुए इस महान सृजन में भरी विभूतियों की बात सोची ही कैसे जाय?

इतने विशाल वैभव से भरे हुए विश्व को एक विनोद उल्लास की तरह बनाने और चलाने वाला परमेश्वर यदि समग्र रूप से मनुष्य की कल्पना में आ सका होता तो कितना सुखद होता। पर कहाँ मनुष्य कहाँ उसकी कल्पना, इनकी तुच्छता और भगवान की विशालता की आपस में कोई संगति नहीं बैठती उसका समग्रस्वरूप तो सत्‌चित आनन्द से-सत्यं शिवं सुन्दरम् से इतना ओत-प्रोत है कि उसकी एक बूँद पाकर भी मनुष्य कृतकृत्य हो सकता है।

निस्सन्देह हमारा आपा महान् है और निश्चय ही हमारा परमेश्वर अत्यन्त ही महान है। इन दोनों के अतिरिक्त एक तीसरा आश्चर्य और शेष रह जाता है वह है, इन दोनों के मिलन से उत्पन्न होने वाली वह धारा जिसमें सन्तोष और शान्ति की, आनन्द और उल्लास की, सुख और साधनों की असीम तरंगें निरन्तर उद्‌भूत होती रहती है। यों जब भी दो श्रेष्ठताऐं मिलती हैं तब उनके सुखद परिणिम ही होते हैं। ऋण और धन विद्युत धाराऐं मिलकर रोमांचकारी शक्ति प्रवाह में परिणत हो जाती हैं और उनके द्वारा अनोंखे काम सम्पन्न होते हैं। स्त्री और पुरुष का मिलन न केवल हृदय की कली को खिला देता है वरन् एक नये परिवार, नये समाज, का सृजन ही आरम्भ कर देता है। आत्मा और परमात्मा का मिलन कितना सुखद कितना सक्षम और कितना अद्‌भुत हो सकता है ? इसकी कल्पना भी कर सकना यदि हमारे लिये सम्भव रहा होता तो तृष्णा-वासना की जिस फूहड़ परितृप्ति के लिये मृग-मरीचिका में भटकते फिर रहे हैं उसे छोड़कर अपनी गतिविधियों इस दिशा में बदलते जिसमें उस परम मिलन से उत्पन्न होने वाली अजस्र शान्ति और शक्ति की सम्भावना प्रत्यक्ष प्रस्तुत है।

आत्मा और परमात्मा की दो परम सत्ताओं के परस्पर मिलन के प्रयत्न को ही योग कहते हैं। योग शब्द का अर्थ ही जोड़ना या मिलन है। किसका जोड-किससे जोड़-इसका एक ही उत्तर है, आत्मा से परमात्मा का मिलन। यह प्रक्रिया सम्पन्न की जा सके तो उसके परिणाम और फलितार्थ भी उतने ही अद्‌भुत हो सकते हैं जितने कि ये दोनों तत्व स्वयं में अद्‌भुत हैं। बूँद समुद्र में मिल जाय तो वह खोती कुछ नहीं अपनी व्यापकता बढ़ाकर स्वयं समुद्र बन जाती है। पानी दूध में मिलकर कुछ खोता नहीं, अपना मूल्य ही बढ़ा लेता है। लोहा पारस को छूकर घाटे में थोड़े ही रहता है। यह स्पर्श उसके सम्मान की वृद्धि ही करता है। आत्मा और परमात्मा का मिलन निस्सन्देह आत्मा के लिये बहुत ही श्रेयस्कर है पर इसके योगदान से परमात्मा भी कम प्रसन्न नहीं होता, इस व्यक्त विश्व में उसकी-अव्यक्त सत्ता रहस्यमय ही बनी रहती है, जो हो रहा है वह पर्दे के पीछे अदृश्य ही तो है। उसे मूर्तिमान दृश्य बनाने के लिए ही तो यह विश्व सृजा गया था। जड़ पदार्थों से वह प्रयोजन पूरा कहाँ होता है। चैतन्य जीवधारी के बिना इस धरती का समस्त वैभव सूना अनजाना ही पड़ा रहेगा। पदार्थों का मूल्य तभी है जब उनका उपयोग सम्भव हो और उनका उपयोग चेतन आत्मा ही कर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती है। इस विश्व में जो चेतन समाया हुआ है उसका प्रतीक प्रतिनिधि मनुष्य है। मनुष्य के सहयोग के बिना परमात्मा का वह प्रयोजन पूरा नहीं होता जिसके निमित्त इस सृष्टि को सृजा गया था, परमेश्वर अकेला था, उसने बहुत होने की इच्छा की। बहुत बने तो जरूर पर यदि उसके अनुरूप, उस जैसे न हुए तो उस सृजन का उद्देश्य कहाँ पूरा हुआ? आनन्द तो समान स्तर की उपलब्धि में होता है। बन्दर और सुअर का साथ कहाँ जमेगा। आदमी की शादी कुतिया से कैसे होगी। पानी में लोहा कैसे घुलेगा। बच्चों का खेल बच्चों में और विद्वानों की गोष्ठी विद्वानों में जमती है, हलवाई और पहलवान का सङ्ग कब तक चलेगा। कसाई और पंडित की दिशा अलग है। मनुष्यों में ऐसे भी कम नहीं हैं जो परमेश्वर की इच्छा और दिशा से बिलकुल विमुख होकर चलते हैं। असुरता को पसन्द और वरण करने वाले लोगों की कमी कहाँ है? सच पूछा जाय तो माया ने सभी की बुद्धि को तमसाछन्न बनाकर अज्ञानान्धकार में भटका दिया है और वे सुख की तलाश आत्म-तत्व में करने की अपेक्षा उन जड़ पदार्थों में करते हैं जहाँ उसके मिलन की कोई सम्भावना नहीं है। मृग तृष्णा में भटकने का दोष बेचारे नासमझ हिरन पर ही लगाया जाता है। वस्तुतः हम सब समझदार कहलाने पर भी नासमझ की भूमिका ही प्रस्तुत कर रहे हैं और आत्मानुभूतियों का द्वार खोलने की अपेक्षा जड़ पदार्थों में सुख पाने की-बालू में तेल निकालने जैसी विडम्बना में उलझ पड़े हैं। जिस उपहासास्पद स्थिति में हमारा चेतन उलझ गया है उसमें न उसे सुख मिलता है न शान्ति ही, उलटी शोक-सन्ताप भरी उलझनें ही सामने आकर खिन्नता उत्पन्न करती हैं।

इन परिस्थितियों में उलझे हुए ईश्वर की अभीप्सित दिशा में चलने और उसके विनोद में सहचर बनने वाले व्यक्ति बनते ही कहाँ हैं? अन्धी भेड़ों की तरह हम सब तो शैतान के बाड़े में जा धँसे। ईश्वर का विनोद प्रयोजन पूरा कहाँ हुआ? उसे साथी-सहचर कहाँ मिले? सृष्टि बनी तो सही-जड़ चेतन भी उपजे पर भगवान का खेल जिसमें विनोद और उल्लास का निर्झर निरन्तर झरना चाहिए था अवरुद्ध और शुष्क ही रह गया। शैतान ने भगवान का खेल ही बिगाड़ दिया। यों यह भी एक खेल है पर वैसा नहीं जैसा कि चाहा गया था। इस व्यवधान को हटा सकने में समर्थ जो आत्माऐं परमात्मा की विनोद मण्डली में सम्मिलित हो जाती हैं वे उसकी प्रसन्नता का कारण भी बनती हैं। अपने को जो परमेश्वर के समीप ले पहुँचते हैं, इस विश्व को अधिक सुन्दर बनाने के भगवत् प्रयोजन में साथी बनते हैं निस्सन्देह वे परमात्मा की प्रसन्नता बढ़ाते हैं, और उसके इस संसार की गरिमा को प्रखर बनाते हैं। ऐसी आत्माओं का मिलना परमात्मा को भी प्रिय एवं सन्तोषजनक ही लगता है।

भक्त भगवान को तलाशता है और भगवान भक्त को ढूँढ़ते हैं। कैसी आँख-मिचौनी है कि कोई किसी को मिल नहीं पाता। तथाकथित भक्तों की कमी नहीं वे तलाशते भी हैं पर मिल नहीं पाते। इसलिए कि उन्हें न तो भगवान का स्वरूप मालूम है, न प्रयोजन, न मिलने का मार्ग। खुशामद और रिश्वत मनुष्यों को आकर्षित करने वाला फूहड़ तरीका है लोगों के अभ्यास में रहता है सो वे उसे भी भगवान पर प्रयुक्त करते हैं। लम्बी-चौड़ी शब्दावली का उच्चारण करके भगवान को इस प्रकार बहकाने का प्रयत्न करते हैं मानो वह उच्चारण को ही यथार्थ समझता हो और मानो अन्तरंग की स्थिति का उसे पता ही नहीं। स्तोत्र पाठ और कीर्तनों की आवाज हमें सुनाई पड़ती है यदि उसके मूल में मिलन की भावना भी सन्निहित रही होती तो कितना अच्छा होता। पर मिलन का तो अर्थ ही नहीं समझा जा सकता। मिलन का अर्थ होता है समर्पण-समर्पण का अर्थ है विलीन होना। बूँद जब समुद्र में मिलती है तो अपना स्वरूप, स्वभाव सभी खो देती है और समुद्र की तरह ही लहराने लगती है। चूँकि समुद्र खारा है इसलिये बूँद अपने में भी खारापन ही भर लेती है। कोई ऐसा चिह्न शेष नहीं रहने देती, जिससे उसका अस्तित्व अलग से पहचाना जा सके। ईश्वर से मिलन का अर्थ अपने आप को गुण, कर्म स्वभाव की दृष्टि से ईश्वर जैसा बना लेना और अपनी आकांक्षाओं तथा गतिविधियों को वैसा बना लेना जैसा कि ईश्वर की हैं अथवा उसे हमसे अभीष्ट हैं। मिलन का इतना दायरा जो समझ सकता है उसी की चेष्टायें तद्नुरूप हो सकती हैं। जिसने वस्तुतः स्थिति को समझा नहीं, वह चापलूसी का-खुशामदखोरी का धन्धा अपनाकर वैसे ही ईश्वर को भी अपने वाक् जाल में बाँधना चाहता है जैसे कि अहङ्कारी और मूर्ख लोगों को चापलूस अपने जाल में फँसाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं।

दूसरा तरीका ओछे लोगों का कुछ प्रलोभन या रिश्वत देकर किसी को अपने पक्ष में करने का रहता है। वे इस हथियार से ही लोगों से अपना मतलब निकालते हैं थोड़ी रिश्वत देकर फायदा उठाने की कला उन्हें मालूम रहती है। ऐसे ही ईश्वर को भी थोड़ा प्रसाद, वस्त्र, छत्र, मन्दिर आदि के प्रलोभन देकर उससे अपनी भौतिक आकांक्षायें पूरा करा लेने की घात लगाये रहते हैं। वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

याचनायें उनके पुरुषार्थ के अनुरूप हैं या नहीं, उन्हें सँभालने, सदुपयोग कर सकने की क्षमता भी है या नहीं, वे नीति-न्याय एवं औचित्य युक्त भी हैं या नहीं, इतना सोचने की किसे फुरसत। ईश्वर हमारी कामनाएँ पूरी करे और बदले में थोड़ा या उपहार रिश्वत के रूप में दे दें। इतनी ही बुद्धि इन तथाकथित भक्तों की काम करती है और वे शब्दाडम्बर तथा उपहार प्रलोभन के तुच्छ आधारों से ऊँची बात सोच ही नहीं पाते। फलस्वरूप उन्हें खाली हाथ ही रहना पड़ता है। इस तथाकथित भक्तों में से किसी को भी भगवान नहीं मिलता और उसके सारे क्रिया कृत्य निष्फल चले जाते हैं।

भगवान को भी भक्त नहीं मिलते और उसे भी इस उपलब्धि के आनन्द से वंचित रहना पड़ता है। माता बच्चे को गोद में तब उठाती है जब उसकी टट्टी से सनी हुई देह की सफाई हो जाती है। बच्चा भले ही रोता रहे पर जब तक वह गन्दगी से सना है गोदी में नहीं उठाया जायेगा। उसे माता की निष्ठुरता कहा जाय-कहते रहें पर बात तो उसी तरह बनेगी जो उचित है। सफाई आवश्यक है। उसके बिना गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी। मनुष्यों को अपने कषाय-कल्मषों की मलीनता धोनी ही पड़ेगी। अन्तःकरण को निर्मल और निश्चल बनाना ही पड़ेगा इसके बिना उसकी गणना उन भक्तों में न हो सकेगी जो प्रभु से मिलन का लाभ उठा सकने के अधिकारी होते हैं।

दूसरा कदम है ईश्वर की इच्छानुरूप अपने को ढाल लेने का साहस। पतिव्रता स्त्री अपने स्वभाव, आचरण एवं क्रिया-कलाप को पति की इच्छानुरूप ढाल लेती है। इसके बिना दाम्पत्य जीवन कैसा? मिलन का आनन्द कहाँ? समर्पण के आधार पर ही अद्वैत के रूप में परिणत किया जाता है। ईश्वर की इच्छा को अपनी इच्छा बनाकर-उसके संकेत और निर्देशों को ही अपनी आकांक्षा और क्रिया में जोड़ देना, इसी का नाम समर्पण है, मिलन की साधना इसी से पूरी होती है। अपनी इच्छाओं को पूरी करने के लिये ईश्वर के आगे गिड़गिड़ाना और नाक रगड़ना, भला यह भी कोई भक्ति है। लोभ और मोह की पूर्ति के लिए दाँत निपोरना भला यह भी कोई प्रार्थना है? इस प्रकार की भक्ति को वेश्यावृत्ति ही कहा जा सकता है। भौतिक स्वार्थ के लिए किए गये क्रिया-कलापों को ईश्वर के दरबार में भक्ति संज्ञा में नहीं गिना जा सकता। वहाँ तो भक्त की कसौटी यह है कि किसने अपनी कामनाओं और वासनाओं को तिलाञ्जलि देकर ईश्वर की इच्छा को अपनी इच्छा बनाया और उसकी मर्जी के अनुरूप चलने के लिए कठपुतली की तरह कौन तैयार हो गया? जो इस कसौटी पर खरा उतरता है-वही भक्त है। भक्त भगवान को अपनी मर्जी पर चलाने के लिए विवश नहीं करता वरन् उसकी इच्छा से अपनी इच्छा मिलाकर अपनी विचार प्रणाली एवं कार्य-पद्धति का पुनर्निर्माण करता है। तब उसके सामने इस विश्व को अधिक सुन्दर, अधिक समुन्नत और अधिक श्रेष्ठ बनाने की ही एकमात्र इच्छा शेष रह जाती है। अपने आपको काया की तथा परिवार की तुच्छता में आवद्ध नहीं करता वरन् सबमें अपनी आत्मा को-अपनी आत्मा में सबको समाया हुआ समझकर लोक-मङ्गल के लिये जीता है और वसुधैव कुटुम्बकम् के अनुरूप अपनेपन की परिधि अति व्यापक बना लेता है। तब उसे अपनी काया ईश्वर के देव मंदिर जैसी दीखती है और अपनी सम्पदा ईश्वर की पवित्र अमानत जैसी। जिसका उपयोग ईश्वरीय प्रयोजन के लिये ही किया जाता है।

इन मान्यताओं को अन्तःकरण में गहन श्रद्धा की तरह प्रतिष्ठापित कर लेने वाला व्यक्ति भक्त है। उसे ईश्वर दर्शन के रूप में किसी अवतार या देवता की काल्पनिक छवि को आँख से दीख पड़ने की बात बुद्धि उठाती ही नहीं। वह इसे दिवास्वप्न मात्र मानता और निरर्थक समझता है। उसका ईश्वर दर्शन अधिक वास्तविक और बुद्धि संगत होता है। जो अपनी विचारणा और प्रक्रिया में ईश्वर की प्रेरणा को चरितार्थ होते देखता है जिसकी आत्मा से ईश्वर के सत्पथ पर चलने की पुकार सुनाई पड़ती है समझना चाहिए उसमें ईश्वर बोलता है-बात करता है-साथ रहता है और अपनी गोदी में उठाने का उपक्रम करता है। भक्ति की सार्थकता इसी स्थिति में है।

हमारा आपा महान् है। निस्सन्देह परमेश्वर भी महान है। पर इन दोनों सत्ताओं का मिलन और भी महान है। यदि यह सम्भव हो सके तो उसे व्यक्ति का महान सौभाग्य और ईश्वर का महान सन्तोष ही कहा जायगा। इस मिलन के कितने महान परिणाम होते हैं उनकी झाँकी इस प्रयोजन को पूरा कर सकने वाले अपने निजी जीवन में अनुभव करते हैं और अपने समीपवर्ती संसार में भी।

ईश्वर और जीव का मिलन-संयोग

सृष्टि संचालन का क्रीड़ा-कौतुक रचने के लिए परमात्मा एक से बहुत बना। उसकी इच्छा हुई कि 'मैं अकेला हूँ-एक से बहुत हो जाऊँ'' उसकी यह इच्छा ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मूर्तिमान होकर सृष्टि के रूप में प्रस्तुत हो गई। "एकोऽहम् बहुस्याम्" का संकल्प साकार रूप धारण कर यह संसार बन गया। निर्माण होने के बाद उसका लक्ष्य और कार्यक्रम निर्धारित होना था सो इस प्रकार हुआ कि-बहुत भागों में विभक्त हुये ब्रह्म-विभाग पुनः एकता की ओर चले। अणु रूप में बिखरा हुआ जीवन पुनः विभु बना। बादल से छोड़ी हुई बूँदें अलग-अलग बरसें भले ही पर वे एकत्रित होकर पुनः समुद्र की रचना के लिये गतिशील भी बनी रहें। आत्माएँ अलग-अलग दीखते हुए भी उनकी गतिविधि पुनः इस अलगाव को मिटाकर एकता की ओर उन्मुख रहें। यही सृष्टि का लक्ष्य और कार्यक्रम बन गया। इस तथ्य के आधार पर जड़-चेतन सृष्टि की विविध-विधि गति-विधियाँ चलती रहती हैं।

बिछुड़ने की क्रिया के साथ इस सृष्टि की रचना तो हुई है पर आगे का कार्यक्रम मिलन और एकता पर आधारित है। समुद्र का पानी भाप बनकर अपने केन्द्र स्थल से बिछुड़ कर सुन्दर हिम प्रदेशों में जाकर बर्फ बन जाता है। किन्तु यह बिछुड़ने की प्रक्रिया देर तक स्थिर नहीं रहती। जैसे ही अवसर मिलता है, थोड़ी गर्मी का सहारा पाकर बर्फ पिघलती है और वह पानी जैसे-तैसे अपना मार्ग खोजता हुआ नदी-नालों में होता हुआ समुद्र की ओर दौड़ पड़ता है। बढ़ते हुये पानी की बेचैनी और दौड़-धूप तब तक समाप्त नहीं होती जब तक कि वह परिपूर्ण जलाशय समुद्र में मिलकर स्वयं भी उसी रूप में परिणत नहीं हो जाता। जल आरम्भ में भी पूर्ण था, भाप बन कर अपूर्णता उसे प्राप्त हुई तो उसे दूर करने का प्रयत्न अनेक हलचलों के रूप में दृष्टिगोचर होने लगा। इसी हलचल का नाम सृष्टि क्रम है। इसे अशान्ति भी कह सकते हैं। मिलन ही इस अशान्ति का उद्देश्य है और जब अपूर्णता दूर होकर पूर्णता की उपलब्धि हो जाती है तो दौड़-धूप भी समाप्त हो जाती है और अशान्ति भी।

मानव जीवन का यही क्रम है। नियति की व्यवस्था ने केन्द्रीय परिपूर्णता से बिछुड़ा दिया है। अब उसके सामने एक ही कार्यक्रम रह जाता है कि तेजी के साथ पुनः केन्द्र की ओर दौड़े और अपनी अपूर्णता को समझ कर पूर्णता में विलय हो जाय। इसी को जीवन लक्ष्य कहते हैं। मुक्ति, पूर्णता ब्रह्म निर्वाण आदि भी इसे ही कहा गया है।

बिछुड़ने की कष्टकर प्रक्रिया इसलिये चली कि जीव मिलन के आनन्द का आस्वादन कर सके। माता अपने शरीर का रक्त-माँस एकत्रित करके पेट में एक नन्हें शिशु की रचना करती है। जब तक वह शिशु रक्त-माँस के रूप में था या भ्रूण बन रहा था, तब तक उसमें कोई विशेष आकर्षण न था पर जब वह गर्भ परिपक्व होकर शरीर से बाहर निकल गया, बिछुड़ गया और माँ-माँ कह कर पुनः अपनी मां की गोद में आने के लिये विलाप करने लगा तो प्रेम भावना की लहरें उठने लगीं। माता उस बच्चे को छाती से लगा लेती है और उसके साथ मिलन का असीम आनन्द और प्रेम अनुभव करती है। बच्चे को भी मां के बिना चैन नहीं पड़ता। बिछुड़न ने मिलने की प्रेरणा दी और जैसे ही उसका प्रयत्न आरम्भ हुआ कि प्रेम बरसने लगा।

आत्मीय जन जब कभी बिछुड़ने के बाद पुनः मिलते हैं तो उस मिलन बेला में अत्यधिक आनन्द अनुभव होता है। पति-पत्नी दूर-दूर रहते हों और बहुत दिन बाद वे मिलते हैं तो उनके आनन्द की सीमा नहीं रहती है। कोई भी प्रेमी-सम्बन्धी हो परस्पर मिलते हुये सभी को प्रसन्नता होती है। कई बार तो यह आनन्द इतना बढ़ा-चढ़ा होता है कि इसके लिये लोग आवश्यक कार्यों को भी छोड़कर उस सहचर-आनन्द में निमग्न बने रहते हैं। कई छात्र पढ़ाई छोड़कर यार, दोस्तों के साथ मटरगश्ती में बहुत सारा समय लगा देते हैं। कारण एक ही है कि जहाँ भी प्रेम, एकता और आत्मीयता का दर्शन होगा वहीं मनुष्य शान्ति और सन्तोष प्राप्त करेगा।

ईश्वर प्राप्ति और ईश्वर भक्ति के लिये सच्चे मन से प्रयत्न करने वालों को असीम आनन्द की अनुभूति होती है। क्योंकि परमात्मा ही आत्मा का उद्गम केन्द्र, सजातीय और सच्चा स्नेही, सम्बन्धी है। सांसारिक प्रियजनों के साथ उठने-बैठने में जीव को इतना आनन्द आता है तो आत्मिक और वास्तविक प्रिय-प्रेमी परमात्मा के सान्निध्य में आनन्द क्यों नहीं आना चाहिये? जिनका मन उपासना में लगता नहीं, या जिन्हें आनन्द नहीं आता समझना चाहिये कि इन्होंने उपासना के तत्वज्ञान, आदर्श और विधान को अभी समझा ही नहीं है। पूजा का कर्मकाण्ड तो करते रहते हैं पर उपासना में आनन्द की अनुभूति उन भावनाओं पर निर्भर रहती है जो दो बिछुड़े हुओं को जोड़ने के लिये आवश्यक है।

इस लेखमाला के अन्तर्गत इन पंक्तियों में तो इतना ही बताना है कि इस संसार के जड़ चेतन प्रत्येक पदार्थ का कार्यक्रम वियोग दूर करके संयोग का आनन्दमय मिलन प्राप्त करना है। धातुओं की खानों का पता लगाने वाले अन्वेषक मिट्टी में मिले हुए धातु कणों की चाल और दिशा का हिसाब लगाकर यह निर्धारित करते हैं कि यहाँ से कितनी दूरी पर, किस दिशा में किस धातु की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कितनी बड़ी खान होनी चाहिये। बात यह है कि मिट्टी में हर धातु के कण मिले होते हैं। वे कण सूक्ष्म आकर्षण शक्ति से खिंचते हुये धीरे-धीरे अपने आप किसी दिशा में सरकते रहते हैं। धातु की बड़ी खान जहाँ होती है वहाँ से अपने सजातीय कणों को खींचने की एक चुम्बकीय विद्युतधारा काम करती रहती है। उसी के खिंचाव से धातुओं के कण अपनी-अपनी जाति की धातुओं की ओर सरकते चले जाते हैं और उनके इकट्ठे होते रहने से खानों में धातुओं की मात्रा निरन्तर बढ़ती रहती है।

आत्मा को मिट्टी में मिला हुआ धातु कण कहा जाय तो परमात्मा को एक विशाल खान कहा जायगा। छोटा अणु जब तक रेत में मिला रहता है, तब तक उसका कोई मूल्य और महत्त्व नहीं रहता, पर जब वह घिसटते-घिसटते खान में सम्मिलित हो जाता है तो उसका अस्तित्व सभी की दृष्टि में आता है और उस एकत्रित पदार्थ का उपयोग भी बहुत भारी होता है। आत्मा जब परमात्मा के समीप पहुँचती है, तो उसमें ईश्वरीय तत्वों की इतनी मात्रा बढ़ जाती है कि मनुष्य भी ईश्वर जैसा दीखता है। ऋषियों और महापुरुषों में इसी प्रकार की ईश्वरीय विशेषता रहती है। यह समीपता बढ़ते-बढ़ते जीव अन्ततः जीवनमुक्ति का ही अधिकार बन जाता है।

आत्मा और परमात्मा की एकता के साथ-साथ जिस परमानन्द एवं ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है, उसे पाकर जीव धन्य बन जाता है, इस एकता के लिए जहाँ उपासना, साधना और भावना का अवलम्बन करना आवश्यक होता है वहाँ यह भी अनिवार्य है कि जीवन की गतिविधियाँ प्रथकतावादी नहीं वरन् एकतावादी हों। अध्यात्म और अनात्म पुण्य और पाप, धर्म और अधर्म, उचित और अनुचित का निर्णय इसी आधार पर होता है कि उसके मूल में एकता की ओर बढ़ने की कितनी भावना सन्निहित है। नीति, धर्म और आचार शास्त्र का समस्त विधि-विधान इस एक तथ्य को ध्यान में रखकर ही रचा गया है।

समाज को विराट् ब्रह्म का स्वरूप माना गया है। गीता में अर्जुन को, रामायण में काकभुसुण्डि और कौशल्या को, भागवत में यशोदा को भगवान ने अपना विराट् रूप दिखाया है। वह समस्त विश्व ब्रह्माण्ड ही तो है। यह सारा संसार भगवान का ही रूप है, इस मान्यता को अन्तरात्मा में स्थिर कर लेने पर हर घड़ी परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं और साथ ही वह आनन्द-उल्लास भी अनुभव हो सकता है जो परमात्मा का दर्शन करते हुए होना चाहिए। इस भावना के अनुसार व्यक्ति का यही कर्तव्य निर्धारित होता है कि वह हर पदार्थ और हर प्राणी के प्रति सद्भावना रखे और हरेक से सद्व्यवहार बरते। विचारणा और क्रिया का यह स्तर धर्म और सदाचार पुण्य और परमार्थ ही कहलाता है।

संगठन और एकता से प्राप्त होने वाले लौकिक लाभों से सभी परिचित हैं। मिल-जुलकर काम करने से, प्रेम और आत्मीयता की भावना रखने से संगठित और समूहबद्ध रहने से अगणित प्रकार के शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक लाभ प्राप्त होते हैं इसकी जानकारी हम सब को है ही। इसलिए हर मंच से विचारशील व्यक्ति यही कहते रहते हैं कि हमें संगठित होना चाहिए, एकता रखनी चाहिऐ। कलियुग में तो संघशक्ति को ही प्रधान माना गया है। ''संघेशक्ति कलियुगे'' का मंत्र सभी की विचारणा में मौजूद है। तिनके मिलकर मजबूत रस्सी, कमजोर सींकें मिलकर बुहारी बनने का उदाहरण देकर हम लोग एक-दूसरे को समझाते रहते हैं कि फूट और प्रथकता से हानि एवं सङ्गठन और एकता से लाभ है। इस उद्देश्य के लिये अनेकों संस्थाऐं भी काम करती हैं। प्राचीनकाल में धर्म सम्प्रदायों का भी यही उद्देश्य था।

मानव जीवन को लौकिक सुविधा और सुरक्षा के लिये एकता की भावना जितनी आवश्यक है, आत्मिक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उसकी और भी अधिक आवश्यकता है। व्यक्ति जितना ही प्रथकतावादी, संकीर्ण, स्वार्थी, होगा, उतनी ही पाप वृत्ति उसे घेरे रहेंगी। जिसे अपना ही मतलब है, जो अपने ही लाभ और स्वार्थ की बात सोचता रहता है, उसे दूसरों के प्रति प्रेम और दर्द क्यों होगा ? ऐसा व्यक्ति अपने लाभ के लिये दूसरों का कुछ भी अहित कर सकता है। माँसाहार, चोरी, ठगी, हत्या, बेईमानी, धोखेबाजी आदि पापकर्मों के पीछे कर्त्ता की स्वार्थपरता संकीर्णता ही प्रधान रहती है। यदि दूसरे लोग भी अपने ही आत्मीय, स्वजन सम्बन्धी एवं भगवान के प्रतिनिधि दीखने लगें, सब में अपनी आत्मा दिखाई पड़े तो यह सम्भव नहीं कि मनुष्य कोई दुष्कर्म कर सके। संकीर्णता एवम् स्वार्थपरता ही समस्त प्रकार के कुकर्म कराती है। लोभी और कंजूसों में एक ही दुर्गुण होता है कि वे केवल अपनी ही बात सोचते रहते हैं। कई अध्यात्मवादी कहलाने वाले सज्जन भी इसी श्रेणी में जा बैठते हैं, उनकी भावना भी संसार को भाड़ में जाने देकर अपनी मुक्ति करने की रहती है। ऐसे लोग मुक्ति तो दूर अपना लौकिक जीवन भी सफल बनाने में समर्थ नहीं हो सकते।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाजवाद और साम्यवाद के सिद्धान्तों में इस बात पर जोर दिया गया है कि व्यक्ति की योग्यता एवं कमाई का लाभ सारा समाज उठावे। व्यक्तिगत प्रतिभा एवं क्षमता अधिक होने पर भी उससे उत्पन्न लाभों से वह व्यक्ति ही लाभान्वित न हो वरन् सारा समाज एक है इसलिये दूसरों को भी उसका लाभ मिले। अन्य बातों में इन वादों से मतभेद हो सकता है पर इतना अंश तो आध्यात्मिक आदर्शों की ही पुष्टि करता है कि व्यक्ति की सीमा उसके निज के छोटे दायरे में नहीं वरन् विश्व हित के व्यापक तथ्य से जुड़ी हुई है। व्यक्ति अपनी योग्यता चाहे जितनी बढ़ावे, उत्पादन चाहे जितना करे पर यह न सोचे कि इसका लाभ मुझे ही मिलना चाहिये। विचारणा और क्रिया आरम्भ करने से पूर्व यह सोचा जाना चाहिये कि इसका प्रभाव दूसरों पर क्या पड़ेगा ? विश्व हित की दृष्टि से मेरे विचार और कार्यों की क्या प्रतिक्रिया होगी।

दुष्कर्मों का आधार व्यक्तिगत संकीर्णता और स्वार्थपरता ही है। जब तक यह दुष्प्रवृत्तियाँ मनोभूमि में जड़ जमाये रहेंगी तब तक मनुष्य प्रकट न सही तो गुप्त रूप से, एक प्रकार से न सही तो दूसरे प्रकार से दुष्कर्म करता रहेगा और उसकी गतिविधियाँ संसार में विक्षोभ एवं सन्ताप उत्पन्न करती रहेंगी।

जीवन का लक्ष्य प्रथकता, बिछुड़न से पीछा छुड़ाकर प्रेम और एकता की ओर अग्रसर होना है ताकि बिछुड़ा हुआ अपने उद्गम परमात्मा के समीप पहुँचकर मिलन आनन्द लाभ कर सके। इसके लिए वे उपासना उपयोगी होती हैं जो जीव और ईश्वर की एकता अनुभव कराने में समर्थ होती है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति का जीवनक्रम एकता के आदर्शों के अनुकूल रहे। हम सब ईश्वर के अमर पुत्र आपस में भाई-बहिन हैं। परस्पर प्रेम और एकता की भावना से ओत-प्रोत सामूहिक हित के सत्कार्य करने और सद्भाव से ही तो स्वार्थपरता व हृदयों की वह दूरी समाप्त हो सकती है जो इस संसार में विभिन्न प्रकार के उपद्रव आये दिन खड़े करती रहती है।

शान्ति और सृष्टि के लिये सद्गति और जीवन मुक्ति के लिये एक ही मार्ग है, ईश्वरीय सृष्टि विधान के अनुसार भगवत इच्छा के अनुसार आचरण करना। भगवान ने अपने से जीवों को प्रथक करके उन्हें तेजी से अपनी ओर दौड़कर आने का खेल रचा है। इसी खेल को हम समझें। उसकी इच्छा पूर्ण करें। अपनी संकीर्णता छोड़ें। जो कुछ चारों ओर दिखाई पड़ता है उसके साथ एकता और आत्मीयता अनुभव करें और विश्व विराट् के लिए अपनी अहंता और संकीर्णता का आध्यात्मिक उत्सर्ग करते चलें। यह उपसर्ग ही जीवन लक्ष्य की प्राप्ति का मूल्य है। जो उसे चुकाने को तैयार है उसके लिए अभीष्ट वस्तु का प्राप्त कर सकना कुछ भी कठिन नहीं रह जाता है।

परमेश्वर के अजस्त्र अनुदान को देखें और समझें

बनाने और सँभालने वाले को अपनी वस्तु से स्वभावतः प्रेम होता है। हम मकान बनाते हैं, बगीचा लगाते हैं, चित्र बनाते हैं, पुस्तक रचते हैं, उनसे स्वभावतः लगाव और प्रेम होता है। ईश्वर ने हमें बनाया है, सँभाला है-और भविष्य में भी हमारी सँभाल रखने का उत्तरदायित्व उसी के कन्धों पर है, ऐसी दशा में उसका प्रेम भी हमें अनायास ही प्राप्त रहता है।

अपनी सन्तान को कौन प्यार नहीं करता है। पशुओं तक उनके लिए कष्ट सहते त्याग करते हैं, और अविकसित हृदय में भी ममता, आत्मीयता उगाते हैं। यदि ऐसा न होता तो उन जीव-जन्तुओं के शिशुओं का जीवन धारण ही कठिन हो जाता। मनुष्य तो अन्य बातों में अन्य जीवों से आगे होने के कारण सन्तान पालन के लिए और भी अधिक तत्पर रहता है। केवल उनके भरण-पोषण का ही नहीं-शिक्षा-दीक्षा, विवाह-शादी, रोटी-रोजगार, सुख-दुःख में भी पूरी सहायता करता है। अपना अधिकांश समय, प्यार और प्रयत्न उन्हीं के लिए नियोजित रखता है। यहाँ तक कि मरने के उपरान्त अपनी जीवन भर की कमाई भी उन्हीं के लिए उत्तराधिकार में छोड़ जाता है। अपने सृजन में ऐसा प्यार होना स्वाभाविक है।

हम परमेश्वर की सन्तान हैं। विकसित जीव अपनी सन्तान को अधिकतम दुलार देते हैं। ईश्वर को यदि प्राणधारी माना जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि वह सर्वोपरि सुविकसित प्राणी है। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य जैसी सर्व-साधन सम्पन्न सन्तान की उत्पत्ति कैसे करता। जन्म देकर ही कोई सहृदय अभिभावक अपनी सन्तान को भटकने के लिए नहीं छोड़ देता, फिर परमात्मा हम से विमुख कैसे हो सकता है। जब सन्तान के प्रति प्रेम होना सृष्टि का नियम है तो परमेश्वर का प्यार-अपनी सर्वोत्तम कृति-परम प्रिय सन्तान-मनुष्य के लिए क्यों नहीं होगा?

इस प्रेम की विशिष्टता का परिचय इसी से मिलता है कि हमें ईश्वर प्रदत्त अत्यधिक सुविधायें उपलब्ध हैं। ऐसा लगता है मानो यह सारा जगत हमारी ही सेवा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुविधा और प्रसन्नता के लिए बनाया हो। जिस ओर भी दृष्टि दौड़ाई जाय हर्षोल्लास प्रदान करने वाले साधनों का बाहुल्य दीखता है। छोटे बच्चों को अभिभावक सुन्दर खिलौने लाकर देते हैं। जिधर भी दृष्टि दौड़ाकर देखें उधर ही एक से एक बढ़कर सुन्दर-सुसज्जित, मधुर गतिशील और भाव भरे खिलौने भरे और खड़े दीखते हैं। कैसी सुरम्य है इसकी शोभा, कैसा महान है इसका सृजेता। मानवीय सुविधा का क्या ठिकाना। शरीर को ही लें, एक से एक अद्भुत क्षमता वाली इन्द्रियों के उपकरण जादू के पिटारे जैसा मन, ऋद्धि-सिद्धि जैसी प्रज्ञा। दर्पण से देखें तो देवता जैसा दीखता है वह अपना 'आपा'। जीवन जीवन में घुला देने वाली पत्नी, किलकते फुदकते बच्चे, वात्सल्य भरे अभिवादन, भुजाओं की तरह साथी-बन्धु तथा मित्र-गण। कितना सुन्दर है यह सब। आजीविका के साधन, मनोरञ्जन की सुविधायें, प्रगति पथ के सहायक गुरुजन, क्या नहीं है यहाँ? प्रकृति अपना आँचल ताने छाया कर रही है। सूरज, चन्द्र, तारे, बादल, पवन ऋतु परिवर्तन, क्या नहीं है यहाँ? वाहन, सहायक, पशु, वैज्ञानिक सुविधायें, इस सब सरंजाम पर दृष्टि डालते हैं तो परमेश्वर का प्रेम और अनुदान असीम मात्रा में अपने चारों ओर बिखरा पड़ा है। यह सब उसके प्रेम का प्रत्यक्ष परिचय नहीं तो और क्या है? जरा विचार करें, यदि हमारे पिता ने हाथ सकोड़ लिया होता, उपेक्षा दिखाई होती तो बन्दर, कबूतरों से भी घटिया जीवन ही जिया जा सकता था। अद्भुत और अनुपम सुविधायें जिनका हम उपभोग कर रहे हैं। अपने बलबूते उन्हें कैसे जुटाया जा सकता था।

वह हमारी अन्तरात्मा में विराजमान है। अहर्निशि साथ रहने वाले साथी की तरह वह सहायता करने के लिए सदैव उपस्थित रहता है। पग-पग पर आने वाली कठिनाइयों का वही समाधान करता है। विपत्ति की भयावह विभीषिकाओं से बचा लेने के लिए उसी की लम्बी भुजाऐं सहायता के लिए आगे आती हैं। संकट की घड़ी में धैर्य बँधाने वाला, सहारा देने वाला, रास्ता बताने वाला वही तो है। उत्ताल तरंगों वाले इस संसार सागर से हम उसी की नाव पर बैठकर तो पार होते हैं।। परमेश्वर के प्रेम में कमी कहाँ हैं? उसके अनुदानों में न्यूनता कहाँ ढूँढ़ी जा सकती है।

परमेश्वर के द्वारा अपने ऊपर अनवरत रूप से बरसते हुए प्रेम का कदाचित हम अनुभव कर सके होते तो उस अनुभूति की प्रतिक्रिया हमारे अन्तकरण में भी प्रेम प्रवाह उत्पन्न करती। गाय के वात्सल्य को यदि बछड़े ने समझा होता तो उसे लगता कि मैं निरीह नहीं हूँ। एकाकी नहीं हूँ। मेरा कोई है और किसी का मैं हूँ।

हम किसी के नहीं और कोई हमारा नहीं दूसरों की तो बात ही क्या अपने आप के भी हम नहीं हैं। स्थिति की विषमता यहाँ तक पहुँची है कि न आत्मा के हम और न आत्मा हमारा। न परमेश्वर हमारा और न परमेश्वर के हम। यह विडम्बना कैसे उत्पन्न हो गयी। अपने बिराने कैसे हो गये। अनन्य और अभिन्न आत्मीयता का प्रवाह कहाँ रुक गया? कैसे रुक गया?

यह विस्मृति की मूर्छना ही है जिसने अपने को पहचानने से वंचित कर दिया। प्रेम की अमृत वर्षा का अनुभव तक कर सकने में हम असमर्थ हो गये। हाय, हमारा यह क्या हो गया। मती रूपी सीता को कौन रावण हर ले गया। अपने लिए विलाप, रुदन और पतन ही क्यों रह गया? उत्कर्ष और आनन्द की समस्त उपलब्धियाँ कौन चुरा ले गया? हम एकाकी इस भयावह श्मशान में कहाँ आ भटके? आ क्यों गये? कौन यहाँ ले आया?

यह सारी माया इस अविद्या-मरीचिका की है जिसने जल में थल और थल में जल दिखाने की भ्रान्ति उत्पन्न कर दी। परमेश्वर का प्रेम यदि याद रहा होता तो उसके साथ डोरी भी बँधी रहती। तब जीवन की पतङ्ग झोंके खाती हुई-नष्ट होने के लिए इस गर्त में क्यों गिरती?

जिस परमेश्वर ने इतना दिया है। उसी का पल्ला पकड़े रहते तो विवेकरूपी चिन्तामणि का एकमात्र उपहार जो शेष रह गया है वह भी प्राप्त कर लेते। यदि वह रत्न मिल जाता तो फिर कोई अभाव क्यों प्रतीत होता, कोई कष्ट क्यों सताता? अभाव यहाँ है कहाँ-कष्ट यहाँ आया कहाँ से? इस स्वर्ग में कुत्साओं के लिए स्थान कहाँ है? कुण्ठाओं के लिए गुञ्जायश कहाँ है? परमेश्वर के राज्य में-परमेश्वर के पुत्र के लिए कष्ट-अभाव-यह कैसे हो सकता है?

अज्ञान ही है जो रुलाता है? अन्धकार ही है जो गिराता है। इस अज्ञान अन्धकार में भटक इसलिए रहे हैं कि परमेश्वर के प्रेम रूपी प्रकाश ने साथ रखने से इनकार कर दिया। यदि अपने अत्यन्त प्रिय पात्र के बरसते हुए प्रेम को अनुभव किया होता उससे लिपटने की, उसे साथ रखने की-अन्तःकरण में स्थान देने की चेष्टा की होती। यदि उससे लिपट जाते तो राम-भरत के मिलन जैसा आनन्द आता। तब राधा-कृष्ण की तरह, आत्मा और परमात्मा की एकता ने इस मधुवन में ऐसा रास रचाया होता कि यहाँ हास-उल्लास के अतिरिक्त और कुछ दीखता ही नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमेश्वर के प्रेम में न्यूनता ढूँढ़ना व्यर्थ है। अपनी दयनीय स्थिति के लिए दैव को दोष देना निरर्थक है। देखने के-सोचने के उलटे तरीके को बदलें। आत्मा और परमात्मा की सघनता को समझें। परमेश्वर के होकर रहें। उसके प्रकाश को अपनायें, उसकी तरह सोचें और उसके इशारे पर चलें तो वह हमारा हो जाय।

परमेश्वर का प्रसाद हम निरन्तर पा रहे हैं, उसे देख सकें तो उसे पाने के लिए व्याकुलता भी जग पड़े। इस महान जागरण में ही मानव जीवन की सार्थकता सन्निहित है।

ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कलाकृति असम्मानित न हो

कोई प्रतिष्ठित मूर्तिकार इस बात को ध्यान में रखकर मूर्ति बनाता है कि उसकी यह कृति सराही जाय और उसके निर्माण को, कलाकारिता को सम्मान मिले। अच्छे चित्रकार अपनी प्रतिष्ठा का भी ध्यान रखते हैं और जो चित्र बनाते हैं उनमें अपने सम्मान को भी जुड़ा रखते हैं। प्रत्येक कलाकार अपनी कला-कृतियों में अपनी गरिमा का ध्यान रखता है। यदि वह भौंड़ी या भद्दी होती है तो उस कृति का ही तिरस्कार, उपहास नहीं होता वरन् उसके सृजेता कलाकार का भी गौरव गिरता है।

ईश्वर की सर्वोत्तम कृति मनुष्य है। इसे बनाने तराशने में उसने अपनी कलाकारिता का अन्त कर दिया है। शरीर के एक-एक कल-पुर्जे की रचना और कार्य शैली पर विचार करते हैं तो विदित होता है कि संसार के समस्त वैज्ञानिक मिलकर ईश्वर निर्मित किसी एक अवयव की सही प्रतिकृति नहीं बना सकते। समस्त शरीर की रचना तो एक जादू के महल की तरह है।

मन का-मस्तिष्क का तो कहना ही क्या? गणक कम्प्यूटरी पर आश्चर्य किया जाता है पर विविध प्रोयोजनों के लिए बने हुए उत्कृष्टतम लाखों कम्प्यूटर मिलकर भी मस्तिष्कीय चेतना की तुलना नहीं कर सकते। मन की, चित्त की-बुद्धि की क्षमता का तो कहना ही क्या? संसार में दीखने वाला समस्त मानवीय कृतित्व आश्चर्य जैसा लगता है। मनुष्य के उद्भव से पूर्व का संसार और आधुनिक संसार की तुलना करते हैं तो इस दुनियाँ का अद्भुत निर्माण हुआ प्रतीत होता है। मनुष्य के हाथ में जितने साधन प्रस्तुत हैं उन्हें देखकर अचम्भा होता है। भविष्य की प्रगति सम्भावनाऐं और भी अधिक हैं। पर यह सब तत्वतः है क्या? मानवीय बुद्धि की एक क्यारी में उगे हुए पुष्पों की एक फसल ही इसे कह सकते हैं। समग्र बुद्धि की-सर्वांगीण उपलब्धियाँ. यदि कभी एकत्रित की जा सकीं तो इस धरती पर स्वर्ग निछावर किया जा सकेगा और मनुष्य का अभिनन्दन देवता करेंगे।

यह शारीरिक और बौद्धिक क्षमता का उभार-जब प्रेम और आत्मीयता के रूप में प्रस्फुटित होता है तो प्रतीत होता है अमृत स्वर्गलोक में नहीं मानवीय अन्तकरण में विद्यमान है। तात्विक प्रेम की गंगा जिस उद्गम से उमड़ती है वह स्थान शिव के शीर्ष जैसा पवित्र और महान बन जाता है। प्रेमी स्वयं कितना पाता है-और प्रेमपात्र को कितना देता है इसका लेखा-जोखा सांसारिक गणित से सम्भव नहीं हो सकता। जिसे प्रेम नहीं मिला उसे इस संसार से खाली हाथ जाना पड़ा। जिसे प्रेम मिल गया उसे तथाकथित अभावग्रस्त जीवन में भी लास-उल्लास बिखरा दिखाई पड़ेगा। जो प्रेम दे सका है उसका तो कहना ही क्या-उससे बढ़कर दानी और कौन हो सकता है। जीवन रस से बढ़कर और किसी के पास क्या हो सकता है? अन्तःकरण की उत्कृष्टता का सार तत्व प्रेम है। जहाँ बनता है वहाँ इत्र संस्थान जैसा सुगन्धित, हिम शिखर जैसा धवल, शीतल पाया जायेगा। उस अनुदान की वर्षा वह जिस पर करता है उसे मृतक से जीवित कर देता है। प्रेम का आदान-प्रदान कर सकने वाला अन्तःकरण कितना दिव्य और अलौकिक है इसकी चर्चा शब्दों में कैसे की जाय ?

सूक्ष्म चेतना का जो ईश्वरीय अनुदान मनुष्य को मिला है उसकी थोड़ी सी झाँकी कभी-कभी योगी, तपस्वी आत्म-ज्ञानी करते हैं। ब्रह्माण्ड की समस्त सत्ता और महत्ता बीज रूप में मनुष्य के भीतर विद्यमान है। इसे विकसित, प्रकाशित भर करने की चेष्टा, साधना विज्ञान करता है। भौतिक सिद्धियाँ और दिव्य विभूतियों का इतना बड़ा भाण्डागार मानवीय चेतना में सन्निहित है कि उसे विकसित करते चलने पर ईश्वरीय सृजन के इस विराट् ब्रह्माण्ड के भीतर जो कुछ है उस सबके उपयोग और उपभोग की सामर्थ्य प्राप्त की जा सकती है। इतना ही नहीं जीव समग्र ब्रह्म बन सकता है।

कोई मूर्ति, मूर्तिकार नहीं बन सकती। कोई चित्र, चित्रकार नहीं बन सकता। कोई पुत्र, पिता का स्थानापन्न नहीं कहलाता पर मनुष्य को यह सुविधा प्राप्त है कि वह यदि सीधे मार्ग पर चले तो ईश्वर भक्त ही नहीं वह साक्षात् ईश्वर भी बन सकता है। अपने दर्पण में समस्त सृष्टि का दर्शन कर सकता है और अपनी आत्मा में सबको प्रतिष्ठित करके उसके साथ क्रीड़ा-कल्लोल कर सकता है। मनुष्य की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्भावनाऐं असीम हैं। जितना असीम परमात्मा है उतना ही महान उसका पुत्र-आत्मा भी है।

मूर्तिकार ने इस मूर्ति को बनाने में अपनी कला का अन्त कर दिया है। ईश्वर कितना महान और अद्भुत है, उसे देखना, जानना हो तो उसकी कलाकृति मानव प्रतिमा की बारीकी से देखा जाय। उसके कण-कण से जो सुन्दरता-गरिमा टपकती है वह अपने आप में अनुपम है। ऐसा सर्वांगपूर्ण सृजन इस विश्व ब्रह्माड में अन्यत्र कहीं भी ढूँढ़े नहीं मिल सकता।

ईश्वर का अरमान पूरा हो गया और क्रिया-कलाप सम्पन्न। अब हमारा कर्त्तव्य आरम्भ होता है उस कर्त्तव्य को कलुषित और कलंकित न करें। सृष्टा की गरिमा को गिरने न दें और उन अरमानों को चोट न पहुँचाये जिन्हें लेकर सृष्टा ने इतनी तीव्र आकांक्षा की और सृजन का कष्ट उठाया।

हमें चाहिए कि अपने स्वाभिमान और ईश्वर के सम्मान को समझें और अपना स्तर वैसा रखें जिससे आत्मा और परमात्मा का गौरव गिरने न पाये। निकृष्ट गतिविधियाँ अपनाकर हम अपने को कलंकित नहीं करते वरन् ईश्वर की गरिमा को भी गिराते हैं। हमें प्रतिष्ठित होकर जीना चाहिए। अपनी और अपने सृजेता की प्रतिष्ठा को नष्ट न होने देना चाहिए।

अपनी प्रतिकृति-मनुष्य को रूप में बनाने का, उसमें अपनी समस्त कला को समाविष्टि करने का ईश्वरीय प्रयोजन वह रहा है कि उसे ऐसा साथी और सहायक प्राप्त हो सके जो उसकी सृष्टि को सुरम्य एवं सुविकसित बनाने में उसका हाथ बँटाये।

सहायकों की इच्छा करना उचित भी है और स्वाभाविक भी। सरकारी तंत्र, अधिकारी कर्मचारियों की सहायता से चलता है। अकेला शासक सुविस्तृत शासन तंत्र की व्यवस्था कैसे चलाये? कल-कारखानों में एकांकी मालिक सब काम कहाँ कर पाता है। कारीगरों और श्रमिकों की सहायता से ही उस संस्थान की गतिविधियाँ चलती हैं। ईश्वर के इतने बड़े राज्य में असंख्य प्रकार के क्रिया-कलापों के सञ्चालन में यदि साथी सहायक की अधिकारी कर्मचारी की आवश्यकता समझी गई हो तो यह उसका औचित्य भी है।

ईश्वर की सर्वोत्तम कलाकृति दर्शाने भर के लिए मनुष्य का सृजन नहीं हुआ वरन् उसे इसलिए भी साधन सम्पन्न सत्ता रूप में विनिर्मित किया गया है कि वह इस सृष्टि को सुरभित, सुव्यवस्थित, सुन्दर और समुन्नत बनाने में अपना बढ़-चढ़कर योगदान प्रस्तुत करे। स्वयं इस तरह रहे जिससे दूसरों को अपने चलने का अनुकरणीय दिशा ज्ञान मिलता रहे। उसका कर्तृत्व ऐसा हो जिससे अव्यस्था को व्यवस्था में-उच्छंखलता को शालीनता में निकृष्ट को उत्कृष्टता में-कुरूपता को सुन्दरता में परिणत किया जा सकना सम्भव हो सके।

हम ईश्वर के अरमान, श्रम और कौशल को निष्फल न होने दें। ऐसा जीवन जियें जो इस अनुपम सृजन की पग-पग पर सार्थकता सिद्ध कर सके।

ईश्वर प्राप्ति के लिये जीवन साधना की आवश्यकता

ईश्वर की पूजा, प्रार्थना अध्यात्म की आरम्भिक प्रक्रिया है। इसका प्रयोजन यह है कि हम जिस ईश्वर को एक प्रकार से सर्वथा भुला चुके हैं उसे स्मरण करें और स्मरण के साथ-साथ यह देखें कि मनुष्य जीवन के साथ उसका क्या सम्बन्ध है? इस सम्बन्ध को ठीक तरह समझ लेने और उसका निर्वाह कर सकने की ललक जागृत करना यह अध्यात्म का मूलभूत प्रयोजन है। इसी की पूर्ति के लिये उपासना को-कीर्तन, भजन, जप, तप, स्तवन आदि की-आवश्यकता समझी गई है।

यों ईश्वर के बारे में हमने बहुत कुछ सुना-पढ़ा है। मन्दिरों में उसके दर्शन भी किये हैं और कृपा प्राप्त करने के लिये पूजा पाठ भी। पर सच तो यह है अभी तक उसे ठीक तरह समझा नहीं जा सका। यदि इतनी भर सफलता मिल जाती तो उपासना भी ठीक तरह बन पड़ती और उसका लाभ प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता।

लोग इतना भर जानते हैं कि ईश्वर किसी अन्य लोक में रहने वाले ऐसे देवता का नाम है, जो पूजा-अर्चा का भूखा और स्तुति-प्रार्थना का प्यासा बैठा रहता है। जो कोई उसे यह चीजें दे दे उसे निहाल कर देता है उसे पापों का दण्ड नहीं देता और जो पूजा-प्रार्थना नहीं करता उससे रुष्ट रहता है और कष्ट पहुँचाता है। यदि यह मान्यता सही हो तो नैतिकता और न्याय की कसौटी पर ऐसा ईश्वर सर्वथा ओछा और खोटा सिद्ध होगा। तब उसकी व्यवस्था में किसी सिद्धान्त, आदर्श, नियम या व्यवस्था की कैसे आशा की जायगी? और उसके प्रति किसी विवेकवान व्यक्ति के मन में श्रद्धा क्यों कर उत्पन्न होगी?

सचाई प्रचलित मान्यता से सर्वथा भिन्न है। ईश्वर सर्वव्यापी दिव्य चेतना को कहते हैं जो श्रेष्ठता के रूप में मानवी अन्तःकरण को विकसित करती है। ईश्वर एक प्रेरणा है जो हमें उत्कृष्ट जीवन यापन और आदर्श क्रिया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कलाप अपनाने की ओर अग्रसर करती है। ईश्वर एक प्रकाश है जो हमें न्यायप्रिय विवेकशील और कर्त्तव्यनिष्ठ बनने के लिये मार्गदर्शन करता है।

सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों के रूप में मनुष्य के अन्तःकरण में - सबसे निकट यह ईश्वर विद्यमान रहता है। पर दुर्भाग्यवश हम उससे विमुख होकर आसुरी, ईश्वर विरोधी और नास्तिकवादी रीति-नीति अपनाते हैं। हमारी बुद्धि में स्वार्थ भरी संकीर्णता समाई रहती है। वासना और तृष्णा के लिए अन्तःकरण लालायित रहता है। यह प्रक्रिया विशुद्ध रूप से ईश्वर विरोधी है। नियति के निर्धारित चक्र का व्यक्तिक्रम करके कोई चैन से नहीं बैठ सकता। नास्तिक को न शान्ति मिलती है न सन्तोष। वह सदा पतित और व्यथित ही दिखाई पड़ता है।

उपासना इसीलिए की जाती है। देव दर्शन, पाठ, जप, ध्यान, पूजन आदि का प्रयोजन यह है कि ईश्वर हमें याद आये। मानसिक चिन्तन और शारीरिक कर्तृव्य में ईश्वरीय महत्ता को ओत-प्रोत करने की आवश्यकता अनुभव होती रहे साथ ही इस बात का भी भान रहे कि ईश्वर और जीव यदि मिल-जुलकर-एक होकर-रहें तो उससे हर्ष और आनन्द का विस्तार होगा। ईश्वर सन्तुष्ट होगा कि उसने मनुष्य के निर्माण पर जो श्रम किया था वह निरर्थक नहीं गया। जीव आनन्द अनुभव करेगा कि उसने सर्वशक्तिमान सत्ता के संकेतों पर चलना स्वीकार करके उसका स्नेह, सद्भाव और अनुग्रह प्राप्त कर लिया।

पूजा-उपासना को साधना कहते हैं। साधन की चेष्टा जुटाना साधन। साधन-अर्थात् प्रयत्न, उपकरण, क्रिया कलाप। साध्य-ईश्वर की-ईश्वर की अनुकम्पा की-प्रसन्नता और सहायता की प्राप्ति। साधन-एक उपाय भर है। प्रार्थना, स्तुति, पूजा, जप उस कर्त्तव्य का स्मरण दिलाता है जो हमें ईश्वर प्राप्ति के लिए करना है। आत्मा परिष्कार-लोक मंगल, परमार्थ से युक्त मनोभूमि और क्रिया-पद्धति ही वह मार्ग है जिस पर चलकर ईश्वर प्राप्ति होती है। पूजा-उपासना इस कर्त्तव्य से विमुख न होने-इसके लिए निरन्तर सचेष्ट रहने की प्रेरणा करती है। इसलिए उसे भी प्रथम चरण के रूप में आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी माना गया।

भगवान के लिये द्वार खोलें-स्थान बुहारें

भगवान हमारे अन्दर प्रवेश करना चाहते हैं, पर करें कैसे? द्वार तो हमने सभी बन्द कर रखे हैं। भगवान हमारे भीतर निवास करना चाहते हैं, पर वहाँ जगह तो सभी भरी पड़ी हैं।

अन्तरङ्ग के कौने-कौने में हमने कवाड़ भर रखा है। न जाने कितनी कामनाऐं-कितनी तृष्णाऐं-कितनी लालसाऐं उसमें डेरा डाले पड़ी हैं। ईर्ष्या, द्वेष, अहङ्कार, छल, दम्भ और मत्सर जैसे दुष्ट दस्युओं ने रही बची जगह घेर रखी है। अब उसमें तिल रखने भर की जगह नहीं, इस क्षेत्र पर पूरा आधिपत्य इन्हीं का है। इनका परिवार ही सारे भवन को घेरे बैठा है। बाहर से और किसी को न आने देने के लिये इन्होंने भीतर से कपाट बन्द कर रखे हैं। भगवान के लिए भी प्रवेश निषेध है।

पूजा-उपासना का उपक्रम हम इसलिए रखा करते हैं कि भगवान हमारे भीतर प्रवेश करें और अन्तःकरण में निवास करें। उन्हें तो हम केवल तृष्णाओं और वासनाओं को समुन्नत परिपुष्ट करने में सहायता करने भर के लिये बुलाते हैं।

एक दुखी लकड़हारा जंगल में मौत को पुकार रहा था। मौत को दया आई और उसने प्रकट होकर पूछा-मेरे लिए सेवा बताओ, तैयार हूँ। लकड़हारा घबरा गया। बुला तो लिया पर अब उससे क्या काम कराये? उसने सकपकाते हुए कहा- लकड़ी का गट्ठा बहुत भारी था, उसे उठा कर सिर पर रखवा देने के लिए ही आपको बुलाया था। यह सहायता करके आप कृपापूर्वक जल्दी चली जायँ। मौत ने गट्ठा सिर पर रखवा दिया और मुस्कराती हुई चली गई।

भगवान को हम लकड़हारे की तरह ही बुलाते हैं, सिर पर गट्ठा रखवाने के लिए। उसकी गोदी में बैठने का हमारा मन है कहाँ? मन तो इन नट नर्तकों के साथ हास-परिहास में उनके स्वागत सत्कार में लगा है, जिनने अन्तरंग का कौना-कौना घेरकर अपने कब्जे में कर लिया है।

हमारी प्रार्थना में बल कहाँ है जो भगवान को प्रभावित कर सके। गन्दगी से सने पात्र में रखकर किसी संभ्रान्त व्यक्ति को भोजन दिया जाय तो वह उसे कैसे स्वीकार करेगा? हमारा व्यक्तित्व भीतर और बाहर बेतरह गन्दगी से भरा पड़ा है। उसमें रखकर दी हुई प्रार्थना भगवान कैसे ग्रहण करेंगे?

बर्तन में दूध भरना हो तो पहले से उसमें भरी हुई मिट्टी को निकाल कर फेंकना पड़ेगा, तभी उस खाली जगह में दूध भरा जा सकेगा। यदि हमें भगवान को अपने भीतर बुलाना हो तो उनके लिए उस स्थान को खाली कराना पड़ेगा जहाँ स्वार्थ और लोभ के परिवार ने अपना अड्डा जमा रखा है।

भगवान को बुलाना ठीक है। पर उनके बैठने के लिए जगह बनानी चाहिए। पूजा-प्रार्थना करना ठीक है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर पूजा-पात्रों की तरह अपने हाथों को सत्कर्मों द्वारा और वाणी को सत्य द्वारा भी शुद्ध करना चाहिए। जिस मन से पूजा-प्रार्थना की जाती है पहले उसकी मलीनता धोनी चाहिए। गन्दे पात्र में रखी पूजा-सामग्री भगवान को कैसे स्वीकार होगी । कामनाओं से भरे मन में उन भावनाओं का उदय कैसे होगा जो भगवान को द्रवित करने में समर्थ होती हैं।

स्वार्थ और संकीर्णता के कपाट खोलें तो भगवान का भीतर प्रवेश हो। मुख से भरे हुए तृष्णा के ताम्बूल खाली हों तो स्तुति की जाय। प्रभु का अनुग्रह प्राप्त होने में विलम्ब का कारण केवल एक है, उसे ग्रहण करने और रखने के लिए पात्रता का न होना। यदि भीतर का कपाट खोल दें और भगवान के बैठने के लिए स्थान खाली कर दें तो उनका प्रवेश, आगमन और अनुग्रह तनिक भी कठिन न रह जायगा।

सिद्धि और सिद्ध पुरुषों का स्तर

भौतिक सिद्धियाँ तो उन कीड़े-मकोड़ों में भी पाई जाती हैं जो चलते समय पैर के नीचे दबकर मर जाते हैं। मक्खी आकाश में उड़ सकती है, बतक पानी पर चल सकती है, मछली जल में रह सकती है, गीध दूर तक देख सकता है, मकड़ी को वर्षा का भविष्य ज्ञान रहता है, जुगनू का तेज चमकता है, सर्प दंश से क्षण भर में मृत्यु होती है। कहते हैं, नीलकण्ठ पक्षी के दर्शन से लक्ष्मी मिलती है। दर्द बन्द करने में छिपकली का तेल काम आता है। गिरगिट कई तरह के रूप बदलता है। यदि इन्हीं सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए साधना की जाय तो सफलता के अन्तिम शिखर पर चढ़ते-चढ़ते वहीं पहुँचा जा सकता है जहाँ यह कीड़े-मकोड़े पहले से ही पहुँचे हुए हैं।

लोगों को कौतूहल दिखाकर अपनी विशेषता सिद्ध करने की आत्मश्लाघा पूरी करने की ही यदि हविस हो तो इसके लिए इतनी कष्टसाध्य गतिविधि अपनाने और सामान्य सुख-सुविधायें छोड़ने की तनिक भी आवश्यकता नही है। लोगों को अचम्भे में डालने का काम बाजीगर बड़ी अच्छी तरह करते हैं। वे इतनी अलौकिकताऐं दिखाते हैं कि आश्चर्यचकित होना पड़ता है। यह 'कला' कुछ भी मुश्किल नहीं है। हाथ की सफाई का अभ्यास थोड़े दिनों में हो जाता है और बाजीगरी सिखाने वाले उन रहस्यों को सिखा भी सकते हैं।

देखना यह है कि इससे अपना क्या लाभ हुआ और क्या दूसरों का हित सधा? दस पैसे नाव वाले को देकर आवश्यकता के समय नदी पार हो सकती है। रोज तो कोई पानी पर चलता नहीं, हर जगह पुल हैं, नावें मौजूद हैं इस सिद्धि को कोई व्यक्ति बहुत कष्ट सहकर प्राप्त करले तो उसे दस पैसे नाव वाले को न देने भर की ही बचत हुई। बीमार को अच्छा करने में सिद्ध पुरुष जितना लाभ पहुँचाते हैं उससे हजारों गुने अधिक रोगी एक डाक्टर अच्छे करता है। योगी कितने अन्धों को आँखें देगा, पर आँख के डाक्टर तो अपनी जिन्दगी में हजारों अन्धों को अच्छा करते हैं। योगी बनने की अपेक्षा डाक्टर बनना क्या बुरा है। उसमें कष्ट भी कम-लाभ भी अधिक। भारत से इंगलैण्ड उड़कर जाने की सिद्धि बहुत तप के बाद मिलेगी पर हवाई जहाज में थोड़ा सा किराया देने पर वह कार्य आसानी से हो सकता है। दूरदर्शन, दूरश्रवण के लिए जब टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन मौजूद हैं तो फिर उन सिद्धियों को प्राप्त करने की क्या जरूरत रह गई।

साधना, तपश्चर्या और योगाभ्यास का मात्र एक ही प्रयोजन है अपने अन्तःकरण में प्रसुप्त अगणित सत्प्रवृत्तियों का जागरण। सद्भावनाओं का उन्नयन। दृष्टिकोण का परिष्कार। कर्तृत्व में देवत्व के समावेश का अभ्यास। सिद्धियों की उत्कृष्टता इसी कसौटी पर परखी जाती है। इसी से अपना भला होता है और इसी से संसार का।

आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ देना। अन्तःकरण को प्रेम से लबालव भर देना-निश्छल, निर्मलता विकसित करना और लोक-मङ्गल के लिए आत्मोत्सर्ग करना। यह सिद्धियाँ जिसके पास हैं असल में वही सच्चा और उच्चकोटि का सिद्ध पुरुष है।

क्या 'मैं' शरीर ही हूँ-उससे भिन्न नहीं

मैं क्या हूँ? मैं कौन हूँ? मैं क्यों हूँ? इस छोटे से प्रश्न का सही समाधान न कर सकने के कारण 'मैं' को कितनी विषम विडम्बनाओं में उलझना पड़ता है और विभीषिकाओं में संत्रस्त होना पड़ता है, यदि यह समय रहते समझा जा सके तो हम वह न रहें, जो आज हैं। वह न सोचें जो आज सोचते हैं। वह न करें जो आज करते हैं।

हम कितने बुद्धिमान हैं कि धरती आकाश का चप्पा-चप्पा छान डाला और प्रकृति के रहस्यों को प्रत्यक्ष करके सामने रख दिया। इस बुद्धिमता की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी कम और अपने आपके बारे में जितनी उपेक्षा बरती गई उसकी जितनी निन्दा की जाय वह भी कम ही है।

जिस काया को शरीर समझा जाता है क्या यही मैं हूँ? क्या कष्ट, चोट, भूख, शीत, आतप आदि से पग-पग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर व्याकुल होने वाला अपनी सहायता के लिये बजाज, दर्जी, किसान, रसोइया, चर्मकार, चिकित्सक आदि पर निर्भर रहने वाला ही मैं हूँ? दूसरों की सहायता के बिना जिसके लिए जीवन धारण कर सकना कठिन हो-जिसकी सारी हँसी-खुशी और प्रगति दूसरों की कृपा पर निर्भर हो, क्या वही असहाय, असमर्थ, मैं हूँ? मेरी आत्म-निर्भरता क्या कुछ भी नहीं है? यदि शरीर ही मैं हूँ तो निस्संदेह अपने को सर्वथा पराश्रित और दीन, दुर्बल ही माना जाना चाहिए।

परसों पैदा हुआ, खेल-कूद, पढ़ने-लिखने में बचपन चला गया। कल जवानी आई थी। नशीले उन्माद की तरह आँखों में, दिमाग में छाई रही। चंचलता और अतृप्ति बेचैन बनाये रही। आज ढलती उम्र आ गई। शरीर ढलने, गलने लगा। इन्द्रियाँ जबाब देने लगीं। सत्ता, बेटे, पोतों के हाथ चली गई। लगता है एक उपेक्षित और निरर्थक जैसी अपनी स्थिति है। अगली कल यही काया जराजीर्ण होने वाली है। आँखों में मोतिया बिन्द, कमर घुटने में दर्द, खाँसी, अनिद्रा जैसी व्याधियाँ, घायल गधे पर उड़ने वाले कौओं की तरह आक्रमण की तैयारी कर रही हैं। अपाहिज और अपंग की तरह कटने वाली जिंदगी कितनी भारी पड़ेगी। यह सोचने को जी नहीं चाहता, वह डरावना और घिनौना दृश्य एक क्षण के लिए भी आँखों के सामने आ खड़ा होता है तो रोम-रोम काँपने लगता है? पर उस अवश्यम्भावी भवतव्यिता से बचा जाना सम्भव नहीं? जीवित रहना है तो इसी दुर्दशाग्रस्त स्थिति में पिसना पड़ेगा। बच निकलने का कोई रास्ता नहीं। क्या यही मैं हूँ? क्या इसी निरर्थक बिडम्बना के कोल्हू के चक्कर काटने के लिए ही 'मैं' जन्मा? क्या जीवन का यही स्वरूप है? मेरा अस्तित्व क्या इतना ही तुच्छ है?

आत्म-चिन्तन कहेगा-नहीं-नहीं-नहीं। आत्मा इतना हेय और हीन नहीं हो सकता। वह इतना अपङ्ग और असमर्थ-पराश्रित और दुर्बल कैसे होगा? यह तो प्रकृति के पराधीन पेड़-पौधों जैसा-मक्खी, मच्छरों जैसा जीवन हुआ। क्या इसी को लेकर-मात्र जीने के लिए मैं जन्मा। सो भी जीना ऐसा जिसमें न चैन, न खुशी, न शान्ति, न आनन्द, न सन्तोष। यदि आत्मा सचमुच परमात्मा का अंश है तो वह ऐसी हेय स्थिति में पड़ा रहने वाला हो ही नहीं सकता। या तो मैं हूँ ही नहीं। नास्तिकों के प्रतिपादन के अनुसार या तो पाँच तत्वों के प्रवाह में एक भँवर जैसी, बबूले जैसी क्षणिक काया लेकर उपज पड़ा हूँ और अगले ही क्षण अभाव के विस्मृति गर्त में समा जाने वाला हूँ। या फिर कुछ हूँ जो इतना तुच्छ और अपङ्ग हूँ जिसमें उल्लास और सन्तोष जैसा-गर्व और गौरव जैसा-कोई तत्व नहीं है। यदि मैं शरीर हूँ तो-हेय हूँ। अपने लिए और इस धरती के लिए भारभूत। पवित्र अन्न को खाकर घृणित मल में परिवर्तन करते रहने वाले-कोटि-कोटि छिद्रों वाले इस कलेवर से दुर्गन्ध और मलीनता निसृत करते रहने वाले-अस्पर्श-घिनौना हूँ 'मैं'। यदि शरीर हूँ तो उससे अधिक मेरी सत्ता होगी भी क्या?

मैं यदि शरीर हूँ तो उसका अन्त क्या है? लक्ष्य क्या है? परिणाम क्या है?- मृत्यु- मृत्यु-मृत्यु। कल नहीं तो परसों वह दिन तेजी से आँधी तूफान की तरह उड़ता उमड़ता चला आ रहा है, जिसमें आज की मेरी यह सुन्दर-सी काया- जिसे मैंने अत्यधिक प्यार किया- प्यार क्या जिसमें पूरी तरह समर्पित हो गया- घुल गया, अब वह मुझसे विलग हो जायगी। विलग ही नहीं अस्तित्व ही गँवा बैठेगी। काया में घुला हुआ 'मैं'- मौत के एक ही थपेड़े में कितना कुरूप- कितना विकृत- कितना निरर्थक- कितना घृणित हो जाऊँगा कि उसे प्रिय परिजन तक- कुछ समय और उसी घर में रहने देने लिए सहमत न होंगे जिसे मैंने ही कितने ही अरमानों के साथ- कितने कष्ट सहकर बनाया था। क्या यही मेरे परिजन हैं? जिन्हें लाढ़-चाव से पाला था। अब ये मेरी इस काया को- घर में से हटा देने के लिए- उसका अस्तित्व सदा के लिए मिटा देने के लिए क्यों आतुर हैं? कल वाला ही तो मैं हूँ।

मौत के जरा से आघात से मेरा स्वरूप यह कैसा हो गया। अब तो मेरी मृत काया- हिलती-डुलती भी नहीं- बोलती, सोचती भी नहीं? अब तो उसके कुछ अरमान भी नहीं हैं। हाय, यह कैसी मलीन, दयनीय, घिनौनी बनी जमीन पर लुढ़क रही है। अब तो यह पलँग बिस्तर पर सोने तक का अधिकार खो बैठी। कुशाओं बान से ढकी- गोबर से लिपी गीली भूमि पर यह पड़ी है। अब कोई चिकित्सक भी इसका इलाज करने को तैयार नहीं। कोई, बेटा, पोता गोदी में नहीं आता। पत्नी छाती तो कूटती है, पर साथ सोने से डरती है। मेरा पैसा- मेरा वैभव- मेरा सम्मान हाय रे सब छिन गया- हाय रे मैं बुरी तरह लुट गया। मेरे कहलाने वाले लोग ही- मेरा सब कुछ छीनकर मुझे इस दुर्गति के साथ घर से निकाल रहे हैं। क्या यही अपनी दुर्दशा कराने के लिए मैं जन्मा? यही है क्या मेरा अन्त- यही था क्या मेरा लक्ष्य, यही है क्या मेरी उपलब्धि। जिनके लिए कितने अरमान सँजोये थे, जिसके लिए कितने पुरुषार्थ किये थे- क्या उसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निष्कर्ष यही है? यही हूँ मैं- जो मुर्दा बना पड़ा हूँ- और लकड़ियों की चिता में जलकर अगले ही क्षण अपना अस्तित्व सदा के लिए खोने जा रहा हूँ।

लो अब पहुँच गया मैं चिता पर। लो, मेरा कोमल मखमल जैसा शरीर- जिसे सुन्दर, सुसज्जित, सुगन्धित बनाने के लिए घण्टों श्रृंगार किया करता था, अब आ गया अपनी असली जगह पर। लकड़ियों का ढेर- उसके बीच दबाया-दबोचा हुआ मैं। लो यह लगी आग। लो, अब मैं जला। अरे मुझे जलाओ मत। इन खूबसूरत हड्डियों में मैं अभी और रहना चाहता हूँ, मेरे अरमान बहुत हैं, इच्छायें तो हजार में से एक भी पूरी नहीं हुई। मुझे मेरी उपार्जित सम्पदाओं से अलग मत करो, प्रियजनों का बियोग मुझे सहन नहीं। इस काया को जरा-सा कष्ट होता था तो चिकित्सा, उपचार मैं बहुत कुछ करता था। इस काया को इस निर्दयतापूर्वक मत जलाओ। अरे स्वजन और मित्र कहलाने वाले लोगो-इस अत्याचार से मुझे बचाओ। अपनी आँखों के आगे ही मुझे इस तरह जलाया जाना तुम देखते रहोगे। मेरी कुछ भी सहायता न करोगे! अरे यह क्या- बचाना तो दूर उलटे तुम्हीं मुझमें आग लगा रहे हो। नहीं-नहीं, मुझे जलाओ मत- मुझे मिटाओ मत। कल तक मैं तुम्हारा था- तुम मेरे थे- आज ही क्या हो गया जो तुम सबने इस तरह मुझे त्याग दिया? इतने निष्ठुर तुम सब क्यों बन गये? मैं और मेरा संसार क्या इस चिता की आग में ही समाप्त हुआ? सपनों का अन्त अरमानों का विनाश - हाय री चिता- हत्यारी चिता, तू मुझे छोड़। मरने का जलने का मेरा जरा भी जी नहीं है। अग्नि देवता तुम तो दयालु थे। सारी निर्दयता मेरे ही ऊपर उड़ेलने के लिए क्यों तुम तुल गये?

लो, सचमुच मर गया। मेरी काया का अन्त हो ही गया। स्मृतियाँ भी धुँधली हो चलीं। कुछ दिन चित्र फोटो जिये। श्राद्ध-तर्पण का सिलसिला कुछ दिन चला। दो तीन पीढ़ी तक बेटे पोतों को नाम याद रहे। पचास वर्ष भी पूरे न हो पाये कि सब जगह से नामो-निशान मिट गया। अब किसी को बहुत कुछ कहा जाय कि इस दुनियाँ में 'मैं' पैदा हुआ था। बड़े अरमानों के साथ जिया था, जीवन को बहुत सँजोया, सँभाला था, उसके लिए बहुत कुछ किया था। पर वह सारी दौड़, धूप ऐसे ही निरर्थक चली गई। मेरी काया तक ने मेरा साथ न दिया- जिसमें मैं पूरी तरह घुल गया था। जिस काया के सुख को अपना सुख और जिसके दुःख को अपना दुःख समझा। सच तो यह है कि मैं ही काया का था और काया मैं ही था हम दोनों की हस्ती एक हो गई थी; पर यह क्या अचम्भा हुआ, मैं अभी भी मौजूद हूँ।

वायुभूत हुआ आकाश में मैं अभी भी भ्रमण कर रहा हूँ। पर वह मेरी अभिन्न सहचरी लगने वाली काया न जाने कहाँ चली गई। अब वह मुझे कभी नहीं मिलेगी क्या? उसके बिना मैं रहना नहीं चाहता था, रह नहीं सकता था, पर हाय री निर्दय नियति। तूने यह क्या कर डाला। काया चली गई। मैं अकेला ही वायुभूत बना भ्रमण कर रहा हूँ। एकाकी-नितान्त एकाकी। जब काया ने ही साथ छोड़ दिया तो उसके साथ जुड़े हुए परिवार भी क्या याद रखते- क्यों याद रखते? याद रखे भी रहे हों तो अब उससे अपना बनना भी क्या है?

मैं काया हूँ। यह जन्म के दिन से लेकर-मौत के दिन तक मैं मानता रहा। यह मान्यता इतनी प्रगाढ़ थी कि कथा-पुराणों की चर्चा में आत्मा-काया की पृथक्ता की चर्चा आये दिन सुनते रहने पर भी गले से नीचे नहीं उतरती थी। शरीर ही तो मैं हूँ- उससे अलग मेरी सत्ता भला किस प्रकार हो सकती है? शरीर तो सुख-दुःख के अतिरिक्त मेरा सुख-दुःख अलग क्यों कर होगा? शरीर तो प्रत्यक्ष है-आत्मा अलग है, उसके स्वार्थ, सुख-दुःख अलग हैं यह बातें कहने-सुनने भर की ही हो सकती हैं। सो रामायण, गीता वाले प्रवचनों की हाँ में हाँ मिलाता रहा पर उसे वास्तविकता के रूप में कभी स्वीकार न किया।

पर आज देखता हूँ कि वह सचाई थी जो समझ में नहीं आई और वह झुठाई थी जो सिर पर हर घड़ी सवार रही। शरीर ही मैं हूँ। यही मान्यता शराब की खुमारी की तरह नस-नस में भरी रही। बोतल पर बोतल छानता रहा, तो वह खुमारी उतरती भी कैसे? पर आज आकाश में उड़ता हुआ वायुभूत एकाकी-'मैं' सोचता हूँ। झूठा जीवन जिया गया, झूठे बनकर जिया। सचाई आँखों से ओझल ही बनी रही। मैं एकाकी हूँ, शरीर से भिन्न हूँ आत्मा हूँ। यह सुनता जरूर रहा पर मानने का अवसर ही नहीं आया। यदि उस तथ्य को जाना ही नहीं माना भी होता तो वह अलभ्य अवसर जो हाथ से चला गया, इस बुरी तरह न आता। जीवन जिस मूर्खतापूर्ण रीति-नीति से जिया गया वैसा न जिया जाता।

शरीर मेरा है- मेरे लिए है, मैं शरीर नहीं हूँ। यह छोटी सी सचाई यदि समय रहते समझ में आ गई होती तो मनुष्य जीवन जैसे सुरदुर्लभ सौभाग्य का लाभ लिया गया होता, पर अब क्या हो सकता है। अब तो पश्चात्ताप ही शेष है। भूल भरी मूर्खता के लिए न जाने कितने लम्बे समय तक रुदन करना पड़ेगा?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्म बोध - आन्तरिक कायाकल्प - प्रत्यक्ष स्पर्श

'मैं' कौन हूँ, क्यों हूँ, किसका हूँ? यह प्रश्न ऐसे हैं जिनको उपेक्षित-बिना हल किया हुआ छोड़ दिया जाय तो वह लापरवाही बहुत महँगी पड़ती है। जीवन का सारा आनन्द ही चला जाता है। आनन्द ही नहीं चला जाता, वरन् इस उलझी हुई गुत्थी में उलझकर मनुष्य ऐसी जिन्दगी जीने के लिए विवश होता है जिसे नीरस और भारभूत ही कहा जा सके।

ऊपर मनःस्थिति का चित्रण किया गया है जिसमें अपने आपको शरीर मान लेने से सांसारिक सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान किस तरह उद्विग्न, उद्वेलित करते हैं और हर परिस्थिति, आशङ्का एवं असंतोष से भरी रहती है। जो कुछ उपार्जन किया था उसका हर्ष रत्ती भर होता है और उसके साथ जुड़ी हुई विषमताओं का चिन्तन पहाड़ भर। जिसमें हर्ष स्वल्प और विषाद अपरिमित हों ऐसी जिन्दगी जीकर कौन अपने आपको सौभाग्यशाली मानेगा?

किन्तु अपने सम्बन्ध में सही ढंग से सोचने की विधि हाथ लग जाय तो देखते-देखते जादू की तरह असन्तोष और उद्वेग की स्थिति संतोष और उल्लास से भर जाती है। आगे और पीछे जो अन्धकार दीख रहा है उसे प्रकाश में परिणत होते देर नहीं लगती। इसी स्थिति को आत्मज्ञान कहते हैं। इसे एक प्रकार का आन्तरिक काया-कल्प ही कहना चाहिए। सुना है किन्हीं दिव्य विधियों से वृद्ध और जीर्ण शरीर को नवयौवन की स्थिति में बदला जा सकना सम्भव है। उस विधि को काया-कल्प कहते हैं। शारीरिक काया-कल्प के उदाहरण और प्रयोग इन दिनों प्रत्यक्ष दिखाई नहीं पड़ते, पर आत्मिक काया-कल्प हर किसी के लिए सम्भव है। आज ही- अभी ही वह स्थिति प्राप्त की जा सकती है जिसके आधार पर गरीबी को अमीरी में- दुर्भाग्य को सौभाग्य में- शत्रुओं को मित्रों में, आशंका को उल्लास में परिवर्तित किया जा सके। इस अन्धकार को प्रकाश में परिणित करने वाली प्रक्रिया को आत्म-बोध कहते हैं। यह आत्मबोध कोई दैवी वरदान, जादू या चमत्कार नहीं है, सिर्फ उस मान्यता और श्रद्धा का नाम है जो अपने स्वरूप को सही रूप में समझने का अवसर देती है इतनी सामर्थ्य प्रदान करती है कि पिछले ढर्रे को बदलकर नये सिरे से वस्तुस्थिति के अनुरूप सोचने और करने की पद्धति को अपनाया-कार्यान्वित किया जा सके।

आत्म-बोध, आत्मोत्थान, आत्म-साक्षात्कार जीवन का सबसे बड़ा लाभ है। इससे बड़ी उपलब्धि इस मनुष्य के लिए और कोई दूसरी हो ही नहीं सकती। मैं क्या हूँ? कौन हूँ? किस लिये हूँ, इस तथ्य को समझ लेने के बाद यह भी अनुभूति होने लगती है कि उपकरण, औजार एवं पदार्थों का उपयोग उपभोग-सम्बन्ध, स्नेह की सीमा कितनी रहनी चाहिए, इस सीमा का स्वरूप और निर्धारण जब भी, जो भी कर लेगा वह दिव्य-जीवन जियेगा सुख-शान्ति से ओत-प्रोत रहेगा और सर्वत्र धरती के देवताओं की तरह महामानवों की तरह हर किसी के अन्तरङ्ग पर श्रद्धा भरा शासन करेगा।

मैं क्या हूँ? इस प्रश्न का उत्तर- शरीर हूँ, के रूप में ही हमारी अन्तः मान्यता देती है, सो परिवर्तनशील प्रकृति के साथ जुड़ी हुई परिवर्तनीय प्रतिक्रियाएँ देह के साथ भी जुड़ी ही रहेंगी। सम्बन्धित पदार्थ भी बदलेंगे ही और जिनके साथ स्नेह सम्बन्ध है उनमें भी भौतिक कारणों से अन्तर आवेगा और दिन की तरह प्रिय-अप्रिय द्वन्दों का फेर चलता ही रहेगा और उस भूल में क्षण-क्षण में प्रिय-अप्रिय अनुभव होते ही रहेंगे। दृष्टिकोण में निषेधात्मक तत्व अधिक होने से एक और भूल होती रहेगी कि शरीर को-संसार द्वारा जो सुख-सुविधायें मिल रही हैं उन्हें देखना समझना और मोद मनाना सम्भव न हो सकेगा, इसके विपरीत जो अभाव अभियोग हैं वे ही आँखों के आगे खड़े रहेंगे। इस स्थिति में किसी सुसम्पन्न व्यक्ति के लिए भी यह सम्भव नहीं कि वह सुख-शान्ति का अनुभव कर सके।

आमतौर से हर व्यक्ति यही प्रयास करता है कि- दूसरे लोग उसे बड़ा, सुखी या सम्पन्न समझें। इसी का ढाँचा खड़ा करने में उसकी सारी शक्ति लगी रहती है। सारे प्रयास इसी परिधि के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं। वस्त्र-आभूषण, श्रृंगार, ठाठ-वाट, डिग्री, पद आदि के बड़प्पन प्रदर्शित करने वाले आवरण बड़ी कठिनाई से जमा किये जाते हैं और उसी संचय में सारा समय, श्रम एवं मनोयोग खप जाता है। दूसरे लोग अपनी ही समस्याओं में उलझे होते हैं, उन्हें किसी की अमीरी, गरीबी का मूल्यांकन करने में क्या रुचि हो सकती है, पर हर व्यक्ति समझता यही है कि सब का सारा ध्यान मेरे ही ऊपर केन्द्रित है और यह मनोवैज्ञानिक भूल मनुष्य को उस निरर्थक क्रिया-कलाप और चिन्तन में लगाये रहती है जिसे तात्विक दृष्टि से पूर्णतया निरर्थक कहा जा सके। किसी ने- कुछ देर के लिए- हमें साधन सम्पन्न-अमीर-बड़ा आदमी जान या मान भी लिया तो इससे क्या तो अपना प्रयोजन सधा, और क्या उसे लाभ हुआ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्म-बोध न होने से मनुष्य की महत्त्वाकांक्षायें- चेष्टाएँ- योजनाएँ- गतिविधियाँ, एक प्रकार से निरर्थक कामों में- लगी रहती हैं और बहुमूल्य मानव-जीवन ऐसे ही उन आडम्बरों में गल जाता है। जो सुख-साधन भौतिक-जीवन में उपलब्ध थे, उनको भी दृष्टिकोण के कारण समझा और सराहा नहीं जाता। स्त्री, सन्तान, शरीर, शिक्षा, सहायक, साधन जो कुछ भी मिले हुऐ हैं उनके मूल्य, महत्त्व को भी यदि समझने की चेष्टा की जाय- इनसे मिलने वाली सहायता-सुविधा का लेखा-जोखा लिया जाय, तो भी हर व्यक्ति को अपनी स्थिति बहुत हद तक हर्ष, सन्तोष से भरी हुई प्रतीत हो सकती है; पर इस दुर्भाग्य को क्या कहा जाय, जिसके अनुसार केवल अभाव, और छिद्र ही दिखाई पड़ते हैं। अपनी कुरूपता हर किसी को कुरूप प्रस्तुत करती है। आन्तरिक दुर्बलता, आशंका, अविश्वास, अवरोध, द्वेष, घृणा के रूप में फुफकारती और वातावरण को विषाक्त करती रहती है। सो इन्हीं विडम्बनाओं में उलझा हुआ- विभीषिकाओं से संत्रस्त, आशंकाओं से उद्विग्न- मनुष्य अन्तर्दाह की आग में हर क्षण जलता हुआ नारकीय जीवन जीता है। यह सब आत्म-बोध न होने का ही परिणाम है।

मैं क्या हूँ? इसका उत्तर अपने अब तक के चले आ रहे ढर्रे वाले अभ्यास के अनुरूप नहीं वरन् तत्व-चिन्तन के आधार पर देना चाहिए। दूसरे लोग क्या कहते हैं- क्या सोचते हैं और क्या करते हैं इससे भी हमें प्रभावित नहीं होना चाहिए। निस्संदेह वातावरण अन्धकार भरा है। प्राचीनकाल में सतयुगी व्यक्तित्व, कर्तृत्व और वातावरण-शुद्ध चिन्तन में सहायता करता था, उससे प्रभावित हर नागरिक को सही दिशा मिलती थी। आज सब कुछ उलटा है, यदि आज वस्तुस्थिति समझने के लिये लोग क्या कहते हैं और क्या करते हैं इसे आधार बनाया जाय तो निश्चित रूप से हमें अवांछनीय निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा और अनुचित रीति-नीति अपनाने के लिए विवश होना पड़ेगा।

आत्म-बोध की पहली सीढ़ी यह है कि लोक-चिन्तन की अवांछनीयता को समझा जाय और अपनी अब तक की ढर्रे पर लुढ़कती हुई मान्यताओं के औचित्य को अस्वीकार किया जाय। काया-कल्प में पुराना शरीर छोड़ना पड़ता है और नया ग्रहण करना पड़ता है। विवाह होने पर वधू पितृ-गृह छोड़ती है और साथ ही अब तक का स्वभाव अभ्यास भी। उस नवविवाहिता को पति के घर में जाकर नये स्वजनों से घनिष्टता बढ़ानी पड़ती है और सुसराल की विधि-व्यवस्था में अपने को ढालना होता है। ठीक ऐसा ही परिवर्तन आन्तरिक काया-कल्प के अवसर पर करना पड़ता है। आत्म-बोध एक प्रकार से अन्धकार का त्याग कर प्रकाश को वरण करना है। इसके लिए क्रान्तिकारी कदम उठा सकने वाले साहस की जरूरत पड़ती है। ढर्रे में राई-रत्ती अन्तर करने से काम नहीं चलता। यह पढ़ने और सुनने की नहीं सर्वतोमुखी परिवर्तन की प्रक्रिया है। एक लोक को छोड़कर दूसरे लोक में जाने- एक शरीर त्यागकर दूसरे शरीर में प्रवेश करने जैसी इस प्रक्रिया को जो कोई सम्पन्न कर सके उसे ही आत्म-ज्ञानी कहा जायगा। आत्म-बोध और आत्म-साक्षात्कार इसी स्थिति का नाम है। ब्रह्म-सम्बन्ध, आत्म-दर्शन, दीक्षा-लाभ, चक्षु-उन्मीलन, दिव्य-जागरण इसी को कहते हैं। यह छलांग जो लगा सके उसे इस दुस्साहस का परिणाम दूसरे ही क्षण परिलक्षित होगा। अपने को तत्काल नरक में से निकालकर स्वर्ग में अवस्थित अनुभव करेगा। मैं क्या हूँ? इस प्रश्न का समाधान, इतना बड़ा लाभ है कि उस समस्त संसार की समग्र सम्पदाओं को निछावर किया जा सकता है।

व्यक्ति जब अपने को ईश्वर का परम-पवित्र अविनाशी अंश समझता है; आत्मा के रूप में अनुभव करता है और शरीर को एक उपकरण भर स्वीकार करता है, तो उसे अपनी पिछली मान्यताओं, आकांक्षाओं, योजनाओं और गतिविधियों में आमूल-चूल परिवर्तन करने की आवश्यकता अनुभव होती है। सम्बन्धित वस्तुएँ संग्रह करके निरर्थक मोह बढ़ाने के लिए नहीं, वरन् सदुपयोग भर के लिए अपने पास एकत्रित हुई हैं यह निष्ठा जब जमती है तो फिर लोभ और मोह में परले सिरे की मूर्खता ही दिखाई देती है। सम्पदा प्रकृति का ही एक रूप है। यह अनादि काल से चली आ रही है और अनन्त काल तक चली जायगी। जो सोना अपने पास आज है वह सृष्टि के जन्मकाल से ही इस संसार में विद्यमान था। उस पर लाखों व्यक्ति कुछ देर के लिए अपना अधिकार बनाते चले आ रहे हैं। प्रलय काल तक वह सोना बना रहेगा और उस पर करोड़ों व्यक्ति अपना अधिकार जमाते चले जायेंगे। जमीन, जायदाद, वस्तुयें आदि सृष्टि के साथ जन्मीं और उसके रहने तक इस दुनियाँ में बनी रहेंगी, कुछ समय के लिए वे अपने साथ संयोगवश जुड़ गईं तो उन्हें अपनी मान बैठना, उनके संग्रह का लोभ करना, कैसे उचित ठहराया जा सकता है? पदार्थों का मोह जिस शरीर के साथ जुड़ा हुआ है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह शरीर ही कल-परसों जाने की तैयारी में बैठा है फिर पदार्थ का- सम्पदा साधनों का लोभ किस लिए?

उपलब्ध सम्पत्ति का सदुपयोग ही सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता है। उसकी जमाखोरी में कोई समझदारी नहीं। उपार्जन को श्रेष्ठ प्रयोजनों में लगाना चाहिए। बेटे, पोतों के लिए उत्तराधिकार का ताना-बाना बुनना सदुपयोग नहीं। अपने साथ मोह-बन्धनों में बँधे हुए चन्द व्यक्तियों को अपने श्रम का सारा उपार्जन सौंप दिया जाय और वे उस हराम की कमाई पर गुलछर्रे उड़ायें इस विडंबना में क्या औचित्य है? श्रम-उपार्जन खाकर ही कोई व्यक्ति उसका लाभ लेता है, हराम की कमाई तो हर किसी को गलाती है। आत्मवादी की सुनिश्चित मान्यता यही हो सकती है। जिसकी समझ में यह तथ्य आ गया उसे नये सिरे से अपनी सम्पत्ति के बारे में चिन्तन करना पड़ेगा और आश्रित, असमर्थ-परिजनों की उचित व्यवस्था के अतिरिक्त जो कुछ उसके पास बच जाता है उसे लोक-मंगल के लिए नियोजित करने का ही निर्णय करना पड़ता है। आत्म-बोध के साथ यदि इस स्तर का दुस्साहस जुड़ा हुआ न हो तो उसे बकवादियों का बाल-विनोद ही कहा जायगा। असंख्यों व्यक्ति स्वाध्याय सत्संग के नाम पर धर्म और अध्यात्म की लम्बी-चौड़ी बकवास करते और सुनते रहते हैं। जो चिन्तन-जीवन को प्रभावित न कर सके उसे मनोविनोद के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है?

परिवार के रूप में जुड़े हुए कुछ व्यक्ति ही अपने हैं? अपना प्यार उन्हीं तक सीमित रहना चाहिए? उन्हीं तक अपनी सारी महत्त्वाकांक्षा सीमित कर लेनी चाहिए, यह रीति-नीति उससे बन ही नहीं पड़ेगी जो अपने को 'आत्मा' मानेगा। आत्म-ज्ञान का प्रकाश आते ही दृष्टिकोण में उस विशालता का समावेश होता है जिसके अनुसार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' मानने से कम में किसी भी प्रकार संतोष नहीं हो सकता।

भगवान् के उद्यान के रूप में- सम्बन्धित परिवार को कर्तव्यनिष्ठ माली की तरह सींचना, सँजोना बिलकुल अलग बात है और बेटे-पोतों के लिए मरते-खपते रहना अलग बात, बाहर से देखने में यह अन्तर भले ही दिखाई न पड़े पर दृष्टिकोण की कसौटी पर रखने पर जमीन-आसमान जितना अन्तर मिलेगा। मोहग्रस्त मनुष्य अपने कुटुम्बियों की सुविधा, सम्पदा बढ़ाने और इच्छा पूरी करने की धुन में उचित-अनुचित, आवश्यक-अनावश्यक का भेद भूल जाता है और घरवालों की इच्छा तथा खुशी के लिए वह व्यवस्था भी जुटाता है जो न आवश्यक है न उपयुक्त। मोह-ग्रस्त के पास विवेक रह ही नहीं सकता।

परिष्कृत दृष्टि से कुटुम्बियों को समुन्नत, सुसंस्कारी, सुविकसित बनाने के कर्तव्य को ही ध्यान में रखकर पारिवारिक विधि-व्यवस्था निर्धारित की जाती हैं। उसमें यह नहीं सोचा जाता कि कौन राजी रहा कौन नाराज हुआ। चतुर माली अपनी दृष्टि से पौधों को काटता-छाँटता, निराता-गोड़ता है, पौधों की मर्जी से नहीं। विवेकवान् गृह-पति केवल एक ही दृष्टि रखता है कि परिवार को सुसंस्कारी और सुविकसित बनाने के लिए जो कठोर कर्तव्य पालने चाहिए उनका पालन अपनी ओर से किया जा रहा है या नहीं। परिजनों की इच्छाओं का नहीं उनके हित साधन का ही उसे ध्यान रहता है। आत्म-बोध के साथ परिवार के प्रति इसी दृष्टिकोण के अनुरूप आवश्यक हेर-फेर करना पड़ता है। तब वह मोह छोड़ता है और प्यार करता है। प्यार के आधार पर की गई परिवार सेवा उसके स्वयं के लिए और समस्त परिवार के लिए परम-मङ्गलमय सिद्ध होती है।

अपने शरीर के बारे में भी आत्म-बोध के प्रकाश में नई रीति-नीति ही अपनानी पड़ती है। उसे वाहन उपकरण मात्र मानना पड़ता है। आत्मा की भूख के लिए शरीर से काम लेने और शरीर की लिप्सा के लिए आत्मा को पतन के गर्त में डालने की दृष्टि में जमीन-आसमान जितना अन्तर है। शरीर और मन को 'मैं' मान बैठने पर इन्द्रियों की वासनाएँ और मन की तृष्णा ही जीवनोद्देश्य बन जाती हैं और उन्हीं की पूर्ति में निरन्तर लगा रहना पड़ता है। पर जब वह मान्यता हट जाती है और अपने को आत्मा स्वीकार कर लिया जाता है तो मन को बलात् उस चिंतन में नियोजित किया जाता है जिससे आत्म-कल्याण हो और शरीर से वह कार्य कराये जाते हैं जो आत्मा का गौरव बढ़ाते हों उसका भविष्य उज्वल बनाते हों।

आत्म-बोध, एक श्रद्धा है। आत्म-साक्षात्कार एक दर्शन है, जिसे यदि सचाई के साथ हृदयंगम किया जाय तो दृष्टिकोण ही नहीं बदलता वरन् क्रिया-कलाप भी बदल जाते हैं। इस परिवर्तन को ही आत्मिक कायाकल्प कहते हैं। यह जिस क्षण भी सम्भव हो जाय उसी दिन अपने में भारी शान्ति, सन्तोष, उल्लास और उत्साह दृष्टिगोचर होता है और लगता है मानो नरक से निकलकर स्वर्ग में आ गये।

जीव पर दो प्रकृतियों की छाया

दो वस्तुओं के मिलने से एक तीसरी चीज बनती है। दिन और रात्रि की मिलन बेला को संध्या कहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संध्या न रात है और न दिन, पर ध्यानपूर्वक देखा जाय तो उसमें दोनों का ही अस्तित्व मौजूद है। सोड़ा कास्टिक और तेल मिलकर साबुन बन जाता है। साबुन न तेल के सदृश है और न सोडा के। उसका रूप दोनों से भिन्न है। फिर भी परीक्षण के बाद उन दोनों ही वस्तुओं का साबुन में अस्तित्व प्रमाणित हो जाता है। प्राणी भी ऐसे ही दो सम्मिश्रणों का एक तीसरा रूप है। परम ब्रह्म परमात्मा और पंच भौतिक प्रकृति इन दोनों के सम्मिश्रण से जो तीसरी सत्ता उत्पन्न होती है, उसका नाम जीव है। ब्रह्म चेतन है इसलिए उसका गुण आत्मिक चेतना, अन्तःकरण एवं भावना के रूप में मौजूद है। प्रकृति जड़ है इसलिए शरीर का सारा ढाँचा जड़ है। जीव की चेतना एवं प्रेरणा से वह चलता है। जब यह चेतना तनिक भी अशक्त या अस्त-व्यस्त होती है तो शरीर का सारा ढाँचा ही लड़खड़ा जाता है, सारा खेल ही खतम हो जाता है। साइकिल चलाने वाले के पैरों में जब तक दम है तभी तक पहिये घूमते हैं जब पैर थक गये तो साइकिल का चलना भी बन्द हो जाता है। शरीर में जो क्रियाशीलता दिखाई पड़ती है वह जीव की उपस्थिति और शक्ति का चिह्न है। यह शक्ति कुण्ठित होते ही शरीर दुर्बल, वृद्ध, रुग्ण और मृतक बन जाता है और तब वह घृणित लगने लगता है। निर्जीव होने पर तो जल्दी से जल्दी उसकी अन्त्येष्टि ही करनी पड़ती है। पंच-तत्व अपने-अपने तत्वों में मिल जाते हैं वह सम्मिश्रण समाप्त हो जाने से दोनों को अपने-अपने स्वतन्त्र रूप में पहुँच जाना पड़ता है।

जड़ और चेतन के अपने-अपने गुण-धर्म भी हैं। ईश्वर चेतन है इसलिए उसका अंश-जीव-चेतन तो है ही साथ ही उसमें वे सब विशेषताएँ भी बीज रूप में मौजूद हैं जो उसके मूल उद्गम ब्रह्म में ओतप्रेत हैं। ईश्वर सत चित् और आनन्दस्वरूप है। जीव में भी सत्य में ही प्रसन्नता तथा सन्तोष अनुभव करने की प्रकृति है। कोई व्यक्ति स्वार्थवश स्वयं भले ही दूसरों से असत्य व्यवहार करे पर उसके साथ दूसरे जब झूँठ, कपट, छल, विश्वासघात का व्यवहार करते हैं तो बड़ा अप्रिय लगता है और दुःख होता है। हर किसी को यही पसन्द होता है कि दूसरे उसके साथ पूर्ण निष्कपट तथा सचाई का व्यवहार करें, छल और धोखे की बात सुनते ही मन में भय, आशंका और घृणा उत्पन्न होती है। इससे स्पष्ट है कि जीव अपने उद्गम केन्द्र ब्रह्म का 'सत्' गुण अपने अन्दर गहराई तक धारण किये हुए है।

चित् अर्थात् चेतना सक्रियता। जीव भी ईश्वर की भाँति आजीवन, निरन्तर, सक्रिय रहता है। सोते समय, मूर्च्छा के समय केवल मस्तिष्क का एक छोटा भाग अचेत होता है। बाकी समस्त शरीर हर घड़ी काम करता रहता है। रक्त का संचार, श्वाँस-प्रश्वाँस, पाचन, स्वप्न आदि की क्रियाएँ बराबर चलती रहती हैं शरीर के सभी कल पुर्जे अचेतन कहे जाने वाले मस्तिष्क के सहारे ठीक वैसा ही काम करते रहते हैं जैसे जागते रहने पर होता था। विचार, भावना, उत्साह, स्फूर्ति एवं क्रियाशीलता को चेतना का ही अंग कहा जायगा। ईश्वर चित् अर्थात् चेतन है तो जीव भी वैसा ही क्यों न रहेगा। जब परमात्मा की सत्ता समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक होकर असंख्य प्रकार की प्रक्रियाएँ निरन्तर संचारित रखती है तो जीव भी पिण्ड में, शरीर में व्याप्त होकर अहिर्निश अपना चेतना व्यापार क्यों जारी न रखेगा?

परमात्मा आनन्दस्वरूप है। उसकी प्रत्येक क्रिया आनन्दपूर्ण है, आनन्द के लिए है। आनन्द उद्भव एवं विस्तार करने के लिए है। उसने क्रीड़ा करने के लिए- खेल खेलने के लिए- विनोद और मनोरंजन के लिए- यह सारा संसार रचा है। लीलाधर की लीलाएँ उसी के स्वयं के लिए ही नहीं प्रत्येक चराचर के लिए आह्लाद और उल्लास प्रदान करने वाली हैं। प्राणी भी आनन्द की ही खोज में निरन्तर संलग्न रहता है। उसे अपनी समझ के अनुसार जहाँ कहीं भी आनन्द दीखता है वहीं जा पहुँचता है, जो वस्तुएँ उसे आनन्ददायक लगती हैं उन्हें ही प्राप्त करने की चेष्टा करता है। सच्चा आनन्द और झूँठा आनन्द परखने में भूल हो सकती है पर इतना निश्चित है कि हर प्राणी आनन्द चाहता है और अपनी परिष्कृत अथवा अपरिष्कृत बुद्धि के अनुसार जहाँ भी आनन्द दिखाई पड़ता है वहीं रहना चाहता है उसी को प्राप्त करना चाहता है। इसी चाहना, आकांक्षा के लिए उसका प्रायः सारा ही जीवन उत्सर्ग होता है।

सच्, चित्, आनन्द का सम्मिश्रित रूप ही ब्रह्म है। चूँकि हम सब इन तीनों ही को चाहते हैं और इन्हें ही अधिक मात्रा में प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, इसीलिए यही कहना होगा कि हमारी प्रवृत्ति ब्रह्म प्राप्ति की दिशा में है। यही हमारी प्रकृति भी है। इस संसार में समस्त जड़ चेतन अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार प्रवृत्तिरत है। जीव भी इसका अपवाद नहीं हो सकता। उसे ब्रह्म प्राप्ति ही अभीष्ट है। उसके बिना इसका काम क्षण भर भी नहीं चल सकता, इस प्रकृति के विरुद्ध उसे क्षण भर भी चैन नहीं पड़ सकता।

इतना होते हुए भी देखा यह जाता है कि प्राणी अनैतिक, दुष्कर्मों में अधिक रुचि लेता है और आलस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और अहंकार वासना और तृष्णा के फेर में पड़ा हुआ लोभवश उस ओर चलता है जिस ओर अन्धकार और असन्तोष ही उपलब्ध होने वाला है। इसका कारण जड़ता का जीव पर पड़ने वाला प्रभाव ही है। यह स्पष्ट है कि प्राणी जड़ और चेतन तत्वों का सम्मिश्रित रूप है। चेतन तत्व ब्रह्म की स्थिति उसे सत्, चित् और आनन्द की ओर उन्मुख रखती है। किन्तु जड़ता के प्रभाव से भी वह अछूता नहीं रहता। प्रकृति की, माया की, जड़ता की छाया भी उस पर बनी रहती है। इस प्रभाव के कारण ही उसे अपना मार्ग निश्चित करने में, उचित गतिविधियाँ अपनाने में बाधा पड़ती है। इसी खींच-तान में वह दिग्-भ्रान्त हो जाता है।

जड़ता का प्रभाव जीव पर जितना अधिक होगा उतना ही वह जड़ पदार्थों से प्रेम अधिक करेगा उनका स्वामित्व, संग्रह एवं उपभोग उतना ही उसे अधिक रुचेगा। आलस्य, मोह और अहंकार यह जड़ता के प्रधान चिह्न हैं। जड़ पदार्थ निर्जीव हैं इसलिये जिनमें जड़ता बढ़ेगी वह उतना ही आलसी बनता जावेगा। प्रयत्न, पुरुषार्थ, परिश्रम में रुचि न होगी। अध्ययन, भजन एवं सत्कर्मों में मन न लगना इस बात का चिह्न है कि 'चित्' ईश्वरीय तत्व का विरोधी 'आलस' आसुरी तत्व अपने अन्दर भर रहा है। उसी प्रकार वस्तुओं को उपकरण मात्र मानकर उनसे सामयिक लाभ उठा लेने की बात न सोचकर उपलब्ध सम्पदा को मौरूसी मान बैठना, उसके छिनने पर रोना-चिल्लाना यह प्रकट करता है कि नाशवान और निर्जीव पदार्थों के प्रति अवांछनीय ममता जोड़ ली गई है, अहंकार तो असुरता का- तमोगुण का- प्रत्यक्ष चिह्न है। क्षण-क्षण में बदलती रहने वाली वस्तुओं और परिस्थितियों की अनुकूलता पर जो घमण्ड करता है वह यह भूल जाता है कि इस संसार का प्रत्येक परमाणु अत्यन्त द्रुतगति से अपनी धुरी पर घूमता है और प्रत्येक परिस्थिति तेजी के साथ उलटती-पलटती रहती है फिर पानी में उठने वाले बबूले की तरह इस क्षण-प्राप्त सौभाग्य पर इतराना क्या? ऐंठना और अकड़ना क्या? जो आज है वह कल कहाँ रहने वाला है, फिर अहंकार करने का प्रश्न ही कहाँ उत्पन्न होता है।

लोभ और मोह के वशीभूत होकर वासना और तृष्णा से प्रेरित होकर प्राणी विविध प्रकार के अकर्म और दुष्कर्म करता हुआ जीवन के बहुमूल्य क्षणों का दुरुपयोग करता है। यही अज्ञान है, यही माया है, यही अविद्या है। एक ओर आत्मा की सत्-चित् और आनंद की मूल प्रवृत्ति उसे उच्च भूमिका की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है। दूसरी ओर जड़ता एवं माया का प्रकोप जीव के ऊपर होता रहता है। एक दिशा में दैवी प्रकृति खींचती है दूसरी तरफ आसुरी प्रकृति जोर लगाती है। फलस्वरूप धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र अन्तःकरण में अशान्ति और असंतोष का महाभारत मचा रहता है। जड़ता हमें बन्धन में बाँधती है और चेतना मुक्ति का सन्देश प्रदान करती है।

इस रस्साकशी में जीतता वही है जिस पर आत्मा अपनी स्वीकृति की मुहर लगा देती है। उसका वोट जिधर पड़ता है, उधर ही जीत हो जाती है। किसी बच्चे पर दो माताएँ अपना दावा करें तो न्यायाधीश उस पक्ष में फैसला देता है कि जिसे बच्चा पहचान ले और जिसके पास जाना पसन्द करे। जड़ता और चेतना ऐसी ही माता और विमाता हैं दोनों ही आत्मा पर अपना दावा करती हैं और उसे अपने पक्ष में फुसलाना चाहती हैं। अच्छाई इतनी ही है कि फैसला आत्मा की अभिरुचि के ऊपर निर्भर रखा गया है। पतन और उत्थान के दोनों ही मार्ग उसके लिये खुले हुए हैं। वह जिसे चाहे उसे पसन्द कर सकती है।

जीव पर दैवी और आसुरी दोनों ही चेतनाओं का प्रभाव है, वह जिस ओर उन्मुख होगा वैसा ही उसका स्वरूप बनता जायगा। जड़ता एवं माया में लिप्त होते चलने पर वह अधोगति का अधिकारी होता है और पाप, पतन, नरक की दुर्गति में निमग्न होता जाता है। पर यदि वह अपनी मूल प्रकृति सत्-चित्-आनन्द का निर्वाह करता चले तो बन्धन से मुक्ति निश्चित है, फिर उसे पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

■

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जीवन का परम पुरुषार्थ–आत्मज्ञान

शरीर का ही नहीं- आत्मा का भी ध्यान रखें

इस बात से जरा भी इनकार नहीं किया जा सकता कि मानव जीवन में शरीर का महत्त्व कम नहीं है। शरीर का सहायता से ही संसार यात्रा सम्भव होती है। शरीर द्वारा ही हम उपार्जन करते हैं और उसी के द्वारा हम सारी क्रियाएँ सम्पन्न करते हैं। यदि मनुष्य को शरीर प्राप्त न हो तो वह तत्व रूप से कुछ भी करने में समर्थ न हो।

यदि एक बार मानव-शरीर के इस महत्व को गौण भी मान लिया जाये, तब भी शरीर का यह महत्त्व तो प्रमुख है ही कि आत्मा का निवास उसी में होता है। उसे पाने के लिए किए जाने वाले सब प्रयत्न उसी के द्वारा सम्पादित होते हैं। सारे आध्यात्मिक कर्म जो आत्मा को पाने, उसे विकसित करने और बन्धन से मुक्त करने के लिए अपेक्षित होते हैं, शरीर की सहायता से ही सम्पन्न होते हैं। अतः शरीर का महत्व बहुत है। तथापि जब इसको आवश्यकता से अधिक महत्व दे दिया जाता है, तब यही शरीर जो संसार बन्धन से मुक्त होने में हमारी एक मित्र की तरह सहायता करता है, हमारा शत्रु बन जाता है। अधिकार से अधिक शरीर की परवाह करने और उसकी इन्द्रियों की सेवा करते रहने से, शरीर और उसके विषयों के सिवाय और कुछ भी याद न रखने से वह हमें हर ओर से विभोर बनाकर अपना दास बना लेता है और दिन-रात अपनी ही सेवा में तत्पर रखने के लिए दबाव में आ जाने वाला व्यक्ति कमाने-खाने और विषयों को भोगने के सिवाय- इससे आगे की कोई बात सोच ही नहीं पाता। उसका सारा ध्यान शरीर और उसकी आवश्यकताओं तक ही केन्द्रित हो जाता है। वह शरीर और इन्द्रियों की दासता में बँधकर अपनी सारी शक्ति जिसका उपयोग महत्तर कार्यों में किया जा सकता है, शरीर की सेवा में समाप्त कर देता है। इस प्रकार उसका जीवन व्यर्थ चला जाता है और उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसके हृदय में एक पश्चात्ताप रह जाता है, जिसके लिए वह बहुमूल्य मानव-जीवन प्राप्त हुआ है। इसलिए मनुष्य को इस विषय में पूरी तरह से सावधान रहने की आवश्यकता है कि शरीर का कितना महत्त्व है और अपनी सेवा पाने का उसे कितना अधिकार है ?

शरीर की सेवा तक सीमित हो जाने की भूल मनुष्य से प्रायः तब होती है, जब वह शरीर को ही सब कुछ समझ लेता है। सत्य बात तो यह है कि मनुष्य शरीर नहीं, आत्मा है। शरीर तो साधन मात्र है, साध्य केवल आत्मा ही है, इसलिए प्रधान महत्त्व शरीर को नहीं आत्मा को ही देना चाहिए, न कि आत्मा को शरीर के अधीन कर देना चाहिए। जो इस नियम एवं अनुशासन का उल्लंघन करते हैं वे आत्मा की हित-हानि करने वाली भयानक भूल करते हैं, जो निश्चित रूप से शोक, खेद और पश्चात्ताप का विषय है।

शारीरिक स्वार्थ का महत्त्व है, लेकिन एक सीमा तक। उसी सीमा तक जहाँ तक वह स्वस्थ, सशक्त और सक्षम बना रहे। वह अशक्तता तथा अल्पायु से बचा रहे। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उपार्जन करना है और सुख-सुविधा, मनोरंजन आदि की व्यवस्था भी। किन्तु सच्चा स्वार्थ आत्मा का ही है। उसी की पूर्ति और उसी का हित-साधन करने को प्रधानता दी जानी चाहिए। क्योंकि मानव-जीवन का उद्देश्य यही है और इसी के लिए यह अनुग्रह भी किया गया है।

आवश्यकता से अधिक शरीर की सेवा में लगे रहने से शरीर पुष्ट हो जाता है। उसकी जड़ता प्रबल हो जाती है, आवश्यकताएँ वितृष्णा के स्तर पर पहुँच जाती हैं और तब मनुष्य मोह-लोभ-मत्सर आदि ऐसे विकारों से ग्रसित हो जाता है, जो स्पष्टतः आत्मा के शत्रु माने गए हैं। ये विकार अपना अस्तित्व पाकर मानव-जीवन को पतन की ओर ही प्रेरित करते हैं उनका ऐसा करना स्वाभाविक ही है। मनुष्य को पतन की ओर ले जाना विकारों का सहज धर्म है, इसके लिए उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। दोषी तो वास्तव में वह मनुष्य है, जो इनसे अपनी रक्षा का प्रबन्ध नहीं करता। बिच्छू का धर्म है डंक मारना। यदि वह किसी के डंक मारता है तो इसके लिए बिच्छू को दोष नहीं दिया जा सकता। दोष तो उस व्यक्ति को ही दिया जाएगा, जिसने उस कुटिल कीट को कष्ट पहुँचाने का अवसर अपने प्रमाद के कारण दिया। एकमात्र शरीर की सेवा में निरत रहने से उक्त विकार जन्मेंगे, पनपेंगे और अपना अस्तित्त्व पाकर मनुष्य को धर्मतः पतन की ओर खींचेंगे। अस्तु अपनी रक्षा के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह प्रधानता शरीर को नहीं आत्मा को दे और उसी के हित साधन में निरत हो, उसी का कल्याण करे।

शरीर को अपेक्षित अधिकार देकर जो बुद्धिमान व्यक्ति शेष समय तथा रुचियाँ आत्मा के स्वार्थ में, उसकी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सेवा करने में लगाते हैं, वे लोक में सुख और परलोक में श्रेय के अधिकारी बनते हैं। शरीर की सेवा जहाँ मनुष्य को पतन के गर्त में गिराकर रोग-शोक, सन्ताप, पश्चात्ताप आदि की यातना दिलाकर भाव-पाशों में लपेटती जाती है, वहाँ आत्मा की सेवा में मनुष्य अलौकिक सुख, हर्ष-उल्लास, आनन्द आदि के साथ मोक्ष एवं मुक्ति का पुरस्कार पाता है। अवश्य ही शरीर की उपेक्षा मत कीजिए। कमाइए, खाइए, गृहस्थी बसाइये, सुख और सम्पत्ति के अधिकारी बनिए, लेकिन उसमें इस सीमा तक न डूब जाइए कि इसके सिवाय और कुछ सूझ ही न पड़े। शरीर और संसार में उतना ही समय, श्रम और मनोयोग लगाना चाहिए, जितना आवश्यक है और जिससे जीवन की गाड़ी सुविधापूर्वक चलती रहे। शेष का सारा समय, श्रम तथा मनोयोग आत्मा का हित-साधन करने में लगाना चाहिए, जिससे स्वार्थ के साथ परमार्थ और लोक के साथ परलोक भी बनता चले।

आत्मिक कल्याण आवश्यक होने के साथ-साथ थोड़ा कठिन भी है। कठिन इसलिए कि मनुष्य प्रायः जन्म-जन्म के संस्कार अपने साथ लाता है। वे संस्कार प्रायः भौतिक अथवा शारीरिक ही होते हैं। इसका प्रमाण यह है कि जब मनुष्य का देहाभिमान नष्ट हो जाता है तो वह मुक्त हो जाता है। उसे शरीर धारण करने की लाचारी नहीं रहती। चूँकि सभी मनुष्यों की अभिव्यक्ति शरीर में हुई, इसलिए यह सिद्ध है कि उसमें सभी शारीरिक संस्कार बने हुए हैं। पूर्व संस्कारों पर विजय पाकर उन्हें आधुनिक रूप में मोड़ लेना- या यों कह लिया जाए कि शारीरिक संस्कारों को आत्मिक संस्कारों से स्थानापन्न कर लेना सहज ही नहीं होता। संस्कार बड़े प्रबल व शक्तिशाली होते हैं। इन दैहिक संस्कारों को बदलने का सरल-सा उपाय यह है कि जिस प्रकार सांसारिक कामों और शारीरिक आवश्यकताओं की चिन्ता की जाती है, उसी प्रकार आत्म-कल्याण की चिन्ता की जाए। जिस प्रकार सांसारिक सफलताओं के लिए निर्धारित एवं सुनियोजित कार्यक्रम बनाकर प्रयत्न तथा पुरुषार्थ किया जाता है, उसी प्रकार मनोयोगपूर्वक आध्यात्मिक कार्यक्रम बनायें और प्रयत्नपूर्वक पूरे किए जाते रहें। इस प्रकार यदि मनुष्य अपने विचार-कोण के साथ-साथ पुरुषार्थ की धारा बदल डाले तो निश्चय ही उसके संस्कार परिवर्तित हो जायेंगे और वह शरीर की ओर से मुड़कर आत्मा की ओर चल पड़ेगा।

संस्कार बदलने का प्रयत्न करने के साथ-साथ यह भी देखते चलना आवश्यक है कि संस्कारों में अपेक्षित परिवर्तन घटित हो भी रहा है या नहीं। इसकी पहचान यह है कि जब आप देखें कि आत्म-कल्याण के कार्यक्रमों की सफलता के लिए वैसी ही चिन्ता रहती है, जैसी कि घर गृहस्थी के कामों और आर्थिक योजनाओं को सफल बनाने की, तब समझ लें कि संस्कारों में परिवर्तन आरम्भ हो गया है। यदि भौतिक सफलता की चिन्ता की तरह आध्यात्मिक सफलता की चिन्ता नहीं होती तो समझ लेना चाहिए कि उस दिशा में उचित प्रगति नहीं हो रही है। आप जो कुछ भी आध्यात्मिक प्रयत्न कर रहे हैं, वह सब यों ही एक बेगार अथवा मनोरंजन के लिए कर रहे हैं। उसमें आपका पूरा-पूरा मानसिक योग नहीं है और आपने उत्तरदायित्व के रूप में उक्त प्रयत्न का मूल्यांकन नहीं किया है।

संस्कारों में परिवर्तन लाने के लिए इस प्रकार के हल्के-फुल्के दिखाऊ प्रयत्न करने से काम न चलेगा, इस कर्तव्य को जीवन लक्ष्य के उत्तरदायित्व की भावना से ही करना होगा। बहुत से लोग आवेश में आकर जोश-खरोश के साथ संस्कार बदल डालने में सहसा जुट पड़ते हैं। इस प्रकार असात्विक प्रयत्न भी वांछित सफलता सम्पादित करने में कृत-कृत्य न होगा। ज्वार की तरह उठा हुआ कोई भी जोश कुछ ही दिनों में ठण्डा पड़ जाता है। संस्कारों में वांछित परिवर्तन लाने के लिए सात्विकी-निष्ठा के साथ आध्यात्मिक कार्यक्रम अपनाकर और उत्तरदायित्व के साथ उन्हें पूरा करना होगा। प्रगति यदि कम भी है, लेकिन गति में एक दृढ़ता है तो चिन्ता की बात नहीं है। कभी न कभी वह काम पूरा हो जाएगा। किन्तु यदि प्रगति के चरण तो लम्बे-चौड़े दीखते हैं, और गति में दृढ़ता नहीं है तो निश्चय ही शीघ्र ही थकान घेर लेगी और उदासीनता गतिहीन हो जाने के लिए विवश कर देगी। संस्कारों में परिवर्तन लाने की योजना तभी सफल होगी, जब स्थिति के अनुसार व्यावहारिक कार्यक्रम बनाया जाय और दृढ़तापूर्वक एक-एक कदम बढ़ाया जाय। ऐसा करने से ही संस्कारों में परिवर्तन सम्भव है अन्यथा नहीं। जिस दिन अध्यात्म विषयक कार्यक्रमों की अपेक्षा अधिक आनन्द और उत्साह अनुभव होने लगें और शरीर की अपेक्षा आत्मा की चिन्ता अधिक रहने लगे, समझना चाहिए कि संस्कार बदल गए हैं और अब शीघ्र ही हमारा जीवनयान भवसागर के उस तट की ओर चल पड़ा है, जिस पर कल्याण-कुसुमों से सुशोभित वनस्पति लहलहा रही है।

मनुष्य शरीर नहीं आत्मा है। उसे चाहिए कि वह शरीर की अपेक्षा आत्मा को अधिक महत्व दे। आत्मा का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वार्थ ही सच्चा स्वार्थ है, जिसे परमार्थ के नाम से भी पुकारा जाता है। परमार्थ पथ पर अग्रसर होने के लिए आवश्यक है कि दैहिक संस्कारों के स्थान पर आत्मिक संस्कारों की स्थापना की जाय। इसके लिए आध्यात्मिक कार्यक्रमों को निर्धारित कर उनकी सफलता के लिए चिन्तापूर्वक उसी प्रकार प्रयत्न करना होगा, जिस प्रकार भोजन, वस्त्र और घर-गृहस्थी की चिन्ता की जाती है।

मानव-जीवन का लक्ष्य आत्म-कल्याण है इस लक्ष्य को पाने के लिए आत्मा को शरीर के ऊपर प्रधानता दी जाय। यह क्रिया, विचार-कौण बदल देने से सहज में पूरी हो सकती है। हम मनुष्य हैं, शरीर ही सब कुछ है। इसकी सेवा करना हमारा कर्तव्य है, इस प्रकार के दैहिक विचारों के स्थान पर इन विचारों को स्थापित करना होगा- हम आत्मा हैं। शरीर तो साधन मात्र है। आत्मा का कल्याण करना ही हमारा परम धर्म है, जिसका निर्वाह हर मूल्य पर करना ही है। इस प्रकार मनुष्य शारीरिक दासता से बचकर आत्मा की सेवा में समर्पित हो जाएगा। जिससे उसे यह पश्चात्ताप करने का अवसर नहीं रहेगा कि- "हाय मैंने अज्ञान के वशीभूत होकर अमर आत्मा की उपेक्षा कर दी और अपना सारा जीवन उस शरीर की सेवा में लगा दिया, जो नश्वर है और जिसकी दासता पतनकारी विचार देने के सिवाय और कुछ नहीं दे पाती।" शरीर का महत्व तो समझें, पर आत्मा का महत्व कम करके न आँकें।

दो वस्तुओं के मिलने से एक तीसरी चीज बनती है। दिन और रात्रि की मिलन बेला को संध्या कहते हैं। संध्या न रात्रि है और न दिन, पर ध्यानपूर्वक देखा जाय तो उसमें दोनों का ही अस्तित्व मौजूद है। सोड़ा कास्टिक और तेल मिलकर साबुन बन जाता है। साबुन न तेल के सदृश है और न सोड़ा के। उसका स्वरूप दोनों से भिन्न है। फिर भी परीक्षण के बाद उन दोनों ही वस्तुओं का साबुन में अस्तित्व प्रमाणित हो जाता है। प्राणी भी ऐसे ही सम्मिश्रणों का एक तीसरा रूप है। परमब्रह्म परमात्मा और पंच भौतिक प्रकृति इन दोनों के सम्मिश्रण से जो तीसरी सत्ता उत्पन्न होती है, उसका नाम जीव है। ब्रह्म चेतन है इसलिए उसका गुण आत्मिक चेतना, अन्तःकरण एवं भावना के रूप में मौजूद है। प्रकृति जड़ है इसलिए शरीर का सारा ही ढाँचा जड़ है। जीव की चेतना एवं प्रेरणा से वह चलता है। जब वह चेतना तनिक भी शक्त या अस्त-व्यस्त होती है तो शरीर का सारा ढाँचा ही लड़खड़ा जाता है सारा खेल ही खत्म हो जाता है। साइकिल चलाने वाले के पैरों में जब तक दम है तभी तक पहिये घूमते हैं। जब पैर थक गए तो साइकिल का चलना भी बन्द हो जाता है। शरीर में जो क्रियाशीलता दिखाई पड़ती है, वह जीव की उपस्थिति और शक्ति का चिह्न है। यह शक्ति कुण्ठित होते ही शरीर दुर्बल, वृद्ध, रुग्ण और मृतक बन जाता है और तब वह घृणित लगने लगता है। निर्जीव होने पर तो जल्दी से जल्दी उसकी अन्त्येष्टि ही करनी पड़ती है। पंचतत्व अपने तत्वों में मिल जाते हैं वह सम्मिश्रण समाप्त हो जाने से दोनों को अपने-अपने स्वतन्त्र रूप में पहुँच जाना पड़ता है।

जड़ और चेतन के अपने-अपने गुण धर्म भी हैं। ईश्वर चेतन है इसलिए उसका अंश जीव-चेतन तो है ही साथ ही उसमें वे सब विशेषताएँ भी बीज रूप में मौजूद हैं जो उसके मूल उद्गम ब्रह्म में ओतप्रोत हैं। ईश्वर सत्चित् और आनन्द स्वरूप है। जीव में ही, सत्य में ही प्रसन्नता तथा सन्तोष अनुभव करने की प्रकृति है। कोई व्यक्ति स्वार्थवश स्वयं भले ही दूसरों से असत्य व्यवहार करे पर उसके साथ दूसरे जब झूँठ, छल, कपट, विश्वासघात का व्यवहार करते हैं तो बड़ा अप्रिय लगता है और दुःख होता है। हर किसी को यही पसन्द होता है कि दूसरे उसके साथ पूर्ण निष्कपट तथा सच्चाई का व्यवहार करें, छल और धोखे की बात सुनते ही मन में भय, आशंका और घृणा उत्पन्न होती है। इससे स्पष्ट है कि जीव अपने उद्गम केन्द्र ब्रह्म का 'सत्' गुण अपने अन्दर गहराई तक धारण किए हुए है।

चित् अर्थात् चेतना-सक्रियता। जीव भी ईश्वर की भाँति ही आजीवन, निरन्तर सक्रिय रहता है। सोते समय, मूर्च्छा के समय केवल मस्तिष्क का एक छोटा भाग अचेत होता है। बाकी सब समस्त शरीर हर घड़ी काम करता रहता है। रक्त संचार, श्वास-प्रश्वास, पाचन, स्वप्न आदि की क्रियाएँ बराबर चलती रहती हैं शरीर के सभी कल-पुर्जे अचेतन कहे जाने वाले मस्तिष्क के सहारे ठीक वैसा ही काम करते रहते हैं जैसे जागते रहने पर होता था। विचार, भावना, विवेक, उत्साह, स्फूर्ति एवं क्रियाशीलता को चेतना का ही अंग कहा जाएगा। ईश्वर चित् अर्थात् चेतन है, तो जीव भी वैसा ही क्यों न रहेगा। जब परमात्मा की सत्ता समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक होकर असंख्य प्रकार की प्रक्रियाएँ निरन्तर संचारित रखती है तो जीव भी पिण्ड में, शरीर में व्याप्त होकर अहर्निश अपना चेतना-व्यापार क्यों जारी न रखेगा?

परमात्मा आनन्दस्वरूप है। उसकी प्रत्येक क्रिया आनन्दपूर्ण है, आनन्द के लिए है, आनन्द उद्भव एवं विस्तार करने के लिए है। उसने क्रीड़ा करने के लिए,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खेल-खेलने के लिए, विनोद और मनोरंजन के लिए यह सारा संसार रचा है। लीलाधर की लीलाएँ उसी के स्वयं के लिए ही नहीं प्रत्येक चराचर के लिए आह्लाद और उल्लास प्रदान करने वाली हैं। प्राणी भी आनन्द की ही खोज में निरन्तर संलग्न रहता है। उसे अपनी समझ के अनुसार जहाँ कहीं भी आनन्द दीखता है वहीं जा पहुँचता है, जो वस्तुएँ उसे आनन्ददायक लगती हैं उन्हें ही प्राप्त करने की चेष्टा करता है। सच्चा आनन्द और झूँठा आनन्द परखने में भूल हो सकती है, पर इतना निश्चित है कि हर प्राणी आनन्द चाहता है और अपनी परिष्कृत अथवा अपरिष्कृत बुद्धि के अनुसार जहाँ भी आनन्द दिखाई पड़ता है वहीं रहना चाहता है उसी को प्राप्त करना चाहता है। इसी चाहना, आकांक्षा के लिए उसका प्रायः सारा ही जीवन उत्सर्ग होता है।

सत्, चित् आनन्द का सम्मिश्रित रूप ही ब्रह्म है। चूँकि हम सब इन तीनों ही को चाहते हैं और इन्हें ही अधिक मात्रा में प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, इसलिए यही कहना होगा कि हमारी प्रवृत्ति ब्रह्म प्राप्ति की दिशा में है। यही हमारी प्रकृति भी है। इस संसार में समस्त जड़-चेतन अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार प्रवृत्तिरत हैं। जीव भी इसका अपवाद नहीं हो सकता। उसे ब्रह्म प्राप्ति ही अभीष्ट है। उसके बिना इसका काम क्षण भर भी नहीं चल सकता, इस प्रकृति के विरुद्ध उसे क्षण भर भी चैन नहीं पड़ सकता।

इतना होते हुए भी देखा जाता है कि प्राणी अनैतिक, दुष्कर्मों में अधिक रुचि लेता है और आलस और अहंकार, वासना और तृष्णा के फेर में पड़ा हुआ लोभवश उस ओर चलता है जिस ओर अन्धकार और असन्तोष ही उपलब्ध होने वाला है। इसका कारण जड़ता का जीव पर पड़ने वाला प्रभाव ही है। यह स्पष्ट है कि प्राणी जड़ और चेतन तत्वों का सम्मिश्रित रूप है। चेतन तत्व-ब्रह्म की स्थिति उसे सत्, चित् और आनन्द की ओर उन्मुख रखती है। किन्तु जड़ता के प्रभाव से भी वह अछूता नहीं रहता। प्रकृति की, माया की, जड़ता की छाया भी उस पर बनी रहती है। इस प्रभाव के कारण ही उसे अपना मार्ग निश्चित करने में, उचित गतिविधियाँ अपनाने में बाधा पड़ती है। इसी खींच-तान में वह दिग्भ्रान्त हो जाता है।

जड़ता का प्रभाव जीव पर जितना अधिक होगा, उतना ही वह जड़ पदार्थों से प्रेम अधिक करेगा, उनका स्वामित्व, संग्रह एवं उपभोग उतना ही उसे अधिक रुचेगा। आलस्य, मोह और अहंकार यह जड़ता के प्रधान चिह्न हैं। जड़ पदार्थ निर्जीव हैं इसलिए जिनमें जड़ता बढ़ेगी वह उतना ही आलसी बनता जावेगा। प्रयत्न, पुरुषार्थ, परिश्रम में रुचि न होगी। अध्ययन, भजन एवं सत्कार्यों में मन न लगना इस बात का चिह्न है कि 'चित्' ईश्वरीय तत्व का विरोधी 'आलस' आसुरी, तत्व अपने अन्दर भर रहा है। उसी प्रकार वस्तुओं को उपकरण मात्र मानकर उनसे सामयिक लाभ उठा लेने की बात न सोच कर उपलब्ध सम्पदा को मौरूसी मान बैठना, उसके छिनने पर रोना-चिल्लाना यह प्रकट करता है कि नाशवान और निर्जीव पदार्थों के प्रति अवांछनीय ममता जोड़ ली गयी है, अहंकार तो असुरता का- तमोगुण का प्रत्यक्ष चिह्न है। क्षण में बदलती रहने वाली वस्तुओं और परिस्थितियों की अनुकूलता पर जो घमण्ड करता है वह यह भूल जाता है कि इस संसार का प्रत्येक परमाणु अत्यन्त द्रुत-गति से अपनी धुरी पर घूमता है और प्रत्येक परिस्थिति तेजी के साथ उलटती-पलटती रहती है। फिर पानी में उठने वाले बबूले की तरह इस क्षण-प्राप्त सौभाग्य पर इतराना क्या ? ऐंठना और अकड़ना क्या ? जो आज है वह कल कहाँ रहने वाला है, फिर अहंकार करने का प्रश्न ही कहाँ उत्पन्न होता है।

लोभ और मोह के वशीभूत होकर वासना और तृष्णा से प्रेरित होकर प्राणी विविध प्रकार के अकर्म और दुष्कर्म करता हुआ जीवन के बहुमूल्य क्षणों का दुरुपयोग करता है। यही अज्ञान है, यही माया है, यही अविद्या है। एक ओर आत्मा की सच्-चित् और आनन्द की मूल प्रकृति उसे उच्च भूमिका की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है। दूसरी ओर जड़ता एवं माया का प्रकोप जीव के ऊपर होता रहता है। एक दिशा में दैवी प्रकृति खींचती है दूसरी ओर आसुरी प्रकृति जोर लगाती है। फलस्वरूप धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र अन्तःकरण में अशान्ति और असन्तोष का महाभारत मचा रहता है। जड़ता हमें बन्धन में बाँधती है और चेतना मुक्ति का सन्देश प्रदान करती है।

इस रस्सा-कशी में जीतता वही है, जिस पर आत्मा अपनी स्वीकृति की मुहर लगा देती है। उसका वोट जिस तरफ पड़ता उधर ही जीत हो जाती है। किसी बच्चे पर दो मातायें अपना दावा करें तो न्यायाधीश उस पक्ष में फैसला देता है कि जिसे बच्चा पहचान ले और जिसके पास जाना पसन्द करे। जड़ता और चेतना ऐसी ही माता और विमाता हैं। दोनों ही आत्मा पर अपना दावा करती हैं और उसे अपने पक्ष में फुसलाना चाहती हैं। अच्छाई इतनी ही है कि फैसला आत्मा की अभिरुचि के ऊपर निर्भर रखा गया है। पतन और उत्थान दोनों ही मार्ग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके लिए खुले हैं। वह जिसे चाहे उसे पसन्द कर सकती हैं।

जीव पर दैवी और आसुरी दोनों ही चेतनाओं का प्रभाव है, वह जिस ओर उन्मुख होगा वैसा ही उसका स्वरूप बनता जायगा। जड़ता एवं माया में लिप्त होते चलने पर वह अधोगति का अधिकारी होता है और पाप, पतन, नरक की दुर्गति में निमग्न होता जाता है। पर यदि वह अपनी मूल प्रकृति सत्-चित्-आनन्द का निर्वाह करता चले तो बन्धन से मुक्ति निश्चित है, फिर उसे पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होती। आवश्यकता अपना सही स्वरूप जानने की सच्ची जिज्ञासा की है।

मन से छीनकर प्रधानता आत्मा को दीजिए—मनुष्य सामान्यतः जो बाह्य में देखता, सुनता और समझता है वह यथार्थ ज्ञान नहीं होता। किन्तु यह भ्रमवश उसी को यथार्थ ज्ञान मान लेता है। अवास्तविक ज्ञान को ही ज्ञान समझकर और उसके अनुसार ही कार्यों को करने के कारण ही मनुष्य अपने मूल उद्देश्य सुख-शान्ति की दिशा में अग्रसर न होकर विपरीत दिशा में चल पड़ता है।

यथार्थ ज्ञान का अनुभावक मनुष्य का अन्तरात्मा ही है। शुद्ध, बुद्ध एवं स्वयं चेतन होने से उसको अज्ञान का अन्धकार कभी नहीं व्याप सकता। परमात्मा का अंश होने से वह उसी की तरह सत् एवं आनन्दमय है। जिस प्रकार परमात्मा के समीप असत्य की उपस्थिति सम्भव नहीं है उसी प्रकार उसके अंश आत्मा में भी असत्य का प्रवेश सम्भव नहीं है।

मनुष्य का अन्तरात्मा जो कुछ देखता, सुनता और समझता है वही सत्य है वही यथार्थ ज्ञान है। अन्तरात्मा से अनुशासित मनुष्य ही सत्य के दर्शन तथा यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि हो जाने पर मनुष्य के सारे शोक-सन्तापों एवं दुःख-द्वन्द्वों का स्वतः समाधान हो जाता है। जहाँ प्रकाश होगा वहाँ अन्धकार और जहाँ ज्ञान होगा वहाँ दुःख रह ही नहीं सकता। प्रकाश का अभाव ही अन्धकार है और ज्ञान की अनुपस्थिति ही दुःख है। दुःख का कोई अपना मौलिक अस्तित्व नहीं।

अन्तरात्मा की बात सुनना और मानना ही उसका अनुशासन है। शंका हो सकती है कि क्या मनुष्य का अन्तरात्मा बोलता भी है? हाँ, मनुष्य का अन्तरात्मा बोलता है। किन्तु उसकी वाणी स्थूल, ध्वनिपूर्ण नहीं होती। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म होती है जिसे बाह्य एवं स्थूल श्रवणों से नहीं सुना जा सकता। मनुष्य का अन्तरात्मा बोलता है किन्तु मौन विचार स्फुरण की भाषा में, जिसे मनुष्य अपनी कोलाहलपूर्ण मानसिक स्थिति में नहीं सुन सकता। अन्तरात्मा की वाणी सुनने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य का मानसिक कोलाहल बन्द हो।

अन्तरात्मा का सान्निध्य मनुष्य को उसकी आवाज सुनने योग्य बना देता है। यों तो मनुष्य की अन्तरात्मा उसमें सदा ओत-प्रोत है किन्तु वह तब तक उसका सच्चा सान्निध्य नहीं पा सकता, जब तक वह उससे परिचय नहीं करता, उसे जान नहीं पाता। परिचयहीन निकटता भी एक दूरी ही होती है। रेल-यात्रा में कन्धे से कन्धा मिलाए बैठे दो आदमी अपरिचित होने के कारण समीप होने पर भी एक दूसरे से दूर ही होते हैं। अजनबी आदमी को छोड़ दीजिए, जिन्दगी भर एक-दूसरे के पास रहने पर भी आन्तरिक परिचय के अभाव में एक-दूसरे से दूर ही रहते हैं। वे कभी भी एक-दूसरे को ठीक से नहीं समझ पाते।

अन्तरात्मा को जानने का एक ही उपाय है कि उसके विषय में सदा जिज्ञासु एवं सचेत रहा जाये। जो जिसके विषय में जितना अधिक जिज्ञासु एवं सचेत रहता है वह उसके विषय में उतनी ही गहरी खोज करता है और निश्चय ही एक दिन उसे पा लेता है। अपनी आत्मा के विषय में अधिक से अधिक जिज्ञासु एवं सचेत रहिये। आप अपनी आत्मा से परिचित होंगे, वाणी में यथार्थ सुख-शान्ति के अधिकारी बनेंगे।

मनुष्य जो काम करता है, वह अधिकतर करता अन्तःप्रेरणा से ही है, किन्तु वह अन्तःप्रेरणा अन्तरात्मा की नहीं होती। वह होती है मन की, जो कि स्वभावतः पतन पथगामी है, चंचल, निरंकुश एवं उच्छंखल मन मनुष्य के लिए यातना का महामूल है। वह इन्द्रियों द्वारा कार्य रूप में स्फुरित होकर मनुष्य को अन्धकार की ओर ही खींच ले जाता है।

जब तक मनुष्य उच्छंखल मन की प्रेरणा से गतिशील होता रहता है। तब तक निरन्तर ऐसे मार्ग पर ही चलता रहता जिस पर दुःख-द्वन्द्वों एवं शोक सन्तापों की कंटकित झाड़ियाँ ही उगी रहती हैं। यथार्थ बात यह है कि मनुष्य अपने अन्तरात्मा की आवाज इसी मन के कोलाहल के कारण नहीं सुन पाता। जहाँ मन का स्वभाव उछल-कूद मचाना और शोर करने का है, वहाँ मनुष्य का अन्तरात्मा शान्त एवं सुस्थिर होता है। न तो वह मन की तरह कोलाहल कर पाता है और न उछल-कूद मचा पाता है। अपनी इसी चपलता के कारण ही मन मनुष्य की अन्तरात्मा के आगे बना रहता है और उसे तरह-तरह की अवांछनीय प्रेरणाएँ दिया करता है। आवाज में प्रबलता एवं निर्देश में शासन का भाव रखकर मन मनुष्य को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शीघ्र ही अपने अनुकूल प्रभावित कर लेता है, हठपूर्वक उसे अपना आज्ञापालक बना लेता है। जब कि शुद्ध-बुद्ध एवं शांत आत्मा कभी भी मनुष्य से किसी बात का दुराग्रह नहीं करता।

अन्तरात्मा के जिज्ञासु को चाहिए कि वह मन के कोलाहल की ओर से कान बन्दकर अन्तरात्मा की आवाज सुनने का अभ्यास करे। जिस दिन वह अन्तरात्मा का निर्देश सुनने और उनका पालन करने लगेगा, निश्चय ही उस दिन से यथार्थ सुख-शांति का अधिकारी बन जायेगा। जिज्ञासा की प्रबलता से मनुष्य के कान उस तन्मयता को सरलता से सिद्ध कर सकता है, जो अन्तरात्मा की आवाज सुनने में सफलतापूर्वक सहायक हो सकती है। आत्मा मनुष्य का सच्चा मित्र है। वह सदैव ही मनुष्य को सत् पथ पर चलने और कुमार्ग से सावधान रहने की चेतावनी देता रहता है किन्तु खेद है कि मनुष्य वास्तव में उसकी आवाज सुनना चाहे तो ध्यान देने से उसी प्रकार सुन सकता है जिस प्रकार बहुत सी आवाजों के बीच भी उत्सुक शिशु अपनी माँ की आवाज सुनकर पहचान लेता है।

अन्तरात्मा मनुष्य का मित्र है और सदैव ही उसका हित चाहता रहता है तो फिर वह उसके लिए प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता, लुका-छिपी क्यों करता है? यह प्रश्न किसी भी व्यक्ति के मस्तिष्क में उठ सकता है। इसका सीधा-सा उत्तर यही है कि आत्मा सदा-सर्वदा प्रत्यक्ष ही रहता है। किन्तु यह मनुष्य का ही दृष्टिदोष है कि वह उसे देख नहीं पाता। सूर्य सदैव प्रत्यक्ष है, पर उसके तथा दृष्टि के बीच में कोई व्यवधान आ जाये तो सूर्य उसके लिए अप्रत्यक्ष ही है। मनुष्य तथा उसकी आत्मा के बीच मन की प्रधानता का पर्दा पड़ा हुआ है, जिसके कारण प्रत्यक्ष आत्मा भी मनुष्य के लिए अप्रत्यक्ष ही रहता है। यदि मनुष्य इस मन की प्रधानता की उपेक्षा कर सके तो निश्चय ही उसका अन्तरात्मा उसके लिए प्रकाश के समान ही प्रत्यक्ष हो जाये। वही मनुष्य की परम सार्थकता भी है। आत्मा ही परम ज्ञातव्य है, उपास्य है, साध्य है।

हमारा जीवन-लक्ष्य—आत्मज्ञान

मनुष्य-जीवन का भी अपना एक लक्ष्य है। खाने-कमाने और मौज-मजा करने तक ही उसका जीवन सीमित नहीं। सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक, राजनीतिक सीमा-बन्धनों तक ही उसका जीवन बँधा नहीं है। जन्म से मृत्यु तक की एक निश्चित अवधि, सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान की परिस्थितियाँ यह सोचने को विवश करती हैं कि मनुष्य जिस दिशा में चल रहा है यही उसकी दिशा नहीं है। उसकी सूक्ष्म बौद्धिक क्षमता यह बताती है कि मनुष्य कोई विशेष लक्ष्य लेकर इस धरती में अवतरित हुआ है। विशाल अन्तरिक्ष, गगनस्पर्शी पर्वत, सुदूर तक विस्तृत सागर, सूर्य-चन्द्रमा, ग्रह-नक्षत्र सभी इंगित करते हैं कि इस जीवन से भी आगे कुछ है। अशान्ति, दुःख और क्षोभ का कारण यही है कि हमें आत्म-ज्ञान नहीं, अपने लक्ष्य का भान नहीं है। यह अस्थिरता तब तक बनी रहती है जब तक मनुष्य अपना लक्ष्य नहीं जानता, अपने मौलिक स्वरूप को नहीं पहचानता।

इस संसार में अनेकों प्रकार के जीव-जन्तु, कीट-पतंगे पशु-पक्षी और मनुष्येतर प्राणी विद्यमान हैं। कई शारीरिक शक्ति में बड़े हैं, कई सौन्दर्य में। कितनों ने प्राणशक्ति के आधार पर अनेकों प्राकृतिक घटनाओं का पूर्व आभास पा लेने में अजीव क्षमता पाई, तो कई स्वच्छन्द विचरण के क्षेत्र में आपके सान-युग से भी अधिक पटु हैं। किन्तु, एक साथ सारी विशेषताएँ किसी को भी उपलब्ध नहीं। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और अनेकों आत्मिक सम्पदायें मनुष्य में ही दिखाई देती हैं। मानव जीवन भी इस सुव्यवस्था को देखते हैं तो यह लगता है कि किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही हुआ है। एक ही स्थान पर अनेकों शक्तियों का केन्द्रीकरण निश्चय ही अर्थपूर्ण है।

मनुष्य को औरों की अपेक्षा अधिक बुद्धि, विद्या, बल और विवेक मिला है, यह बात तो समझ में आती है किन्तु इन शक्तियों का सम्पूर्ण उपयोग बाह्य जीवन तक ही सीमित रखने में उसने बुद्धिमत्ता से काम नहीं लिया। अपने ज्ञान-विवेक को शारीरिक सुखोपभोग के निमित्त लगा देने में उसने धोखा ही खाया है। दुःखों का कारण भी यही है कि हम अपने शाश्वत-स्वरूप को पहचानने का प्रयत्न नहीं करते। नाशवान् शरीर और इन्द्रियजन्य विषयों की पूर्ति गोरख-धन्धे में ही अपना सारा समय बरबाद कर देते हैं और अन्त समय सारी भौतिक सम्पदायें यहीं छोड़कर चल देते हैं। इस कटु सत्य का अनुभव सभी करते हैं किन्तु अन्तरंग-कक्षा में प्रवेश होने से दूर भागते हैं। कभी यह विचार तक नहीं करते कि इस विश्व-व्यापी प्रक्रिया का कारण क्या है? हम क्या हैं और जीवन धारण करने का हमारा लक्ष्य क्या है? ढेर सारी सम्पदायें मिली हैं इसलिये कि इनका उपयोग अन्तर्दर्शन के लिये किया जाय। अपने को भी नहीं पहचान पाये तो इस शरीर का, बौद्धिक शक्तियों का क्या सदुपयोग रहा?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'मैं, और मेरा शरीर' दो भिन्न वस्तुयें हैं। एक कर्त्ता है, दूसरा कर्म। एक क्रियाशील है, दूसरा जड़। एक सवार है, दूसरा वाहन। मानव-जीवन की लक्ष्य प्राप्ति के लिये शरीर आत्मा का वाहन मात्र है। दोनों की एकरूपता का कोई आधार समझ में नहीं आता। यदि ऐसा होता तो मृत्यु के उपरान्त भी यह शरीर क्रियाशील रहा होता। खाने-पीने, उठने-बैठने, बोलने-चलने और जीवन के अनेकों व्यवसाय वह उसी तरह सम्पन्न करता है, जैसे जीवित अवस्था में। तब फिर उचित यही प्रतीत होता है कि अपने कर्त्तापन का ज्ञान प्राप्त करें। अपने वाहन को तरह-तरह के रंगी लुभावने आभूषणों से सजाते घूमें और आत्म तत्व उपेक्षित पड़ा रहे तो इसे कौन बुद्धिमत्ता की बात मानेगा? घोड़ा घास खाये और सवार को पानी भी न मिले तो फिर यात्रा का उद्देश्य ही कहाँ पूरा हुआ?

आत्मा की सिद्धियाँ अनन्त हैं। स्वर्ग-मुक्ति विराट् के दर्शन का केन्द्र बिन्दु आत्मा है। वह अनन्त सामर्थ्यों का स्वामी है। इन्हें प्राप्त कर मनुष्य अणु से विभु, लघु से महान्, बन्धन-मुक्त बनता है, किन्तु आत्मानुभूति किये बिना यह सब कुछ सम्भव नहीं। अपने नीचे की जमीन में ही असंख्यों मन सोना, चाँदी, हीरा, जवाहरात जमा हो और उसका ज्ञान न हो तो उस बहुमूल्य खजाने और मिट्टी की ठीकरों में भला क्या अन्तर रहा? अपनी तिजोरी में रखी हुई पिस्तौल दुश्मन को नहीं मार सकती। जिस शक्ति का हमें ज्ञान ही न हो, उसको प्रयोग में कैसे लाया जा सकता है ?

'आत्म-ज्ञान' भारतीय संस्कृति का प्राण है। यहाँ समय-समय पर जो भी महापुरुष हुए हैं उन्होंने आत्म-दर्शन पर ही जोर दिया है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय इसी से ओत-प्रोत है। जीवन के प्रत्येक व्यवसाय में अन्तर्दर्शन की बात अवश्य जोड़ दी गई है ताकि मनुष्य भौतिक जीवन जीते हुए भी आत्म तत्व से विस्मृत न रहें। अपने जीवनोद्देश्य को कभी भी न भूले। इसी पर सब मनीषियों ने देश-काल और परिस्थितियों के अनुरूप भिन्न-भिन्न रूप से बल दिया है। सभी महापुरुषों, ऋषियों, सन्तों और लोकनायकों ने मनुष्य को दुःख और विनाश की परिस्थितियों से ऊँचा उठाने के लिए आत्मिक ज्ञान पर ही अधिक बल दिया है। भारतीय जीवन में भौतिक सम्पदाओं की अवहेलना का भी यही अर्थ है कि मानवीय-चेतना अपने मूल-स्वरूप में पहचानने की दिशा में सतत् आरूढ़ रहे।

आत्मा का स्वाभाविक स्वरूप अत्यन्त शुद्ध, पवित्र, अलौकिक और दिव्य है। उसकी अन्तिम अवस्था धर्माचरण और ईश्वर साक्षात्कार है। यह शरीर के माध्यम से ज्ञान और प्रयत्न करने से मिलती है। शरीर को जब एक विशिष्ट उपकरण मानकर इन्द्रियों की दासता से ऊपर उठते हैं तो स्वयं ही आत्मानुभूति होने लगती है। जो आदमी इस सत्य को गहराई तक अपने हृदय में बिठा लेता है वह नाशवान् वस्तुओं के अनुचित मोह को त्यागकर आत्मिक पवित्रता की ओर अग्रसर होता है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि अनात्म तत्वों से उसकी रुचि हटने लगती है। विचार और व्यवहार में पवित्रता उत्पन्न होती है। जितना वह आत्म-साक्षात्कार के समीप बढ़ता है उसी अनुपात से उसमें दैवी गुणों का समावेश होता चलता है। फलस्वरूप सच्चे सुख-शान्ति और सन्तोष के परिणाम भी सामने आते रहते हैं।

आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए बड़े उपकरणों या अधिक से अधिक स्कूली शिक्षा की ही आवश्यकता नहीं। कोई भी व्यक्ति जो अपनी सामर्थ्यों या विवशताओं की विवेचना कर सकें, आत्मज्ञानी हो सकते हैं। इसके लिए आत्म-निरीक्षण की आदत बनानी पड़ती है। यह कार्य ऐसा नहीं जो हर किसी से किया न जा सके। अपनी भूलों, त्रुटियों और आदत में प्रवेश बुराइयों को अपने में दृढ़तापूर्वक खोजना और उन्हें दूर हटाना हर किसी के लिए सम्भव है। सन्मार्ग पर चलते हुए रास्ते में जो अड़चनें, बाधायें और मुसीबतें आती हैं इन्हें धैर्यपूर्वक सहन करते रहने से अपनी समस्त चेतना का रुख आत्मा की ओर उन्मुख होने लगता है। जैसे बन्दूक की गोली को शक्तिपूर्वक दूर तक पहुँचाने के लिए उसे छोटे से छोटे दायरे से गुजारा जाता है, वैसे ही अपनी समस्त चित्तवृत्तियों को एक ही दिशा में लगा देने से उधर ही आशातीत परिणाम दिखाई देने लगते हैं। जब तक अपनी मानसिक चेष्टायें बहुमुखी होती हैं तब तक विपरीत परिस्थितियों से टकराते रहते हैं। किन्तु जब एक ही दिशा में दृढ़तापूर्वक चल पड़ते हैं तो ध्येय की प्राप्ति की साधना भी सरल हो जाती है।

किसी विषय को जब तक मनुष्य भली-भाँति समझ नहीं लेता तब तक उससे झिझकता रहता है। घने अन्धकार में जाने से सभी को भय लगता है। किन्तु यदि उसी अन्धकार में जाने के लिए हाथ में मशाल दे दी जाय तो अज्ञानता का भय अपने आप दूर हो जाता है। आत्मिक-ज्ञान के प्रति भय की उपेक्षा और उदासीनता का कारण यही होता है कि अपना जीवन लक्ष्य निर्धारित नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते। अनन्त शक्तियों का केन्द्र होते हुए भी मनुष्य इधर से जितना उदासीन रहता है उतने ही दुःख और अभाव उसे घेरे रहते हैं।

सांसारिक ज्ञान प्राप्त करना ही अपना लक्ष्य रहा होता तो इसके लिए बुद्धि की चेतनता, एकाग्रता एवं जागरूकता ही पर्याप्त थे, किन्तु आत्म-ज्ञान का सम्बन्ध समस्त प्राणिमात्र में स्वानुभूति करने से होता है। अपने क्रिया-व्यापार को जब तक अपने आप तक ही सीमित रखते हैं तब तक इस परम तत्व का ज्ञान पाना असम्भव है। स्वार्थ की संकीर्ण प्रवृत्ति ही है जो मनुष्य को सत्य का आभास नहीं होने देती। किन्तु जब परमार्थ-बुद्धि का समावेश होता है तो सारी ग्रन्थियाँ स्वयमेव खुलने लग पड़ती हैं। जिस प्रकार अस्वच्छ शीशे में सूर्य की किरणों का परावर्तन नहीं होता, वैसे ही स्वार्थपूर्ण अन्तःकरण बनाये रखने से आत्मानुभूति सम्भव नहीं। इसलिये अपने आपको दूसरों के हित एवं कल्याण के लिये विकसित होने दीजिये। दूसरों के दुःख-दर्द जिस दिन से आपको अपने लगने लगें उसी दिन से आपकी महानता भी विकसित होने लगेगी। सभी के साथ प्रेम-मैत्री, सहयोग, सहानुभूति का स्वभाव बनाने से आत्म-ज्ञान का प्रकाश परिवर्द्धित होने लगता है। गीताकार ने लिखा है-

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः।।

अर्थात्– आत्मवादी पुरुष का लक्षण है, लोक हितार्थ कर्म करना। क्योंकि सम्पूर्ण प्राणियों से स्वार्थ का कोई सम्बन्ध नहीं है। सभी विश्वचेतना के ही अंग हैं, फिर किसी के प्रति परायेपन का भेदभाव क्यों करें? अपने ही सुखों को प्रधानता देने में तो क्षणिक आनन्द अनुभव कर इसी में लगे रहते हैं उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वे आत्मोद्धार कर लेंगे। पर जिसे अपना मानव-जीवन सार्थक बनाना है, जिसने अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर लिया है, उसके लिये यही उचित है कि वह खुले मस्तिष्क से सभी में अपने आपको ही रमा हुआ देखे। ऐसी अवस्था में किसी को दुःख देने या उत्पीड़ित करने की भावना भला क्यों बनेगी ?

आत्मज्ञान और आत्मानुभूति के मूल उद्देश्य को लेकर ही हम इस संसार में आये हैं। मानव-जीवन की सार्थकता भी इसी में है कि वह अपने गुण, कर्म और स्वभाव में मानवोचित सदाचार का समावेश करे और लोकहित में ही अपना हित समझे। मनुष्य एक विषय है, तो संसार उसकी व्याख्या। अपने आपको जानना है, तो सम्पूर्ण विश्व के साथ अपनी आत्मीयता स्थापित करनी पड़ेगी। आत्मा विशाल है। वह एक सीमित क्षेत्र में बँधी नहीं रह सकती।

सम्पूर्ण संसार ही उसका क्रीड़ा क्षेत्र है। अपनी चेतना को भी विश्वचेतना के साथ जोड़ देने से आत्म-ज्ञान का प्रकाश स्वतः प्रस्फुटित होने लगता है।

इस प्रकार जब मनुष्य सांसारिक तथा इन्द्रियजन्य परतन्त्रता से मुक्त होने लगता है, तो उसकी महानता विकसित होने लगती है। आत्मा की स्वतन्त्रता परिलक्षित होने लगती है, आत्मबल का संचार होने लगता है। स्वाभाविक पवित्रता और प्रफुल्लता का वातावरण फूट निकलता है, आत्मा की गौरवपूर्ण महत्ता प्राप्त कर मनुष्य का इहलौकिक उद्देश्य पूरा हो जाता है। अपने लिये भी यही आवश्यक है कि हम अपनी इस प्रसुप्त महानता को जगायें, इसके लिए आज से और अभी से लग जायें ताकि अपने अवशेष जीवन का सच्चा सदुपयोग हो सके।

आत्मज्ञान की आवश्यकता क्यों?

आत्मा को क्यों खोजना चाहिए और उसकी ही जिज्ञासा क्यों करनी चाहिए ? इसका उत्तर यही है कि संसार का वास्तविक तत्व आत्मा ही है। जो जरा-मरण से रहित, शोक से मुक्त नित्य और अविनाशी है। उसका ज्ञान हो जाने से मनुष्य उसी की भाँति ही भय, शोक, चिन्ता और मरण-धर्म से मुक्त हो जाता है। अजर और अमर होकर संसार के लोगों एवं अनुभवों से ऊपर उठकर चिर अविनाशी पद प्राप्त कर लेता है। इस नाशवान् मानव जीवन की इससे बड़ी और इससे ऊँची उपलब्धि अन्य क्या हो सकती है ?

मनुष्य एक ऐसा आनन्द प्राप्त करना चाहता है, जो सत्य, अपरिवर्तनशील और अविनाशी हो। संसार के क्षणभंगुर सुखों का उपभोग करने से उसकी यह प्यास पूरी नहीं होती। बल्कि इन उपभोगों से उसकी प्यास और भी बढ़ जाती है। उसे अन्त में अशान्ति और असन्तोष का भागी बनना पड़ता है। इन्हीं नश्वर और मिथ्या भोगों में आनन्द की खोज करता-करता वह जरा को प्राप्त करता है और फिर मृत्यु को। सारा बहुमूल्य जीवन यों ही व्यर्थ में चला जाता है। इसी अवधि में वांछित आनन्द की निधि रूप यदि आत्मा की खोजकर ली जाय, तब न तो जरा का भय रहे और न मृत्यु का। मनुष्य जीवन में भी उस शाश्वत आनन्द को पाता रहे और उसके बाद तो वह परमानन्दस्वरूप ही हो जाये।

हम सब जीवन में नाना प्रकार की सम्पत्ति, नाना प्रकार के पदार्थ, ऐश्वर्य, साधन, उपकरण तथा वैभव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदि एकत्र करते हैं। इस संग्रह में निश्चय ही एक उद्देश्य होता है, यह पुरुषार्थ यों ही किसी पागलपन से प्रेरित होकर नहीं किया जाता है, इसके पीछे एक उद्देश्य एक मन्तव्य रहता है। वह मन्तव्य क्या होता है? वह होता है। आनन्द की खोज। हम सबको यह भ्रम रहता है कि यदि हम किसी भी भाँति वैभवशाली बन जायें तो हमारे लिये आनन्द की कमी न रहे। किन्तु क्या हमारा यह उद्देश्य पूरा हो पाता है? नहीं, निश्चित रूप से नहीं।

यदि धन-सम्पत्ति और वैभव, विभूति से ही आनन्द के उद्देश्य की पूर्ति हो सकती होती तो इस विशाल संसार में न जाने कितने धन-कुबेर पड़े हैं। ऐसे-ऐसे धनवान इस धराधाम पर मौजूद हैं जिनके धन-वैभव की कोई गणना, कोई परिमाण नहीं है जिनकी नित्य-प्रति करोड़ों की आय है और जिनका आर्थिक साम्राज्य देश, देशान्तरों में फैला पड़ा है। वे सभी सुखी और सन्तुष्ट होने चाहिए थे पर देखने में ऐसा आता है कि वे भी अन्य जन साधारण की भाँति ही आनन्द के लिये लालायति रहते हैं। उस विपुल वैभव के बीच भी रोते कलपते और शोक मनाते दृष्टिगोचर होते हैं।

तथापि, इस निरर्थकता को देख-सुनकर अनुभव करने के बाद भी मनुष्य इन्हीं वैभवों की ओर ही दौड़ता रहता है। अपने जीवन की लगभग सारी अवधि इन्हीं वंचनाओं की प्राप्ति में लगा देता है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि रात-दिन इन्हीं को लक्ष्य बनाकर जुटे रहने से, इन्हीं के बीच रहने और इन्हीं का चिन्तन व्यवहार करते रहने से इनके साथ मनुष्य की आसक्ति और ममता का भाव जुड़ जाता है। धीरे-धीरे यह अभ्यास इतना गूढ़ हो जाता है कि जीवन का एक अंग ही बन जाता है।

मनुष्य इन्हीं उपकरणों, साधनों और सामग्रियों को ही सर्वस्व मान बैठता है। युग-युग का, जन्म-जन्म का अभ्यास छूटना सरल नहीं होता। वह स्वभाव बन जाता है और तब मनुष्य उसकी निस्सारता और हानियों को जानता, मानता हुआ भी उन्हीं की ओर उत्सुक बना रहता है। दूसरी बात यह है कि इस सबसे परे जो अविनाशी और चिदानन्दमय आत्म-तत्व है उससे उसका परिचय नहीं होता। जिसको वह जानता ही नहीं उसके प्रति आकर्षित होने का प्रश्न ही नहीं होता। आकर्षण तो उसी के प्रति होता है, जिसका ज्ञान होता है और जिससे पहचान होती है। सांसारिक वैभव और भोगों से परे भी एक ऐसा सत्य तत्व है जिसे आनन्द का निवास माना गया है– यदि मनुष्य को यह ठीक-ठीक पता चल जाये तो वह आनन्द की प्राप्ति के लिए उसकी ओर भी आकर्षित हो। दो चीजें सामने होने पर ही तो कोई एक को छोड़कर दूसरी या एक के साथ अन्य का भी चुनाव कर सकता है और तब जो उसके लिये अधिक उपयोगी हो उसे ही ग्रहण कर दूसरे को छोड़ सकता है।

केवल एक सांसारिक वैभव के सामने होने और सम्भव मानने के कारण मनुष्य उन्हीं को दौड़-दौड़कर पकड़ता है और उन्हीं में आनन्द की खोज करने का प्रयत्न करता है। असफल होता है-लेकिन फिर उन्हीं को पकड़ता और फिर असफल होता है। आत्म का ज्ञान न होने से यह प्रक्रिया उसके लिए एक विवशता बनी हुई है, यदि आत्मा की प्राप्ति हो जाये तो निश्चय ही उसके स्वभाव में परिवर्तन हो जाय और तब उसका उद्देश्य भी पूरा हो जाये।

नश्वरता संसार का नियम है। इसकी कोई चीज भी स्थिर अथवा अविनाशी नहीं है। इस नियम के अनुसार उपार्जित किया हुआ वैभव भी सन्ध्या की छाया की तरह नष्ट हो जाता है, आज है कल नहीं रहता और यदि किसी के पास युक्ति के आधार पर कुछ अधिक समय तक बना भी रहता है तो उसके नाश हो जाने का भय दुःखी बनाता रहता है। भोग-विलास, जिनमें डूबकर मनुष्य बड़ा आनन्द मनाता है, शीघ्र ही मनुष्य को नष्टकर स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं।

यौवन के ढलते और जरा के आते ही संसार के भोग दुर्बल हो जाते हैं। तब उनका ध्यान शूल की तरह शालता है। यदि मनुष्य प्रारम्भ में ही इनको निस्सार मानकर इनका व्यसन न पाले, इनसे आसक्ति न जोड़े तो बहुत हद तक इस मानसिक दुःख से बच सकता है। पर अज्ञान के कारण वह स्वभावतः ऐसा कर नहीं पाता।

मनुष्य आनन्द के लिये जिन सांसारिक सम्पदाओं का आधार लेता है, उनमें आनन्द तो क्या पाता है उलटे उनके वियोग, अस्थिरता और परिवर्तनशीलता के साथ उनके विनाश की सम्भावना से बेचैन और दुःखी रहता है। सारा जीवन इन जाने वाले पदार्थों को रोकने में ही समाप्त कर देता है और एक दिन स्वयं भी शरीर छोड़कर अनजान दिशा में चला जाता है। जिन पदार्थों को भोला मनुष्य सत्य समझ कर पकड़ता है, वे सब स्वप्न की तरह असत्य सिद्ध होते हैं। सांसारिक भोगों में दीखने वाला आनन्द कृत्रिम प्रकाश की तरह है और तब जीवन में विषाद का घना अन्धकार छा जाता है, जिसमें भटकते हुए ठोकरें खाने के सिवाय कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

यही कारण है कि मनीषियों ने सांसारिक सिद्धियों से परे अविनाशी एवं परिवर्तनशील आनन्द की निधान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मा को खोजने और पाने के महत्त्व पर अपना मत दिया है। आत्मा सत्य है, नित्य है, ज्योति-स्वरूप और आनन्दमय है। उसको पा लेने पर कुछ पाना शेष नहीं रह जाता और जान लेने पर कुछ जानना नहीं रहता। मनुष्य के पुरुषार्थ की सार्थकता सांसारिक सुखों के उपकरण और उपादान-संचय करने में नहीं है, बल्कि आत्मा को प्राप्त करने के प्रयत्न में है।

यह जड़-चेतनमय जितना भी जगत् दृष्टिगोचर होता है, इसका अपना अस्तित्व कुछ भी नहीं है। आत्मा के आधार पर ही इसका अस्तित्व निर्भर है। आत्मा ही मानव-जीवन का चरम सत्य है। आत्मा के प्रकाश में ही बाह्य संसार और दृश्य जीवन का छाया नाटक बनता-बिगड़ता रहता है। संसार और कुछ भी तो नहीं, केवल आत्मा की अभिव्यक्ति और उसका ही विस्तार है। आत्मा एक चिरन्तन सत्य है।

इससे पृथक् जो कुछ है, वह असत्य है, भ्रमपूर्ण है और अग्राह्य है। वेदों में जिसे **'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय'**- का घोष किया है उसका संकेत सांसारिकता से ऊपर उठकर आत्मा की ओर ही अभियान करने का है। क्योंकि आत्मा ही ज्योति रूप है, शिव रूप है और वही अमृत रूप भी है। निश्चित ही मनुष्य को ऐसी कल्याणकारी आत्मा पाने का प्रयत्न करते रहना चाहिये।

आत्म-जिज्ञासा से रहित जीवन भार स्वरूप ही बना रहता है। आत्म-जिज्ञासा से रहित मनुष्य को भय की कल्पनायें और पाप की भावनाएँ कभी चैन से नहीं रहने देतीं। यदि सुखी, शान्त और सन्तुष्ट जीवन बिताने की कामना है, तो जीवन में आत्म-जिज्ञासा को स्थान देना ही होगा। उसकी खोज करनी ही होगी। जितना समय मनुष्य अहंकार के पोषण में लगाता है, सांसारिक उपलब्धियों की लालसा में व्यतीत करता है, यदि उसमें से कुछ निकालकर आत्मा की खोज में लगाये, तो मंगलमार्ग पर बहुत कुछ आगे बढ़ सकता है।

अहंकार के वशीभूत होकर शारीरिक सन्तुष्टि तक सीमित रहने वाले अपनी भूल को तब समझ पाते हैं, जब जीवन में पतझड़ का समय आ जाता है और शरीर पीले पत्ते की तरह गिर जाने की स्थिति में होता है। उस पटाक्षेप के समय उसे निश्चय ही संसार की असारता, असत्यता और भंगुरता का ज्ञान और आत्मा की चिरंतनता और अविनश्वरता की प्रतीति होती है। तब समय निकल चुका होता है। उस अन्तिम समय में कुछ भी कर सकने का अवसर नहीं रहता। उस समय हाथ मल-मलकर पछताने के सिवाय और कुछ भी शेष नहीं रह जाता। उस समय इस पश्चात्ताप के साथ संसार छोड़ने पर विवश होना पड़ता है कि जिस सत्य की खोज के लिये सुर-दुर्लभ मानव-जीवन मिला था, उसकी उपेक्षाकर, हाय, हम संसार की तुच्छ बातों में ही लगे रहे! हमने वह सब कुछ किया, जो नहीं करना था और वह सब कुछ भी नहीं किया जो कर्तव्य था। उस घड़ी उस आत्मा की उपेक्षा करने वाले व्यक्ति की क्या दशा होती होगी ? उसके हृदय में किस भयानक पछतावे और विवशता की आग जलती होगी, उसे तो वही बतला सकते हैं जिन्होंने उस स्थिति का भोग किया है अथवा जो आगे चलकर एक दिन करेंगे।

कितना अच्छा हो कि मनुष्य आवश्यकता भर अपने सांसारिक कर्तव्य करता रहे और बाकी का समय अध्यात्म मार्ग से आत्मा की खोज करने में भी लगाता रहे, तो उसके लोक-परलोक एक साथ बनते चलें। इस द्विमुखी साधना में जरा भी कठिनाई नहीं है। आत्म-जिज्ञासु व्यक्ति संसार में रमता हुआ भी उसकी अँधेरी वीथियों में नहीं भटकने पाता। उसकी वह जिज्ञासा उसके साथ रहकर प्रकाश का काम करती रहती है। सांसारिक कर्तव्यों के बाद वह उसको उसी प्रकाश मार्ग पर लौटा लाती है, जिसका अनुसरण इस वेद वाक्य को चरितार्थ कर देता है–

''असतो मा सद्गमय' ''तमसो मा ज्योतिर्गमय'' ''मृत्योर्माऽमृतं गमय''

और तब मनुष्य का न केवल वर्तमान जीवन बल्कि भूत, भविष्यत् के भी सारे जीवन धन्य होते।

आत्म-ज्ञान से ही दुःखों की निवृत्ति सम्भव

संसार को दूरदर्शी दार्शनिकों ने दुःखालय की संज्ञा दी है। इस संज्ञा का आधार यही है कि मनुष्य संसार में जन्म लेकर सदा ही किसी न किसी प्रकार के दैहिक, दैविक अथवा मानसिक दुःखों से घिरा रहता है। मनुष्य का सारा परिश्रम, पुरुषार्थ एवं प्रयत्न दुःखों से बचने का ही एक उपक्रम है। किन्तु जीवन भर प्रयत्न करते रहने पर भी मनुष्य का प्रायः छुटकारा नहीं हो पाता और अन्त में वह कष्ट-क्लेशों की मानसिक अथवा शारीरिक स्थिति में ही इस संसार को छोड़ जाता है।

अनेक लोग अभावों को ही दुःख का कारण मानते हैं। संसार में एक से एक बढ़कर साधन सम्पन्न व्यक्ति पड़े हैं किन्तु क्या वे सुखी अथवा सन्तुष्ट होते हैं? अपने विपुल साधनों के बीच भी वे तरसते-तड़पते और आह-कराह करते नजर आते हैं। जिनको अभाव का दुःख नहीं- उन्हें रोग, दोष आदि के शारीरिक दुःख से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पीड़ित देखा जाता है, जिन्हें शारीरिक दुःख नहीं वे काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, ताप, अनुताप, पश्चात्ताप, तृष्णा अथवा एषणाओं के मानसिक दुःखों से पीड़ित पाये जा सकते हैं। यदि एक बार कोई सज्जन अथवा साधु पुरुष इन दुःखों से न भी दुःखी हों तब भी उसके आसपास रहने वाले दुष्ट लोग अकारण ही उसके लिये अप्रिय परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकते हैं। कोई दुर्घटना अथवा आधि-व्याधि ही उनके दुःख का कारण बन सकती है। प्रकृति-वाहित न जाने ऐसे कितने दुःख-क्लेश इस संसार में आते रहते हैं जिनसे अमीर, गरीब, साधु और खल सभी एक समान पीड़ित होते हैं। और कोई दुःख न भी हो तो जन्म, जरा और मृत्यु का दुःख ही क्या कम है ?

महात्मा बुद्ध एक राजकुमार थे। उनके जीवन में अभाव का प्रश्न ही नहीं उठता। वे स्वस्थ, सुन्दर और सच्चरित्र भी थे, शारीरिक कष्ट का उन्हें कोई अनुभव न होता था। सावधानीपूर्वक उनकी किसी भी इच्छा की अति पूर्ति की जाती थी। हर प्रकार से हर दशा में उन्हें पूर्ण प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखने का सफल प्रयत्न किया जाता था। ऐसी स्थिति में मानसिक दुःख का उनके जीवन से कोई सम्बन्ध न था। उनकी पत्नी यशोधरा सुन्दर, स्वस्थ, पतिव्रता एवं प्रिया थी। उनका पुत्र राहुल मनभावन तथा प्यारा था। तात्पर्य यह है कि राजकुमार सिद्धार्थ को अपनी प्रिय एवं अनुकूल परिस्थितियों में किसी प्रकार का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक अथवा आकस्मिक कोई दुःख न था। तब भी दुःख की अनुभूति से पीड़ित होकर वे अपनी प्रिय परिस्थितियों को छोड़कर संसार का दुःख दूर करने का उपाय खोजने के लिये साधु हो गये।

राजकुमार सिद्धार्थ केवल एक बार ही अपनी अनुकूल परिस्थितियों तथा प्रिय वातावरण से निकल कर बाहर फैले हुए संसार में आये और एक रोगी, वृद्ध तथा मुर्दे को देखकर अनुभव कर लिया कि यह संसार दुःख-दर्दों से भरा हुआ दुःखालय है। उनका यह अनुभव सत्य यथार्थ एवं वास्तविक था। इसने उन्हें इतना कातर कर दिया कि आखिर वे संसार का दुःख दूर करने का उपाय खोजते-खोजते राजकुमार सिद्धार्थ से वैरागी बुद्ध बन गये।

वैदिक, औपनिषदक, दार्शनिक एवं धार्मिक जितना भी आध्यात्मिक और ज्ञान-विज्ञान आदि का जो भी उच्च साहित्य है वह सब किसी न किसी रूप में उन उपायों एवं सिद्धान्तों का ही विस्तार है जिनके द्वारा मनुष्य दुःख से निवृत्त होकर सुख की ओर अग्रसर हो सके। ऋषियों, मुनियों तथा दार्शनिकों से लेकर जो भी तपस्वी, महात्मा एवं मनीषी, चिन्तक तथा विद्वान हुए हैं, उन्होंने सारा जीवन मनुष्य के दुःख दूर करने और सुख पाने के उपाय खोजने में ही लगा दिया है। इन पावन प्रयत्नों एवं महान जीवनों को देखते हुए यही मानना पड़ता है कि यह संसार वास्तव में दुःखालय ही है और दुःख से बचने का प्रयत्न ही मानव जीवन का उपक्रम है।

यह भी माना जा सकता है कि संसार में सुख का भी एक अंश है, जिसका प्रमाण, लोगों के हँसने-बोलने, गाने-बजाने, खेलने-कूदने तथा आनन्द मनाने से मिलता है। लोग हास-विलास तथा भोग-भाग्यपूर्ण जीवन बिताते भी दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु यह सारे सुख क्षण-भंगुर, अस्थायी, परिवर्तनशील एवं दुःख के परिणाम वाले ही हैं। न तो इनमें स्थायित्व ही है और न वास्तविकता। सुखों का यह सारा आयोजन भी एक तरह से दुःख से बचने का उपक्रम मात्र ही है। संसार में सुखों की अपेक्षा दुःखों का ही बाहुल्य एवं स्थायित्व अधिक है।

संसार में दुःखों का आधिक्य है और मनुष्य को संसार में रहना ही है, तो क्या दुःखों में उलझ-उलझ कर उसे अपना बहुमूल्य जीवन नष्ट कर देना उसका अटल प्रारब्ध है ? नहीं मनुष्य का प्रारब्ध दुःख भोगना नहीं है। उसका लक्ष्य दुःखों पर विजय प्राप्त कर एक स्थायी सुख प्राप्त करना ही है। यही मनुष्य का पुरुषार्थ है और यही उसका श्रेय भी।

दुःख से पूर्ण होने के कारण संसार को दुःखालय मानकर कष्ट एवं क्लेशों के बीच तड़प-तड़पकर मर जाना मनुष्य की लज्जास्पद पराजय है। मनुष्यता की शोभी इसी में है कि दुःख से छूटने और सुख प्राप्त करने के लिये अखण्ड पुरुषार्थ किया जाये। मनुष्य को चाहिये कि वह संसार को परीक्षास्थल समझे और इस दुःख सागर को संतरण कर सुख-शांति के सुहावने किनारे पर पहुँचकर अपने को श्रेय का अधिकारी बनाये। जहाँ रोग है वहाँ उपचार भी, जहाँ उलझनें हैं वहाँ उपाय भी हैं। जहाँ चाह है वहाँ राह जहाँ दुःख हैं वहाँ उनसे छूटने का मार्ग भी है। आवश्यकता केवल इतनी है कि मनुष्य के हृदय में सच्ची जिज्ञासा हो। वह अपने उद्देश्य के प्रति निष्ठावान तथा अखण्ड पुरुषार्थ एवं प्रयत्न करने का साहस रखता हो।

भारतीय मनीषियों ने परोपकारार्थ अपना पूरा जीवन तपकर दुःख निवारण के जो अमोघ उपाय खोज निकाले हैं, वे बड़े ही सरल एवं सुकर हैं। उनका अवलम्बन लेकर न जाने कितने लोग इस दुःख सागर से तरे हैं और तरते रहे हैं। उनके द्वारा खोजे हुए दुःख निवारण के उपाय सार्वभौम एवं सर्वमान्य हैं। उन आध्यात्मिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपायों का अवलम्बन किये बिना न तो आज तक कोई दुःख से निस्तार पा सका है और न पा सकेगा। इसके विपरीत जो बुद्धिमान उन उपायों को काम में लाता है वह अवश्य ही दुःखों पर विजय पाकर सुख पाता है।

अधिकांश चिन्तकों का मत है कि मनुष्य की विषय-तृष्णा ही सारे दुःखों का मूल है। यदि मनुष्य तृष्णा की मरु-मरीचिका में फँसने से अपने को बचा सके तो निश्चय ही दुःखों से उसका निस्तार हो जाये। संसार में जो कुछ देखा उसी को पाने के लिये लालायित हो उठना और पाये हुए से सन्तुष्ट न होकर अधिकाधिक पाने की इच्छा करना ही तृष्णा है, जो कभी भी पूरी नहीं होती। पाये हुए में सन्तुष्ट रहकर यदि अधिकाधिक पाने की अनावश्यक पिपासा को छोड़ दिया जाय तो मनुष्य अवश्य ही अनेक शारीरिक, सामाजिक दुःखों से बच सकता है।

विषय का अत्यधिक भोग और वस्तुओं में सुख की कल्पना दुःख का एक विशेष हेतु है। यह एक अनुभूत सत्य है कि विषय-भोगों की प्राप्ति अन्य दुःख रूप में सामने आती है। मनुष्य भोगों को कितना ही क्यों न भोगे तृप्ति नहीं हो सकती। शरीर शिथिल होकर ही नष्ट हो जाता है किन्तु भोगियों की वासना ज्यों की त्यों बनी रहती है। विषयों का भोग करने में लवलीन मनुष्य समझता तो यह है कि वह विषयों का भोग कर रहा है किन्तु वास्तव में होता इसके विपरीत है विषय, भोगी को स्वयं ही भोगकर नष्ट कर देते हैं। विषय भोग की अतृप्त तृष्णा के रहते हुए मनुष्य दुःख से मुक्त हो सके यह सम्भव नहीं। भोगों को मर्यादा की सीमा तक भोग कर जो मनुष्य उनमें लिप्त नहीं होता और उन्हें दुःखदायी विषय मानकर उनसे विरक्त रहता है उसे सुखी होने से कोई बाधा रोक नहीं सकती।

संसार की प्रत्येक वस्तु नाशवान है। यहाँ तक कि शरीर भी। ऐसा जानकर जो बुद्धिमान उनके प्रति आसक्ति नहीं रखता, वह दुःख के विशेष हेतु मोहरूपी कटार से बचा रहता है। अन्यथा इनमें आसक्त व्यक्ति इनके क्षीण, क्षय अथवा नाश, वियोग से क्षण-क्षण पर दुःखी होता रहेगा। यदि यह वस्तुएँ उसके देखते-देखते नष्ट न भी हों तब भी उनके नष्ट हो जाने अथवा बिछुड़ जाने की शंका सताया करती है। संसार की प्रत्येक वस्तु नश्वर एवं क्षयमान है ऐसी बुद्धि रखकर जो मनीषी उनसे आत्मिक सम्बन्ध न रखकर व्यावहारिक सम्बन्ध रखता हुआ अनासक्ति का आचरण करता है, संसार की कोई भी हानि उसे दुःखी अथवा विचलित नहीं कर सकती है।

दुःख असल में वस्तु के विनाश, वियोग से नहीं होता। दुःख का कारण वास्तव में उसके प्रति मनुष्य का वह मोह होता है, जिसे वह अज्ञानवश वस्तु से स्थापित कर लेता है।

महात्मा बुद्ध की खोज के अनुसार दुःखों की निवृत्ति 'निर्वाण' में है। अपने को राग-द्वेष से मुक्त कर लेना ही निर्वाण है, जिसे थोड़े से प्रयत्न द्वारा मनुष्य जीवन-काल में ही पा सकता है। बुद्ध प्रतिपादित निर्वाण अवस्था को वैराग्य द्वारा शुद्धाचरण करते हुए, इस नाशशील संसार के चिरन्तन सत्यों में विश्वास रखने से, मनुष्य विषयों की विभीषिका और तृष्णाओं की मरु-मरीचिकाओं से सुरक्षित रहकर दुःखों से निवृत्त हो सकता है।

साँख्य दर्शनकार ने आत्मा एवं परमात्मा के बीच अन्तर न समझने के अज्ञान को दुःखों का कारण बतलाया है। उनका कहना है कि मनुष्य जब अज्ञानवश अपने को शरीर मान लेता है तभी वह दुःखों का अनुभव करता है। दुःखों का अनुभव करना शरीर का धर्म है। शीत, गर्मी, वर्षा, भूख, प्यास, वियोग, विछोह आदि अप्रिय परिस्थितियाँ शरीर को ही व्यापा करती हैं और वही इनका अनुभव करता है। जब मनुष्य अपनी अनुभूतियों को शरीर तक सीमित कर लेता है अथवा अपने को शरीर मान लेता है, स्वाभाविक ही है कि शरीर का कष्ट उसे अपना कष्ट अनुभव हो।

मनुष्य वास्तव में शरीर नहीं है। वह अनादि, अनन्त, चैतन्य एवं आनन्दस्वरूप आत्मा है। उसमें अज्ञान अथवा दुःखानुभूतियों का कोई विकार नहीं है। वह निर्विकार, एकरस, चेतन तत्व है, जिसको न तो शस्त्र काट सकता है, न पानी गीला कर सकता है, न हवा सुखा सकती है और न अग्नि जला सकती है। वह अपनी ज्योति से स्वयं प्रकाशमान ऐसा शिव एवं शाश्वत दीपक है, जिसको न तो विपरीततायें प्रभावित कर सकती हैं और न काल बुझा सकता है। आत्मा, शरीर, मन, इन्द्रियों तथा बुद्धि से भिन्न अविनाशी तत्व है जो कि सदा-सर्वदा स्वयं सन्तुष्ट एवं आनन्दित रहता है। उसे सुख के लिये न तो किसी वस्तु की अपेक्षा है और न किसी भोग की आवश्यकता। वह स्वयं ही आनन्दस्वरूप एवं शाश्वत है। मनुष्य यही अविचल एवं अविनाशी आत्मा है, शरीर नहीं। अब जो व्यक्ति अज्ञानवश अपने को इस परमपद आत्मा से भिन्न कर शरीर के निम्नपद पर उतार लाये वह उसकी विकृतियों से त्रस्त होगा ही। मनुष्य अपने को अविकल आत्मा समझे, अपने सत्य स्वरूप में विश्वास करे और शरीर को नश्वर संसार का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक अंश मानकर उसके विकल्पनाओं से अप्रभावित रहकर दर्शन के रूप में देखे, तो निश्चय ही वह दुःख के बन्धनों से मुक्त होकर सुख का अधिकारी बन सकता है।

वेदान्त दर्शन के व्याख्याकार जगद्गुरु शंकर ने दुःखों के निवारण का उपाय मोक्ष बतलाया है। मोक्ष की परिभाषा करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया है कि-'इस सत्य ज्ञान की स्थायी अनुभूति ही मोक्षावस्था है कि आत्मा देश से परे, शरीर तथा मन, बुद्धि से विलग स्वभावतः मुक्त, नित्य एवं अविकल्पी है। ऐसी अनुभूति का साक्षात्कार कर लेने पर मनुष्य का शरीर अथवा मन के विकारों से प्रभावित होना समाप्त हो जाता है।

एक अज्ञात समय से निरन्तर शरीर एवं संसार के संसर्ग में रहते-रहते मनुष्य अपने सत्य स्वरूप आत्मा को ही नहीं भूल गया बल्कि जगत् के परम कारण परमात्मा को भी भूल गया है। संसर्गजन्य अविद्या के कारण वह परमात्मा के स्थान पर उसकी माया, इस संसार को ही सत्य समझ बैठा है, जहाँ दुःख के सिवाय उसे कुछ भी हाथ नहीं लगता।

इस प्रकार यदि मनुष्य अपने सत्य स्वरूप आत्मा में आस्था रखकर संसार में परिव्याप्त कारणभूत परमात्मा को देखे और उसके दिये हुए पदार्थों, विषयों तथा भोगों को मर्यादापूर्वक भोगते हुए भी उनसे अप्रभावित रहने के अभ्यास के साथ जीवनयापन करे तो निश्चय ही उसके सारे बन्धन कट जायें और वह अपने जीवनकाल में ही मुक्ति, मोक्ष एवं निर्वाण की चिदानन्द स्थिति को पा सकता है।

सत्यं शिवं सुन्दरं–हमारा परम लक्ष्य

मनुष्य की रुचियाँ और प्रवृत्तियाँ उसकी अन्तःचेतना की साक्षी होती हैं। वे इस बात का पता देती हैं कि उसकी आत्मा प्रसुप्त है या जागरूक। जागरूक आत्मा का लक्षण है- सत्यं, शिवं और सुन्दरं की ओर उन्मुखता। प्रसुप्त आत्मा का लक्षण है इसके विपरीत असत्य, अशिव और असुन्दर की ओर गतिमानता।

संसार में किसी सुन्दर दृश्य, सुन्दर स्वरूप और सुन्दर गुण को देख कर जिसकी आत्मा प्रसन्न, प्रफुल्ल और उल्लसित हो उठती है, उसमें स्वयं भी उस प्रकार का सौन्दर्य अपने में पाने की ललक होती है तो समझना चाहिए कि उसकी आत्मा में जागृति का उन्मेष हो रहा है।

जागरूक आत्मा वाला व्यक्ति प्रकृति की गोद में गाते-खेलते पशु-पक्षियों, कल-कल करते झरनों और नदियों, गगनचुम्बी पर्वतमालाओं को देखकर ऐसा आनन्द अनुभव करता है मानो यह सब सुन्दर प्रसार उसकी आत्मा से ही प्रभावित होकर फैल गया है। वह उसे उसी प्रकार देखता है, जैसे दर्पण में अपना सुन्दर प्रतिबिम्ब। किसी गायक का सुन्दर संगीत, कवि की रचना और चित्रकार कला देखकर आत्म-विभोर होकर ऐसा अनुभव करता है, मानो वह गीत, वह काव्य और यह आलेखन उसकी अपनी अनुभूतियाँ और अभिव्यक्तियाँ हों, जिन्हें वह स्वयं प्रकट कर स्वयं ही देख और सुन रहा है। जागरूक आत्मा वाले संसार के सारे शिव और सुन्दर तत्वों से तादात्म्य का अनुभव करते हैं।

इस तादात्म्य का रहस्य यह है कि मनुष्य की आत्मा सम्पूर्ण सुन्दरताओं, कलाओं और श्रेष्ठताओं का भण्डार है। आत्मा में निवास करने वाली विशेषताएँ और गुण किसी माध्यम का आधार पाकर बाहर प्रकट होती हैं। किन्तु इसका अनुभव होता उसको ही है जिसकी आत्मा प्रबुद्ध होती है। प्रसुप्त आत्मा वालों को उसका अनुभव उसी प्रकार नहीं होता, जैसे सोये हुए व्यक्ति को उसकी कलाकृति दिखलाने पर किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं होती। यह आत्मा की जागरूकता ही है, जो श्रेष्ठता, देवत्व, कला, सौन्दर्य और सद्गुणी की अभिरुचियाँ और उनके प्रति आनन्दमयी अनुभूति को जन्म देती है।

आत्मा में यह विशेषता परमात्मा से अवतरित हुई है। प्रत्येक तत्व परमात्मा की प्रेरणा और दिव्य-विधान से जन्मा है। उसके विचार, उसके गुण और उसकी अनुभूतियाँ परमात्व-तत्व से ओत-प्रोत रहती हैं और यह सारे तत्व आत्मा में संकलित रहते हैं। प्रत्येक मनुष्य परमात्मा का अंश है, उसमें परमात्मा के वे सब गुण होने उसी प्रकार स्वाभाविक हैं, जिस प्रकार बूँद में सागर की विशेषताएँ। मनुष्य भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक सम्पदाओं से युक्त है। यह दूसरी बात है कि उसके अवगुणों और उपक्रमों के कारण उसकी आत्मा जागरण से वंचित हो और वह अपनी इन सम्पदाओं का अनुभव न कर पावे।

यदि आपकी अभिरुचि और प्रवृत्ति शिव और सुन्दर की ओर है तो समझ लेना चाहिए कि आपकी आत्मा में जागरूकता का लक्षण है। आपको अवसर है कि आप अपने इस आत्म-जागरण को सद्प्रयत्नों द्वारा विकसित करें, आगे बढ़ाएँ जिससे आप निरन्तर परमात्मा की ओर अग्रसर होते जाऐं और शीघ्र ही अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को पालें। आत्मा की विशेषताओं की साक्षी के आधार पर यह विश्वास न करने का कोई कारण नहीं है कि आपका वास्तविक स्वरूप सच्चिदानन्द ही है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

जो व्यक्ति असुन्दर, अशिव, अपकर्मों और अपवित्रताओं में अरुचि न रखकर उनमें विशेषता देखता है- जैसे किसी के व्यसनों से प्रभावित होता है, किसी अपराधी के प्रति सहानुभूति रखता है, लोभी और स्वार्थी की नीति में चतुरता देखता है, डाकू, चोर और अत्याचारियों की कथाओं में रुचि लेता है, अदर्शनीय दृश्य देखने को उत्सुक होता है और पापियों की संगति से घृणा नहीं करता- तो मानना चाहिए कि उसकी आत्मा प्रसुप्त है और वह सृष्टि के सारे सुख, सौन्दर्य से वंचित हो गया है। जेलों, अस्पतालों और पागलखानों में दीखने वाली मानव आकृतियाँ वे मनुष्य होते हैं, जिनकी आत्मा सोई होती है और इसी प्रसुप्ति के दोष से वे उन जगहों पर पहुँचे हैं।

आत्मा की प्रसुप्ति का कारण है, मनुष्य का अज्ञान। उसका यह न जानना कि वह क्या है, संसार में आया क्यों है और उसका लक्ष्य क्या है? यदि वह इन तीनों बातों का ज्ञान संचय कर ले तो निश्चय ही उसकी आत्मा में जागरण की स्थिति पैदा हो जाय। इन तीनों प्रश्नों का उत्तर कोई गोपनीय रहस्य नहीं है। इनका उत्तर बिल्कुल सीधा, सरल एक और अन्तिम है। मनुष्य परमात्मा का अंश, उसका पुत्र और प्रतिनिधि है। संसार में आनन्द की खोज करने, उसको पाने और उसी क्रम में अपने को पहचान कर अपने लक्ष्य सच्चिदानन्द स्वरूप को पा लेने लिये आया है।

अपने इस व्यक्तित्व, कर्तव्य और उद्देश्य की ओर से अज्ञानी रहने के कारण वह वासनाओं, तृष्णाओं, एषणाओं, मरीचिकाओं, कुरूपताओं और अमंगलों में अपनी चेतना को फँसाते रहकर आत्म-जागरण की ओर से विभोर रहता है। विषयों में सुख खोजना, पदार्थों में आसक्ति बढ़ाना, माया से मोहित होना और कामनाओं का पालन करना उसका स्वभाव बन जाता है। ऐसी विपरीतता में उसकी आत्मा का मोह निद्रा में मूर्च्छित पड़ा रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

जिसकी आत्मा सोती है, वह मानो स्वयं सोता है। आत्म-प्रबोधन से रहित मनुष्य का अभौतिक जागरण संसार स्वप्न में निमग्नता के सिवाय और कुछ नहीं है। संसार में आकर संसार को पाने का आकांक्षी कृपण सांसारिकता के सिवाय सच्चिदानन्द स्वरूप को किस प्रकार पा सकता है। नश्वरता के उपासक को अमृतत्व मिल सकना सम्भव नहीं।

यदि आपको अपनी रुचियों और प्रवृत्तियों में कुरूपता, कुत्सा और कलुष-उन्मुखता का आभास मिले, तो समझ लेना चाहिये कि आपकी आत्मा सोई हुई है और साथ ही यह भी मान लेना चाहिये कि यह एक बड़ा दुर्भाग्य है, एक प्रचण्ड हानि है। इतना ही क्यों वरन् तुरन्त उसे दूर करने के लिए तत्पर हो जाना चाहिये। यदि आप प्रमादवश जिस स्थिति में हैं, उसमें ही पड़े रहना चाहेंगे तो निश्चय ही अपनी ऐसी क्षति करेंगे, जो युग-युग तक जन्म-जन्मान्तरों तक पूरी नहीं हो सकती।

आत्मोन्मेषों के उपायों में आपको अपनी तुच्छताओं, क्षुद्रताओं तथा वासनाओं को त्यागना होगा। दुराचरण, दुर्विचार और दुष्कल्पनाओं को छोड़ कर उन्नत, उदात्त और आदर्श रीति-नीति को ग्रहण करना होगा। अपने मनोविकारों और निषेधों को त्यागकर शिव और सुन्दर की साधना में लगना होगा। निश्चय ही यह एक साधना है, तप है, किन्तु ऐसा तप नहीं है, जो मनुष्य के लिये दुष्कर हो। इस तप की साधना के लिये पुनरपि आत्मा की ओर ही परिवृत होना होगा, क्योंकि आत्मा ही उन सब शक्तियों और साहसों का केन्द्र है, उक्त साधना में जिसकी आवश्यकता है। मनुष्य की आत्मा ही उसका सबसे सच्चा मित्र और पथ-प्रदर्शक है। उसी की प्रेरणा से मनुष्य सन्मार्ग, पवित्र प्रवृत्तियों और दिव्य गुणों की ओर अग्रसर होता है। अपनी आत्मा में विश्वास करिये और उसे अपने में अधिष्ठित वह परमात्मा ही समझिये जिसके लिये कहा गया है-

"एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः
सर्व व्यापी सर्व भूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्व भूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।"

"वह एक देव ही सब प्राणियों में छिपा हुआ है। सर्व व्यापक है और समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी परमात्मा है। वही सबके कर्मों का अधिष्ठाता, सम्पूर्ण भूतों का निवास, सब का साक्षी, चेतन स्वरूप एवं सबको चेतना प्रदान करने वाला, सर्वथा विशुद्ध और गुणातीत है।"

ऐसा सशक्त और उच्च आधार पकड़ लेने पर मनुष्य में पुण्य परिवर्तन न हो ऐसा सम्भव नहीं।

हम सब मनुष्य हैं। परमात्मा के अंश हैं। हमारा मार्ग पवित्रता और हमारा लक्ष्य दिव्यता ही होना चाहिये। कलुष और कुत्सा हमारे अनुरूप नहीं। दुर्गुण, हमारे व्यक्तित्व पर कलंक के समान हैं। वासनाएँ और व्यसन, तृष्णाएँ और मरीचिकाएँ हमसे भिन्न नहीं हो सकतीं। हम आत्मावान् मनुष्यों का निकृष्ट कामनाओं और विकृत वाँछाओं से क्या सम्बन्ध? यह सारे विचार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मा को सुला देने वाले, उसे मूर्च्छित कर देने वाले विष ही हैं। हम सब शुद्ध, बुद्ध और निरंजन रूप हैं, संसार और उसकी माया हम सबके लिए वर्जित है। हम सबको मोह का, अज्ञान का त्यागकर संसार स्वप्न से जागकर अपना स्वरूप पहचाना और पाना है। यह महत् कार्य इस प्रसीमित जीवन में तभी पूरा हो सकता है, जब हम इसका प्रत्येक अणु-क्षण अपने उसी दिव्य उद्देश्य के लिये नियोजित कर दें। अमरत्व पाने वाले की इच्छा रखने वाले के पास नश्वर भोगों की उपासना करने के लिये समय कहाँ ?

हमें अपनी रुचियों और प्रवृत्तियों के दर्पण में अपनी उन्मुखता पहचाननी होगी और देखना होगा कि हम किस ओर, किस मार्ग पर जा रहे हैं ? यदि हमारी रुचियाँ और प्रवृत्तियाँ शिव-सौन्दर्य प्रिय हैं तो हमारी आत्मा में उन्मेष का लक्षण है, क्योंकि हरियाली की छटा उसी धरातल पर प्रकट होती है, पेड़-पौधे और लता-गुल्म उसी भूमि पर उत्पन्न होते हैं, जिसके नीचे पानी होता है। सत्यं-शिवं-सुन्दरम् की अनुभूति और अभिरुचि उसी को होती है, जिसकी आत्मा में जागरण होता है। यदि ऐसा है तो हमारी दिशा ठीक है। सावधानीपूर्वक उस पर चलते चला जाना चाहिये। इसके विपरीत यदि हम अपनी रुचि और प्रवृत्ति को कलुष एवं कुत्सा की ओर पाप और अपराध की ओर, असभ्यता और अपकर्मों की ओर झुकता पाते हैं, तो तुरन्त सतर्क होकर दुरितों से संघर्ष छेड़ देना चाहिये और तब तक संघर्ष को बन्द नहीं करना चाहिये जब तक हमारी रुचियाँ और हमारी प्रवृत्तियाँ शिवोन्मुखी होकर यह न बतला दें कि आपकी आत्मा में जागरण का प्रारम्भ हो गया है।

पापों के सारे पिशाच आपको छोड़कर भाग गये हैं और अब दिव्यताओं और महानताओं के स्वागत की तैयारी करिये। अपने नव प्रशस्त-पथ पर उस आत्म-विश्वास के साथ चलकर लक्ष्य की ओर उसी प्रकार बढ़ते जाइये, जैसे कोई सुकृती अधिकार पूर्वक स्वर्गीय मार्ग पर गर्वोन्नत मस्तक से निश्चिंत चला जाता है। हम मनुष्यों के लिये यही योग्य है, यही कल्याण पूर्ण कर्तव्य है।

शक्ति का स्रोत- आत्मा को मानिए

हमारे पुरखे ज्ञान-विज्ञान में आज के वैज्ञानिकों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रवीण थे, किन्तु वे समझते थे विज्ञान अन्ततोगत्वा मनुष्य की वृत्तियों को पाशविक, भोगवादी ही बनाता है, अतः उन्होंने धर्म और अध्यात्म पर आधारित जीवन की रचना की थी। उस जीवन में प्राण था, शक्ति थी, समुन्नति थी और वह सब कुछ था जिससे मनुष्य का जीवन पूर्ण सुखी, स्वस्थ और सन्तुष्ट कहा जा सकता है।

आत्मा को ही सब कुछ मानकर अनित्य के प्रति वैराग्य मूलक मनोवृत्ति धारणकर लेने की शिक्षा देना हमारा उद्देश्य भले ही न हो, किन्तु भौतिक सुख और इन्द्रियों की पराधीनता भी मनुष्य जीवन के लिये नितान्त उपयोगी नहीं कहे जा सकते। आत्म-ज्ञान की आवश्यकता इसलिये है कि उससे सांसारिक विषयों में स्वामित्व और नियन्त्रण की शक्ति आती है। भौतिक सुखों की रथ के उन घोड़ों से तुलना की जा सकती है जिनमें यदि आत्म-ज्ञान की लगाम न लगी हो तो वे सवार समेत रथ को किसी विनाश के गड्ढे में ही ले जा पटकेंगे। जगत् की सत्ता से विच्छिन्न मनुष्य की सत्ता व्यक्ति परिच्छिन्न मात्र नहीं है, वह केवल व्यष्टि ही नहीं, वरन् समष्टि भी है, उसमें अनन्त सत्यं शिवं और सौन्दर्य समाहित है, उसे जाने बिना मनुष्य के बाह्यान्तरिक कोई भी प्रयोजन पूरे नहीं होते। आत्म-ज्ञान इसीलिये मनुष्य जीवन का प्रमुख लक्ष्य है।

शरीर के सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंगों की स्थूल जानकारी पदार्थ और उसके गुण-भेद की जानकारी ग्रह-नक्षत्रों से सम्बन्धित गणित और उनके वैज्ञानिक तथ्य जानने से मनुष्य की सुविधाएँ भले ही बढ़ गई हों, पर उसने अपने आप का ज्ञान प्राप्त नहीं किया, यही दुःख का प्रधान कारण है। मनुष्य शरीर ही नहीं, वरन् परिस्थितियाँ बताती हैं कि वह कुछ अन्य वस्तु भी है, आत्मा है। इस आत्मा या 'अहंभाव' का ज्ञान प्राप्त किये बिना दुनिया का सारा ज्ञान-विज्ञान अधूरा है। बिना इंजन लगी हुई मोटर की तरह ज्ञान किसी तरह का लाभ नहीं दे सकता है।

आत्मा शक्ति का अनादि स्रोत है। शौर्य, प्रेम और पौरुष की अनन्त शक्ति उसमें उभरी हुई है अतः आत्म-ज्ञान में लगाये हुए समय, श्रम और साधनों को निरर्थक नहीं बताया जा सकता। आत्म-शक्ति को पाकर मनुष्य के सारे अभाव, दुःख, दारिद्रय, सांसारिक आधि-व्याधियाँ समाप्त हो जाती हैं। भगवान् कृष्ण ने आत्म-ज्ञानी पुरुष को ही सच्चा ज्ञानी बताते हुये कहा है-

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानु पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः।।

(गीता १५।६०)

अर्थात्- हे अर्जुन! उस आत्मा को छोड़कर जाते हुए शरीर में स्थित, विषयों को भोगते हुए अथवा तीनों गुणों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से युक्त हुए भी अज्ञानी लोग नहीं जानते। उस तत्व रूप आत्मा को केवल ज्ञानी ही जानते हैं।

मनुष्य शरीर नहीं वरन् वह शरीर का संचालक है। वह मन भी नहीं क्योंकि मन को प्रेरणा देकर, आदेश देकर किसी भी अच्छे-बुरे कर्म में लगाया जाता है। सत्-असत् का ज्ञान देने वाली बुद्धि को भी आत्मा कैसे मानें? विश्लेषण करने पर पता चलता है यह शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि पंचभूतों के सत-रज अंश को लेकर बने हैं। पंचभूत जड़ पदार्थ हैं अतः आत्मा इनसे भी विलक्षण और शक्तिवान है। वह संचालक है, सूक्ष्मतम है और शक्ति का उत्पादक है अजर, अमर, सर्वव्यापी तत्व है। जो इस तत्व को जानता है उसके सारे दुःख मिट जाते हैं।

मानव-जगत् का अधिकांश भाग इस कारण अधोगति को प्राप्त हो रहा है कि उसे जो कार्य सम्पादन करना चाहिए, वह नहीं करता। सबसे बड़े दुःख की बात तो यही है कि पूर्ण परिपक्व और बुद्धिमान होकर भी उस मार्ग का अनुसरण नहीं करते,जो कल्याणकारी है और जो जीवन में सुख की वृद्धि कर सकता है। थोड़े से मोह के चक्र में फँसकर नासमझ लोग अयोग्य कार्यों की ओर प्रेरित होते हैं और उन्हें ही सुख का मूल समझकर अपने भीतर सिमटी, दुबकी हुई जो आत्मा बैठी है उसे भूल जाते हैं। इसी ऐश्वर्य और भोग में जीवन की इति-श्री कर देते हैं। कभी गहराई में उतर कर आत्म-तत्व पर विचार नहीं करते। मनुष्य की उस विडम्बना को इस मूढ़ता को क्या कहें जो बड़ा ज्ञानी होने का दावा करता है पर जानता खुद को भी नहीं है।

सारांश यह है कि जड़ पदार्थों के सम्बन्ध में आज लोगों ने खूब उन्नति की है वहाँ चेतन पदार्थों के सम्बन्ध में वह अभी प्रारम्भिक अवस्था में ही है। विज्ञान ने भौतिक एवं मानसिक जगत् को रूपान्तरित कर दिया है। इसका प्रभाव मनुष्य पर गम्भीर रूप से पड़ा है, क्योंकि आज जो भी कार्यक्रम बनाये जा रहे हैं उनमें मनुष्य की मूल प्रकृति पर विचार नहीं किया जाता, यही कारण है कि भौतिक विज्ञान तथा रसायन शास्त्र ने परम्परागत जीवन प्रणाली में विक्षिप्त रूप से परिवर्तन ला दिया है। मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति की कसौटी पर ही विषयों का चयन किया जाता तो अधिक बुद्धिमत्ता रहती। आत्म-ज्ञान ही वह प्रक्रिया है जिससे इस समस्या का हल निकाला जा सकता है।

बाहर की वस्तुओं का ही अवलोकन न कीजिए, यह भी सोचिए कि शरीर के भीतर कैसी विचित्र हलचल चल रही है। आहार पेट में जाता है फिर न जाने कैसे वह रस, रक्त, माँस, अस्थि आदि सप्त धातुओं में परिणित हो जाता है। कितनी हानिकारक वस्तुओं का भक्षण करते हुये मनुष्य जीवित रहता है। वह कौन सा विलक्षण अमृत तत्व है जो शरीर जैसी महत्त्वपूर्ण मशीनरी को चला रहा है। आप इसे जान जायेंगे तो सारे संसार को जान जायेंगे। उस आत्मा में ही यह सम्पूर्ण विश्व व्यवस्थित है। ब्रह्मोपनिषद् के छठवें अध्याय में शास्त्रकार ने बताया है-

आत्मनोऽन्या गतिर्नास्ति सर्वमात्ममयं जगत्।
आत्मनोऽन्यन्नहि क्वापि आत्मनोऽन्यतृणं न हि।।
(ब्र० उ० ६।४६)

अर्थात्- ''आत्मा से भिन्न गति नहीं है, सब जगत् आत्मामय है, आत्मा से विलग कुछ भी नहीं है आत्मा से भिन्न एक तिनका भी नहीं है।

विश्वव्यापी चैतन्य अनादि तत्व आत्मा को जाने बिना मनुष्य को शान्ति और स्थिरता की उपलब्धि नहीं हो सकती। सफल जीवन जीने के अभिलाषी को इस पर बार-बार विचार करना चाहिए। प्राचीन धर्म-ग्रन्थ, सृष्टि और अध्यात्म की खोज करनी चाहिए। अपने आपको, पहचानने के लिए अपनी आत्मा, मनोवृत्तियाँ, स्वभाव तथा विचारों का निरीक्षण करना चाहिए। आत्म-भाव जागृत करने के लिए सुन्दर पुस्तकों का स्वाध्याय करना चाहिए।

आत्मा के साथ जन्म-मरण, सुख-दुःख, भोग-रोग आदि की जो अनेक विलक्षणताएँ विद्यमान हैं, वह मनुष्य को यह सोचने के लिए विवश करती हैं कि खा-पीकर इन्द्रियों के भोग भोगकर दिन पूरे कर लेना मात्र जिन्दगी का उद्देश्य नहीं है। रूप और शारीरिक सौन्दर्य की झिलमिली में शरीर और प्राण के अनुपम संयोग की स्थिति को दूषित किया जाना किसी भी तरह भला नहीं है। यह अमूल्य मानव जीवन पाकर भी यदि आत्म-कल्याण न किया जा सका तो न जाने कितने वर्षों तक फिर अनेकों कष्ट साध्य योनियों में भटकना पड़ेगा। जिसे ऐसी बुद्धि मिल जाय उसे अपने आपको परमात्मा का कृपा-पात्र ही समझना चाहिए। आत्म-ज्ञान प्राप्त करने से मनुष्य जीवन धन्य हो जाता है।

मनुष्य दैवी अंशयुक्त है। सत्, चित्, आनन्द स्वरूप है। निष्फलता, दुःख, रोग-शोक तो निम्न विचारों, दूषित कल्पनाओं तथा भोगवादी दृष्टिकोण के फलस्वरूप पैदा होते हैं अन्यथा इन अभावों का इस जीवन से क्या प्रयोजन ? अपने अमृतत्व की खोज करने के लिये काम,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रोध, भय, लोभ, तिरस्कार, शंका तथा द्विविधा की कीचड़ से निकलकर हमें सत्य, प्रेम, निश्छलता और पवित्रता का आदर्श अपनाना पड़ेगा। उत्कृष्ट, स्वस्थ तथा दिव्य विचारों का वर्णन करना होगा। आत्मा अत्यन्त विशाल और शक्तिशाली है, उसे प्राप्त करने के लिए उसमें विलय होने के लिये हमें भी उतना ही निर्मल, हितकारक तथा विस्तृत बनना होगा। जिस दिन ऐसी स्थिति बना लेंगे उस दिन किसी तरह की कमी महसूस नहीं होगी। सारा जीवन शक्ति और सौन्दर्य से भर जायगा। उसे प्राप्त करने पर ही हमारा जीवन सफल होता है। हम अपने भीतर छिपी हुई आत्मा को ढूँढ़ने का प्रयास करें तब कुछ प्राप्त कर सकते हैं, जिसकी तलाश में हमें निरन्तर भटकना और जिसके अभाव में सदा दुःखी रहना पड़ता है।

आत्मा को जानिए

मनुष्य पाप, बुढापे, मृत्यु, भूख, प्यास की चिन्ता तथा भय के कारण अनेक संकल्प-विकल्प के उत्पन्न होने वाले शोक, उद्विग्नता आदि से जीवन के सहज स्वाभाविक सुख और उपलब्धियों का भी लाभ नहीं उठा पाता। सुरदुर्लभ मानव जीवन को भार, अभिशाप मानकर जीता है। भय की कुकल्पनायें उसे चैन से नहीं सोने देतीं न सुखी जीवन बिताने देती हैं। इन सबसे छुटकारा पाकर जीवन को सुखी मधुर बनाने की खोज मनुष्य सदा से ही करता आया है। उपनिषद्कार ने इसी को महत्त्व देते हुए कहा है।

"य आत्मा रहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोविजिघत्सोऽपिपासः सत्य काम सत्य संकल्पः सोऽन्वेष्टयः स विजिज्ञासितव्य।"

"जो निष्पाप, जरा रहित, अमर्त्य, शोक रहित, भूख प्यास से मुक्त, सत्य काम, सत्य संकल्प है उसे ही ढूँढ़ना चाहिये, उसे ही जानने की इच्छा करनी चाहिए और वह तत्व है 'आत्मा'।"

वस्तुतः आत्मा ही जरा-मरण, भूख-प्यास, समस्त भय-सन्देह, संकल्प-विकल्पों से रहित नित्य, मुक्त, अजर, अमर अविनाशी तत्व है। उसे जान लेने पर ही मनुष्य समस्त भय, शोक, चिन्ता, क्लेशों से मुक्त हो जाता है।

आत्मा सर्वव्यापी नित्य तत्व है। आत्मा ही मानव जीवन का मूल सत्य है। आत्मा के प्रकाश में ही बाह्य संसार और मानव जीवन के कार्यकलापों का अस्तित्व है। आत्मा के पटल पर ही संसार और दृश्य जीवन का छाया-नाटक बनता बिगड़ता रहता है। संसार जो कुछ भी है, वह आत्मा की अभिव्यक्ति और उसका विस्तार है। ऐतरेय ब्राह्मण में आया है।

"आत्मा वा इदमेकं एवाय आसीत् नान्यात्किञ्चमिषत् स ऐक्षते लोकान्नुसृजा इति।"

पूर्व में केवल एक मात्र आत्मा ही था अन्य कोई तत्व नहीं था। उस आत्मा में से ही अनेकों लोकों का सृजन हुआ। छान्दोग्य-उपनिषद् में लिखा है। **"आत्मै वेदं सर्वमु"** आत्मा ही यह सब है। आत्मा के धरातल पर ही दृश्य जगत् के घरोंदें बनते-बिगड़ते रहते हैं। सृजन और संहार का चक्र चलता रहता है। किन्तु यह आत्म तत्व अपने नित्य स्वरूप में स्थिर रहता है सदा-सदा। अनन्त आकाश के मध्य ग्रह-नक्षत्रों का क्रिया-कलाप चालू रहता है। अनेकों उल्कायें, नक्षत्र बनते बिगड़ते रहते हैं। किन्तु आकाश अपने गुरु गम्भीर, अविचल स्वरूप में नित्य ही स्थिर रहता है। इसी तरह सर्वत्र व्याप्त आत्म तत्व के मध्य पदार्थों का सृजन और विनाश होता रहता है किन्तु आत्म-तत्व पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह सदा सर्वदा नित्य है।

सर्वव्यापी विराट् आत्मसत्ता ही ब्रह्म है। **"अयआत्मा ब्रह्म"** (वृ० उ०) यह आत्मा ही ब्रह्म है ऐसा उपनिषद्कार ने अपनी अनुभूति के आधार पर कहा है। आत्मा ही परमात्मा है-- ईश्वर है। आत्मतत्व जब जगत् देह इन्द्रिय तथा संसार के पदार्थों को प्रकाशित करता है तो अनेकों रूपों में दिखाई देता है। जिस तरह जल की बूँदें समुद्र पर गिरते समय अलग-अलग दिखाई देती हैं किन्तु गिरने से पूर्व और गिरने पर वह अथाह सिन्धु के रूप में ही होती हैं। आत्मा भी आदि अन्त में हमेशा ही स्थिर रहने वाला नित्य तत्व है। जो विराट् है भूमा है- **"यौ वै भूमा।"**

आत्म-प्रबोध-उपनिषद् में लिखा है-

"घटावभासको भानुघटनाशैन नश्यति।
देहावभासकः साक्षी दे नाशे न नश्यति।।"

जिस तरह घड़े को प्रकाशित करने वाला सूर्य घड़े के नष्ट होने पर नष्ट नहीं होता, उसी तरह देह के नाश होने पर आत्मा का नाश नहीं होता।" सूर्य का प्रकाश विभिन्न घड़ों में पड़ते समय अलग-अलग सा जान पड़ता है। लेकिन सूर्य अखण्डित ही रहता है। इसी प्रकार आत्मा भी विभिन्न देह पदार्थों को प्रकाशित करते हुए खण्ड-खण्ड नहीं होता। अथाह धरती के धरातल पर बच्चे मिट्टी के छोटे-छोटे अनेक घरोंदे बनाते हैं, बिगाड़ते हैं, मूर्तिकार अनेकों मूर्तियाँ बनाता है फिर वे समय पर नष्ट भी हो जाती हैं। इस पर भी आदि अन्त में मिट्टी, धरती अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नित्य स्वरूप में ही स्थिर रहती है। ठीक इसी तरह आत्मा के पटल पर संसार और उसके पदार्थों का बनना-बिगड़ना जारी रहता है किन्तु आत्म तत्व अपने नित्य स्वरूप से स्थिर रहता है।

इस तरह मानव जीवन, समस्त संसार और पदार्थों की मूलसत्ता, सर्वव्यापी आत्मतत्व को जान लेने पर मनुष्य-जीवन में होने वाले विभिन्न परिवर्तन, सृजन और विनाश, लाभ-हानि, सुख-दुःख, भय-शोक आदि से मुक्त हो जाता है। उसके समस्त पाप-ताप, विकृतियाँ तिरोहित हो जाते हैं। आत्मविद् होकर आत्मस्थित होकर मनुष्य सुख-शान्ति आनन्द की सहजावस्था प्राप्त कर लेता है। आत्मा की सत्यता का ज्ञान हो जाने पर मनुष्य स्वतः ही संसार और इसके पदार्थों से अलिप्त, निस्पृह बन जाता है। वस्तुतः संसार और इसके पदार्थों को जीवन का सत्य मानने वाले ही विभिन्न उपायों से पदार्थ, उपकरण आदि संग्रह करते हैं, इसके लिए एक-दूसरे का अहित, शोषण, नाश करने में भी नहीं चूकते। पदार्थों की चकाचौंध में परस्पर टकराकर, दिन-रात अशान्ति, क्लेश, उद्विग्नता के भागी बनते हैं। लेकिन आत्मविद् संसार और इसके पदार्थों की क्षणभंगुरता, अनित्या को जानकर आत्मा के स्वभाव अनुसार दिव्य कर्म, दिव्य गुणों से युक्त ही स्वर्गीय जीवन बिताता है। वह पदार्थों की मोहक गन्ध पर गिद्धों की तरह नहीं टूटता न किसी से लड़ता है।

देह, इन्द्रियाँ और सांसारिक पदार्थों को महत्त्व देने पर ही जीव में विभिन्न राग-द्वेष की आशा, अभिलाषाओं का चक्र चलता है। जब मनुष्य इससे ऊपर उठकर आत्मा के व्यापक विराट् स्वरूप में स्थित होता है तो पदार्थों की तुच्छता, देह इन्द्रिय की अनित्यता क्षणभंगुरता का ज्ञान हो जाता है तब फिर वह अमूल्य मानव-जीवन को इन तुच्छ बातों में नष्ट नहीं करता और इसी के साथ उसके समस्त दुःख-द्वन्द तिरोहित हो जाते हैं।

सर्वत्र आत्मा के स्वरूपों को देखने वाले आत्मविद् के अन्तर से विश्वप्रेम की सुरसरि बह निकलती है। सत्य, प्रेम, आनन्द आदि आत्मा के गुण-धर्म हैं। जिस अन्तर में ये पुण्य धारायें बहती रहती हैं जो आनन्द, शान्ति, तोष प्राप्त होता है, उसे अनुभवी ही जानते हैं। सर्व को आत्ममय देखने वाला व्यक्ति सबको प्रेम करेगा। सबसे प्रेम, सबकी सेवा, सबमें आनन्द की अनुभूति आत्मविद् के स्वभाव का अंग बन जाती है।

आत्मा का ज्ञान मनुष्य को जरा-मरण के भय से मुक्त करता है। वस्तुतः जरा और मृत्यु का भय, चिन्ता इतनी भयावह होती है कि इससे मनुष्य का जीवन तत्व तेजी के साथ नष्ट होने लगता है। भय की प्रबल प्रतिक्रियाओं से लोग अचानक मरते देखे जाते हैं। लेकिन सब भयों में, खासकर सबसे बड़े मृत्यु-भय का उच्छेद आत्म-ज्ञान से तत्क्षण ही हो जाता है। क्योंकि आत्मा जरा-मरण के बन्धनों से मुक्त है। कठोपनिषद् में आत्म दृष्टा ऋषि ने कहा है-

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं
कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्-
अजोनित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

यह नित्य चैतन्यस्थ आत्मा न कभी जन्म लेता हैं न कभी मरता है न तो यह कभी पैदा हुआ और न इससे कोई पैदा हुआ। यह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत है, चिरन्तन है। शरीरों के नष्ट हो जाने पर भी यह नष्ट नहीं होता। आत्मा अक्षय, अजर, अमर, नित्य तत्व है जो चिरन्तन होने से जन्म मृत्यु से परे है।

इस तरह आत्मा को अजर, अमर, अविनाशी तथा चिरन्तन सत्ता का ज्ञान-बोध हो जाने पर मनुष्य जरा-मरण एवं अन्य सभी प्रकार के भयों से मुक्त हो जाता है। आत्मविद् के लिए मृत्यु एक वस्त्र बदलने जैसी प्रक्रिया मात्र है। आवश्यकता पड़ने पर वह हँसते-हँसते मौत का आलिंगन करने में भी नहीं चूकता। क्योंकि इससे उसका शरीर नष्ट होता है, आत्मा नहीं।

इसलिए जीवन में परितोष की प्राप्ति के लिए, सत्य, प्रेम, आनन्द की व्यापक अनुभूति के लिए जीवन के सत्य की प्राप्ति के लिए सर्व ओर से निर्भय, निर्द्वन्द्व, निश्चिन्त बनने के लिए आत्म-तत्व में प्रवेश पाने, उसे जीतने, उसे स्थिर रहने के लिए नित्य ही प्रयत्न करना आवश्यक है।

आत्म-शक्ति का अकूत भण्डार

संसार की रचना छोटे-छोटे परमाणुओं से मिलकर हुई है। जड़ और चेतन परमाणुओं के विचित्र संयोग से ही यह संसार गतिमान हो रहा है। जड़ परमाणुओं की शोध बीसवीं शताब्दी के विज्ञान की सबसे बड़ी देन है। कहते हैं, जब परमाणु-शक्ति का पूर्णरूपेण उपयोग होने लगेगा तब मनुष्य के लिए इस विश्व में कुछ भी असम्भव न रहेगा। वह स्वेच्छापूर्वक ग्रह-नक्षत्रों में ऐसे ही विचरण कर सकेगा जैसे इस पृथ्वी में एक गाँव से दूसरे गाँव को चले जाते हैं। यह शक्ति कितनी बड़ी होगी इसका अनुमान लगाना कठिन है।

जिस परमाणु की शक्ति और महत्ता इतनी बढ़-चढ़कर है, वह इतनी सूक्ष्म वस्तु है कि उसे बड़ी से बड़ी खुर्दबीन लगाकर भी देख पाना सम्भव न हुआ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

केवल उसकी प्रतिक्रियाओं के आधार पर उसका नामांकन हुआ है। पदार्थ का सबसे छोटा टुकड़ा जिसके और अधिक अंश न हो सकें, वह 'अणु' कहलाता है। इस अणु में भी 'न्यूक्लियस' या केन्द्र पिण्ड और इसके किनारे अण्डाकार कक्षा में गति करता हुआ 'इलेक्ट्रॉन' स्थिर न्यूट्रॉन और प्रोटॉन से मिलकर बना हुआ परमाणु होता है, जिस को हम देख भी नहीं सकते। उस एक परमाणु का जब विस्फोट होता है तो आइन्सटीन के 'मासकनवर्जन' सिद्धान्त के अनुसार ३३ लाख किलो कैलोरी ताप पैदा होता है। यह शक्ति एक विशाल भू-भाग को जलाकर खाक कर देने में पूर्णतया समर्थ है। अभी तो उस पर अनेकों खोजें और भी होनी शेष हैं।

प्रत्येक पदार्थ इन छोटे-छोटे परमाणुओं से मिलकर बना है। मिट्टी के छोटे-छोटे कणों का वृहत्स्वरूप यह पृथ्वी है, समुद्र का आधार पानी की एक छोटी-सी बूँद है विशाल वट-वृक्ष का निर्माण उसके बीज के एक बहुत छोटे अंश से होता है। परमाणु एक प्रकार से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नक्शा है, जो कुछ शक्तियाँ इस सृष्टि में दिखाई देती हैं वे सब बीज रूप में एक परमाणु में विद्यमान हैं। इस शक्ति की हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

जड़ परमाणु की इतनी सामर्थ्य देखकर आश्चर्य होता है, पर चेतन अणु की शक्ति उससे भी अधिक है। जड़ पदार्थ स्वाधीन नहीं होते उनकी अपनी कोई इच्छा-शक्ति नहीं होती। किन्तु चेतना शक्ति स्वच्छन्द है। वह पदार्थ पर शासन करती है शासित से शासक की शक्ति अधिक होना भी चाहिये। जड़ से चेतना का महत्त्व अधिक है उसे जानकर ही मनुष्य के वास्तविक प्रयोजन की सिद्धि होती है।

आत्मा को विश्व-चेतना का परमाणु ही समझना चाहिये। पदार्थ के परमाणु की शक्ति का हिसाब लगा चुकने पर उससे आत्म-शक्ति की तुलना कर सकते हैं।

संसार में जो कुछ चल रहा है, उसका स्रष्टा परमात्मा अनन्त शक्तिशाली है। उसी का यह सब खेल चल रहा है इस विश्व में। परम शक्तिशाली परमात्मा की प्रत्येक शक्तियाँ हमारी अन्तरात्मा में उसी तरह समायी हुई हैं जिस तरह वृक्ष की सम्भावना उसके बीज में होती है। उपनिषद्कार के कथन से इस आत्मशक्ति का परिचय मिलता है-

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः,
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः;
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।

अर्थात्- वह परमात्मा ही सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मरूप में विद्यमान है। वह सर्वव्यापक है, सर्वान्तर्यामी है, वही कर्मों का अधिष्ठाता है, सम्पूर्ण भूतों का निवास, सब का साक्षी, चेतना-स्वरूप और सबको जीवन देने वाला परम पवित्र और गुणातीत भी है।

सारे संसार में जो शक्ति परमात्मा की है। मनुष्यदेह में वह सारी योग्यतायें जीवात्मा को उपलब्ध हैं। यह शक्तियाँ हमारी अपनी हैं किन्तु अज्ञानवश हम उन्हें भूल चुके हैं। देह अर्थात् पदार्थ के सुखों में आसक्ति हो जाने के कारण आत्मा की सूक्ष्म-सत्ता की ओर हमारा ध्यान भी आकृष्ट नहीं होता। यही हमारे दुःखों का कारण है। आत्म-हीनता का कारण मनुष्य की आत्म-अज्ञानता ही है।

आत्म-ज्ञान के मूल में वह शक्ति, वह सामर्थ्य और विशेषताएँ सन्निहित हैं कि उन्हें यदि जागृत कर लिया जाय तो मनुष्य अपने आप में महामानव, देवत्व तथा परमात्मा की सी शक्ति अनुभव कर सकता है। आत्मा वह कल्पतरु है जिसकी छाया में बैठने से कोई भी कामना अपूर्ण नहीं रहती।

महापुरुषों के जीवन को फूल के समान खिला हुआ, सिंह की तरह अभय, सद्गुणों से ओत-प्रोत देखते हैं तो स्वयं भी वैसा होने की आकांक्षा जागती है। आत्मा की यह आध्यात्मिक माँग है, उसे अपनी विशेषताएँ प्राप्त किये बिना सुख नहीं होता। लौकिक कामनाओं में डूबे रहकर हम इस मूल आकांक्षा पर पर्दा डाले हुए पड़े रहते हैं इससे किसी भी तरह जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती।

श्रेष्ठता मनुष्य की आत्मा है। इसलिए जहाँ कहीं भी उसे श्रेष्ठता के दर्शन मिलते हैं, वहीं आकुलता पैदा होती है। मोर के पंखों की सी सुन्दरता पाने को हर कोई लालायित रहता है। किसी कवि की परिपूर्ण कविता पढ़ कर ऐसा लगता है काश! हम भी ऐसा ही लिख पाते। पक्षियों को आकाश में उड़ता हुआ देखकर लगता है, अपनी इच्छानुसार स्वच्छन्द आकाश में विचरण करने की सामर्थ्य मिली होती तो कितना अच्छा होता। यह अभिलाषाएँ जागती तो हैं किन्तु यह विचार नहीं करते कि यह आकांक्षा आ कहाँ से रही हैं, आत्म केन्द्र की ओर आपकी रुचि जागृत हो तो आपको भी अपनी महानता जगाने का श्रेय मिल सकता है, क्योंकि लौकिक पदार्थों में जो आकर्षण दिखाई देता है वह आत्मा के प्रभाव के कारण ही है। आत्मा की समीपता प्राप्त कर लेने पर वह सारी विशेषताएँ स्वतः मिल जाती हैं, जिनके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिये मनुष्य जीवन में इतनी सारी तड़पन मची रहती है। सत्य, प्रेम, धर्म, न्याय, शील, साहस, स्नेह दृढ़ता-उत्साह, स्फूर्ति, विद्वता, योग्यता, त्याग, तप और अन्य नैतिक सद्गुणों की चारित्रिक विशेषताओं के समाचार और दृश्य हमें रोमांचित करते हैं क्योंकि ये अपनी मूलभूत आवश्यकतायें हैं। इन्हीं का अभ्यास डालने से आत्म-तत्व की अनुभूति होती है।

आत्म-ज्ञान का सम्पादन और आत्म केन्द्र में स्थिर रहना मनुष्य मात्र का पहला और प्रधान कर्तव्य है। आत्मा का ज्ञान चरित्र के विकास से मिलता है। अपनी बुराइयों को छोड़कर सन्मार्ग की ओर चलने की प्रेरणा इसी से दी जाती है कि आत्मा का आभास मिलने लगे। आत्म-सिद्धि का एक मात्र उपाय पारमार्थिक भाव से जीवमात्र की सेवा करना है। इन सद्गुणों का विकास न हुआ तो आत्मा की विभूतियाँ मलिनताओं में दबी हुई पड़ी रहेंगी।

बुराइयाँ आत्मा को प्रिय नहीं हैं। आप जब किसी चोर या डाकू को सजा पाते हुये देखते हैं तो आपको भय प्राप्त होता है तुरन्त जी में आता है कि कहीं हम भी चोरी न करने लग जायें, कसाई को जानवर काटते देखकर, शिकारी को पक्षियों को मारने की हिंसात्मक क्रिया देखकर दुःख होता है। दुष्टता और राक्षसी प्रवृत्ति से दूर भागने का प्रयास सभी करते हैं। अनीति, अत्याचार, अन्याय, आततायीपन, द्वेष, त्रुटि, कुरूपता, चोरी, ठगी आदि के क्षण, संस्मरण तथा घटनायें बड़ी अप्रिय लगती हैं। यह अपनी मूल स्थिति के अनुरूप होता है। आत्मा कभी निकृष्ट होना नहीं चाहती, क्योंकि उत्कृष्टता उसका सहज स्वभाव है। भय उसे इसलिए पसन्द नहीं है कि वह चिरअभय है। कुरूपता इसलिए अप्रिय है कि आत्मा का सौन्दर्य बड़ा मोहक है। यह स्थिति प्राप्त न होने तक छटपटाहट अवश्य रहेगी। असन्तुष्ट होना यह व्यक्त करता है कि अभी तक आपको 'निजत्व' का ज्ञान नहीं मिला है।

देवत्व हमारी आवश्यकता है, दुष्प्रवृत्तियों से भय लगता है। पवित्रता हमें प्रिय हैं। अपवित्रता से दुःख मिलता है, निश्छलता से सुख मिलता है। छल और कपट के कारण जो संकीर्ण स्वभाव बनता है उससे अपमान मिलता है। जो कुछ श्रेष्ठ है, सार्थक है, वही आत्मा है और उसी को प्राप्त करना, मनुष्य जीवन का मूल उद्देश्य है। जब तक इस बात को समझ नहीं लेते, कोई भी समस्या हल नहीं होती।

श्रेष्ठता से सुख मिलता है यह सच है, इसे प्राप्त करना ही जीवन लक्ष्य है, इसे भी मानते हैं, तो सन्मार्ग और सत्प्रवृत्तियों द्वारा अपने देवत्व को जगाना पड़ेगा। प्रत्येक गुण का अमृत कुण्ड हमारी आत्मा में है इसलिये अपने आत्मभाव का परिष्कार करना पड़ेगा। आत्मीयता की भावना उठती है तो उच्च प्रवृत्तियों का प्रकाश हमारे जीवन में लहराने लगता है।

यह जागृति प्रत्येक अवस्था में अभीष्ट है। यह संसार स्वप्न की तरह है। जिस प्रकार जागने पर स्वप्न मिथ्या प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार आत्मा का ज्ञान प्राप्त होने पर लौकिक कामनायें झूँठी मालूम पड़ने लगती हैं। अभी जो अपनी शक्तियों को लौकिक-संघर्षों में अपव्यय करना पड़ता है उसे यदि पतनकारी दुष्प्रवृत्तियों से हटाकर सद्गुणों के रचनात्मक कार्य में लगायें तो शक्तियों का सदुपयोग भी होता है और आत्मा के अकूत शक्ति भण्डार का अधिकार भी मिलने लगता है।

संसार में जो कुछ विभूतियाँ एवं श्रेष्ठताएँ हैं उन सब में अपना आत्म-तत्व ही प्रवाहित हो रहा है। सत्-चित आनन्दस्वरूप आत्मा ही सम्पूर्ण श्रेष्ठता और सौन्दर्य का स्रोत है। जन्म और मरण का, निर्माण और विश्वास का जो विश्वव्यापी खेल चल रहा है, वह विश्व-आत्मा की शक्ति का प्रतीक है। यह शक्ति पुंज हमारे भीतर भरा पड़ा है। जब तक हम उससे विमुख रहकर लौकिक कामनाओं में डूबे रहते हैं। जब तक हम उससे विमुख रहकर लौकिक कामनाओं में डूबे रहते हैं तब तक बड़े दीन-दुःखी बने और दरिद्रता से घिरे रहते हैं, किन्तु जब पारमार्थिक जीवन की उमंग आती है, तो हमारी शक्तियों का स्रोत भी उमड़ पड़ता है। तब हमारा जीवन विशाल आनन्दमय और शक्तिसम्पन्न बन जाता है।

शक्ति का स्रोत हमारे अन्दर है

आज जैसी भी कुछ हमारी स्थिति है, वह सब हमारी मानसिक स्थिति का परिणाम है। मन कर्त्ता है। संसार की सम्पूर्ण बाह्य रचना की शक्ति और आधार मन है। हमारा आहार, रहन-सहन, चाल-चलन, व्यवहार-विचार, शिक्षा-समुन्नति यह सारी बातें हमारी मानसिक दशा के अनुरूप ही होती हैं। जैसा कुछ चिन्तन करते हैं, विचार करते हैं वैसे ही क्रिया-कलाप भी होते हैं और तदनुसार वैसे ही अच्छे, बुरे कर्म भी बन पड़ते हैं। सुख और दुःख बन्धन और मुक्ति चूँकि इन्हीं कर्मों का परिणाम है इसलिये हमारे उद्धार और पतन का कारण भी हमारा मन ही है।

कोई भी बड़ा कार्य, श्रेष्ठ सत्कर्म या उन्नति करनी हो तो उसके अनुरूप मानसिक शक्ति की ही आराधना करनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ेगी। मन की शक्तियों को यत्नपूर्वक उस दिशा में प्रवृत्त करना पड़ेगा। जो लोग यह कहते रहते हैं कि 'क्या करें हमारा तो मन ही नहीं मानता' उन्हें यह जानना चाहिये कि मानसिक शक्तियाँ सर्वथा स्वच्छन्द नहीं हैं। मन इच्छा शक्ति के अधीन है। इच्छाओं के आकार-प्रकार पर उसकी क्रिया शक्ति सम्भावित है। एक व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेता है, दूसरा निम्न कक्षाओं से ही अध्ययन छोड़ बैठता है एक धनी है, दूसरा निर्धन, एक डॉक्टर है दूसरा वकील, जिसकी जो स्थिति है वह उसकी इच्छा के फलस्वरूप ही है। यदि किसी को अनिच्छापूर्वक किसी स्थिति में रहना पड़ रहा है तो इससे एक ही अर्थ निकला जायेगा कि उस व्यक्ति ने इच्छाओं के अनुरूप कार्य शक्ति में मन को प्रयुक्त नहीं किया। जिसकी मानसिक शक्तियाँ और विशृंखलित रहेंगी वह न तो कोई सफलता ही प्राप्त कर सकेगा और न ही उसकी कोई इच्छा पूर्ण होगी।

असफलता या दुर्भाग्य केवल मनोबल की कमी का ही परिणाम है। यत्न करते हुए थोड़ी सी परेशानी ही प्रयत्न से विचलित कर देने के लिए काफी होती है। थोड़ा-सा शारीरिक दबाव, धन हानि, व्यापार में घाटा शिक्षा में अनुत्तीर्णता जैसी निराशाजनक घटनायें आईं कि प्रयत्न छोड़ बैठे। यह घटिया मनोबल का लक्षण है कि मनुष्य अल्प श्रम से अधिक परिणाम प्राप्त करना चाहे। इच्छाओं का आकार-प्रकार जितना बड़ा है उतने ही बड़े प्रयत्नों की अपेक्षा की जाती है, यदि उतने प्रयत्न न किये जा सके तो सफलता संदिग्ध ही बनी रहेगी।

विद्यार्थी परीक्षा उत्तीर्ण करने की दृष्टि से अध्ययन करते हैं। फीस के लिए पैसे जुटाते हैं, समय लगाते हैं, सभी शारीरिक सुख त्यागकर अध्ययन में लगे रहते हैं। कदाचित् परीक्षा में ऐसा कोई विद्यार्थी फेल ही हो जाय तो यह नहीं समझना चाहिए कि अपना श्रम, धन और समय व्यर्थ चला गया। परीक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रमाण पत्र नहीं मिला यह बात महत्वपूर्ण नहीं है। मन के महत्व का प्रश्न है। महत्त्व इस बात का है कि उस शिक्षा से बौद्धिक बल बढ़ा, विचार शक्ति आई और अनेक उलझनों को महत्त्वपूर्ण सामर्थ्य प्राप्त हुई या नहीं? प्रमाण पत्र इन्हीं बातों की गारण्टी का ही नाम तो है जो यदि न भी मिले तो यह नहीं समझना चाहिये कि हमारा प्रयत्न निष्फल चला गया।

परिस्थितियाँ यदि प्रतिकूल हैं तो भी साधनों का उपयोग करते रहना चाहिए। थोड़ी-सी पूँजी से बढ़कर उच्च स्तर के व्यापार तक पहुँचा जा सकता है, किन्तु मानसिक शक्ति अपने साथ बनी रहनी चाहिये। कार्य करते समय ऊबें नहीं और उत्तेजित भी न हों। यह समझ लें कि हमें तो लक्ष्य तक पहुँचना है जितनी बार गिरो, उतनी बार उठो। एक बार गिरने से उसका कारण मालूम पड़ जायगा तो दुबारा उधर से सावधान हो जाओगे। यह स्थिति निरन्तर रहे तो अनेक बाधाओं के रहते हुये भी अपने लिये उन्नति का मार्ग निकाला जा सकता है। हार मन के हारने से होती है। मन यदि बलवान है तो इच्छा पूर्ति भी अधिक सुनिश्चित समझनी चाहिये।

आज यदि स्थिति ठीक नहीं है तो भविष्य में भी वह ऐसी ही बनी रहेगी, ऐसा कमजोर बनाने वाला विचार अपने मस्तिष्क से निकाल दें। श्रेष्ठता अन्दर सुप्तावस्था में पड़ी हुई है। इसमें संशय नहीं कि हम हर आवश्यकता अपने आप पूरी कर सकते हैं, पर इसके लिये सतत् अभ्यास की आवश्यकता है। अपना उद्योग बन्द न करें। अकर्मण्ता और आलस्य का, अधीरता और प्रयत्नहीनता का साथ छोड़कर **''यत्न देवो भव''** की उपासना आरम्भ कर दोगे तो पुरुषार्थ का देवता ही अपने लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देगा। काम करने में शिथिलता न व्यक्त करें। ढिलाई न करें। चिन्तित न हों। आत्म विश्वास न खोओ, धैर्य के साथ 'यत्न देव' का आश्रय पकड़े रहें तो यह निश्चय है कि आज की यह दीन-हीन अवस्था कल श्री सम्पन्न अवस्था में बदल कर रहेगी।

ऊँचे से ऊँची इमारत की नींव भी नीचे ही रखी होती है। ऊँचे उठने का शुभारम्भ निचली पृष्ठभूमि से किया जाता है। निर्धन धन कुबेर होते हैं पहलवान कोई माँ के पेट से बनकर नहीं आता। उसके लिए तो विधिवत् उपासना करनी पड़ती है।

यह ठीक है कि आज अपनी दशा अच्छी नहीं, कोई विशेष गुण भी दिखाई नहीं देता फिर भी निराशा का कोई कारण नहीं। एक शक्ति अभी भी अपने पास है और वह अन्त तक पास रहेगी यह है मन। मन की शक्ति को सम्पादन करने का तरीका जानने का प्रयत्न करें। छोटे-छोटे कामों में मनोयोग का प्रयोग किया करें। एक दिन मनोबल इतना बढ़ जायगा कि ऊँचे से ऊँचा कार्य करने में भी हिचकिचाहट नहीं होगी। और उत्साह पूर्वक, दृढ़तापूर्वक सफलता की मंजिलें पार करते हुए आगे बढ़ सकें। श्रेष्ठताएँ अन्दर छिपी पड़ी हैं उनका समर्थन और अभिवर्धन करें, दूसरों की ओर देखें, वे किस तरह आगे बढ़े हैं। दूसरों से उदाहरण लें कि उन्होंने कैसे सफलताएँ पाई हैं। बिना हाथ-पाँव हिलाये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किसी के भाग्य देवता ने साथ नहीं दिया। चुपचाप बैठे रहेंगे तो उन्नति का अवसर पास से गुजरकर चला जायगा, आपको केवल हाथ मसलकर रह जाना पड़ेगा।

आत्म-संयम करें, इससे बिखरा हुआ मानसिक संस्थान जगेगा। निश्चेष्ट मनुष्य इसलिए होता है कि उस की शक्तियाँ इधर-उधर बिखरी हुई होती हैं मामूली सी शक्ति से कोई काम भी नहीं बनता। बिखरी हुई सूर्य की किरणें सारे शरीर पर असंख्य मात्रा में गिरती हैं तो भी उससे कुछ विशेष हलचल उत्पन्न नहीं होती, पर यदि एक डेढ़ इंच जगह की किरणों को आतिशी शीशे से एक जगह पर एकत्रित कर दिया जाय तो इससे दावानल का रूप धारणकर एकता की क्षमता से सम्पन्न आग पैदा हो जायेगी। हम अपनी शक्तियों को इधर-उधर के बेकार के कार्यों में खर्च करते रहते हैं। जिससे जीवन में कोई विशेषता नहीं बन पाती। आत्म-संयम से बिखरी हुई शक्तियाँ एक स्थान पर एकत्रित होकर अभीष्ट परिणाम के लिये उपयुक्त वातावरण तैयार करती हैं। मन की सूक्ष्म शक्तियों का जागरण आत्म-संयम से होता है।

किसी समय भारतवर्ष ने मन की शक्तियों का सम्पादन करके अनेकों आश्चर्यजनक शक्तियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। एकाग्रता के अभ्यास द्वारा यह सम्भावनायें अब भी जागृत की जा सकती हैं। इसके लिए अपने को गति देने की आवश्यकता है। जी-तोड़ परिश्रम करने की आवश्यकता है, प्रयत्न पर प्रयत्न करने की जरूरत है। हमारे भीतर जो सिद्धियाँ बिखरी हुई पड़ी हैं उन्हें कार्य-क्षेत्र में लगाने भर की देर है, बस हमारी यह विषम परिस्थितियाँ अधिक दिनों तक ठहरने वाली नहीं हैं।

उन्नति के लिए चाहे कितने ही व्यक्ति सहानुभूति व्यक्त क्यों न करें पर यह निर्विवाद है कि हमारा इससे कुछ काम न चलेगा। हमें अपनी स्थिति स्वयं सुधारनी होगी। स्वयं कठिनाइयों से लड़कर नया निर्माण करना पड़ेगा। विशृंखलित शक्तियों को जुटाकर आगे बढ़ने का कार्यक्रम बनाना पड़ेगा। यह बात यदि समझ में आ जाय तो सफलता की आधी मंजिल तय कर ली, ऐसा समझना चाहिये। शेष आधे के लिये मनोबल जुटाकर यत्नपूर्वक आगे बढ़िये आपका सौभाग्य आपके मंगल मिलन के लिए प्रतीक्षा कर रहा है, स्वागत के लिये आगे खड़ा है।

जीवनोद्देश्य से विमुख न होइये

इस अनादि और अनन्त काल के शाश्वत प्रवाह में जाने यह कौन-सा अभागा क्षण था जो मनुष्य को छूकर निकल गया, फलस्वरूप मनुष्य ने भोग-भावना की उपासना को अपना जीवन-लक्ष्य निर्धारित कर लिया।

मनुष्य का जीवन-लक्ष्य भोग-बीथियों में भटकते रहना हो सकता है- किसी प्रकार भी तो यह विश्वास नहीं किया जा सकता है। यदि ऐसा रहा होता तो मनुष्य का निर्माण भी उसी प्रकार का हुआ होता जिस प्रकार अन्य पशुओं का। न उसमें बुद्धि होती न विवेक और न आध्यात्मिक चेतना का विकास। संसार का यह सर्वगुण-सम्पन्न प्राणी मनुष्य भी यदि जीव-जन्तुओं की भाँति ही भोजन, वास, निद्रा और मैथुन में रत रहकर ही सारा जीवन बिताता और मरकर चला जाता तो फिर उसमें अन्तर ही क्या रह जाता है ?

प्राणियों के बीच एक-दूसरे से उनकी विशेषताओं की भिन्नताओं के पीछे निश्चित ही कुछ अर्थ और कुछ उद्देश्य निहित रहता है। परमात्मा की यह विशाल, व्यापक, नियमित तथा व्यवस्थित सृष्टि, किसी बाजीगर का निरुद्देश्य तमाशा भर नहीं है और न यह बालू खेलते हुए अबोध बच्चों की क्रीड़ा है कि वे मिट्टी से विविध प्रकार के आकार-प्रकार बनाते और यों ही कौतूहलवश बिगाड़ते रहते हैं। गाय-बैलों के सिर-सींग, शेर के पंजे, हाथी की सूँड़, वराह के वीर और पक्षियों के डैने होना अपने पीछे एक सार्थक मन्तव्य रखते हैं। यह यों ही निरर्थक की उपज एवं विभिन्नता नहीं हैं। यह बात दूसरी है कि हमारी मोटी बुद्धि इसके सूक्ष्म उद्देश्य को पूरी तरह समझ सकने में समर्थ न हो सके।

व्यवस्थित रूप से सोचने की क्षमता, परिष्कृत वाणी, बोलने और समझाने का गुण, सामाजिकता, पारस्परिकता, सहयोग, सौन्दर्य, साहित्य, सहानुभूति, चिकित्सा, वाहन, मनोरंजन, न्याय, गृह, वस्त्र एवं आजीविका की सुविधा आदि की जो विशेषताएँ मनुष्य को मिलीं और अन्य जीव-जन्तुओं को नहीं मिलीं, परमात्मा के इस अनुग्रहाधिक्य का यह अर्थ तो कदापि नहीं हो सकता कि मनुष्य अपना जीवन इन विशेषताओं एवं सुविधाओं इन पुरस्कारों एवं उपहारों को यों ही मिट्टी में मिलाकर अन्य पशुओं की तरह ही अपना जीवन बिताये और मर जाये। अवश्य ही मनुष्यों का जीवन उद्देश्य अन्य जीव-जन्तुओं से भिन्न होना निर्धारित है।

मनुष्य जीवन-पद्धति की यह भिन्नता एक सोद्देश्य जिन्दगी, एक ऊँची और परिष्कृत जिन्दगी के सिवाय और कुछ नहीं हो सकती।

मानव-जीवन की परिस्थितियों को देखते हुए यह मानना पड़ेगा कि वह शरीर की संकीर्ण परिधि से बाहर निकलकर व्यापक विभु की ओर बढ़े, नीचे स्तर से उठकर ऊपर अनन्त की ओर अभियान करे। यदि वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सर्वगुण सम्पन्न इस मनुष्य जीवन जैसे अलभ्य अवसर को पाकर भी अपनी आत्मा की संकीर्णता के कलुष से मुक्त करने का प्रयत्न न करे, तो यही मानना पड़ेगा कि हमने इस पावन प्रसाद का न तो समुचित मूल्यांकन ही किया और न परमात्मा की कृपा का समादर। इस मनुष्य शरीर को पशुओं जैसा यापन कर उसी श्रेणी का सिद्ध करने का अनुचित अपराध किया। आत्म-कल्याण, आत्म-मुक्ति एवं आत्म-विस्तार की साधना से विरत् रहकर केवल यही एक अलभ्य अवसर खो दिया वरन् आगे के लिए भी अपनी पात्रता असिद्ध कर दी और पुनः लाखों-करोड़ों वर्ष के लिये चौरासी लाख योनियों के कारावास की भूमिका तैयार कर ली।

शारीरिक वासनाओं की सँकरी तथा असाध्य बीथियों से निकलकर यदि कुछ देर के लिये भी मन को मुक्त कर संसार के विस्तार तथा व्यापकता पर दृष्टिपात किया जाये तो कोई कारण नहीं कि यह अनादि से लेकर अनन्त तक फैला हुआ नीलाकाश, इसमें अवस्थित असंख्यों प्रकाशमान ग्रह, नक्षत्र, चाँद एवं सूरज अपनी दिव्यता से हमारे उन्नत एवम् व्यापक अभियान में सहायक न हों। कोई कारण नहीं कि इनका दर्शन, इनका विचार कुछ देर के लिये भी हमारे हृदय में व्यापकता की अनुभूति उद्बुद्ध न करे और हम इनके बीच अपने अन्दर, इन्हीं जैसी महानता तथा व्यापकता को अनुभव न करने लगें। किन्तु कहाँ ? हम तो भोगों के रोगों से ग्रस्त अपने चारों ओर वासनाओं तथा एषणाओं की कारागार निर्मित किये अपने को काल-कोठरी का बन्दी बनाए पड़े हैं। हमें अवकाश ही कब मिलता है कि हम संकीर्णताओं से निकलकर इस अपार्थिव वैभव, इस व्यापक विभूति से तादात्म्य का प्रयास करें। ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध और मोह आदि आत्म-विरोधियों का संग कर हम निविड अन्धकार में भटककर अपने इस महान् उद्देश्य की ओर से उदासीन होकर मनुष्य से पशु बने पड़े हैं और एक क्षण को भी यह सोचना नहीं चाहते कि अवसर निकला जा रहा है और हम अन्त में पश्चात्ताप की अग्नि में जलने के लिये चूके जा रहे हैं।

नित्यप्रति सूर्योदय के समय से एक नया दिन आरम्भ होता है और सूर्य अस्त होने तक समाप्त हो जाता है। इस प्रकार नित्य ही आयु से एक मूल्यवान दिन कम हो जाता है। हम कभी नहीं सोचते कि हमने जिस दिन इस धरती पर जन्म लिया, उसी दिन से जीवन का ह्रास आरम्भ हो गया। बड़ा तेजी से क्षण-अनुक्षण, श्वास एवं प्रश्वास के साथ अन्त की ओर बढ़ते जा रहे हैं। उस अन्त की ओर जिसकी स्थिति अथवा अवस्था का कोई आभास हमारे पास नहीं है। किसी बड़े उद्देश्य के लिए मिला हुआ यह छोटा-सा अवसर, यह गिना-चुना समय यों ही व्यर्थ में नष्ट हुआ जा रहा है और हम उसके लिये कुछ भी तो नहीं कर रहे हैं।

हम नित्य ही जन्म, मृत्यु, जरता, क्षरता रोग-शोक, आपत्ति, विनाश, काल एवं अकाल मृत्यु के विचार प्रेरक तथा जगा देने वाले दृश्य देखते-सुनते ही रहते हैं, किन्तु हमारे कान पर जूँ तक नहीं रेंगती है। विषय-वासनाओं, कामनाओं-एषणाओं, भोग तथा लोलुपता ने हमें इस सीमा तक मोहग्रस्त बना दिया है कि हम विचार, विवेक और बुद्धि के रूप में अन्धे ही हो गये हैं। सांसारिकता के प्रमाद में इस सीमा तक विस्मृत हो गये हैं, डूब गये हैं कि एक-आध घड़ी एकान्त में बैठकर विचार कर सकें कि हमको यह विचित्रतापूर्ण मानव शरीर क्यों मिला? इसका उद्देश्य क्या है? हम कौन हैं? कहाँ से आये और कहाँ जा रहे हैं? हमें क्या करना चाहिए, हम क्या कर रहे हैं? इस प्रकार की कल्याणकारी भावना, जिज्ञासा अथवा उत्सुकता की चेतना से हम सर्वथा अपरिचित ही हो गये हैं।

एक तिनके की तरह हम चेतनाहीन होकर समय के प्रवाह, विकृतियों के वेग में, संसार की अबूझ-परम्परा- जन्म लेना जीना और मर जाना- के साथ बहे चले जा रहे हैं। इन्द्रिय भोग, पदार्थ पूजा, अधिकार, पुत्र-कलत्र धन-धाम आदि अनित्य एवं परतन्त्रता जन्य वस्तुओं को लक्ष्य बनाकर दिन-रात इन्हीं में मरते-खपते चले जा रहे हैं। जब अन्त काल आता, चेतना जागती और बुद्धि प्रश्न करती है तब हम अपनी भूल समझते और छटपटा उठते हैं। किन्तु तब तक जीवन की हाट उठने लगती है और हम उस सबको ज्यों-का त्यों यथास्थान छोड़कर खाली हाथ मलते हुए किसी अनजान दिशा की ओर चल देते हैं। वह कुछ भी न तो हमारे साथ जाता है और न काम ही आता है, जिसका हमने सुर-दुर्लभ मानव जीवन को नष्ट करके बड़े उत्साह से संचय किया था। विशाल-वैभव, अपार धन-धान्य, पुत्र-कलत्रादिक संचय तथा संसार की सारी परिस्थितियाँ हमारे सामने बनी रहती हैं। जिनको हम अपना कहते और जिनके लिए प्राण देते रहते हैं, कोई भी काम नहीं आते, हम अपनी मोहमयी भूल के पश्चात्ताप में जलते हुए परवशता के परों से बँधे उड़ ही जाते हैं। उस समय की वह व्याकुलता, वह व्यग्रता और वह शोक-सन्ताप या तो वह ही समझ सकता है जो भुक्तभोगी रहा है अथवा वह समझेगा जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज उसी भूल का प्रतिपादन करता हुआ सोचने समझने की आवश्यकता नहीं समझता।

जीवन के प्रति विश्वास एवं आस्था रखना अच्छी बात है। तथापि जिन्दगी कितनी ही लम्बी और विश्वासपूर्वक क्यों न हो, जीवनलक्ष्य की महानता को देखते और संसार की नश्वरता को समझते वह सदैव छोटी तथा अविश्वस्त ही है। इसका एक-एक क्षण मूल्यवान है। हर बीते हुए क्षण की क्षति पूरी नहीं की जा सकती, किसी आते हुए क्षण को व्यर्थ नहीं किया जा सकता। लक्ष्य की दिशा में ही उपयुक्त किया हुआ क्षण हमारा सार्थक तथा सहयोगी हो सकता है अन्यथा जीवन के पचास सौ साल क्या हजार और लाख-लाख वर्ष भी निरर्थक एवं निरुपयोगी ही सिद्ध होते हैं।

अज्ञान के कारण मनुष्य भौतिक उपलब्धियों को ही उन्नति-सफलता का प्रतीक मान लेता है। किन्तु मनुष्य शरीर, बल, बुद्धि, धन, वैभव, यश, ऐश्वर्य अथवा पद-प्रतिष्ठा के क्षेत्र में क्यों न हिमालय की तरह ऊँचा और सागर की तरह गहरा हो जाये, किन्तु जब तक उसमें आत्म-सम्पदा का अभाव है, आध्यात्मिक चेतना की आवश्यकता है तब तक वह निर्धन तथा निम्नकोटि का ही माना जायेगा। आत्मोन्नति एवं आध्यात्मिक उपलब्धि ही वह वास्तविक उन्नति एवं विकास है जिसे प्राप्त कर यह मानव जीवन धन्य तथा सार्थक होता है। भौतिक विभूतियों की चमक मरुस्थल की उस-मरीचिका से अधिक कुछ भी तो नहीं है जोकि आकर्षक तो बहुत होती है किन्तु न तो आत्मा की प्यास बुझा सकती है और न हृदय को सन्तोष दे सकती है।

यह बात सोचना-समझना भूल होगी कि मानव-जीवन में भौतिक-पदार्थों का कोई मूल्य या महत्त्व नहीं है मनुष्य का शरीर पार्थिव है, उसे चलाने तथा बनाये रखने के लिये भौतिक पदार्थ की नितान्त आवश्यकता है। भोजन, वस्त्र तथा निवासादिक आवश्यकताओं की आपूर्ति में जीवन चलना ही कठिन हो जायेगा। किन्तु इनका महत्व केवल इस सीमा तक ही है कि यों मानव-जीवन के उद्देश्य की पूरक मात्र ही बनी रहें स्वतः लक्ष्य न बन जायें। शरीर-रक्षा आज जीवन की असुविधायें दूर करने भर को इनके उपार्जन एवं प्राप्ति में आवश्यक समय तथा श्रम देने के उपरान्त जो शक्तियाँ और अवसर शेष बचे उसे परम लक्ष्य की ओर जाने में ही लगाना बुद्धिमानी है। भौतिकता के साथ अपना समग्र जीवन बेच देने का अर्थ यही होगा कि हम अपने उद्देश्य की दिशा में भटक कर गलत रास्ते पर चल निकले हैं। जो साधन था वह हमारा साध्य बन गया है। ऐसी दशा में यथाशीघ्र अपना सुधार कर लेना ही कल्याणकारी माना जायेगा।

जिस प्रकार कोई चित्रकार अपनी रचना के चरमोत्कर्ष लक्ष्य तक तब ही पहुँच पाता है, जब वह अपने अभिलेखन में कला एवं सौन्दर्य का समुचित समन्वय कर लेता है। कला-विहीन सुन्दर रचना अथवा कलापूर्ण असुन्दर रचना, दोनों अपने में अपूर्ण एवं अवांछनीय होने से कलाकार को अपने चरमोत्कर्ष के लक्ष्य तक नहीं पहुँचा पातीं। उसी प्रकार भौतिकता एवं आध्यात्मिकता का समुचित समन्वय ही मनुष्य को उसके आत्मोत्कर्ष के लक्ष्य तक ले जा सकता है। यदि कोई भौतिक आवश्यकताओं की सर्वदा उपेक्षाकर आध्यात्मिक चिन्तन अथवा साधना में लगा रहे तो आवश्यकताओं की पीड़ा से उसका चित्त अस्थिर रहेगा और शरीर जबाव दे देगा, जिसका फल अनानुभूति के सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता। इस प्रकार की आध्यात्मिक साधना उसके लिये मृत्यु की तरह कष्टदायक बन जायेगी। इसी प्रकार यदि आध्यात्मिक साधना से विरत होकर केवल भौतिक भोगों की ही उपासना की जाती रहे तो भी मानवीय लक्ष्य दूर से दूरतर होता चला जायेगा। दोनों का समुचित समन्वय ही उद्देश्य-पूर्ति का कारण बन सकता है, जिसका अनुपात कम-से-कम पचीस और पचहत्तर का ही होना चाहिये। इससे कम अनुपात में लक्ष्य प्राप्ति के लिए अनेक जन्म-जन्मान्तरों तक प्रयत्न एवं प्रतीक्षा करनी होगी।

मनुष्य और उसकी महान शक्ति

परमाणु शक्ति के सम्बन्ध में आधुनिक वैज्ञानिकों का कथन है कि जब उसकी सम्पूर्ण जानकारी मनुष्य को हो जायेगी तो सारे ग्रह-नक्षत्रों की दूरी ऐसी हो जायगी जैसे पृथ्वी पर एक गाँव। किन्तु इसकी जानकारी का भी अधिष्ठाता मनुष्य है, अतः उसकी शक्ति का अनुमान लगाना भी असम्भव है। मनुष्य में वह सारी शक्तियाँ विद्यमान हैं जिनसे इस संसार का विनाश भी हो सकता है और निर्माण तो इतना अधिक हो सकता है कि उसका एक छोटा सा रूप सुरम्य धरती को ही देख सकते हैं।

मनुष्य विधाता की रचना का सर्वश्रेष्ठ चमत्कारिक प्राणी है। अव्यवस्थित धरती को सुव्यवस्थित रूप देने का श्रेय उसे ही प्राप्त है। ज्ञान-विज्ञान, भाषा, लिपि, स्वर आदि की जो विशेषताएँ उसे प्राप्त हैं, उनसे निस्सन्देह उसकी महत्ता ही प्रतिपादित होती है। मनुष्य इस संसार का समग्र सम्पन्न प्राणी है, महर्षि व्यास ने इस सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुये लिखा है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि-
नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्।।

"मैं बड़े भेद की बात तुम्हें बताता हूँ कि मनुष्य से बढ़कर इस संसार में और कुछ भी नहीं है। वह सर्वशक्ति सम्पन्न है। जहाँ चाहे उलट-फेर करदे, जहाँ चाहे युद्ध, मार-काट मचा दे। जी में आये तो शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित कर दे। कोई भी कार्य ऐसा नहीं जो मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर हो। धन, पद, यश आदि कोई वैभव ऐसा नहीं जिसे वह प्राप्त न कर सकता हो।

भगवान् राम और कृष्ण भी मनुष्य ही थे किन्तु उन्होंने अपनी शक्तियों का उत्कर्ष किया और नर से नारायण बनकर विश्व में पूजे जाने लगे। मनुष्य अपने पौरुष से- विद्या, बुद्धि और बल से- वैभव प्राप्त कर सकता है। देवत्व की उच्च कक्षा में प्रतिष्ठित हो सकता है, ब्रह्म भगवान् बन सकता है। उसकी शक्ति से परे इस संसार में कुछ भी तो नहीं है। शास्त्रकार का कथन है "यत्ब्रह्माण्डे तत्पिण्डे" अर्थात् जो कुछ भी इस संसार में दिखाई देता है वह सभी बीज रूप से मनुष्य के शरीर में- पिण्ड में विद्यमान है।

मनुष्य दीन, हीन और पददलित तभी तक है जब तक वह अपने आपको पहचानता नहीं। तुलसीदास जी जब तक निकृष्ट जीवन व्यतीत करते रहे तब तक वे शोक-सन्ताप में डूबे रहे, किसी ने उन्हें जाना तक नहीं, बेचारे मारे-मारे इधर से उधर घूमते रहे। किन्तु जैसे ही उनकी आन्तरिक शक्तियाँ प्रकाशित हुईं, तुलसीदास जी अमृत पुत्र हो गये, जन-जन की वाणी में समा गये, सन्त बन गये, महात्मा हो गये। वाल्मीकि, अंगुलिमाल आदि की कथायें सर्वविदत हैं। विल्वमङ्गल, सूरदास के नाम से प्रसिद्ध हुये, इसके मूल में मानवीय अन्तःकरण का विकास ही सन्निहित है। वह शक्तियाँ, वह सामर्थ्य प्रत्येक मनुष्य में हैं अन्तर केवल इतना है कि लौकिक कामनाओं से घिरा हुआ इनसान पारलौकिक सम्भावनाओं का विचार तक नहीं करता, इसी कारण वह छोटा है, तुच्छ है, निकृष्ट है।

अपने प्रभाव से मनुष्य चेतना विहीन प्राणियों को भी नवजीवन देने की शक्ति रखता है। देश, समाज और राष्ट्र तक बदल डाले हैं उसने। मनुष्य सामाजिक जीवन का निर्माता है, उससे राष्ट्र को बल मिलता है। मानवीय शक्ति की एक चिनगारी से युग परिवर्त्तित हुये हैं, हो रहे हैं और यह क्रम आगे भी युग-युगान्तरों तक चलता रहेगा। वह जिधर चलता है, दिशायें चलने लगती हैं, रुकता है तो सारा संसार निष्प्राण-सा हो जाता है। मनुष्य ही संसार की गति, जीवन और प्राण है। वह न होता तो सारा संसार ऊबड़-खाबड़, अस्त-व्यस्त और जड़वत् पड़ा होता। धरती पर यही प्राण बिखराता और विभिन्न प्रकार के खेल रचाया करता है।

वैज्ञानिक आविष्कारों और औद्योगिक संस्थाओं की ओर दृष्टि घुमाने से उसकी महत्ता की बात और भी पुष्ट होती है। लगता है चाहे जब अणु-आयुधों का प्रयोग करके वह सारी धरती को तहस-नहस कर डाले। यह भी सम्भव है कि वह दूसरी शक्ति का उपयोग रचनात्मक कार्यों में करने लगे तो स्वर्ग के सभी बहुमूल्य पदार्थ यहीं प्राप्त करने में कोई मुश्किल शेष न रहेगी। मनुष्य के अन्दर भगवान का तेज, सृष्टि का सत्व, सिद्धियों के स्रोत, देखकर उसे प्रभु का प्यारा कहने को मन करता है। लगता है इन्हीं विशेषताओं के कारण संसार के दूसरे प्राणी शारीरिक शक्तियों में प्रबल होते हुये भी उसे शीश झुकाते हैं।

इतना होते हुये भी मनुष्य की यह दलित और गलित अवस्था देखकर एकाएक उसकी शक्तियों पर विश्वास नहीं होता। इसका एक ही कारण है कि लोग सुख प्राप्ति के साधनों में भटक जाते हैं और अपनी शक्तियों से वंचित बने रहते हैं। सुख और शक्ति का मूल है, मनुष्य की आत्मा। जब तक वह आत्म-साक्षात्कार नहीं कर लेता तब तक उसकी शक्ति ऐसी ही है जैसे घर में अपार सोना गड़ा है, पर वह किस स्थान पर कितनी गहराई पर गड़ा है, इस ज्ञान के अभाव में उस सोने की कोई महत्ता नहीं। आत्मा ही सिद्धियों की जननी है। ब्रह्म तादात्म्य का कारण और माध्यम भी नहीं है। उसे पहचाने बिना मनुष्य शक्तिवान नहीं हो सकता। इसके लिये मनुष्य को साधना, स्वाध्याय, संयम एवं पारमार्थिक जीवन का अभ्यास करना पड़ता है तब उस शक्ति का अभ्युदय होना सम्भव हो सकता है।

आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये कुल, देश और काल का कोई बन्धन नहीं है। अपनी श्रद्धा, निष्ठा, विश्वास, लगन और तत्परता के बल पर हीन कुल उत्पन्न व्यक्ति भी आत्मोद्धार कर सकता है। अजामिल, गुह, रैदास और कबीर आदि सन्तों के जीवन से यह प्रमाणित होता है कि आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये वर्ण-व्यवस्था बाधक नहीं। जीवन शोधन के द्वारा नीच कुल में उत्पन्न व्यक्ति भी सवर्णों जैसी ही आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार सतयुग, द्वापर, कलियुग की सीमायें भी इस मार्ग में रुकावट नहीं डालती हैं। हमारे पूर्व पुरुष अनन्त शक्तियों के स्वामी थे, यह उत्तराधिकार किसी न किसी रूप में हमें भी प्राप्त हैं और आगे भी यह क्रम सदैव इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भाँति चलता रहेगा। संस्कृति शिक्षा और सदाचार के अनुरूप कुल और काल में-आत्म ज्ञानी पुरुषों का न्यूनाधिक्य तो हो सकता है किन्तु यह परिस्थितियाँ इनके प्रतिबन्धित नहीं हैं।

आत्म-परिष्कार निःसन्देह एक प्रकार का तप है। इससे कई व्यक्ति अपनी असमर्थता प्रकट करने लगते हैं। बचाव के लिये यह कहा करते हैं "हमारी तो अब अवस्था नहीं रही या हम अब बुड्ढे हो गये तो मन भी नहीं लगता। या हम तो अभी नवयुवक हैं, अभी हमारे हँसने-खेलने के दिन हैं। धर्म, कर्म की बातें तो वृद्धावस्था में चलती हैं आदि, आदि। पर इसलिये वस्तुस्थिति बदलती नहीं। आत्मा जन्म-मरण रहित है। उसे न बुढ़ापा आता है न मृत्यु होती है। प्रत्येक परिस्थिति में वह एक सा होता है। ऐसा न होता तो ध्रुव पाँच वर्ष की अवस्था में पूर्णता प्राप्त न करते। जगद्गुरु शंकराचार्य ने इकत्तीस वर्ष की अवस्था में ही वह कार्य पूरा कर दिखाया था जो कोई सौ वर्ष का भी व्यक्ति नहीं कर सकता था। सन्त ज्ञानेश्वर ने १५ वर्ष की अवस्था में गीता की सुप्रसिद्ध ज्ञानेश्वरी टीका लिखी थी। अमरीका का प्रख्यात आविष्कारक एडिसन १३५ वर्ष के बाद तक सृष्टि के महत्त्वपूर्ण रहस्य खोजने में लगे रहे और सफलता पाई। आत्मोन्नति के मार्ग में आयु का कम या ज्यादा होना बाधक नहीं है, आवश्यकता केवल अपने संस्कारों के जागरण की होती है।

उन्नतिशील होना पूर्णतया भाग्य पर भी निर्भर नहीं है। विचारपूर्वक देखने से यह पता चलता है कि परमात्मा से जो साधन मनुष्यों को मिले हैं वे प्रायः समान हैं हर किसी को दो हाथ, दो पाँव, नाक, आँख, मुख आदि एक जैसे मिले हैं। विचार, विद्या आदि के साधन भी प्रत्येक मनुष्य अपनी लगन के अनुसार प्राप्त कर सकता है। भाग्यवादी सिद्धान्त कायरों और कामी पुरुषों का है। पुरुषार्थ एक भाव है और उसका कर्त्ता पुरुष है अर्थात् मनुष्य अपने भाग्य का निर्माण अपने पौरुष से करता है। अपनी पूर्व असमृद्धि से किसी को अपनी क्षुद्रता स्वीकार नहीं कर लेनी चाहिये। बलवान् आत्मायें प्रतिकूल दिशा में भी उन्नति करती हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व का सच्चा परिष्कार तो कठिनाइयों में ही होता है।

बाह्य साधनों के अभाव का रोना भी अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है। आपके पास फाउण्टेन पेन नहीं है तो क्या इससे लिखने का काम रोक देना चाहिये? आप होल्डर से भी काम चला सकते हैं, कलम या पेंसिल ही इस्तेमाल कर लें तो क्या हर्ज है। मनुष्य साधनों का दास नहीं है वह साधन स्वयं बनाता है। धन स्वतः पैदा नहीं होता, किया जाता है। इसलिये निर्धनता पर आँसू बहाना हम अकर्मण्यता मानते हैं। उद्योगी पुरुष तो हजार हाथ कुँआ खोदकर भी पानी निकाल लेते हैं। आत्म-शोधन भी किसी साधन के अभाव में रुकता नहीं। यदि अपना मनोबल कमजोर न हो तो गई-गुजरी अवस्था में भी आत्म-कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

अपनी इच्छा-शक्ति दृढ़ हो तो स्थान, संगठन आदि के अत्यन्त छोटे अभाव भी आत्मोत्थान में बाधा पहुँचा नहीं सकते। संसार के अधिकांश महापुरुषों ने तो आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये अपनी सुख-सुविधाओं का त्याग भी कर दिया था। एक दृष्टि से भौतिक सम्पन्नता आध्यात्मिक विकास में बाधक मानी गई है क्योंकि इससे मनुष्य की चेष्टायें अन्तर्मुखी नहीं हो पाती, मनुष्य सांसारिक विषय-वासनाओं में ही फँसा रहता है। हमारे ऋषियों ने इसीलिये यज्ञीय जीवन की परम्परा को जन्म दिया है। वे स्वयं त्यागमय जीवन जीते थे ऐसा ही आदेश वे हमें भी दे गये हैं। उनके ऐसा करने का एक ही उद्देश्य था कि मनुष्य अपनी आवश्यकतायें बढ़ाकर आत्म-कल्याण के मार्ग से कहीं विचलित न हो जाय।

योग वासिष्ठ में कहा गया है कि मनुष्य अपनी आत्मा के दर्शन में अपनी ही शक्तियों को प्रयुक्त करें, कोई बाह्य शक्ति आपकी सहायता नहीं कर सकती-

यद्यदासद्यते किञ्चत्केनचित्क्वचिदेव हि।
स्वशक्तिसंप्रवृत्या यल्लभ्यते नान्यतः क्वचित्।।

अर्थात् मनुष्य यदि कुछ प्राप्त करता है तो अपनी ही शक्तियों के द्वारा बाहरी साधन सीमित सहायता मात्र दे सकते हैं। इसी प्रकार सन्त इमर्सन का कथन है "मनुष्य अपनी सहायता, आप ही कर सकता है।

जिन सद्गुणों के आधार पर मनुष्य उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है उनमें से प्रमुख है– आत्मविश्वास। अँग्रेजी के प्रमुख कवि टेनिसन ने लिखा है "जीवन शक्ति सम्पन्न हो सकता है यदि हममें आत्म-विश्वास, आत्म-ज्ञान और आत्म-संयम हो।" मनुष्य व्यर्थ ही लौकिक कामनाओं में डूबा रहता है। इससे उसका कोई भी प्रयोजन पूरा नहीं होता। मनुष्य का ध्येय इससे 'शरीर सुख तक ही सीमित हो जाता है। किन्तु जब वह यह विचार करने लगता है कि शरीर जड़ और चेतन शक्तियों का सम्मिश्रण है तो उसकी आध्यात्मिक आस्था जागृत होती है। इसी का नाम आत्म-विश्वास है। इसी से आत्म-क्षुद्रता का निवारण होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संकल्प कर लेने मात्र से ही सफलता नहीं मिल सकती। इसके लिये क्रियाशील होना पड़ता है और संयमित जीवन द्वारा शारीरिक शक्तियों को गतिशील रखना पड़ता है। सौन्दर्य लहरी में जगद्गुरु शंकराचार्य ने लिखा है—

शिवः शक्त्या युक्ती यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
न चेदेव देवो न खलु कुषलः स्पन्दितुमपि।।

अर्थात् संकल्प सिद्धि के लिये कर्म करना पड़ता है कर्म का आधार शक्ति है, तभी सामर्थ्य बनती है। शक्ति न हो तो क्रियाशीलता भी न रहेगी।

इस प्रकार मनुष्य जब धीरे-धीरे अपने दोष-दुर्गुणों को हटाकर श्रेष्ठ संस्कारों को धारण करने लगता है तो उसके जीवन में, दृष्टिकोण में, स्वभावतया परिवर्तन होने लगता है। भोग-विलास की लालसा मिट जाती है और आत्म-ज्ञान की इच्छा बलवान् हो जाती है। वैसे ही साधन भी मिलते जाते हैं और जीवन क्रम सरलतापूर्वक लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर होने लगता है। यह साधन बाह्य नहीं होते वरन् आन्तरिक विशेषताएँ ही होती हैं। सत्य, अहिंसा, प्रेम, त्याग, सेवा, आशा, उत्साह, धैर्य, स्वाध्याय, संयम, सदाचार आदि के द्वारा उसका परिष्कार होकर शुद्ध, निर्मल तथा पवित्र आत्मा के दर्शन होने लगते हैं।

यही वह स्थिति होती है जहाँ सम्पूर्ण शक्तियाँ आकर केन्द्रीभूत हो जाती हैं और 'अयं ब्रह्मास्मि, अयमात्मा' की शक्तिशाली भूमिका पर मनुष्य पदार्पण कर जाता है। मनुष्य जिस उद्देश्य को लेकर इस धरती में आता है उसकी पूर्ति हो जाती है और वह अनन्त सिद्धियों का स्वामी बनकर सुखोपभोग करता है। जिन्हें सुख की कामना हो उन सबके लिये भी यही रास्ता है कि अपना पौरुष जागृत करें, शक्तिशाली बनें। तभी सच्चा सुख मिल सकता है।

जीवन का दूसरा पहलू भी भूलें नहीं

विशाल सागर के बाह्य धरातल पर बड़ी-बड़ी लहरें उठती हैं, परस्पर टकराती हैं। तूफान पैदा होते हैं, भँवरें उठती हैं। यत्र-तत्र बड़े-बड़े जहाज एवं नावों का आवागमन होता ही रहता है। सूर्य की गर्मी से समुद्र का धरातल तपता है, जिससे भाप बनती है और वह मेघों का रूप धारण करके यत्र-तत्र बरसती है। इस तरह सागर के धरातल पर अनेकों क्रियायें, हलचलें होती रहती हैं। यहाँ सृजन, विनाश, उत्थान, पतन की अनेकों विचित्रताएँ देखने को मिलती हैं। किन्तु उसी सागर के गहन अन्तराल में स्थिति सर्वथा भिन्न होती है। न वहाँ कोई लहर होती है न कोई तूफान। न किसी तरह का संघर्षपूर्ण कोलाहल, उत्पात, शोरगुल, भयंकरता वहाँ नाममात्र को भी नहीं होती। शान्ती, नीरवता, गम्भीरता, स्तब्धता का साम्राज्य होता है, वहाँ गोता लगाने वाले जानते हैं उस रहस्य को। अपने बाह्य पटल पर होने वाले क्रिया व्यापार से सर्वथा मुक्त होता है, सागर का अन्तराल।

मानव जीवन के भी दो पहलू हैं। एक बाह्य दूसरा आन्तरिक, एक प्रकट स्थूल, दूसरा सूक्ष्म। एक परिवर्तनशील, क्षणभंगुर, नाशवान तो दूसरा अजर अमर अविनाशी। लोक और लौकिकता की विभिन्न, प्रवृत्तियों की प्रेरणा से जीवन का बाह्य स्वरूप बनता है। अनेक दिशाओं, अनेक कार्यों में व्यस्त मनुष्य तरह-तरह के संघर्ष उतार, चढ़ाव, सृजन, विनाश, उत्थान, पतन की पगडण्डी पर नित्य-निरन्तर ही चलता रहता है। वह धनोपार्जन करता है, जायदाद मकान आदि बनाता है, उच्च पद-प्रतिष्ठा समृद्धि-प्रसिद्धि के लिये अनेकों व्यापार, व्यवसाय करता है। हानि पहुँचाने वाले, पीड़ा देने वालों से वैर-विरोध करता है, तो लाभ पहुँचाने वालों से प्रेम। बाह्य उत्तेजनाओं से प्रेरित होकर मनुष्य सदैव अच्छे-बुरे आचरण कार्य करता ही रहता है। कभी वह खुशियाँ मानता है तो कभी दुःखी होता है। कभी हँसता है तो कभी शोक में डूबकर रोता है। इस तरह यह क्रिया व्यापार जीवन के बाह्य पटल पर नित्य निरन्तर ही देखा जाता है।

मानव जीवन का दूसरा पहलू है आन्तरिक, जो सूक्ष्म, स्थायी समुद्र के अन्तराल की तरह गम्भीर शान्त एकरस होता है। वहाँ न तो क्रोध की गर्जना सुनाई पड़ती है, न दुःख का क्रन्दन। वहाँ संघर्ष, छीना-झपटी राग-द्वेष, द्वन्द, अपने-पराये का भेदभाव नहीं। मनुष्य के अन्तराल से आत्मदेव की परम ज्योति निश्चल, निष्काम भाव से एकरस अखण्डित रूप में नित्य-निरन्तर ही जलती रहती है। इसी आत्मज्योति को इङ्गित करते हुए उपनिषद्कार ने कहा है-

"सत्य ज्ञान मनन्तं ब्रह्म निहितं गुहाया।"

मनुष्य के अन्तराल में सत्य, ज्ञानस्वरूप, अनन्त, ज्योतिर्मय ब्रह्म परम तत्व का निवास है। जो ज्योतिषां 'यद्ज्यौति' अति शुभ्र ज्योतियों की भी ज्योति है। कदाचित् हम एक क्षण भी अपने अन्तर में घुसकर इस परम ज्योति के दर्शन कर लें तो कृत-कृत्य हो जायँ। परम शान्ति, स्तब्धता, नीरवता, गम्भीरता, एकरसता की किरणों में सराबोर होकर जीवन के समस्त क्लेश, दुःख,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संघर्ष, अशान्ति दुःखों आदि से मुक्ति पा लें। ठीक उसी तरह जैसे सागर के अन्तर में डुबकी लगाने पर एक नई दुनिया में प्रवेश मिलता है जहाँ पर्याप्त शान्ति, नीरवता विराजमान होती है। बाह्य जगत् का कोलाहल नहीं होता वहाँ पर।

हमारे जीवन की समस्त विकृतियों दुःख, द्वन्द्वों, पाप, ताप, रोग, शोक, चिन्ता, भय, क्लेश, अशान्ति आदि का मुख्य कारण यह है कि हम संसार और इसके पदार्थों तथा जीवन के बाह्य पटल को ही महत्व देते हैं उसे ही एकमात्र सत्य मानते हैं और लौकिकता की विचित्रताओं, कृत्रिमताओं यहाँ की घटनाओं को जीवन मान बैठते हैं। इन्हें ही जीवन का लक्ष्य बनाकर विभिन्न उत्तेजनाओं से अभिभूत हो अपनी जीवनी शक्ति को नष्ट करके पद्-पद् पर मृत्यु के नजदीक आते जाते हैं। नाम, पद प्रतिष्ठा को सजाने में, संसार के आमन्त्रण-निमन्त्रण खेल-तमाशों में दिन-रात हम लोग लगे रहते हैं और अपनी जीवनी-शक्ति निःशेष करते जा रहे हैं जो हमारे लिये अशान्ति, क्लेश, द्वन्द्वों का कारण बनती है।

मनुष्य को यह सुविधा प्राप्त है कि वह बाह्य संसार की तरह ही अपने अन्तः प्रदेश की भी यात्रा कर सकता है। किन्तु इस सुविधा का गलत लाभ उठाकर अन्तर के निकेतन में बाह्य जगत, जो अस्थायी, परिवर्तनशील क्षणभंगुर है, उसे संग्रह करने में नहीं चूकता। प्रयोजन यह कि स्वाभाविक नियम, नियतिचक्र के अनुसार बाह्य जगत् का आस्वादन करने के बाद भी वह उसे सँजोये रखने के लिये अपनी कल्पना, विचार-चिन्तन के द्वारा अन्तर में संग्रह कर लेता है। किन्तु जिस तरह भोजन के ढेर में से अपनी रुचि और भूख का ध्यान रखकर पदार्थों को उदर में संग्रहित करने की अमर्यादित चेष्टा मनुष्य के लिए भयंकर पीड़ा, स्वास्थ्य हानि, रुग्णता आदि का कारण बनती है उसी तरह बाह्य जगत् को अन्तर में संग्रह करने का प्रयत्न अनेकों पाप-तापों का कारण बनता है।

मनुष्य का अन्तर आत्मदेव का पुण्य निकेतन है। पावन मन्दिर है। उसे बाहर के पदार्थ, प्रयोजन, वस्तुओं को संग्रहीत करने का आगार न बनाया जाय। यह देव-स्थान को अपवित्र करने का भयंकर पाप न किया जाय। बाहर की वस्तु बाहर ही रहे उसे अन्तर में ले जाकर स्थायी निकेतन में जमा न किया जाय। अन्यथा मनुष्य की सुख, शान्ति का आनन्द स्रोत का उद्गम हीं अवरुद्ध हो जायगा। फिर बाह्य जगत् में सब तरह की सम्पन्नता समृद्धि सामग्री पाकर भी वह असन्तुष्ट, अशांत दुःखी, दीन-हीन बना ही रहेगा।

जीवन की एक अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण साधना है अपने अन्तर का ज्ञान होना। आन्तरिक और बाह्य जीवन का विभाग अलग बनाये रखना। दोनों को एक न होने देना। इसका इतना अभ्यास कर लेना आवश्यक है कि हम जब चाहें तब संसार के बाह्य कोलाहल आवागमन, संघर्ष, हलचल के बीच भी अपने अन्तराल में डुबकी लगा सकें। अन्तर के किले में बैठकर पूर्ण सुरक्षा शान्ति का अनुभव कर सकें। जिस तरह नारियल का फल अपनी बाह्य सतह पर समस्त संसार के वातावरण हलचलों से सम्पर्क बनाये रखता है किन्तु अन्ताराकाश में वह बाह्य जगत् से सर्वथा मुक्त, शान्त, गम्भीर, स्थिर, नित्यावकाश धारण किये रहता है।

जन्म प्राप्त करने के अनन्तर संसार के नाम, रूप, रंग, सजधज, वस्तु पदार्थों का संसर्ग, यहाँ के कार्य कलापों, हलचलों का सम्पर्क, हमारे जीवन के बाह्य पटल से रहे। संसार के सुख-दुःख हानि-लाभ, जरा-मरण यश-अपयश सब क्षणभंगुर हैं। इन्हें महत्त्व न देकर अपने अन्तर में आत्मदेव की अजर, अमर, अविनाशी ज्योति का दर्शन सदैव करते रहें। इस तरह आत्मस्थ होने पर कोई समस्या कोई उलझन, कोई रोग, शोक, शेष नहीं रहेगा। क्योंकि नित्य के समक्ष अनित्य का कोई महत्त्व ही नहीं रहता। अभ्यास द्वारा इस सत्य को जीवन का एक अंग बना लेने पर मनुष्य संसार में रहते हुए भी जीवन मुक्त ही हो जाता है।

आत्मा की पुकार अनसुनी न करें

आज सर्वत्र ज्ञान-विज्ञान की बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें होती हैं। अटलांटिक से लेकर एशिया, अफ्रीका तथा यूरोप आदि का सम्पूर्ण भूगोल, पुस्तकालयों में भरा पड़ा है। पाषाण युग से लेकर आज तक की मानव जाति का इतिहास मनुष्य रटे बैठा है। हजारों, लाखों "कार्बनिक" एवं "अकार्बनिक" रसायन तत्वों से प्रयोगशालाओं की शीशियाँ भरी पड़ी हैं। कल-कारखानों के बोझ से धरती आसमान सभी परेशान से नजर आते हैं। जिधर आँख उठाकर देखो साहित्य, कला, शल्य-चिकित्सा आदि के ढेरों ग्रन्थ अगणित जानकार और असंख्य प्रयोगशालायें आज खुली हैं इन्हें देखते हुए मनुष्य की बौद्धिक क्षमता पर अपार आश्चर्य होता है। समझ में नहीं आता कि आखिर आदमी के दिमाग में कौन-सा जादू है जो अनेकों आश्चर्यजनक उपकरण बनाता चला जाता है।

हजारों मील दूर तक उड़ जाने वाले पक्षियों की क्या मजाल कि एक छोटे-से हवाई जहाज को दौड़कर परास्त कर दें। जलयान निरन्तर ही सागर की छाती पर कुहराम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मचाते रहते हैं। इन्हें देखकर अन्य जलचर जीवों की क्षमता तुच्छ सी जान पड़ने लगी है। अपने घर बैठे-बैठे हजारों मील की खबरें सुन लेते हैं जैसे आपस में बैठे बातचीत कर रहे हों। आज जैसी प्रकाशन आदि की सुविधाएँ यदि प्राचीन युग में भी सम्भव रही होतीं तो शायद उसी समय विश्व साहित्य का निर्माण हो गया होता। खाने-पीने से लेकर चलने-फिरने तक, बोलने बात करने से लेकर गाने-बजाने तक के जो भी आविष्कार आज मनुष्य ने कर लिये हैं उन्हें देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है कि आखिर मनुष्य में इतनी बड़ी क्षमता का प्रादुर्भाव कहाँ से और कैसे हुआ ?

किन्तु जब एक क्षण इस मशीनी दुनिया से ध्यान हटाकर व्यावहारिक जगत् की ओर देखते हैं, साधनों के साथ सुख और शान्ति की तुलना करने बैठते हैं तो भारी निराशा होती है। जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्य ने इतनी सारी सुविधाएँ जुटाईं वह उद्देश्य अभी तक अधूरा पड़ा है। अभी तक इनसान अपनी मंजिल की ओर सही कदम नहीं बढ़ा पाया है। आज एक ओर सभ्यता के विकास का प्रतिपादन किया जाता है किन्तु दूसरी ओर मनुजता आहें भर रही है। नाना आभूषणों वस्त्रालंकारों से आदमी अपने शरीर को सजाता है पर दूसरी ओर वासना की महामारी फैली है। एक ओर आमोद-प्रमोद चलता है दूसरी ओर शोषण-अपहरण की चक्की में आदमी पिसा जा रहा है। शिक्षा सभ्यता के विकास के लिए हजारों स्कूल खोले जा रहे हैं किन्तु दूसरी ओर वे ही सुरक्षित उद्धतता एवं अनाचार का सृजन कर रहे हैं। इससे अलग एक और संसार है। सत्य संसार या आध्यात्मिक आस्था की दुनिया। मनुष्य सारा जीवन अपने अहंकार के पोषण में ही गँवाता रहता है पर जब मृत्यु उसके सामने उपस्थित होती है तो उसे इस आत्मिक संसार का पता चलता है। तब ज्ञान-विज्ञान की लम्बी-चौड़ी चौकड़ी भूल जाता है। इस समय पछतावा ही हाथ लगता है। जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह जीवन मिला था वह तो तुच्छ बातों में गँवा दिया गया। सारा का सारा जीवन तुच्छ कामनाओं और सांसारिक गोरखधन्धों में बिता दिया तो आखिरी समय क्या बन सकता है।

मनुष्य भारी दिल लिये हुए इस संसार से विदा हो जाता है यहाँ का सारा वैभव, व्यापार, वस्त्र, आभूषण, स्त्री, पुत्र सब यहीं रह जाता है। साथ में मात्र पश्चाताप जाता है। महान् विजेता सिकन्दर ने अपनी मृत्यु के समय प्रमुख सचिव को बुलाकर एक ही आदेश दिया था "मृत्यु के बाद मेरे दोनों हाथ अर्थी से बाहर निकाल कर रखना ताकि दर्शक यह जान लें कि सिकन्दर अपने साथ कुछ नहीं ले गया।" मृत्यु अपने लम्बे हाथ राजा रंक सभी पर फैलाती है। उससे कोई बच नहीं पाता। पर कितने आश्चर्य की बात है कि उससे निरन्तर उपेक्षा ही बरती जाती है। लोग आने वाली मृत्यु का कभी विचार तक नहीं करते।

मनुष्य जितना समय अपनी भौतिक उन्नतियों के लिए लगाता है उसका आधा भी यदि अपनी आत्मिक प्रगति के लिये लगाता तो अपने जीवन लक्ष्य को जरूर समझ लेता। आध्यात्मिक जीवन के शुभ परिणाम भी उसे मिलते, आत्मा-परमात्मा की सम्पदाओं से वह वञ्चित न रहता। पीछे भी ऐसा हुआ है और आगे भी होना सम्भव है किन्तु यह सब आत्मा की उपेक्षा करते रहने से नहीं होगा। इसके लिये भी अपनी बौद्धिक क्षमता को लगाना पड़ेगा, अपना पुरुषार्थ अर्पित करना पड़ेगा। आध्यात्मिक प्रगति के लिये भी उतनी ही लगन और तत्परता की आवश्यकता है जितनी से आज की आश्चर्य जनक भौतिक सफलताएँ मिल सकी हैं। अध्यात्म कोई जादू नहीं जो छड़ी घुमाते ही सारे सत्परिणाम उपस्थित कर देता है। इसके लिये भी विधिवत् साधना करनी पड़ती है, सुखी जीवन का आधार प्रेम, न्याय, अपरिग्रह, सच्चरित्रता, सौहार्द्र, सौजन्य और विवेक, इन्हें धारण करने से ही व्यक्ति दूसरी दुनिया अर्थात् आध्यात्मिक जगत् में देर तक टिक सकता है। उनका अनुशीलन करने से ही उस महान् उद्देश्य की पूर्ति किया जाना सम्भव है जिसके लिये मनुष्य का जन्म हुआ है। **विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि'** की भावना बनायें उसी से ही यह सम्भव है कि आध्यात्मिक दिशा में कुछ प्रगति की जा सके।

मनुष्य ने जितनी प्रगति भौतिक जगत् में की है उससे भी अधिक की सम्भावना अध्यात्म में है। उसकी स्वचेतना में वह शक्ति भरी पड़ी है जिसका उत्कर्ष-जागरण किया जा सके तो इस संसार के सारे वैभव-विलास तुच्छ से लगेंगे। शास्त्रकार ने लिखा है-

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत्।
सूक्षत् सूक्ष्मतरम् सत्वमेव त्वमेवतत्।।

अर्थात् "सबकी आत्मा परब्रह्म परमात्मा जो विश्व से भी बड़ा है तथा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है वही नित्य तत्व तुम हो और तुम भी वही हो।" यहाँ आत्मा, परमात्मा की एकरूपता देवज्ञ प्राप्त पुरुषों ने स्पष्ट बता दिया परमात्मा की संज्ञा के साथ जिन शक्तियों का बोध होता है वे सब बीज रूप से आत्मा में विद्यमान हैं। इतनी महत्त्वपूर्ण सत्ता का अधिकारी पुरुष इतना महान् अवसर प्राप्त करके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी उसकी उपेक्षा करता है तो उसे उसका दुर्भाग्य ही माना जायेगा।

दुःख और निराशा की परिस्थितियों का निर्माण अपना भौतिकवादी दृष्टिकोण बनाने में होता है। अपने दृष्टिकोण में यदि परिवर्तन कर सके होते तो आत्मिक जगत् का भी ज्ञान अवश्य मिला होता। अपने गुण कर्म स्वभाव में सत्य का अनुशीलन किया जाय तो आध्यात्मिक जगत् के सत्परिणामों से भी लाभान्वित हुआ जा सकता है। आत्मा की उपेक्षा करते रहने से भौतिक सम्पदायें कभी भी सुख नहीं दे सकतीं। शाश्वत शान्ति की प्राप्ति अथवा जीवन लक्ष्य की सिद्धि का एक ही मार्ग है- अध्यात्मवाद। इस पर चल पाना, देर तक टिके रहना तभी सम्भव है जब आत्मा के हित की उपेक्षा न करें। उसके महत्त्व को समझें और प्राप्ति के लिये आज से, अभी से लग जायें।

इस संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं दिखाई देती जो देर तक टिकती जान पड़ती हो। जो वस्तु आज है वह कल दिखाई भी नहीं देती। आज के पहाड़ इतिहास के पन्नों में किसी समय के सागर अंकित हैं। जो पेड़ आज खड़ा दिखाई देता है कल उसकी जड़ें तक दिखाई नहीं देतीं। समुद्र की लहरों की भाँति यह जगत् बनता बिगड़ता रहता है। यदि कुछ अमृत है- अविनाशी है तो वह आत्मा है। मनुष्य जन्म का उद्देश्य भी यही है कि वह आत्मा के माध्यम से चिन्मय परमात्मा की प्राप्ति करे। इसी को जीवन लक्ष्य आदि अनेकों नामों से पुकारा जाता है। इसी की प्राप्ति के लिये ऋषियों ने जोर दिया है- गीताकार ने भी इसी की पुष्टि करते हुये लिखा है-

य लब्ध्वा च परं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थिति न दुःखेन गुरुणपि विचाल्यते।।

अर्थात् "योगी परमेश्वर की प्राप्ति रूप लाभ से अधिक लाभ कुछ भी नहीं मानता। आत्मा को प्राप्त कर लेने से दुःख चलायमान नहीं करते।" इस परम तत्व को धारण करने से जाना जाता है कहने मात्र से नहीं। बाह्य ज्ञान बौद्धिक क्षमता को बढ़ाकर तद्जन्य सुख दिला सकता है। बाह्य ज्ञान मात्र से श्रेय पथ पर नहीं चला जा सकता। अतः विश्व-कल्याण आत्म-ज्ञान का सम्पादन अत्यावश्यक है। इसी से मानव जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है अन्य कोई चारा नहीं।

आत्मा की पुकार सुनें और उसे सार्थक करें

पता नहीं आपने कभी ध्यान दिया या नहीं- अन्तर में जब तब एक आवाज उठा करती है कि- "अरे तू यह क्या कर रहा है? क्या इसीलिए तुझे यह सर्व सम्पन्न शरीर मिला है? उठ अपना स्वरूप, अपनी शक्ति पहचान और उन अच्छे कामों को पूरा कर जिनकी तुझसे अपेक्षा की जा रही है।"

यह पुकार करने वाला और कोई नहीं होता। परमात्मा ही होता है जो आत्मा रूप में सबके अन्दर विद्यमान रहता है। अब जो इस आवाज का आदर करते और जाग उठते हैं वे संसार में श्रेयष्कर कार्य कर दिखलाते हैं उनका ईश्वर उनकी पूरी सहायता करता है।

यह आवाज उस समय ही अधिकतर उठा करती है जब मनुष्य या तो स्वार्थ एवं संकीर्णता की परिसीमा पार करने लगता है अथवा वह काम करता है जो उसे नहीं करना चाहिये। अपनी क्षमताओं की तुलना में छोटा काम करते हुए जब कोई शक्तियों का अपमान करता है। तब भी यह आन्तरिक आवाज टोका करती है।

इसका एकमात्र आशय यही होता है कि ऐ मेरे अंश- मनुष्य, तू ऐसा काम न कर जिससे कि तुझे लज्जा अथवा आत्म-ग्लानि हो, और नहीं वे छोटे-मोटे काम कर, क्योंकि तू अधिक ऊँचे काम करने के लिए नियुक्त किया गया है। ये निम्न अथवा हेय कार्य तेरी क्षमता के अनुरूप नहीं हैं।

जो आस्तिक एवं आत्म-विश्वासी इस परमात्मा की पुकार को सुनकर प्रेरित होते हैं, अपनी निहित शक्तियों का आह्वान करते और कटिबद्ध होकर दृढ़तापूर्वक कर्तव्यों में तत्पर हो जाते हैं, वे निश्चय यही अपनी वर्तमान स्थिति से बहुत आगे बढ़कर चाँद सितारों की तरह चमक उठते हैं, फिर उनका अभियान आर्थिक हो अथवा आध्यात्मिक। इस परमात्मा की पुकार का तकाजा है कि जो जहाँ पर है वहाँ पर न रहे उससे आगे बढ़े और निरन्तर आगे बढ़ता ही जाये। मानवीय विकास एवं उन्नति की न तो कोई सीमा है और न विराम।

संसार के जितने भी महापुरुष आज जनसाधारण के प्रेरणा केन्द्र एवं प्रकाश स्तम्भ बने हुये हैं उन्होंने इस आन्तरिक पुकार की कभी उपेक्षा नहीं की। उन्होंने आवाज सुनी, जागे और तत्काल आयोजन में लग गये, आगे की ओर चल पड़े। ऐसे जाग्रतिवान महान् पुरुषों में से अमेरिका के भूतपूर्व प्रेसीडेन्ट जार्ज वाशिंगटन भी एक थे।

जार्ज वाशिंगटन अमेरिका के एक साधारण किसान के पुत्र थे। उनके पिता बहुत ही साधारण स्थिति के व्यक्ति थे। बेटे को हल, फाल, जमीन तथा कुदाल आदि देने के अतिरिक्त उच्च शिक्षा जैसी कोई चीज दे सकने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कल्पना भी नहीं कर सकते थे। निदान वयस्क होने पर उन्होंने जार्ज वाशिंगटन को ये चीजें सौंप दीं।

वाशिंगटन भी तो प्रारम्भ से लेकर अब तक उसी वातावरण में पला था। उसकी कल्पना भी उन चीजों, उन कार्यों और उस वातावरण से आगे कैसे जा सकतीं? खुशी-खुशी उसने हल लिया और पिता की तरह सामान्य रूप से खेती-बारी में लग गया।

वाशिंगटन किसान बन गया। किन्तु उसकी आत्मा उस कार्य में तादात्म्य अनुभव नहीं कर रही थी। इसलिए नहीं कि खेती कोई निकृष्ट कार्य था, बल्कि इस आभास के कारण कि वह उससे भी ऊँचा कोई काम कर सकता है जिसमें राष्ट्र, समाज अथवा संसार का अधिक हित संपादित हो सके।

उसका आभास प्रकाश बना और वह प्रकाश एक दिन जब वह हल चला रहा था आवाज बनकर उसके अन्तराल में गूँज उठा-''वाशिंगटन क्या कर रहा है। यह खेती का काम तो कोई दूसरा भी कर लेगा। तू जिस उद्देश्य के लिए आया है उसे याद कर। देख देश की वेदी तुझे अपने उद्धार के लिए आह्वान कर रही है। हल रुक गया और वाशिंगटन अपने उद्देश्य पथ पर अग्रसर हो उठा। महापुरुषत्व और मानवीय महिमा इसी संदेह रहित आत्म विश्वास, आस्था, आकस्मिक एवं साहस के सुन्दर शिवालय में निवास करती है।

वाशिंगटन ने आवाज सुनी, जागा और अपने से कह उठा- अवश्य ही वह बड़ा काम करने के लिए इस संसार में आया हूँ। मैं उसे करूँगा और वह बड़ा काम है देश को विदेशियों की दासता से मुक्त कराना। संसार का कोई अवरोध जीवन की कोई भी कठिनाई, पथ का कोई संकट और साधनों का कोई भी अभाव मुझे अभीष्ट लक्ष्य से विचलित नहीं कर सकता। उसका संकल्प बलिदान बनकर उसके रोम-रोम में तद्रूप हो गया।

प्रयत्न अध्ययन एवं विचार से प्रारम्भ हुआ और तब तक चलता रहा जब तक पूर्ण एवं परिपक्व होकर क्रियात्मक प्रेरणा में परिणत नहीं हो गया।

अपने इस विकास एवं निर्माण में वाशिंगटन को कितने प्रकार की कठिनाइयों से जूझना पड़ा होगा, इसको बतलाया नहीं जा सकता। केवल इस बात से एक धुँधला सा आभास ही पाया जा सकता है कि एक दीन-हीन किसान के अनपढ़ पुत्र की स्थिति से राष्ट्रोद्धार की महानता के दुरूह पथ को पार करना, अपने अध्यवसाय के बल पर संस्कारों एवं कुप्रवृत्तियों को जीत कर जीवन में ही पुनर्जीवन पा लेने से कम कठिन, साथ ही कम श्रेयष्कर नहीं।

किन्तु जिन्हें कुछ करना ही है उनके लिए कष्ट, संकट, श्रम, श्रांति अथवा विश्रांति का क्या अर्थ ? वे यदि कुछ जानते हैं तो काम-काम और निःस्वार्थ काम। वाशिंगटन ने समागत प्रतिकूलताओं का भी सहर्ष स्वागत करते वही किया और एक दिन आया जब उन्होंने राष्ट्र के दासता पाश काट फेंके और राष्ट्र ने उसकी सेवाओं के मूल्यांकन के रूप में, उसके पास जो राष्ट्रपति का सर्वोच्च सम्मान था वह दिया और आज भी सैकड़ों साल बीत जाने पर उनके नाम, उनकी प्रतिभाओं और उनके स्मारकों को वही सम्मान दिया जाता है।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन का एक लक्ष्य होता है। वह यह कि वह जो कुछ है, वही नहीं रहना है, उसे जितना भी हो सके आगे बढ़ना और चढ़ना है। अपनी वर्तमान परिधि से निकलकर अधिक विस्तृत सीमाओं में प्रवेश करना है। एक कक्षा के बाद दूसरी कक्षा पाना ही है। एक स्तर से उठकर दूसरा स्तर पकड़ना ही है और अन्त में उसे यह संतोष लाभ करना ही है कि उसने जीवन को कीड़े-मकोड़ों की तरह एक गड्ढे में पड़े-पड़े नष्ट नहीं किया है। उसने उन्नति एवं विकास किया है। आगे बढ़कर चेतन होने का प्रमाण दिया है और अपने इस विश्वास को प्रकट कर दिया है कि यह सुर दुर्लभ मानव जीवन तृष्णा एवं वासनाओं की वेदी पर वध करने के लिए नहीं बल्कि किसी सदुद्देश्य, उच्च आदर्श की पवित्र वेदिका पर फूल की तरह उत्सर्ग कर देने के लिए है।

जिसे अपनी निकृष्ट नैतिक स्थिति, जीवन का निम्न स्तर काँटे की तरह नहीं चुभती, जिसकी हीनावस्था उसे तिरस्कृत नहीं करती, जो इस लांछन एवं अपमान को यों ही सहन कर लेता है उसे यदि मृत मान लिया जाय तो कोई दोष नहीं। जिसमें जरा भी जीवन है, थोड़ा भी मनुष्यत्व, है वह जीवन के इस अपमान, इस लांछन को सहन नहीं कर सकता। उसके हृदय में वेदना होगी, आत्म-ग्लानि होगी और परिस्थितियों को धिक्कार कर पुरुषार्थ के लिये ललकार कर उठ खड़ा होगा और अडिग संकल्प के साथ सब कुछ बदल कर रख देगा। संसार में ऐसे भी महापुरुष हुये हैं जिन्होंने असम्भव माने जाने वाले परिवर्तनों को घटित करके दिखा दिया और उनमें से एक महाकवि कालिदास भी थे।

लोक प्रसिद्ध है कि कालिदास एक वज्र मूर्ख लकड़हारे थे। इतने मूर्ख कि जिस डाल पर बैठते थे उसी को काटते हुये कई बार पथिकों द्वारा उतारे गए, इतने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मूर्ख और इतने अज्ञानी कि 'भेड़' कहे और 'में' कहकर चिढ़ाये जाते। न माँ न बाप न कोई भाई बन्धु। यों ही विनोददायक होने से रोटी-लँगोटी मिल जाती थी। अब ऐसे प्रचण्ड मूर्ख विषय में क्या कभी यह कल्पना को ही जन्म दिया वरन् उसे अतिरूप में चरितार्थ करके दिखला दिया। लगन एवं पुरुषार्थ की यही महिमा है।

तत्कालीन विदुषी राजकुमारी विद्योत्तमा से शास्त्रार्थ एवं पाण्डित्य में पराजित होकर, चिढ़े हुये पण्डित लोग दैवात् विद्योत्तमा का विवाह छल से कालिदास से करा देने में सफल हो गये।

कालिदास और विद्योत्तमा का परिचय हुआ प्रथम क्षण में ही उस विदुषी ने मूर्ख कालिदास को पहचान लिया। उसने 'हाय' करके कपाल पर हाथ मारा और रोते हुये यह कहकर कालिदास को अपने कक्ष से बाहर धकेल दिया कि- अपने महान् पति की आकांक्षा रखने वाली मैं तुझ महामूर्ख को पति स्वीकार कर विद्या को अपमानित और अविद्या को आहत नहीं कर सकती। चला जा यहाँ से "मेरे साथ छल किया गया है।"

कालिदास को धक्का मिला और उसकी आत्मा में एक झटका लगा। आत्म-विभोर कालिदास चौंक कर सहसा जाग उठे। उनकी आत्मा में अचेत पड़े मनुष्य की मूर्च्छा टूट गई। उनका अपमान हुआ इसकी पीड़ा तो उनके प्राणों तक में कसक ही उठी किन्तु उससे भी अधिक वेदना विद्योत्तमा के उन आँसुओं को देख कर हुई जिनके पीछे एक उज्जवल एवं उच्च दाम्पत्य जीवन की आकांक्षा तड़प रही थी।

जागरण हो चुका था। कालिदास सोच सके-सम्भव है यह भारतीय ललना दुबारा विवाह न करे और यों ही इतने महान् एवं मूल्यवान जीवन को शोक, सन्ताप एवं पश्चात्ताप में जला कर नष्ट कर डाले। समाज की इतनी बड़ी क्षति केवल इसलिए हो सकती है कि मैं अशिक्षित एवं असंस्कृत हूँ। कितना निसर्ग सुख हो यदि मैं अपने को इसके योग्य बना सकूँ। विचार आते ही अन्तराल से आवाज आई 'क्यों नहीं पुरुषार्थ एवं संकल्प बल से क्या नहीं हो सकता ?' कालिदास चले गए और विद्योत्तमा आँखों में आँसू लिए बैठी रही।

और फिर चार-छ, दस-बारह, अनेकानेक वर्षों तक कालिदास का सम्बन्ध संसार की हर बात से टूट कर जुड़ गया। अध्ययन में दिन और रात, संध्या और प्रातः कब आए और कब गए कुछ पता नहीं। इन दशाब्दियों तक यदि कालिदास को कुछ ज्ञात था तो केवल अपनी एकाग्रता और अध्ययन।

कालिदास ने अध्यावसाय को तपस्या की सीमा में पहुँचा कर जो कुछ पाया वह लेकर चल दिये। विद्योत्तमा अपने कक्ष में वही वेदना लिए बैठी थी कि सहसा उसने दरवाजे पर थाप के साथ शुद्ध एवं परिमार्जित संस्कृत में सुना-"प्रियतमे! द्वारमकपाटं देहि।" वह उठी द्वार खोला-देखा- कौन! मैं महामूर्ख कालिदास! कालिदास मुस्करा उठे। विद्योत्तमा हर्ष विह्वल हो उठी। अब वह मूर्ख कालिदास की पत्नी नहीं महाकवि कालिदास की प्रेरणादायिनी प्राणेश्वरी थी। दोनों के उस पुनर्मिलन ने कालिदास की साधना और विद्योत्तमा की वेदना सफल एवं सार्थक बना दी।

यह है संकल्पपूर्ण पुरुषार्थ एवं लगन का चमत्कार। जब दीन से दीन और मूर्ख से मूर्ख होने पर भी संसार में लोगों ने सर्वोच्च स्थितियों पर पदार्पण कर पुरुषार्थ की महिमा को प्रकट कर दिया। तब कोई कारण नहीं कि हम आप कोई भी अपनी वर्तमान स्थिति से आगे बढ़कर श्रेय प्राप्त नहीं कर सकते।

सच्चे हृदय से आत्मा का उद्बोधन करें

आत्मा के उद्धार के लिये शास्त्रों और उपनिषदों में काफी साधन और ज्ञान पड़ा हुआ है। किन्तु साहित्य का स्वाध्याय कर लेना उसका ज्ञान बढ़ाकर उपदेश कर लेने से किसी को आत्मक्षात्कार नहीं हो जाता। गीताकार का स्पष्ट निर्देश है-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
तमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
रस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।

अर्थात्-यह आत्मा बहुत उपदेश कर लेने से नहीं मिल जाता। बहुत ज्ञान और शास्त्रों के सुन लेने से भी वह प्राप्त नहीं होता। वह आत्मा को वरण करने से ही जाना जा सकता है।

आत्मा सत्य है, शाश्वत और अनित्य है, शक्ति का स्वरूप है। पर जब तक वह सांसारिक आत्म-कल्पनाओं से विमुक्त नहीं हो जाती, वह अपने वास्तविक रूप में प्रकट नहीं हो सकती। शास्त्रों का सत्साहित्य स्वाध्याय और ज्ञानसंवर्द्धन भी इस कार्य में सहायक है पर केवल ज्ञान की प्राप्ति ही पर्याप्त नहीं है। बुद्धिमान लोग ज्ञान का दुरुपयोग करते हुए भी देखे जाते हैं। ज्ञान के द्वारा यदि आत्म-लाभ सम्भव रहा होता तो अनेक पाश्चात्य दार्शनिक बहुत ज्ञानवान् हुए हैं- वे सब आत्मज्ञानी रहे होते और यदि इन देशों में थोड़े भी आत्मज्ञानी रहे होते, तो आज उनकी दशा ही भिन्न होती। भौतिक दृष्टि से समृद्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनकर भी बुराइयों का जाल फैलाकर यह उपदेश जब न दूसरों के लिए अभिशाप बनते वरन् स्वयं भी आध्यात्मिक सुखों का रसास्वादन कर रहे होते।

औरों को उपदेश करने की अपेक्षा अपना उपदेश आप कर लिये जाये, औरों को ज्ञान देने की अपेक्षा स्वयं के ज्ञान को परिपक्व कर लिया जाये, दूसरों को सुधारने की अपेक्षा अपने को ही सुधार लिया जाये तो अपना भी भला हो सकता है और दूसरों लोगों को भी कर्मजनित प्रेरणा देकर प्रभावित किया जा सकता है। लोग यह कम देखते हैं कि आप कहते क्या हैं ? उपदेश की वार्ता का नहीं, उसके व्यक्तिगत जीवन का प्रभाव अधिक होता है।

आत्मज्ञान की परिपक्वता और गुणों के विकास के लिए आत्म-सम्बोधन का महत्त्व है। सच्चे हृदय से आत्मा का उद्‌बोधन होता रहे तो मनुष्य अनेकों बुराइयों से बचा रह सकता है और आत्म-कल्याण के मार्ग में निष्ठापूर्वक आरूढ़ बना रह सकता है। ईश्वर-भक्ति भी दरअसल आत्म-उद्‌बोधन का विकास रूप ही है जो विचार की अपेक्षा अधिक सरल है। किसी भी विषय को लेकर उसकी गहराई में तन्मय हो जाना और नये-नये तथ्यों की खोज कर लेना सामान्य व्यक्तियों के लिये बहुत कठिन है। कोई थोड़े ही ज्ञान वान, निष्ठावान व्यक्ति ऐसे होते हैं जो विचार-रत रहकर किन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर पाते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में विचार आत्म-निर्माण में भी बड़ा सहायक होता है पर जब किसी के लिए यह स्थिति सम्भव न हो तो उसे भावनाओं का आश्रय तो लेना चाहिए। परमात्मा के गुणों का रूप, आकृति, दया, करुणा, उदारता और रक्षा आदि के कार्यों का अपने आप मनन, भजन अथवा कीर्तन करना ही भावना का प्रतीक है। अपेक्षाकृत यह अधिक सरल प्रक्रिया है और इस मार्ग द्वारा भी अपने आपको सत्य से उस समय तक जोड़े रखा जा सकता है, जब तक सत्य सिद्धि न हो जाये अथवा फिर कभी बुराइयों की ओर आकृष्ट हो जाने का भय शेष न रहे।

ईश्वर की प्राप्ति के लिए जो महत्व ईश्वर को उद्‌बोधन करने का है। आत्मज्ञान के मुमुक्षुओं के लिए आत्मा के उद्‌बोधन का भी वही महत्त्व है। जिस प्रकार भगवान का भक्त यह कहता है-हे ईश्वर! तू सर्वव्यापक है, विश्वनियन्ता और सबको धारण करने वाला तू ही है, तूने ही इस सृष्टि की रचना की आकाश बनाया समुद्र, पर्वत, नदियाँ, वृक्ष, फल, फूल और तरह-तरह के जीव बनाये हैं। तू परम दयालु है, पर ममतारहित है, तेरे वश में सम्पूर्ण लोकपाल और दिक्पाल हैं फिर भी तू अहङ्कार रहित है।'-इस प्रकार की भावनायें भक्त की भावनाओं को जीवन प्रदान करती हैं, उसकी ईश्वरनिष्ठा बढ़ती है और वह बुरे विचारों से बचता हुआ निरन्तर कल्याण की ओर अग्रसर होता रहता है।

यह उद्‌बोधन सच्चे हृदय से आत्मा के लिए किया जाये तो आत्मा भी अपनी सम्पूर्ण विशिष्टताएँ हम पर प्रकाशित करता है और इस प्रकार आत्म-भावना की पुष्टि भी होती रहती है। ऐसी भावनायें साधना-काल में, चलते फिरते, खीते-पीते, उठते-बैठते, काम-काज करते हर समय की जा सकती हैं। आत्म-शोधन का यह अनुपम और पूर्व मनोवैज्ञानिक तरीका है।

'ऐ आत्मा! तू अपनी ओर देख, तेरी शक्तियों और सामर्थ्यों का क्या ठिकाना? तू अनन्त है, महान है, कण-कण में तू ही तो समाया हुआ है। जीव-जन्तुओं में, कलरव करते हुए पक्षियों में, लहलहाते हुए खेतों में, महकते हुए फूलों में, धरती-आकाश, जल-थल, सर्वत्र तू ही तू विराजमान है, तेरी ही आत्मा फैल रही है। देख अपने इस विराट् स्वरूप को तो देख। इसे देखकर तू आनन्द से भर जायेगा।

'ऐ जीव! तू शुद्ध और सौन्दर्य युक्त है फिर भी धिक्कार है तुझे, जो इन तुच्छ विषय-भोगों की ओर आकर्षित हो रहा है। उनकी स्थिति क्या है, इस पर कभी विचार किया है ? क्या तुझे यह तरह-तरह के भोज्य पदार्थ, जिनकी ओर तू ललचाई आँखों से देख रहा है, स्वास्थ्य को गिराने वाले हैं। इन विषय भोगों के शक्ति-क्षय करने वाले स्वरूप को क्या तू अभी तक नहीं पहचान सका, शरीर की नश्वरता का तूने जरा भी ध्यान नहीं किया- क्या यह तेरे लिये अशोभनीय बात नहीं है?''

'ऐ जीव! विचार कर, कि कितने सौभाग्य से तुझे यह मानव देह उपलब्ध हुई है। तुझे यह भी मालूम नहीं कि तू आया कहाँ से, कहाँ जा रहा है ? कितना अच्छा होगा, यदि तू अपने आप को जानने का प्रयत्न करता और इन मनुष्य जीवन का सदुपयोग करता। उदर-पूर्ति तो असहाय पशु-पक्षी भी कर लेते हैं, बच्चे तो ये जानवर भी पैदा कर लेते हैं। आलस्य और निद्रा में मस्त पड़े रहना व समय को व्यर्थ गँवाना तो पशु भी जानते हैं। तू भी इन्हीं सांसारिक क्रिया-कलापों में सीमाबद्ध रहा तो तेरी विशेषता भी क्या रही? सुख आखिर कब तक रहेंगे? शरीर कब तक साथ देगा? धन कब तक ठहरेगा? यह तो आने-जाने वाले पदार्थ हैं इन्हें तो तू त्यागपूर्वक ही भोग, आसक्त न हो। आसक्त होने के लाभ भी क्या? तू नहीं तो यह पदार्थ ही एक दिन तुझे छोड़ जायेंगे। विचार कर- शरीर नहीं रहा तो धन किसके साथ गया। पद,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सौन्दर्य और सांसारिक सुखों को आज तक कौन अपने साथ ले गया है? इन्हें तू यहीं तक सीमित रख और शाश्वत स्वरूप को जानने की इच्छा कर।

देख तू माया में, अज्ञान में, अविद्या में, रोग-ग्रस्त हो कर अपने स्वरूप से भ्रष्ट हुआ है। अब तुझे अपने आपको पहचानने की इच्छा हुई तो इसे तू अपना महान् सौभाग्य ही मान। पर यह और जान ले कि यह कार्य इतना आसान नहीं है तुझे पग-पग पर कठिनाइयों से लड़ना पड़े, बुराइयों को मारना पड़ेगा और मन की दुष्प्रवृत्तियों को मोड़कर सन्मार्ग की ओर चलना पड़ेगा। पथ दुर्गम है, संघर्ष से भरा है, इनसे लड़ने के लिए तू अपना गांडीव धारण कर अपने पुरुषार्थ का आह्वान कर क्योंकि यह अनन्त शक्ति वाला आत्मा केवल साहसी व्यक्तियों को ही उपलब्ध हो पाता है। शूरवीर ही इस पथ का अनुसरण कर पाते हैं।'

इस प्रकार के विचारों का उद्‌बोधन निरन्तर चलते रहना चाहिए। संसार में फैले हुए कलुषित विचारों का मन में प्रभाव न पड़े, ऐसा सम्भव नहीं। यह आत्मोपदेश बहुत सरल है और उसे हृदयंगम भी किया जा सकता है। प्राप्त ज्ञान का सदुपयोग भी इसी से सम्भव है। आत्मा है। आत्मा के स्वरूप की प्रतिष्ठा करने से वैसे ही गुणों का विकास होने लगता है। जीवात्मा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अपने आपको जिस स्थिति का अनुभव करने लगता है, उसकी मनोदशा का झुकाव जिस तरफ हो जाता है उधर ही उसकी उन्नति होने लगती है और अभ्यास होने पर उस स्थिति की पूर्णता को उपलब्ध कर लेता है।

आत्मा शाश्वत और अनादि है

आत्मा के स्वरूप, स्वभाव और अनुभूति की व्याख्या करते हुए ऋषि ने बताया-विश्व के सम्पूर्ण प्राणियों में व्याप्त चेतना ही आत्मा है। वह अति गूढ़ निर्गम तत्व है इसलिये लोग प्रत्यक्ष नहीं देख पाते। स्पष्टतः चित्तवृत्तियाँ गतिशील जान पड़ती हैं इसलिये मन या चित्त को ही आत्मा होने का भ्रम होता है, वस्तुतः चित्त आत्मा नहीं है। आत्मा तो परम प्रकाश तत्व है।

एकमात्र चिन्तन ही वह उपाय है, जिसके द्वारा चेतना की, आत्मा की, अनुभूति और प्राप्ति सम्भव है। विद्वज्जन उसी अक्षर, अविनाशी, अजर-अमर आत्मा का चिन्तन करते हैं। लौकिक जीवन से उतना ही सम्बन्ध रखते हैं जितना आत्मा के आध्यात्मिक विकास के लिये आवश्यक है अन्यथा आत्मा के गुणों और कौतुक का चिन्तन ही उनका स्वभाव होता है। उसी में असीम तृप्ति भी है।

दीर्घतमा के शिष्यों में उस दिन विलक्षण खामोशी थी। इतिहास, भूगोल, जीव-विज्ञान, रसायन विज्ञान के पाठ्यक्रम भली-भाँति समझ में आ जाते थे, किन्तु ''आत्मा-विद्या'' का विषय ही इतना गूढ़ और रहस्यपूर्ण है कि दीर्घतमा के बहुत प्रयत्न और विश्लेषण करने के बावजूद भी विद्यार्थी उसे समझ न पाये।

आत्मा का विषय प्रत्येक विद्यार्थी का निजी विषय था, इसलिये उसकी सर्वोपरि आवश्यकता भी थी। जब वह कक्षा आती थी तो उनकी गम्भीरता भी बढ़ जाती और तन्मयता भी किन्तु आज भी आत्मा के चेतन स्वरूप का बोध विद्यार्थियों को नहीं ही हो पाया।

मध्याह्न के पूर्व ही एकाएक विद्यालय बन्द की शंखध्वनि कर दी गई। विद्यार्थियों के हृदय ''मैं क्या हूँ, कहाँ से आया हूँ, क्यों आया हूँ?'' इन प्रश्नों को जानने के लिये पहले से ही बैचेन थे। गुरु द्वारा अकस्मात् विद्यालय बन्द कर दिये जाने की घोषणा से वे और बेचैन हो गये। सब विद्यार्थी एक-एक कर अपने पर्णकुटीरों में चले गये। मध्यान्ह की हलचल उस दिन किसी ने नहीं सुनी। सम्पूर्ण आश्रम उस दिन विधवा की-सी शान्ति में डूबा हुआ था।

सूर्य का रथ थोड़ा पश्चिम की ओर झुका और घन्टा पुनः बजा। विद्यार्थी एकत्रित हुए, किसी के हाथ में न तो लेखनी थी न भोज पत्र। कोई घोषणा भी न थी छात्र एकत्रित हो गये तो ऋषि एक ओर चल पड़े, चुपचाप विद्यार्थियों ने भी उनका अनुगमन किया। एक ही पंक्ति में अनुशासन बद्ध गुरु का पीछा करते हुए चल रहे थे।

गांगेय के श्मशान-घाट पर दल रुक गया। घाट की सीढ़ियों के सहारे एक शव अटका हुआ था। ऋषि उसके समीप पहुँच गये। सब विद्यार्थी सीढ़ियों पर पंक्तिबद्ध बैठ गये।

ऋषि ने पाठ शुरू किया। शव के एक-एक अंग की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा-इन दोनों हाथों की तुलना अपना हाथों से करो, वैसी ही बनावट, माँसल उङ्गलियों से युक्त किन्तु ये हाथ न हिलते हैं, न डुलते हैं आँखें हैं पर वह देखती नहीं, कान हैं यह सुनते नहीं। जिस मुख ने सैकड़ों सुस्वादुयुक्त पदार्थों को चखा, मुख आज भी वही है पर अब यह खा भी नहीं सकता, नाक साँस नहीं ले रही। हृदय स्थान पर होने वाली धक-धक भी बन्द है। यह सारा शरीर ज्यों का त्यों है पर इसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिङ्ग रूप, रस, गन्ध, आकाश, सूर्य-चन्द्रमा, प्रकाश, वर्षा, अग्नि आदि सम्पूर्ण वस्तुयें अस्तित्वविहीन हैं।

इस शरीर को क्रियाशील बनाने वाली शक्ति इससे ऐसी ही अलग हो गई है जैसे अंगारे से उष्मा और जल से शीतलता। जब तक वह शक्ति थी तब तक यही शव क्रियाशीलता बना हुआ था, शक्ति न होने पर वही आज मुर्दा है।

चींटी-चिड़ियाँ, हाथी, व्हेल, गाय, बैल, गरुड़, कौवा, गीध आदि से लेकर मनुष्य तक इन सब में एक ऐसी चेतनता है। किसी की शक्ति कम है, किसी की अधिक। वृत्तियाँ और संस्कार भी अलग-अलग हैं, किन्तु देखने, सुनने, काम करने, इच्छाओं की पूर्ति में संलग्न रहने, प्रेम प्रदर्शित करने, काम व्यक्त करने, आहार-निद्रा, भय, मैथुन की प्रवृत्ति सब में एक जैसी है। सभी में यह शक्ति एक गुण रूप वाली मिलेगी। यह शक्ति प्रत्येक प्राणी में सन्निहित है, समायी हुई है, इसलिए इसे आत्मा कहते हैं। यह आत्मा ही प्रकाश, शक्ति अथवा चेतना के रूप में विभिन्न शरीरों में व्याप्त है, यद्यपि उसका शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं। वह अजर, अमर, अविनाशी और सतत् चेतनायुक्त है पर स्थूल पदार्थ के साथ संगम हो जाने के कारण ऐसा भासता है कि वह जन्म लेता है और मृत्यु को भी प्राप्त होता है। सुख-दुख का कारण यही विभ्रांति ही है।

चेतना (आत्मा) विशुद्ध तत्त्व है। चित्त उसका एक गुण है। इच्छाएँ, वासनाएँ यह चित्त है, प्रवृत्तियाँ हैं, किन्तु आत्मा नहीं, इसलिए जो लोग शारीरिक प्रवृत्तियों काम, भोग, सौन्दर्य सुख को ही जीवन मान लेते हैं वह अपने जीवन धारण के उद्देश्य से भटक जाते हैं। चेतना का जन्म यद्यपि आनन्द, परम आनन्द, असीम-असीम आनन्द की प्राप्ति के लिये हैं ही हुआ है तथापि यह चित्तवृत्तियाँ उसे क्षणिक सुखों में आकर्षित कर पथ-भ्रष्ट करती हैं, मनुष्य इसी सांसारिक काम-क्रीड़ा में व्यस्त बना रहता है, तब तक चेतना अवधि समाप्त हो जाती है और वह इस संसार से सुख, प्रारब्ध और संस्कारों का बोझ लिये हुए विदा हो जाता है। चित्त की मलीनता के कारण ही वह अविनाशी तत्त्व, आप आत्मा इस संसार में बार-बार जन्म लेने को विवश होते हैं और परमानन्द से वंचित होते हैं। सुखों में भ्रम पैदा करने वाला यह चित्त ही आत्मा का-चेतना का बन्धन है।

"आत्म-ज्ञान के बिना किसी भी काल में किसी को भी मुक्ति नहीं मिलती"-ऋषि इस विषय को आगे बढ़ाते हुए अपनी वक्तृता जारी किये हुए थे। तभी एक छात्र ने पूछा "गुरुदेव! यह आत्मा जब इतना सूक्ष्म, गूढ़ और रहस्यपूर्ण है तो उसे पाया कैसे जा सकता है? कैसे इन चित्तवृत्तियों के दाँव से छुटकारा पाया जा सकता है।"

संकेत कर छात्र बैठ गया-ऋषि ने शंका का समाधान करते हुए बताया-"मैं शरीर हूँ" जब तक जीव यह मानता रहेगा, तब तक करोड़ उपाय करने पर भी शाश्वत सुख-शान्ति, जो आत्मा का लक्ष्य है, नहीं उपलब्ध हो सकती। हम शरीर नहीं हैं, शरीर में तो हम बैठे हैं, वाहन बनाये हैं, घुसे हैं निश्चय फिर भी हम अपने को शरीर मानकर सारा व्यवहार करते हैं पहले इस धारणा को बन्द करना चाहिए और निश्चय करना चाहिये-मैं शरीर नहीं; शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि अन्तःकरण चतुष्टय से परे असंग शुद्ध आत्मा हूँ। कुछ दिन इस का निरन्तर चिन्तन करने से अपनी आत्मिक धारणा पुष्ट हो जाती है और आत्म-कल्याण का मार्ग दिखाई देने लगता है।

ऋषि गम्भीर विवेचन में उतर गये। सूर्यदेव अस्ताचल की ओर बढ़ चले किन्तु आत्मा का विषय ही इतना आनन्दप्रद था कि सम्पूर्ण छात्र निश्चल भाव से तन्मयता की मुद्रा में बैठे रहे। न उनकी जिज्ञासा तृप्त होती थी उठने की किसी को इच्छा ही न थी। आश्चर्य और कौतूहल से सभी ध्यानपूर्वक गुरुदेव की व्याख्या सुनने में निमग्न थे। ऋषि ने आगे बताया-

'आत्मा स्वयं ज्ञान-स्वरूप है। ज्ञान की प्राप्ति के लिए कोई परिश्रम करने की आवश्यकता है न यत्न की। कठिन साधनों से अप्राप्त वस्तु के लिये प्रयत्न करना पड़ता है। जो स्वयं ज्ञान रूप है, उसे अपने आप को ढूँढ़ने के लिये न तो जंगलों में भटकने की आवश्यकता है न जीवन को शुष्क और कठोर बनाने की। अपने आप में अहंकार का जो भाव है केवल उसे मिटा देने की आवश्यकता है। क्योंकि यह श्रम भी आत्मा की तरह अनादि और अनन्त है इसलिये अपने शक्ति स्वरूप, ज्ञान स्वरूप चेतनता की धारणा को पुष्ट बनाने के लिये गहन चिन्तन की आवश्यकरता पड़ती है। आत्मा की प्राप्ति के लिये जितने भी साधन और उपासनाएँ बताई गई हैं वह केवल इसी बात को परिपुष्ट करने के लिये हैं कि-"तुम शरीर नहीं, मन और इन्द्रियाँ भी नहीं हो इनसे परे अनन्त शक्तिस्वरूप आत्मा हो, आत्मा बन्धन रहित है। अपनी इच्छा सङ्कल्प बल से कहीं भी विचरण कर सकती है। प्रकाश खेल खेलता है। न उसका कोई बन्धु है न बान्धव, पुत्र न कलत्र, सब विविधि रूप आत्मायें ही अपनी चितवृत्तियों के कारण भाई, पिता, ऐसा भासते हैं, इस बंधन से छूटकर राग, द्वेष, ममता छोड़कर,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

केवल कर्तव्य पालन का ध्यान रखता हुआ जो व्यक्ति आत्मा में ही रमण करता है। आत्मा का ही चिन्तन करता है, आत्मा के गुणों के अनुरूप आचरण करता है अन्त में वह सांसारिक सुख, ऐश्वर्य और भोगों को भोगते हुए भी आत्मा को प्राप्त कर लेता है। मन, प्राण एवं प्रकृति के परिवेश से प्रकट में प्रथक्-प्रथक् प्रतीत होने पर भी हम आप सब वस्तुतः एक ही आत्मा की अभिव्यक्तियाँ हैं। इसे यों भी कहा जा सकता है कि आत्मा ही विभिन्न रूपों में व्यक्त होकर उन्मुक्त चेतना परमात्मा में परिणत होना चाहती है। जो इस तत्व रूप को खोजते हैं वह तो अपना लक्ष्य पा जाते हैं और जो अपने चित्त की अहंवृत्तियों में ही भूलते-भटकते रहते हैं वह सुख स्वरूप होने पर भी दुःख भुगगतते हैं, बन्धन मुक्त होने पर भी बन्धनों में पड़े रहते हैं।

जीवन अवस्था में जो यह कहा करता था कि यह मेरा धन है, घर बार है, मैं खाता हूँ, मैं पंडित हूँ, ज्ञानी हूँ। मेरा सौन्दर्य सबसे बढ़कर है, आज वही बोलने वाला कहीं खो गया है यद्यपि शरीर ज्यों का त्यों विद्यमान है। मन और अहंकार से अपने को भिन्न समझने में ही आत्मा का सारा रहस्य छिपा हुआ है। चिन्तन के इस सिद्धान्त से इसी सिद्धान्त की पुष्टि होती है।

यह आत्मा, मन और अहंकार से अलग रहकर अपना काम किया करती है। मन और अहंकार वस्तुतः जागृति अवस्था के कारण हैं जबकि आत्मा शाश्वत और अनादि है, बुधजन इसीलिये निरन्तर आत्मा का चिन्तन करते और अन्त में सुखपूर्वक उसी भाव में अन्तर्हित होकर परमात्मा की शरण में चले जाते हैं।

सूर्य लगभग ढल चुकने को था। सन्ध्या का समय हो चुका था। जब यह ध्यान कर उन्होंने अपना पाठ समाप्त किया तो विद्यार्थियों का भी ध्यान टूटा। उन्होंने अनुभव किया कि कुछ समय के लिए वे सब ऐसे लोक में, चिन्तन की गहन स्थिति में पहुँच गये थे जो आत्मा का यथार्थ लक्ष्य है, सबको अपना पाठ समझ लेने का सन्तोष था। ऋषि के पदों का अनुसरण करते हुए सभी विद्यार्थी गुरुकुल लौट आये और अपने-अपने सन्ध्या पूजन में लग गये।

आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध

आत्मा परमात्मा का ही अंश है। जिस प्रकार जल की धारा किसी पत्थर से टकराकर छोटे-छोटे बूँदों के रूप में बदल जाती है उसी प्रकार परमात्मा की महान सत्ता अपने क्रीड़ा-विनोद के लिए अनेक भागों में विभक्त होकर अगणित जीवों के रूप में दृष्टिगोचर होती है। सृष्टि सञ्चालन का क्रीड़ा-कौतुक करने के लिए परमात्मा ने इस संसार की रचना की। वह अकेला था। अकेला रहना उसे अच्छा न लगा, सोचा एक से बहुत हो जाऊँ। उसकी यह इच्छा ही फलवती होकर प्रकृति के रूप में परिणित हो गई। इच्छा की शक्ति महान है। आकांक्षा अपने अनुरूप परिस्थितियाँ तथा वस्तुएँ एकत्रित कर ही लेती हैं। विचार ही कार्य रूप में परिणित होते हैं और उन कार्यों की साक्षी देने के लिये पदार्थ सामने आ खड़े होते हैं। परमात्मा की एक से बहुत होने की इच्छा ने ही अपना विस्तार किया तो यह सारी वसुधा बनकर तैयार हो गई।

परमात्मा ने अपने आपको बखेरने का झंझट भरा कार्य इसलिए किया कि बिखरे हुए कणों को फिर एकत्रित होते समय असाधारण आनन्द प्राप्त होता रहे। बिछुड़ने में जो कष्ट है उसकी पूर्ति मिलन के आनन्द से हो जाती है। परमात्मा ने अपने टुकड़ों को-अंश, जीवों को बखेरने का विछोह कार्य इसलिये किया कि वे जीव परस्पर एकता, प्रेम, सद्भाव, सङ्गठन, सहयोग का जितना-जितना प्रयत्न करें उतने आनन्दमग्न होते रहें। प्रेम और आत्मीयता से बढ़कर उल्लास इस पृथ्वी पर और किसी वस्तु में नहीं है इसी प्रकार एकता और सङ्गठन से बढ़कर शक्ति का स्रोत और कहीं नहीं है। अनेक प्रकार के बल इस संसार में मौजूद हैं पर प्राणियों की एकता के द्वारा जो शक्ति उत्पन्न होती है उसकी तुलना और किसी से भी नहीं की जा सकती। पती-पत्नी, भाई-भाई, मित्र-मित्र, गुरु-शिष्य आदि की आत्मीयता जब उच्च स्तर तक पहुँचती है तो उस मिलन का आनन्द और उत्साहवर्धक प्रतिफल इतना सुन्दर होता है कि प्राणी अपने को कृत्य-कृत्य मानता है।

कबीर का दोहा प्रसिद्ध है–

राम बुलावा भेजिया, कबिरा दीना रोय।
जो सुख प्रेमी संग में, सो बैकुण्ठ न होय।।

इस दोहे में बैकुण्ठ से अधिक प्रेमी के सान्निध्य को बताया गया है। कबीर प्रेमी को छोड़कर स्वर्ग जाने में दुःख मानते और रोने लगते हैं। वस्तुस्थिति यही है। सच्चे प्रेम में ऐसा ही आनन्द होता है। जहाँ मनुष्य-मनुष्य के बीच में निष्कपट, निःस्वार्थ, आन्तरिक और सच्ची मित्रता होती है वहाँ गरीबी आदि की कठिनाइयाँ गौण रह जाती हैं और अनेक अभावों एवं परेशानियों के रहते हुए भी व्यक्ति उल्लास भरे आनन्द का अनुभव करता है।

उपासना में प्रेम का अभ्यास एक प्रमुख आधार है। ईश्वर की भक्ति करने का अर्थ है-आदर्शवाद। प्रेम के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकास का आधार भी यही है। सच्चे और ईमानदार मनुष्यों को बीच ही दोस्ती बढ़ती और निभती है। धूर्त और स्वार्थी लोगों के बीच तो मतलब की दोस्ती होती है यह जरा सा आघात लगते ही काँच के गिलास की तरह टूट-फूटकर नष्ट हो जाती है। लाभ में कमी आते ही तोते की तरह आँखें फेर ली जाती हैं। यह दिखावटी धूर्ततापूर्ण मित्रता तो एक प्रवंचना मात्र है, पर जहाँ जितने अंशों में सच्चा मैत्री भाव होता है वहाँ आनंद, संतोष और प्रफुल्लता की निर्झरिणी निरन्तर झरती रहेगी। यदि कुछ लोगों का परिवार या सङ्गठन प्रेम के उच्च आदर्शों पर आधारित होकर विकसित हो सके तो वहाँ उस परिवार के भी सदस्यों को विकास एवं हर्षोल्लास का परिपूर्ण अवसर मिलता रहेगा। जिस समाज में सच्ची मित्रता, उदारता, सेवा और आत्मीयता का आदर्श भली प्रकार फलने-फूलने लगता है वहाँ निश्चित रूप में स्वर्गीय वातावरण विनर्मित होकर रहता है। देवता जहाँ कहीं रहते होंगे वहाँ उनके अच्छे स्वभाव ने प्रेम का वातावरण बना रखा होगा और उस भाव-प्रवाह ने वहाँ स्वर्ग की रचना कर दी होगी। स्वर्ग यदि कहीं हो सकता है तो उसकी सम्भावना वहीं होगी जहाँ सज्जन पुरुष प्रेमपूर्वक मिल-जुलकर आत्मीयता, उदारता, सेवा और सज्जनतापूर्वक रह रहे होंगे।

ईश्वर उपासना से स्वर्ग की प्राप्ति का जो महात्म्य बताया गया है उसका आधार यही है कि उपासना करने वाले को भक्ति का मार्ग अपनाना पड़ता है। परमात्मा को, आत्मा को, आदर्शवाद को जो भी प्यार करना सीख लेगा उसे अनिवार्यतः प्राणिमात्र से प्रेम का अभ्यास होगा और इस कारण के रहते हुए उसका निवास स्थान एवं समीपवर्ती वातावरण स्वर्गीय अनुभूतियों से भी भरा-पूरा रहेगा। उपनिषद् का वचन है-''रसो वै स'' अर्थात् प्रेम परमात्मा है। बाइबिल में भी इसी तथ्य की पुष्टि की है और मनुष्य को प्रेमी स्वभाव का बनने पर जोर देते हुए कहा है कि जो प्रेमी है वही ईश्वर का सच्चा भक्त कहलायेगा। भक्ति महिमा से अध्यात्म-शास्त्र का पन्ना-पन्ना भरा पड़ा है। भक्ति से मुक्ति मिलने की प्रतिस्थापना की गई है। भक्त के वश में भगवान को बताया गया है। इन मान्यताओं का कारण एक ही है कि प्रेम की हिलोरें जिस अन्तरात्मा में उठ रही होंगी उसका स्तर साधारण न रहेगा। जिसमें दिव्य गुण, दिव्य स्वभाव का आविर्भाव होगा, वह दिव्य कर्म ही कर सकेगा। ऐसे ही व्यक्तियों को देवता कहकर पुकारा जाता है। जहाँ देवता रहेंगे वहाँ स्वर्ग तो अपने आप ही होगा।

प्रेम का अभ्यास ईश्वर को प्रथम उपकरण मानकर किया जाता है। कारण यही है कि उससे स्वार्थ-दोष नहीं है। सूक्ष्म की उपासना जिन्हें कठिन पड़ती है वे साकार प्रतिमा बनाकर अपनी भावनाओं को किसी पूजा प्रतीक पर केन्द्रीय, निर्जीव होते हुए भी वह माध्यम सजीव हो उठता है। मूर्ति पूजा का तत्वज्ञान यही है। इस बात को हर कोई जानता है कि देव प्रतिमायें पत्थर धातु की बनी निर्जीव होती हैं। उनके सजीव होने की बात कोई सोचता तक नहीं। पर यह आध्यात्मिक तथ्य मूर्ति पूजा के माध्यम से प्रकाश में लाया जाता है कि जिस किसी से सच्चा प्रेम किया जायगा जिसके लिए भी आस्था और श्रद्धा का प्रयोग किया जायगा। वह वस्तु चाहे निर्जीव हो या, सजीव भक्ति की भावना के अनुरूप फल देने लगेगी। मूर्ति पूजा करते हुए साकार उपासना करने वाले अगणित भक्तजन जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सकने में सफल हुए हैं। मीरा, सूर, तुलसी, राम-कृष्ण परमहंस आदि की साकार उपासना निरर्थक नहीं गई। उन्हें परमपद तक पहुँचा सकने में ही समर्थ हुई।

रबड़ की गेंद दीवार पर मारने से लौटकर फेंकने वाले के पास ही पीछे को लौटती है। पक्के कुयें में मुँह करके आवाज लगाने से प्रतिध्वनि गूँजती है। उसी प्रकार इष्टदेव को दिया हुआ प्रेम लौटकर प्रेमी के पास ही आता है और उस प्रेम-प्रवाह से रससिक्त हुआ अन्तरात्मा ईश्वर मिलन, ब्रह्म साक्षात्कार एवं भगवत कृपा का प्रत्यक्ष अनुभव करता है। एकलव्य भील की बनाई हुई मिट्टी की द्रोणाचार्य की प्रतिमा उसे उतनी शस्त्र विद्या सिखाने में समर्थ हो गई जितनी कि गुरु द्रोणाचार्य स्वयं भी नहीं जानते थे। मिट्टी के द्रोणाचार्य में एकलव्य की जो अत्यन्त निष्ठा थी उसके कारण ही वह प्रतिक्रिया सम्भव हो सकी कि वह भील बालक उस युग का अनुपम शस्त्रचालक बन सका। ईश्वर के साकार व निराकार स्वरूप का ध्यान, पूजन, जप, अनुष्ठान करते हुए साधक अपनी प्रेम भावना, श्रद्धा और निष्ठा को ही परिष्कृत करता है। इस मार्ग में वह जितनी प्रगति कर सके उतनी ही ईश्वरानुभूति, परमानन्द उसे उपलब्ध होने लगता है।

साधना यदि सच्चे उद्देश्य से की गई हो तो उसका परिणाम यह होना ही चाहिए कि उपासक के मन में प्रेम की धारा प्रवाहित होने लगे, वह प्राणिमात्र को अपनी आत्मा में और अपनी आत्मा को प्राणिमात्र में देखे। दूसरों का दुःख उसे अपने निज के दुःख जैसा कष्टकारक प्रतीत हो और दूसरों को सुखी, समुन्नत देखकर अपनी श्री समृद्धि की भाँति ही सन्तोष का अनुभव करे। प्रेम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का अर्थ है-आत्मीयता और उदारता। जिसके साथ प्रेमभाव होता है, उसके साथ त्याग और सेवापूर्ण व्यवहार करने की इच्छा होती है प्रेमी अपने को कष्ट और संयम में रखता है और अपने प्रेमपात्र की सुविकसित, सुन्दर एवं सुरम्य बनाने का प्रयत्न करता है। सच्चे प्रेम का यही एकमात्र चिह्न है कि जिसके प्रति प्रेम भावना उपजे उसे अधिक सुन्दर अधिक उज्जवल एवं प्रसन्न करने का प्रयत्न किया जाय।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी

जन्म से बालक में जो गुण और संस्कार पाये जाते हैं वे अधिकांश उसके पिता के गुणों और संस्कारों की प्रतिछाया ही होते हैं। बीज और फल में शक्ति, गुण और स्वाद की विशेषता प्रायः एक जैसी ही होती है। मीठे फल के बीज से उत्पन्न वृक्ष भी मीठे फल ही प्रदान करने वाले होते हैं । वातावरण, जलवायु तथा आहार विहार के क्रम में विशेष परिवर्तन न हो तो वैज्ञानिकों और डॉक्टरों का मत है कि सन्तान के शरीर के न केवल सूक्ष्म गुणों में ही समानता पाई जाती है वरन् स्थूल द्रव्य में भी एकता के सभी लक्षण दिखाई दे जाते हैं।

जीवात्मा के सम्बन्ध में आत्म-विद्या विशारद आचार्यों का भी यह मत है। वेद, शास्त्र, उपनिषद्, गीता, पुराण, रामायण-इन सब ग्रन्थों में आत्मा के सम्बन्ध में जो विवेचन हुआ है, वह एक जैसा ही है। सबने स्वीकार किया है कि जीव अविनाशी तत्व है, वह ईश्वर का अंश है। उसमें परमात्मा के सब गुण बीजरूप से विद्यमान हैं। जीव को अनन्त, सुखी, चेतन तथा निर्मल बताया गया है। यह गुण उसके पिता परमात्मा के ही गुण हैं।

किन्तु यदि किसी मनुष्य के जीवन को देखें तो उसमें इन गुणों का अभाव ही दिखाई देता है। आजकल तो विषमता और भी तीव्र हो गई है। सुख की चिर अभिलाषा रखते हुए भी लोग दुःखी हैं। कष्ट और पीड़ाओं से छटपटा रहे हैं। हर व्यक्ति अशान्त और उद्विग्न ही दिखाई देता है ऐसी स्थिति में कोई भी यह मानने के लिये तैयार न होगा कि प्रस्तुत जीवन में भी ईश्वर चेतना का अंश विद्यमान है।

जीव का दूसरा गुण चेतनता, विचार और भावनाओं की शक्ति भी यद्यपि बीजरूप में उसमें देखने को मिलेगी पर यह गुण भी प्रायः किसी में, उपयुक्त मात्रा में, देखने को नहीं मिलता। लोगों में विचार और भावनाएँ तो उठती हैं पर इनमें अनन्त आकाश को मथ डालने की शक्ति नहीं होती। विचारों की शक्ति किसी से छिपी नहीं है। विचारों में संसार में भयानक हलचल करने वाली शक्ति है, वैसी ही शक्ति भावनाओं में है। भावनाओं की शक्ति से इस देश में भक्ति के ऐसे सूक्ष्म पर सशक्त स्पन्दन पैदा किये गए हैं, जो इस अधःपतित युग में भी धर्म और संस्कृत को निरन्तर जीवन प्रदान कर रहे हैं। जहाँ इन दोनों गुणों का मेल होता होगा वहाँ की शक्ति का तो कहना ही क्या? जीवन में चेतनता का यह गुण बड़ा महत्त्व रखता है पर वह आज बहुत कम लोगों में देखने को मिलता है।

जीव के मूल स्वरूप न होने में मुख्य कारण उसमें तीसरे गुण अर्थात् निर्मलता का अभाव है। माया, अविद्या या अज्ञान सब इसी के नाम हैं। मनुष्य को चाहे जिन शब्दों से निन्दित किया जाय पर मुख्य बात एक ही है कि उसने अपने आपको अन्धकारमय अथवा विकारयुक्त कर लिया है, इसीलिये वह अपने मूल-स्वरूप को पहचानने में असमर्थ है। गन्दे जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब नहीं दिखाई देता, दर्पण मैला हो तो मुखाकृति साफ न दिखाई देगी। जीव माया ग्रस्त, अविद्या या मलग्रस्त हो तो उसकी भी ऐसी दशा होती है। वह अपने ईश्वरीय स्वरूप को पहचानने में असफल ही रहता है।

शाश्वत, मुक्त और अमर जीवात्मा अज्ञानता या माया के वश में होकर वैसी ही क्रियायें करता रहता है जैसे बन्दरवाला बन्दर को बाँधकर नचाता रहता है। यद्यपि यह माया कोई दृश्य रूप में नहीं है फिर भी वह लोगों को नचाती रहती है यह कहने की अपेक्षा अब यह कहना अधिक उपयुक्त है कि लोग स्वयं ही अज्ञान में भटक रहे हैं। "हमें क्या करना चाहिए" इस ज्ञान का अभाव ही अविद्या है, इसी कारण लोग गलत कार्य करते और दण्ड भुगतते हैं।

जिह्वा के स्वाद, नेत्रों की सौन्दर्य-लिप्सा, कानों की मधुर संगीत सुनने की इच्छा तथा कामवासना आदि विषयों में आसक्ति हो जाने के कारण विद्या-अविद्या की बात विलुप्त हो गई। जड़-चेतन में ऐसी गाँठ पड़ गई कि उनका पृथक् अस्तित्व भी समझ में न आने लगा। चेतना ने अपने आपको जड़ मान लिया और जड़ता के काम करने लगी। यद्यपि जड़त्व की, अपने आपको मात्र शरीर मानने की बात नितान्त मिथ्या, भ्रम, अज्ञान है तो भी लोग उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं। युग-युगान्तरों से अभ्यास में आने वाला स्वभाव, गुण एकाएक छूट भी नहीं सकते। जीव ने संसारी होने का अपना विश्वास इतना पुष्ट कर लिया है कि जड़-चेतन के बीच जो ग्रन्थि पड़ गई है वह छूटती नहीं और जब तक यह भ्रम दूर नहीं होता तब तक कष्ट भी दूर नहीं होते।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महापुरुषों, श्रुतियों, पुराणों ने तरह-तरह के उपाय अनेक प्रकार के साधन बताये पर जीव के हृदय पर सांसारिक सुख, लोभ, मोह आदि का अन्धकार इतना सघन होकर छा गया कि वह इनसे छूटने का प्रयत्न करने की अपेक्षा और भी उलझता गया। मुक्त होने के लिये उसने कुछ प्रयास भी न करना चाहा।

ईश्वर की कृपा या किन्ही देव-पुरुषों के अनुग्रह से कदाचित् इस प्रकार का विचार मन में आ जाय कि आत्म-ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, अपना रहस्य जानना चाहिए, परमात्मा का दर्शन करना चाहिए तो उसे अनेक जन्मों के शुभ संस्कारों का प्रतिफल या ईश्वर की कृपा दृष्टि ही समझनी चाहिए। उस पर यदि किसी के अन्तःकरण में श्रद्धा जागृत हो जाय तो उसे अपना बड़ा सौभाग्य मानना चाहिए।

श्रद्धा का उदय होना निश्चय ही अनेक जन्मों के पुण्यों का प्रतीक है पर अकेली श्रद्धा ही आत्म-कल्याण नहीं कर देती वह तो अपने जीवन लक्ष्य की ओर उन्मुख करने वाला प्रकाशमात्र है। उनको उस यात्रा पथ पर चलने की भी आवश्यकता है। शास्त्र इस क्रिया को धर्माचरण बताते हैं। अर्थात् श्रद्धा उदय हो तो मनुष्य को जप, तप, व्रत, यम, नियम आदि साधनों का आश्रय लेकर जीवन और आत्म-शोधन की प्रक्रिया प्रारम्भ कर देनी चाहिए। संसार में जितने भी शुभ कर्म हैं वे सब धर्म का आचरण कहलाते हैं, इनसे आत्मा का बल बढ़ता है और उसमें सबलता आने लगती है।

आत्म-कल्याण की साधनायें भावनाओं का रस पाकर शीघ्र फलदायिनी होती हैं। यों इन सब साधनाओं में उदासीनता हो तो भी प्रगति तो होती ही है किन्तु जब भावनाओं का सम्मिश्रण हो जाता है तो साधना से ही एक अलौकिक आनन्द की रसानुभूति होने लगती है और लक्ष्य प्राप्ति के लिए जो समय की दूरी थी वह कम अखरने लगती है। भावना मनुष्य की साधना में सफलता की आशंका को भी कम कर देती है। "मै तेरा हूँ अब तुझे छोड़कर कहाँ जाऊँ। मुझे अज्ञान से निकाल और मानव-जीव के उपयुक्त आचरण करने की क्षमता प्रदान कर। अब मेरे जीवन का सर्वस्व तू ही है।" इस प्रकार की भावनायें आत्म-कल्याण के पथिक को बड़ा बल प्रदान करती हैं। विश्वास बढ़ाती हैं और मन में चढ़े कुसंस्कारों के ढेर को बात की बात में जला कर खाक कर डालती हैं। साधना काल में भावनाओं का होना इसी दृष्टि से बड़ा शुभ और लाभजनक माना जाता है। भावनाएँ जिसे मिल जायँ उसे अपने आप पर ईश्वरीय विशेष कृपा ही माननी चाहिए।

इस प्रकार भक्त धर्म-कर्म करते हुये मन की कामनाओं को मारता और उसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, छल, द्वेष पाखण्ड, झूँठ, बेईमानी आदि दुष्प्रवृत्तियों से विमुक्त करता है। वासनायें और सांसारिक प्रलोभन उसे बार-बार अपनी ओर आकर्षित करते हैं, वह बार-बार इनसे लड़ता है, इन्हें मारता है, आत्मा के गुणों को बढ़ाता है। दया, क्षमा, करुणा, सन्तोष, समता, धृति आदि सद्गुणों का विकास करता है। इन्द्रियों का दमन करता है और जो दोष-दुर्गुण होते हैं उन्हें बार-बार ठीक करता है, सत्-प्रवृत्तियों की शोध और दुष्प्रवृत्तियों के विरोध का विचार कभी भी मन्द नहीं होने देता वरन् वैसा करते हुये वह उत्साह अनुभव करता है। विचार-मन्थन के द्वारा वह सत्य को आग्रहपूर्वक अपने जीवन में धारण करता और दुष्कर्मों, असत् तत्वों का परित्याग करता जाता है।

यह विज्ञानमय बुद्धि अन्तःकरण की ममता, मद, मोह आदि को जला डालती है, उस अवस्था में केवल ब्रह्म की अखण्ड और दिव्य ज्योति आत्मा में अनुभव होने लगती है। वह प्रकाश मनुष्य के अज्ञान, अविद्या या माया को भस्म कर डालता है मनुष्य जीव-भाव से मुक्त होकर पुनः अपने परमपिता-परमात्मा की गोद में ही समा जाता है। यह अवस्था अनन्त सुख, अनन्त आनन्द की अवस्था होती है।

परमात्मा को जानने के लिये अपने आपको जानो

सन्त वास्वानी से एक दिन कुछ लोगों ने प्रश्न किया-भगवान् क्या है ?" "भगवान् ज्योतियों की ज्योति है, मध्यवर्ती सूर्य है" उन्होंने उत्तर दिया। लोगों ने फिर प्रश्न किया-"इस ज्योति से इस मध्यवर्ती सूर्य से अपना नाता कैसे जोड़ें ? वास्वानी ने पुनः 'समझाया-बस सूर्यमुखी बन जाओ। जैसे सूर्यमुखी सदैव सूर्य के प्रति मुख किये रहता है यद्यपि उसकी देह में अन्य क्रियायें अपनी मर्यादा में चलती रहती हैं, जड़ें रस खींचती रहती हैं, पत्तियाँ साँस लेती रहती हैं, हवा में वह हिलता-डुलता रहता है पर उसका सूर्यमुखी नाम इसीलिये पड़ा क्योंकि वह सदैव सूरज की ओर मुख किये रहता है, इसी तरह परमात्मा को पाने के लिये सदैव परमात्मा की ओर मुख किये रहो।

"किन्तु सूर्यमुखी बनें कैसे ? लोगों ने तीसरा प्रश्न किया। उन्होंने उत्तर दिया-"अपने हृदय को तीव्र अभीप्सा से भर लो। एक बार खूब अच्छी तरह निश्चय कर लो कि मनुष्य जीवन का ध्येय अनन्त ऐश्वर्य, सुख-सन्तोष, शान्ति-प्रद परमात्मा की प्राप्ति है। जब वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तुम्हारा लक्ष्य बन जायेगा तो भगवान की ओर मुख किये रहोगे और धन्य हो जाओगे।

ईश्वर प्राप्ति की सच्ची आकाँक्षा का होना ही प्रधान बात है, परमात्मा कहीं अन्यत्र नहीं। उसे ढूँढ़ने, प्राप्त करने और पहचानने का प्रयत्न नहीं किया जाता, इसीलिये अधिकांश लोगों के हृदय अन्धकार से भरे हैं। लोगों के भीतर तामस का, रात का, अज्ञान का राज्य है। जब अपने हृदय को ही जीवन का केन्द्र बिन्दु बना लिया जाता है तो आनन्द स्वरूप परमात्मा का अस्तित्व वहीं झलकने लगता है, उसे ढूँढ़ने के लिये कहीं भागने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

हमारा हृदय हमारी आत्मा के विश्वास का अंश है। जिस तरह सूर्य की किरणें सूर्य का अंश हैं, पर पृथक् दीखती हैं उसी तरह आत्मा भी परमात्मा का अंश है पर प्रथक् दीखता है। अपने को अपनी गहनतर आत्मा को विश्वास का अंश जान लेना ईश्वर को जान लेना है।

मनुष्य अपने शरीर के बाह्य क्रिया-कलापों की व्यस्तता से कुछ गहराई में डूब सकता है, यह सभी उसके गुण हैं, विशेषताएँ हैं पर वह स्वयं उनसे परे है। वह इनसे परे जाकर अपने को इनसे भिन्न, शक्तिशाली और परम तेजस्वी, सर्वदृष्ट, सर्वव्यापी, सर्वांतर्यामी विशुद्ध आनन्द स्वरूप प्रकाश अनुभव कर सकता है।

जिन लोगों ने अपने भीतर ईश्वर की शोध की है वे सब अन्ततः इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। सबने यही बताया है कि मनुष्य चिन्तन के द्वारा मन, बुद्धि और भावनाओं पर ध्यान जमाता हुआ आत्मा के अस्तित्व तक पहुँचता है और इस अनुभव के बाद इस बोध को प्राप्त करता है कि वह परमात्मा जिसमें आत्मा विकसित की जाती है, आत्माओं से भी परे और सभी में एक ही प्रकार से व्याप्त है।

एक गाँव में एक बार नानक का आगमन हुआ। वे कहते थे-ईश्वर सबके अन्दर है। हिन्दू, मुसलमान का कोई भेद नहीं। उस गाँव के नवाब ने उनसे कहा-आपके लिये तो मन्दिर और मस्जिद एक बराबर हैं तो क्या आप आज हमारे साथ मस्जिद में नमाज पढ़ने को तैयार हैं? नानक ने बहुत आनन्दित होकर कहा-जरूर! जरुर! परमात्मा की प्रार्थना में सम्मिलित होने से बड़ा आनन्द और क्या है ?

फिर सब लोग मस्जिद में गये और नमाज शुरू हुई। सब लोग नानक की नमाज देखना चाहते थे किन्तु नानक चुपचाप एक कोने में खड़े हो गये और सबको देखने लगे। उनको इस प्रकार का खड़ा देखकर नमाजियें बहुत गुस्सा हुए। वे नमाज भी पढ़ते थे और बीच-बीच में नानक की ओर क्रोध से देख भी लेते थे। जल्दी-जल्दी किसी तरह बेचारों ने नमाज पूरी की और सब एक दम नानक पर टूट पड़े। किसी ने उन्हें धोखेबाज कहा किसी ने वचन तोड़ने वाला। नवाब ने आँख लाल-पीली करके डाँटा, आपने नमाज क्यों नहीं पढ़ी? नानक हँसे और बोले आप लोगों ने भी तो नहीं पड़ी इसलिये हमने भी नहीं पढ़ी। आप लोगों का खेल देखता रहा, यदि आप नमाज पढ़ते रहते तो फिर मेरे लिये भी चुपचाप खड़ा रहना कठिन ही हो जाता।

उन नमाजियों की तरह जो लोग ईश्वर प्राप्ति की बात तो करते हैं किन्तु उनकी सारी उलझन जीवन के बाह्य क्रिया-कलापों तक सीमित रहती हैं इसलिये उनका नानक, (उनका मन) भी आत्मानुभूति में खो नहीं पाता। जिस दिन शरीर और मन की सारी चेष्टायें सिमटकर आत्मा में केन्द्रित हो जाती हैं, अन्धकार उसी दिन दूर हो जाता है और मनुष्य परमात्मा के निकट पहुँचा हुआ अनुभव करने लगता है।

'मज्झिम निकाय' में तथागत का एक सुन्दर उपदेश है, वह कहते हैं– कल्पना करो कि किसी मनुष्य के पैर में विष बुझा तीर चुभ गया है। यदि यह मनुष्य कहे, मैं तब तक तीर नहीं निकलवाऊँगा जब तक मुझे ज्ञात न हो जाये कि तीर चलाने वाले का नाम, कुल और गोत्र क्या था ? वह ऊँचा था या मझले कद का। धनुष कैसा था, प्रत्यंचा कैसी थी, तीर कैसा था ?

लोग परमात्मा के सम्बन्ध में भी ऐसा ही तर्क-वितर्क वाद-विवाद करते हैं पर अपने हृदय में जीवन के बोझ, दुःख, कठिनाइयों, दैवी आपत्तियों का जो तीर चुभा हुआ है उसे निकालने की ओर किसी का ध्यान नहीं। हमें सर्वप्रथम आत्मा के दर्द को अनुभव करने की आवश्यकता है। बाह्य जीवन के प्रपंचों को छोड़कर अन्तर्मुख होने की बड़ी आवश्यकता है। बाहरी क्रियाओं को केवल सहयोगी मानना चाहिये। वे लक्ष्य, सत्य या परमात्मा की प्राप्ति का साधन बनाई जा सकती हैं, इसलिये अपने शरीर, मन और भावनाओं के केन्द्र बिन्दु को बँधने की आवश्यकता नहीं कि कौन सा तत्व कितना सुखद है, किस सुख की प्राप्ति के लिये किधर दौड़ना चाहिये। जब इन सब बातों को साधन बना लिया जाता है तो आवश्यकतायें भी घट जाती हैं और लक्ष्य भी अपने समीप ही स्पष्ट होने लगता है। उसे पाने के लिये न तो लम्बे साधनों के लिये दौड़ना पड़ता है और न घर ही छोड़ना पड़ता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपनिषदों ने-**आत्मा वारे श्रोतव्यों मन्तव्यों निदिध्यासितव्यः नान्वतोऽस्तिः विजानतः।** कहकर इसी तथ्य को व्यक्त किया है और बताया है कि विभिन्न साधनों से तुम अपने आपको पहचानो। जिस दिन आत्मशक्ति का विश्वास जाग जाता है, उस दिन परमात्मा के अस्तित्व का विश्वास जमते देर नहीं। विश्वास का जमना उतना ही आनन्ददायक है जितना परमात्मा की प्राप्ति।

मनुष्य अपनी छिपी हुई शक्तियों को पहचाने बिना शक्तिशाली नहीं बन सकता। जो जैसा अपने को जानता है या जिसकी जैसी अभीप्सा है वह वैसा ही बन जाता है। अपने को जानना सब सिद्धियों में बड़ी सिद्धि है। लाखों में एक-दो होते हैं जो अपने को जानने का यत्न करते हैं, यत्न करने वालों में भी थोड़े से ऐसे होते हैं जो आत्मा के अस्तित्व को पहचानने के लिये देर तक अपने आपको निर्दिष्ट किये रहते हैं। जिसने भी मनुष्य देह में जन्म लिया है वह आत्मा के समीप पहुँचा दिया गया है। किन्तु थोड़े ही हैं जो उसमें प्रवेश पाते हैं।

शरीर में काम-क्रोध, मोह, सन्तोष, दण्ड, दया आदि अनेकों भावनायें हैं, यह सब या तो आनन्द की प्राप्ति के लिये हैं अथवा आनन्द में विघ्न पैदा होने के कारण हैं। आनन्द सबका मूल है, वैसे ही आनन्द सबका लक्ष्य है। लक्ष्य और उसकी सिद्धि दोनों ही आत्मा में विद्यमान हैं जो आत्मा को ही लक्ष्य बनाकर आत्मा के ही द्वारा अपने आपको बेधता है वह उसे पाता भी है। आत्मा ही परमात्मा का अंश है, इसलिये आत्मा का ज्ञान हो जाने पर परमात्मा की प्राप्ति अपने आप हो जाती है।

अहं और उसकी वास्तविक सत्ता

छान्दोग्य उपनिषद् में एक कथा आती है। एक बार इन्द्र और विरोचन दो व्यक्तियों में एक जिज्ञासा पैदा हुई 'मैं क्या हूँ, वे बार-बार सोचते-विचारते लेकिन उन्हें ''मैं'' का पता नहीं लगा। आखिर दोनों मिलकर आदरपूर्वक शिष्य भाव से हाथ में समिधाएँ लेकर आचार्य प्रजापति के पास गये और नम्रतापूर्वक उनसे अपनी जिज्ञासा प्रकट की। उनके प्रश्न का जवाब देते इसके पूर्व ही प्रजापति ने उनकी योग्यता, पात्रता को जानने के लिये एक युक्ति निकाली। उन्होंने कहा, ''थाली में पानी भरकर अपना मुँह देखो, उसमें तुम्हें अपना स्वरूप दिखाई देगा।''

इन्द्र और विरोचन दोनों झट से सज धजकर पानी से भरी थाली में अपने को देखने लगे। विरोचन को अपना सजा सँवरा रूप देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई और अपने साथियों में जाकर अभिमान के साथ कहने लगा भाई मैंने तो 'मैं का पता लगा लिया है। इन्द्र कुछ बुद्धिमान था उसे सन्तोष नहीं हुआ और आचार्य प्रजापति के पास जाकर कहने लगा-''भगवान् असंकृत शरीर की प्रतिच्छाया ही प्रतिबिम्ब में दिखाई देती है। यदि यह शरीर काना, लूला, लंगड़ा होता तो प्रतिच्छाया भी वैसी ही दिखाई देती, वस्त्र-अलंकारों को उतार देने पर प्रतिबिम्ब का सौन्दर्य भी नष्ट हो जाता है और शरीर के नष्ट हो जाने पर यह भी नहीं रहता। इसलिए मैं अपना स्वरूप किसे मानूँ। मुझे इससे शान्ति नहीं मिलती'

(छान्दोग्य ८/६२)।

इन्द्र समझदार था। सोचा इन वस्त्र-अलङ्कारों से सजा हुआ शरीर ही यदि ''मैं हूँ'' तो यह निश्चित है कि इनके नष्ट होते ही मैं भी नष्ट हो जाऊँगा। इनके मैले, जीर्ण-शीर्ण होने पर ''मैं'' भी त्याज्य बन जाऊँगा। जो नष्ट होने वाली वस्तुयें हैं वह कदापि ''मैं'' नहीं हो सकतीं और इन्द्र को इससे शान्ति नहीं हुई न उसको समाधान ही मिला। अपने इस मनोभाव को उसने आचार्य के समक्ष निर्भय होकर प्रकट कर दिया। उधर विरोचन अपने सजे हुए सुन्दर वस्त्रालङ्कारों से विभूषित शरीर के प्रतिबिम्ब को ही ''मैं'' का स्वरूप जानकर के चला गया।

हममें से बहुत कम लोगों के मन में यह प्रश्न उठता है ''मैं क्या हूँ''। इसपर बहुत कम लोग ही सोचने-विचारने का प्रयत्न करते हैं। अधिकांश तो भवसागर के प्रवाह में बहने वाले ही बनकर रहते हैं। उनके मन, बुद्धि, चेतना पर अज्ञान का पर्दा इस तरह पड़ा रहता है कि वे कभी यह सोचते तक नहीं कि वे कौन हैं ? क्या करना है ? कहाँ जाना है ?

कुछ लोग मैं के अस्तित्व को शरीर तक ही मानकर विरोचन की सी भूलकर बैठते हैं और शरीर को सुख देने, खाने-पीने, खुश रहने, मौज-मजा उड़ा लेने में ही जीवन का सार समझते हैं। लेकिन यदि शरीर को ही मैं का स्वरूप मान लिया जाय तो फिर जीवन का मूल्य ही क्या रह जाता है। कोई झंझट ही फिर शेष नहीं रह जाता। कुछ करने या न करने का कोई महत्व नहीं रहता फिर ज्ञान-विज्ञान की बात कौन करे। फिर न जीने से लाभ रहता न मरने से हानि, क्योंकि सभी शरीरों की एक ही गति होती है। किसी न किसी समय में वे अन्ततः नष्ट हो जाते हैं। ज्ञानी, अज्ञानी, सत्यवादी और झूठा, सज्जन और दुर्जन सभी को तो शरीर की दृष्टि से एक दिन मिट जाना ही पड़ता है। ऐसी स्थिति में तो मरने से पहले का कोई महत्व नहीं तो मरने के बाद में कोई अस्तित्व नहीं रहता। जीवन सिर्फ दो अन्धकार के बीच की पतली सी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रेखा मात्र है। देर-सवेर में फट जाने वाले, मैले पड़ जाने वाले वस्त्रों का-सा मूल्य है, हमारे जीवन का चाहे वह सादा हो या चमकदार। लेकिन क्या हमें इतना सोच लेने भर से इन्द्र की तरह असन्तोष नहीं होता? ''मैं'' को जानने की जिज्ञासा कर इससे समाधान नहीं हो रहा ऐसा महसूस होने लगता है हमें।

फट जाने वाले, नष्ट हो जाने वाले वस्त्राभूषणों से युक्त प्रतिबिम्ब को 'मैं' का स्वरूप जान लेने से हमारी जिज्ञासा शान्त नहीं होती। क्योंकि इन्हें धारण करके हम अच्छे लगते हैं और उतार फेंकने पर कुरूप, इस तरह स्पष्ट है कि वस्त्र आभूषण ''मैं'' का परिचय नहीं हो सकते। अपना वस्त्र फट जाने पर यह भास नहीं होता कि मैं फट गया। वस्त्राभूषण उतार देने या पहने रहने पर ''मैं'' का अस्तित्व बना ही रहता है।

ठीक यही स्थिति शरीर के साथ भी है। वस्त्रों की तरह हमारा शरीर नित्य ही किसी न किसी रूप में नष्ट होता रहता है। मल-शरीर से निकलने वाले दूषित-तत्व-क्या हैं ? नष्ट हुए शरीर का अवशेष। रसायन-शास्त्री वैज्ञानिकों के प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि शरीर में नित्य असंख्यों कोष नष्ट होते हैं, असंख्यों ही नये पैदा होते हैं इस तरह शरीर की दृष्टि से तो हम नित्य ही मरते हैं और नित्य ही जन्म लेते हैं। लेकिन ''मैं'' के अस्तित्व में कोई परिवर्तन नहीं होता।''

इसी तरह शरीर का कोई अंग कट जाने पर कोई यह स्वीकार करने को तैयार नहीं होगा कि उसका ''मैं कट गया। अँगुली कट जाने पर, आँख फूट जाने पर यह तो मालूम होता है कि मेरे शरीर में कुछ क्षति हो गई है। लेकिन हमें यह विश्वास नहीं होता कि हम अपूर्ण हो गये। अपनी अज्ञात पूर्णता के अस्तित्व में हमारी सहज आस्था कम नहीं होती है। ''मैं हूँ'-यह भावना कभी नष्ट नहीं होती।

''मैं'' की खोज में हम आगे बढ़ें, इससे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि आखिर ''मैं'' को जान लेने की आवश्यकता क्यों है? बहुत से लोग तो इस सम्बन्ध में कुछ सोचते-विचारते नहीं। ऐसे लोगों को खाने-पीने, मौज उड़ाने से फुर्सत नहीं मिलती लेकिन इस तरह की प्रवृत्ति पशुत्व की द्योतक है। क्योंकि शायद ही पशुओं के मन में अपने भूत, भविष्य के बारे में सोच-विचार करने की तरंग उठती हो। उनको अपने प्रकृति प्रेरित कार्यों में लगे रहना ही प्रिय होता है।

कुछ बुद्धिमान कहे जाने वाले लोग इस महा-प्रश्न में बेकार न लगकर अपना काम करना ही अधिक अच्छा समझते हैं। वे इस जटिल प्रश्न को सुलझाने में व्यर्थ श्रम करना अच्छा नहीं समझते। लेकिन हमें क्या करना चाहिये यह निश्चय करना इससे भी कठिन है और बिना सही निश्चय के किए गए कार्य अन्ततः मनुष्य के लिए अशान्ति, असन्तोष के कारण ही बनते हैं। कर्तव्य का निश्चय भी तभी हो सकता है जब हम अपने असली अस्तित्व की जानकारी कर सकें। यदि हम शरीर ही हैं तो फिर हमारे कर्तव्यों की सीमा भी शरीर तक ही सीमित रहेगी। किसी भी कर्तव्य-अकर्तव्य का निर्णय हमें वहीं तक करना होगा जितना इस जीवन से सम्बध है। उदाहरणार्थ, हमें किसी जगह एक माह रहना हो तो वहाँ वर्षों में बनने वाले भव्य भवन बनाने की योजनायें किस काम की ? इसी तरह मैं का अस्तित्व यदि शरीर से परे महान है, लम्बा है तो हमें अपने कर्तव्यों का निर्णय भी इसी आधार पर करना पड़ेगा।

तात्पर्य यह है कि अपने-आपको जाने बिना जीवन पथ पर, कर्तव्य मार्ग पर हम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। इसके अभाव में तो हमारी स्थिति ठीक वैसी होगी, जैसे कोई मनुष्य आँखें बन्द किए जंगल में तेजी से दौड़ रहा हो। उससे पूछा जाय, ''भाई तुम क्यों दौड़ रहे हो, तुम्हें कहाँ जाना है, कहाँ से आए हो ?'' और इसका उत्तर वह अपनी अजानकारी में दे तो हम उसे पागल ही कहेंगे। क्या हमारी स्थिति भी अपने स्वरूप को जाने बिना कुछ ऐसी ही नहीं है? इसलिए 'मैं' के स्वरूप की जानकारी करना इस सम्बन्ध में प्रारम्भिक आधार खोजकर आगे बढ़ना नितान्त आवश्यक है। इसके बिना हम अपने जीवन की सही रूपरेखा न बना सकेंगे, न अपने कर्तव्यों का, अपनी गति का दिशा का सही-सही निर्धारण ही कर सकेंगे। अपने स्वरूप को जानना जीवन की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है।

सचमुच जीवन का वास्तविक लाभ वे ही उठा पाते हैं जो पहले अपने आपको जानने का प्रयत्न करते हैं। अपने को न जानने वाले व्यक्ति तो उन आधारहीन वस्तुओं की तरह हैं जिन्हें वायु का झोंका, किधर भी बहा कर ले जा सकता है। ऐसे लोगों को संसार प्रवाह में बलात् बहते रहना पड़ता है।

बिन्दु में सिन्धु

किसी की यह धारणा सर्वथा मिथ्या है कि सुख का निवास किन्हीं पदार्थों में है। यदि ऐसा रहा होता तो वे सारे पदार्थ जिन्हें सुखदायक माना जाता है, सबको समान रूप से सुखी और सन्तुष्ट रखते। अथवा उन पदार्थों के मिल जाने पर मनुष्य सहज ही सुखी, सम्पन्न हो जाता। किन्तु ऐसा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखा नहीं जाता। संसार में ऐसे लोगों की कमी नहीं, जिन्हें संसार के वे सारे पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं, जिन्हें सुख का अधार माना जाता है। किन्तु ऐसे सम्पन्न व्यक्ति भी असन्तोष, अशान्ति, अतृप्ति अथवा शोक-संतापों से जलते देखे जाते हैं। उनके उपलब्ध पदार्थ उनका दुःख मिटाने में जरा भी सहायक नहीं हो पाते।

वास्तविक बात यह है कि संसार के सारे पदार्थ जड़ होते हैं। जड़ तो जड़ ही है। उसमें अपनी कोई क्षमता नहीं होती। न तो जड़ पदार्थ किसी को स्वयं सुख दे सकते हैं और न दुःख। क्योंकि उनमें न तो सुखद तत्व होते हैं और न दुःखद तत्व और न उनमें सक्रियता ही होती है जिससे वे किसी को अपनी विशेषता से प्रभावित कर सकें। यह मनुष्य का अपना आत्म-तत्व ही होता है, जो उससे सम्बन्ध स्थापित करके उसे सुखद या दुःखद बना लेता है। आत्म-तत्व की उन्मुखता ही किसी पदार्थ को किसी के लिये सुखद और किसी के लिये दुःखद बना देती है।

जिस समय मनुष्य का आत्म-तत्व सुखोन्मुख होकर पदार्थ से सम्बन्ध स्थापित करता है, वह सुखद बन जाता है और जब आत्म तत्व दुःखोन्मुख होकर सम्बन्ध स्थापित करता है, तब वही पदार्थ उसके लिये दुःखद बन जाता है। संसार के सारे पदार्थ जड़ हैं, वे अपनी ओर से न तो किसी को सुख दे सकते हैं और न दुःख। यह मनुष्य का अपना आत्म-तत्व ही होता है, जो सम्बन्धित होकर उनको दुःखदायी अथवा सुखदायी बना देता है यह धारणा कि सुख की उपलब्धि पदार्थों द्वारा होता है, सर्वथा मिथ्या और अज्ञानपूर्ण है।

किन्तु खेद है कि मनुष्य अज्ञानवश सुख-दुःख के इस रहस्य पर विश्वास नहीं करते और सत्य की खोज संसार के जड़ पदार्थ में किया करते हैं। पदार्थों को सुख का दाता मानकर उन्हें ही संचय करने में अपना बहुमूल्य जीवन बेकार में गँवा देते हैं। केवल इतना ही नहीं कि वे सुख की खोज आत्मा में नहीं करते बल्कि पदार्थों के चक्कर में फँसकर उनका संचय करने के लिये अकरणीय कार्य तक किया करते हैं। झूँठ, फरेब, मक्कारी, भ्रष्टाचारी, बेईमानी आदि के अपराध और पाप तक करने में तत्पर रहते हैं। सुख का निवास पदार्थों में नहीं आत्मा में है। उसे खोजने और पाने के लिए पदार्थों की ओर नहीं आत्मा की ओर उन्मुख होना चाहिये।

पदार्थों का उपभोग इन्द्रियों द्वारा होता है। इन्द्रियों के सक्रिय और सजीव होने से ही किसी रस, सुख अथवा आनन्द की अनुभूति होती है। जब तक मनुष्य समर्थ अथवा युवा बना रहता है, उसकी इन्द्रियाँ सतेज बनी रहती हैं। पदार्थ और विषयों का आनन्द मिलता रहता है। पर जब मनुष्य वृद्ध अथवा अशक्त हो जाता है, उन्हीं पदार्थों में जिनमें पहले विभोर कर देने वाला आनन्द मिलता था, एक दम नीरस और स्वादहीन लगने लगते हैं। उनका सारा सुख न जाने कहाँ विलीन हो जाता है। वास्तविक बात यह है कि असक्तता की दशा अथवा वृद्धावस्था में इन्द्रियाँ निर्बल तथा अनुभवशीलता से शून्य हो जाती हैं उनमें किसी पदार्थ का रस लेने की शक्ति नहीं रहती। इन्द्रियों का शैथिल्य ही पदार्थों को नीरस, असुखद तथा निस्सार बना देता है।

वृद्धावस्था ही क्यों ? बहुत बार यौवनावस्था में भी सुख की अनुभूतियाँ समाप्त हो जाती हैं। इन्द्रियों में कोई रोग लग जाने अथवा उनको चेतनाहीन बना देने वाली कोई घटना घटित हो जाने पर भी उनकी रसानुभूति की शक्ति नष्ट हो जाती है। जैसे रसेन्द्रिय जिह्वा में छाले पड़ जायें तो मनुष्य कितने ही सुस्वाद पदार्थों का सेवन क्यों न करे उसे उसमें किसी प्रकार का आनन्द न मिलेगा। पाचन क्रिया निर्बल हो जाय तो कोई भी पौष्टिक पदार्थ बेकार हो जायेगा। आँखें विकार युक्त हो जायँ तो सुन्दर से सुन्दर दृश्य भी कोई आनन्द नहीं दे पाते। इस प्रकार देख सकते हैं कि सुख पदार्थ में नहीं बल्कि इन्द्रियों की अनुभूति शक्ति में है।

अब देखना यह है कि इन्द्रियों की शक्ति क्या है ? बहुत बार लोग देखने को मिलते हैं, जिनकी आँखें देखने में बहुत, सुन्दर स्वच्छ तथा विकार-हीन होती हैं, लेकिन उन्हें दिखाई नहीं पड़ता। परीक्षा करने पर पता चलता है कि आँखों का तन्त्र भी ठीक है। उनमें आने-जाने वाली नस-नाड़ियों की अवस्था भी ठीक है। तथापि दिखलाई नहीं देती। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियाँ, हाथ-पाँव, नाक-कान आदि की भी दशा हो जाती है। सब तरफ से सब वस्तुयें ठीक होने पर भी इन्द्रिय निष्क्रिय अथवा निरानुभूति ही रहती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि रस की अनुभूति इन्द्रियों की स्थूल बनावट से नहीं होती। बल्कि इससे भिन्न कोई दूसरी वस्तु है, जो रस की अनुभूति कराती है। वह वस्तु क्या है? वह वस्तु है चेतना, जो सारे शरीर, मन, प्राण में ओत-प्रोत रहकर मनुष्य की इन्द्रियों को रसानुभूति की शक्ति प्रदान करती है। इसी सब ओर से शरीर में ओत-प्रोत चेतना को आत्मा कहते हैं। आनन्द अथवा सुख का निवास आत्मा में ही है। उसी की शक्ति से उसकी अनुभूति होती है और वही जीव रूप में उसका अनुभव भी करती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुख न पदार्थों में है और न किसी अन्य वस्तु में। वह आत्मा में ही जीवात्मा द्वारा अनुभव किया जाता है।

मनुष्य की अपनी आत्मा ही सब कुछ है। आत्मा से रहित वह एक मिट्टी का पिण्ड मात्र ही है। शरीर से जब आत्मा का सम्बन्ध समाप्त हो जाता है तो वह मुर्दा हो जाता है। शीघ्र ही उसे बाहर करने और जलाने, दफनाने का प्रबन्ध किया जाता है। संसार के सारे सम्बन्ध आत्मा द्वारा ही सम्बन्धित हैं। जब तक जिसमें आत्मभाव बना रहता है, उसमें प्रेम और सुख आदि की अनुभूति बनी रहती है और जब यह आत्मीयता समाप्त हो जाती है वह वस्तु या व्यक्ति अपने लिए कुछ भी नहीं रह जाता। किसी को अपना मित्र बड़ा प्रिय लगता है। उससे मिलने पर हार्दिक आनन्द की उपलब्धि होती है। न मिलने से बेचैनी होती है। किन्तु जब किन्हीं कारणोंवश मैत्री भाव समाप्त हो जाता है अथवा आत्मीयता नहीं रहती तो वही मित्र अपने लिए एक सामान्य व्यक्ति बन जाता है। उसके मिलने न मिलने में किसी प्रकार का हर्ष-विषाद नहीं होता। बहुत बार तो उससे इतनी विमुखता हो जाती है कि मिलने अथवा दिखने पर अन्यथा अनुभव होता है, प्रेम, सुख और आनन्द की सारी अनुभूतियाँ आत्मा से ही सम्बन्धित होती हैं, किसी वस्तु विशेष, व्यक्ति अथवा पदार्थ से नहीं। सुख का संसार आत्मा में ही बसा हुआ है। उसे उसमें ही खोजना चाहिये। सांसारिक विषयों अथवा वस्तुओं में भटकते रहने से वही दिशा और वही परिणाम सामने आयेगा, जो मरीचिका में भूले मृग के सामने आता है।

मनुष्य की अपनी विशेषता ही उसके लिये उपयोगिता तथा स्नेह-सौजन्य उपार्जित करती है। विशेषता समाप्त होते ही मनुष्य का मूल्य भी समाप्त हो जाता है और तब वह न तो किसी के लिए आकर्षक रह जाता है और न प्रिय ? इस बात को समझने के लिए सबके अधिक निकट रहने वाले माँ और बच्चे को ले लीजिये। माता से जब तक बच्चा दूध और जीवन रस पाता रहता है, उसके शरीर के अवयव की तरह चिपटा रहता है। उसे माँ से असीम प्रेम होता है। जरा देर को भी वह माँ से अलग नहीं हो सकता। माँ उसे छोड़कर कहीं गई नहीं कि वह रोने लगता है। किन्तु जब इसी बालक को अपनी सुरक्षा तथा जीवन के लिये माँ की गोद और दूध की आवश्यकता नहीं रहती अथवा रोग आदि के कारण माँ की यह विशेषता समाप्त हो जाती है तो बच्चा उसकी जरा भी परवाह नहीं करता। वह उससे अलग ही रहने लगता है और स्तन के स्थान पर शीशी से ही बहल जाता है। मनुष्य की विशेषतायें ही किसी के लिए स्नेह, सौजन्य, प्रेम आदि की सुखदायक स्थितियाँ उत्पन्न करती हैं।

किन्तु मनुष्य की इस विशेषता का स्त्रोत क्या है? इसका स्त्रोत भी आत्मा के सिवाय और कुछ नहीं है। बताया जा चुका है कि आत्मा से असम्बन्धित मनुष्य शव से अधिक कुछ नहीं होता। जो शव है, मुर्दा है अथवा अचेतन या जड़ है, उसमें किसी प्रकार की प्रेमोत्पादक विशेषता के होने का प्रश्न ही नहीं उठता। मनुष्य के मन, प्राण और शरीर तीनों का संचालन, नियन्त्रण तथा पोषण आत्मा की सूक्ष्म सत्ता द्वारा ही होता है। आत्मा और इन तीनों के बीच जरा सा व्यवधान आते ही सारी व्यवस्था बिगड़ जाती है। सुन्दर, सुगठित और स्वस्थ शरीर की दुर्दशा हो जाती है। प्राणों का स्पन्दन तिरोहित होने लगता है और मन मतवाला होकर मनुष्य को उन्मत्त और पागल बना देता है।

ऐसी भयावह स्थिति में संसार का कोई व्यक्ति, कोई आत्मीय और कोई स्वजन-सम्बन्धी न तो प्रेम कर सकता है और न स्नेह-सौजन्य के सुखद भाव ही प्रदान कर सकता है। यह केवल मनुष्य की अपनी आत्मा ही है, जो उसका सच्चा मित्र, सगा-सम्बन्धी और वास्तविक शक्ति है। इसी के कारण मनुष्य गुणों और विशेषताओं का स्वामी बनकर अपना मूल्य बढ़ाता है और पाता है। जीवन में सुख, सौख्य के उत्पादन, अभिवृद्धि और रक्षा के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह आत्मा की ही शरण रहे। उसे ही अपना माने, उससे ही प्रेम करे और उसे ही खोजने-पाने में अपने जीवन की सार्थकता समझे।

सुख का निवास किसी व्यक्ति, विषय अथवा पदार्थ में नहीं है। उसका निवास आत्मा में ही है। संसार के सारे पदार्थ जड़ और प्रभावहीन हैं किसी को सुख-दुःख देने की उनमें अपनी क्षमता नहीं होती। पदार्थों अथवा विषयों में सुख-दुःख का आभास उनके प्रति आत्म-भाव के कारण ही होता है। आत्म-भाव समाप्त हो जाने पर वह अनुभूति भी समा हो जाती है। हमारी आत्मा ही विभिन्न पदार्थों पर अपना प्रभाव डालकर उन्हें आकर्षक तथा सुखद बनाती है। अन्यथा संसार के सारे विषय, सारी वस्तुयें, सारे पदार्थ और सारे भोग, नीरस, निःसार तथा निरुपयोगी हैं। जड़ होने से सभी कुछ कुरूप तथा अग्राह्य हैं।

जिस पदार्थ के साथ जितने अंशों में अपनी आत्मा घुली-मिली रहती है, उतने ही अंशों में वह पदार्थ प्रिय, सुखदायी और ग्रहणीय बना रहता है और आत्मा का सम्बन्ध जिस पदार्थ से जितना कम होता जाता है, वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उतना ही अपने लिये कुरूप और अप्रिय बनता जाता है। आनन्द और प्रियता का सम्बन्ध पदार्थों से नहीं स्वयं आत्मा से ही होता है। अस्तु, आत्मा को ही प्यार करना चाहिए, उसे ही तेजस्वी और प्रभावशाली बनाना चाहिए, जिससे हमारा सम्बन्ध उसी से दृढ़ हो और उसके उपलक्ष में ही संसार को प्रेम और सुख दे सकें। हमारी अपनी आत्मा ही ज्ञान-विज्ञान का केन्द्र है। सुख-शांति का मूल आधार है। उन्नति और समृद्धि का बीज उसी में छिपा है, स्वर्ग और मुक्ति का आधार वही है। कल्पवृक्ष बाहर नहीं अपनी आत्मा में ही अवस्थित है, आत्मा में ही सब कुछ है और आत्मा स्वयं ही सब कुछ है। उसे ही सर्वत्र और सारे सुखों का मूल और शांति का स्रोत मानकर उसकी उपासना करनी चाहिये। जिसने आत्मा को अपना बना लिया, जिसने आत्मा को देख लिया, उसने सब कुछ देख लिया और जिसने आत्मा को प्राप्त कर लिया, उसने निश्चय ही सारे सुख, सारे सौख्य और सारे रस, आनन्द एक साथ एक स्थान पर ही सदा के लिये प्राप्त कर लिये।

आत्म-बल हमारी सबसे बड़ी वैभव-विभूति

ईश्वर की कृपा स्वरूप - उनके कृपा और अनुग्रह के रूप में - एक ही पुरस्कार मिलता है 'आत्म-बल' । यह वह कल्प वृक्ष है, जिसके नीचे बैठकर हर कामना के समाधान का मार्ग मिल सकता है । यह वह पारस है, जिसको छूकर छोटी परिस्थिति में पड़ा हुआ लोहे जैसा लगने वाला व्यक्ति भी स्वर्ण जैसा शोभायमान और बहुमूल्य बन सकता है। जिसके पास आत्म-बल है, उसके पास कभी किसी वस्तु की कमी नहीं रह सकती ।

गायत्री महामन्त्र में सविता देवता के वरेण्य वर्ण की याचना अथवा उपासना की जाती है । तेजस्वी परमात्मा हमें ब्रह्म तेज प्रदान करेंगे तो फिर और कमी किस बात की रह जायेगी । स्वर्ण मुद्रा के बदले संसार भर में कहीं भी, कोई भी, वस्तु खरीदी जा सकती है । आत्म-तेज के बदले में भी हर क्षेत्र में प्रगति का पथ-प्रशस्त किया जा सकता है । जिसे यह दैवी वरदान मिल गया, वह धन्य हो गया और जिसे इससे वंचित रहना पड़ा उसके लिये प्रचुर सुविधा सामग्री होते हुए भी पग-पग पर भय चिन्ता, निराशा, आशंका, बेचैनी के दृश्य ही दृष्टिगोचर होते रहेंगे। उसे कभी चैन की नींद सोने का अवसर न मिलेगा।

अपना स्वरूप, अपना वर्चस्व, अपना महत्त्व न समझने का नाम ही अज्ञान है । बहुत पढ़ा होने पर भी कोई व्यक्ति अज्ञानी ही रहेगा, यदि उसे आत्म-बोध नहीं हुआ । ऐसा अज्ञानी अन्धकार में भटकता है और उपनिषद् की भाषा में 'असुर्या' नामक तमसाछन्न नरक में दुःख, दैन्य की यातना सहता हुआ, रोता कलपता जीवन भार वहन करता है ।

यदि हममें आत्मा है-अपने भीतर आत्म-तत्व विद्यमान है तो फिर उसका स्वाभाविक गुण आत्म-बल भी अपने भीतर होना ही चाहिये, उसे कहीं बाहर ढूँढ़ना नहीं पड़ता और न कहीं बाहर से लाना पड़ता है वह तो अजस्र मात्रा में अपने ही भीतर विद्यमान् है । केवल उसे उभारना, निखारना, सँभालना भर है । इतने भर प्रयत्न को यदि साधना कहा जाता हो तो उसे कहने, मानने में भी कोई हर्ज नहीं है। इस साधना का यही स्वरूप है कि हम परम शक्तिशाली स्वरूप की अनुभूति करें और यह समझें कि अपने चारों ओर जो वातावरण घिरा हुआ है, वह मकड़ी के जाले की तरह अपना ही कर्तृत्व है । हमारी भीतरी स्थिति ही बाहरी क्षेत्र में सुख-दुःख अथवा सुविधा-असुविधा का रूप धारण कर घूमती रहती है । हम कारण हैं और परिस्थितियाँ करण। अपनी मान्यतायें और गतिविधियाँ ही हैं, जो आरोह, अवरोह बनकर हमें हँसाने-रुलाने के लिए छाया-चित्र की तरह आती जाती रहती हैं।

हम आज जैसे भी कुछ हैं अपनी ही मान्यताओं के कारण बने हैं । अपना आन्तरिक ढाँचा बदल दें तो बाह्य परिस्थितियों का स्वरूप बदलने में तनिक भी देर न लगेगी। भवसागर के बन्धन, जंजीरें किसी और ने नहीं बाँधी हैं, उन्हें हमने स्वयं ही बनाया और धारण किया है । माया नाम की भवबन्धन में बाँधने वाली सत्ता का अस्तित्व संसार में अन्यत्र कहीं नहीं है, उसे अपनी प्रतिगामी मान्यताओं की प्रतिक्रिया मात्र समझना चाहिये ।

गुण, कर्म, स्वभाव की दुर्बलतायें ही हमारी प्रगति में मुख्य बाधायें हैं । यदि अपने में सद्गुणों का, सत्कर्मों का, सत्प्रवृत्तियों का, सद्स्वभाव का बाहुल्य हो तो निश्चित् रूप से सम्पदायें और विभूतियाँ चारों ओर से खिंचकर हमारे आसपास जमा होंने लगेंगी । पुष्प खिलता है तो उस पर भ्रमर, मधुमक्खी, तितली अनायास ही मँडराने लगते हैं। मनुष्य का अन्तःकरण परिष्कृत हो, व्यक्तित्व उत्कृष्ट बने तो कोई कारण नहीं कि उसे प्रगति-पथ पर अग्रसर होने के लिये प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष व्यक्तियों और सूक्ष्म चेतनाओं का सहयोग न मिले । विभिन्न क्षेत्रों में आश्चर्यजनक प्रगति कर सकने वाले व्यक्तियों की सफलताओं का मूल कारण यदि बारीकी से तलाश किया जाये तो एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि उन्होंने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने सद्गुणों को बढ़ाया, उनसे गतिविधियाँ सुव्यवस्थित बनीं, इससे दूसरे लोग प्रभावित हुए, उन्हें प्रमाणित माना। प्रामाणिकता को सहयोग मिलता है । जिसे जन श्रद्धा एवं सहयोग उपलब्ध है, उसके लिये प्रगति पथ पर आगे बढ़ने के मार्ग में आने वाले अवरोध तृण के समान हैं । वे दीखते भर हैं, सामने आते ही चूर-चूर हो जाते हैं । आत्मा की शक्ति इतनी प्रचण्ड है कि उसके सामने किसी संकट का ठहर सकना सम्भव नहीं ।

आत्म-बल का प्रकाश ही नगण्य से मानव-जीवन को विभूतिवान बनाता है । जीवन की लाश ढोने वाले करोड़ों नर-पशुओं के बीच जो भी अपना अनुकरणीय प्रकरण इतिहास में पृष्ठों पर छोड़ सकने वाले थोड़े से नर-रत्न होते हैं, उनमें दूसरों की अपेक्षा एक ही विशेषता-आत्म-बल की अधिकता होती है । इसके बिना कोई तन कर खड़ा नहीं हो सकता, न कोई महत्त्वपूर्ण निर्माण करता है और न उन महान् कार्यों का सम्पादन करने का साहस कर सकता है, जो मानव-जीवन को आनन्द और उल्लास से परिपूर्ण प्रकाशवान् एवं धन्य बनाते हैं । आत्म-बल ही वह जीवन-तत्व है, जो साँस लेते हुए जीवित मृत के टिड्डी दल में से किसी सजीव को सूर्य-चन्द्र की तरह चमकने में समर्थ बना सकता है ।

आत्म-बल का रत्न-भण्डार आत्म-चेतना की भूमिका में जागृत होने पर ही उपलब्ध होता है । 'मैं आत्मा हूँ' यह मान्यता यदि अन्तरात्मा के गहन अन्तरंग तक प्रवेश कर जाये तो व्यक्ति सचमुच यह अनुभव करने लगे कि वह शरीर एवं मन से ऊपर उठी हुई ईश्वरीय पवित्रता एवं महानता से सुसम्पन्न आत्मा है । उसे अपनी गतिविधियाँ आत्मा के कर्तव्य और गौरव के अनुरूप बनाती हैं तो इस भावना की प्रतिध्वनि उसके रोम-रोम में गूँज उठेगी और नये सिरे से उसे विचार करना होगा कि उसका जीवन लक्ष्य, कर्त्तव्य एवं गन्तव्य मार्ग कहाँ है ? इन प्रश्नों का उत्तर कठिन नहीं है । हर अन्तःकरण में इन प्रश्नों का उत्तर मौजूद है । उसे किसी गुरु या शास्त्र से पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी ।

आत्म-चेतना की भूमिका में अन्तःकरण जाग पड़े तो इसे महानतम सौभाग्य कहना चाहिए । ईश्वर का यही सबसे बड़ा अनुग्रह, देवताओं का सबसे बड़ा वरदान और गुरुजनों का यही सबसे बड़ा आशीर्वाद है । नर-तन की सार्थकता इस महान जागरण पर ही अवलम्बित है । जो इस भूमिका में जगा, उसी ने अपने अन्तरंग और बहिरंग जीवन को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढाला और उसी की गतिविधियाँ आदर्शवादिता का महान् प्रकाश बनकर इतिहास के पृष्ठों पर चमकीं । स्वाँति बूँद पड़ने से सीप में मोती, केले में कपूर, बाँस में वंशलोचन, सर्प में मणि उत्पन्न होने की बात सुनी गई है ।

यह बातें प्रामाणिक हों चाहे अप्रामाणिक, पर यह नितान्त सत्य है कि आत्म-चेतना की भूमिका में जगा हुआ मनुष्य नर से नारायण बन जाता है । पपीहे की प्यास स्वाँति नक्षत्र का जल पीने से शान्त होती सुनी गई है, कह नहीं सकते कि यह कहाँ तक ठीक है पर यह नितान्त सत्य है कि आत्मा की प्यास तभी बुझती है, जब अन्तःकरण, आत्मचेतना की भूमिका में जाग जाता है और यह अनुभव करता है कि मैं शरीर और मन नहीं वरन् अविनाशी आत्मा हूँ । मुझे शरीर और मन की लपक बुझाते रहने के लिए नहीं वरन् आत्मा के गौरव की कथा करने के लिए इस बहुमूल्य मानव-जीवन के एक-एक क्षण का सदुपयोग करना है ।

इस धर्मसंकट की घड़ी में आत्मा को महाभारत के अर्जुन की स्थिति में खड़ा होना होता है । चिर-परिचित, चिर-अभ्यस्त पुरानी मान्यतायें एवं गतिविधियों के प्रति मोह, ममता का होना स्वाभाविक है । अर्जुन अपने चारों ओर स्वजन-सम्बन्धियों से घिरा हुआ और खड़ा हुआ देखता है । वे सभी विरोधी बने हुए हैं । इनसे कैसे लड़ा जाय । यह मोह अर्जुन को आ घेरता है और वह गांडीव को नीचे रखकर बैठ जाता है । आत्म-भूमिका में जागृत हुआ व्यक्ति अपनी वर्तमान गतिविधियों पर दृष्टि डालता है तो वे निरर्थक बाल-क्रीड़ा मात्र दीखती हैं । जरा-सा पेट, थोड़े से परिश्रम से गुजर की सम्भावना फिर अधिकाधिक धन कमाने के पीछे जीवन-लक्ष्य के लिये अनावश्यक कर्त्तव्यों की उपेक्षा, क्यों कुत्ते द्वारा सूखी हड्डी चबाते जाने पर अपने ही जबड़ों का रक्त पीकर उसे जो प्रसन्नता होती है, वैसा ही अनुकरण इन्द्रिय-वासना के लिये जीवन-तत्व को निचोड़ते हुए करते रहने में क्या बुद्धिमत्ता है ?

अनेकों दोष दुर्गुणों और अवांछनीय क्रिया-कलापों में संलग्न जीवन क्रम से इतना मोह किसलिये ? यह प्रश्न उत्पन्न होते हैं । कर्त्तव्य कहता है पुराने ढर्रे को तोड़ो, इससे लड़ो और अवांछनीय को हटाओ । पर अर्जुन का मोह उस पुराने, चिर-अभ्यास, चिर-परिचित ढर्रे को छोड़ने, तोड़ने का साहस नहीं कर पाता और सोचता है जैसा चल रहा है, वैसा ही चलने दिया जाय । कर्त्तव्य पालन यदि इतना झंझट भरा है, आत्म-जागरण का यदि इतना महँगा मूल्य चुकाना पड़ता है तो उसे छोड़ ही क्यों न दिया जाय ?

गीता ग्रन्थ आत्मा की इसी समस्या को सुलझाने के लिए लिखा गया है । भगवान् से अनेक तर्कों और तथ्यों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के आधार पर अर्जुन को समझाया कि यह चिर-परिचित गतिविधियाँ, कुटुम्बी, सम्बन्धियों की तरह अति निकटवर्ती और प्रिय बन गई हैं, फिर भी इन्हें जहाँ के तहाँ यथावत् रहने दिया गया तो अनीति और पाप का ही दौर बना रहेगा । साधना समर में अपने ही अज्ञान असुर से तो लड़ना पड़ता है, यदि इस संघर्ष संग्राम से इन्कार किया गया तो वीर क्षत्रियों को मिलने वाले श्रेय और स्वर्ग से वंचित रहना पड़ेगा । कर्त्तव्य धर्म के साथ संघर्ष जुड़ा हुआ है । यदि संघर्ष से मुख मोड़ना है तो कर्त्तव्य धर्म भी छोड़ना पड़ेगा । अतएव अर्जुन चिर-परिचितों का चिर-सहचरों का मोह छोड़ और वह कर जिससे श्रेयस की साधना सम्पन्न होती है।

आत्म-बल उपलब्ध करने की साधना करने वाले हर साधक को अर्जुन का अनुसरण करते हुए अग्नि परीक्षा में होकर गुजरना होता है । उसे सबसे पहला काम आत्म-निरीक्षण द्वारा अपनी दुष्प्रवृत्तियों और मूर्खताओं का निराकरण करना होता है । जो गतिविधियाँ शरीर और मन को प्रसन्नता दें पर आत्मा को भूखा मारें, उन्हें मूर्खता नहीं तो और क्या कहा जाय ? जो प्रवृत्तियाँ नश्वर संसार की विनोदात्मक हलचलों में रस लेने के लिए प्रेरित करती रहें - उसके लिए कुकर्म करने तक के लिये फुसलावें और आत्मा को नारकीय यातनायें सहने को विवश करें, उन्हें मूर्खता नहीं तो और क्या कहें ? विवेक भूमिका में जागृत आत्मा यदि अपनी मूर्खताओं को भी न हटा सका तो उसके जागरण का आखिर प्रयोजन ही क्या रहा ?

आत्म-बल वे उपार्जित करते हैं, जो आत्म-समीक्षा और आत्म-सुधार के लिए अपनी चिर-अभ्यस्त गतिविधियों को उलट-पुलट डालने का साहस कर सकें और मार्ग में जो उपहास, विरोध, कष्ट एवं अवरोध सहना पड़े, उसे धैर्यपूर्वक सहन कर लें । भौतिक एवं आत्मिक प्रगति के लिए, सम्पत्तियों और विभूतियों से सुसम्पन्न बनने के लिये, आत्म-बल आवश्यक है । उसकी उपयोगिता हमें जाननी ही चाहिए और संसार में इस एकमात्र सार तत्व को प्राप्त करने के लिए कुछ उठा न रखना चाहिए । संसार के सारे वैभव आत्म-बल की तुलना में तुच्छ हैं । जिसके पास आत्म-बल सम्पन्न है, उसके लिये इस संसार में ऐसा कुछ नहीं जिसे असम्भव कहा जा सके ।

आत्म परिष्कार से परब्रह्म की प्राप्ति

राजा जनक ने महर्षि याज्ञवल्क्य से पूछा भगवन् यदि आपने-अपने जीवन में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें सुनी हों तो कृपा कर उनका सारांश मुझे बता दीजिए ।

उन्होंने स्मरण करके पाँच अति महत्त्वपूर्ण बातें बताईं और कहा - राजन् मैं इन्हीं तथ्यों को आधार मानकर आगे चला हूँ तुम भी यदि इन्हें ध्यानपूर्वक सुनो और हृदयंगम करो तो कृतार्थ हो सकते हो ।

महर्षि ने बताया आचार्य शैक्तानि ने उन्हें एक बार उपदेश दिया था कि - 'वाक् ब्रह्म है । वाक् आयतन है। वाक् की प्रतिष्ठा का आधार आकाश है । अर्थात् यह वाणी परमात्मा का स्वरूप है । यह समस्त संसार वाणी से प्रभावित होता है । जो कुछ इस संसार में दिखाई पड़ता है - वाणी का प्रभाव है ।

शब्दों को नाप-तोलकर सारगर्भित आधार पर अपने और दूसरों के कल्याण के लिये बोला जाय तो परमात्मा की ओर चलने में प्रगति होती है । मन्त्रों के आधीन देवता हैं और वे देवता उस ब्राह्मण के आधीन हैं जो एक-एक शब्द को मन्त्र समझकर श्रेष्ठतम सदुपयोग के लिये बोलते हैं । अपने शत्रु, मित्र इस वाणी के आधार पर ही घटते-बढ़ते हैं । निर्माण और विनाश की - उत्कर्ष और अपकर्ष की सम्भावना वाक् कौशल पर निर्भर रहती है । यही वाणी अपनों को पराया बना देती है और परायों को अपना कर लेती है । वाक् में मधुरता, नम्रता, सज्जनता और हित-परायणता घुली हुई हो तो उससे बोलने वाले का सम्मान बढ़ता है और प्रभाव । परिष्कृत वाणी से यह सारा संसार तरंगित होता है और अशुभ की शुभ में परिणति सम्भव हो जाती है । वाणी की पवित्रता अन्तःकरण को पवित्र करती है उससे यह सारा विश्व पवित्र होता है । सो वह वाक् ही ब्रह्म है ।

राजा जनक ने पूछा और कुछ आपने ऐसा ही सारगर्भित सुना हो तो उसे भी कहिये ।

याज्ञवल्क्य ने कहा - दूसरा ऐसा ही उपदेश मुझे आचार्य शल्थयान ने दिया था । उन्होंने कहा था - यह प्राण ब्रह्म है । प्राण के भीतर सब कुछ भरा है । आकाश में उसी की प्रतिष्ठा है । अर्थात् साहस रूपी प्राण के द्वारा भौतिक पदार्थों से लेकर परम आत्म-तत्व ब्रह्म तक की प्राप्ति हो सकती है । यह संसार प्राण के कारण ही जन्मा और गतिशील है । यहाँ सब कुछ प्राण से ही ओत-प्रोत है । प्राण के बिना जो शेष रह जाता है, वह शून्य या अन्धकार रहता है । इस संसार में उसी की प्रतिष्ठा है जो प्राणवान है । जो सुन्दर और सक्रिय दीखता है वह प्राण ही है । यदि वह न रहे तो यहाँ कुरूपता और नीरवता के अतिरिक्त और कुछ दिखाई न देगा । देखने लायक केवल प्राण है । जो कुछ आकर्षक है उसे प्राण का प्रभाव ही कहना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विभूतियों और सिद्धियों का आधार वह प्राण ही है जिसे जीवन के रूप में देखा जाता है, उसी को बल-पुरुषार्थ या पराक्रम कहते हैं । प्रयत्नों और उपंगों के अन्तरंग में जो कुछ समर्थ दीख पड़ता है - उसे साहस कहते हैं । यह प्राण ही विभिन्न प्रवृत्तियों के रूप में पुरुषार्थ बनकर परिलक्षित होता है । इस क्षमता से रहित होने पर इस संसार में सब कुछ होने पर भी - कुछ मिलता नहीं है । निष्प्राण मनुष्य मृतक ही है । जिसमें साहस नहीं उसे भी मृतक ही कहना चाहिये । जो जीवन रूपी संघर्ष में अड़ा-खड़ा रहता और कठिनाइयों को परास्त करने के लिये पराक्रम दिखाता है उससे साहस रूपी प्राण प्रतिष्ठा होती है । प्राणवान् को ही लोक चाहता है और उसी का साथ देता तथा सहयोग करता है। मनुष्य का वैभव और आकर्षण उसके प्राण शक्ति के आधार पर घटता-बढ़ता रहता है । ब्रह्म की प्राप्ति परम पुरुषार्थ है, इसे आत्मबल सम्पन्न लोग ही प्राप्त करते हैं। भौतिक सिद्धियाँ भी मनोबल सम्पन्नों को ही मिलती हैं। सो इस संसार तथा जीवन का सार इस प्राण रूपी साहस को ही समझना चाहिए।

जनक ने फिर पूछा भगवन् ऐसा ही श्रेयस्कर उपदेश आपने कहीं अन्यत्र सुना हो तो कृपा कर उसे भी मुझे बता दजिये।

याज्ञवल्क्य बोले राजन् एक बार ऐसी ही महत्त्वपूर्ण शिक्षा मुझे आचार्य वकर्णाष्ण द्वारा प्राप्त हुई थी– उन्होंने कहा था - यह चक्षु ब्रह्म है । इस विश्व में चक्षु का ही आयतन है और इस आकाश में चक्षु की ही प्रतिष्ठा है । अर्थात् जो देखा जाता है वही हमें प्रभावित करता है । जिसे हम देखते हैं वही प्रकाशित करता है । देखने से वस्तुओं का रूप बदल जाता है और दृष्टिपात से, कुरूप से सौन्दर्य और निर्जीव से जीवन सम्पन्न होता है । यह संसार हमारी दृष्टि की ही प्रतिक्रिया है । जो कुछ सम्मानित होता है वह दृष्टिकोण ही है । देखने से श्रेष्ठ में निकृष्टता पैदा होती है और निकृष्ट श्रेष्ठ बन जाता है । दृष्टि ही प्रकाशवान सूर्य है और शान्तिदायक चन्द्रमा। सो इन चक्षुओं को ब्रह्म ही मानना चाहिये ।

इस संसार की सभी वस्तुएँ पंच तत्वों से बनी होने के कारण निर्जीव हैं । न वे कुरूप हैं न सुन्दर न उनका उपयोग है न महत्व । उन पदार्थों में सौन्दर्य उत्पन्न करने और उन्हें आकर्षक, उपयोगी बनाने का श्रेय अपने दृष्टिकोण का ही है । जिनके गुण ढूँढ़े जाते हैं वह गुणवान होता है और जिसके दोष निहारने लगें वही अनुपयुक्त एवं घृणास्पद लगता है । इन आँखों से संसार में जो श्रेष्ठ है उसी को देखें, समझें तो श्रेष्ठता बढ़ती जाती है संसार सुन्दर लगता है । पर यदि निकृष्ट को देखने में रुचि हो तो अपनी निकृष्टता बढ़ेगी साथ ही यहाँ घुटन उत्पन्न करने वाला दुरित ही सर्वत्र फैला प्रतीत होगा । प्रतिष्ठा उसकी है जो प्यार और आत्मभाव की दृष्टि से देखना चाहते हैं, जिन आँखों में करुणा, दया, क्षमा और पवित्रता दमकती रहती है वि किसी को भी प्रभावित कर सकती हैं । भावपूर्ण दृष्टिपात से सब कुछ सुखद प्रतीत होता है । यदि नेत्र न हों तो सर्वत्र अन्धकार ही है तब समस्त संसार का स्वरूप ही अस्त हो जायेगा, इसलिये इन नेत्रों को सूर्य-चन्द्र भी कहते हैं । वे ही ब्रह्म हैं ।

राजा की उत्सुकता बढ़ती गई उन्होंने अधीर होकर फिर पूछा ऋषिवर, ऐसा ही मार्मिक प्रवचन आपने किसी और तत्वज्ञानी से सुना हो तो उसे भी मुझ पर प्रकट करने का अनुग्रह कीजिये ।

महर्षि को एक और प्रसंग स्मरण आया और उनसे कहा–जनक, एक बार ऐसा ही उपदेश मुझे आचार्य दिपीन भारद्वाज ने दिया था । उन्होंने कहा था यह श्रोत्र ही ब्रह्म हैं । कानों का ही इस विश्व में आयतन है, कर्ण की ही प्रतिष्ठा है । यह आकाश श्रोत्रि में आच्छादित हो रहा है । अर्थात् जिस स्तर के शब्द हम सुनते हैं वैसे ही भाव उत्पन्न होते हैं वैसी ही प्रकृति बनती है और वैसे ही कर्म करना आरम्भ हो जाता है । इस संसार में सभी प्रकार के भले-बुरे शब्दों का प्रवाह बहता रहता है । उनमें से जिसकी कर्णेन्द्रिय श्रेय साधक वचनों का चयन करती है, मंगलमय बातों को ही ग्रहण करती है उसे ब्रह्म की समीपता प्राप्त कराने वाला प्रकाश मिलता है। जो किसी के कहे अशुभ वचनों को ही याद रखते हैं। पतन की ओर आकर्षित करने वाले शब्दों में रस लेते हैं, रुचि रखते हैं उनके लिये वे शब्द ही विघातक बन जाते हैं । श्रेष्ठ ही सुनता है सो प्रतिष्ठित होता है । यह आकाश सद्वाक्यों का श्रवण करके सन्मार्ग अपनाने वालों की गरिमा से ही भरा पड़ा है । सो श्रेष्ठता उत्पन्न करने वाले सद्वचन सुनने के अभ्यस्त यह कर्ण ही ब्रह्म हैं ।

जनक की जिज्ञासा बढ़ती गई। उनने फिर इसी प्रकार पूछा और याज्ञवल्क्य को एक और घटना स्मरण आई जिसकी चर्चा करते हुये उन्होंने कहा तात, एक बार ऐसा ही ज्ञान मुझे आचार्य सत्यकाम जावाल से मिला था। उन्होंने मुझे बताया था - यह मन ही ब्रह्म है । यह संसार मन का ही आयतन है । यहाँ मन की ही प्रतिष्ठा है । अर्थात् मन की मान्यताओं के अनुरूप पदार्थों तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तियों का महत्त्व घटता-बढ़ता है । मन से इच्छा उत्पन्न होती है । इच्छायें दिशा बनाती ही हैं और उस दिशा का अवलम्बन करके व्यक्ति अपनी रुचिकर स्थिति को प्राप्त कर लेता है ।

मनोबल की प्रबलता से कठिनाइयाँ सरल हो जाती हैं और मन में शिथिलता आने से राई जैसी बात पहाड़ जैसी भारी हो जाती है । मन जैसा चाहता है वैसा ही सामने रहता है, जो चाह की परिधि में नहीं आता वह आँख से ओझल ही बना रहता है । मन जिसे चाहता है वह प्रिय लगता है और जो मन से उतर गया उसकी न सूरत सुहाती है न चर्चा। यहाँ कुछ भी न प्रिय है न अप्रिय जिस पर मन छा जाता है वही सुन्दर लगता है, वही श्रेष्ठ वही काम्य। मन की उत्कृष्टता ही व्यक्ति को ऊँचा उठाती है और उसी के आधार पर सम्मान मिलता है । जो कुछ इस संसार में दीखता है और सुहाता है वह अपना मन ही है । मन का विस्तार ही इस आकाश में विस्तृत हो रहा है । इसलिए यह मन ही ब्रह्म है । मन ही अपने शुद्ध स्वरूप में विकसित होकर ब्रह्म बन जाता है ।

इतनी ज्ञानवर्धक शिक्षा सुनकर राजा जनक की उत्कण्ठा में और उभार आया और उन्होंने विनीत होकर पूछा भगवन् उपलब्ध समस्त उपदेशों में आपने जो सर्वश्रेष्ठ सुना हो उसे और मुझे बता दीजिए । इतना सुनकर ही मैं तृप्त हो जाऊँगा - आगे आपको अधिक कष्ट न दूँगा ।

महर्षि याज्ञवल्क्य जनक की जिज्ञासा भरी उत्कण्ठा से बहुत प्रभावित हुए और उनके प्रसंग को समाप्त करते हुए बताया–राजन्, मुझे आचार्य विद्ग्ध शाकल्य का उपदेश सर्वश्रेष्ठ लगा । उनने कहा था - हृदय ही ब्रह्म है। इस आकाश में हृदय का आयतन भरा पड़ा है ।

हृदय को ईश्वर का मन्दिर और आत्मा का निवास कहा गया है । धड़कने वाली रक्त की थैली को नहीं, अन्तःकरण को अध्यात्म की भाषा में हृदय कहा गया है। हृदय अर्थात् वह सूक्ष्म मर्मस्थल जहाँ उच्च आदर्शों की श्रद्धा विराजमान रहती है । जहाँ बैठा हुआ परमेश्वर सद्गुरु के रूप में उचित, अनुचित का बोध कराता रहता है, और कुमार्ग से बचाने वाले सन्मार्ग पर चलने का संकेत करता रहता है । हृदय अर्थात् आस्थाओं का वह केन्द्र, जहाँ केवल सद्भावनाओं सत्प्रवृत्तियों के हिमालय से निकलने वाली गंगा-यमुना की तरह दो धारायें अविच्छिन्न रूप से बहती रहती हैं । हृदय अर्थात् प्रेरणाओं का वह स्रोत जहाँ कर्त्तव्य पर आरूढ़ रहने की दृढ़ता और विश्वमानव के चरणों पर समर्पण उमँगी रहती है ।

जिसका हृदय पवित्र है उसे अपवित्रता छू तक नहीं सकती । जिसका हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण है उसके लिये इस विश्व-उपवन की शोभा नन्दनवन से अधिक है । जिसने अपने हृदय को टटोला उसे ऋद्धि-सिद्धियों का भरा-पूरा रत्न भण्डार उसी के भीतर समाया मिल गया, जिसने हृदय को झाँका उसने उसी में आत्म-साक्षात्कार का आनन्द लिया और प्रभु दर्शन का भी । स्वर्ग और मुक्ति का द्वार मनुष्य का हृदय ही है । जो हृदय की महिमा समझने और उसे समर्थ बनाने में में लग गया उसने जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर लिया । जो हृदय का अनुयायी है समस्त संसार उसी का अनुगमन करता है । यह आकाश हृदय की उपलब्धियों से ही गुंजित, प्रतिध्वनित हो रहा है । संसार में अमर और अमिट प्रतिष्ठा उन्हें मिली जिन्होंने अपने हृदय को विशाल बनाया और उसकी प्रेरणा से अपनी गतिविधियाँ निर्धारित कीं । अस्तु हृदय ही ब्रह्म है शतपथ ब्राह्मण १०।१२६।४ में – **"हृदि प्रतिष्याकवयो मनीषा"** वाक्य में यह कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का केन्द्र बिन्दु हृदय ही है । जीवन का स्वरूप निर्धारण करने का सारा श्रेय हृदय को ही है । वह जिस दिशा में उन्मुख होता है मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से लेकर दसों इन्द्रियों तक सारे साधनों समेत व्यक्तित्व का प्रवाह उसी दिशा में चल पड़ता है । इस मर्म स्थान में यदि असुरता का प्रवेश हो जाय तो मनुष्य की पिशाच प्रवृत्ति में कमी नहीं रहती और यदि वहाँ भगवान की प्रतिष्ठा यथावत् बनी रहे तो मनुष्य को देवता बनने में देर नहीं लगती । जिसका हृदय सुप्त स्थिति में पड़ा है वह बहुत सोचते और बहुत करते हुए भी कोल्हू के बैल की तरह निरर्थक विडम्बनाओं में उलझा हुआ जीवन के दिन काटता रहता है ।

हृदय का महत्त्व और स्थान सर्वोपरि है । उत्कृष्टता के प्रति श्रद्धा आदर्शों के प्रति निष्ठा का उद्गम हृदय है, इस हृदय को निर्मल और परिष्कृत बनाने वाला पूर्णता को प्राप्त करता है । उसी का आत्मा परमात्मा का दर्शन करने और परब्रह्म को प्राप्त करने में सफल होता है ।

आत्मा, महात्मा और परमात्मा का विकास क्रम

महात्मा वह है, जिसके सामान्य शरीर में असामान्य आत्मा निवास करता है। काया की वेश-भूषा और चित्र विचित्र आवरणों का धारण महात्मा होने का न तो आधार है और न लक्षण। सामान्य वेष और सामान्य रहन-सहन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के बीच आत्मा के स्तर तक पहुँचाया जाना सम्भव है और पहुँचाया जाता भी रहा है।

मर्यादाओं से आवद्ध रहकर नागरिक कर्तव्यों का पालन करते रहना, उद्धत आचरणों से बचना, शील और सौजन्य को निवाहना यह मनुष्यता का आवश्यक उत्तर-दायित्व है। जिन्होंने अपने भीतर आत्मा को समझा है और उसकी गौरव-गरिमा को ध्यान में रखा है उसे सयंम, सदाचार और कर्तव्यनिष्ठा से जुड़ा हुआ शालीन जीवन जीना ही पड़ेगा।

महात्मा की गरिमा इससे अगली मंजिल है। महान का अर्थ है विशाल, व्यापक। जो आत्मा अपने शारीरिक, मानसिक और पारिवारिक कर्तव्यों से आगे बढ़कर विश्व मानव के उत्तरदायित्वों को वहन करने के लिए अग्रसर होता है, मानवीय कर्तव्यों से आगे के देव कर्तव्यों को वहन करने के लिए तत्पर होता है वह महात्मा है। महात्मा अपने लिए नहीं सोचता विराट के लिए सोचता है, अपने लिए नहीं करता विराट् के लिये करता है, अपने लिए जीवित नहीं रहता विराट् के लिए जीता है।

अपना शरीर हर छिद्र से मलीनता निसृत करता है। पर इसलिए कौन उसे घृणास्पद और त्याज्य ठहराता है कि इसमें गन्दगी विद्यमान है। घृणा की आवश्यकता नहीं समझी जाती और शरीर को स्वच्छ करने पर ही ध्यान रहता है। अपनी ही तरह दूसरों की विविध मलीनताओं के रहते जो हेय, घृणास्पद, पतित, त्याज्य नहीं ठहराता वरन् अपनी सहज ममता से प्रेरित होकर उसे निर्मल बनाने का श्रम करता है, वह महात्मा है। अपना छोटा बच्चा दिनभर गलती करता रहता है, उसका बहिष्कार नहीं करते और देख-भाल, डाँट-डपट तोड़-फोड़ के अवसरों की रोक थाम करके जितना सम्भव होता है। उस क्षति का बचाव करते हैं। इस पर भी जो हानि होती रहती है उसे सहन करते हैं। छोटे बालकों और अभिभावकों के बीच यह चिर-अतीत से चला आ रहा है। दिग्भ्रान्त जन समाज के अनाचरणों के प्रति आक्रोश उत्पन्न किये बिना जो धैर्य और शान्तिपूर्वक विग्रह की रोक-थाम पर ध्यान देते हैं उस उदारमना व्यक्ति को महात्मा कहना चाहिए।

हम अपने और अपने प्रियजनों के दुखों से दुःखी होते हैं। इस क्षेत्र में सुख, दुखों से संवर्धन का प्रयत्न करते हैं। हमें अपना सुख, यश, वैभव, उत्कर्ष प्रिय लगता है और जिन्हें अपना समझते हैं उन्हें भी इसी सुखद स्थिति में रखने के लिए प्रयत्न करते हैं यह परिधि जब बड़ी हो जाती है और प्यार दुलार का, ममता, आत्मीयता का क्षेत्र बढ़ जाता है तो वैसी ही अनुभूति हर किसी के साथ जुड़ जाती है। दूसरों का कष्ट अपना कष्ट लगता है। अपने को सुखी बनाने के लिये जिस प्रकार अपना स्वभाव और चिन्तन सक्रिय रहता है वैसी ही सक्रियता यदि जन साधारण के लिये विकसित हो चले तो समझना चाहिए कि आत्मा ने महात्मा का रूप धारण कर लिया। परायों में जब अपनापन प्रतिभासित होने लगे तो समझना चाहिए कि दिव्य नेत्र खुल गये। जिसका अहंता ग्रीष्म की हिम बनकर पिघल जाय, जो पवन जैसा सक्रिय और आकाश जैसा शान्त दिखाई पड़े समझना चाहिये यह महात्मा का ही विग्रह है।

जब तक स्व, पर का ऊहा-पोह चलता रहता है तब तक आत्मा और महात्मा का प्रेम-प्रसंग आदान-प्रदान, परिहास, मनुहार चल रहा समझा जाना चाहिये। जब द्वैत की समाप्ति हो जाय और केवल एक ही शेष रहे स्व, पर का अन्तर सोचने की गुन्जायश ही न रहे तब समझना चाहिए, उसी काय-कलेवर में परमात्मा का अवतार होगया।

समग्र अध्यात्म—प्रेम ज्ञान और बल का समन्वय

अध्यात्म की त्रिवेणी तीन धाराओं में प्रवाहित होती है (१) प्रेम (२) ज्ञान, (३) बल। इन तीनों का सन्तुलित अभिवर्धन करने से ही कोई समग्र अध्यात्मवादी हो सकता है।

प्रेम हमारे अन्तःकरण का अमृत है। जिस प्रकार हम अपने स्वार्थ, सुख, यश, वैभव और उत्सर्ग को चाहते हैं उसी प्रकार दूसरों के लिए भी चाहना उठने लगे तो उसे प्रेम का प्रकाश कहना चाहिए। अपनापन ही सबसे अधिक प्रिय है। अपने शरीर मन, यश, सुख की चाहना रहती है। यह अपना आपा जितना विस्तृत होता चलेगा वह उतना ही प्रिय लगेगा और उसे सुखी-समुन्नत बनाने की उतनी ही तीव्र उत्कण्ठा उठेगी। अपना परिवार जिस तरह प्यारा लगता है उसी तरह यह आत्मीयता की परिधि विस्तृत होती जाती है और अपना 'प्रिय' क्षेत्र बढ़ता चला जाता है। उसके लिये सेवा, सहायता करने की इच्छा होती है और सत्कर्म ही बनते हैं। अपनों के साथ दुष्टता कौन करता है। प्रेम भावना की वृद्धि मन में से सभी दुष्प्रवृत्तियों को हटा देती है और मनुष्य सज्जन, सच्चरित्र एवं सहृदय बनता चला जाता है। प्रेम असंख्य सद्गुणों का स्रोत है इसलिये उसे अध्यात्म का प्रथम चरण माना गया है।

दूसरा घटक है-ज्ञान। यथार्थ को समझना ही सत्य है। इसी को विवेक कहते हैं। जीवन के लक्ष्य को भूल जाते हैं। आत्म-कल्याण की बात विस्मृत हो जाती है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और कर्त्तव्य धर्म का पालन करने की गरिमा समझ में नहीं आती। इन्द्रियों की वासना और मन की तृष्णा पूरी करने के लिए- अहंकार की पूर्ति के लिये निरर्थक कार्य करते हुए जीवन बीत जाता है और पाप की गठरी सिर पर लद जाती है। यह सब अज्ञान का फल है। अपने को शरीर नहीं आत्मा मानकर चलें। आत्म-कल्याण की दृष्टि से जीवन क्रम निर्धारित करें और वासना तृष्णा को अनियन्त्रित न होने दें। अहंकार के स्थान पर आत्मबल बढ़ाने में लगें तो समझना चाहिए ज्ञान की उपलब्धि हो गई। स्कूली शिक्षा या धर्म पुस्तकें पढ़ लेने का नाम ज्ञान नहीं है। यह तो एक आस्था है जो अन्तःकरण में प्रकाशवान होकर हमें सही और गलत का विवेक कराती है। यह ज्ञान जो जितना प्राप्त कर लेता है वह उतना ही सफल आत्मवादी कहा जाता है।

तीसरा चरण है—बल। निर्बल को न सांसारिक सुख मिलता है न आत्मिक। हमें बलवान बनना चाहिए। मनोबल के आधार पर ही आपत्तियों से निपटना-प्रगति के पथ पर बढ़ चलना सम्भव होता है। लोभ, मोह जैसे शत्रुओं को परास्त करते हुए-प्रलोभनों से बचते हुए आदर्शवादिता के मार्ग पर अपनी प्रवृत्तियों को मोड़ सकना साहसी और पराक्रमी व्यक्ति के लिए ही सम्भव है। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र सामर्थ्यवान और सशक्त बनाना पड़ता है। आत्मिक, मानसिक, शारीरिक सभी दुर्बलताऐं दूर करनी पड़ती हैं और आर्थिक क्षेत्र में इतना स्वावलम्बी रहना पड़ता है कि किसी के आगे हाथ न पसारना पड़े।

मनुष्य की सत्ता तीन भागों में विभक्त है (१) अन्तःकरण, (२) मस्तिष्क, (३) शरीर। इसी विभाजन को अध्यात्म की भाषा में कारण-शरीर और स्थूल शरीर कहते हैं। अंतःकरण का वैभव है-प्रेम। मस्तिष्क का धन है-ज्ञान। शरीर का वर्चस्व है- बल। चूँकि शरीर से ही आर्थिक, पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्ध है इसलिए धन, व्यवहार कौशल और संगठन को भी इसी क्षेत्र में गिना जाता है।

इन तीनों के समन्वय से ही समग्र अध्यात्म बनता है एकाकी से काम नहीं चलता। अन्न, जल और वायु के त्रिविध आहार पर जीवन निर्भर है। अध्यात्मिक जीवन की यह तीनों प्रवृत्तियाँ समान रूप से आवश्यक हैं। इनका समन्वय ही त्रिवेणी का संगम है। उस तीर्थराज प्रयाग में स्नान करके ही हम जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

सत्य का दर्शन

एक अनादि शक्ति का, जिसे हम अपनी भाषा में ब्रह्मा, सृष्टिकर्ता, परमात्मा, आदि विविध नामों से जानते है। प्रकाश, उसकी प्रेरणा ही जगत को सब ओर से प्रकाशित किये हुये है, उसी से इस जगत और यहाँ के पदार्थों को हमारे ज्ञानक्षेत्र, कार्यक्षेत्र, सौंदर्य को स्फुरण मिल रहा है। वही अपने समग्र रूप में सर्वत्र ही अवतीर्ण रहता सत्य रूप में प्रतिष्ठित है। जगत् और इसके प्रेरक तत्व को जब हम एक करके देखते हैं तभी हमारे ध्यान की प्रक्रिया पूर्ण होती है। हमारे ध्यान-मन्त्र में **"ॐ भूर्भुवः स्वः"** के उच्चारण से ही सृष्टि का बोध होने लगता है और अखिल ब्रह्मांड के बीच जब उन्हें ही अपनी चेतना को सूर्य, पृथ्वी, चन्द्रमा, तारागण आदि को प्रकाशित करते देखते हैं तभी हम सत्य का दर्शन करते हैं।

जगत और अध्यात्म का जहाँ परिपूर्ण सामंजस्य है वहीं सत्य की परिभाषा पूर्ण होती है और यह सत्य जब हमारी जीवन यात्रा का आधार होता है तभी हम जगत और उसी प्रेरक शक्ति का परिचय प्राप्त कर कृतार्थ होते हैं। इसलिए सत्य ही जीवन का सहज दर्शन है। महात्मागाँधी के शब्दों में "सत्य हमारे जीवन का नियम है।" महर्षि व्यास ने सत्य को ही सर्वोपरि धर्म बतलाया है। "सत्य तत्व को जानकर ही ऋषिगण देवयान मार्ग से परमात्मा तक पहुँचते हैं।" महात्मागाँधी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि "सृष्टि में सत्य की ही एकमात्र सत्ता है। सत्य के ऊपर कोई ईश्वर नहीं, सत्य स्वयं ही ईश्वर की अभिव्यक्ति है।"

सत्यदर्शी विश्वामित्र ने सत्य की महिमा का बखान करते हुए कहा है-

सत्येननार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी।
सत्य चोक्तं परो धर्मः स्वर्गेः सत्ये प्रतिष्ठितः।।

सत्य से ही सूर्य तप रहा है, सत्य पर ही पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य सबसे बड़ा धर्म है। सत्य पर ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है" एक अन्य शास्त्रकार ने भी इसी तथ्य को प्रतिपादित करते हुए कहा है-

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।।

सत्य से ही पृथ्वी स्थिर है, सत्य से ही सूर्य तपता है, सत्य से ही वायु बहती है। सब सत्य में ही स्थिर है।

स्मरण रहे अध्यात्ममय जगत् ही सत्य का आधार है। पूर्व और पश्चिम जैसे एक ही अखण्ड क्षितिज में स्थित हैं ठीक इसी तरह जगत् और अध्यात्म दृश्य और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अदृश्य सत्ता एक ही सत्य के दो पहलू हैं। इनमें से एक का भी परिहार करने पर हम सत्य के समक्ष अपराधी होते हैं।

जब हम जगत की समस्त घटनाओं को केवल बाह्य घटनायें समझते हैं तो उनसे हमें कोई आनन्द नहीं मिलता। वे घटनायें और हमारा जीवन केवल एक रूखी मशीनी प्रक्रिया मात्र बनकर रह जाता है। जिस तरह पटरी पर रेल, सड़क पर मोटर, शिलाखण्डों पर नदी की धारा बहती है उसी तरह हमारे मन-पाषाण पर जगत की धारा बहती रहती है। चित्त पर उसका कोई प्रभाव नहीं होता। सब कुछ निर्जीव, नीरस, अरुचिकर व्यापार-सा लगता है और तब हम कृत्रिम उपायों, व्यसनों द्वारा नाना वृथा कर्मों द्वारा आमोद प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं लेकिन फिर भी हमारी जीवन यात्रा एक बोझा सी मालूम पड़ती है।

जब हम केवल जगत् को यहाँ की घटनाओं को ही देखते हैं तो हमें जीवन में कोई रस नहीं मिलता, न उत्साह स्फूर्तिमय प्रेरणा ही। कुछ समय तक तो ये हमारे मन, इन्द्रियों को लुभाये रहते हैं किन्तु शीघ्र ही इनसे विरक्ति होने लगती है और फिर अपने स्वभाव के अनुसार अन्य पदार्थों में जीवन-रस ढूँढ़ते हैं और एक समय वहाँ से भी हमें हटना पड़ता है। गरज यह है कि हम वस्तु से वस्तु, पदार्थ से पदार्थ, घटना से घटनाओं में चक्कर लगाते रहते हैं लेकिन इन सबसे हमारी चेतना को कहीं भी स्फुरणता प्राप्त नहीं होती।

हमारी पदार्थवादी जगत प्रधान दृष्टि के कारण सूर्य के उगने में, नदी के कल-कल बहने में, पक्षियों के गुंजन में, वृक्षों के फलने-फूलने में भी कोई विशेष प्रेरणा नहीं मिलती और हम यत्र-तत्र भटकते रहते हैं, प्रतिदिन कहीं कुछ सहारा पाने को जहाँ हमारी चेतना को स्फुरण, मन को आनन्द की प्रेरणा प्राप्त हो सके। लेकिन असत्य की छाया में सुख-शांति कहाँ ? उल्टे ये सब हमारे लिये दुःख-प्रद, कष्टदायी, क्लेशपूर्ण ही सिद्ध होते हैं।

इसी तरह ही हमारा अभ्यास कुछ ऐसा हो गया है कि अध्यात्म को भी हम एकाकी दृष्टि से देखते हैं। जगत की सीढ़ियाँ जिन पर चढ़कर सत्य दर्शन की यात्रा पूरी करते हैं उनकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। और जिस तरह बिना सीढ़ी के छत पर पहुँचना सम्भव नहीं होता ठीक उसी तरह जगत को भुलाकर हमारे सत्य-दर्शन के प्रयास व्यर्थ सिद्ध होते हैं। जगत के साथ रहने में ही अध्यात्म की भी सार्थकता है अन्यथा वह एक कपोल-कल्पना, मूढ़ विश्वास मात्र बनकर रह जाता है।

इस तरह असत्य का आचरण जिसके अन्तर्गत हम जगत और अध्यात्म को अलग-अलग करके देखते हैं हमारे पतन का, हमारी असफलता का कारण बनता है। जगत को, वस्तु पदार्थ के सृष्टिकर्त्ता को जब हम भिन्न-भिन्न, खंड-खंड करके देखते हैं तो सत्य से दूर होते हैं।

सत्य की साधना के लिये, सत्य का दर्शन करने के लिये, हमें जगत और अध्यात्म को, सृष्टि और सृष्टिकर्त्ता को, वस्तु पदार्थ और इनको प्रकाशित करने वाली विश्व-चेतना को समग्र रूप से जानना, समझना और देखना पड़ेगा एवं इसे ही अपने चिन्तन का आधार बनाना पड़ेगा।

जब हम इस सत्य को आत्मसात कर लेंगे तो हमारी चेतना परितृप्त हो जायेगी, क्योंकि "सत्य चिर-नवीन है, उसका रस अक्षय है"। जगत के बीच, वस्तु पदार्थ, समस्त घटनावली के मध्य जब हम सृष्टिकर्त्ता के अन्तरतम स्वरूप का दर्शन करने लगते हैं तभी हमारी दृष्टि सार्थक होती है। फिर हमारा जीवन और समस्त जगत ही आनन्द विस्मय, महत्त्व और सार्थकता से परिपूर्ण हो जाता है। तब हमें नदी के बहने में, पक्षियों के गुंजन में, वृक्ष-लताओं के फूलने-फलने में, मेघों के गर्जन-तर्जन में, समुद्र की उत्ताल तरंगों में आनन्द-सरसता, सौंदर्य, आह्लाद' का मधुर संगीत सुनाई पड़ने लगता है।

जीवन के परम सत्य का दर्शन होने पर जब हम विश्व-व्यापार, समस्त घटनापुंज के मध्य जो मूल शक्ति है उसका दर्शन करते हैं तो जगत आवरण न रहकर उसी सत्य की प्रकाश किरणों के रूप में जो प्रति मुहूर्त उनसे विकीर्ण होती रहती हैं जान पड़ता है और तब यह बन्धन न रहकर हमारे आनन्द का साधन बन जाता है।

जगत और उसको प्रकाशित करने वाली सत्ता का समग्र-दर्शन ही हमारे ध्यान चिन्तन का आधार होना चाहिये। घटना-पदार्थों के मध्य भी अनन्त सत्य का दर्शन हमारे जीवन का ध्येय, हमारी साधना का लक्ष्य हो।

अज्ञान-बन्धन काटें- उन्मुक्त जीवन जियें

लगता है सचमुच किसी ने हमें जकड़कर बाँध रखा है और इच्छानुसार एक भी काम नहीं कर सकते। एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। जब भी इच्छानुसार किसी दिशा में चलने का प्रयत्न करते हैं तभी हाथों में पड़ी हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ कड़ी हो जाती हैं और विवश करती हैं कि हम एक कदम भी आगे न बढ़ें। जहाँ हैं वहीं रहकर सन्तोष करें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मा अपना स्वरूप जानती न हो ऐसी बात नहीं है। शास्त्रों में सत्संगों में यही तो पढ़ते-सुनते हैं कि हम आत्मा हैं। आत्म-कल्याण के लिये जीवन मिला हुआ है। उसी के लिये प्रयत्न करना अभीष्ट लक्ष्य है। शरीर और मन दो वाहन हैं। सेवा-सहायता करने के लिये सेवकों के रूप में मिले हुये हैं। इन्द्रियाँ ज्ञान वृद्धि, इच्छापूर्ति और क्रिया-कलाप को सम्पन्न करने के उपकरण हैं। परिवार एक प्रयोगशाला, व्यायामशाला है जिसके माध्यम से आत्मोन्नति के, सद्भावना और सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन का प्रयास किया जाता है। अपनेपन का क्षेत्र बढ़ाते चलना- सज्जनता और उदारता को विकसित करते चलना- यही आत्म-विकास है और यही अभीष्ट।

आत्म-ज्ञान की परिधि इतनी ही है और इसे हमने एक बार नहीं हजार बार सुना-समझा है। कितनी ही बार तीव्र आकांक्षा भी उठी है कि जीवन-सम्पदा का सदुपयोग होना चाहिए। इच्छा तो सदा ही किसी न किसी रूप में बनी रही है कि कुछ तो परमार्थ के लिये, आत्म-कल्याण के लिये जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिये होना ही चाहिए। कितनी ही बार तो इस दिशा में कुछ भी न बन पड़ने से भारी पश्चात्ताप होता है। मृत्यु की घड़ी परमात्मा के न्यायालय में उपस्थित कर्मफल की अनिवार्यता की सच्चाइयाँ जब विवेक बुद्धि देखती है तो थरथरी आती है- कँपकँपी छूटती है। इन तीनों तथ्यों का सामना करना पड़ेगा। उससे बच निकलने का कोई रास्ता नहीं। इन तीनों ही कसौटियों पर खरे सिद्ध होने की अपनी कोई तैयारी नहीं, हर परख पर खोटापन ही साबित होगा। तब कितनी दुर्गति का सामना करना पड़ेगा, उसका भयानक स्वरूप आँखों के सामने आता है तो रोमांच खड़े हो जाते हैं।

आज की गतिविधियाँ सन्तोषजनक कहाँ हैं ? जिया तो जा रहा है पर इसमें तथ्य कहाँ ? लक्ष्य कहाँ ? दिशा कहाँ? निरर्थक ही समय व्यतीत हो रहा है। अनर्थ मूलक क्रिया-कलाप चल रहे हैं। जिधर चलना था, ठीक उससे उलटी दिशा में कदम बढ़ रहे हैं। लक्ष्य की समीपता निकट आने की अपेक्षा निरन्तर अधिक दूर हटती जा रही है।

इस वस्तुस्थिति को हम जानते न हों- ऐसी बात नहीं। मानते नहीं सो भी नहीं। तथ्य को भूल जायें इसलिये स्वाध्याय, सत्संग, कथा-कीर्तन, पूजा-पाठ की प्रक्रिया को भी चलाते रहते हैं। आस्तिकता का दर्शन और उपासना का कर्म-काण्ड बनाया ही इस प्रयोजन के लिये गया है कि मनुष्य विस्मृति के गर्त में न गिर पड़े। आत्म-ज्ञान को 'प्रकाश' के नाम से सम्बोधन इसलिये किया जाता है कि उसके सहारे सही दिशा विदित होती रहे। दिग्भ्रम की भूल-भुलैयों में भटकने से बचा जा सके।

यह प्रकाश मिलता रहता है और दिशा सूझती रहती है। उस पर चलने को जी भी करता है और कभी-कभी आकुलता भी रहती है, पर कुछ बन नहीं पड़ता। साहस समेटते हैं - कुछ करना चाहते हैं। पर सब निरर्थक ही चला जाता है। कल्पना करते रहें तब तक तो कोई रोकता नहीं- केवल देर तक उस विषय पर सोचने से मन उचट भर जाता है। पर जब कभी कुछ करने को उत्साहित होते हैं और सक्रियता अपनाना चाहते हैं तो बेड़ियाँ कस जाती हैं, हाथ की कड़ियाँ जकड़ जाती हैं। बन्धन कड़े हो जाते हैं, और कहते हैं- बस आगे नहीं बढ़ा जा सकता। सोचने भर की स्वाधीनता है- करने की नहीं। तुम स्वतन्त्र नहीं दास हो। मालिक की मर्जी के बिना बन्दी क्या कर सकता है। अपनी स्थिति समझो और जहाँ के तहाँ बने रहो।

मन मारकर चुप ही रह जाना पड़ता है। विवशता में कुछ कर सकना सम्भव भी कैसे हो सकता है? आकांक्षा अवश्य आगे बढ़ने की थी पर निवाड़ बन्धन की जटिलता जहाँ कुछ करने दे सकती है ? कितने कष्टकारक हैं ये बन्धन। कितनी भयंकर जंजीरें, जिनके रहते प्रकाश की ओर एक कदम भी बढ़ना सम्भव नहीं। अन्धकार से तनिक भी छूटने की गुंजायश नहीं।

नशे में गन्दी नाली में पड़ा हुआ शराबी भी स्वर्ग के मजे लेता रहता है पर जब होश आता है तब उसे अपनी दयनीय दशा का पता चलता है। बन्धनकारी तत्व यह जानते हैं कि कैदी बन्धन तुड़ाने का प्रयत्न कर सकता है इसलिये नशा पिलाते रहने की उन्होंने पूरी व्यवस्था रखी है। ताकि बन्धन कष्टकारक दीखने की अपेक्षा और भी अधिक मनोरम लगने लगें। हाय रे हम ! नशा पीते और बन्धनों को सहराते इन बहुमूल्य क्षणों को ऐसे ही गुजारे दे रहे हैं।

बन्धन जिनने जीवन का प्रयोजन ही भ्रष्ट कर दिया। आखिर हैं क्या? गम्भीर विचार परायणता ही इसका हल निकाल सकती है- बन्धन दीखते तो हैं नहीं ? हाथ-पाँव तो खुले हैं- जेल या बाड़े में भी बन्द नहीं ? चमड़े की आँखें तो इन बन्धनों को देख भी नहीं पातीं। सूक्ष्म दृष्टि ही इन अदृश्य बन्धनों को देख-समझ सकती है।

मोहमयी मदिरा ही है जिसने हमारी प्रज्ञा को कुण्ठित कर इन बन्धनों को स्वीकार करने के लिये सहमत किया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। मोह-माया, वासना, तृष्णा, अहंता। कितनी आकर्षक-कितनी रूपवान मण्डली है यह। देखने में अप्सरा-सी लगने वाली इन विष कन्याओं का जब नृत्य होता है तो उसे रंग स्थली से उठने को जी नहीं करता। लगता है - देखते ही रहें - इन्हीं में तन्मय हो जायँ - इन्हीं को आत्मसात कर लें। बन्धन बँधते ही चले जाते हैं।

सपेरे यही तो करते हैं। बधिकों का यही तो धन्धा है। बीन की मधुरता पर मुग्ध होकर-बेचारे सर्प अपने सुखद घर को छोड़कर कुछ अतिरिक्त आनन्द पाने के लिये बाहर आते हैं। मृग इसी कुचक्र में मारे जाते हैं। वधिक की बीन उन्हें बड़ी आकर्षक लगती है। अपने झुण्ड को भूल जाते हैं। चौकड़ी बन्द कर देते हैं और मोह ग्रस्त होकर जाल में फँस जाते हैं। होश तब आता है जब बीन बन्द होती है। तब वे अपने को निवाड़ बन्धनों में कसा हुआ देखते हैं। तब उन्हें भयंकर भविष्य का बोध होता है। यही दशा तो अपनी है।

हम इन्हीं बन्धनों में बँध गये। शास्त्र कहता है- इन बन्धनों से बढ़कर और कोई दुःख नहीं। समस्त शोक-सन्तापों के कारण यही हैं। प्रगति का अवरोध इन्हीं ने कर रखा है। जब तक यह खुलेंगे नहीं - टूटेंगे नहीं दुर्गति का अन्त नहीं होगा। इन्हें काटो- इन्हें तोड़ो। यही परम पुरुषार्थ है। मुक्ति की ओर चलो यही इस जीवन की परम उपलब्धि है। वारुणी को फेंको- होश में आओ। अपना स्वरूप समझो- अपनी स्थिति को जानो और क्या करना अभीष्ट है, इसका शान्त-चित्त से निर्धारण करो। यही महान् जागरण है। मूर्च्छना से जग जाना- स्वप्नलोक का परित्याग कर जाग्रतों की तरह देखना - विचारवानों की तरह सोचना। यही देव वरदान है। इसे प्राप्त करो और धन्य हो जाओ।

बन्धन क्या ? मुक्ति क्या है ? बन्धन– अर्थात् अज्ञान जन्य व्यामोह। अपने को शरीर और मन समझना है। इन्द्रियों की रसानुभूति में रम जाना। वस्तुओं के संग्रह में अहंता की तृप्ति देखना। सेवा के लिये मिले परिवार को अपनी सम्पदा मानना। अन्धी भेड़ों का अनुगमन करना। स्वतन्त्र चिन्तन छोड़ बैठना। इसी मनःस्थिति का नाम बन्धन है। यद्यपि यह सब रचित है पर कितने निविड़ और कितने कठिन हैं कि इनके रहते जीवन लक्ष्य की दिशा में- आत्म कल्याण के पथ पर एक कदम चलना सम्भव नहीं होता।

मकड़ी अपने पेट में से रस निकालकर जाला बुनती है और उसी में मर जाती है। रेशम का कीड़ा अपना आवरण आप बढ़ाता है और उसी में जकड़कर प्राण दे देता है। नशा स्वयं ही पिया जाता है और अपनी दुर्गति का पथ स्वयं ही प्रशस्त किया जाता है। दाने के लोभ में चिड़िया, आटे के लालच में मछली, टुकड़े के प्रलोभन में चुहिया पाती कम और खोती जादा है। आनन्द ढूँढ़ने चली थी पर बेचारी जंजाल में फँस गई। हमारी विवेक बुद्धि ने भी इसी भूल को अपनाया है।

इन्द्रिय भोगों में तृप्ति कहाँ ? कुत्ता सूखी हड्डी चबाता है और जबड़ों से निकलने वाले रक्त के स्वाद को हड्डी का स्वाद मानता है। इन्द्रिय भोग अपनी शक्ति और सामर्थ्य को फुलझड़ी की तरह– होली की तरह जलाने की बाल क्रीड़ा है। वासना में पाना क्या - केवल गँवाना ही गँवाना है। क्षणिक से आवेश की आड़ में बैठे हुए अनर्थ को न देख पाना बुद्धिमत्ता कहाँ है ?

पदार्थ सृष्टि के आदि में थे, और अनन्त काल तक यही रहेगा। भूमि, धातु आदि के रूप में जो सम्पदाएँ आज दोनों हाथ से समेटने में लाभ ही लाभ गिना जा रहा है, वह भ्रम मात्र है। अधिकार जमाने में भी सूरज, चाँद, तारे, बादल, अपने नहीं हो सकते। यह प्रकृति की सम्पदा केवल देखने और उपयोग करने भर के लिए है। स्वामित्व जताने के लिए, सात पीढ़ी तक बैठकर खाने के लिये जमा की जाने वाली अमीरी कितना उपहासास्पद है। समुद्र की लहरों का बाँधना बचपने के अतिरिक्त और क्या है। प्रकृति की सम्पदा पर अपनेपन का अधिकार जमाना, संग्रह करना सदुपयोग की बात भूल जाना यह तृष्णा ही है जो बन्धन बनकर हमें बाल-क्रीड़ा में उलझाये रहती है और लक्ष्य की दिशा में बढ़ने में अवरोध बनकर खड़ी होती है।

कुटुम्बियों की सेवा-सहायता करना कर्तव्य है। उस उपवन के माली भर रहना पर्याप्त है। वे ही हमारे हैं- हम उन्हीं के हैं- इस संकीर्णता में बँधा हुआ जीवन उन थोड़े लोगों तक ही सीमित हो जाता है। उनके लिये भी सुसंस्कार और सद्गुणों की सम्पदा नहीं जुटती, केवल सुविधा और विलासिता के साधन सौंपे जाते हैं। इससे उन बेचारों की आदतें बिगड़ जाती हैं और पीछे दुःख पाते हैं। इस संसार में अज्ञानियों का बाहुल्य है। रास्ते पर चलने वाले कम और भटकने वाले ज्यादा हैं। भटकने वालों के परामर्श को, सुझाव को मानकर अन्धी भेड़ों का अनुकरण करने में आँख वाली भेड़ को भी खड्ड में ही गिरना पड़ेगा। लोग क्या कहते हैं-लोग क्या चाहते हैं जो उस फेर में पड़ेंगे, उन्हें उन्हीं की तरह उलटे रास्ते पर चलना पड़ेगा और उन्हीं का जैसा हेय जीवन जीना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ेगा। दुनियाँ वालों का नेतृत्व स्वीकार करके हम बन्धन में ही बँधेंगे और दिन-दिन अधिक कसते चले जायेंगे।

बन्धनों की जंजीरें यही हैं। यदि विवेक और साहस का छैनी हथौड़ा लेकर पिल पड़ें तो यह जंजीरें फौलाद की नहीं राँगे की सिद्ध होंगी और एक ही चोट में कटकर गिर पड़ेंगी।

मुक्ति का अर्थ है, शरीर और मन को रुचिकर मोह मदिरा का परित्याग। तृष्णा और वासना से छुटकारा- अहंता और ममता का निवारण। विवेक के नेतृत्व में आत्म-कल्याण के पथ पर साहसपूर्वक चल पड़ने में सफलता प्राप्त कर लेना इसी का नाम है मुक्ति।

बन्धन समस्त दुःखों के निमित्त हैं। मुक्ति ही सुखों की जननी है। पतन से विरत होकर उत्थान के पथ पर चलने का उपाय यही है कि हम बन्धनों को काटें और मुक्ति प्राप्त करें।

अमृत और उसकी प्राप्ति

मृत्यु इस संसार में किसी भी जीव को शायद जितना दुःख देती है उतना अन्य कोई वस्तु नहीं। धन और साधन सम्पन्न मनुष्य, नाग, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, भूत और वैताल तक मृत्यु की कल्पना से काँपते पाये जाते हैं। युग के बीते, असंख्यों व्यक्तियों ने असंख्य तरीकों से अनुसंधान किये पर इस समस्या का कोई समाधान न निकला। जन्म लेने वाले जीव को मृत्यु से कदापि न बचाया जा सका। आधुनिक विज्ञान का आविर्भाव भी इसी परिकल्पना पर आधारित है। विज्ञान के समुद्र मन्थन से अनेक प्रकार के तत्व, रत्न और विविध आश्चर्य आविष्कृत हुए, किन्तु अमृतत्व की कहीं से उपलब्धि न हो सकी। मृत्यु से छुटकारा पाने का कोई स्थूल साधन आज तक न ढूँढ़ा जा सका इस दुःख से जीव को किसी भाँति उन्मुक्त न किया जा सका।

तो भी संसार के प्रत्येक धर्म ने एक ऐसे तत्व की बात स्वीकार की है जिसे पाकर मनुष्य अमृत-पद पा लेता है, उसे मृत्यु के भय से छुटकारा मिल जाता है। ऋषियों ने अमृत तत्व को एक दैवी पेय पदार्थ के रूप में माना है। पौराणिक कथा, कहानियों और उद्धरणों के अतिरिक्त वेद और उपनिषदों में भी कई स्थान में 'अमृत' शब्द प्रयुक्त हुआ है। ऐसे सभी स्थल यह व्यक्त करते हैं कि अमृत कोई ऐसा तत्व है, जिसके द्वारा मृत्यु से छुटकारा मिल सकता है। अमृतपान करने की वस्तु है या कोई आध्यात्मिक तत्व है तथा उसके पान करने से मृत्यु से छुटकारा मिल जाता है या नहीं - यह यहाँ विवेचना का विषय है।

पुराणों में एक कथा आती है - एक बार देवताओं तथा असुरों ने समुद्र का मन्थन किया। इस मन्थन से चौदह रत्न मिले अमृत भी उनमें एक था। बाद में देवताओं ने उसे पान किया और वे अमृतमय हो गये।

समुद्र का मन्थन किया जाना और उससे कोई अमृत जैसा द्रव्य पेय प्राप्त किया जाना; यह बात कुछ अजीव-सी लगती है। इतने बड़े समुद्र को मथा जाना असम्भव लगता है फिर उससे जो चौदह रत्न प्राप्त हुए वह भी ऐसे हैं जिन पर कोई सहसा विश्वास नहीं होता। पर उक्त पौराणिक आख्यानों की गहराई में प्रवेश किया जाय तो मालूम पड़ता है कि इन कथानकों के द्वारा शास्त्रकारों ने सूक्ष्म आध्यात्मिक तत्वों का अलंकारिक विश्लेषण किया है। अमृत को जिस रूप में पुराणों में वर्णित किया गया है वह उस तत्व का केवल कवित्तमय चित्रण है पर उसमें जो जीवन-दर्शन सन्निहित है वह अवश्य ही महत्त्वपूर्ण है। इस अलंकारिक विवेचन की वास्तविकता को जानने के लिए उपनिषदों का अध्ययन आवश्यक है। अमृत की व्याख्या उपनिषदों में जिस रूप में की गई है, भारतीय संस्कृति का निरूपण उसी को आधार मानकर किया गया है।

अमृतत्व आध्यात्म-धर्म का प्रमुख आधार है और उसी की प्राप्ति को मनुष्य-जीवन का लक्ष्य भी बताया गया है। किन्तु वह किसी तरल पेय पदार्थ के रूप में नहीं वरन् विशुद्ध आध्यात्मिक तत्व के रूप में हुआ है जिसका अवगाहन कर मनुष्य का स्थूल शरीर भले ही अमर न होता हो किन्तु यह निश्चित है कि वह जिस उद्देश्य को लेकर धरातल में अवतरित होता है उसे अवश्य पूर्ण कर लेता है। इसे ही आत्म-कल्याण, स्वर्ग या मुक्ति की, परमानन्द की प्राप्ति कह सकते हैं। जिस तत्व को प्राप्त कर जीव-शाश्वत सुख में लीन हो जाता है उसे ही अमृत-तत्व के नाम से पुकारा जाता है।

वह तत्व क्या है- कठोपनिषद् में इसकी व्याख्या की गई है। शास्त्रकार ने यम के मुख से नचिकेता के लिये जो उपदेश कराया है- उसमें कहा है-

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं, काम पुरुषो निर्मिमाणः।
तदेव शुक्र तद् ब्रह्म, तदेवामृतमुच्यते।।

(२।२।८)

अर्थात्- यह परमात्मा ही प्रलय काल में भी जागृत रहता है। जीव के लिये कर्मानुसार भोग का निर्माण करने वाला भी वही है। वह शुक्र है, वह ब्रह्म है उसे ही अमृत के नाम से पुकारा जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस श्लोक से यह सिद्ध होता है कि परमात्मा ही वह अविनाशी तत्व है जिसे प्राप्त करने से मनुष्य जीवन का उद्देश्य पूरा किया जा सकता है।

मुण्डकोपनिषद् में इसे और भी स्पष्ट करते हुए बताया है।

यदर्चि मद्यदणुभ्योऽणु च, यस्मिल्लोका निहितालोकिनश्च।

तदेतदक्षर ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः तदेतत्सत्यं तदमृत तद्वोद्धव्यं सौम्य विद्धि।।

(२।२।२)

अर्थात्- "हे सौम्य! तू उस वेधने के योग्य लक्ष्य को वेध डाल, जो तेजस्वी सूक्ष्मातिसूक्ष्म और लोकों में निवास करने वाले प्राणियों का आश्रय है, वही अविनाशी ब्रह्म है, वही मन, वाणी, सत्य और अमरत्व से युक्त है।"

यहाँ परमात्मा के "अमृत-तत्व" होने की बात को पुष्ट करते हुए शास्त्रकार ने यह भी सिद्ध किया है कि वह प्राण है, सत्य है, मन और वाणी है। इन सन्दर्भों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह मनुष्य के भौतिक स्वरूप को अमृत नहीं कहता वरन् जीवात्मा की स्थिति को इतना ऊँचे उठा देता है कि जीव का हल्कापन नष्ट हो जाता है और उसे अपने आनन्दमय, अविनाशी स्वरूप का बोध हो आता है। उपर्युक्त सूक्त में शास्त्रकार ने आदेश दिया है कि यदि तुम उस अमरत्व को प्राप्त करना चाहते हो तो, हे- सौम्य! उस परमात्मा की ही शरणागति प्राप्त करो।

ब्रह्मामृत की उपलब्धि के साधन पर प्रकाश डालते हुए केनोपनिषद् में विवेचन किया है–

आत्मना विन्दते सोयं विद्यया विन्दतेऽमृतम्।

(२।१।४)

अर्थात्- "परमात्मा से प्रकट हुआ ज्ञान ही यथार्थ है, क्योंकि इसके द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति होती है। आत्मा से परमात्मा को जानने की प्रेरणा प्राप्त होती है और ज्ञान से अमृत स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।"

हमारे महापुरुष सदैव इस बात पर जोर देते आये हैं कि मनुष्य ज्ञानवान् बनें। विद्या को मनुष्य का आभूषण बताया है और कहा है कि ज्ञान ही तुम्हें बन्धन से मुक्त करेगा और अमृतत्व प्रदान करेगा पर उन्होंने यह बात भी स्पष्ट कर दी कि यह विद्या लौकिक नहीं हो सकती। यथार्थ विद्या ब्रह्म-विद्या है। उसका मनन करने से आत्मा के रहस्य ज्ञात होते हैं, वास्तविक रूप का ज्ञान होता है और यह ज्ञान ही मनुष्य को सृष्टि के आदि कारण परमात्मा को जानने की प्रेरणा प्रदान करता है।

विद्या के विशुद्ध ग्रहणीय स्वरूप का और भी विवेचन ईशोपनिषद् में हुआ है-

विद्या चा विद्यां च यस्तद्, वेदोभयं सह।

अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

(११ वाँ मन्त्र)

अर्थात्- "जो मनुष्य विद्या रूप ज्ञान तत्व और अविद्या रूप कर्म तत्व को साथ ही साथ जान लेता है, वह कर्मों के अनुष्ठान से मृत्यु को पारकर ज्ञान के अनुष्ठान से अमृतत्व का उपभोग करता है।"

उपनिषद् के यह सभी प्रकरण अमृत-तत्व के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं पर साथ ही मनुष्य को भूल न होने देने के लिए भी आगाह कर देते हैं। अमृत मौलिक अर्थ में मृत्यु से छुड़ाने वाला पदार्थ है। मृत्यु को आध्यात्मिक रूप में शरीर का बारम्बार विनाश मानकर जीव के अज्ञान को मानना पड़ेगा। क्योंकि जब तक अज्ञान रहता है तब तक मनुष्य के सारे क्रिया-कलाप स्थूल भोगों तक ही सीमित रहते हैं। विषय भोगों के प्रति आसक्ति मनुष्य से पाप कराती है और वह बार-बार कर्मानुसार मृत्यु पाता है, पुनर्जन्म लेता है। जब तक यह स्थिति चलती रहती है तब तक उसके दुःख नष्ट नहीं होते।

मनुष्य-जीवन का अमूल्य यात्रा-पथ

मनुष्यता परमात्मा की अलौकिक कलाकृति है। वह विश्वम्भर परात्मा देव की महान रचना है। जीवात्मा अपनी यात्रा का अधिकांश भाग मनुष्य शरीर में ही पूरा करता है। अन्य योनियों से इसमें उसे सुविधायें भी अधिक मिली हुई होती हैं। यह जीवन अत्यन्त सुविधाजनक है। सारी सुविधायें और अत्यन्त शक्तियाँ यहाँ आकर केन्द्रित हो गई हैं ताकि मनुष्य को यह शिकायत न रहे कि परमात्मा ने उसे किसी प्रकार की सुविधा और साधनों से वंचित रखा है। ऐसी अमूल्य मानव देह पाकर भी जो अन्धकार में ही डूबता-उतरता रहे उसे भाग्यहीन न कहें तो और क्या कहा जा सकता है।

आत्मज्ञान से विमुख होकर इस मनुष्य जीवन में भी जड़-योनियों की तरह काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि की कैद में पड़े रहना, सचमुच बड़े दुर्भाग्य की बात है। किन्तु इतना होने पर भी मनुष्य को दोष देने का जी नहीं करता। बुराई में नहीं, वह तो अपने स्वाभाविक रूप में सत्, चित् एवं आनन्दमय ही है। शिशु के रूप में वह बिलकुल अपनी इसी मूल-प्रकृति को लेकर जन्म लेता है किन्तु माता-पिता की असावधानी, हानिकारक शिक्षा, बुरी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संगति, विषैले वातावरण तथा दुर्दशाग्रस्त समाज की लपेट में आकर वह अपने उद्देश्य से भटक जाता है और एक तुच्छ प्राणी-का सा अविवेकपूर्ण जीवन व्यतीत करने लग जाता है।

इसलिए निन्दा मनुष्य की नहीं दोषों की, दुर्गुणों की, की जानी चाहिये जो मनुष्य को प्रकाश से अन्धकार में ढकेल देते हैं। मनुष्य का जीवन तो सामाजिक जीवन के ढाँचे में ढाले गये किसी उपकरण की तरह है जिसके अच्छे बुरे होने का श्रेय सामाजिक शिक्षा एवं तात्कालिक परिस्थितियों को ही देना उचित प्रतीत होता है। यदि मनुष्य को सदाचरण युक्त एवं आदर्शों से प्रेरित देखना चाहते हो तो द्वेष, दुर्गुणों को मिटाकर सुन्दर-प्रकाशयुक्त वातावरण पैदा करने का प्रयास करना चाहिये। अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये किसी वर्ग, व्यक्ति या समाज पर आत्म-हीनता का भार लादना उचित नहीं। इससे मानवता कलंकित होती है। हम वह करें जिससे यह अज्ञान का पर्दा नष्ट हो और दिव्य-ज्ञान का प्रकाश चारों तरफ झिलमिलाने लगे।

सुविधाजनक यात्रा का सामान्य नियम यह है कि समय-समय पर यात्री अपना स्थान दूसरों के लिये छोड़ते जायें। उतरते-चढ़ते रहने की प्रक्रिया से ही कोई यात्रा विधिपूर्वक सम्पन्न हो सकती है। ऐसी ही व्यवस्था मनुष्य जीवन में भी होनी चाहिए। परमात्मा ने अपना यह नियम बना दिया है कि मनुष्य एक निश्चित समय तक ही इस वाहन का उपयोग करे और आगे के लिए उस स्थान को किसी दूसरे के लिये सुरक्षित छोड़ जाय। यह एक प्रकार की उसकी जिम्मेदारी है कि आगन्तुकों का, भावी नागरिकों का निर्माण चतुराई और बुद्धिमत्ता के साथ करे। केवल अपने ही स्वार्थ का ध्यान न रखकर आने वाले यात्री के लिए इस प्रकार का वातावरण छोड़ जाय ताकि वह भी अपनी यात्रा सुविधा और समझदारी के साथ पूरी कर सके।

कर्तव्य की इतिश्री इतने से ही नहीं हो जाती। अपने साथ अनेकों दूसरे यात्री भी सफर तय कर रहे होते हैं। मानवता के नाते उन्हें भी आपकी तरह सुविधापूर्वक यात्रा करने का अधिकार मिला हुआ होता है। यदि आपको कुछ अधिक शक्ति और सामर्थ्य मिली है, तो इसका यह मतलब नहीं कि आप औरों को बलपूर्वक सतायें, उन्हें परेशान करें। खुद तो मौज-मजा उड़ाते रहें और दूसरों को बैठने की भी सुविधा न दें। हमारे ऋषियों ने एक व्यवस्था स्थापित की थी कि प्रत्येक नागरिक उतनी ही वस्तु ग्रहण करे, जितने से उसकी आवश्यकतायें पूरी हो जायें। शेष भाग समाज के अन्य पीड़ित प्राणियों, अभावग्रस्त लोगों को बाँट दी जायें ताकि समाज में किसी तरह की गड़बड़ी न फैले। विषमता चाहे वह धन की हो चाहे जमीन-जायदाद की हो, हर अभाव ग्रस्त के मन में विद्रोह ही पैदा करेगी और उससे सामाजिक बुराइयाँ ही फैलेंगी। इसलिए न्याय-नीति का परित्याग कभी भी नहीं होना चाहिए। सबके हित में ही अपना हित समझकर मनुष्य को मनुष्यता से विमुख नहीं होना चाहिए। इसी में शान्ति है, सुख और सुव्यवस्था है।

मनुष्य इन बुराइयों से बचता रहे इसके लिये उसे हर घड़ी अपना लक्ष्य, अपना उद्देश्य सामने रखना चाहिये। यात्रा में गड़बड़ी तब फैलती है जब अपना मूल-लक्ष्य भुला दिया जाता है। मनुष्य जीवन में जो अधिकार एवं विशेषताएँ प्राप्त हैं वह किसी विशेष प्रयोजन के लिये हैं। इतनी सहूलियतें अन्य प्राणियों नहीं मिली। मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसे सुन्दर शरीर, विचार, विवेक, भाषा आदि के बहुमूल्य उपहार मिले हैं, इनकी सार्थकता तब है जब मनुष्य इनका सही उपयोग कर ले। मनुष्य-देह जैसा अलभ्य अवसर प्राप्त करके भी यदि वह अपने पारमार्थिक लक्ष्य को पूरा नहीं करता तो उसे अन्य प्राणियों की ही कोटि का समझा जाना चाहिये। जन्म-जन्मान्तरों की थकान मिटाने के लिये यह बहुमूल्य अवसर है जब मनुष्य अपने प्राप्त ज्ञान और साधनों का उपभोग कर ईश्वर-प्राप्ति की चरम शान्ति-दायिनी स्थिति को प्राप्त कर सकता है। जिन्हें साधन-निष्ठा की इतनी शक्ति नहीं मिली या जो कठिन तपश्चर्याओं को मार्ग पर नहीं जाना चाहते वे भी जीवन में उत्तम संस्कार, सद्भावनायें और श्रद्धा भक्ति पैदा कर ही सकते हैं ताकि अगले जीवन में परिस्थितियों की अनुकूलता और भी बढ़ जाय और धीरे-धीरे अपने जीवन लक्ष्य की ओर बढ़ने का कार्यक्रम चालू रख सके।

पर इस अभागे इन्सान को क्या कहें जो आत्म-स्वरूप को भूलकर उसके वासना 'शरीर' को ही सजाने में आनन्द ले रहा है। मनुष्य यह देखते हुये भी कि यह शरीर नाशवान् है और अन्य जीवधारियों के समान इसे भी किसी न किसी दिन धूल में मिल जाना है, फिर भी वह शारीरिक सुखों की मृग-तृष्णा में इस तरह पागल हो रहा है कि उसको अपने सही स्वरूप तक का ज्ञान नहीं है। शारीरिक सुखों के सम्पादन में ही वह जीवन का अधिकांश भाग नष्ट कर देता है। जब तक शक्ति और यौवन रहता है तब तक उसकी यह समझदारी की आँख खुलती तक नहीं, बाद में जब संस्कारों की जड़ें गहरी जम जातीं हैं और शरीर में शिथिलता आ जाती है तब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फिर समझ आने से भी क्या बनता है। चतुरता तो तब है, जब अवसर रहते मनुष्य सद्गुणों का संचय करके इस योग्य बन जाय कि यह यात्रा सन्तोषपूर्वक पूरी करके लौटने में कोई बाधा शेष न रहे।

आत्मा का सहज धर्म यह है कि वह इस जीवन में प्रकाश की अर्चना करे और उसी की ओर अग्रसर हो। इसमें कुछ देर लगे पर जब भी उसे एक नया जीवन मिले वह प्रकाश की ओर ही गतिमान् बना रहे। मनुष्य का दृढ़ निश्चय उसके साथ बना रहना चाहिये। उसका विवेक कुतुबनुमा की सुई की भाँति ठीक जीवन-लक्ष्य की ओर लगा रहना चाहिये, ताकि वह अपनी इस यात्रा में भूले भटके नहीं।

इस जीवन में काम, क्रोध, लोभ तथा मोह आदि के मल-विक्षेप आत्म पवित्रता को मलिन करते रहते हैं। इस अपवित्रता को ब्रह्मचर्य, श्रद्धा, श्रम और प्रेम के दिव्य गुणों द्वारा दूर करने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिये। मार्ग, इसमें सन्देह नहीं कठिनाइयों और जटिलताओं से ग्रस्त है। पर यदि सच्चाई, श्रद्धा, भक्ति एवम् आत्म-समर्पण के द्वारा ईश्वर के सतोगुणी प्रकाश को ओर बढ़ते रहें तो यह कठिनाइयाँ मनुष्य का कुछ बिगाड़ नहीं सकतीं।

आत्म-ज्ञान का तत्व-दर्शन

इसे एक विडम्बना ही कहनी चाहिए कि मनुष्य बाह्य संसार एवं सम्बन्धित वस्तुओं के विषय में अधिकाधिक जानकारियाँ एकत्रित तो करता रहता है, पर स्वयं अपने विषय में अपरिचित बना रहता है। अपने स्वरूप का बोध न होने तथा सांसारिक आकर्षणों में भटकते रहने से अन्तत भटकाव ही हाथ लगता है। जड़-प्रकृति की खोज साधना-सुविधाओं की उपलब्धि के लिए आवश्यक है, पर उससे भी अधिक जरूरी है उनके उपयोग कर्त्ता सत्ता का स्वरूप जानना।

मनुष्य क्या है? जीवन का स्वरूप एवं लक्ष्य क्या है? जीवन के साथ जुड़े संस्कार एवं प्राप्त विभूतियों का सही उपयोग क्या है? इन प्रश्नों को उपेक्षा के गर्त में डाल देने से एक प्रकार की आत्म-विस्मृति छाई रहती है। अन्तःकरण के मूर्च्छित स्थिति में जा पहुँचने से जीवन नीति का गम्भीर निर्धारण नहीं हो पाता। इन्द्रियों की उत्तेजना ही प्रेरणा बनकर रह जाती है। जिस तरह मनुष्येत्तर जीव शरीरेन्द्रियों से अभिप्रेरित होकर विभिन्न प्रकार के कर्म करते हैं- पेट और प्रजनन की परिधि में चक्कर काटते रहते हैं, उसी प्रकार का जीवनक्रम मनुष्य का भी बन जाता है। लोक प्रचलित ढर्रे का अनुकरण ही स्वभाव बन जाता है। कटी पतंग और पेड़ के टूटे पत्ते दिशा-विहीन इधर-उधर उड़ते और छितराते रहते हैं। जीवन भी मात्र इसी प्रकार दिन काटने के लिए जिया जाता है। उच्चस्तरीय आदर्श सामने न रहने से न तो कोई महत्वपूर्ण प्रयास बन पड़ता है और न ही जीवन का वास्तविक आनन्द मिल पाता है। भौतिक सुखाकांक्षा में भटकती जीवात्मा अशान्ति और असन्तोष की आग में जलती रहती है। रोने-कलपने में ही हारी-थकी जिन्दगी कट जाती है। ऐसा इसलिए होता है कि मनुष्य को अपनी सत्ता को बोध न होने से जीवन लक्ष्य का निर्धारण भी नहीं होने पाता।

पदार्थ और प्राण का, जड़ और चेतन का समन्वय ही काया का अस्तित्व बनाये हुए है। वे दोनों पृथक् होते हुए भी परस्पर इतने अधिक गुँथे हुए हैं कि एक के बिना दूसरे की गति नहीं। प्राण निकलते ही शरीर न केवल निष्चेष्ट हो जाता है वरन् स्वयमेव सड़ने लगता है और अपना अस्तित्व समाप्त कर लेने के लिए अन्त्येष्टि कर्म में अपनी रही-बची विशेषता होम देता है। यह तो हुई प्राण के अभाव में शरीर की दुर्गति। दूसरा पक्ष भी ऐसा ही है प्राण-सत्ता आकाश में वायुभूत होकर भले ही घुमड़ती रहे, पर दृश्य जगत् में अपने अस्तित्व का परिचय देना या किसी प्रकार का अभीष्ट प्रयोजन पूरा कर सकना सम्भव नहीं होता। प्राण के बिना शरीर का और शरीर के बिना प्राण का प्रत्यक्ष उपयोग नहीं रह जाता। इस तथ्य को देखते हुए दोनों के मध्यवर्ती सम्बन्ध सूत्र को समझा जा सकता है।

स्थूल और सूक्ष्म का, जड़ और चेतन का यह समन्वय इसी ब्रह्माण्ड में व्यापक रूप से विद्यमान है। पदार्थ की सबसे छोटी इकाई तरंगें हैं। इन कम्पनों के अन्तराल में चेतना का अस्तित्व और अंकुश ढूँढ़ निकाला गया है। उसकी सूझ-बूझ भरी गतिविधियाँ 'इकॉलाजी' विज्ञान के आधार पर सृष्टि सन्तुलन के रूप में पग-पग पर अपना कार्य करती हुई देखी जा सकती हैं। ऐसे और भी अगणित प्रमाण हैं जिनमें पदार्थ-जगत् के साथ एक अत्यन्त शक्तिशाली, रहस्यमय एवं वरिष्ठ-चेतना-जगत् गुँथा हुआ देखा जा सकता है। पदार्थ में जिस प्रकार ऊर्जा और गति का अस्तित्व है उसी प्रकार प्राण में भावना एवं विचारणा को अनेक रूपों में अपने चित्र-विचित्र कृत्य करते हुए देखा जा सकता है।

पदार्थ का स्वरूप और व्यवहार समझने पर स्थूल-जगत में मनुष्य अपने विभिन्न प्रयोजन पूरे करता रहता है। किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि जीवात्मा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वयं सचेतन होते हुए भी- चेतना-जगत में अपनी मूल सत्ता से अविच्छिन्न रूप से जुड़े होते हुए भी उस विधा से अपरिचित ही बना रहता है जो उसकी अपनी निजी सत्ता के उत्थान-पतन की जिम्मेदार है। शरीर पदार्थ है, अस्तु उसकी सुविधा पदार्थ पर निर्भर समझी जा सकती है। अभीष्ट उपलब्धियों के लिए काय-सत्ता को भौतिकी विद्या की आवश्यकता पड़ती है। इसके बिना उसका काम नहीं चलता, निर्वाह कठिन हो जाता है। ऐसी दशा में भौतिकी का महत्त्व समझा जाना और उसका उपयोग करना उचित ही है। किन्तु समझा यह भी जाना चाहिए कि जीवन की समस्त आवश्यकताएँ भौतिकी द्वारा पदार्थ को उपलब्ध कर लेने से ही तो पूरी नहीं हो जातीं। चेतना का अपना भी कुछ स्वरूप, उद्देश्य, कार्यक्रम, बल-वैभव है। उस सम्बन्ध में अनाड़ी बने रहने पर मात्र शरीर-यात्रा ही चलती रहेगी। चेतना की अपनी निजी-सामर्थ्य एक प्रकार से सोई ही पड़ी रहेगी उसका निर्वाहरत् पक्ष ही जाग्रत रहेगा। जिसे समग्र चेतना का कठिनाई से शतांश ही कहा जा सकता है। शेष अंश प्रसुप्त, उपेक्षित और अनगढ़ स्थिति में पड़ा रहे तो उसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा।

अध्यात्म शास्त्र में पग-पग पर एक उद्बोधन निर्देशन पूरा जोर देकर दिया जाता है कि अपने को जानो, उसे उठाओ।' **आत्मानं विद्धि'- 'आत्मावारे ज्ञातव्य'** जैसे सूत्र संकेतों का आत्मक्षेत्र के प्रवेशार्थी को ध्यानपूर्वक मनन-चिन्तन करना पड़ता है। आत्म-ज्ञान की महत्ता, प्रतिक्रिया एवं सिद्धि परिणिति का इतना अधिक प्रतिपादन हुआ है कि उससे बढ़कर इस संसार में और कोई बड़ी उपलब्धि मानी ही नहीं गई। अन्तःज्ञान की उपयोगिता बाह्य विज्ञान की तुलना में कहीं अधिक है। सुख-साधनों की अभिवृद्धि की तरह उपभोगकर्त्ता की विवेक दृष्टि का प्रखर होना आवश्यक है अन्यथा भौतिक उपलब्धियों का दुरुपयोग ही बन पड़ेगा और उससे अगणित समस्यायें उत्पन्न होंगी। मोटर अच्छी होना पर्याप्त नहीं है, ड्राईवर यदि अनाड़ी हुआ तो कितने ही संकटों का सामना करना पड़ सकता है। साधनों की कमी रहते हुए भी जीवन-लक्ष्य सामने हो तो अभावों में भी सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट रहा जा सकता है, जबकि अन्तःविवेक के अभाव में साधनों की प्रचुरता से बन्दर के हाथ में तलवार पड़ जाने जैसी स्थिति उत्पन्न होगी जिसने अपने मालिक की नाक पर बैठी मक्खी को उड़ाने के लिए गर्दन ही उड़ा दी थी।

मनुष्य के लिए खोज का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न कौन-सा हो सकता है, श्वेताश्वेतरोपनिषद् का ऋषि यह स्पष्ट करता है-

''किं कारणं ब्रह्म कुतः स्मजाता जीवाम् केन क्वच सम्प्रतिष्ठाः।

अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहेब्रह्म विदो व्यवस्थाम्।।

अर्थात्- हे वेदज्ञ ऋषियो ! इस जगत् का प्रधान कारण 'ब्रह्म' कौन है ? हम सभी किससे उत्पन्न हुए हैं ? किससे जी रहे हैं ? तथा किसमें प्रतिष्ठित हैं ? साथ ही किसके अधीन रहकर हम लोग सुख और दुःख का अनुभव करते हैं ?

इन प्रश्नों के उत्तर की अर्थात् आत्मज्ञान की आवश्यकता यदि अनुभव की जा सके तो सर्वप्रथम यह विचार करना होगा कि हम कौन हैं ? और क्यों जी रहे हैं ? इस तथ्य पर आत्मवेत्ता ऋषियों ने गम्भीर चिन्तन एवं अनुसंधान से जो निष्कर्ष निकाले थे वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं तथा आत्मानुसंधान में प्रवृत्त होने के इच्छुक जिज्ञासुओं का मार्गदर्शन करने में सक्षम हैं।

अणु की सत्ता की व्याख्या-विवेचना करने वाले वैज्ञानिक उसे सुविस्तृत-पदार्थ, वैभव का एक छोटा-सा अविच्छिन्न घटक मानते हैं। आत्मा क्या है ? परमात्म सत्ता का एक छोटा-सा अंश। अणु की अपनी स्वतन्त्र सत्ता लगती भर है, पर जिस ऊर्जा आवेश के कारण उसका अस्तित्व बना है तथा क्रिया-कलाप चल रहा है वह व्यापक ऊर्जा तत्व से भिन्न नहीं है एक ही सूर्य की अनन्त किरण संसार में फैली रहती हैं। एक ही समुद्र में अनेकों लहरें उठती रहती हैं। ऐसा देखने पर प्रतीत होता है कि किरणों एवं लहरों की स्वतन्त्र सत्ता है जो परस्पर एक-दूसरे से भिन्न है। पर सत्य की गहराई में जाने पर पता चलता है कि भिन्नता कृत्रिम और एकता वास्तविक है। अलग-अलग बर्तनों में आकाश की कितनी ही स्वतन्त्र सत्तायें दिखायी पड़ती हैं, पर तथ्यतः उनका अस्तित्व निखिल आकाशीय सत्ता से भिन्न नहीं है। पानी में अनेकों बुलबुले उठते और विलीन होते रहते हैं। बहती धारा में कितने ही भँवर पड़ते हैं। दीखने में बुलबुले और भँवर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व प्रकट कर रहे होते हैं, पर यथार्थ में प्रवाहमान जलधारा की सामयिक हलचलें मात्र हैं। जीवात्मा की स्वतन्त्र सत्ता दीखती भर है, पर उसका अस्तित्व एवं स्वरूप विराट् चेतना ही एक अंश है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस निष्कर्ष के आधार पर अध्यात्मवेत्ताओं ने उद्घोष किया कि "हम विश्व चेतना के एक अंश मात्र हैं। समष्टि ही आधारभूत सत्ता है। हम उसकी छोटी चिनगारी भर हैं। व्यष्टि और समष्टि की एकता शाश्वत है- पृथकृता कृत्रिम। सबमें अपने को और अपने में सबको समाया हुआ देखा, समझा और माना जाय। सबके हित में अपना हित सोचा जाय। परस्पर एक-दूसरे के सुख-दुःख को अपना ही सुख-दुःख माना जाय। सबका उत्थान, अपना उत्थान और सबका पतन अपना पतन यह मानकर चलने से सीमित परिधि में सुखी रहने की क्षुद्रता घटती है तथा आत्म-विस्तार की प्रेरणा उठती है। सीमा-संकीर्णता से निकलने से व्यक्तिवाद पर अवलम्बित स्वार्थपरता घटती है। मनुष्य विराट् समाज का अपने को एक अभिन्न अंग मानने लगता है। सामूहिक हित सोचने और सामूहिक गतिविधियाँ अपनाने में ही उसे आनन्द आता है।

अपनापन हर किसी को प्यारा लगता है। यह आत्मीयता जिस भी पदार्थ अथवा प्राणी के साथ जुड़ जाती है, वही परमप्रिय लगने लगते हैं। अपनेपन का दायरा जितना ही छोटा होगा, आत्मिक दृष्टि से मनुष्य उतना ही पिछड़ा माना जायेगा। अपने शरीर और परिवार तक सीमित रहने वाला व्यक्ति आत्म-विस्तार का आनन्द नहीं ले पाता। छोटा-सा क्षेत्र ही अपना बनकर रह जाता है। यह क्षेत्र जितना विस्तृत होगा उतनी ही आत्मीयता की परिधि भी बढ़ती जायेगी। सभी अपने लगेंगे और अपना परिवार अत्यन्त सुविस्तृत बन जायेगा। किस व्यक्ति की कितनी आत्मिक प्रगति हुई इसका अनुमान इस आधार पर लगाया जा सकता है कि उसने किस सीमा तक आत्म-विस्तार किया।

आत्मा परमात्मा की, जीव ब्रह्म की, व्यष्टि-समष्टि की एकता का दूसरा निष्कर्ष है कि अंशी के सभी गुण सूक्ष्म रूप से अंश में विद्यमान रहते हैं। अस्तु परमात्मा की समस्त विशेषतायें एवं सम्भावनाएँ जीवात्मा में मौजूद हैं। साधना द्वारा उन्हें जगाया एवं विकसित किया जा सकता है। आत्मा के परमात्मा स्तर तक जा पहुँचने की पूरी सम्भावना है। चिनगारी में दावानल बनने की सभी विशेषताएँ मौजूद रहती हैं। विशाल वृक्ष का ढाँचा बीज के भीतर सन्निहित है। नन्हें से शुक्राणु में प्राणी की आकृति एवं प्रकृति का अधिकांश स्वरूप समाहित रहता है जो नेत्रों से दिखाई नहीं पड़ता। छोटे-से परमाणु में पूरे सौर-मण्डल का नक्शा होता है। इस तथ्य से यह स्पष्ट है कि जीव की मूलसत्ता ईश्वर के ही समतुल्य है। इस सम्भावना को साकार करना मनुष्य जीवन में सम्भव है। मनुष्य के रूप में शरीर धारण करने का सुअवसर भी इसीलिए मिला है कि वह अपने महान लक्ष्य को समझे तथा पूर्णता की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करे। परमात्मा द्वारा दिये गये मनुष्य जीवन रूपी बहुमूल्य उपहार की सार्थकता पूर्णता की प्राप्ति-आत्मज्ञान की उपलब्धि में ही सन्निहित है।

इस परम लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर होते हुए अनुकरणीय आदर्श एवं पवित्रतम देव जीवन जिया जाय और अपनी शारीरिक, मानसिक एवं भौतिक उपलब्धियों में से न्यूनतम अपने लिए तथा अधिकतम परमार्थ प्रयोजनों में उपयोग किया जाय, यही है ईश्वर प्रदत्त सुर दुर्लभ मानव-जीवन का श्रेष्ठतम उपयोग। अन्य जीवधारियों की तुलना में मनुष्य को अतिरिक्त बुद्धि-वैभव परमात्मा ने दिया है। ऐसा पक्षपात उसने क्यों किया ? इसका उत्तर मनुष्य जीवन के लक्ष्य को समझने पर स्पष्ट हो जाता है। यदि मनुष्य प्राप्त अतिरिक्त अनुदान को व्यक्तिगत संकीर्ण-स्वार्थों को पूरा करने में प्रयुक्त करता है तो उस उपहार का दुरुपयोग हुआ समझा जाना चाहिए।

मन और शरीर जीवन रूपी रथ के दो पहिए- दो घोड़े हैं। अन्तःकरण की आस्था एवं आकांक्षा के अनुरूप यह दोनों स्वामिभक्त सेवक की भाँति गतिशील रहते हैं। शरीर जड़ है। उसकी अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता अथवा इच्छा नहीं है। इन्द्रियाँ भी पंचतत्वों से बनी हैं। मन भी अपनी मर्जी से कुछ नहीं सोचता। अन्तःकरण से जैसी-भी प्रेरणायें उभरती हैं वह उसी के अनुरूप विचारों का ताना-बाना बुनता है। अन्तः प्रेरणा के निर्देशों को पूरा करना मात्र उसका काम है। सज्जनों का चिन्तन और कर्तव्य एक तरह का होता है और दुर्जनों का दूसरी तरह का। इन दोनों ही प्रकार की प्रवृत्तियों में शरीर और मन सर्वथा निर्दोष होते हैं। दोषी अन्तःकरण होता है जिसमें जमें संस्कार भली-बुरी प्रेरणाएँ उभारने का कारण बनते हैं।

आत्मज्ञान का अर्थ है, अन्तरात्मा के गहन स्तर को स्पर्श करना। कुसंस्कारों का परिशोधन करना यह आस्था एवं अनुभूति उत्पन्न करना कि हम सत्-चित् आनन्द परमात्म-सत्ता के अविच्छिन्न अंग हैं। पूर्णता हमारा लक्ष्य है। आत्म-ज्ञान की भूमिका में जगा हुआ जीवात्मा संकीर्ण स्वार्थपरता की परिधि को लाँघकर सबमें अपने को और अपने में सबको देखता है। इसलिए वह जो कुछ भी करता एवं सोचता है वह व्यापक लोकहित मानव मात्र के कल्याण को ध्यान में रखकर। उसके हर क्रिया-कलाप में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदर्शवादिता ही उभरती, छलकती दिखायी पड़ती है। ऐसे आत्मज्ञानी अभावों एवं संकटों में रहते हुए भी अन्तःकरण में सदा असीम आनन्द एवं संतोष की अनुभूति करते रहते हैं। यह एक ऐसी स्थिति है जिसके विषय में वृहदारण्यक उपनिषद् का ऋषि कहता है-

''आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्व विदितम्।''

अर्थात् ''वह एक ऐसी पूर्ण चेतन्य आनन्दमय सत्ता है जिसे ज्ञान से सब कुछ जान लिया जाता है। अर्थात् कुछ भी जानने को शेष नहीं रहता।''

''य एवं वेदाहं ब्रह्मा स्मीति स इदं सर्व भवति।''

अर्थात्- आत्मवेत्ता सर्वत्र हो जाता है क्योंकि दृष्टा का अनुभव ही विश्व का विस्तार है। निद्रा से टूटने पर स्वप्न की स्थिति मिट जाती है। आत्मज्ञान के प्रकाश में यह अनुभव होता है कि संसार की सत्ता आत्मा के बाहर नहीं है। भगवान् बुद्ध आत्मज्ञानी होते ही दिव्य मानव बन गये। यह अन्तःजागरण का ही प्रतिफल था। जिसके कारण उन्हें सबमें आत्मसत्ता का प्रकाश दिखाई पड़ने लगा।

आत्मज्ञान की चरम उपलब्धि के लिए तत्व-दर्शन को समझना जितना आवश्यक है उतना ही साधना का मार्गावलम्बन भी अनिवार्य है।

भव-बन्धन और जीवन-मुक्ति

विकास का क्रम समस्त ब्रह्माण्ड के प्रत्येक क्षेत्र में गतिशील हो रहा है। जीव भी उस प्रक्रिया से अछूता नहीं है। जीवन का भी क्रमिक विकास हुआ है। यह तम, रज और सत तीनों रूपों में है और क्रमशः एक-एक मंजिल ऊपर उठता चला जा रहा है। तम का अर्थ है, जड़ता। जड़ सृष्टि को इसी वर्ग में गिनते हैं। जड़ पदार्थों में भी जीवन तो है, पर वह प्रसुप्त स्थिति में पड़ा है। इसमें ऊँची और अच्छी स्थिति सूक्ष्म जीवाणुओं की है। वे मिट्टी में मिले रहते हैं। हवा और पानी में गतिशील हैं। शरीर में जीवाणुओं की भरमार है। चूँकि इनमें इन्द्रियाँ और मस्तिष्क नहीं है इसलिए उन्हें भी जड़ गिना जाता है। उसमें थोड़ी और अच्छी स्थिति वृक्ष-वनस्पतियों की है। यों उन्हें भी जड़ कहा गया है फिर भी उनमें जीवन प्रत्यक्ष लहलहा रहा है। यह सारा प्रसार, विस्तार जड़ जगत् का है, पानी जड़ है पर उसमें ओत-प्रोत जीवन से विज्ञान क्षेत्र भली प्रकार परिचित है। पंच-तत्वों में से प्रत्येक में अपने-अपने ढंग की हलचल और चेतना विद्यमान है। इसे तमस् स्थिति में पड़ा हुआ अविकसित कह सकते हैं।

इससे अगली स्थिति 'रजस्' की है। जीवन के इस वर्ग में इन्द्रिय चेतना युक्त चल-फिर सकने वाले प्राणी आते हैं। जलचर, नभचर वर्ग के असंख्यों जीवधारी इस श्रेणी में गिने जाते हैं। कीट-पतंग, पशु-पक्षी, उद्भिज, श्वेजन, अंडज, जरायुज- प्राणी इसी स्तर के हैं। इससे उच्च वर्ग के प्राणी हैं, जिन्हें सूक्ष्म जीवों की तरह अदृश्य कह सकते हैं। इनमें से पितरों, देवात्माओं, जीवन मुक्तों, देवदूतों की गणना होती है। वे कभी शरीर धारण करते हैं। कभी अशरीरी रहते हैं। अशरीरी रहकर वे अपनी सूक्ष्म शक्ति से अधिक व्यापक क्षेत्र में अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं। अधिक सत्पात्रों को अधिक उपयोगी एवं अधिक मात्रा में प्रेरणायें दे सकते हैं। किन्तु जब जनसाधारण को प्रत्यक्ष मार्गदर्शन करते हुए उन्हें साथ लेकर चलना होता है और कोई परम्परा स्थापित करनी होती है तो शरीर धारण करके अवतारी देवदूतों की तरह काम करते हैं। वे कर्मफल भोगने के लिए विवश होकर जन्म-मरण के चक्र में घूमने वाले प्राणियों की तरह शरीर धारण नहीं करते वरन् समय की आवश्यकता पूरी करने के लिए व्यक्ति और समाज को ऊँचा उठाने के विशेष प्रयोजन से जन्म लेते हैं और अपना उद्देश्य पूरा करके पुनः वापिस लौट जाते हैं।

तथ्य को और भी स्पष्ट रूप से समझना हो तो संक्षेप में उसे इस प्रकार जानना चाहिए कि पदार्थ की रचना तो पंच-तत्वों, परमाणुओं एवं रासायनिक यौगिकों की सहायता से हुई है। ऊर्जा विविध स्वरूप में उन्हें कई प्रकार की हलचलों के लिए प्रेरित कर रही है। चेतना के सम्बन्ध में बात दूसरी है। वह तम, रज और सत इन तीन भागों में विभक्त है। अथवा तीन स्थितियों में रह रही है। चेतना की प्रथम स्थिति है 'तम'- जिसे जड़ निर्जीव कहा जाता है। जिसमें खनिज, वनस्पति एवं सूक्ष्मजीवी आते हैं। बोध के अविकसित स्थिति में होने के कारण ही उन्हें जड़ वर्ग का ठहराया गया है। चेतना की दूसरी स्थिति है 'रज' अर्थात् विकसित जागरूकता, मन प्रधान प्रेरणा। उपलब्धियों के लिए आतुर सक्रियता। उसे अहंता, संचय और उपभोग के तीनों रूपों में काम करते हुए देखा जा सकता है। शास्त्रकारों ने इसे अहंकार, तृष्णा और वासना में निरूपित किया है। विकसित कहे जाने वाले प्राणियों के विविध क्रिया-कलापों के प्रेरणा स्त्रोत यही तीन हैं। इन्हें मनोवैज्ञानिकों ने जीव की मूल-भूत प्रवृत्ति कहा है और उनका न्यूनाधिक विभाजनों के साथ वर्णन किया है। इस स्तर के प्राणियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को शास्त्रकार जीवित कहते हैं। इनका चिन्तन और कर्तव्य रजस् स्तर का कहा जाता है।

इससे ऊँची सत् तत्व में विकसित चेतना है। इसे शरीरधारी और अशरीरी दोनों रूपों में देखा जा सकता है। आत्मशोधन में एवं ब्रह्मवर्चस् की साधना में संलग्न ब्राह्मण और इससे आगे परिपक्व स्थिति में पहुँचे हुए साधु कहलाते हैं। ब्राह्मण परिवार बनाकर रहते हैं और ज्ञान-सम्वर्द्धन की सेवा में संलग्न रहते हैं। साधु पके फल की तरह परिवार भर के उत्तदायित्वों से छुटकारा पाकर विश्व नागरिकों में सम्मिलित हो जाते हैं। उनका अपनापन असीम हो जाता है। व्यापक लोकहित को महत्त्व देते हैं और ऊँचा उठाने वाली प्रेरणाएँ देने की पुण्य-प्रक्रिया में संलग्न रहते हैं। वे सर्वत्र बरसते हैं, कहीं भी मोह बन्धन में नहीं बँधते। इन्हें महात्मा कह सकते हैं। महामानव, सन्त, सुधारक, शहीद, तत्वदर्शी, युगदृष्टा, मनीषी आदि विशेषणों से इन शरीरधारी देवताओं को पहचाना जाता है। इन्हें भू-सुर अर्थात् पृथ्वी के देवता भी कहते हैं।

स्थूल जगत् की तरह सूक्ष्म जगत् में भी तम और सत की स्थिति रहती है। वहाँ भी आसुरी और दैवी सत्ता ताने-बाने की तरह, जीवन-मरण की तरह, रात-दिन की तरह, धूप-छाँह की तरह काम करती है। अपनी दुनियाँ में सुख-दुःख, पाप-पुण्य की परस्पर विरोधी गतिविधियाँ चलती हैं। सूक्ष्म जगत में भी दैवी और आसुरी, सतोगुणी और तमोगुणी तत्व काम करते हैं। वहाँ भी देवासुर संग्राम मचा रहता है। अशरीरी आत्माओं में भी दुष्ट प्रवृत्ति पाई जाती है। वे भी देवताओं की तरह ही अपने स्वभाव के अनुरूप काम करती हैं और दुष्ट संभावनाएँ साकार करने में लगी रहती हैं। दुष्कर्मों में भी कई बार बढ़ी-चढ़ी सफलता मिल जाती है। इनमें अशरीरी आसुरी तत्वों का योगदान रहता है। साधना विज्ञान में दैवी और आसुरी दोनों प्रकार के विधान हैं। दैवी स्तर की उपासना दक्षिण मार्गी कहलाती है, उससे साधक में सत तत्वों की वृद्धि होती है और देव अनुग्रह उपलब्ध होता है। इससे प्रतिपक्षी तन्त्रोक्त वाम मार्ग द्वारा आसुरी शक्तियों से भी सम्पर्क साधा जा सकता है। उनके सहयोग से मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण जैसे क्रूर कर्म किये जा सकते हैं।

चेतना का उच्च स्तर अशरीरी किन्तु सुविकसित होता है उसमें देव और असुर दोनों प्रकृति के हो सकते हैं। यह उभय-पक्षीय स्थिति तो रज और तम में भी होती है। रजस् स्तर के प्राणियों में गाय जैसे दयालु और व्याघ्र जैसे हिंसक पशु मौजूद हैं। हंस और काक का भेद इसी प्रकार का है। सर्प और नेवला की भिन्नता स्पष्ट है। शरीर के भीतर विघातक विषाणु भी पाये जाते हैं और जीवन रक्षा के प्रहरी श्वेत-रक्त कण भी अपना काम करते हैं। जड़ पदार्थ में प्राणघातक विषों की भी कमी नहीं है और अमृतोपम औषिधियाँ भी प्रचुर परिमाण में मौजूद हैं। अग्नि जैसे दाहक और हिम जैसे शीतल पदार्थों में परस्पर विरोधी प्रकृति काम करती पाई जाती है। चेतना के तम्, रज् और सत् स्तरों में से प्रत्येक को शुभ-अशुभ के दो-दो भागों में बाँटा जाय तो स्पष्ट ही वे छै की संख्या में हो जाते हैं।

यहाँ लगे हाथों अद्वैत, द्वैत और त्रैत का अन्तर भी समझ लेना चाहिए। सृष्टि के मूल में एक ही तत्व है, चेतना। वैज्ञानिक विकास के साथ अब प्रकृति की नई परतें खुल रही हैं और किसी समय जो पदार्थ की मूल-भूत इकाई परमाणु समझी जाती थी अब वह मान्यता वापिस ले ली गई है। परमाणु भी अनेक घटकों का सम्मिश्रित पिण्ड बन गया है। उन घटकों का शवच्छेद करने पर वे स्वयं समाप्त हो जाते हैं और उनके मूल में ऊर्जा रह जाती है। इसे 'क्वान्टा' कहते हैं। अब पदार्थ की मूल इकाई परमाणु नहीं है वरन् प्रकृतिगत हलचलों के लिए उत्तरदायी व्यापक ऊर्जा है, अब यही प्रकृति है और इसी का नाम क्वान्टा है।

क्वान्टा अचेतन है या चेतन ? इस प्रश्न का समाधान अब वैज्ञानिक क्षेत्र ही इस तरह करने जा रहे हैं जिस तरह अध्यात्म द्वारा प्रतिपादित किया जाता रहा है। 'इलॉलॉजी' के सिद्धान्तानुसार प्रकृति की, पदार्थ की समस्त हलचलें एक-दूसरे की पूरक हैं। पारस्परिक हित साधन सहयोग और संतुलन की रीति-नीति ठीक प्रकार चल रही है, मानो किसी सुव्यवस्थित शासन ने अपनी प्रजा को बिना टकराये स्नेह-सहयोगपूर्वक रहने का विधान बना रखा हो। गृहपति अपने परिवार की व्यवस्था करता है। जीवात्मा अपने शरीर के अवयवों और जीवाणुओं को घड़ी के कल-पुर्जों की तरह सहयोगी बनाये हुए हैं। मनुष्य की गन्दी साँस को वनस्पति खाती है और वनस्पतियों द्वारा छोड़ी साँस को मनुष्य खाते हैं। भूमि की उर्वरता पौधों को उगाती है और पौधे सूखकर खाद बनते और भूमि को उर्वरता लौटाते हैं। समुद्र बादल, वर्षा, नदी और फिर समुद्र के क्रम से जल राशि का भ्रमण चक्र चलता रहता है। ग्रह-नक्षत्र आपस में टकराते नहीं वरन् अपनी-अपनी कक्षाओं में शान्तिपूर्वक भ्रमण करते हैं। वे एक-दूसरे के साथ छेड़खानी नहीं करते वरन्

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्नेह-सहयोग भरा आदान-प्रदान करते हैं। दुर्बल प्राणियों का प्रजनन अधिक और समर्थों का स्वल्प होना प्रकृति की विवेकशीलता द्योतक है। जब भी अवांछनीय परिस्थिति बढ़ती हैं तो उनकी विरोधी प्रतिक्रिया होती है और उस तूफान द्वारा फिर से वातावरण स्वच्छ हो जाता है। अवतारों का दृश्य, अवतरण इसी सृष्टि संतुलन के लिए होता रहता है। 'इकालॉजी' विज्ञान की जितनी गहरी परतें खुलती जा रही हैं उसी अनुपात से यह स्पष्ट होता जाता है कि प्रकृति अन्धी नहीं वरन् अत्यन्त दूरदर्शी, विवेकशील एवं क्रिया-कुशलता से सुसम्पन्न है। इसका अर्थ हुआ प्रकृति को चेतना युक्त होने की मान्यता मिलना। विश्वास किया जाना चाहिए कि अगले दिनों 'क्वान्टा' भी मर जायगा और इसके स्थान पर सृष्टि का उद्गम स्रोत 'चेतना प्रवाह' घोषित कर दिया जायगा। विभिन्न पदार्थ और प्राणी उसी चेतना समुद्र की लहरें ठहराये जायेंगे और सर्वत्र एक ही परमेश्वर संव्याप्त होने की बात स्वीकार की जायगी। हमें धैर्य रखना चाहिए और विश्वास करना चाहिए कि शोध में निरत विज्ञान भी अध्यात्म के स्वर में स्वर मिलाकर एक ही तथ्य का प्रतिपादन कर रहा होगा-**'ईशावास्य मिदं' सर्वं यत्किंचित् जगत्यां जगतं'** यहाँ सर्वत्र ईश्वर संव्याप्त हैं। 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' का वेदान्त उद्घोष अगले ही दिनों विज्ञान की कसौटी पर भी सत्य और तथ्य सिद्ध होकर रहेगा।

वैज्ञानिकों की दृष्टि से परमाणुओं का अन्धड़, तूफान ही यह संसार है। रेगिस्तान में आँधी आने पर यहाँ का रेत वहाँ उड़कर जा पहुँचता है और रेत के टीले इधर से उधर उखड़ते जमते रहते हैं। बादलों की कई तरह की आकृतियाँ बनती-बिगड़ती रहती हैं। इसी प्रकार परमाणुओं के अन्धड़ में तरह-तरह के पदार्थ- प्राणियों के शरीर बनते-बिगड़ते रहते हैं। मूलसत्ता अणु प्रवाह है। प्राणियों की मस्तिष्कीय संरचना एवं परमाणुओं की भगदड़ का सम्मिश्रित स्वरूप ही यह संसार है जिसमें हम रहते हैं और तरह-तरह के अनुभव करते हैं। हर प्राणी की दुनियाँ उसके चेतना स्तर के अनुरूप एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है। मेढक इस संसार को जिस दृष्टि से देखता है- जैसा सोचता अनुभव करता है- इन्द्रियों की सहायता से उपभोग सामग्री तथा परिस्थिति में से जिस प्रकार की अनुभूति पाता है, वह मनुष्य की अनुभूतियों से सर्वथा भिन्न प्रकार की है। दोनों के बीच जमीन-आसमान जितना अन्तर हो सकता है। ऐसी दशा में संसार का वास्तविक रूप क्या हो सकता है ? यह निर्णय कर सकना सर्वथा असम्भव है। एक ही खाद्य पदार्थ का विभिन्न प्राणी विभिन्न प्रकार का स्वाद लेते हैं तो किसी पदार्थ का मूल स्वाद कैसे घोषित किया जाय ? जब एक ही दृश्य से अनेकों प्रकार के निष्कर्ष निकाले जाते हैं। तो उनकी वास्तविकता किस आधार पर निरूपित की जाय? इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए वेदान्त में इस संसार को माया, मिथ्या, स्वप्न आदि नामों से पुकारा है।

ब्रह्म को सत् कहा गया है, प्रकृति उसकी स्फुरणा है। एक को चेतन दूसरे को जड़ कहा गया है। दोनों के मिलन से पदार्थ में हलचल और प्राणियों का चिन्तन चलता है। सृष्टि के मूल-तत्व ब्रह्म को सत् कहा गया है और उसके आवरण, उपकरण को प्रकृति एवं तमस् कहते हैं। इस प्रकार प्रकृति और पुरुष की दो सत्ताएँ बनती हैं और इन्हें सत् एवं तम की तात्विक स्थिति कह सकते हैं। यह द्वैत कहलाया। वस्तुतः इस संसार में जड़ चेतना प्रकृति पुरुष, प्रकाश, अन्धकार, सर्दी-गर्मी, जल-थल की तरह दो ही बड़े तथ्य हैं। अकेला ब्रह्म होता तो वह अपने आप तक सीमित रहता। अकेली प्रकृति होती तो सब कुछ निस्तब्ध, नीरस, निष्प्राण होने के कारण अविकसित एवं भयावह स्थिति में बनी रहती। चमत्कार तो मिलन से हुआ है। दो के मिलने से तीसरी वस्तु बनती है इसे हर कोई जानता है। दिन और रात की मिलन बेला को संध्या काल कहते हैं। नीला और पीला रंग मिल कर हरा बनता है। दो गैसें मिलने से पानी बन जाता है। आग और पानी के मिलने से भाप बनती है। जड़ और चेतन का मिलन ही 'जीव' है। त्रैतवाद में ईश्वर प्रकृति और जीव की तीन सत्ताएँ मानी गयी हैं। जीव एक सम्मिश्रण है। मुक्ति की स्थिति में माया हट जाती है और जीव अपने शुद्ध स्वरूप परमेश्वर में जा मिलता है, इस प्रकार उसकी द्विधा स्थिति का अन्त हो जाता है। माचिस में आग लगती है तो लौ उठती है। तीली समाप्त हो जाती है और व्यापक अग्नि तत्व में जा मिलती है। जड़ और चेतन के सम्मिश्रण से बँधी हुई एक अहंता ग्रन्थि को जीव कहते हैं। अहम् का तात्पर्य जड़ शरीर एवं भौतिक साधनों सहित चेतना की आत्म-मान्यता होती है। इसी जकड़न को भव-बन्धन कहते हैं। आत्मा और प्रकृति की भिन्नता की अनुभूति यदि अन्तःकरण को हो सके तो 'आत्म-ज्ञान का, ब्रह्मज्ञान का उद्देश्य पूरा हो जायेगा। इसी अनुभूति को भूमा, ऋतम्भरा, प्रज्ञा, तुरियावस्था, समाधि, ईश्वर प्राप्ति-जीवन मुक्ति आदि के नाम से जाना जाता है।

प्रगति का क्रम नीचे से ऊपर की ओर है। तम् से रज्, रज् से सत् की ओर जीवन बढ़ता है। यही उचित है और यही शोभनीय। जीव इसी क्रम को अपनाये रहे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो उसकी प्रशंसा है। निम्न योनियों में से प्रगति करते-करते जीव को मनुष्य स्थिति में आने का सौभाग्य मिल गया है अब प्रतिष्ठा इसी में है कि आगे बढ़ा जाये तो जीवात्मा भर न रहकर महात्मा, देवात्मा और अन्ततः परमात्मा बनने का चरम लक्ष्य प्राप्त किया जाय।

शाश्वत-सनातन मुक्ति का राजमार्ग

आये दिन धर्मतंत्र के धुरंधरों द्वारा स्वर्ग-मुक्ति की चर्चा होती ही रहती है और वे भोले-भावुकों को इसकी प्राप्ति हेतु एकान्त सेवन करने, अपने दायित्वों का सर्वथा त्याग करके गुफा-कन्दराओं में रहने एवं वन-उपवनों में निवास करने के लिए प्रेरित-प्रोत्साहित करते व उकसाते देखे जाते हैं।

यहाँ कइयों के मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या यही मुक्ति है ? उत्तर सर्वथा 'ना' में दिया जा सकता है। जिनमें तनिक भी विवेक बुद्धि है, वे यह सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि यदि ऐसी बात रही होती, तो भगवान् ने इतनी सुन्दर सृष्टि नहीं बनायी होती। यदि उनका ध्येय मनुष्य को मृत्यु की ओर ले जाना होता, तो फिर जीवन का उद्देश्य ही क्या रह जाता ? फिर तो सभी को वे एक साथ काल के गाल में धकेलकर मुक्त कर देते, पर व्यावहारिक जीवन में ऐसा होता कहाँ दिखाई पड़ता है ? जो कुछ दीखता है, वह सब इसके बिलकुल विपरीत जान पड़ता है। एटमबम, अस्त्र-शस्त्र, गरम-शीत विश्व-युद्धों तथा गृह-युद्धों के रूप में सर्वत्र चलते ही रहते हैं, पर दूसरी ओर स्रष्टा नया जीवन उत्पन्न करता ही चलता है। हम दुगुनी गति से विश्व के संहार का सरंजाम जुटा रहे हैं, तो वह नियामक सत्ता चौगुनी गति से जीवन को अक्षुण्ण बनाये रखने का प्रयत्न-पुरुषार्थ करती स्पष्ट प्रतीत होती है। इससे यही विदित होता है कि ईश्वर मृत्युपरान्त मोक्ष का पक्षधर नहीं है, वरन् वह जीवन में ही मुक्ति जैसी स्थिति उत्पन्न करना चाहता है। यह जीवन का प्रेमी है, किन्तु उसके एजेण्ट तथाकथित धर्म के नाम पर उल्टी पट्टी पढ़ाने वाले इसके घोर दुश्मन और आज की अधिसंख्यक आबादी इन्हीं के चंगुल में है, इसलिए वह उसे पलायनवाद की ओर, मृत्यु की ओर ले जा रहे हैं। उनका विश्वास शरीर को गलाने-जलाने में है, जीवन को सँवारने-सुधारने में नहीं। इसी कारण आज का धर्म आत्मघाती होता जा रहा है, जीवन विरोधी लाइफ-निगेटिव बनता जा रहा है, जबकि होना चाहिए उसे लाइफ-अफरमेटिव, जीवनदाता।

धर्म, जीवन की परिपूर्ण अनुभूति का नाम है न कि पलायनवाद का पर्याय। इसी आशय का मन्तव्य प्रकट करते हुए मूर्धन्य मनीषी कॉलिन विल्सन अपनी पुस्तक "सैल्वेनन दि अटमोस्ट गोल ऑफ दि ह्यूमन लाइफ" में लिखते हैं कि इन दिनों हमारी स्थिति ऐसी है, जिसमें हम निस्सार में सार की तलाश करते हैं और जो सारयुक्त है, उसे मृग-मरीचिका समझकर उसका परित्याग करते हैं। वस्तुतः धर्म जीवन का पर्याय है, वह हमें जीवन जीने की कला सिखाता है। उसका प्रयोजन जीवन की पूर्ण अनुभूति कराना है, न कि स्वर्ग-मुक्ति का सब्ज-बाग दिखाना और जिस दिन मनुष्य को धर्म का यह मर्म समझ में आ जायेगा, उसी दिन से उसकी दिशा बदल जायेगी। वे आगे लिखते हैं कि इस प्रकार धर्म की सही परिभाषा समझने के पश्चात् जब मनुष्य की दिशा परिवर्तित होगी, तो फिर उसके जीवन का लक्ष्य स्वयं जीवन की पूर्ण अनुभूति करना हो जायेगा और जिस दिन जीवन की सम्पूर्ण अनुभूति होगी, उसी पल उसे स्वर्ग-मुक्ति का आनन्द उपलब्ध हो जायेगा।

"पाराडॉइज ऑर इनफरनो-दि टू वेज ऑफ थिंकिंग" नामक पुस्तक के लेखक एवं प्रसिद्ध दार्शनिक बर्नाड गिट्लसन अपनी उपरोक्त कृति में लिखते हैं कि स्वर्ग-मुक्ति वस्तुतः जीवन से परे की स्थिति नहीं है। लौकिक जीवन जीकर ही उसकी अनुभूति की जा सकती है। वास्तव में स्वर्ग-नरक जीवन की दो भिन्न चिन्तन धाराएँ हैं। जब हम स्वर्ग की किन्हीं अन्य लोकों में कल्पना कर उसकी प्राप्ति हेतु शरीर को बेतुके क्रिया-काण्डों में लगाकर इस बहुमूल्य जीवन को बरबाद करते और रीते हाथ रह जाते हैं, तो हमारी मनःस्थिति विक्षिप्तों जैसी हो जाती है। यही नरक है। धर्म इसी नरक से बचने-बचाने का नाम है और व्यक्ति जब इससे बच जाता है, तो वही उसकी मुक्ति बन जाती है, वही उसका स्वर्ग है, किन्तु लेखक के अनुसार स्वर्ग-मुक्ति तो इस पथ की पूर्ण अनुभूति है।

स्वर्ग-मुक्ति तो इस पथ में पड़ने वाली एक सराय के समान है, जो इस राह के सभी पथिकों को एक-न-एक दिन अवश्य मिलती है। जिस प्रकार तीर्थाटन करने वाले यात्रियों के लिए धर्मशाला उसका गन्तव्य नहीं होता, वह तो एक पड़ाव है, उसी प्रकार जीवन का लक्ष्य मुक्ति नहीं है वह गौण है। प्रधान तो जीवन की पूर्ण अनुभूति करना है। जो इस राह पर निकल पड़ता है, मुक्ति का आनन्द अनायास उसे हस्तगत हो जाता है।

इस बिन्दु पर दोनों लेखकों के विचार मिलते प्रतीत होते हैं। दोनों ने ही इस बात को स्वीकारा है कि जीवन की पूर्ण अनुभूति का ही दूसरा नाम मोक्ष अथवा मुक्ति है और इस मुक्ति को सामाजिक जीवन से, संसार से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पलायन कर प्राप्त नहीं किया जा सकता, किन्तु आज सर्वत्र हो यही रहा है। हम मुक्ति को प्रमुख मान बैठे हैं, और जीवन जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और मूल है, उसे अप्रधान मानने लगे हैं। इस उलट-बाँसी के फेर में व्यक्ति उसे भी गँवाता चलता है, जो उसके पास होता है, जिसके सहारे वह अपनी मनोवांछा को प्राप्त कर सकता था, पर उस बुद्धिविपर्यय को क्या कहा जाय, जो चावल को गौण और भूसे को प्रमुख मानने लगे। किसान खेत में धान बोता है। धान होता है और उसके साथ भूसा भी मिल जाता है, किन्तु किसान का उद्देश्य भूसा पैदा करना कदापि नहीं होता। वह तो धान के साथ उत्पन्न हो जाता है। वह प्रमुख नहीं है। मुख्य तो चावल है। वर्तमान लोग चावल को भूसा और भूसे को चावल मानने लगे हैं। यही समस्या की जड़ है। गड़बड़ी यहीं से पैदा होती है। बोया भूसे को जाता है और आशा चावल की की जाने लगती है। परिणाम यह होता है कि न भूसा पैदा होता है, न चावल। भूसा जो हाथ में था, वह भी बरबाद हो जाता है। व्यक्ति खाली हाथ रह जाता है। तब वह धर्म को ढोंग-प्रपंच कहकर पुकारने लगता है। कहने लगता है- धर्म बेकार की चीज है, वह मिथ्या है, झूठा है, जबकि यथार्थता इससे बिलकुल भिन्न है।

लियो टाल्स्टाय की एक लघु कथा है, कि एक आदमी से कहा गया कि एक दिन में तुम इस धरती की जितनी दूरी नाप सकोगे, वह सब तुम्हारी हो जायगी। बेचारा भूख-प्यास की परवाह किये बिना दौड़ पड़ा। दौड़ता रहा। चिलचिलाती धूप में भी न रुका, भागता ही रहा, पर आखिर कब तक दौड़ता रह सकता था ? एक स्थान पर गिरा और तड़पता हुआ शान्त हो गया। उसकी मृत्यु हो गई। एक समझदार आदमी उधर से गुजरा, तो उसकी मूर्खता पर हँस पड़ा। मन में विचारा कि इसे इतनी ही जमीन की तो आवश्यकता ही थी, अनावश्यक क्यों भागता फिरा ?

प्रस्तुत प्रसंग आज के व्यक्तियों पर अक्षरशः लागू होता है। मुक्ति की खोज में हम जीवन से भाग रहे हैं, फलतः न मोक्ष मिल पाता है, न निश्चिन्तता का जीवन जी पाते हैं। सच्चाई तो यह है कि जीवन में ही मुक्ति दूध-पानी की तरह समायी हुई है। जब जीवन कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के साथ समग्र रूप में प्रगट होता है, तो सारी बाधाएँ सारी कठिनाइयाँ, समस्त बेड़ियाँ स्वतः टूट जाती हैं और आदमी मुक्त हो जाता है। अधूरा जीवन बन्धन है, पूर्ण जीवन मुक्ति। मुक्ति लक्ष्य नहीं है, वह तो एक शाखा है- जीवन की एक शाखा। सम्पूर्ण जीवन ही मनुष्य का सदा से लक्ष्य रहा है। मुक्ति इसी से सम्भव है।

जो मुक्ति को जीवन का चरम लक्ष्य होने का नारा देते हैं, वे एक प्रकार से मनुष्य को मृत्यु की ओर धकेलते हैं। समाज को भ्रम-जंजालों में उलझाते और संसार को दिग्भ्रान्त करते हैं। इस प्रकार की मुक्ति निश्चय ही आत्मघाती है।

जो मुक्ति व्यक्ति को जीवित स्थिति में ही पूरी सफलताओं के साथ, आनन्द के साथ, दायित्वों-कर्तव्यों के साथ मिलती हो, वही शाश्वत और सनातन है। सत्य और तथ्य इसी में निहित है। प्रत्येक को ऐसे ही मोक्ष की कामना करनी चाहिए।

■

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवन काल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युगनिर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्रनिर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़ पढ़ना लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद कांग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रंगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका-मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोबा जी के चले जाने के बाद अस्तित्त्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि संवत् २०६८ में जन्में राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराम मत्त कहलाने वाले, आचार्य श्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रांति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माता जी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका-अपनी लेखनी से लिखी ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उनने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी वे यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रांति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्व दर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में संपन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरु सत्ता को देखकर त्याग करने की यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उनने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेघ के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से संपन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक आँवल खेड़ा से अपनी जन्मभूमि से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी 12 वर्ष पूर्व आरंभ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंतः स्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हवेली कहा जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जोकि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ बनाई गई। १९५३ में एवं क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों- प्रज्ञा संस्थानों भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों-चरणपीठों का महत्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्य पूर्ण था। ***परम पूज्य गुरुदेव की महत्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ, इस प्रकार हैं-***

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शांतिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष जन्मा संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन ब्राह्म मुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर १९११ के दिन आती थी। एक श्री मंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित-पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थी। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुआँ जिसे पूरे गाँव का एक मात्र मीठे जल वाला कुआँ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीर धारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशा धारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इंटर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धन राशि द्वारा विनिर्मित्त है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ-एवं कन्या इंटर कालेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा एवं एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित संस्कारवान आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव निर्माण की सांस्कृतिक-भावनात्मक क्रांति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीया मण्डी, मथुरा में स्थित हैं। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रांतिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरंभ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तंभ व अन्यान्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लेखों की पंक्तियों के माध्यम से संपन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतस्तल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुखी, तनाव ग्रसित व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परम वंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी टेण्ड्रिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजा घर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में 1942-43 में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ सहस्र कुण्डीयज्ञ की आधार शिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परम वंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं संपन्न हुआ। जन सम्मेलनों छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन विस्तार डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परम वंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षत: देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू० गुरुदेव की साधना स्थली व प्रात: काल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन संपन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा संपन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्य श्री ने युग निर्माण योजना के शत सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युगनिर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरंभ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युगनिर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शांतिकुंज, हरिद्वार- ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुन: एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने,

सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया । इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने 24 कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़ गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था । पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्त्तन सत्र जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े । यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का तांता लगा रहता है । पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं ।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्त ऋषियों की मूर्त्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को संपन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार संपन्न होते हैं। इस बीच परम वंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ संपन्न करना आरम्भ रखा । देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया । इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा ।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक अकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थ स्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया । यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी । स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता हैं, यहाँ की विशेषता है ।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परम-पूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवी स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७९ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था । वर्तमान शांतिकुंज-गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्त्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फल-श्रुतियों सहित स्थापित हैं । द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्त्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये । इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है । यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों-जैव विद्युत आदि पर पड़ा यह देखा जाता है । विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं । तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित हैं, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं । यहाँ प्रायः ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं । यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता ।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीला संदोह रचकर चली गयी । प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान २४००० से अधिक प्रज्ञा मण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जायें तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है । ▫▫▫

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२ (सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६.ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे—

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवनः एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org